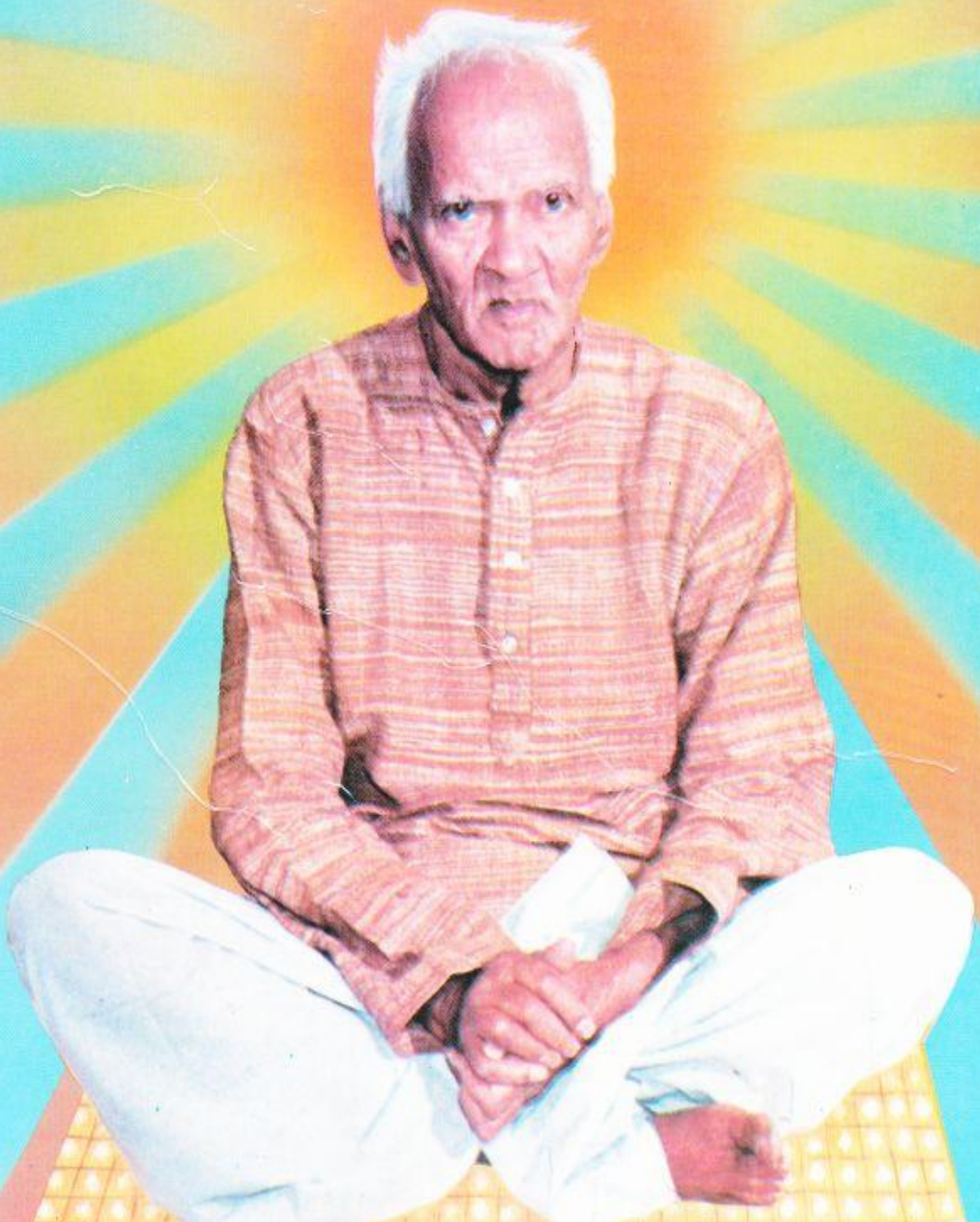
पं. श्रीराम शर्मा आचार्य वाङ्मय

साधना से सिद्धि-१



www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

साधना से सिद्धि-१

सम्पादक
ब्रह्मवर्चस

www.vicharkrantibooks.org

प्रकाशक
अखण्ड ज्योति संस्थान, मथुरा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्रकाशक
अखण्ड ज्योति संस्थान
मथुरा - २८१००३

© सर्वाधिकार सुरक्षित

द्वितीय संस्करण १९९८

www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org



मूल्य १२५)

मुद्रक
जनजागरण प्रेस, मथुरा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

समर्पणम्

ॐ मातरं भगवतीं देवीं श्रीरामञ्च जगद्गुरुम् ।
पादपद्मे तयोः श्रित्वा प्रणमामि मुहुर्मुहुः ॥

मातृवत् लालयित्री च पितृवत् मार्गदर्शिका ।
नमोऽस्तु गुरुसत्तायै श्रद्धा-प्रज्ञा युता च या ॥

भगवत्याः जगन्मातुः, श्रीरामस्य जगद्गुरोः ।
पादुकायुगले वन्दे, श्रद्धाप्रज्ञास्वरूपयोः ॥

नमोऽस्तु गुरवे तस्मै गायत्रीरूपिणे सदा ।
यस्य वागमृतं हन्ति विषं संसारसंज्ञकम् ॥

www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org

असम्भवं सम्भवकर्तुमुद्यतं प्रचण्डझञ्झावृतिरोधसक्षमम् ।
युगस्य निर्माणकृते समुद्यतं परं महाकालममुं नमाम्यहम् ॥

त्वदीयं वस्तु गोविन्द ! तुभ्यमेव समर्पये ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

विराट गायत्री परिवार एवं उसके संस्थापक-संरक्षक एक संक्षिप्त परिचय

इतिहास में कभी-कभी ऐसा होता है कि अवतारी सत्ता एक साथ बहुआयामी रूपों में प्रकट होती है एवं करोड़ों ही नहीं, पूरी वसुधा के उद्धार-चेतनात्मक धरातल पर सबके मनों का नये सिरे से निर्माण करने आती है । परमपूज्य गुरुदेव पं. श्रीराम शर्मा आचार्य को एक ऐसी ही सत्ता के रूप में देखा जा सकता है जो युगों-युगों में गुरु एवं अवतारी सत्ता दोनों ही रूपों में हम सबके बीच प्रकट हुई, अस्सी वर्ष का जीवन जीकर एक विराट् ज्योति प्रज्ज्वलित कर उस सूक्ष्म ऋषि चेतना के साथ एकाकार हो गयी जो आज युग परिवर्तन को सन्निकट लाने को प्रतिबद्ध है । परमवंदनीया माताजी शक्ति का रूप थीं जो कभी महाकाली, कभी माँ जानकी, कभी मां शारदा एवं कभी माँ भगवती के रूप में शिव की कल्याणकारी सत्ता का साथ देने आती रही है । उनने भी सूक्ष्म में विलीन हो स्वयं को अपने आराध्य के साथ एकाकार कर ज्योतिपुरुष का एक अंग स्वयं को बना लिया । आज दोनों सशरीर हमारे बीच नहीं है किन्तु, नूतन सृष्टि कैसे ढाली गयी, कैसे मानव गढ़ने का साँचा बनाया गया, इसे शान्तिकुंज, ब्रह्मवर्चस, गायत्री तपोभूमि, अखण्ड ज्योति संस्थान एवं युगतीर्थ आँवलखेड़ा जैसी स्थापनाओं तथा संकल्पित सृजन सेनानी गणों के, वीरभद्रों की करोड़ों से अधिक की संख्या के रूप में देखा जा सकता है ।

परमपूज्य गुरुदेव का वास्तविक मूल्यांकन तो कुछ वर्षों बाद इतिहासविद, मिथक लिखने वाले करेंगे किन्तु, यदि उनको आज भी साक्षात कोई देखना या उनसे साक्षात्कार करना चाहता हो तो उन्हें उनके द्वारा अपने हाथ से लिखे गये उस विराट परिमाण में साहित्य के रूप में युग संजीवनी के रूप में देख सकता है जो वे अपने वजन से अधिक भार के बराबर लिख गये । इस साहित्य में संवेदना का स्पर्श इस बारीकी से हुआ है कि लगता है लेखनी को उसी की स्याही में डुबा कर लिखा गया हो । हर शब्द ऐसा जो हृदय को छूता मन को, विचारों को बदलता चला जाता है । लाखों करोड़ों के मनों के अंत:स्थल को छू कर उसने उनका कायाकल्प कर दिया । रूसो के प्रजातंत्र की, कार्ल मार्क्स के साम्यवाद की क्रांति भी इसके समक्ष बौनी पड़ जाती है । उनके मात्र इस युग वाले स्वरूप को लिखने तक में लगता है कि एक विश्वकोश तैयार हो सकता है, फिर उस बहुआयामी रूप को जिसमें वे संगठनकर्ता, साधक, करोड़ों के अभिभावक, गायत्री महाविद्या के उद्धारक, संस्कार परम्परा का पुनर्जीवन करने वाले, ममत्व लुटाने वाले एक पिता, नारी जाति के प्रति अनन्य करुणा बिखेरकर उनके ही उद्धार के लिए धरातल पर चलने वाला नारी जागरण अभियान चलाते देखे जाते हैं, अपनी वाणी के उद्‌बोधन से एक विराट गायत्री परिवार एकाकी अपने बलबूते खड़े रहते दिखाई देते हैं तो समझ में नहीं आता, क्या-क्या लिखा जाय, कैसे छन्दबद्ध, लिपिबद्ध किया जाय, उस महापुरुष के जीवनचरित को ।

आश्विन कृष्ण त्रयोदशी विक्रमी संवत् १९६७ (२० सितम्बर १९११) को स्थूल शरीर से आँवलखेड़ा ग्राम जनपद आगरा जो जलेसर मार्ग पर आगरा से पंद्रह मील की दूरी पर स्थित है, में जन्मे श्रीराम शर्मा जी का बाल्यकाल-कैशोर्य काल ग्रामीण परिसर में ही बीता । वे जन्मे तो थे एक जमींदार घराने में, जहाँ उनके पिता-श्री पं. रूपकिशोर जी शर्मा आसपास के दूर-दराज के राजघरानों के राजपुरोहित, उद्‌भट विद्वान, भागवत कथाकार थे किन्तु, उनका अंत:करण मानव मात्र की पीड़ा से सतत विचलित रहता था । साधना के प्रति उनका झुकाव बचपन में ही दिखाई देने लगा । जब वे अपने सहपाठियों को, छोटे बच्चों को अमराइयों में बिठाकर स्कूली शिक्षा के साथ-साथ सुसंस्कारिता अपनाने वाली आत्मविद्या का शिक्षण दिया करते थे । छटपटाहट के कारण हिमालय की ओर भाग निकलने व पकड़े जाने पर उनने संबंधियों को बताया कि हिमालय ही उनका घर है एवं वहीं वे जा रहे थे । किसे मालूम था कि हिमालय की ऋषि चेतनाओं का समुच्चय बनकर आयी यह सत्ता वस्तुत: अगले दिनों अपना घर वहीं बनाएगी । जाति-पाँति का कोई भेद नहीं । जातिगत मूढ़ता भरी मान्यता से ग्रसित तत्कालीन भारत के ग्रामीण परिसर में एक अछूत वृद्ध महिला की जिसे कुष्ठ रोग हो गया था, उसी के टोले में जाकर सेवाकर उनने घरवालों का विरोध तो मोल ले लिया पर अपना व्रत नहीं छोड़ा ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

उस महिला ने स्वस्थ होने पर उन्हें ढेरों आशीर्वाद दिये। एक अछूत कहलाने वाली जाति का व्यक्ति जो उनके आलीशान घर में घोड़ों की मालिश करने आता था, एक बार कह उठा कि मेरे घर कथा कौन कराने आएगा, मेरा ऐसा सौभाग्य कहाँ। नवनीत जैसे हृदय वाले पूज्यवर उसके घर जा पहुँचे एवं कथा पूरे विधान से कर पूजा की, उसको स्वच्छता का पाठ सिखाया, जबकि सारा गाँव उनके विरोध में बोल रहा था।

किशोरावस्था में ही समाज सुधार की रचनात्मक प्रवृत्तियाँ उनने चलाना आरम्भ कर दी थीं। औपचारिक शिक्षा स्वल्प ही पायी थी किन्तु, उन्हें इसके बाद आवश्यकता भी नहीं थी क्योंकि जो जन्मजात प्रतिभा सम्पन्न हो वह औपचारिक पाठ्यक्रम तक सीमित कैसे रह सकता है। हाट-बाजारों में जाकर स्वास्थ्य-शिक्षा प्रधान परिपत्र बाँटना, पशुधन को कैसे सुरक्षित रखें तथा स्वावलम्बी कैसे बनें, इसके छोटे-छोटे पैम्फलेट्स लिखने, हाथ की प्रेस से छपवाने के लिए उन्हें किसी शिक्षा की आवश्यकता नहीं थी। वे चाहते थे, जनमानस आत्मावलम्बी बने, राष्ट्र के प्रति स्वाभिमान उसका जागे, इसलिए गाँव में जन्मे इस लाल ने नारी शक्ति व बेरोजगार युवाओं के लिए गाँव में ही एक बुनताघर स्थापित किया व उसके द्वारा हाथ से कैसे कपड़ा बुना जाय, अपने पैरों पर कैसे खड़ा हुआ जाय, यह सिखाया।

पंद्रह वर्ष की आयु में वसंत पंचमी की वेला में सन् १९२६ में उनके घर की पूजा स्थली में, जो उनकी नियमित उपासना का तब से आगार थी, जबसे महामना पं० मदन मोहन मालवीय जी ने उन्हें काशी में गायत्री मंत्र की दीक्षा दी थी, उनकी गुरुसत्ता का आगमन हुआ अदृश्य छायाधारी सूक्ष्म रूप में। उनने प्रज्ज्वलित दीपक की लौ में से स्वयं को प्रकट कर उन्हें उनके द्वारा विगत कई जन्मों में संपन्न क्रिया कलापों का दिग्दर्शन कराया तथा उन्हें बताया कि वे दुर्गम हिमालय से आये हैं एवं उनसे अनेकानेक ऐसे क्रियाकलाप कराना चाहते हैं, जो अवतारी स्तर की ऋषि सत्ताएँ उनसे अपेक्षा रखती हैं। चार बार कुछ दिन से लेकर एक साल तक की अवधि तक हिमालय आकर रहने, कठोर तप करने का भी उनने संदेश दिया एवं उन्हें तीन संदेश दिए- १. गायत्री महाशक्ति के चौबीस-चौबीस लक्ष के चौबीस महा- पुरश्चरण जिन्हें आहार के कठोर तप के साथ पूरा करना था। २. अखण्ड घृतदीप की स्थापना एवं जन-जन तक इसके प्रकाश को फैलाने के लिए समय आने पर ज्ञानयज्ञ अभियान चलाना, जो बाद में अखण्ड ज्योति पत्रिका के १९३८ में प्रथम प्रकाशन से लेकर विचार-क्रांति अभियान के विश्वव्यापी होने के रूप में प्रकटा तथा ३. चौबीस महापुरश्चरणों के दौरान युगधर्म का निर्वाह करते हुए राष्ट्र के निमित्त भी स्वयं को खपाना, हिमालय यात्रा भी करना तथा उनके संपर्क से आगे का मार्गदर्शन लेना।

यह कहा जा सकता है कि युग निर्माण मिशन, गायत्री परिवार, प्रज्ञा अभियान, पूज्य गुरुदेव जो सभी एक दूसरे के पर्याय हैं, की जीवन यात्रा का यह एक महत्वपूर्ण मोड़ था, जिसने भावी रीति-नीति का निर्धारण कर दिया। पूज्य गुरुदेव अपनी पुस्तक 'हमारी वसीयत और विरासत' में लिखते हैं कि "प्रथम मिलन के दिन समर्पण सम्पन्न हुआ। दो बातें गुरु सत्ता द्वारा विशेष रूप से कही गई, संसारी लोग क्या करते हैं और क्या कहते हैं, उसकी ओर से मुँह मोड़कर निर्धारित लक्ष्य की ओर एकाकी साहस के बलबूते चलते रहना एवं दूसरा यह कि अपने को अधिक पवित्र और प्रखर बनाने की तपश्चर्या में जुट जाना- जौ की रोटी व छाछ पर निर्वाह कर आत्मानुशासन सीखना। इसी से वह सामर्थ्य विकसित होगी जो विशुद्धतः परमार्थ प्रयोजनों में नियोजित होगी। वसंत पर्व का यह दिन गुरु अनुशासन का अवधारण ही हमारे लिए नया जन्म बन गया। सद्गुरु की प्राप्ति हमारे जीवन का अनन्य एवं परम सौभाग्य रहा।"

राष्ट्र के परावलम्बी होने की पीड़ा भी उन्हें उतनी ही सताती थी जितनी कि गुरुसत्ता के आदेशानुसार तपकर सिद्धियों के उपार्जन की ललक उनके मन में थी। उनके इस असमंजस को गुरुसत्ता ने तोड़कर परावाणी से उनका मार्गदर्शन किया कि युगधर्म की महत्ता व समय की पुकार देख सुन कर तुम्हें अन्य आवश्यक कार्यों को छोड़कर अग्निकाण्ड में पानी लेकर दौड़ पड़ने की तरह आवश्यक कार्य भी करने पड़ सकते हैं। इसमें स्वतंत्रता संग्राम सेनानी के नाते संघर्ष करने का भी संकेत था। १९२७ से १९३३ तक का समय उनका एक सक्रिय स्वयं सेवक-स्वतंत्रता सेनानी के रूप में बीता, जिसमें घरवालों के विरोध के बावजूद पैदल लम्बा रास्ता पारकर वे आगरा के उस शिविर में पहुँचे, जहाँ शिक्षण दिया जा रहा था, अनेकानेक मित्रों-सखाओं-मार्गदर्शकों के साथ भूमिगत हो कार्य करते रहे तथा समय आने पर जेल

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

भी गये । छह-छह माह की उन्हें कई बार जेल हुई । जेल में भी वे जेल के निरक्षर साथियों को शिक्षण देकर व स्वयं अंग्रेजी सीखकर लौटे । आसन- सोल जेल में वे श्री जवाहर लाल नेहरू की माता श्रीमती स्वरूपरानी नेहरू, श्री रफी अहमद किदवई, महामना मालवीय जी, देवदास गाँधी जैसी हस्तियों के साथ रहे व वहाँ से एक मूलमंत्र सीखा जो मालवीय जी ने दिया था कि जन-जन की साझेदारी बढ़ाने के लिए हर व्यक्ति के अंशदान से-मुट्ठी फण्ड से रचनात्मक प्रवृत्तियाँ चलाना । यही मंत्र आगे चलकर एक घण्टा समयदान बीस पैसा नित्य या एक दिन की आय एक माह में तथा एक मुट्ठी अन्न रोज डालने के माध्यम से धर्मघट की स्थापना का स्वरूप लेकर लाखों-करोड़ों की भागीदारी वाला गायत्री परिवार बनाता चला गया, जिसका आधार था प्रत्येक व्यक्ति की यज्ञीय भावना का उसमें समावेश ।

स्वतंत्रता की लड़ाई के दौरान कुछ उग्र दौर भी आये, जिनमें शहीद भगतसिंह को फाँसी दिये जाने पर फैले जन आक्रोश के समय श्री अरविन्द के किशोर काल की क्रांतिकारी स्थिति की तरह उनने भी वे कार्य किये, जिनसे आक्रान्ता शासकों के प्रति असहयोग जाहिर होता था । नमक आन्दोलन के दौरान वे आततायी शासकों के समक्ष झुके नहीं, वे मारते रहे परन्तु, समाधि स्थिति को प्राप्त राष्ट्र देवता के पुजारी को बेहोश होना स्वीकृत था पर आन्दोलन से पीठ दिखाकर भागना नहीं । बाद में फिरंगी सिपाहियों के जाने पर लोग उठाकर घर लेकर आये । जरारा आन्दोलन के दौरान उनने झण्डा छोड़ा नहीं जबकि, फिरंगी उन्हें पीटते रहे, झण्डा छीनने का प्रयास करते रहे। उनने मुँह से झण्डा पकड़ लिया, गिर पड़े, बेहोश हो गये पर झण्डे का टुकड़ा चिकित्सकों द्वारा दाँतों में भींचे गये टुकड़े के रूप में जब निकाला गया तब सब उनकी सहनशक्ति देखकर आश्चर्य चकित रह गये । उन्हें तब से ही आजादी के मतवाले उन्मत्त श्रीराम मत्त नाम मिला। अभी भी आगरा में उनके साथ रहे या उनसे कुछ सीख लिए अगणित व्यक्ति उन्हें मत्त जी नाम से ही जानते हैं। लगानबन्दी के आँकड़े एकत्र करने के लिए उनने पूरे आगरा जिले का दौरा किया व उनके द्वारा प्रस्तुत वे आँकड़े तत्कालीन संयुक्त प्रान्त के मुख्य मंत्री श्री गोविन्द वल्लभ पंत द्वारा गाँधी जी के समक्ष पेश किये गये । बापू ने अपनी प्रशस्ति के साथ वे प्रामाणिक आँकड़े ब्रिटिश पार्लियामेण्ट भेजे, इसी आधार पर पूरे संयुक्त प्रान्त के लगान माफी के आदेश प्रसारित हुए । कभी जिनने अपनी इस लड़ाई के बदले कुछ न चाहा उन्हें सरकार ने अपना प्रतिनिधि भेजकर पचास वर्ष बाद ताम्रपत्र देकर शांतिकुज में सम्मानित किया । उसी सम्मान व स्वाभिमान के साथ सारी सुविधाएँ व पेंशन उनने प्रधान मंत्री राहत फण्ड, हरिजन फण्ड के नाम समर्पित कर दीं । वैरागी जीवन का, सच्चे राष्ट्र संत होने का इससे बड़ा प्रमाण क्या हो सकता है ?

१९३५ के बाद उनके जीवन का नया दौर शुरु हुआ, जब गुरुसत्ता की प्रेरणा से वे श्री अरविन्द से मिलने पाण्डिचेरी, गुरुदेव ऋषिवर रवीन्द्रनाथ टैगोर से मिलने शांति निकेतन तथा बापू से मिलने साबरमती आश्रम, अहमदाबाद गये । सांस्कृतिक आध्यात्मिक मोर्चे पर राष्ट्र को कैसे परतंत्रता की बेड़ियों से मुक्त किया जाय, यह निर्देश लेकर अपना अनुष्ठान यथावत् चलाते हुए उनने पत्रकारिता के क्षेत्र में प्रवेश किया जब आगरा में 'सैनिक' समाचार पत्र के कार्यवाहक संपादक के रूप में श्री कृष्णदत्त पालीवाल जी ने उन्हें अपना सहायक बनाया। बाबू गुलाब राय व पालीवाल जी से सीख लेते हुए सतत स्वाध्यायरत रह कर उनने अखण्ड ज्योति नामक पत्रिका का पहला अंक १९३८ की वसंत पंचमी पर प्रकाशित किया । प्रयास पहला था, जानकारियाँ कम थीं अतः पुनः सारी तैयारी के साथ विधिवत् १९४० की जनवरी से उनने परिजनों के नाम पाती के साथ अपने हाथ से बने कागज पर पैर से चलने वाली मशीन से छापकर 'अखण्ड ज्योति' पत्रिका का शुभारंभ किया जो पहले तो दो सौ पचास पत्रिका के रूप में निकली, किन्तु क्रमशः उनके अध्यवसाय घर-घर पहुँचाने, मित्रों तक पहुँचाने वाले उनके हृदय स्पर्शी पत्रों द्वारा बढ़ती-बढ़ती नवयुग के मत्स्यावतार की तरह आज दस लाख से भी अधिक संख्या में विभिन्न भाषाओं में छपती व एक करोड़ से अधिक व्यक्तियों द्वारा पढ़ी जाती है ।

पत्रिका के साथ-साथ 'मैं क्या हूँ' जैसी पुस्तकों का लेखन आरम्भ हुआ, स्थान बदला, आगरा से मथुरा आ गये, दो-तीन घर बदलकर घीयामण्डी में जहाँ आज अखण्ड ज्योति संस्थान है, आ बसे । पुस्तकों का प्रकाशन व कठोर तपश्चर्या, ममत्व विस्तार तथा पत्रों द्वारा जन-जन के अंतः स्थल को छूने की प्रक्रिया चालू रही । साथ देने आ गयीं

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

परमवंदनीया माताजी भगवती देवी शर्मा, जिन्हें भविष्य में अत्यधिक महत्वपूर्ण भूमिका अपने आराध्य इष्ट गुरु के लिए निभानी थी। उनके मर्मस्पर्शी पत्रों ने, भाव भरे आतिथ्य, हर किसी को जो दुखी था-पीड़ित था, दिये गये ममत्व भरे परामर्श ने गायत्री परिवार का आधार खड़ा किया, इसमें कोई सन्देह नहीं। यदि विचारक्रांति में साहित्य ने मनोभूमि बनायी तो भावात्मक क्रांति में ऋषियुगल के असीम स्नेह ने ब्राह्मणत्व भरे जीवन ने शेष बची भूमिका निभायी।

'अखण्ड ज्योति' पत्रिका लोगों के मनों को प्रभावित करती रही, इसमें प्रकाशित 'गायत्री चर्चा' स्तम्भ से लोगों को गायत्री व यज्ञमय जीवन जीने का संदेश मिलता रहा, साथ ही एक आना से लेकर छह आना सीरज की अनेकानेक लोकोपयोगी पुस्तकें छपती चली गयीं। इस बीच हिमालय के बुलावे भी आये, अनुष्ठान भी चलता रहा जो पूरे विधि विधान के साथ १९५३ में गायत्री तपोभूमि की स्थापना, १०८ कुण्डी यज्ञ व उनके द्वारा दी गयी प्रथम दीक्षा के साथ समाप्त हुआ। गायत्री तपोभूमि की स्थापना के निमित्त धन की आवश्यकता पड़ी तो परम वंदनीया माताजी ने जिनने हर कदम पर अपने आराध्य का साथ निभाया, अपने सारे जेवर बेच दिये, पूज्यवर ने जमींदारी के बाण्ड बेच दिये एवं जमीन लेकर अस्थायी स्थापना कर दी गयी। धीरे-धीरे उदारचेताओं के माध्यम से गायत्री तपोभूमि एक साधना पीठ बन गयी। २४०० तीर्थों के जल व रज की स्थापना वहाँ की गयी, २४०० करोड़ गायत्री मंत्र लेखन वहाँ स्थापित हुआ, अखण्ड अग्नि हिमालय के एक अति पवित्र स्थान से लाकर स्थापित की गयी जो अभी तक वहाँ यज्ञशाला में जल रही है। १९४१ से १९७१ तक का समय परमपूज्य गुरुदेव का गायत्री तपोभूमि, अखण्ड ज्योति संस्थान में सक्रिय रहने का समय है। १९५६ में नरमेध यज्ञ, १९५८ में सहस्रकुण्डी यज्ञ करके लाखों गायत्री साधकों को एकत्र कर उनने गायत्री परिवार का बीजारोपण कर दिया। कार्त्तिक पूर्णिमा १९५८ में आयोजित इस कार्यक्रम में दस लाख व्यक्तियों ने भाग लिया, इन्हीं के माध्यम से देश भर में प्रगतिशील गायत्री परिवार की दस हजार से अधिक शाखाएँ स्थापित हो गयीं। संगठन का अधिकाधिक कार्यभार पूज्यवर परमवंदनीया माताजी पर सौंपते चले गये एवम् १९५९ में पत्रिका का संपादन उन्हें देकर पौने दो वर्ष के लिए हिमालय चले गये, जहाँ उन्हें गुरुसत्ता से मार्गदर्शन लेना था, तपोवन नंदनवन में ऋषियों से साक्षात्कार करना था तथा गंगोत्री में रहकर आर्ष ग्रन्थों का भाष्य करना था। तब तक वे गायत्री महाविद्या पर विश्वकोश स्तर की अपनी रचना गायत्री महाविज्ञान के तीन खण्ड लिख चुके थे, जिसके अब तक प्रायः पैंतीस संस्करण छप चुके हैं। हिमालय से लौटते ही उनमें महत्वपूर्ण निधि के रूप में वेद, उपनिषद्, स्मृति, आरण्यक, ब्राह्मण, योगवाशिष्ठ, मंत्र महाविज्ञान, तंत्र महाविज्ञान जैसे ग्रन्थों को प्रकाशित कर देव संस्कृति की मूल थाती को पुनर्जीवन दिया। परमवंदनीया माताजी ने उन्हीं वेदों को पूज्यवर की इच्छानुसार १९९१-९२ में विज्ञान सम्मत आधार देकर पुनर्मुद्रित कराया एवं वे आज घर-घर में स्थापित हैं।

युग निर्माण योजना व 'युग निर्माण सत्संकल्प' के रूप में मिशन का घोषणा पत्र १९६३ में प्रकाशित हुआ। तपोभूमि एक विश्वविद्यालय का रूप लेती चली गयी तथा अखण्ड ज्योति संस्थान एक तपःपूत की निवास स्थली बन गया, जहाँ रहकर उनने अपनी शेष तप साधना पूरी की थी, जहाँ से गायत्री परिवार का बीज डाला गया था। तपोभूमि में विभिन्न शिविरों का आयोजन किया जाता रहा, पूज्यवर स्वयं छोटे-बड़े जन सम्मेलनों, यज्ञायोजनों के द्वारा विचार क्रांति की पृष्ठभूमि बनाते रहे, पूरे देश में १९७०-७१ में पाँच १००८ कुण्डी यज्ञ आयोजित हुए। स्थायी रूप से विदाई लेते हुए एक विराट सम्मेलन (जून १९७१) में परिजनों में विशेष कार्य भार सौंप, परम वंदनीया माताजी को शांतिकुंज, हरिद्वार में अखण्ड दीप के समक्ष तप हेतु छोड़ कर स्वयं हिमालय चले गये। एक वर्ष बाद वे गुरुसत्ता का संदेश लेकर लौटे एवं अपनी आगामी बीस वर्ष की क्रिया पद्धति बतायी। ऋषि परम्परा का बीजारोपण, प्राण प्रत्यावर्त्तन संजीवनी व कल्प साधना सत्रों का मार्गदर्शन जैसे कार्य उनने शांतिकुंज में सम्पन्न किये।

सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्थापना अपनी हिमालय की इस यात्रा से लौटने के बाद ब्रह्मवर्चस शोध संस्थान की थी, जहाँ विज्ञान और अध्यात्म के समन्वयात्मक प्रतिपादनों पर शोध कर एक नये धर्म वैज्ञानिक धर्म के मूलभूत आधार रखे जाने थे। इस सम्बन्ध में पूज्यवर ने विराट् परिमाण में साहित्य लिखा, अदृश्य जगत के अनुसंधान से लेकर मानव की प्रसुप्त क्षमता के जागरण तक साधना से सिद्धि एवं दर्शन-विज्ञान के तर्क, तथ्य प्रमाण के आधार पर प्रस्तुतीकरण तक। इसके

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

लिए एक विराट ग्रन्थागार बना व एक सुसज्जित प्रयोगशाला। वनौषधि उद्यान भी लगाया गया तथा जड़ी बूटी, यज्ञविज्ञान तथा मंत्र शक्ति पर प्रयोग हेतु साधकों पर परीक्षण प्रचुर परिमाण में किये गये। निष्कर्षों ने प्रमाणित किया कि ध्यान साधना मंत्र चिकित्सा व यज्ञोपैथी एक विज्ञान सम्मत विधा है। गायत्री नगर क्रमशः एक तीर्थ, संजीवनी विद्या के प्रशिक्षण का एकेडमी का रूप लेता चला गया एवं जहाँ ९-९ दिन के साधना प्रधान, एक-एक माह के कार्यकर्त्ता निर्माण हेतु युग शिल्पी सत्र सम्पन्न होने लगे।

कार्यक्षेत्र में विस्तार हुआ। स्थान-स्थान पर शक्तिपीठें विनिर्मित हुईं, जिनके निर्धारित क्रियाकलाप थे- सुसंस्कारिता, आस्तिकता संवर्धन एवं जन जागृति के केन्द्र बनना। ऐसे केन्द्र जो १९८० में बनना आरंभ हुए थे, प्रज्ञा संस्थान - शक्तिपीठ-प्रज्ञामण्डल-स्वाध्याय मंडल के रूप में पूरे देश व विश्व में फैलते चले गये। ७६ देशों में गायत्री परिवार की शाखाएँ फैल गयीं, ४६०० से अधिक भारत में निज के भवन वाले संस्थान विनिर्मित हो गये, वातावरण गायत्रीमय होता चला गया।

परमपूज्य गुरुदेव ने सूक्ष्मीकरण में प्रवेश कर १९८५ में ही पाँच वर्ष के अंदर अपने सारे क्रिया कलापों को समेटने की घोषणा कर दी। इस बीच कठोर तप साधना कर मिलना-जुलना कम कर दिया तथा क्रमशः क्रिया कलाप परमवंदनीया माताजी को सौंप दिये। राष्ट्रीय एकता सम्मेलनों, विराट दीप यज्ञों के रूप में नूतन विधा को जन-जन को सौंप कर राष्ट्र देवता की कुण्डलिनी जगाने हेतु उनने अपने स्थूल शरीर छोड़ने व सूक्ष्म में समाने की, विराट से विराटतम होने की घोषणा कर गायत्री जयन्ती २ जून १९९० को महाप्रयाण किया। सारी शक्ति वे परमवंदनीया माताजी को दे गये व अपने व माताजी के बाद संघशक्ति की प्रतीक लाल मशाल को ही इष्ट आराध्य मानने का आदेश देकर ब्रह्मबीज से विकसित ब्रह्मकमल की सुवास को देव संस्कृति दिग्विजय अभियान के रूप में आरंभ करने का माताजी को निर्देश दे गये।

एक विराट श्रद्धांजलि समारोह व शपथ समारोह जो हरिद्वार में सम्पन्न हुए, में लाखों व्यक्तियों ने अपना समय समाज के नव निर्माण, मनुष्य में देवत्व के उदय व धरती पर स्वर्ग लाने का गुरु सत्ता का नारा साकार करने के निमित्त देने की घोषणा की। परमवंदनीया माताजी द्वारा भारतीय-संस्कृति को विश्वव्यापी बनाने, गायत्री रूपी संजीवनी घर-घर पहुँचाने के लिए पूज्यवर द्वारा आरम्भ किये गये युगसंधि महापुरश्चरण की प्रथम व द्वितीय पूर्णाहुति तक विराट अश्वमेघ महायज्ञों की घोषणा की गयी। वातावरण के परिशोधन, सूक्ष्मजगत के नव निर्माण एवं सांस्कृतिक व वैचारिक क्रांति के निमित्त सौर ऊर्जा के दोहन द्वारा विशिष्ट प्रयोगों के माध्यम से विशिष्ट मंत्राहुतियों द्वारा सम्पन्न किये गये इन अश्वमेधों ने सारी विश्ववसुधा को गायत्री व यज्ञमय, वासंती उल्लास से भर दिया। स्वयं परमवंदनीया माताजी ने अपनी पूर्व घोषणानुसार चार वर्ष तक परिजनों का मार्गदर्शन कर सोलह यज्ञों का संचालन स्थूल शरीर से किया व फिर भाद्रपद पूर्णिमा १९ सितम्बर १९९४ महालय श्राद्धारंभ वाली पुण्य वेला में अपने आराध्य के साथ एकाकार हो गयीं। उनके महाप्रयाण के बाद दोनों ही सत्ताओं के सूक्ष्म में एकाकार होने के बाद मिशन की गतिविधियाँ कई गुना बढ़ती चली गयीं एवं जयपुर के प्रथम अश्वमेध यज्ञ (नवम्बर ९२) से छब्बीसवें अश्वमेध यज्ञ शिकागो (यू. एस. ए. जुलाई ९५) तक प्रज्ञावतार का प्रत्यक्ष रूप सबको दीखने लगा है।

गुरुसत्ता के आदेशानुसार सतयुग के आगमन तक १०८ महायज्ञ देवसंस्कृति को विश्वव्यापी बनाने हेतु संपन्न होने हैं। युग संधि महापुरश्चरण की अंतिम पूर्णाहुति उसी के बाद होगी। प्रथम पूर्णाहुति नवम्बर १९९५ में कार्त्तिक पूर्णिमा के अवसर पर युगपुरुष पूज्यवर की जन्मभूमि आँवलखेड़ा में मनायी जा रही है। उनके द्वारा लिखे गये समग्र साहित्य के वाङ्मय का जो सत्तर खण्डों में फैला है, विमोचन भी यहीं सम्पन्न हो रहा है। विनम्रता एवं ब्राह्मणत्व की कसौटी पर खरे उतरने वाले वरिष्ठ प्रज्ञापुत्र ही उनके उत्तराधिकारी कहे जायेंगे, यह गुरुसत्ता का उद्घोष था एवं इस क्षेत्र में बढ़ चढ़कर आदर्शवादी प्रतिस्पर्धा करने वाले अनेकानेक परिजन अब उनके स्वप्नों को साकार करने आगे आ रहे हैं। 'हम बदलेंगे-युग बदलेंगे' का उद्घोष दिग-दिगन्त तक फैल रहा है एवं इक्कीसवीं सदी-उज्ज्वल भविष्य, सतयुग की वापसी का स्वप्न साकार होता चला जा रहा है, यह स्पष्ट दिखाई दे रहा है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

भूमिका

साधना से सिद्धि प्राप्त होती है, साधक अनेकानेक विभूतियों को प्राप्त करता है, यह तथ्य जहाँ सही है, वहाँ यह भी कि साधना के पीछे उद्देश्य क्या था, साधक ने सही अर्थों में साधना के मर्म को जीवन में उतारा या नहीं एवं वस्तुतः स्वयं को साध सकने में वह सफल हुआ या नहीं । 'साधना से सिद्धि' के अकाट्य तथ्य को परमपूज्य गुरुदेव ने अपनी अंतः तक उतर जाने वाली शैली में समझाते हुए साधना की तात्त्विक पृष्ठभूमि को समझाया है । अंतःकरण की परिष्कृति जब तक संभव नहीं हो पाती व्यक्ति अपने ऊपर अपने विचारों–अपने मनोभावों पर जब तक नियंत्रण स्थापित नहीं कर लेता तब तक उसे सिद्धि नहीं मिल सकती । सिद्धि मिलती भी है तो पहले व्यक्तित्त्व के परिष्कार, चुम्बकीय आकर्षण तथा औरों के लिए कुछ कर गुजरने की प्रवृत्ति के विकास के रूप में ।

साधना को कई लोग सामान्य अर्थों में किसी क्रियापरक प्रवृत्ति से जोड़कर समझने का प्रयास करते हैं । साधना का अर्थ है अपने आपे पर नियंत्रण । अपने आपको साध लेना । अपनी चंचल चित्तवृत्तियों रूपी अश्वों की लगाम अपने हाथ में ले लेना । इसके लिए श्रेष्ठ विचारों को बार–बार मन में लाना जरूरी है, नहीं तो मन सहज स्वभाव का इधर–उधर भागेगा । मन को तल्लीन कर लेना–सद्भावना भरे विचारों, सबके मंगल की कामना व स्वयं के निरन्तर कषाय–कल्मषों से मुक्त होकर उज्ज्वल बनते चले जाने की भावना से ओत–प्रोत होना ही सच्ची साधना है । मन का संयम, चार प्रकार के संयम से ही मन पर नियंत्रण सध पाता है व सही अर्थों में साधना से सिद्धि का ककहरा यहीं से आरंभ होता है, यह पूज्यवर की लेखनी का सार है जो अध्यात्म का व्यावहारिक रूप हम सबके लिए प्रशस्त करना है ।

परमपूज्य गुरुदेव को साधना से सिद्धि के लिए वातावरण को अत्यधिक महत्ता दी है । जहाँ की साधना संपन्न की जाती है वहाँ साधक या तो श्रेष्ठ वातावरण स्वयं बनाता है या चुन लेता है । सिद्ध तांत्रिक वहीं सफल होते हैं जहाँ इनकी मरघट साधना संपन्न हुई है । वातावरण में संस्कारों का जितना बाहुल्य होगा, साधना उतनी ही शीघ्र फलवती होगी । ऋषि–मुनियों के आश्रमों में जप ऊर्जा से वातावरण इतना प्रचण्ड आन्दोलित बना रहता था कि वहाँ जाने ही सहज ही मन अध्यात्म साधना की ओर प्रवृत्त होने लगता था । परमपूज्य गुरुदेव ने गायत्री तीर्थ शांतिकुंज हरिद्वार में करोड़ों गायत्री मंत्र के जाप, मंत्रलेखन मंत्राहुतियों द्वारा वातावरण इतना संस्कारमय बना दिया है कि यहाँ पर की गयी साधना सुनिश्चित ही सिद्ध होती है । कभी यहाँ से कोई खाली हाथ नहीं गया । गंगा की गोद–हिमालय की छाया, सप्तर्षियों में ब्रह्मर्षि विश्वामित्र की तपःस्थली में की गयी साधना में न केवल साधक का मन लगता है, उसके अंतराल में छिपे प्रसुप्त संस्कार भी जाग उठते हैं । यही साधना से सिद्धि का रहस्य है ।

पहले भी पूज्यवर ने अनेकों स्थानों पर स्पष्ट किया है व यहाँ भी अत्यधिक माहात्म्य बताते हुए सद्गुरु की प्राप्ति व वृद्धा के अवलम्बन को वे सिद्धि का मर्म सिद्ध करते दिखाई देते हैं । जहाँ, जितने घने वृक्ष होंगे, वर्षा उतनी ही वहाँ सघन होगी, जहाँ कहीं भी श्रद्धा जितने परिमाण में दिखाई देगी, गुरु के अनुदान उतने ही सिद्धि–रिद्धि के घटाटोप के रूप में बरसेंगे । आहार शुद्धि व मन की तन्मयता से ही अन्तःशक्ति

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

में उभार व चमत्कार पैदा होता है, यह योग विज्ञान का एक सुनिश्चित सिद्धान्त है । सिद्धि हेतु साधक का आहार क्या हो–**"आहार शुद्धौ-सत्वबुद्धि"** का सिद्धान्त वह अपना रहा है या नहीं, यह सब कुछ घटक ऐसे हैं, जो बड़े महत्त्वपूर्ण हैं ।

साधना व्यक्ति के अन्तःजगत में एक भूचाल ला देती है । गुरु रूपी जिन्दा शास्त्र जब उसे मिल जाता है, उसका अनुशीलन–मनन वह जब कर लेता है तो सूक्ष्म शरीर भी सुविकसित हो अनेकानेक प्रकार की फल श्रुतियाँ दिखाने लगता है । साधना विज्ञान की गहनतम जानकारियों को साधक के मन की परतों में बिठाने वाले परमपूज्य गुरुदेव जीवनभर अनगढ़ को सुगढ़ बनाने वाली साधना पद्धतियों के माध्यम से हर साधक का मार्गदर्शन करते रहे । अलौकिक सिद्धियों–अणिमा, महिमा लघिमा ईशत्त्व आदि के विस्तृत विवेचन से पूर्व पूज्यवर ने प्रारंभिक शर्तें समझाई हैं तब उनने वह ताला खोला है जिसके बाद साधन उच्चतम सिद्धियों को प्राप्त करने लगता है ।

चमत्कारी सिद्धियाँ न तो आवश्यक हैं और न लाभप्रद, जीवन व्यवहार में सबसे बड़ी सिद्धि है परिष्कृत व्यवहार कुशल, चुम्बकीय किंतु निश्चल व्यक्तित्व । यह यदि उपलब्ध हो जाय तो व्यक्ति पर सिद्धियाँ अगणित धन–सम्पत्ति, यश–कीर्ति आदि के रूप में स्वतः बरसने लगती हैं । पूज्यवर लिखते हैं कि चमत्कारी सिद्धियाँ यथा भभूत आकाश से बुला लेना, मुट्ठी में से कुछ भी वस्तु निकाल कर प्रस्तुत कर देना, कोई विलक्षण छाया बड़ा कर देना तो क्षुद्रस्तर की प्रदर्शनात्मक सिद्धियाँ हैं । इन्हें कोई भी जब चाहे तब अर्जित कर सकता है । तंत्र विज्ञान के छोटे मोटे चुटकुले मात्र हैं यह ! किंतु ये चिरस्थायी हैं नहीं । चिरस्थायी सिद्धि वह है जो व्यक्ति को अनगढ़ से सुगढ़ बनाकर उसे ऐसा पारस बना देती है जो जिसे छूता है, उसे सोना बना देता है । अनेकानेक व्यक्ति इन चमत्कारों के पीछे ही भागते दिखाई देते हैं । पूज्यवर ने विज्ञान की कसौटी पर इन्हें कसा व परीक्षित कर सबके समक्ष प्रस्तुत किया है ।

योग के नाम पर मायाचार जो चल रहा है–चलता रहा है उस पर पूज्यवर ने तीखी कलम चलाई है एवं लिखा है कि योग दो सत्ताओं के मिलन की प्रक्रिया का नाम है, न कि सिद्धिपरक प्रदर्शन का–चमत्कारी माया जाल का, तांत्रिक इन्द्रजाल का । यदि व्यक्ति साधना में सिद्धि के मर्म को समझना चाहता है, तो उसे इस खण्ड को पहले पढ़ना चाहिए फिर साधना के मार्ग में प्रवृत्त होना चाहिए ।

–ब्रह्मवर्चस

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अनुक्रमणिका

साधना से सिद्धि की तात्त्विक पृष्ठभूमि

- व्यक्तित्व को सुसंस्कारित बना लेना ही सच्ची साधना १.१
- साधना से सिद्धि का तत्त्वदर्शन १.३
- 'साधना से सिद्धि' का अकाट्य एवं शाश्वत सिद्धान्त १.८
- साधना विज्ञान की तात्त्विक पृष्ठभूमि १.१०
- साधना का उद्देश्य और स्वरूप समझा जाय १.१३
- साधना से सिद्धि का मर्म १.१६
- साधना से सिद्धि किन शर्तों पर १.१९
- आत्मिक प्रगति के लिये साधना की आवश्यकता १.२४
- साधना आवश्यक है, अनिवार्य है १.२६
- साधना की महानता १.२८
- आत्मनिर्माण का पुण्यपथ १.३०
- साधना और उसका स्वरूप १.३२
- आध्यात्मिक साधना का चरम लक्ष्य–भवबंधन से मुक्ति १.३५
- आत्मसाधना के कठिन पथ पर १.३९
- साधना समर बनाम जीवन संग्राम १.४०

साधना का स्वरूप और विज्ञान

- आत्मिकी चेतना को परिष्कृत, प्रखर बनाने वाली फलदायी विधा २.१
- 'अहमिन्द्रो न पराजिग्ये' २.४
- अन्तःकरण चतुष्टय और साधना विज्ञान २.५
- साधना से संकल्प-शक्ति की अभिवृद्धि २.७
- साधना का उद्देश्य—आत्मिक प्रखरता २.९
- साधना क्षेत्र में प्रवेश और उसकी पृष्ठभूमि २.११
- ब्रह्म सम्बन्ध जोड़ने का आरम्भिक उपचार २.१२
- आध्यात्मिक लक्ष्य और उसकी प्राप्ति २.१४
- ईश्वर प्राप्ति के दस वेदोक्त साधन २.१६
- साध्य, साधना और साधक २.१९
- साधनाएँ फलीभूत क्यों नहीं होतीं ? २.२२
- साधना के विघ्न २.२५
- साधक इन भ्रान्तियों से बचें २.२७
- आध्यात्मिक साधना के त्रिदोष २.२९
- साधक की दो विपत्तियाँ २.३०
- साधकों के आवश्यक कर्त्तव्य २.३०
- मन की निर्द्वन्द और निश्चिन्त स्थिति २.३२
- साधना बनाम मनोकामना २.३३
- साधक के लक्षण २.३४
- साधना में धैर्य की आवश्यकता २.३४
- साधकों के कुछ नियम २.३५
- अपनी स्थिति के अनुसार साधना चाहिए २.३५
- साधक की साधना का फल २.३५
- साधना से शक्ति का अवतरण २.३६
- साधनकाल और सिद्धावस्था २.३८
- साधन को ही साध्य न मान बैठिए २.३९
- साधनों की पवित्रता भी आवश्यक है २.४१
- हमारा समस्त जीवन ही साधनमय बने २.४२

साधना-सिद्धि एवं वातावरण

- वातावरण की विशिष्टता व महत्ता ३.१
- उपयुक्त स्थान की महत्वपूर्ण कार्यों के लिए आवश्यकता ३.३
- जीव जगत पर वातावरण की प्रत्यक्ष एवं परोक्ष प्रतिक्रियाएँ ३.६
- उपयुक्त वातावरण ढूँढ़ें अथवा बनायें ३.८
- साधना में शान्त, एकांत स्थान की उपयोगिता ३.१०
- साधना की सफलता के लिए संस्कार युक्त वातावरण की आवश्यकता ३.१२
- हिमालय की छाया, गंगा की गोद में ब्रह्मवर्चस साधना ३.१७
- प्रभावी प्रशिक्षण के लिये उपयुक्त वातावरण की आवश्यकता ३.२३

साधना की सफलता के दो आधार-अवलम्बन

- सद्गुरु की प्राप्ति—एक दिव्य वरदान ४.१
- आत्मिक प्रगति का मूल आधार—'श्रद्धा' ४.४

आहार शुद्धि पर साधना की सफलता निर्भर

- आहार शुद्धि साधना का प्रथम चरण ५.१
- अन्न का स्तर और उसका शरीर एवं मन पर प्रभाव ५.५

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

- अन्न से बनता है मन ५.७
- जैसा खाये अन्न—वैसा बने मन ५.९
- सात्विक भोजन का सूक्ष्म प्रभाव ५.१४
- खाद्य-पदार्थों की कारण-शक्ति ५.१६
- सात्विक आहार और आत्मसाधना ५.२०
- आहार की सात्विकता पर अधिक ध्यान दिया जाय ५.२१
- भोजन की शुद्धता का हमारे चरित्र पर प्रभाव ५.२३
- आध्यात्म साधना और आहार शुद्धि ५.२४
- साधक का सात्विक आहार-विहार ५.२७
- आहार और उसकी पोषक शक्ति ५.३०
- आहार साधना एक महत्त्वपूर्ण तपश्चर्या ५.३२
- उपवास-साधना ५.३५
- उपवास सम्बन्धी कुछ आवश्यक नियम ५.३६
- भोजन के सम्बन्ध में सावधनी ५.३६

साधना में मन की मूल भूमिका

- समस्त सफलताओं का मूल—मन ६.१
- मन एव मनुष्याणां कारणं बन्ध मोक्षयो ६.३
- जिंत जगत् केन ? मनो हि येन ६.५
- मनस् तत्त्व का दर्शन और विज्ञान ६.६
- समस्त उपलब्धियों का मूल 'मन' ६.१०
- मन को जीतना—सबसे बड़ी विजय ६.१२
- मनोयस्यवशे तस्य भवेत्सर्वं जगद्वशे ६.१३
- निग्रहीत मन की अपार सामर्थ्य ६.१५
- सुसंस्कृत मन—दिव्य क्षमताओं का अजस्र भाण्डागार ६.१८
- काया पर समग्र नियंत्रण की दिव्य क्षमता ६.२०
- मन को सुधारा-सधाया जा सकता है ६.२३
- मनःक्षेत्र के खरपतवार उखाड़ें ६.२५
- मन पर लगाम लगे तो कैसे ? ६.२६
- मन को निग्रहीत कर तन्मय किया जाय ६.२७
- मनःविकास के भिन्न-भिन्न सोपान ६.२९
- मन से मन का योग ६.३१
- गायत्री उपासना से अचेतन का परिष्कार ६.३५
- मन की संस्कार साधना तपश्चर्या द्वारा ६.३७
- मनोभूमि के परिष्कृत करने के लिए यह साधन क्रम अपनायें ६.४१
- आत्मसाक्षात्कार की द्विविध तपश्चर्या ६.४३
- सिद्धियों का मूल—एकाग्रता ६.४५

साधना से सूक्ष्म शरीर का विकास-विस्तार

- स्थूल से प्यार—सूक्ष्म का तिरस्कार क्यों ? ७.१
- आत्मा—शरीर नहीं, शाश्वत और स्वतन्त्र द्रव्य ७.६
- आत्मशक्ति का कुछ ठिकाना नहीं ? ७.८
- संसार नाचता है एक अँगुली के इशारे पर ७.९
- स्थूल से असंख्य गुना समर्थ ७.१०
- स्थूल शरीर की सीमित शक्ति ७.१२
- प्रमाणित तो होता है, सूक्ष्म शरीर का अस्तित्व ७.१५
- छाया-पुरुष, महज दिवास्वप्न नहीं, एक सत्य ७.१६
- जब सूक्ष्म देह करने लगती है लोक-लोकांतरों की यात्रा ७.१८
- संसार के विकास-क्रम को चलाने वाला—सिद्ध संघ ७.२०
- हिमालय में अमर आत्माओं का रहस्य ७.२३
- तिब्बत के सिद्ध लामा योगी ७.२७
- हवा में महल और आधी रात में सूर्य ७.२८
- एक शरीर यहाँ भी—वहाँ भी ७.३०
- काल से अतीत, अतीत-ब्रह्माण्ड विज्ञानात्मा की अनुभूति ७.३२
- इन्द्रियातीत ज्ञान—मनुष्य के लिए नितान्त सम्भव ७.३३
- सिद्धि और सिद्ध पुरुषों का स्तर ७.३५
- सिद्ध पुरुषों का स्वरूप और अनुग्रह ७.३६
- सिद्ध पुरुषों के दर्शन और अनुदान ७.३८
- सिद्धों की सहायता सदैव पुण्य प्रयोजनों के लिये ७.३९
- दैवी अनुकम्पा कैसे व किन्हें मिलती है ? ७.४१
- परम सत्ता के सन्देशवाहक देवदूतों के दिव्य दर्शन ७.४४
- पालब्रिन्टन द्वारा गुप्त भारत की खोज ७.४५
- अपने को जानें, साधें और भव-बन्धनों से छूटें ७.४६
- आत्म-साधना के तीन चरण ७.४८

ऋद्धि-सिद्धियों का स्वरूप व उनका जागरण

- ऋद्धि-सिद्धियों का रहस्योद्घाटन अपने ही अन्तराल में ८.१
- सिद्धि के सिद्धान्त ८.७
- सिद्धियों का मूल प्रयोजन ८.८
- अष्ट सिद्धियों एवं नवनिधियों का स्वरूप व उनका जागरण ८.१०
- अध्यात्म क्षेत्र की तीन विशिष्ट सिद्धियाँ ८.१३
- रहस्यमय सिद्धियाँ जो प्रत्यक्ष होती जा रही हैं ८.१६
- सिद्धि के प्रमुख आधार अवलम्बन ८.२१
- साम्य भाव से सिद्धि ८.२२
- सिद्धियाँ देखिये, जानिये ८.२६
- चमत्कारी सिद्धियों का यथार्थ ८.२८
- चमत्कारी शक्तियाँ ८.३०

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

- आध्यात्मिक दृष्टिकोण से सिद्धियाँ ८.३१
- अपने को परिष्कृत करें और सिद्धियों के भण्डार बनें ८.३२
- सिद्धि आपकी मुट्ठी में है ८.३५

अलौकिक सिद्धियाँ

- मानवी सत्ता में सन्निहित महान सम्भावनायें ९.१
- योगी बिना खाये-पिये किस प्रकार जीवित रहते हैं ? ९.६
- ३०० वर्ष आयु के श्री तैलंग स्वामी ९.९
- साइंस को नकारते हैं, योग-सिद्धियों के ये प्रमाण ९.१०
- आकाशगमन और जलगमन की सिद्धियाँ ९.१२
- अभ्यास किया जाय तो हवा में उड़ा जा सकता है ९.१३
- योगी के लिये सब कुछ सम्भव है ९.१४
- किंचित भी झूठा नहीं है, हमारा योग विज्ञान ९.१८
- विज्ञान मुहर लगाता है, इन चमत्कारी सिद्धियों पर ९.२१
- सिद्धपीठों से जुड़ी गुह्य विज्ञान की विधा ९.२४
- सिद्धियों को जानने के लिए, चलें एक दूसरे आयाम में ९.२६
- चतुर्थ आयाम और सिद्धावस्था ९.३१
- चेतना का एक अति-उच्च आयाम ९.३२
- हमारे उच्च चेतन की विलक्षण क्षमताएँ ९.३७
- शक्ति कोषों का यह उत्कर्ष साधनाओं से सम्भव ९.३९
- भारतीय योगियों की कहानी एक योरोपियन की ज़बानी ९.४१
- सर्व समर्थ आध्यात्मिकता, उसके प्रमाण ९.४५
- 'अमरत्व' और 'इच्छा आयु' असम्भव नहीं ९.४६
- लाख छिपाएँ छिप न सकेंगी, गहरे मन की बातें ९.४८
- भू-गर्भ दृष्टा योगी ९.५०
- एक और सलीब—हूबहू ईसा जैसा ९.५०
- तन्मयता-तल्लीनता की उच्चस्तरीय उपलब्धियाँ ९.५१
- चेतना का रहस्यवाद ९.५४
- परिष्कृत चेतन तत्व की अनुभूतियाँ ९.५४
- हर जीवात्मा के लिए सुनिश्चित एक साधना-समर ९.५७

क्या सिद्धियाँ आवश्यक हैं ?

- चमत्कारी सिद्धियाँ न तो आवश्यक हैं, न लाभप्रद १०.१
- सिद्धियों के प्रति आग्रह क्यों रखा जाये ? १०.७
- साधन सिद्धि समय साध्य है १०.१२
- मनुष्य की अन्तःशक्ति के विभिन्न प्रयोग १०.१४
- चमत्कार बनाम अविज्ञात का रहस्योद्घाटन १०.१६
- चमत्कार कोई अवैज्ञानिक तथ्य नहीं १०.१८
- भीष्म की इच्छा मृत्यु कैसे हुई ? १०.१९
- सिद्धियाँ पवित्र अंतःकरण में जन्मती हैं १०.२०
- क्या चमत्कार आवश्यक है ? १०.२२
- चमत्कारों की यथार्थता समझें १०.२६
- देश-विदेश के योगियों के अद्भुत चमत्कार १०.२९
- असली और नकली चमत्कारों का अन्तर समझें १०.३०
- भला यह भी कोई सिद्धि चमत्कार है १०.३३
- चमत्कार और सिद्धियों के भ्रम जंजाल में न भटकें, यथार्थता को समझें १०.३५

योग के नाम पर मायाचार या जादूगरी

- अनेकों प्रकार के आश्चर्य ११.१२
- बिना सामान के हो सकने वाले खेल ११.१९
- छुरी के खेल ११.२०
- सामान के सहारे होने वाले खेल ११.२१
- कुछ बड़े खेल ११.२३
- काला जादू ११.२४
- बक्सों के खेल ११.२४
- नकली मैस्मरेजम ११.२५
- साधक सिद्ध का जोड़ा ११.२६
- इस ओर आकर्षित न होइए ११.२६

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

साधना से सिद्धि की तात्त्विक पृष्ठभूमि

व्यक्तित्व को सुसंस्कारित बना लेना ही सच्ची साधना

साधना का अर्थ है—अपने आपे को साधना। जिन देवी-देवताओं की साधना की जाती है, वस्तुतः अपनी ही विभूतियाँ एवं सत्प्रवृत्तियाँ हैं। इन विशेषताओं के प्रसुप्त स्थिति में पड़े रहने के कारण हम दीन-दरिद्र बने रहते हैं किन्तु जब वे जाग्रत, प्रखर एवं सक्रिय बन जाती हैं, तो अनुभव होता है कि हम ऋद्धि-सिद्धियों से भरे पूरे हैं। मनुष्य की मूल सत्ता एक जीवन्त कल्पवृक्ष की तरह है। ईश्वर ने उसे बहुत कुछ, सब कुछ देकर इस संसार में भेजा है। समुद्र तल में भरे मणि-मुक्ताओं की तरह, भूतल में दबी रत्न-राशि की तरह मानवी सत्ता में भी असंख्य सम्पदाओं के भण्डार भरे पड़े हैं। किन्तु वे सर्वसुलभ नहीं हैं, प्रयत्नपूर्वक उन्हें खोजना-खोदना पड़ता है। जो इसके लिये पुरुषार्थ नहीं जुटा पाते, वे खाली हाथ रहते हैं, किन्तु जो प्रयत्न करते हैं उनके लिये किसी भी सफलता की कमी नहीं रहती। इसी प्रयत्नशीलता का नाम साधना है। स्पष्ट है कि अपने आपको सुविकसित, समुन्नत एवं सुसंस्कृत बना लेना ही देवाराधना का एकमात्र उद्देश्य है। अपनी ही सत्प्रवृत्तियों को अलंकारिक भाषा में देव-शक्तियाँ कहा गया है और उनकी विशेषताओं के अनुरूप उनके स्वरूप, वाहन, आयुध, अलंकार आदि का निर्धारण किया गया है।

साधना उपासना के क्रिया-कृत्य में यही रहस्यमय संकेत-सन्देश सन्निहित है कि हम अपने व्यक्तित्व को किस प्रकार समुन्नत करें और जो प्रसुप्त पड़ा है, उसे जाग्रत करने के लिये क्या कदम उठायें ? सच्ची साधना वही है, जिसमें देवता की मनुहार करने के माध्यम से आत्म निर्माण की दूरगामी योजना तैयार की जाती और सुव्यवस्था बनायी जाती है।

मानवी व्यक्तित्व में सन्निहित सम्भावनाओं का कोई पारावार नहीं। ईश्वर का ज्येष्ठ पुत्र होने के नाते उसे अपने पिता से सभी विभूतियाँ उत्तराधिकार में मिली हैं। व्यवस्था नियन्त्रण इतना ही है कि जब रत्न राशि की उपयोगिता-आवश्यकता समझ में आ जाये तभी वे मिल सकें। पात्रता के अनुरूप अनुदान मिलने की सुव्यवस्था अनादिकाल से चली आ रही है। इसी शिक्षा में खरे उतरने पर लोग एक से एक बढ़कर अनुदान प्राप्त करते रहे हैं। साधना के फलस्वरूप सिद्धि मिलने का सिद्धान्त अकाट्य है। देवी-देवताओं को माध्यम बनाकर वस्तुतः हम अपने ही व्यक्तित्व की साधना करते हैं। अनगढ़ आदतों की बेतुकी इच्छाओं और अस्तव्यस्त विचारणाओं को सभ्यता एवं संस्कृति के शिकंजे में कस कर ही मनुष्य ने प्रगतिशीलता का वरदान पाया है। इसी परम्परा को जो अपने व्यक्तिगत जीवन में जितना क्रियान्वित कर लेता है, वह उतना ही श्रेयाधिकारी बनता है।

मानवी व्यक्तित्व एक प्रकार का उद्यान है। उसके साथ अनेकों आत्मिक और भौतिक विशेषतायें जुड़ी हुई हैं। उनमें से यदि कुछ को क्रमबद्ध, व्यवस्थित और विकसित बनाया जा सके, तो उनके स्वादिष्ट फल खाते-खाते गहरी तृप्ति का आनन्द मिलता है, पर यदि चित्तगत वृत्तियों को, शरीरगत प्रवृत्तियों को ऐसे ही अनियंत्रित छोड़ दिया जाये, तो वे भौंड़े, गँवारू एवं उद्धत स्तर पर बढ़ती हैं और दिशा विहीन उच्छृंखलता के कारण जंगली झाड़ियों की तरह उस समूचे क्षेत्र को अगम्य एवं कंटकाकीर्ण बना देती हैं।

जीवन कल्पवृक्ष की तरह असंख्यों सत्परिणामों से भरा-पूरा है, पर उसका लाभ मिलता तभी है, जब उसे ठीक तरह साधा, सँभाला जाये। इस क्षेत्र की सुव्यवस्था के लिये की गयी चेष्टा को साधना कहते हैं। कितने ही देवी-देवताओं की साधना की जाती है और उससे कतिपय वरदान पाने की बात पर विश्वास किया जाता है। इस मान्यता के पीछे सत्य और तथ्य इतना ही है कि इस मार्ग पर चलते हुए अन्तःक्षेत्र की श्रद्धा को विकसित किया जाता है। आदतों को नियंत्रित किया जाता है। इन सबका मिला-जुला परिणाम व्यक्तित्व पर चढ़ी हुई दुष्प्रवृत्तियों का निराकरण करने तथा सत्प्रवृत्तियों को स्वभाव का अंग बनाने में सहायक सिद्ध होता है। सुसंस्कारों का अभिवर्द्धन प्रत्यक्षतः दैवी वरदान है। उसके मूल्य पर हर व्यक्ति अभीष्ट प्रयोजन की दिशा में अग्रसर हो सकता है।

साधना आत्मिक क्षेत्र में भी होती है और भौतिक क्षेत्र में भी। कदम जिस भी दिशा में बढ़ते हैं, प्रगति उसी ओर होती है। अपनी सतर्कता पूर्ण सुव्यवस्था जिस भी मार्ग पर गतिशील कर दी जाये उसी में एक के बाद एक सफलता के मील पत्थर मिलते चले जायेंगे।

साधना का महत्त्व किसान जानता है। पूरे वर्ष अपने खेत की मिट्टी के साथ अनवरत गति से लिपटा रहता है और फसल को स्वेद कणों से नित्य ही सींचता रहता है। सर्दी-गर्मी की परवाह नहीं, जुकाम-खाँसी की चिन्ता नहीं। शरीर की तरह ही खेत उसका कर्मक्षेत्र होता है। एक-एक पौधे पर नजर रहती है। खाद, पानी, निराई, गुड़ाई से लेकर रखवाली तक के अनेकों कार्य करने से पूर्व वह आवश्यकता समझता है और किसी के निर्देश से नहीं, अपनी गति से ही निर्णय करता है कि कब, क्या और कैसे किया जाना चाहिये। किसी के दबाव से नहीं, अपनी इच्छा और प्रेरणा से ही उसे खेत की, उसे सँभालने वाले बैलों की, हल-कुदाल आदि सम्बद्ध उपकरणों की व्यवस्था

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

जुटाये रहने की सूझ-बूझ सहज ही उठती और स्वसंचालित रूप से गतिशील होती रहती है। यह सब होता है, बिना थके, बिना ऊबे, बिना अधीर हुए। आज का श्रम कल ही फलप्रद होना चाहिये, इसका आग्रह उसे तनिक भी नहीं होता। फसल अपने समय पर पकेगी, तब तक उसे धैर्यपूर्वक प्रतीक्षा करनी होगी, यह जानने के कारण अनाज की ढेरी कोठे में भरने की आतुरता भी उसे नहीं होती। इतने मन अनाज उसे निश्चित रूप से होना चाहिये, इसके लम्बे-चौड़े मन्सूबे बाँधना भी उसे अनावश्यक प्रतीत होता है। मनोयोगपूर्वक सतत् श्रम की साधना चलती ही रहती है, विघ्न-अवरोध न आते हों सो बात भी नहीं, उनसे भी जैसे बनता है निपटता ही रहता है, पर उपेक्षा कभी भी खेत की नहीं होती। उसकी आवश्यकता पूरी किये बिना चैन ही नहीं पड़ता। समयानुसार फसल पकती भी है। अनाज भी पैदा होता है। उसे ईश्वर को धन्यवाद देता हुआ घर ले जाता है। कितने मन अनाज पैदा होना है यह कभी सोचा ही नहीं, तो असन्तोष का कोई कारण भी नहीं। जो मिला उसे ईश्वरीय उपहार समझा गया। यही है किसान की साधना जिसे वह होश सँभालने के दिन से लेकर मरणपर्यन्त सतत् निष्ठा के साथ चलाता ही रहता है। न विश्राम, न थकान, न ऊब, न अन्यमनस्कता। साधना कैसे की जाती है और साधक को कैसा होना चाहिये, यह किसान से सीखा जा सकता है।

साधना का क्षेत्र अन्तःजगत है। अपने ही भीतर इतने खजाने दबे-गढ़े हैं कि उन्हें उखाड़ लेने पर ही कुबेर जितना सुसम्पन्न बना जा सकता है। फिर किसी बाहर वाले से माँगने-जाँचने की दीनता दिखाकर आत्मसम्मान क्यों गँवाया जाये ? भीतरी विशिष्ट क्षमताओं को ही तत्त्वदर्शियों ने देवी-देवता माना है और बाह्योपचारों के माध्यम से अन्तःसंस्थान के भाण्डागार को करतलगत करने का विधि-विधान बताया है। शारीरिक बल वृद्धि के लिये डम्बल, मुद्गर उठाने-घुमाने जैसे कर्मकाण्ड करने पड़ते हैं। बल इन उपकरणों में कहाँ होता है ? वह तो शरीर की माँसपेशियों से उभरता है। इस उभार में व्यायामशाला के साधन-प्रसाधन सहायता भर करते हैं, उनसे मिलता कुछ नहीं। जो मिलता है, वह भीतर से ही मिलता है। ठीक यही बात आत्मसाधना के सम्बन्ध में भी कही जा सकती है।

व्यायामशाला में नित नये उत्साह के साथ जूझते रहने वाले पहलवान की मनःस्थिति और गतिविधि का यदि गम्भीरतापूर्वक अध्ययन किया जाये, तो आत्मसाधना के विद्यार्थी को विदित हो सकता है कि उसे आखिर करना क्या पड़ेगा ? पहलवान मात्र कसरत करके ही निश्चिन्त नहीं हो जाता वरन् पौष्टिक भोजन की, संयम की, ब्रह्मचर्य की, तेल मालिश की, उपयुक्त दिनचर्या की, प्रसन्नता-निश्चिन्तता की भी व्यवस्था करता है। यदि उन सब बातों की उपेक्षा की जाये और मात्र दण्ड-बैठकों को ही जादू की छड़ी मान लिया जाये, तो सफलता दूर की चीज ही बनी रहेगी। एकाकी कसरत से कुछ भला न हो सकेगा। उपासनात्मक विधि-विधान की अपनी ही महत्ता है, पर उतने भर से काम नहीं चलता। चिन्तन और कर्तृत्व की रीति-नीति भी लक्ष्य के अनुरूप ही ढालनी पड़ेगी।

गायक और वादक एक दिन में अपने विषय में पारंगत नहीं हो जाते, उन्हें स्वर की, नाद की साधना नित्य निरन्तर करनी पड़ती है। 'रियाज' न किया जाये, तो गायक का स्वर छितराने लगता है और वादक की अँगुलियाँ जकड़-मकड़ दिखाने लगती हैं। संगीत सम्मेलन तो यदा-कदा ही होते हैं, पर वहाँ तक पहुँचाने वाली स्वर साधना को नित्य ही अपनाये रहना पड़ता है। गीत सुनने वालों ने कितनी प्रशंसा की और कितनी धनराशि दी यह बात गौण रहती है। संगीत साधक आत्मतुष्टि की नित्य मिलने वाली प्रसन्नता को ही पर्याप्त मानता है और बाहर से कुछ भी न मिले तो भी वह एकान्त जंगल की किसी कुटिया में रहकर भी आजीवन बिना ऊबे संगीत साधना करता रह सकता है। आत्मसाधक की मनःस्थिति इतनी तो होनी ही चाहिये।

नर्तक, अभिनेता अपना अभ्यास जारी रखते हैं। शिल्पी और कलाकार जानते हैं कि उन्हें अपने प्रयोजन के लिये नित्य नियमित अभ्यास करना चाहिये। फौजी सैनिकों को अनिवार्य रूप से परेड करनी पड़ती है। अभ्यास टूट जाने पर न तो गोली का निशाना ठीक बैठता है और न मोर्चे पर लड़ने के लिये जिस कौशल की आवश्यकता पड़ती है वह हाथ रहता है। किसी विशेष प्रयोजन के लिये नियत संख्या तथा नियत अवधि की साधना से किसी पूजा प्रयोजन का संकल्प लेने वाला समाधान हो सकता है, पर आत्म साधक को इतने भर से सन्तोष नहीं मिलता। वह जानता है कि प्यास बुझाने के लिये रोज ही कुएँ से पानी खींचना पड़ता है और सफाई रखने के लिये रोज ही कमरे को बुहारना पड़ता है। मानवी सत्ता की स्थिति भी ऐसी ही है, उसकी हीरों भरी खदान को हर दिन खोदना, कुरेदना चाहिये। तभी नित्य नये उपहार मिलने सम्भव होंगे। शरीर को स्नान कराना, दाँत माँजना, कपड़े धोना नित्य कर्म हैं। उसकी उपेक्षा नहीं हो सकती। संसार का विक्षोभ भरा वातावरण हर किसी की अन्तःचेतना को प्रभावित करता है। उसकी नित्य सफाई न की जाये, तो क्रमशः गन्दगी बढ़ती ही चली जायेगी और अन्ततः कोई बड़ी विपत्ति खड़ी करेगी।

शरीर को जीवित और सुसंचालित रखने के लिये दो कार्य आवश्यक हैं एक भोजन, दूसरा मल त्याग। इनमें से एक की भी उपेक्षा नहीं हो सकती। भोजन न किया जाये तो पोषण के लिये नितान्त आवश्यक रस रक्त की नयी उत्पत्ति न होगी और पुराने संचित रक्त की पूँजी समाप्त होते ही काया दुर्बल होकर मृत्यु के मुख में चली जायेगी। इसी प्रकार मल त्याग न करने पर नित्य उत्पन्न होने वाले विष जमा होते और बढ़ते चले जायेंगे और उनका विस्फोट अनेक उपद्रवों के रूप में प्रकट होकर कष्टकारक मृत्यु का आधार बनेगा। पंच भौतिक शरीर की तरह सूक्ष्म शरीर की दिव्य चेतना की कुछ आवश्यकतायें हैं। उसे भी भूख लगती है। उस पर भी मैल चढ़ते हैं और सफाई की आवश्यकता पड़ती है, इन दोनों प्रयोजनों को पूरा करने वाली प्रक्रिया साधना कही जाती है। उससे सत्प्रवृत्तियों को जगाकर वह सब उगाया, पकाया जा सकता है, जिससे आत्मा की भूख बुझती है और जीवन भूमि में हरी-भरी फसल लहलहाती है। साधना से उन मलीनताओं, मनोविकारों का निष्कासन होता है, जो प्रगति के हर क्षेत्र में

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

चट्टान बनकर अड़े रहते हैं और पग-पग पर व्यवधान उत्पन्न करते रहते हैं। साधना में प्रयुक्त होने वाली आत्मशोधन और आत्म-निर्णय की उभय पक्षीय प्रक्रिया अन्तःक्षेत्र में धँसे-फँसे कुसंस्कारों को उखाड़ कर उनकी जगह आम वृक्ष लगाती है। कँटीली झाड़ियों से पिण्ड छुड़ाने और स्वादिष्ट फलसम्पदा से लाभान्वित होने का दुहरा लाभ मिलता है। संसार में जितने भी चमत्कारी देवता जाने माने गये हैं, उन सबसे बढ़कर आत्मदेव हैं। उसकी साधना प्रत्यक्ष है। नकद धर्म की तरह उसकी उपासना कभी भी, किसी की भी निष्फल नहीं जाती। यदि उद्देश्य समझते हुए सही दृष्टिकोण अपनाया जा सके तो जीवन साधना को अमृत, पारस और कल्प वृक्ष की कामधेनु की सार्थक उपमा दी जा सकती है।

साधने से सामान्य स्तर के प्राणी आश्चर्यजनक कार्य करके दिखाते हैं। वन गायें मनुष्य को पास भी नहीं आने देतीं और खेत को उजाड़ कर रख जाती हैं, पर जब वे पालतू हो जाती हैं, तो दूध, बछड़े, गोबर आदि बहुत कुछ देती हैं। स्वयं सुखी रहती हैं और उसके पालने वाले भी लाभान्वित होते हैं। यही बात अन्य वन्य पशुओं के बारे में भी लागू होती है। जंगली घोड़े, कुत्ते, सुअर, हाथी आदि स्वयं भूखे मरते, कष्ट उठाते और अनिश्चित जीवन जीते हैं। पालतू बन जाने पर वे स्वयं निश्चिन्ततापूर्वक रहते हैं और अपने पालने वालों को भी लाभ पहुँचाते हैं। अपने भीतर शरीर तथा मनःक्षेत्र में एक से बढ़कर एक शक्तिशाली धारायें प्रवाहित होती हैं। वे निरुद्देश्य और अनियन्त्रित स्थिति में रहकर वन्य पशुओं जैसी असंगत बनी रहती हैं। फलतः विकृत होकर वे सड़ी दुर्गन्ध की तरह अपने समूचे प्रभाव क्षेत्र को विषैला बना देती हैं। आग जहाँ भी रहती है वहीं जलाती है, तेजाब की बोतल जहाँ भी फैलती है, वहीं गलाती है। विकृत प्रवृत्तियाँ छितराई हुई आग और फूटी हुई तेजाब की बोतल की तरह हैं, उनसे केवल विनाश ही सम्भव होता है। यह दोनों ही वस्तुयें यदि सुनियोजित रखी जा सकें तो उनसे उपयोगी लाभ मिलते हैं और वे इतने बढ़े-चढ़े होते हैं कि सामान्य दीखने वाला मनुष्य पग-पग पर अपनी असामान्य स्थिति का परिचय देता है। साधना जीवन के बहिरंग और अन्तरंग क्षेत्रों में सुसंस्कारित सुव्यवस्था उत्पन्न करने का नाम है। इसे समझ पाने और कर पाने का प्रतिफल, जंगली जानवरों को पकड़ कर पालतू बनाने की कला में प्रवीण व्यवसाइयों जैसा ही प्राप्त होता है।

सरकस के जानवर कितने आश्चर्यजनक करतब दिखाते हैं। देखने वाले बाग-बाग हो उठते हैं। इन सधे जानवरों की प्रशंसा होती है—प्रतिष्ठा मिलती है और अच्छी खुराक मिलती है। साधने वाले और सिखाने वाले को अच्छा वेतन मिलता है और सरकस के मालिकों को उन्हीं जानवरों के सहारे धनवान बनने का अवसर मिलता है, जो उच्छृंखल होने की स्थिति में स्वयं असन्तुष्ट रहते और दूसरों को रुष्ट करते थे।

घरेलू उपयोग में आने वाले जानवर भी बिना सिखाये, सधाये भी अपना काम ठीक तरह कहाँ कर पाते हैं। बछड़ा युवा हो जाने पर भी मर्जी से हल, गाड़ी आदि में चल नहीं पाता। घोड़े की पीठ पर सवारी करना, उसे दुरकी चाल चलाना सहज ही सम्भव नहीं होता। ऊँट गाड़ी, तांगा, बैलगाड़ी में जुतने वाले पशु अपने आप चलने नहीं लग जाते उन्हें कठिनाई से प्यार, फटकार के सहारे धीरे-धीरे बहुत दिन में इस योग्य बनाया जाता है कि अपना काम ठीक तरह अंजाम देने लगें। साधना इसी का नाम है। इन्द्रियों के समूह को मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार के अन्तःकरण चतुष्टय को वन्य पशुओं के समकक्ष गिना जा सकता है। अपने स्वाभाविक रूप में यह सारा ही चेतना परिवार उच्छृंखला होता है। जन्म-जन्मान्तरों के पाशविक कुसंस्कारों की मोटी परत उन पर जमा होती है। उसे उतारने के लिए जिस खराद का उपयोग किया जाता है, उसे साधना कह सकते हैं। पशुता को परिष्कृत करके उसे मनुष्यता के, देवत्व के रूप में गढ़ देने के सदृश्य एक विशिष्ट कौशल है। इस प्रवीणता में पारंगत होने का नाम ही आत्मसाधना है। पशुओं को प्रशिक्षित करने और पत्थर से मूर्तियाँ बनाने की तरह यह कार्य कुछ कठिन तो है, पर है ऐसा जिसमें लाभ ही लाभ भरा पड़ा है।

कठपुतली नचाने वाले, हाथ की सफाई से बाजीगरी के कौतुक दिखाने वाले, बन्दर और रीछ का तमाशा करने वाले, जादूगर जैसे लगते हैं और चमत्कारी समझे जाते हैं। यह चमत्कार और कुछ नहीं किसी विशेष दिशा में तन्मयतापूर्वक धैर्य और उत्साह के साथ लगे रहने का प्रतिफल मात्र है। ऐसा चमत्कार कौतूहल प्रदर्शन से लेकर किसी भी साधारण तथा असाधारण कार्य में आशाजनक सफलता प्राप्त करने के रूप में कभी भी, कहीं भी देखा जा सकता है। अपनी ईश्वर प्रदत्त विशेषताओं को उभारने और महत्वपूर्ण प्रयोजनों में नियोजित करने का नाम साधना है। साधना का परिणाम सिद्धि के रूप में सामने आता है। यह नितान्त स्वाभाविक और सुनिश्चित है। यदि अपने आप को साधा जाये, व्यक्तित्व को खरादा जाये तो वह सब कुछ प्रचुर परिमाण में अपने ही घर पाया जा सकता है, जिसकी तलाश में जहाँ-तहाँ मारे-मारे फिरना और मृगतृष्णा की तरह निराश भटकना पड़ता है।

साधना से सिद्धि का तत्त्वदर्शन

पदार्थ की तरह व्यक्ति भी मूलतः अनगढ़ ही होता है। उसे सँभालने, सजाने से उपयोगिता बढ़ती है और सौन्दर्य निखरता है। अनगढ़ मिट्टी पैरों के तले कुचलती रहती है, पर जब परिश्रम करके इसके बर्तन या खिलौने बनाये जाते हैं, तो उसकी विशेषता निखर कर आती है और उससे समुचित लाभ उठाया जाता है।

व्यक्ति अपनी अनगढ़ स्थिति में नर पशु से अधिक और कुछ नहीं। गये-गुजरे स्तर का मनुष्य कई बार तो पशुओं से भी अधिक घृणित और दुःखद परिस्थिति में डूबा पड़ा होता है। स्वयं कष्ट सहता है और सम्बद्ध व्यक्तियों को दुःख देता है। भार बनकर जीता और भार हलका करने के लिये मृत्यु के मुख में चला जाता है। किन्तु उसे यदि सुविकसित, सुसंस्कृत बनाया जा सके तो लगता है कि वही ईश्वर की सर्वश्रेष्ठ कलाकृति है।

साधना को दूसरे शब्दों में संस्कृति कह सकते हैं। शरीरगत क्रियाशीलता, मनोगत विचारणा और अन्तरात्मा की

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

भाव-संवेदना का स्तर किस प्रकार ऊँचा उठाया जा सकता है और किस तरह पशुता को देवत्व में परिणत किया जा सकता है, इसी विद्या का नाम साधना है। अपने आप की साधना करके कोई भी सिद्ध पुरुष बन सकता है।

जमीन से निकलते समय लोहा मिट्टी मिला होता है। उसे अग्नि संस्कार करके शुद्ध करना होता है। खदान से निकलते समय की लोह मिश्रित मिट्टी अपने मूल रूप में किसी काम की नहीं होती, न वह मिट्टी का प्रयोजन पूरा करती है और न लोहे का—जब उसका परिशोधन होता है, तभी शुद्ध लोहे का स्वरूप सामने आता है। इससे आगे उस लोहे को पिघला कर औजारों, पुर्जों, हथियारों के रूप में ढाला जाता है। उस लोहखण्ड की उपयोगिता और गरिमा इसी प्रकार बढ़ती है। रसायनवेत्ता सामान्य लोहे को लोहासव, लोह भस्म, माण्डूर भस्म आदि रूप देते हैं और इन औषधियों के सहारे भयंकर रोग ग्रसितों को जीवन दिलाते हैं। सामान्य से महत्त्वहीन लोह खण्ड को इतना उपयोगी बना देने का श्रेय अग्नि संस्कारों के साथ जुड़ी हुई ढालने, खरादने आदि की प्रक्रिया को ही दिया जा सकता है।

ऊबड़-खाबड़ भूमि को समतल, उर्वरा पार्क उद्यान के रूप में विकसित करने के लिये कृषक को बहुत कुछ करना पड़ता है। जंगलों में उगे पौधे झाड़-झंखाड़ भर रहते हैं, पर कुशल माली उन्हें अपनी कलाकारिता से काँटते-छाँटते, निराते, गोड़ते, कलम लगाते सुरम्य उद्यान की नयनाभिराम स्थिति में पहुँचा देता है। शरीर की साधना करने वाले व्यायाम प्रेमी उसे सुन्दर, बलिष्ठ और आकर्षक बना लेते हैं। ऐसे शरीर पहलवान के नाम से प्रख्यात होते और पुरष्कृत होते हैं। विद्वान बनने के लिये मस्तिष्क की साधना करनी पड़ती है। प्रशिक्षण और वातावरण के प्रभाव से ही मनुष्य सुसंस्कृत बनता और गौरवास्पद होता है। यह सब संस्कार साधना का ही प्रतिफल है।

अनगढ़ स्वर्ण खण्ड स्वर्णकार के हाथों तले जाकर नयनाभिराम आभूषण बनता है। इस विकास में उसे कई प्रकार तपने, पिटने, छिलने की प्रक्रियाओं में होकर गुजरना पड़ता है। अन्य धातुएँ भी मूल स्वरूप में जिस भाव की होती हैं उसकी तुलना में उनके किसी उपयोगी वस्तु के रूप में परिणत हो जाने का मूल्य अनेक गुना हो जाता है। पत्थर के टुकड़े का मूल्य नगण्य है, पर मूर्तिकार के छैनी, हथौड़े सहते-रहने पर उसका स्वरूप देव प्रतिमा का बन जाता है। कागज पर साहित्यकार की लेखनी चलती है और वह बहुमूल्य पाण्डुलिपि के रूप में बदल जाता है।

वन्य पशु मनुष्य के लिये अनुपयोगी ही नहीं हानिकारक भी होते हैं किन्तु जब उन्हें पालतू बना लिया जाता है और सधा लिया जाता है, तो पूरा-पूरा लाभ उठाया जाता है। वन्य स्थिति से पालतू और प्रशिक्षित बनाने में मनुष्य को धैर्यपूर्वक चिर साधना में लगा रहना पड़ता है और पशुपालन शास्त्र विकसित करना पड़ा है। अपनी मूल स्थिति में जो सिंह-बाघ मनुष्य के प्राण हरण ही कर सकते हैं, प्रशिक्षित होने पर वे ही भारी कमाई करते हैं। इसे साधना का चमत्कार ही कहा जा सकता है।

नृतत्त्व विज्ञान के अनुसार मनुष्य भी एक वन्य पशु है। उसे वानर वर्ग के वंश से विकसित होते-होते वर्तमान स्थिति तक पहुँचा हुआ माना जाता है। इस विकास क्रम में उसने अपनी बौद्धिक क्षमता एवं क्रिया कुशलता विकसित की है। बोलना, लिखना और सोचना सीखा है। शिक्षा, चिकित्सा, शिल्प, कला, कृषि, परिवहन आदि की कितने ही प्रकार की उपलब्धियाँ अर्जित की हैं। यह सब अनायास ही नहीं हो गया। यह लाखों वर्षों की विकास साधना का प्रतिफल है। समाज का गठन, शासन तन्त्र, तत्त्वदर्शन, धर्म, सभ्यता, संस्कृति आदि का प्रस्तुत ढाँचा यदि खड़ा न किया जा सका होता, तो मनुष्य अपने मूल स्वरूप में वन मानुषों से अधिक कुछ हो नहीं सकता था। अब भी जहाँ सभ्यता का प्रकाश स्वल्प मात्रा में पहुँचा है, वहाँ के मनुष्यों का पिछड़ापन कितना दयनीय प्रतीत होता है।

हाड़-माँस की दृष्टि से प्रायः सभी मनुष्यों के शरीर लगभग समान स्तर के हैं। यों तो पत्ते-पत्ते की बनावट में अन्तर होता है, पर मोटी दृष्टि से उन्हें समान ही कहा जा सकता है। यही बात मनुष्य-मनुष्य के बीच में है। उनके बीच पाये जाने वाले अन्तर को नगण्य ही कह सकते हैं। समानता की मात्रा इतनी है कि अन्तर को स्वल्प ही माना जायेगा। इतने पर भी देखा जाता है कि एक जैसी परिस्थितियों में जन्मे और पले होने पर भी मनुष्य-मनुष्य के बीच भारी अन्तर रहता है।

मोटा विभाजन किया जाये, तो मनुष्य समुदाय को दो भागों में बाँटा जा सकता है। सामान्य जन उदर पोषण करते, प्रजनन में निरत रहते और लोभ-मोह की, अहं प्रदर्शन की बालक्रीड़ा में उलझे रहते हैं। ऐसे व्यक्ति धनी, शिक्षित, पदवीधारी, कलाकार, प्रख्यात हो सकते हैं। इतने पर भी उनकी गणना विशिष्टों में नहीं की जा सकती। वरिष्ठ वे हैं जो व्यक्तित्व के धनी हैं। जिनने बहाव में बहने से इनकार कर दिया है और मल्लाहों की तरह नाव खेने का, मँझधार को चीरकर असंख्यों को इस पार से उस पार पहुँचा देने का निश्चय किया है। ऐसे लोग मनस्वी होते हैं। मनस्वी अर्थात् संकल्पवान। संकल्पवान अर्थात् निजी क्षेत्र में कुसंस्कारों को निरस्त करके उत्कृष्ट आदर्शवादिता अपनाने वाले।

यह हर किसी से नहीं बन पड़ता। ओछे लोगों को संकीर्ण स्वार्थपरता के भाव-बन्धनों से उबरना अति कठिन लगता है। वे अन्धी भेड़ों के झुण्ड में चलने की बात ही सोचते रहते हैं। उन्मुक्त आकाश में अपने पंखों के सहारे एकाकी उड़ने की हिम्मत उनमें होती ही नहीं। ऐसी दशा में वह सामान्य ही बने रहते हैं। सामान्य से तात्पर्य है निर्वाह, रति-लिप्सा परायण नर-पशु। बाहुल्य इन्हीं लोगों का है। पूरे समुद्र में यह सीप घोंघे ही भरे पड़े हैं। यों मणि-मुक्तकों का भी उस भण्डार में अभाव नहीं है, पर वह कठिनाई से ही ढूँढ़े जाते और जहाँ-तहाँ ही स्वल्प परिमाण में मिलते हैं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

विशिष्ट इन्हीं को कहते हैं। मनुष्यों का जब कभी भी मूल्यांकन होता है तो इसी प्रामाणिक कसौटी को परखने के लिये आगे लाया जाता है कि कौन कितना पवित्र और प्रखर निकला। पवित्र अर्थात् उदार चेता, दूरदर्शी विवेकवान। प्रखर अर्थात् संयमी, निग्रही, तपस्वी, आदर्शवादी। जो इस कसौटी पर खरे उतरे, वे आकाश में नक्षत्रों की तरह चमके और स्थिर रहे, जिनने अपने को शरीर लिप्सा में ही जकड़े रखा, व्यामोह की कीचड़ में सड़ते रहना ही उपयुक्त समझा वे अपने ही स्तर के लोगों की ही वाहवाही पा सकते हैं। परखने वाले उनकी गणना बाल बुद्धि वालों में ही करते रहेंगे, भले ही वह आयुष्य की दृष्टि से वयोवृद्ध ही क्यों न हो गये हों ?

यों सदा से ही विशिष्टों को सौभाग्यशालियों में गिना जाता रहा है क्योंकि मात्र वे ही आत्मसन्तोष की, लोक श्रद्धा की, दैवी अनुकम्पा की विभूतियाँ प्राप्त करते हैं। धरती पर रहते हुए स्वर्ग जैसी भाव-संवेदना का रसास्वादन करते और जीवन मुक्तों की तरह अवांछनीयता के हर बन्धन को तोड़ते हुए असीम से सम्पर्क साधने का वह जीवन लाभ लेते हैं जिसका माहात्म्य महामानवों की, ऋषि-मनीषियों की, देवदूतों की जीवनगाथा में पढ़ा सुना जाता है। सच्ची प्रगति का यही मार्ग है। सौभाग्यवान् और बुद्धिमान होने का यही एकमात्र आधार अवलम्बन है। कोई अगति या दुर्गति में ही प्रगति देखने लगे तो इस दृष्टिदोष को, भ्रम जंजाल अपनाने वाले को कोई क्या कहे ? संसार में न तो कुछ अनायास होता है और न अप्रत्याशित। प्रकृति की विलक्षण घटनाओं से लेकर मानवी उत्थान-पतन तक ही समस्त हलचलें किसी क्रमबद्ध प्रतिक्रिया के सुनिश्चित परिणाम हैं। भले ही हम उस प्रक्रिया से परिचित न होने के कारण भाग्य, दैव आदि का कुछ भी नाम देते रहें। तथ्य 'साधना से सिद्धि' के सिद्धान्त की ही पग-पग पर पुष्टि करते हैं। विज्ञान की साधना करते-करते मनुष्य ने प्रकृति के चमत्कारी वरदान प्राप्त किये हैं। जब तक वे प्रयास बन नहीं पड़े थे तब तक प्रस्तुत वैज्ञानिक उपलब्धियों में से एक भी हस्तगत नहीं हुई थी।

बाजार में हर स्तर की हर वस्तु दुकानों में सजी हुई पाई जाती हैं। वे सभी विक्रय के लिये हैं। दुकानदार पूरे समय एक आशा लगाये प्रतीक्षा करते बैठे रहते हैं कि कोई ग्राहक आये और उन्हें खरीदे। दूसरी ओर उन आकर्षक वस्तुओं के इच्छुकों की भी कमी नहीं। रास्ते चलते हुए लोगों की आँखें उन्हें ललचाती हुई देखती हैं। पैर थोड़ा ठिठकते हैं पर पा न सकने की स्थिति जब सूझती है तो मन-मसोसकर आगे चल पड़ने की ही बात बनती है। दुकानदार आतुर, ग्राहक इच्छुक फिर तालमेल क्यों नहीं बैठता ? दोनों की नजर एक-दूसरे से मिलती भर है किन्तु विवशता से पलक नीचे हो जाते हैं। न दुकानदार को प्रसन्नता होती है, न ग्राहक को उल्लास भरा अवसर मिलता है। इस विडम्बना का कारण खोजने पर एक ही तथ्य निखर कर आता है कि मूल्य चुकाने की स्थिति नहीं थी। असंख्यों लड़कियों के विवाह नहीं होते हैं और कितने ही लड़के कुँवारे बैठे हैं। संयोग क्यों नहीं बैठता ? इसीलिये कि अनुकूलता की शर्त पूरी नहीं होती। उपयुक्त पात्रता की स्थिति न होने पर किसी भी क्षेत्र में तो तालमेल नहीं बैठता।

मनुष्य बहुत कुछ चाहता है। उसे अच्छा स्वास्थ्य और दीर्घ-जीवन चाहिये। मन में उत्साह, उल्लास भरा रखने वाली परिस्थितियों की आकांक्षा रहती है, कौन नहीं चाहता कि पैसे की तंगी रहे। पत्नी का प्यार पाने की उत्सुकता किसे नहीं है ? मित्रों का सम्मान एवं सहयोग किसे अपेक्षित नहीं है। ऐसी-ऐसी अन्यान्य बातें भी हैं, जिन्हें हर व्यक्ति चाहता है। इतने पर भी देखा यह जाता है कि उन अभिलाषाओं की पूर्ति कोई बिरले ही पूरी कर पाते हैं। जिनसे अपेक्षा की गयी थी वे लोग सहायोग देने को इच्छुक नहीं, ऐसी बात भी नहीं है। शरीर की दृश्य-अदृश्य संरचना ऐसी है जिसके सहारे पूर्ण स्वस्थ और दीर्घजीवी रह सकना हर किसी के लिये सम्भव हो सकता है। जब कृमि-कीटक और पशु-पक्षी तक निरोग जीवन जी लेते हैं, तो मनुष्य पर ही ऐसी क्या मुसीबत उतरी है कि उसे दुर्बलता और रुग्णता से निरन्तर कष्ट सहते हुए अकाल मृत्यु मरना पड़े ? चिड़िया चहचहाती, कुदकती, फुदकती, कोयल कूकती, मोर नाचते, मेढक टर्राते और भौंरे गुनगुनाते रहते हैं, तो मनुष्य क्यों खीजते-खिजाते, रोते-रुलाते, तनाव और उद्विग्नता के दिन गुजारें ? हर घड़ी चन्दन जैसी सुगन्धि बखेरने में समर्थ विलक्षण मानवी मस्तिष्क क्यों उत्तेजना और निराशा के ज्वार-भाटों में उफनते-बुझते देखा जाय ? चार मुट्ठी अनाज और दस गज कपड़े जितनी स्वल्प आवश्यकता वाला तीन-तीन फुट लम्बे दस उँगलियों वाले हाथ का व्यक्ति क्यों दरिद्र पाया जाये और क्यों उस पर अर्थ चिन्ता छाई रहे ? कबूतरों और हिरनों के झुण्ड स्नेह सहकार के साथ दिन गुजार लेते हैं, तो मनुष्यों के छोटे-छोटे परिवार क्यों जेलखानों की तरह विसंगतियों और दुष्प्रवृत्तियों के केन्द्र बने रहें ? धर्म और ईश्वर के जहाँ इतने ढोल धमाके बजते हों, उन लोगों के पारस्परिक सम्बन्धों में उदार सहृदयता का, दुःख बँटाने और सुख बाँटने की प्रथा परम्परा समाप्त क्यों होती चली जाये ?

इस संसार में चैन की हर्षोल्लास भरी जीवनचर्या व्यतीत करने की सुविधा सामग्री के अजस्र भण्डार भरे पड़े हैं। उन्हें पाने की ललक-लिप्सा तो आतुरता से भी आगे बढ़कर आक्रामकता पर उतारू पायी जाती है। आखिर ऐसा होता क्यों है ? सृष्टा का निकटतम स्नेह भाजक युवराज इतनी दुर्दशाग्रस्त नारकीय जिन्दगी जिये, जितनी कि उस पर विवशता और लानत की तरह भारभूत होकर लद रही है।

प्रश्न अत्यन्त टेढ़ा है किन्तु उत्तर अति सरल। इस संसार में वस्तु मूल्य चुकाकर खरीदी जाती है। मुफ्त में तो काया, प्राण, धरती, आकाश, सूर्य, पवन, बादल जैसी जो विभूतियाँ मिल सकती थीं समय से पहले ही मिल चुकी हैं। अब जो पाना हो उसके लिये तत्पर परिश्रम और तन्मय मनोयोग नियोजित करना पड़ेगा। उससे भी बड़ी बात है, परिष्कृत व्यक्तित्व में पाया जाने वाला चुम्बक। यही है वह आकर्षण, जिसके खिंचाव से अभीष्ट सफलतायें खिंचती चली आती हैं। वह कथन अक्षरशः सच है जिसमें पसीने की हर बूँद को हीरे-मोती के समतुल्य माना और तादात्म्य मनोयोग को

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

चमत्कारों का पुंज कहा गया है। पात्रता इन्हीं के समन्वय का नाम है। श्रम, मनोयोग और चरित्र चिन्तन की उत्कृष्टता को व्यक्तित्व की तिजोरी में भरी हुई ऐसी बहुमूल्य सम्पदा माना जाना चाहिये, जिसकी कीमत पर हर क्षेत्र की, हर स्तर की विभूतियाँ, सफलतायें खरीदी जा सकें।

कुपात्रता के रहते वैभव का भाग्योदय किस ग्रह-नक्षत्र से उतरे ? टीले पर वर्षा का जल कैसे ठहरे? चट्टान पर हरियाली कैसे उगे ? इतना कर सकना तो पावस की मेघालय से भी न बन पड़ेगा, पुतली का पानी उतर जाये तो संसार में सौन्दर्य भरा रहने पर भी अपनी दुनिया अँधेरी ही बनी रहेगी। कान की झिल्ली सूख जाने पर संसार भर की शब्द-रूपदा से अपने को वंचित ही रहना पड़ेगा। मस्तिष्क विकृत हो जाने पर यह समूची दुनिया सृष्टा की सर्वश्रेष्ठ कलाकृति रहने पर भी अस्त-व्यस्त प्रतीत होगी। विवेकवान जानते हैं कि धरातल पर बिखरे हुए काँटे बीनना कठिन है, अपने ही पैरों में जूते पहनने से काम चलेगा। हर वस्तु को हरे रंग की देखना अभीष्ट हो, तो उसी रंग का चश्मा पहनने के अतिरिक्त कोई चारा नहीं। यह दुनिया दर्पण ही तरह है, जो दीखता है वह वस्तुतः अपने ही स्वरूप का प्रतिबिम्ब होता है। यदि ऐसा न होता तो एक जैसे दो पड़ोसियों में से एक के पल्ले उत्कर्ष और दूसरे के अपकर्ष क्यों बँधता है ? यह दुनिया कुएँ की आवाज की तरह है। यहाँ ध्वनि की प्रतिध्वनि ही गूँजती रहती है।

यदि जीवन साधना की गरिमा पर विश्वास किया जा सके, तो समझना चाहिये अध्यात्मशास्त्र में जिस 'श्रद्धा तत्व' को सर्वोपरि बताया गया है, उसका शुभारम्भ बन पड़ा। देवता भीतर से उगते हैं। सामने तो वे खड़े भर दीखते हैं। मनःस्थिति अदृश्य आन्तरिक है। परिस्थिति उसकी दृश्यमान परिणति है। विषाक्तता रक्त में रहती है, व्रण, अर्बुदों के रूप में तो वह फूटती भर है। पेड़ के पल्लव, फल-फूल ऊपर आसमान से नहीं टपकते व दृष्टि से ओझल रहने वाली जड़ों द्वारा रस रूप में खींचे जाते हैं। विभूतियाँ अन्तर में से निकलती हैं। उन्हें किसी देवी-देवता, मन्त्र-तन्त्र का अनुदान कहा जाये, तो इसमें विनयशीलता और कृतज्ञता तो है किन्तु यथार्थता नहीं। क्योंकि आज तक कभी ऐसा नहीं हुआ कि कुपात्रता के रहते किसी दैवी शक्ति ने मात्र पूजा-पत्री से प्रसन्न होकर किसी के साथ पक्षपात किया हो और पात्रता से अधिक अनुपात में अनुग्रह उड़ेला हो।

लोक मान्यता यह है कि सिद्धियाँ देव अनुग्रह से बरसती हैं। साधना उसी की मनुहार है। यह मान्यता आंशिक रूप से ही सत्य है। दुकानदार माँगने से ही कोई वस्तु निकाल कर दिखाता और देता है। न माँगने पर तो वह देना तो दूर बतावेगा तक नहीं। प्रार्थना को अपनी आवश्यकता की अभिव्यक्ति कह सकते हैं। इस अर्थ में वह उचित भी है और आवश्यक भी। भूल वहाँ होती है, जब प्रार्थना को याचना समझा जाता है। याचना का अर्थ है बिना मूल्य या अल्प मूल्य में कुछ बहुमूल्य पाने के लिए गिड़गिड़ाना। इस उपाय से बहुत हल्के अनुदान ही प्राप्त होते देखे गये हैं। इतने पर भी वे न तो सन्तोषजनक होते हैं और न सम्मानास्पद। उनका उपयोग करते समय आत्मग्लानि भी होती है और बाहर से तिरस्कृत भी होना पड़ता है। फिर यह प्रचलन तो मानवी है। व्यक्तिगत याचना अनुदान का सिलसिला तो मानव समाज में ही प्रचलित है। विश्व व्यवस्था में तो खरीदने पाने भर का विधान है। सृष्टा की समूची सृष्टि इसी व्यवस्था की धुरी पर परिभ्रमण करती है कि पात्रता प्रस्तुत करने वाले को अनुदान दिये जायें। पवन प्राण, वायु की प्रचुर मात्रा लिये अड़ा रहता है, पर उसे सक्षम फेफड़े ही ग्रहण कर पाते हैं। पाने वाले को अतिरिक्त याचना नहीं करनी पड़ती, जो उपयुक्त है वह अनायास ही मिलता है। उपर्युक्त का तात्पर्य है अपने स्तर के अनुरूप स्तर को बढ़ाये बिना न तो विभूतियाँ मिलती हैं और न मिलने पर ठहरती ही हैं। अतएव पात्रता की पाचन की समर्थता का अभिवर्द्धन अनिवार्य रूप से आवश्यक है। साधना में यही करना पड़ता है। यह प्रयास जितना प्रौढ़, प्रखर एवं परिपक्व होता है, उसी अनुपात में विभूतियाँ भीतर ही उफनती और बाहर से बरसती दृष्टिगोचर होने लगती हैं।

देवता बड़े दयालु हैं और अनुग्रहकर्त्ता भी, पर पात्रता को परखे बिना अनुग्रह को बरसा देने के दुष्परिणाम भली-भाँति समझते हैं, इसलिए उनकी कृपा का लाभ भी केवल उन्हीं को मिलता है, जो उपयुक्त पुरुषार्थ करके अपनी पात्रता सिद्ध करते हैं। याचना से, चापलूसी से, छल-छद्म से भी कभी-कभी कुछ मिल जाता है, पर उसे अत्यन्त ही स्वल्प एवं अपवाद तुल्य ही कहा जा सकता है। उसमें स्थिरता भी नहीं रहती। पात्रता के अभाव में उत्तराधिकार आदि में मिली प्रचुर सम्पदा भी दुर्व्यसनों में नष्ट होती और दुष्परिणाम उत्पन्न करती देखी गयी है। पुरुषार्थ साधना से अभीष्ट साधनों का, सफलताओं का मिलना तो एक गौण लाभ है। असली लाभ है साधक के व्यक्तित्व का, गुण, कर्म, स्वभाव का सुविकसित होना। इस उपार्जन के सहारे प्रतिभा निखरती है और उस सामर्थ्य के सहारे किसी भी दिशा में प्रगति की जा सकती है।

साधना में अदृश्य शक्तियों की सिद्धियों की उपलब्धि का प्रतिपादन गलत नहीं है। ईश्वर का अनुग्रह सृष्टि के हर घटक पर अनादि काल से बरसता रहा है और अनन्त काल तक बरसता रहेगा। उसे न्यून या अधिक मात्रा में प्राप्त कर सकना अपने स्तर के अनुरूप ही हो सकता है। संसार में आहार के विपुल भण्डार भरे पड़े हैं। उन्हें प्राप्त करने की सभी को सुविधा है। किन्तु चींटी अपने स्तर की मात्रा में सामग्री प्राप्त कर लेती है और हाथी को अपने काम के पदार्थ अपनी आवश्यकता अनुसार मिलते रहते हैं। सृष्टा के अनुग्रह और अनुदान में कोई कमी नहीं। उससे याचना करने की आवश्यकता नहीं। पात्रता सिद्ध कर देना भर पर्याप्त है। प्रार्थना का, साधना का उद्देश्य इसी पात्रता का अभिवर्द्धन है।

पेड़ अपनी आकर्षण शक्ति से बादलों को खींचते और बरसने के लिए विवश करते हैं। पौधों पर ओस के कण जमा होते हैं। खदानें अपने सजातीय कणों को दूर-दूर तक आमंत्रण भेजती हैं और उन्हें अपने निकट खींच बुलाती हैं। यह चुम्बकत्व है, जो जहाँ जितना अधिक होता है, सजातियों को उसका उसी स्तर का आह्वान आमन्त्रण मिलता है। फलतः वे

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उसी गति से दौड़े चले आते हैं। खिलते फूल का चुम्बकत्व मधुमक्खियों, तितलियों और भौंरों को न्योत बुलाता है। खिलते हुए यौवन से अनेकों आँखें अनायास ही आकर्षित होती हैं। प्रतिभा अनेकों को प्रशंसक एवं अनुयायी बनाती हैं। यह चुम्बकत्व के चमत्कार हैं। साधक का चुम्बकत्व दैवी शक्तियों को अदृश्य रूप में आमन्त्रण करता है और उन्हें अनुग्रह बरसाने के लिये सहज सहमत करता है।

भौतिक प्रगति के उदाहरण आये दिन सामने आते रहते हैं। इसलिए उन्हें सामान्य एवं लौकिक माना जाता है और सफलतायें कहा जाता है। आत्मिक प्रगति की दिशा में लोगों का ध्यान कम है। उस दिशा में प्रयत्न या तो होते ही नहीं, होते हैं, तो अवैज्ञानिक स्तर के, फलतः आकस्मिक विभूतियाँ कभी-कभी ही कदाचित् किसी के पास दीख पड़ती हैं। जो असाधारण तथ्य यदाकदा ही दृष्टिगोचर होते हैं, वे कौतूहल की तरह देखे और चमत्कार कहे जाते हैं। आत्मिक साधनाओं का फल चमत्कार समझा जाता है और उसे 'सिद्धि' नाम दिया जाता है। वस्तुतः आत्मसाधना के आधार पर आत्मचेतना की गहरी परतों को उभारने की प्रसुप्त शक्तियों के जागरण की प्रक्रिया सम्पन्न होती है और उसके सहारे जो असाधारण स्तर के सत्परिणाम उत्पन्न होते हैं उन्हें सिद्धि कहा जाता है।

सिद्धियों की एक धारा ऊपर से, बाहर से बरसती है और दूसरी नीचे भीतर से उभरती है। दैवी अनुग्रह से अनेकों लाभान्वित होते हैं। ठीक उसी प्रकार आत्मोत्कर्ष की प्रक्रिया द्वारा प्रसुप्त क्षमताओं का जागरण होता है, तो उनके साथ ही वे विभूतियाँ प्रकट होती हैं, जिनसे सामान्य ज्ञान वंचित ही नहीं, अपरिचित भी बने रहते हैं। मनुष्य के भीतर बहुत कुछ है। इतना कुछ जिसे सृष्टा की सामर्थ्य के समतुल्य भी कहा जा सकता है। वृक्ष का विशालकाय ढाँचा छोटे से बीज में सुनिश्चित रूप से विद्यमान रहता है। सौरमण्डल की समस्त प्रक्रिया सूक्ष्म रूप में नन्हें से परमाणु में यथावत गतिशील रहती है। जड़ें नीचे से रस खींचती और पेड़ के कलेवर को हरा-भरा, पुष्पित, फलित बनाने के सारे सरंजाम जुटाती हैं। यद्यपि वे आँखों से दीखती नहीं, जमीन में दबी रहती हैं तो भी जानकारों को पता रहता है कि पेड़ तो मात्र कलेवर है, उसकी शोभा समर्थता का स्रोत तो अदृश्य जड़ों में ही पूर्णतया सन्निहित है। जीव का छोटा अन्तराल लगभग उतना ही समर्थ है जितना कि ब्रह्म का विराट विस्तार। व्यक्ति भीतर से ही उगते हैं। बाहर तो उस अन्तरंग प्रगति का प्रमाण परिचय भर मिलता है।

जीव की प्रसुप्त शक्तियाँ भीतर से उभरती हैं। उनके उफनने पर उसी तरह की प्रवाह धारा बहने लगती है, जैसे कि यमुना, नर्मदा, चम्बल आदि कुण्डों में से निकलकर भूतल पर प्रवाहित होती है। निर्झर भी ऊपर से नीचे गिरते और भूमि पर गतिशील होते देखे जाते हैं। यह दोनों ही सौभाग्य हर किसी के लिये सहज सुलभ हैं। पात्रता का परिचय देकर इस संसार के विभिन्न बाजारों से कुछ भी कितनी ही मात्रा में खरीदा जा सकता है। मण्डी में पैसे की तूती बोलती है। धनवान इच्छा अनुसार किसी भी स्तर के सुविधा साधन कितनी ही मात्रा में खरीद सकते हैं। इसी प्रकार बलिष्ठता, बुद्धिमता, प्रतिभा आदि सामर्थ्यों के भी अपने-अपने क्षेत्र हैं और उनमें उपलब्धियाँ प्राप्त करने वाले अपनी योग्यता एवं तत्परता के अनुरूप जो चाहें सो, जितना चाहें सो खरीद सकते हैं। जिनकी जेब खाली है, जो अशक्त, अकर्मण्य हैं, उन्हें बड़े मनोरथ करने में भी निराशा का कष्ट सहना पड़ता है। मिलना तो उन्हें है ही क्या? प्रार्थना याचना करते रहने पर भी उनके पल्ले 'न कुछ' ही पड़ता है। समर्थता ही वह पूँजी है, जिसे विभिन्न उपलब्धियों को खरीद सकने वाली पात्रता कह सकते हैं। इस बहुमुखी पात्रता का उपार्जन पुरुषार्थ ही साधना है।

साधना से सिद्धि का सिद्धान्त सुनिश्चित है। भौतिक क्षेत्र में अपने-अपने प्रसंग में साधनारत पुरुषार्थी अभीष्ट मनोरथ पूरे करते देखे जाते हैं। आत्मोत्कर्ष भी चेतनात्मक विभूतियाँ अर्जित करने की ही एक विशिष्ट प्रक्रिया है। उसमें सफलता प्राप्त करने का सिद्धान्त भी वही है, जो भौतिक सफलताओं पर लागू होता है। साधक जीवन देवता की साधना करते हैं। उसके अन्तरंग और बहिरंग दोनों पक्षों को समुन्नत बनाते हैं। सामान्य स्थिति में यहाँ सब कुछ अनगढ़ रहता है। उत्कृष्टता, दृष्टिकोण एवं पुरुषार्थ उसे सुन्दर सुव्यवस्थित बनाता है। झाड़ियों के स्थान पर उद्यान उगाना, वन्य पशुओं को पालतू बनाना, अनगढ़ को सुगढ़ में परिवर्तित करना ही संस्कृति है। इसी का चमत्कार इस दृश्य जगत में सर्वत्र बिखरा पड़ा है। साहित्य ने चिन्तन को दिशा दी है। सृजन ने सुविधा साधन खड़े किये हैं। अपने आप को सद्गुणों की सम्पदा से लदा हुआ कल्पवृक्ष बना लेना, यही साधना का उद्देश्य है।

जीवन प्रत्यक्ष देवता है। उसकी साधना कर सकने वाले सुनिश्चित रूप से भौतिक सिद्धियाँ और आत्मिक ऋद्धियाँ उपलब्ध करते हैं। दूसरे भ्रमग्रस्त तो कल्पित देवी-देवताओं के सामने नाक रगड़ते, मनुहार करते, दाँत निपोरते और अन्ततः निराश होकर खीजते, अनास्था व्यक्त करते देखे जाते हैं। विवेकवानों को वास्तविकता ही वरण करनी चाहिये भले ही वह कठोर या कष्ट-साध्य ही क्यों न हो ? सस्ते का लोभ आमतौर से निराशा ही पल्ले बाँधता है। निराशा ही नास्तिकता है। कम दाम में बहुमूल्य वस्तुएँ पाने वाले आरम्भ में भले ही आस्तिक दीखें अन्ततः वे नास्तिक बनकर ही रहते हैं। क्योंकि नियति की व्यवस्था किसी आतुर-लालची की इच्छानुसार नहीं बदली जा सकती। प्रतिभा अर्जित किये बिना, पुरुषार्थ का मूल्य चुकाये बिना बहुमूल्य सफलतायें यदि ऐसे ही पूजा-पाठ जैसे 'शार्टकटों' से मिल जाया करें, तो फिर संसार में एक भी मनुष्य व्यक्तित्व उभारने और उत्कृष्टता अपनाने का दुस्साहस न करेगा। जीवन ही देवता है। इसे जितनी जल्दी जितनी गहराई से समझा जा सके उतना ही उत्तम है। जो इस सन्तान सत्य को जितनी जल्दी अंगीकार, हृदयंगम कर सकें, उन्हें उसी श्रेणी का बड़भागी कहा जायेगा। क्योंकि मनुष्य जन्म के साथ जुड़े हुए अनेकानेक उपहारों से लाभान्वित होने का अवसर मात्र ऐसे ही लोगों को मिलता रहा है। भविष्य में भी उन्हीं के लिये सुनिश्चित रहेगा।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

'साधना से सिद्धि' का अकाट्य एवं शाश्वत सिद्धान्त

सामान्य जन, अनेकानेक क्षुद्र योनियों के कुसंस्कारों से लदे होते हैं। शिश्नोदर परायण पशु प्रवृत्तियों में ही उनका मन रमता और प्रयत्न चलता है। इस स्तर से उबर कर मानवी गरिमा के क्षेत्र में प्रवेश करने की प्रक्रिया अध्यात्म तत्त्वज्ञान और साधना विधान के सहारे ही सम्भव होती है। उसका आलोक अन्तराल में प्रवेश करता है तो पुण्य परमार्थ की दो प्रवृत्तियाँ उभरती हैं पुण्य अर्थात् आत्मसंयम, परमार्थ अर्थात् सत्प्रवृत्ति सम्वर्धन में उत्साह। इन्हीं के समन्वय को देवत्व कहते हैं। महामानवों का यह कार्य क्षेत्र है। उनकी विचारणा एवं तत्परता इन्हीं दो प्रयोजनों पर केन्द्रित होती है। फलतः वे स्वयं कृतकृत्य होते हैं और अपने सम्पर्क क्षेत्र में शालीनता का वातावरण उत्पन्न करने में चन्दन वृक्ष का उदाहरण बनते हैं। यह अध्यात्म क्षेत्र ही देव मानवों की, नर-रत्नों की खदान है। इस विद्या का जब जितना प्रचलन, विस्तरण होता है तब उसी अनुपात से वैयक्तिक प्रखरता और सामूहिक समर्थता की अभिवृद्धि होती है। सर्वतोमुखी प्रगति का पथ-प्रशस्त होता है। चेतना में उत्कृष्टता का स्तर बढ़ने से स्वल्प साधनों को मिल-बाँटकर खाया और सन्तोषपूर्वक रहा जा सकता है। जबकि इसमें कमी पड़ने पर लोग आपस में टकराते और नारकीय दुष्प्रवृत्तियों से सर्वत्र अशान्ति उत्पन्न करते हैं। भले ही सम्पदा के पर्वत इर्द-गिर्द ही क्यों न खड़े रहें।

इन तथ्यों पर ध्यान देने से अध्यात्म तत्त्वज्ञान और साधन विधान की व्यावहारिक गरिमा प्रकट होती है। यह प्रतिफल ऐसे हैं, जिन्हें अपनाये जाने पर मनुष्य में देवत्व का उदय होना निश्चित है। जहाँ सज्जनता बढ़ेगी वहाँ अपनी इसी धरती पर स्वर्ग जैसा वातावरण बिखरा-बिखरा फिरेगा। यही है अध्यात्म की विभूतिवान परिणति, जिसके लिए उसे विचारशीलों द्वारा असाधारण महत्त्व दिया गया है और उसके महात्मों का वर्णन अलंकारिक आकर्षणों सहित व्यक्त किया है।

इसे दुर्भाग्य ही कहना चाहिये कि चेतना को नरक से उबार कर स्वर्ग में पहुँचाने वाली इस विधा को जादूगरी बाजीगरी की पंक्ति में बिठा दिया गया है। प्रचलन में अध्यात्म का अर्थ कौतुक, कौतूहल, चमत्कार जैसा माना जाता है और उस आधार पर छुटपुट-सी हेराफेरी करने पर विपुल सम्पदाएँ, मनमानी सफलताएँ पाने का सपना देखा जाता है, अकर्मण्य लोग पुरुषार्थ के बल पर वैभव खरीदने में सफल नहीं होते तो इन हथकण्डों के सहारे सम्पत्तिवान और यशस्वी बनने की बात सोचते हैं। कइयों को चित्र-विचित्र दृश्यों के देखने की बाल-सुलभ उत्सुकता रहती है। कोई देवी-देवताओं को अपने इर्द-गिर्द नाचने-कूदने का दृश्य देखना चाहते हैं। कुछ की कुण्डलिनी सर्पिणी की फुसकार सुनने, आँखों के आगे आज्ञाचक्र घूमने, आकाश से पुष्प-वर्षा होने जैसे कौतूहलों का मजा लूटने की इच्छा रहती है। कुछ हवा में हाथ मारकर इलाइची, जलेबी आदि मँगाने और उन मुफ्त की वस्तुओं का स्वाद चखना चाहते हैं; संक्षेप में यही है ऋद्धि-सिद्धि का कौतुक कौतूहल, जिसके आधार पर किसी को गढ़ा खजाना बता देने का प्रलोभन और किसी को मरण मोहन का भय दिखाकर अँगुली के इशारे पर नचाया जाता है। कुछ देवताओं के सोल ऐजेन्ट बनते हैं और कुछ भविष्यवक्ता भाग्य विधाता होने का दावा करते हुए अपने को सिद्ध पुरुष के रूप में चमत्कारी घोषित करते हैं। अब अणिमा, महिमा जैसी हवा में उड़ने, पानी पर चलने और अदृश्य बनने जैसी करामातों के दावेदार तो नहीं रहे, पर बाजीगरों की तरह बालों में से बालू निकालने वालों की अभी भी कमी नहीं है। आश्चर्य होता है कि यह सारा भ्रम-जंजाल अध्यात्म के साथ कैसे जुड़ गया। देवता के साथ मलीनता का यह अम्बार किस प्रकार चिपक गया ?

अध्यात्म क्षेत्र के साधकों को जहाँ दूरदर्शी, विवेकवान होना चाहिए था। तथ्य और सत्य की परख में रस लेना चाहिए। संयमी और परोपकारी जैसी प्रवृत्ति से उन्हें विभूतिवान रहना चाहिए था। वहाँ मुफ्त में मनोकामनाएँ पूरी कराने और कौतूहल देखने की ललक से उनका मनःक्षेत्र किस कारण इतना दिग्भ्रान्त और कलुषित हो गया ? पुरातन उदाहरणों में अध्यात्म क्षेत्र के साधक और प्रवक्ता ऋषि स्तर के ही दीख पड़ते हैं। उन्हें ऋषि कल्प जीवनयापन करते और अहिर्निश लोक सेवा में प्राण-पण से विरत पाते हैं, पर आज तो सब कुछ उल्टा है। तथाकथित साधु-सन्तों की मनःस्थिति और परिस्थिति को कसौटियों पर कसने से प्रतीत होता है कि महानता के साथ-साथ प्रवंचना और विडम्बना ने बुरी तरह आधिपत्य जमा रखा है।

चमत्कारवाद की घुसपैठ इस क्षेत्र में कैसे हुई ? इसका आधार तपश्चर्या के आगार पर उपलब्ध होने वाली अतीन्द्रिय क्षमता के साथ जुड़ता या दीखता है। अन्तराल की गहन परतों में साधना के आधार पर प्रवेश करने वाले निस्सन्देह अतीन्द्रिय क्षमताएँ अर्जित करते रहे हैं। अति मानस का निखार होने पर व्यक्ति अति मानव बनता है। ऐसे के पास देवोपम स्तर की क्षमताएँ होनी चाहिए। होती भी हैं पर प्रश्न यह है कि उनका प्रदर्शन कौतुक-कौतूहल प्रदर्शित करने के लिए क्यों है ? क्यों न उस विशिष्टता के आधार पर लोकमंगल की सामयिक एवं महत्त्वपूर्ण आवश्यकताओं को पूरा किया जाये। पुरातन काल की ऋषि परम्परा यही थी। आत्म बल के धनी एकोएक महामानव ने अपने उपार्जन को सत्प्रवृत्ति सम्वर्द्धन के लिए प्रयुक्त किया है। किसी को चमत्कार तमाशे नहीं दिखाये। फिर आज उस प्रदर्शन की आवश्यकता क्यों पड़ गई ?

यह तथ्य है कि किसी क्षेत्र में असाधारण पुरुषार्थ करने पर उसकी असाधारण उपलब्धि भी हस्तगत होती है। सामान्य तथा स्थूल शरीर ही व्यवहार में आता है और उससे सम्बन्धित बलिष्ठता, बुद्धिमता, सम्पन्नता, प्रतिभा जैसी सम्पदाएँ उपार्जित की जाती हैं। सूक्ष्म शरीर और कारण शरीर के क्षेत्र और भी अधिक महत्त्वपूर्ण विभूतियों से भरे पड़े हैं। उनमें सृष्टा का समस्त वैभव बीज रूप से प्रतिष्ठित है। प्रयत्नकर्त्ता उस सम्पदा को कुरेदने, उभारने और बटोरने में समर्थ हो सकते हैं, अतीन्द्रिय क्षमता का भण्डार हस्तगत कर सकते हैं और देव

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

मानव स्तर के चमत्कारी सिद्ध पुरुष बन सकते हैं। अध्यात्म क्षेत्र के वरिष्ठों में ऐसी ऋद्धि-सिद्धियों के समय-समय पर दर्शन होते भी रहते हैं। इससे इतना तो सिद्ध होता है कि तपश्चर्या एवं योग साधना के सहारे सूक्ष्म शरीर और कारण शरीर की क्षमता को देवोपम स्तर तक उभारा उठाया जा सकता है।

इतना जानने वालों को इतना और भी जानना चाहिए कि जिनके पास ऐसी विभूतियाँ होंगी वे उनका प्रदर्शन कौतुक कौतूहल दिखाने जैसी आत्मश्लाघा एवं बालक्रीड़ा कभी भी न करेंगे और न ठगों की चापलूसी से प्रभावित होकर कुपात्रों की मनोकामना के निमित्त लुटाने की भूल करेंगे। उन्हें ध्यान रहता है कि इस उपार्जन का दुरुपयोग मात्र लोकमंगल एवं सत्प्रवृत्ति सम्वर्धन के निमित्त ही हो सकता है। ऐसी दशा में कौतुक देखने वालों और मुफ्त का वरदान बटोरने वालों का पक्ष हेय रहने से उन्हें निराश ही रहना पड़ता है। अध्यात्म क्षेत्र के सुसम्पन्नों में से प्रत्येक का स्तर एवं प्रयास यही रहा है। उनका उच्चस्तरीय उपार्जन व्यक्ति विशेष को इन्द्र, कुबेर बनाने का नहीं वरन् मात्र लोक मंगल के लिए नियोजित रहा है। पुरातन काल के ऋषियों से लेकर मध्यकालीन बुद्ध, शंकर, समर्थ, परमहंस, गाँधी जैसे सच्चे अध्यात्मवादी अपनी शक्ति को महान प्रयोजन में ही निरत रखे रहे हैं। सुपात्रों को सत्प्रयोजनों के लिए ही उनने अपने अनुदान हस्तान्तरित किये हैं। किसी भी लुटेरे की दाल उनके आगे नहीं गली। व्यक्तिगत सम्पन्नता पाने और गुलछर्रे उड़ाने के लिए कोई भी धूर्त उनकी जेब काट लाने में कुछ भी विडम्बना रच कर सफल नहीं हो सका। सन्त सामान्यजनों की मनोदशा मोड़ते और सुधारते हैं। सस्ती चापलूसी के बदले अपने बहुमूल्य भण्डारों को कुपात्रों को लुटाने या चित्र-विचित्र करामातें दिखाने की भूल सच्चे अध्यात्मवादियों में से आज तक किसी ने भी नहीं की है। जिनकी जेब खाली है, उन्हें ही करोड़पति जैसी शेखी बघारने और विडम्बना रचने में संलग्न देखा जाता है। विभूतिवान जिस घोर तप साधना से सिद्धियों को अर्जित करते उसी जिम्मेदारी के साथ उसका उपयोग भी फूँक-फूँक कर करते हैं। लुटाने का पाखण्ड रचने वालों में से शत-प्रतिशत ढपोर शंख ही होते हैं।

अतीन्द्रिय क्षमताओं की ऋद्धि-सिद्धियाँ, ऋषि स्तर के विशिष्ट व्यक्तियों के पास ही होती हैं और उनका प्रयोग विशिष्ट प्रयोजनों के लिए ही होता है। सार्वजनीन सिद्धियाँ वस्तुतः तीन ही हैं—(१) आत्मसन्तोष, (२) जनसहयोग, (३) दैवी अनुग्रह। इन तीनों को हर कोई सच्चा अध्यात्मवादी हाथों हाथ प्राप्त करता है। उनके महत्त्व प्रतिफल का रसास्वादन करते हुए अपने आपको कृतकृत्य अनुभव करता है। यह सिद्धियाँ ऐसी हैं जिन्हें पारस, कल्पवृक्ष और अमृत की उपमा निःसंकोच दी जा सके।

आत्मसन्तोष के लिए ही लोग दिन-रात श्रम करते और भले-बुरे कामों में हाथ डालते हैं। सम्पन्नता, बुद्धिमत्ता, प्रतिभा कितनी ही अधिक अर्जित करने पर उनका लाभ शरीर भर को मिलता है। आत्मा की क्षुधा पिपासा आन्तरिक उत्कृष्टता एवं उदार सेवा, साधना से ही तृप्त होती है। सच्चे अध्यात्मवादी को इन्हीं दो प्रयत्नों में सर्वतोभावेन निरत होना पड़ता है फलतः अजस्र मात्रा में आत्मसन्तोष मिलता है। जड़ें मजबूत एवं गहरी होने से ही वृक्ष सुविकसित होता है। आत्मा के समर्थन एवं आशीर्वाद से ही व्यक्तित्व की महानता उभरती है। फलतः साहस, उत्साह और संकल्प की कमी नहीं रहती। आत्मसन्तोष और आत्मबल अन्योन्याश्रित हैं। एक होगा वहाँ दूसरा भी रहेगा। अन्तर्द्वन्द्व ही आत्मबल को नष्ट करते हैं। जहाँ आत्मा और परमात्मा की व्यक्ति और आदर्श की एकता है, वहाँ हर घड़ी प्रसन्नता बनी रहेगी और उल्लास भरी उमंग उठती रहेगी।

आत्मबल संसार का सबसे बड़ा बल है। जहाँ-जहाँ होता है वहाँ अन्य बल भीतर से उपजते बढ़ते भी हैं और बाहर से खिंचते भी चले आते हैं। आत्मसम्पदा के धनी लोगों को भौतिक सम्पन्नता की भी कमी नहीं रही। जहाँ क्षुद्रता से घिरे लोग कुकर्म करते और हंस स्तर अपनाने पर भी दरिद्र उद्विग्न बने रहते हैं, वहाँ आत्मबल के धनी बुद्ध और गाँधी की तरह हर स्तर की विभूतियों से घिरे रहते हैं। यह बात दूसरी है कि वे क्षुद्रजनों की तरह अपना पराया सब कुछ उदरस्थ ही नहीं करते रहते वरन् उसे सत्प्रयोजन के निमित्त भगवान के खेत में बोते रहते हैं ताकि अदृश्य स्तर की दिव्य विभूतियों से उनका कोष हजारों गुना बढ़ता रहे। जिसे खिलाने का मजा आ गया वह खाने में कटौती करता है। ईश्वरचन्द्र विद्यासागर की तरह दूसरों को खिलाता रहता है। शबरी इसी आधार पर कृतकृत्य हुई थी। गोपियों ने यही नीति अपना कर भगवान को ललचाया और आँगन में नचाया था। क्षुद्रजन खाना ही खाना जानते हैं, जबकि महान खिलाने का आनन्द लूटते और आत्मसन्तोष आत्मबल के धनी बनते हैं।

अध्यात्म क्षेत्र की दूसरी सिद्धि है—लोक सम्मान, जनसहयोग। हर किसी की इच्छा लोक सम्मान पाने की होती है। सजधज, ठाट-बाट में ढेरों समय और धन इसीलिए लगता है कि लोगों की आँखों में चकाचौंध उत्पन्न हो, वरिष्ठता स्वीकारें, प्रभावित हों और वाह-वाह कहने लगें। इस ललक की पूर्ति के लिए मनुष्य निरन्तर लालायित रहता है। 'स्टेटस्' बनाना 'स्टैण्डर्ड मेन्टेन' करना इसी को कहते हैं। इस विडम्बना में मनुष्य का अधिक चिन्तन, श्रम एवं उपार्जन खप जाता है फिर भी पल्ले कुछ नहीं पड़ता, वरन् उल्टे ईर्ष्या का शिकार होना पड़ता है। अपव्ययजन्य तंगी और उसकी पूर्ति के लिए अनीति अपनाने का एक कुचक्र अलग ही चल पड़ता है।

अध्यात्मवादी को आत्म परिष्कार लोकमंगल में संलग्न सत्प्रवृत्तियाँ जन-जन का मन जीत लेती हैं। सहज श्रद्धा उत्पन्न करती हैं। श्रेष्ठता को सदा वरिष्ठता मिलती है और उसे हार्दिक सम्मान मिलता है। शत्रु भी उसकी प्रशंसा करते हैं। इसी आधार पर मनुष्य प्रामाणिक बनता है। जो प्रामाणिक है, उसे भरपूर सम्मान मिलता है। यह तथ्य भी स्मरण रखने योग्य है कि सम्मान के साथ सहयोग भी जुड़ा हुआ है। जो जिसकी इज्जत करेगा उसका अनायास ही सहयोग करेगा, सहयोग ही वह आधार है जिसके सहारे बहुमुखी प्रगति के पथ पर अग्रसर होना किसी के लिए सम्भव होता है। महामानवों को सफलताएँ इसी आधार पर सम्भव हुई हैं। उन्होंने अपनी टाँगों से छलांग नहीं लगाई वरन् लोगों ने कंधों पर बिठाकर उन्हें ऊँचा उठाया

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

और सफल बनाया है। इस स्तर की सफलता भले ही आँखों से तत्काल प्रत्यक्ष न दीखती हो, पर उसकी परोक्ष परिणति को तनिक-सी गहराई में उतरने पर सहज ही जाना परखा जा सकता है। इस स्तर की सफलताओं को सच्चे अर्थों में सिद्धि कहा जा सकता है। इससे अपना ही नहीं दूसरे असंख्यों का भी भला होता है। अगणितों को अनुकरण की प्रेरणा मिलती है और वातावरण में उत्कृष्टता का पक्षधर उभर आता है।

दैवी अनुग्रह तीसरी सिद्धि है। सत्प्रयोजन में आमतौर से सर्वसाधारण का व्यंग, उपहास, असहयोग विरोध ही रहता है। प्रचलन के विपरीत कदम बढ़ाने वाले के मार्ग में लोग पग-पग पर अड़ंगे अटकाते, निरुत्साहित करते और विपरीत परामर्श देते हैं। ऐसी दशा में श्रेय पथ के पथिक को आत्मविश्वास के सहारे एकाकी आगे बढ़ना होता है। स्पष्ट है कि विरोध में सारा वातावरण और प्रयास में साधन रहित एकाकी। फिर सफलता कैसे मिले ? इस सन्दर्भ में सदा दैवी शक्तियाँ सहायता करतीं और प्रतिकूलता में अनुकूलता से बदलती देखी गई हैं। इन्हीं के समर्थन से आदर्शवादी संकल्प को स्थिर रखने एवं साहस बनाये रहने में समर्थ होता है। आदर्शवादियों की सफलता का यही परोक्ष इतिहास है। उन्हें दैवी अनुग्रह के सहारे ही भँवरों को पार करते हुए पार पहुँचने का सौभाग्य मिला है। इतना ही नहीं उन्होंने अपनी नाव खेते हुए अगणित अन्यान्यों को भी पार उतारा है।

अणिमा, महिमा, लघिमा आदि सिद्धियाँ सम्भव हैं या नहीं ? चमत्कार दिखाने और निहाल बनाने की जादूगरी का अध्यात्म से कोई सम्बन्ध है, या नहीं ? इसका निर्णय हर विज्ञजन को अपने विवेक से करना चाहिये। किन्तु इस तथ्य को निश्चित रूप से गिरह में बांध लेना चाहिए कि अध्यात्म मार्ग का अवलम्बन करने पर व्यक्तित्व में उत्कृष्टता के अभिवर्द्धन का जो लाभ मिलता है, उसके सहारे आत्मसन्तोष, जन सहयोग एवं दैवी अनुग्रह की अजस्र वर्षा निश्चित रूप से होती है।

साधना विज्ञान की तात्त्विक पृष्ठभूमि

आध्यात्मिक दृष्टि से मानवी सत्ता का विश्लेषण किया जाये, तो उसे तीन भागों में विभक्त किया जा सकता है। पहला—अस्थि, माँस का पंचतत्त्वों का बना पिण्ड जिसे स्थूल शरीर कहते हैं। ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियों के द्वारा इसके माध्यम से विविध-विधि क्रियायें सम्पन्न की जाती हैं। दूसरा—मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार द्वारा बना, शब्द-रूप-रस-गन्ध-स्पर्श की तन्मात्राओं से विनिर्मित अनुभूतियों, इच्छाओं और प्रेरणाओं का आधार सूक्ष्म शरीर जिसे 'माइण्ड' या ज्ञान संस्थान भी कहते हैं। तीसरा—आस्थाओं, मान्यताओं, आकांक्षाओं का उद्गम। जीवन की दिशाओं का निर्धारण करने वाला कारण शरीर जिसे अन्तरात्मा अथवा अन्तःकरण भी कहते हैं। भाव-सम्वेदनाएँ, उच्चस्तरीय आवेग यहीं जन्म लेते हैं। संक्षेप में, इन तीनों को क्रमशः क्रियाशक्ति, ज्ञानशक्ति और इच्छाशक्ति का उद्गम केन्द्र कह सकते हैं। इन तीनों का समन्वित रूप ही मानवी सत्ता है।

साधना की दृष्टि से इन तीनों की विवेचना आवश्यक है। जब तक संरचना का ज्ञान न होगा—प्रतिक्रियाओं व परिणति की जानकारी कैसे होगी ? इसी कारण साधना-विधान के विस्तार में जाने वाले साधकों को पहले 'स्प्रिचुअल एनॉटामी' की जानकारी करायी जाती है। साधना क्रमों का चयन इस प्रारम्भिक शिक्षण के बाद ही किया जाना उचित होता है।

तीनों शरीरों की महत्ता और सामर्थ्य अपने आप में अलग एवं अद्भुत है। स्थूल शरीर द्वारा सम्भव श्रम का मूल्य स्वल्प है। वह तो पशु व मशीनों द्वारा भी कराया जा सकता है। महत्त्वपूर्ण तो है पंचतत्वों द्वारा विनिर्मित यह कलेवर जिसके माध्यम से अन्य दो सूक्ष्म गहराई में विराजमान परतें अपनी प्रतिक्रियाएँ व्यक्त करती हैं।

सूक्ष्म शरीर वह संस्थान है, जिसको परिमार्जित, प्रखर बना कर हम वैज्ञानिक—कलाकार—विद्वान बनते हैं। बौद्धिक क्षमता के उपार्जन से धन-यश, सम्मान प्राप्त करते हैं। वासना-तृष्णा का उद्भव इसी में होता है। तरह-तरह की महत्त्वाकांक्षाओं को पूर्ण करने वाला ताना-बाना यहीं बुना जाता है। 'माइण्ड' रूप में विद्यमान इसी चेतन परत को विकसित कर बुद्धिमान, दूरदर्शी, कला-कौशल सम्पन्न बना जाता है।

इन दोनों से ऊँची परत है—कारण शरीर की। यह सबसे शक्तिशाली स्तर है। यहाँ आस्थाएँ, मान्यताएँ, विश्वासों की गहरी परतें जमा होती हैं। सम्वेदनाएँ यहीं जन्म लेती हैं। शौर्य, साहस एवं आदर्शवादी—प्रेरणाओं का उभार इसी क्षेत्र में होता है। अपने आत्म-स्वरूप का निर्धारण—आध्यात्मिक जीवन की रीति-नीति अभिरुचियों का नियोजन यहीं होता है। व्यक्तित्व का निर्धारण और निखार यहीं से सम्भव होता है। इसी केन्द्र के उत्थान या पतन पर व्यक्तित्व का समुन्नत बनना अथवा गिरना सम्भव हो पाता है। आध्यात्मिक मनोविज्ञान की दृष्टि से यही जीवन चेतना का केन्द्र है। आस्थाओं की जैसी परत यहाँ चढ़ी होती है, उसी प्रकार गतिविधियों का संचालन मन व शरीर द्वारा सम्भव हो पाता है।

आमतौर से ध्यान शरीर पर दिया जाता है। खाने-पीने-सोने से लेकर तरह-तरह के इन्द्रिय उपभोगों से इसी पिण्ड को सन्तुष्ट करने का प्रयास किया जाता है। रुग्ण व स्वस्थ यही होता है। बहिरंग में सुन्दर व कुरूप यही नजर आता है, अतः स्थूल दृष्टि इसे सुन्दर-स्वच्छ, समुन्नत बनाने में नियोजित होती है। निम्न वर्ग के व्यक्ति अपनी गतिविधियों को इसी शरीर तक केन्द्रित रखते हैं। **'यावज्जीवेत् सुखं जीवेत्'** का सिद्धान्त ही उनके लिये अनुकरणीय होता है।

जिनका चेतना स्तर मध्यवर्ती विकास तक पहुँच चुका होता है, उनको मस्तिष्कीय विकास का महत्त्व समझ में आता है। वे शिक्षार्जन, बुद्धि-कौशल उपार्जन व ज्ञान सम्पादन में रुचि लेते हैं। विद्यालयीन शिक्षा से लेकर सामान्य जीवन व्यवहार का ज्ञान, सत्संग स्वाध्याय द्वारा ज्ञानवृद्धि कर वे सम्मान, नेतृत्व पाते हैं, यशस्वी बनते हैं। उनकी महत्वाकांक्षाएँ इसी उद्देश्य की पूर्ति तक सीमित रहती हैं। इसी कारण मस्तिष्क विकास के जितने भी विनोदात्मक सम्वर्द्धनात्मक, उपभोगात्मक तरीके उपलब्ध हो सकते हैं, उसे वे जुटाते रहते हैं। जीवन का

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अधिकांश समय इसी पुरुषार्थ में निकल जाता है। यह सामान्य से कुछ ऊँचे स्तर की स्थिति हुई।

तीसरा स्तर जो सर्वोच्च व शक्तिशाली है—कारण शरीर का है। इसके स्वरूप को समझना एवं परिष्कृत करने का प्रयत्न करना मात्र उच्च भूमिका में विकसित व्यक्तियों के लिये ही सम्भव हो पाता है। इस स्तर की उपयोगिता—महत्ता सामान्य बुद्धि के व्यक्तियों की समझ में नहीं आती, न ही उन्हें प्रत्यक्ष रूप में इसका कोई प्रतिफल ही नजर आता है। भाव सम्वेदनाएँ, आस्थाएँ ही समग्र मानवी व्यक्तित्व को दिशा देती हैं, उसका स्वरूप निखारती हैं—उच्चस्तरीय चिन्तन में निमग्न होने की प्रेरणा देती हैं—यह समझना—अनुभव करना—व उस स्तर को ऊँचा उठाने का प्रयास करना, हर किसी से नहीं बन पाता। अस्तु, यह अछूता ही पड़ा रह जाता है। स्वभाव बदलता नहीं, आदतें सुधरती नहीं, पशु-वृत्तियों से मोर्चा लेते बनता नहीं व जीवन-संकट जैसे-तैसे खिंचता रहता है। ऐसे व्यक्ति भोंड़े, असभ्य कहलाते हैं व अस्त-व्यस्त असफल जीवन जीकर बहुसंख्य जीवों की तरह मृत्यु की शरण लेते हैं। अतीन्द्रिय दैवी क्षमताओं की, सिद्धियों की, व्यक्तित्वोत्थान की चर्चाएँ जो भी सुनी जाती हैं, वे इसी 'कारण शरीर' के विकासोन्मुख उभार हैं। पाश्चात्य विज्ञान के ज्ञाताओं ने थोड़ा-थोड़ा स्पर्श मात्र इस विषय को किया है, पर वहाँ भी वे 'ऑकल्ट' का जिक्र कर चुप हो गये हैं। 'मिस्टीसिज्म' नाम से जाना जाने वाला यह विषय उतना ही स्पष्ट एवं खुला हुआ है, जितने भौतिकी के अन्य अध्याय। पर स्वरूप की सही जानकारी के अभाव में उथले प्रयत्नों को ही समग्र मान उनकी परिणति हुई समझ ली जाती है।

अगले दिनों जब भी साधना विज्ञान का सही स्वरूप लोगों की समझ में आयेगा तो वे जानेंगे कि मानवी सत्ता के इस मूल आधार को विकसित करने पर शारीरिक कायाकल्प—मानसिक प्रत्यावर्त्तन एवं अतिसूक्ष्म स्वर्ग और मुक्ति जैसे दिव्य वरदानों से लाभान्वित हुआ जा सकता है। व्यक्ति स्वयं को लघु से महान्, नर से नारायण एवं आत्मा से परमात्मा बना सकता है। सारे महामानव अपने इसी आस्था संस्थान को परिष्कृत समुन्नत बनाकर ऊँची स्थिति पर पहुँच पाये हैं।

अध्यात्म विज्ञान भारतीय संस्कृति की अमूल्य सम्पदा व विश्व को एक बहुमूल्य देन है। साधना विधान का जो स्वरूप पूर्व में प्रचलित था उसके अनुसार हठयोग द्वारा स्थूल शरीर का—राजयोग से सूक्ष्म शरीर अथवा मनस का एवं ब्रह्मयोग द्वारा अन्तःकरण का परिशोधन-परिमार्जन किया जाता था। इन्हीं का व्यावहारिक स्वरूप था—कर्म, ज्ञान एवं भक्ति योग। साधनात्मक उपक्रमों की विविधताओं का विभाजन इन्हीं तीन समूहों में करके व्यक्ति-विशेष की स्थिति के अनुसार उसे मार्गदर्शन दिया जाता था। यह पुरुषार्थ साधारण स्तर का नहीं—तप अर्जित, मनोबल की शक्ति से सुपात्र बनने वाले साधक को ही प्राप्त हो पाता था। आज तो अति सुगम बनाने के चक्कर में इस अध्यात्म विज्ञान को एक षड्यन्त्र द्वारा मात्र स्थूल तक ही सीमित कर दिया गया है। यह एक शाश्वत-सनातन सत्य है कि अन्तरात्मा का गहन स्तर ही व्यक्तित्व को दिशा देता एवं समर्थ बनाता है। अतिमहत्त्वपूर्ण-अतिमानव-देवपुरुष, अग्रगामी, महापुरुष कहे जाने वाले व्यक्ति अपने इसी स्तर को दिशा विशेष में परिपुष्ट कर आगे आये हैं। जिसका यह अन्तस्, अन्तःकरण का गहनतम स्तर खोखला होगा वह बहिरंग में सम्पन्न होते हुए भी व्यक्तित्व की दृष्टि से ओछा, बौना एवं गया-गुजरा ही बना रहेगा। ऐसे व्यक्ति का वैभव उसके लिये तो अभिशाप सिद्ध होगा ही, समाज में अन्य सभी के लिये विपत्ति का कारण बनेगा।

सारे साधना उपचारों का लक्ष्य एक ही रहता है—इस मर्मस्थल अन्तःकरण की गहन परतों को स्पर्श कर—वहाँ छाये अन्धकार को मिटाना तथा उस स्थान को श्रेष्ठ तथा समुन्नत बनाना। साधना विधानों का स्तर बहिरंग से अन्तरंग तक परत-दर-परत छूने के लिये अलग-अलग होने के कारण उनके प्रकार भी भिन्न-भिन्न हैं। पर मोटा विभाजन यही है कि स्थूल शरीर की साधना व उसे उच्चस्तरीय साधना उपक्रमों के योग्य समर्थ बनाने हेतु क्रियायोग तथा सूक्ष्म एवं कारण शरीर की साधना हेतु चिन्तन-भाव सम्वेदना परक-ध्यानयोग। इन्हीं दो में सारे साधना विज्ञान का ढाँचा विभाजित हो जाता है।

अध्यात्म विद्या को भी तत्ववेत्ताओं ने इसी प्रकार चिन्तन और क्रिया के दो भागों में विभक्त किया है। चिन्तन में उत्कृष्टता का समावेश करने वाले प्रतिपादन को ब्रह्मविद्या कहते हैं। इसमें ईश्वरीय निर्देशों एवं ऋषि अनुभवों को इस प्रकार गूँथा गया है कि मानवी अन्तःकरण उसे स्वीकार कर ले। शास्त्र वचनों का स्वाध्याय, चिन्तन, मनन एवं शास्त्रज्ञों का सत्संग इसी निमित्त किया जाता है। यह अध्यात्म विद्या का तत्त्वदर्शन वाला पक्ष हुआ, जिसमें मान्यताओं की श्रद्धा-तर्क के आधार पर मान्यताओं से काट की जाती है।

दूसरा पक्ष साधना का है। सूक्ष्म जगत से, दैवी शक्तियों से, सम्पर्क का आदान-प्रदान का द्वार खोलने वाला यह प्रयास उपासना-साधना के रूप में जाना जाता है जिसमें व्यक्ति स्वयं को अनगढ़ से सुगढ़ व ईश्वर का सामीप्य पाने योग्य बनाता है।

चिन्तन परक ब्रह्मविद्या तथा साधनापरक तपश्चर्या दोनों ही तथ्यपूर्ण व महत्त्वपूर्ण हैं। एक ज्ञानपक्ष है तो दूसरा विज्ञान पक्ष। एक को ब्रह्मवर्चस् का ब्रह्म पक्ष व दूसरे को वर्चस् पक्ष कह सकते हैं। दोनों मिलकर ही सम्पूर्ण बनते हैं। ब्रह्म वर्चस् विज्ञान की इन दोनों ही विधाओं का सारे साधना उपक्रमों में समावेश रहता है। ज्ञान व विज्ञान दोनों का समन्वय क्रियायोग व ध्यानयोग में है। बिना चिन्तन में भाव सम्वेदनाओं की उत्कृष्टता उभारे तप साधना के प्रयास अधूरे व एकांगी ही बने रहेंगे। इस मूल तथ्य को सबसे पहले समझा जाना चाहिए कि उच्चस्तरीय आस्थाओं की वरीयता स्वीकार करके ही साधना पथ पर आगे बढ़ा जा सकता है।

स्थूल शरीर, सूक्ष्म शरीर व कारण शरीर, क्रियायोग व ध्यानयोग, ब्रह्मविद्या एवं साधना परक तपश्चर्या ये सभी विभाजन साधना विज्ञान की तात्विक पृष्ठभूमि को समझने के

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

लिये ही किये गये हैं। वस्तुतः इन सभी के पीछे तथ्य एक ही है कि समस्त साधना उपक्रमों का लक्ष्य एक ही हो। अन्तःकरण मर्मस्थल को स्पर्श करने वाली आस्थाओं का उन्नयन, मान्यताओं का परिष्कार-परिमार्जन, प्रसुप्त पड़ी क्षमताओं का जागरण तथा देवपुरुष-ऋषि-महामानव बनने की दिशा में चिन्तन एवं क्रिया का सुनियोजन। इस लक्ष्य की पूर्ति में आप्त वचनों के अतिरिक्त सुनियोजित मार्गदर्शन की समय-समय पर आवश्यकता पड़ती है। इसीलिये तत्त्वदर्शन व चिन्तन के रूप में आत्म तत्त्व रूपी सद्गुरु अथवा आत्मबल सम्पन्न व्यक्ति काया में विद्यमान प्रत्यक्ष गुरु की सहायता ली जाती है। गुरु उस सद्गुरु से दिशा निर्देश प्राप्ति में सहायता करता है व पात्रता के अनुरूप अपनी शक्ति का एक अंश भी साधक को देता है। परन्तु वास्तविक सहायता उसी आत्मतत्व से मिलती है जिसे अपने अन्तस् में जगाया जाता है। यदि आत्मतत्व परिष्कृत—जागा हुआ न हो तो गुरु कृपा भी सूखी चट्टान पर बरसे वर्षा जल की तरह निरर्थक चली जाती है।

अपने आप को परिष्कृत करने, जगाने की, जो साधना की जाती है उसमें ध्यान-धारणा का महत्त्वपूर्ण स्थान है। अपने चिन्तन को इधर-उधर भटकने से रोक कर उत्कृष्ट प्रवाह के साथ जोड़ देना उसी प्रकार है जैसे--अपने अन्दर के 'क्रिस्टल' को 'ईथर' में संव्याप्त तरंगों को ग्रहण करने योग्य बना लेना व आदान-प्रदान का क्रम आरम्भ कर देना। सद्भाव सम्वर्द्धन-श्रद्धा अभिवर्द्धन हेतु ध्यानयोग से श्रेष्ठ कोई साधना नहीं। सोऽहं की हंसयोग साधना, नादयोग, त्राटक, बिन्दु, अवतरण एवं चक्र भेदन इत्यादि साधनाएँ मूलतः ध्यान परक हैं। इन सभी में अपने चिन्तन को ध्यान प्रक्रिया द्वारा उत्कृष्टता से जोड़ने व उस महत् तत्त्व से प्राप्त प्राणशक्ति से प्रसुप्त को जगाने-उभारने का पुरुषार्थ किया जाता है। साधना चेतन क्षेत्र का ऐसा व्यवसाय है जिसमें पुरुषार्थ की तुलना में लाभ की मात्रा अत्यधिक है। पूँजी परिश्रम और अनुभव के आधार पर संसार के सभी व्यवसाय चलते हैं और परिस्थिति के अनुरूप उनसे लाभ भी मिलता है। साधना व्यवसाय इन सबसे सरल और फलप्रद है। उसमें न बाहर की सहायता अपेक्षित होती है, न साधन जुटाने पड़ते हैं और न परिस्थितियों के अनुकूलन की प्रतीक्षा करनी पड़ती है। अपने आप को समझा लेने और सुधार लेने भर से वह प्रयोजन पूरा हो जाता है जिसमें लाभ ही लाभ है। वह भी इतना असाधारण जिस की तुलना में अन्य सभी व्यवसायों का लाभांश हलका पड़ता है। दूरदर्शी सदा से साधना व्यवसाय की महत्ता समझते उसे प्रमुखता देते और समुचित लाभ उठाते रहे हैं। प्रगति शीलता में रुचि लेने वाले प्रत्येक जागरूक को लाभदायक व्यवसायों में से चुनाव करते समय साधना को प्रमुखता देने में ही बुद्धिमानी प्रतीत हुई है। आज भी उसी राजमार्ग का अनुसरण सबसे अधिक दूरदर्शिता पूर्ण है।

सामान्य स्थिति में हर वस्तु तुच्छ है। पर यदि उसे उत्कृष्ट बना लिया जाये, उसकी सूक्ष्मता तक प्रवेश पा लिया जाये तो उससे ऐसा कुछ मिलता है जिसे विशिष्ट और महत्त्वपूर्ण कहा जा सके। समुद्र में खारी पानी भरा पड़ा है पर उसकी गहराई में उतरने वाले मणि मुक्तक ढूँढ़ लेते हैं और उस निरर्थक दीखने वाले जलाशय को रत्नाकर के रूप में सम्पदा का भाण्डागार पाते हैं। बात दोनों ही की सही है उथली दृष्टि से खारे पानी का गड्ढा बेकार इतनी जमीन घेरे हुए है। सूक्ष्म दृष्टि से देखने पर समस्त भूमण्डल को सुख वर्षा के रूप में जीवन रस देने वाला वही प्रतीत होता है। खनिज पदार्थ जब भूमि से निकलते हैं, तो धूल मिश्रित अनगढ़ होते हैं, उस रूप में उनका कोई उपयोग नहीं। किन्तु जब उन्हें परिशोधित करके धातुओं के रूप में बना लिया जाता है तो अति महत्त्वपूर्ण उपकरण बनाने में उनकी उपयोगिता सराहते ही बनती है। पानी भाप बनता है और प्रचण्ड शक्ति के रूप में प्रकट होता है। धूल के छोटे-छोटे घटकों में प्रचण्ड अणुशक्ति पाई जाती है। स्थूल से सूक्ष्म में जितना गहरा उतरा जाता है, उतने ही रहस्मय तथ्यों का उद्घाटन होता जाता है। उसी 'साधारण' में दृश्य जगत के विज्ञानी पर्यवेक्षकों ने विलक्षण शक्तियों से भरा पूरा पाया है और उन्हें खोजते हुए सामर्थ्य के साम्राज्य पर आधिपत्य जमाया है।

जीवन मोटी दृष्टि से ऐसे ही एक खिलवाड़ है जिसे ज्यों-ज्यों करके काटना पड़ता है। निर्वाह की आवश्यकता जुटाने, गुत्थियों को सुलझाने और प्रतिकूलताओं के अनुकूलन में माथा पच्ची करते-करते मौत के दिन पूरे हो जाते हैं। अभावों और संकटों से पीछा ही नहीं छूटता। कई बार तो गाड़ी इतनी भारी हो जाती है कि खींचे नहीं खिचती है। फलतः प्रयत्न पूर्वक अथवा बिना प्रयत्न ही अकाल मृत्यु के मुँह में प्रवेश करना पड़ता है। नीरस और निरर्थक जीवन एक ऐसा अभिशाप है जिसे दुर्भाग्य के रूप में स्वीकार करना पड़ता है किन्तु लगता यही रहता है बेकार जन्मे और निरर्थक जिये पर साधारण जीवन का यही स्वरूप है जो प्रतिकूल परिस्थितियों में तो अन्य प्राणियों से भी गया बीता प्रतीत होता है।

असामान्य जीवन इससे आगे की बात है। सफल, समर्थ और समुन्नत स्तर के व्यक्ति सौभाग्यशाली दीखते हैं और उनकी स्थिति प्राप्त करने के लिए मन ललचाता है। भौतिक सम्पन्नता से सम्पन्न और आत्मिक विभूतियों के धनी लोगों की न प्राचीन काल में कमी थी और न अब है। पिछड़े और समुन्नत वर्गों के मध्यान्तर देखने से आश्चर्य होता है कि एक जैसी काया में रहने वाले मनुष्य प्राणियों की स्थिति का इतना ऊँचा और नीचा होने का क्या कारण हो सकता है। सृष्टा का पक्षपात एवं प्रकृति का अन्धेर कहने से भी काम नहीं चलता क्योंकि दोनों की सुव्यवस्थित एवं सुनियोजित सत्ता में अन्धेरगर्दी के लिए कहीं रत्ती भर भी गुंजाइश नहीं है। यदि व्यक्ति क्रम रहा होता तो ग्रह नक्षत्र अपनी धुरी पर न घूमते, परमाणुओं के घटक उच्छृंखलता बरतते और परस्पर टकराकर उसी मूल स्थिति में लौट गये होते जिसमें कि महत्त्व अपनी अविक्षात स्थिति में अनन्तकाल से पड़ा था। अन्धेरगर्दी के रहते न यह सृष्टि बन ही पाती और न एक दिन चलती ठहरती। वह सब कुछ परिपूर्ण व्यवस्था के अनुरूप चल रहा है।

फिर मनुष्यों के बीच पाये जाने वाले अन्तर का क्या कारण है। इसका सुनिश्चित उत्तर यही है कि जीवन की उथली

www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org

परतों तक ही जिनका वास्ता रहा उन्हें छिलका ही हाथ लगा किन्तु जिन्होंने गहरे उतरने की चेष्टा की उन्हें एक के बाद एक बहुमूल्य उपलब्धियाँ मिलती चली गईं। गहराई में उतरने को अध्यात्म की भाषा में साधना कहते हैं। साधना किसकी ? इसका उत्तर है जीवन की। जीवन प्रत्यक्ष कल्पवृक्ष है जो उसकी जितनी सदुपयोग साधना कर लेता है वह उतना ही कृतकृत्य बनता है। जीवन का मूल्य, महत्त्व और उपयोग न समझना ही वह अभिशाप है जिसके कारण गई बीती परिस्थितियों में दिन गुजारने पड़ते हैं। यदि स्थिति को बदल दिया जाये जीवन देवता की अनन्त सामर्थ्य तथा उसके वरदानों की असीम शृंखला को समझा जा सके तो प्रतीत होगा कि सृष्टा ने बीज रूप में वैभव का भाण्डागार इसी मानवी काय कलेवर के भीतर संयोजा हुआ था। भूल इतनी ही होती रही कि न उसे खोजा गया और न काम में लाया गया। इस भूल का परिमार्जन ही आत्म क्षार है। वह जागृति जब सक्रिय बनती है तो आत्मोत्कर्ष के लक्षण तत्काल दृष्टिगोचर होने लगते हैं। इसी आत्म परिष्कार की प्रक्रिया का नाम साधना है।

साधना से सिद्धि का सिद्धान्त अक्षरशः सत्य है। भौतिक जगत के विभिन्न क्षेत्रों में साधनारत पुरुषार्थी अनेकानेक सफलताएँ अर्जित करते देखे जाते हैं। जीवन एक ऐसा क्षेत्र है जिसे जड़-जगत के किसी भी घटक एवं वर्ग से अत्याधिक महत्त्वपूर्ण माना जा सकता है। जड़ सीमित है, चेतन असीम है। जड़ से साधन मात्र मिलते हैं। चेतन में आनन्द और उल्लास के भी भण्डार भरे पड़े हैं। साधना का एक सुविस्तृत विज्ञान है। अध्यात्म तत्व ज्ञान के अन्तर्गत उसकी व्यापक विवेचना की गई है।

साधना के अभ्यासों को देखते हुए यह भ्रम होता है कि कहीं बाहर से कुछ माँगने पाने का यह उपक्रम है। पर वस्तुतः बात ऐसी है नहीं। उपयोगी उपार्जन के लिए अपने खेत में ही फसल बोनी और काटनी पड़ती है। अपने पुरुषार्थों से ही निर्वाह होता है। बाहरी सहायता के बल पर किसका काम चला है फिर याचना पर मिलता भी किसे कितना है। बच्चे को माता का दूध उपलब्ध रहने पर भी आखिर चूसने और पचाने का पुरुषार्थ तो उसे ही करना पड़ता है। इसके बिना दयालु माता भी शिशु को अपने अनुदानों से लाभान्वित नहीं कर सकती। दैवी शक्तियों के अनुग्रह से बहुत कुछ मिलता है, यह सत्य है। पर इससे भी बड़ा सत्य यह है कि उसके लिए पात्रता उपार्जित करनी पड़ती है। इन्द्रदेव की विपुल वर्षा होते रहने पर भी न तो टीले पर जलराशि ठहरती है और न चट्टान पर हरियाली उत्पन्न होती है। इन्द्रदेव कितने ही दयालु क्यों न हों उनका अनुग्रह अभिवर्षण गहरे गढ्ढों में ही जलाशय के रूप में संग्रह होता है। उर्वर भूमि ही वर्षा से लाभान्वित होती है। हरी भरी बनती है।

पात्रता का सम्वर्द्धन ही साधना है। इसके लिए जीवन के बहिरंग को व्यवस्थित और अंतरंग को परिष्कृत करना होता है। परिष्कृति को योग और व्यवस्थिति को तप कहते हैं। साधना के वही दो क्षेत्र हैं। बहिरंग को सभ्यता की मर्यादा में करना होता है और अन्तरंग को सुसंस्कृत बनाने के लिए प्रबल पुरुषार्थ करना पड़ता है। साधना का तत्वदर्शन यही है। सरकस का पशु प्रशिक्षक अनगढ़ जानवरों को प्रशिक्षित करता है और उन्हें आश्चर्यजनक करतब दिखाने में अभ्यस्त कर लेता है। प्रकारान्तर से यही प्रक्रिया जीवन सम्पदा के अनगढ़ और अव्यवस्थित स्वरूप को सुव्यवस्थित और समुन्नत बनाने के लिए करनी पड़ती है। साधना के समस्त उपचार इसी प्रयोजन के लिए सृजे गये हैं।

साधना का उद्देश्य और स्वरूप समझा जाय

पदार्थों के अनगढ़पन को दूर करके उन्हें सुव्यवस्थित बनाने का कार्य विज्ञान ने किया है। यदि यह प्रयास न किये गये होते तो मनुष्य आज भी बन्दरों जैसी जिन्दगी जी रहा होता और यह धरती उतनी ही असुन्दर रही होती जितनी कि सृष्टि के आरम्भिक दिनों में थी। मनुष्य के आहार-विहार को, रहन-सहन एवं रीति-नीति को सभ्यता एवं संस्कृति के अन्तर्गत सुव्यवस्थित बनाया गया है। शिक्षा, चिकित्सा, कला, शिल्प, उद्योग, विज्ञान, समाज, शासन की सुव्यवस्था ने मनुष्यों को सुव्यवस्थित रीति से रहने और सुनियोजित पद्धति से विकसित होने का अवसर दिया है। इन प्रयासों को भौतिक प्रगति की साधना कहा जा सकता है। यदि यह सब न बन पड़ा होता तो आदिमकाल के पिछड़ेपन से आगे बढ़ सकने का अवसर कदाचित अभी तक भी न आ पाता।

आत्मचेतना के स्वरूप, उद्देश्य और दिशा धारा के निर्धारण में अध्यात्म विज्ञान के तत्व दर्शन ने भारी योगदान दिया है। नर-कीटक एवं नर-पशु के स्तर के अनगढ़ मनःस्तर को—चिन्तन को नैतिक एवं उपयोगी मर्यादाओं में बाँधने का आदर्शवादी उत्कृष्टता अपनाने के लिए उपयुक्त प्रशिक्षण ब्रह्मविद्या के अन्तर्गत किया गया है। उसी आधार पर यह सम्भव हो सका कि सामान्य स्तर का मनुष्यतनुधारी जीव अपनी प्रतिभा एवं प्रखरता को समुन्नत बनाते हुए महामानव कहलाने का अधिकारी बने। जीवात्मा से क्रमिक विकास करते हुए महात्मादेवात्मा एवं परमात्मा के स्तर तक पहुँचे। आत्मविज्ञान के अन्तर्गत चेतना को समुन्नत बनाने वाले सभी प्रयास आते हैं, उन्हें अध्यात्म साधना कहते हैं। संक्षेप में साधना भी इसी का नाम है। साधना के आधार पर मानवी चेतना मात्र जीवन निर्वाह भर के क्रियाकलापों में उलझी न रहकर उस स्तर पर पहुँच सकती है जहाँ से वह ब्रह्मसत्ता की प्रतीक प्रतिनिधि होने का दावा कर सके। उसी स्तर के अनुरूप अपने वर्चस्व का परिचय दे सके।

उपयोगिता की दृष्टि से जितना महत्त्व भौतिक प्रगति एवं व्यवस्था का है उससे अधिक महत्त्व आत्मचेतना के परिष्कार का है। पदार्थ का उपयोग तो चेतना ही करती है; यदि इस मूलसत्ता का स्वरूप ही अनगढ़ एवं विकृत बना रहा तो फिर पदार्थों का बाहुल्य होते हुए भी उनका सदुपयोग न हो सकेगा और दुरुपयोग से तो अमृत भी विष बनते देखा गया है। चेतना का स्तर ऊँचा हो तो आन्तरिक उत्कृष्टता के कारण

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

अभावग्रस्त परिस्थितियों एवं प्रतिकूलताओं के बीच रहते हुए भी हँसता-हँसाता हलका-फुलका जीवन जिया जा सकता है। इसके विपरीत अन्तःक्षेत्र में विकृतियाँ भरी रहीं, अनगढ़पन बना रहा तो फिर रावण जैसा वैभव होने पर भी नारकीय दुर्गति का वातावरण बनेगा। अस्तु, विचारशीलों की भौतिक प्रगति के लिए किये गये साधना प्रयासों की तुलना में आत्मिक प्रगति के लिए किये जाने वाले पुरुषार्थ को असंख्य गुना महत्त्वपूर्ण बताया है।

ईश्वर का अविनाशी अंश होने के कारण जीव में अपने पिता की सभी विशेषताएँ विद्यमान हैं। छोटे से शुक्राणु में समूचे मनुष्य का परिपूर्ण ढाँचा विद्यमान रहता है। परमाणु के घटकों में पूरे सौर-मण्डल स्तर की गतिविधियाँ काम कर रही होती हैं। बीज में समूचे वृक्ष का ढाँचा विद्यमान रहता है। इस अखिल ब्रह्माण्ड में संव्याप्त भौतिक शक्तियों एवं आत्मिक विभूतियों का जो भाण्डागार भरा पड़ा है, वह बीज रूप में मानवी सत्ता के भीतर विद्यमान है। ब्रह्माण्ड का छोटा स्वरूप पिण्ड, मनुष्य कलेवर है। इसके गर्भ में ब्रह्म चेतना की सभी विशेषताएँ एवं क्षमताएँ प्रसुप्ति को जागृति में बदला जा सकता है। सामान्य से असामान्य बन सकने की इस प्रक्रिया को आत्मसाधना का एक अङ्ग कहा जा सकता है। अतीन्द्रिय क्षमता का विकास—अलौकिक ऋद्धि-सिद्धियों का दिव्य वरदान इसी प्रक्रिया के अन्तर्गत आता है।

आत्मसाधना भारतीय विज्ञान की भौतिक विशेषता है, इसी आधार पर इस देश के तेतीस कोटि नागरिक देव मानवों में गिने जाते थे और उनकी वह निवास स्थली भारत भूमि 'स्वर्गादपि गरीयसी' मानी जाती थी। श्रेष्ठ व्यक्तियों का जहाँ निवास होगा, वहाँ उत्कृष्ट परिस्थितियाँ अनायास ही बनी रहेंगी। ऐसा ही यहाँ हुआ भी है। इतिहास साक्षी है कि भारतीय नागरिकों की समुन्नत आत्मिक स्थिति ने अपनी गौरव-गरिमा का लाभ स्वयं तो लिया है—साथ ही वे उन विभूतियों से समस्त संसार का पिछड़ापन दूर करने के लिए बादलों की तरह इस धरती के कोने-कोने में परिभ्रमण करते रहे। उन्होंने सर्वत्र प्रगति और संस्कृति की वर्षा की। भौतिक और आत्मिक प्रगति के लिए आवश्यक सरंजाम खड़े किये। दूसरों को जीवन विकास के साधन उपलब्ध कराये और स्वयं श्रेयाधिकारी बने। भारत को जगद्गुरु, चक्रवर्ती, समृद्धि का स्वामी और दैवी विभूतियों का अधिपति कहा जाता था। इसमें अत्युक्ति नहीं, यथार्थता थी। जिस देश के नागारिकों के दृष्टिकोण में उत्कृष्टता और व्यवहार में आदर्शवादिता कूटकूटकर भरी हो, उसका वातावरण स्वर्ग जैसा और आचरण देवताओं जैसा होना ही चाहिए। जहाँ ऐसी स्थिति होगी वहाँ से प्रभातकालीन सूर्य की तरह सर्वतोमुखी प्रगति और सुखशान्ति का सूर्य उगेगा ही। उस आलोक में हर किसी का नवजीवन प्राप्त करना और श्रेय पथ पर चल पड़ना स्वाभाविक ही है। यह आध्यात्मिकता ही थी जिसे अपनाकर अपना देश उन्नति के उच्च शिखर पर पहुँचा और समूची मानव जाति को आगे बढ़ाने, ऊँचा उठाने का श्रेय प्राप्त किया।

अपनी—युग की सबसे बड़ी माँग यह है कि भौतिक प्रगति पर आध्यात्मिकता का अंकुश स्थापित हो। अन्यथा बढ़ा हुआ वैभव उद्दण्ड तक्षक की तरह अपने दूध पिलाने वाले को ही डस लेगा। सम्पदा और कुशलता का लाभ तभी है जब उन्हें सदुद्देश्य के लिए नियोजित किया जा सके अन्यथा उनकी विकृति विनाश के सरंजाम ही रचेगी। विज्ञान की प्रगति ने सुख-साधनों की निश्चित रूप से बृद्धि की है। यह अभिवृद्धि जहाँ सुखद है वहाँ निरंकुश बनते जाने के कारण एक भयावह समस्या भी है। उद्ज्ञान सम्वर्द्धन से ही इसका सन्तुलन बैठेगा। विज्ञान और तत्व ज्ञान के सन्तुलित पहिये ही प्रगति रथ को सुनियोजित रूप से आगे बढ़ा सकने में समर्थ होंगे। यह प्रयोजन अध्यात्म विज्ञान के प्रति उसी स्तर की अभिरुचि उत्पन्न करने से सम्भव होगा जैसी कि इन दिनों भौतिक उपलब्धियों के लिए आकुलतापूर्वक संलग्न हो रही है।

व्यक्ति और समाज का हित इसी में है कि भौतिक दरिद्रता की भाँति ही आत्मिक क्षेत्र में धंसी सङ्कीर्णता को भी मार भगाया जाय। इसके लिए उतने ही बढ़े-चढ़े प्रयास करने होंगे जैसे कि भौतिक प्रगति के लिए किये जा रहे हैं। खेद है कि इस असन्तुलन को दूर करने के लिए मूर्धन्य विभूतियों द्वारा वैसे प्रयत्न नहीं किये जा रहे हैं, जैसे कि आवश्यक थे। हमें इस अभाव की पूर्ति के लिए शक्ति भर प्रयत्न करने में संलग्न होकर युग की आवश्यकता पूरी करने में अपने कर्तव्य का पालन करना चाहिए।

आत्मिक प्रगति के दो आधार हैं—एक ज्ञान दूसरा विज्ञान। ज्ञान पक्ष में ब्रह्मविद्या के आधार पर उस उत्कृष्ट चिन्तन का समावेश है, जिसमें आत्मा का स्वरूप, लक्ष्य, कर्तव्य तत्व-दर्शन के रूप में समझा जाता है और जीवन की सार्थकता के लिए उच्चस्तरीय मार्ग दर्शन मिलता है। अन्तःकरण की आस्थाओं, आकांक्षाओं, अभिरुचियों, स्फुरणाओं, सम्वेदनाओं को परिष्कृत करने के लिए जिस प्रकार की श्रद्धा एवं मान्यता को हृदयंगम करना आवश्यक होता है वह ब्रह्मविद्या में सन्निहित सद्ज्ञान द्वारा ही सम्भव होता है। इसके लिए स्वाध्याय, सत्संग, मनन, चिन्तन जैसे माध्यम अपनाये जाते हैं। कथा, प्रवचनों का सिलसिला इसी सन्दर्भ में चलता है। धर्मशास्त्रों का, तत्व दर्शन का विशालकाय कलेवर इसी प्रयोजन के लिए खड़ा किया गया है।

आत्मिक प्रगति का दूसरा आधार है—साधना। साधना वह प्रकिया है जिसमें अमुक विधि-विधानों तथा कर्मकाण्डों के साथ अमुक स्तर की भावनाओं का समावेश करके आन्तरिक अवसादों को दूर किया जाता है। चेतना पर छाई प्रसुप्ति को जागृति में परिवर्तित करना आत्मसाधना का उद्देश्य है। जीव लाखों पिछड़ी योनियों में परिभ्रमण करते हुए मनुष्य जन्म पाने का अधिकारी बना है। इस लम्बी यात्रा में जो पशु-प्रवृत्तियाँ अभ्यास में आती रही हैं उनकी छाप अभी भी छाई रहती है। मनुष्य की जो उच्च स्थिति है उसे देखते हुए वे पशु-प्रवृत्तियाँ अनावश्यक एवं अवांछनीय बन जाती हैं। छोटे बच्चे नंग-धड़ंग फिर सकते हैं और कहीं भी मल-मूत्र का त्याग बिना संकोच के कर सकते हैं, पर प्रौढ़ावस्था में तो वैसा करना अनुपयुक्त ही

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

माना जायेगा। प्रौढ़ता के साथ जो मर्यादाएँ जुड़ी होती हैं, उन्हें पालन करना भी आवश्यक होता है। मनुष्य जन्म के अनुरूप आस्थाएँ विकसित करने के लिए पिछड़ी पशु-प्रवृत्तियों को उखाड़ना आवश्यक होता है। यह कार्य कठिन भी है और जटिल भी। समझने-समझाने भर से इतना बड़ा आन्तरिक परिवर्तन नहीं हो पाता जिसे पशुता के स्थान पर देवत्व की प्रतिष्ठापना का काया-कल्प माना जाता है।

इन दिनों वातावरण में संकीर्ण स्वार्थपरता का, वासना-विलासिता का, लोभ-मोह का, ईर्ष्या-द्वेष का धुंआ बेतरह छाया हुआ है। इसकी कालिमा सर्व साधारण के मन पर अनायास ही जमती चली जाती है। इसकी धुलाई, सफाई न की जाय तो वातावरण का प्रभाव अपनी छाप छोड़ेगा और व्यक्ति दिन-दिन निकृष्टता के बोझ से लदेगा। इसका परिमार्जन 'साधना' प्रक्रिया को अपना कर जिस प्रकार हो सकता है वैसा अन्य किसी उपाय से सम्भव नहीं है। मानवी अवगति का एकमात्र कारण उसकी आन्तरिक दुर्बलता एवं विपन्नता ही होती है। यदि उस भार को हटाया जा सके तो मनुष्य गरिमा महामानवों जैसी नर देवताओं जैसी बनी रह सकती है। परिष्कृत मनःस्थिति में रहने वाले सहज ही समुन्नत परिस्थिति प्राप्त कर लेते हैं—यह तथ्य सर्वविदित है। साधना द्वारा व्यक्तित्व का परिशोधन करते हुए सर्वतोमुखी प्रगति के पथ पर असंदिग्ध रूप से बढ़ा जा सकता है।

मानवी सत्ता इतनी स्वल्प नहीं है जिससे कि शरीर यात्रा भर का प्रयोजन पूरा होता रह सके। निर्वाह के लिए—जितने पुरुषार्थ एवं मनोयोग की आवश्यकता है उतना ही अनुदान क्षुद्र प्राणियों को मिलता है, पर मनुष्य की स्थिति उससे भिन्न है। उसके अन्तराल में समुद्र गर्भ की तरह विभूतियों की बहुमूल्य रत्नराशि भरी पड़ी है। उसे खोजा और पाया जा सके तो ऐसी उपलब्धियों का अधिकारी बना जा सकता है, जिन्हें असामान्य, अलौकिक एवं चमत्कारी समझा जा सके। मनुष्यों में अधिकांश नर कीटकों और नर-पशुओं की तरह हेय स्तर का जीवनयापन करते हैं, पर उनमें से कुछ ऐसे भी होते हैं जिन्हें देवोपम कहा जा सके, नर-नारायण कहकर, भाव भरा अभिवन्दन किया जा सके। सज्जनता की दृष्टि से ही नहीं, आत्मबल की प्रखरता के कारण भी वे असामान्य होते हैं। स्वयं तरते हैं और दूसरों को अपनी नाव पर बिठाकर पार करते हैं।

परमाणु की क्षमता का पता चलने पर हमें आश्चर्य चकित रह जाना पड़ा है। अणु विस्फोट के समय जो ऊर्जा प्रादुर्भूत होती है, उसका हजारवाँ भाग ही अपने समीपवर्ती पदार्थों पर प्रभाव डालता है। शेष भाग तो विस्फोट और प्रभाव के नगण्य जितने मध्यकाल में ही अन्तरिक्ष विलीन हो जाता है। यदि विस्फोट की सारी ऊर्जा सुरक्षित रखी जा सके तो एक ही परमाणु समस्त संसार का विनाश करने के लिए पर्याप्त हो सकता है। जीव सत्ता के सम्बन्ध में भी यही बात है। आत्मा की मूल शक्ति परमात्मा के समतुल्य ही है। अन्तर केवल परिस्थितियों का है। चिनगारी में वे सभी गुण मौजूद हैं जो प्रचण्ड ज्वाला में होते हैं। चिनगारी को अवसर मिले तो वह दावानल के रूप में परिणत हो सकता है। आत्मा को अवसर मिले तो वह परमात्मा की भूमिका निभा सकने में पूर्ण समर्थ हो सकती है। 'सोहम् शिवोहम्, सच्चिदानन्दोहम्' तत्वमसि अयमात्मा ब्रह्म आदि सूत्रों में आत्मा की मूलसत्ता और स्थिति का संकेत किया गया है। ईश्वर में जो क्षमताएँ, विशेषताएँ एवं विभूतियाँ हैं, वे सभी परिष्कृत स्तर के मनुष्य में प्रकट हो सकती हैं। अवतार महामानवों के शरीर मानवी आकृति-प्रकृति के थे, पर उनका चेतना स्तर उच्चकोटि का था। फलतः वे अपने युग की समस्याओं का समाधान करने वाले पुरुषार्थ कर सकने में सफल होते रहे। विभूतिवान महामानवों को महात्मा, देवात्मा आदि नामों से पुकारा जाता है। उन्हें सिद्ध पुरुष भी कहते हैं। सामान्य लोगों की तुलना में न केवल उनकी प्रतिभा प्रखरता ही बड़ी-चढ़ी होती है, वरन् अतीन्द्रिय कही जाने वाली, अलौकिक समझी जाने वाली विभूतियों का भण्डार भी उनके पास भरा रहता है।

आध्यात्मिक सम्पदा ही जीवन के हर पक्ष में अनेक आलोक उत्पन्न करती दिखाई पड़ती है। उसकी ज्योति शरीर को ओजस्वी, मस्तिष्क को मनस्वी और अन्तःकरण को तेजस्वी बनाती है। इस आत्मबल का उपार्जन साधना उपचार से सम्भव होता है। संकल्प शक्ति का बिखराव रोकने—उसे प्रचण्ड बनाने और अभीष्ट प्रयोजन में नियोजित किये रहने की अन्तःक्षमता विकसित करने के लिए 'साधना' को अतीव उपयोगी माना गया है। यों यह प्रयोजन मनोयोगपूर्वक सत्प्रयोजनों में संलग्न रहने से भी अनेकों मनस्वी लोगों की तरह पूरा किया जा सकता है, पर जितनी सरलता आत्मसाधनाओं के माध्यम से हो सकती है, उतनी अन्य उपायों से सम्भव नहीं। फिर प्रश्न मात्र संकल्प शक्ति बढ़ाने का ही तो नहीं है। उसके उत्कृष्ट बनाने की बात भी तो है। यह उत्कृष्टता तो उच्चस्तरीय आस्थाओं का समन्वय करने से ही सम्भव होती है। अध्यात्म साधना का तथ्यपूर्ण ढाँचा दूरदर्शी महामनीषियों ने अपने दीर्घकालीन अनुभवों के आधार पर इसी प्रयोजन के लिए खड़ा किया है।

आत्मिक प्रगति के लिए ज्ञान और विज्ञान के दोनों चरण उसी प्रकार उठाने पड़ते हैं, जिस प्रकार कि भौतिक प्रगति के लिए इन्हीं दो आधारों को अपनाया जाना आवश्यक होता है। आर्थिक तथा दूसरे सुविधा साधन भी तो भौतिक ज्ञान-विज्ञान का सहारा लेकर ही प्राप्त किये जाते हैं। आत्मिक प्रगति के लिए भी ब्रह्मविद्या पर आधारित तत्व ज्ञान हृदयंगम करना आवश्यक होता है। योग-साधना एवं तपश्चर्या की समन्वित साधना पद्धति का आश्रय लेकर अध्यात्म विज्ञान का उपयोग किया जाता है और उससे चित्शक्ति के सम्वर्द्धन का अलौकिक लाभ मिलता है।

महत्व न समझा जाय और उपेक्षा की जाय तो बात दूसरी है अन्यथा यदि उसकी उपयोगिता समझने का प्रयत्न किया जाय तो लगेगा कि भौतिक उपलब्धियों के उपार्जन में जो लाभ सोचा जाता है और प्रयत्न किया जाता है उसकी तुलना में आत्मिक प्रगति के लिए किये जाने वाले प्रयासों एवं अनुदानों का महत्व किसी भी प्रकार कम नहीं है। वाहनों और साधनों की तुलना में उनके उपभोक्ता का मूल्य कम नहीं हो सकता।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

आत्मा ही तो विभिन्न सुविधा साधनों का उपयोग या उपभोग करती है, यदि वह मूलसत्ता ही गई गुजरी स्थिति में पड़ी हो तो साधनों का सुखोपभोग कैसे सम्भव हो सकेगा ? ज्वर पीड़ित होने पर जब मुँह कडुआ रहने लगता है और पेट में अपच भर जाता है तो कितना ही स्वादिष्ट भोजन क्यों न हो उससे किसी प्रकार की प्रसन्नता नहीं होती। आत्मिक स्थिति के हेय होने पर भौतिक सम्पदा दुरुपयोग में लगती और अनर्थ करती देखी गई है। अस्तु विवेकशील सदा से यही कहते रहे हैं कि आत्मिक प्रगति का महत्त्व भौतिक सम्पदाओं से किसी भी प्रकार कम नहीं आंका जाय, वरन् उस दिशा में भी समुचित ध्यान देने एवं प्रबल प्रयास करने का महत्त्व समझा जाय।

यदि आत्मसाधना का सही स्वरूप और सही उद्देश्य समझा जा सके—यदि सही रीति-नीति अपनाकर आत्मसाधना का पुरुषार्थ किया जा सके—तो उसका अभीष्ट परिणाम मिलना सुनिश्चित है। असफलता तो उन्हें मिलती है जो राजमार्ग छोड़कर पगडंडियों में भटकते हैं और स्वल्प प्रयत्न से बढ़े-चढ़े परिणाम तुर्त-फुर्त प्राप्त कर लेने की लाटरी पद्धति से अध्यात्म साधना की तुलना करते हैं। प्राचीन काल में जब साधना अपने वैज्ञानिक रूप में प्रयुक्त की जाती थी तो उसके सत्परिणाम भी प्रत्येक साधक को मिलते थे। यदि उसी प्राचीन परिपाटी को पुनः अपनाया जा सके तो इस महान् अवलम्बन का आश्रय लेकर मनुष्य में देवत्व का अवतरण और धरती पर स्वर्ग का वातावरण पुनः परिलक्षित हो सकता है।

'साधना से सिद्धि' की उक्ति अक्षरशः सत्य है। इस संसार में न तो कुछ अनायास होता है और न अप्रत्याशित। प्रकृति की विलक्षण घटनाओं से लेकर मानवी उत्थान-पतन तक की समस्त हलचलें किसी क्रमबद्ध प्रतिक्रिया के सुनिश्चित परिणाम हैं। भले ही हम उस प्रक्रिया से परिचित न होने के कारण भाग्य, दैव आदि का कुछ भी नाम देते रहे। तथ्य 'साधना से सिद्धि' के सिद्धान्त की ही पग-पग पर पुष्टि करते हैं। विज्ञान की साधना करते-करते मनुष्य ने प्रकृति के चमत्कारी वरदान प्राप्त किये हैं। जब तक वे प्रयास बन नहीं पड़े थे, तब तक प्रस्तुत वैज्ञानिक उपलब्धियों में से एक भी हस्तगत नहीं हुई थी।

'साधना' शब्द का प्रयोग योगाभ्यास, तप-साधना, पूजा-पाठ के अर्थों में होता है। इसे आत्म साधना कहना चाहिए। प्रसुप्त अन्तः शक्तियों को जगाने, उच्चस्तरीय दृष्टिकोण विकसित करने एवं क्षमताओं को सुनियोजित करने के लिए ही तत्वदर्शी महामनीषियों ने अपने दीर्घकालीन अनुभवों के सहारे आत्मविज्ञान का आविर्भाव किया है। इस विद्या को संसार की सर्वोपरि विद्या कहा गया है। यह सर्वथा सत्य है। जड़ की तुलना में चेतन की क्षमता असंख्य गुनी बढ़ी-चढ़ी है। शरीर की तुलना में प्राण अधिक महत्त्वपूर्ण है। भौतिक विज्ञान के सहारे पदार्थों को उपयोगी बनाया जाता है। आत्मविज्ञान के सहारे अन्तःचेतना की प्रखरता उभरती है। इस उभार से भौतिक सफलताओं का पथ-द्वार खुलता है। सबसे बड़ी बात यह है कि परिष्कृत आत्मचेतना—इस विश्व-ब्रह्माण्ड में संव्याप्त सृष्टि की सूत्र संचालक ब्रह्म सत्ता के साथ सम्पर्क को अधिकाधिक सघन बनाते चलने का अवसर मिलता है। यह सघनता मनुष्य को सामान्य से असामान्य बनाती है। उसके पशु संस्कार घटते और दैवी तत्व बढ़ते चले जाते हैं। इस प्रगति की प्रतिक्रिया अनेकों ऐसे सुखद परिणामों के रूप में सामने आती हैं। जिन्हें ईश्वरीय अनुग्रह एवं दैवी वरदान का नाम देने में किसी को कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए।

भौतिक प्रगति के उदाहरण आये दिन सामने आते रहते हैं। इसलिए उन्हें सामान्य एवं लौकिक माना जाता है और सफलताएँ कहा जाता है। आत्मिक प्रगति की दिशा में लोगों का ध्यान कम है। उस दिशा में प्रयत्न या तो होते ही नहीं, होते हैं तो अवैज्ञानिक स्तर के, फलतः आकस्मिक विभूतियाँ कभी-कभी ही कदाचित् किसी के पास दीख पड़ती हैं। जो असाधारण तथ्य यदा-कदा ही दृष्टिगोचर होते हैं वे कौतूहल की तरह देखे और चमत्कार कहे जाते हैं। आत्मिक साधनाओं का फल चमत्कार समझा जाता है और उसे सिद्धि नाम दिया जाता है। वस्तुतः आत्मसाधना के आधार पर आत्म-चेतना की गहरी परतों को उभारने की, प्रसुप्त शक्तियों के जागरण की प्रक्रिया सम्पन्न होती है और उसके सहारे जो असाधारण स्तर के सत्परिणाम उत्पन्न होते हैं, उन्हें सिद्धि कहा जाता है।

साधना का प्रयोजन अपने अविवेक और अनाचार का निराकरण करना है। अपनी कामनाओं का परिशोधन एवं दृष्टिकोण भी साधना का उद्देश्य कहा जा सकता है। कर्त्तव्य में देवत्व का समावेश करना तथा चिन्तन में घुसी कुत्साओं के उन्मूलन में जुटा देना साधनात्मक क्रियाकलापों का प्रमुख संकेत है। साधना एक आध्यात्मिक व्यायाम प्रक्रिया है जिसके आधार पर आत्मबल बढ़ाया जाता है और देव वर्ग की सत्प्रवृत्तियों का अभिवर्धन किया जाता है। इस आत्म-परिष्कार के फलस्वरूप उन विभूतियों की चाबी हाथ लग जाती है जो परमेश्वर ने पहले से ही हमारे भीतर रत्न भण्डार के रूप में सुरक्षित कर दी है। साधना अन्तःकरण में वह प्रकाश उत्पन्न करती है, जिससे अपने लक्ष्य और अपने कर्त्तव्य को समझा जा सके। साधना वह शक्ति प्रदान करती है, जिससे आत्मबल विकसित हो सके और सन्मार्ग पर चलने के लिए पैरों में अभीष्ट क्षमता रह सके। साधना वह साहस उत्पन्न करती है जिसके आधार पर प्रलोभनों और आकर्षणों को दुत्कारते हुए कर्त्तव्य की चट्टान पर दृढ़तापूर्वक अग्रसर रहा जा सके और हर विघ्न बाधा का, कष्ट कठिनाई का, धैर्य और सन्तुलन के साथ सामना किया जा सके। साधना का वरदान 'महानता' है। साधना जितनी सच्ची और प्रखर होती है उतने ही हम महान बनते चले जाते हैं। तब हमें किसी से कुछ माँगना नहीं पड़ता—ईश्वर भी नहीं। तब अपने पास देने को बहुत होता है—इतना अधिक कि उसके आधार पर अपने को—संसार को—और परमेश्वर को सन्तुष्ट किया जा सके।

साधना से सिद्धि का मर्म

आध्यात्मिक साधनाएँ व्यक्ति को पूर्णता की ओर ले जाने के निमित्त की जाती हैं। इन साधनाओं का मूलभूत आधार है—आत्म समीक्षा। बिना इसके हवाई किले की तरह कोई भी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org

साधना टिक नहीं सकती। अपने आपकी समीक्षा करना, व्यक्तित्व के वर्तमान स्वरूप को समझना आध्यात्मिकता की दृष्टि से आवश्यक ही नहीं अनिवार्य भी है। क्योंकि इसी आधार पर त्रुटियों का संशोधन तथा न्यूनता की पूर्ति करना सम्भव है। इस आत्म-निरीक्षण का एक और भी पहलू है कि जो विशिष्टताएँ आत्मिक प्रगति के लिए आवश्यक हैं, उनका यदि विकास नहीं हुआ है तो उसकी आवश्यकता अनुभव करते हुए आत्मोत्कर्ष का प्रयास सम्भव हो सकेगा।

वस्तुतः मनुष्य के पास ऐसा बहुत कुछ है जो सदा अप्रकट और अविकसित ही बना रहता है। मस्तिष्कीय क्षेत्र की अनूठी क्षमताएँ और अन्तःकरण की विविध विशिष्टताएँ ऐसी हैं जो हर किसी के पास न्यूनाधिकता में पाई जाती हैं। यदि आत्म-निरीक्षण की कला हस्तगत हो सके तो मनुष्य इन दिव्य केन्द्रों का स्थान एवं स्वरूप समझ सकता है और उन्हें विकसित करने के लिए वह सब कर सकता है जो सुदृढ़ संकल्प शक्ति के सहारे निश्चित रूप से हो सकता है।

यदि लक्ष्य और आदर्श ईश्वर प्राप्ति जैसा उच्च हो तो इसकी प्राप्ति कर्मकाण्डों के बलबूते सम्भव नहीं। इसके लिए आन्तरिक परिष्कार और उत्कृष्ट चिन्तन-चरित्र अपनाने की आवश्यकता है। तद् विषयक जो कुछ परिवर्तन या विकास करना है, उसका स्वरूप सामने आने की बात तभी बनती है जब आत्म-निरीक्षण का सिलसिला परिपूर्ण उत्साह के साथ चलाया जाये।

यह भ्रम जितनी जल्दी दूर किया जा सके उतना ही अच्छा है कि ईश्वर प्राप्ति के लिए अमुक कर्मकाण्ड ही सब कुछ है। अधिकांश लोग इसी भ्रम में ग्रसित रहकर अपनी-अपनी मान्यताओं के अनुरूप पूजा-विधानों में संलग्न रहते और सोचते हैं कि ईश्वर के भी मनुष्य की भाँति चर्म चक्षु ही हैं। वह मात्र क्रिया-कृत्यों को ही देख पाता है। किसी का अंतरंग देखने या परखने की उसमें क्षमता नहीं है या तो इसे महत्त्व नहीं देता और हेय व्यक्तियों को भी उनके कर्मकाण्डों जैसे बाह्य दिखावे से प्रभावित होकर अपने सिंहासन पर बैठा लेता है।

पापों के क्षमा होने या उल्टे-सीधे नाम रटने से सभी दुष्कृत्यों को अनदेखे करने जैसी बातें गल्प ही हैं। तीर्थाटन आदि कृत्यों में भी यदि कोई चाहे तो दिशा-निर्देशन प्राप्त कर सकता है। पर पापों के नष्ट होने या कर्मफल के उलट जाने की बात सोचना प्रकारान्तर से ईश्वर की बड़ी व्यवस्था उलट जाने की दुराशा रखना है। परम सत्ता के दरबार में पुजारियों के साथ पक्षपात होने तथा बिना पुजारियों को दूध में से मक्खी की तरह निकाल फेंकने की उपेक्षा जैसा कोई विधान नहीं है। इस तथ्य को समझते ही तुरन्त यह समस्या आगे आती है कि हमें अन्तर्मुखी होने का अभ्यास करना चाहिए ताकि आत्म-निरीक्षण के साथ आत्म सुधार का प्रयास भी चल पड़े। इसकी अनिवार्य आवश्यकता है। इस क्षेत्र में कोई सस्ते उपचार, आत्म प्रवंचना के अतिरिक्त और किसी उद्देश्य की पूर्ति नहीं करते।

आत्म-निरीक्षण में सर्वप्रथम शरीर और आत्मा की भिन्नता अनुभव करने का प्रसंग आता है। इसके बिना वह भ्रान्ति बनी रहती है, जिसे अध्यात्म की भाषा में माया कहा गया है। माया का सार-संक्षेप इतना ही है कि चेतना अपने आपको मात्र शरीर मानती रहती है और उसके निर्वाह तक सीमित न रहकर उसे सजाने, मोटा करने, दर्श दिखाने में लगी रहती है। वासनाओं एवं अहंकार की पूर्ति को ही सफलता एवं प्रसन्नता का केन्द्र बिन्दु मान लिया जाता है। इतना ही नहीं शरीर के साथ सम्पर्क साधने वाले कुटुम्बी सम्बन्धी मित्र परिचित ही इस शरीराभ्यास के क्षेत्र में घुस पड़ते हैं। इन्हीं सबको वैभववान बनाने के लिए इच्छाओं और चेष्टाओं का केन्द्रीयकरण हो जाता है। जीवन की अवधि और शारीरिक मानसिक शक्ति का आना इसी क्षेत्र में होता रहता है। कूपमण्डूक जैसी, गूलर के फल के भीतर रहने वाले भुनगों की तरह मनुष्य की स्थिति हो जाती है और वह आत्मा-परमात्मा के सम्बन्ध में, आत्मोत्कर्ष एवं ईश्वर प्राप्ति के सम्बन्ध में कुछ गम्भीर विचार तक नहीं कर पाता। फिर सुधार विकास की प्रक्रिया चले भी तो कैसे ?

आत्मिक प्रगति का प्रथम चरण आत्म-निरीक्षण जितना गम्भीर और प्रखर होता है। उसी अनुपात से शरीर और आत्मा की भिन्नता का वास्तविक आभास होता है अन्यथा तोतारटन्त की तरह आत्मा-परमात्मा की चर्चा का बाल विनोद चलता रहता है।

माया के बन्धन शिथिल होने या कटने का एक मात्र उपाय है कि अपनी सत्ता की स्थिति को समझा जाये। यह अनुभूति विकसित हो सके तो ही आत्मा का महत्त्व एवं हित सूझ पड़ता है और शरीर के पक्ष में झुकी हुई सारी प्रकृति को सन्तुलित करने का मन होता है। शरीर संसार में अनुरक्त रहता है और आत्मा की प्रायः उपेक्षा करता है। यह सोच तक नहीं पाता कि हमारे भीतर आत्मा नाम की कोई वस्तु भी है और उसकी भी कुछ माँग, पुकार, सुख एवं आवश्यकताएँ भी हैं। इस प्रकार की अनुभूति तभी होती है जब शरीर तथा इसके सुखों पर सर्वस्व न्यौछावर किए रहने के ढर्रे में परिवर्तन किया जाये। आत्मा को परमात्मा का सन्देश सुनने और आह्वान को अंगीकार करने की बात अन्तरंग की गहराई तक प्रवेश कर जाती है। तभी यह सूझ पड़ता है कि शरीर की तरह आत्मा के निमित्त भी कुछ किया जाना चाहिए।

क्या किया जाना चाहिए ? इसके उत्तर में दो तथ्य उभर कर सामने आते हैं। एक यह कि आत्मगौरव के अनुरूप, व्यक्तित्व के ढलने में जो त्रुटियाँ चल रही हैं, उनका कठोरतापूर्वक नियमन किया जाये। इसी को तप कहते हैं। इस सन्दर्भ में कठोरता बरतनी होती है। अभ्यस्त दुष्प्रवृत्तियाँ सहज पीछा नहीं छोड़तीं। तपश्चर्या का अभिप्राय शरीर को कष्ट देना नहीं है। इसका वास्तविक अर्थ है—ऐसा मनोबल विकसित करना जो दुष्प्रवृत्तियों से मल्लयुद्ध करके उन्हें परास्त कर सके। इसी को संशोधन पक्ष कहते हैं।

इसके अतिरिक्त दूसरा पक्ष श्रेष्ठता के अभिवर्द्धन का है। यह आत्मविश्वास एवं आत्मबल के आधार पर उपर्युक्त क्रम बना लेने से भी सम्भव हो सकता है।

इसके लिए सत्प्रवृत्तियों के समन्वय द्वारा ईश्वर की उपासना सहायक होती है। इसे ही योग कहते हैं। विराट ब्रह्म

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

से अपने आपको जोड़ना ही योग है। क्षुद्र स्वार्थपरता के संकीर्ण बन्धनों को शिथिल करने का अभ्यास करना ही योग है। ऐसे साधक का दृष्टिकोण समता और क्रिया कल्याण सर्वजनीन हित साधन का होता है। इसके लिए कर्म-ज्ञान-भक्ति किसी भी मार्ग अथवा इनके समन्वयन का अभ्यास प्रारम्भ किया जा सकता है। यही है यथार्थवादी आत्मिक प्रगति का राजमार्ग जिसे अपनाकर कोई भी साधक पूर्णता के लक्ष्य की ओर बढ़ सकता है। यही साधना से सिद्धि का मर्म है। इस प्रक्रिया में किसी भी प्रकार के शार्टकट की कोई गुंजाइश न अब है, न कभी रहेगी। जो भी व्यक्ति महापुरुषों-सिद्धपुरुषों-महात्माओं की ढूँढ़ खोज मात्र सिद्धि प्राप्ति हेतु करते हैं, उनके लिए सही मार्गदर्शन यही है कि वे सर्वप्रथम इस प्रक्रिया का ककहरा पढ़ें, आत्म-शोधन की प्रक्रिया समझें, उसे अपनायें। इतना बन पड़ने पर ही आध्यात्मिक प्रगति की वह कुंजी हाथ लग सकती है, जो व्यक्ति को पूर्ण पुरुष बनाती है।

सिद्धि के लिए—सफलता के लिए—साधना की अनिवार्य आवश्यकता मानी है। कहा गया है कि साधक को सिद्धि मिली है। जो सिद्धि चाहते हैं पर साधना से जी चुराते हैं, उन्हें असफल रहना पड़ता है। भले ही वे उसका दोष किन्हीं व्यक्तियों, परिस्थितियों, ग्रह नक्षत्रों को लगाते रहें।

संसार में हर वस्तु मूल्य देकर खरीदी जाती है। मुफ्त में ही सड़क पर पड़ा हुआ कूड़ा-करकट ही कोई समेट सकता है। बहुमूल्य मोती बीनने वाले को समुद्र की तली में गहरे गोते लगाने पड़ते हैं। इतना ही नहीं सफल गोताखोर बनने के लिए उस कला की बारीकियाँ समझने और प्रवीणता प्राप्त करने के लिए मुद्दतों का समय लग जाता है।

कहा जाता है कि साधना बारह वर्ष में पूरी होती है और तब इस योग्य बनती है कि अभीष्ट सफलता के दर्शन हो सकें। यह बात आध्यात्मिक साधनाओं के लिए ही नहीं सांसारिक प्रयोजनों की पूर्ति के लिए समान रूप से सही है। कलाकार—संगीतकार, गायक, वादक बनने के लिए जो महीने पन्द्रह दिन का समय पर्याप्त समझते हैं वे भूल करते हैं। साधक को कई मंजिलें पार करनी पड़ती हैं। उसमें सबसे पहली कठिनाई है—चित्त की ऊब से निपटना। बाल बुद्धि में अस्थिरता होती है वह अधिक देर किसी काम पर नहीं टिकती। बच्चे अभी बालू का महल बनाते हैं। वह बन नहीं पाता कि टहनियाँ तोड़कर बगीचा लगाना आरम्भ कर देते हैं। वह भी जब तक पूरा नहीं हो पाता कि तीसरा आरम्भ करते हैं और फिर चौथे, पाँचवे का सिलसिला चला देते हैं। मन की उतावली चाहती है कि जिस प्रकार चिन्तन में जल्दबाजी मची रहती है उसी उतावली से काम भी बनते चले जायँ। पानी के बबूले उठते तो बहुत जल्दी हैं पर उन्हें फूटने में भी देर नहीं लगती। यह खेल-खिलवाड़ की दृष्टि से तो ठीक है पर महत्त्वपूर्ण कार्यों के लिए जितना श्रम और समय चाहिए उसे देखते हुए उतावली का कोई मूल्य नहीं है।

शेख-चिल्ली की कहानी सभी ने सुनी होगी। वह तेल की मजूरी के मिलने से पहले ही मुर्गी—मुर्गी से बकरी—बकरी से भैंस—भैंस से मकान—मकान से बीबी—बीबी के बच्चे होने की योजना बनाने लगा था। उतावली इतनी थी कि तेल का घड़ा सिर से गिर गया और मजूरी मिलना तो दूर मालिक के लात घूँसे खाने पड़े। यह कहानी सच न भी हो तो भी हममें से अधिकांश के ऊपर लागू होती है। जो योजनाएँ तो बड़ी बनाते हैं और आकर्षक भी, पर उन्हें पूरा करने के लिए जिस एकाग्रता, श्रमशीलता एवं धैर्य की आवश्यकता है उनमें से एक भी सँजोते नहीं, सफलता चाहते हैं। पर साथ ही इस बात के लिए भी व्याकुल रहते हैं कि उसके लिए निरन्तर अभ्यास न करना पड़े और जब तक प्रवीणता प्राप्त होने के लिए परिश्रम की आवश्यकता है उतनी देर प्रतीक्षा न करनी पड़े। इस उतावली में कितने ही व्यक्ति एक काम भारी उत्साह के साथ पकड़ते हैं, और जब हथेली पर सरसों नहीं जमती तो अधीर हो जाते हैं। उस निराशा में जो कर रहे थे उसे छोड़ बैठते हैं। और फिर कोई नया काम अपनाते हैं। उसमें भी देर तक मन नहीं लगता और इस प्रकार एक के बाद दूसरे अधूरे काम छोड़ते और उन असफलताओं का दोष जिस-तिस पर लगाते हुए भाग्य को कोसते हैं। इस प्रकार मनोबल टूट जाता है और थोड़े समय में सामान्य परिश्रम से बन पड़ने वाले काम भी पूरे नहीं हो पाते।

किसी भी महत्वपूर्ण काम की सफलता के लिए आवश्यक योग्यता की वृद्धि, अभीष्ट साधन एवं अनवरत श्रम की आवश्यकता होती है। इतने पर भी बीच-बीच में परिस्थिति वश असाधारण कठिनाइयाँ आतीं और असफलताएँ दीखती रहती हैं। जो इतने भर से घबरा गये उन्हें निराशा घेर लेती है।

एक विद्वान का कथन है कि हर असफलता यह बताती है कि जितने साधन और श्रम की आवश्यकता थी उसमें कमी रह गई। इसलिए अब की बार उसे दूने उत्साह के साथ करना चाहिए। राणाप्रताप जैसे अनेकों योद्धाओं को जीवन भर कठिनाइयाँ और असफलताएँ घेरे रहीं। पर उन्होंने मन मलीन नहीं होने दिया और एक तरह न सही दूसरी तरह निश्चित लक्ष्य तक पहुँचने का प्रयत्न किया।

ईसामसीह आजीवन अपने निश्चित संकल्प की पूर्ति में लगे रहे, फिर भी सफलता नाम मात्र की मिली और शूली पर चढ़ना पड़ा। इतना होते हुए भी उनकी न तो अप्रशंसा हुई न अप्रतिष्ठा। क्योंकि वे आरम्भ से लेकर अन्त तक संकल्पपूर्वक अपनी साधना में लगे रहे। सफलता का अपना महत्त्व है पर साधना पथ पर अन्त तक आरूढ़ रहना यह भी कम महत्त्व की बात नहीं है। उससे मनुष्य की गरिमा घटती नहीं है।

आध्यात्मिक साधनाओं के मार्गदर्शक अपने शिष्यों को कहते हैं कि अपनाये हुए मार्ग पर जन्म-जन्मान्तरों तक आरूढ़ रहना चाहिए। एक जन्म में लक्ष्य पूरा न हो सके तो बिना उदास हुए उसे अगले जन्म में पूरा करने का संकल्प सुनिश्चित रखना चाहिए। जिनका मनोबल इतना प्रबल होता है ऐसे ही साधक सिद्ध पुरुष बनते हैं।

अनेकों वैज्ञानिक ऐसे हुए हैं जिन्हें अपनी शोध में सारा जीवन खपा देना पड़ा। तब उन्हें कुछ प्रकाश हाथ लगा। ऐसा भी हुआ है कि उनके प्रयास से लाभ उठाकर अगली पीढ़ी के

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

वैज्ञानिक ने सफलता सम्पन्न की। शब्द कोश बनाने जैसे समय साध्य कार्य कभी-कभी एक पीढ़ी के लोग पूरा नहीं कर पाते तब छोड़ा हुआ काम अगले लोग पूरा करते हैं। इससे उन पर कोई असफलता का दोष नहीं मढ़ता वरन् धैर्य और साहस की प्रशंसा ही होती है। कलाकारों में से कितने ही हुए हैं जो अपने विषय के प्रवीण पारंगत बने। जबकि आरम्भ में उनकी सामान्य बुद्धि उपहासास्पद लगती थी। लगन बड़ी चीज है। तत्परता का बड़ा महत्त्व है, वह कालिदास जैसे मूर्खों की लगन की कसौटी पर कसने के उपरान्त मूर्धन्य होने का श्रेय प्रदान करती है। अमेरिका की खोज निकालने वाले कोलम्बस की लम्बी समुद्री यात्राओं और बीच-बीच में आती रहीं प्राणघाती असफलताओं को जो जानते हैं, उन्हें मनुष्य की तत्परता का मूल्य समझने का अवसर मिलता है।

जो काम करना हो उसे समझ सोचकर किया जाये। अपनी सामर्थ्य, साधन, परिस्थिति आदि का आरम्भ में ही अनुमान लगा लिया जाये। मार्ग की कठिनाइयों की कल्पना कर लेने में हर्ज नहीं, इतने पर भी यदि अपना धैर्य और साक्ष्य साक्षी देता हो तो संकल्पपूर्वक उस मार्ग पर कदम बढ़ाना चाहिए। बढ़ाने के उपरान्त उस पर दृढ़ रहना चाहिए। प्रयास की दिलचस्पी घटने नहीं देनी चाहिए। ऐसी मनःस्थिति ही साधना कही जाती है और साधना यदि सच्ची हो तो वह सिद्धि के लक्ष्य तक पहुँच कर रहती है। साधना के लिए एक मोटी अवधि बारह वर्ष की निर्धारित की गई है। जिनमें इतने समय का धैर्य और उत्साह होता है वे देर सवेर में—सिद्ध पुरुष सफल मानव होकर रहते हैं।

साधना से सिद्धि किन शर्तों पर

आत्मोत्कर्ष का लक्ष्य प्राप्त करने के लिये दो कार्य करने पड़ते हैं—एक उपासना दूसरा साधना। उपासना में भजन-पूजन के सन्दर्भ में किये जाने वाले जप, ध्यान, प्राणायाम, हवन, कीर्तन आदि क्रिया-कृत्यों को करते हैं। साधना जीवनयापन की चिन्तन एवं कर्मपरक पद्धति है। उपासना उच्चस्तरीय कक्ष का योगाभ्यास कहलाती है और साधना अपने परिष्कृत स्वरूप में तपश्चर्या कहलाती है दोनों के समन्वय से ही जीवन लक्ष्य को प्राप्त करने का, पूर्णता तक पहुँचने का लक्ष्य पूरा होता है, यही ईश्वर प्राप्ति है।

उपासना अंतरंग को परिष्कृत करने के लिये और साधना बहिरंग को सुव्यवस्थित बनाने के लिये है। लक्ष्य तक पहुँचने की यात्रा इन्हीं दो कदमों को अनवरतक्रम से उठाते रहने पर सम्पन्न होती है। उपासना का प्रतिफल है सुसंस्कारिता। साधना का प्रयोजन है—शालीनता। इन्हीं दोनों को संस्कृति और सभ्यता कहते हैं। जीवन सम्पदा का स्तर उठाने और उसका श्रेष्ठतम सदुपयोग करने से ही मनुष्य व्यक्तित्ववान बनता है। इसी विकास क्रम पर चलते हुये मनुष्य सामान्य आत्मा से अगली सीढ़ियाँ प्राप्त करता है। महामानव, ऋषि, देवदूत एवं अवतार बनने का सौभाग्य इसी मार्ग की मंजिल है।

उपासना किसी के सामने गिड़गिड़ाना या वैभव सम्पत्ति का उपहार-अनुदान सहज ही प्राप्त करने का ताना-बाना नहीं है। देवता न चापलूसी से प्रसन्न होते हैं और न रिश्वत लेने में उन्हें कोई रुचि है। उनका अनुग्रह बादलों की तरह अनवरत बरसता है जिसके पास जितना पात्र है उसे उतना अनुदान मिलता है। आत्म-परिष्कार ही साधना का उद्देश्य है। इस प्रयास में जिसे जितनी सफलता मिलती है, वह उतना ही बड़ा संत होता है। आत्म-कल्याण और लोक-कल्याण में समर्थ अति महत्त्वपूर्ण क्षमता ऐसे ही लोगों को उपलब्ध होती है पेड़ों के आकर्षण से बादल बरसते हैं। चुम्बक के खिंचाव से लौह कण खिंचते चले जाते हैं। फूल खिलता है तो उस पर मधुमक्खियों, तितलियों और भ्रमरों के झुण्ड मँडराते हैं। विकसित व्यक्ति को अंतरंग से सन्तोष, बहिरंग से सहयोग और अन्तरिक्ष से वरदान बरसाने का लाभ मिलता है। दैवी अनुग्रह उपलब्ध करने का एक ही मार्ग है—आत्मपरिष्कार। उपासना और साधना के दोनों ही प्रयोग मिलकर इसी उद्देश्य की पूर्ति करते हैं। ब्रह्मविद्या का तत्वदर्शन और धर्मानुष्ठानों का साधना प्रकरण इसी एक उद्देश्य की पूर्ति के लिये मनीषियों द्वारा सृजा गया है।

उपासना में गायत्री मंत्र का अवलम्बन सर्वश्रेष्ठ है। इस महामंत्र में सन्निहित २४ अक्षरों में उन सभी शिक्षाओं, प्रेरणाओं एवं सिद्धान्तों का समावेश है, जिनको अपनाकर व्यक्तिगत सुख-शांति और समाजगत प्रगति समृद्धि के द्वार खुल सकते हैं। इन अक्षरों का गुन्थन ऐसी विशेषताओं के साथ हुआ है कि उनके जप पाठ से व्यक्ति के अन्तराल की प्रसुप्त विशेषतायें जाग्रत होती हैं। उनके सामान्य रूप-ध्यान और असामान्य अनुष्ठान पुरश्चरण प्रक्रिया से ऐसा आत्मबल जाग्रत होता है, जिसके द्वारा आत्मिक विभूतियों और सांसारिक सफलताओं को प्रचुर परिमाण में उपलब्ध कर सकना सम्भव होता है। उपासना का विधान अन्यत्र बताया गया है। उतना न बन पड़े तो रास्ता चलने या बिस्तर पर पड़े हुये मौन मानसिक जप एवं ध्यान हो सकता है। न्यूनतम चौबीस मंत्र जप लेने से भी आद्य शक्ति गायत्री के साथ उपासना सूत्र जुड़ा रह सकता है।

साधना का तात्पर्य है—अनगढ़ जीवन को सुगढ़ बनाना। जंगली जानवरों को उपयोगी एवं पालतू और जंगली झाड़ियों को सुरम्य उद्यान के रूप में विकसित करने के लिये जो उपाय अपनाने पड़ते हैं, लगभग वही कुसंस्कारी व्यक्तित्व को संस्कारवान, शालीन बनाने के लिये भी कार्यान्वित करने होते हैं, यही साधना है।

ईश्वर का अनुग्रह, पूर्णता का लक्ष्य प्राप्त करने के लिये एकमात्र उपाय साधना है। इसे परम पुरुषार्थ माना गया है। अपने कुसंस्कारों से निरन्तर लड़ते रहना, जीवन क्षेत्र में सत्प्रवृत्तियों की फसल उगाना, पशुता को देवत्व में परिणत कर देना, यही है साधना का स्वरूप। विभिन्न पूजा उपचारों के द्वारा मनन, चिन्तन, स्वाध्याय, सत्संग जैसे विचार मंथनों द्वारा आत्मशोधन की जो प्रक्रिया चलती है, उसी को देखते हुये यह जाना जा सकता है कि साधना में कितनी प्रगति हुई। साधक को सिद्धि मिलती है, बिना आत्मशोधन का भजन निरर्थक जाता है। अपवाद रूप में किसी को कोई दैवी अनुग्रह मिल भी जाय तो उसका परिणाम अंततः भस्मासुर, रावण, कुम्भकरण, मारीच, कंस, हिरण्यकश्यप आदि की तरह घोर विपत्ति के रूप में सामने

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

आता है। फलित तो विभीषण, हनुमान जैसे सद्भाव सम्पन्न लोगों की साधना ही होती है।

जीवन कल्पवृक्ष है, उसकी साधना यदि सही रीति से की जाती है तो वही अपने अमृत फलों से साधक को कल्पवृक्ष बना देता है। ईश्वर ने श्रम, समय, बुद्धि, प्रतिभा जैसी दिव्य सम्पदायें हर व्यक्ति को प्रचुर परिमाण में दी हैं। इनका सदुपयोग ही उस बुद्धिमत्ता का परिचायक है जिसे शास्त्रकारों ने 'ऋतम्भरा प्रज्ञा' या ब्रह्मविद्या 'गायत्री' कहा है। मानवी निर्माण की आवश्यकता नितान्त स्वल्प है। उपार्जन की क्षमता असीम है। ऐसी दशा में किसी के अभावग्रस्त या पिछड़े रहने का कोई कारण नहीं। दरिद्रता और दुर्गति तो आन्तरिक पिछड़ेपन की ही प्रतिक्रिया है। साधना द्वारा अपने दृष्टिकोण, स्वभाव और व्यवहार में सुधार किया जाता है।

मनःस्थिति में परिवर्तन आते ही परिस्थिति बदलने लगती है। आँख की पुतली ही दृश्य जगत का परिचय कराती है। कान की झिल्ली में भरी सामर्थ्य से ही संसार में संव्याप्त शब्द सम्पदा से लाभान्वित होने का अवसर मिलता है। अपना मस्तिष्क ही इस विश्व वसुधा में बिखरे हुये वैभव को पहचानने और चुनने का सौभाग्य प्रदान करता है। इन्द्रिय शक्ति की प्रखरता से ही अनेकानेक रसास्वादनों का सुख मिलता है। अपने आँख, कान, मस्तिष्क एवं इन्द्रिय तन्तु यदि विकृत हो उठें तो इस संसार में निराशा और निस्तब्धता के अतिरिक्त और कुछ भी शेष न रहेगा। आत्मसत्ता का स्तर ही संसार के पदार्थों या प्राणियों को उपयोगी अनुपयोगी बनाता रहता है। समस्याओं की उत्पत्ति भी भीतर से ही होती है और उनका समाधान भी अपनी ही अनुपयुक्तताओं के समाधान होने पर सम्भव होता है। जड़ें जमीन में रहती हैं, पेड़ ऊपर दीखता है। व्यक्ति की आन्तरिक स्थिति ही बाह्य परिस्थितियों की संरचना करती है। बाहरी सुविधा, सफलता प्राप्त करने के लिए तदनुरूप विशिष्टतायें अपने ही व्यक्तित्व में उत्पन्न करनी पड़ती हैं, इसी दूरदर्शी पराक्रम को साधना कहते हैं। अपना प्रसुप्त अंतरंग ही सर्वसिद्धिदाता देवता है। उसी को जगाने, प्रखर बनाने के लिये पूजा-उपचारों की विधि व्यवस्था शास्त्रकारों ने बनाई है। जो तथ्य को समझते हैं, भजन, पूजन के साथ जुड़े रहस्यों को ढूँढ़ते हैं और अपनी कुसंस्कारिता को परास्त करने का पराक्रम करते हैं, वे ही सच्चे साधक हैं। साधनात्मक उपचारों में सन्निहित आत्म निर्माण के मर्म को जो जान लेते हैं उसके लिये बिना हारे संघर्ष और शिक्षण का अभ्यास करते हैं। वे अपने आपको सरकस के सिंह की तरह मनस्वी और कमाऊ बना लेते हैं। साधना उपक्रमों के साथ जुड़े हुये इस दिशा निर्धारण को जो समझते हैं और बिना हारे अनवरत प्रयास करते हैं, उन्हें सिद्ध पुरुष होने का अवसर निश्चित रूप से मिलता है। साधना से सिद्धि का सिद्धान्त अकाट्य है। प्रयास के साथ जुड़ी हुई उपलब्धि का प्रमाण, परिचय हर साधक कभी भी, कहीं भी प्राप्त कर सकता है।

साधना का उद्देश्य किसी के सामने गिड़गिड़ाना, झोली पसारना या नाक रगड़ना नहीं है। दीनता न आत्मा को शोभनीय है न परमात्मा को प्रिय। परमात्मा न खुशामद का भूखा है और न ही उसे प्रशंसा की आवश्यकता है। उसकी महानता अपने आप में अपनी प्रशंसा है। मनुष्यों की वाणी न उसमें कुछ वृद्धि कर सकती है और न कमी। अपने ही बालक के मुख से प्रशंसा कराना किसी मनुष्य को भी अच्छा नहीं लगता फिर परमात्मा जैसे महान् के लिए तो उसमें क्या आकर्षण हो सकता है। प्रशंसा करके किसी से कुछ प्राप्त करने का प्रयत्न ओछे दर्जे का कृत्य माना जाता है। उस चंगुल में ओछे लोग ही फँसते हैं और उसे करने के लिए ओछापन ही तैयार होता है। खुशामद व चापलूसी का गोरख-धन्धा उन्हें पसन्द आता है, जो वस्तुतः प्रशंसा के पात्र नहीं। वे अपने चापलूसों के मुँह से अपनी बड़ाई सुनकर खुशी मना लेते हैं। असली न मिलने पर उस आवश्यकता को नकलियों से पूरा कर लेते हैं। भक्त और भगवान के बीच यदि यही खुशामद चापलूसी का धन्धा चले तो फिर समझना चाहिए दोनों की गरिमा गिर गई।

माँगना बुरा व्यवसाय है। चोरी से भी बुरा। चोर दुस्साहस करता है और खतरा मोल लेता है तब कहीं कुछ कर पाता है। पर भिखारी उतना भी तो नहीं करता। वह बिना कुछ किये ही पाना चाहता है। कर्म विज्ञान को एक प्रकार से वह झुठलाना ही चाहता है। संसार के स्वाभिमानी अपंग और असमर्थ भी स्वाभिमानी होते हैं। कोढ़ी और धन्धे भी कुछ कर लेते हैं। समाज उन्हें कर्तृत्व के साधन तो देता है पर मुफ्त में बिठा कर नहीं खिलाता। इसमें देने वाले की उदारता भले ही हो पर लेने वाले को ऋण के भार से दबना पड़ता है और दीन बनकर समग्र स्वाभिमान का हनन करना पड़ता है। यह हानि उस लाभ से बुरी है जो किसी दान से कुछ प्राप्त करके उपलब्ध किया जाता है। दानी, दान और दानपात्र की भी एक आचार संहिता है। किसे दिया जाये ? क्यों दिया जाये ? कितना दिया जाये ? किस आधार पर दिया जाये ? इन कसौटियों पर कसने के उपरान्त ही भौतिक पदार्थों को देने और लेने की सार्थकता हो सकती है। कोई कुछ भी, किसी भी स्थिति में, किसी भी प्रयोजन के लिए माँगे और देने वाला बिना गुण-दोष विचारे देता ही चला जाये तो समझना चाहिये कि वह अन्धेर देने वाले का, लेने वाले का और आचार व्यवहार का सर्वनाश करेगा। ईश्वर ऐसा दानी नहीं है कि हर माँगने वाले की मनोकामना फिर चाहे वह अज्ञानजन्य और अवांछनीय ही क्यों न हो पूरी ही करता चला जाये। यदि उसे ऐसा ही करना होता तो कर्म और उसके फल के सिद्धान्त को आरम्भ से ही ताक पर उठा कर रख देता। उस प्रक्रिया का ऐसा उपहास क्यों बनने देता, जैसा कि औघड़दानी कह कर बमभोला को मूर्ख समझते हुए भक्त मंडली द्वारा बनाया जा रहा है।

साधना निश्चित रूप से याचना नहीं है। वह विशुद्ध रूप से आत्म-परिष्कार, जीवन-शोधन और पात्रता के विकास की सुनियोजित प्रक्रिया है। तपश्चर्या की आग में हम अपने कलुष-कषायों को जलाते हैं। कर्मफल से छुटकारे की कुमार्गगामी दुष्प्रवृत्ति से छुटकारा पाने की वही चेष्टा है। कर्म फल अपने हाथ में नहीं। तीर छोड़ने से पहले अपने हाथ में था,

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org

छूट गया तो अपना कार्य करेगा। कर्मफल की व्यवस्था सृष्टि का कठोर और अपरिवर्तनीय नियम है। उसे यदि ईश्वर बदलने लगे तो फिर उसे सारी क्रम व्यवस्था ही बदलनी पड़ेगी। सच्चा न्यायाधीश अपने बेटे को भी अपराध का दण्ड देकर न्याय की रक्षा करता है। ईश्वर का न्यायालय भक्त-अभक्त का अन्तर नहीं। भक्ति के दूसरे परिणाम हो सकते हैं पर उसका प्रयोजन यह नहीं हो सकता कि उस न्यायशील परमेश्वर को अन्याय या पक्षपात करने के लिए विवश किया जाये।

भक्ति हमें भविष्य में दुष्कर्म न करने की प्रेरणा देती है। अपने स्वभाव में घँसे हुए अविवेक और अनाचार उन्मूलन में सहायता करती है। निष्पाप और निर्मल बन कर हम प्रारम्भ कर्मों को भी धैर्य और शान्ति पूर्वक साहस और संतोष के साथ सहन कर सकने में समर्थ हो सकते हैं और इस प्रकार प्रारब्ध भोग की आधी व्यथा हलकी कर सकते हैं। दुष्कर्मों और कुविचारों को तिलांजलि देकर अपना भविष्य तो उज्ज्वल कर ही सकते हैं। साधना का यह लाभ भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं।

संचित कर्मों के छुटकारे का एक ही सनातन मार्ग और विधान है प्रायश्चित। पिछली भूलों पर खेद प्रकट कर देने या क्षमा माँग लेने की औपचारिकता पूरी करने से काम नहीं चलता। समाज को क्षति पहुँचाई है उतना अनुदान देकर उस गड्ढे को पाटना पड़ेगा। मन को कुकर्म के द्वारा जितना कलुषित किया है उतना ही सत्कर्म के उल्लास से उसका सन्तुलन बनाना पड़ेगा। अनाचार की जिन अवांछनीय लहरों से वातावरण को क्षुब्ध किया था उसका समाधान पुण्य और परमार्थ की प्रक्रिया अपनाकर करना होगा। इतना साहस भक्त में उदय होता है और वह अपनी सदाशयता सिद्ध करने के लिए न्याय के कटघरे में खड़े होने से पूर्व स्वयं ही उपस्थित होकर अपनी भूल स्वीकारने और उसकी क्षति पूर्ति करने की बहादुरी दिखाता है।

साधना की प्रतिक्रिया साधक को अपने पापों का प्रायश्चित करने का शौर्य प्रदान करती है और भविष्य में निर्मल जीवन जीने का साहस। यह सत्परिणाम हैं जो साधना यदि सच्ची हो तो उसके फलस्वरूप साधक को तुरन्त प्राप्त होते हैं।

आत्मज्ञान के अभाव में ही ईश्वर और जीव का वियोग है। अज्ञान का अन्धकार का पर्दा जितना चौड़ा होता है उतनी ही दूर परमेश्वर है। भगवान का दर्शन और अनुग्रह प्राप्त करने के लिए सिर्फ छोटी सी मंजिल पार करनी पड़ती है और वह है आत्मबोध। जिस घड़ी हम इन्द्रियों की गुलामी-वासना से मन की दासता-तृष्णा से इनकार कर देते हैं और अपने को आत्मा मानकर आत्मकल्याण के पथ पर कदम बढ़ाते हैं उसी क्षण ईश्वर की समीपता स्पष्ट हो जाती है और हृदय की हर धड़कन में उसके दर्शन होने लगते हैं।

ईश्वर भक्त केवल ईश्वर के शासन में रहता है और उसी के निर्देश पर चलता है, मन की गुलामी उसे छोड़नी पड़ती है। जो मन का गुलाम है वह ईश्वर भक्त नहीं हो सकता। जो ईश्वर भक्त है उसे मन की गुलामी न स्वीकार हो सकती है न सहन।

साधना का प्रयोजन अपने अज्ञान और अविवेक का निराकरण करना है, अपनी कामनाओं का परिशोधन और निराकरण करना है, अपने कर्तृत्व में देवता का समावेश करना और कुत्साओं, कुण्ठाओं को जड़-मूल से उखाड़ फेंकना है। साधना एक व्यायाम प्रक्रिया है जिसके अनुसार आत्मबल बढ़ाया जाता है और देव पक्ष की सत्प्रवृत्तियों का अभिवर्द्धन किया जाता है। इस आत्मपरिष्कार के फलस्वरूप उन विभूतियों की चाभी हाथ लग जाती है जो परमेश्वर ने पहले से ही हमारे भीतर रक्त भण्डार के रूप में सुरक्षित कर दी है। साधना हमारा दृष्टिकोण परिष्कृत कर देती है और अन्तःकरण में वह प्रकाश उत्पन्न करती है जिससे अपने स्वस्थ, लक्ष्य और कर्त्तव्य को समझ सकें। साधना वह शक्ति प्रदान करती है जिससे आत्मबल विकसित हो और सन्मार्ग पर चलने के लिए पैरों में अभीष्ट क्षमता रह सके। साधना साहस उपलब्ध कराती है जिसके आधार पर प्रलोभनों और आकर्षणों को दुत्कारते हुए कर्त्तव्य की चट्टान पर दृढ़तापूर्वक अग्रसर रहा जा सके और हर विघ्न-बाधा का, कष्ट-कठिनाई का धैर्य और सन्तुलन के साथ सामना किया जा सके।

साधना का वरदान महानता है। साधना जितनी ही सच्ची और प्रखर होती है उतने ही हम महान बनते चले जाते हैं; तब हमें किसी से कुछ माँगना नहीं पड़ता। ईश्वर से भी नहीं। तब अपने पास देने को बहुत होता है इतना अधिक कि उससे अपने को, अपने संसार और अपने परमेश्वर को संतुष्ट किया जा सके।

उपासना शरीर है—साधना प्राण। उपासना चिंगारी है—साधना ईंधन। उपासना संकल्प है—साधना साहस। उपासना ज्ञान है—साधन कर्म। उपासना उपकरण है—साधना कौशल। उपासना बाण है—साधना धनुष। एक के बिना दूसरे को प्रखर और फलित होने का अवसर नहीं मिलता।

उपासना थोड़े श्रम और समय में सम्पन्न हो जाती है, किन्तु साधना के लिये चिन्तन और चरित्र के क्षेत्र में घुसी हुई दुष्प्रवृत्तियों से जूझने और हटाने का एक काम ही नहीं करना पड़ता, उनके स्थान पर सत्प्रवृत्तियों को जगाने का उससे भी अधिक कष्ट साध्य कार्य भी करना पड़ता है। इस उन्मूलन और आरोपण के दुहरे प्रयोजन को पूरा करना प्रायः वैसा ही है, जैसा भगवान परशुराम के फरसा और फावड़ा चलाने के दुहरे पराक्रम का परिचय देना। उन्होंने झंखाड़ काटे और उद्यान लगाये थे। इसी पराक्रम का परिचय हर साधक को अपने जीवन क्षेत्र में देना पड़ता है। इससे कम में काम चलता नहीं। लाखों पूजा-परायण इस तथ्य के साक्षी हैं कि साधना से विरत रहने के कारण उन्हें निराशा ही हाथ लगी है।

सिद्धियाँ सुनिश्चित हैं। वे साधकों के लिये सुरक्षित हैं। अनादिकाल से लेकर अब तक के सभी सच्चे साधकों द्वारा सिद्धियाँ पाने की सचाई का पर्यवेक्षण करने पर इसी निष्कर्ष पर पहुँचना पड़ा है कि उपासनाओं का विधान और प्रकार भिन्न-भिन्न रहने पर भी सभी साधकों को अपने चिन्तन को उदात्त और चरित्र को उदार बनाना पड़ा है। व्यक्तित्व के परिष्कार और उदार लोकमंगल को अपनी प्रधान आकांक्षा मानकर चलने वाले और इसके लिये प्रबल पुरुषार्थ करने वाले

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

ही अपनी पात्रता उस स्तर तक पहुँचा सके हैं, जिस पर अन्तरिक्ष से अनायास ही दिव्य अनुदान बरसते हैं।

ऊँचे पर्वत-शिखरों पर बर्फ जमती है, खाई-खड्डों में नहीं। वर्षा का जल नदी-सरोवरों में भरता है, टीलों पर जमा होने का उपक्रम बनता ही नहीं। मंत्र सिद्धि के लिये योगी जैसी मनोभूमि और तपस्वी जैसी कार्यपद्धति अपनानी होती है। दृष्ट चिन्तन और भ्रष्ट चरित्र का भारी लदान लाद कर आत्मिक प्रगति की लम्बी छलाँग लगा सकना कठिन है। कौतुहल करना और जादू दिखाना ही अभीष्ट हो तो मूर्खों को बहकाने वाले धूर्तों की सर्वत्र भरमार पाई जा सकती है। छिट-पुट पूजा विधानों में लम्बे चौड़े चमत्कार बताने वालों की कमी नहीं। सस्ती लूट के लालची वहाँ भीड़ लगाये भी रहते हैं। जब तक संसार में सस्ते मोल में बहुत पाने की लिप्सा जीवित रहेगी, तब तक वह गोरखधन्धा भी चलता रहेगा, जो इन दिनों अध्यात्म क्षेत्र पर कुहासे की भाँति बेतरह छाया हुआ है। इस स्थिति में केवल विडम्बना ही पलती-पनपती रह सकेगी। कोई ठोस उपलब्धि किसी के हाथ लगेगी नहीं। फलतः अध्यात्म का क्षेत्र अप्रामाणिक और उपहासास्पद बनता चला जायेगा।

इस दुःखद दलदल में से आस्तिकता को उबारने की आवश्यकता है। यह तथ्य उजागर किया जाना चाहिए कि तत्त्वज्ञान और साधना विधान का समन्वय ही उन सत्परिणामों को प्रस्तुत कर सकने में समर्थ हो सकता है, जिसमें अंतरंग को स्वर्ग मुक्ति का आनन्द और बहिरंग को ऋद्धि-सिद्धि का वैभव उपलब्ध होता है। बहुमूल्य उपलब्धियाँ प्राप्त करने के लिए उसका उचित मूल्य समझने और जुटाने का प्रयत्न करना ही होगा।

सस्ते शार्टकट का कोई तरीका न इस लोक में है, न परलोक में। सस्तेपन की तलाश अनैतिक है। उचित से कम मूल्य में प्राप्त की गई वस्तुयें चोरी की समझी जाती हैं और पता चलने पर पुलिस खरीददार की खींच-कढ़ेर कर सकती है। जुआ इसलिये अपराध माना गया है कि उसमें कम देकर अधिक पाने की दुरभि-सन्धि को प्रश्रय मिलता है। अध्यात्म तत्वज्ञान का सुनियोजित विज्ञान उन्हें समुचित उपहार प्रदान करता है ? इसे सिद्ध पुरुषों के द्वारा अपनाये ऋषि जीवन को देखकर भली प्रकार जाना जा सकता है। संत-भक्तों को जो दैवी अनुदान प्राप्त होते रहे हैं, उसमें उनकी औपचारिक भावुकता को स्वल्प परिणाम में ही श्रेय दिया जा सकता है। सफलता का मूल आधार तो उनका प्रखर व्यक्तित्व और परमार्थ परायण क्रियाकलाप ही रहा है।

आत्मशक्ति का उपार्जन व्यक्ति के लिये भी श्रेयस्कर है और समाज के लिये भी मंगलमय है। सच्ची सम्पदा, आत्मशक्ति ही है। शरीर-शक्ति बुद्धि-शक्ति धन-शक्ति, के प्रतिफल सीमित हैं, साथ ही क्षणिक भी। चिरस्थाई व्यापक और प्रचण्ड परिणाम आत्मशक्ति के ही हैं। इसलिये उसका उपार्जन चरम पुरुषार्थ कहा जाता है। छोटे व्यक्ति छोटी वस्तु ढूँढ़ते, बड़े बड़ी। छोटों की दृष्टि तात्कालिक लाभ पर केन्द्रित रहती है। बड़े दूर की सोचते हैं। आत्म विकास का यही लक्षण है कि उद्देश्य ऊँचा रखा जाये, इस दृष्टि से आत्मशक्ति का उपार्जन और उसका परमार्थ प्रयोजनों में उपयोग करना ही सर्वोत्तम बुद्धिमता कही जा सकती है। विभूतियों का उपार्जन ही सच्चा वैभव है।

इन प्रयोजनों की पूर्ति के लिये उपासना के क्षेत्र में गायत्री की महत्ता अनुपम, अद्‌भुत और अद्वितीय है। उसके माहात्म्य से शास्त्रों का पन्ना-पन्ना भरा पड़ा है। ऋषियों ने अपने अनुभव से उसकी महिमा को ऐसा बताया है जिसकी तुलना में अन्य सभी उपार्जन हलके बैठते हैं। जिनने इस कल्पवृक्ष के नीचे आश्रय लिया है—जिन्होंने इस कामधेनु का दूध पिया है, उन सभी ने अपना अनुभव यही बतलाया है कि इस अवलम्बन को पकड़ने से बढ़कर श्रेय-सौभाग्य का और कोई आधार नहीं हो सकता।

इतने पर भी एक बात दर्पण की तरह स्पष्ट है कि उपासना का साधना के साथ अविच्छिन्न सम्बन्ध है। साधना के बिना उपासना का कोई चमत्कार दृष्टिगोचर नहीं हो सकता। इसलिये अनुष्ठान उपचार का महत्त्व स्वीकार करते हुये भी इस आवश्यकता को भी समझा जाना चाहिए कि आत्मिक प्रगति के लिये उपासनात्मक उपचारों से भी अधिक महत्व साधक के चिन्तन और चरित्र में उत्कृष्टता का समावेश होने का है। साधना इसी को कहते हैं। जो साधक है, उसकी उपासना फलवती हुए बिना रह नहीं सकती। इसके विपरीत जिनके जीवनक्रम में निकृष्टता और दुष्टता भरी पड़ी है जिन्हें छल-छद्म ही रुचते हैं, जिन्हें लोभ-मोह से आगे की कोई बात सूझती ही नहीं, जिनके लिये वासना और तृष्णा ही सब कुछ है—इन्हीं प्रयोजनों के लिए अपना श्रम, समय और मनोयोग लगाये रहते हैं, इन्हीं के लिए पूजा-पाठ का ढोंग रचते हैं—ऐसे व्यक्ति निष्प्राण उपासना का प्रतिफल भी निराशा के रूप में ही पाते हैं। साधना से सिद्धि का सिद्धान्त समझने वाले जानते हैं कि आस्तिकता की सफलता के साथ आध्यात्मिकता और धार्मिकता का समावेश होने की शर्त भी जुड़ी हुई है।

पुरुषार्थ का प्रतिफल सर्वविदित है। हर व्यक्ति अभीष्ट प्रयोजनों के लिए शारीरिक और मानसिक श्रम करता है, तदनुसार परिणाम भी प्राप्त करता है। सफलता छोटी हो या बड़ी उचित परिश्रम के मूल्य पर ही खरीदी जाती है। प्रगति के पथ पर चलने वाले एक के बाद दूसरा कदम उठाते हुए ही लम्बी मन्जिल पूरी करते हैं। भौतिक क्षेत्र में पग-पग पर यही सिद्धान्त चरितार्थ होता है।

अध्यात्म क्षेत्र की प्रगति के सम्बन्ध में भी यही बात है। अन्तर इतना ही पड़ता है कि भौतिक क्षेत्र में श्रम से सिद्धि के सिद्धान्त को एक शब्द बदल कर साधना से सिद्धि कह दिया जाता है। यह अन्तर भी अवास्तविक है। श्रम और साधना के बाह्य स्वरूप में यही अन्तर है तथ्यतः वे एक ही हैं। श्रम में भी शरीर और मन दोनों को जुटाना पड़ता है। साधना में भी इन दोनों का तत्परता और तन्मयता से उपयोग किया जाता है। समन्वय न होने पर दोनों ही क्षेत्र के पुरुषार्थ अधूरे रह जाते हैं। वे मन से किया हुआ श्रम अथवा मात्र मन की उड़ान किन्तु परिश्रम की उपेक्षा करने से किसी भी उत्पादन व्यवसाय में

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अभीष्ट सफलता नहीं मिलती। यही बात आत्मिक सफलताएँ, सिद्धियाँ प्राप्त करने के सम्बन्ध में भी हैं। शारीरिक ऊर्जा मन्थन को तपश्चर्या कहते हैं और मनः चेतना की प्रखरता प्रदीप्त करना योगाभ्यास कहलाता है। इन दोनों का समुचित समन्वय होने पर चेतना के क्षेत्र में एक से एक बड़ी-चढ़ी सफलता, सिद्धियाँ करतलगत होने लगती हैं।

मात्र छुट-पुट पूजा-पत्री से दैवी अनुग्रह प्राप्त करने की मान्यता बालबुद्धि की ही उपज है। पूजा विधान को बीज बोने के समतुल्य माना जा सकता है पर उतने भर से तो फसल कट कर घर में नहीं आ जाती। भूमि की तैयारी, खाद, पानी, निराई, गुड़ाई, रखवाली तथा कठोर परिश्रम लगातार कई महीनों करने के उपरान्त बीज के अंकुरित होने से लेकर फलित होने तक की प्रक्रिया पूरी होती है। विधि-विधान जान लेने पर उसकी चिह्न पूजा कर लेने पर भी न तो किसी को दैवी अनुग्रह मिल सका है और न सिद्धियाँ विभूतियाँ करतलगत हुई हैं। जिनको साधना शास्त्र में उपासना के सत्परिणामों में गिनाया गया है मात्र कलम और स्याही से ही अमर साहित्य लिखने का कार्य पूरा नहीं होता उसके लिए लेखक को ज्ञान सम्वर्द्धन की साधना भी करनी पड़ती है। मूर्तिकार मात्र छैनी हथौड़े से ही पत्थर की प्रतिमा नहीं बना देता उसे देर तक मूर्तिकला की साधना भी करनी पड़ती है। वाद्य-यंत्र अपने आप ही तो नहीं बजने लगते, उनके खरीद लेने से ही तो काम नहीं चल जाता। वादक को बजाने की प्रवीणता भी तो प्राप्त करनी पड़ती है। उपासना के विधि-विधानों की आवश्यकता एवं उपयोगिता असंदिग्ध है, उनका परित्याग करने से काम नहीं चल सकता। कलम-स्याही, छैनी-हथौड़ा वाद्य-यन्त्र त्यागकर लेखक-मूर्तिकार-वादक अपनी प्रखरता प्रदर्शित नहीं कर सकते। इसी प्रकार उपासना के विधि-विधानों का अपना स्थान और अपना महत्त्व है। फिर भी इस तथ्य की उपेक्षा न की जाये कि उनके साथ जिन माहात्म्यों का, सत्परिणामों का, उपलब्धियों का, सिद्धियों का वर्णन है उन्हें प्राप्त करने के लिए साधक का व्यक्तित्व निखरना ही चाहिए। यह आवश्यकता शरीर को तप से तपाने और मन को योग से परिष्कृत करने पर ही पूरी होती है। सोने का खरापन कसौटी पर कसने और आग पर तपाने से ही प्रमाणित होता है। साधक का ऐसा व्यक्तित्व जिस पर दैवी अनुग्रह अवतरित हो सके योग और तप की साधना के सहारे ही विनिर्मित होता है।

प्राचीन काल की आत्मिक प्रगति का इतिहास तप साधना से ही भरा हुआ है। प्रतिभाओं और विभूतियों के धनी ऋषियों की महान उपलब्धियाँ तपश्चर्या का मार्ग अपनाने पर ही सम्भव हुई थीं। यदि उनने कष्ट साध्य आत्म परिष्कार न किया होता और केवल सरल सस्ती पूजा पत्री तक सीमित रह गये होते तो सम्भवतः उनके पल्ले कुछ भी न पड़ता। दैवी अनुग्रह आकर्षित करने के लिए याचना का अनुरोध ही पर्याप्त नहीं है। देव शक्तियों को प्रभावित और आकर्षित करने के लिए साधक को वैसा चुम्बकत्व प्राप्त होना चाहिए जैसा वृक्षों में बादल को पकड़ने और बरसाने के लिए विवश कर सकने का होता है। मात्र याचना की दुर्बल वाणी दैवी शक्तियों को प्रभावित कहाँ कर पाती है ?

ब्रह्माजी ने सृष्टि तप के बल पर रची, शेषजी पृथ्वी का भार तप की शक्ति से ही उठा पाते हैं, सूर्य तप के तेज से प्रकाशवान है। इन प्रतिपादनों पर संदेह हो तो भी अध्यात्म शक्ति सम्पन्न ऋषियों और महा मानवों की विशेषताओं को उनकी तप साधना के साथ ही जुड़ा हुआ देखा जा सकता है। अन्यान्य महामानवों ने अपने-अपने ढंग की तपस्या की है और महानता के उच्च शिखर पर पहुँचे हैं। सप्तऋषियों ने तप के सहारे ही विश्व व्यवस्था का उत्तरदायित्व वहन किया था और वे अभी भी आकाश में उदीयमान हैं। असुरता के ध्वंस का अमोघ अस्त्र-ब्रह्मास्त्र महर्षि दधीचि की अस्थियों से ही बना था। बज्र बनाने के लिए इससे अधिक उपयुक्त धातु संसार में अन्यत्र कहीं थी ही नहीं। भौतिक समृद्धि और आत्मिक शक्ति देने वाली भगवती गंगा का अवतरण भागीरथ की तप साधन से ही सम्भव हुआ। इससे कम में गंगा को स्वर्ग से धरती पर लाने वाला अनुरोध काम कर ही नहीं सकता था। आकाशस्थ ध्रुव की परिक्रमा अभी भी असंख्यों ग्रह नक्षत्र निरन्तर करते हैं। इतना गौरव तप साधना के बिना अन्य किसी उपाय से उपलब्ध हो नहीं सकता था। देव पक्ष के लोगों ने, आत्मिक और दैत्य वर्ग के लोगों ने भौतिक बल प्राप्त करने में तप साधना का ही समान रूप से अवलम्बन किया है। आग पर तपाने से भोजन निर्माण से लेकर धातुओं को ढालने एवं रसायनें बनाने जैसे असंख्यों आश्चर्यजनक कार्य पूरे होते हैं। जीवन को तपाने से उसमें वह विशेषताएँ उत्पन्न की जा सकती हैं जिनके सहारे सामान्य को असामान्य—तुच्छ को महान, अणु को विभु, मनुष्य को देवता और आत्मा को परमात्मा बनाने का अवसर मिल सके।

जिस शक्ति के सहारे युग परिवर्तन की महान प्रक्रिया सम्पन्न होनी है वह भौतिक साधनों के सहारे नहीं वरन् प्रचंड अध्यात्म ऊर्जा के साथ ही प्रकट होगी। अणुशक्ति से व्यापक विनाश की आशंका से सभी परिचित हैं। विभु की आत्मा की सामर्थ्य का यदि उच्चस्तरी प्रकटीकरण सम्भव हो सके तो उसके द्वारा विकास का प्रयोजन पूरा होने में भी विलम्ब न लगेगा। मनुष्य में देवत्व के उदय का लक्ष्य भौतिक नहीं, आत्मिक है। उसके लिए साधन उसी स्तर के चाहिए। इसके लिए आवश्यक उत्पादन साधन और तपश्चर्या के माध्यम से ही सम्भव है। सामूहिक साधना के रूप में जनसाधारण को इसके लिए प्रेरित किया जाता है। नवरात्रियों के सामूहिक साधना सत्र, मासिक साधना सत्र, जैसे सम्मिलित साधन प्रयास अपनी जगह अत्यन्त उपयोगी हैं। पर बात उतने से ही नहीं बन जाती। इसे एक उपयोगी पक्ष भर कह सकते हैं। सार्वजनिक सहयोग से उत्पन्न आत्मिक ऊर्जा का भी युग परिवर्तन के महान प्रयोजन में महत्त्वपूर्ण योगदान रहना निश्चित है। इतने पर भी वह पूर्ण नहीं है। उसके लिए अतिरिक्त तपश्चर्या के विशिष्ट आधार खड़े करने होंगे। महर्षि रमण, योगिराज अरविन्द, जैसे तपस्वियों ने पिछले दिनों अपनी प्रचंड तप साधना से वातावरण को गरम करके स्वतन्त्रता की आकांक्षा प्रचण्ड करने और सफलता की परिस्थितियाँ विनिर्मित करने में परोक्ष किन्तु अत्यन्त महान भूमिका निबाही थी। अपनी पीढ़ी के भारत का,

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

विश्व का, मानव जाति का, सभ्यता और संस्कृति का भविष्य उज्ज्वल बनाना है। इस प्रयोजन से भौतिक क्षमताओं को योजित कर सकने वाली प्रतिभाएँ अपना काम करेंगी—कर भी रही हैं। किन्तु यह भुला न दिया जाये कि मूल भूमिका आत्मशक्ति से उत्पन्न प्रचण्ड ऊर्जा की ही हो सकती है। यदि यह उत्पन्न न हो सकी तो अमेरिका की तरह सम्पन्नता, ब्रिटेन की तरह चतुरता, जर्मनी की तरह कर्मठता, रूस की तरह दृढ़ता, जापान की तरह कुशलता तो उग सकेगी किन्तु मूल आवश्यकता का कोई समाधान न निकलने पर अन्तःकरण यदि स्वार्थी और निष्ठुर ही बने रहे तो भौतिक प्रगति के चरम सीमा तक पहुँच जाने पर भी कोई लाभ न होगा। वरन् साधन बढ़ जाने पर उनके दुरुपयोग का खतरा भी बढ़ जायेगा जैसा कि वैज्ञानिक प्रगति ने आज सर्वनाश की विभीषिका सामने ला खड़ी की है।

युग परिवर्तन का सूत्र संचालन भौतिक साधनों से भौतिक योजनों के आधार पर ही हो रहा है। अभियान के प्रचार प्रसार में भौतिक सामग्री का उपयोग भी हो रहा है। उसकी आधार शिला तप साधना जैसे सूक्ष्म तत्वों पर रखी हुई है। हिमालय के जिस केन्द्र में उसका उद्गम स्रोत है उसे विशुद्ध तप ऊर्जा के रूप में ही समझा जा सकता है। अभियान के सूत्र संचालन का भार जिन हाथों पर है वे भी निरन्तर तप साधना की गर्मी से ही अपने कार्य भार को वहन करने की सामर्थ्य प्राप्त करते हैं। गायत्री और यज्ञ को माध्यम बनाकर, गायत्री परिवार और युग निर्माण परिवार के लोगों को प्रधान प्रेरणा साधना में संलग्न होने की ही दी जाती है। यह सार्वजनिक साधना हल्के स्तर की होती हैं किन्तु मूलतः है वह तपश्चर्या एवं योग साधना का ही आरम्भिक प्रकरण। गायत्री उपासना का सार्वजनिक प्रचलन जिस आधार पर किया गया है उससे योग और तप के दोनों ही तत्व हलके-फुलके रूप में विद्यमान हैं। अनुष्ठान पुरुश्चरणों की प्रक्रिया में उपवास ब्रह्मचर्य आदि की कितनी ही प्रतीक्षाएँ जुड़ी हुई हैं। इनमें तपश्चर्या के आरम्भिक चरणों और सूत्रों का समावेश देखा जा सकता है।

योग साधना और तपश्चर्या प्रत्येक मनुष्य की आध्यात्मिक आवश्यकता है। उसका नित्य नियम में उसी प्रकार समावेश रहना चाहिए जैसा कि आहार और निद्रा का नित्य कर्म में सुनिश्चित स्थान रहता है। मन को परिष्कृत करना ही योग है और शरीर को अनुशासित करने की क्रिया तप कहलाती है। उसका आरम्भ हलका हो सकता है और ऊँचे कठिन से कठिन स्तर तक पहुँच सकता है।

योग और तप के बारे में एक भारी भ्रान्ति यह है कि यह सब घर छोड़ने, बाल बच्चों को त्यागने, वन जंगलों में रहने, आजीविका छोड़ कर भिक्षा माँगने, रंग-बिरंगे कपड़े पहनने, जटा कमण्डल धारण करने जैसे विभिन्न उपचार अपनाने से ही सम्भव हो सकता है। यह भ्रम अवास्तविक है। विशिष्ट व्यक्तियों को विशिष्ट वैज्ञानिकों की तरह विशिष्ट प्रयोगों के लिए वैसा ही करना पड़ सकता है। पर सर्वसाधारण के लिए वैसी विचित्रता अपनाने की तनिक भी आवश्यकता नहीं है। सामान्य गृहस्थ जीवन के साथ योग और तप के समन्वय की संगति पूरी तरह बैठ सकती है। तपोवन में घर बनाना विशिष्ट परिस्थितियों के व्यक्तियों का काम है। घर को तपोवन हर कोई बना सकता है। यह भ्रम भी अवास्तविक है कि आत्म परिष्कार का मार्ग अपनाने पर भौतिक जीवन नीरस निरानन्द हो जाता है। सत्य और तथ्य इसके सर्वथा विपरीत हैं। उद्विग्नता, खिन्नता और विपन्नता वस्तुतः निकृष्ट चिन्तन और भ्रष्ट कर्तृत्व की प्रतिक्रियाएँ हैं। द्वेष, दुर्भाव इसी निकृष्टता की कीचड़ में पलते हैं। रोष असन्तोष का कारण दुर्बुद्धि के अतिरिक्त और कोई नहीं है। पराभव और दारिद्रय तो आत्मिक पिछड़ेपन का चिह्न है। जहाँ आन्तरिक उत्कृष्टता का जितना अस्तित्व होगा वहाँ उतनी ही बड़ी स्नेह सौजन्य की निर्झरिणी बह रही होगी। सन्तोष और हर्षोल्लास वहाँ उसी अनुपात में बिखरा हुआ दृष्टिगोचर होगा। व्यक्ति का वास्तविक उत्कर्ष अध्यात्म सम्पदाओं पर अवलम्बित है। जहाँ आन्तरिक विभूतियाँ होंगी वहाँ बहिरंग सम्पदाओं की भी कमी न रहेगी। निकृष्टता के मार्ग पर चलने में लाभ दीखता भर है वस्तुतः उसमें पग-पग पर जलन और पतन ही काँटों की तरह चुभता है। श्रेष्ठता के प्रकाश की ओर चलने पर सुविधाओं की छाया पीछे चलती है। निष्कृष्टता की छाया के पीछे दौड़ते रहने से थकान, निराशा और खीज के अतिरिक्त और कुछ पल्ले नहीं पड़ता।

आत्मिक प्रगति के लिये साधना की आवश्यकता

निम्न योनियों का गुजारा तो सामान्य शरीर निर्वाह भर का होता है, उसमें संकल्पित प्रगति तो कम ही दृष्टिगोचर होती है, पर खीज, असन्तोष जैसे कोई कारण नहीं होते। इस दृष्टि से विकसित समझा जाने वाला मनुष्य अविकसित कहे जाने वाले प्राणियों से भी अधिक घाटे में रहता है। अन्य प्राणी आत्मग्लानि एवं आत्मप्रताड़ना जैसी पीड़ाएँ नहीं सहते, किन्तु मनुष्य इस जन्म में भी विक्षोभों और पीड़ाओं से संत्रस्त नारकीय जीवन जीता है और भविष्य भी अन्धकारमय बनाता है।

विचारणीय प्रश्न यह है कि क्या मनुष्य को भगवान् ने ऐसी ही विडम्बना भरी स्थिति से उलझा कर भेजा है जिसमें वह एक ओर तो सृष्टि का मुकटमणि कहलाये और दूसरी ओर अविकसित कहे जाने वाले प्राणियों की तुलना में भी अधिक व्यथा-वेदनाएँ सहते हुए जीवन गुजारे ?

खोजने पर एक ही उत्तर निकल कर सामने आता है कि ईश्वर के पास जो कुछ है वह सब कुछ उसने बीज रूप से मनुष्य को सौंप दिया है और यह स्वतन्त्रता दी है कि इन साधारण और असाधारण उपलब्धियों में से जो भी, जितना भी चाहे उतनी प्रसन्नतापूर्वक बिना किसी रोक-टोक के प्राप्त कर सकता है। शर्त एक ही है कि अपनी पात्रता सिद्ध करे और उसी अनुपात से प्रगति पथ पर अग्रसर कराने वाले अनुदान प्राप्त करता चला जाये। सामान्य गृहस्थ में भी ऐसा ही होता है। साधन सम्पन्न पिता के मन में अपनी सम्पदा सन्तान को देने का निश्चय रहता है किन्तु उनमें विकसित होने और

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उत्तरदायित्व सँभालने की क्षमता जैसे-जैसे बढ़ती है, उसी अनुपात से साधन एवं अधिकार हस्तांतरित किये जाने लगते हैं। पागल, आवारा या ऐसी ही अन्य हीनताओं से ग्रसित सन्तान के प्रति समुचित ममता होते हुए भी ऐसा कुछ दिया सौंपा नहीं जाता जो महत्त्वपूर्ण कहा जा सके। इसमें पिता का पक्ष-पात या विद्वेष नहीं, विवेक ही काम कर रहा होता है। स्पष्ट है कि यदि पात्रता विकसित न होने पर भी निर्वाह से अधिक अनुदान दिये जायेंगे तो उनका दुरुपयोग होगा। इसमें प्राप्तकर्ता और दाता दोनों का ही अहित है। बारूद का थैला बच्चों के हाथ में सौंप दिया जाये तो बच्चे उससे फुलझड़ी छुड़ाने का लोभ संवरण कर नहीं सकेंगे और बेतरह जल मरेंगे। सौंपने वाला बदनाम होगा और अबोधों को न देने लायक वस्तु देकर उनके विनाश का निमित्त बनने पर पश्चाताप भी करेगा। बारूद तथा समीपवर्ती वस्तुएँ जल जाने की आर्थिक हानि तो स्पष्ट है ही।

भगवान ने मानवी सत्ता में अजस्र अनुदानों के भाण्डागार भर दिये हैं। साथ ही ऐसी स्वसंचालित व्यवस्था भी जोड़ दी है कि जितनी पात्रता का प्रमाण दे वह उतनी ही मात्रा में उतने ही स्तर के अनुदान प्राप्त कर सके। सरकारी नियुक्तियों और पदोन्नतियों में यही सिद्धान्त काम करता है। योग्यता का प्रमाण देने, कुशलता प्रकट करने और प्रतिस्पर्धा में सफल होने की कसौटियों पर कसे जाने के पश्चात् ही नियुक्तियाँ होती हैं। पदोन्नति में भी अनुभव काल और क्रिया-कौशल को ध्यान में रखा जाता है। वेतन की न्यूनाधिकता, पद सम्मान आदि का निर्धारण इसी पात्रता की कसौटी पर कसने के उपरान्त ही किया जाता है, कृपापूर्वक किसी को कुछ दिया जाने लगे तो इसमें पक्ष-पात का दोषारोपण किया जाने लगेगा। खुशामद पसन्द और रिश्वतखोर लोग जिस पर अनुपयुक्त कृपा बरसा देते हैं, उसके प्रति तथा अपने प्रति जन आक्रोश ही उभारते हैं। यहाँ न्याय और औचित्य की ही प्रतिष्ठा है यदि भगवान भी अहेतुकी कृपा बरसाने लगे तो उतने उच्च पद पर बने रहने के अधिकार से उन्हें भी वंचित होना पड़ेगा। विश्व की स्वचालित औचित्य गरिमा उनके प्रभुत्व को भी चुनौती देने लगेगी। स्पष्ट है कि विश्व व्यवस्था बनाने वाले भगवान स्वयं ही अव्यवस्था फैलाने के दोषी नहीं बन सकते।

मनोयोग पर अध्ययन करने वाले छात्र ऊँची श्रेणी में उत्तीर्ण होते हैं, परिश्रमी किसान अच्छी फसल काटते हैं, कर्मठ शिल्पी यशस्वी बनते हैं। उत्साही व्यायाम परायण पहलवान कहलाते और कुश्ती पछाड़ते हैं। सूझ-बूझ और तत्परता के बल पर व्यापारिक सफलताएँ मिलती हैं, निष्ठावान साधकों को सिद्धियाँ उपलब्ध होती हैं। तन्मय कलाकार दर्शकों का मन मोहते हैं, साहसी योद्धा विजयश्री का वरण करते हैं। विभिन्न क्षेत्रों की सफलताएँ इस बात पर निर्भर रहती हैं कि प्रस्तुत प्रयोजनों के लिए कितनी तत्परता एवं तन्मयता बरती गई। कितने धैर्य, साहस और श्रम का नियोजन किया गया ?

भौतिक क्षेत्र के सभी पक्षों में योग्यता एवं दक्षता के मूल्य पर प्रगतिशील उपहार खरीदे जाते हैं। भिक्षुकों तक को दानी लोग इस आधार पर न्यूनधिक देते हैं कि किस भिक्षुक को कितनी आवश्यकता है और किसे कितना देने पर उसका क्या उपयोग होगा ? सब भिक्षुकों को कोई अविवेकी दानी ही समान मात्रा में सहायता देगा। आमतौर से गिड़गिड़ाहट और आग्रह पर कम और याचक की स्थिति पर ही अधिक ध्यान दिया जाता है।

अध्यात्म क्षेत्र भी यही सिद्धान्त काम करता है। भगवान से या देवताओं से अनुनय विनय के आधार पर वरदान प्राप्त होने की मान्यता भ्रमपूर्ण है। वे शक्तियाँ इतनी उदात्त हैं कि शब्द जंजाल से अथवा छुट-पुट उपहारों से उन्हें फुसलाना किसी भी प्रकार सम्भव नहीं हो सकता। जो देव प्रकृति को इतनी घटिया मानते हैं वे परोक्ष रूप से उन्हें ऐसे अबोध बालकों की स्थिति में खड़ा कर देते हैं जिन्हें वस्तुस्थिति से, औचित्य से कोई वास्ता नहीं है। जो प्रार्थना मात्र से प्रभावित होकर मनोकामना पूर्ति का वरदान देने लगें, वे पात्रता के सिद्धान्त को ही समाप्त करेंगे। देवता या भगवान यदि मनुष्यों से अधिक बुद्धिमान और आदर्शवादी हैं, तो उनसे इस प्रकार के अंधेर की आशा नहीं करनी चाहिए।

आत्मिक क्षेत्र की ऐसी असंख्य उपलब्धियाँ हैं जिनके सहारे मानवी व्यक्तित्व असाधारण रूप से परिष्कृत होता है। उस उपलब्धि के सहारे उन्हें एक से एक बढ़ी-चढ़ी सांसारिक सफलताएँ मिलती हैं और गुण, कर्म, स्वभाव की विभूतियों से सुसम्पन्न होने के कारण उन्हें महामानवों के स्तर पर पहुँचने का सौभाग्य मिलता है। कहना न होगा कि पात्रता अपने अनुरूप सत्परिणाम सुनिश्चित विश्व व्यवस्था के कारण सहज ही उपलब्ध करती चली जाती है।

पात्रता का विकास है—वह उपलब्धि जिसके लिए 'साधना' के आधार पर आत्म-परिष्कार के प्रबल प्रयत्न सम्पन्न किये जाते हैं। ईश्वर की प्रसन्नता इसी उपाय से सम्भव हो सकती है। उन्हें अभीष्ट वरदान देने के लिए एकमात्र इसी शर्त पर सहमत किया जा सकता है। साधना का स्वरूप, विधि विधान, क्रियाकृत्य समझने से पहले हमें उसके उद्देश्य को समझना चाहिए। तथ्य से विपरीत स्तर की मान्यता बना लेने से नये-नये किस्म की भ्रान्तियाँ उत्पन्न होंगी और सफलता न मिलने पर तरह-तरह के संशयों और अविश्वासों के जंगलों में भटकना पड़ेगा।

साधन को बाजीगरों जैसी हाथ की सफाई वाली क्रिया करके तरह-तरह के अजूबे दिखाने, बनाने वाली कौतुक करतूत नहीं मानना चाहिए। आमतौर से लोग साधना के नाम पर प्रयुक्त होने वाले विधि-विधानों को ही सब कुछ समझते हैं और असफलता मिलने पर इन्हीं विधानों में कोई खोट रह जाने की बात सोचते हैं। यह तथ्य भुला दिया जाता है कि वाणी के उच्चारण, अंगों के संचालन एवं पूजा वस्तुओं के उपयोग भर से आध्यात्मिक क्षमताएँ विकसित होने तथा उनके सत्परिणाम सामने आने का लाभ नहीं मिल सकता है। क्रिया-कृत्यों का महत्व तो है, पर उनका उद्देश्य व्यक्तित्व के स्तर को उत्कृष्ट बनाने के लिए प्रेरणात्मक आधार खड़े करना है। यदि निकृष्ट चिन्तन और घृणित चरित्र की स्थिति में सुधार, परिवर्तन न हो

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

तो फिर समझना चाहिए कि पूजा-पाठ के उपचार मात्र कौतुक कौतूहल ही बनकर रह गये। घिनौने व्यक्तित्व किसी दैवी शक्ति के प्रिय पात्र नहीं बन सकते उनका कोई साधन विधान आत्मशक्ति के अभिवर्धन में सहायक नहीं हो सकता। इसके बिना वे लाभ मिल ही नहीं सकते जो आध्यात्मिक उपलब्धियों के नाम से जाने जाते हैं। धूर्तता के आधार पर जादूगरों जैसी विडम्बना खड़ी करने में पूजा-पाठ या देवी-देवता को भी कोई माध्यम बनाले उस आधार पर भोले लोगों को सरलतापूर्वक ठग ले यह बात दूसरी है।

व्यक्ति की अन्तरंग सत्ता में ऐसे बीज तत्व मौजूद हैं जिन्हें विकसित करने पर प्रतिभाशाली बना जा सकता है। प्रयत्न और पुरुषार्थ के बल पर पिछड़ी परिस्थितियों में पड़े हुए व्यक्ति भी आगे बढ़े, ऊँचे चढ़े और उन्नति के उच्च शिखर पर पहुँचे हैं। इन्हीं तत्वों को अध्यात्म प्रयोजनों के लिए भी प्रयुक्त किया जा सकता है। प्रतिभाशाली व्यक्तित्व जनसहयोग और अभीष्ट साधनों को आकर्षित करते हैं। परिष्कृत अन्तःकरण का चुम्बकत्व निखिल ब्रह्माण्ड में संव्याप्त ब्रह्म चेतना के प्रवाह में से अभीष्ट धाराएँ अपनी ओर मोड़ सकता है। इस आन्तरिक आदान-प्रदान से साधक को आध्यात्मिक विभूतियों से धनी बनने का अवसर मिलता है। खिले फूल पर भौंरे, तितली, मधु मक्खी जैसे जीव-जन्तुओं से लेकर बाल वृद्ध सभी का मन ललचाता है। अन्तःकरण को कषाय-कल्मषों से मुक्त कर लेने पर ही सात्विक सौन्दर्य उभरता है। उस पर दैवी शक्तियाँ सहयोग के लिए अनायास ही बरसने लगती हैं। भूमि में पड़े हुए बीज, खाद पानी पाकर समयानुसार अंकुरित, पल्लवित, पुष्पित और फलित होते चले जाते हैं। व्यक्ति के अन्तराल में छिपी ईश्वरीय क्षमताएँ भी जब जाग्रत और परिपक्व होती हैं तो लगता है सामान्य व्यक्ति असामान्य बन गया है। साधक के सिद्ध रूप में विकसित होने की प्रक्रिया भी यही है।

भूमि के मौलिक तत्व बीज सत्ता के साथ घुल-मिलकर पौधा बनते हैं। इसमें भूमि और बीज की ही भूमिका प्रधान है। जीव सत्ता अपने को परिष्कृत करके ब्रह्म सत्ता से आदान-प्रदान कर सकने की स्थिति में पहुँचा दे सिद्ध यही है। इसी के फलस्वरूप साधारण को असाधारण बनने का अवसर मिलता है किन्तु इसके लिए भी साधनों की आवश्यकता रहेगी ही। कृषक को बैल, हल, कुदाल, श्रम, खाद, पानी, रक्षण आदि के साधन जुटाने पड़ते हैं अन्यथा भूमि और बीज में उपयुक्त क्षमता रहते हुए भी पौधे का उत्पादन और विकास सम्भव न हो सकेगा। जीव और ब्रह्म के बीच आदान-प्रदान का पथ प्रशस्त करने में साधनों की आवश्यकता पड़ती है। उन क्रिया-कृत्यों का महत्व कम नहीं किया जा सकता। अन्न से पेट भरता है, यह सत्य है, पर सूखे अन्न को निगलना और पचाना भी सम्भव नहीं है उसके लिए पाकशाला का पूरा सरंजाम इकट्ठा करना पड़ता है और पाक विद्या सीखनी पड़ती है। आत्मिक प्रगति के लिए कर्मकाण्डों की, साधना विधानों की भी अनिवार्य आवश्यकता रहेगी। युद्ध में आघात प्रतिघात योद्धाओं के बीच होते हैं, पर उसमें अस्त्र-शस्त्र भी तो चाहिए। योग और तप-परक साधना विधानों की उपयोगिता इसी स्तर की है।

तथ्य समझ लेने से भ्रम जंजाल में भटकना नहीं पड़ता है। आत्मकि प्रगति की उपलब्धियाँ भौतिक सम्पदाओं की तुलना में हर दृष्टि से अत्यधिक है, इसके लिए एकमात्र उपाय कषाय-कल्मषों का परिशोधन एवं उत्कृष्ट सत्प्रवृत्तियों का अभिवर्द्धन ही है। जितनी जिसे इस दिशा में सफलता मिलेगी वह उतना ही आत्म-बल सम्पन्न होता चला जायेगा और विभूतिवान बनेगा, इसके लिए साधनात्मक उपचारों की जो आवश्यकता बताई गई है, वह उचित भी है और उपयोगी भी।

साधना आवश्यक है, अनिवार्य है

मनुष्य की अनेक विशेषताओं में एक विशेषता यह भी है कि उसे जिस ढाँचे में ढाला जाये उसमें वह ढल सकता है। अन्य प्राणियों में यह विशेषता नहीं है। सिंह, अजगर, बाज आदि हिंसक प्राणी अहिंसक नहीं बन सकते। गाय, हिरन, कबूतर, तितली आदि प्राणी अपनी अहिंसक प्रकृति को नहीं बदल सकते। अन्य सभी जीव जन्तु अपनी एक निश्चित प्रकृति लेकर आते हैं और साधारणतः उसी स्थिति में जीवनयापन करते हैं। किन्तु मनुष्य पर यह बात लागू नहीं होती। वातावरण परिस्थिति और प्रयत्न से उसकी प्रकृति बनती है और बिगड़ती है। एक मनुष्य से दूसरा मनुष्य शारीरिक दृष्टि से सूरत शक्ल से तो बहुत कुछ मिलता जुलता है पर प्रकृति, योग्यता, क्षमता, गुण, स्वभाव, दृष्टिकोण आदि मानसिक परिस्थितियों में भारी अन्तर देखा जाता है। एक का जीवन देवता जैसा है तो दूसरे का दानव जैसा। एक उन्नति के शिखर पर तेजी से चढ़ता चला जा रहा है तो दूसरा पतन के गर्त में द्रुत गति से गिर रहा है। एक ने पुरुषार्थ का मार्ग अपनाकर अपनी शक्तियों को विकसित करके आश्चर्यजनक प्रगति की है तो दूसरा आलस्य और प्रमाद में पड़ा हुआ दीन-हीन बन रहा है।

प्रगति और पनान के अनेक क्षेत्र हैं। परिस्थितियों के आधार पर मनुष्य उनमें से किसी भी ओर अग्रसर होता है और जिस दिशा में कदम बढ़े थे उसी के अनुरूप बनता और ढलता चला जाता है। प्रयत्नों के द्वारा मनुष्य को ढाला जा सकता है, ढल सकता है। इस ढलने और ढालने की क्रिया को साधना कहते हैं। व्यक्ति के निर्माण की विद्या को साधना कहा जाता है। इसे ही संस्कृति भी कहते हैं। ऐसा मनुष्य भी एक पशु ही है, उसमें भी सब पाशविक दुर्गुण मौजूद हैं पर साधना द्वारा संस्कृति के आधार पर उस पर संस्कार डाले जाते हैं। तभी वह संस्कृत एवं सभ्य कहलाने का अधिकारी बनता है। इसी प्रयत्न से उसकी प्रसुप्त स्थिति में पड़ी हुई महान विशेषताएँ विकसित होती हैं।

जैसे तैसे जीवित रहने और दिन काटने की स्थिति तो साधारण रीति से भी प्राप्त हो जाती है पर यदि किसी दिशा में प्रगति करनी हो तो प्रयत्न पूर्वक साधना का मार्ग अपनाना पड़ता है। ढालने और ढलने की प्रक्रिया को अपनाना पड़ता है। शारीरिक दृष्टि से उन्नति करने के इच्छुक व्यायाम की साधना करते हैं और स्थिर चित्त एवं उत्साह के साथ दीर्घ काल तक उसी ओर लगे रहे तो एक दिन अच्छे खिलाड़ी, अच्छे पहलवान, अच्छे नट और सुन्दर सुडौल निरोग दीर्घायु बनने में

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सफल होते हैं। शिक्षा की दृष्टि से उन्नति करने के इच्छुक शिक्षालयों में प्रविष्ट होते हैं, शिक्षकों का मार्गदर्शन ध्यान पूर्वक ग्रहण करते हैं, पाठ्यक्रम को हृदयंगम करने के लिए दिन-रात पढ़ते हैं, इस प्रकार प्रयत्न करते-करते वे एक दिन विद्वान बन जाते हैं। आर्थिक क्षेत्र में प्रगति करने वाले व्यापार आदि के साधन जुटाते हैं, उनकी बारीकियों को समझने के लिए आवश्यक शिक्षण प्राप्त करते हैं, ग्राहकों को आकर्षित करने की व्यवस्था सीखते हैं। भारी दौड़-धूप करते हैं, प्रतिस्पर्धा में टिके रहने की कुशलता बरतते हैं, अपव्यय को रोकते हैं तब कहीं इस अर्थ साधना से धनवान बनने की सिद्धि प्राप्त करते हैं।

इन्जीनियर, डॉक्टर, शिल्पी, मेकेनिक, वैज्ञानिक संगीतज्ञ, गायक, नर्तक, कलाकार, कवि, लेखक आदि की विशेषताएँ अनायास ही किसी को प्राप्त नहीं हो जातीं वरन् इसके लिए चिरकाल तक, निरन्तर प्रयत्न करते रहना पड़ता है, तब कहीं यह सफलताएँ उपलब्ध होती हैं। यदि यह प्रयत्न एवं साधन न जुटे तो इन विशेषताओं को प्राप्त कर सकना भला किसी के लिये कैसे सम्भव हो सकता है ?

जिस प्रकार मनुष्यों में शारीरिक दृष्टि से साधारण-सा ही अन्तर होता है, इसी प्रकार मानसिक दृष्टि से भी थोड़ा-सा ही अन्तर है। यदि हम किसी को पतनोन्मुख देखते हैं तो इसका कारण उसकी साधना एवं साधन ही हैं। व्यक्ति गीली मिट्टी के समान है निश्चय ही वह साधनों के आधार पर, साधनाओं के आधार पर ढाला जाता है, ढलता है।

उपर्युक्त भौतिक क्षेत्रों में जिस प्रकार साधना एवं साधनों की आवश्यकता होती है उसी प्रकार गुण, स्वभाव, आदत, चरित्र, आचरण, आदर्श, विश्वास, भावना, दृष्टिकोण आदि मानसिक विशेषताओं के निर्माण में भी साधना एवं साधन ही प्रधान कारण हैं। यदि उनकी ओर उपेक्षा रखी जाये तो असंस्कृत स्थिति ही बनी रहेगी। जिनकी मनोभूमि का सावधानीपूर्वक निर्माण नहीं हुआ है, वे अपने प्रयत्नों से किसी भौतिक सफलताओं में सफल भले ही हो गये हों, आन्तरिक दृष्टि से हीन दशा में ही पड़े रहेंगे और हीनता उन्हें कभी भी महान पुरुष की, सभ्य नागरिक की, श्रेष्ठ मानव की स्थिति में न पहुँचने देगी। यह अभाव मानव जीवन का सबसे बड़ा अभाव है।

साधना मानव जीवन की एक अनिवार्य आवश्यकता है। व्यक्तित्व को किसी दिशा में ढालने का कार्य साधना द्वारा ही सम्पन्न होता है। कमाऊ और सम्मानास्पद कार्यों में ही नहीं चोरी, डकैती, जेबकटी, ठगी जैसी बुराइयों में माहिर बनने के लिए उन कार्यों का अनुभव एवं शिक्षण प्राप्त करना होता है, उनके लिए भी साधना ही अभीष्ट है। दिन काटने की हीन स्थिति से आगे बढ़कर किसी ने यदि भली या बुरी दिशा में कुछ प्रगति की है तो उसे उस दिशा में साधना अवश्य करनी पड़ी है। साधना ही वह कल्पवृक्ष है जिसकी छाया में मनुष्य के विविध मनोरथ पूरे होते हैं।

सुख प्राप्त करने के लिए अनेक उपकरण जुटाने में लोग व्यस्त हैं, उनके लिए साधनाएँ भी प्राप्त कर रहे हैं और सफलताएँ भी प्राप्त कर रहे हैं इससे एक क्षण के लिये लगता है कि बुद्धिमता की मात्रा इन दिनों काफी बढ़ी है। पर एक अत्यन्त महत्वपूर्ण आवश्यकता की ओर जन साधारण की घोर उपेक्षा देखकर दूसरे ही क्षण ऐसा लगता है मानो दूरदर्शिता का, सूक्ष्म दृष्टि का दिवाला ही निकल गया हो। मनुष्य का वास्तविक विकास उसके सद्गुणों, उच्च विचारों और सुदृढ़ आदर्शों पर निर्भर रहता है। यदि यह निर्माण न हुआ तो धन, पद, स्वास्थ्य, योग्यता आदि की दृष्टि से कोई व्यक्ति कितना ही बढ़ा-चढ़ा क्यों न दीखे, अपने आप में सदा असंतुष्ट रहेगा और उसके सम्पर्क में आने वाले लोग खिन्न एवं क्रुद्ध ही रहेंगे। दुर्गुणी, दुर्भावना युक्त, दुश्चरित्र, आदर्शहीन, स्वार्थी, अशिष्ट, अहंकारी, बुरी आदतों में ग्रसित, दुर्व्यसतना, आलसी, प्रमादी लोग अपनी भौतिक योग्यताओं के आधार पर बाहर से सफल भले ही दीखें, वस्तुतः वे नितान्त असफल ही होते हैं। न तो उनका कोई सच्चा मित्र होता है और न उन्हें किसी का स्नेह सद्भाव ही प्राप्त होता है। अपने दुर्गुण उन्हें भीतर ही भीतर बुरी तरह जलाते रहते हैं। कभी भी उन्हें शान्ति और सन्तोष के सौभाग्यपूर्ण स्वर्ग का दर्शन नहीं होता है। उनकी अन्तःस्थिति श्मसान की तरह दुर्गन्धित धुँए से भरी और सुलगती-सी बनी रहती है। ऐसे लोग यदि बाहरी दृष्टि से कुछ सफल भी हों तो वह सफलता किस काम की?

आन्तरिक क्षेत्र का असंस्कृत, अव्यवस्थित पड़ा रहना, उनमें दुर्भावनाओं और पतित आदर्शों के झाड़-झंखड़ उपज पड़ना सब दृष्टियों से दुर्भाग्यपूर्ण है, इन परिस्थितियों में पड़ा हुआ मनुष्य व्यक्ति रूप से कभी भी सुख शान्ति, आनन्द, उल्लास एवं सन्तोष का अनुभव नहीं कर सकता। इस अभाव के रहते हुए उसकी सारी सफलताएँ और उपार्जित सम्पदाएँ एक प्रकार से व्यर्थ ही रहती हैं।

सामाजिक दृष्टि से विचार किया जाये तो भी अविकसित, असंस्कृत एवं पतित मनोभूमि के लोग समाज के लिए कलंक मानवजाति के लिए अभिशाप और राष्ट्र के लिए भार रूप ही हैं। किसी भी देश और समाज की वास्तविक सम्पदा उसके सभ्य नागरिक एवं उच्च आदर्श वाले महापुरुष ही होते हैं। उन्हीं से किसी देश का इतिहास बनता और गौरव बढ़ता है। शान्ति और सुव्यवस्था भी ऐसे ही लोगों से स्थिर रहती है। पर यदि समाज में बेईमान, निकम्मे, भ्रष्टाचारी, स्वार्थी लोगों की भरमार हो जाये तो फिर उसकी दुर्गति होना निश्चित ही है। कानून और शासन के द्वारा व्यक्ति की आन्तरिक दुष्टता पर अंकुश कहाँ तक लगेगा ? न्याय और शासन का कार्य भी तो वे असंस्कृत मनोभूमि के लोग ही जब चलाने वाले हैं तो उनके द्वारा भी कब, कुछ बनने वाला है। सामाजिक पतन को कानूनों के बल पर प्रजातन्त्र व्यवस्था में नहीं रोका जा सकता। निरंकुश अधिनायकवाद में अत्यंत कठोर दंड व्यवस्था का आशंका स्थापित करके भले ही उन हीन मनोभूमि के लोगों को किसी हद तक काबू में रखा जा सके पर स्वाभाविक सद्भावना का पुण्यप्रसाद तो तब भी परिलक्षित न होगा।

वैयक्तिक और सामूहिक सुखशान्ति की सच्ची स्थापना सदाचार से ही सम्भव है और वह सदाचार स्वभावतः तो किसी विरले को ही प्राप्त होता है। साधना और साधनों से ही उसे

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

उत्पन्न करना पड़ता है। प्राचीन काल में इस ओर अत्यधिक ध्यान दिया जाता था। उस समय यह भली भाँति समझा जाता था कि सद्गुणों और उच्च आदर्शों की मनोभूमि बने बिना कोई व्यक्ति न' तो अपने आप में सुखी रह सकता है और न समाज की सुव्यवस्था में कोई योग दे सकता है, इसलिए सबसे पहले सबसे आवश्यक कार्य यह समझा जाता था कि व्यक्ति को आन्तरिक दृष्टि से सुसंस्कृत बनाया जाये, उसकी मनोभूमि को श्रेष्ठ संस्कारों में संस्कारित किया जाये। इस आवश्यकता की पूर्ति के लिए आस्तिकता और धार्मिकता के दो माध्यम प्रयुक्त किये जाते थे। भारत के प्रत्येक नागरिक को धार्मिक एवं आस्तिक बनने के लिए साधना करनी पड़ती थी। आत्म-निर्माण की यह साधना जीवन का सर्वश्रेष्ठ, सबसे महत्वपूर्ण कार्य माना जाता था। जब तक यह प्रक्रिया भारतवर्ष में चलती रही यहाँ प्रत्येक क्षेत्र में महानता का, उत्कृष्टता का समृद्धि और सफलता का बोलवाला रहा। अब उस दिशा में जितनी ही उपेक्षा होती है उतनी ही अशान्ति और अव्यवस्था बढ़ती जा रही है। प्राचीन गौरव की तुलना में हम दिन-दिन नीचे उतर रहे हैं।

मनुष्य की शारीरिक भूख इन्द्रिय विषयों से, सत्ता, पद, धन, अहंकार, शृंगार, विलासिता आदि के आधार पर पूर्ण हो सकती है, पर इन सबसे जो सुख मिलेगा वह ऊपरी ही रहेगा। कुछ ही समय ठहरेगा। आत्मिक भूख की तृप्ति उन विचारों और कार्यों से ही सम्भव है जो आत्मसंतोष देने वाले हैं सद्विचारों, सद्भावों, सद्गुणों, सत्कर्मों की मात्रा जितनी अधिक होगी उतना ही आत्म सन्तोष बढ़ेगा। आत्मतृप्ति के लिए किये गये यह प्रयत्न बाह्य जीवन में भी एक अद्भुत सरसता का संचार करते हैं। सत्प्रवृत्तियों से मनुष्य का व्यवहार और आचरण दूसरों के लिए सुखदायक होता है। सद्गुणी व्यक्ति अपने परिवार के प्रत्येक सदस्य की भाँति ही बाहर के सब लोगों के साथ भी सौजन्यपूर्ण व्यवहार करता है। उसकी प्रतिक्रिया स्वभावतः लोगों के प्रेम, सद्भाव एवं सम्मान के रूप में उपलब्ध होती है। लोग उसके आचरण से प्रभावित होकर अनायास ही सद्भाव रखने लगते हैं और उसे अपने चारों ओर प्रेम एवं सौजन्य का समुद्र लहराता दीखता है। यही अनुभव, यही लाभ जीवन का सर्वश्रेष्ठ आध्यात्मिक लाभ है। उसके बिना जीवन सर्वथा नीरस ही रहता है।

परस्पर स्नेह, सद्भाव, सौहार्द्र और सहयोग होने पर जीवन में जो रस, आनन्द और उल्लास रहता है वह इनका अभाव होने पर अपार वैभव द्वारा भी नहीं मिल सकता। इस वस्तुस्थिति को समझ कर हमारे पूर्वज सदा व्यक्ति के सद्गुणों और उच्च आदर्शों को पुष्ट करने पर जोर देते रहे। इसी लिए आध्यात्मिकता का, धार्मिकता का विशाल ढाँचा खड़ा किया गया था। गुरुकुलों में छात्रों का जो शिक्षण होता था उससे सत्प्रवृत्तियों के विकास एवं पोषण की ही साधना उनसे कराई जाती थी। वर्णाश्रम धर्म, षोडश संस्कार, व्रत, पर्व, त्यौहार, तीर्थ, कथा, कीर्तन, अनुष्ठान, तप, संयम आदि की पृष्ठभूमि, व्यक्ति की मनोभूमि को उच्च स्तर की ओर अग्रसर करती ही है।

खेद की बात है कि जहाँ भौतिक विकास के लिए इतने प्रयत्न हो रहे हैं वहाँ मनुष्य की अन्तःभूमि के परिष्कार की दिशा में सर्वत्र उदासीनता और उपेक्षा दिखाई देती है। इस अवस्था के रहते उन्नति के लिए अन्य प्रयत्न असफल ही रहेंगे। धन और शिक्षा की दृष्टि से यदि लोग सम्पन्न भी हुए तो उनसे आन्तरिक दुर्गुणों के रहते कोई सत्परिणाम निकलने की सम्भावना नहीं है। सम्पन्नता मिलने पर तो दुर्गुणी के दुर्गुण और भी अधिक बढ़ते हैं और वह अपेक्षाकृत और भी अधिक विपत्ति में फँस जाता है।

मनुष्य की आत्मा में अनन्त सत् तत्व सन्निहित है। उसको कुरेदा और बढ़ाया जाना चाहिए। सम्पन्नता की अभिवृद्धि के लिए जो प्रयत्न हो रहे हैं, वे सराहनीय हैं पर साथ ही मानवीय महानता के उत्थान को भी ध्यान में रखा जाना चाहिए। यह आत्म निर्माण की साधना का कार्य अत्यन्त ही उपयोगी एवं आवश्यक है। शुष्क उपदेशों के द्वारा तो यह कार्य बनने वाला नहीं है इसके लिए साधना का मार्ग उसी प्रकार अपनाना पड़ेगा जिस प्रकार धन, स्वास्थ्य, विद्या, यश आदि की प्राप्ति के लिए सुनिश्चित प्रयास करना पड़ता है।

साधना के नाम पर आज देवी देवताओं की पूजा पाठ का कर्मकाण्ड शेष रह गया है। यह अपूर्ण है। देवार्चान भी आत्म-साधना का एक अंग है पर वही सब कुछ नहीं है। दुष्प्रवृत्तियों पर अंकुश लगा कर अपने अन्दर की असुरता को समाप्त करने और सत्प्रवृत्तियों का परिपोषण करके अन्तः भूमिका में देवताओं जैसे स्वर्ग सोपान की स्थापना करने का वैज्ञानिक प्रयास ही साधना का वास्तविक उद्देश्य है। ऐसी ही साधना प्राचीन काल में होती थी आज भी आत्म निर्माण की दृष्टि से, वैयक्तिक और सामूहिक सुखशान्ति की दृष्टि से ऐसी ही साधना की आवश्यकता है। साधना के साथ ही हर क्षेत्र की सफलता जुड़ी हुई है। आत्मनिर्माण की सर्वोपरि आवश्यकता की पूर्ति के लिए भी हमें साधना का ही मार्ग अपनाना पड़ेगा। जीवन लक्ष्य की सफलता अभीष्ट हो तो साधना आवश्यक है, अनिवार्य है, यह तथ्य स्वीकार करना ही होगा।

साधना की महानता

आध्यात्मिक साधनाओं का मूल उद्देश्य आत्मनिर्माण है। जीवन की सारी समस्याओं का उलझना-सुलझना बहुत करके मनुष्य की आन्तरिक स्थिति पर निर्भर रहता है। यों कभी-कभी कठिन प्रारब्ध भोग भी मार्ग में विघ्न बाधा बनकर अड़ जाते हैं और हटते-हटते बहुत परेशान कर लेते हैं, पर आमतौर से जीवन की गतिविधि व्यक्ति की अपनी निजी मनोभूमि पर आधारित रहती है।

जिसे क्रोध आता है उसे सब कोई अपने प्रतिपक्षी, दुष्ट और झगड़ालू दीखते हैं। जिसके मन में ईर्ष्या और द्वेष की प्रबलता है, उसे सर्वत्र शत्रु और दुष्ट ही दिखलाई पड़ते हैं। आलसी को सब कार्य कठिन और सफलता के मार्ग में चारों ओर भारी विघ्न उपस्थित लगते हैं। विषय विकारों से जिसकी दृष्टि दूषित हो रही है, उसे हर कोई व्यभिचारी लगता है। जिनकी प्रकृति अविश्वासी और छिद्रान्वेषी बन गई है उन्हें हर

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कोई संदिग्ध, धूर्त और दोषी प्रतीत होता है। डरपोक को चारों ओर से अपने ऊपर आपत्तियाँ मँडराती लगती रहती हैं। पतित दृष्टिकोण के लोगों को इस संसार में केवल पाप, पतन, छल, शोषण आदि दुष्ट प्रवृत्तियों का बोलवाला दृष्टिगोचर होता है। माना कि संसार में अनेक बुराइयाँ मौजूद हैं और उनकी मात्रा भी बहुत है पर इसका तात्पर्य यह कदापि नहीं है कि यहाँ बुराई के अतिरिक्त और कुछ है ही नहीं। निश्चित रूप से इस धरती पर बुराई की अपेक्षा भलाई कहीं अधिक है। पाप की अपेक्षा पुण्य की मात्रा ज्यादा है, कठिनाइयों से सुविधाएँ अधिक हैं, दृष्टता से सज्जनता बढ़ी चढ़ी है। यदि ऐसा न होता तो यह दुनिया इस योग्य न रहती कि परमात्मा का पुत्र आत्मा यहाँ अवतार लेता और मृत्यु की अपेक्षा जीवन को अधिक प्यार करता।

प्याज खा लेने पर मुँह से बदबू आती है, नशा पी लेने पर पागलपान छा जाता है, सनाय खा लेने पर दस्त होने लगते हैं। विषपान करने वाले के सामने मृत्यु की विभीषिका उपस्थित हो जाती है। इसी प्रकार जिनकी मनोभूमि असंस्कृत, पतनोन्मुख, निम्नस्तर की एवं उलझन भरी है उनका बाह्य जीवन निश्चित रूप से अस्त-व्यस्त रहेगा। जितनी कुछ साधन सामग्री प्राप्त है वह सभी अपर्याप्त और दोषपूर्ण लगेगी। जितने व्यक्ति अपने साथ में किसी सम्बन्ध सूत्र में बंधे हैं वे सभी बुराइयों और बदमाशियों से भरे लगेंगे। जो भी परिस्थिति प्राप्त है वे सभी दुर्भाग्य पूर्ण प्रतीत होंगी। इस प्रकार का अनुभव करते रहने वाला न तो सुखी रह सकता है और न सन्तुष्ट, उसे खिन्नता, झुंझलाहट, परेशानी और जलन ही घेरे रहेगी।

स्वार्थी दृष्टिकोण वाला व्यक्ति सदा अपना ही मतलब प्रधान रखेगा। दूसरों के न्यायोचित स्वार्थों को भी धक्का पहुँचा कर अपना स्वार्थ सिद्ध करेगा। ऐसे लोगों के प्रति भला किसके मन में श्रद्धा और सम्मान के भाव उठेंगे। जिसने दूसरों के प्रति कभी सेवा और सहयोग का व्यवहार नहीं किया उसे अपने प्रति किसी उपकार की क्या आशा करनी चाहिए ? कृतघ्न व्यक्ति जो दूसरों के उपकार और अहसान को तुरन्त भुला देता है किसी में सज्जनता की झांकी किस प्रकार कर सकेगा ? कृतज्ञता और प्रत्युपकार की उच्च भावनाएँ उसके मन में कैसे उठेंगी ? निष्ठुर, निर्दय और क्रूर व्यक्ति दया और करुणा की स्वर्गीय अनुभूति कहाँ कर पायेगा? अहंकार में जो डूबा रहता है, उसे नम्रता, विनय, शिष्ट और सभ्य व्यवहार करने की मधुरता का अनुभव क्या होगा ? खुदगर्ज व्यक्ति के लिए निस्वार्थता का दिव्य रस आस्वादन कर सकना प्रायः असम्भव ही है।

जिसने अपनी मनोभूमि को सुसंस्कृत बनाने की साधना नहीं की, जिसके मनमें केवल पाशविक संस्कार ही भरे पड़े हैं उसके लिए परमात्मा की पुनीत वृत्ति यह दुनिया-दुर्गन्धि भरे जलते हुए श्मशान के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। हो सकता है ऐसे लोगों को पूर्व पुण्यों से चतुरता और पुरुषार्थ से भौतिक ऐश्वर्य प्राप्त हुआ हो, पर क्या इतने मात्र से सुख-शान्ति प्राप्त हो सकती है ? भौतिक सम्पदायें केवल झंझट बढ़ा सकती हैं, जिम्मेदारियों और चिन्ताओं के बोझ से लाद सकती हैं, थकान और झुंझलाहट दे सकती हैं पर शान्ति और सन्तोष में इनसे कण भर भी वृद्धि न होगी। आन्तरिक स्थिति का, मनोभूमि का परिष्कार ही एक मात्र वह उपाय है जिससे बाहर की हर वस्तु और हर परिस्थिति अनुकूल बन सकती है। बेशक, इस दुनिया में ऊबड़-खाबड़ भी बहुत है पर जिसने अपने दृष्टिकोण को परिमार्जित और सुसंस्कृत बना लिया है उसके लिये अवांछनीय तत्वों की अशुभ प्रतिक्रिया से अपने को बचाये रखना बहुत हद तक सम्भव है। जिसका सोचने का तरीका सही है, जिसके विचार और आदर्श उच्च स्तर के हैं वह अनायास ही इस संसार के दिव्य तत्वों को, सज्जनता को अपनी ओर आकर्षित कर सकता है और इसको सहयोग से लाभान्वित होकर मानव जीवन की सरसता का बहुत कुछ अनुभव कर सकता है।

जीवन में उपस्थित अधिकांश कठिनाइयाँ ऐसी होती हैं जिनमें समाज या दूसरे व्यक्तियों द्वारा उपस्थित कठिनाइयों की अपेक्षा अपनी निज की भूल एवं अशुद्ध दृष्टि ही प्रमुख कारण होती है। स्वास्थ्य बिगड़ रहा है, क्या इसमें अपना आहार विहार की मर्यादाओं का उल्लंघन एवं असंयम का कोई कारण नहीं रहा है ? निश्चय ही यदि स्वास्थ्य के नियमों पर दृढ़तापूर्वक चला गया होता तो अस्वस्थता का जो दुःख आज भोगना पड़ रहा है, न भोगना पड़ता।

आर्थिक तंगी परेशान कर रही है, क्या इसमें अपनी फिजूलखर्ची और उपार्जन में उपेक्षा कारण नहीं है ? चूँकि दूसरे अधिक आमदनी वाले लोग अधिक खर्च करते हैं तो भी उनकी नकल करके वैसी ही शान बनायें, इस प्रकार से सोचना और अपनी हैसियत से अधिक खर्च करना कहाँ तक उचित है ? जब कि हमसे कम कमाने वाले गरीब लोग भी अपनी हैसियत के अनुरूप बजट बनाते और उसी में सन्तोष तथा व्यवस्था पूर्वक कार्य चलाते हैं तो हम वैसा क्यों नहीं कर सकते ? जब अन्य लोग हमारी अपेक्षा अधिक परिश्रम, अधिक दौड़ धूप करके, शान और शेखी की परवाह न करके हलके समझे जाने वाले काम भी प्रसन्नतापूर्वक करते हैं और अपने उचित खर्चों के लायक कमा लेते हैं तो हम आलस्य और शान शेखी की आड़ लेकर अवसर की प्रतीक्षा में क्यों बैठे रहे ? यदि हमारा आर्थिक दृष्टिकोण सही हो, उपार्जन और व्यय के सम्बन्ध में समुचित सावधानी रहे तो ऋणी होने का, आर्थिक तंगी पड़ने का कोई कारण नहीं रह जाता। यह तंगी हम अपनी ही दुर्बलताओं के कारण पैदा करते हैं और उनमें सुधार भी तभी होता है जब हमारी अपनी आदतें सुधरती हैं।

कोई सच्चा मित्र नहीं दीखता, शत्रुओं की संख्या बढ़ती जाती है या इसमें अपनी असहिष्णुता, कृतघ्नता, स्वार्थपरता, अशिष्टता, रूखापन आदि का कोई दोष नहीं है जो लोग दूसरों से मित्रभाव रखते हैं वे हमारे प्रति शत्रुता क्यों बरतते हैं, इस पर यदि कोई गंभीरता से विचार करे और बारीकी से आत्म-निरीक्षण करे तो सहज ही यह पता चल जायेगा कि अपने अन्दर भी कुछ ऐसे दोष हैं जो लोगों की दुष्टता को उभारने में बहुत हद तक सहायक होते हैं। जिन लोगों ने अपने स्वभाव में मधुरता की आवश्यक मात्रा का समावेश कर रखा है वे दुर्जनों में भी रहने वाली थोड़ी सज्जनता को उभार लेते हैं और

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

उनसे भी बहुत कुछ ऐसे लाभ उठा लेते हैं जैसे मित्रों से प्राप्त होते हैं। यह तथ्य समझ में आ जाये और मनुष्य अपने स्वभाव में आवश्यक परिवर्तन करले तो मित्रों की कमी और शत्रुओं की अधिकता वाली कठिनाई बहुत हद तक हल हो सकती है।

घर में क्लेश रहता है, स्त्री, पुत्र कहना नहीं मानते, द्वेष और दुर्भाव बढ़ रहा है, क्या इसमें अपना अनावश्यक मोह, अनुचित नियंत्रण, डांट-डपट, कटु भाषण, प्यार से समझाने की उपेक्षा, आवश्यक प्रेम की कमी, न्यायोचित व्यवस्था की कमी, गुणों की प्रशंसा करने में कंजूसी आदि हमारा कोई दोष कारण नहीं ? हो सकता है कि हमारे परिवार के लोग अपेक्षाकृत कुछ अधिक असंस्कृत हों और उनकी बुराइयाँ औरों से अधिक बढ़ी चढ़ी हों। पर इसमें गृह संचालक का भी कुछ न कुछ दोष अवश्य है। यदि आरम्भ से ही उसने अपने में गृह संचालक के उपयुक्त आवश्यक गुण उत्पन्न कर लिये होते तो परिस्थिति उस सीमा तक न बढ़ती जितनी कि आज प्रतीत होती है। आज भी इन परिस्थितियों में भी यदि अपनी कुछ आदतों और दृष्टि दोषों को सुधार लें तो अभी भी बहुत कुछ सुधार हो सकता है और गृह क्लेश की समस्या अपने विकराल रूप से सिमट कर बहुत छोटी रह सकती है।

ऊपर की पंक्तियों में कुछ थोड़े से प्रश्नों पर विचार किया गया है। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में ऐसी अगणित समस्याएँ हैं जिनसे घिरा हुआ मनुष्य सदा अशान्ति एवं असंतोष का अनुभव करता रहता है। प्रयत्न यह होता है कि परिस्थितियाँ बदल जायें। पर कोई यह नहीं सोचता कि इन प्रतिकूलताओं की जड़ अपने अन्दर है। आवश्यक हेर-फेर करने का वही स्थान है। उसे सँभाला जाये और सुधारा जाये तो बाहर की गुत्थियाँ सुलझें। अपने को निर्दोष और दूसरों को दोषी मानने की प्रवृत्ति अब हर व्यक्ति में बहुत बढ़ चली है। सारा दोष दूसरों के मत्थे मढ़ कर अपने को निर्दोष सिद्ध करने के लिए हर कोई तत्पर दीखता है। आत्म निरीक्षण व्यर्थ लगता है। कोई दूसरा अपने दोष बताता है तो उस पर झुंझलाहट आती है। ऐसी स्थिति के रहते भला यह कैसे आशा की जा सकती है कि कोई समस्या स्थायी रूप से हल हो जाये। दूसरों को सुधारना, अपनी मन मर्जी का बना लेना कठिन है, सब प्रतिकूलाएँ अपने अनुकूल हो जायँ, यह भी असम्भव है। प्रयत्न करने से व्यक्तियों, वस्तुओं और परिस्थितियों में थोड़ा सुधार हो सकता है पर अधिक सुधार तो अपने दृष्टिकोण एवं स्वभाव में ही करना पड़ेगा। बाहरी समस्याओं की कुन्जी अपने अन्दर है। ताली से ही ताला खुलता है, अपने सुधार से ही संसार सुधरता है, दुनिया भर में बिखरे हुए कांटे हटा देना कठिन है पर पैरों में जूते पहन कर उनसे अपनी रक्षा सुगमतापूर्वक की जा सकती है।

वैयक्तिक जीवन की अगणित समस्याओं का हल मनुष्य को अपनी विचारधारा, भावना, आदर्शवादिता, स्वभाव, आदत एवं अभिरुचि के सम्बन्धित हैं। सामाजिक समस्याएँ भी व्यक्तिगत समस्याओं का ही सम्मिलित रूप है। जिस समाज में जिस मनोभूमि के व्यक्तियों का बाहुल्य होता है वह समाज भी उसी रूप में दिखाई पड़ता है। हमारे समाज में आज अनेकों बुराइयाँ दृष्टिगोचर होती हैं, बाल विवाह, वृद्ध विवाह, कन्या विक्रय, वर विक्रय, नशेबाजी, मांसाहार, छुआछूत, मृत्युभोज, भूतपलीत आदि कितना ही कुरीतियाँ प्रचलित हैं जुआ, चोरी, बेईमानी, भ्रष्टाचार, व्यभिचार, शोषण, आक्रमण आदि अनैतिकताएँ भी पनप रही हैं। देखने में यह सामाजिक दोष मालूम पड़ते हैं। पर वस्तुतः यह भी व्यक्तिगत दुर्बलताओं की ही प्रतिक्रिया है। फूट, विसंगठन, कायरता, सामूहिकता का अभाव, देशभक्ति एवं राष्ट्र भक्ति की कमी के कारण हमारा धर्म, समाज एवं राष्ट्र कमजोर होता जाता है। इन बुराइयों के लिए भी व्यक्ति ही दोषी हैं। राष्ट्र या समाज कोई अलग चीज नहीं, वह तो व्यक्तियों की सामूहिक स्थिति ही है। व्यक्तियों का आन्तरिक स्तर यदि सुव्यवस्थित हो तो राष्ट्रीय चरित्र एवं सामाजिक गठन स्वमेव उत्कृष्ट रहेगा। जो लोग सामाजिक उत्थान एवं राष्ट्र निर्माण की बात सोचते हैं उन्हें यह बात भली प्रकार हृदयंगम कर लेनी चाहिए कि देश के नागरिकों के स्वभाव, चरित्र और दृष्टिकोण को बदलना ही इसका एकमात्र उपाय है। इस तथ्य की उपेक्षा करके अन्य उपाय, चाहे वे कितने ही व्ययसाध्य एवं विशाल क्यों न हों कदापि अभीष्ट उद्देश्य की पूर्ति न कर सकेंगे।

व्यक्ति निर्माण का कार्य क्या भाषणों और लेखों द्वारा सम्पन्न हो सकेगा ? यह एक विचारणीय प्रश्न है। आज हर काम के लिए यही दो उपाय काम लाये जाते हैं। सामान्य जानकारी प्राप्त करने की दृष्टि से लेखों और भाषणों की भी एक सीमा तक आवश्यकता हो सकती है, पर इतने से ही काम न चलेगा; इसके लिए रचनात्मक उपाय अपनाने पड़ेंगे। धार्मिकता और आस्तिकता का अन्तःकरण में प्रवेश होने से ही उन आदर्शों के प्रति निष्ठा बढ़ सकती है जो व्यक्ति की पाशविक दुवृत्तियों का समाधान और दैवी सत्प्रवृत्तियों का उत्थान कर सकें। यही साधना है। साधना, मानव जीवन की प्रत्येक गुत्थी को सुलझाने वाली, प्रत्येक कठिनाई का समाधान करने वाली मानी जाती है। यह मान्यता असत्य नहीं है। आत्मा पर छाये हुए मल विक्षेपों को जो साधना हटा सकती है वह सुख शान्ति की प्रगति और उन्नति के द्वारा भी खिल सकती है। आत्म निर्माण की वैज्ञानिक विधि व्यवस्था ही साधना के नाम से पुकारी जाती है। आत्म निर्माण का कार्य किसी विशाल कार्यालय या कारखाने के निर्माण से भी अधिक महत्वपूर्ण है। इस महान कार्य को सम्पन्न करने वाली पद्धति साधना की महानता स्वल्प नहीं महान ही है।

आत्मनिर्माण का पुण्यपथ

आज साधना का अर्थ केवल भजन-पूजन समझा जाता है और किसी देवी देवता से कुछ सिद्धि वरदान प्राप्त करना या परलोक में स्वर्ग मुक्ति का अधिकारी बनना उसका उद्देश्य माना जाता है। साधना के अन्तर्गत यह बात भी आती है पर उसका क्षेत्र इतना ही नहीं—इससे कहीं अधिक विस्तृत है। भौतिक और आध्यात्मिक दोनों ही क्षेत्रों की उन्नति एवं सुव्यवस्था का साधना से सीधा सम्बन्ध है। मनुष्य का शारीरिक पुरुषार्थ पशुओं के पुरुषार्थ से भी घटिया दर्जे का है। उसकी विशेषता

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

तो बौद्धिक एवं आध्यात्मिक ही है। इसी बल के आधार पर वह सृष्टि का सर्व श्रेष्ठ प्राणी बन सका है। इसी के उत्कर्ष एवं पतन पर उसका वर्तमान एवं भविष्य निर्भर रहता है।

साधना से हमारे अन्तःप्रदेश का ऐसा शोधन, परिष्कार एवं अभिवर्द्धन होता है जिसके फलस्वरूप सर्वतोन्मुखी उन्नति का द्वार खुले और जो विघ्न बाधाएँ प्रगति का मार्ग रोकते हैं उन्हें हटाया जा सके ? पिछले पृष्ठों पर लौकिक समस्याओं के सुलझाने में साधना किस प्रकार सहायक होती है, इस तथ्य पर कुछ प्रकाश डाला गया है।

स्वाध्याय और सत्सङ्ग, चिन्तन और मनन यह चार उपाय अपनी अन्तःभूमि के निरीक्षण परीक्षण करने, त्रुटियों एवं दोषों को समझने तथा कुविचारों को त्याग कर सत्प्रवृत्तियाँ अपनाने के हैं। यह चार उपाय भी साधना के ही अङ्ग हैं। जीवन समस्याओं को सुलझाने में सहायक सद्ग्रन्थों का स्वाध्याय करना हर विचारशील धर्मप्रेमी व्यक्ति का एक दैनिक नित्य-कर्म होना चाहिये। आज किन्हीं पौराणिक कथा-ग्रन्थों या हजारों लाखों वर्ष पूर्व की स्थिति के अनुरूप मार्ग दर्शन करने वाले संस्कृत ग्रन्थों का बार-बार पढ़ना ही स्वाध्याय माना जाता है। यह मान्यता अस्वाभाविक है। आज हमें ऐसी पुस्तकों के स्वाध्याय की आवश्यकता है जो वर्तमान परिस्थितियों के अनुरूप जीवन के सर्वाङ्गीण विकास में सहायक हो सकें। प्रत्येक युग में सामयिक ऋषि उत्पन्न होते हैं और वे देश काल पात्र के अनुरूप जन शिक्षण करते हैं। आज के युग में गाँधी, विनोबा, दयानन्द, विवेकानन्द, रामकृष्ण परमहंस, तुकाराम, कबीर आदि सन्तों का साहित्य जीवन निर्माण की दिशा में बहुत सहायक हो सकता है। आत्मसुधार, आत्मनिर्माण एवं आत्मविकास का जो विवेचनात्मक सत्साहित्य मिल सके हमें नित्य नियमित रूप से पढ़ते रहना चाहिए। स्वाध्याय की दैनिक आदत इतनी आवश्यक है कि उसकी उपेक्षा करने से आत्मिक प्रगति के मार्ग में प्रायः अवरोध ही पैदा हो जाता है।

सत्संग का अर्थ है सम्भ्रान्त, आदर्श चरित्र, तत्वदर्शी मनीषियों की संगति, सान्निध्य और शिक्षा का अवगाहन। ऐसे मनीषी आज बहुत ही कम हैं। जो हैं वे कार्य व्यस्त रहने के कारण व्यक्तिगत सत्संग के लिए समय नहीं दे पाते। ऐसी दशा में आत्मनिर्माण सम्बन्धी प्रवचनों की जहाँ व्यवस्था हो वहाँ पहुँचा जा सकता है। महापुरुषों के ग्रन्थ भी सत्संग का काम दे सकते हैं। वे मनीषी भले ही हमसे दूर हों या स्वर्गवासी हो चुके हों तो भी उनके विचार, उनके लिखे ग्रन्थों हमें सदा प्रस्तुत मिलेंगे और वे हमें सत्संग का लाभ देते रहेंगे। आज सत्संग के नाम पर निराशावादी, भाग्यवादी, पलायनवादी, अतिवादी विचारधारा देने वाले साधु, बाबाजी बहुत हैं, इन विचारों से भ्रम जंजाल ही बढ़ता है और उसके प्रभाव से व्यक्ति एक प्रकार से निकम्मा ही बन जाता है। इसलिए ऐसे सत्संग को कुसंग मानकर उससे बचते रहना ही उचित है।

चिन्तन और मनन बिना पुस्तक बिना साथी का स्वाध्याय सत्संग ही है। अपने आप अपनी स्थिति पर अपनी त्रुटियों और दुर्बलताओं पर विचार करके, बुराइयों को छोड़ने और अच्छाइयों को बढ़ाने के लिये अकेले में सोच विचार करना चिन्तन है और उत्थान पथ पर अग्रसर करने वाली सत्शिक्षा के महत्व एवं माहात्म्य पर विस्तारपूर्वक सोचना एवं उसी ढाँचे में अपने को ढालने की योजना बनाना मनन है। चिंतन और मनन करते रहने वाला मनुष्य अपनी बौद्धिक चरित्र एवं लौकिक दुर्बलताओं को आत्म-निरीक्षण एवं आत्म आलोचना के आधार पर भली प्रकार जान सकता है और जिस प्रकार रोग का निदान होने पर चिकित्सा सरल हो जाती है, उसी प्रकार अपनी त्रुटियों को जानने वाला उन्हें सुधारने का उपाय भी ढूँढ़ ही निकालता है।

रात्रि को सोते समय दिन भर के भले-बुरे विचारों और कार्यों का लेखा-जोखा लेना चाहिये। जीवन की वास्तविक सम्पत्ति समय ही है। नियमित कार्यक्रम बना कर अपने बहुमूल्य समय का सदुपयोग करने की कला जिसे आ गई उसने सफलता का रहस्य समझ लिया। रात को सोते समय दिन भर के विचारों और कार्यों की भलाई बुराई का विश्लेषण करके यह देखना कि आज दिन का कितना सदुपयोग, अपव्यय एवं दुरुपयोग हुआ। इसी प्रकार प्रातःकाल उठते समय दिन भर का कार्यक्रम बनाना तथा पिछले दिन की बात को स्मरण रखते हुये जीवन के अपव्यय एवं दुर्व्यय को बचाकर अधिकाधिक सदुपयोग की योजना बनाई जाये। नित्य डायरी रखकर भी इस प्रकार आत्म-निरीक्षण एवं आत्मनिर्माण का आयोजन करते रहा जा सकता है। जो दुर्गुण अपने में हों उन्हें दिन में कई बार ध्यान करके उनकी पुनरावृत्ति न होने देना एक उत्तम अभ्यास है। जिन सद्गुणों को और भी विकसित करना है उनका भी दिन में कई बार स्मरण किया जाना चाहिए और उनको बढ़ाने के लिए जो भी अवसर प्राप्त होते रहें उन्हें हाथ से न जाने देना चाहिए।

महात्मा गाँधी के सावरमती आश्रम में रहने वाले प्रत्येक आश्रमवासी को अपनी डायरी रखनी पड़ती थी जिसमें उनके विचारों और कार्यों का विवरण रहता था। गाँधी जी के सामने वे सभी डायरियाँ प्रस्तुत की जाती थीं और वे उन्हें ध्यान पूर्वक पढ़कर सभी को आवश्यक परामर्श एवं मार्गदर्शन प्रदान करते थे। यह पद्धति उत्तम है। परिवार की व्यवस्था सम्बन्धी समस्याओं पर विचार करने के लिये घर के सब सदस्य मिलकर विचार कर लिया करें और उलझनों को सुलझाने का उपाय सोचा करें तो कितनी ही कठिनाइयाँ तथा समस्याएँ आसानी से हल हो सकती हैं।

मन में उठने वाले कुविचारों की हानि भयंकरता तथा व्यर्थता पर विचार करना तथा उनके प्रतिपक्षी सद्विचारों को मन में स्थान देना, आत्म सुधार के लिये एक अच्छा मार्ग है। विचारों को विचारों से ही काटा जाता है। सद्विचारों की प्रबलता एवं प्रतिष्ठा बढ़ाने और कुविचारों का तिरस्कार एवं बहिष्कार करने से ही उनका अन्त हो सकता है। आत्मनिर्माण के लिये इस मार्ग का अवलम्बन करना आवश्यक है।

जिस प्रकार सांसारिक कला-कौशल एवं ज्ञान-विज्ञान की शिक्षा के लिए व्यवहारिक मार्ग दर्शन करने वाले शिक्षक की आवश्यकता होती है, उसी प्रकार आत्मनिर्माण के लिये भी एक ऐसे मार्गदर्शक की आवश्यकता होती है जिसे आत्म निर्माण का व्यक्तिगत अनुभव हो। गुरु की आवश्यकता पर अध्यात्म ग्रन्थों

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

में बहुत जोर दिया गया है, कारण कि अकेले अपने आपको अपने दोष ढूँढ़ने में बहुत कठिनाई होती है। अपने आप अपने दुर्गुण दिखाई नहीं देते और न अपनी प्रगति का ठीक प्रकार पता चल पाता है। जिस प्रकार छात्रों के ज्ञान और श्रम का अन्दाज परीक्षक ही ठीक प्रकार लगा सकते हैं, इसी प्रकार साधक की आन्तरिक स्थिति का पता भी अनुभवी मार्गदर्शक ही लगा सकते हैं। रोगी अपने आप अपने रोग का निदान और चिकित्सा ठीक प्रकार नहीं कर पाता उसी प्रकार अपनी प्रगति और अवनति को ठीक प्रकार समझना और आगे का मार्ग ढूँढ़ना भी हर किसी के लिए सरल नहीं होता। इसमें उपयुक्त मार्गदर्शक की अपेक्षा होती है। प्राचीन काल में आत्मनिर्माण की महान शिक्षा हर व्यक्ति के लिए एक नितान्त अनिवार्य आवश्यकता मानी जाती थी और तब गुरु का वरण भी एक आवश्यक धर्म कृत्य था। आज की और प्राचीनकाल की अनेक परिस्थितियों और आवश्यकताओं में यद्यपि भारी अन्तर हो गया है फिर भी आत्मनिर्माण के लिए उपयुक्त मार्गदर्शक की आवश्यकता ज्यों की त्यों बनी हुई है। जिसने यह आवश्यकता पूर्ण कर ली उसने इस संग्राम का एक बड़ा मोर्चा कर लिया ऐसा ही मानना चाहिए।

किस व्यक्ति में क्या दुष्प्रवृत्तियाँ हैं और उनका निवारण किन विचारों से, किस स्वाध्याय से, किस मनन से, किस चिन्तन से, किस साधन अभ्यास से किया जाये, इसकी विवेचना यहाँ नहीं हो सकती। क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति की मनोभूमि में दूसरों की अपेक्षा कुछ भिन्नता होती है और उस भिन्नता को ध्यान में रखकर ही व्यक्ति की अन्तः भूमिका को शुद्ध करने का मार्ग दर्शन सम्भव हो सकता है। इसी प्रकार किस व्यक्ति में कौनसी सत्प्रवृत्तियाँ विकासोन्मुख हैं और उनका अभिवर्द्धन करने के लिए किस प्रकार का स्वाध्याय, सत्संग, मनन, चिन्तन, ध्यान, संकल्प एवं अभ्यास आवश्यक है, इसका विवेचन भी लेख रूप में नहीं हो सकता क्योंकि व्यक्ति की मनोभूमि का स्तर पहचान कर ही उनका भी निर्णय हो सकना सम्भव है।

साधना का उद्देश्य है—मनोभूमि का परिष्कार। आत्मा के गुह्य गह्वर में बहुत कुछ ही नहीं सब कुछ भी भरा हुआ है। परमात्मा की सारी सत्ता एवं शक्ति उसके पुत्र आत्मा को स्वभावतः प्राप्त है। मनुष्य ही ईश्वर का उत्तराधिकारी युवराज है। उसकी सम्भावनाएँ महान हैं। वह महान पुरुष, नर-रत्न, ऋषि महर्षि, सिद्ध समर्थ, देव अवतार सब कुछ है। उसकी सारी शक्तियों को जिन दुष्प्रवृत्तियों ने दबा कर एक निम्न स्तर के प्राणी की स्थिति में डाल रखा है, उन दुष्प्रवृत्तियों को हटाना एक महान पुरुषार्थ है। इसी से सारे भव बन्धन टूटते हैं। इसी से तुच्छता का महानता में परिवर्तन होता है। इसी से आत्मा की परमात्मा में परिणिति होती है। इस प्रकार की सफलता प्राप्त कर सकना अपार धन, बड़ा पद, विस्तृत यश, विपुल बल और अनन्त ऐश्वर्य प्राप्त करने से भी बढ़ कर है। क्योंकि यह वस्तुएँ तो जीवनकाल तक ही सुख पहुँचा सकने में समर्थ हैं पर दुष्प्रवृत्तियों से छुटकारा प्राप्त जीवन मुक्त आत्मा तो सदा के लिए ही अनन्त आनन्द का अधिकारी हो जाता है।

आत्मशुद्धि की साधना, भौतिक दृष्टि से, लौकिक उन्नति और सुख सुविधा की दृष्टि से बहुत उपयोगी है। इस पथ पर चलने वाला पथिक दिन-दिन इस संसार में अधिकाधिक आनन्द दायक परिस्थितियाँ उपलब्ध करता जाता है। उसकी प्रगति के द्वार तेजी से खुलते जाते हैं। पारलौकिक दृष्टि से तो यह आत्म शुद्धि की साधना महान् पुरुषार्थ ही है। जीवन लक्ष्य की पूर्ति इसी में है। मुक्ति और स्वर्ग का एक मार्ग भी यही है।

साधना और उसका स्वरूप

साधना के दो भेद हैं—(१) भावात्मक, (२) क्रियात्मक। स्वाध्याय सत्संग, चिन्तन, मनन, यह चार कार्य भावात्मक साधना के अन्तर्गत आते हैं। इनसे विचारों की, दृष्टिकोण की, भावना की शुद्धि होती है। क्रियात्मक साधना से संस्कारों का संशोधन एवं पोषण होता है। जो अशुभ संस्कार मनोभूमि में गहराई से जमे हैं, उन्हें उखाड़ने का कार्य क्रियात्मक साधना द्वारा ही सम्भव होता है। शुभ संस्कारों का बीजरोपण तथा उनका परिपोषण भी क्रियात्मक साधना द्वारा ही सम्भव होता है।

भावात्मक साधना के सम्बन्ध में कुछ प्रकाश पिछले पृष्ठों में डाला जा चुका है। क्रियात्मक साधना के अनेक उपक्रम हैं जिनका उपयोग साधक की निष्ठा, अभिरुचि एवं परिस्थिति के अनुरूप किया जाता है।

गायत्री महामन्त्र के जप का क्रियात्मक साधना में सर्वप्रथम स्थान है। इसे अनिवार्य धर्म कर्त्तव्य माना गया है। धर्मशास्त्रों में ऐसी व्यवस्था मिलती है कि भोजन से पूर्व कम से कम एक माला गायत्री का जप प्रत्येक धर्मप्रेमी को करना चाहिए। जो इसकी उपेक्षा करे उन्हें शूद्र कहकर तिरस्कृत किया गया है। प्राचीन काल में सम्भवतः नित्य गायत्री जप की उपेक्षा करने वाले लोग शूद्र कहकर तिरस्कृत किये गये होंगे और पीछे उनकी स्वतन्त्र जाति ही बन गई होगी।

मस्तिष्क और हृदय दोनों ही क्षेत्रों पर गायत्री जप का गम्भीर प्रभाव पड़ता है। स्मरण शक्ति, बुद्धिमत्ता, दूरदर्शिता, सूझ-बूझ, परिमार्जित कल्पना, अनुत्तेजित एवं सन्तुलित मनःस्थिति यह मस्तिष्क के गुण हैं। गायत्री उपासना से इन सभी गुणों का साधक के प्रयत्न अनुरूप विकास होता है। निष्ठा, श्रद्धा, दृढ़ता, साहस, धैर्य, उत्साह, उदारता, श्रेष्ठता, आदर्शवादिता एवं संकल्प शक्ति हृदयगत गुण है। गायत्री जप से इनका भी अभिवर्धन होता है। गायत्री बुद्धि एवं भावना की देवी है। जहाँ उसकी प्रतिष्ठा होगी वहाँ सद्ज्ञान एवं सद्भाव का विकास स्वयमेव होता चलेगा। अन्तःभूमि का स्वस्थ विकास इन्हीं दो तत्वों पर निर्भर है। गायत्री उपासना निस्सन्देह मनुष्य की अपूर्णताओं की खाई पाटती हुई उसे पूर्णता के परम लक्ष्य तक पहुँचा देने में समर्थ होती है।

जिन्हें अपने हृदय एवं मस्तिष्क के विकास में अभिरुचि हो उन्हें गायत्री उपासना एक रामबाण अमोघ औषधि के रूप में अपनानी चाहिए। आत्मिक उन्नति की दिशा में जिनका उत्साह अधिक है, जो गुप्त आध्यात्मिक शक्तियों को विकसित करके अपने आपको सामान्य स्थिति से ऊँचा उठाकर असामान्य

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

स्थिति में ले जाना चाहते हैं, उनके लिए गायत्री के अनुष्ठान, पुरश्चरण एवं तपश्चर्यात्मक अनेक विधान हैं। लौकिक आकांक्षाओं की पूर्ति एवं उपस्थित आपत्तियों के समाधान में भी गायत्री उपासना की अनेक विधियाँ बड़ी उपयोगी सिद्ध होती हैं। आत्मा को परमात्मा तक पहुँचाने की लक्ष्यपूर्ति के लिए भी गायत्री से अधिक सरल एवं शीघ्र सफल होने वाला साधन और कोई नहीं है।

गायत्री उपासना कैसे की जाये, इस सम्बन्ध में कितने ही ग्रन्थ लिखे जा चुके हैं। फिर भी समय-समय पर अपनी मनोभूमि का परीक्षण कराते हुए उसके अनुरूप साधनाओं में परिवर्तन करते रहना चाहिए। जिस प्रकार कक्षाएँ उत्तीर्ण करता हुआ छात्र, अगली कक्षा में अपने पाठ्यक्रम को बदलता है, उसी प्रकार साधना पथ पर अग्रसर साधक को भी अपने क्रमिक विकास के अनुरूप समय-समय पर अपने साधन विधान में हेर-फेर करना आवश्यक होता है। रोग के लक्षणों में हेर-फेर होने और बीमारी घटने-बढ़ने पर कुशल वैद्य चिकित्सा व्यवस्था, परिचर्या एवं पथ्य में परिवर्तन करते हैं। इसी प्रकार अन्तःस्थिति के उतार-चढ़ाव के अनुसार साधन विधानों में भी हेर-फेर की अपेक्षा रहती है। अनुभवी और विश्वासी मार्गदर्शक की सहायता से ही इस प्रकार का परिवर्तन ठीक प्रकार बन पड़ता है।

जप के अतिरिक्त प्राण शक्ति की साधना तथा ध्यान योग द्वारा मनोलय की दो कक्षाएँ आती हैं। जप को प्राथमिक पाठशाला मानें प्राण साधना को हाईस्कूल और ध्यान को कालेज मानना पड़ेगा। प्राणायामों के अनेक भेद हैं। आठ इनमें से प्रधान हैं। ८४ प्राणायामों का परिचय, साधना ग्रन्थों में मिलता है। शारीरिक स्वास्थ्य सुधारने में, मनोबल बढ़ाने में, चित्त की चंचलता रोकने में, विकार वृत्तियों पर नियन्त्रण करने में, प्राणायामों का विशेष महत्व है। अखिल विश्व में व्याप्त सूक्ष्म प्राण तत्व को अमुक साधना विधानों के आधार पर आकर्षित करके अपने में धारण करना तथा अपने को प्राण शक्ति सम्पन्न बनाना भी प्राणायाम विद्या का ही कार्य है। षट् चक्रों का वेधन, कुण्डलिनी जागरण, इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना की सिद्धि, स्वर योग तत्व साधना, सोऽहम् तत्व, अजपा गायत्री प्रभृति अनेकों चमत्कारी एवं दिव्य शक्ति सम्पन्न साधान प्राण विद्या से ही सम्बन्धित हैं।

ध्यान योग की साधनाएँ भी अनेक प्रकार की हैं। भक्तियोग, ध्यान साधना का ही एक अंग है। अमुक देवताओं या अवतारों की मूर्तियों की पूजा तथा उनकी छवि का स्मरण करते हुए ईश्वरीय प्रेम का जागरण करना ध्यान योग का ही एक विशेष विधान है। निराकार उपासक ज्योति का धारा प्रवाह चिन्तन करते हैं। नाद योग भी इसी के अन्तर्गत आता है। सूक्ष्म जगत में जो नाना प्रकार की ध्वनियाँ होती रहती हैं, उन्हें एकाग्रता पूर्वक सुनना और उनके आधार पर अदृश्य क्षेत्र में हो रही हलचल का पता लगाना नाद योग का काम है। यह साधना भी ध्यान की एकाग्रता से ही सम्भव है। देव दर्शन, ईश्वर प्राणिधान, आत्म साक्षात्कार, समाधि आदि की उच्च आध्यात्मिक सफलाएँ भी ध्यान योग के विधि-विधानों से ही सम्बन्धित हैं।

तप साधना का उद्देश्य शरीर और मन में भरे हुए कुसंस्कारों का परिमार्जन करना है। जिस प्रकार स्वर्ण की अशुद्धियाँ अग्नि में तपाने से नष्ट होती हैं, उसी प्रकार आत्मा पर चढ़े हुए मल विक्षेप भी तपश्चर्य भी कष्ट साध्य तपों द्वारा ही होता है। चन्द्रायण, कृच्छ चन्द्रायण आदि कठोर व्रत उपवास इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिये हैं। एक महीने तक एक-एक ग्रास प्रतिदिन घटाने बढ़ाने के क्रम से आहार लेना और पंचगव्य (गाय दूध, दही, घी, गोमूत्र, गोबर) ग्रहण करना चन्द्रायण व्रत का एक अंग है। हर महीने कई-कई व्रत उपवासों के पर्व रहते हैं, इनके आधार पर जिह्व इन्द्रिय, कामेन्द्रिय तथा अन्य इन्द्रियों को वश में करना सरल होता है। कार्तिक, माघ, वैशाख आदि के स्नान-तप भी इसी प्रकार के हैं। पैदल तीर्थ यात्रा भी इसी उद्देश्य के लिए की जाती है। सुसंस्कारी सात्विक अन्न ही ग्रहण करने के कष्ट साध्य प्रतिबंधों का पालन करना भी इसी श्रेणी में आता है। मन, वचन और कर्म से ब्रह्मचर्य पालन करना भी तप है। मौन को भी तप ही कहा गया है। अपने शरीर की सेवाएँ स्वयं ही करना, भूमि शयन, स्वल्प वस्त्र, जूते, निद्रा, हजामत, शृंगार आदि का सीमित या पूर्ण त्याग भी तप ही प्रयोग हैं। हठ योग की नेति, धोति, वस्ति, वज्रोली, कपालभाति आदि क्रियाऐं भी तपश्चर्या ही कही जाती हैं। प्रत्येक मास की संक्रान्ति के दिन अथवा प्रत्येक सोमवती अमावस्या आदि पर्व आने पर कोई विशेष जप, तप, दान आदि का नियम लेना और उसे एक वर्ष या अमुक समय तक निवाह कर अन्त में पूर्णता के लिए कुछ विशेष आयोजन, उद्यापन करना तपश्चर्या के ही हलके प्रयोग हैं। सत्कार्य के लिए दान पुण्य करके अपने सुख साधनों में खुशी-खुशी कमी करा लेना त्याग का उत्तम स्वरूप है। यह भी तप ही कहा जायेगा। यज्ञ भी तप का ही एक अंग है।

पूर्वजन्मों के संग्रहीत कुसंस्कार तथा इस जन्म में किये हुए पाप कर्मों का प्रायश्चित हो जाने से साधना मार्ग की अनेकों बाधाएँ तथा कठिनाइयाँ दूर हो जाती हैं और आत्मिक प्रगति में बड़ी सुविधा रहती है। शरीर शोधन के लिए कल्प चिकित्सा करने वालों को पहले वमन, विरेचन, स्वेदन आदि के द्वारा भीतर भरे हुए मलों का निष्कासन करना पड़ता है और तब कोष्ठ शुद्धि होने पर औषधि सेवन का विधान चलता है। इसी प्रकार आन्तरिक दुःखों का परिशोधन करने के लिए विविध तपश्चर्याएँ करनी पड़ती हैं। किस व्यक्ति के लिए कौन-सी तपश्चर्या अनुकूल पड़ेगी, किस दुरित का समाधान करने के लिए किस तपश्चर्या का विधान है, यह भी विज्ञ मार्गदर्शकों के परामर्श से निश्चय किया जा सकता है।

जप, तप, प्राण प्रकृया एवं ध्यान योग के अन्तर्गत क्रियात्मक साधना के अनेक भेद सन्निहित हैं। तन्त्र साधना का अपना अलग ही विज्ञान है जिसमें अमुक संस्कार में संस्कारित वस्तुओं की सहायता से, विभीषिका युक्त तपश्चर्या का माध्यम अपना कर प्रकृति की किन्हीं शक्तियों को वशवर्ती किया जाता है। शव साधन, यक्षिणी विजय, अधिकार प्रयोजन, पञ्च मकार, भैरवी चक्र, अघोर कृत्य आदि कितने ही ऐसे साधन वाममार्गी

तन्त्र ग्रन्थों में उपलब्ध होते हैं। उस मार्ग के साधक गुरु परम्परा से प्राप्त गुप्त विधानों की गोपनीयता नष्ट नहीं होने देते और उन्हें केवल परीक्षित शिष्यों को ही बताते हैं। तन्त्र साधना भौतिक लाभों एवं चमत्कारों की दृष्टि से उपयोग हो सकती है पर आत्मकल्याण की दृष्टि से उसका कुछ भी उपयोग नहीं है। वरन् उल्टी बाधक सिद्ध होती है।

वेदोक्त दक्षिणमार्गी क्रियात्मक साधनाएँ सरल हैं। उन्हें गृहस्थ जीवनयापन करते हुए कोई भी व्यक्ति आसानी से कर सकता है। मन मर्जी से बिना विधि-विधान के करने पर उनका अभीष्ट लाभ नहीं मिलता किन्तु यदि सही मार्गदर्शन उपलब्ध हो जाये तो उनसे बड़ा लाभ होता है। भौतिक जीवन की अनेक समस्याएँ सुलझती हैं और पारलौकिक, आध्यात्मिक जीवन की सुख शान्ति का द्वार खुलना आरम्भ हो जाता है। संन्यासी और विरक्तों के लिए योगाभ्यास की कुछ विशेष साधनाएँ भी हैं पर साधना शास्त्र का अधिकांश भाग गृहस्थ नर-नारियों के लिए ही है। जिस प्रकार जीविका उपार्जन, गुरु व्यवस्था, शरीर रक्षा आदि कार्यों के लिए नियमित समय लगाया जाता है, उसी प्रकार यदि एक दो घंटे भी साधना कार्य के लिए दृढ़ निश्चय के साथ नियत कर लिये जायें तो उतने में ही बहुत प्रगति हो सकती है। आत्मिक स्वास्थ्य की सुरक्षा और आत्मबल की अभिवृद्धि साधना पर ही निर्भर है।

जिन्हें शरीर की तुलना में आत्मा का महत्व कम प्रतीत नहीं होता, जो क्षणिक भौतिक लाभों की तुलना में अनन्त काल तक स्थिर रहने वाले आत्मिक लाभों को तुच्छ नहीं मानते उन्हें यह भी जानना चाहिए कि शरीर सुख और धन उपार्जन की तुलना में साधना कार्य में लगा हुआ समय किसी भी प्रकार कम उपयोगी, कम लाभदायक नहीं है। प्राचीन काल में प्रत्येक नर-नारी की, बालवृद्ध की दिनचर्या में साधना के लिए अनिवार्य रूप से स्थान रहता था। फलस्वरूप उन्हें आत्म निर्माण का महान लाभ प्राप्त होता था और उसके फलस्वरूप भौतिक उन्नति एवं सुविधाओं का द्वार सहज ही प्रशस्त रहता था और वे लोक और परलोक दोनों को ही सफल बनाते हुए मानव जीवन के अलभ्य अवसर का पूरा सत्परिणाम प्राप्त कर लेते थे। आज साधना पथ का परित्याग करके हम आध्यात्मिक उन्नति से वंचित हो रहे हैं, साथ ही आन्तरिक दुर्बलताओं के कारण भौतिक जीवन की कठिनाइयाँ और असफलताएँ भी बढ़ती जाती हैं।

उच्च आध्यात्मिक स्तर की साधनाएँ करने के लिए घर छोड़कर किन्हीं पवित्र वातावरण के स्थानों में रहने की आवश्यकता हो सकती है। जीवन के अन्तिम भाग में वानप्रस्थ जैसा विरक्त जीवन भी इस दृष्टि से उपयोगी हो सकता है, पर साधारण साधना के लिए घर या व्यवसाय छोड़ने की कुछ भी आवश्यकता नहीं है। गृहस्थ योग अपने आप में एक सर्वांग पूर्ण योग है। उसे यदि साधनात्मक दृष्टि से ग्रहण किया जाये तो पूर्णता प्राप्ति के लिये वह भी एक सर्वांग सुन्दर साधन हो सकता है। कितनी ही साधनाएँ तो ऐसी हैं जो हर किसी के लिए सुगम और सुविधाजनक हैं। जैसे सूर्य नमस्कार एवं आसनों की सरल व्यायाम पद्धति बूढ़े से लेकर बच्चे तक सभी के उपयोग की हैं। उनसे शरीर की भी पुष्टि होती है। गर्भिणी और दुर्बल प्रकृति की महिलाएँ भी कुछ आसनों से अपनी स्वास्थ्य संबंधी कठिनाइयों को स्वयं हल कर सकती हैं। कितने ही रोग आसन और प्राणायामों के, बन्ध और मुद्राओं के सरल साधनों से दूर हो सकते हैं। बन्ध्यापन, उन्माद, अनिद्रा, रक्तचाप, मधुमेह, हृदय दौर्बल्य आदि कितने ही असाध्य समझे जाने वाले रोग ऐसे हैं जो योग चिकित्सा के आधार पर स्थायी रूप से अच्छे हो सकते हैं। शारीरिक और मानसिक रोगों के दूर करने में किसी भी चिकित्सा पद्धति की अपेक्षा तुलना में योग चिकित्सा ही अधिक उत्कृष्ट सिद्ध होती है। यह योग चिकित्सा भी साधना विज्ञान का ही एक अभिन्न अंग है।

आत्म साक्षात्कार का एक मात्र उपाय साधना है। इसमें सन्देह नहीं कि साधनाएँ अनेकों प्रकार की होती हैं और उनमें से कई साधनाएँ दूसरी साधनाओं से विपरीत जान पड़ती हैं। हमारे हिन्दू धर्म में ही एक समुदाय ईश्वर के निराकार रूप का ध्यान करता है तो दूसरा उसको साकार मान कर मंदिरों में उसकी पूजा और सामूहिक आरती करता है। इसी प्रकार किसी ने अहिंसा और प्रत्येक प्राणी पर दया करने को मुक्ति का साधन माना है तो दूसरा भैंसे, बकरे आदि का बलिदान करने को स्वर्ग प्राप्ति का मार्ग बतलाया है। इन बातों को देखकर एक साधारण मनुष्य के मन में स्वभावतः यह प्रश्न उठ खड़ा होता है कि वास्तव में साधना का आशय क्या है और विभिन्न प्रकार की साधनाओं में से किसको सत्य समझा जाये ?

यद्यपि अलग-अलग सम्प्रदायों ने साधना की विभिन्न प्रणालियाँ बतलाई हैं पर 'साध्य' (उद्देश्य) के विषय में किसी का विशेष मतभेद नहीं है। प्राचीनकाल के सभी सम्प्रदाय ईश्वर-मुक्ति सान्निध्य निर्वाण, वैकुण्ठ, स्वर्ग, 'वहिदत', 'हविन' आदि को साधना का उद्देश्य बतला चुके हैं। इन सबका स्वरूप यही बतलाया गया है कि मनुष्य को संसार में जो तरह-तरह के अभाव और कष्ट सहन करने पड़ते हैं, वहाँ उनका कोई भय नहीं रहता। वहाँ मनुष्य हर तरह के सुख, आनन्द उपभोग करता है, रोग, शोक, शारीरिक कष्ट, बुढ़ापा, निर्बलता आदि की वहाँ कभी सम्भावना नहीं होती। अधिकांश सम्प्रदाय परलोक ही नहीं इस लोक में भी साधना द्वारा अभावों की निवृत्ति और सुखों की वृद्धि का विश्वास दिलाते हैं। इसलिये हम कह सकते हैं कि साधना का मुख्य उद्देश्य सुख की प्राप्ति है फिर वह चाहे छोटे दर्जे का ले या बड़े दर्जे का।

पर 'सुख' के सम्बन्ध में जब हम गम्भीरतापूर्वक विचार करते हैं तो प्रतीत होता है कि अधिकांश लोग उसका अर्थ गलत लगाते है और इसीलिये साधना का स्वरूप समझने में उनको भ्रम हो जाता है। वे इन्द्रियों की तृप्ति को ही सुख समझ बैठते हैं। इसलिये सदैव उसी के लिये प्रयत्न करते रहते हैं। पर जैसा हम जानते हैं इन्द्रियों के अभावों की पूर्ति कभी सम्भव नहीं होती। पहले तो किसी अभाव की एक बार पूर्ति हो जाने पर थोड़ी बहुत समय पश्चात फिर उसी अभाव का अनुभव होने लगता है, और दूसरे एक अभाव की पूर्ति हो जाने पर दूसरा अभाव उत्पन्न हो जाता है। इसलिये इन्द्रिय जन्य सांसारिक भोगों द्वारा कभी स्थायी सुख की प्राप्ति सम्भव नहीं

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

होती। वरन् जब कभी बीच में थोड़े समय के लिये भी किसी कारणवश उन सुखों की प्राप्ति में बाधा पड़ जाती है तो घोर दुःख का अनुभव होने लगता है। उस समय उन 'सुखों' की आदत पड़ जाना और भी अधिक दुःख अनुभव होने का कारण बन जाता है।

इसलिये हम इसी निष्कर्ष पर पहुँचते है कि सुख का आधार इन्द्रियों को तृप्त करने वाले पदार्थ अथवा भोग नहीं हो सकते, वरन् उस सुख का, जिसे किसी सीमा तक स्थायी माना जा सकता है, आधार कुछ और ही है, इस सम्बन्ध में एक ज्ञान और संसारत्यागी महात्मा का विचार नीचे दिया जाता है।

"विचार करने पर पता लगता है कि हम इन्द्रिय ग्राह्य विषयों द्वारा अतीन्द्रिय आत्मा के अभाव की पूर्ति की चेष्टा कर रहे हैं, इसी से हमारे अन्तर की आकांक्षा पूर्ण नहीं होती, उल्टी विषय वासना बढ़ती रहती है। भोग ऐश्वर्य ही यदि आत्मा के अभाव को पूर्ण कर सकता तो विषय की पूर्ति होने पर उसे लेकर आत्मा चुप हो जाती। हम बहुत बार मनचाही चीज पा जाते हैं, परन्तु उसे पाकर हम चुप क्यों नहीं रह सकते उस वस्तु से मन क्यों हट जाता है, और फिर दूसरे विषय की कामना क्यों करते हैं ? उदर और उपस्थ के सुख को ही तो संसारी जन चरम सुख मानते हैं, परन्तु उसे पा जाने पर भी वे संतुष्ट और स्थिर नहीं रह सकते। कामना के समय विषय में जितने सुख की कल्पना की जाती है, भोग के समय अथवा प्राप्ति के दूसरे ही क्षण वह फिर उतने सुख की वस्तु नहीं मालूम होती, फिर किसी दूसरे अभाव का बोध होने लगता है। दिखलाई यही पड़ता है कि जीवन का अभाव अथवा उसकी कामनाएँ तो नित्य (स्थायी) है, परन्तु उसके सुख के विषय और जिसके द्वारा वह सुख भोग करता है वह शरीर—ये दोनों ही अनित्य (अस्थायी) हैं इसीलिये 'अनित्य' पदार्थों के द्वारा 'नित्य अभाव' की पूर्ति नहीं होती। वास्तव में आत्मा में इन्द्रिय ग्राह्य विषय के कारण अभाव का अनुभव नहीं होता, ये विषय तो भौतिक देह को अतिक्रम कर अति सूक्ष्म आत्मा के निकट पहुँच ही नहीं सकते। इसीलिये आत्मा का अभाव नहीं मिटता। आत्मा को आत्म स्वरूप का ही अभाव है और उस अपने स्वरूप की प्राप्ति से ही उसके अभाव की पूर्ति होकर उसे सुख हो सकता है और यही सुख जीव मात्र को सच्चा साध्य या ध्येय हो सकता है।"

इससे विदित है कि मनुष्य का लक्ष्य आत्मा का ज्ञान प्राप्त करना और उसी के अनुसार आचरण करना है। आत्मज्ञान प्राप्त करने का मार्ग क्या है, इसी चर्चा हमारे देश में सर्वत्र सुनी जाती है। एक साधारण भीख मांगने वाले साधु नाम धारी से लेकर ऋषिकेश की गुफाओं में रहने वाले तपस्वियों तक के मुख से आत्म ज्ञान का उपदेश सुनने को मिल सकता है। पर इनमें थोड़े से व्यक्तियों को छोड़ कर आत्मज्ञान के नाम पर व्यवहारिक मार्ग दिखलाने वाले कोई नहीं होते। वे तो कुछ सुनी सुनाई चमत्कारों की बातें या असम्भव साधन विधियाँ बतलाकर श्रोता को चक्कर में डाल देने के सिवाय और कुछ नहीं जानते। इसलिये साधुओं और संन्यासियों के फेर में पड़ने के बजाय आत्मज्ञान के सच्चे जिज्ञासु को सद्ग्रन्थों का सहारा लेना कहीं अधिक कल्याणजनक है। इनमें प्राचीन वीतराग ऋषि मुनियों ने प्राणि मात्र के हित को दृष्टि में रख कर विभिन्न योग्यता वाले पात्रों के अनुसार भिन्न-भिन्न प्रकार की साधन विधियाँ बतलाई हैं। उन सब का उल्लेख कर सकने का तो यहाँ पर स्थान नहीं है, पर भारतीय आत्मज्ञान के स्रोत उपनिषदों में सर्वसाधरण के लिये सुलभ साधना प्रणव का जप ही बतलाया है। इसके सम्बन्ध में लिखा है।

स्वदेहमरणिं कृत्वा प्रणवं चोत्तरणिम् ।
ध्याननिर्मथ नाभ्यासाद्देवं पश्येन्निगूढ़वत् ॥
प्रणवः धनुःशरो आत्मा ब्रह्मतल्लक्ष्यमुच्यते ।
अप्रमत्तेन वेद्धव्य शरवत् तन्मयो भवेत् ॥
प्रणवत्रभवो ब्रह्मा प्रणवत्रभवो हरिः ।
प्रणवत्रभवो रुद्रः प्रणवो हि परो भवेत् ॥

अर्थात् अपनी देह को नीचे की अरणि और प्रणव को ऊपर की अरणि करके ध्यान रूप मन्थन से छिपी हुई वस्तु (अग्नि) के समान देव को देखे। प्रणव धनुष है, आत्मा बाण है, उस बाण का लक्ष्य ब्रह्म है; जितेन्द्रिय पुरुष को उसे सावधानी के साथ बेधना चाहिये। प्रणव से ब्रह्मा है, प्रणव से हरि (विष्णु) है और प्रणव से ही रुद्र है और प्रणव ही परातत्व है।

अध्यात्मवेत्ताओं ने भी साधना का सारांश यही बतलाया है। उनका मत संक्षेप में इस प्रकार है—

"अधिकारी भेद से शास्त्रों में कल्याण साधनार्थ तीर्थ, व्रत, नियम, योग, निष्काम कर्म आदि अनेक साधन बतलाये हैं। पर जन्म-जन्म के कुसंस्कारों से जब मनुष्य का मन मलीन रहता है, तो उसके कुप्रभाव से इन साधनों में मन नहीं लगता। इसलिए इसका उपाय महात्माओं ने नाम जप-बतलाया है। भगवान के किसी नाम या प्रणव का जप निरन्तर करता रहे और निष्काम भाव से अर्थात् फलेच्छा रहित होकर तीर्थ, व्रत, यज्ञ आदि शुभ कर्म करे तो इससे मन शुद्ध होता है, और फिर मोक्ष के चार साधन विवेक, वैराग्य, षट सम्पत्ति और मुमुक्षु भाव की क्रमशः प्राप्ति होती है।"

मानव जन्म को सफल बनाने का सब से बड़ा साधन तो परमार्थ और निष्काम कर्म का आचरण ही बतलाया गया है, पर कार्य बिना दीर्घकालीन अभ्यास और निरन्तर आत्मोत्थान के नियमों का ध्यान रखे सम्भव नहीं, लाखों-करोड़ों में कोई एक भगवान का कृपापात्र ऐसा हो सकता है जो स्वभाव से ही इस मार्ग का पथिक बन सके, अन्यथा धार्मिक आदेशों का क्रमशः पालन करते हुये भी इस लक्ष्य की प्राप्ति करनी होती है।

आध्यात्मिक साधना का चरम लक्ष्य— भवबंधन से मुक्ति

हमारी आध्यात्मिक साधना का चरम लक्ष्य क्या है? उपनिषद् के निम्न वाक्य से स्पष्ट होता है—

"ते सर्वगं सर्वतः प्राप्त धीरा युक्तात्मानं सर्वमेवा विशन्ति।"

धीरगण सर्वव्यापी को सकल दिशाओं से प्राप्त कर युक्तात्मा होकर सर्वत्र ही प्रवेश करते हैं। सर्व में प्रवेश करना

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

युक्तात्मा होना, उस विश्वात्मा की अनुभूति प्राप्त करना ही हमारी साधना का लक्ष्य है। आत्मा द्वारा विश्वात्मा में प्रवेश करना ही आध्यात्मिक साधना की कसौटी है।

साधारण स्थिति में अथवा प्रारम्भिक अवस्था में मनुष्य एक सीमित आवरण में आवृत्त पृथ्वी पर विचरण करता है। जिस प्रकार एक अण्डे में स्थित पक्षी का बच्चा पृथ्वी पर जन्म लेता है किन्तु अंडे के आवरण में लिप्त हुआ जीवन लाभ भी नहीं करता, ठीक इसी प्रकार साधारण स्थिति में मनुष्य एक अस्फुट चेतना के अंडे में आवृत्त होता है। उस समय वह अपनी उस क्षुद्र इकाई को नहीं देख पाता है जहाँ संकीर्णता होती है, खण्डता होती है, विभिन्नता होती है। जिस प्रकार जन्मान्ध व्यक्ति विस्तृत संसार की जानकारी नहीं कर पाता, वह सोचता है शायद विश्व में और कुछ भी नहीं है सर्वत्र अंधकार ही है किन्तु यदि उसकी आँख ठीक हो जाये अथवा विशेष उपकरणों के उपयोग से उसे दिखाई देने लगे तो विस्तृत विश्व की झाँकी, संसार के क्रियाकलापों को वह देख सकता है विश्व भुवन के वैचित्र्य को, जिसकी उसे अन्वेषन की अवस्था में जरा भी जानकारी न थी, उसे देखकर वह सोचने लगता है मैं इतने दिन तो इसी प्रकार कुछ नहीं समझते हुए घूमता रहा आज मुझे इस संसार का दर्शन हुआ है। ठीक इसी प्रकार आत्मदृष्टि प्राप्त कर लेने पर होता है।

मनुष्य अपने आवरण में अस्फुट चेतना के अण्ड से खण्डता, अनेकता के रंगीन चश्मे के परदे से जब अपने आपको निरावृत्त कर आत्मा द्वारा विश्वात्मा में प्रवेश कर लेता है तब वह अपने विराट एवं सर्वव्यापी स्वरूप को सकल दिशाओं में प्राप्त कर मुक्तात्मा बन जाता है। सर्वत्र प्राप्त करने की क्षमता प्राप्त करता है। परमात्मा की परम सत्ता में प्रविष्ट होकर ही आध्यात्मिक साधन का चरम लक्ष्य प्राप्त होता है। आत्मा विश्वात्मा में मिलकर ही अपनी अनेकों जन्मों की यात्रा पूरी करती है, यही मोक्ष, जीवन मुक्ति, प्रभु, दर्शन, आत्म साक्षात्कार का वास्तविक स्वरूप है। जीव चैतन्य और विश्व चैतन्य की एकता एक रसता प्राप्त कर लेना अध्यात्म जीवन की कसौटी है।

वह विश्व चैतन्य, विश्वात्मा क्या है ? इस पर उसकी अनुभूति प्राप्त करने वाले—देखने वाले उपनिषदकार कहते हैं।

"वृक्ष इव स्तब्धो दिवि तिष्ठत्येक स्तेनेदं पूर्णं पुरुषेण सर्वम्"

अर्थात्—वृक्ष की भाँति आकाश में स्तब्ध हुए विराज रहे हैं वही एक उस पुरुष में उस परिपूर्ण में यह समस्त ही पूर्ण हैं।

यथा सौम्यं वयांसि वासो वृक्षं सम्प्रतिष्ठन्ते ।
एव ह वै तत् सर्वं पर आत्मनि सम्प्रतिष्ठते ॥

अर्थात्—हे सौम्य ! जिस प्रकार वास वृक्ष में पक्षी आकर स्थित होते हैं, निवास करते हैं वैसे ही यह जो कुछ है समस्त ही परमात्मा में प्रतिष्ठित हुआ रहता है।

परमात्मा की विराट सत्ता ही सर्वत्र व्याप्त है। यह सारा दृश्य जगत उसी में स्थित है। जब आत्मा उस विश्वात्मा की अनुभूति प्राप्त कर उसी में लीन हो जाती है जब जीव चैतन्य और विश्व चैतन्य में एकाकार स्थापित हो जाता है तभी अनिर्वचनीय आनन्द की प्राप्ति होती है। उस प्राप्त से ही जीवन का सौन्दर्य है, शान्ति है, मंगल है, अमृत है। उस विश्वात्मा की, जो सर्वत्र ही व्याप्त है, अनुभूति प्राप्त कर मनुष्य सर्वत्र निर्भय होकर विचरण करता है। सर्वत्र उसी के दर्शन करता है तब उसे दूसरा कुछ और दिखाई ही नहीं देता।

हम जीवन को तथा विश्वात्मा के विराट स्वरूप को खण्ड-खण्ड करके देखते हैं। हम आत्मदृष्टि से न देखकर स्थूल दृष्टि से देखते हैं और खण्डता विभिन्नता को प्रधानता देते हैं। मनुष्य को हम आत्मा द्वारा न देखकर इन्द्रियों द्वारा, युक्तिओं द्वारा, संस्कार और संसार द्वारा देखते हैं। अमुक वकील है, डाक्टर है, सन्त है, दुष्ट है, नीच है, दयालु है, कुरूप है, सुन्दर है आदि निर्णय दे हम मनुष्य को विशेष प्रयोजन युक्त अथवा विशेष श्रेणीयुक्त के आकार में देखते हैं। यहाँ ही हमारी परिचय शक्ति रुक जाती है। इस संकीर्ण आवरण के कारण हम आगे प्रविष्ट नहीं होते। इस खण्डता, विभिन्नता में ही हम अपने को रक्षित समझते हैं हमारे विषय प्रबल हो उठते हैं, धन, मान, पद, प्रतिष्ठा हमें तरह-तरह से नाच नचाते हैं। हम दिन रात ईंट, काठ, लोहा, सोना इकट्ठे करने में लगे रहते हैं, द्रव्य सामग्री संग्रह करने का अन्त नहीं होता। जीवन के शेष दिन परस्पर छीना-झपटी खण्ड मारकाट अपने प्रतिवेशियों के साथ निरन्तर प्रतियोगिता में बीतते हैं। इस खण्ड खण्डता में दुःख अशान्ति, क्लेश, उद्वेग, नारकीय यातनाओं का भारी बोझ लादे हुए जीवन पथ पर चलना पड़ता है और इनका तब तक अन्त नहीं होता जब तक हमारी दृष्टि इन नानात्व से हट कर सर्वात्मा की ओर नहीं लगती। कहा भी है—

"मृत्योः च मृत्युमाप्नोति य इह नानेव पश्यति"

अर्थात—जो उसे नाना करके, खण्ड-खण्ड करके देखता है वह मृत्यु से मृत्यु को प्राप्त होता है।

"येनाहं नामृता स्यां किमहं तेन कुर्याम"

अर्थात—अध्यात्म पथिक कहता है "जिसके द्वारा मुझे अमृत की प्राप्ति न हो उसे लेकर मैं क्या करूँगा ?" जो बँटा है, विच्छिन्न है, खण्ड-खण्ड है वही मृत्यु के द्वारा आक्रान्त है अतः इसका त्याग आवश्यक है और उस विश्वात्मा की अनुभूति उस परम पुरुष, परम सत्ता जिससे परिपूर्ण यह समस्त ही पूर्ण है उसे वरण करना आत्मा का, जीव चैतन्य का प्रधान धर्म है। यही परम गति है—

एवास्य परमागतिः एवास्य परं सम्पद् ।
ऐषोऽस्य परमो लोकः एषोऽस्य परमानंदः ॥

वह परमात्मा ही जीवों की परम शक्ति है, परम सम्पद् है, वह ही जीवों का परम लोक एवं परम आनन्द है !

एष सर्वेश्वर एष भूताधिपति एष भूतपाल ।
एष सेतुविधरणा एषां लोकानाम् असम्भेदाय ॥

अर्थात—"यह परमात्मा ही सबका ईश्वर है, समस्त जीवों का अधिपति है और समस्त जीवों का पालनकर्ता है। वह विश्वात्म ही सेतु स्वरूप होकर समस्त लोक को धारण करके ध्वंस से उसकी रक्षा करता है।"

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अध्यात्म साधना, मानव जीवन का परम लक्ष्य अपने दृष्टिकोण खण्ड खण्डता, विभिन्नता, संकीर्णता से हटाकर सर्वत्र उस विश्वात्मा, परमात्मा की विराट सत्ता का दर्शन और उसकी अनुभूति प्राप्त करना मनुष्य के लिए यही सत्य और सनातन राजमार्ग है। जब जाति, गुण, कर्म, स्वभाव संस्कार आदि समाप्त हो जाते हैं। मानव मात्र में आत्मदृष्टि से देखने पर सर्वत्र उस विश्वात्मा की प्रतिष्ठापना के दर्शन होते हैं। इतना ही नहीं प्राणी मात्र वृक्ष, वनस्पतियाँ, जड़ चैतन्य में उसी परम शक्ति का क्रियाकलाप दिखाई देता है और तभी अनिर्वचनीय आनन्द की प्राप्ति होती है। जिस क्षण उस विश्वात्मा की अनुभूति प्राप्त होगी उसी क्षण समस्त पाप, ताप अभ्यास जनित संस्कार आचरणों का अन्त हो जायेगा और '**अमृत यद्विभाति**' अमृत रूप में जो सब में प्रकाशित है उसी अमृत में आत्मा का प्रवेश होगा। फिर सर्वत्र अनन्त आनन्द रूपी अमृत के ही दर्शन होंगे। हमारी आत्मा में भूमा स्थित का दिव्य प्रकाश मुखरित हो उठेगा।

साधना का तात्पर्य ही है साथ लेना, सधा लेना। पशु प्रशिक्षक यही करते रहते हैं। अनगढ़ और उच्छृंखल पशुओं को वे एक रीति नीति सिखाते हैं। उनको अभ्यस्त बनाते हैं और उस स्थिति तक पहुँचाते हैं जिसमें उस असंस्कृत प्राणी को उपयोगी समझा जा सके। उसके बढ़े हुए स्तर का मूल्यांकन हो सके। पालने वाला अपने को लाभान्वित हुआ देख सके। सिखाने वाला भी अपने प्रयास की सार्थकता देखते हुए प्रसन्न हो सके।

समझा यह जाता है कि भक्त भगवान को साधता है। उसको मूर्ख समझते हुए उसकी गलतियाँ निकालता रहता है। तरह-तरह के उलाहने देता है। साथ ही गिड़गिड़ाकर नाक रगड़ कर, खींसे निपोर कर अपना उचित अनुचित उल्लू सीधा करने के लिए जाल जंजाल बुनता है। प्रशंसा के पुल बाँधता है। छिटपुट भेंट चढ़ाकर उसे फुसलाने का प्रयत्न करता है। समझा जाता है कि सामान्य लोगों से व्यावहारिक जगत में आदान-प्रदान के आधार पर ही लेन-देन चलता है, पर ईश्वर या देवता ऐसे हैं जिन्हें वाणी का वाचालता तथा शारीरिक मानसिक उचक-मचक करने भर से वशवर्ती किया जा सकता है। यह दार्शनिक भूल मनुष्य को प्रकारान्तर से प्रच्छन्न नास्तिक बना देती है। एक नास्तिक वह है जो प्रत्यक्षवाद के आधार पर ईश्वर की सत्ता स्पष्ट दृष्टिगोचर न होने से उसकी सत्ता से इनकार करते हैं। दूसरे प्रच्छन्न नास्तिक वे हैं जो उससे पक्षपात की, मुफ्त में लम्बी चौड़ी मनोकामनाओं की पूर्ति चाहते रहते हैं। मनुष्य विधि व्यवस्थाओं को तोड़ता छोड़ता रहता है। पर ईश्वर के लिए यह सम्भव नहीं है कि अपनी बनाई कर्मफल व्यवस्था का स्वयं उल्लंघन करे या दूसरों को ऐसा करने के लिए उत्साहित करे तथाकथित भक्त लोग ऐसी ही आशाएँ किया करते हैं। अन्ततः उन्हें निराश होना पड़ता है। इस निराशा की खीज और थकान से वे या तो साधना विधान को मिथ्या बताते हैं या ईश्वर के निष्ठुर होने की मान्यता बनाते हैं।

आवश्यकता है भ्रान्तियों से निकलने और यथार्थता को अपनाने की। इस दिशा में मान्यताओं को अग्रगामी बनाते हुए हमें सोचना होगा कि जीवन साधना ही आध्यात्मिक, स्वस्थता और बलिष्ठता है। इसी के बदले प्रत्यक्ष जीवन में बिना मरण की प्रतीक्षा किये स्वर्ग, मुक्ति और तृप्ति का रसास्वादन करते रहा जा सकता है। उन लाभों को उपलब्ध किया जा सकता है, जिनका उल्लेख अध्यात्म विद्या की महत्ता बताते हुए शास्त्रकारों ने विस्तारपूर्वक किया है। सच्चे सन्त भक्तों का इतिहास भी विद्यमान है। खोलने पर प्रतीत होता है कि पूजा पाठ भले ही उनका न्यूनाधिक रहा हो पर उन्होंने जीवन साधना के क्षेत्र में परिपूर्ण जागरूकता बरती। इसमें व्यतिक्रम नहीं होने दिया। न आदर्श की अवज्ञा की और न उपेक्षा बरती। भाव संवेदनाओं में श्रद्धा-विचार, बुद्धि में प्रज्ञा और लोकव्यवहार में शालीन सद्भावना की निष्ठा अपनाकर कोई भी सच्चे अर्थों में जीवन देवता का सच्चा साधक बन सकता है। उसका उपहार वरदान भी उसे हाथों हाथ मिलता चलता है।

ऋषियों, मनीषियों, सन्त सुधारकों और वातावरण में ऊर्जा आभा भर देने वाले महामानवों की अनेकानेक साक्षियाँ विश्व इतिहास में भरी पड़ी हैं। इनमें से प्रत्येक को हर कसौटी पर जाँचपरख कर देखा जा सकता है कि उनमें से हर एक को अपना व्यक्तित्व उत्कृष्टता की कसौटी पर खरा सिद्ध करना पड़ा है। उससे कम में किसी को भी न आत्मा की प्राप्ति हो सकी, न परमात्मा की। न ऐसों का लोक बना और न परलोक। पूजा को शृंगार माना जाता रहा है। स्वास्थ्य वास्तविक सुन्दरता है। ऊपर से वस्त्राभूषणों से, प्रसाधन सामग्रियों से उसे सजाया भी जा सकता है। इसे सोना सुगन्ध का मिश्रण बन पड़ा माना जा सकता है। जीवन साधना समग्र स्वस्थता है। उसके ऊपर पूजा-पाठ का शृंगार भी सजाया जाये तो शोभा और भी अधिक बढ़ेगी किन्तु यह नहीं माना जाना चाहिए कि मात्र शृंगार साधनों के सहारे सुन्दरता बढ़ती है। किसी जीर्ण जर्जर, रुग्ण या मृत शरीर पर शृंगार सामग्री चढ़ा ली जाये तो भी कुछ प्रयोजन कहाँ सधता है ? उससे तो उपहास ही होगा। इसके विपरीत यदि कोई हृष्टपुष्ट पहलवान मात्र लंगोट पहन कर अखाड़े में उतरता है तो भी उसकी शोभा बन जाती है। ठीक इसी प्रकार जीवन को सुसंस्कृत बना लेने वाले यदि पूजा अर्चा के लिए कम समय निकाल पाते हैं तो भी काम चल जाता है।

अध्यात्म विज्ञानी—तत्वदर्शी को अपने दृष्टिकोण में मौलिक परिवर्तन आरम्भ करना पड़ता है। उसे सोचना होता है कि मनुष्य जीवन की बहुमूल्य धरोहर का इस प्रकार उपयोग करना है जिससे शरीर निर्वाह और लोकव्यवहार भी चलता रहे पर साथ ही आत्मिक अपूर्णता को पूरी करने का चरम लक्ष्य भी प्राप्त हो सके। ईश्वर के दरबार में पहुँचने पर सीना तान कर कहा जा सके कि जो अमानत जिस प्रयोजन के लिए सौंपी गई थी उसे उसी हेतु सही रूप में प्रयुक्त किया गया।

इस मार्ग में सबसे बड़े व्यवधान तीन हैं। इन्हीं को रावण, कुम्भकरण, मेघनाद कहा गया है। यही देवी भागवत में महिषासुर, मधुकैटभ, रक्तबीज हैं। कंस, दुर्योधन, जरासंध भी यही हैं। यह प्रायः साथ लगे रहते हैं और पीछा नहीं छोड़ते। इन्हीं के कारण मनुष्य पतन और पराभव के गर्त में गिरता है। पशु, प्रेत और पिशाच की जिन्दगी जीता है। नर, वानर और

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पामर इन्हीं के चंगुल में फँसे हुए लोगों को देखा जाता है। वे हैं (१) लोभ, (२) मोह, (३) अहंकार। वासना, तृष्णा और लिप्सा इन्हीं के कारण उत्पन्न होती हैं।

लोभ विजय के लिए सादा जीवन उच्च विचार का सिद्धान्त अपनाना पड़ता है। औसत नागारिक स्तर के निर्वाह में संतोष करना पड़ता है। ईमानदारी और परिश्रम की कमाई पर निर्भर रहना पड़ता है। लालची के लिए अनीति अपनाये बिना अपनी तृष्णा की पूर्ति कर सकना किसी भी प्रकार सम्भव नहीं होता। संसार में इतनी ही सम्पन्नता उपजती है कि उससे हर किसी को जीवन धारण भर की सुविधा मिल सके। जो अधिक विलासी खर्च करेगा, वह प्रकारान्तर से दूसरों को उतना ही अभावग्रस्त रहने के लिए बाधित करेगा। इसीलिए शास्त्रकारों ने परिग्रह को पाप बताया है। विलासी, संग्रही और अपव्ययी की भी ऐसी ही निन्दा की है।

अधिक कमाया जा सकता है पर उसमें से निजी निर्वाह में सीमित व्यय करके शेष बचत को, गिरों को उठाने, उठों को उछालने और सत्प्रवृत्तियों के सम्वर्द्धन में लगाया जाना चाहिए। राजा जनक, हर्षवर्धन जैसे उदाहरणों की कमी नहीं। मितव्ययी अनेकों दुर्व्यसनों और अनाचारों से बचता है। ऐसी हविश उसे सताती नहीं, जिसके लिए अनाचार पर उतारू होना पड़े। साधु ब्राह्मणों की यही परम्परा रही है। सज्जनों की शालीनता भी इसी आधार पर फलती फूलती है, अन्यथा लालची को अपना सारा समय, श्रम, कौशल इसी निमित्त खपाते रहना पड़ता है। उस पर व्यस्तता छाई रहती है। जीवन लक्ष्य की पूर्ति कराने वाली परमार्थ परायणता अपनाने के लिए उसका न मन होता है और न कुछ करते बन पड़ता है। इसलिए जीवन साधना के इस प्रथम अवरोध को नियंत्रित करने वाला दृष्टिकोण हर जीवन साधना के साधक को अपनाना ही चाहिए।

मोह वस्तुओं से होता है और व्यक्तियों से भी। छोटे दायरे में आत्मीयता को सीमाबद्ध करना ही मोह है। इसके रहते हृदय की विशालता चरितार्थ हो ही नहीं पाती। अपना शरीर और परिवार ही सब कुछ दीख पड़ता है। उन्हीं के लिए मरने खपने के झंझट में फंसे रहना पड़ता है। 'आत्मवत् सर्वभूतेषु' और 'वसुधैव कुटुम्बकम्' के दो आत्मवादी सिद्धान्त हैं। इनमें से एक को भी मोहग्रस्त कार्यान्वित नहीं कर सकता। इसलिए अपने में सब को और सब में अपने को देखने की दृष्टि विकसित करना जीवन यज्ञ के लिए आवश्यक माना गया है।

परिवार छोटे से छोटा रखा जाये। पूर्ववर्ती अभिभावकों, बड़ों और आश्रितों के ऋण चुकाने की ही व्यवस्था नहीं बन पाती तो नये अतिथि क्यों न्यौत बुलाये जाएँ ? समय को, परिस्थितियों को देखते हुए अनावश्यक बच्चे उत्पन्न करना और परिवार का भार परले सिरे की भूल है। समान विचारों के साथी सहयोगी मिले तो विवाह करने में हर्ज नहीं। पर वह एक दूसरे की सहायता सेवा करते हुए प्रगति पथ पर अग्रसर होने के लिए ही की जानी चाहिए। इस घोर महँगाई और उत्पादन की कमी को देखते हुए जनसंख्या का भार बढ़ाना प्रत्यक्ष विपत्ति मोल लेने के समान है। परिवार को स्वावलम्बी और सुसंस्कारी बनाना ही पर्याप्त है। औलाद के लिए विपुल सम्पदा उत्तराधिकार में छोड़ मरने की भूल तो किसी को करनी ही नहीं चाहिए। मुफ्त का माल किसी को भी हज्म नहीं होता। वह दुर्बुद्धि और दुर्गुण ही उत्पन्न करता है। संतान पर यह भार लदेगा तो उसका अपकार ही होगा।

पारिवारिक उत्तरदायित्वों को निबाहा जाना चाहिए, उसी कीचड़ में इतनी गहराई तक नहीं फँसना चाहिए कि उबर सकना सम्भव ही न हो सके। मोह को भवबन्धनों में से प्रमुख माना गया है। उस संकीर्ण दायरे में जकड़े हुए लोग लोकमंगल का कर्त्तव्य पालन कर ही नहीं पाते। जिन्हें सभी के प्रति पारिवारिकता का भाव अपनाने का अवसर मिलता है, उनके लिए हर किसी को आत्मीय मानने का, सभी की सेवा सहायता करने का आनन्द मिलता है।

अहंकार मोटे अर्थों में घमंड समझा जाता है। अकड़ कर उद्धत अशिष्ट व्यवहार करने, क्रोध ग्रस्त रहने को अहंकार माना जाता है पर वस्तुतः वह है अधिक सूक्ष्म और व्यापक। आत्म प्रदर्शन में, ठाट-वाट में बढ़-चढ़ कर अपनी बड़ाई का रौब जमाना अहंकार का वास्तविक स्वरूप है। फैशन, सज-धज शृंगार, ठाट-वाट, अपव्यय, शेखी, बड़प्पन आदि अहंकार के स्वरूप हैं। लोगों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करने के लिए, बड़प्पन जताने के लिए, शेखी खोरी के लिए लोग ढेरों समय, श्रम और पैसा गँवाते हैं। यह भी एक प्रकार का नशा है जिसमें अपने को भले ही मजा आता हो पर हर विचारशील को इसमें क्षुद्रता की, बचकानेपन की ही गन्ध आती है। इस विडम्बना के लिए चित्र विचित्र प्रवंचनाएँ रचनी पड़ती हैं। ईर्ष्या-द्वेष उत्पन्न करने में भी अहंता की ही प्रमुख भूमिका रहती है। कलह और विग्रह भी प्रायः इसी कारण उत्पन्न होते हैं। अहंकार को आत्मघाती शत्रु माना गया है। ऐसे लोगों से आत्म साधना तो बन ही नहीं पाती। उन पर उद्दण्डता का भूत और चढ़ा रहता है जो दूसरों को गिराने, नीचा दिखाने की ही ललक उठाती रहती है। अपनी प्रशंसा और दूसरों की निन्दा करने में ही ऐसे लोग लगे रहते हैं। इन परिस्थितियों में आत्मोत्कर्ष और आत्म-परिष्कार का आधार कैसे बन पड़े ?

लोभ, मोह और अहंकार के तीन भारी पत्थर जिसने सिर पर लाद रक्खे हों उसके लिए जीवन साधना की लम्बी और ऊँची मंजिल पर चल सकना, चढ़ सकना असम्भव हो जाता है। भले ही कोई कितने ही पूजा-पाठ करते रहें, जिन्हें तथ्यान्वेषी बनना है उन्हें इन तीन शत्रुओं से अपना पीछा छुड़ाना ही चाहिए।

हल्की वस्तुएँ पानी पर तैरती हैं किन्तु भारी होने पर डूब जाती हैं। जो लोभ, मोह और अहंकार के भारी पत्थर अपनी पीठ पर लादे हुए हैं, उन्हें भव सागर में डूबना ही पड़ेगा। जिन्हें तरना है, तैरना है, उन्हें इन तीनों भारों को उतारने का प्रयत्न करना चाहिए।

अनेकानेक दोष—दुर्गुणों, कषाय-कल्मषों का वर्गीकरण, विभाजन करने पर उनकी संख्या सैकड़ों हजारों हो सकती है पर उनके मूल उद्गम तीन ही हैं—लोभ, मोह और अहंकार। इन्हीं भवबन्धनों से मनुष्य के स्थूल, सूक्ष्म, कारण शरीर कैद पड़े हैं। अन्तःकरण पर इन्हीं के कषाय-कल्मषों का आवरण छाया रहता

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

है। उनका उन्मूलन किए बिना आत्मा को उस स्वतंत्रता का लाभ नहीं मिल सकता, जिसे मोक्ष कहते हैं इन तीनों पर कड़ी नजर रखी जाये। इन्हें अपना संयुक्त शत्रु माना जाये। इनसे पीछा छुड़ाने के लिए हर दिन नियमित रूप से प्रयास जारी रखा जाये। एक दम तो सब कुछ सही हो जाना तो कठिन है पर उन्हें नित्य प्रति यथा सम्भव घटाते हटाते चलने की प्रक्रिया जारी रखने पर सुधार क्रम में सफलता मिलती ही चलती है और एक दिन ऐसा भी आता है जब इन से पूरी तरह छुटकारा पाकर पूरी तरह बन्धन मुक्त हुआ जा सके। यही जीव-मुक्ति है, मोक्ष है।

आत्मसाधना के कठिन पथ पर

मृत मनुष्य के विषय में सारा संसार संशयशील है। कोई लोग मृत्यु को ही जीवन की इति मानते हैं, कोई कहते हैं कि शरीर, इन्द्रियाँ, मन और बुद्धि के अतिरिक्त कोई आत्मा है जो मृत्यु के पश्चात् लोक-लोकान्तरों में भ्रमण करती है। प्रत्यक्ष या अनुमान से इसका कोई उचित निर्णय नहीं दे पाता। इस गूढ़ प्रश्न को लेकर एक दिन महर्षि उद्दालक के पुत्र नचिकेता ने यमाचार्य के पास जाकर अत्यन्त विनीत भाव से पूछा—"देव आप मृत्यु के देवता हैं अतएव मैं यह आत्म-तत्व आप से जानना चाहता हूँ।"

ऋषि बालक की जिज्ञासा पर एक-क्षण यमाचार्य को बड़ी प्रसन्नता हुई। पर दूसरे ही क्षण वे प्रश्न की गहराई में डूब गये। यमाचार्य ने पंचाग्नि विद्या का ज्ञान बड़ी कठोर तपश्चर्या के बाद प्राप्त किया था, वे साधना-पथ की कठिनाइयों से पूरी तरह अवगत थे। बालक की दृढ़ता पर वे एकाएक विश्वास न कर सके अतः उन्होंने नचिकेता को सम्बोधित करते हुये कहा—"वत्स तुम इस आत्मज्ञान को प्राप्त कर क्या करोगे, मैं तुम्हें सुख-सामग्रियों से भरपूर राज्य कोष, घोड़े, हाथी, रूपवती स्त्रियाँ और सौ वर्ष जीने वाले बहुत से पुत्र दे सकता हूँ तुम चाहो तो इन्हें प्राप्त कर बहुत दिनों तक इस धरती का सुखोपभोग करो। यह आत्मज्ञान बड़ा कठिन है तुम ऐसी तपश्चर्या क्यों करना चाहते हो ? दीर्घजीवन व्यापी सामर्थ्य प्राप्त कर इस संसार के सुखोपभोग क्यों नहीं मांग लेते।

यमाचार्य का इन प्रलोभनपूर्ण बातों का नचिकेता पर कोई प्रभाव नहीं हुआ। उसने कहा—भगवन् यह वस्तुएँ जो आप मुझे देना चाहते हैं, पता नहीं कब तक मेरा साथ देंगी, फिर भोग शक्तियों को नष्ट करने वाले ही होते हैं और शक्तियों के नाश से मनुष्य निश्चय ही दुःखी होता है और मृत्यु की ओर अग्रसर होता है। मैं इस मृत्यु रूपी भय से छुटकारा पाना चाहता हूँ। शरीर के सौन्दर्य और विषय भोग को अनित्य और क्षणभंगुर समझकर ऐसा कौन बुद्धिमान होगा जो आत्मज्ञान की अपेक्षा दीर्घ-जीवन और सांसारिक वैभव विलास को बड़ा मानेगा ?

नचिकेता की प्रबल आत्म-जिज्ञासा के भाव को देखकर यमाचार्य सन्तुष्ट हुये और उन्होंने नचिकेता को आत्म-तत्व का उपदेश दिया।

जिस बात को यमाचार्य और नचिकेता के इस कथानक में बताया गया है। आत्म-साक्षात्कार के साधक के जीवन में वैसी ही घटनायें घटित होती हैं। मनुष्य की साधारण जिज्ञासा और आत्म-साक्षात्कार के बीच में जीवन शोधन की जो आवश्यक शर्त लगी हुई है वह अति दुस्तर है इसीलिये शास्त्रकार ने कहा है—

क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया—
दुर्ग पथस्तत्कवयो वदन्ति ।

यह आत्मज्ञान का मार्ग छुरे की धार पर चलने के समान कठिन है, ऐसा कवि-मनीषियों का निश्चित मत है।

बात भी प्रायः ऐसी ही है, क्योंकि मनुष्य की स्वाभाविक जीवन-क्रम में चलते रहने की प्रवृत्ति होती है। जल को किसी स्थान पर लुढ़का दिया जाये तो वह अपना रास्ता आप बना लेता है। नीचे की ओर बहने में उसे कोई कठिनाई नहीं होती। संक्षेप में हमारा जैसा जीवन-क्रम चल रहा है उसे वैसा ही चलते रहने दें तो इसमें न कोई असुविधा होगी न कठिनाई। कठिनता तो अपने आप को ऊपर उठाने में ही होती है। पानी को अपनी सतह से ऊँचे उठाना हो तो उसे विशेष यत्नपूर्वक बड़ी कठिनाइयों के साथ ऊपर चढ़ा पाते हैं। आत्मा को लघुता से विभुता की ओर अग्रसर करने में भी ठीक ऐसी ही कठिनाई आती है।

सबसे पहली आत्मसाधना जीवन को शुद्ध बनाना है। पाप और विकार ही आत्मा के बन्धन माने गये हैं अतः उनसे मुक्ति पाने का प्रयत्न किया जाता है। पीछे जो पाप हो गये हैं उनके प्रक्षालन के लिए प्रायश्चित और तपश्चर्या करनी पड़ती है। इसके बिना आत्मज्ञान के लिए जिस एकाग्रता और दृढ़ता की आवश्यकता होती है वह नहीं हो पाती। पापों में रत और चित्तवृत्तियों का शोधन न करने वालों के मन सदैव अशान्त रहते हैं। ऐसी अवस्था में शब्द पाण्डित्य या केवल सैद्धान्तिक ज्ञान काम नहीं देता; आत्म-साक्षात्कार के लिये इन्द्रिय लालसाओं से मुक्त होना, शुद्ध, संयत और समाहित होना अत्यन्त आवश्यक है। पर इन्द्रिय विजय योंही नहीं हो जाती। जप, तप, व्रत, उपवास, तितीक्षा आदि के द्वारा आत्मा का शुद्धिकरण होता है, प्राणायाम, ध्यान, धारणा आदि के द्वारा उसे शक्तिशाली बनाया जाता है। यह कार्य ऐसे नहीं होते जिन्हें मनुष्य का मन आसानी से स्वीकृति देता रहे और उनका किंचित विरोध न करे।

बुद्धि पाप, इच्छाओं और वासनाओं पर लगाम लगाती है, उन्हें बार-बार नियंत्रण में लाती है किन्तु इन्द्रियाँ और उनके विषय भी बड़े शक्तिशाली और प्रमथनकारी होते हैं। चोट खाये हुए सर्प, हारे हुये जुआरी की तरह वे बार-बार दांव लगाते हैं और परिस्थितियाँ पाकर मनुष्य की सारी बुद्धि और विवेक में घमासान हलचल मचा देते हैं। काम और क्रोध, लोभ और मोह, भय और आशंका के तूफान एक क्षण मनुष्य की बुद्धि पर पर्दा डाल देते हैं, उसे साधना से विचलित करने का हर सम्भव प्रयत्न करते हैं। कुचली हुई वासनाओं को जब भी अवकाश मिलता है वे ऐसे-ऐसे प्रलोभकारी रूप रचकर मनुष्य को लुभाती

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

हैं कि आत्मज्ञान का सारा महत्व उसकी आँखों से ओझल हो जाता है, बात की बात में साधक पथभ्रष्ट होकर रह जाता है। ऐसे कठिन समय में जिनकी बुद्धि में विवेक होता है, जिनका मन एकाग्र और समाहित होता है, उसी की इन्द्रियाँ सावधान रहती हैं और वही आत्मसाधना के पथ पर धैर्यपूर्वक अन्त तक टिके रह पाते हैं।

आत्मज्ञान की इच्छा करने वालों को स्पष्ट समझ लेना चाहिए कि जो अनावश्यक जान पड़ती हों कम से कम उन कामनाओं का तो परित्याग करना ही पड़ता है। अपनी बुद्धि को यथा सम्भव एकाग्र और निर्मल बनाने की वैसी ही आवश्यकता होती है जिस प्रकार भरे हुए जल में प्रतिबिम्ब देखने के लिए लहरों का रोकना आवश्यक होता है। कामनायें एक प्रकार की लहरें ही होती हैं जिनके रहते हुए आत्मा का प्रतिबिम्ब साफ नहीं झलकता। इस बात का पक्का और पूर्ण विश्वास हो जाने पर किसी मार्गदर्शक की आवश्यकता नहीं रहती। इसके बाद आत्मा स्वयं अपना गुरु, नेता या मार्गदर्शक हो जाता है और सभी सदाचरण स्वतः उसमें प्रकट होने लगते हैं। वह स्वयं ही सत्य और शुद्ध चरित्रमय बनने लगता है।

भय और लोभ आत्मविकास के मार्ग में निरन्तर बाधाएँ पहुँचाते रहते हैं। बहिर्मुखी इन्द्रियाँ भी चैन से नहीं बैठने देतीं। अन्तरात्मा को देखने की दूर दृष्टि थोड़ी देर के लिए जाग्रत होती है अन्यथा अधिकांश समय यह इन्द्रियाँ तरह-तरह के बाहरी प्रलोभनों की ओर ही आकर्षित होती रहती हैं। अच्छे-अच्छे स्वादयुक्त भोज्य पदार्थ, अधिक धन, विपुल ऐश्वर्य, कुच और कंचन की अतृप्त तृष्णा बार-बार अन्तर्मुखी इन्द्रियों को बहकाती रहती हैं। अज्ञानी लोग बाह्य विषयों के प्रलोभनों में फँस जाते हैं, इसीलिए बताया गया है कि यह मार्ग अति कठिन है और उसे पार जाना कोई आसान बात नहीं है।

पर अमृतत्व की तीव्र आकांक्षा रखने वाले साहसी पुरुष इन्द्रियों की क्षणिक लोलुपता और मन के विद्रोह के आगे नहीं झुकते। वे नचिकेता की तरह ही निष्ठाभाव से आध्यात्मिक विकास की साधना में संलग्न रहते हैं और आत्मज्ञान का लाभ प्राप्त करते हैं। यह मार्ग कायरों के लिए कठिन है पर पुरुषार्थियों के लिए कठिन नहीं होता। वे इन कठिनाइयों में भी अपने जीवन का आनन्द ढूँढ़ लेते हैं और अन्त तक तत्परतापूर्वक अभ्यास करते हैं। यह आत्मा अन्त में उन्हीं वीर पुरुषों को प्राप्त होता है। वही स्वर्ग और मुक्ति के अधिकारी होते हैं।

साधना समर बनाम जीवन संग्राम

साधना को 'समर' कहा गया है। जीवन को संग्राम माना गया है। महाभारत का ऐतिहासिक रूप जो भी रहा हो, वह हमारे जीवन-क्रम में अविच्छिन्न रूप से जुड़ा हुआ है। अन्तर्द्वन्द्व के रूप में वह समुद्र मंथन हर घड़ी सामने खड़ा रहता है। दैवी और आसुरी वृत्तियाँ अपनी-अपनी ओर जीव को घसीटने के लिए घोर प्रयास करती रहती हैं। जिसे जितना खाद, पानी मिलता है वे उसी अनुपात से बढ़ती हैं। जिसे जितना उपेक्षित एवं विभुक्षित रहना पड़ता है वह उतनी ही दुर्बल परास्त होती चली जाती हैं।

साधना के दो प्रयोजन हैं एक संचित कुसंस्कारों का उन्मूलन, दूसरे सत्प्रवृत्तियों की सुदृढ़ संस्थापना। अवरोधों को हटाने और सहायक साधनों को बढ़ाने की हर प्रयोजन में आवश्यकता पड़ती है। आत्मिक प्रगति के लिए भी यह उभय-पक्षीय प्रयत्न करना पड़ता है।

भगवान के अवतार के यही दो प्रयोजन हैं— अधर्म का उन्मूलन और धर्म का संस्थापन। गीता में भगवान के अनेकों अवतारों के यही दो उद्देश्य— **'यदा यदा हि धर्मस्य'** और **'परित्राणाय साधूनां'** वाले आश्वासनों में घोषित किये गये हैं। आत्मचेतना का परिष्कार व्यक्ति में ईश्वर का अवतरण कहा जा सकता है। उसमें पुण्य प्रयोजनों को अपनाने की ही नहीं, दुष्प्रवृत्ति उन्मूलन की भी उमंग समान रूप से काम कर रही होती है। कुसंस्कारों को काट फेंकना आत्मिक पुरुषार्थों में सर्वोपरि माना गया है। कुसंस्कार कितने प्रबल होते हैं, उनकी दुरूहता को महाभारत की एक उक्ति में बताया गया है—

"जानामि धर्मं न च मे प्रवृत्ति—जानाम्य धर्मं न च मे निवृत्ति"

अर्थात्—धर्म का स्वरूप मालूम तो है, पर उसमें प्रवृत्ति ही नहीं होती। इसी प्रकार अधर्म के दुष्परिणाम भी विदित हैं, पर उनसे छूटना भी बन नहीं पड़ता।

हल जोतना और बीज बोना परस्पर विरोधी प्रक्रिया है। जोतने में खोदने का अर्थ अवांछनीय को हटाना है और बोने में कुछ डाला, रोपा और उगाया जाता है। भवन निर्माण में नींव खोदने में गड्ढा किया जाता है और फिर उस पर चिनाई आरम्भ करके दीवार खड़ी की जाती है। यह दोनों कृत्य परस्पर विरोधी होते हुए भी एक दूसरे के पूरक हैं।

विचारों से विचार और कर्मों से काटे जाते हैं। पाप कर्मों से निवृत्ति के लिए एक ही उपाय है कि उनके प्रतिपक्षी पुण्य कर्म उतने ही प्रबल स्तर के आरम्भ कर दिये जाएँ। प्रायश्चित्तों की —पुण्य प्रयोजनों की प्रक्रिया अपनाने का महत्व शास्त्रकारों ने इसी तथ्य को ध्यान में रखते हुए बताया है। लोकमंगल की सत्प्रवृत्ति सम्वर्द्धन की गतिविधियाँ न अपनाई जायँ तो संचित पाप कर्म कट नहीं सकेंगे। आग को बुझाने के लिए पानी की जरूरत पड़ती है। पाप कर्मों की विभीषिका जलती हुई आग के समान है। सत्कर्मों में प्रवृत्त होकर ही उन्हें शान्त किया जा सकता है। पूजा-पत्री की तथा सरल कर्मकाण्डों की लकीर पीट देने से पापों की निवृत्ति होने की बात सोचना व्यर्थ है। जितना भारी पाप था उतना ही वजनदार पुण्य होना चाहिए, तभी सन्तुलन बनेगा। सड़क पर गड्ढा खोदकर दूसरों को गिराने का जो उपक्रम किया गया है, उस दुष्कर्म की निवृत्ति के लिए आवश्यक है कि जितना श्रम गड्ढा खोदने में किया गया है उतना ही मिट्टी ढोकर उसे पाटने में किया जाये। क्षतिपूर्ति के लिए हर्जाने देने पड़ते हैं। मुख से क्षमा माँग लेने या पत्र-पुष्प, दण्डप्रणाम जैसी चिह्न पूजा कर देने से किसी के साथ क्षतिपूर्ति का समझौता नहीं होता। ऐसे प्रसंगों में अदालतें क्षति के समतुल्य ही उचित हर्जाना दिलाती हैं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

विचारों की काट विचारों से होती है। पतनोन्मुख प्रवृत्ति नीचे गिराने में पृथ्वी की आकर्षण शक्ति जैसा कार्य करती है। पानी गिरने पर नीचे की दिशा में सहज ही बहने लगता है। पर यदि उसे ऊँचा उठाना हो तो पाइप, रस्सी या अन्य प्रकार के साधन जुटाने की तथा ताकत लगाने की आवश्यकता पड़ती है। अनैतिक, कुविचार समीपवर्ती वातावरण में से उड़-उड़कर सहज ही मस्तिष्क पर छाते हैं और अपने आकर्षक प्रभाव से चिन्तन चेतना को जकड़ लेते हैं। इन्हें काटने के लिए विपरीत स्तर के सद्विचारों को पढ़ाने, सोचने, मनन करने एवं अपनाने के लिए प्रबल प्रयत्न करने की आवश्यकता होती है। यह कार्य विचार संघर्ष का महाभारत खड़ा किये बिना और किसी तरह सम्भव नहीं हो सकता।

पाण्डवों को तथा अन्य धर्म समर्थकों को प्राण हथेली पर रखकर लड़ना पड़ा था। लंकाकाण्ड में भी रीछ, वानरों ने राक्षसों के साथ कट-कटकर युद्ध किया था। इसका महाभारत और रामायण में विस्तारपूर्वक वर्णन हुआ है। वस्तुतः जीवन साधना के प्रत्येक साधक को ऐसा ही अन्तः युद्ध करना पड़ता है। गीता और रामायण पढ़ने-सुनने का लाभ तभी है जब इन महायुद्धों में लड़ने वाले वीर धर्म प्रेमियों की तरह हमारा भी उत्साह, उमंगें और वैसा ही पराक्रम करने के लिए शौर्य, साहस क्रियाशील हो चले।

शरीर पर छाया हुआ आलस्य और मन पर छाया हुआ प्रसाद चन्द्र-सूर्य पर छाये हुए राहु-केतु द्वारा लगे हुए ग्रहण की तरह है। इन अवांछनीयताओं से पिण्ड छुड़ाया जाना चाहिए, शरीर में श्रमशीलता और मन में उत्साह भर तत्परता का समावेश रहना चाहिए। इन्द्रियाँ कुमार्गगामी होकर वासनात्मक अनाचारों को जन्म देती हैं, कुकर्मों से शरीर दुर्बल एवं रुग्ण बनता है, वासना की पिशाचिनी ओजस भी नष्ट करती है और तेजस भी। व्यक्ति खोखला होता चला जाता है। मन पर छाई हुई तृष्णा और अहंता अटपटे, उद्धत और निरर्थक संचय एवं अपव्यय के ढकोसले खड़े करती है। उन्हीं विडम्बनाओं में बहुमूल्य जीवन सम्पदा समाप्त हो जाती है। इस सुर-दुर्लभ अलभ्य अवसर को गँवाते हुए मनुष्य ऐसे ही खाली हाथ चला जाता है। जीवनोद्देश्य पूरा करने के स्थान पर चिरकाल तक कष्ट देने वाली पापों की पोटली ही सिर पर लदी होती है।

चिन्तन और कर्तव्य को यदि सँभाला, सुधारा न जाये तो पतन के गहरे गर्त में गिरने की गति निरन्तर तीव्र होती जाती है। भव-बन्धन निरन्तर कड़े होते जाते हैं। इस स्थिति से बचना हो तो अपने आप के साथ प्रबल संघर्ष खड़ा करना होता है। अनायास ही इस दुर्गति से कोई छूट नहीं सकता।

उपार्जन क्षेत्र की पवित्रता रखने के लिए लोभ से जूझना पड़ता है और सादगी एवं सच्चाई की नीति अपनानी पड़ती है। परिवार का सन्तुलन सही रखना हो तो मोह से बचते हुए कर्तव्य तक सीमित रहना होगा। परिवार के लोगों के प्रति असाधारण मोह ही उनका स्तर गिराने और अपने कर्त्तव्यच्युत होने का प्रधान कारण होता है। यदि परिजनों की उचित-अनुचित माँगों को, प्रसन्नता-अप्रसन्नता को महत्त्व न दिया जाये और विवेक दृष्टि रखते हुए उनके कल्याण एवं अपने कर्तव्य भर की बात सोची जाये तो प्रत्येक परिवार का स्तर ऊँचा रह सकता है और उसमें से नर-रत्नों के उत्पन्न होने का आधार बन सकता है। इसके लिए अपने मोह और उनके आग्रह की उपेक्षा करके औचित्य अपनाने का साहस जुटाना पड़ेगा। बहुत करके अपने साथ और कभी-कभी परिवार के लोगों के साथ भी झगड़ना पड़ेगा।

सम्पत्ति पर से स्वामित्व की मान्यता हटा ली जाये और उसे सार्वजनिक सम्पत्ति की तरह — दूरदर्शी ट्रस्टी की तरह मात्र उपयोगिता का ध्यान रखकर ही खर्च किया जाये तो प्रत्येक पैसा सदुपयोग में ही खर्च होगा और उससे सर्वतोमुखी कल्याण ही कल्याण उत्पन्न होगा। ऐसी मनः स्थिति में धन उपार्जन भी योगाभ्यास की ही तरह एक हितकारी कार्य बन जाता है। धन उपार्जन में जितना शारीरिक श्रम करना पड़ता है, उतनी ही प्रखरता यदि उसके उपयोग में बरती जाये तो उत्पादक के सारे प्रयास लोक-साधना बनकर रहेंगे। अपनी लोभ, मोह ग्रसित दूषित दृष्टि से लड़-झगड़कर ही ऐसी निर्मल मति उत्पन्न की जा सकती है।

परिवार के लोगों तथा अन्य स्वजन सम्बन्धियों, मित्र, सहचरों से एक आँख प्यार की, एक आँख सुधार की रखकर ही चलना चाहिए। उचित को मानने और अनुचित को न मानने की गति अत्यन्त स्पष्ट रखनी चाहिए। उन्हें दुलार का उपहार भी सच्चे मन से दिया जाये तो नीति और आदर्शों के सम्बन्ध में किसी का भी दबाव स्वीकार न किया जाये। मित्रता की सार्थकता इसमें है कि स्वजनों को अधिक परिष्कृत बनाया जाये। इसके लिए अवांछनीयताओं को बदलने के लिए परामर्श से काम न चले तो विरोध और असहयोग की नीति भी अपनाई जा सकती है। देखने में यह झंझट खड़ा करने जैसी बात है, पर इसके बिना धर्म संकट से किसी दूरदर्शी का पीछा भी नहीं छूट सकता। सबका प्यारा बनने — सब की हाँ में हाँ मिलाने, सबको खुश करने की नीति अपनाने वाले वस्तुतः अपना और उन सबका अहित ही करते हैं जिन्हें प्रसन्न रखने की बात सोची गई थी।

माली को कठोर कर्त्तव्य निबाहने पड़ते हैं। वह पौधों को खाद, पानी देता है, रखवाली करता है और फलने-फूलने की स्थिति तक पहुँचाने के लिए निरन्तर प्रयत्न करता है। इतने पर भी समय-समय पर काँट-छाँट करने में भी चूकता नहीं। यदि वह मोहग्रस्त मनः स्थिति बना ले तो फिर पौधों के नीचे खरपतवार को निराना-उखाड़ना और छितराई हुई टहनियों की काट-छाँट कर सकना भी उसके लिए सम्भव न होगा। यह मोहग्रस्तता उसे माली के पवित्र कर्त्तव्य से च्युत करेगी और उसके प्रिय उद्यान का विकास ही रुक जायेगा। स्वजनों के प्रति माली जैसी दृष्टि रखकर अपने व्यवहार को दूरदर्शितापूर्ण बनाया जाना चाहिए।

समाज में अनेकों कुरीतियाँ, मूढ़-मान्यताएँ, अन्ध परम्पराएँ प्रचलित हैं। अनाचार और भ्रष्टाचार की कमी नहीं। उन्हें अस्वीकृत किया जाना चाहिए और जो लोग अपनाते हैं उनके साथ विरोध और असहयोग की नीति बरती जानी चाहिए। जहाँ आवश्यक हो वहाँ सीधे संघर्ष की नीति भी अपनाई जानी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

चाहिए। आततायी दुष्कर्मों का डटकर मुकाबला किया जाना चाहिए और उसके लिए यदि जोखिम उठानी पड़े तो उन्हें भी शिरोधार्य करने का साहस जुटाना चाहिये।

सत्प्रवृत्तियों का अभिवर्धन आधा भाग है— दुष्प्रवृत्तियों के निवारण का दूसरा पक्ष जुड़ जाने से ही बात पूरी बनती है। धर्म कर्मों में हमारी अधिकाधिक रुचि होनी चाहिए। पूजा-उपासना से लेकर दान-पुण्य तक के विविध प्रयोजन पूरे करने चाहिए और सत्कर्मों में निरत रहना चाहिए किन्तु साथ ही यह भी ध्यान रखना चाहिये यह एकांगी क्रिया-कलाप सर्वथा अपर्याप्त हैं। उसके साथ अवांछनीयताओं के उन्मूलन का साहस भरा प्रयोग अविच्छिन्न रूप से जुड़ा ही रहना चाहिए।

शक्ति की, सिद्धि की, देवी भगवती दुर्गा ने बताया था कि वे किसे वरण करेंगी। दुर्गा सप्तशती में उनके अभिमत का इस प्रकार उल्लेख है—

योमां जयति संग्रामे, यो मे दर्पो व्यपोहति ।
यो मे प्रति बलो लोके स मे भर्ता भविष्यति ॥

अर्थात् जो मुझे संग्राम में जीत सके, मेरी चुनौती स्वीकार कर सके, जो अपने बल को मेरे बल के साथ तौल सके, वही मेरा स्वामी बन सकेगा।

समृद्धि, सम्पत्ति, प्रगति एवं सफलता का आधार शक्ति है। शक्ति के मूल्य पर ही सिद्धियाँ मिलती हैं। उन्हीं के आधार पर सांसारिक सुख और आत्मिक सन्तोष ही सम्भावनाएँ बनती हैं। शक्ति संघर्ष से उत्पन्न होती है। अस्तु सहयोग और संघर्ष की—अभिवर्धन और उन्मूलन की उभय-पक्षीय रीति-नीति अपनाते हुए ही हमें जीवन सन्तुलन बनाना चाहिए। सफल वर्तमान और उज्जवल भविष्य का निर्धारण इसी आधार पर हो सकता है। अध्यात्म विज्ञान में इस समन्वय नीति को अपनाने के लिए ही निर्देश किया गया है।

मन को बस में करने की चर्चा बहुत चलती रहती है। मनोनिग्रह के अनेक उपाय और विधान बताये जाते हैं, पर उन सब में शत-प्रतिशत खरा उतरने वाला एक ही उपचार है कि एकाग्रता संपादन की अपेक्षा मन के कषाय-कल्मषों को धोया, हटाया व सुधारा जाये। अपनी प्रकृति रूखी, स्वार्थी और चिड़चिड़ी न हो तो सबके साथ सहज सज्जनोचित संबंध बने रहेंगे और मित्रता का क्षेत्र सुविस्तृत बनता चला जायेगा। इस स्थिति को बनाये रहने या बढ़ाते चलने के लिए आवश्यक है कि अपने सौजन्य का अनुपात बढ़ता रहे।

माना कि सभी व्यक्ति सज्जन नहीं होते और उनके क्रियाकलाप में भी खोट रहता है। इस खोट को निकालने या घटाने के लिए यह आवश्यक है कि उन्हें सत्संग लाभ मिलता रहे। सत्संग से हेय प्रकृति भी सुधर जाती है। सत्संग का बढ़ा-चढ़ा माहात्म्य शास्त्रकारों ने बताया है। इसका कारण स्पष्ट है कि जिस प्रकार पतित लोगों की घनिष्टता पतन-पराभव की दिशा में चल पड़ने की प्रेरणा देती है, उसी प्रकार सत्संग भी व्यक्ति को सही दिशा में उसकी दिशा धारा अग्रगामी करने में कारगर सिद्ध होता है। यदि अपना मन कच्चा न हो तो बेधड़क ओछे लोगों को भी अपनी सम्पर्क परिधि में लिया जा सकता है और सौजन्य, शिष्टाचार एवं व्यवहार का अभ्यास कराया जा सकता है।

मेंहदी दूसरों के लिए पीसी जाये तो भी पीसने वाले के हाथ लाल हो जाते हैं। छात्रों को पढ़ाने वाले अध्यापक भी अपना ज्ञान परिपक्व कर लेते हैं। अनपढ़ लोगों को सुसंस्कारी बनाने का कार्य भी ऐसा ही है, जिसे करते रहने का स्वभाव बना लेने पर न केवल दूसरों का ही व्यक्तित्व निखरता है वरन् अपना आपा भी दिनों-दिन अधिक श्रेष्ठता की ओर बढ़ने लगता है। यह दुहरा पुण्य प्रयोजन है। इसमें अपनी और दूसरों की भलाई का सघन सहयोग समाविष्ट है। सतशिक्षण वह उपाय है जिससे निज के मन का अनगढ़पन तेजी से सुधरता है।

एकाग्रता का अभ्यास भी अपने स्थान पर उपयोगी है। ध्यानधारणा में सफलता प्राप्त करने के लिए मनकी बेतुकी कल्पनाओं पर नियंत्रण स्थापित करना होता है। इसके लिए अपने कुसंस्कारों से भिन्न एवं विपरीत प्रकृति के विचारों का भंडार अपने में जमा करना पड़ता है। क्योंकि कुविचारों का आक्रमण होता है। दोनों प्रकार के विचारों से टक्कर होनी चाहिए। कुकर्म तात्कालिक लाभ की दृष्टि से लाभदायक भले ही प्रतीत हो पर विचार करने पर उनके दूरगामी परिणाम भयावह ही होते हैं। हमें अपने मन में उठने वाले त्वरित लाभ के प्रलोभनों के सम्मुख दूरगामी दुष्परिणामों की मंडली खड़ी कर देनी चाहिए। इतना करने पर सद्बुद्धि का सही निर्णय करने का अवसर मिल जाता है। जबकि अभावग्रस्त मनःस्थिति में दूरदर्शी विवेकशीलता को अपना निर्णय प्रस्तुत कर सकने का अवसर ही नहीं मिलता।

कुविचारों और दुःस्वभावों से पीछा छुड़ाने का तरीका यह है कि सद्विचारों के सम्पर्क में निरंतर रहा जाये। उनका स्वाध्याय, सत्संग और चिन्तन-मनन किया जाये। साथ ही अपने सम्पर्क क्षेत्र में सुधार कार्य जारी रखा जाये। सत्प्रवृत्ति सम्वर्द्धन का सेवा कार्य किसी न किसी रूप में कार्यान्वित ही करते रहा जाये। इतना करने पर ही मन को स्वच्छ, निर्मल व स्वयं को प्रगति के पथ पर अग्रगामी बनाए रखा जा सकता है।

● ●

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

साधना का स्वरूप और विज्ञान

आत्मिकी चेतना को परिष्कृत, प्रखर बनाने वाली फलदायी विधा

ब्रह्म विद्या के—अध्यात्म विज्ञान के दो भाग हैं—एक आस्थापक्ष दूसरा क्रिया पक्ष। आस्था पक्ष में चिन्तन क्षेत्र को प्रभावित करने वाले समस्त ज्ञान विस्तार को सम्मिलित किया गया है। वेद शास्त्र, उपनिषद, दर्शन, नीतिशास्त्र आदि इसी प्रयोजन की पूर्ति के लिए रचे गये हैं। पाठ, स्वाध्याय, सत्संग, चिन्तन, मनन का—कथा प्रवचनों का—माहात्म्य इसी आधार पर बताया गया है कि उस प्रक्रिया के सहारे मानवी चिन्तन का परिष्कार होता रहे। अवांछनीय पशु-प्रवृत्तियों के कुसंस्कार छुड़ाने में, यह ज्ञान साधना साबुन का काम करती है। विकृत मनोवृत्तियों से छुटकारा मिलता है और विवेक युक्त दूरदर्शिता का पथ-प्रशस्त होता है। प्रज्ञा, भूमा, ऋतम्भरा इसी परिष्कृत चिन्तन का नाम है। 'ज्ञानामुक्ति' **'नहि ज्ञानेन सदृश पवित्रमिह विद्यते'** जैसी उक्तियों में सद्ज्ञान को अध्यात्म का प्राण माना गया है। वेदान्त दर्शन को तो विशुद्ध रूप से ज्ञान साधना ही कहा जा सकता है।

इसी सद्ज्ञान संवर्धन की बहुमुखी प्रक्रिया को अध्यात्म विज्ञान में 'योग' नाम दिया गया है। योग का अर्थ है जोड़ देना। किस को किस से जोड़ देना—आत्मा को परमात्मा से। यहाँ यह ध्यान रखने योग्य है कि, परमात्मा कोई व्यक्ति नहीं, वरन् शक्ति है। उत्कृष्ट आदर्शवादी आस्थाओं, आकांक्षाओं के रूप में ही उसकी अनुभूति, अपने विचार संस्थान में, की जा सकती है। आत्म साक्षात्कार का—ब्रह्म साक्षात्कार का अर्थ यही है कि अपनी आस्थाएँ परिष्कृत स्तर की देवोपम दीखने लगें। संकीर्ण स्वार्थपरता, अहंकारिता, विलासिता एवं अनुदारिता जैसी दुष्प्रवृत्तियों के भवबन्धनों से छुटकारा मिल जाये। परिष्कृत चिन्तन की परम सुखद प्रतिक्रिया को ध्यान में रखते हुए उसे 'स्वर्ग' कहा गया है। ललक और लिप्सा निकृष्टता एवं कुसंस्कारी आदतों के भव-बन्धनों को तोड़ फेंकने की स्थिति 'मुक्ति' कहलाती है। स्वर्ग किसी ग्रह नक्षत्र पर बसा हुआ गाँव नहीं है और न मुक्ति से किसी लोक विशेष में जाकर भगवान् जी के साथ रंगरेलियाँ करने का मजा मिलता है। यह तो अलंकारिक आख्यायिकाएँ हैं। तथ्य इतना भर है कि, परिष्कृत दृष्टिकोण अपनाने वाला स्वर्गीय सुख सन्तोष पाता है और आत्मीयता के विस्तार के साथ सम्बद्ध सेवा उदारता की नीति अपनाने वाले को लोभ-मोह की जकड़न से छुटकारा मिल जाता है। विवेकवान मनस्वी लोग—लोक प्रवाह की परवाह न करके स्वतन्त्र चिन्तन की नीति अपनाते हैं और जीवन मुक्ति का आनन्द लेते हैं।

योग का उद्देश्य 'चित्त वृत्तियों' का संशोधन है। महर्षि पातंजलि की योग परिभाषा यही है। पशु-प्रवृत्तियों को देव आस्थाओं में बदल देने वाले मानसिक उपचार का नाम योग है। यह विशुद्ध रूप से चिन्तन परक होता है। योगीजन इन्हीं प्रयत्नों में तल्लीन रहते हैं और अपने संग्रहीत कुसंस्कारों को उच्चस्तरीय आस्थाओं में परिणत करने के लिए भावनात्मक पुरुषार्थ करते रहते हैं। निष्कृष्टता जितने अंश में उत्कृष्टता के साथ जुड़ जाती है उतने ही अंशों में आत्मा को परमात्मा की प्राप्ति हो चली; ऐसा माना जाता है।

अध्यात्म विज्ञान का दूसरा पक्ष क्रिया परक है—इसे 'तप' कहते हैं। आत्म निर्माण इसका एक चरण है और लोक कल्याण दूसरा। इन दोनों के लिए जो भी प्रयत्न करने पड़ते हैं, उनमें अभ्यस्त पशु-प्रवृत्तियों को चोट पहुँचती है। स्वार्थ साधनों में कमी आती है—और परमार्थ प्रयोजनों की सेवा साधना करते हुए कई तरह की कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। स्वार्थ सुविधा में कैंटौती करके ही परमार्थ की दिशा में कुछ किया जा सकता है। प्रत्यक्षतः यह सांसारिक दृष्टि से घाटे का सौदा है और अभ्यस्त प्रवृत्ति से विपरीत पड़ने के कारण कष्ट, भय भी अनुभव होता है, इन कठिनाइयों को पार करने के लिए शरीर की तितीक्षा का, मन की सादगी का तथा इस मार्ग में आने वाली कठिनाइयों का, सामना करने योग्य आन्तरिक साहसिकता का सहारा लेना पड़ता है। अपने आपको इसी ढाँचे में ढालने के लिए, जितने भी प्रयास किये जाते हैं, वे सब 'तप' की श्रेणी में गिने जाते हैं।

आज योग के नाम पर आसन, प्राणायाम, नेति, धेति बन्ध, मुद्रा आदि व्यायामों को ही योग माना जाने लगा है और व्रत, स्नान, मौन आदि कष्ट साध्य अभ्यासों को तप मान कर सन्तोष कर लिया जाता है। यह भुला दिया गया है कि साधन किसी साध्य की प्राप्ति के लिए किया जाता है। उपासनात्मक कर्मकाण्डों का उद्देश्य—भावनात्मक स्तर को प्रयत्नपूर्वक ऊँचा उठाना है। यदि आस्थाओं का स्तर बदला जा सके और मात्र चित्र-विचित्र शारीरिक क्रियाएँ करते रहा जाये, तो इतने भर का प्रभाव शरीर तक ही सीमित रह जायेगा। चेतना का वह परिष्कार न हो सकेगा जो, तपश्चर्या का मूलभूत उद्देश्य है।

आत्मिक प्रगति की दिशा में बढ़ने के लिए योग और तप के दोनों कदम बढ़ाते हुए, लेफ्ट-राइट की परेड करते हुए; गतिशील होना पड़ता है। ज्ञान और विज्ञान की दोनों धाराएँ, गंगा-यमुना की तरह जब मिलती हैं, तब प्रभु प्राप्ति का

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

संगम—सुअवसर हाथ में आता है। भिन्न-भिन्न परम्पराओं में अपनी ज्ञान साधना और कर्मकाण्ड प्रक्रिया कई तरह से निर्धारित किया है, पर सभी का मूल प्रयोजन समान है। समस्त संसार में प्रचलित अध्यात्म के ज्ञान पक्ष को योग और क्रिया पक्ष को तप की ही संज्ञा दी जा सकती है। गायत्री को योग और यज्ञ को तप के अर्थ में ही प्रयुक्त साधन के रूप में देखा समझा जाना चाहिए।

योगदर्शन को चार भागों में विभाजित किया जा सकता है—(१) आत्मज्ञान, (२) ब्रह्मज्ञान, (३) तत्वज्ञान, (४) सद्ज्ञान।

आत्मज्ञान वह है—जिसमें जीव का, जीवन का, अन्तः चेतना के उत्थान पतन का निरूपण किया जाता है और आत्म-चिन्तन, आत्मसुधार, आत्मनिर्माण एवं आत्मविकास का सूक्ष्मदर्शी प्रकाश युक्त मार्ग दर्शन किया जाता है। दूसरे शब्दों में इसे जीवात्मा की विवेचना भी कह सकते हैं।

ब्रह्मज्ञान वह है—जिसमें परमात्मा की सम्पूर्ण सत्ता की व्याख्या को तो अचित्य नेति—नेति कह कर बौद्धिक असमर्थता प्रकट कर दी गई है, पर मनुष्य जीवन के साथ परमात्म सत्ता का जितना तालमेल बैठता है उस पर; कई दृष्टियों से प्रकाश डाला जाता है। आत्मा के साथ परमात्मा का मिलन निस्संदेह लोहे और पारस के सम्पर्क से सोना बन जाने वाली किंवदन्ती सच्चे अर्थों में सार्थक देखी जा सकती है। अमृत और कल्पवृक्ष के लाभ माहात्म्य का जो अलंकारिक वर्णन मिलता है उसे परमात्मा के सान्निध्य से मिलने वाली भौतिक तथा आत्मिक उपलब्धियों को देखते हुए अक्षरशः सही माना जा सकता है। सिद्धियों का—चमत्कारी अलौकिकताओं का जो विवरण साधना ग्रन्थों में मिलता है, उसे परमात्म सत्ता के साथ जीवात्म के सान्निध्य सम्पर्क को सुनिश्चित प्रतिक्रिया कहा जा सकता है। ईश्वर प्राप्ति को जीवन लक्ष्य की पूर्ति-पूर्णता में परिणिति-परम पुरुषार्थ, परम लाभ आदि नामों से पुकारा जाता है। आत्मा को परमात्मा की उच्च स्थिति में विकसित कर लेने वाले व्यक्ति, निस्संदेह नररूप में नारायण कहे जा सकते हैं। उनकी विशेषताओं और विभूतियों का वारापार नहीं रहता।

आस्था का तीसरा पक्ष है—सद्ज्ञान। इसे विचार विज्ञान कह सकते हैं। विचारों की प्रचण्ड शक्ति और उनकी प्रतिक्रियाओं से बहुत कम लोग परिचित होते हैं। तथ्य यह है कि हाड़-माँस के पुतले में जितना चेतन चमत्कार देखा जाता है, वह सब विचार वैभव का ही परिणाम है। व्यक्तित्व की उत्कृष्टता, निकृष्टता—मनुष्य की प्रतिभा, वरिष्ठता और सर्वतोमुखी दुर्बलता का मूल्यांकन किसी के विचारों का स्तर देख कर ही किया जा सकता है। सफलता और असफलता के कारण से साधनों का, परिस्थितियों का नहीं, संकल्प शक्ति और व्यवस्था बुद्धि का ही प्रमुख महत्व रहता है। लोग गलग ढंग से सोचते हैं और गलत विचारों को अपनाते हैं। फलतःजीवन का स्वरूप और भविष्य दोनों ही अन्धकार से ढक जाते हैं। मस्तिष्क को जिस तरह सोचने की आदत है, उसका गुण-दोष के आधार पर विवेचन करते हुए मात्र औचित्य को अपनाने की साहसिकता को मनस्विता कहते हैं। मनस्वी लोग ही जीवन का सच्चा आनंद लेते हैं और दूसरों के श्रद्धा भाजन बनते हैं। स्वाध्याय और सत्संग द्वारा श्रेष्ठ विचारकों से सम्पर्क साधा जाता है और चिन्तन, मनन द्वारा आन्तरिक उत्कृष्टता को उभार कर उच्चस्तरीय निष्ठाओं पर आरूढ़ हुआ जाता है। दर्शन शास्त्र इसी कांट-छांट के लिए बना है। तत्व दर्शन के अन्तर्गत यों अन्य कई विषय भी आते हैं, पर उसका मूल प्रयोजन विचारणा का स्तर परिष्कृत करना ही माना गया है।

चौथा पक्ष सद्ज्ञान है। सद्ज्ञान का तात्पर्य है—नीति-शास्त्र, व्यवहार कौशल, शिष्टाचार, सदाचार कर्त्तव्यपालन, उत्तरदायित्वों का निर्वाह। धर्म इसी को कहते हैं। मनुष्य सामाजिक प्राणी है उसे एकाकी नहीं, सह जीवन जीना पड़ता है। सहकारिता के बिना—पारस्परिक आदान-प्रदान के बिना न स्थिरता रह सकती है न प्रगति सम्भव हो सकती है। हमें परस्पर मिल-जुलकर ही रहना होता है और सामाजिकता के नियमों का पालन करते हुए, नागरिक उत्तरदायित्वों को निवाहते हुए; सज्जनता का जीवन जीना पड़ता है। इस क्षेत्र में जहाँ जितनी उच्छृंखलता बरती जा रही होगी, वहाँ उतनी ही अशान्ति फैलेगी और विपन्नता उत्पन्न होगी। अपने आपके प्रति, स्वजन सम्बन्धियों के प्रति एवं सर्वसाधारण के प्रति हमारी रीति नीति व्यवहार पद्धति क्या हो ? उसकी सही और शालीनता युक्त गतिविधि अपनाने को लोक व्यवहार एवं सद्ज्ञान कहा जाता है।

अध्यात्म का योग पक्ष इन चारों ज्ञान प्रक्रियाओं के परिष्कार एवं समन्वय आधार पर विनिर्मित होता है। इस पक्ष के पारंगतों को मनीषी, ऋषि, तत्वज्ञानी, ब्रह्मवेत्ता, दृष्टा, आत्मदर्शी आदि नामों से सम्बोधित किया जाता है। वे अपने में परमात्मा का दर्शन करते हैं। वह सब कुछ प्राप्त करते हैं जो इस संसार में पाने योग्य है।

अध्यात्म का क्रिया पक्ष जिसे तप कहते हैं—तीन भागों में विभक्त है—(१) आत्म निग्रह के लिए की गई तितीक्षा, वासना और तृष्णा का निग्रह-नियन्त्रण। (२) परमार्थ प्रयोजनों के लिए सेवा साधना में त्याग, बलिदान में उत्साह और अभ्यास। (३) साधनात्मक कर्मकाण्डों के माध्यम से आत्म शिक्षण की प्रसुप्त शक्तियों के जागरण की प्रक्रिया।

आत्मनिग्रह में अस्वाद व्रत, उपवास, ब्रह्मचर्य, मौन, सर्दी-गर्मी के ऋतुप्रवाह का सहन, सादगी, मितव्ययता, दिनचर्या निर्धारण और उसका कड़ाई से पालन। जैसी शरीर और मन की पुरानी अवांछनीय आदतों पर रोक थाम के लिए बरती हुई कड़ाई तप के साधना के तितीक्षा वर्ग में आती है।

दान, पुण्य, सेवा, सहायता, सामूहिक सत्कर्मों में सहयोग, लोक कल्याण की प्रवृत्तियों में रस लेना और उसके लिए समय, श्रम एवं धन का एक अंश नियमित रूप से लगाना। अनीति के विरुद्ध संघर्ष करने में लगने वाली चोटों को सहने के लिए साहस एकत्रित करना। उदारता के कारण अपनी सुविधाओं में कमी के लिए तैयार रहना। इसमें अप्रतिष्ठा एवं सम्बन्धियों के स्वार्थों में कमी आने से उनकी नाराजगी सहने को प्रस्तुत रहना। लोकप्रवाह से विपरीत चलने के कारण उपहार, अपमान, विरोध एवं प्रहार की सम्भावना मान कर चलना और

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org

उनका धैर्य पूर्वक सामना करना। इस प्रकार की कष्ट सहिष्णुता तप साधना का दूसरा चरण है।

तीसरे तप वर्ग में विभिन्न प्रकार के साधनात्मक कर्मकाण्ड आते हैं। जप, ध्यान, प्राणायाम, देवपूजा, संध्या अनुष्ठान, पुरश्चरण आदि अनेकों सम्प्रदायों में प्रचलित अनेकों विधि-विधान इसी उपासना वर्ग में आते हैं।

योग साधना के चार और तप साधना के तीन कुल मिलाकर अध्यात्म के सात सोपान हैं। इन्हीं को सप्तलोक-सप्तऋषि-सप्तमहाव्रत कहा गया है। सप्त-द्वीप, सप्त-समुद्र, सप्त-शिखर, सप्त-ऋल, सप्त-धातु, सप्त-सरोवर, सप्त-शिखर, स्वर-सप्तक, सप्त-सूर्य किरणें, सप्ताह आदि की संगति इन्हीं सात सोपानों से मिलती है। विभिन्न अलंकारों के साथ इन्हीं सात तथ्यों को मनीषियों ने विभिन्न प्रतिपादनों के साथ निरूपित किया है और जन मानस में विभिन्न प्रतिपादनों के साथ प्रतिष्ठापित करने का प्रयास किया है। अध्यात्म के ज्ञान पक्ष और विज्ञान पक्ष को समझने के लिए जो अनेकानेक शास्त्र पढ़ाने को और विद्वानों के प्रवचन प्रतिपादन सुनने को मिलते हैं, उनमें इन सात महातथ्यों के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। यदि उन्हें सही रीति से समझा और अपनाया जा सके तो मनुष्य में देवत्व का अवतरण हो सकना सुनिश्चित है।

विज्ञानपक्ष की साधना में तपश्चर्या को केन्द्र मान कर चलने वाले विधि-विधानों का उद्देश्य है—प्रसुप्ति से निवृत्ति-मूर्छना से मुक्ति। इसके लिए गर्मी उत्पन्न करनी पड़ती है। गर्मी पाकर प्रसुप्ति से मुक्ति मिलती है। सूर्योदय की बेला निकट आने पर प्राणियों की निद्रा टूटती है और वे जागते उठते एवं कार्यरत होते हैं। रात्रि में कलियाँ सिकुड़ी पड़ी रहती हैं, पर जैसे ही सूर्य निकलता है वे हँसने खिलने लगती हैं। मानवी सत्ता के अन्तर्गत बहुत कुछ है। अत्युक्ति न समझी जाय तो यह भी कहा जा सकता है कि सब कुछ है। किन्तु है वह मूर्छित। इस मूर्छना को जगाने के लिए धूप, आग, बिजली आदि से उत्पन्न बाहरी गर्मी से काम नहीं चलता। उसका प्रभाव भौतिक जगत में ही अपनी हल-चल उत्पन्न करके रह जाता है। चेतना पर चढ़ी हुई मूर्छना को हटाने के लिए तप करना पड़ता है। उसके लिए भीतरी गर्मी की आवश्यकता पड़ती है। इसे कैसे उगाया और बढ़ाया जा सकता हैं, इसी विज्ञान को अध्यात्म की भाषा में तप कहते हैं।

तप की स्थूल प्रक्रिया सांकेतिक विधि वह है जिससे शरीर की स्वाभाविक सुख सुविधा को—वासना को रोका जाता है और मन की स्वाभाविक चंचलता को—अंहता और लोलुपता को प्रतिबन्धित किया जाता है। मनोनिग्रह इसी का नाम है। निरोध से शक्ति उत्पन्न होती है। खुले मुँह की पतीली में खौलता हुआ पानी भाप बन कर उड़ता रहता है और उसके तिरोहित होने में कोई अचम्भे जैसी बात मालूम नहीं पड़ती, पर जब उसी को कड़े ढक्कन में बन्द कर दिया जाये तो फैली हुई भाप उस बर्तन को फाड़ कर भयंकर विस्फोट कर सकती है। स्टोव और प्रेशर कुकर फटने से दुर्घटनाएँ इसी निरोध का परिणाम होती हैं। इन्द्रियनिग्रह और मनोनिग्रह का माहात्म्य इसी आधार पर बताया जाता है। ब्रह्मचर्य की महत्ता का रहस्य यही है कि 'ओजस' को निम्नगामी अधःपतन से रोक कर ऊर्ध्वगामी बनाया जाता है। उस शक्ति को गन्दी नाली में बखेरने की अपेक्षा मस्तिष्कीय चेतना में किया जाता है तो ब्रह्मलोक जगमगाने लगता है। यह निरोध का चमत्कार है।

तप साधना का दूसरा पक्ष है—मंथन। समुद्र मंथन की वह पौराणिक आख्यायिका सर्व विदित है जिसमें देवदानवों ने मिल कर समुद्र मथा था और चौदह बहुमूल्य रत्न पाये थे। जीवन एक समुद्र है। इसमें इतनी रत्न राशि भरी पड़ी है जिनकी संख्या सीमित नहीं की जा सकती। सिद्धियों और ऋद्धियों की गणना अमुक संख्या में की जाती रहती है, पर वह बालकों की अपनी अनुभूति भर है जिसने जितना खोजा पाया उसने उतना बताया। समुद्र बहुत विस्तृत है। बच्चे उसमें कितना घुस सके और कितना पा सके इतने भर से यह अनुमान लगाना उचित नहीं कि समुद्र की समग्र सम्पदा इतनी स्वल्प ही है।

देवदानवों ने समुद्र मथ कर कुछ ही समय में चौदह बहुमूल्य रत्न पाये थे। यह मंथन यदि अधिक समय तक—अधिक गहराई तक जारी रखा जा सके, तो उस आधार पर मिलती रहने वाली उपलब्धियों का कोई अन्त नहीं मिल सकता।

यह मंथन प्रक्रिया ही तप साधना के अन्तर्गत किये जाने वाले सरल संक्षिप्त कर्मकाण्डों द्वारा आरम्भ होती है और इस आधार पर स्थूल से सूक्ष्म, सूक्ष्म से कारण और कारण से अनन्त में—प्रवेश करती चली जाती है। आरम्भ के छात्रों को जो कृत्य बताये जाते हैं वे उपाहास्पद लगते हैं और यह समझ में नहीं आता कि इतनी स्वल्प सी शारीरिक, मानसिक हलचलों से इतनी बड़ी उपलब्धियाँ किस प्रकार करतल गत हो सकती हैं। यहाँ इतना ही समाधान प्रस्तुत किया जा सकता है कि उपासनात्मक कर्मकाण्ड दिशा निर्देश है। दिशा सही होने और पहिया लुढ़कने लगने पर उसके परिणाम दूरगामी होना आश्चर्यजनक नहीं है।

रेलगाड़ी के चलने, खड़े होने में झण्डी और सिगनल की बड़ी भूमिका होती है। उनके हरे होने से गाड़ी चलती है और लाल होने से रुक जाती है। निस्संदेह झण्डी या बत्ती के रंगों की इतनी शक्ति नहीं है कि वे रेल को रोक या धकेल सकें, फिर भी उनके द्वारा मिलने वाले दिशा निर्देश का अपना महत्व है। इस प्रक्रिया में गड़बड़ी हो जाये तो गाड़ियाँ या तो खड़ी रहेंगी अथवा आपस में टकरा कर नष्ट होंगी।

जंकशन पर बराबर-बराबर कितनी ही गाड़ियाँ खड़ी रहती हैं। इनमें से किस को किधर जाना है इसका निर्धारण एक छोटा-सा 'लीवर' करता है। पटरियों में से किसे किस के साथ मिला दिया जाये यह निर्णय और कार्य तनिक-सा है और उसे छोटा-सा खलासी बड़ी आसानी से पूरा कर देता है। देखने सुनने में बात जरा सी हुई, पर उसकी प्रतिक्रिया दूरगामी होती है। कुछ ही घण्टे बाद तलाश करने पर पता चलता है कि एक गाड़ी उत्तर को घूमी और दूसरी दक्षिण को। इस थोड़ी ही अवधि में दोनों के बीच सैकड़ों हजारों मील का फासला बन गया। जीवन के चौराहे पर से जिस भी दिशा में मोड़ दिया

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जाये वह अपने क्रम से चल पड़ता है और भिन्न दिशा में चलने वालों की तुलना में असाधारण रूप से भिन्न दिखाई पड़ता है। अनर्थ मूलक प्रवृत्ति में निरत और निरर्थक भटकाव में संलग्न लोगों की तुलना में परमार्थ परायण की प्रगति कितनी अधिक उत्साहवर्धक होती है इसे ऐतिहासिक महामानवों को मिली विभूतियों का पर्यवेक्षण करके आसानी से जाना जा सकता है। उपासनात्मक कर्मकाण्डों में से प्रत्येक जीवन धारा की दिशा मोड़ने में सहायक होता है। रेल की पटरियाँ सरल और सस्ती होती हैं, पर उनके बिना बहुमूल्य और जटिल इंजन अनेक डिब्बों सहित दौड़ते चले जाने में समर्थ नहीं हो सकता। उपासनात्मक कर्मकाण्डों की रेल की पटरी से उपमा दी जा सकती है।

उपासनात्मक कर्मकाण्डों में प्रधानतः तीन हैं— (१) जप (२) ध्यान (३) प्राणायाम। इन्हीं के अन्तर्गत अन्यान्य अनेकों उपचारों की गणना होती है। इनका स्थानीय महत्व भी है। जिन अंग उपागों के द्वारा यह हलचलें की जाती हैं उनके साथ जुड़े हुए सूक्ष्म शक्ति संस्थान भी झंकृत होने लगते हैं और उस जागरण का विशेष लाभ मिलता है। इन क्रियाकृत्यों में मनःस्थिति को एक विशेष दिशा में विशेष स्तर पर नियोजित किये रहना पड़ता है, उस एकाग्रता, तन्मयता एवं विशिष्टता की संयुक्त प्रतिक्रिया अनौखे ढंग की होती है। उससे स्थूल, सूक्ष्म एवं कारण शरीरों में सन्निहित दिव्य संस्थानों में जो हलचलें उत्पन्न होती हैं उनके प्रभावी परिणाम जब सामने आते हैं तो उन्हें साधना की चमत्कारी सिद्धि के रूप में देखा जाता है।

हम अपने भू-लोक के बारे में ही कुछ जानते हैं। अपने लोक की मोटी उपलब्धियों पर हमारी जीवनचर्या निर्भर है। भोजन, वस्त्र, निवास, विश्राम, उपार्जन, उपभोग, विनोद, सुरक्षा, चिकित्सा, यातायात जैसी दैनिक आवश्यकताएँ इन्हीं सामान्य उपलब्धियों के आधार पर मिलती हैं। उन्हीं के सहारे जीवन धारण किये रहना सम्भव होता है। इससे आगे की गहराई में वैज्ञानिक, विद्वान, कलाकार, तत्वदर्शी उतरते हैं और वे अन्यान्य उच्चस्तरीय विभूतियाँ प्राप्त करके अपने व्यक्तित्व और क्षेत्र को चतमत्कृत करते हैं।

इससे आगे के लोक और भी है। अध्यात्म क्षेत्र में उनके नाम भूः, भुवः, स्वः, तपः, महः, जनः, सत्यम् कहे गये हैं। यह आकाश का विभाजन या किन्हीं ग्रह नक्षत्रों का वर्णन नहीं—लोकों का विवरण है। लोक का अर्थ है—चेतना के स्तर। कामकाजी श्रमिक और सूक्ष्मदर्शी वैज्ञानिक की चेतना का अन्तर और प्रतिफल हम रोज ही देखते हैं। इससे आगे की गहराई में उतर कर—ऊँचाई में उड़कर यदि अन्य चेतना लोकों में प्रवेश किया जा सके तो प्रतीत होगा कि जो प्रत्यक्ष में स्थूल भू-लोक में देखा पाया जाता है, इससे कहीं अधिक उच्चस्तरीय भूमिका में विद्यमान अन्य लोकों में भरा पड़ा है। उन्हीं के साथ सम्पर्क बनाने में बरती गई तत्परता को योग साधना एवं तपश्चर्या कहा जाता है।

इन्हीं दिव्य उपलब्धियों के लिए साधना क्षेत्र में प्रवेश करना पड़ता है। साधना कोई जादू चमत्कार नहीं वरन् विशुद्ध विज्ञान है। इसमें देवी-देवताओं को प्रसन्न करके अमुक वरदान पाने की बात सोची और कहीं जाती है इस बालबोध में भी कुछ हर्ज नहीं, पर तथ्य दूसरा ही है। मानवी सत्ता के कण-कण में जो भरा है वह दिव्य है—अद्भुत है और अनन्त है। उसी को प्राप्त करने के लिए आकांक्षा, साहसिकता, सक्रियता और तत्परता को जुटा देना साधना है। साधना यदि सही दिशा में इसी प्रक्रिया को अपनाते हुए की जा सके तो उसकी सिद्धि सुनिश्चित है।

'अहमिन्द्रो न पराजिग्ये'

जिसके साथ चलना या थोड़े समय भी रहना है उसका नाम, गाँव, पता ठिकाना पूछते हैं। इससे निश्चितता होती है कि साथ रहते किसी का कोई उपकार बन पड़े जोखिम गदरबाजी हो उस मामले को आगे बढ़ाया जा सके। सर्वथा अपरिचित के प्रति संदेह ही बना रहता है।

अपना आपा सदा अपने साथ रहता है। उसका शरीर पक्ष एवं मनपक्ष इतना घनिष्ठ है कि चौबीस घण्टे जागृति एवं सुषुप्ति स्थिति में अपने साथ ही बने रहते हैं। पत्नी को जीवन संगिनी, अर्धांगिनी, दो शरीर एक प्राण आदि विशेषणों से सम्बोधित करते हैं पर वह भी कुछ घण्टे ही साथ रह पाती है। सो भी कुछ गज फीट दूर। बच्चे कभी-कभी किसी प्रयोजन से निकट आते हैं, यह प्रिय समझे जाते हैं और उनके सुख-दुःख में साझी रहना होता है। इनके भविष्य के सम्बन्ध में सदा चिन्ता बनी रहती है और यथा सम्भव योजना व्यवस्था बनी रहती है। फिर शरीर और मनरूपी जैसे अंगरक्षकों निरन्तर के साथियों के सम्बन्ध में उपेक्षा बरती जाये, यह आश्चर्य की बात है। उसका परिचय एवं प्रयोजन न पूछा जाये, न जाना जाये तो यह कितने अचम्भे की बात है।

जीवन जिस आत्मा को मिला है यह उस प्रयोजन के निमित्त लग रहा है कि नहीं, जिसके लिए वह मिला था ? अफसरों को सरकारी बंगला, वाहन आदि मिलते हैं तब उन्हें बता दिया जाता है कि उनका उपयोग सरकारी कार्यों के लिए ही होना चाहिए। निजी कार्यों के लिए नहीं। कोई अफसर अपने बड़े बंगले में से आधा भाग किराये पर उठादे, आधे में खुद रहे, मोटर की जब जरूरत पड़े तो स्वयं इस्तेमाल करें और बाकी समय में उसे किराये पर चलाने दिया करें, तो ये कार्य अनैतिक होंगे और पता चलने पर उसे दण्ड का भागी बनना पड़ सकता है।

जीवन बहुमूल्य है। सृजेता की अनुपम कलाकृति है। ऐसा साधन सम्पन्न सुयोग सृष्टि के अन्य किसी प्राणी को नहीं मिला। बुद्धिमत्ता का पिटारा कल्पनाशील मस्तिष्क जैसा मनुष्य को मिला है, वैसा अन्य किसी प्राणी के भाग्य में नहीं बदा। ऐसे अनेक स्थानों से मुड़ने-तुड़ने और दस अँगुलियों वाले हाथ किसको मिले हैं। सीधा खड़ा होकर पैरों के बल चलने जैसी सुविधा और किस प्राणी को मिली ? ऐसे स्वादिष्ट भोजन नियमपूर्वक किसे उपलब्ध होते हैं ? आजीविका उपार्जन और उसे पीछे के लिए भी संग्रह रख सकने की क्षमता किसको है ? वस्त्र और मकान का उपयोग और कौन प्राणी करता है ? सुव्यवस्थित परिवार बना पाने की बुद्धिमता किसमें है ?

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

ज्ञानेन्द्रियों की इतनी संवेदनशीलता किसमें है ? प्राणियों में सर्वोत्तम स्तर का कलेवर किसे उपलब्ध है ? फिर वह मनुष्य को ही मिले तो वह सृष्टा का पक्षपात हुआ। जबकि उसे समदर्शी और न्यायकारी कहा जाता है। मनुष्य को इतनी सुविधा मिले और अन्य प्राणी उससे वंचित रहें तो इसे देखते हुए यही सोचना पड़ता है या तो सृष्टा न्यायकारी नहीं है अथवा इतना सुविधा सम्पन्न जीवन उसे किसी ईश्वर इच्छित विशेष प्रयोजन के लिए मिला है। जैसा कि सरकारी अफसरों को अनेक सहायक सुयोग्य कर्मचारी मिलते हैं और टेलीफोन आदि साधनों की सुविधा रहती है।

यह प्रश्न अति महत्वपूर्ण है और ऐसे हैं जिनकी समग्र जानकारी मिलनी ही चाहिए। अन्यथा गलतफहमी में रहने से अनर्थ ही होगा। जब सौंपे हुए प्रयोजन के सम्बन्ध में समुचित प्रयास न किया गया होगा, और आलस्य प्रमाद में दिन भर मनोरंजन के सारे साधन खप जायें तो सौंपने वाला बड़ा अफसर, जिसकी व्यवस्था में राई रत्ती अन्तर नहीं आता, वह सौंपे गये उत्तरदायित्व के निर्वाह सम्बन्धी लेखा-जोखा माँगेगा तब उत्तर देते न बन पड़ेगा। इतना ही नहीं उस प्रमाद के लिए दण्ड का भी भागी बनना पड़ेगा।

समुचित दायित्वों के निर्वाह के सम्बन्ध में हमें अपने आपे का परिचय प्राप्त करना चाहिए और साथ ही समुचित कर्म निर्वाह के लिए जो मिला है उसका संचालन भी जानना चाहिए। इन प्रश्नों का उत्तर प्राप्त करने के लिए हमें आत्म-विस्मृति से उबरना चाहिए। यह आत्म-विस्मृति ही मायाजाल है। इससे उबर कर जो यथार्थता है उसे समझ लेने को आत्मज्ञान कहते हैं। इसे प्राप्त कर लेने पर—माया की तन्द्रा से अपने को उबार लेने पर मनुष्य उस ज्ञान का अधिकारी बन जाता है जिसे सर्वश्रेष्ठ साध्य कहा गया है।

यहाँ जीव का निजी स्वरूप और उसे उपलब्ध जीवन सम्पदा तथा विशिष्ट साधनों की जानकारी उपलब्ध करनी चाहिए। जीवन जिसे सौंपा गया है, वह असाधारण गरिमा सम्पन्न जीवात्मा है। जीवात्मा ईश्वर का एक अंश एवं युवराज है। उसे वरिष्ठता एवं विशिष्टता इसलिए दी गयी है कि वह अपनी त्रुटियों का निष्कासन करते हुए पूर्णता से लक्ष्य तक पहुँचे। ईश्वर में जितनी कुछ विशेषताएँ व विभूतियाँ हैं, वे सभी मनुष्य के अन्तराल में बीज रूप में छिपाकर रखी गई हैं। यह इसलिए कि पात्रता के अनुरूप वह उसका महत्व समझे और प्रयत्नपूर्वक उन्हें खोजने का पुरुषार्थ करके हस्तगत करे।

मन को स्वस्थ, समर्थ एवं तत्पर रखना भी एक कला है। उसे जानकर अभ्यास में उतार लेने पर संकल्प बल एवं मनोबल के सहारे वह अपने तथा दूसरों के लिए बहुत कुछ कर सकता है। यही बात शरीर के सम्बन्ध में है। उसकी अनुचित छेड़छाड़ न की जाये तो स्वस्थ, समर्थ निरोग एवं बलिष्ठ रहकर वह दीर्घजीवन का आनन्द ले सकता है तथा इस समर्थ साधन के सहारे मन की प्रेरणाओं को प्रत्यक्ष चरितार्थ करके दिखा सकता है। इसके विपरीत यदि अनाड़ीपन से काम लिया जाय तो शरीर और मन दोनों ही रुग्ण रहने लगते हैं और ऐसी कुटेवें अपनाते हैं जिनके कारण जीवन भारभूत लगे और उनका निर्वाह ही भारभूत प्रतीत होने लगे। मनोविकारों से ग्रसित व्यक्ति शरीर और सम्बन्धियों के साथ अपनी कुटेवों के कारण दुर्व्यवहार करने लगते हैं। शरीर पर भी अनुचित भार लादते हैं। फलतः वह जीवात्मा के उत्तरादायित्वों में हाथ बँटाना तो दूर, उद्विग्नता और रुग्णता के शिकार हो जाते हैं। इस स्थिति से हमें बचना चाहिए। अनाड़ी ड्राइवर अच्छी-खासी मोटर को किसी पेड़ से टकराकर खाई खड्डे में पटक देता है और न केवल यह बहुमूल्यवान वाहन का, वरन् बैठी हुई सवारियों का भी कचूमर निकाल देता है। ऐसी दशा में उसका लाइसेन्स भी जब्त हो जाता है।

जीवन की अपूर्णता को पूर्णता तक पहुँचा देना यह इस मानव जीवन रूपी सुयोग में उठाया जा सकने वाला सर्वोत्तम स्वार्थ है। इसे किस प्रकार पूरा किया जाये। उसका एक ही उत्तर है कि भगवान के इस विश्व उद्यान को सुरम्य समुन्नत बनाने के लिए कुशल माली की भूमिका निभाई जाये और मानव समुदाय को सुसंस्कृत बनाने के लिए एक भाव भरे अध्यापक की तरह कार्यरत रहा जाये। माली और अध्यापक की दुहरी भूमिका निभाने वाले को इतना वेतन तो सहज ही मिल जाता है कि वह औसत नागरिक स्तर का निर्वाह भली प्रकार कर सके। इसके लिए उसे किसी अनीति, अनाचार का आश्रय न लेना पड़े। मितव्ययता और सात्विकता का आश्रय लेने वालों को उन दुष्कर्मों को करने की तनिक भी आवश्यकता नहीं पड़ती, जिनमें अज्ञानी लोग, अनर्थ करते, दुःख पाते, निन्दा के भाजन बनते, आत्म प्रताड़ना सहते और दैवी प्रकोप के भाजन बनते हैं।

इस राज मार्ग पर चलने के लिए हमें आत्मोपासना करनी चाहिए। एक बड़ा-सा दर्पण सामने रखना चाहिए और उसमें अपनी छवि देखते हुए अनुभव करना चाहिए कि ईश्वर के राजकुमार को उसके सौभाग्य और उत्तरदायित्व का स्मरण कराने के लिए भावभरा अनुरोध करना चाहिए। यह आत्मस्वरूप ही सबसे बड़ा देवता है। यदि यह अपने निर्धारित उत्तरदायित्वों को समझे और सत्प्रवृत्तियाँ अपनाकर राजमार्ग पर चले तो अपना और समस्त संसार का श्रेय साधन कर सकता है। यह दर्पण दर्शन साधना नित्य करने से आत्मजागरण का लाभ मिल सकना सरल हो जाता है। जिस की आत्मा जग पड़ी उसके लिए यह संसार देवलोक के नन्दन वन से कम आनन्ददायक नहीं रहता।

अन्तःकरण चतुष्टय और साधना विज्ञान

अन्तःकरण चतुष्टय चेतना की क्रियापद्धति है। यों चेतन-सत्ता एक है, अँगुलियों की तरह उसके पृथक्-पृथक् खण्ड एवं स्वरूप नहीं हैं और न उसके कार्य विभाजित हैं। वह एक ही शक्ति कई समय पर कई काम करती है। जब वह जो काम करती है तब उसे उस नाम से सम्बोधित किया जाता है। एक ही व्यक्ति वक्ता, विद्यार्थी, अभिनेता, खिलाड़ी, रोगी, मित्र, शत्रु, ग्राहक, विक्रेता आदि की कई भूमिकाएँ समय-समय पर निभाते हुए देखा जा सकता है। जब वह जो काम कर रहा होगा तब उसे उसी रूप में कैमरा चित्रित करेगा और सम्बोधनकर्त्ता नाम

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

देगा। चेतना की चार संज्ञाएँ मिलने की बात ऐसी ही समझी जानी चाहिए। उन्हें चार स्वतन्त्र सत्ताएँ मानने और पृथक्-पृथक् काम करने के लिए नियुक्त नहीं मानना चाहिए।

(१) मन का काम है—कल्पनाएँ करना। अन्तःवर्ती इच्छाओं एवं अनुभूतों में जहाँ सरसता की अनुभूति का उसे ज्ञान है उसी परिधि में प्रायः मन की उड़ाने उड़ती हैं। आकर्षण के अतिरिक्त दूसरा पक्ष है भय। हानि से आत्मरक्षा भी अग्रगमन और रसास्वादन की ही तरह प्रभावोत्पादक है। सुख की उपलब्धि और दुःख की निवृत्ति एक-दूसरे की पूरक है। मन इन दोनों ही ज्वार भाटों में उछलता रहता है। कल्पना के वह अनेक पक्ष और दृश्य उपस्थित करता है, जिसके सहारे चेतना की अगली परत बुद्धि को उचित-अनुचित का सम्भव-असम्भव का निर्णय करने में सुविधा रहे। इन दोनों उभारों के बीच एक विनोदी, मनमौजी पक्ष भी है, जिसे निरर्थक अस्त-व्यस्त कह सकते हैं। कई बार अप्रासंगिक विचार भी उठते रहते हैं। यों उनका भी कहीं न कहीं किसी पूर्व स्मृति से सम्बन्ध होता है। सर्वथा नवीन एवं अपरिचित प्रसंग के विचार कदाचित ही कभी आते हैं। वे अपनी पूर्व ज्ञान भूमिका में ही विचरण करते रहते हैं।

(२) बुद्धि वह तत्व है जिसे विशालकाय विचार क्षेत्र में से उपयोगी अनुपयोगी का निर्णय करना पड़ता है। उसे न्यायाधीश कह सकते हैं। अनेकों गवाहों, वादी, प्रतिवादियों, वकीलों और सिफारिशी लोगोंने अपनी-अपनी बातें अपने समय और ढंग से कही होती हैं। न्यायाधीश अपने विवेक से इस जाल-जंजाल में से औचित्य तलाश करता है और तदनुसार फैसला करता है। बुद्धि प्रायः यही भूमिका निभाती है। उसे स्वार्थ को प्रधानता देनी पड़ती है। सामान्य स्थिति में शक्य और स्वार्थ का समन्वय ही उसकी न्याय संहिता होती है। परिष्कृत बुद्धि जिसे गायत्री मन्त्र में धी और तत्व दर्शन में ऋतम्भरा कहा गया है वह स्वार्थ की परिधि से ऊपर उठकर मात्र औचित्य और आदर्श को ही प्रधानता देती है। बुद्धि का स्तर जो भी हो निर्णय तो तदनुरूप ही होंगे; पर काम उसका निर्णय करना ही होगा।

(३) चित्त को निर्धारण कह सकते हैं। मन की कल्पनाओं में से ग्राह्य ठहरा देने का निर्णय करना बुद्धि का काम है, पर आवश्यक नहीं कि वे निर्णय क्रिया रूप से परिणित होने के निश्चय तक जा पहुँचे। आकांक्षा, संकल्प और साहस के समन्वय से ही वह मनोभूमि बनती है, जिसमें कुछ करने के लिए कदम उठते हैं। मन्जिल पर चलने के लिए अनेक साधन जुटाने पड़ते हैं और अवरोधों को निरस्त करने के अनेक उपाय सोचने पड़ते हैं। इसकी तैयारी किसी सुनिश्चित निर्धारण के उपरान्त ही होती है। विचार को प्रयास में परिणित करने वाले संस्थान को व्यावहारिक प्रयोजनों में चित्त कहते हैं।

चित्त को वैज्ञानिक भाषा में अचेतन कहा जाता है। असंख्य शरीर में रहने के कारण उसे काय संचालन की मूल भूत क्रिया-प्रक्रिया का परिचय है। अस्तु वह अपने अनुभवों के आधार पर रक्त संचार, आंकुचन, प्राकुंचन, श्वास, प्रश्वांस, ग्रहण, विसर्जन, निद्रा, जागृति आदि के क्रियाकलापों को अनवरत गति से सम्पन्न करता रहता है। स्वसंचालित एवं अनैच्छित, शरीर संचालन की कार्य सिद्धि इस चित्त संस्थान के माध्यम से ही सम्पन्न होती है।

भले-बुरे संस्कार इसी चित्त में जमे रहते हैं। आदतों की जड़ इसी भूमि में घुसी रहती है। तप साधनाओं के उद्देश्य इस चित्त की दिशा धारा मोड़ने, मरोड़ने, भुलाने, सिखाने का अति महत्वपूर्ण कार्य सम्पन्न करके व्यक्तित्व का निर्माण करना ही होता है।

(४) अहंकार-चेतना की वह परत है, जिसमें अपने आपे के सम्बन्ध में मान्यताएँ जमी रहती हैं। अहंकार का अर्थ घमण्ड भी होता है, पर तत्व चर्चा में इस शब्द को आत्म अस्तित्व-ईगो के सन्दर्भ में ही प्रयुक्त किया जाता है। तमोगुण का एक अर्थ क्रोधी स्वभाव भी है, पर तत्व चर्चा में उसे आलस्य, प्रमाद, निराशा जैसी चेतनात्मक जड़ता के लिए ही प्रयुक्त किया जाता है। अहं का तात्पर्य स्व सत्ता की अनुभूति का स्तर ही समझा जाना चाहिए।

व्यक्ति अपने सम्बन्ध में मान्यता स्वयं निर्धारित करता है। इस आधार पर उसकी आकांक्षा उभरती है और दृष्टिकोण बनता है। आस्था, निष्ठा इसी क्षेत्र का उत्पादन है। इसे व्यक्तित्व का बीज भी कह सकते हैं। बाह्य जीवन इसी की प्रतिक्रिया है। आत्म मान्यता के आधार पर ही व्यक्ति की आकांक्षा, विचारणा एवं क्रिया को दिशा एवं गति मिलती है। बाह्य जीवन में मनुष्य जैसा कुछ है उसे अन्तः स्थिति की प्रतिच्छाया मात्र समझा जा सकता है। योगाभ्यास इसी परत को प्रभावित करने के लिए किये जाते हैं। श्रद्धा और भक्ति के भाव संचार ही अहंता का स्तर बदल सकने में समर्थ होते हैं।

चिन्तन की इन चारों परतों का समन्वय करने से समग्र ज्ञान साधना का उद्देश्य पूर्ण होता है। इनमें से एकाध का ही उपयोग किया जाये तो बात अधूरी रह जायेगी और विचार शक्ति का जो लाभ मिलना चाहिए वह मिल न सकेगा।

कल्पना के आधार पर किसी तथ्य के मानसिक चित्र तैयार किये जाते हैं। जिस प्रकार किसी इमारत के लिए कागजी नक्शे या अच्छी तस्वीर के लिए पेन्सिल-स्केच तैयार किये जाते हैं उसी प्रकार कल्पना की तूलिका अभीष्ट प्रयोजन का एक अनगढ़ चित्र तैयार करती है। मन का यही काम है वह तरह-तरह की उड़ानें उड़ता रहता है। आकांक्षाओं के अनुरूप मानस पटल पर तस्वीर बनाता रहता है। अगला काम विवेक बुद्धि का है वह इसमें से उपयुक्त-अनुपयुक्त की काट-छाँट करती है। फिल्म खींचते समय कैमरा द्वारा ढेरों फिल्म खिंचती हैं। डायरेक्टर उसमें से उपयुक्त-अनुपयुक्त की काट-छाँट करता है। बेकार भाग को निकाल कर फेंक देता है और उपयोगी अंशों को इधर से उधर जोड़ गाँठ करके उसका कारगर ढाँचा खड़ा करता है। बच्चे कुछ भी कहते—कुछ भी माँगते रहते हैं, बड़े उसमें से काम की और बेकाम की बातों का अन्तर करते हैं और उनके लिए क्या करना चाहिए इसका निर्णय करते हैं। बुद्धि की कसौटी पर खरे-खोटे की परख होती रहती है। कल्पना में से उपयोगी अंश छाँट निकालना उसी का काम है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

विचारों का कार्यों के साथ चिर काल तक समन्वय बने रहने से वैसा स्वभाव बन जाता है और अनायास ही उस प्रकार की इच्छा उठने और क्रिया होने लगती है। इसी को संस्कार या चित्त कहते हैं। इच्छा, ज्ञान, अभ्यास, वातावरण, समर्थन आदि अनेक कारणों से जीवात्मा के ऊपर एक आवरण बनता है। यही अहंकार है। यह है तो आत्मा से पृथक् मान्यताओं और गतिविधियों से विनिर्मित, पर चेतना के साथ अत्यधिक घनिष्ठ हो जाने से वह उसी का अंश लगने लगता है। साँप की केंचूल या बल्व के काँच की उसे उपमा दी जा सकती है। इस अहंकार को ही व्यक्तित्व कह सकते हैं। ईश्वर और जीव की पृथकता प्रमुख दीवार यही है। उपासना द्वारा ईश्वर को आत्म समर्पण करके इसी अहं को मिटाया जाता है। तप साधना द्वारा कुसंस्कारों का उन्मूलन और सुसंस्कारों का संस्थापन किया जाता है। स्वाध्याय, सत्संग, मनन, चिन्तन द्वारा विवेक बुद्धि परिष्कृत होती है और इन्द्रिय-निग्रह द्वारा चलते मन को सत्संकल्प करने वाले उपयोगी चित्र गढ़ने वाला बनाया जाता है। यही है आत्म-साधना की पृष्ठभूमि और संक्षिप्त रूप रेखा।

साधना से संकल्प-शक्ति की अभिवृद्धि

पानी का स्वभाव नीचे की ओर ढुलकना है। फैला देने पर वह बिना प्रयास के ही ढलान की दिशा में अपने आप बहने लगेगा। किन्तु यदि उसे ऊपर चढ़ाना हो तो बहुत सरंजाम इकठ्ठे करने पड़ेंगे और बहुत श्रम जुटाना होगा। ढलान की ओर बिना श्रम के ही जिस तेजी से बहता है उतनी बात ऊपर चढ़ाने के प्रयास में बहुत प्रयत्न करने पर भी नहीं बन पड़ती। पतन और उत्थान की दिशा में प्रगति का क्रम भी पानी की ही तरह है। दुर्जनों का संग, दुष्कर्मों का उत्साह-पतन का उपक्रम जिस तेजी और जिस उमंग के साथ चलता है। उत्थान प्रयासों में वैसी बात कहाँ बन पाती है ? गड्ढे में, खंदक में कोई भी गिर सकता है, ऊपर चढ़ने और आकाश में उड़ने के लिए तो बहुत बल चाहिए और बहुत साधन। फिर भी प्रगति धीमे क्रम से ही होती है। उत्थान और पतन के सम्बन्ध में ही यही आकाश-पाताल जैसा अन्तर पाया जाता है।

जीव लाखों योनियों में भ्रमण करते हुए क्रमिक प्रगति पर बढ़ते हुए मनुष्य शरीर पाने का अधिकारी बनता है। निम्न योनियों के लिए उपयुक्त प्रवृत्तियाँ मनुष्य के लिए निरर्थक एवं हानिकार बन जाती हैं, अस्तु वे छूटती भी जाती हैं। सभ्यता एवं संस्कृति की रगड़ पड़ने से प्रतिगामी पशु-प्रवृत्तियों में से कुछ तो छूट जाती हैं किन्तु फिर भी बहुत सी प्रसुप्त एवं जाग्रत स्थिति में बनी रहती हैं। इनकी जड़ें अचेतन मन की गहरी परतों में घुसी होती हैं। चेतन की विवेकशीलता एवं सतर्कता के दबाव से वे प्रायः दबी ही रहती है, फिर भी उनका अस्तित्व पूर्णतया समाप्त नहीं हो जाता। जब भी उन्हें अवसर मिलता है, वर्षा में घास की सूखी जड़ें जिस प्रकार हरी हो जाती हैं—उसी प्रकार प्रबल हो उठती हैं। कई बार तो उनकी प्रबलता इतनी उत्कृष्ट होती है कि सभ्यता के सारे आधारों को कुचल कर मन ऐसे कर्म करने लगता है, जिन पर पीछे पश्चाताप ही करना पड़ता है। दुष्प्रवृत्तियों में छल, क्रोध, कामुकता, लोभ जैसी कुछ अति प्रबल हैं जब वे उभरती हैं तो मनुष्य अनेकों अपराधी क्रूरकर्म करता पाया जाता है। इनमें से मन्द हैं आलस्य और प्रमाद। पेट भर जाने पर निम्नकोटि के जीव ऐसे ही आलस्य में ऊँघते रहते हैं। मनुष्य पर भी शारीरिक निष्क्रियता और मानसिक दीर्घ सूत्रता छायी रहती है। मनुष्यों में से जड़ प्रकृति वालों की यही स्थिति रहती है। वे कामनाएँ बहुत-सी करते हैं, पर उन्हें पूरी करने के लिए जिस पुरुषार्थ की आवश्यकता है, उससे कन्नी काटते हैं। ऐसी दशा में दुर्भाग्य को रोते रहने के अतिरिक्त और कोई परिणाम निकल ही कैसे सकता है ?

पशु-प्रवृत्तियों के कुसंस्कार अन्तर्मन में जितने अधिक और गहरे छाये रहते हैं, उसी अनुपात में मानवोचित प्रगतिशील जीवन-क्रम अपनाने में पग-पग पर बाधा पड़ती है। आगे बढ़ने के सामान्य प्रयासों को प्रतिगामी कुसंस्कार टाँग पकड़कर पीछे घसीट ले जाते हैं। यही गज-ग्रह संघर्ष—देवासुर संग्राम अन्तर्जगत में चलता रहता है। पौराणिक कथा-गाथाओं के अनुसार इस लड़ाई में आमतौर से असुर जीतता है और देव हारता है। पानी के ढुलकने और ऊपर चढ़ने के उदाहरण से इस तथ्य को सहज ही समझा भी जा सकता है। हारे हुए देवताओं को फिर से जीतने का अवसर तभी मिला है जब उनकी सहायता के लिए कोई दिव्य शक्ति विशेष रूप से आगे आयी है। ग्राह से गज को मुक्ति भी विष्णु भगवान् ने आकर ही दिलायी थी। समुद्र मंथन को सफल बनाने में कच्छप अवतार की अदृश्य किन्तु अति महत्वपूर्ण भूमिका रही थी। दुर्गा ने दुर्गान्त दैत्यों को मारकर देवताओं का संकट हरा था। भगवान् के प्रायः सभी अवतारों में देवत्व को विजयी बनाने में अपनी विशेष सहायता प्रस्तुत की। इस तथ्य को प्रगतिशील जीवन में ईश्वरीय दिव्य सहायता की आवश्यकता अनुभव करने के रूप में समझा जाना चाहिए। पशु-प्रवृत्तियों के कुसंस्कारों का असुर निरस्त करने में ईश्वर उपासना के उस स्तर की आवश्यकता पड़ती है जिसे योग एवं तप के नाम से जाना जाता है। पूजा-पत्री उसी की बाल कक्षा है।

मनुष्य प्रकृति की एक विशेषता है कि उसे अभ्यस्त ढर्रे पर चलने में ही रूचि होती है। शरीर और मन के सारे कलपुर्जे जिस ढाँचे में ढल जाते हैं, उसी पटरी पर वे लुढ़कते रहने में सुविधा अनुभव करते हैं। नई बात सोचना, नये कदम बढ़ाना, नई रीति-नीति अपनाना, भले ही उज्ज्वल भविष्य का परिचायक हो, पर उसके लिए हिम्मत ही नहीं पड़ती। विशेषतया आदर्शवादिता अपनाने में तो और भी अधिक कठिनाई पड़ती है, क्योंकि उस मार्ग पर अन्य लोग चलते दिखाई नहीं पड़ते। मेले की भीड़ में तो कोई भी साथ चल देता है, पर एकाकी राह बनाना, अकेले चल पड़ने का साहस जुटाना तो किन्हीं विरलों के लिए ही सम्भव होता है। यह सर्वविदित है कि महानता के पथ पर चलना आरम्भ में ही कठिन लगता है। थोड़ा अभ्यास करने पर इतना आत्मसन्तोष मिलने लगता है कि प्रारम्भ में जो

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कठिनाइयाँ दीखती थीं, वे हँसी-मजाक जैसी लगने लगती हैं। आरम्भ में बीज बोने की तरह कुछ त्याग तो अवश्य करना पड़ता है, पर अन्ततः फसल की इतनी राशि उत्पन्न होती है कि उसकी तुलना में बोने के समय का श्रम और खर्च अत्यन्त तुच्छ प्रतीत होता है। इस मार्ग पर पाना अधिक और खोना कम पड़ता है। किन्तु लोग उल्टा समझते हैं, उनकी मान्यता है कि परमार्थ परायणों को खोना अधिक पड़ता है और पाते कम हैं। आदर्शवादी महापुरुषों के जीवनों पर दृष्टिपात करने से इसी निष्कर्ष पर पहुँचना पड़ता है कि उन्होंने घाटे का सौदा नहीं किया। दूरदर्शिता की नीति अपनाकर वे उनसे कहीं अधिक नफे में रहे जो संकीर्ण स्वार्थपरता की कीचड़ में कुलबुलाते रहने वाले कृमि-कीटकों की तरह चाहते तो बहुत थे, पर प्राप्त कुछ भी न कर सके।

उत्कृष्टता का मार्ग साहसी, शूरवीरों का है। उस पर चलने के लिए वैसी ही प्रचण्ड संकल्प शक्ति चाहिए जैसी की तीव्र जलधारा को चीरते हुए प्रवाह की उल्टी दिशा में चल सकने वाली मछली में होती है। हाथी प्रवाह की दिशा में लुढ़कते, बहते चले आते हैं, पर मछली उसे चीरती, छरछराती उसे चुनौती देती है और उलटी दिशा में तैर सकने के प्रबल पुरुषार्थ का परिचय देती है। यही संकल्प शक्ति जिन मनुष्यों में होती है वे पेट और प्रजनन कृमि-कीटकों जैसी ललक-लिप्साओं को चुनौती दे सकने और कुछ ऐसा कर गुजरने में समर्थ होते हैं, जिससे मानव जीवन को सार्थक बना सकना सम्भव हो सके। विपन्न परिस्थितियों में जन्मे, अभावग्रस्त, सहयोग विहीन, मन्द बुद्धि और दुर्बलकाय लोगों ने प्रगति के उच्च शिखर पर पहुँच सकने—आश्चर्यचकित कर देने वाली सफलतायें पाने के जो चमत्कार दिखाये हैं उनके पीछे एकमात्र संकल्प-शक्ति ने काम किया है। इसी के आधार पर वे अपने कुसंस्कारों से जूझे हैं और व्यक्तित्व को इस प्रकार का बनाया है जैसा कि रसायनवेत्ता तुच्छ पारद का जारण-मारण करके उसे मकरध्वज जैसी शक्ति पुञ्ज औषधि बना लेते हैं। यह संकल्प शक्ति ही वह चुम्बकत्व है जिसके सम्पर्क में आने वाला हर व्यक्ति प्रभावित होता है, लोहा मानता है और प्रखर प्रामाणिकता के आगे नतमस्तक होकर भाव भरी श्रद्धा समर्पित ही नहीं करता वरन् सच्चे मन से सहयोग भी प्रदान करता है। प्रतिकूलताएँ दुर्बल मनःस्थिति के लोगों को काल जैसी विकराल लगती हैं, आशा का दीपक बुझा देती हैं और भयभीत करके प्रयास त्यागने को विवश करती हैं। किन्तु संकल्प के धनी उनसे अठखेलियाँ करते हैं, आँख मिचौनी खेलते हैं और शर्त लगा कर प्रतिद्वन्दिता खड़ी करते हैं। मनस्वी लोगों को प्रतिकूलताओं के साथ छेड़खानी किये बिना चैन ही नहीं पड़ता। कितने ही दुस्साहसी लोग दुर्गम यात्राओं पर निकल पड़ते हैं, हिंस्र पशुओं से भरे जंगलों में एकाकी भ्रमण करते हैं, खतरों को आमन्त्रण करते हैं और साहसिक शूरवीरता का कीर्तिमान स्थापित करते हैं। गुजारे के सुख साधन होते हुए भी उन्हें खतरों से खेले बिना चैन ही नहीं पड़ता। सृजन प्रयोजनों में जुट पड़ते हैं तो भागीरथ की तरह गंगा लाने और फरियाद की तरह नहर बनाने के चमत्कार कर दिखाते हैं।

सामान्यतया साधनों की, सहयोग की, परिस्थितियों की दुहाई दी जाती है और भाग्य को श्रेय दिया जाता है, किन्तु वास्तविकता कुछ और है। संकल्प शक्ति की दिव्य विभूति जिसके पास है वह दूसरे ही ढंग से सोचता है। नेपोलियन के शब्दों में वह कहता है—'दुर्लघ्य आल्पस को हमारे लिए रास्ता देना होगा अन्यथा उसे पैरों तले कुचल दिया जायेगा।' इतिहास साक्षी है कि आल्पस हारा और नैपोलियन जीता। उसे रास्ता देना ही पड़ा। एकाकी कृष्ण ने गोवर्द्धन पर्वत उठाया था। एकाकी हनुमान ने समुद्र लाँघा था, एकाकी बुद्ध युग-क्रान्ति को सम्भव बना सके थे। इन एकाकी कहे जाने वाले लोगों के साथ उनका अत्यन्त सच्चा और सर्वसमर्थ वह मित्र कन्धे से कन्धा मिलाकर चल रहा था, जिसे संकल्प-बल कहते हैं। इसी क्षमता की कमी से मनुष्य हेय परिस्थितियों में पड़े-पड़े सड़ते रहते हैं और इसी की अभीष्ट मात्रा मिल जाने से सामान्य मनुष्य असामान्य महामानवों की भूमिका सम्पन्न करते हैं।

व्यक्तित्व को कुछ से कुछ बना देने में समर्थ, सहयोग, साधन और परिस्थितियों को आकर्षित कर सकने में सफल सिद्धि होने वाले के संकल्प-बल को किस प्रकार उपार्जित किया जाये। इस प्रश्न का यदि उत्तर प्राप्त करना हो तो व्यायामशाला में जाकर पहलवान और पाठशाला में जाकर विद्वान बनने वालों का उदाहरण सामने रखना होगा। आत्मबल बढ़ाने के लिए साधना की प्रक्रिया अपनाई जाये तो उससे दुहरा लाभ है संकल्प बल तो निश्चित रूप से बढ़ता है साथ ही उस अभिवर्धन को अन्तःक्षेत्र में प्रसुप्त पड़ी हुई दिव्य विभूतियों को उभारने का भी अवसर मिलता है। यदि केवल संकल्प-बल ही बढ़ाना हो और वह भी मात्र भौतिक स्तर का रखना हो तो वह प्रयोजन साहसिक कार्य करते रहने और उत्साह अनुभव बढ़ाते चलने से भी सम्भव हो सकता है। पर यदि उत्कृष्टतावादी उस आत्मबल की आवश्यकता हो, जो जीवात्मा को क्रमशः महात्मा, देवात्मा और परमात्मा बना सके—जीवन को सार्थक बना सकने वाले आधार खड़े कर सके तो फिर साधना मार्ग पर चलते हुए उस मनोबल को, संकल्प शक्ति को प्राप्त करना होगा जिसे अध्यात्म की भाषा में 'ब्रह्मवर्चस्' कहते हैं। चेतनसत्ता का यही सबसे बड़ा वैभव है, समस्त सिद्धियों का उद्गम स्रोत इसी को कहा गया है। भौतिक और आत्मिक सफलताओं को सुदूर क्षेत्र से घसीटकर चरणों में ला पटकने वाला प्रचण्ड चुम्बकत्व यही है। इसे ईश्वर का सर्वोपरि वरदान कहा जा सकता है। आत्मा के प्रबल पुरुषार्थ के फलस्वरूप मिल सकने वाला उपहार यही है। यह जिसके पास होगा वह मृत्यु को भी उत्तरायण तक ठहरने के लिए भीष्म पितामह की तरह आदेश दे सकेगा। अर्जुन की तरह बाण से भूमि को छेद कर जलधारा बहा सकने की सामर्थ्य उसमें होगी।

अन्तस् में सन्निहित क्षमताओं का विकृत स्वरूप ही असुर है और उनकी परिष्कृत स्थिति को देवता कहा जा सकता है। पेट में सड़ा हुआ अन्न विष बन जाता है और अनेक रोग उत्पन्न करता है, यही असुरत्व हुआ। पचा हुआ अन्न रस, रक्त, शुक्र और ओजस् बनता है यही देवत्व है। देवता की आराधना

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

का अर्थ है अपनी प्रवृत्तियों और क्षमताओं का सधाया हुआ सुविकसित स्वरूप। असुरता से आक्रान्त होने का अर्थ है अपने चिन्तन एवं कर्तृत्व में अवांछनीयताओं की भरमार। साधना का उद्देश्य है—व्यक्तित्व का कायाकल्प, चेतना का परिमार्जन-परिष्कार। इतना बन पड़े तो अपना आपा ही कल्पवृक्ष बन जाता है और स्वर्गीय उपलब्धियों को सहज ही प्रस्तुत करता है। कितने ही साधकों को विभिन्न देवताओं द्वारा विभिन्न प्रकार के वरदान मिलने के कथानक कथा-गाथाओं में पढ़ने सुनने को मिलते हैं। यह वरदाता इष्टदेव अपना उच्चस्तरीय अन्तस् ही है। जो कल्पना के अनुरूप वेष बनाकर सामने आ खड़ा होता है, दर्शन देता है और मनोकामनाएँ पूरी करता है। मीरा के गिरधर गोपाल, रामकृष्ण परमहंस की काली, एकलव्य के द्रोणाचार्य, बाहर से नहीं आये थे, वरन् उन लोगों ने अपनी श्रद्धा को ही इन इष्टदेवों के रूप में परिपक्व किया था। श्रद्धासिक्त संकल्प ही आत्म-साक्षात्कार की—ईश्वर दर्शन की भूमिका बनाता है। स्वर्ग तक ले पहुँचने—मुक्ति प्रदान करने और सिद्ध पुरुष बना देने की शक्ति उसी में है। यही देवाधिदेव प्रजापति कहा गया है। साक्षी, दृष्टि, निर्लिप्त, अचिन्त्य परब्रह्म को मनुष्य रूप में मनुष्यों के साथ अठखेलियाँ करते और यथार्थ जैसे अस्तित्व का परिचय देते हुए देखा जाय तो समझना चाहिए कि यह साधक की अनन्य श्रद्धा का ही प्रतिफल है।

साधना का उद्देश्य पशु-प्रवृत्तियों के साथ देव-प्रवृत्तियों की टक्कर करना और पिछड़ेपन को उलटकर उस जगह प्रगतिशीलता की प्राण-प्रतिष्ठा करना है इस प्रयास को आन्तरिक महाभारत, लंकादहन, समुद्र मंथन आदि पौराणिक गाथाओं के साथ जोड़ा जा सकता है। विश्वामित्र द्वारा नई सृष्टि बनाने—च्यवन ऋषि का कायाकल्प होने जैसे उपाख्यानों की संगति भी साधना समर के साथ जोड़ी जा सकती है। निश्चित रूप से यही वह देवासुर संग्राम है, जिसे आत्मोत्कर्ष की विजय श्री का वरण करने वाले हर साधक को अनिवार्य रूप से लड़ना पड़ता है। भगवान का अन्तरात्मा में अवतरित होने का आभास इसी से मिलता है कि उस धर्मक्षेत्र, कुरुक्षेत्र में पाञ्चजन्य बजा या नहीं, गाण्डीव खटका या नहीं। धर्म की स्थापना और अधर्म के विनाश की दो हलचलें एक ही समुद्री हिलोर के ज्वारभाटे जैसी दो विलग दीखने वाली किन्तु वस्तुतः अन्योन्याश्रित एकात्म गतिविधि ही समझी जानी चाहिए। साधना का उद्देश्य अन्तरात्मा में ब्रह्मसत्ता का अवतरण करना है, यह प्रयास किस मात्रा में सम्भव हो सका, इसकी परख यही हो सकती है कि पशु को देवता बनाने की गतिविधियाँ कितनी ज्वलन्त हो रही हैं। अग्नि परीक्षा प्रक्रिया सीता जी के वापसी के समय हुई थी, आत्मा रूपी सीता को परमात्मा रूपी राम से मिलने के लिए इसी आँच में होकर गुजरना पड़ता है। रावण रूपी पशुत्व का कोई प्रभाव तो शेष नहीं है, सम्भवतः यही जाँचने के लिए अग्नि परीक्षा का उपक्रम किया गया था। सोने को खरा-खोटा घोषित करने से पूर्व भी अग्नि परीक्षा और कसौटी की रगड़ आवश्यक होती है। साधना की इन्हीं में से किसी के साथ तुलना की जा सकती है।

साधना को किसी समृद्ध देवता की चापलूसी करके कुछ इनाम पुरस्कार झपट लेने की तिकड़म नहीं समझा जाना चाहिए जैसा कि आजकल आमतौर से समझा जाता है। जंत्र-मंत्रों को जादू नहीं समझा जाना चाहिए जिनके सहारे सहज ही लम्बे-चौड़े लाभ और चमत्कार प्राप्त होने की बालकल्पना की जाती रहती है। उपासना विशुद्ध विज्ञान है जिसमें आत्म-परिष्कार के लिए प्रबल प्रयत्न करना पड़ता है। यह जितना गम्भीर वास्तविक और प्रखर होता है उसी अनुपात से व्यक्तित्व निखरता है। इस निखार के साथ ही भौतिक समृद्धियों और आत्मिक विभूतियों को ऋद्धि-सिद्धियाँ मिलती हैं।

साधना, मानवी प्रगति का अति महत्त्वपूर्ण आधार है। व्यक्तित्व को परिष्कृत बनाने से बढ़कर जीवन की सार्थकता सिद्ध करने वाला और कोई उपाय नहीं। अन्तस् में छिपी पड़ी प्रसुप्त विभूतियों को ढूँढ़ निकालने की तुलना में और कोई सम्पत्ति उपार्जन का लाभदायक व्यवसाय इस संसार में है नहीं। इसी मार्ग पर चलकर हम भौतिक और आत्मिक प्रगति के उभय प्रयोजन सिद्ध कर सकते हैं।

साधना का उद्देश्य—आत्मिक प्रखरता

इसमें कोई सन्देह नहीं है कि मनुष्य के जीव में ईश्वर का अविनाशी अंश होने के कारण अपने पिता की सभी विशेषताएँ विद्यमान हैं। छोटे-से शुक्राणु में समूचे मनुष्य का परिपूर्ण ढाँचा विद्यमान रहता है। परमाणु के घटकों में पूरे सौरमण्डल स्तर की गतिविधियाँ काम कर रही होती हैं। बीज में समूचे वृक्ष का ढाँचा विद्यमान रहता है। इस अखिल ब्रह्माण्ड में संव्याप्त भौतिक शक्तियों एवं आत्मिक विभूतियों का जो भाण्डागार भरा पड़ा है, वह बीज रूप में मानवी सत्ता के भीतर विद्यमान है। ब्रह्माण्ड का छोटा स्वरूप पिण्ड मनुष्य कलेवर है। इसके गर्भ में ब्रह्मचेतना की सभी विशेषताएँ एवं क्षमताएँ प्रसुप्त स्थिति में मौजूद हैं। आत्म-साधना के द्वारा इस प्रसुप्ति को जागृति में बदला जा सकता है। सामान्य से असामान्य बन सकने की इस प्रक्रिया को आत्मसाधना का एक अंग कहा जा सकता है। अतीन्द्रिय क्षमता का विकास, अलौकिक ऋद्धि-सिद्धियों का दिव्य वरदान इसी प्रक्रिया के अन्तर्गत आता है।

उपयोगिता की दृष्टि से जितना महत्त्व भौतिक प्रगति एवं व्यवस्था का है उससे अधिक महत्त्व आत्मचेतना के परिष्कार का है। पदार्थ का उपयोग तो चेतना ही करती है। यदि इस मूलसत्ता का स्वरूप ही अनगढ़ एवं विकृत बना रहा तो फिर पदार्थों का बाहुल्य होते हुए भी उनका सदुपयोग न हो सकेगा और दुरुपयोग से तो अमृत भी विष बनते देखा गया है। चेतना का स्तर ऊँचा हो तो आन्तरिक उत्कृष्टता के कारण अभावग्रस्त परिस्थितियों एवं प्रतिकूलताओं के बीच रहते हुए भी हँसता-हँसाता, हलका-फुलका जीवन जिया जा सकता है। इसके विपरीत अन्तःक्षेत्र में विकृतियाँ भरी रहीं, अनगढ़पन बना रहा तो फिर रावण जैसा वैभव होने पर भी नारकीय दुर्गति का वातावरण बनेगा। अस्तु विचारशीलों के भौतिक प्रगति के लिए किए गए साधना प्रयासों की तुलना में आत्मिक प्रगति के लिए

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

किए जाने वाले पुरुषार्थ को असंख्य गुना महत्त्वपूर्ण बताया गया है।

इस दिशा में कोई भी प्रभावशाली कदम तभी उठाया जा सकता है, जबकि आत्मचेतना के स्वरूप, उद्देश्य और दिशाधारा के निर्धारण में अध्यात्म-विज्ञान का सहारा लिया जाये। उसी आधार पर यह सम्भव हो सकता है कि मनुष्य तन धारी जीव अपनी प्रतिभा एवं प्रखरता को समुन्नत बनाते हुए महामानव कहलाने का अधिकारी बन सके। आत्मा और समूची मानव जाति को आगे बढ़ाने—ऊँचा उठाने का श्रेय प्राप्त किया जा सके।

अपनी—युग की सबसे बड़ी माँग यह है कि भौतिक प्रगति पर आध्यात्मिकता का अंकुश स्थापित हो। अन्यथा बढ़ा हुआ वैभव उद्दण्ड तक्षक की तरह अपने दूध पिलाने वाले को ही दंश लेगा। सम्पदा और कुशलता का लाभ तभी है जब उन्हें सदुद्देश्य के लिए नियोजित किया जा सके अन्यथा उनकी विकृति विनाश के सरंजाम ही रचेगी। विज्ञान की प्रगति ने सुख-साधनों की निश्चित रूप से वृद्धि की है। यह अभिवृद्धि जहाँ सुखद है, वहाँ निरंकुश बनते जाने के कारण एक भयावह समस्या भी है। सद्ज्ञान सम्वर्द्धन से ही इसका सन्तुलन बैठेगा। विज्ञान और तत्त्वज्ञान के सन्तुलित पहिए ही प्रगति रथ को सुनियोजित रूप से आगे बढ़ा सकने में समर्थ होंगे। यह प्रयोजन अध्यात्म विज्ञान के प्रति उसी स्तर की अभिरुचि उत्पन्न करने से सम्भव होगा जैसी कि इन दिनों भौतिक उपलब्धियों के लिए आकुलतापूर्वक संलग्न हो रही है।

आत्मिक प्रगति के दो आधार हैं—एक ज्ञान दूसरा विज्ञान। ज्ञान पक्ष में ब्रह्मविद्या के आधार पर उस उत्कृष्ट चिन्तन का समावेश है, जिसमें आत्मा का स्वरूप लक्ष्य, कर्त्तव्य, तत्त्वदर्शन के रूप में समझा जाता है और जीवन की सार्थकता के लिए उच्चस्तरीय मार्गदर्शन मिलता है। अन्तःकरण की आस्थाओं, आकांक्षाओं अभिरुचियों, स्फुरणाओं, सम्वेदनाओं को परिष्कृत करने के लिए जिस प्रकार की श्रद्धा एवं मान्यता को हृदयंगम करना आवश्यक होता है वह ब्रह्मविद्या में सन्निहित सद्ज्ञान द्वारा ही सम्भव होता है। इसके लिए स्वाध्याय, सत्संग, मनन, चिन्तन जैसे माध्यम अपनाये जाते हैं। कथा-प्रवचनों का सिलसिला इसी सन्दर्भ में चलता है। धर्मशास्त्रों का—तत्त्वदर्शन का विशालकाय कलेवर इसी प्रयोजन के लिए खड़ा किया गया है।

आत्मिक प्रगति का दूसरा आधार है—साधना। साधना वह प्रक्रिया है—जिसमें अमुक विधि-विधानों, कर्मकाण्डों के साथ अमुक स्तर की भावनाओं का समावेश करके आन्तरिक अवसादों को दूर किया जाता है। चेतना पर छाई प्रसुप्ति को जागृति में परिवर्तित करना आत्मसाधना का उद्देश्य है। जीव लाखों पिछड़ी योनियों में परिभ्रमण करते हुए मनुष्य जन्म पाने का अधिकारी बना है। इस लम्बी यात्रा में जो पशु-प्रवृत्तियाँ अभ्यास में आती हैं उनकी छाप अभी भी छाई रहती है। मनुष्य की जो उच्च स्थिति है, उसे देखते हुए वे पशु-प्रवृत्तियाँ अनावश्यक एवं अवांछनीय बन जाती हैं। छोटे बच्चे नंग-धड़ंग फिर सकते हैं और कहीं भी मल-मूत्र का त्याग बिना संकोच के कर सकते हैं, पर प्रौढ़ावस्था में तो वैसा करना अनुपयुक्त ही माना जायेगा। प्रौढ़ता के साथ जो मर्यादाएँ जुड़ी होती हैं, उन्हें पालन करना भी आवश्यक होता है। मनुष्य जन्म के अनुरूप आस्थाएँ विकसित करने के लिए पिछड़ी पशु-प्रवृत्तियों को उखाड़ना आवश्यक होता है। यह कार्य कठिन भी है और जटिल भी। समझने-समझाने भर से इतना बड़ा आन्तरिक परिवर्तन नहीं हो पाता जिसे पशुता के स्थान पर देवत्व की प्रतिष्ठापना का कायाकल्प माना जाता है।

मानवी अवगति का एकमात्र कारण उसकी आन्तरिक दुर्बलता एवं विपन्नता ही होती है। इसको दूर कर सकना साधना प्रक्रिया को अपनाकर ही सम्भव हो सकता है। आन्तरिक दुर्बलता एवं विपन्नता के भार को यदि किसी प्रकार हटाया जा सके तो मनुष्य की गरिमा महामानवों जैसी, नर देवताओं जैसी बनी रह सकती है। परिष्कृत मनःस्थिति में रहने वाले सहज ही समुन्नत मनःस्थिति प्राप्त कर लेते हैं, यह तथ्य सर्वविदित है।

मानवी सत्ता इतनी स्वल्प नहीं है जिससे कि शरीर यात्रा भर का प्रयोजन पूरा होता रह सके। निर्वाह के लिए जितने पुरुषार्थ एवं मनोयोग की आवश्यकता है उतना ही अनुदान क्षुद्र प्राणियों को मिलता है पर मनुष्य की स्थिति उससे भिन्न है। उसके अन्तराल में समुद्र गर्भ की तरह विभूतियों की बहुमूल्य रत्नराशि भरी पड़ी है।

आत्मबल की यह सम्पदा ही जीवन के हर पक्ष में आलोक उत्पन्न करती दिखाई पड़ती है। उसकी ज्योति शरीर को ओजस्वी, मस्तिष्क को मनस्वी और अन्तःकरण को तेजस्वी बनाती है। इस आत्मबल का उपार्जन साधना उपचार से सम्भव होता है। संकल्पशक्ति का बिखराव रोकने-उसे प्रचण्ड बनाने और अभीष्ट प्रयोजन में नियोजित किए रहने की अन्तःक्षमता विकसित करने के लिए साधना को अतीव उपयोगी माना गया है। यों यह प्रयोजन मनोयोगपूर्वक सत्प्रयोजनों में संलग्न रहने से अनेकों मनस्वी लोगों की तरह पूरा किया जा सकता है, पर जितनी सरलता आत्मसाधनाओं के माध्यम से हो सकती है उतनी अन्य उपायों से सम्भव नहीं। फिर प्रश्न मात्र संकल्पशक्ति बढ़ाने का ही तो नहीं है उसके उत्कृष्ट बनाने की बात भी तो है। यह उत्कृष्टता तो उच्चस्तरीय आस्थाओं का समन्वय करने से ही सम्भव होती है। अध्यात्म साधना का तथ्यपूर्ण ढाँचा अनुभवों के आधार पर प्रयोजन के लिए खड़ा किया गया है।

आत्मिक प्रगति के लिए ज्ञान और विज्ञान के दोनों चरण उसी प्रकार उठाने पड़ते हैं, जिस प्रकार कि भौतिक प्रगति के लिए इन्हीं दो आधारों को अपनाया जाना आवश्यक होता है। आर्थिक तथा दूसरे सुविधा साधन भी तो भौतिक ज्ञान-विज्ञान का सहारा लेकर ही प्राप्त किये जाते हैं। आत्मिक प्रगति के लिए भी ब्रह्मविद्या पर आधारित तत्वज्ञान हृदयंगम करना आवश्यक होता है। योग साधना एवं तपश्चर्या की समन्विता साधना पद्धति का आश्रय लेकर अध्यात्म विज्ञान का उपयोग किया जाता है और उससे चित्र शक्ति के सम्वर्द्धन का लाभ मिलता है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

साधना क्षेत्र में प्रवेश और उसकी पृष्ठभूमि

आत्मशोधन और आत्मविकास की विसर्जन ग्रहण प्रक्रिया अपनाने के माध्यम में एक महत्वपूर्ण कार्य आया है—प्रायश्चित विधान का। पूर्ण संचित अथवा कुछ ही समय पूर्व किये गये दुष्कर्मों के कषाय-कल्मष अन्तःकरण पर एक तमसाछन्न परत की तरह कुसंस्कार बनकर जम जाते हैं। उनकी प्रतिक्रिया आत्मोत्कर्ष के प्रयत्नों को असफल बनाने में भारी अवरोध बनकर अड़ी रहती है और येनकेन प्रकारेण ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न करती है जिससे दुष्कर्मों का दण्ड टलने न पाये और प्रगतिशील सौभाग्य का अवसर हस्तगत होने न पाये। मन की उच्चाटन साधना में अरुचि, अस्वस्थता, परिस्थितियों की प्रतिकूलता जैसे कितने ही व्यवधान साधन के दिनों इसलिए आते हैं कि यदि इस मार्ग में सफलता मिलने लगी तो फिर दण्ड भुगतने का अवसर कैसे मिलेगा ? साधन से जो नये सुसंस्कारों की हरियाली उगाई जाती है, उन्हें कुसंस्कारों के वन्य पशु झुण्ड बना कर आते और देखते-देखते चर जाते हैं। सभी जानते हैं मैले कपड़े पर रंग नहीं चढ़ता, पथरीली जमीन में उद्यान नहीं लगता। दुष्कर्मों के घटाटोप छिपे हुई मनो में ऐसी हठीली होती है कि उस साधना के माध्यम से सुसंस्कारों का रंग चढ़ाना या उपवन लगाना बन ही नहीं पड़ता। सारे प्रयास निष्फल जाते रहते हैं।

इस अवरोध को हटाने के लिए अध्यात्म विज्ञानी पूर्वकृत पापों का प्रायश्चित साधना विधान का अविच्छिन्न अंग मानते हैं। इसे भूमि शोधन कहा जाता है। कायाकल्प चिकित्सा में सर्वप्रथम नाड़ी शोधन कराया जाता है। आत्मिक प्रगति के मार्ग पर चलने वालों को सर्वप्रथम यही करना होता है। ईश्वरीय दण्ड या समाज दण्ड पाने से पूर्व अपने दुष्कृत्यों का स्वयं ही दण्ड भुगत लेना अपनी कुसंस्कारी मनोभूमि को अपने ही हाथों खुदाई, गुड़ाई करके उर्वर बनाने का कार्य प्रायश्चित कहा जाता है।

दूसरों ने समाज को जो क्षति पहुँचाई है, उसकी भरपाई करने के लिए सत्प्रवृत्तियों का सम्वर्द्धन करना—उसके लिए अपने समय साधनों को लगातार खोदी गई खाई को पाट देना आवश्यक है। तप तितीक्षा के अमुक उपचार अपनाकर शारीरिक, मानसिक, आर्थिक कठिनाई का स्वेच्छापूर्वक वरण करना, यही है प्रायश्चित की प्रक्रिया। इसके लिए मार्गदर्शक के सम्मुख अपने स्मृति पटल पर जितने भी शरीर से या मन से किये गये पाप कर्मों को स्मरण हो उन सभी को विस्तारपूर्वक कहना पड़ता है। इसे निष्कासन तप कहते हैं। दुराव की गाँठें खोल देने, संचित विषाक्तता को उगल देने से मन में तुरन्त हलकापन आता है। (१) पूर्व कृत्यों पर दुःख मनाना। (२) भविष्य में वैसा न करने की प्रतिज्ञा करना। (३) जो किया है उसके लिए तप, तितीक्षा के रूप में दण्ड भुगतना। (४) खोदी गई खाई को पाटने के लिए लोकोपयोगी सत्कर्म करना। इन चार उपचारों से प्रायश्चित की पूर्ण प्रक्रिया सम्पन्न होती है। यह सब एकाकी स्वयं ही निर्धारण नहीं कर लेना चाहिए। वरन् विश्वस्त, अनुभवी, उदार और मनीषी स्तर के किसी विशिष्ट महामानव के, मानसोचारक के तत्वावधान में किया जाना चाहिए। इन प्रसंगों में कई प्रकार के व्रत उपवास, तीर्थ सेवन, दान पुण्य आदि के कष्ट साध्य कृत्य करने की आवश्यकता पड़ती है। प्रायश्चित से हलके किये गये मन पर साधना की फसल भली प्रकार उगती और अपने निर्धारित प्रतिफल उत्पन्न करती है।

अन्तराल के परिमार्जन एवं उन्नयन में जिस पुरुषार्थ की आवश्यकता पड़ती है उसे महाप्रज्ञा की अभ्यर्थना कहा जाता है। इसी का दूसरा नाम गायत्री उपासना है। निखिल ब्रह्माण्ड में जिस महाप्राण का भण्डार भरा पड़ा है। उसे अभीष्ट परिमाण में ग्रहण धारण करने की आवश्यकता पड़ती है यह कार्य अनुभवी तपस्वियों द्वारा निर्धारित गायत्री उपासना की पुण्य प्रक्रिया अपनाने से सम्भव हो जाता है। इस सन्दर्भ में जप, ध्यान और प्राणायाम की तीन पद्धतियाँ काम में लानी पड़ती हैं। किस को किस प्रयोजन के लिए इन दिनों में से किसे, किस परिणाम में, किस क्रम से अपनानी चाहिए, इसका निर्धारण अनुभवी मार्गदर्शक साधक की मनःस्थिति का पर्यवेक्षण गम्भीरतापूर्वक करने के उपरान्त ही निश्चित करते हैं। सबके लिए एक जैसा विधान तो नित्य कर्म के रूप में ही प्रयुक्त होता है। साधना का नित्य कर्म, हर दिन आक्रमण करने वाले कुसंस्कारों को, वातावरण के प्रभाव को निरस्त करने के लिए किया जाता है। नित्य का स्नान, कपड़े धोना, मंजन करना, कमरे में झाड़ू लगाना, बर्तन मलना आदि जिस तरह हर दिन का सफाई कृत्य माना जाता है इसी तरह मनःक्षेत्र पर मलीनता की परतें न जमने देने के लिए उपासनात्मक नित्य कर्म भी करने होते हैं। विशिष्ट साधना इसके अतिरिक्त है। आत्मोन्नति के लिए उसी की अतिरिक्त तैयारी करनी पड़ती है।

गायत्री जप की कई विधियाँ हैं। उसमें कभी-कभी कुछ अतिरिक्त बीजांकुर भी सम्मिलित करने पड़ते हैं। ध्यान में नाभिचक्र, हृदय चक्र और आज्ञाचक्र को त्रिविध शक्तियों का उद्गम केन्द्र कहा गया है। नाभिचक्र में प्राण की प्रखरता भरी पड़ी हैं जिसे कुण्डलिनी कहते हैं। हृदयचक्र में परम तत्व के साथ एकात्म करने वाली, जोड़ने वाली सत्ता निवास करती है, जिसे भक्ति एवं तल्लीनता कहते हैं। आज्ञा चक्र के माध्यम से दिव्यज्ञान की अतीन्द्रिय क्षमताओं की दूरदर्शिता विवेकशीलता एवं दिव्य दृष्टि की गंगोत्री प्रवाहित होती है। शाप वरदान देने वाले तन्तु इसी केन्द्र मे केन्द्रीभूत हैं। त्रिपदा गायत्री इन्हीं तीन दिव्य धाराओं से विनिर्मित होती और त्रिवेणी कहलाती है। जप के साथ-साथ ध्यान करने के अनेकों निर्धारण हैं जिनमें उपरोक्त तीन चक्रों के उन्नयन को ग्रन्थि भेद कहते हैं। जीव और ब्रह्म के मध्य भेदभाव-अलगाव रखने वाले जो तीन अवरोध हैं, उन्हें तीन क्षेत्रों में ध्यान ऊर्जा का प्रयोग अभिचार करके प्रसुप्ति को जागृति में बदला जाता है।

प्रकाशवान छवि माध्यम के द्वारा किये गये ध्यान 'बिन्दु योग' के नाम से सूक्ष्म कर्मेन्द्रिय के माध्यम से दिव्य ध्वनियों का आभास देने वाली प्रक्रिया को 'नादयोग' के नाम से जाना

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

जाता है। तीसरा 'लययोग' है। जिसमें तादात्म्य भावविभोर, आनन्द मग्न होने की समाधि साधना की जाती है। सहस्त्रार से सम्बन्धित खेचरी मुद्रा का यही स्वरूप है। शाम्भवी मुद्रा मूलाधार को प्रभावित करती है। हृदयचक्र में ज्योति मुद्रा का, अमृतकलश का ध्यान किया जाता है। यह सभी प्रयोग गायत्री उपासना के अन्तर्गत आते हैं और साधक को सतोगुण प्रधान, रजोगुण प्रधान, तमोगुण प्रधान प्रकृति का पता चलाने के उपरान्त निर्धारित किये जाते हैं। नित्य कर्म की साधना तो थोड़े बहुत हेर-फेर के साथ सभी के लिए एक जैसी है, किन्तु विशेष साधनाएँ उसी प्रकार की हैं जैसा कि पहलवानों को अखाड़े का आश्रय लेकर उस्तादों की देख-रेख में विशेष प्रकार की कसरतों के माध्यम से करनी पड़ती हैं। दंगल में कुश्ती पछाड़ने के लिए यह प्रक्रिया अपनानी पड़ती है। इस स्तर तक पहुँचने के लिए मात्र टहलने जैसी हलकी-फुलकी कसरतों से काम नहीं चलता।

जीवात्मा के तीन शरीर हैं—स्थूल, सूक्ष्म, कारण। इन तीनों को परिष्कृत करने के लिए क्रमशः हठयोग की, राजयोग को और लययोग की साधना करनी होती है। उनके अनेकों उपभेद और सम्मिश्रक हैं। औषधि विज्ञान की तरह साधना विज्ञान का भी एक स्वतन्त्र शास्त्र है। चिकित्सा उपचार में रोगियों की स्थिति का विशेष रूप से ध्यान रखना होता है उसी प्रकार श्रेयार्थियों के लिए भी अनुभवी मार्गदर्शक अमुक साधना अथवा कई योग प्रयोजनों का सम्मिश्रण करके ऐसा निर्धारण करते हैं जो अभावों की पूर्त्ति एवं उलझनों से निवृत्ति करा सकने में समर्थ हो सके। मेरुदण्ड में प्रवाहित होने वाली त्रिविध शक्तिधारायें, इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना के नाम से जानी जाती हैं। किसे किस शरीर को प्रधानता देनी है, किसे किस क्षेत्र में प्रवेश करना है वे इन्हीं तीनों के साथ अपना तादात्म्य बिठाते हैं। इन्हीं तीनों को तीन लोकों में प्रवेश पाने के तीन राजमार्ग कहते हैं। भूलोक इड़ा से, भुवः लोक पिंगला से और स्वः लोक सुषुम्ना से सम्बन्धित माना गया है। इन तीनों का समान स्वरूप त्रिपदा गायत्री के रूप में बनता है।

गायत्री मन्त्र प्रधान है। उसमें शब्द शक्ति का अवलम्बन लेकर तीन शरीरों में सन्निहित तीन शक्ति स्त्रोतों के साथ सम्बन्ध बनाया जाता है। निखिल ब्रह्माण्ड को तीन लोकों के रूप में विभाजित किया गया है। इनके साथ सम्बन्ध जोड़ने के लिए शब्द शक्ति का आश्रय लिया जा सकता है। मन्त्र योग समस्त उपचार शब्द शक्ति पर आधारित है। विज्ञान के छात्र जानते हैं कि ऊर्जा के अनेक विभाजनों में ताप, ध्वनि और प्रकाश की तरंगों को प्रमुखता दी गयी है। इन तीन का रूपान्तर विभिन्न स्तर के परमाणुओं और जीव कोशों में होता रहता है। पदार्थ जगत में पाँच तत्वों का और चेतन जगत में पाँच प्राणों का आधिपत्य है। इन दोनों ही क्षेत्रों में गतिविधियाँ जिस ऊर्जा के बलबूते चलती रहती है, उनमें से एक अति महत्वपूर्ण है—ध्वनि। इसी का अध्यात्म तत्वज्ञानी 'ॐकार' के रूप में अधिग्रहण करते हैं। ॐकार से भूर्भुवः स्वः तीन व्याहृत और इनमें से प्रत्येक के तीन-तीन शब्द निस्तृत होने पर नौ शब्द वाला, चौबीस अक्षरों वाली गायत्री का महामन्त्र बन जाता है। सामान्यतया इस हंसवाहिनी, आदिशक्ति के रूप में—सविता के मार्ग ब्रह्मवर्चस्य में तथा महाप्रज्ञा का ध्यान-धारणा में अपनाया और हृदयंगम किया जाता है। इतने पर भी यह मानकर चलना चाहिए कि गायत्री का तत्वज्ञान और प्रयोग विधान जिस धारा में प्रवाहित होता है, कि वह ब्रह्म विद्या शब्द परक है। मन्त्र योग का रहस्य यही है उसकी समस्त व्यवस्था, शब्द शास्त्र के अन्तर्गत समझी-समझायी जा सकती है।

आत्मा और परमात्मा के बीच सम्बन्ध बनाने के लिए साधनात्मक प्रयोजनों में शब्द शक्ति का ही प्रयोग करना पड़ता है। जप, स्तवन, कथा, मन्त्रोच्चार, पाठ, कीर्तन, प्रवचन, आशीर्वाद, अभिचार आदि में शब्द का ही किसी न किसी रूप में प्रयोग होता है। नाद योग के माध्यम से ईश्वरीय सन्देश सुनने एवं अदृश जगत में चल रही हलचलों की जानकारी प्राप्त करने की बात बनती है। विज्ञान ने प्रकृति के अन्तराल से ऐसी ध्वनि तरंगें ढूँढ़ निकाली हैं जो अब तक के समस्त अविष्कारों की तुलना में अधिक सामर्थ्यवान शक्ति स्त्रोत उपलब्ध हुआ है। चेतना जगत तथा पदार्थ जगत के दोनों ही क्षेत्रों में उच्चस्तरीय अनुकूलताएँ उत्पन्न करने तथा अभीष्ट उपलब्धियाँ प्राप्त करने के लिए शब्द शक्ति का जो विशेष विनियोग उपचार किया जाता है उसी को मन्त्र कहते हैं। आज यन्त्रों की धूम है। उनकी उपयोगिता तथा समर्थता का परिचय सभी को है। भूतकाल में ठीक इसी तरह मन्त्र शक्ति का प्रयोग होता है और उसकी प्रभाव शक्ति आज के अति महत्वपूर्ण यन्त्रों की तुलना में किसी भी प्रकार कम नहीं थी।

मन्त्र विद्या को उच्चस्तरीय शब्द विज्ञान कह सकते हैं। मन्त्रों के अक्षरों का गठन गुंथन आत्मविज्ञान के पारंगतों ने इस प्रकार किया है कि उनसे साधक की काया में सन्निहित अनेक रहस्य भरे शक्ति संस्थानों का उभार अभिवर्द्धन होता चला जाता है। गायत्री महाविद्या की उच्चस्तरीय रहस्यमय शब्द शक्ति का ऐसा समावेश है, जिसका सिद्धान्त एक प्रयोग करने वाला सिद्ध पुरुष स्तर की चमत्कारी सिद्धियों का परिचय दे सकता है।

ब्रह्म सम्बन्ध जोड़ने का आरम्भिक उपचार

व्यक्ति की अपनी योग्यता और तत्परता कितनी ही क्यों न हो उसे साधनों और अनुकूलताओं की भी अपेक्षा रहती है। एकाकी प्रयत्न पुरुषार्थ अभीष्ट सफलता उपलब्ध करा नहीं पाता। यौद्धा कैसा ही स्वस्थ शूरवीर क्यों न हो, हथियार के बिना मोर्चे पर अपना पराक्रम दिखाने और विजय श्री वरण करने में किस प्रकार सफल हो सकेगा ? परिस्थितियाँ प्रतिकूल चल पड़े—आँधी तूफान उठ खड़ा हो, मूसलाधार वर्षा होने लगे तो योद्धा की वीरता और रणनीति क्या काम करे ? न केवल योद्धा के लिए वरन् हर क्षेत्र के पराक्रमी प्रगतिशील के लिए यही बात लागू होती है। कुशल किसान भी बिना हल बैल और खाद बीज के फसल उगाने में कहाँ सफल हो सकता है ?

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

वर्षा न हो, तुषार, पात, टिड्डी, कीड़े आदि का सामना करना पड़े तो बेचारा क्या करे ? व्यापार शिक्षा, चिकित्सा आन्दोलन आदि के बारे में भी यही बात है। पराक्रम प्रमुखता और महत्ता कितनी ही क्यों न हो, साधनों और परिस्थितियों की, अनुकूलता की सफलता—असफलता में जो पृष्ठभूमि रहती है उससे इन्कार नहीं किया जा सकता।

आत्मिकी की उपलब्धियाँ हस्तगत करने के लिए साधक का वह पुरुषार्थ आवश्यक है, जिसमें वह आत्मसत्ता को इस योग्य बनाये कि दिव्य शक्तियों को उसमें से उभारना एवं धारण कर सकना शक्य हो सके। साधना के माध्यम से यही करना होता है। राजयोग की अष्टांग साधना में पाँच यम और पाँच नियम प्रथमचरण माने गये हैं। वे न बन पड़े तो प्राणायाम, प्रत्याहार धारणा, ध्यान आदि प्रयोगों का कोई तुक नहीं रह जाता। वर्णमाला, गिनती का आरम्भिक अक्षर ज्ञान न होने पर भी जो गणित और विज्ञान में एम० ए० करने की बात सोचता है वह भूल करता है। एक-एक सीढ़ी पार करते हुए ही तो क्रमशः छत पर चढ़ सकना सम्भव होता है।

साधना एक पराक्रम है, जिसके लिए प्राथमिक तैयारी योग्यता वृद्धि के रूप में करनी पड़ती है। पीछे साधनों के माध्यम से पुरुषार्थ प्रकट करने की बात बनती है। आत्मविज्ञान के अभिनव प्रयोगों में साधनारत व्यक्तियों को आत्मसत्ता की प्रयोगशाला के सभी यन्त्र उपकरण सही स्थिति में रखने होंगे। शरीरगत इन्द्रिय शक्ति और मनोगत भाव शक्ति को संयम तथा श्रद्धा स्वीकार करने के लिए साधना पड़ता है। इस तैयारी के साथ-साथ ही यह प्रयास करना पड़ता है कि निखिल ब्रह्माण्ड में संव्याप्त परब्रह्म चेतना के साथ अपने सूत्र सम्बन्धों को किस प्रकार घनिष्ठ किया जाये। घर में लगे बल्ब और पंखे तभी चलते हैं जब तारों की सही फिटिंग होने पर बिजली घर के जेनरेटरों से उनका सम्बन्ध सही रूप में जुड़ जाये। जलते तो बल्ब ही हैं, घूमते तो पंखे ही हैं पर जो मात्र दृश्य को ही सब कुछ नहीं समझते, आधारभूत कारण को भी तलाश करते हैं, उन्हें समझना होता है कि तारों में चलने वाला विद्युत प्रवाह ही इन उपकरणों को गतिशील रख रहा है। ब्रह्माण्डीय चेतना ब्रह्मसत्ता के साथ हर साधक का आत्मतन्त्र जुड़ना चाहिए। हर खेत को सूरज की गर्मी और आकाश से नमी मिलनी चाहिए। हर व्यक्ति को जमीन से खाद्य और अन्तरिक्ष से प्राण वायु मिलनी चाहिए। जिस प्रकार गर्भावस्था में भ्रूण माता के अनुदानों से बढ़ता पनपता है उसी प्रकार साधक को भी विशेष उपलब्धियों के लिए विराट् की ब्रह्म चेतना का अवलम्बन लेना पड़ता है आत्मा और परमात्मा के मिलन का तात्पर्य यही है कि दोनों के बीच आदान-प्रदान का सिलसिला चल पड़े। धरती की सम्पदा सूर्य की अनुकम्पा पर निर्भर है। मनुष्य को उच्चस्तरीय सामर्थ्य एवं प्रगति के लिए परमात्मा के साथ सम्बन्ध जोड़ने और अनुग्रह उपलब्ध करने का प्रयास भी करना पड़ता है। आत्मसंशोधन की बात तो इससे पहली है ही। यात्रा तो दोनों कदम उठाते हुए ही पूर्ण होती है। एक कदम आत्मशोधन और दूसरा ब्रह्म सम्बन्ध समझा जाना चाहिए। आत्मिक प्रगति की गाड़ी यह दोनों पहिये सही होने पर ही आगे बढ़ती है।

दोनों के बीच सघन सम्बन्ध बनाने के लिए साधना को मध्यवर्ती सूत्र माना जा सकता है। भ्रूण की नाभि से जुड़ा हुआ नाल तन्तु उसे माता के साथ जोड़ता है। बिजली घर और बल्ब के बीच तारों की फिटिंग सम्बन्ध जोड़ती है। दो पहियों के मध्य धुरी की भूमिका रहती है। जनता और सरकार का मध्य सूत्र अफसरों से जुड़ता है। कठपुतली और बाजीगर के बीच चलने वाली हलचलों में पतले धागे काम करते हैं। आत्मा और परमात्मा का विवाह कराने में दोनों का हाथ एक-दूसरे के हाथ में मजबूती के साथ थमाने में जो विवाहोपचार होता है प्रकारान्तर से उसकी तुलना साधना से की जा सकती है।

साधना के लिए मन और शरीर दोनों को साधना पड़ता है। मानसिक परिष्कार के लिए 'योग' और शारीरिक प्रखरता उभारने के लिए 'तप' का आश्रय लेना पड़ता है। योग और तप की परिधि में अनेकों प्रकार के अभ्यासों और अनुशासनों का विधि-विधान है। इसमें से कौन किसे अपनाये यह व्यक्ति विशेष की स्थिति का अतिरिक्त विश्लेषण करके ही यह तालमेल बैठता है कि किस मनःस्थिति में किस साधना को परिस्थिति को हृदयंगम करना और व्यवहार में उतारना बन पड़ेगा। सबके लिए एक जैसे निर्धारण नहीं हो सकते। एक कक्षा के बच्चों को तो एक पाठ्यक्रम का अभ्यास कराया जा सकता है, पर एक रोग के हर रोगी को एक जैसी चिकित्सा एवं परिचर्या नहीं बतायी जा सकती है। उसमें रोग इतिहास, रोग का कारण एवं रोगी की वर्तमान स्थिति का निदान विश्लेषण करना होता है। इसके उपरान्त ही कुशल चिकित्सक उपचार का निर्धारण करते हैं। इसी प्रकार साधना के मोटे नियम तो हर साधक के लिए एक जैसे हो सकते हैं, पर व्यक्ति विशेष की आवश्यकता के अनुरूप विशेष परामर्श की विशेष मार्गदर्शन की, विशेष देखभाल की जरूरत पड़ती है।

अपनी स्थिति को आप समझ सकना कठिन है। इसलिए रोगी होने पर अच्छे डॉक्टर भी दूसरे डॉक्टर बुलाते और उनके परामर्श अनुशासन में अपना इलाज चलाते हैं। साधना क्षेत्र में भी यही नीति अपनानी होती है। न केवल स्थिति के अनुरूप साधना विशेष का चयन करना होता है वरन् उस निर्धारण के लिए अनुभवी मार्गदर्शन का परामर्श अनुशासन भी उपलब्ध करना होता है। साधना क्षेत्र में 'गुरु' वरण की आवश्यकता पर बहुत जोर दिया गया है। इसका प्रयोजन अपने उपचार के लिए अनुभवी चिकित्सक का सहयोग जुटाने जैसा है। छात्रों को अध्यापक की भी जरूरत पड़ती है। बाजार से पुस्तकें खरीद कर बिना किसी से पूछताछ किये अपने आप उत्तीर्ण होते रहना कठिन है। बच्चा अपने आप वर्णमाला और गिनती को पढ़ना-लिखना, बिना किसी सहयोग के किस प्रकार आरम्भ करे ? संगीत शिल्प आदि में कोई एकाकी मात्र अपने ही प्रयास से कैसे प्रवीण बने ? भौतिक क्षेत्रों की तरह आत्मिक क्षेत्र में भी ऐसे उच्चस्तरीय मार्गदर्शक की आवश्यकता पड़ती है, जिसे न केवल विश्लेषण निर्धारण में प्रवीणता प्राप्त हो, वरन् उस

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

मार्ग पर लम्बी यात्रा करने के उपरान्त जिसने अनुभव भी सम्पादित किया हो।

अल्प प्राण महाप्राण से जुड़ने के लिए उपयुक्त मार्गदर्शक चाहिए ही। यह कार्य चिह्न पूजा के लिए गुरु बनाने या शिष्य बनने की लकीर पीटने से सम्पन्न नहीं होता, दोनों के बीच ग्रहण कर सकने की श्रद्धा और दे सकने की उदार क्षमता का समुचित अनुपात भी रहना चाहिए। स्कूली बच्चों और अध्यापकों के बीच मात्र बताने, समझने का सम्बन्ध रहने पर भी काम चलता रहता है, किन्तु आत्मिक क्षेत्र में उतने भर से काम नहीं चलता क्योंकि अध्यात्म क्षेत्र के 'गुरु' को न मात्र विश्लेषण निर्धारण में डॉक्टर जैसी ड्यूटी पूरी करने भर से छुटकारा नहीं मिलता वरन् उनके मध्य अभिभावकों और बाल-गोपालों के बीच चलने वाला आदान-प्रदान भी अनिवार्य होता है। सामान्य व्यवहार में अध्यापक पढ़ाते और अभिभावक खर्च उठाते हैं। आध्यात्मिक गुरु को यह दोनों ही कार्य साथ-साथ करने होते हैं और इस महत्वपूर्ण अनुकम्पा उपलब्धि के लिए शिष्य को ऐसी मृदुल स्थिति में रखना पड़ता है जिससे वात्सल्य अनायास ही टपकने लगे। गाय बछड़े को, माता बच्चे को स्वेच्छापूर्वक पयपान कराती है इससे पूर्व यह स्थिति बन चुकी होती है कि माता का दुलार उसके अन्तराल में अनायास ही हुलसने लगे। पेट से उत्पन्न हुए बच्चे के सम्बन्ध में अनुदान की प्रेरणा तो प्रकृति प्रदत्त होती है, पर शिष्य को निजी सन्तान की तरह अनुभव कराने के लिए अपनी भाव श्रद्धा को प्रयत्नपूर्वक परिपक्व करना होता है।

समझा जाना चाहिए कि भक्त का भगवान को अपने समीप खींच बुलाने में भक्ति भावना ही एक मात्र आकर्षण चुम्बकत्व है। भौतिक क्षेत्र में शारीरिक तत्परता और मानसिक तन्मयता का जो महत्त्व है वही आत्मिक क्षेत्र में श्रद्धा का है। उपासना उपचारों में कर्मकाण्ड परक विधि-विधान पूरा करने भर से काम नहीं चलता। उसके लिए तद्नुरूप श्रद्धा भी उभरनी चाहिए। अन्यथा कर्मकाण्ड अनुष्ठान मात्र श्रम उपचार भर रह जायेंगे और उनका उतना ही प्रतिफल मिलेगा जितना कि उस स्तर के 'परिश्रम' का मिलना चाहिए। चमत्कार तो तब उत्पन्न होते हैं जब साधना विधि के साथ सघन श्रद्धा का भी समावेश होता है। इसलिए अध्यात्म क्षेत्र के सर्वोपरि-सर्वसमर्थ—श्रद्धा शक्ति को अधिकाधिक सक्षम बनाने की आवश्यकता पड़ती है। इसका प्रारम्भिक अभ्यास कैसे हो ? इसलिए गुरुतत्व को एकलव्य की तरह अपने निजी प्रयत्न से समर्थ बनाना पड़ता है। यही है 'गुरुदीक्षा' और 'गुरुदक्षिणा' की परस्पर सम्बद्ध प्रक्रिया। शिष्य को गुरु पर सघन श्रद्धा का आरोपण करना होता है और गुरु शिष्य पर अपना अनुदान भरा वात्सल्य बखेरता है। दोनों एक-दूसरे के सहयोगी रहते हुए—हित साधना करते हुए—अपना-अपना कर्तव्यपालन करते एवं श्रेय सम्पादित करने में सफल होते हैं। उच्चस्तरीय व्यक्तित्व वाले गुरु के माध्यम से श्रद्धा को अधिक पैनी बना लेने वाले साधक उस चुम्बकत्व को परब्रह्म के निमित्त नियोजित करते हैं तो उससे भी वैसी ही उपलब्धियाँ आर्जित कर सकते हैं जैसी की शरीरधारी गुरु की अनुकम्पा प्राप्त की जा सकी।

भव्य भवन बनाने से पूर्व उसके नक्शे या मॉडल बनाने पड़ते हैं। मोर्चे पर लड़ने से पूर्व सैनिकों को छावनी में नकली लड़ाई लड़नी पड़ती है। लड़कियाँ गुड्डे-गुड़ियों का—चूल्हे चक्की का खेल-खेलकर भावी गृहस्थ संचालन की पूर्ण शिक्षा आरम्भ करती हैं। ब्रह्माण्डीय चेतना के—परब्रह्म के साथ किस आधार पर तादात्मय जोड़ा जाय, इसका एक मात्र उत्तर 'श्रद्धा विश्वास' है। श्रद्धा अर्थात् अनन्य आत्मीयता। विश्वास अर्थात् निर्देश अनुशासन का निष्ठापूर्वक परिपालन। यह दोनों शब्द हवाई नहीं हैं। कह देने या सुन लेने से कुछ बनता नहीं। अन्तराल को उत्कृष्टता के साथ अनन्य आत्मीयता स्थापित करने के लिए न केवल सहमत करना वरन् उसका अनुभव अभ्यास भी करना कठिन है। इसे आरम्भ में निराकार के लिए प्रयुक्त करना तो और भी दुस्तर हो जाता है। इसके लिए प्रत्यक्ष अभ्यास के लिए गुरु वरण की आवश्यकता पड़ती है। दैवी अनुशासन अपनाये बिना व्यक्तित्व का इस स्तर का बनना सम्भव नहीं, जिस पर ईश्वरीय अनुकम्पायें बरसें। कुसंस्कारिता को छाती से चिपकाये हुए पूजा उपचार के माध्यम से देवताओं की जेब काटने का कुचक्र रचने वाले आमतौर से निराश ही रहते हैं। अनुशासन की तपश्चर्या ही उस पात्रता को परिपक्व करती है जिसके आधार पर विश्वचेतना के भाण्डागार से कुछ कहने लायक उपलब्धियाँ हस्तगत हो सके। यह आदर्शवादी अनुशासन आरम्भिक साधकों को दैवी क्षेत्र से सीधे मिल सकें, ऐसा शक्य नहीं। इसलिए उसके लिए किसी मध्यवर्ती, प्रत्यक्ष, मार्गदर्शक एवं नियन्त्रण की जरूरत पड़ती है। यही कारण है कि ब्रह्म सम्बन्ध का श्रीगणेश गुरु सम्बन्ध बनाने के रूप में करना पड़ता है। आत्मिक प्रगति की यही सनातन परम्परा है।

आध्यात्मिक लक्ष्य और उसकी प्राप्ति

हमारा बाहरी जीवन अनेक भागों में विभक्त होता है, पर उसकी जड़ एक ही जगह रहती है। सारे शरीर में रक्त भ्रमण करता है पर उसका उद्गम हृदय स्थल ही होता है। आहार से पोषण सारी देह के सब अंगों का होता है पर उस आहार का पाचन संस्थान पेट ही तो है। पेट खराब हो जाये तो देह के किसी अंग को पोषन न मिलेगा। हृदय रुग्ण हो जाय तो रक्त संचार की व्यवस्था बिगड़ेगी और उसका प्रभाव सारे शरीर पर पड़ेगा। इसी प्रकार मानसिक स्तर में श्रेष्ठता या निकृष्टता की प्रधानता हो जाने पर तद्नुसार जीवन के समस्त भागों पर उसका प्रभाव पड़ता है। उत्कृष्टता एवं निकृष्टता की परिस्थितियाँ सामने उपस्थित होती हैं। अतएव इस तथ्य को हमें समझ ही लेना चाहिए कि बाहरी परिस्थितियों में सुधार या परिवर्तन करने की इच्छा रखने वाले को अपना आन्तरिक स्तर सुधारने के लिए सबसे पहले कदम उठाना चाहिए।

आध्यात्मिक, राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक, मानसिक शारीरिक विभागों मे बँटा हुआ जीवन अनेकों प्रकार की विभिन्न समस्याओं से आच्छादित रहता है। अगणित प्रश्न सामने उपस्थित रहते हैं और बहुत-सी उलझनें सुलझाने के लिए चिन्ता बनी रहती है। इसके लिए तरह-तरह के उपाय भी किये जाते हैं। कठिनाइयों को हल करने और सुविधाओं को

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उत्पन्न करने, असफलताओं से बचने और सफलताओं से लाभान्वित होने के लिए क्या नहीं करता। अपनी-अपनी शक्ति और सामर्थ्य के अनुसार हर कोई विपन्नताओं को हटाकर सम्पन्नता के लिए चेष्टा करता है, पर ये चेष्टाएँ तभी सफल होती हैं जब आन्तरिक स्तर में आवश्यक अनुकूलताएँ मौजूद हों। गुण कर्म स्वभाव के प्रतिकूल रहने पर अभीष्ट मनोरथ प्रायः सफल ही नहीं होते।

जीवन के किसी भी क्षेत्र पर दृष्टिपात करें, असफलताओं का एक मात्र कारण व्यक्ति की आन्तरिक दुर्बलतायें ही दिखायी देती हैं। आध्यात्मिक प्रगति के लिए अनेक लोग देर तक पूजा पाठ करते रहते हैं उनका विश्वास होता है अमुक कर्मकाण्ड या विधान को अमुक समय तक अपनाये रहने पर अमुक प्रकार की आध्यात्मिक सफलता मिल जायेगी पर उन्हें याद नहीं रहता कि इसके साथ ही एक भारी शर्त लगी हुई है अन्तःकरण की अनुकूलता। यदि यह शर्त पूरी न हुई तो पूजा का कष्टसाध्य एवं चिरसेवित साधन विधान भी अभीष्ट प्रतिफल उत्पन्न न कर सकेगा।

आध्यात्मिक साधन विधानों के सुविस्तृत प्रतिफल और आकर्षण विधान धर्मशास्त्रों में लिखे हुए मिलते हैं। प्राचीन काल के ऐसे अगणित उदाहरण मिलते हैं जिनमें उन साधनाओं को अपनाकर साधकों ने आश्चर्यजनक लाभ प्राप्त किये हैं। अब भी ऐसे अगणित व्यक्ति मौजूद हैं जिनकी साधना ने उन्हें उच्च स्थिति तक पहुँचाया है। इन उदाहरणों को देखते हुए यह विश्वास करना ही पड़ता है कि साधनाओं का जीवन में अत्यधिक महत्त्व है और उनके सहारे प्रगति की मंजिल तेजी से पूरी की जा सकती है। इतना होने पर भी जब ऐसे उदाहरण सामने आते हैं कि अमुक व्यक्ति लम्बे समय से अमुक साधना करते रहने पर भी कुछ प्रगति न कर सका वरन् पहले की अपेक्षा और भी हीन स्थिति को पहुँच गया तो उसका कारण तलाश करते हुए भारी असमंजस उत्पन्न होता है। किसी को भारी लाभ, किसी की उलटी अवनति, इस परस्पर विरोधी परिणाम का हेतु सोचते नहीं बनता, सूझ नहीं पड़ता।

वस्तु स्थिति यह है कि एक व्यक्ति उच्च भावना स्तर के साथ, शुद्ध चरित्र के साथ, श्रद्धा और विश्वास के साथ, एकाग्रता और निष्ठा के साथ साधनाक्रम में संलग्न होता है। उसे अपने लक्ष्य की वास्तविकता पर पूर्ण विश्वास है। साधना की महत्ता और शक्ति के प्रति अटूट श्रद्धा धारण किये हुए हैं। इष्ट की प्राप्ति के लिए प्राणप्रण से लगा हुआ है। जो नियम संयम आवश्यक हैं उन्हें बिना संकोच के पालन करता है। सत्प्रयत्नों की तुलना में प्रस्तुत कठिनाइयों को तुच्छ समझता है। अहर्निशि गन्तव्य पथ का ही ध्यान रखता है और अकथ प्रयत्न के साथ, धैर्य और साहस के साथ कदम बढ़ाता चलता है। फल कब मिलेगा यह सोचता भी नहीं वरन् साधना को ही इतनी प्रिय बना लेता है कि वह स्वयं एक वरदान प्रतीत होती है। भावना की उत्कृष्टता से प्राप्त होने वाली प्रसन्नता एवं आत्मतृप्ति को ही वह एक महत्त्वपूर्ण सिद्धि मान लेता है। इस मनोभूमि के साधक के लिए सिद्धि सुनिश्चित है। उसके प्रयत्न असफल हो ही नहीं सकते। इसी मनोभूमि के व्यक्तियों ने आध्यात्मिक जीवन का आनन्द लिया है और अपने सत्प्रयत्नों का समुचित लाभ पाया है।

इसके विपरीत दूसरी उथली मनोभूमि के साधक जप, भजन, ध्यान, पाठ, व्रत उपवास करते तो हैं पर वह सब होता आधे मन से है। इन प्रयत्नों का सत्परिणाम मिलेगा भी या नहीं, इस सम्बन्ध में मन में सदा शंका और अविश्वास बना रहता है। न नियमितता रहती है और न निष्ठा। जब जो जितना बन पड़ा किया, न हो सका तो छोड़ दिया। जिन नियम संयमों का पालन आत्मबल की वृद्धि के लिए आवश्यक है उनके बारे में मन नाना प्रकार के कुतर्क करता रहता है। इस झंझट की क्या जरूरत ? यह अड़ंगा बेकार का है ? इन विधि-विधानों से क्या लाभ ? आदि कतर-व्योंत करने कराने से बेचारी साधना पद्धति को ही लँगड़ी, लूली, कानी, नकटी बना लेते हैं। उस पर भी मन नहीं जमता। श्रद्धा और विश्वास के अभाव में बेगार की तरह ही इस भार को उतारा जाता है। दस दिन होने नहीं पाते कि पर्वत के समान कामनाओं की पूर्ति का वरदान और अष्ट सिद्धि, नव निधि की ललक बेचैनी का रूप धारण कर लेती है। अभी यह नहीं मिला, अभी वह नहीं मिला, अभी कुण्डलिनी जागृत नहीं हुई, अभी भगवान के दर्शन भी नहीं हो पाये। इतने दिन तो हो गये अब कब तक सब करें आदि बातें सोचने लगते हैं। असंतोष बढ़ता है साथ ही अविश्वास भी। उपेक्षा आरम्भ होती है और उसका अन्त साधना के परित्याग रूप में देखा जाता है।

जिनका दैनिक जीवन पाप, द्वेष, दुराचार, दुष्टता और अनीति में डूबा रहता है, कुविचारों से जिनका मन और कुकर्मों से जिनका शरीर निरन्तर दूषित बना रहता है, उनका अन्तःकरण भी गंदा रहेगा और उस गन्दगी में दिव्य तत्त्वों का अवतरण कैसे सम्भव हो सकेगा ? साधना में शक्ति तब आती है जब श्रद्धा और विश्वास, संयम और सदाचार का पुट भी समुचित मात्रा में लगता चले। दैनिक जीवन की पवित्रता ही इस बात की कसौटी है कि किसी व्यक्ति ने अत्यधिक तत्वज्ञान को हृदयंगम किया है या नहीं। यह निष्ठा जिसके भीतर उतरेगी, उसके गुण, कर्म, स्वभाव में श्रेष्ठता एवं सज्जनता की मात्रा अन्य व्यक्तियों की तुलना में बढ़ी-चढ़ी ही होगी। ऐसा पवित्र और आदर्श जीवन बिताने वाले के लिए आत्मिक प्रगति नितान्त सरल है। ईश्वर का दर्शन, आत्म-साक्षात्कार उसके लिए जरा भी कठिन नहीं है।

इतिहास, पुराणों में ऐसी अगणित कथाएँ आती हैं जिनसे प्रतीत होता है कि सदाचारी श्रेष्ठ आचरणों वाले और उत्कृष्ट भावना सम्पन्न साधारण श्रेणी के, साधारण साधना करने वाले व्यक्तियों को योगी यती, तपस्वी और ब्रह्मज्ञानी लोगों की भाँति ही ईश्वरी अनुकम्पा एवं अनुभूति का अनुभव हुआ है। कारण स्पष्ट है कि योग साधना का उद्देश्य केवल इतना ही है कि आन्तरिक दुष्प्रवृत्तियों का शमन और संयम किया जाये। चित्त वृत्तियों के निरोध को ही महर्षि पातंजलि ने योग कह कर पुकारा है। यह कार्य व्यवहार के जीवन में सत्य निष्ठा और परमार्थ बुद्धि को स्थान देने से भी सम्भव हो सकता है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

शबरी, सूर, मीरा, कबीर, रैदास, केवट, गोपियाँ, नरसी, धन्ना आदि के ऐसे असंख्यों चरित्र मौजूद हैं जिन पर विचार करने से प्रतीत होता है कि भावपूर्ण उत्कृष्ट अन्तःकरण का निर्माण योगाभ्यास के अतिरिक्त व्यावहारिक जीवन को शुद्ध रखने से भी सम्भव हो सकता है। उच्च अन्तरात्मा द्वारा की हुई स्वल्प एवं अविधिपूर्वक की गई साधना भी भारी सत्परिणाम प्रस्तुत कर सकती हैं। वाल्मीकि डाकू की मनोभूमि जब पलटी तो शुद्ध राम नाम ले सकने में असमर्थ होने पर 'मरा-मरा' कहते हुए, उल्टा नाम जपते हुए भी वे ऋषित्व को प्राप्त कर सके। सदन कसाई, गणिका, अजामिल, अंगुलिमाल, अम्बपाली आदि अनेकों चरित्र ऐसे मौजूद हैं जिनमें अन्तःकरण के परिवर्तन होते ही स्वल्प साधना से भी उच्च स्थिति की उपलब्धि का प्रमाण मिलता है।

देर तक कठोर शारीरिक तपश्चर्याएँ करने पर भी, बहुत पूजा उपासना करते रहने पर भी जब आत्मिक प्रगति नहीं देख पड़ती तो उसका एक मात्र कारण यही होता है कि अन्तःकरण के विकास का प्रयत्न नहीं किया गया, केवल पूजा तक ही साधना को एकांगी एवं सीमित रखा गया। साधना को औषधि कहा जाय तो सदाचार को पथ्य मानना पड़ेगा। परहेज बिगाड़ते रहने वाला, कुपथ्य करने वाला रोगी, अच्छी औषधि खाते रहने पर भी कुछ लाभ प्राप्त न कर सकेगा। पर यदि पथ्य पूर्वक रहा जाय तो मामूली औषधि से भी रोग दूर हो सकता है। भजन के साथ परमार्थ प्रियता भी आवश्यक है। भावनाओं की उत्कृष्ट स्थिति और चरित्र में आदर्शवाद की प्रक्रिया यदि परिपूर्ण रहे तो फिर साधन के असफल होने का कोई कारण नहीं हो सकता।

स्वर्ग किसी स्थान का नाम नहीं, भावना की उत्कृष्ट भूमिका को ही स्वर्ग कहते हैं। ऊँची भावनाएँ जिस अन्तःकरण में प्रवेश पा चुकी हैं उसके लिए हर पदार्थ, हर प्राणी, हर अवसर स्वर्गीय आनन्द को अनुभूति प्रस्तुत करेगा। मुक्ति का अर्थ है वासनाओं और तृष्णाओं के बंधनों से छुटकारा पाना और पशुता से दूर होना। स्वार्थ और संकीर्णता को जिसने ठुकरा दिया वह जीवन मुक्त हो गया। मुक्ति का आनन्द शरीर रहते हुए भी प्राप्त किया जा सकता है, सद्गति के रूप में वह मरने के बाद भी प्राप्त होता है। जीवन को जो बन्धन बाँधे हुए हैं वह काम क्रोध, लोभ मोह, मद मत्सर के ही तो हैं। इन्हें तोड़ते हुए मनोभूमि को उदार, विशाल, पवित्र एवं उत्कृष्ट बना लेना, मुक्ति का साधन है। जिस किसी को भी मुक्ति मिली है उसे आत्मशोधन ही करना पड़ा है।

ईश्वर सर्वव्यापी है। विश्व के कण-कण में वह समाया हुआ है उसे देखने या प्राप्त करने के लिए कहीं दूर देश में जाना नहीं पड़ता। जो मलीनताएँ जीव और ईश्वर के बीच में दीवार बन कर खड़ी हैं यदि उन्हें गिरा दिया जाये तो अत्यन्त निकट निवास करने वाले परमात्मा का दर्शन तत्काल हो सकता है। विवेक की आँखों से हम उसे हर वस्तु में श्रेष्ठता, जीवन एवं सौन्दर्य रूप में निहार सकते हैं। सत्चित्त आनन्द स्वरूप परमात्मा सत्य शिव और सुन्दर अनुभूतियों में सहज ही हमें परिलक्षित हो सकता है। इसके लिए हमें अपना ही अज्ञान हटाना और अपना ही ज्ञान जाग्रत करना है। मलीनताओं के हटते ही अपना इष्टदेव अपने चारों ओर थिरकता हुआ, अपनी अन्तरात्मा में रास रचाता हुआ, परमानन्द की नित्य अनुभूतियों के साथ हमारे सामने आ उपस्थित होता है, उसे बाहर ढूँढ़ने जाने की कोई आवश्यकता नहीं पड़ती।

आध्यात्मिक लक्ष्य की पूर्ति किसी के लिए भी कठिन नहीं है, अपना भीतर सुधार करने पर वे सब साधन सहज ही जुट जाते हैं जिनके आधार स्वर्गानुभूति जीवनमुक्ति, शान्ति, सद्गति, सिद्धि एवं ईश्वर प्राप्ति को विभूतियाँ उपलब्ध हो सकें।

ईश्वर प्राप्ति के दस वेदोक्त साधन

साधना की सबसे बड़ी उपलब्धि ईश्वर प्राप्ति है क्योंकि जब तक मनुष्य की रुचि ईश्वर के प्रति आकर्षित नहीं होती तब तक वह सच्चे सुख और शांति से वंचित ही रहता है। इस सम्बन्ध में वैदिक साहित्य में इस प्रकार के साधनों का उल्लेख मिलता है।

(१) **उद्गीथ विद्या**—मुक्ति का सर्वप्रधान साधन ज्ञान है। इसके बिना मनुष्य को धर्म का स्वरूप और विधि ज्ञान नहीं होती और इसलिये यह परमात्मा को भी प्राप्त नहीं कर सकता। इसका सबसे सीधा उपाय ॐ अथवा प्रवण द्वारा परमात्मा का ध्यान करना है। यही परमात्मा का सर्वश्रेष्ठ नाम है इसी से प्रणव को उद्गीथ कहते हैं। प्राचीन ऋषियों ने इस अक्षर को अविनाशी बतलाया है। पृथ्वी सब प्राणियों को धारण करती है, वही प्राणियों का आश्रम है। उसका सार है जल। जल ने ही औषधियों में सार तत्त्व उत्पन्न किया है। उसी से मनुष्य फिर पुष्ट होते हैं। मनुष्य में सबसे महत्व की वस्तु है वाक् (बोली)। उसमें ऋक् और साम यथार्थ तत्व है उनका सार ॐ है। शक्ति अथवा अर्थ के ध्यान से इससे बढ़कर ईश्वर का दूसरा नाम नहीं है। छान्दोग्य में कहा गया है "स रसानां रसतमः।" इसके उच्चारण के समय वाक् और प्राण में एकता उत्पन्न होती है। इससे जप करने वालों के सब मनोरथ पूर्ण होते हैं।

(२) **संवर्ग विद्या**—इसका अर्थ होता है ग्रहण कर लेना अथवा ग्रास कर लेना। अग्नि बुझने पर क्या हो जाता है ? सूर्य चन्द्रमा अस्त होने पर कहाँ रहते हैं, इसका उत्तर यही है कि ये वायु से अस्त हो जाते हैं, अर्थात् इन पर वायु का आवरण पड़ जाता है। जल भी वायु में लीन हो जाता है। सुषुप्ति के समय वाणी, आँख और कान तथा मन, प्राण में ही व्याप्त रहते हैं। उस समय केवल श्वास (प्राण वायु) चलता रहता है इस क्रिया को प्राण में इन्द्रियों का संवर्ग कहा होता है, पर प्राण और वायु का संवर्ग कहा जाता है। इनका संवर्ग परमात्मा है। इस बात का आन्तरिक ज्ञान जिसे हो जाता है वह परमात्मा को प्राप्त करने में समर्थ बनता है। वह परमात्मा कैसा है—"जो सबको खाता है, जिसे कोई नहीं खा सकता, जिसमें सब लीन हो जाते हैं और जो किसी में लीन नहीं होता, वही महामहिमशाली ब्रह्म है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

(३) **मधु विद्या**—माधुर्य प्रत्येक प्राणी को पसन्द होता है '**मधु विद्या**' में मधु शब्द मीठेपन का ही द्योतक है। मनुष्य जाति का सर्वश्रेष्ठ खाद्य मीठा दूध है। परमात्मा उससे भी कहीं अधिक माधुर्यशाली है। उसी माधुर्य की प्राप्ति सूर्य के द्वारा हो सकती है, क्योंकि सूर्य खट्टे पदार्थों को पका देता है। इसी आधार पर उपनिषद् में सूर्य को देवताओं का मधु कहा गया है। पृथ्वी पर मधु का छत्ता किसी लकड़ी आदि में लगता है। सबसे ऊपर का द्युलोक इसके लिये आश्रय है। अंतरिक्ष छत्ता है और सूर्य रश्मियाँ मधु मधुमक्खियों की पंक्ति। चारों वेदों के अनुसार किए हुए कर्म पुष्प पराग हैं, उनसे अमृत स्वरूप मोक्ष, जो कि मधु है, उत्पन्न होता है। कर्मप्रवर्तक सूर्य ही मुख्य रूप से मधु है और उसकी उपासना करने से परम मधु की प्राप्ति सहज हो जाती है—"**असौ वा आदित्यो देव मधु ..... वेदा ह्यमृतास्तेषामेतान्य भृतानि।**"

(४) **पंचाग्नि विद्या**—शास्त्रों में कहा गया है कि जो लोग उत्तरायण सूर्य में शरीर त्याग करते हैं वे मुक्त हो जाते हैं और दक्षिणायन में करते हैं वे संसार में फिर जन्म ग्रहण करते हैं। उत्तरायण का अर्थ ज्ञानमार्ग है और दक्षिणायन का कर्ममार्ग। ज्ञानमार्ग की अभिलाषा रखने वाले को पंचाग्न विद्या का पूर्ण परिचय होना चाहिये। इसका रहस्य उपनिषद् में इस प्रकार बतलाया गया है—

"यह लोक अग्नि है, इसको प्रज्वलित करने के लिये सूर्य लकड़ी है। उसकी किरणें धूम हैं, दिन ज्वाला है। इस अग्नि में देवता लोग श्रद्धा रूपी 'हवि' का हवन करते हैं। इस हवन से सोम की उत्पत्ति होती है। इसमें श्रद्धा जल स्वरूप है। अतएव देवता मेघ (जल) रूप अग्नि में सोम (चन्द्रमा) को, लोक रूप अग्नि में वृष्टि को और पुरुष रूप अग्नि में वृष्टि से उत्पन्न अन्न को जलाते हैं। इससे वीर्य उत्पन्न होता है जिसका हवन स्त्री रूप में अग्नि में होता है। इस प्रकार मनुष्यों की उत्पत्ति में मेघ, लोक, पुरुष और स्त्री कारण है। पुरुष और स्त्री को चिता की अग्नि जला देती है। यही पाँच अग्नियाँ हैं। इन पाँचों में परमात्मा व्याप्त हैं। इनके द्वारा जो परमात्मा को जानता है वह नित्यमुक्त हो जाता है। कहा गया है कि इस पंचाग्नि विद्या का ज्ञाता पुनरावृत्ति विहीन मुक्ति को प्राप्त होता है—"**पुरुषो मानस एत्य ब्रह्म लोकान् गमयति ते तेषुः ब्रह्मलोकेषु पराः परावतोः वसन्ति तेषां न पुनरावृत्तिः॥ (वृहदारण्यक)**

(५) **उपकोसल की आत्मविद्या**—उपकोसल, सत्यकाम जावालि के पास बहुत समय तक शिष्य भाव से रहा परन्तु महर्षि ने उसे ब्रह्मविद्या का उपदेश नहीं दिया। गुरु के बाहर चले जाने पर उपकोसल ने मानसिक व्यथा से पीड़ित हो भोजन और भाषण का परित्याग कर दिया। इस पर सत्यकाम की अग्नियों ने उसे उपदेश दिया। "**प्राणो ब्रह्म, कं ब्रह्म, खं ब्रह्म।**" इस पर यह सन्देह होता है कि प्राणवायु जो अचेतन है, क अर्थात् सुख जो परिमित है और ख अर्थात् आकाश जो शून्य है ये भला ब्रह्म कैसे हो सकते हैं ? पर इस वचन का अभिप्राय कुछ गूढ़ है। इसका आशय यह है कि जिस परमात्मा के बल-प्राण अपना कार्य करते हैं, यह आकाश के समान व्यापक और असीम आनन्द स्वरूप है। जो ईश्वर को इस रूप में समझता है उसकी उपासना सफल होती है।

(६) **शाण्डिल्य विद्या**—महर्षि शाण्डिल्य ने कहा है कि परमात्मा का मुख्य गुण करुणा है—"**मुख्य हि तस्य कारुण्यम्**" (शाण्डिल्य सूत्र)। उनका मत है कि समस्त ब्रह्माण्ड ब्रह्म है, यही भावना उपासना में रखनी चाहिये। इसका कारण यह है परमात्मा 'तज्जलान्' है। अर्थात् यह संसार उसी से उत्पन्न होता है उसी में लय होता है और उसी से प्रतिपालित होता है। पुरुष की जैसी भावना होगी वैसी ही उसकी गति होगी। यदि हम परमात्मा की भक्ति करके उसी का आश्रय लें तो अवश्य उसे प्राप्त कर सकते हैं—"**सर्व खल्विदं ब्रह्म तज्जलानिति शान्त उपासीत ..... ।**"

(७) **दहर विद्या**—जैसे इस लोक में पुरुषार्थ से पैदा की हुई सम्पत्ति नष्ट हो जाती है, वैसे ही पुण्यबल से उपार्जित उत्तमोत्तम पारलौकिक सुख नष्ट हो जाता है। जिसे परमात्मा का ज्ञान हो गया है। उसके सुख नित्य होते हैं। वे कभी नष्ट नहीं होते। परमात्मा का ज्ञान उपासना के बिना नहीं होता। उपासना का अर्थ है समीप रहना, पर जिसका कोई पता ठिकाना ही नहीं उसके समीप कोई कैसे रह सकता है ? शास्त्र कहते हैं "मनुष्य शरीर ही ब्रह्मपुर है, उसका दहर (हृदय कमल) भगवान का निवास स्थान है, उसमें भगवान को खोजो। उसमें रहते हुये भी भगवान शरीर के धर्मों का स्पर्श नहीं करते। जरा, मृत्यु, क्षुधा, पिपास, उनका स्पर्श नहीं कर सकती। बाहर की अभिलाषाएँ वहाँ पूर्ण रहती हैं। कोई दुख शोक नहीं सताता—

"**यदिदमस्मि न ब्रह्मपुरे दहरे पुण्डरीकं वेश्मदहरोऽस्मिन्नन्तरा काशस्तस्मिन् यदन्तस्तदन्वेष्टव्यम्।**"

(८) **भूमिविद्या**—जगत के प्राणी जो कुछ करते हैं उसका उद्देश्य सुख है। सुख की जानकारी के बिना सुख नहीं हो सकता। सब से महान वस्तु ईश्वर है, वही सुख है। उसका स्वरूप आनन्दमय है—"**आनन्दो ब्रह्मणो रूपम्।**" यहाँ एक बात विचारने योग्य है कि जगत में बहुत कुछ खाते-पीते, देखते-सुनते हैं, परन्तु तृप्ति नहीं होती, इसका कारण क्या है ? कारण यही है कि जगत की वस्तुएँ परिमित हैं अल्प हैं। परमात्मा सब से बड़ा है—असीम है, उसके प्राप्त हो जाने पर दूसरे किसी पदार्थ की इच्छा नहीं रहती, पूर्णता आ जाती है। सब वस्तुएँ विनाशशील हैं, केवल परमात्मा ही अमृत स्वरूप भूमा (अनन्त) है—"**यो वै भूमा तत्सुखं नान्ये सुखंमस्ति भूमैव सुखम्।**" **(छान्दोग्य)**

(९) **दीर्घायुष्य विद्या**—जो मनुष्य चौबीस, चवालीस अथवा अड़तालीस वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचर्य का पालन करके यज्ञादि करते हैं, वे निरोग रहते हुये सौ वर्ष पर्यन्त जीवित रहते हैं। जो ब्रह्मज्ञानी उपासक हैं उनकी मृत्यु उनकी इच्छा के अधीन रहती है। छान्दोग्य उपनिषद् में कहा गया है कि महिदास नाम के एक ज्ञानी सौलह सौ वर्ष तक जीवित रहे "**एतद्ध स्म वै तद्विद्वनाह महिदास ऐतरेय ..... स ह षोडसवर्ष शतम जीवत्**" इस प्रकार ज्ञानी जन बहुत काल तक जीवित रहकर परमात्मा की उपासना करने में समर्थ होते हैं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

(१०) **मन्त्र विधा**—सिद्ध अथवा शरणागति प्राप्त हो जाने पर धन की आवश्यकता नहीं रहती। परन्तु साधनावस्था में उसकी आवश्यकता होती है। इसके लिये मन्याख्य कर्म किया जाता है, जिससे धन प्राप्त होता है। उस कर्म में ईश्वर से प्रार्थना की जाती है कि "हे अग्नि स्वरूप देव भगवन् सब देवता विपरीत होकर मेरी सफलताओं को नष्ट कर देते हैं। मैं उनकी तृप्ति के लिये आहुति देता हूँ।" किसी अच्छे मुहूर्त में केवल दुग्ध पर रह कर कुशकण्डिका करे तथा औषधियों और फलों से हवन करे। वृहदारण्यक उपनिषद् के अनुसार "**ज्येष्ठाय स्वाहा, श्रेष्ठाय स्वाहा**" इत्यादि मंत्रों से आहुति देने से मनोरथ पूर्ण होते हैं। इस प्रकार ये दस प्रकार के साधन मार्ग साधक को परमात्मा की प्राप्ति में समर्थ बनाते हैं। प्रायः लोग योग साधना को ही प्रमुखता देते हैं, पर उसका सही मर्म न जान पाने के कारण उसके फलितार्थों से वंचित ही बने रहते हैं।

योग का अर्थ है 'जोड़ना—मिलना' मनुष्य की साधारण स्थिति ऐसी होती है जिसमें वह अपूर्ण होता है इस अपूर्णता को मिटाने के लिए वह किसी दूसरी शक्ति के साथ अपने आपको जोड़कर अधिक शक्ति का संचय करता है, अपनी सामर्थ्य बढ़ाता है और उस सामर्थ्य के बल से अपूर्णता को दूर कर पूर्णता की ओर तीव्रगति से बढ़ता जाता है, यही योग का उद्देश्य है। उस उद्देश्य की पूर्त्ति के लिये हठयोग, राजयोग, जपयोग, लययोग, तन्त्र योग, भक्तियोग, ज्ञानयोग, कर्मयोग, स्वरयोग, ऋजुयोग, सहयोग, कुंडलिनीयोग बुद्धियोग, समत्वयोग, प्राणयोग, ध्यानयोग, सांख्ययोग, जड़योग, सूर्ययोग, चन्द्रयोग, सहजयोग, प्रणवयोग, नित्ययोग आदि ८४ प्रसिद्ध योग और ७०० अप्रसिद्ध योग हैं, इन विभिन्न योगों की कार्यप्रणाली, विधि व्यवस्था और साधना पद्धति एक-दूसरे से बिल्कुल भिन्न हैं तो भी इन सबकी जड़ में एक ही तथ्य काम कर रहा है। माध्यम सबके अलग-अलग हैं पर उन सभी माध्यमों द्वारा एक ही तत्व ग्रहण किया जाता है तुच्छता से महानता की ओर, अपूर्णता से पूर्णता की ओर, असत् से सत् की ओर, तम से प्रकाश की ओर, मृत्यु से अमृत की ओर, जो प्रगति होती है उसी का नाम योग है। आत्मा को परम आत्मा बनाने का प्रयत्न ही योग है। यह प्रयत्न जिन-जिन मार्गों से होता है उन्हें योग मार्ग कहते हैं।

एक स्थान तक पहुँचने के लिये विभिन्न दिशाओं से विभिन्न मार्ग होते हैं, आत्मविस्तार के भी अनेक मार्ग हैं इन मार्गों में स्थल से भिन्नता होते हुये भी सूक्ष्म दृष्टि से पूर्ण रूपेण एकता है। जैसे भूख बुझाने के लिये कोई रोटी, कोई चावल, कोई दलिया, कोई मिठाई, कोई फल, कोई माँस खाता है। यह सब चीजें एक-दूसरे से बिल्कुल पृथक् प्रकार की हैं तो भी इन सबसे 'भूख मिटाना' यह एक ही उद्देश्य पूर्ण होता है। इसी प्रकार योग के नाना रूपों का एक ही प्रयोजन है—आत्म भाव को विस्तृत करना—तुच्छता को महानता की पूँछ के साथ बाँध देना।

अष्टांग योग नाम से जाना जाने वाला राजयोग यों स्थूल क्रियाकृत्यों के साथ भी जुड़ा हुआ है, पर उनका वास्तविक उद्देश्य चेतना के अन्तरंग क्षेत्र को पवित्र एवं प्रखर बनाना है। शारीरिक क्रियाकलापों का भी यों चेतना पर प्रभाव पड़ता है, पर साथ में सिद्धान्तों, आदर्शों का उसके साथ सघन समन्वय भी होना चाहिए। यदि उसकी उपेक्षा की जाये और मात्र कर्मकाण्डों को ही सब कुछ मान लिया जाये तो उतने भर से अभीष्ट की प्राप्ति नहीं हो सकती।

शरीर का अपना महत्व है उसके क्रियाकलापों का भी। इतने पर भी यह मानना पड़ेगा कि अध्यात्म क्षेत्र में क्रिया की अपेक्षा भावना का महत्व असंख्य गुना अधिक है। भावनाविहीन भक्ति का कोई मूल्य नहीं। देव प्रतिमाएँ बनती तो धातु पाषाण जड़ पदार्थों की हैं, पर उनमें चेतना का समावेश भक्त की सघन श्रद्धा के अनुरूप होता है। यदि श्रद्धा न हो, तो वे दुकानों पर रखे खिलौनों से बढ़कर और कोई अतिरिक्त प्रभाव दिखाने में समर्थ नहीं होते। यही बात मंत्र, अनुष्ठान, पूजन, अर्चन आदि के सम्बन्ध में भी है। उनकी शक्ति-सामर्थ्य उसी अनुपात से घटती-बढ़ती रहती है, जैसी कि उपासक की भावना गहरी-उथली होती है। आध्यात्मिक साधनाओं में से प्रत्येक का यही स्वरूप एवं यही प्रतिफल है। जो मात्र कर्मकाण्डों को ही साधना मान बैठते हैं, वे भूल करते हैं। शारीरिक अथवा पदार्थ परक क्रियाकृत्यों का मूल्य नगण्य ही होता है। श्रमिक दिन भर काम करके थोड़ा-सा पारिश्रमिक पाते हैं, फिर कुछ समय तक किये जाने वाले जप-ध्यान आदि का कोई बड़ा माहात्म्य का मूल्य कैसे हो सकता है ? इतने पर भी जिनका यही आग्रह है कि अमुक जप या पूजन का असाधारण महत्व होना चाहिए, उतने भर से बढ़ी-चढ़ी सिद्धियाँ मिलनी चाहिये, उनकी मान्यता फलीभूत नहीं होती। उन्हें निराश ही रहना पड़ता है। आशा के अनुरूप फल तो श्रद्धासिक्त भावना ही प्रदान करती है।

राजयोग की सभी साधनाओं के सम्बन्ध में यही बात है। यम-नियम जीवन के चिन्तन-चरित्र एवं आचरण में उतारने पड़ते हैं। आसन व्यायाम नहीं, वरन् आसन जमा कर बैठना है। रसोई भी आसन पर बैठकर की जाती है। बोलचाल की भाषा में किसी कार्य के लिए दृढ़तापूर्वक आरूढ़ होना भी आसन लगाना या आसन जमाना है। प्राणायाम प्राणवान बनने के लिए किया जाता है। प्राणवान् अर्थात् मनस्वी-मनोबल सम्पन्न।

इसी प्रकार प्रत्याहार को संघर्षशीलता कहते हैं। गीता में अर्जुन को जिस युद्ध के लिए प्रेरित किया गया है, वह वस्तुतः आत्मिक क्षेत्र का युद्ध ही है। मारकाट वाली लड़ाई के लिए गीता जैसे आत्मिक प्रवचन की आवश्यकता नहीं थी। वह प्रत्याहार ही हैं, जिसे गीतोक्त महाभारत नाम दिया गया है। यह धर्मक्षेत्र-कर्मक्षेत्र में लड़ा जाता है। संचित कुसंस्कारों एवं हेय प्रचलनों के आकर्षणों दवाबों को अस्वीकार करना ही प्रत्याहार है।

अब तीन प्रयोग और शेष रहते हैं धारणा, ध्यान और समाधि। धारणा का तात्पर्य है—मान्यता, स्थापना, स्वीकृति, निष्ठा। आदर्शों के विषय में यही तथ्य लागू होता है। आदर्शों को तर्क और तथ्य के आधार पर तो सहज ही स्वीकारा जा सकता है, पर जिस आदर्श को श्रद्धा, प्रज्ञा, निष्ठा के आधार पर

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

हृदयंगम किया गया हो, फलित केवल वहीं होता है। आस्तिकता, आध्यात्मिकता, धार्मिकता के त्रिविध आदर्श प्रमुख हैं। ईश्वर पर विश्वास, आत्मक्षमता पर विश्वास, कर्त्तव्य कर्मों के दायित्व पर विश्वास—इन तीनों के विश्वास को धारणा कहते हैं यों साधारणतया किन्हीं देवी-देवताओं, मंत्रों, गुरुजनों, शास्त्रों, पंथों आदि पर विश्वास करना भी धारणा के अर्थ में प्रयुक्त होता है। एक शब्द में धारणा को विश्वास भी कह सकते हैं।

ध्यान का तात्पर्य है—अभीष्ट निर्धारण का बार-बार चिन्तन करना। इससे मान्यता परिपक्व होती है। भूली हुई बातों का स्मरण भी ध्यान के आधार पर हो आता है। अपने आदर्श का, लक्ष्य का, निश्चय का बार-बार स्मरण करने से वह आस्था के रूप में परिणत हो जाता है। यों किसी चित्र का, प्रतिमा का, व्यक्ति का, कल्पना-सपनों का इच्छानुसार ध्यान किया जाता है। नाद योग में शब्दों का, मेरुदण्ड में षटचक्रों का, मस्तिष्क में ब्रह्मकमल का, मूलाधार में कुण्डलिनी का ध्यान किया जा सकता है। मस्तिष्क में ब्रह्मग्रन्थि, हृदय में विष्णुग्रंथि, नाभि में रुद्रग्रंथि के ध्यान का विधान है। श्वास-प्रश्वास के समय सोऽहम् ध्वनि की, ध्यान-धारणा की जाती है। इसी प्रकार और भी योग सम्प्रदायों में कई-कई प्रकार के ध्यानों का निर्धारण है, विचार-चेतना को केन्द्रीभूत करने की साधना है। इन्हीं माध्यमों से मन एकाग्र होता है, बिखरी शक्तियों के केन्द्रीकरण का चमत्कार दृष्टिगोचर होता है।

अष्टांग योग की अन्तिम स्थिति है—समाधि। उसके दो पक्ष हैं—एक सविकल्प समाधि, दूसरी निर्विकल्प समाधि। सविकल्प में चिन्तन बना रहता है और निर्विकल्प में चेतना शून्य स्थिति आ जाती है।

समस्त शरीर पर मस्तिष्क अपना अधिकार जमाये हुए है। इच्छाशक्ति के साथ सुदृढ़ संकल्प करके योगीजन शरीर के किसी भी अवयव को मंद गति शिथिल एवं अवरूद्ध कर देते हैं। देखा गया है कि इस मार्ग में क्रियाकुशल साधक हृदय की धड़कन बन्द कर देते हैं, रक्त प्रवाह और श्वास-प्रश्वास का क्रम अवरुद्ध कर देते हैं। प्राण ब्रह्माण्ड में चढ़ जाता है, तो काया निश्चेष्ट हो जाता है। यों इस स्थिति में भी जीवन बना रहता है। शरीर को सुरक्षित रखकर मनःचेतना को लक्ष्य पर केन्द्रीभूत कर दिया जाता है। ऐसी स्थिति आने पर भूमि समाधि भी ली जा सकती है। कई लेते खतरा भी है, पर वस्तुतः इसकी आवश्यकता नहीं है। मात्र प्रचार विज्ञापन होता है, जिससे साधक का लक्ष्य की तन्मयता से ध्यान बँटता है और ब्रह्मपरायणता का प्रयोजन दूर हटता जाता है। इस निर्विकल्प समाधि में भी हैं। यदि प्राण को ब्रह्माण्ड में बढ़ा तो लिया जाये, पर उतारना सम्भव न हो सके, तो उससे प्राण-हानि होने का संकट उत्पन्न हो जाता है। सविकल्प समाधि ही जोखिम से रहित है। उसमें बिना मार्गदर्शक के भी क्रमशः एकाग्रता परिपक्व की जाती रहती है और एक दिन ऐसी स्थिति आ जाती है कि चित्त संसार प्रयोजनों से विरत होकर परमात्मा सत्ता के साथ तादात्म्य स्थापित कर ले।

लौकिक जीवन को पारलौकिक, पारमार्थिक बना लेना भी समाधि है। आत्मा को ईश्वर के अंश रूप में देखना-संसार के प्रति विराट ब्रह्म की मान्यता रखना और क्रियाकलापों को ऐसा बना लेना कि वे स्वार्थ पूर्ति के लिए नहीं, परमार्थ प्रयोजन की पूर्त्ति के लिए किये जा रहे हैं तो इसे भी समाधि का ही एक अन्य रूप कहा जा सकता है। आत्मसत्ता के स्वरूप, प्रयोजन एवं उपयोग के सम्बन्ध में तत्वदर्शी ज्ञान भूमिका का रहना समाधि भावना का ही एक स्वरूप है। अपने को ईश्वर का अंश-युवराज मानना-चरित्र चिन्तन और व्यवहार को उच्चस्तरीय रखना, गतिविधियों को विश्वउद्यान को समुन्नत बनाने में लगाये रहना, प्रकारान्तर से समाधि अवस्था ही है। सम्यक + धी = समाधि। बुद्धितत्व को दूरदर्शी विवेकशीलता में नियोजित रखे रहना है, ऋतम्भरा प्रज्ञा है। इसी को भूमा या तुर्या कहते हैं। योगी-तपस्वी इसी स्थिति में अपनी चेतना को बनाये रहते हैं। यद्यपि शरीर धर्म के अनुरूप नित्यकर्मों की निर्वाह व्यवस्था की गतिविधियों उन्हे भी सामान्य जनों की तरह सम्पन्न करनी पड़ती हैं। शरीर जब तक जीवित है तब तक उसके लिए निर्वाह साधन तो जुटाने ही पड़ेंगे, पर राजयोग का योगी अपनी आत्मिक बिशिष्टता को बनाये रहता है और समाधि लाभ सहित विभूतिवान जीवन जीता है।

साध्य, साधना और साधक

साध्य, साधना और साधक इन तीनों की संगति है। तीनों के समन्वय से एक पूरी बात बनती है।

साध्य ईश्वर है। ईश्वर अर्थात् सत्प्रवृत्तियों का समुच्चय। मोक्ष की भी इसी में गिनती होती है। दुष्प्रवृत्तियाँ ही बन्धन हैं। भव-बन्धनों की चर्चा जहाँ होती है वहाँ उसका तात्पर्य कषाय-कल्मषों से है। कषाय अर्थात् पूर्वजन्मों के अभ्यरत संस्कार, कल्मष अर्थात् प्रस्तुत ललक लिप्साओं को आकर्षण से किये हुए दुरित। इनसे छुटकारा पाने का नाम मोक्ष है।

यह मान्यता सही नहीं है कि जन्म-मरण से छूट जाने का नाम मोक्ष है। जन्म, अभिवर्द्धन और मरण यह प्रकृति का नियम है। ईश्वर की सत्ता इस प्रकृति क्रम को इसी निमित्त बनाती है। जीव जन्तु, वृक्ष वनस्पति से लेकर मानव शरीर धारियों तक, प्रत्येक को इस चक्र में अनिवार्यतः भ्रमण करना पड़ता है। अवतारी महामानव भी बार-बार जन्म लेते और मरते हैं। अवतारों की संख्या अब तक दस या चौबीस हो चुकी है। इनमें से सभी को अपने-अपने ढंग से जन्म लेना और मरना पड़ता है। सृष्टि-चक्र में जो भी बँधा है उसे उत्पादन, अभिवर्द्धन और परिवर्तन के क्रम में घूमना ही पड़ता है। सूक्ष्म शरीरधारियों को भी एक अवधि के लिए नियत उत्तरदायित्व सम्भालने के लिए भेजा जाता है उसे पूरा करने के उपरान्त वे भी वापस लौट जाते हैं और आवश्यकतानुसार उसी क्रम की पुनरावृत्ति करते रहते हैं। जब अवतारों और देवताओं को आवागमन की प्रक्रिया पूर्ण करनी पड़ती है, तो भक्तजनों के लिए ही उसका अपवाद कैसे हो सकता है ?

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

मोक्ष का तात्पर्य कषाय कल्मषों से छुटकारा पाना है। इसी को ईश्वर की प्राप्ति कहते हैं। यह इस जीवन की सर्वोपरि परिस्थिति है, जिसमें निरन्तर सत् का, चित का और आनंद का अनुभव होता रहता है। ईश्वर का स्वरूप भक्त के लिए सच्चिदानन्द स्वरूप ही है। इसी में उसे कषाय-कल्मषों से छुटकारा मिलता है। कर्म बन्धन से बलात बँधकर जन्म-मरण के चक्र में फँसना बन्दी की तरह कष्टकारक भी हो सकती है। पर जो ईश्वर की इच्छा से उसकी व्यवस्था सम्भालने के लिए जेलर की तरह आता-जाता रहता है उसके लिए ईश्वर के इस स्वर्गोपम उद्यान का आनन्द लेने के लिए बार-बार आने-जाने का अवसर प्राप्त करना सुख भी है और सौभाग्य भरा भी।

ईश्वर की किसी मनुष्य आकृति के प्राणी के रूप में कल्पना मिथ्या है। इसी प्रकार उसका कोई नगर, गाँव, लोक होना भी सम्भव नहीं है। जो सर्वव्यापी है वह एक देशी नहीं हो सकता। जो शक्ति रूप है वह किसी गाँव देश में रहे ऐसी मान्यता भी विसंगत है। ईश्वर एक व्यवस्था है। भावनाशीलों के लिए उसकी भावना के अनुरूप भी। इसलिए मरने के बाद मोक्ष मिलने की कल्पना निरर्थक है उसे भावनाशील जीवित स्थिति में भी प्राप्त कर सकते हैं। ईश्वर प्राप्ति के लिए मरने तक का इन्तजार करना व्यर्थ है। सगुण भक्तों ने भी जीवित स्थिति में भगवान को पाया है। निराकारवादियों के लिए तो वह और भी सरल है—

"दिल के आइने में है तस्वीरे यार,
जब जरा गरदन झुकाई देख ली ।"

अपना अन्तरात्मा ही शुद्ध होने की स्थिति में परमात्मा हो जाता है। उससे सबसे निकट देखना हो, सबसे सरलतापूर्वक देखना हो तो अपने शुद्ध अन्तःकरण में ही उसकी झाँकी करनी चाहिए।

साधना में साध्य एक ही है—ईश्वर प्राप्ति। इसी को मोक्ष कहना हो तो भी कुछ हर्ज नहीं। इसे प्राप्त करते ही साधक अज्ञान, अभाव और अशक्ति जन्म समस्त दुःख दारिद्रों से छूट जाता है। सच्चिदानन्द के साथ एकीभूत हो जाता है। अपनी और ईश्वर की स्थिति में भिन्नता नहीं रहती।

साध्य को समझ लेने के बाद साधना का स्वरूप समझने की आवश्यकता है। जो साधना करने लगे, उसमें रस आने लगे समझना चाहिए कि वह साधक हो गया। जो साधक है वही सिद्ध है। ईश्वर के सम्पर्क में आने पर उसके गुण भी अनायास ही आ जाते हैं। अग्नि के साथ ईंधन का सम्पर्क सुदृढ़ हो जाने पर गुण आ गये हैं वही ईंधन में पैदा हो जाते हैं। ईश्वर सिद्धियों का भण्डार है उसके साथ सम्पर्क साधने वाला साधक सिद्ध ही होकर रहता है।

साधना के लिए दो कार्य करने होते हैं एक योग दूसरा तप। योग का अर्थ है अपने दृष्टिकोण की उत्कृष्टता को साथ जोड़ देना। तप का अर्थ है ललक-लिप्साओं की अवांछनीय आदतों को बलपूर्वक खींच-घसीटकर सीधे रास्ते पर लाना।

मनुष्य का चिन्तन शरीराभ्यास के साथ बुरी तरह गुँथ जाता है। अपने को निरन्तर शरीर समझता है। शरीरगत सुख ही उसके सुख और शरीरगत दुःख ही उसके दुःख बन जाते हैं। इन्द्रियजन्य वासनाएँ और मनोगत तृष्णा से इन्हीं दो की पूर्ति में शरीर लगा रहता है। इन दो के अतिरिक्त तीसरी है—अहंता। सारे सुखों का केन्द्र इन तीन में केन्द्रीभूत रहता है। इन्हीं की पूर्ति के लिए निरन्तर सोचने और करने की क्रिया चलती रहती है। आत्मा सूझ ही नहीं पड़ती। शरीर के भीतर जो है वह सूझता नहीं उसकी आवश्यकताओं और इच्छाओं की ओर ध्यान ही नहीं जाता। दृष्टिकोण के इस पृथक्करण को योग कहते हैं। योगी को अपनी दृष्टि शरीर से हटाकर आत्मा के साथ जोड़नी पड़ती है। एक ओर से खींचकर दूसरी ओर जोड़ने का नाम योग है। यह चिन्तन क्षेत्र को उलट देता है। इसके लिए आत्मचिन्तन में निरति पकानी पड़ती है। शरीर और आत्मा का भेद समझना पड़ता है। शरीर जन्य इन्द्रियाँ मनोजन्य तृष्णाएँ कितनी आकर्षक और कितनी अभ्यस्त होती हैं? उनसे मन को विरत करके यथार्थता को समझना यही आत्मज्ञान है, आत्मज्ञान होने पर तीसरा नेत्र खुल जाता है और निरर्थक के लिए मरते-खपते रहने, सार्थक की ओर से मुँह मोड़े रहने का अन्तर समझ में आता है। इसी का नाम योग है इस दृष्टिकोण के परिवर्तन को ही अन्तर का कायाकल्प कहते हैं। योगी की स्थिति संसारी से बिलकुल विपरीत होती है। योगी को आत्मा का हित ही अपेक्षित होता है जबकि भोगी को वासना, तृष्णा और अहंता के अतिरिक्त चौथा सुझता ही नहीं। साधना का वास्तविक अर्थ योग साधना है। योग का अर्थ है भोग से विरक्ति। चिन्तन को एक ओर से खींचकर दूसरी ओर नियोजित करने का नाम योग है। इसमें आँखें मूँदकर अन्तर्मुखी होना पड़ता है और जो भीतर है उसके कल्याण की साधना करनी पड़ती है।

तप योग का दूसरा पक्ष है। विचार कर्म में समाविष्ट हो जाते हैं। वे आदतों का रूप धारण कर लेते हैं और अभ्यास बनकर कार्यान्वित होने लगते हैं। कामुकता के विचार मात्र मस्तिष्क में ही नहीं घूमते। वरन् यौनाचार बनकर क्रियान्वित भी होते हैं। मर्यादा न रह कर मर्यादाओं का उल्लंघन करते हैं। व्यभिचार के रूप में परिणति होने लगता है। लोभ मात्र धन इच्छा तक ही सीमित नहीं रहता है। वरन् चोरी, बेईमानी, छल, प्रपंच आदि के रूप में जैसे बने वैसे धन संग्रह में लग जाता है। आरम्भ में मन कुछ हिचकिचाता भी है पीछे अभ्यास में आई हुई आदतें उसे स्वाभाविक मान लेती हैं। अहंकार प्रदर्शन के लिए शृंगार ठाट-वाट में ढेरों पैसा खर्च होने लगा है और अपने को दूसरों से बड़ा सिद्ध करने के लिए आतंकवादी कार्य किये बिना चैन नहीं पड़ता। नीति-अनीति विचार मन में से चला जाता है और अनीति करते हुए अपनी चतुरता एवं सफलता मालूम पड़ने लगती है।

इन आदतों को सहज ही नहीं छुड़ाया जा सकता है। अपने आपे से लड़ना पड़ता है। कुटेवों को निरस्त करने के लिए अपने साथ सख्ती बरतनी पड़ती है। सख्ती हर किसी को अखरती है। इसलिए अभ्यास डालने के लिए हर इन्द्रियों को व्रतशील बनाना पड़ता है। स्वादेन्द्रियों को संयम में लाने के लिए व्रत, आधा वस्त्र अस्वाद् का एक क्रम बनाकर तपश्चर्या

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

करनी पड़ती है। ब्रह्मचर्य में कड़ाई बरतनी पड़ती है। दानशीलता अपनानी होती है ताकि शोध पर अंकुश रहे। चिन्तन को स्वाध्यायशील बनाना होता है ताकि उतना समय शरीराभ्यास की विडम्बनाओं में से कटे। सर्दी-गर्मी सहन करने के अभ्यास डालने पड़ते हैं ताकि त्वचा को सहनशीलता की आदत पड़े। अभाव ग्रस्तता गरीबी का चिह्न माना जाता है पर जब उसे व्रतशीलता में सम्मिलित किया जाता है। तो वर्ग गौरव का निमित्तिकरण बन जाता है। सादा जीवन उच्च विचार की नीति अपनाने में आदर्शवादिता चरितार्थ होती है।

विभिन्न साधनाओं में विभिन्न व्रत नियमों का समावेश है। कुछ नियम थोड़े समय के लिए पालन किये जाते हैं। कुछ को सदा के लिए अपना लिया जाता है। जैन धर्म के साधु साध्वी कठोर नियमों का व्रतधारण करते हैं और उन्हें आजीवन निवाहते हैं। हिमालय कन्दराओं में निवास करना, कन्दमूल फल के आहार पर गुजारा करना, भूमि पर सोना जैसे नियम कितने ही साधु पालन करते हैं। इन तपश्चर्याओं के पीछे यही उद्देश्य छिपा हुआ है कि विलासिता की आदतों को निरस्त किया जा सके और सादा जीवन उच्च विचार की साधना को ऊँचे स्तर तक-लम्बे समय तक निवाहा जा सके। यह शरीराभ्यास की लिप्साओं से सम्बन्धित पड़ी हुई आदतों को धीरे-धीरे अथवा एक ही झटके में समाप्त किया जा सके। शरीर के साथ सख्ती बरतना, मन के ऊपर कठोर अंकुश लगाना, तपश्चर्या का उद्देश्य है। यह योग का पूरक है। मन में शुभ चिन्तन और व्यवहार में कठोर संयम की दोनों ही व्यवस्था बना लेने से मन की उच्छृंखलता काबू में आती है।

साध्य निश्चित हो जाने—साधना निरत रहने के साथ ही व्यक्ति अपने आपको साधक अनुभव करता है और कहता भी है। यह प्रतिष्ठा का प्रश्न है। प्रकट या अप्रकट घोषणा करने के उपरान्त व्यक्ति को अपनी प्रतिष्ठा का ध्यान रहता है कि हमने अपने बारे में जो घोषणा की है उसे निभाया भी जाये। उसे तोड़ने पर अप्रतिष्ठा होगी। मनुष्य का सम्मान बहुमूल्य है। उसे भले आदमी गिरने बिगड़ने नहीं देते। साधक होना छोटी बात नहीं बड़ी बात है। हम साधक हैं यह घोषित करना ऐसा ही है जैसे अपने को सरपंच, न्यायाधीश, महामहोपाध्याय आदि के रूप में जनता को परिचित कराना। उसके व्रतों को मानना ही चाहिए तोड़ने में उपहास होता है। प्रतिष्ठित व्यक्ति अपना उपहास नहीं होने देते।

साध्य कौन ? ईश्वर—साधना किस प्रकार ? तप और योग द्वारा। साधक बनना याने अपने को प्रतिष्ठित व्रतशील घोषित करके जिसके सम्मान की रक्षा होनी चाहिए। यह तत्वदर्शन जिसके समझ में आ जाये उसका जीवन सार्थक हो जाता है।

साधना में साधक को पहले मन को तैयार करने की आवश्यकता है। मन को शान्त एवं स्थिर बनाने की आवश्यकता है। साधना के लिए मन के तैयार होते ही उसमें शान्ति आती है और बहुत बड़ी समता की स्थापना होती है। शान्ति का अर्थ अटल और अचल स्थिर गाँव तथा प्रवृत्ति के सब तरह के घात प्रतिघातों से अविचल तथा निर्विकार रहने का अभ्यास। जिस प्रकार आज चंचलता मन का स्वभाव है, साधना की तैयारी में जुटते ही अविचल और निर्विकार भाव मन एवं बुद्धि का स्वभाव सिद्ध भाव हो जायेगा इसके साथ ही साथ हमें आगे की तैयारी के मन को विश्व मात्र के प्राणियों को रागद्वेष रहित होकर अह्लादपूर्वक हृदय से लगाने के भाव वाला हो जाना चाहिए। भगवान जिस प्रकार संसार के समस्त प्राणियों में अखण्ड भाव से विराजमान हैं, उसी प्रकार की अनुभूति के लिए हमें अपने मन को तैयार करने की आवश्यकता है, क्योंकि संसार के प्राणी होने के कारण हमारे भीतर भी भगवान अखण्डभाव से विराजमान हैं, इसलिए अपने भीतर स्थित भगवान को जहाँ हमें देखना है वहाँ समस्त संसार में भी उसका अनुभव करना है इस तरह अपने में संसार के साथ अखण्ड सम्बन्ध की स्थापना शब्द से नहीं अनुभूति पूर्वक करनी है। मनकी इस शान्त सत्ता में सतत एक रस तल्लीन रहने का अभ्यास हो जाने पर विज्ञान का अभिव्यक्त होना आरम्भ हो जाता है। परन्तु साधक को उतावला बनने की आवश्यकता नहीं है। अखण्ड निर्भयता के साथ साधना करते रहने पर भगवान स्वयं ही धीरे-धीरे सभी विघ्न बाधाओं को दूर करके साधक को मन वांछित स्थान पर पहुँचा देते हैं।

साधना के आरम्भ में पहले अपने विचार में ज्ञान प्रवाह का अनुभव करना चाहिए। यह अनुभव ईश्वर की प्रेरणा के रूप में चित्त के भीतर करना चाहिए। यह प्रेरणात्मक ज्ञान भीतर के गुरु रूप से साधक को अपने आप ही सब कुछ दिखा सुना देगा। क्या करना चाहिए, किसमें कमी या अधूरापन है, क्या नहीं करना चाहिए ये सारी बातें वह स्वयं ही कहना आरम्भ कर देगा। इसी के प्रकाश के आगे का रास्ता साधक को तय करना पड़ेगा। साधना के लिए उत्पन्न हुई इच्छा के साथ सत्य ज्ञान का मिलान करना होगा, जिससे सत्य ज्ञान के साथ ही साथ इच्छा की वृत्ति भी उसके अनुकूल रहे। जब दोनों एक रूप हो जायेंगे तब दोनों ही अखण्ड स्वरूप में बदल जायेंगे।

जिस समय अन्तरस्तल में यह प्रतीत होने लगेगा कि सबमें एक अनन्त भगवान ही निवास कर रहे हैं और उन्हीं की अनन्त शक्ति के योग से सब कुछ हो रहा है, साथ ही दृढ़ विश्वास भी हो जायेगा तब साधना का जो सिलसिला जारी होगा, वह उत्तरोत्तर उन्नत ही होता जायेगा। उस समय साधक को सब कुछ भगवान की इच्छानुसार ही होने देना चाहिए अपनी किसी प्रकार की भी स्वतन्त्रता इच्छा या हठ को भी स्थान नहीं देना चाहिए। क्योंकि—**"होई है वही जो राम रचि राखा।"** साधक को अपनी किसी भी प्रकार की इच्छा नहीं करनी चाहिए, सब भगवान के ऊपर छोड़ देना चाहिए और समझ लेना चाहिए कि भगवान की मंगलमय इच्छा ही सब घटनाओं को उत्पन्न कर रही है। भगवान में सम्पूर्ण श्रद्धा रखनी चाहिए। भगवान जो कुछ भी देखते हैं उसे दूर करने के लिए सब कुछ करते हैं। साधक को चाहिए कि भगवान के इस काम को भी वह साधना का एक अंग ही समझे, क्योंकि साधना के लिए इसकी बहुत बड़ी आवश्यकता है। भगवान कल्याण स्वरूप है इसलिए कल्याण साधना में भगवान के कल्याण स्वरूप का स्मरण रखना ही साधक का प्रमुख लक्ष्य है। तनिक

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

भी विचलित न होकर अक्षुण्ण सम्पूर्ण और कल्याण करने वाली श्रद्धा भगवान के ऊपर रखो, श्रद्धा ही समस्त कल्याण की प्राप्ति करा देगी। श्रद्धा ही त्याग का आधार है, इससे अनन्त ज्ञान की प्राप्ति अवश्य होगी इसमें अणु मात्र भी सन्देह नहीं है। श्रद्धा ने ही सम्पूर्णता को प्राप्त कराने का भार ग्रहण कर रक्खा है, साधक को यह बात नहीं भूल जाना चाहिए।

साधक के लिए यह आवश्यक है कि वह संसार भर के प्रति प्रेम का भाव सम्पूर्ण रीति से हृदय में रखे, सबके लिए समान भाव से। किसी के लिए कम और किसी के लिए अधिक नहीं। सबके साथ समान रूप से गम्भीर प्रेम करना ही त्याग करना है। त्याग और पूर्ण श्रद्धा होने से ही हृदय की सारी बाधायें दूर हो जाती हैं। भगवान समस्त बाधाओं को नष्ट कर डालते हैं।

चिन्तायें मनुष्य को कुछ नहीं करने देती इसलिए साधक का कर्त्तव्य है कि वह अपने को समस्त चिन्ताओं से मुक्त कर ले। मन और बुद्धि को चिन्ताओं से खाली कर लेने पर एक स्तब्ध प्रसन्न शान्त भाव आता है। शान्ति की ऐसी अवस्था में वही कहता और करता है जो कि कथनीय और करनीय होता है।

मन के स्थित और शान्त होने पर ही सत्य का प्रकाश होता है अर्थात् मन के निश्चिन्त और स्थिर हो जाने पर भगवान अपने आप ही प्रकाशमान हो जाते हैं यानी उनका प्रकाश साधक को दीखने लगता है। चिंता युक्त मन रहने से जहाँ साधना में कठिनाई आती है वहाँ साधक को उलझन आने की भी सम्भावना रहती है। इसीलिए भगवान के प्रकाश को अविकृत रूप से धारण करने के लिए समता की अत्यन्त आवश्यकता है इसके बिना भाव अधिकता के कारण मन तथा शरीर की अनेक प्रकार की विषमताओं के उत्पन्न होने का डर रहता है। भगवान की प्रस्फुटित ज्योति के लिए पूर्णोपयोगी आधार बनाये बिना उसके द्वारा शरीर और मन दोनों के ही विनष्ट होने की सम्भावना रहती है इसीलिए मन और बुद्धि को सम्पूर्ण रूप से कुछ दिनों तक खाली करके रखने से ही भय निर्मूल हो सकता है।

साधनाएँ फलीभूत क्यों नही होतीं ?

जीव विज्ञान के अनुसार मनुष्य को बन्दर जाति का एक प्राणी माना गया है। पर उसके अन्तराल में परमात्मा ने इतनी विशिष्ट शक्तियों का जखीरा भर रखा है कि उसे सृष्टि का मुकुटमणि कहा जाना बहुत अंशों में सही है। शरीर संरचना में प्रयुक्त हुए असंख्यों जीवकोशों में से प्रत्येक घटक ऐसा है जो नन्हें-नन्हें गोलक जैसे प्रतीत होते हुए भी असाधारण क्षमता सम्पन्न है। पदार्थ के परमाणु का वैज्ञानिक विधि से नाभिकीय विस्फोट करने पर उससे निकलने वाली प्रचण्ड ऊर्जा समूचे क्षेत्र को प्रभावित करती है। ठीक इसी प्रकार जीवकोशों की सम्मिलित शक्ति भी एक आयन मण्डल बनाती है जिसे अँग्रेजी में 'आरा' कहते हैं और संस्कृत में तेजोवलय। यह विद्युत प्रकाश यन्त्र उपकरणों से स्थूलतः तो प्रायः एक जैसा ही दिखता है। उनमें रंगों भर का अन्तर पाया जाता है। किन्तु सूक्ष्म दृष्टि से देखा जाये तो उसमें रंगों का ही नहीं शक्ति का भेद भी पाया जाता है। इसमें जैव चुम्बकत्व के गुण भी होते हैं।

मोटेतौर से बिजली दो प्रकार की होती है। एक खींचने वाली, दूसरी धकेलने वाली। प्रकारान्तर से इसे उसका गुण कह सकते हैं। इलेक्ट्रोमैग्नेटिज्म के रूप में यह दूसरों के शरीर, मन आदि को अपनी ओर आकर्षित करती है। धक्का मारने वाली दूसरी शक्ति त्रास पहुँचाती है। यह जैवविद्युत सामने वाले को तोड़ती व पतन के गर्त्त में गिरा देती है। तान्त्रिकों और मान्त्रिकों में यही भेद होता है। वेद मंत्रों की दिव्य ध्वनियों का गुंजन मनुष्य को मोहित, झंकृत, प्रसन्न और प्रफुल्लित करता है। इससे शक्ति बलिष्ठता मिलती है, जिससे वह आत्मिक प्रगति के क्षेत्र में ऊँचा उठता व आगे बढ़ता है।

शक्ति के आदान-प्रदान का यह क्रम मित्रों, बालकों, अभिभावकों के बीच भी चलता है, पर सबसे अधिक सामर्थ्य गुरु के शक्तिपात में होती है। जिसने तप साधना द्वारा अपने में शक्ति का भण्डार एकत्रित किया है वह उसका अनुदान भी किसी को दे सकता है। जिसकी कमाई का आधार रोटी भर है, अपना खर्च ही मुश्किल से चला पाता है, वह क्या किसी को दे सकता है ? लिया तो किसी से, कहीं से भी जा सकता है किन्तु दे पाना उन्हीं के लिए सम्भव है जिनके पास कुछ जमा पूँजी हो। यह जमा पूँजी अध्यात्म क्षेत्र में तप-साधना, संयम, सेवा के आधार पर ही कमाई गई होती है। अपने को पवित्र बनाकर, अनगढ़ से सुगढ़ बनाकर मनुष्य निरोग बनता है और पुण्य की प्रखरता से बलिष्ट बनता है। यों साधना में जप-तप भी करना पड़ता है। किन्तु सबसे बड़ी बात है आत्मशोधन, स्व का परिष्कार-परिमार्जन। यह सब जितना अधिक गहरा बन पड़ता है, मनुष्य उतना ही गुण, कर्म, स्वभाव की दृष्टि से शक्तिशाली होता जाता है। जो विभूतिवान है, वही किसी को कुछ दे भी सकता है। अन्यथा बहकाने वाले बाजीगर और ठग तो गली कूचों में रंग-बिरंगे कपड़े पहने बड़ी जटाएँ रखें या सिर घुटाये कहीं भी जाल बिछाये चिड़ियाँ पकड़ते देखे जा सकते हैं।

साधना का पूरा अर्थ है—जीवन साधना। इस प्रयोजन के लिए जहाँ अपने गुण, कर्म, स्वभाव की देखभाल की जाती है, वहाँ साथ ही उस प्रसंग से जुड़े हुए कर्मकाण्डों का भी अभ्यास करना पड़ता है। इस प्रकार व्यक्तित्व एक विशेष ढाँचे में ढल जाता है। उसका जैसा भी चाहे भला-बुरा प्रयोग हो सकता है। साधना से सिद्धि का सिद्धान्त जुड़ा हुआ है। पर साथ-साथ यह शर्त भी जुड़ी हुई है कि व्यक्ति ने अपना समग्र जीवन तदनुकूल बना लिया हो।

तान्त्रिक प्रयोगों के कर्त्ता अभिचार स्तर के निकृष्ट कार्य करते हैं। उन्हें अपनी चर्या में **"मद्यं मासं च मीनं च मुद्रा, मैथुन एव च"** जैसे अनैतिक कृत्य करते हुए व्यक्तित्व को उसी ढंग से ढालना होता है। इसके अतिरिक्त श्मशान साधना, शव साधना जैसे घिनौने कलापों में निरत रहना पड़ता है। कालिक, अघोरी भी प्रायः ऐसा ही करते हैं। इससे उनकी आत्माएँ उचित-अनुचित का भेद करने में असमर्थ हो जाती हैं। आत्म-प्रताड़ना के कारण जो वैसा नहीं कर पाते, उनकी तान्त्रिक

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

साधना भी सफल नहीं होती, ऐसा कहा जाता है। दूसरों को मारण, मोहन उच्चाटन, वशीकरण आदि कृत्यों के द्वारा हानि पहुँचाने से पूर्व अपने आपको जघन्य कृत्यों को करते समय घृणा, जुगुप्सा न करने की स्थिति में ढालना होता है। यही बात दक्षिणमार्गी, सदाशयता पर, धर्मोपदेश देने वालों पर भी लागू होती है। सत्कर्म करने वालों को अपना जीवन भी साधना, संयम, स्वाध्याय, सेवा आदि का माध्यम अपना कर भीतर के देवत्व को जगाना पड़ता है। शाप-वरदान देने की सामर्थ्य के मूल में मात्र अभिचार कृत्य ही काम नहीं करते, कर्मकाण्ड ही काम नहीं दे जाते वरन् अपने जीवन का ढाँचा भी तद्नुकूल ही विनिर्मित करना पड़ता है।

कर्मकाण्ड अपना कथित प्रतिफल दिखा सकने में तभी समर्थ होते हैं, जब कर्त्ता का जीवन व्यवहार उस ढाँचे में ढला हुआ हो। इसलिए जहाँ विभिन्न प्रकार की साधनाओं के विधि-विधानों और उनके माहात्म्यों का वर्णन है, वहाँ यह बात भी समझनी चाहिए कि साधक को अपनी जीवन चर्या का रूप भी वैसा ही ढाँचे से ढालना पड़ता है। यह उपचार विज्ञान का प्राण है और कर्मकाण्ड प्रयोग उसका कलेवर। प्राण रहने पर ही कलेवर का महत्व है।

व्यक्तित्व के अनुरूप ही सफलता प्रदान करने वाली अन्य विशेषताओं की भी अभिवृद्धि होती है। आध्यात्मिक क्षेत्र की भाँति भौतिक क्षेत्र में भी कितने ही प्रगति मार्ग हैं। उनका द्वार सभी के लिये खुला है। पर हर कोई उसे समझ या कर नहीं पाता। इस में अभ्यास का अभाव ही प्रधान कारण रहता है। विद्वान, धनवान, प्रतिभावान बनने के लिए व्यक्ति को परिश्रमी, परिस्थितियों को समझने वाला मृदुभाषी तथा गुत्थियों को सुलझाने की सूझ-बूझ वाला होना चाहिए। यह सद्गुण किसी में अनायास ही प्रकट नहीं हो जाते वरन् अभ्यास का सिलसिला जारी रखना पड़ता है। कुछ दिन प्रयास चला कर बन्द कर देने पर जो लोग थोड़ा अभ्यास करके छोड़ देते हैं, उनका स्वभाव उस ढाँचे में ढल नहीं पाता और उथले प्रयत्न परिस्थितियों के दवाब में ऐसे ही बिखर जाते हैं।

मनुष्य एक विशेष प्रकार का चुम्बक है, विधाता का बनाया हुआ। साधारण चुम्बक की अपेक्षा उसमें यह एक अतिरिक्त विशेषता है कि उसे जिस भी स्तर का बनाना हो, उस स्तर का बनाया जा सकता है और इस विश्व में विद्यमान किसी भी भली-बुरी क्षमता को खींचकर अपनी ओर खींचा और धारण किया जा सकता है। व्यक्ति यों प्रत्यक्ष अकेला ही होता है, पर उसके साथ इतनी विशेषताएँ, आकर्षित क्षमताएँ जुड़ी होती हैं, कि वह जिस स्तर की वस्तुओं को, साधनों को चाहे, अपने समीप एकत्रित कर सकता है। उसी स्वभाव वाले समधर्मी मनुष्यों एवं प्राणियों से भी घनिष्ठता स्थापित कर सकता है।

यह सही है कि कर्मकाण्डों में अपनी शक्ति है। यन्त्र-तन्त्र अपने प्रतिफल देते हैं। शास्त्रोक्त प्रतिफल जरूर मिलने हैं। किन्तु मात्र उन्हीं का विधि विधान सीख लेने से प्रयोक्ता कोई उपयुक्त फल उत्पन्न नहीं कर सकता। भक्ति मार्ग में भी यह बात लागू होती है। कर्म-मार्ग में भी, व्यवसाय में भी और व्यवहार में भी सफलता का यही सारभूत तथ्य है, कि जिस भी दिशा में अग्रसर होना हो, उस स्तर की विभूतियाँ और विशेषताएँ अपने में उत्पन्न एवं परिपक्व करनी चाहिए। इस क्षेत्र में कोई किसी प्रकार का शार्ट-कट सिद्धान्त लागू नहीं होता।

यदि प्रकृति देवी की अवहेलना न की जावे तो संसार-निरीक्षण हमें बड़े मनोहर दृश्य दिखाता है। नदियाँ बहकर बतलाती हैं कि हमारा जीवन भी एक दिन बह जायेगा। चिड़ियाँ उड़ कर शिक्षा देती हैं कि यह जीवन किसी दिन उड़ जायेगा। प्रकृति देवी में कितनी सुन्दरता है, बहते हुए झरनों में कितना सौंदर्य है, उदया चल पर सूर्य की शोभा दर्शनीय है। बात यह है कि प्रकृति 'सौन्दर्य सार समुदाय निकेतन' है, किन्तु मनुष्य भ्रम और भ्रान्ति का दास है उसका चंचल मन रुई के फोहे से भी हलका होकर काम क्रोधादि का दास बना हुआ है।

मनुष्य नवीनता का उपासक है, जीवन में नित्य प्रति होने वाली घटनायें चाहे वे कितनी ही भली क्यों न हों उनसे रोचकता घट जाती है। एक दिन मेरे मित्र से सांसारिक विषय की बातें हो रही थीं प्रश्न हुआ कि पुरुष बड़ी सन्तान की अपेक्षा छोटी पर तथा पुत्र की अपेक्षा नाती पर क्यों अधिक प्रेम करता है ? मेरा उत्तर था "मनुष्य नवीनता का उपासक है।"

प्रकृति देवी ने चौरासी लाख योनियों में भ्रमा कर हमें उन्नत योनि प्रदान की है, मानव जीवन प्राप्त करने के साथ मनुष्य ज्ञान का अधिकारी हो जाता है, इस दशा में मानव प्राणी का यह अपना काम है कि वह उत्थान की ओर जाये या पतन की ओर। यहीं से जीव के लिये कर्म की मीमांसा आरम्भ होती है।

कर्म दो प्रकार का है—(१) इहलौकिक, (२) पारलौकिक। किसी भी कर्म के पहले मनुष्य के हृदय में विचार उत्पन्न होता है, क्योंकि मन कल्पनाओं का पुंज हैं। मन की किसी भी कल्पना को पूर्ण करने के लिये कर्म में निरत होना पड़ता है तथा उस कर्म का अन्तिम ध्येय तक पहुँचाने के लिये साधना की आवश्यकता है। मकान बनवाना है, कुआँ खुदवाना है, लेख लिखना है, इन सब बातों के लिये मन में विचार उत्पन्न होकर उस प्रकार के कर्म को साधना करनी पड़ती है। जीवन भी एक बड़ी साधना है, प्रेम साधन, भक्ति साधन, मोक्ष साधन, योग साधन इत्यादि अनेक हैं।

कोई भी कर्म करने के पहले उसका कारण भी अवश्य हुआ करता है। इहलौकिक कर्म के लिये कारण स्पष्ट है कि मनुष्य नवीनता का उपासक है। आज जिस एक वस्तु की इच्छा मन में उठ कर उसकी प्राप्ति के लिये साधना की जाती है, कल उससे अनिच्छा भी हो सकती है, और भौतिक वस्तु की प्राप्ति के प्रायः यही फल हुआ करते हैं। मनुष्य वासनाओं का दास है इसी से भौतिक अथवा इहलोक साधना की ओर उसका झुकाव अधिक रहता है, किन्तु व्यावहारिक सांसारिक विभूतियों में भय है इसी से ब्रह्मज्ञानियों ने संसार की नश्वर विभूतियों को विभूतियाँ न कह कर भूति मात्र कहा है जिससे भौतिक शब्द की रचना हुई है। सांसारिक वैभव 'बहुत कुछ' है किन्तु 'सब कुछ' नहीं It is much but not all. इस वैभव से

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

मित्र, दास, दासी, राजपाट, बहुत कुछ प्राप्त हो सकता है, किन्तु प्रेम, स्वास्थ्य, शान्ति और सुख नहीं मिल सकता, हृदय की शान्ति के लिये दूसरी निधि की खोज करना होगा। कितने ही ऐसे व्यक्ति मिलेंगे जो सांसारिक सत्पत्ति रहते हुए भी उस शान्ति, सुख और प्रगाढ़ निद्रा के लिये लालायित रहते पाये जाते हैं जिसे सड़क के किनारे सोने वाले अनुभव करते हैं। सांसारिक सम्पत्ति गगन चुम्बी अट्टालिका बना सकती है किन्तु प्रत्येक मनुष्य का चाहे वह धनिक हो अथवा दरिद्री अटूट समाधि के लिये ६ फुट जमीन से अधिक आवश्यकता न होगी।

रात दिन के आघात, दुःख, सफलता और निराशाओं के कारण जब मानव हृदय रो पड़ता है, उसे अपनी शक्तियों के ऊपर अविश्वास हो जाता है, एवं संसार में उसे अपना कोई भी नहीं दिखलाई पड़ता है उस समय वह अशरण-शरण मंगलमय भगवान की ओर आकर्षित होता है और संसार में रहते हुए भी संसार की चहल-पहल से दूर अपने जीवन पक्ष का निर्माण किसी अन्य दिशा में करने की आकांक्षा करते हुए साधन पथ बदल देता है उस समय इहलौकिक ध्येय न होकर पारलौकिक ध्येय हो जाता है बस यही पारलौकिक कर्म का कारण है।

पृथक कर्म के लिये पृथक-पृथक साधनायें हुआ करती हैं चाहे जिस साधना से चाहे जो साध्य प्राप्त नहीं होता। इहलोक अथवा भौतिक प्राप्ति के लिये संग्रह साधना होती है, पारलौकिक अथवा मोक्ष प्राप्ति के लिये त्याग साधना होती है।

कोई भी कर्म बिना साधना के अशक्य है किन्तु साधना के लिये चाहे वह इहलौकिक हो अथवा पारलौकिक, मन में एक स्थायी शान्ति और निश्चल नीरवता की आवश्यकता है, अन्यथा सम्भव है कि किसी अंश में सफलता प्राप्त हो किन्तु स्थायी लाभ कुछ भी प्राप्त न होगा। विशेष कर पारलौकिक साधना के लिये अधिक शान्ति तथा नीरवता की आवश्यकता है क्योंकि "एकै साधै सब सधै सब साधे सब जाय।" मेरा लक्ष्य केवल पारलौकिक साधना की ओर है जिसमें हृदय की सच्ची शान्ति प्राप्त हो।

कहा जा चुका है कि साधना कर्म के लिये पहले विचार उत्पन्न होते हैं अतएव विचारों पर नियंत्रण होना चाहिये, जिसका विचारों पर नियंत्रण नहीं है, यदि वह अपने विचारों का अनुमन्ता और स्वामी नहीं है तो वह मनुष्य पूर्ण मनोमय नहीं हो सकता।

यह बात अवश्य है कि आरम्भ में शान्ति और स्थिरता चलायमान रहती है। स्थायी रूप से उन्हें लाने के लिये दीर्घकाल की आवश्यकता होती है, किन्तु इससे अधीर नहीं होना चाहिये। यदि तुम अपने विचार में सच्चे हो तो अवश्यमेव सफलता प्राप्त होगी। अपनी कमजोरियों और कुप्रवृत्तियों को छुपाने का प्रयत्न करने की अपेक्षा उन्हें निकाल फेंकने का दृढ़ विचार करना चाहिये। जिसे पारलौकिक साधना अथवा आध्यात्मिक जीवन व्यतीत करना है उसे सबसे पहले अपने हृदय में भगवान का मन्दिर बना कर उनकी शरण में अन्य गौण साधन करने होंगे।

"कर्मण्येवाधिकार स्ते मा फलेषु कदाचन्।"

इस गीता के महासूत्र को तनिक भी न भूलते हुए फल के लिये अधीर न होना चाहिये।

साधना में अनेक प्रकार की विरोधी परिस्थितियाँ उपस्थित हुआ करती हैं किन्तु ऐसी परिस्थितियों के आने पर (जो एक प्रकार की परीक्षा है) विचलित न हो धैर्य से उनका सामना करना चाहिये। क्योंकि दुःख और कष्ट में यदि तुमने समता बनाये रखी तो समझ लो कि साधना के एक महत्त्वपूर्ण अंग में फलीभूत हो चुके। क्योंकि अनुकूल अवस्था में सम और स्थिर होना तो मामूली बात है किन्तु विपरीत अवस्था में ही मनुष्य की स्थिरता, शान्ति और समता की परख हो सकती है।

जो विचार निश्चित उद्देश्य और प्रबल कामना के साथ प्रेरित होते हैं वे उतनी तीव्रता के साथ अभीष्ट स्थान को पहुँचते हैं अर्थात् विचार की शक्ति उस बल पर अवलम्बित है जिस बल के साथ वह प्रेरित किया जावे।

आत्मकल्याण के पथ पर अग्रसर होने के इच्छुक साधक के लिये अपने आपको नियम पर दृढ़ रखने तथा नियमित जप, तप, उपासना, साधना करते रहना ब्रह्म प्राप्ति के लिये आवश्यक ही नहीं प्रथम शर्त भी है। बिना साधना के सिद्धि नहीं मिलती है। एक परीक्षा में सफल होने के लिए विद्यार्थी को कितना श्रम करना पड़ता है। एक मोती को समुद्र तल से निकालने के लिए किस प्रकार जान को हथेली पर रखकर समुद्र की गहराई में उतरना पड़ता है, किसी मंजिल तक पहुँचने में राही को कितना श्रम करना पड़ता है। साध्य तक पहुँचने के लिए साधना आवश्यक है। उसी प्रकार ब्रह्म साक्षात्कार के लिये पूजा, उपासना, दैनिक कृत्य भी अनिवार्य हैं। इस प्राथमिक सोपान पर चलकर ही आगे बढ़ना सम्भव है।

किन्तु बहुधा साधना उपासना करते हुए भी लक्ष्य की प्राप्ति क्यों नहीं होती ? समस्त जीवन चला जाता है, इतना ही नहीं अनेकों जन्म इसमें लग जाते हैं फिर भी उस परब्रह्म की अनुभूति प्राप्त नहीं होती ? अशान्तियों और उद्वेगों से छुटकारा भी नहीं मिलता। इस असफलता का कारण क्या है यह प्रश्न विचारणीय है।

साधना के दो अंग हैं—चेष्टा और दूसरा त्याग। किसी की प्राप्ति के लिए चेष्टा करनी पड़ती है साथ ही उसके लिए त्याग भी ? नदी अपनी सम्पूर्ण चेष्टा से विराट सागर की ओर धावमान् होती है उसमें एकरस एक्य की प्राप्ति के लिए। किन्तु उसकी चेष्टा में वह सम्पूर्ण भाव भी परिलक्षित होता है जिसमें वह अपने आप को पद-पद पर विराट के लिए निवेदन करती हुई आगे बढ़ती है। अपनी वर्तमान स्थिति को उसी के लिए क्षण-क्षण में उत्सर्ग करती है।

आध्यात्मिक साधना का पथ भी ठीक इसी प्रकार है। जिस प्रकार पूजा, उपासना, साधना, स्वाध्याय आदि से अपने ज्ञान को विशुद्ध एवं शक्ति को सचेष्ट रखना पड़ता है दूसरी ओर सम्पूर्ण भाव से अपने आपको ईश्वर की इच्छा पर उसी के लिए निवेदित करना पड़ता है। जब सांसारिक तुच्छ लाभों के लिए कुछ न कुछ उत्सर्ग करना पड़ता है तो उस समग्र, अखण्ड, विश्वात्मा, ब्रह्म के साक्षात्कार के लिए अपने आपको सम्पूर्ण

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

रूपेण निवेदन करना ही पड़ेगा। पतंगा अपने आपको सम्पूर्ण भाव से दीपक को अर्पण कर देता है और तभी वह लौ में मिल जाता है। अपने प्रियतम के मिलन के लिए उसे समग्र भाव से अपने आपको अर्पण करना पड़ता है।

पूजा, उपासना, नियम, साधना के पथ पर दृढ़ता रखकर बढ़ने वाले अनेकों साधक मिल जायेंगे जो कठोरतम चेष्टायें जारी रखते हैं किन्तु अपने आपको समर्पण करने वाले साधक बहुत ही कम दिखाई देते हैं। यह ही ब्रह्म साक्षात्कार के पथ का रहस्य है। अक्सर मनुष्य उस प्रियतम, परमात्मा के मिलन पथ में भी कृपणता करता है और अपने आपको स्वयं के हाथों में ही रखना चाहता है। दूसरों के—उस विराट के हाथों में नहीं देना चाहता ? कठोर साधनाओं और व्रत पालन में वह प्राण प्रण चेष्टा जारी रखता है। अपनी साधना का हिसाब लगाकर एक विशेष अभियान पूर्ण आनन्द के साथ ब्रह्म साक्षात्कार का मूल्यांकन करता है।

तुच्छ मनुष्य केवल अपनी शक्ति, सामर्थ्य, साधना के बल पर उस विश्वात्मा के साथ व्यापार नहीं कर सकता। उस अनन्त, अखण्ड, सर्वव्यापक को नहीं जान सकता और न उसकी अनुभूति ही प्राप्त कर सकता है। इनके साथ-साथ उसे अपने आपको सम्पूर्ण से उसके लिए निवेदित, उत्सर्ग करना ही पड़ेगा। बिना इसके सिद्धि प्राप्त नहीं होगी और तभी प्रभु मिलन का पथ सहज और सुगम और लघु बन जायेगा। उसकी दिव्य अनुभूति, हमारे हृदय में उसी तरह आलोकित हो उठेगी जैसे प्रातः होते ही सूर्य की प्रकाश किरणों से विश्व भुवन प्रकाशित हो उठता है। उसके लिए तब कोई कठिन साधना नहीं करनी पड़ती।

ब्रह्म प्राप्ति के लिए हमें अपने आपको देना होगा। उन्होंने तो अपने आपको दे डाला। सर्वव्यापी प्रभु सर्वदा सर्वत्र ही हमारे भीतर-बाहर व्याप्त हैं। हमारे अन्दर अभाव है, हम संकीर्णता का बाना पहने हुए हैं, मैं और ममत्व की रंगीन ऐनक लगाये हुए हैं इसलिए उनके पुण्य मिलन से हम दूर हैं। हमने नाना प्रकार के स्वार्थ, अहंकार, क्षुद्रता के कठिनतम घेरों में अपने आपको आबद्ध कर लिया है जहाँ अपनी स्वतन्त्र सत्ता को देखते हैं, किन्तु प्रभु मिलन के मार्ग को यही तो कठिन बनाये हुए हैं और हमें उस की अनुभूति से वंचित रखते हैं। इसी कमी के कारण हम कठिन साधनाएँ करते हुए भी देर तक विश्वात्मा, ब्रह्म की झलक नहीं पाते।

उपासना, साधना, पूजा आदि का वास्तविक उद्देश्य ईश्वर को प्राप्त करना ही नहीं है वरन् अपने आपको उनके लिए समर्पित करने के लिए भी है। दिन-प्रतिदिन भक्ति द्वारा, पूजा उपासना सेवादि द्वारा अपने आपको उस ब्रह्म में बाधा हीन रूप से व्याप्त कर देना ही उपासनादि का सच्चा रूप है और ऐसी ही पूजा से प्रभु को प्राप्त करने की चिर इच्छापूर्ण होती है।

उपनिषद् में कहा है कि **'ब्रह्म, तल्लक्ष्यमुच्यते'** ब्रह्म ही उसका लक्ष्य है। तो फिर लक्ष्य को अपनी ओर नहीं खींचा जा सकता, अपने आपको ही लक्ष्य तक पहुँचाना होता है। जिस प्रकार निशाना लगाकर तीर चलाने पर वह सम्पूर्ण रूपेण अपने लक्ष्य के प्रति अपने आपको अर्पण करता है उसी प्रकार ब्रह्म प्राप्ति के लिए उसी में वर्चस्व अर्पण करके तन्मय हो जाना पड़ेगा। सकल अवस्थाओं में सकल कार्यों उपलब्धि एवं स्थितियों में वही एक मात्र भाव बनाये रखना पड़ेगा।

प्रभु से हमारी दूरी, दुःख, वेदना, क्लान्ति आदि इसलिए हैं कि हम अपने अहं को मिटा नहीं पाते। यह अहं ही हमारे और उनके बीच में दीवार बन बैठा है जो अपनी स्वतन्त्र सत्ता शक्ति सामर्थ्य से उस अखण्ड, सर्वव्यापक सर्वशक्तिमान को पाने की मिथ्या कल्पना करता है और हमें उनसे दूर रखता है। इसलिए अहंकार को उसके उच्च शिखर से उतार कर निम्न स्थिति में ले जाना होगा। सकल विश्व के साथ समानता एवं एकता रखकर अपने आपको सब के पीछे ले जाकर खड़ा करना होगा। सबसे नीचे बैठना होगा। हम अकिंचनता और दीनता में प्रभु की कृपा दृष्टि प्राकर सदा के लिए उनके बन जायेंगे। जब हम सब प्राणिमात्र के साथ बैठते हैं एकता स्थापित करते हैं अपने अहंकार को मारकर परमात्मा के हाथों में अपना समर्पण करते हैं तभी हम उस ब्रह्म की गोद में बैठने के अधिकारी बनते हैं।

ब्रह्म साक्षात्कार के लिए अपने ज्ञान की विशुद्धि, शक्ति के सचेष्टता के साथ-साथ अपना आत्मसमर्पण उस परम सत्ता में करना होगा। अहंकार को मारना होगा। अपने को उस प्रभु के हृदय देश में स्थापित कर उसी की इच्छा से सर्व क्रियाकलाप जारी रखना होगा। अपने आपको सम्पूर्ण भाव से उसमें निवेदित करना होगा। अहंकार, स्वार्थ, तुच्छता, संकीर्णता को त्यागकर नम्रताशील, सामंजस्य, उदारता की साधना करनी होगी। अकिंचन भाव से परमात्म सत्ता को सर्वत्र ही स्वीकार करते हुए भेद, विविधता ऊँच-नीच की दृष्टि का त्याग करना होगा।

साधना के विघ्न

संसार में अनेक प्रकार की लौकिक पारलौकिक साधनाएँ हैं। किसी भी कार्य में सफलता प्राप्त करने तक की जो मंजिल है वह साधना कहलाती है। इस साधना में यदि कुछ विघ्न उपस्थित होते हैं तो उद्देश्य भ्रष्ट हो जाता है और सफलता नहीं मिलती। आप यदि किसी महत्त्वपूर्ण कार्य में लगे हुए हैं और उसमें सफलता प्राप्त करने की हार्दिक कामना करते हैं तो आपको उन विघ्न बाधाओं से बचाव करना होगा जो मार्ग को कष्टकीर्ण बना देती है। विद्याध्ययन, अन्वेषण, कोई महान कार्य पूरा करना, दैवी साधना, ईश्वर प्राप्ति आदि किसी लक्ष्य को आपने स्थिर किया है तो साधना के विघ्नों से भी परिचित होना जरूरी है। नीचे उन विघ्नों का कुछ विवरण दिया जाता है।

(१) स्वास्थ्य का अभाव—खराब स्वास्थ्य होने पर कोई कार्य अच्छी तरह नहीं हो सकता। रोग पीड़ित और निर्बल शरीर मनुष्य जीवन धारण किये रहने का कार्य भी कठिनाई से कर पाता है। भला वह अन्य साधनाएँ किस प्रकार करेगा ? साधना के लिये स्वस्थ रहने की आवश्यकता है। सोने, काम करने, खाने, पीने आदि का ऐसा नियम रखना चाहिये जिससे स्वास्थ्य बिगड़ने न पावे। प्रकृति सेवन, नियमित व्यायाम तथा आसनों से स्वास्थ्य को बड़ा लाभ पहुँचता है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

(२) **खान-पान में असंयम**—आहार की अशुद्धि तथा असंयम से शारीरिक और मानसिक रोग उत्पन्न होते हैं। अन्न के अनुसार ही मन बनता है। तामसी और अनियमितापूर्वक किया हुआ भोजन चित्त में चंचलता और दुष्ट विचार उत्पन्न करता है फलस्वरूप बुद्धि भ्रष्ट होने लगती है और कुछ करते-धरते नहीं बन पड़ता। तीक्ष्ण मसालों वाला, गरम, रूखा, आहार, बासी, सड़ा हुआ, जूठा, अपवित्र, गरिष्ठ और अनीति के साथ लिया हुआ भोजन तामसी है। इससे बचना चाहिये। मादक द्रव्यों से दूर रहना चाहिये। जहाँ तक हो सके सादा, सात्विक, रसीला और पौष्टिक भोजन भूख से कुछ कम मात्रा में ही करना चाहिये।

(३) **सन्देह**—सफलता उतनी सरल नहीं है जितनी लोग समझते हैं। जब साधारण कामकाजों में कामयाबी मुश्किल से होती है तो महान कार्यों में तो और भी अधिक कठिनाई आती है। कभी-कभी तो इतनी अधिक बढ़ जाती है कि उनका रूप असफलता जैसा प्रतीत होता है। इन सारे विघ्नों को दूर करने वाली यदि कोई चीज है तो वह अटूट श्रद्धा और दृढ़ विश्वास ही है। किसी भी काम को करते समय यदि मन में संदेह उठते रहें सफलता के बारे में यदि बार-बार आकांक्षाओं से मन भरा रहे तो अविश्वास बढ़ता जायेगा और तदनुसार कार्य करने की क्षमता नष्ट होती जायेगी अल्प शक्ति से कठिन कार्य पूरे नहीं हो सकते। इस प्रकार संदेह का निश्चित फल असफलता होती है। जिस काम को करना है पूरी तरह और काफी समय लगा कर सोच विचार लो। किन्तु जब आरम्भ कर दो तो सारे संदेहों को उठा कर ताक में रख दो और मशीन की तरह काम में जुट जाओ। तभी वह पूरा हो सकेगा।

(४) **सद्गुरू का अभाव**—हर विषय का सम्पूर्ण ज्ञान मनुष्य अपने पेट में से ही नहीं प्राप्त कर सकता। उसे उस विषय के बारे में अधिक जानकारी हासिल करनी होती है यों तो हर विषय अनेकों प्रकार से बताने वाले अनेक पुरुष हैं पर उनके पथ प्रदर्शन से खतरा है। क्योंकि जिसने खुद रास्ता नहीं देखा वह दूसरों को क्या बतायेगा। अनुभवी निस्वार्थ और उदार शिक्षक को चुनना कठिन है पर जो इस कार्य में सफल हो गया वह अपने उद्देश्य में भी सफल हो गया। कई इधर-उधर से कुछ जान कर उसी के आधार पर अपना कार्य प्रारम्भ करते हैं, वे कठिन प्रसंग आने पर गड़बड़ा जाते हैं और अपने को खतरे में ढाल लेते हैं इसलिये उचित है कि सत् = सच्चे, गुरू = शिक्षक। सच्चे शिक्षक को तलाश किया जाये। यदि वह आसानी से न मिल सकता हो तो उतावली में अल्पज्ञ व्यक्तियों को अपना मार्गदर्शक मत बनाओ। महापुरुषों की लेखनी का सत्संग करो और उन्हें अपना शिक्षक बनाओ जो बहुत दूर हैं या गुजर चुके किन्तु जिनकी अमर वाणी पुस्तकों द्वारा तुम्हें आसानी से प्राप्त होती है।

(५) **नियमानुवर्तिता का अभाव**—नियत समय पर सोना, उठना, बैठना, खाना, पीना आदि सब ही एक काम करने में बड़े सहायक होते हैं। जो काम आपको करना है उसे नियमपूर्वक करो। प्रतिदिन थोड़ा सा समय भी यदि नियमपूर्वक लगाया जाये तो कुछ ही दिनों में बहुत काम हो जाता है। किन्तु यदि एक दिन बहुत किया और दूसरे दिन बिल्कुल नहीं तो कुछ विशेष लाभ न होगा, एक दिन का अभ्यास दूसरे दिन भूल जाओगे। इसलिये दैनिक जीवन निर्वाह के कार्य तथा अपने विशेष प्रोग्राम के लिये समय नियत करलो और अनिवार्य कारण के बिना उसे किसी प्रकार मत छोड़ो।

(६) **प्रसिद्धि**—यश बड़ी सुन्दर वस्तु है। उसे हर कोई चाहता है। किन्तु कुछ लोग यश को मुख्य और काम को गौण बना लेते हैं फलस्वरूप उनके सारे काम यश के लिये होते हैं। वे वही काम करेंगे जिसमें तारीफ सुनने को मिले। यह इच्छा बढ़ते-बढ़ते इतनी बढ़ जाती है कि वह दम्भ करने पर उतर आता है। इससे वास्तविक लाभ कुछ नहीं होता। दम्भ खुल जाने पर उल्टी अपकीर्ति होती है। इसलिये प्रसिद्धि की ओर से अपना मन बिल्कुल हटा कर ठोस कार्य करने पर जुट जाना चाहिये। यश तो महान कार्यों की छाया है जो सदा साथ रहता है। छाया के पीछे दौड़ने से वह दूर हटती जायेगी किन्तु उसकी ओर से मुँह मोड़ लोगे तो पीछे फिरेगी। प्रसिद्धि की ओर से मुँह मोड़कर एकान्त वनों में रहते हुए जिन ऋषियों ने लोक कल्याण के अनेक कार्य किये थे उनकी कीर्ति लाखों वर्षों से अब तक अमर है। किन्तु झूठे विज्ञापन बाजों की ओर तो लोग आँखें उठाकर भी नहीं देखते। सच्चे हृदय से ठोस काम करिए प्रसिद्धि की इच्छा मत कीजिये। वह तो अपने आप ही मिलने वाली है।

(७) **कुतर्क**—अपने को बुद्धिमान समझने वाले लोग बात-बात में बहस और तर्कों से काम लेते हैं। उनके तर्क इतने बढ़ जाते हैं कि बिना बहस के कदम भी नहीं रखना चाहते। तर्क यद्यपि अच्छी चीज है उससे भले-बुरे की पहचान करने में बहुत मदद मिलती है फिर भी उसकी जड़ में श्रद्धा का होना आवश्यक है। तर्क के लिये किया जाने वाला तर्क यथार्थ में कुतर्क है। इन कुतर्कों का समाधान किसी भी तरह नहीं हो सकता यदि भोजन, शयन, काम में आने वाली वस्तुओं के बारे में तर्क उठाया जाये तो उन्हें काम में नहीं लाया जा सकता। हमारी रीति-रिवाजों, सामाजिक नियम, धर्म व्यवस्था, ईश्वर के अस्तित्व इनमें से किसी को तर्क स्वीकार नहीं कर सकता। फिर तर्क के ऊपर तर्क है। एक तर्क के इतने बच्चे हो सकते हैं कि उन्हें देखकर 'किंकर्त्तव्यविमूढ़' होना पड़ेगा। अन्त में श्रद्धा के अवलम्ब से ही शान्ति मिलेगी। इसलिये कुतर्कों को त्यागो, अपनी आत्मा की आवाज सुनो सत्बुद्धि से उस पर विचार करो और शान्त मस्तिष्क से दृढ़तापूर्वक कदम बढ़ाओ, आपका मार्ग सुगम हो जायेगा।

(८) **आलस्य**—उदासीनता, उपेक्षा व निराशा की भावनाओं के मिश्रण से आलस्य उत्पन्न होता है। यह आलस्य अत्यन्त तामसी और नीच कर्मों से भी नीच है। जो क्रियाशील है वह यदि आज बुरे कर्म करता है तो कल अच्छे कर्म भी कर सकता है किन्तु जिसके मन और शरीर को आलस्य ने घेर लिया वह सांस लेता हुआ मुर्दा है। पृथ्वी का भार बढ़ाने के अतिरिक्त उसका और कोई प्रयोजन नहीं। उसके मन में अच्छे विचार उठ नहीं सकते। आलस्य का मुख पतन की ओर है जो उसे नीच योनियों में ले जाता है। जिसने आलस्य को अपनाया,

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उसने अपने सबसे बड़े और अत्यन्त भयंकर शत्रु को घर में बसाया है। ऐसे व्यक्ति को सफलता कोसों दूर से नमस्कार करती है। आप अपने जीवन को नष्ट नहीं होने देना चाहते हैं तो उसे क्रियाशील रखें। स्फूर्ति, उत्साह, लगन और काम में लगे रहने की धुन हर समय अपने अन्दर होनी चाहिये।

(९) **अल्प में सन्तोष**—यह अवगुण छुद्र हृदय का द्योतक है। हर स्थिति में सन्तुष्ट रहना यदि मन का देवी गुण है, मानसिक शान्ति के लिये इसकी आवश्यकता है। किन्तु यदि ये बात काम करने के बारे में उतर आये तो समझना चाहिये कि इसका कारण या तो आलस्य है या छुद्र हृदयता। एक पुस्तक पढ़कर, एक मिनट भजन करके, जरा सा परिश्रम करके, तुच्छ-सी जनसेवा करके, कुछ ही पैसे कमाकर जो संतुष्ट हो जाता है वह संतोषी नहीं अकर्मण्य है। मनुष्य के करने के लिये अपार काम पड़ा हुआ है। जितना अधिक हो सके काम करना चाहिये और अपने उद्देश्य के अनुसार ऊँची से ऊँची सीढ़ी पर पहुँचने का प्रयत्न जारी रखना चाहिये।

(१०) **वासना**—तरह-तरह के इन्द्रिय सुखों में मन ललचाना और उनके सम्बन्ध में खयाली पुलाव पकाते रहना, मनुष्य जीवन की सार्थकता के बारे में एक बहुत बड़ा विघ्न है। इन्द्रियों के सुख अतृप्त हैं, ज्यों-ज्यों उन्हें पूरा करते हैं त्यों-त्यों वह आग भड़कती है और साथ ही वह शरीर एवं मन को जलाती जाती है। सुस्वाद भोजन, शिश्नेन्द्रिय की परायणता तमाशे देखने की रुचि इनके प्रलोभन मन को अपना दास बना लेते हैं और दूसरे किसी महान कार्य की ओर जाने नहीं देते। यदि जाता है तो बार-बार उचटा देते हैं। जिसका मन बार-बार उचटता हो तो समझे कि इन्द्रियों के सुख उसे चार बार बहका रहे हैं। आपको किसी उपेक्षा की पूर्ति करनी है तो इन्द्रिय सुखों को फटकार दीजिये। क्योंकि वे जैसे-जैसे तृप्त किये जाते हैं वैसे ही वैसे उग्र रूप धारण करके आपको उलटा खाते हैं और अन्त में अपने वश में करके नष्ट कर डालते हैं।

(११) **ब्रह्मचर्य का अभाव**—प्राणशक्ति, स्फूर्ति, वृद्धि, और खोज गत वस्तुएँ वीर्य से ही बनती हैं। इसलिये उसे अमूल्य रत्न समझते हुये जान से इसकी रक्षा का प्रयत्न करना चाहिये। शरीर और मन का स्वास्थ्य वीर्य की शक्ति से प्राप्त होता है। इसलिये क्षणिक इन्द्रिय सुख के लिये नष्ट करना धूलि के बदले हीरा बेचना है। अखण्ड ब्रह्मचर्य धारण कीजिये। यदि विवाहित हैं तो केवल सन्तान उत्पन्न करने के उद्देश्य से धर्म पूर्वक उसका उपयोग कीजिए। इससे आपकी शक्ति सुरक्षित रहेगी।

(१२) **कुसंग**—मनुष्य शरीर एक प्रभावशाली विद्युत धारण किये हुये है जो अपने पास वालों पर अनिवार्य रूप से असर डालती है मजबूत विचारों का दूसरों पर जरूर असर पड़ता है अगर आप अपृ हों और आरम्भिक अभ्यासी हों तो बुरे चरित्र और दुष्ट विचार वालों से दूर रहिये उनके कार्यों में कोई दिलचस्पी मत लीजिये। हो सके तो अरुचि प्रकट कीजिये इससे आप उनके संक्रामक असर से बचे रहेंगे। सत्संग की महिमा अपार है श्रेष्ठ पुरुषों का साथ गंगा के समान है जिसमें गोता लगाने से क्लेश कटने से श्रेष्ठ पुरुषों के साथ रहने से, उनके मौखिक या लेखबद्ध विचारों के मनन करने से आत्मोत्थान होता है। हाँ, यदि आप अपने को अत्यन्त सुदृढ़ समझते हैं तो सुधार की दृष्टि से बुरे विचार वाले को अपने साथ ले सकते हैं परन्तु सावधान कहीं उसका उलटा असर आप पर न हो जाये।

(१३) **परदोष दर्शन**—दूसरे के अवगुण देखना अपनी बुद्धि को दूषित करना है। फोटो खीचने के कैमरे के सामने जो चीज रखी जानी है उसी का अक्स भीतर प्लेट पर खिंच जाता है। यदि आप दूसरों की बुराइयाँ ही देखेंगे तो उनके चित्र अपने अन्दर अंकित करके उन्हें खुद भी ग्रहण कर लेंगे। इसलिये दूसरों के सद्गुणों पर ही दृष्टि रखिये। सब में परमात्मा का स्वरूप देखिये और उन्हें प्रेम की दृष्टि से देखिये आपका हृदय प्रसन्न रहेगा। यदि किसी में बुराई दिखाई पड़े तो उससे घृणा मत कीजिये और जहाँ तक हो सके सुधारने का प्रयत्न कीजिये। परदोष दर्शन के कारण जो घृणा और द्वेश मन में उत्पन्न होते हैं वह भीतर ही भीतर अशान्ति उत्पन्न करके मन को निश्चित पथ से डिगा देते हैं। साधना को सुरक्षित रखने के लिये जरूरी है कि किसी की गन्दगी टटोलकर अपनी नाक को दुर्गन्धित न किया जाय।

(१४) **संकीर्णता**—अपने मजहब, विचार या विश्वासों पर दृढ़ रहना उचित है। परन्तु दूसरों के विश्वासों को घृणा की दृष्टि से देखना या झूठा समझना अनुचित है। हम सब सत्य के आस-पास चक्कर-काट रहे हैं किन्तु कोई पूर्ण सत्य तक नहीं पहुँच सका है। इसलिये हमें एक-दूसरे के प्रति उदार होना चाहिये। दूसरों के दृष्टिकोण को ध्यान पूर्वक देखना चाहिये और सत्य को स्वीकार करने को उद्यत रहना चाहिये। कट्टरता एक ऐसा दुर्गुण है जिसके कारण आदमी न तो अपनी बुराइयों को छोड़ सकता है और न अच्छाइयों को ग्रहण कर सकता है।

साधक इन भ्रान्तियों से बचें

आध्यात्मिक साधक का मार्ग अत्यन्त दुर्गम है, 'क्षुरस्यधारा' इसका श्रुतिप्रमाण है। यह मार्ग अनेकों बाधाओं, समस्याओं तथा संशयात्मक भीषण अरण्यों से होकर जाता है। इसमें एक विरोधी तत्त्व यह है कि हमारा मन ही हमारा शत्रु है, जिसे हमारा मित्र बनना चाहिए था और सद्परामर्श देना चाहिए था। यदि इस मन का संस्कार किया जाये तो यह हमारा वास्तविक मित्र बन जाता है। परन्तु यह तभी होता देखा गया है, जब कि साधक आध्यात्मिक साधना में पर्याप्त रूप से अग्रसर हो जाता है। उस समय मन उसकी सहायता करने लगता है। जब तक यह अवस्था न आवे तब तक हमें अत्यन्त सावधान रहना चाहिये और उसकी कपट-क्रियाओं से सचेत रहना चाहिये। न जाने किस समय वह विद्रोह कर दे। यह अत्यन्त कूटनीतिज्ञ और वाममार्गी है। इसे महात्माओं ने प्रवंचक की संज्ञा भी दी है। मन की कला-कुशलता को जानने के लिये सर्वप्रथम सिद्धान्त यह है कि साधक यह अनुभव करले कि वह मन को अच्छी तरह जानता है, अतः मन उसको धोखा नहीं दे सकता। साधारणतः ऐसा नहीं होता। असावधान साधक यह विश्वास करने लगता है कि मैं मन का स्वामी हूँ। फल

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

यह होता है कि मन उसकी बौद्धिकता को अपहृत कर लेता है और अपना कपटजाल सूक्ष्म-विधान से बिछा देता है।

आपने यह तो सुना होगा कि शैतान भी अपने उद्देश्य की सिद्धि के लिये धर्मशास्त्र का उदाहरण दे सकता है। इसी प्रकार मन बुराइयों में लिप्त होने के लिये तत्कथित गुण का प्रयोग करता है। इसमें वाद-विवाद की स्वाभाविक इच्छा होती है, यह भ्रान्ति है। अपने पक्ष में गर्हित-कार्य को न्याय संगत सिद्ध करने के लिए अच्छे सिद्धान्तों का उपयोग करता है और जब तक इसकी गम्भीर समीक्षा न की जाये, यह कपट प्रकट नहीं होता।

इन वाद-विवादात्मक सिद्धान्तों का (कुछ का ही) वर्णन नीचे दिया जाता है। यह वास्तविक साधकों के लिये, जो अपने मन का अध्ययन करना चाहते हैं तथा तत्सम्बन्धी दोषों तथा त्रुटियों का परिहार करना चाहते हैं, उपयोगी सिद्ध होंगे। जो साधक व्यवहार परायण हैं उनके लिये भी यह सिद्धान्त विशेष लाभदायक सिद्ध होंगे।

(१) साधकों से कहा जाता है, जब तुम स्त्रियों में रहो तो देवी भाव अथवा मातृभाव की अनुभूति करो। यह आपकी पवित्रता तथा आध्यात्मिक उन्नति के लिये महान् सिद्धान्त है। किन्तु इससे यह अर्थ नहीं कि आप स्त्रियों में रहो और इसका यह तात्पर्य भी नहीं कि आप अपने विरोधी लिंग से सीमा को तोड़कर बिना किसी मर्यादा के मिलते-जुलते रहो। मन यह प्रश्न करेगा-क्यों नहीं ? यदि करूँ तो कैसा ? उनकी उपस्थिति में अपसरण सर्वथा कायरता है। जब हम देवी-भाव से विचार करते है तो भय कैसा ? सावधान साधकवृन्द ! इन विचारों से सावधान ! ईश्वरीय भाव इस बात का प्रमाण नहीं कि साधक के मार्ग की सम्पूर्ण बाधायें दूर हो गयीं। अतः साधकों के लिये स्थायी नियम यही है कि विरोधी लिंग के साथ समस्त सम्पर्क त्याग दें। हाँ, जब कभी ऐसा सम्पर्क अनिवार्य हो जाये तो देवी भाव रखना न्यायसंगत है। इसके साथ ही साधकों को स्त्री-विरोधी होने अथवा उनसे घृणा करने से निषेध किया गया है। पूजा करो, जैसा कहा गया है, किन्तु कुछ दूर से। देवी भाव तथा मातृभाव के सिद्धान्त से यह विचार नहीं करना कि तुम सदा उन्हीं के साथ रहो। अपने मन की इस विवादात्मक प्रवृत्ति को रोको।

(२) इसके पश्चात एक शिक्षा इस प्रकार है—तुम फुफकार सकते हो परन्तु काटना नहीं। अर्थात् तुम दूसरे को उसके सामने धमका सकते हो, उसको अपमानित भी कर सकते हो, किन्तु उसके विनाश के लिए कर्त्तव्यपरायण न होना। फुफकारने का यह सद्परामर्श उस सर्प को दिया गया है, जो अधिक धार्मिक बनने के फेर में ऐसा निरीह और निर्बल बन गया कि कुछ दुष्ट बालकों ने उसे उत्पीड़ित करना प्रारम्भ कर दिया था। जानते हो यह केवल मात्र भीतर गृहस्थों को जो अपने व्यावहारिक जीवन में कठिन परिस्थितियों का सामना करते हैं एक परामर्श मात्र है। यदि इस व्यावहारिक जीवन में अवन्ती के ब्राह्मण की भाँति अत्यधिक मात्रा में विनम्रता का अनुसरण किया जायेगा तो सर्वत्र-व्याप्त आसुरिक-तत्त्वों के बीच जीवन धारण करना असम्भव हो जायेगा। अतएव जहाँ तक हो सके तुम्हारी मौलिक-भद्रता तथा भ्रात तत्त्व पर प्रभाव न पड़े, बाहरी निरपेक्षता का प्रदर्शन क्षम्य है, किन्तु साधना तथा निवृत्ति मार्ग पर चलने वाले साधक को यह परामर्श नहीं दिया जा सकता। अवश्यमेव नहीं। साधकों को इस बात पर ध्यान रखना चाहिए कि साधक के लिए दर्शन तो दूर रहा फुफकार की भी आज्ञा नहीं है, क्योंकि फुफकारना शीघ्र ही उसके स्वभाव का अंग हो जायेगा और समय-असमय तुम हर वस्तु पर, हर बात के लिये हर एक पर फुफकार छोड़ने लगोगे। इस फुफकार में सब प्रकार की उदण्डता-प्रचण्ड तर्क-वितर्क, चुभते व्यंग्य, कठोर उत्तर, चिल्लाहट तथा कटुशब्द भी सम्मिलित हो जायेंगे। अन्त में शारीरिक-हिसा तथा मारपीट, प्रत्येक प्रकार की अमानुषिक निर्दयता फुफकार की ही श्रेणी में रख दी जायेगी और इससे आध्यात्मिकता का सर्वनाश हो जायेगा। मन इसके लिये सदा प्रतीक्षा करता रहता है कि वह आपके अनुग्रह का अनुचित लाभ उठाये। इसकी स्वाभाविक गति अधोमुखी है। अतः न तो दंशन करो और न फुफकार ही। मधुर-स्वभावी, विनम्र तथा सभ्य बनो। यदि फुफकारना ही चाहते हो तो अपने ही मन पर फुफकारो। अहंकार त्याग करते हुए, षड् बैरियों का दमन करो। मन से सावधान रह इस विवादात्मक-प्रवृत्ति के दास मत बनो।

(३) एक परामर्श यह है कि दृढ़ निश्चयी बनो, अपने सिद्धान्त से दृढ़ रहो, एक अणु भी विचलित न होना। यह सिद्धान्त सत्यशील साधक के लिए सर्वोत्तम परामर्श है, किन्तु अभाग्यवश यह हठवादिता का आदेश बन गया है। यह तामसिक गुण है। किन्तु मन तुम्हें यह निश्चय करा देगा कि तुम आत्मबल प्रकट कर रहे हो। यह आपको अहंकार के साथ संश्लिष्ट करा देगा। परन्तु सत्यशील साधक सात्विक-निष्ठा तथा हठवादिता में सावधानी के साथ विवेक करता है। आत्मबल ऐसी सस्ती वस्तु नहीं है, जो बिना किसी नियन्त्रण तथा साधन के तथा बिना इच्छाशक्ति की पवित्रता के प्राप्त हो सके। इसके लिए समस्त सांसारिकता तथा अपने जीवन का मूल्य त्यागना पड़ता है तथा आत्म बलिदान करना पड़ता है। इस सिद्धान्तों से यही अर्थ निकलता है कि सत्य तथा दृढ़प्रतिज्ञ रहो, परन्तु आत्मप्रपंचक भावनाओं के प्रति नहीं। सब प्रकार के योगानुष्ठानों से दृढ़बद्धित रहो, किन्तु हठवादिता से बचो। हठवादिता तो भ्रममूल विवादात्मक प्रवृत्ति है सत्यानुशीलन तथा सदनिष्ठा आत्म जागृति का साधन है।

(४) सदा सत्य बोलो तथा स्पष्टवादी बनो। यह भी एक उपदेश है। इसका यह अर्थ है कि जब तुम्हें बोलने की आवश्यकता हो तो केवल सत्य बोलो। इससे यह तात्पर्य नहीं कि किसी भी स्त्री अथवा किसी पुरुष के सामने तुम्हारा जो विचार हो उसे उसके मुँह पर कहते फिरो। यह तो अनावश्यक व्यवहार है। स्पष्टता के बहाने दूसरों की भावनाओं का विचार किये बिना ही अपनी स्वतन्त्र-सम्मतियों को प्रकट करना आर्जव तथा स्पष्टवादिता नहीं है, वरन् यह एक प्रकार की विचार हीनता और निर्दयता की सीमा है। इससे साधक की प्रशंसा नहीं होती।

जो उपदेशक आपको सत्य एवं स्पष्ट बोलने का आदेश देता है, वही यह भी उपदेश देता है कि मिष्ट-भाषण और मधुर

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

वचन कहो। मैं तो इस विचार का हूँ कि अरुचिकर सत्य का अकथित रहना ही श्रेयस्कर है। यदि यह अनिवार्य हो जाये तो उसके अभिप्रकाशन की रीति है, वह है नम्र विज्ञप्ति, जिससे दूसरों की भावनाओं पर चोट न लगे। यह भी तो सत्य भाषण है। याद रखो कि सत्यात्मकता तथा अहिंसा साथ-साथ चलनी चाहिए।

(५) यह सत्य है कि वैराग्य एक मानसिक अवस्था एवं अनासक्ति है। मनुष्य का स्वभाव है कि वह इस परिभाषा का उपयोग इन्द्रिय-जीवन की उपयोगिता को सिद्ध करने के लिए करता है। अतः तर्क किया जाता है कि मैं इन सबमें आसक्त नहीं हूँ, मैं एक क्षण में इनसे ऊपर उठ सकता हूँ। मैं तो स्वामी के समान इनका आनन्द लेता हूँ। मान से तो मैं अनासक्त हूँ। साधको ! क्या आपको स्मरण नहीं है कि विषयों के सम्पर्क से विश्वामित्र के समान तपस्वी भी पतित हो गये। अतः वैराग्य को साधारण भाव से ग्रहण मत करो। श्रमपूर्वक वैराग्य का अर्जन करना पड़ेगा और सावधानी से उसकी रक्षा करनी पड़ेगी।

तपस्या की चरम सीमा तक जाने पर भी यही दशा होती है। मनुष्य की साधारण प्रकृति इन्द्रियजन्य है। मन आनन्द से प्रेम तथा संयम से घृणा करता है। अविवेकी साधक निज विशेषताओं को सत्वर ही भूल जाता है और सभी तपस्याओं को अप्रियकर ही समझता है। तत्परिणामतः वह भोग में लिप्त हो जाता है और तितिक्षा-शक्ति का त्याग कर देता है तथा सहस्रों आवश्यकताओं का दास बन जाता है। यहाँ मूर्खतापूर्ण अति से सावधान किया गया है किन्तु यह भी साथ-साथ समझना कि साधना की प्रारम्भिक अवस्था में विकास के निमित्त कुछ अंशों तक तितिक्षा अनिवार्य है। मन गीता का उदाहरण भी देगा कि भगवान ने तामसिक तप की निन्दा की है। उन्होंने शरीर, वाणी तथा मन के सात्विक-संयम की प्रशंसा की है। अतः सावधानी से विचार स्थिर करना चाहिए।

(६) अन्त में सबसे भयंकर धोखा, जो मन देता है वह स्वयं साधना के सम्बन्ध में है। साधक जिस साधना का उपयोग अपने जीवन के उत्थान तथा उस को दिव्यतम बनाने के लिये करता है, वही अहंकार तथा इन्द्रियों का कौतुक बन जाता है। यह जाल ऐसा है, जिसको क्षत-विक्षत करना अत्यन्त दुरूह है। यहाँ तक कि साधक की सालों की साधना का विकास रुक जाता है। उदाहरण के लिए देखिए, कोई साधक मधुर राग तथा संगीतप्रियता के कारण अपनी साधना के लिए कीर्तन चुनता है। कला के प्रशंसक तो मिल ही जाते हैं। अतः प्रत्येक अवसर पर उसको निमन्त्रण आने लगता है। सत्संगियों को उससे प्रेम भी होने लगता है। अब मन अपना जाल बिछाता है। कीर्तन दिन पर-दिन मधुस्वर होता जाता है, उसमें नित्य नवीन राग और आलाप का संयोग होता जाता है। इस प्रकार साधना दुर्मुखी हो जाती है। इसका परिणाम यह होता है कि साधक जाल में पूरी तरह फँस जाता है और उसकी साधना मोक्ष के स्थान पर बन्धन का कारण बन जाती है।

निष्काम कर्म योग ही लो। बिना किसी प्रतिफल के परोपकार तथा सेवा करना इस संसार में नहीं सुना जाता। अतः निष्काम सेवक असाधारण माने जाते हैं। उनके लिये सभी के द्वार खुले हैं। सभी लोग अपनी कष्ट गाथायें उसे सुनाते हैं, अपना अन्तर खोल देते हैं तथा अपनी व्यक्तिगत गोपनीय समस्यायें भी उसके समक्ष उपस्थित कर देते हैं। क्योंकि उनका विचार रहता है कि निष्काम योग सभी बातों में पवित्र है। यहाँ साधकों को छुरे की धार पर चलना पड़ता है। सेवा के लिए तत्कथित पथ पर अभिन्न हृदयता तथा दम्भ का परिपोषण होता है और साधक भी निष्काम सेवा में अत्यन्त प्रेम रखता हुआ प्रतीत होता है। परन्तु मैं यह बताना चाहता हूँ कि यह अनुराग इन्द्रियपरायणता के कारण ही है न कि सेवा भावना के कारण।

इसी प्रकार से तितिक्षु साधक भी इसमें रत रहता है, क्योंकि उसकी प्रसिद्धि जो हो जाती है। उसकी आप पूजा करने लगते हैं। साधना का लक्ष्य ही बदल जाता है।

आध्यात्मिक साधना के त्रिदोष

प्रत्येक प्राणी उन्नति की ओर अग्रसर होना चाहता है, पर जहाँ तक बाधक कारणों का सम्यग् परिज्ञान न हो एवं उनको दूर न किया जाये, उन्नति असम्भव है। आध्यात्मिक उन्नति के लिए भी उसके बाधक कारणों को जानना परमावश्यक होता है। यहाँ पर केवल तीन दोषों पर संक्षेप में प्रकाश डाला जा रहा है। (१) ममत्व, (२) कपट और (३) अवगुण ग्राही दृष्टि। जहाँ तक ये दोष रहेंगे, वहाँ तक साधना अग्रसर एवं फलवती नहीं होगी।

(१) **ममत्व**—जहाँ तक सांसारिक पदार्थों में आत्मा की आसक्ति रहेगी, आत्मा का लक्ष्य बहिर्मुखी रहने के कारण आत्मानुभव का मार्ग बन्द ही रहेगा। इसलिए सारे भौतिक पदार्थों-भाषों से अपनी आत्मा को अलग, भिन्न, समझ कर उनके आकर्षण को रोकना बहुत ही आवश्यक है पर पदार्थों की आसक्ति हटते ही आत्मा के स्वरूप का दर्शन एवं अनुभव होगा, आत्मोन्नति का प्रथम सोपान है। जिन-जिन वस्तुओं को आत्मा मेरी अपनी समझता है उनकी प्राप्ति-अभिवृद्धि में हर्ष एवं विनाश-क्षीणता में शोक होता है। जहाँ ममत्त्व भाव नहीं, वहाँ हर्ष और शोक का प्रादुर्भाव नहीं होता है। क्वचित् होता है तो अत्यल्प एवं क्षणिक। आत्म द्रव्य वास्तव में इन पाँच द्रव्यों से सर्वथा भिन्न है और दृश्यमान सभी पदार्थ पौद्गलिक (भौतिक) हैं, क्योंक पुद्गल के सिवाय सभी पदार्थ अरूपी हैं अरूपी पदार्थों पर आसक्ति नहीं होती। जिसे हम देखते हैं, सुनते हैं, खाते हैं, सूंघते हैं और स्पर्श करते हैं अर्थात् पाँचों इन्द्रियों द्वारा जिनके साथ हम अपना किसी प्रकार का सम्बन्ध स्थापित करते हैं। उन्हीं का मन विचार करता है अच्छे या बुरे, मेरे या तेरे की कल्पना करता है और उस कल्पना के द्वारा ही आत्मा अपने स्वरूप (विचार) से च्युत होकर उनके प्रति आकर्षित होता है। इसलिए 'मैं और मेरा' इसी को मोह का मूलमन्त्र माना गया है और मोह ही आत्मा का परम शत्रु सबसे प्रबल बाधक कारण माना गया है।

पर पदार्थों के संयोग से आत्मा-विभाव दशा को प्राप्त होता है। इसीलिए सर्व संग परित्याग-अपरिग्रहता-निर्ग्रन्थता को

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

जैन धर्म में प्रमुख स्थान दिया गया है। जैन तीर्थ कर स्वयं इनका आदर्श उपस्थित करते हैं अर्थात् साधना का प्रारम्भ सर्वसंग परित्याग से ही करते हैं। आसक्ति का परिहार पदार्थों-द्रव्यों के स्वरूप का ज्ञान पर्व परिणामों के द्वारा होता है। इनका मूलमन्त्र है 'एगोहूं नत्थि में कोउ नहि मनस्स कस्साय'—मैं किसी का नहीं—मेरी आत्मा अकेली है। मनुष्य जरा सा विचार करे तो इस अकेलेपन का सहज अनुभव हो जाता है। जन्म-ग्रहण के समय आत्मा अकेले ही उत्पन्न होती है, मृत्यु के समय भी सारे पदार्थों को छोड़कर वह अकेले ही परलोक जाता है। रोगादि दुःख भी आत्मा को अकेले ही भोगने पड़ते हैं। अतः आत्मा अकेले ही बाह्य संयोग धन, दौलत, कुटुम्ब परिवार यावत् देह भी अपना नहीं है। तब उन पर ममत्व रखना मूर्खता व अज्ञानता नहीं तो क्या है। योगी पुरुषों ने सबसे बड़ी भूल इसी को बतलाया है कि जो पदार्थ अपने नहीं, उन्हें अपना मान लेना और अपने स्वरूप को भूल जाना।

बहिर्मुखी वृति के कारण आत्मा की सारी शक्ति बाह्य पदार्थों की ओर लगी है और वह उनके लाभ-हानि में ही सुख-दुःख मान बैठा है, अन्यथा सुख व आनन्द कहीं बाहर से आने वाली चीज नहीं। सच्चे स्वरूप के अज्ञान के कारण ही वह इधर दौड़-धूप कर रहा है। यदि मैं अकेला हूँ, कोई भी चीज मेरी नहीं है तब उन पर आसक्ति कैसी ? आनन्द यदि मेरे पास है तो उसकी प्राप्ति के लिए दौड़-धूप क्यों ? इसी पर विचार करिये। पौद्गालिक-सभी पदार्थ रूप वाले विनाशी हैं, आत्मा अरूपी एवं अविनाशी हैं दृश्यमान सभी चीजें पुद्गल की बनी हुई हैं। अतः ममत्व को हटाकर आत्मा को अन्तर्मुखी होना आध्यात्मिक साधना के लिए परमावश्यक कार्य है।

(२) **कपट**—वस्तु के स्वरूप को अन्य प्रकार से दिखलाने का प्रयत्न कपट है मेरे हृदय में कुछ और है, बोलता कुछ और हूँ और करूँगा और ही। यह आत्मोन्नति का परम बाधक कारण है इस प्रपंच जाल से आत्मा बड़ी मलिन हो जाती है। भूमिका की शुद्धि के बिना सुभग चित्रों का आलेखन सम्भव नहीं। इसी प्रकार आत्मा का सरल-निष्कपट होना उसकी भूमिका शुद्धि है। जहाँ तक वक्रता है भ्रम फैलाने की वृत्ति काम कर रही है, वहाँ तक सद्वृत्तियाँ पनप नहीं सकती। चित्त बहिर्मुखी बना रहता है। कैसे अपने दोषों को छिपाया जाये दूसरे को ठगा जाये, इसी में चित फँसा रहता है। वहाँ सुविचारों को अवकाश कहाँ ? जो पापी है और अपने आपको छिपाने का प्रयत्न कर लोगों के समक्ष अपने को धर्मी दिखलाने की कोशिश करता है, उसका सुधार बहुत ही कठिन है।

(३) **अवगुणग्राही दृष्टि**—यह भी एक बड़ा भारी अवगुण है इसके कारण मनुष्य अवगुणों की ओर अग्रसर होता है। ऐसी आत्मा हजार गुणों को नहीं देखती बल्कि छिन्द्रान्वेषी होकर अवगुण की ओर ही झुकती है। यह नहीं सोचता कि दोष हम सब में है किसी में कम और किसी में अधिक और पराये दोषों को देखने से लाभ ही क्या ? एक सन्त ने इस सम्बन्ध में बहुत ही सुन्दर कहा है—"हे आत्मा दूर जलती हुई अग्नि को क्या देखता है। तेरे स्वयं पैरों में दोषों की अग्नि सुलग रही है उसे देखो, पराये मैल में कपड़े धोने से वे उज्ज्वल कैसे होंगे। थोड़े बहुत अवगुण सभी में होते हैं। तुम्हारे में भी हैं तो अपने दोषों को क्यों नहीं देखते। पराई निन्दा में क्यों लगे हो। निन्दा करने की यदि तुम्हारी आदत ही पड़ गई है तो अपने दोषों की निन्दा करो। अतः अपने दोषों की ओर दृष्टि डालो और दूसरे की निन्दा को छोड़ो।"

"मनुष्य जैसे विचारों में रहता है वैसा ही बन जाता है।" अवगुणों को ढूँढ़ने की दृष्टि रखने से स्वयं अवगुण का भाजन हो जाता है। इसीलिए इस दृष्टि दोष को निवारण कर हमें अपनी दृष्टि को गुण ग्राहक बनाना आवश्यक है। अवगुण देखने हों तो अपने देखो, जिससे उन्हें छोड़ने की भावना जगे तथा आत्मा दोष रहित बने। औरों के तो गुण ही देखो जिससे स्वयं गुणी बनो और गुणों के प्रति तुम्हारा आकर्षक बढ़े।

इन तीनों दोषों की विवेचना का सार यह है कि इनके द्वारा आत्मा परपदार्थों की ओर संलग्न रहती है, जिससे आत्मा को बढ़ने का अवकाश ही नहीं मिलता, विकास नहीं होता अतएव बहिर्मुखी वृत्तियों की ओर से हटकर अन्तर्मुखी होने का लक्ष्य रखा जाये। ममत्व, कपट और अवगुण ग्राही से बचा जाये तभी आत्मोन्नति होगी।

साधक की दो विपत्तियाँ

महर्षि अरविन्द के अनुसार तमोगुण की प्रधानता रखने वाला व्यक्ति दो प्रकार की विपत्तियों में फँस सकता है। पहली विपत्ति है अपने को हीन समझना—मैं दुर्बल हूँ, पापी हूँ, घृणित हूँ, अज्ञानी हूँ, अकर्मण्य हूँ आदि भावनायें उठने से वह समझने लगता है कि मैं सबसे नीच हूँ, भगवान को हमारी आवश्यकता नहीं। या भगवान मुझ जैसे नीच को कैसे उद्धार कर सकते हैं, ऐसा मालूम होता है कि सोचने वाला भगवान की शक्ति को सीमित मानता है भगवान गूंगे को बोलने की शक्ति तथा लंगड़े को चलने की शक्ति दे देते हैं यह बात असत्य समझता है। दूसरी विपत्ति जरा-सी सिद्धि पा जाने पर साधना से मुँह मोड़ लेना और प्राप्त सिद्धि को सब कुछ समझ कर उसी के भोग में लग जाना। साधना की ये दोनों ही विपत्तियाँ विघ्न हैं। इसलिए साधक को सदा इस बात का ध्यान रखने की आवश्यकता है कि वह भी भगवान का अंश है और भगवती महामाया आदि शक्ति उसके अन्तस्तल में बैठी हुई उसका संचालन कर रही है। सर्व शक्तिमान भगवान की लीला तरह-तरह की होती है इसलिए किसी एक लीला के अधीन होकर चुपचाप बैठे रहना साधक के लिए उचित नहीं है। यह तो उसके अहंकार की विद्यमानता का फल है जब तक अहंकार रहता है तब तक वास्तविक धारणा का उत्पन्न होना ही सम्भव नहीं है इसलिए अहंभाव को निर्मूल कर देने पर ही साधक उन विपत्तियों से बच सकता है।

साधकों के आवश्यक कर्त्तव्य

जिन चीजों को हम देखते हैं या जिन बातों को हम सुनते हैं वह हमारे अन्दर एक नक्शा बनाती हैं और यही नक्शा या चित्र गहरा हो जाने पर 'संस्कार' कहलाता है। ऐसे अनेकों संस्कार हम दिन रात में अपने बना डालते हैं और फिर इन्हीं

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

संस्कारों में जकड़े हुये जन्म-मरण की चरखी में झूलते रहते हैं। मुक्ती प्राप्त करने के लिए प्रथम उपाय यह है कि हम संस्कार बनाना रोक दें और पिछले किये हुए संस्कारों को तप से या भोग से समाप्त कर डालें। जब तक यह जाल नहीं कटेगा, मुक्ति नहीं मिल पायेगी।

संसार में रहते हुए यह मुमकिन नहीं हो सकता कि हम किसी वस्तु को न देखें या किसी बात को न सुनें, इससे तो वन और गुफाओं में रहने वाले भी नहीं बच पाते, वन में पशुओं की भयानक गर्जना, पक्षियों के सुरेले राग, जल स्रोतों का प्रपात, इत्यादि तो उनके कानों में पहुँचेंगे ही ? वृक्षों की हरियाली, पर्वतों की चट्टानें, नदियों का प्रवाह, सुन्दर-सुन्दर फुदकती हुई चिड़ियाँ, हिरनों के बच्चे इत्यादि को उनकी आँखें भी देखती ही हैं और सुनी हुई या देखी हुई वस्तुयें संस्कार बना डालती हैं। इसीलिए महापुरुषों ने यह बताया है कि आँखें को देखने से मत रोको, उसे देखने दो, क्योंकि देखना उसका स्वाभाविक गुण है। परन्तु यदि कोई वस्तु तुम्हें प्यारी लगती है और मन फिर से देखने को लुभायमान हो रहा है, तो आँख को उस ओर जाने से रोक लो। ऐसा करने से मन पर अधिकार ही नहीं होगा बल्कि संस्कार बनना रुक जायेगा। क्योंकि संस्कार एक बार के देखने से या एक बार किसी बात को सुनने से नहीं बनता बल्कि बार-बार एक ही तरफ इन इन्द्रियों के प्रयोग करने पर बना करता है।

चंचलता और अशान्ति का कारण विचार है। विचार अपना हो या दूसरे का वह अन्तर के चिदाकश में कम्पन उत्पन्न कर देता है और उसी से मन व इन्द्रियाँ चंचल हो उठती हैं। चंचलता आते ही शान्ति भंग हो जाती है और मन में विकार आने लगते हैं।

मन के विकारों का प्रभाव शरीर पर आता है। इन्द्रियाँ विकारी बन विषयों की ओर दौड़ने लगती हैं, और प्राणी को बुरी तरह पटक के मारती हैं। शरीर अनेक रोगों से ग्रसित हो जाता है, और वह दुःखी हो चिल्लाने लगता है। इन सब का एक ही उपाय है कि अभ्यास या सत्संग के द्वारा या तो विचार बिल्कुल ही न उठने दिया जाये और यदि उठे भी तो वह शुद्ध सात्वकी हो, अशुभ और राजसी तामसी न हो।

—पुस्तकों का, चित्रों का प्रभाव, भी मन पर बहुत पड़ता है, इसलिए अध्ययन में अच्छी पुस्तकें रक्खो। चित्रों को अपने गृह में रखना या तो बिल्कुल छोड़ दो या संत-महात्मा और देवताओं के चित्र रक्खो ताकि बुरे विचार मन न उत्पन्न करने पावे, उसमें सात्वकी विचार ही आवें।

—अभ्यासी को भोजन में भी संयमी रहना पड़ता है। अन्न से ही मन बनता है। कुधान्य और कुविचारों में खाया हुआ भोजन मन को विकारी बनाता है, इसलिए अच्छी व शुद्ध कमाई का, शुद्धता से परोसा हुआ, और शुद्धता से खाया हुआ भोजन ही अभ्यासी को लाभदायक होता है। जहाँ तक बन पड़े, चुपचाप खामोशी से भोजन करो। भोजन के समय इष्ट या गुरू का ध्यान निरन्तर बनाये रखने का उद्योग करते रहो। शान्ति और खुशी के साथ भोजन करो। क्रोध-भय-शोक या चंचल वृत्ति को लिए हुए भोजन अभ्यासी को त्याज्य है, इससे मन में और शरीर में रोग उत्पन्न होते हैं।

—भोजन के प्रभाव का अनुभव कोई भी अभ्यासी उसी दिन कर सकता है, जिस दिन शान्ति व एकत्रित होकर, भोजन किया जायेगा उस दिन चौबीसों घण्टे चित्त प्रसन्न रहेगा और भजन के समय एकाग्रता लाने के लिए कुछ भी उद्योग नहीं करना पड़ेगा। मन स्वयं ही शान्त हो के बैठ जायेगा और जिस दिन गड़बड़ी में भोजन पाया जायेगा उस दिन वृति चंचल रहेगी और अभ्यास में कठिनाई पड़ेगी।

—नियमित आहार विहार करना, सदाचारी रहना, एक अभ्यासी के लिए बहुत जरूरी है। आहार-विहार के बिगड़ने पर शरीर में निर्बलता और रोग बढ़ते हैं, रोगी और कमजोर से साधन नहीं बन सकता और सदाचारी न रहने से मन पर कालिमा छा जाती है, हृदय मलीन हो जाता है वह खुद ही अपनी नजरों में अपने को पतित पाता है और शुभ काम के करने को उसकी हिम्मत नहीं रहती।

—दुराचारी का हृदय कम्पित होता रहता है वह श्रेष्ठ पुरुषों की संगत से दूर भागते हैं। भजन पूजन से चित्त उचाट खा जाता है और संत-महात्माओं का तो उन्हें भय मालूम देने लगता है इसलिये उनके सन्मुख नहीं पड़ते। इसलिए अभ्यासी को सदाचार का पूरा पालन करना उचित है।

—सभ्यता (अखलाक) भी एक चीज है जो साधक के पास अवश्य होना चाहिए। असभ्य मनुष्य कभी संत या पूर्ण पुरुष नहीं बन सकता। साधू को सरल स्वभाव-सदाचारी और सभ्य होना जरूरी है। साधन करते हैं पर दूसरों को तुच्छ समझते हैं गालियाँ बकते हैं पास आने वाले के साथ दुर्व्यवहार से पेश आते हैं इत्यादि, ऐसा मनुष्य कभी ईश्वर का दर्शन नहीं पा सकता। वह कुछ सिद्धियाँ लेकर संसार में कौतुक दिखा सकता है, प्रतिष्ठा करा सकता है, धन बटोर सकता है, पर ऊँचे पद को नहीं प्राप्त हो सकता।

—असभ्यता (बद अखलाकी) अहंकार का चिह्न है। अपने को श्रेष्ठ और बड़ा समझेगा और दूसरों को तुच्छ और नीच समझेगा वही ऐसा दुर्व्यवहार कर सकता है। अहंकारी भगवान के दरबार में प्रवेश नहीं कर सकता, वह इस विद्या के पाने का अधिकारी नहीं हो सकता, इसलिए जिज्ञासु को सभ्यता सीखना लाजिमी है।

—दूसरों से ऐसा बर्ताव करो कि जैसा तुम दूसरों से चाहते हो। क्या वह तुम्हारे भाई और प्रभू के पुत्र नहीं हैं ? क्या वह हृदय और आत्मा नहीं रखते ? और क्या तुम्हारे बुरे व्यवहार से उनके दिल को चोट नहीं लगेगी ? फिर यह हिंसा हुई या नहीं ? दिल दुःखाने को तो हिंसा कहते ही हैं, जिसे सबसे प्रथम, साधक को त्यागने की शिक्षा शास्त्र देते हैं।

—नम्रता और प्रेम हृदय में उत्पन्न करने के लिए ही तो साधन किया जाता है। सबसे छोटा और सबका सेवक अपने को समझना, और प्रेम के दायरे को विस्तृत करते हुए संसार व्यापी कर लेना, यह दो ही साधन के उद्देश्य हैं। प्राणीमात्र हमारा हो और हम सबके सेवक हों, जिस समय पूर्णरूप से यह

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

भाव हृदय में उदय हो गये उस समय फिर साक्षात्कार में देर नहीं लगती।

—प्रेम से बोलो; प्रेम से बिठालो, प्रेम से उसकी सेवा सुश्रूषा करो, इस व्यवहार से तुम्हें भी खुशी मिलेगी और दूसरे भी प्रसन्न रहेंगे और तुमको देख के भगवान भी प्रसन्न होंगे।

मन की निर्द्वन्द और निश्चिन्त स्थिति

आत्मिक प्रगति के क्षेत्र में एक ही सबसे बड़ी भूल होती है कि हम अपने आप को भूल जाते हैं और पराये को अपना समझने लगते हैं। ऐसी गलती कभी-कभी भूत-पलीतों के आवेश में होती है। जिस पर वह आवेश आता है वह अपने मुँह से कुछ कहता और कुछ से कुछ बताता है। ऐसी अटपटी बातें कहता है जो उस व्यक्ति के काम की तनिक भी नहीं होतीं, भूत के काम की भले ही हों। इसी प्रकार ज्वर की तीव्रता में जब मनुष्य बेचैन विकल हो जाता है तब भी ऐसी बातें कहता है जिसे बकवास ही कहा जा सकता है। क्रोध के आवेश में भी लोग ऐसे ही गाली-गलौज देते हैं जिन्हें वज्रमूर्खता की संज्ञा दी जा सकती है। शराब पीकर उन्मादी व्यक्ति ऐसे ही वचन बोलता और ऐसे ही कृत्य करता है।

माया को भी एक प्रकार का उन्माद माना गया है। उसकी छाया जिस पर जितनी गहरी पड़ती, वह उतना ही असंगत, अव्यावहारिक और अवास्तविक बन जाता है। सबसे बड़ी भूल यह होती है कि आत्मा को शरीर और शरीर को आत्मा मानने लगता है। फलस्वरूप सारा चिन्तन और क्रियाकलाप गड़बड़ा जाता है।

शरीर वाहन अथवा उपकरण है। आत्मा स्वामी, ईश्वर का पुत्र या प्रतिनिधि। आत्मा को कुछ महत्त्वपूर्ण कार्य सौंपे गये हैं और विश्वास दिलाया गया है कि इन प्रयासों को यदि ठीक तरह किया जा सके तो इसके परिणाम स्वरूप अगले दिनों उच्चस्तरीय पदोन्नति होगी। इसके अतिरिक्त शरीर ऐसा दिया गया है जैसा कि किसी और प्राणी के पास नहीं है। यह अनुकम्पा इसलिए की गई है कि जो कार्य उच्च श्रेणी के सौंपे गये हैं उन सभी को ठीक प्रकार किया जा सके। शरीर और मस्तिष्क तथा उपलब्ध सुविधा साधन यदि इस स्तर के न मिले होते तो शायद मनुष्य इतना कुछ कर नहीं पाता जितना कि करना चाहिए। अपना अंश आत्मा के रूप में और अद्भुत संरचना वाले शरीर तथा मस्तिष्क को देकर भगवान ने कम अनुग्रह नहीं किया है।

भूल यह हो जाती है कि शरीर की वासना और मन की तृष्णा इतनी बलवती हो उठती है कि उन्हें पूरा करने के लिए पूरा समय, श्रम, मनोयोग खप जाता है। लगता है हम शरीर ही हैं। जो शारीरिक स्वार्थ हैं वे ही हमारे स्वार्थ हैं। शरीर में भूख, भौतिक आवश्यकता अन्न, वस्त्र और आच्छादन हैं। मन का प्रवाह जब ज्ञानेन्द्रियों की ओर बहने लगता है तो उनकी स्थिति भी यही होती है कि अनेक तरह के दृश्य, स्वाद, स्पर्श माँगने लगती है। उनकी पूर्ति के लिए व्याकुलता होती है तो उसे वासना कहते हैं। शरीर के ही एक भाग मन की उमंगें लोभ, मोह और अहंकार के रूप में उफनती रहती हैं। यह सब मिलकर इतना बड़ा जाल-जंजाल खड़ा हो जाता है कि शरीर और मन की इच्छायें पूरी करने में ही जीवन का समूचा सारतत्त्व खप जाता है।

वह मूल प्रयोजन उपेक्षित विस्मृत ही पड़ा रहता है जिसके लिए असाधारण अनुग्रह के रूप में भगवान ने अपनी सर्वोपरि कलाकृति किसी महान प्रयोजन की पूर्ति के लिए प्रदान की है। इतना ही नहीं मद्यप की तरह प्रायः आत्मा की, आत्मा के लक्ष्य और जीवन प्रयोजन की बात ही विस्मृत होती है। धीमी आवाज से वह अपनी सत्ता, महत्ता और आवश्यकता को बताती तो है फिर ऐसा हो जाता है कि उसे ठुकराने, कुचलने, अनसुनी करने की ही खुमारी चढ़ी रहती है।

दोनों स्थितियों में जमीन आसमान जैसा अन्तर है। शरीर को ही अपना स्वरूप और उसकी इच्छाओं को ही अपना स्वार्थ मान लेने पर फिर निरन्तर यही धुन सवार रहती है कि शरीर को सुखी, सुन्दर, सुसज्जित, प्रख्यात करने के लिए जो कुछ बन पड़े वह सब कुछ कर गुजरा जाये।

शरीर की आवश्यकताएँ तो थोड़े से साधनों से ही पूरी हो जाती हैं। फिर चार मुट्ठी अनाज, कपड़ा आच्छादन इन सब की व्यवस्था बनाने में न बहुत समय की आवश्यकता होती है न श्रम की, न साधनों की। छोटे परिवार को भी स्वावलम्बी सुसंस्कारी बनाने में अधिक ध्यान नहीं देना पड़ता। चोरी, चालाकी के दंद-फन्द सिखाने के लिए अवश्य इस प्रकार के अनेकों दाँव-पेच बताने पड़ते हैं पर सज्जनोचित सादगी का जीवन जीने के लिए परिवार को ढाल लेना भी किसी मनस्वी और आत्मवान के लिए कठिन नहीं पड़ना चाहिए। यह कार्य ऐसे हैं जो ध्यान एवं समय का छोटा भाग लगाते रहने भर से ढर्रे की तरह सारे काम चलते रह सकते हैं। इन सब का इतना दबाव नहीं पड़ता कि आत्मिक उद्देश्य की पूर्ति के लिए उसका ठीक एक क्रमबद्ध कार्यक्रम तैयार न हो सके।

आत्मिक प्रगति से ही ईश्वर की इच्छा और अनुकम्पा जुड़ी हुई है। उन कार्यों में मन का अधिक भाग खर्च हो जाता है तो सांसारिक प्रयोजनों के लिए समय ही नहीं बचता। ईश्वर की प्राप्ति का सीधा-सा मार्ग है उसके साथ अपनी एकात्मता अनुभव करना, उसके प्रति अपना समग्र समर्पण करना, उसे सत्प्रवृत्तियों का समुच्चय मानना और उन दिव्य विभूतियों को अपने अन्तराल की गहराई में धारण करना ताकि इच्छायें प्रेरणायें उसी स्तर की उभरें। कार्यपद्धति उसी ढाँचे में ढल चले। मनःस्तर इस प्रकार का बनाने के लिए ही पूजा-पाठ के, जप तप के कतिपय कर्मकाण्ड करने पड़ते हैं। इन कृत्यों के सहारे एकाग्रता तो नहीं पर एक दिशा अवश्य मिलती है। इससे भी विचारों की दिशाविहीन भगदड़ पर अंकुश अवश्य लगता है। विचारविहीन दिशा वाली मनःस्थिति पर नये संस्कारों का आरोपण सरल पड़ता है। जिन प्रसंगों की ओर ध्यान ही नहीं जाता उनकी ओर चिन्तन मनन की सुविधा होती पर इसके लिए मन को फुरसत तो मिलनी चाहिए। लालसा लिप्साओं से उसे छुटकारा तो मिलना चाहिए। यह कार्य ईश्वर का सान्निध्य स्थापित कर लेने के उपरान्त ही बन पड़ता है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उपासना के उपरान्त साधना का ही नम्बर आता है। साधना का तात्पर्य है अपने आप के कुसंस्कारों दोष-दर्पणों का परिशोधन परिमार्जन और उसके स्थान पर सज्जनता सद्शयता का संस्थापन। आमतौर से अपने दोष-दुर्गुण सूझ नहीं पड़ते। आँखें बाहर की वस्तुएँ ही देख पाती हैं। भीतरी क्षेत्र को देख सकने की उसमें क्षमता नहीं है। यह कार्य विवेक बुद्धि को अन्तर्मुखी होकर करना पड़ता है। आत्मनिरीक्षण, आत्मसुधार, आत्मनिर्माण, आत्मविकास इन चार विषयों को कठोर समीक्षण-परीक्षण की दृष्टि से अपने आप को हर कसौटी पर परखना चाहिए। जो दोष दीख पड़ें उनके निराकरण के लिए और उनके ठीक प्रतिकूल उच्च चिन्तन, आदर्श चरित्र एवं सद्व्यवहार का स्वभाव बना लेने का प्रयत्न करना चाहिए। ऐसा करने से मन की घुड़दौड़ बन्द हो जाती है। विचार विहीन उच्च आध्यात्मिक स्थिति प्राप्त होती है। मन का इस स्थिति में होना उसका वास्तविक परिशोधन है। सर्वथा विचारविहीन मनःस्थिति तो समाधि स्थिति में ही बन पड़ती है। वह समय साध्य और बहुत आगे की बात है।

साधना बनाम मनोकामना

साधना का उद्देश्य किसी के सामने गिड़गिड़ाना, झोली पसारना या नाक रगड़ना नहीं है। दीनता न आत्मा को शोभनीय है न परमात्मा को प्रिय ! परमात्मा न खुशामद का भूखा है और न है उसे प्रशंसा की आवश्यकता। उसकी महानता अपने आप में अपनी प्रशंसा है। मनुष्यों की वाणी न उसमें कुछ वृद्धि कर सकती है और न कमी। अपने ही बालक के मुख से प्रशंसा कराना किसी मनुष्य को भी अच्छा नहीं लगता फिर परमात्मा जैसे महान के लिए तो उसमें क्या आकर्षण हो सकता है। प्रशंसा करके किसी से कुछ प्राप्त करने का प्रयत्न ओछे दर्जे का कृत्य माना जाता है। उस चंगुल में ओछे लोग ही फँसते हैं और उसे करने के लिए ओछापन ही तैयार होता है। खुशामद व चापलूसी का गोरख-धन्धा उन्हें पसन्द आता है, जो वस्तुतः प्रशंसा के पात्र नहीं। वे अपने चापलूसों के मुँह से अपनी बड़ाई सुनकर खुशी मना लेते हैं। असली न मिलने पर उस आवश्यकता को नकलियों से पूरा कर लेते हैं भक्त और भगवान के बीच यदि यही खुशामद चापलूसी का धन्धा चले तो फिर समझना चाहिए दोनों की गरिमा गिर गई।

माँगना बुरा व्यवसाय है। चोरी से भी बुरा। चोर दुस्साहस करता है और खतरा मोल लेता है तब कहीं कुछ पाता है। पर भिखारी उतना भी तो नही करता। वह बिना कुछ किये ही पाना चाहता है। कर्म विज्ञान को एक प्रकार से वह झुठलाना ही चाहता है। संसार के स्वाभिमानी अपंग और असमर्थ भी स्वाभिमानी होते हैं। कोढ़ी और अन्धे भी कुछ कर लेते हैं। समाज उन्हें कर्त्तव्य के साधन तो देता है, पर मुफ्त में बिठा कर नहीं खिलाता। इसमें देने वाले की उदारता भले ही हों पर लेने वाले को ऋण के भार से दबना पड़ता है और दीन बनकर स्वयं स्वाभिमान का हनन करना पड़ता है। यह हानि उस लाभ से बुरी है जो किसी दान से कुछ प्राप्त करके उपलब्ध किया जाता है।

उपासना से पाप नष्ट होने का वास्तविक अर्थ वह है कि ऐसा व्यक्ति जीवन साधना के प्रथम चरण का परिपालन करते हुए दुर्भावनाओं दुष्प्रवृत्तियों के दुष्परिणाम समझेगा और उनसे सतर्कतापूर्वक विरत हो जायेगा, पाप नष्ट होने का अर्थ है पाप कर्म करने की प्रवृत्ति का नाश, पर उल्टा अर्थ कर दिया गया पाप कर्मों के प्रतिफल का नाश। कदाचित् ऐसी उलटवाँसी सही होती तो फिर इस संसार में पाप को ही पुण्य और कर्त्तव्य माना जाने लगता। फिर कोई भी पाप से न डरता राजदण्ड से बचने की हजार तरकीबें हैं। उन्हें अपना कर अनाचारी लोग सहज ही निर्द्वन्द्व निश्चिन्त रह सकते हैं दैव दण्ड ही एक मात्र बन्धन था सो इन धर्म ध्वजियों ने उड़ा दिया। अब असुरता को स्वछन्द रूप से फलने-फूलने और फैलाने का पूरा-पूरा अवसर मिल गया। पाप कर्मों के दण्ड सें मुक्ति दिलाने का आश्वासन पूजा-पाठ की कीमत पर जिनने भी दिया है उनने मानवीय आदर्शों और अध्यात्म के मूलभूत आधारों के साथ व्यभिचार किया है।

लघुता को विशालता में—तुच्छता को महानता में समर्पित कर देने की उत्कण्ठा का नाम प्रार्थना है। नर को नारायण—पुरुष को पुरुषोत्तम बनाने का संकल्प प्रार्थना कहलाता है। आत्मा को आबद्ध करने वाली संकीर्णता जब विशाल व्यापक बनकर परमात्मा के रूप में प्रकट होती है तब समझना चाहिए प्रार्थना का प्रभाव दीख पड़ा। नर-पशु के स्तर के ऊँचा उठकर जब मनुष्य देवत्व की ओर अग्रसर होने लगे तो उसे प्रार्थना की गहराई का प्रतीक और चमत्कार माना जा सकता है। आत्मसमर्पण को प्रार्थना का आवश्यक अंग माना गया है।

एक शराबी ने नशे में धुत्त होकर किसी के हाथों अपना मकान सस्ते दाम में बेच डाला, होश आया तो अदालत में अर्जी दी कि नशे में होश-हवाश ठीक न होने के कारण वह बिक्री की थी। अब होश में आने पर उस इकरारनामे से इन्कार करता हूँ। पूजा, प्रार्थना के समय लोग न जाने क्या-क्या स्तुति, प्रार्थना करते हैं। मैं तेरी शरण में आया हूँ, तेरा ही हूँ, तेरे चरणों में पड़ा हुआ हूँ, मेरा तो तू ही है। तेरे सिवा मेरा कौन है। आदि-आदि। वे इन शब्दों का अर्थ भी नहीं समझते और न फलितार्थ। जो शब्द कहे जा रहे हैं यदि वे समझ-बूझकर—होश-हवाश में कहे गये होते तो जरूर उस स्थिति के अनुरूप जीवन क्रम ढालने और विचारों तथा कार्यों में उनका समावेश करने का प्रयत्न किया गया होता। पूजा स्थल से निकलते ही—जब प्रार्थना कथन को कार्यान्वित होने की आवश्यकता अनुभव होती है तब सब कुछ बहुत कठिन प्रतीत होता है। होश में आये हुये शराबी की तरह तब उस कथनी को करनी में परिणति कर सकने की हिम्मत न होने से यही कहना पड़ता है उस इकरारनामे से इन्कार करता हूँ जो पूजा के समय सब कुछ भगवान को समर्पण करने वाली शब्दावली के साथ कहा गया था।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

प्रार्थना मैं यही कामना जुड़ी रहनी चाहिए कि परमात्मा हमें इस लायक बनाये कि उसके सच्चे भक्त अनुयायी एवं पुत्र कहला सकने का गौरव प्राप्त करें। परमेश्वर हमें यह शक्ति प्रदान करे जिसके आधार पर भय और प्रलोभन से मुक्त होकर—विवेकसम्मत कर्त्तव्य पथ पर साहसपूर्वक चल सकें और इस मार्ग में जो भी अवरोध आवें उनकी उपेक्षा करने में अटल रह सकें। कर्मों के फल अनिवार्य हैं। अपने प्रारब्ध भोग जब उपस्थित हों तो उन्हें धैर्यपूर्वक सह सकने और प्रगति के लिये परम पुरुषार्थ करते हुए कभी निराश न होने वाली मनःस्थिति बनाये रह सकें। भगवान हमारे मन को ऐसा निर्मल बना दें कि कुकर्म की ओर प्रवृत्ति ही उत्पन्न न हो और हो भी तो उसे चरितार्थ होने का अवसर न मिल पाये। मनुष्य जीवन की सफलता के लिये गतिशील रहने की पैरों में शक्ति बनी रहे ऐसी उच्चस्तरीय प्रार्थना को ही सच्ची प्रार्थना के रूप में पुकारा जा सकता है, जिसमें धन, सन्तान, स्वास्थ्य सफलता आदि की याचना की गई हो और जिसमें अपने पुरुषार्थ कर्त्तव्य के अभिवर्द्धन का स्मरण न हो, ऐसी प्रार्थना को याचना मात्र कहा जायेगा। ऐसी याचनाओं का सफल होना प्रायः संदिग्ध ही रहता है।

भगवान से माँगने योग्य वस्तुएँ श्रद्धा, हिम्मत, श्रमनिष्ठा, सच्चरित्रता, करुणा, ममता, पवित्रता और विवेकशीलता जैसी वे सद्भावना एवं सत्प्रवृत्तियाँ हैं जो विपन्नता को सम्पन्नता में बदल देती हैं और अभाव रहते हुए जिनके कारण विपुल सम्पन्नता का सुख अनुभव होता रहता है। प्रगति और सफलता का सारा आधार सद्गुणों पर अवलम्बित है। उनके बिना अकस्मात किसी प्रकार कोई लाभ मिल भी जाये तो उसे सम्भालना और स्थिर रखना सम्भव न होगा। सदुपयोग केवल उस वस्तु का किया जा सकता है जो उचित मूल्य देकर उपार्जित की गई है। अनायास बिना परिश्रम के मिली हुई सम्पत्ति का अपव्यय ही होता है और उससे अनेक व्यसन और उद्वेग पैदा होते हैं जिनके कारण वह उपलब्धि सुखदायक न होकर अनेक विपत्तियाँ और विकृतियाँ उत्पन्न करने का कारण बन जाती हैं। भगवान जिस पर प्रसन्न होते हैं उस सद्गुणों का उपहार देते हैं क्योंकि वे अपने आप में इतने महान हैं कि यदि साधन सम्पन्नता न भी हो, तो भी केवल उन सद्गुणों की सम्पदा के आधार पर मनुष्य सुखी समुन्नत और सम्मानित जीवन जी सकता है। यही दिव्य सम्पदायें भगवान से माँगनी चाहिए। यही हैं वे विभूतियाँ जिन्हें वे अपने भक्तों को दिया करते हैं।

भौतिक सफलतायें हमें अपनी भुजाओं और कलाइयों से माँगनी चाहिए। अपनी अकल को तेज करना चाहिए और सूझ-बूझ से काम लेना चाहिए। अवरोध उत्पन्न करने वाली त्रुटियों को सुधारना चाहिए। सफलता का द्वार खुल जायेगा।

भगवान स्वयं अपनी विधि-व्यवस्था में बँधे हुए हैं। उन्होंने इस सम्बन्ध में अपने आपके साथ तक कोई रियायत नहीं की, अपने सगे सम्बन्धियों तक को छूट नहीं दी। कर्मफल की व्यवस्था को ही सर्वत्र प्रधान रखा। ऐसा न होता तो कोई पुरुषार्थ करने के लिए तैयार ही क्यों होता और कुकर्मों से बचने के लिए किसी को आवश्यकता ही क्या पड़ती ? प्रार्थना मात्र से सारी सुविधायें मिल जातीं तो फिर कठोर, कर्मठता के लिए कटिबद्ध होने की इच्छा ही क्यों होती ?

साधक के लक्षण

जिन मनुष्यों की वासनाएँ शान्त हो गई हैं, उनके मन मन्दिर में आठोंयाम प्रेम ज्योति प्रज्ज्वलित है। वे इन्द्रियों के दास नहीं, इन्द्रियाँ स्वयं उनकी दासता में रहती हैं। सांसारिक प्रपंच किसे कहते हैं, इससे उन्हें कोई प्रयोजन नहीं। वे समय पर धर्म की वेदी पर प्राण न्यौछावर करने के लिए तत्पर रहते हैं और धर्म संस्थापन के लिए ही जीवित हैं। सरलता, नम्रता, सहनशीलता सम्प्रीति ही उनके जीवन के मुख्य साधन हैं। उनमें अहं भाव का नाम-मात्र भी नहीं होता। ऐसे मनुष्य सत्य की शीतल छाया में जीवन व्यतीत करते हैं। जिन मनुष्यों ने परमात्मा का साक्षात्कार कर लिया है। ऐसे मनुष्यों का अन्तःकरण पूर्ण चन्द की किरणों की भाँति उज्ज्वल बना रहता है, आत्मा गंगाजल के समान निर्मल हो जाती हैं। अबलाओं की लाज रखने के लिए अपने प्राणों को आहुति दे देना उनके लिये बच्चों का-सा एक खेल होता है।

भाग्यशाली हैं वे मनुष्य जिनके रोम-रोम में, स्वांस—स्वांस में सर्वव्यापी भगवान विद्यमान हैं। उनके जीवन का मुख्य उद्देश्य भगवत्प्राप्ति ही है। श्रद्धालु मनुष्यों की दृष्टि से वे दूर कब हैं ? उन्हें हर रूप में परमात्मा का ही अनुभव होता है। वे भयंकर रूपधारी मायावी जीवों से निर्भीक रहते हैं। किसी जीवधारी को कष्ट पहुँचाना तो नीच मनुष्यों का तुच्छ विचार होता है। वह तो अपने प्रतिद्वन्द्वियों के प्रति भी सद्विचार रखते हैं। ऐसे ही मनुष्यों ने जीते जी परमात्मा को पा लिया है। ऐसे आत्म साधना के साधक धन्य हैं।

साधना में धैर्य की आवश्यकता

साधना के समय साधक को पूर्ण साहस और धैर्य रखना चाहिये, सिद्धि लाभ करने में कितना ही समय क्यों न लगे साधक को आकुल नहीं होना चाहिये। साधक को असाधारण धैर्य धारण करना चाहिए और यदि इस बीच में कोई अनर्थकारी घटना उपस्थित हो जाये तो भी साधक को घबरा कर साहस नहीं छोड़ देना चाहिये। सच्चिदानन्द परमेश्वर सर्वशक्तिमान हैं, चाहे वे कितने ही भीषण गड्ढे में हमें क्यों न फेंक दें किसी न किसी दिन वहाँ से उबार कर वे हमें अपनी गोद में अवश्य में ले लेंगे, यह खूब जानिये।

साधक के लिये व्याकुलता और उत्तेजना त्याज्य हैं। पहले-पहले स्वछन्द प्रवृत्ति इस प्रकार आडम्बर खड़ा करती है कि साधक के मन में उठने लगता है कि खूब आगे बढ़ गये हैं पर अब अन्त में विदित होता है कि लंगर पड़ी जहाज की भांति हम उसी जगह ज्यों के त्यों पड़े हैं और अँगुल मात्र भी आगे नहीं बढ़ सके हैं उस समय भीषण परिताप उपस्थित होता है। जो साधक आत्मसमर्पण का व्रत ग्रहण करके भगवान के हाथों में अपने को समर्पित करके जितना निश्चिन्त तथा संन्तुष्ट हो सकेगा, उतनी ही शीघ्रता के साथ उसे सिद्धि प्राप्त हो सकेगी साधना अत्यन्त कठिन काम है, पर जो लोग आरम्भ में

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

ही इसमें दृढ़ विश्वास करके इस पर निर्भर हो जाते हैं उनके लिये इससे सरल कोई और मार्ग नहीं है।

साधना के समय साधक को साहस और धैर्य रखने की आवश्यकता है। सिद्धि मिलने में कितना भी समय क्यों न लगे साधक को घबड़ाना नहीं चाहिए। यहाँ तक कि यदि सिद्धि मिलने के पहले कोई अनर्थकारी घटना भी घट जावे तब भी घबराकर अपनी साधना नहीं छोड़ देनी चाहिए। भगवान सर्वशक्तिमान है इसलिये वे कितने ही भयंकर गड्ढे में चाहे क्यों न फेंक दें फिर भी किसी न किसी दिन वे हमारा वहाँ से अवश्य उद्धार करेंगे यह निश्चित है।

साधक के लिए उत्तेजना और व्याकुलता भी छोड़ने जैसी है। कभी-कभी साधक को दिखाई देता है जैसे कि वह सिद्धि के क्षेत्र में बहुत दूर पहुँच गया है, और कभी भी पीछे मालूम होने लगता है कि वह जहाँ का तहीं है तिलमात्र भी आगे नहीं बढ़ा ऐसे अवसरों पर उत्तेजना या घबड़ाहट आ जाती है। लेकिन जिन लोगों का आत्मसमर्पण का व्रत सम्पन्न हो चुका होता है वे इन सबसे मुक्त रहते हुए निश्चिन्त और सन्तुष्ट रहते हैं और इसीलिए उन्हें सिद्धि भी शीघ्र ही प्राप्त होती है।

यद्यपि साधना का काम अत्यन्त कठिन है पर जो आरम्भ में दृढ़ विश्वास के साथ अग्रसर होते हैं उनके लिए यह मार्ग अत्यन्त सरल हो जाता है क्योंकि दृढ़ता होने पर मनुष्य की प्रकृति साधना के अनुकूल हो जाती है और साधना की अनुकूलता ही सिद्धि प्राप्ति का साधन है।

साधकों के कुछ नियम

(१) साधकों को सूर्योदय से कम से कम एक घन्टा पूर्व उठना चाहिए और नित्य कर्म से निवृति होकर साधना में लग जाना चाहिए। साधना के लिए सर्वोत्तम समय प्रातःकाल का ही है।

(२) ऋतु और स्वास्थ्य अनुकूल हो तो स्नान करके साधना पर बैठना चाहिए। यदि सुविधा न हो तो हाथ पैर मुख धोकर कार्य आरम्भ कर देना चाहिए।

(३) साधकों का आहार विहार सात्विक होना चाहिए। ब्रह्मचर्य का जिस हद तक अधिक पालन हो सके उतना ही अच्छा है।

(४) रात्रि को जल्दी सो जाना आवश्यक है। अधिक रात्रि तक जगने वालों के लिए प्रातः जल्दी उठने में असुविधा होती है।

(५) साधना का आसन माला आदि अलग रखने चाहिए उसे दूसरे लोग प्रयोग न करें। एक नियत स्थान अभ्यास के लिए चुन लेना चाहिए। रोज-रोज जगह बदलना ठीक नहीं।

(६) साधना काल में कम से कम वस्त्र शरीर पर रखने चाहिए। स्वच्छ वस्त्र ही शरीर पर रहें।

अपनी स्थिति के अनुसार साधना चाहिए

साधु, संत और ऋषियों ने लोगों को अपने-अपने ध्येय पर पहुँचने के अनगिनती साधन बतलाये हैं। हर एक साधक एक-दूसरे से बढ़कर मालूम होता है, और यदि वह सत्य है तो उससे यह मालूम होता है कि ये सब साधन इतनी तरह से समझाने का अर्थ यह है कि ज्यादातर एक कोई भी साधन उपयोग में आ सकता है और यह है भी स्वाभाविक ही कि वह किसी एक के लिए उपयोगी हो।

परन्तु बहुधा ऐसा होता है कि बहुत से साधन अपने को अनुकूल नहीं होते। कठिनाई यह है कि हम लोगों में वह शक्ति नहीं है कि उस साधन को खोज निकालें जिसके कि हम सचमुच योग्य हैं। इसके विपरीत हम दूसरे ऐसे साधन अनिश्चित समय के लिए अपनाते हैं। जो हमारी शारीरिक और मानसिक स्थिति के अनुकूल नहीं होते। आज ऐसे पथ-प्रदर्शकों की भी भारी कमी है जो अपनी सूक्ष्म दृष्टि से यह जान लें कि किस व्यक्ति के अनुकूल क्या साधन ठीक होगा।

जो व्यक्ति जिस साधना का अधिकारी है, उसी के अनुकूल कार्यक्रम उसके सामने रखा जाना चाहिए। बालकों का शिक्षण और अध्ययन भी इसी आधार पर होना चाहिए। रुचि के अनुकूल दिशा में शिक्षा मिलने पर बालक थोड़े ही समय में आश्चर्यजनक उन्नति कर लेता है। इसके विपरीत जो कार्यक्रम उसकी रुचि न होते हुए भी लादा जाता है वह बड़ी कठिनाई से जैसे-तैसे पार पड़ता है।

हमें चाहिए कि अपना एक ध्येय निर्धारित करें और उस लक्ष्य को पूरा करने के लिए ऐसे साधन चुनें जो निर्धारित उद्देश्य की ओर तेजी से हमें बढ़ा ले चलें साथ ही उन साधनों का अपनी रुचि, प्रकृति और स्थिति के अनुकूल होना भी आवश्यक है। यदि ऐसा न हुआ तो उत्साह थोड़े ही समय में शिथिल हो जाता है और दुर्गम मार्ग पर चलने का अभ्यास न होने से बीच में ही यात्रा तोड़ने को विवश होना पड़ता है।

लक्ष-लक्ष के अनुकूल साधन-साधन के अनुकूल अपनी स्थिति इन तीन बातों का जहाँ समन्वय हो जाता है वहाँ सफलता मिलने में संशय नहीं रहता। हमें अपना विवेक इतना जाग्रत करना चाहिए जिससे उपरोक्त तीनों बातों का समन्वय हो सके अथवा कोई ऐसा पथ प्रदर्शक ढूँढ़ निकालना चाहिए जो इस दिशा में समुचित ज्ञान रखता हो और अपने उज्ज्वल प्रकाश में अभीष्ट लक्ष्य की ओर अग्रसर कर सके।

साधक की साधना का फल

मानव जाति को दिन-प्रतिदिन शनैः-शनैः उन्नति के पथ पर अग्रसर करना, एक उन्नत पथ से दूसरे उन्नत पर पहुँचाना, समुच्चय की दैवी शक्ति तथा तुरीय के महत् आनन्द द्वारा मनुष्य को देवता की भांति बनाना ही भगवान की लीला का उद्देश्य है। अनन्तयुग से अनेक प्रकार के रूप धारण करके भगवान इस प्रकार की लीला करते आ रहे हैं। उनकी यह लीला इस विराट विश्व में अविच्छिन्न रूप से अनन्त काल से होती चली आती है। उन्होंने स्वर्ग को मर्त्य बना दिया है और इस पृथ्वी पर अनन्त धाराओं द्वारा अमृत वर्षाया है। इसलिए जब तक पृथ्वी और स्वर्ग एक न हो जाये, उद्देश्य की सिद्धि न हो जाय साधक की साधना न पूर्ण हो सकती है और न चरितार्थ हो सकती है। अतः मानव समाज के उद्धार का एक ही

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

मार्ग है और वह मार्ग है आत्मसाक्षात्कार एवं साधना। क्योंकि बिना इनके जो अशुभ है। उससे मुक्त नहीं हुआ जा सकता और जब तक अशुभ से मुक्ति नहीं मिलती आत्मा पवित्र नहीं बन सकती। आत्मा के पवित्र बने बिना इस संसार में प्रकाश फैलाने के लिए साधक माध्यम भी नहीं बन सकता। साधक को तो ईश्वर की ज्योति से सम्पन्न होकर संसार की सभी अशुद्धताओं और कुसंस्कारों को दूर करना होगा। सैकड़ों व हजारों प्राणियों के बीच मानव शक्ति की ज्योति फैलाकर उनमें से अविद्या को दूर करते हुए उनके उद्धार का कार्य प्रत्येक साधक को करना है जिससे प्रत्येक व्यक्ति भगवान की लीला का जड़ यन्त्र नहीं, चेतन यन्त्र बन सके। भागवत धर्म में दीक्षित हो सके। सच्चिदानन्द के अगाध सागर में निमग्न हो सके।

इस साधना के लिए साधक को उस पथ पर चलने की आवश्यकता है जहाँ से ईसा की पवित्रता व पूर्णता, मुहम्मद का आत्मविश्वास और आत्मसमर्पण, श्री चैतन्य महाप्रभु का प्रेम व आनन्द तथा रामकृष्ण परमहंस का संसार के सभी धर्मों में समन्वय व एकीकरण करने की बुद्धि व अतिमानव तत्त्व की प्राप्ति हो।

साधक इस नवीन धर्म के पवित्र स्रोत को मानव जाति के बीच में प्रवाहित करके, उनकी आत्म शुद्धि करके उनकी आत्मा का जिस समय उद्‌बोधन करायेंगे उसी समय उन्हें सिद्धि मिलेगी और उसी समय पृथ्वी पर स्वराज्य की स्थापना होगी।

साधना से शक्ति का अवतरण

शक्ति मनुष्य जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में अपेक्षित है। छोटे-छोटे दैनिक कार्यों से लेकर बड़े-बड़े सार्वजनिक निर्माण के कार्य सभी व्यक्तिगत या सामूहिक शक्ति के माध्यम से ही पूरे होते हैं। खेत में काम करना है तो शक्ति चाहिये। वजन उठाना है तो शक्ति चाहिये। विद्यालय में अध्यापन के लिये, कचहरियों में वकालत के लिये, सेना में भरती होकर युद्ध करने के लिए या राजनैतिक सेवाओं के लिए भी शक्ति के बिना काम नहीं चलता। शक्ति का स्वरूप कैसा भी हो पर मनुष्य जीवन में उसकी आवश्यकता निर्विवाद है।

सत्य और अहिंसा-प्राणि जगत के दो आवश्यक सिद्धान्त हैं किन्तु उनकी रक्षा भी शक्ति के बूते ही हो सकती है। शक्ति के बिना सिद्धान्त अधूरा है फिर वह कितना ही अहिंसक, सत्यशील एवं सुकोमल क्यों न हो ?

ऋषि आध्यात्मिक, धार्मिक एवं नैतिक जीवन का लोक-शिक्षण करते थे। बड़े कोमल सिद्धान्त थे उनके। आचरण और व्यवहार उनका ऐसा सीधा-सादा और सरल था कि सामान्य श्रेणी का व्यक्ति उनकी आन्तरिक पूर्णता का अनुमान भी नहीं कर सकता था। पर उनके जीवन में एक शाश्वत शक्ति कार्य किया करती थी, एक गजब की प्रेरणा प्रस्फुटित होती रहती थी, ऋषि उसके सहारे समय विचरण करते थे। जो उनके आदर्शों के विपरीत आचरण करता था उन्हें उनकी शक्ति का सामना करना होता था। ऐसी घटनायें असामान्य समझी जाती थीं और उन्हें देखकर प्रायः सभी लोग उनकी शक्ति को शीश झुका देते थे। ऋषियों की डाली सदाचारी परम्परायें बेरोकटोक विकसित होती थीं। उनका सामना करने की किसी में शक्ति न होती थी।

दुष्प्रवृत्तियों के विरुद्ध निरन्तर उत्कट संघर्ष, उनकी लगन, शौर्य, सहिष्णुता, कर्मठता और अनवरत क्रियाशीलता को देखकर भी उनकी शक्ति का आभास होता है। वेद इस बात के साक्षी हैं। वेदों के वजन को कोई भी ग्रन्थ इस सृष्टि में नहीं। उनमें जो ज्ञान विज्ञान भरा है वह ऋषियों का प्रचंड शक्ति का द्योतक है। सच कहें तो ऋषि शक्ति के मूर्तिमान स्वरूप ही थे।

ऋषियों के जीवन से यह भली-भाँति स्पष्ट होता है कि शक्ति का आधार साधना है। चाहे वह भौतिक समृद्धि के लिये हो चाहे आध्यात्मिक उन्नति के लिये। शक्ति अपेक्षित हो तो साधना करनी ही पड़ेगी।

धन जुटाने के लिये क्या कुछ नहीं करते। खेती करते हैं, हल चलाते हैं, नौकरी करते हैं, रोजगार करते हैं, बची हुई कमाई बैंक में जमा करते हैं ताकि ब्याज आये। दूसरे व्यवसाय के लिये साधन जुटाना, दौड़-धूप, बेंच-खोंच, लेन-देन आदि न जाने कितना श्रम करना पड़ता है। यह क्या हुई ? धन जुटाने की साधना। विद्यार्थी प्रतिदिन पैदल चलकर विद्यालय जाता है, फीस के पैसे देता है, मास्टरों की डाँट सुनता है। जब घर वाले सैर-तमाशे को गये होते हैं तब वह किताबों से जूझता है। पाठ याद करता है। यह क्या हुई ? विद्या प्राप्त करने की साधना। ठीक है, बिना साधना के कोई भी तो लौकिक कामना पूर्ण नहीं होती।

इन पंक्तियों में हमारा उद्देश्य आध्यात्मिक-जीवन से सम्बन्धित साधना की वैज्ञानिक स्थिति का वर्णन करना है। हम यह बताना चाहेंगे कि आत्मकल्याण के लिये लौकिक सफलताओं से कहीं अधिक बड़ी और कड़ी साधना की जरूरत है। साधना की आग में फँसकर ही वह शक्ति आती है जिसके द्वारा मनुष्य अपने तथा सैकड़ों औरों का कल्याण कर सकने में समर्थ हो जाता है।

साधना का क्षेत्र बहुत व्यापक, बड़ा विशाल है। अधिकांश उपनिषद् इसी तत्त्व की व्याख्या में लिखे गये हैं। अनेक प्रकार के योगों का प्रादुर्भाव हुआ है। उनमें अनेक प्रकार की प्रक्रियायें चलती हैं। उन सबका उद्देश्य केवल शक्तियों का विकसित करना ही होता है।

आत्मशक्ति के विकास के लिये अनेक प्रकार की साधनओं का वर्णन मिलता है। बाह्य कलेवर की दृष्टि से उनमें भिन्नता भले ही दिखाई देती हो पर उनका दृष्टिकोण एक ही है और वह है पंचकोषों के विकास द्वारा आत्म-साक्षात्कार का पथ प्रशस्त करना।

पाँच कोष जीवात्मा के पाँच आवरण हैं, पाँच साधन हैं जिनके सहारे लोक और परलोक की सुख और सुविधायें अर्जित की जाती हैं। पाँच कोषों का सुव्यवस्थित होना उसी प्रकार आवश्यक है जिस तरह रेलगाड़ी की सुविधाजनक यात्रा के लिये—(१) इंजन, (२) भाप, (३) भाप बनाने वाले साधन, (४) ड्राइवर और (५) रेल की पटरी आवश्यक है। इनमें से किसी एक के न होने से भी यात्रा में कठिनाई होगी। रेल की

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

शक्ति का प्रवाह इन पाँचों का सम्मिश्रित रूप है। जीवात्मा की भी ठीक ऐसी ही स्थिति है।

मनुष्य को विश्लेषण की दृष्टि से देखें तो वह पाँच पदार्थों के सम्मिश्रण से बना हुआ कोई पुतला जैसा जान पड़ेगा—(१) स्थूल शरीर, (२) प्राण, (३) मन, (४) शरीर की वैज्ञानिक स्थिति और (५) आनन्द। यह जीवात्मा के पाँच कोष कहे जाते हैं। यह पाँचों पुर्जे सही काम करते हों तो मनुष्य का जीवन ठीक प्रकार बीतेगा यह आशा करनी चाहिये। इनमें से कोई भी अंग विकृत हुआ कि जीवन यात्रा कठिन पड़ जायेगी और शरीर धारण का लक्ष्य ही विपरीत पड़ जायेगा।

शरीर दुर्बल हो तो बीमारियों, रोग और शोकों के प्रकोप चढ़ बैठेंगे। मनुष्य का धूर्त अंश बहुत पहले से दुर्बल व्यक्तियों को सताता रहा है। प्रकृति भी निर्बलों को ही सताती है। थोड़ी गर्मी तेज हुई कि वह असह्य हुई। शीत का प्रकोप बढ़ा कि जुकाम, खाँसी आदि दौड़ पड़े। शारीरिक दुर्बलता की स्थिति में इन्द्र के भोग भी सुख नहीं दे सकते। स्वादिष्ट भोजन तो क्या साधारण आहार भी पचाना कठिन हो जाता है। न भोग और सांसारिक सुख, न सामाजिक प्रतिष्ठा। निर्बल शरीर वालों की तो सर्वत्र उपेक्षा और दुर्दशा ही होती है।

साधना का एक उद्देश्य है शारीरिक शक्ति को जाग्रत करना। यह भी अध्यात्म का ही एक अंग है। शास्त्रों में बताया है "दुर्बल शरीर वालों के लिये तो दैव भी घातक होता है।" अतः आत्मकल्याण के प्रत्येक इच्छुक को पहली साधना शरीर को स्वस्थ बनाने की करनी चाहिये।

प्राचीनकाल में विद्यालयों में शारीरिक-शिक्षा का पर्याप्त स्थान था। आसन, प्राणायाम, व्यायाम, आहार उपवास आदि उन सभी साधनों का प्रयोग किया जाता था जिनसे लोगों का स्वास्थ्य सशक्त और जीवन्त बना रहता था। मुग्दर भाँजना, भाले फेंकना, तलवार चलाना, दौड़, कुश्ती, कसरत, यात्रायें आदि चलती रहती थीं। इन सबका मूल उद्देश्य यही होता था कि लोगों के स्वास्थ्य कमजोर न पड़ने पावें। स्वास्थ्य को लौकिक तथा पारलौकिक जीवन का प्रमुख आधार समझा जाता था अतः उसकी ओर पर्याप्त ध्यान रखना आवश्यक भी था।

यह आवश्यकता आज पहले से भी अधिक है। उस समय वातावरण दूषित नहीं था अतः सामान्य नियमों का पालन करते हुये भी लोग स्वस्थ बने रहते थे पर आज की स्थिति बिल्कुल भिन्न है। नियमित जीवन बिताने वाला व्यक्ति भी आज बीमार पड़ सकता है क्योंकि आज का वातावरण बड़ा दूषित, अशान्त, कोलाहलपूर्ण तथा रेडियोधर्मी धूल से विकृत हो रहा है। ऐसी स्थिति में स्वास्थ्य को गम्भीर खतरा उत्पन्न हो रहा है। इस युग में स्वास्थ्य के साधनों पर पर्याप्त ध्यान न रखा जाये तो मनुष्य का इसी एक समस्या से ही छुटकारा पाना कठिन हो जायेगा जैसा कि इन दिनों स्पष्ट देखने में आता है।

आन्तरिक शक्तियों के विकास में असुविधा न पड़े इसके लिये आपका स्वस्थ रहना अत्यावश्यक है। अतः उन सभी प्रवृत्तियों को चलाना, जिनसे मनुष्य का आरोग्य स्थिर रह सके, आवश्यक है। इन्हें भी साधना का एक उपयोगी अंग मानना चाहिये।

आध्यात्मिक साधना का दूसरा क्षेत्र है—प्राण। यह प्राण शरीर के कण-कण में व्याप्त होकर जड़ देह को गतिमान करता है। निष्प्राण शरीर किसी काम का नहीं होता। उसी प्रकार शरीर में प्राण की विकृति से भी अनेकों रोग-शोक उत्पन्न हो जाते हैं। प्राण का महत्त्व इससे भी अधिक है। आत्म-साक्षात्कार की गतिविधियाँ प्राण के महत्त्वपूर्ण नियन्त्रण पर आधारित हैं, इसलिये प्राण-तत्त्व की जानकारी भी जीवन-विकास का परम उपयोगी अंग हो जाती है।

शरीर की दशा में प्राण का नियंत्रण और उससे होने वाली शारीरिक क्रियाओं का विशद् विज्ञान है। उस सब की चर्चा की जाये तो एक बड़ा ग्रन्थ बन सकता है। प्राण की शक्ति अलौकिक है और उसका जागरण प्राणायाम द्वारा किया जाता है यहाँ इतना ही जान लेना पर्याप्त है।

शक्ति का दूसरा आधार है, प्राण—प्राणायाम द्वारा भी मिलता है अन्न-जल आदि से उपलब्ध होता। विचार के माध्यम से प्राण धारण करते हैं, दूसरे प्राणवान व्यक्ति अनुदान में भी प्राण दे सकते हैं। दूसरे दें या नहीं, स्वयं की शक्ति का अभिवर्द्धन कर उससे आत्मकल्याण का मार्ग प्रशस्त करना हो तो प्राण की साधना भी आवश्यक होगी। प्राण जीवन की बड़ी शक्ति है, इसके बिना आत्मविकास सम्भव नहीं।

शरीर और प्राण से वृहत्तर शक्ति एक और है वह है—मन की शक्ति। मन समस्त इन्द्रियों से सूक्ष्म और प्रचंड शक्ति वाला माना गया है। मनुष्य जीवन की सम्पूर्ण गतिविधियों का आधार मन है। मन चाहे तो मनुष्य देवता बन जाये, गिरना शुरू करदे तो वह अत्यन्त निकृष्ट कोटि का व्यक्ति बन जाये।

जप, तप, स्वाध्याय, साधना आदि सम्पूर्ण क्रियाओं का स्वामी मन है। मन की प्रचंड हुंकार से देवासन हिल जाते हैं। राष्ट्र बदल जाते हैं, व्यक्ति का कायाकल्प हो जाता है। जाग्रत मन मनुष्यों को परमात्मा की शक्ति वाला बना देता है।

साधना का मूल्य उद्देश्य भी मानसिक शक्तियों के प्रवाह को रोककर उसे कल्याणकारी मार्ग में लगाना ही है अतः यह समझ लेना चाहिये कि मनोनिग्रह जीवन निर्माण की प्रमुख शर्त है। हमारे कल्याण के लिये मन की शक्तियों का विकास होना ही चाहिये। उसे स्वाध्याय, सत्संग और चिन्तन आदि के माध्यम से ऊर्ध्वगामी होना ही चाहिये। मन सुधर जाये तो जीवन सुधर जाय। मन बदल जाये तो जीवन की दिशा बदल जाये। शास्त्रों में तो यहाँ तक कहा है कि बन्धन और मोक्ष का कारण भी मन ही है।

इतनी बड़ी शक्ति को उपेक्षित कर आत्मकल्याण कहाँ सम्भव है ? मन को दुर्गुणों से बचाकर उसे सन्मार्गगामी बना सकें तो समझना चाहिये कि आज नहीं तो कल अपना मनोबल बढ़ने ही वाला है और उससे आत्मकल्याण का मार्ग भी खुलने ही वाला है।

मनुष्य का शरीर शक्तियों का अपूर्व भाण्डागार है। शास्त्रकार ने तो यहाँ तक कहा—**"यत् ब्रह्माण्डे तत् पिण्डे"** जो कुछ इस ब्रह्माण्ड में है वह सब इस शरीर में है। सूर्य की

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

अजस्र उष्णता और अलौकिक प्रकाश, चन्द्रमा की शीतलता, शून्य की विशालता, मेघों की क्षमता, लोक-लोकान्तरों से प्रस्फुटित होने वाले अनन्त रहस्यों का केन्द्र है यह मनुष्य शरीर। सम्भवतः समस्त सृष्टि में इतनी उपयोगी, इतनी शक्तिशाली, इतनी रहस्यमय, इतनी सर्वाङ्गपूर्ण वस्तु अन्य नहीं जितना कि यह मनुष्य की देह है। अजब विलक्षणता भरी है परमात्मा ने इसमें। उन सम्पूर्ण शक्तियों का स्वामित्व मनुष्य को मिल जाये तो वह देवता बन जाय, भगवान बन जाये।

इतना उपयोगी उपकरण होते हुये भी लोग अभाव का जीवन, कीट पतंगों जैसा शिश्नोदर परायण जीवन जीते हैं, इससे अधिक और कुछ विशेषता उनमें दिखाई नहीं देती यह आश्चर्य की बात है। इसका एक मात्र कारण मनुष्य की अज्ञानता है। पिता की गाढ़ी हुई रकम घर में ही हो पर बेटे को उसका ज्ञान न हो तो वह धन उसके किस काम का ? मनुष्य की स्थिति भी ऐसी ही है। परमात्मा ने मनुष्य को अनन्त अनुदान दिये हैं। शरीर रूपी तिजोरी में चक्रों, ग्रन्थियों, उपत्यिकाओं एवं नाड़ी-गुच्छकों आदि के रूप में ऐसे महत्वपूर्ण हीरे, जवाहरात भर कर दिये हैं कि वे मनुष्य को मिल जायें तो वह श्रीसम्पन्न हो जाये, मालामाल हो जाये। मनुष्य उन शक्तियों को प्राप्त कर धन्य हो सकता है महर्षि अरविन्द के अनुसार साधना का उद्देश्य शक्ति उपार्जित करना है। ईश्वर के संसर्ग से अपनी आत्मा को पवित्र बनाकर और पाप से छुटकारा पाकर आध्यात्मिक विद्युत शक्ति से परिचालित होकर इसे संसार में प्रकाश फैलाने के लिए, उस ज्योति की किरणों को संसार में बाँटने के लिये हमें आधार यन्त्र (डायनमो) का काम करना होगा। जिस प्रकार एक ही सुरंग पूर्ण शक्ति युक्त होकर शब्द के साथ पर्वत माला को विदीर्ण कर देती है, उसी प्रकार ईश्वर की ज्योति से सम्पन्न होकर हमें संसार की सभी अशुद्धताओं और कुसंस्कारों को दूर करना होगा। इस तरह एक-एक मनुष्य साधना में सिद्धि होकर सैकड़ों और हजारों प्राणियों के बीच, ज्ञान व शक्ति की ज्योति फैलाकर उनमें से अविद्या को दूर करेगा और उनका उद्धार करेगा। एक साधक की शक्ति के प्रकाश से सहस्रों जन धर्म में दीक्षित होंगे और सच्चिदानन्द के अगाध सागर में निमग्न होंगे।

मानव समाज के उद्धार का केवल एक ही मार्ग और एक ही उपाय है, जिसकी वह आज तक उपेक्षा करता आया है। उस मार्ग का नाम है—शक्ति साधना और आत्मोपलब्धि। इसलिये हमें पुनः उसी मार्ग का अनुसरण करना होगा, उसी पथ पर लौटना होगा, जहाँ से हमें ईसा की पवित्रता, मुहम्मद का आत्मविश्वास और आत्मसमर्पण श्री चैतन्य देव का प्रेम व आनन्द, परमहंस राम कृष्ण का संसार के सभी धर्मों का समन्वय तथा एकीकरण व सूक्ष्म मानवता की प्राप्ति होगी।

इन सब भावों को एकत्रित करके एक प्रबल स्रोत बहाना होगा। पतित पावनी, सकलमल हारिणी, पवित्र सलिला, भागीरथी गंगा की भांति नाशवान इस संसार तथा अर्धमृत इस मानव जाति के बीच में इसे प्रवाहित कर देना होगा। निश्चय मानो कि इस पृथ्वी पर एक बार पुनःस्वराज्य की स्थापना होगी। यही साधना उद्देश्य है।

साधनकाल और सिद्धावस्था

मनुष्य की असंतुलित, स्वार्थमयी, संकीर्ण विचारधारा का कारण उसका अहंभाव है। उसका 'अहं' एवं उसकी जीवित रहने की इच्छा उसकी विचारधारा को प्रभावित करती है तथा उसे अपना अस्तित्व बनाये रखने की प्रेरणा देती है और इसीलिये मनुष्य बहुधा अपने ही हित के लिए सारे प्रयत्न करता है। अपने लिए ही वह धन संग्रह करता है और व्यवहार करते समय दूसरों के प्राणों की अपेक्षा अपने प्राणों को ही अधिक महत्त्व देता है। वह एक छोटे से शरीर में सीमित अपने क्षुद्र 'अहं' के पीछे कभी-कभी एक विशाल जनसमूह के हितों को भी ठुकराने में नहीं हिचकता और इस तरह वह अत्यन्त स्वार्थी बन बैठता है। यदि वह कभी अपने प्रियजनों का पक्ष लेता है तो इसीलिए कि वे अपने हैं। कहने का प्रयोजन यह कि उसके समस्त शुभ अथवा अशुभ कार्यकलापों का मूल उसका महत्त्व ही है।

इसके अतिरिक्त कुछ पुरुष ऐसे होते हैं जो सदा इस 'अहं' का विरोध कर इसे मिटा देने का प्रयत्न करते हैं। 'अहं' को मिटाने के लिए वे अपने सुखों की अपेक्षा दूसरों का अधिक ध्यान रखते हैं। वे दूसरों के सुख के लिए जहाँ अपने सुखों को तिलांजलि दे देंगे वहाँ कभी-कभी अपने प्राणों को भी होम कर डालेंगे। स्वार्थी मनुष्य पहिले अपना, फिर अपने प्रियजनों का और अन्त में दूसरों का ख्याल रखता है किन्तु ये लोग अपनी 'अहं' भावना को मिटाने के लिए इस क्रम को उलट देते हैं। इनका झुकाव दूसरी ओर ही हो जाता है। किन्तु इस दूसरी श्रेणी के अतिरिक्त इने-गिने वे महापुरुष भी होते हैं जो कि व्यवहार करते समय न तो एक ओर ही झुक जाते हैं और न दूसरी ओर ही। इनकी विचारधारा में सम्यक, संतुलन एवं निर्भीकता होती है। व्यवहार करते समय न्याय और लोकसंग्रह को दृष्टि में रखते हुए यदि उन्हें किसी व्यक्ति के विरुद्ध कार्य करना पड़ेगा तो वे उसके विरुद्ध कार्य अवश्य करेंगे और यदि स्वतः अपने हितों को त्यागना पड़ेगा तो उन्हें भी त्याग देंगे। ये अपने शरीर को इस तरह संचालित करते हैं, उसका इस तरह व्यवहार करते हैं कि उनके द्वारा समाज का अधिक से अधिक कल्याण साधन हो। ऐसे व्यक्तियों के सामने यदि कभी ऐसा प्रश्न कि या तो अन्य व्यक्ति प्राण दें अथवा स्वयं ये ही अपने प्राण दें तो यदि ये देखते हैं कि इनके जीवन धारण से अधिक कल्याण हो सकता है तो इनका निश्चय होगा कि अन्य व्यक्ति अपने प्राण त्यागें और ये अपने प्राणों की रक्षा करें। यह अनिवार्य नहीं कि प्रत्येक कार्य द्वारा ये अपने 'अहं' को मिटाने का ही अभ्यास करें। वस्तुतः जहाँ दूसरी श्रेणी के लोग अपने 'अहं' के त्याग रूपी जीवन-लक्ष्य की प्राप्ति के लिये साधना में पूर्णतयाः निरत रहते हैं वहाँ इस तीसरी श्रेणी के लोगों को साधना की परिपक्वास्था में अहंभाव रह ही नहीं जाता इन्हें साध्य की उपलब्धि हो जाती है और ये सिद्ध पुरुष हो जाते हैं। आध्यात्मिक विकास की दृष्टि से दूसरी श्रेणी के लोग जहाँ साधन काल में हैं वहाँ इस तीसरी श्रेणी के महापुरुष सिद्धान्त काल में हैं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जो व्यक्ति साधन काल में रहता है वह हठपूर्वक अनेकों वस्तुओं का परित्याग करता है। यदि वह पूर्ण वैरागी होना चाहता है तो वह कहेगा कि मैं केवल जमीन पर ही सोऊँगा, झोपड़ी में ही रहूँगा, जमीन पर ही बैठूँगा, दाल-रोटी खाऊँगा और जूते तथा छाते का उपयोग नहीं करूँगा। कहेगा कि मैं पलंग का उपयोग नहीं कर सकता, बड़े महलों में नहीं ठहर सकता, कुर्सी पर नहीं बैठ सकता और मेवा मिष्ठान नहीं खा सकता। शायद उसे भय रहता है कि कहीं ऐसा करने से वह उन विषयों की मोहकता द्वारा आकर्षित होकर और विषय सुखों में फँस कर पतित न हो जावे। इस तरह राग को त्याग करने की इच्छा से वह द्वेष का वरण कर बैठता है और शायद उसे वैराग्याभिमान हो जाता है। उसे यह भी भय होता है कि कहीं उन विषयों में एक-आध बार भी भूल से रत होने पर उसके हृदय में उनके प्रतिराग और आकर्षण गुप्त रूप से न बढ़े और इस तरह इन्द्रिय-विजय का प्रश्न एक कदम और पीछे न हो जावे। इसलिए साधना काल में बहुधा साधक हठपूर्वक प्रयत्न करता है, प्रण बद्ध होकर कार्य करता है और यदि वह त्याग का अभ्यास करता है तो बहुधा उसे त्यागाभिमान हो जाता है, यदि वह सेवा करता है तो उसे सेवाभिमान हो जाता है और यदि वह अहिंसा का अभ्यास करता है तो वह अहिंसाभिमानी हो जाता है। किन्तु जो व्यक्ति इन्द्रियों और मन पर विजय प्राप्त कर लेता है अथवा सिद्धान्त काल में पहुँच जाता है उसे इस तरह का कोई भय नहीं होता। यदि उसे युद्ध जैसे अकुशल कर्म में भी प्रवृत्त होना पड़े तो भी वह इन सब लोकों को मारने में कदापि न हिचकेगा और न अहं भाव के अभाव में उसे पाप ही लगेगा। वह यह कभी न कहेगा कि मुझ अप्रतीकार करने वाले को भले ही मेरे शत्रु मार डालें पर मैं उनके विरुद्ध कभी भी हथियार न उठाऊँगा भले ही ये कौरवों और रावण जैसे आततायी और पाप-परायण ही क्यों न हों ? वह महान त्यागी भी होता है किन्तु कभी उसे मिष्ठान अर्पित किया जाता है, सुकोमल-शैय्या दी जाती है अथवा सुगन्धित पुष्प हार विनय एवं श्रद्धापूर्वक दिया जाता है तो वह उनका हठपूर्वक त्याग नहीं करता। यदि उसे कभी महल में सोना हो तो वह आध्यात्मिक पतन के भय से हठपूर्वक वहाँ रहना अस्वीकार न करेगा। यदि उसे बैठने के लिए कभी कुर्सी दी जायेगी तो वह कुर्सी पर भी बैठ जायेगा, यदि आवश्यकता पड़ेगी तो वह जूते और छाते का उपयोग करेगा और मौका आने पर वह पैसे के छूने में भी ऐतराज न मानेगा और उसका दुरुपयोग करेगा। इन वस्तुओं का उपयोग उसमें तनिक भी राग अथवा आसक्ति उत्पन्न नहीं करता क्योंकि वह इन सुन्दर पदार्थों को सुखकर तथा साग-पात, कन्द-मूल आदि जैसे साधारण पदार्थों को तथा कठोर भूमि-शय्या को दुःखकर नहीं मानता। उसकी गति अवधूतों जैसी हो जाती है और वह सोना-मिट्टी, सुन्दर-असुन्दर, मृदु-कठोर, मीठी-कड़वी आदि वस्तुओं के प्रति समदर्शी भाव रखता है। सुन्दर की अप्राप्ति में वह दुःखी और असुन्दर की अप्राप्ति में सुखी नहीं होता और न सुन्दर की प्राप्ति में सुखी और सुन्दर की प्राप्ति में दुःखी ही होता है। इन द्वन्द्व समुदायों में से न तो वह किसी को दूसरे की अपेक्षा विशेष हितकर और न पहले की अपेक्षा अधिक अहितकर ही समझता है। वह जानता है कि जहाँ तक इन द्वन्द्वों का इन्द्रियों से सम्बन्ध है वहाँ तक वे सुन्दर असुन्दर और सुखद-दुःख हैं किन्तु इन्द्रियों, मन और बुद्धि से परे आत्मा के सामने भले-बुरे के ये भेद अत्यन्त तुच्छ हैं। अतएव वह आत्मा में ही रमण करने वाला, अन्तर्मुखी, अन्तःसुखी, अन्तशराम और अन्तज्योति हो जाता है और इसलिए प्रकृति की इन द्वैत-मयी वस्तुओं में वैषम्य न देखते हुए वह उन्हें समत्वभाव से ही देखता है। उसकी विचार-पद्धति भय रहत होती है वह समत्व बुद्धि-युक्त होता है अतएव उसकी विचारधारा संतुलित होती है।

साधन काल में मनुष्य विषय पाश में फँसने से डरता रहता है अतएव वह उन विषयों से सम्बन्धित विषयों पर कभी-कभी निर्भयता पूर्वक न तो सोच सकता है और न आचरण ही कर सकता है। भय-पूर्ण विचारधारा के कारण वह कई बार अपने कर्त्तव्य का निर्णय ठीक-ठीक नहीं कर सकता अतएव कर्तव्यच्युत हो जाता है। उसकी बुद्धि अर्जुन के समान ही लड़खड़ाने लगती है और ऐसे समय में उसे सिद्धान्त-काल में पहुँचे हुए कृष्ण जैसे महात्मा की, सिद्धान्त-काल में पहुँचे हुए महापुरुष की विचार पद्धति पूर्णतया संतुलित और निर्भीक होती है। उदाहरण के लिए महात्मा भीष्म को ही लीजिए जब महात्मा भीष्म ने अम्बा और अम्बालिका से विवाह करना अस्वीकार किया और उन्होंने भगवान् परशुराम की सहायता माँगी तब परशुराम जी ने भीष्म को समझाकर कहा कि देखो पत्नी के रहते हुए भी भगवान् शंकर कामासक्त नहीं हैं और न पत्नी ही उनके लिए बंधन का कारण है। इसलिए भगवान् शंकर का अनुकरण कर तुम भी विवाह कर लो। तुम्हें दोष न लगेगा। इस पर महात्मा भीष्म ने कहा कि भगवान शिव कामजयी हैं किन्तु मैं तो काम से डरने वाला हूँ। भले ही भगवान परशुराम को निरुत्तर करने के लिए महात्मा भीष्म ने ऐसा उत्तर दिया हो किन्तु इसमें संदेह नहीं कि साधनावस्था में मनुष्य भीष्म के समान ही डरता रहता है और उसे विशेष सतर्क रहना पड़ता है किन्तु सिद्धान्त-काल में अभ्यास में प्रतिष्ठित हो जाने पर वह इस तरह के आसक्ति सम्बन्धी भय और संशयों से पूर्णतया विमुक्त हो जाता है, उसकी विचारधारा संतुलित होती है।

साधन को ही साध्य न मान बैठिए

सिद्धि ही जीवन का चरम एवं परम लक्ष्य है और उसके लिये साधक एवं साध्य की त्रिपुटी की शुद्धता अत्यन्त आवश्यक है। इस त्रिपुटी में से एक भी सदोष है तो सिद्धि भी सदोष ही प्राप्त होगी, जिसे वास्तव में सिद्धि कहा भी नहीं जाना चाहिये। हमें कलकत्ता जाना है पर मार्ग दूसरा ही ले लिया या चलने में उत्साह की मन्दता हो गई और चलना बन्द कर दिया या रास्ते में ही अन्य स्थान को कलकत्ता समझ कर जम गये, तो कलकत्ता पहुँचने की इच्छा ही सिद्धि न हो सकेगी। इसी प्रकार यदि साध्य को ही निश्चित नहीं किया या भ्रमवश गलत वस्तु को ही साध्य मान बैठे तो सिद्धि नहीं मिलेगी। एक गम्भीर भूल जो हम सभी कर बैठते हैं, वह है साधनों को साध्य मान लेना। इससे हमारी प्रगति रुक जाती है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

योग रूप साधन का साध्य मोक्ष प्राप्त करना है पर योग साधन करते-करते बीच में, विभूतियाँ सहज रूप में प्राप्त होती हैं। यदि हम उनके आकर्षक रूप में मोहित हो गये, तो आगे बढ़ नहीं सकेंगे, हमारी प्रगति वहीं रुक जायेगी।

विश्व के अधिकांश प्राणी तो साध्य को निश्चित ही नहीं कर पाते। उनके लिये तो साधन ही साध्य होता है। अतः उनको सिद्धि की प्राप्त न होना तो स्वाभाविक है पर कुछ समझदार कहे जाने वाले व्यक्ति साध्य को ठीक से जान लेते हैं, पर थोड़ा चलकर वे भी विचलित हो जाते हैं क्योंकि सिद्धि का मार्ग बहुत लम्बा एवं विकट है। उसको पूर्ण रूप से पार कर लेने के लिए असाधारण धैर्य, उत्कृष्ट इच्छा, अनुपम लगन, एवं काफी पुरुषार्थ की आवश्यकता है।

रुचि-वैचित्र के कारण विश्व के समस्त प्राणियों के साध्य की कल्पना एक-सी न होकर विभिन्न प्रकार की है, पर सबके मूल में एक ऐसी वस्तु अवश्य है, जो सभी की चाहना का सार है, वह है 'सुख की अनुभूति करना'। अतः साधारणतया उसे ही सबका साध्य कह सकते हैं। कोई भी प्राणी दुःख नहीं चाहता, पर वही उसे प्रतिपल मिलता रहता है। अतः सुख कैसे मिले ? —यही समस्या सबके सामने खड़ी है। इस विकट समस्या को सुलझाने का प्रयत्न अपनी-अपनी बुद्धि, योग्यता एवं प्रतिभा के अनुसार भिन्न-भिन्न प्रकार से मनीषियों ने किया है, पर उनमें दो तरह की दृष्टि ही प्रधान रूप से लक्षित होती है। एक बाह्य दृष्टि और दूसरी है अन्तर्दृष्टि। बाह्य दृष्टि वालों ने तो सुख का साधन विभिन्न वस्तुओं की अधिकाधिक परिमाण में प्राप्ति की जाना है। फलतः विश्व में नित्य नयी वस्तुओं का आविष्कार हुआ एवं होता जा रहा है और उनके अधिकाधिक प्राप्त करने में विश्व जुटा हुआ है। हमें ज्यों-ज्यों अधिक धन अधिक वस्तुएँ मिलती जाती हैं, हमारी तृष्णा बढ़ती ही जाती है, तृप्ति और शान्ति नहीं प्राप्त होती, हमारी बेचैनी बनी रहती है। इस एक बात को लेकर अंतर्मुखी वृत्ति वाले मनीषियों ने सुख की प्राप्ति के इस तरीके को गलत बतलाते हुए आवश्यकताओं को कम करने तथा वृत्तियों को वश में कर संतोष और आत्मसाक्षात्कार करने को ही सुख का साधन निश्चित किया। वास्तव में अनुभूति भी इसी को सत्य बतला रही है, पर अनादि अभ्यास तथा संस्कार के वश हो अन्धानुकरण की प्रवृत्ति से छूटना भी तो सहज नहीं। विकट मार्ग में जाने का साहस और उत्साह भी सबके लिये सम्भव नहीं। अतः विरले व्यक्तियों को छोड़ सभी बाह्य पदार्थों की प्राप्ति को ही साध्य मानकर रात दिन उसी के पीछे भागते फिरते हैं।

मनुष्य जब कोई प्रवृत्ति करता है, तो किसी कारण से। कारण बिना 'कार्य नहीं होता'। हम अपनी प्रत्येक प्रवृत्ति के कारण को ढूँढ़े, तो सबके मूल में वही भूल व्याप्त मिलेगी। यहाँ निम्नलिखित उदाहरण काफी होंगे। विचारशील प्रत्येक मनुष्य जानता है कि हम भोजन करते हैं शरीर—रक्षा और पोषण के लिये। धन कमाते हैं आवश्यक सामग्री को जुटा सकने के लिए। पढ़ते हैं तो ज्ञान बढ़ाने के लिये या बुद्धि विकास के लिये। धर्मानुष्ठान करते हैं परमात्म-पद प्राप्त करने के लिये। घर बनवाते हैं सर्दी-गर्मी आदि से बचने के लिये। कपड़े पहनते हैं शरीर की रक्षा के लिये। खेती आदि करके उत्पादन करते हैं खाने के लिये। बोलते हैं अपने भाव दूसरों तक पहुँचाने के लिये। लिखते हैं तो याद रहने और अधिक समय तक दूसरों के लाभ उठाते रहने के लिये। इस प्रकार प्रत्येक प्रवृत्ति सकारण है, पर हमें देखना यह है कि उसका मूल उद्देश्य उससे पूरा होता है या नहीं।

अब हमारी भूल कहाँ होती है, टटोलिये। हम भोजन करते हैं, पर उसमें शरीर के पोषण को ध्यान न रख बीच में ही पथभ्रष्ट हो स्वाद को साध्य समझ लेते हैं। फलतः बहुत बार भूख से अधिक खा लेते हैं या अनावश्यक गरिष्ठ पदार्थ खा लेते हैं, जिससे शरीर रक्षा का उद्देश्य नष्ट होता है और उल्टे उसकी हानि हो जाती है। हमारा साध्य शरीर-रक्षा न रहकर बीच की भूलभुलैया का मजा लेना हो जाता है। वास्तव में खाना साधन है पर उसे साध्य मान हम मूल को छोड़ देते हैं। उसी प्रकार शरीर रक्षा की जाती है दीर्घायु और धर्म सामने के लिये, पर जब हमारा शरीर निरोग हुआ, तब हम भोगों में जुट जाते हैं। उसी के शृंगार और सार सम्भाल में सारा समय और जीवन बरबाद कर देते हैं। अतः साध्य धर्म को छोड़ शरीर रूपी साधन को साध्य मान उसी से ममत्त्व बढ़ा लेते हैं। यही हाल धन कमाने का है। उसका साध्य जीवनोपयोगी आवश्यकताओं की पूर्ति और सद्कार्य करना है। पर आवश्यक धन की प्राप्ति हो जाने पर भी हम उसी के संग्रह में जीवन व्यतीत कर देते हैं। आखिर उस परिग्रह बढ़ाने का उद्देश्य क्या। मानव क्यों व्यर्थ का श्रम करता है और चिन्ता मोल लेता है। यहाँ भी मूल में वही भूल काम कर रही है। धन रूप साधन को साध्य मान लेने के कारण मनुष्य उसी के पीछे चिपका रहता है। सद्कार्यों में व्यय करते नहीं बनता और जीवन के अन्त तक कमाता ही रहता है। उसे विश्रान्ति कहाँ ?

यही हाल घर-मकान और अन्य वस्तुओं के संग्रह तथा उत्पादन का है। एक घर बनता है, फिर धन बढ़ा तो उसको गिरा नया बनाता है। उसको एक घर चाहिये, पर १०-२० बढ़ाता जाता है। कहिये, यह पागलपन नहीं तो क्या है ? आखिर अमर-पद तो कोई लिखा के लाया नहीं। दो दिन की जिन्दगी है। फिर उसे झमेलों में बरवाद कर देना कहाँ की अक्लमन्दी है ? पर मूल में वही भूल यहाँ भी काम कर रही है। घर आदि को ही साध्य मान, उन्हीं के पीछे लिपटे और मूल साध्य को भुला दिया गया। उसी का यह दुष्परिणाम है। हमारी भूल की कहानी कहाँ तक कही जाये। लिखते-लिखते पोथा हो जायेगा।

प्रत्येक धर्म में कुछ व्रत, नियम और अनुष्ठान पाये जाते हैं। उनका उद्देश्य पशुता से ऊपर उठकर मानवता की प्राप्ति करना होता है। पर, उन व्रत-नियमों और अनुष्ठानों को करते-करते हमारी उम्र जाती है। फिर भी हमारी पशुता तनिक कम नहीं होती है। हम में मानवोचित गुणों का भी विकास नहीं होता। फिर मोक्ष की प्राप्ति की तो बात ही करना व्यर्थ है। हम मन्दिर, मस्जिद और गुरुद्वारे में जाते हैं उसका साध्य क्या है। यही न कि हमारे जीवन में नैसर्गिक गुणों का विकास हो ?

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

दर्शन, भजन और चिन्तन करते हैं आत्मविकास के लिए। धर्म ग्रन्थ पढ़ते हैं और व्याख्यान सुनते हैं इसलिये कि अहिंसा, सत्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह की जीवन में प्रतिष्ठा हो, हमारा नैतिक जीवन आदर्शमय बने। सामयिक प्रतिक्रमण, क्षमन, क्षामना करते हैं, इसलिये की समत्व भाव की वृद्धि हो, क्रोध, मान, माया एवं लोभ की कमी हो, राग-द्वेष को छोड़े अपने दोषों को स्मरण कर भविष्य में उनसे हटते रहे, क्षमत-क्षामनां कर द्वेष को हटाकर हृदय को पवित्र-उदार और विशाल बनावें। पर ऐसा होता कहाँ है। नित्य प्रतिक्रमण और सामयिक करते रहने पर भी हमारी वृत्तियाँ पुरानी हैं एवं धर्म कार्य न करने वाले दूसरों की भाँति ही उसमें भी वे सब दोष पाये जाते हैं। कभी-कभी तो अधिक मात्रा में। कहिये, साधन दूषित है या साध्य गलत है। क्योंकि साध्य तो प्राप्त होता नहीं। अतः कोई कमी तो अवश्य है ही।

विचार करने पर यहाँ भी वही भूल घर किये बैठी प्रतीत होती है। धर्म ग्रन्थ पढ़कर सामयिकादि क्रिया कर हमने अपना काम कर लिया यही हमारी धारणा प्रतीत होती है और वास्तव में यही साधनों को साध्य मान लेना है। किन्तु साध्य दूर है। वहाँ तक हमें पहुँचना है, पर सोचने विचारने का तनिक भी कष्ट नहीं उठाते। इस भूल का दुष्परिणाम यहीं तक नहीं रुकता। पर साधनों को साध्य मान लेने के कारण ही साधनों को लेकर झगड़े होते हैं, जिससे साध्य का सर्वथा खून हो जाता है। धर्म के लिये जो साधन हैं उन्हीं को लेकर हम धर्म के मूल को जलाने वाले द्वेष, गाली, गलौज, ईर्ष्या एवं मार काट तक कर बैठते हैं।

समस्त धर्मों के व्रत, नियम, पूजा-पाठ, देव-गुरु-भक्ति आदि के विधि-विधानों में एक ही साध्य समान रूप से प्रतिष्ठित मिलता है—वह है मोक्ष की उपलब्धि। जिससे समस्त दुःखों से छुटकारा मिल जाता है और जिसके लिए राग द्वेष रूपी कालुष्य को हटाकर समत्व भाव रूप आत्मशुद्धि की अत्यन्त आवश्यकता है। जब तक बाह्य पदार्थों में आसक्ति या ममत्व भाव है, तब तक राग द्वेष का झगड़ा लगा ही रहेगा। अतः जिस किसी प्रवृत्ति द्वारा हम निआत्म स्वरूप के निकट पहुँचते हैं, वही उपादेय है।

जिससे बीत राग भाव की प्राप्ति न हो, वह साध्य अधूरा है। यही मान कर चलते जाना है। एक ही स्थान पर पहुँचने के मार्ग अनेक हो सकते हैं। अतः मार्ग के लिये हमें झगड़ा नहीं करना है। लक्ष्य को ठीक से निर्धारित कर सम्मुख रखना है और उसकी प्राप्ति हो रही है या नहीं, किस हद तक हो रही है इस तुला पर अपनी प्रवृत्ति को तौलते रहना है। यदि रागद्वेष बढ़ रहा है तो उसके कारण खोज निकाल के उन्हें हटाने में प्रयत्नशील रहना है।

साधनों की पवित्रता भी आवश्यक है

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पूर्व जब लोग स्वर्गीय लोकमान्य तिलक से पूछा करते थे—स्वराज्य की परिभाषा क्या है ? आपके लक्ष्य का स्वरूप क्या है ? तब वे कहते थे **"स्वदेशी ही स्वराज्य है, राष्ट्रीय शिक्षण ही स्वराज्य है, विदेशी बहिष्कार ही स्वराज्य है।"** स्वराज्य की कैसी परिभाषा थी उनकी ! इसके लिए जो साधन मिलता था उसी के बारे में कह देते थे कि यही स्वराज्य है। यही हमारा साध्य है।

ठीक इसी तरह जब गाँधीजी से लोग पूछते थे तो उस समय जो साधन उन्हें ठीक लगता था उसी को बताते हुए कहते थे—**"खादी ही स्वराज्य है", "हिन्दू-मुस्लिम एकता ही स्वराज्य है", "स्त्री शिक्षा ही स्वराज्य है", "अस्पृश्यता निवारण ही स्वराज्य है।"** इसी तरह की विभिन्न परिभाषायें वे करते चले जाते थे।

उक्त परिभाषाओं से स्पष्ट मालूम पड़ता है कि साधन ही साध्य हैं। साधन और साध्य की एकरूपता में ही सिद्धि निहित है। जैसे साधन होंगे वैसा ही साध्य परिणाम में मिलेगा। मंजिल पर पहुँचना इस बात पर निर्भर करता है कि यात्री पथ को कैसे पूरा करते हैं। राह चलना ही मंजिल को प्राप्त करना है। भली प्रकार अध्ययन करना ही परीक्षा में सफलता का जनक है और दोनों मिलकर सिद्धि बनते हैं।

बापू ने कहा है—"मैं जानता हूँ कि अगर हम साधनों की चिन्ता रख सके तो साध्य की प्राप्ति लाजमी है। मैं यह भी अनुभव करता हूँ कि साध्य की ओर हमारी प्रगति ठीक उतनी ही होगी जितने हमारे साधन शुद्ध होंगे।"

स्वामी विवेकानन्द ने और भी स्पष्ट करते हुए कहा है—"हम जितना साध्य पर ध्यान देते हैं उससे अधिक साधन पर दें। यदि साधन ठीक होंगे तो सही परिणाम मिलेगा ही। कारण से कार्य की उत्पत्ति होती है। कार्य अपने आप नहीं आ सकता। कारण जब तक उपयुक्त, ठीक और बलशाली न होगा तब तक ठीक परिणाम नहीं मिल सकता। एक बार जब हम अपना लक्ष्य बना लेते हैं और ठीक-ठीक साधनों का निश्चय हो जाये, तो फल तो मिलेगा ही यदि साधन में पूर्णता है। यदि हम कारण की परवाह करते हैं तो फल अपने आप स्वयं की परवाह कर लेगा। साधन ही कारण है इसलिए उन पर ध्यान देना ही साध्य का रहस्य है।"

गीताकार ने भी साधना, क्रिया पर जोर देते हुए कहा है—**"स्वकर्मणा तपश्चर्य सिद्धि विन्दति मानवः।"** जो व्यक्ति सच्चाई के साथ अपना कार्य करता है उसे ही सिद्धि मिलती है। कर्म साधना ही साध्य की अर्चना है।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि साध्य कितना ही पवित्र, उत्कृष्ट, महान क्यों न हो यदि उस तक पहुँचने का साधन गलत है दोषयुक्त है तो साध्य की उपलब्धि भी असम्भव है। जिस तरह मिट्टी का तेल जला कर वातावरण को सुगन्धित नहीं बनाया जा सकता है उसी तरह दोषयुक्त साधनों के सहारे उच्चस्थ लक्ष्य को प्राप्त करना भी असम्भव है। वातावरण की शुद्धि के लिए सुगन्धित द्रव्य जलाने होंगे। उत्तम साध्य के लिए उत्तम साधनों का होना आवश्यक है, अनिवार्य है। ठीक इसी तरह उत्कृष्ट साध्य लक्ष्य का बोध न हो तो उत्तम साधन भी हानिकारक सिद्ध हो जाते हैं।

आज हमारी सबसे बड़ी भूल यह है कि हम साध्य तो उत्तम चुन लेते हैं, महान लक्ष्य भी निर्धारित कर लेते हैं लेकिन उसके अनुकूल साधनों पर ध्यान नहीं देते। इसीलिए हमारे

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन में गतिरोध पैदा हो जाता है और साध्य से हम दूर भटक जाते हैं। हम जो कुछ भी लक्ष्य निर्धारित करते हैं तो फिर हमारा ध्यान उस लक्ष्य पर ही रहता है। उसे कैसे जैसे भी प्राप्त कर लिया जाये यही हमारी साधना होती है और कई बार भ्रम में भटक कर हम गलत साधनों का उपयोग कर बैठते हैं। फलतः साध्य के प्राप्त होने का जो सन्तोष और प्रसन्नता मिलनी चाहिए उससे हम वंचित रह जाते हैं।

चाहे सामाजिक क्रान्ति हो या व्यक्तिगत साधना, लक्ष्य की प्राप्ति तभी सम्भव होगी जब साध्य और साधन को जोड़कर मनुष्य साधननिष्ठ बनेगा।

परीक्षा में सफलता के लिए मनोयोगपूर्वक अध्ययन की आवश्यकता है। लेकिन बहुत से विद्यार्थियों की मनोदशा ऐसी बन गई है कि कैसे जैसे भी तिकड़म भिड़ाकर, चोरी से नकल करके परीक्षा में सफलता पा ली जाये। बहुत से विद्यार्थी अध्ययन में परिश्रम न करके इस तरह के हथकण्डों की खोज में रहते हैं जिससे श्रम भी न करना पड़े और सफलता भी मिल जाये।

लोग धनवान बनना चाहते हैं ठीक भी है। धनी बनना कोई बुरी बात नहीं है और इसके लिए पर्याप्त पुरुषार्थ बुद्धि विवेक के साथ लगाया जाये तो कोई कारण नहीं कि मनुष्य धनवान न बने। लेकिन पुरुषार्थ न करे बिना श्रम किये ही लोग लक्ष्मी अर्जित करना चाहते हैं। जुआ, सट्टे, चोरबाजारी, मिलावट, अधिक मुनाफाखोरी न जाने कितने ही अपराधी साधनों का अवलम्बन ये लोग लेते हैं और समाज को, साथ ही स्वयं को भी हानि पहुँचाते हैं। क्योंकि समाज के नुक्सान में ही आज व्यक्ति की हानि निहित है। कमजोर छिन्न-भिन्न समाज व्यक्ति की भी रक्षा नहीं कर सकता है। जिस तरह चोरी डकैती व्यभिचार से अर्जित धन को बुरा समझा जाता है इसी तरह उक्त अनैतिक साधनों से धनोपार्जन गलत है। बहुत कुछ अंशों में ऐसे मनुष्य को असफलता और असन्तोष ही मिलता है। ऐसे व्यक्तियों को धन के द्वारा जो सुख आदि मिलना चाहिए वह नहीं मिलता परिणाम में वही उनके लिए क्लेश का कारण बन जाता है।

उच्च पद प्रतिष्ठा, ऐश्वर्य प्राप्ति के लिए मनुष्य के सामने विस्तृत संसार पड़ा हुआ है। पुरुषार्थ और प्रयत्न के साथ मनुष्य कुछ भी प्राप्त कर सकता है लेकिन वह इस राजमार्ग को न अपना कर दूसरों को नुकसान पहुँचाता है, बढ़ते हुओं की टाँग खींचता है, व्यर्थ ही संघर्ष पैदा करता है अथवा किसी की खुशामद मिन्नतें करता है। ये दोनों ही साधन गलत है। इसके लिए व्यक्तिगत प्रयत्न आवश्यक है। अपने पुरुषार्थ के बल पर मनुष्य क्या नहीं प्राप्त कर सकता ?

लोग चलते हैं जनसेवा का लक्ष्य लेकर लेकिन वे जनता से अपनी सेवा कराने लग जाते हैं। बहुत से ज्ञानी उपदेशक धर्म पर चलने के लिए बड़े लम्बे-चौड़े उपदेश देते हैं लेकिन उनके स्वयं के जीवन में हजारों विकृतियाँ भारी पड़ी रहती हैं। कई साधु संन्यासी सन्त महात्मा लोगों को त्याग वैराग्य मोक्ष आत्मकल्याण की बातें कहते हैं लेकिन जनसाधारण से भी अधिक माया, मोह में लिप्त पाये जाते हैं। देश सेवा के लिए, राष्ट्र को उन्नति और विकास की ओर अग्रसर करने के लिए लोग राजनीति में आते हैं लेकिन अफसोस होता है जब वे पार्टीबाजी, सत्ता हथियाने के लिए, गुटबन्दी के लिए परस्पर लड़ते झगड़ते है कूटनीति का गन्दा खेल खेलते हैं अपने घर भरते हैं, जनता की आँखों में धूल झोंकते हैं।

साधनों में इस तरह की भ्रष्टता व्यक्ति और समाज दोनों के लिए अहितकर सिद्ध होती है। इससे किसी का भी भला नहीं होता, सिद्धि उनसे बहुत दूर हट जाती है।

जिस तरह साधनों की पवित्रता आवश्यक है उसी तरह साध्य की उत्कृष्टता भी आवश्यक है। साध्य निकृष्ट हो और उसमें अच्छे साधनों को भी लगा दिया जाये तो कोई हितकर परिणाम प्राप्त नहीं होगा। उल्टे उससे व्यक्ति और समाज की हानि ही होगी। उत्कृष्ट साधन भी निकृष्ट लक्ष्य की पूर्ति के आधार बन कर समाज में बुराइयाँ पैदा करने लगते हैं। बुराइयाँ तो अपने आप भी फैल जाती हैं लेकिन किन्हीं समर्थ साधनों का प्रयोग किया जाये तो वे व्यापक स्तर पर फैलने लगती है। अतः जिनके पास साधन हैं, माध्यम हैं उन्हें आवश्यकता है उत्कृष्ट लक्ष्य के निर्धारण की।

सिद्धि का यही रहस्य है कि उत्कृष्ट लक्ष्य का चुनाव फिर उसके अनुकूल ही उत्कृष्ट साधनों का उपयोग। साध्य और साधन की एकरूपता पर ही सिद्धि का भवन खड़ा होता है।

हमारा समस्त जीवन ही साधनमय बने

मानव-जीवन ईश्वर की एक अनमोल अमानत है। इसे आदर्श एवं उत्कृष्ट बनाना ही अपनी बुद्धिमत्ता और दूरदर्शिता का परिचय देना है। भगवान् ने हमारी पात्रता की कसौटी के रूप में यह मनुष्य शरीर दिया है और यह परखा है कि हम इसका उत्तरदायित्व सम्भालने की स्थिति में है या नहीं ? यदि इस कसौटी पर खरे उतरे तो ऋषित्व एवं देवत्व जैसे उच्च उत्तरदायित्व प्रदान कर अन्ततः अपना ही अंग बना लेता है, पर यदि मनुष्यत्व जैसी परीक्षा में सफल न हो सके, इतना छोटा उत्तरदायित्व भी सम्भाल न सके तो जिस स्तर के हम हैं उसी निम्न योनि में पड़े रहने के लिये वापस भेज देता है। गैर जिम्मेदार सरकारी कर्मचारी 'रिवर्ट' कर छोटे पदों पर उतार दिये जाते हैं। हमें भी अपनी निकृष्ट मनोभूमि के अनुरूप निम्न-योनियों में उतरना पड़ सकता है।

अस्तु प्रयत्न यह होना चाहिये कि मानव-जीवन के महान उत्तरदयित्व को वहन करने के लिये हम पग-पग पर सतर्कता बरते। निम्न-योनियों के संचित कुसंस्कारों को हटावें और मानवोचित गुण कर्म स्वभाव की—सद्भावनाओं और सत्प्रवृत्तियों की अभिवृद्धि करें। यह प्रयत्न तभी सफल हो सकता है जब हर घड़ी अपने आपके ऊपर चौकसी रखी जाये। अपने सम्बन्ध में असावधान रहने से-उसी ढर्रे पर अपनी गाड़ी भी लुढ़कने लगती है, जैसे आस-पास घिरे हुए निकम्मे लोगों का जीवन फूहड़पन के साथ बर्बाद होता चला जा रहा है। आवश्यकता ऐसी विवेकशीलता की है, जो अपने सम्बन्ध में

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सतर्कता बरतने और दूसरे गन्दे लोगों का अनुकरण न करके अपना मार्ग स्वतः निर्धारण करने का साहस प्रदान कर सके।

ऐसा साहस ही अध्यात्म है—जो आदर्श जीवन जीने की गतिविधियों का निर्माण करे और उसी रास्ते पर उत्साहपूर्वक घसीट ले चले। जिन लोगों के बीच हमारा रहना है, उनमें से अधिकांश बड़े स्वार्थी, संकीर्ण, ओछे गन्दे लोग हैं, इनकी कोशिश अपने ढर्रे पर साथियों को ही घसीट ले चलने की होती है। वे उत्कृष्ट जीवन जीने वालों का मजाक बनाते हैं। निन्दा और विरोध करते हैं और तरह-तरह की अड़चनें खड़ी करते हैं। जो इनसे डर गया वह गन्दा जीवन जीने के लिए विवश होगा, पर जिसने साहस करके अपना पथ स्वयं निर्धारण करने का संकल्प कर लिया और पड़ौसियों की उपेक्षा करके उत्कृष्टता की गतिविधियाँ अपनाने के लिये दृढ़तापूर्वक चल पड़ा वही जीवनोद्देश्य की प्राप्ति में सफल होता है। अध्यात्म साहसी शूरवीरों का— आदर्शवादी और उत्कृष्ट लोगों का मार्ग है।

देवी-देवताओं को मन्त्र-तन्त्र से सिद्ध कर उनसे तरह-तरह की मनोकामनायें सहज ही प्राप्त कर लेने के सपने देखने वाले, थोड़ी-सी टंट-घंट के बदले स्वर्ग-मुक्ति लूट ले जाने वाले धूर्त, अपना मन सस्ते सपने देखने में बहलाते कह सकते हैं, पर रहना उन्हें खाली हाथ ही पड़ता है। उनके जीवन-शोधन का पुरुषार्थ कर सकने पर साहस नहीं कर सकते, उन्हें आत्मिक प्रगति, ईश्वर की प्रसन्नता और जलन दिव्य विभूतियों की आशा नहीं करनी चाहिये, जिन्हें पाकर मनुष्य-जीवन धन्य और सार्थक बनता है। कीमती वस्तुयें उचित मूल्य देकर ही खरीदी जा सकती हैं। आध्यात्मिक विभूतियाँ और दैवी सम्पदायें जीवन-शोधन से कम मूल्य पर आज तक न कोई खरीद सका है और न भविष्य में कोई खरीद सकेगा। सस्ते मूल्य पर आत्मिक सफलतायें मिलने के प्रलोभन विडम्बना भरे हैं। उनसे विवेकशील को अपना पिण्ड शीघ्र छुड़ा लेना चाहिए और साहसपूर्वक जीवन-शोधन के उस राजमार्ग पर चल पड़ना चाहिये, जिस पर चले बिना कल्याण का लक्ष्य प्राप्त कर सकना किसी के लिये भी सम्भव नहीं हो सकता।

यह कार्य एक निर्धारित समय पर थोड़ी पूजा-उपासना जैसी प्रक्रिया अपना कर सम्पन्न नहीं किया जा सकता। हर घड़ी आत्मनिरीक्षण की दृष्टि अपने ऊपर रखने से ही यह प्रयोजन सिद्ध होता है। साधना के प्रथम चरण में अपने शरीर और मन पर—कार्य और विचारों पर बारीकी से तीखी नजर रख कर यह देखना होता है कि मनुष्यता के गौरव को गिराने वाले—पशु स्तर के—कुसंस्कार अपने में कितने समाये हुए हैं? गुण, कर्म, स्वभाव में किन पशु-प्रवृत्तियों का समावेश है ? उन्हें धीरे-धीरे एक-एक करके छोड़ने का संकल्प करना चाहिये। अपने कुसंस्कारों से लड़ना चाहिये। उनकी हानियों पर विचार करना चाहिये और एक-एक करके अपने दोष, दुर्गुणों को छोड़ते चलना चाहिये।

आहार-विहार सम्बन्धी कितनी ही कुटेवें अपने अन्दर हो सकती हैं। नशे, व्यवसन, व्याभिचार, आलस्य, कटुभाषण, क्रोध, आवेश, असंयम, मलीनता, लापरवाही, आशका, चिन्ता, भय, कायरता, निराशा, उच्छ्रंखलता जैसे छोटे-मोटे स्वभाव जन्म-दोष ऐसे होते हैं, जो देखने में मामूली से लगते हैं, पर प्रगति के पथ पर भारी अवरोध उत्पन्न करते हैं। चोरी, हत्या, धोखा, बेईमानी, बलात्कार जैसे बड़े पाप तो कोई विरले ही करते हैं, उनके लिए कानून में दण्ड व्यवस्था भी है पर छोटे दुर्गुणों की ओर कोई ध्यान नहीं दिया जाता। असल में पतन की जड़ यही होते हैं और आगे चलकर उन्हीं की वृद्धि होती चलने से व्यक्ति क्रूर-कुकर्मी, नर-पिशाच बन जाता है। इसलिये इन विष वृक्षों के छोटे-मोटे पौधे भी अपने जीवन क्षेत्र में उग रहे हों तो उन्हें एक-एक करके उखाड़ फेंकते चलने के लिए कटिबद्ध हो जाना चाहिये। अपने दैनिक क्रियाकलापों और उनके साथ जुड़े हुए विचारों एवं उद्देश्यों को परखते रहना चाहिये कि निकृष्ट स्तर के—नर पशुओं के—स्तर पर तो नहीं चल रहे हैं। यदि इनमें दोष पाये जाएँ तो तुरन्त उसके स्थान पर सुधरी हुई रूपरेखा उपस्थित करनी चाहिये और दोष के स्थान पर गुण को—अनुपयुक्त के स्थान पर उपयुक्त को—प्रतिष्ठित करना चाहिये। जो गलत किया जा रहा है, उसके स्थान पर सही क्या हो सकता है, यह निर्णय करने के लिये पक्षपात रहित विवेक की आवश्यकता है।

आमतौर से हर मनुष्य अपने साथ रियासत और पक्षपात करता है। यह भूल सुधारनी चाहिये। जैसे गलत विचार या गलत कम अपने हैं, यदि कैसे ही कोई दूसरा करे और पूछने आवे कि मुझे इन्हें कैसे छोड़ना चाहिये ? और इनके स्थान पर क्या रीति-नीति अपनानी चाहिये ? तो इसके उत्तर में हम निश्चय ही बहुत कुछ उपदेश और परामर्श दे सकते हैं। वही उपदेश और परामर्श दे सकते हैं। वही उपदेश और परामर्श अपने आप को देना चाहिये। अपने भीतर एक नया न्यायाधीश, उपदेशक, गुरु, भगवान् विकसित कर लेना चाहये। वही अपना सुधार और मार्गदर्शन कर सकता है। इसी के परामर्श पर चलना चाहिये। एक-एक करके इसी प्रकार अपने दोष दुर्गुणों का अन्त होगा। आत्म-शोधन को एक महान साधन मान कर उसमें निरन्तर संलग्न रहने से ही हम निर्मल, निर्दोष, निष्पाप और निष्पक्ष, सद्विवेकी महामानव बन सकेंगे। आध्यात्मिक प्रगति के लिये यही राजमार्ग है।

जीवन-साधना का दूसरा चरण अपने भीतर सद्गुणों का, उत्कृष्टताओं, योग्यताओं और क्षमताओं का विकसित करना है। असत्य, हिंसा, चोरी, व्यभिचार, नशा आदि दुर्गुणों को छोड़ देना ऐसा ही है, जैसे किसी पौधे की जड़ को काटने में लगी हुई दीमक को हटा देना। इससे एक कठिनाई तो दूर हुई पर पौधे के विकास का पथ प्रशस्त कहाँ हुआ ? उसके लिए खाद-पानी की उपयुक्त आवश्यकतायें भी पूरी करनी होंगी। अन्यथा बेचारा पौधा बढ़ेगा कैसे ? मानवोचित योग्यता और विशेषताओं को बढ़ाने में उस शक्ति को लगा देना चाहिये जो दोष दुर्गुणों में बर्बाद होने से बचाई गई है। बहुत-सा समय मनोयोग और धन बेकार बातों में नष्ट किया जाता रहता है। उस बर्बादी को बचा लेना ही काफी नहीं वरन् यह भी आवश्यक है कि उस बचत से अपनी विशेषताओं को बढ़ाया

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जाये। रोग दूर करने के लिए चिकित्सा, उपचार करना चाहिये पर यह भी ध्यान रखना चाहिये कि रोग जन्य दुर्बलता दूर करने के लिए पौष्टिक आहार-विहार का भी प्रबन्ध किया जाये। दोषों को हटा देना औषधि उपचार की तरह है। गुणों का अभिवर्द्धन उत्तम आहार-विहार का प्रबन्ध करने की तरह।

अपनी शारीरिक और आत्मिक क्षमतायें बढ़ाना जीवन साधना के अनिवार्य अंग हैं। आहार-विहार का संयम किये बिना-ब्रह्मचर्य व्यायाम, स्वच्छता, विश्राम, सात्विक आहार का ध्यान रखे। बिना शारीरिक स्वस्थता को स्थिर नहीं रखा जा सकता है, इसलिए इन बातों पर पूरा ध्यान देना चाहिए। आलस्य को सबसे बड़ा शत्रु मानना चाहिये। समय के एक-एक क्षण को सदुपयोग करना चाहिये, बेकार कभी भी नहीं बैठना चाहिये। दिनचर्या ऐसी बनानी चाहिये, जिसमें समय की बर्बादी के लिए तनिक भी गुंजायश न रहे।

मानसिक स्वरूप की रक्षा के लिए चिन्ता, निराशा आशका, भय, क्रोध, आवेश, ईर्ष्या, द्वेष, जैसे मनोविकारों से बचना आवश्यक है। कामुकता भरी कल्पनायें अति घातक हैं। उनसे मस्तिष्क की सारी पवित्रता नष्ट हो जाती है। सन्तानोत्पादन की आवश्यकता समझ में आ सकती है, पर अश्लील विचारों का मस्तिष्क में घुमाते रहना और बहुमूल्य मनोयाग को किसी रचनात्मक चिन्तन में लगाने की अपेक्षा इन बेसिर-पैर की बातों में नष्ट करना सर्वथा अवांछनीय है। इसी प्रकार उपरोक्त अन्य मनोविकार भी मस्तिष्क की सारी सृजनात्मक क्षमता का अपने ही जंजालों में उलझाए रह कर उसे नष्ट करते रहते हैं। इतना ही नहीं वरन् मानस क्षेत्र को विषैला कर उसे इतना दुर्बल बना देते हैं कि किसी महत्त्वपूर्ण योजना को बनाने और उसे ठीक तरह चलाने की क्षमता ही नहीं बनती है।

अतएव मनोविकारों ने यदि मस्तिष्क में अड्डा जमा लिया हो तो सफाई करने के लिए तत्पर होना ही चाहिए। उत्साह, धैर्य, साहस, सन्तुलन, विनोद, सन्तोष, परिश्रम, संयम जैसे सद्गुणों को विकसित करना चाहिए। जीवन हलका-फुलका होना चाहिए। हँसते-खेलते हल्के मन से सारे काम करने चाहिए। हर काम जिम्मेदारी और तत्परता से करना चाहिए पर मस्तिष्क पर उसका दबाव और तनाव जरा भी नहीं पड़ने देना चाहिये। जीवन एक खेल की तरह जानना चाहिये। प्रतिकूल परिस्थितियाँ, हानियाँ एवं आशंकाओं को मस्तिष्क पर हावी नहीं होने देना चाहिए। जो हँसी-खुशी की हलकी-फुलकी जिन्दगी जी सकता है वही जीना जानता है। भारी लाश की तरह जिन्दगी की गाड़ी रोते, कलपते खींचने वाले अविवेकियों की तरह नहीं। हमें दृष्टा और साक्षी की तरह हँसी-खुशी भरा जीवन जीना चाहिये। पाप और कुविचारों को मस्तिष्क में प्रविष्ट नहीं होने देना चाहिये। तृष्णा और वासना की लानत को नहीं ओढ़ना चाहिये। यह दोनों ही चुड़ैल ऐसी है जो वेशकीमती जिन्दगी को अपने ही कुचक्र में फँसा कर नष्ट कर देती हैं। हमें सन्तोषी होना चाहिये, संग्रही नहीं। कामुकता, धन-संचय, और वाहवाही लूटने की विडम्बनायें बाल-वृद्धि की प्रतीक है। इन बचकानी बातों में अपनी शक्तियाँ नष्ट होने से बचा कर उन कार्यों में लगानी चाहिये जो आत्म-कल्याण और विश्वकल्याण के महान प्रयोजनों को पूरा करने के लिये आवश्यक हैं।

स्वाध्याय नित्य करना चाहिये। जीवन-निर्माण के लिए उपयुक्त सत्साहित्य नित्य पढ़ना चाहिये। मस्तिष्क पर सारे संसार में फैले हुए अनुपयुक्त वातावरण की छाप अनायास ही पड़ती रहती है। इस मलीनता को रोज स्वच्छ करने के लिए स्वाध्याय तथा सत्संग ही एक मात्र उपाय है। इस जमाने में सत्संग के नाम पर भ्रम-जंजाल में भटका देने वाले साधु बाबाओं और कथावाचकों की ऐसी माया फैली पड़ी है जो सीधे रास्ते पर चलने वाले को उल्टा भटका दे। अब सत्संग भी लगभग असम्भव है क्योंकि विचारशील व्यस्त रहते हैं और जिनके पास समय है वे उल्टे भ्रम में डालते हैं। सामाजिक विचारशील और चरित्रवान लोगों का सत्संग उनके साहित्य से ही मिल सकता है। युग-निर्माण योजना द्वारा प्रस्तुत सत्साहित्य ही हमारी स्वाध्याय की आवश्यकता को पूरा कर सकता है।

शरीर और मन ही नहीं आत्मिक स्तर का विकास भी किया जाना चाहिए। इसके लिए परामर्श प्रयोजनों के कुछ कार्य अवश्य करने चाहिए। दान-पुण्य के नाम पर धन की बर्बादी करने वाले बहुत हैं, हमें विवेकपूर्ण परमार्थ करना चाहिये। जिससे विश्व में सत्प्रवृत्तियों को, सदाचरण को, सद्भावनाओं को प्रोत्साहन मिले, वे ही कार्य परमार्थ हैं। ऐसे परमार्थ कार्यों में अपने समय, श्रम, बुद्धि, मनोयोग, धन एवं व्यक्तित्व का एक अंश नियमित रूप से लगाते रहना चाहिये। हमें अपने लिए ही नहीं, दूसरों के लिए भी जीना चाहिये। इस संसार से हमने बहुत कुछ पाया है। आहार, वस्त्र, विद्या, व्यवहार, धन, मनोरंजन आदि सब कुछ समाज का ही दिया हुआ है, इसके बदले हमें भी कुछ ऐसे प्रयत्न निरन्तर करते रहने चाहिये जिनसे इस संसार को उत्कृष्टा में अभिवृद्धि होती चले।

आत्मबल वृद्धि के लिए उपासना, आत्म-शोधन और परमार्थ तीनों का ही समावेश आवश्यक है। भगवान् का नित्य स्मरण करे। अपने दोष, दुर्गुणों से नित्य संघर्ष करें और उन्हें हटावें। सद्गुणों और योग्यताओं को बढ़ाने के लिए नित्य पुरुषार्थ करें। निजी, पारिवारिक एवं सामाजिक उत्तरदायित्वों को पूरी-पूरी ईमानदारी और तत्परतापूर्वक निवाहें। जीवन अपने और अपने घर वालों के लाभ में ही न जी डाले वरन् देश, धर्म, समाज, संस्कृति को ऊँचा उठाने के लिए भी समुचित ध्यान दें, प्रयत्न करें और जितना सम्भव हो अधिक-से-अधिक त्याग भी करें। उसी रीति-नीति पर सुसंचालित जीवन क्रम 'साधना' कहलाता है। हमें ईश्वर की उपासना और जीवन को साधना, उत्कृष्ट भावनाओं के साथ करनी चाहिये। तभी जीवनोद्देश्य की प्राप्ति सम्भव हो सकेगी।

● ●

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

साधना-सिद्धि एवं वातावरण

वातावरण की विशिष्टता व महत्ता

एकाकी प्रयत्न और पुरुषार्थ का भी महत्व है और उसे सम्मानित, प्रोत्साहित किया ही जाना चाहिए। कई बार तो एकाकी प्रयत्न भी इतने प्रचंड होते हैं कि वे भी न केवल व्यष्टि सत्ता को, वरन् समष्टि सत्ता तक को प्रभावित करने और उलटने तक में बहुत हद तक सफल हो जाते हैं। यों ऐसा यदा-कदा ही अपवाद रूप में होता है, पर इससे यह तो पता चलता ही है कि ईश्वर का अंश राजकुमार अपने पिता की समस्त विभूतियाँ साथ लेकर आता है और यदि वह चाहे तो अपनी प्रसुप्ति को जागृति में बदलकर-प्रखरता को अपनाकर समष्टि क्षेत्र में भी कुछ कर सकता है जिसे चमत्कारी कहा जा सके। तेजस्वी, मनस्वी, तपस्वी स्तर के व्यक्ति ऐसा ही कुछ कर गुजरते हैं। ऐसी प्रतिभाएँ महामानवों के रूप में प्रतिष्ठा पाती हैं और अपने असाधारण कर्तृव्य से सामयिक समस्याओं का समाधान करती हैं। अवतारी आत्मायें इसी स्तर की होती हैं। युग नेतृत्व कर सकने की विलक्षणता ही उन्हें भगवान स्तर का श्रेय सम्मान प्रदान करती है। यह व्यक्ति के चरम-उत्कर्ष का उल्लेख होगा।

इतने पर भी वातावरण की महत्ता अपने स्थान पर यथावत् ही बनी रहती है। उसके प्रभाव की प्रचंडता पग-पग पर परिलक्षित होती रहती है और आवश्यकता यह भी बनी रहती है कि किसी प्रकार समूचे वातावरण का अनूकूलन सम्भव बनाया जाय। इसके लिये सुनिश्चित उपचार सामूहिक साधना ही जाना और माना जाता रहा है। इन दिनों इन प्रयत्नों को युग शक्ति के उदय-उद्भव का उद्देश्य पूरा करने के लिए प्रयुक्त किया जा रहा है।

वातावरण का प्रभाव मनुष्यों की आकृति में पाये जाने वाले अंतर को देखकर जाना जाता है। काले, पीले, सफेद और लाल रंगों की चमड़ी में वातावरण का प्रभाव ही मुख्य है। यह विशेषताएँ रक्तगत मानी जाती हैं, किन्तु यह भी स्पष्ट है कि चमड़ी को प्रभावित करने वाली रक्तगत विशेषता अंततः विभिन्न देशों और क्षेत्रों में पाई जाने वाली जलवायु की भिन्नता से ही सम्बन्धित है। मनुष्यों के छोटे बड़े आकार देश और क्षेत्रों के हिसाब से होते हैं। पंजाबी और बंगाली के बीच शरीरों की सदृढ़ता में जो कमी वेशी रहती है उसमें वातावरण के प्रभाव को प्रत्यक्ष देखा जा सकता है। रूस के उजबेकिस्तान प्रांत में अधिकांश व्यक्ति शतायुस् होते हैं। उनके आहार विहार में सुविधा साधनों में कोई खास विशेषता नहीं होती। अन्यत्र रहने वालों की तरह वे भी मोटा-झोटा खाते और औसत जिन्दगी जीते हैं। फिर सारे क्षेत्र में दीर्घायु की परम्परा किस कारण चली आ रही है ? इसका उत्तर वातावरण की विशेषता को समझने से ही मिल सकता है।

न केवल शरीरों में, वरन् स्वभावों में भी विशेष अंतर देखा जाता है। यह सूक्ष्म या स्थूल वातावरण का ही प्रभाव है। संस्कृति, सभ्यता आदि की भिन्नतायें इसी आधार पर विभाजित होती हैं कि किस क्षेत्र के लोगों की मान्यता, अभिरुचि एवं आदत किस ढाँचे में ढल गई है और उन लोगों की विचारणा एवं गतिविधि किस दिशा में प्रवाहित हो रही है। यह प्रवाह सहज ही बदलते भी नहीं, इसीलिये उन्हें संस्कृति की भिन्नता के रूप में मान्यता दे दी जाती है और उसका परिपोषण भी होता है। ये विशेषतायें न केवल स्वभावों में वरन् चरित्रों और आदर्शों में भी छलकती दीख पड़ती हैं।

पशुओं, वनस्पतियों और खनिज पदार्थों तक में वातावरण की भिन्नता के आधार पर उनके स्तर का परिचय मिलता है। एक देश के पशुओं का दूसरे देश वालों की तुलना में न केवल आकृति में अंतर पड़ जाता है, वरन् उनकी श्रमशक्ति, दूध देने आदि की क्षमताओं में भी अन्तर होता है। भेड़ों की ऊन में पाई जाने वाली भिन्नताएँ उन क्षेत्रों के वातावरण से संबंधित होती हैं। पहाड़ी कुत्ते और देशी कुत्तों में काफी प्राकृतिक भिन्नता पाई जाती है। ऋतु प्रभाव सहन करने की क्षमता भी उस क्षेत्र पर छाई रहने वाली सूक्ष्म विशेषताओं से ही सम्बन्धित होती है। सर्दी वाले इलाके में जन्मे प्राणी सर्दी की और गर्म देशों के निवासी गर्मी की अधिकता को भी शांतिपूर्वक सहन कर लेते हैं जबकि भिन्न परिस्थितियों में जन्म लेने वालों के लिये परिवर्तन के साथ तालमेल बिठाना कठिन पड़ता है। तेज वाहनों पर सफर करने वाले अक्सर स्वास्थ्य में गड़बड़ी पड़ने की शिकायत करते रहते हैं। इसका कारण वातावरण में परिवर्तन की तीव्रता का शरीर की सहन शक्ति के साथ ठीक तरह तालमेल न बैठ सकना ही होता है।

जड़ी-बूटियाँ, घास-वनस्पतियाँ, फल-फूल आदि के आकार, गंध, स्वाद आदि में अंतर पाया जाता है। विभिन्न क्षेत्र में उत्पन्न हुई औषधियों का नाम रूप एक होने पर भी उनके रसायनों और गुणों में असाधारण अंतर दीख पड़ता है। पक्षियों से लेकर कीड़े-मकोड़ों तक की आकृति-प्रकृति में अंतर देखा गया है। साँप, बिच्छू, छिपकली, मकड़ी आदि के विषों में पाया जाने वाला अंतर यों दीखता तो जातिगत है, पर वे जातिगत विशेषताएँ भी मूलतया वातावरण की ही प्रतिक्रिया होती हैं।

अनेक देशों की, क्षेत्रों की परिस्थितियाँ, प्रथाएँ और मान्यताएँ, रुचियाँ और संस्कृतियाँ भिन्न-भिन्न होती हैं। उनमें जो बालक उत्पन्न होते हैं वे वातावरण के प्रभाव से उसी प्रकार की मनोवृत्ति और प्रकृति अपनाते चले जाते हैं। उनके चिंतन, स्वभाव और क्रियाकलाप लगभग वैसे ही होते हैं जैसे कि उसे

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

प्रदेश में रहने वाले लोगों के। बहुमत का दबाब पड़ता है तो अल्पमत अनायास ही बहुतों का अनुकरण करने लगता है। समय का प्रभाव-युग प्रवाह इसी को कहते हैं। सर्दी-गर्मी का मौसम बदलने पर प्राणियों के, वनस्पतियों के तथा पदार्थों के रंग-ढंग ही बदल जाते हैं। गतिविधियों में ऋतु के अनुकूल बहुत कुछ परिवर्तन होते हैं।

विज्ञानवेत्ता जानते हैं कि पृथ्वी पर जो कुछ विद्यमान है और उत्पन्न, उपलब्ध होता है, वह सब अनायास ही नहीं है और न उस सबको मानवी उपार्जन कह सकते हैं। यहाँ ऐसी बहुत कुछ होता रहता है जिसमें मनुष्य का नहीं, वरन् सूक्ष्म शक्तियों का हाथ होता है। सूर्य पर दीखने वाले धब्बे उसकी स्थिति के अनुसार बदलते रहते हैं। उस परिवर्तन का पृथ्वी पर भारी असर पड़ता है। उनसे पदार्थों की स्थिति और प्राणियों की परिस्थिति में आश्चर्यजनक हेर-फेर होते हैं। विकिरण, चुम्बकीय तूफान, अंधड़ चक्रवात किस प्रकार सामान्य परिस्थितियों को असामान्य बनाते हैं, यह सभी जानते हैं। अंतरिक्षीय अदृश्य शक्ति वर्षा से कई बार धरती पर हिमयुग आये हैं, जलप्लावन, समुद्री परिवर्तन और खण्डा प्रलय के दृश्य उपस्थित हुए हैं। भविष्य में पृथ्वी के पदार्थों अथवा प्राणियों की स्थिति में कोई असाधारण परिवर्तन हुआ तो उसका निमित्त कारण सामान्य घटनाक्रमों में नहीं, वरन् अंतरिक्षीय अदृश्य हलचलों में ही पाया जायेगा। अतिवृष्टि अनावृष्टि, शीत आधिक्य, महामारी आदि दैविक विपत्तियों में मनुष्य अपने आपको निर्दोष एवं असहाय ही अनुभव करता है।

व्यक्ति अपने निजी जीवान में सर्वथा स्वतंत्र और सशक्त है। इतना होते हुए भी विशाल ब्रह्मांड में गतिशील हलचलों और परिस्थितियों में उसका स्थान नगण्य है। सिर पर खड़े पानी से लदे बादल तक को वह बरसा नहीं सकता, मौत बुढ़ापे को रोकने तक में असमर्थ है। परिस्थितियों पर उसका अधिकार नगण्य है। प्रवाहों से वह अपना यत्किंचित बचाव ही कर पाता है। सर्दी उसके बूते रुकती नहीं, कपड़े लाद कर, आग तापकर आत्मरक्षा भर में आंशिक सफलता पा लेता है।

स्पष्ट है कि वातावरण से मनुष्य प्रभावित होता है। अलग-अलग देशों के निवासी अपनी-अपनी परम्पराओं से प्रभावित होते, प्रचलित ढर्रे के अंतर्गत सोचते और जीवनयापन करते हैं। उसमें उनकी भौतिक प्रतिभा का नहीं वातावरण का प्रभाव ही प्रधान रूप से काम करता है। न केवल रहन-सहन के लिए, वरन् श्रेष्ठ कार्यों के लिए भी सुसंस्कारी वातावरण अपेक्षित होता है। फिर साधना की सफलता में तो स्थान, क्षेत्र व वातावरण का असाधारण महत्व है। विशिष्ठ साधनाओं के लिए घर छोड़कर अन्यत्र उपयुक्त स्थान में जाने की आवश्यकता इसलिए पड़ती है कि पुराने निवास स्थान का परिवेश का ढर्रा अभ्यस्त रहने से वैसी मनःस्थिति नहीं बन पाती जैसी महत्वपूर्ण साधनाओं के लिए विशेष रूप से आवश्यक है। उपयुक्त वातावरण ही वह आधार है जिस पर साधना की सफलता बहुत कुछ निर्भर करती है।

स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीरों में विद्यमान अगणित प्रसुप्त शक्ति बीजों को जागृत कैसे किया जाय ? इसके लिए साधना वर्ग के दो प्रयोजन ही कार्यान्वित करने होते हैं। एक तप दूसरा योग। इनके दार्शनिक और क्रियापरक कितने ही स्वरूप हैं। अपनी स्थिति और सुविधा के आधार पर उनमें से इस विषय में रुचि लेने वाले अपने लिए मार्ग चयन करते हैं। तत्परता, तन्मयता अपना कर संकल्प पूर्वक अभीष्ट लक्ष्य की ओर साहसिक प्रयास करते हैं।

आत्मोत्कर्ष की साधनाओं के लिए मात्र कर्म काण्ड ही सब कुछ नहीं है। उसके लिए प्रयुक्त वातावरण भी चाहिए। बीज कितना ही उत्तम क्यों न हो, पर उसे विकसित, पल्लवित होने का अवसर तभी मिलता है जब भूमि उपजाऊ हो। खाद, पानी की व्यवस्था हो और देख-रेख करने वाले व्यक्ति का संरक्षण मिले। विशेष क्षेत्र में विशेष प्रकार के फल, शाक, अन्न, वृक्ष, वनस्पति, जीव जन्तु आदि जन्मते हैं, हर जगह हर वस्तु का उत्पादन एवं विकास नहीं होता। योग और तप के लिए यों कोई भी स्थान अपनाया जा सकता है। 'सभी भूमि गोपाल की' वाली उक्ति के अनुसार मन चंगा होने पर कठौती में गंगा प्रकट हो सकती है। फिर भी विशेष स्थानों का विशेष महत्व बना ही रहेगा। गंगा की गोद, हिमालय की छाया, सिद्धि पुरुषों का संरक्षण यह त्रिविध विशेषतायें जिन्हें भी उपलब्ध होती हैं वे अपनी साधना को सिद्धि में बदलने में अधिक सफलता प्राप्त करते देखे गये हैं।

इस प्रयोजन के लिए हिमालय का उत्तराखण्ड क्षेत्र अधिक उपयुक्त सिद्ध होता है। इसलिए कितने ही मुमुक्षु इस क्षेत्र में अन्न, जल और आच्छादन की सुविधा देख कर अपने काम चलाऊ कुटीर बना लेते हैं। उनमें साधनारत रहते हैं। कभी-कभी इन साधकों में कुछ सम्पन्न जन भी होते हैं। वे प्रेरणा पाने पर इन्हीं कुटीरों के इर्द-गिर्द कोई देवालय बना लेते हैं। कालान्तर में वह किसी पुरातन कथा-गाथा के साथ जुड़ जाता है। दर्शनार्थी आने लगते हैं और भूमि का, भवन का, परिकर का विस्तार होने लगता है। कई साधन सम्पन्न ऐसे स्थानों में अपने दान का स्मारक बनाने में अधिक उपयोगिता समझते हैं। घने शहरों में घिचपिच अनेकों देवालय, धर्मशालाएँ बने होते हैं। उनके बीच किसी एक-एक का विशेष स्मरण रह सकना सम्भव नहीं होता।

हिमालय का उत्तराखण्ड देवात्मा भाग वस्तुतः तपोवन है। उसमें तीर्थ स्तर की सुविधा नहीं है। तीर्थों में आमतौर से गुरुकुल, आरण्यक और साधना-आश्रम हुआ करते थे। उनमें सत्संग, स्वाध्याय की, निवास विश्राम की व्यवस्था रहती थी। अभी भी ऐसे तीर्थों के कितने ही प्रतीक चिह्न जहाँ-तहाँ विद्यमान है, किन्तु हिमालय में समतल भूमि की व्यवस्था नगण्य होने के कारण वैसी बड़ी व्यवस्था का सुयोग नहीं बनता रहा है। छोटे-छोटे कुटीर और आश्रम भर सम्भव होते रहे हैं। उनमें व्यक्तिगत साधनाएँ इस दृष्टि से होती रही है कि अन्तराल में समाहित प्रसुप्त शक्तियों का जागरण सम्भव हो सकें। दिव्य-वातावरण मिलता रह सके और उस भूमि की उर्वरता में उनका व्यक्तित्व बीज रूप में समुन्नत होते-होते समर्थन सम्पन्न हो सके। साधना बढ़ते-बढ़ते सिद्धि स्तर तक पहुँच सके।

हिम क्षेत्र में आधुनिकता के प्रवेश के साथ अन्यान्य कर्मियों के साथ सब से बड़ी कमी हुई है उस क्षेत्र में विचरण

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

करने वाले सिद्ध पुरुषों की। वे मात्र शीतलता के लिए ही नहीं यहाँ बसते थे वरन् सबसे बड़ी उपलब्धि थी—निस्तब्धता। वह एकान्त में ही मिल पाती है। कोलाहल और घिचपिच का प्रभाव वातावरण पर पड़ता है फिर जिनमें व्यवसाय बुद्धि ही प्रधान है वे जन साधारण में पाये जाने वाले दोष, दुर्गुणों से भी भरे रहते हैं। प्रवृत्तियाँ भी क्षेत्र को प्रभावित करती हैं। योगी, तपस्वी यदि वातावरण में उत्कृष्टता का संचार करते हैं तो गये-गुजरे व्यक्ति उस में प्रदूषण भी करते हैं। कमल पुष्पों में भ्रमण करने वाले भ्रमर दुर्गन्धित स्थानों में घुटन अनुभव करते हैं और टिकने के लिए उद्यत नहीं होते। उसी प्रकार सिद्ध पुरुष भी कोलाहल भरे, व्यवसाय बुद्धि से अनुप्राणित क्षेत्र में टिक नहीं सकते। कोई समय था जब उत्तराखण्ड क्षेत्र में, मध्यम ऊँचाई वाले क्षेत्र में भी जब तब सिद्ध पुरुषों का साक्षात्कार किन्हीं सौभाग्यशालियों को होता था। उनका परामर्श और सहयोग मिल जाया करता था, अब वैसा नहीं होता। इस प्रयोजन के लिए जो लोग उधर जाते हैं उन्हें निराश ही वापस लौटना पड़ता है।

असल की नकल बनाने में दुनिया बड़ी प्रवीण है, नकली रेशम, नकली रत्न, नकली घी, नकली आँख, नकली दाँत तक बाजार में बहुलता के साथ सस्ते मोल में मिलते हैं। उनका विज्ञापन भी किया जाता है, ताकि सस्ते के लोभ में कम समझ ग्राहकों को आसानी से आकर्षित किया जा सके। जन संकुल क्षेत्र के आस-पास अड्डे बना कर बस जाने वाले नकली सन्तों और सिद्ध पुरुषों तक की बाढ़ जैसी आने लगी है। भावुक श्रद्धालु लोग आसानी से इनके चंगुल में फँसते हैं। पुरातन मान्यताओं के अनुरूप उनकी मनोभूमि तो बनी ही होती है। फिर सहज प्राप्ति का प्रलोभन किसी से कैसे छोड़ते बनेगा ? चिड़ियाँ जाल में और मछली काँटे में इसी प्रलोभन के कारण फँसती है। सिद्ध पुरुषों की तलाश में निकले व्यक्ति भी आमतौर से इसी भ्रम जाल में फँसते है और जिस-तिस के जाल-जंजाल में फँस कर अपना मन, धन और समय खराब करते हैं।

कितने ही भावुकजनों की अभिलाषा होती है कि सिद्ध पुरुषों से भेंट सुयोग किसी प्रकार उन्हें मिले ? इस कामना के पीछे मोटे रूप से तो उनकी भक्ति भावना ही दिखाई पड़ती है, पर वस्तुतः ऐसा होता नहीं। वे दर्शन मात्र के अभिलाषी नहीं होते। वे उनका कोई कौतूहल, चमत्कार देखना चाहते हैं। चमत्कार देख चुकने पर उन्हें इस बात का भरोसा होता है कि यह सिद्ध पुरुष है या नहीं। इससे कम प्रदर्शन के बिना उन्हें इस बात का भरोसा ही नहीं होता कि यह कोई दिव्य आत्मा है भी या नहीं। जब कुछ अचम्भा, अनोखापन, जादू तमाशे जैसा कोई कौतूहल दीख पड़े तब उसके बाद अपने मन की गाँठ खोलते हैं। गाँठ में कामनाएँ, ललक-लिप्साएँ भरी होती हैं, प्रचुर धन, खोया हुआ यौवन, बल, सौन्दर्य, अधिकार, यश, प्रतिष्ठा, विजय, शत्रुनाश जैसी कामनाएँ जब अपने पुरुषार्थ के बलबूते पूरी नहीं हो पाती तो उसकी पूर्ति देवताओं या सिद्ध पुरुषों से चाहते हैं। देव पूजन आये दिन होता रहता है। जप अनुष्ठान, पूजन, अर्चन का सिलसिला लम्बी अवधि तक चलने पर भी जब मनोरथ पूरा नहीं होता तो एक ही सम्भावना बाकी रहती है, वे आकाक्षाएँ किसी सिद्ध पुरुष के अनुग्रह से पूरी हों। अनुग्रह का विश्वास तब हो जब उनके प्रत्यक्ष दर्शन चर्मचक्षुओं से हो सके। आमने-सामने का वार्तालाप बन पड़े। चूँकि ऐसा हो नहीं पाता, अधिसंख्य या तो निराश होकर लौटते हैं या धूर्त्तता का शिकार बनकर लौटते हैं। हिमि प्रदेश उत्तराखण्ड की पवित्रता यथा स्थान है। उससे लाभान्वित होने के लए अन्तरंग की पवित्रता व सही स्तर का मार्ग दर्शन भर चाहिए, आत्मिक क्षेत्र की सिद्धियाँ सहज ही उपलब्ध होने लगती हैं।

उपयुक्त स्थान की महत्वपूर्ण कार्यों के लिए आवश्यकता

महत्वपूर्ण कार्यों के लिए उपयुक्त स्थान एवं सुसंस्कारित वातावरण का चयन एक ऐसा सूक्ष्मदर्शी सिद्धान्त है जिसकी उपयोगिता सामान्य बुद्धि की समझ से परे है। फिर भी फलश्रुतियों को देखते हुए उसके पीछे ठोस तत्वों का समावेश पाया जाता है। साधनादि के क्षेत्र में समय-समय पर वातावरण के चयन के सम्बन्ध में महामानवों ने दूरदर्शिता बरती है। ऐसी स्थिति आने पर स्थान विशेष के संस्कारों को परखा एवं तदुपरान्त ही स्वयं को विशिष्ट बनाने वाली तप साधनाओं हेतु वहाँ विशेष रूप से योगाभ्यास सम्पन्न किये हैं। उत्तराखण्ड को हिमालय का हृदय कहा गया है। लगभग सभी अवतारों, देवदूतों, महामानवों एवं इस सदी के मध्यकाल के महापुरुषों ने यहाँ कुछ विशिष्टता पायी एवं आत्मबल सम्पादन हेतु इसी परिधि के विभिन्न स्थानों को चुना और आने वाली पीढ़ी के लिये भी उस स्थान को संस्कारित किया है। ऐसे ही उदाहरण कुसंस्कारी वातावरण के श्रवणकुमार के मय प्रदेश में माता-पिता की अवहेलना तथा कुरुक्षेत्र को महाभारत हेतु श्रीकृष्ण द्वारा चयन किये जाने के रूप में मिलते हैं।

पुराणों में ऐसी अनेकानेक घटनाओं का वर्णन है, जिनमें बताया गया है कि क्षेत्र विशेष में अपनी-अपनी प्रभाव क्षमता पाई जाती है। ऐतिहासिक या प्रकृति सम्बद्ध कितने ही कारण ऐसे होते हैं जिनका प्रभाव किन्हीं स्थानों पर छाया रहता है। फलतः वहाँ के निवासियों के विचारों और कार्यों पर उनका भला बुरा प्रभाव पड़ता है। इसी सूक्ष्म वातावरण को ध्यान में रखते हुये महत्वपूर्ण कार्यों के लिए कर सकें। व्यासजी ने पुराण लिखने के लिए जो स्थान चुना था, वह बद्रीनाथ से आगे व्यास गुफा के नाम से प्रख्यात है। गंगा अवतरण से लेकर ऋषि दधीचि की वज्र साधना इसी क्षेत्र में सम्पन्न हुई। सातों ऋषियों की बहुमुखी गतिविधियाँ इसी परिधि में चलती रहीं। आदि शंकराचार्य केरल में जन्मे थे तो उन्होंने अपना कार्य क्षेत्र हिमालय चुना और केदारनाथ के समीप शरीर का समापन किया। अभी भी इस क्षेत्र में सरलता, सज्जनता, सात्विकता अन्यत्र की तुलना में वही अधिक है। शान्ति कुंज के लिए उद्देश्य के अनुरूप स्थान चयन इसी सूक्ष्म पर्यवेक्षण के आधार पर हुआ है।

वैज्ञानिकों ने भी अनेक स्थानों को अनेक प्रकार की विभिन्नताओं से सम्पन्न पाया है। अमेरिका में वाहनों को नीचे

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

से ऊपर की ओर घसीटने वाली चुम्बकीय पहाड़ियाँ प्रसिद्ध हैं। बारगूडा त्रिकोण में कितने ही जलयानों वायुयानों के अदृश्य होते रहने की बात सभी जानते हैं। ध्रुव प्रदेशों की विचित्र परिस्थितियों और दृश्यावलियों को देखकर अन्जान दर्शकों को वह परीलोक-सा लगता है। छः महीने का दिन और छः महीने की रात आकाश में उड़ते रहने वाली रंग-बिरंगी ज्योतियाँ विचित्र प्रति ध्वनियों को देखते हुये सामान्य बुद्धि उसे जादू तिलिस्म जैसा क्षेत्र ही मान सकती है। रोती-हँसती और गाती हुई बालू के समीप पहुँचकर मनुष्य हतप्रभ रह जाता है।

स्थान विशेष की यह विचित्रतायें बताती है कि वहाँ के वातावरण में कुछ न कुछ अद्‌भुत होना चाहिए। ऐसी विलक्षणताओं में एक नई कड़ी आसाम क्षेत्र के साथ जुड़ती है। कारण तलाशने वाले उस रहस्य को अनबूझी पहेली कह कर मौन पाये गये हैं।

आसाम प्रान्त के बरले पहाड़ियों पर हॉफलाँज के निकट समुद्र तल से ७३६ मीटर ऊँचाई पर बसा एक गाँव है जातिंगा। शिलांग पठार के दक्षिणी सिरे पर पूर्ण की दिशा में विरल पहाड़ियाँ हैं। ये बर्मा-भारत सीमा पर अवस्थित लुशारी पर्वत श्रृंखला मे जाकर विलीन हो जाती हैं। जातिंगा गाँव इसी क्षेत्र में बसा है। उसका व्यास दो वर्ग किलोमीटर है। सभी जानते हैं कि पहाड़ों पर बसावट बिरल होती है। घर एक दूसरे से दूर बनते हैं इसलिए क्षेत्र अधिक घिरने पर भी आबादी कम ही रहती है।

इस गाँव के इर्द-गिर्द एक ऐसा क्षेत्र है जिसमें रात्रि के समय तेज प्रकाश जलाने पर उस क्षेत्र की चिड़ियाँ अनायास ही दौड़ पड़ती हैं। दीपक पर जल मरने वाले पतंगों जैसा उपक्रम तो नहीं करती, पर प्रकाश के इर्द-गिर्द चक्कर काटने के उपरान्त जमीन पर आ गिरती है और फिर छूने छेड़ने पर भी उठने भागने का प्रयास नहीं करती। अर्धमूर्छित स्थिति में पड़ी रहती है। चीखने चिल्लाने, बचने भागने जैसा प्रयास उनका तनिक भी नहीं होता। प्रकाश में कभी-कभी कोई टकरा भी जाती है पर उनसे ऐसा कुछ नहीं होता जिसे जलने झुलसने जैसा कहा जा सके।

ऐसा क्यों होता है ? उसी गाँव के इर्द-गिर्द ऐसा घटना क्रम क्यों चलता है ? उस क्षेत्र में अन्यत्र ऐसा क्यों नहीं होता? इन प्रश्नों का विगत अस्सी वर्षों से कोई समाधान कारक उत्तर नहीं मिल सका है।

जातिंगा गाँव सन् १८९५ में एक बर्मी नस्ल के सुचिंग नामक व्यक्ति ने बसाया था। उसके निमन्त्रण पर समीपवर्ती गाँव वासी जयँतियापुर से आकर वहाँ अधिक सुविधा देखकर बसने लगे और आबादी इतनी हो गई जिसे गाँव कहा जा सके।

सन् १९०५ के सितम्बर की बात है। गाँव के लोग खोई भैंसों की तलाश के लिए निकले थे। अंधेरी रात में मशालें जलाकर चलना आवश्यक था। वही किया गया। भैंस ढूँढ़ने के प्रयास को अवरुद्ध करता हुआ एक नया घटना क्रम इसी बीच घटित होने लगाता। रात्रि के सन्नाटे में अपने घोसलों से निकलकर ढेरों चिड़ियाँ उन मशालों के इर्द-गिर्द चक्कर काटने लगीं और कुछ देर मँडराने के बाद धरती पर डेले की तरह गिरने लगीं।

ऐसा कौतुक उन लोगों ने पहले भी नहीं देखा था। समझे कोई प्रेतात्मायें उन्हें डराने के लिए इस प्रकार प्रकट हो रही है। इसलिए और कुछ तो न सूझा जोर-जोर से हल्ला मचा कर उन्हें भगाने का प्रयत्न करते रहे। उलटे पैरों भागे और घरों में जाकर छिप गये। सबेरा होने पर रात्रि वाले स्थान पर वे लोग कारण का पता लगाने की दृष्टि से फिर पहुँचे। देखा कि कितनी ही चिड़ियाँ उस स्थान पर मूर्च्छित जैसी पड़ी हैं। उलट-पुलट कर देखने पर जब प्रेतात्मायें न होकर मात्र चिड़ियाँ ही मान ली गई। तब यह सोचा जाने लगा आखिर ऐसा होता क्यों है। प्रकाश को देखकर पतंगे उड़ने लगने की बात देखी हुई है पर घोंसले छोड़कर चिड़ियाँ रात्रि का विश्राम छोड़कर इस प्रकार दौड़ पड़े और मूर्च्छित होकर गिर पड़े इसका कारण तब भी समझ से बाहर ही बना रहा।

सोच विचार होता रहा। अन्त में यह बात जमी कि देवता इस गाँव वालों पर प्रसन्न है और उनकी भूख बुझाने के लिए घर बैठे इन चिड़ियों को आहार उपहार के रूप में भेजते हैं। तब से जाविंगा के निवासी समय-समय पर मशाल जला कर रात्रि के समय उस क्षेत्र में पहुँचने लगे और जितनी चिड़ियाँ आवश्यक होती उतने टोकरों में भर कर घर लौट आते। चिड़ियाँ टोकरे में चुपचाप बैठी रहती उन्हें ढकने रोकने की भी आवश्यकता न पड़ती, जब जितनों की तरकारी बनानी होती तब उस टोकरी में से उठा ली जाती। यह आश्चर्य यह भी कहता है कि जीवित होने पर भी जब उनके सामने दाना पानी रखा जाता तो उसकी ओर तनिक भी आकर्षित नहीं होती।

सिलसिला इसी प्रकार चलता रहा। इस जादुई घटनाक्रम की चर्चा तो दूर-दूर तक फैलती रही पर किसी ने इसे छोटी बात समझ कर अधिक ध्यान देने की आवश्यकता न समझी। फिर भी अचम्भे की बात तो थी ही विवरण जब दूर-दूर तक पहुँचा तो इनका रहस्य जानने के लिए प्रकृति अन्वेषणकर्त्ताओं का ध्यान उधर गया।

सन् १९७७ में डॉ० सुधीर सेन गुप्ता के नेतृत्व में एक दल इस सम्बन्ध में तथ्यों का पता लगाने के लिए पहुँचा। उसने विभिन्न स्थानों पर बांस गाढ़ कर उस पर रात्रि के समय गैस की लालटेन टांगी और चिड़ियों के अनायास ही टूट पड़ने का दृश्य आँखों से देखा। जैसा सुना गया था ठीक वैसा ही दृश्य सामने आया। चिड़ियाँ पेड़ों से उतर कर आतीं, मंडराती और अर्धमूर्छित होकर जमीन पर गिर पड़तीं।

अनुसंधान अठारह दिन तक चलता रहा। कारण की तलाश में स्थानों एवं उपक्रमों में अदल-बदल करते रहने का प्रयास भी हुआ। एक अर्धमूर्छित चिड़िया को वे लोग वापसी में अपने साथ लाये। वह कंधे पर यथा स्थान बैठी रही और १२४ मील की यात्रा के बाद मर गयी इस बीच में उसने दाना-पानी सामने रखने पर उसे लेने की चेष्टा नहीं की और न उड़ने की ही।

अनुसंधानकर्त्ताओं ने पाया कि ऐसी वातावरण वहाँ एक सीमित क्षेत्र में ही है सर्वत्र नहीं। जातिंगा रेलवे स्टेशन से गाँव

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

का स्वास्थ्य केन्द्र तक प्रायः एक किलोमीटर लम्बी पट्टी में ही यह विलक्षणता देखी गयी। सो भी जब बादल छाये हों और अंधेरी रात हो। चाहे जब और चाहे जहाँ घटना क्रम घटित नहीं होता।

अनुसंधानकर्त्ता किसी निश्चित निर्णय पर तो नहीं पहुँचे पर उन्होंने कई अनुमान लगाये हैं। एक यह कि उन परिस्थितियों से उत्पन्न प्रकाश में कोई इन्फरेड किरणों जैसी विशेषता रहती है और वह चिड़ियों की संवेदनशीलता को प्रभावित करके अपनी ओर खींचती है। यह भी हो सकता है कि उस क्षेत्र में कोई ऐसी चुम्बकीय पट्टी है जो उपरोक्त परिस्थितियों में प्रकाश जलने पर सक्रिय बनती हो और उस आधार पर विशेष संरचना वाली चिड़ियाएँ प्रभावित होकर खिंचती हैं। एक विचार यह भी है कि प्रकाश से दृष्टि भ्रम उत्पन्न होता है और पतंगों के दीपक की ओर दौड़ने जैसी मनःस्थिति में जा फँसती हो। यह भी हो सकता है कि उस क्षेत्र की भौगोलिक स्थिति चुम्बकीय बल-आकर्षण में कुछ विलक्षणता हो।

इन अनुमानों से भी उस आश्चर्य का समाधान नहीं होता कि उस क्षेत्र में पाई जाने वाली सभी चिड़ियाँ क्यों इस प्रकार का आचरण नहीं करती। कुछ सीमित जातियों की चिड़ियाँ ही क्यों इस प्रकार के व्यामोह में फँसती हैं। फिर एक और भी अनबूझी पहेली यह है कि वे आरम्भ से लेकर मरण पर्यन्त सम्मोहित जैसी स्थिति में किस कारण बनी रहती हैं। जीवन के सभी चिह्न उनमें विद्यमान रहते हुए भी वे अपनी स्वाभाविक चेष्टायें क्यों गँवा बैठती हैं। इसका कोई उत्तर नहीं है।

सही निष्कर्ष न निकल सकने पर यथावत् है कि क्षेत्र विशेष में कुछ अद्भुत प्रभाव पाये जाते हैं। इसके कारण प्रकृति परक भी हो सकते हैं और किस सचेतन स्थिति के कारण शाप-वरदान स्तर के भी हो सकते हैं। जो है अनेक स्थानों में समाहित स्थानीय विलक्षणताओं का होना असंदिग्ध है। उनका कारण विदित न होने पर भी इतना मानना ही पड़ेगा कि कुछ स्थानों में ऐसी विशेषतायें पाई जाती हैं जहाँ कुछ महत्वपूर्ण कार्य अधिक अच्छी तरह हो सकते हैं। इस दृष्टि से उपयुक्त कार्यों के लिए उपयुक्त स्थान एवं वातावरण का चयन भी एक ऐसी आवश्यकता है जिससे इन्कार नहीं किया जा सकता।

वातावरण का अपना प्रभाव होता है और वह चुपके-चुपके मनुष्य की कोशिकाओं को इस प्रकार अपने अनुरूप ढालता है कि उसे पता भी नहीं चल पाता और व्यक्तित्व में भारी परिवर्तन हो जाता है।

यूनान के दक्षिण में एक सैन्तोरीनी नामक टापू है। उसमें आदिवासी तो रहते हैं पर अन्य वातावरण में अभ्यस्त लोग एक दो दिन से अधिक वहाँ नहीं ठहर पाते। उन्हें वहाँ बहुत बेचैनी मालूम होती है और लगता है कि जमीन के नीचे शहद की मक्खियों जैसी भनभनाहट होती रहती है। सहारा रेगिस्तान के कई क्षेत्रों में बालू से संगीत निकलता है और रोने-हँसने की आवाजें आती रहती हैं। इसका तात्पर्य हैं कि उसे क्षेत्र में जमीन के भीतर की कई परतें असामान्य स्थिति में हैं और उस क्षेत्र में ऐसे कम्पन उद्भूत हो रहे हैं जो किसी अतिशय प्रभाव से प्रभावित हैं और वे मनुष्य की अभ्यस्त प्रकृति के नहीं हैं।

रूसी विज्ञानी लेखेत्वस्की ने वायु मण्डल के साथ घुली हुई विभिन्न प्रकार की विद्युत तरंगों का विश्लेषण किया है और कहा जो व्यक्ति जिस क्षेत्र में रहने के अभ्यस्त है, उनके लिए वही का वातावरण अनुकूल पड़ता है। अन्य स्थानों की तरंगें अच्छी होने पर भी ऐसा अनावश्यक दबाव डालती हैं जो उनके लिए हानिकारक ही सिद्ध होती हैं।

आहार के सम्बन्ध में भी यही बात है। जिन क्षेत्रों ज्वार, बाजरा, मक्का जैसी फसलें बहुलता से उत्पन्न होती हैं, उनके लिए वे ही अन्न शरीर के अनुकूल और उपयोगी सिद्ध होते हैं जबकि गेहूँ, चावल खाये जाने वाले क्षेत्रों में उनकी उपयोगिता वैसी नहीं रह जाती। समुद्र तट पर खारी भूमि में जल जीव ही आहार बन जाते हैं। ध्रुव प्रदेश में निवासी एस्किमो मछली के सहारे ही अपनी जीवनचर्या चलाते हैं।

जलवायु बदलने के लिए सुदूर क्षेत्रों में जाने की योजना मनोरंजन की दृष्टि से उपयोगी हो सकती है। किन्तु अभ्यस्त वातावरण में अधिक अन्तर पड़ जाने के कारण अन्ततः उनका प्रभाव बेतुका ही होता है। अच्छा यही है अपने ही क्षेत्र में खुली वायु, हरियाली और वनस्पतियों के बीच रहने का क्रम बनाया जाये और रहन-सहन के नियमों में अधिक प्राकृतिकता का समावेश करके अपने लिए उपयुक्त व्यवस्था बना ली जाये। मातृभूमि का महत्व देश भक्ति की दृष्टि से तो श्रद्धास्पद है ही। साथ ही उसमें यह भी विशेषता है कि स्थानीय भूमि के अनुरूप शरीर को विभिन्न प्रकार के पोषण मिलने से वह उसी वातावरण का अभ्यस्त बन जाता है।

मानसिक स्थिति के सम्बन्ध में भी वातावरण का प्रभाव पड़ता है। किसी क्षेत्र के निवासी क्रूर, किसी के मूर्ख, किसी के धूर्त और किसी के सौम्य होते हैं। शारीरिक दृष्टि से तो जो जहाँ का है उसे वहाँ का आहार-विहार अनुकूल पड़ता है पर मानसिक विषय में यह बात नहीं है। जहाँ का मानसिक धरातल सज्जनोचित न हो, वहाँ से अन्यत्र उपयोगी स्थान में जा बसना ही उत्तम है। या फिर प्रयत्नपूर्वक सामूहिक आन्दोलन के रूप में क्षेत्रीय परम्पराओं में हेर-फेर करना चाहिए। बिलोचिस्तान जैसे क्षेत्रों में जरा-जरा सी बात पर उत्तेजित होकर खून खराबी कर बैठने का प्रचलन है। अफ्रीका के ऐसे भी क्षेत्र हैं जिनमें पशु पक्षी ही नहीं नर-भक्षी लोग भी रहते हैं। उस क्षेत्र में रहते-रहते एक परम्परा बन जाती है और वह पीढ़ी दर पीढ़ी चलती है। ऐसी स्थिति को सुधार सकना सम्भव न हो तो स्वयं वहाँ से उठकर किसी अन्य सभ्य प्रदेश में जा बसना अथवा उस क्षेत्र के सज्जनों के साथ अपना एक पृथक समुदाय बना लेना उपयुक्त है। उपयुक्त वातावरण में निवास शारीरिक दृष्टि से उपयोगी तो होता ही है किन्तु मानसिक एवं आध्यात्मिक दृष्टि से और भी आवश्यक है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जीव जगत पर वातावरण की प्रत्यक्ष एवं परोक्ष प्रतिक्रियाएँ

अच्छा सूत कातने के लिए वातावरण में एक निश्चित मात्रा में नमी की आवश्यकता होती है। सामान्य स्तर पर चर्खों से सूत कातते समय न तो उनकी उतनी आवश्यकता अनुभव की जाती है और न हर जगह वह स्थिति पैदा करना ही सम्भव है, किन्तु कताई मिलों में जहाँ महीन किस्म का सूत बड़ी तेजी से काता जाता है, वहाँ वायु में निश्चित आर्द्रता पैदा करनी ही पड़ती है। जहाँ फोटोग्राफिक फिल्में डेबलप की जाती हैं, उस स्थान पर तापमान को एक निश्चित मर्यादा में ही रखना पड़ता है। यदि इसकी उपेक्षा की जाये तो सारे साधनों के होते हुए भी अच्छी फिल्में बनाना सम्भव नहीं हो सकता। विशेष औषधियों एवं रासायनिक पदार्थों के निर्माण में भी इसी प्रकार विशेष परिस्थितियाँ बनाकर रखी जाती हैं। किसी प्रयोगशाला, चिकित्सालय, शोधसंस्थान की योजना बनाते समय भी उपयुक्त परिस्थितियों की खोज की जाती है। क्षेत्र विशेष के संस्कारों की अपनी महत्ता है। किसी स्थान के व्यक्तियों का स्तर कैसा होगा, यह वहाँ के दृश्यमान तथा परोक्ष वातावरण को ध्यान में रखते हुए बताया जा सकता है।

मनुष्य के शरीर में ही नहीं उनके स्वभावों में भी क्षेत्रीय विशेषता के अनुरूप अन्तर रहते हैं। संस्कृतियाँ दो आधारों पर बनती हैं एक तो उस क्षेत्र के निवासियों का चिन्तन एवं रहन-सहन, दूसरे उस क्षेत्र की प्रकृतिगत भिन्नता विशेषता। इन दोनों प्रभावों के कारण उस क्षेत्र के निवासियों का एक विशेष ढर्रा बन जाता है और वह गुण, कर्म, स्वभाव में गहराई तक अपनी जड़ें जमा लेता है। संस्कृतियों की भिन्नताओं के यही दो प्रमुख आधार है। यों मनुष्य स्वतन्त्र और समर्थ है, वह अपनी संकल्प शक्ति के बल पर परम्परागत सभी दबाबों को बदल सकने में सैद्धान्तिक दृष्टि से पूर्णतया सक्षम है। पर व्यवहार में होता यही है कि वातावरण अपने प्रभाव से उस क्षेत्र के मनुष्यों को ढालता चला जाता है।

व्यक्ति की मौलिक विशेषताओं को मान्यता देते हुए भी यह स्वीकार करना ही होगा कि जन समाज की बहुसंख्या विचारणा से नहीं वातावरण के प्रभाव से जीवनयापन करती है। व्यापक क्रान्तियाँ कुछ लोगों को बदलने से सम्पन्न नहीं होतीं, वरन् वातावरण में ऐसा परिवर्तन लाना पड़ता है कि जिसके प्रभाव से जन साधारण को परिष्कृत ढंग से सोचने और उपयोगी क्रियाकलाप अपनाने का साहस एवं अवसर उपलब्ध हो सके।

जातियों और वंशों में कई प्रकार की अपनी-अपनी विशेषताएँ पाई जाती हैं। ब्राह्मणों में धार्मिकता, क्षत्रियों में अक्खड़ता-प्रखरता, वैश्यों में अर्थ दृष्टि, शिल्पकारों में क्रिया कुशलता जैसी विशेषताएँ दूसरों की अपेक्षा कुछ अधिक मात्रा में पाई जाती हैं। कायस्थ समाज में शिक्षा का बाहुल्य पाया जाता है। पिछड़े वर्गों में प्रायः अस्वच्छता, अशिष्टता और अस्त-व्यस्तता संव्याप्त पाई जाती है। कुछ में चोरी, उठाईगीरी की आदत जातीय विशेषता के रूप में होती है। कुछ कायरता और बेवकूफी के लिए बदनाम हैं। इनके कारणों की खोज करने पर एक यही तथ्य सामने आता है कि अमुक वर्ग के व्यक्तियों को अमुक प्रकार के वातावरण में रहने का अवसर मिलता है जिससे उसी के अनुरूप विशेषताएँ उनमें विकसित हो जाती हैं। वातावरण प्रयास पूर्वक बनाया गया या काल प्रभाव से संयोगवश बना। यह बात भिन्न है, किन्तु उसके प्रभाव का महत्व तो हर स्थिति में स्वीकार करना ही पड़ता है।

वनवासी जनजातियों में चित्र-विचित्र रिवाज पाये जाते हैं। उसके स्वभाव और अभ्यास भी अपने ढंग के होते हैं। सुधारकों के प्रयास उनमें परिवर्तन लाने के होते हैं पर वैसा कुछ अधिक प्रभाव हो नहीं पाता क्योंकि उनके चारों ओर घिरा हुआ वातावरण है जो यत्किंचित सुधार स्वीकार करने की ही छूट देता है। परिवर्तन के लिए वातावरण बदलना आवश्यक है। बहुत से अफ्रीकी नीग्रो बहुत समय से अमेरिका में बस गये हैं। उनकी और उनके अफ्रीकी वंशधरों की आकृति में थोड़ा-सा ही फर्क पड़ा है, पर प्रकृति में भारी परिवर्तन आ गया है। अमेरिका नीग्रो प्रायः अमेरिकी गोरों के स्तर का ही जीवनयापन करते हैं। उत्तरी ध्रुव के एस्किमो लोगों में से बहुत से कनाडा में आ बसे हैं। उस वर्ग के मूल निवासियों और केनेडियन एस्किमों वर्ग में आश्चर्यजनक अन्तर आ गया है। इसी प्रकार अन्यान्य देशों में जा बसने वाले अपने मूल देश की अपेक्षा नई परिस्थितियों में नये ढंग में ढालते-बदलते देखे जाते हैं। वातावरण के प्रभाव से बचे रहना आग्रहशील लोगों के लिए सम्भव है। सामान्य लोग तो परिस्थितियों के अनुरूप ढलते-बदलते चले जाते हैं। वस्तुतः मनुष्य जाति के शारीरिक मानसिक विकास में वातावरण की भूमिका असाधारण है।

वातावरण को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है—स्थूल एवं सूक्ष्म। स्थूल वातावरण का परिचय स्थानीय जलवायु की विशेषताओं के रूप में मिलता है। सूक्ष्म वातावरण वह है जो मनुष्य की प्रकृति-स्वभाव को स्वाभावित करता है जिसमें विचारों एवं घटनाओं के सूक्ष्म संस्कार बने रहते हैं। जाने अनजाने उनकी भली-बुरी प्रेरणाओं को ग्रहण किया जाता है। जलवायु तथा वातावरण का स्थूल पक्ष मनुष्य की आकृति एवं प्रकृति की विशिष्ट संरचना के लिए भी एक सीमा तक जिम्मेदार है। विभिन्न समाजों में रहने वाली अगणित जातियों के विभिन्न प्रकार के रंग, रूप, शारीरिक गठन, आकार आदि का सीधा सम्बन्ध जलवायु की विशेषता से जोड़ा जाता है।

श्वेत तथा गुलाबी वर्ण के लोग उत्तर-पश्चिम योरोप के प्रारम्भिक निवासियों के वंशज हैं तथा वे शीतल जलवायु के अभ्यस्त होते हैं। सूर्य की तीव्र किरणों को उनकी त्वचा सहन नहीं कर पाती। दूसरी ओर भूरे तथा काले वर्ण के लोगों की त्वचा सूर्य की तीव्र किरणों को सहन करने में सक्षम होती है। प्रायः अफ्रीका तथा एशिया महाद्वीप और ट्रापिकल मरुभूमि क्षेत्रों के लोगों में यह विशेषता पायी जाती है। तीसरे प्रकार के वर्ण के व्यक्ति वे होते हैं जिनका रंग पीला जैतून के रंग-सा अथवा पीला मिश्रित सफेद होता है। इसका वर्ण धूप के प्रभाव से शीघ्र ही ताम्र रंग का अथवा भूरा हो जाता है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आकार एवं वजन पर भी जलवायु की स्थानीय विशेषताओं का प्रभाव पड़ता है। प्रायः ठण्डे क्षेत्र में रहने वाले गर्म प्रदेशों के निवासियों से अधिक लम्बे होते हैं। उत्तरी योरोप के लोगों का औसत वजन ७० से ८० किलोग्राम (१५० से १७५ पौंड) तक होता है। अपवाद स्वरूप इसमें कम और अधिक वजन के व्यक्ति भी इन क्षेत्रों में पाये जाते हैं। अरब तथा दक्षिणी एशिया के निवासियों का वजन औसतन ५० से ६० किलोग्राम तक होता है।

ठण्डे प्रदेशों के मूल निवासियों का शारीरिक गठन लम्बा तथा गठीला होता है। जबकि अत्याधिक गर्म प्रदेशा के लोग पतले तथा लम्बे होते हैं। उनकी अँगुलियाँ, पैर तथा हाथ भी लम्बे पाये जाते हैं। अरब देशों के निवासी प्रायः इन्हीं विशेषताओं से युक्त होते हैं।

अफ्रीका के नीग्रो, योरोप के गोरे, चीन के मंगोल, अरब के तगड़े, कांगों के बौने एकत्रित करके यह जाना जा सकता है कि उनकी आकृति ही नहीं प्रकृति में भी भारी अन्तर पाया जाता है। चेहरा, नाक, आँख, होंठ, बाल, नाखून जैसे अंगों को देखकर ज्ञात होता है कि वे विभिन्नताएँ उन समुदायों की निजी विशेषता है। इन विशेषताओं को पैदा करने में आनुवांशिक तथ्य तों जिम्मेदार हैं ही, भौगोलिक परिस्थितियों की भी अपनी महत्वपूर्ण भूमिका है। एक विशिष्ट प्रकार के वातावरण एवं जलवायु में पीढ़ी रहने पर विशेष प्रकार की शारीरिक विशेषताओं का पैदा हो जाना तथा आगामीं अनेकों पीढ़ियों के आनुवांशिक स्तर तक को प्रभावित कर देना एक ऐसी सच्चाई है जिसका समर्थन विकासवादी तथा एन्थ्रापालिस्ट्स भी करते आये हैं।

संसार की विभिन्न वर्ण एवं रूपों की अनेकानेक जातियों को देखकर ऐसा प्रतीत होता है जैसे किसी कुशल चित्रकार ने अपनी तूलिका से उनमें विशेष प्रकार का रंग भरा हो। त्वचा के विभिन्न रंग बालों की संरचना, शरीर का गठन, मुखाकृति विभिन्न जातियों में भिन्न-भिन्न तरह की पायी जाती है। अधिकांश विशेषज्ञों का मत हैं कि आनुवांशिक कारणों के अतिरिक्त उन भिन्नताओं का सबसे प्रमुख कारण भौगोलिक है।

शरीर शास्त्री काल्टनकूल ने १९६५ में 'लिविंग रेसेस आफ मेन' नामक पुस्तक में शारीरिक गठन को आधार मान कर जातियों का विभाजन पाँच भागों में किया था, (१) काकेसॉइड, (२) मंगोलॉइड, (३) आस्ट्रेलॉइड, (४) कांगोआइड, (५) कैपोआइड। श्रीकून का मत है कि अब से ३५ हजार वर्ष पूर्व मानव की मात्र एक ही जाति थी जो बाद में विभिन्न भू-भागों पर वितरित होकर विभिन्न वातावरण के कारण पाँच भागों में विभक्त हो गयी। सन् १५०० तक ये पाँचों जातियाँ विशुद्ध रूप से विद्यमान थीं। पर यूरोपियन उपनिवेशवाद के विस्तार से जातियों की शुद्धता मारी गयी।

विद्वान डॉ० क्रिस्टीजीटर्नर का कहना है कि दाँतों की बनावट के आधार पर भी जातियों की भिन्नता जानी जा सकती है। दन्त संरचना के आधार पर उन्होंने मनुष्य जाति को २८ जातियों में बाँटा है। रेड इण्डियन्स के अगले दाँत फावड़े जैसे होते हैं। उनके दाँतों का मध्य भाग कुछ दबा होता है। यूरोपियन्स के दाँत सीधे होते हैं। सामान्यतः एशियाई लोगों के अगले काटने वाले चार दाँत होते हैं जबकि रेडइण्डियन तथा उत्तर एशिया की जातियों में काटने के लिए पाँच दाँत प्रयुक्त होते हैं। अमेरिका के एस्किमो तथा उत्तर एशिया के बर्फीले प्रदेश में रहने वाले एस्किमों के दाँत भी एक जैसे पाये जाते हैं। उनकी तीसरी ऊपर की दाढ़ खूंटी के आकार की होती है। दक्षिण एशिया में रहने वालों के दाँत प्रायः चिकने और सीधे होते हैं।

विभिन्न जातियों की इन अलग-अलग विशेषताओं के आधार पर उन्हें पहचाना जा सकता है। पर साथ ही इस सत्य से भी इंकार नहीं किया जा सकता है कि संसार की अगणित जातियाँ स्थान परिवर्तन भी करती रही हैं। उनके रक्त में सम्मिश्रण भी होता रहा है। सांस्कृतिक आदान-प्रदान विवाह, जलवायु परिवर्तन आदि कारणों से उनकी जन्मजात विशेषताओं में अन्तर आया है। इन सबके बावजूद भी स्थानीय जलवायु का अपना महत्व, अपना प्रभाव है।

यह भी एक विचित्र सत्य है कि एशिया, यूरोप, अफ्रीका हर महाद्वीप में उत्तरी भाग की अपेक्षा दक्षिण में रहने वालों का रंग अधिक गहरा होता है। जलवायु का प्रभाव आनुवांशिक स्तर तक हावी रहता है। यही कारण है कि एक वातावरण में जन्मे पले व्यक्तियों, जीवों तथा वनस्पतियों के लिए दूसरे भिन्न प्रकार की जलवायु के अनुकूलन में कठिनाई होती है। कठिनाई ही नहीं कितनी बार तो उन्हें प्रतिकूल परिस्थितियों में अपना अस्तित्व तक गँवाना पड़ता है। प्रायः देखा जाता है कि काला रंग सूर्य की तीक्ष्ण किरणों से शरीर का बचाव करता है। यही कारण है कि काले लोग उष्ण कटिबंध में रहने के बावजूद भी स्वस्थ बने रहते हैं जबकि गोरी नस्ल के लोगों के लिए ऐसी जलवायु अनुकूल नहीं पड़ती। उनमें स्क्रीन कैंसर होने की सम्भावना बनी रहती है। काले व्यक्तियों के अधिक ठण्डे प्रदेशों में रहने से विटामिन डी की कमी पड़ने तथा 'रिकेट्स' रोग होने की गुंजाइश रहती है। कोरियाई युद्ध में काले हब्शियों में 'फोस्ट-वाहट' नामक रोग फैला। इसका कारण चिकित्सकों ने बताया कि अनभ्यस्त बर्फीले प्रदेश में रहने के कारण ही उन्हें यह रोग हुआ। मनुष्य ही नहीं अन्य जन्तुओं वनस्पतियों के साथ भी यही बात है। ट्रापिकल क्षेत्रों में पहाड़ी प्रदेशों मे रहने वाले रीछ, खरगोश यदि गरम प्रदेशों में पाले जायें तो ये मर जाते हैं। कितनी ही जड़ीबूटियाँ ऐसी हैं जो हिमालय के वातावरण में ही पलती तथा अपना अस्तित्व सुरक्षित रख सकती हैं। नागपुरी सन्तरे, भुसावल के केले, महाराष्ट्र के अमरूद, कश्मीर के सेब यदि भिन्न जलवायु में उगाये जायें तो उनकी मौलिक विशेषताएँ नहीं आ पातीं। स्वाद एवं मिठास की दृष्टि से उनकी अपनी निजी विशिष्टता हैं।

हिमालय के मध्य में हजारों किस्म की पुष्पों की घाटियाँ हैं। फूलों की घाटी के नाम से प्रख्यात प्रकृति के वे सुरम्य स्थान तीर्थ यात्रा, तप, पर्यटन के लिये जाने वाले अगणित व्यक्तियों को आकर्षित करते तथा मन को अपने अद्वितीय सौन्दर्य से पुलकित करते हैं। वहाँ से विभिन्न प्रकार के दुर्लभ

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

फूलों की पौध ले जाकर दूसरे ऐसे स्थानों पर लगाने के प्रयास कितने ही व्यक्तियों ने किये जहाँ का वातावरण अनुकूल न था। पर उन्हें सफलता नहीं मिल सकी। किसी तरह वे पौध उग आये और फूल देने लगे तो भी उनमें वह सौन्दर्य, वह सौरभ नहीं जन्म ले सका, जो हिमालय क्षेत्र के पुष्पों में पाया जाता है।

जीवों एवं वनस्पतियों की आकृति एवं प्रकृति को बदलने तथा उनमें निश्चित प्रकार की विशिष्टताएँ पैदा करने के लिए 'क्रास-ब्रीडिंग' के 'जेनेटिक इंजीनियरिंग के विभिन्न प्रयोग पिछले दिनों चले हैं। पेड़ पौधों, वनस्पतियों तथा मनुष्येतर जीवों पर उनसे न्यूनाधिक सफलताएँ भी मिली हैं पर वे ऐसी नहीं है कि सन्तोष व्यक्ति करते हुए कहा जा सके कि पूर्ण सफलता मिल गयी। प्रायः देखा यह गया है कि ऐसे प्रयोगों के उपरान्त उन घटकों की मौलिक विशेषताएँ मारी जाती हैं। एक उपलब्धि हासिल होती है तो दूसरी तरह की समस्या को भी जन्म देती है।

वस्तुतः जलवायु एवं आनुवांशिकी एक सीमा तक ही मानवी प्रकृति एवं आकृति के निर्धारण हेतु जिम्मेदार है। वातावरण के इन स्थूल पक्षों का अपना महत्व एवं प्रभाव है। उन प्रभावों में परिवर्तन कर करना थोड़ा-बहुत ही सम्भव है, पूर्णतः बदल सकना मुश्किल है। पर वातावरण का एक और भी पक्ष है जिसका महत्व पहले की तुलना में कम नहीं अधिक ही है। वातावरण जो मानवी चिन्तन, विचारणा एवं गतिविधि के समन्वय से उत्पन्न होता है, मानवी प्रकृति प्रायः उससे ही अधिक प्रभावित होती है। वातावरण के इस पक्ष को विनिर्मित करना पूर्णतः मनुष्य के हाथों में है। जिस परिवेश में वह रहता है उसके सूक्ष्म प्रभावों एवं संस्कारों को ग्रहण करके उसी के अनुरूप ढलता जाता है। उसके गुण-कर्म स्वभाव वैसे ही बन जाते हैं। जैसी भी पीढ़ियाँ बनानी हों, जैसा भी समाज का ढाँचा खड़ा करना हो, उसके अनुरूप ही वातावरण बनाना होगा। वैसा ही चिन्तन देना और शिक्षण चलाना होगा। इस में वे ही सफल हो सकते हैं जिन्होंने उन विशेषताओं को अपने व्यक्तित्व का अभिन्न अंग बना लिया है। अवांछनीयताओं की विषाक्ता से भी वर्तमान वातावरण के बदलने तथा ऐसे माहौल को विनिर्मित करने-जिसमें श्रेष्ठ मानवों की ढलाई होती चलें, उज्जवलमान व्यक्तियों की आवश्यकता है जो आगे आये साँचे की भूमिका निभाएँ। जब-जब भी महामानवों की पीढ़ियाँ जन्मी हैं, ऐसे सूक्ष्म घटकों के आधार पर ही विकसित हुई हैं, आगे भी जब आवश्यकता पड़ेगी ऐसे ही वातावरण की जरूरत पड़ेगी।

उपयुक्त वातावरण ढूँढ़ें अथवा बनायें

माना जाता है कि प्रतिभाएँ अपने वर्चस् से वातावरण विनिर्मित करती हैं। यह सच है, पर उनकी संख्या थोड़ी-सी ही होती है। हीरे जहाँ तहाँ कभी-कभी ही निकलते हैं। पर काँच के नगीने ढेरों के ढेरों कारखानों में नित्य ढलते रहते हैं। अधिकांश लोग ऐसे होते हैं जो वातावरण के दबाव से भले या बुरे साँचे में ढलते हैं। सत्संग-कुसंग का प्रभाव इसी को कहते हैं। ऐसे लोग अपवाद ही है जो बुरे लोगों के सम्पर्क में रहकर अपनी गरिमा बनाये रहते हैं साथ ही अपने प्रभाव से क्षुद्रों को महान बनाने, बिगड़ों को सुधारने में समर्थ होते हैं। प्रधानता वातावरण की है। सामान्य जन प्रवाह के साथ बहते और हवा के रुख पर उड़ते देखे जाते हैं। पारस के उदाहरण कम ही मिलते हैं। सूरज चाँद जैसी आभा किन्हीं बिरलों में होती है जो अँधेरे में उजाला कर सकें।

मान्यता वातावरण को ही मिलती है क्योंकि अधिकांश पर प्रभाव उसी का होता है। आत्मोत्कर्ष का लक्ष्य लेकर चलने वालों को तो विशेष रूप से इस आवश्यकता को अनुभव करना चाहिए। उसे जुटाने के लिए प्रयत्नशील भी रहना चाहिए।

अनेक फसलें किसी विशेष क्षेत्र में ही उत्साहवर्द्धक प्रगति करती हैं। तम्बाकू, अफीम, चाय जैसी वस्तुएँ किसी विशेष इलाके में ही होती हैं। अन्यत्र बोया जाये तो वे उगाई भले ही जा सकें, आशाजनक स्तर तक बढ़ने, फलने-फूलने में समर्थ नहीं हो पाती। चंदन के पेड़ बोयें तो कहीं भी जा सकते हैं पर मैसूर जैसी सुगंध उनमें नहीं उभरती। आम, संतरा आदि की उत्तम फसल निर्धारित क्षेत्रों में पनपती हैं। नारियल, लौंग, मसाले किसी विशेष भूमि में ही उगते हैं। इसी प्रकार किन्हीं विशेष क्षेत्रों में ही कोई विशेष जड़ीबूटियाँ पाई जाती हैं यदि ऐसा न होता तो हनुमान जी को संजीवनी बूटी लेने के लिए सुदूर हिमालय पर्वत पर चढ़कर क्यों जाना पड़ता ? जीव-जन्तुओं की, फूलों की, धान्यों की भी क्षेत्रीय विशेषता के अनुरूप चित्र विचित्र प्रकार की उत्पत्ति होती है। सोवियत संघ के एक संघीय प्रांत उजबेकिस्तान व अजरबेजान में अधिकांश व्यक्ति सौ से भी अधिक वर्ष तक जीवित रहते हैं। इसे वातावरण की ही विशेषता कहना चाहिए।

आध्यात्मिक प्रगति के लिए भी अनुकूल अनुरूप वातावरण होना चाहिए। अन्यथा संव्याप्त चिन्तन की भ्रष्टता, चरित्र की दुष्टता प्रमाणित किये बिना नहीं रहती। ढलान की ओर पानी अनायास ही बहता है। ऊपर से नीचे गिरने का उपक्रम पृथ्वी की गुरुत्वाकर्षण शक्ति ही बनाती रहती है। ऊपर उठाने के लिए विशेष प्रयत्न करने की, विशेष साधन जुटाने और शक्ति लगाने की आवश्यकता पड़ती है। आत्मिक प्रगति के लिए भी लक्ष्य के प्रति उत्साह बढ़ाने वाला—मार्ग दिखाने वाला—माहौल चाहिए।

इसके दो उपाय हैं। एक यह कि जहाँ इस प्रकार का वातावरण हो वहाँ जाकर रहा जाये। दूसरा यह कि जहाँ अपना निवास है वहीं प्रयत्नपूर्वक वैसी स्थिति उत्पन्न की जाये। कम से कम इतना तो हो ही सकता है कि अपने निज के लिए कुछ समय के लिए वैसी स्थिति उत्पन्न कर ली जाये। चन्द्र यात्री जब उसके धारातल पर पहुँचे, तब वहाँ साँस लेने के लिए हवा नहीं पाई गई। उनने ऐसे उपकरण साथ लिए जिनमें ऑक्सीजन भरी थी। उसी माध्यम से वे लोग साँस लेते रहे और चन्द्र धरातल के सर्वथा प्रतिकूल वातावरण में भ्रमण अन्वेषण करते रहे। पृथ्वी के उत्तरी दक्षिणी ध्रुवों की स्थिति भी निवास के सर्वथा प्रतिकूल है। इतने पर भी खोजियों ने वहाँ पैर जमाये और साधनों के सहारे बहुत दिन गुजारे। यही प्रयत्न कर अनुपयुक्त वातावरण में भी कम से कम अपने निज के लिए तो विशेष उपायों द्वारा उपयुक्त परिस्थितियाँ गढ़ी जा सकती हैं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

एकान्त, स्वाध्याय, मनन चिन्तन ऐसे ही आधार हैं। किसी एकान्त कोठरी या निर्जन क्षेत्र में बैठकर यह अनुभव किया जा सकता है कि संसार में संव्याप्त अवांछनीयता से अपना सम्बन्ध टूट गया। बुरे लोगों का बुरा प्रवाह एक एकान्त के कवच को बेध कर भीतर प्रवेश नहीं कर पा सकेगा। यह ढाल बाहरी अनुपयुक्त प्रभावों से बचाने के लिए ढाल का काम दे सकती है। शर्त एक ही है उस एकान्त में संसार के अवांछनीय लोगों का विचार, स्वरूप, कृत्य कल्पना में न आने दिया जाये। सर्वथा कोलाहल रहित स्थान मिलने में कठिनाई दीखे तो यह प्रयोजन आँखें बंद करके, संसार चिन्तन से मन का निरोध करके भी पूरा किया जा सकता है।

अवांछनीयता को रोकना भर ही पर्याप्त नहीं है। सर्वथा रिक्त नहीं रहा जा सकता। शून्यता रह नहीं सकती। इसलिए उस स्थान पर श्रेष्ठता की प्रतिष्ठापना तो करनी होगी। यह कार्य देवता की ध्यान-धारणा में भी अधिक अच्छी तरह उत्कृष्टता, आदर्शवादिता के समर्थक मार्गदर्शक साहित्य के सहारे हो सकता है। दूरस्थ या दिवंगत महामानवों का सत्संग तो सहज सम्भव नहीं, पर उस अभाव की पूर्ति उनके लिखे साहित्य से हो सकती है। एकान्त के खाली मस्तिष्क में सत्साहित्य का, महामानवों के जीवन रहस्य का अवगाहन किया जा सकता है। अनुभव किया जा सकता है कि उनकी प्रेरणा को अपने अन्तराल में उतारा जा रहा है। उस खाली समय में अपने आदर्शवादी जीवन क्रम की सम्भावनाओं को भी केन्द्रित किया जा सकता है। बार-बार जल्दी-जल्दी ऐसे अवसर वर्तमान परिस्थितियों में भी निकाले जा सकते हैं और उस स्वनिर्मित दिव्य कल्पनालोक में अवस्थित रहा जा सकता है।

प्राचीन काल में साधना के लिए उपयुक्त कितने ही स्थान थे। उन्हें तीर्थ कहते थे। तीर्थ हर क्षेत्र में थे। ताकि समीपवर्ती लोग सरलतापूर्वक पहुँच सकें और वातावरण का, मार्ग दर्शन का, समस्याओं के समाधान करके परामर्श का समुचित लाभ उठा सकें। तीर्थों में बच्चों के लिए गुरुकुल, गृहस्थों के लिए आश्रम, प्रौढ़ों के लिए वानप्रस्थ आरण्यकों की व्यवस्था रहती थी। हर व्यक्ति वहाँ निवास में पड़ने वाला भोजन व्यय आदि स्वयं उठाने की स्थिति में नहीं होता था। अमीरों के साथ गरीब भी आते थे। सभी को समान सुविधा मिलें। गरीब-अमीर का अन्तर न दीख पड़े। किसी पर दीनता और किसी पर अहंता छाई न रहे, इसलिए समता की व्यवस्था बनाये रखने के लिए उपरोक्त सभी आश्रमों में सदावर्त भण्डार चलते थे। सभी आगन्तुकों को समान सम्मान और सुविधाओं का सहयोग मिलता था। सभी समुचित प्यार, दुलार, मार्गदर्शन, परामर्श एवं भविष्य को उज्जवल बनाने वाली प्रकाश प्रेरणा का लाभ प्राप्त करते थे। स्वर्गोपम भाव-संवेदनाओं का रसास्वादन करते थे। उन दिनों सभी को आत्मिक प्रगति के लिए उपयुक्त स्थान एवं अवसर प्राप्त करने का अवसर उपलब्ध था। इस निमित्त बने तीर्थों की सबसे बड़ी विशेषता यह होती थी कि उनके संचालन तत्व दर्शन, साधन प्रयोजन एवं जीवनोत्कर्ष की विधा में हर दृष्टि से प्रवीण पारंगत होते थे। यह कार्य गृहस्थ पुरोहित करते थे। परिव्राजक बनकर सदा सर्वदा भ्रमण करते रहते थे। समय-समय पर उपयुक्त केन्द्रों पर थोड़े-थोड़े विचारशीलों को एकत्रित करके उनके प्रशिक्षण सत्र चलाते थे। एक-एक करके बात करना भी उचित है, पर उस प्रक्रिया में यह दोष है कि कोई प्रतिभाशाली अपना समूचा समय लगाकर भी थोड़े लोगों से ही सम्पर्क साध पाता है और एक से दूसरे तक पहुँचने में उसकी सुविधा वाले समय की प्रतीक्षा करने में ढेरों समय लग जाता है। इसलिए परिव्राजकों का एक साथ एक स्थान पर एकत्रित होकर विचार गोष्ठी क्रम चलाना सुविधाजनक होता है। उसमें व्यक्तिगत समस्याओं के अनुरूप पृथक्-पृथक् परामर्श देना भी सम्भव हो जाता है। यह प्रयोजन बड़ी सभा सत्संगों, आयोजनों तथा समारोह में नहीं हो पाता। बहुत बड़ी संख्या में जनता के एकत्रित होने पर सामयिक उत्साह तो उभरता है। वक्ता के लिए यह सरल पड़ता है कि बहुजन समुदाय तक अपने विचार एक ही समय में पहुँचा देने पर उसमें कमी यही रहती है कि व्यक्तिगत समस्याओं के संबंध में पृथक्-पृथक् प्रकार के समाधान दे सकना सम्भव नहीं हो पाता। यों एकान्त विचार विनिमय, विचारगोष्ठी आयोजन और सभा सम्मेलनों का अपना महत्त्व है। स्थिति और आवश्यकता को समझने वाले विचारशील उद्बोधक इसके लिए यथा स्थिति निर्णय लेते और प्रशिक्षण की आवश्यकता के अनुरूप बनाते रहते हैं। पुरोहितों के तीर्थ सेवन में उतनी विभिन्नता नहीं है उनका एक ही प्रकार क्रम निर्धारण समय विभाजन अपने ढर्रे पर घूमता रहता है। अब न तीर्थ पुरोहित अपना कर्त्तव्यपालन करते हैं न आश्रम स्तर की प्रशिक्षण व्यवस्था चलाते हैं और न साधु-विरक्तों को ही लोकशिक्षण में निरन्तर देखा जाता है। इन दोनों को ही जीवन परिष्कार और सत्प्रवृत्ति सम्वर्द्धन को लक्ष्य रखकर सम्पर्क साधना और शिक्षण चलाना चाहिए। पर वैसा कुछ नहीं होता। देव दर्शन और पूजा परक कर्मकाण्डों के सहारे दक्षिणा बटोरने की धुन भर लगी रहती है। देवताओं के ऐजेन्ट स्वरूप में अपने को प्रस्तुत करके भावुकजनों का सहज सम्मान भी प्राप्त करते हैं। इन उभय पक्षीय लाभों को छोड़ कर लोकमंगल की सेवा साधना में न पुरोहित वर्ग लग रहा है और न साधु समुदाय का ही उतना ध्यान है जितना होना चाहिए। धार्मिकजनों की देव पूजा के पीछे मनोकामना पूर्ति की इच्छा को हटाया जाना चाहिए और धर्म धारणा से नीति निर्धारण एवं समाज सेवा को प्रतिष्ठित किया जाना चाहिए।

घर की परिस्थितियों में मन का भौतिक, सामायिक प्रयोजनों से ही लगा रहना स्वाभाविक है। इस कठिनाई के रहते चित्तवृत्तियों का निरोध और उसका आध्यात्मिक स्तर की उत्कृष्टा के साथ जुड़ना कठिन पड़ता है। इसलिए अधिक अच्छा और अधिक प्रभावोत्पादक यही रहता है कि जहाँ आत्मिक प्रगति के उपयुक्त वातावरण, सुविधा साधन एवं भटकावें, उलझनों का समाधान मिल सके। वहाँ जाकर कुछ दिन रहा जाये और उपयुक्त क्षेत्र में रहते हुए उपयुक्त साधना की जाये।

इस दृष्टि से गंगा की गोद और हिमालय की छाया वाला स्थान ढूँढ़ा जाना चाहिए। इन दोनों में अपनी आध्यात्मिक विशेषता है इसी कारण गहरी आस्था वाले साधक कुछ समय

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

के लिए इसी प्रकार के तीर्थों में रहते और साधना करते हुए आशाजनक सफलता प्राप्त करते रहे हैं। तीर्थ स्तर की ऊर्जा को ज्वलन्त बनाये रहने के लिए तीर्थों में नियम, जप और यज्ञ बड़ी संख्या में होना चाहिए। साधना की तपश्चर्या शरीर कृत्य है उसके साथ-साथ मानस का सर्वांगीण एवं भावना परक विकास करने के लिए ऐसा शिक्षण मिलना चाहिए जो प्रस्तुत समस्याओं को उच्चस्तरीय समाधान भी प्रस्तुत कर सके। राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न को अपनी जन्मभूमि में भी सभी प्रकार की सुविधाएँ प्राप्त थीं पर उनने गुरु वशिष्ठ के परामर्श से गंगा की गोद और हिमालय की छाया में ही अपना निवास स्थिर किया। वे चारों भाई वशिष्ठ गुफा के इर्द-गिर्द देवप्रयण, लक्ष्मण झूला, ऋषीकेश, मुनी की रेती में रहकर साधनारत हुए थे। इन दिनों प्राचीन काल की सभी व्यवस्थाओं से सम्पन्न शान्तिकुंज हरिद्वार की ओर चला जा सकता है। यह सप्त-ऋषियों के तप की सुसंस्कारित दिव्य भूमि भी है।

साधना में शान्त, एकांत स्थान की उपयोगिता

प्राचीन काल में ऋषि, मुनि एवं योगी-तपस्वी कष्ट साध्य साधनाओं के लिए एकांत पर्वत गुफाओं-गिरि कंदराओं को चुनते थे। इनका एक प्रमुख कारण यह है कि प्रकृतितः शान्त वातावरण में निवास करने से उत्तेजना नष्ट होने वाली शक्ति की बर्बादी रुकती है। और उस बचत को उपयोगी प्रयोजनों में लगाकर प्रगति का पथ-प्रशस्त किया जा सकता है। इसी प्रकार रात्रि के प्रकृति प्रदत्त अनुदान अन्धकार का लाभ उठाकर थकान मिटाने का ऐसा लाभ प्राप्त किया जा सकता है जिसके सहारे अधिक काम करने की क्षमता अर्जित की जा सके।

योगाभ्यासी अपने व्यक्तित्व को अधिक विकसित करने की साधना करते हैं। भीतर की प्रमुख शक्तियों को जगाने के लिए उनका प्रयोग प्रयास चलता है। इस प्रयोजन के लिए उन्हें ऐसे स्थान में अपना निवास निर्धारित करना पड़ता है जहाँ अनावश्यक कोलाहल की पहुँच न हो और जहाँ रात्रि के समय कृत्रिम प्रकाश उत्पन्न न करना पड़े। दिन में सूर्य का और रात्रि में चाँद-तारों का प्रकाश ही सामान्य और स्वाभाविक निर्वाह के लिए पर्याप्त होना चाहिए।

स्तब्धता और अन्धियारी यों विनोद, मनोरंजन में भारी बाधक लगती है और ऐसी ऊब उत्पन्न करती है जिससे बचने के लिए हर किसी का जी करता है। फिर भी वैज्ञानिक दृष्टि से इनकी उपयोगिता दिन-दिन अधिक स्पष्ट होती जा रही है। विज्ञान के अनुसंधान हमें इस निष्कर्ष पर पहुँचाते हैं कि यदि शान्त, एकान्त स्थान में रह सकना रुचिकर हो सके तो उससे कोलाहल भरे स्थानों की अपेक्षा हर दृष्टि से लाभदायक उपलब्धियाँ ही करतलगत होंगी। इसी प्रकार रात्रि को जितने समय जितने कृत्रिम प्रकाश से बचाया जा सके उतना ही उत्तम है।

निस्तब्धता एक बात है और तमिस्रा दूसरी। दोनों के सम्मिश्रण से तीसरी स्थिति बनती है। जो सदुपयोग और दुरुपयोग दोनों ही दृष्टि से अपने अद्‌भुत परिणाम प्रस्तुत करती है। भूमि खोदकर समाधि में बैठने की साधना योगाभ्यासियों के लिए पुरानी है। मौटेतौर से वह कोई कौतुक-कौतूहल जैसी जादुई क्रिया-प्रक्रिया मालूम पड़ती है, पर तथ्यतः उसमें शरीर को उस स्थिति में रखने का अभ्यास है जिसे अन्तरिक्ष में सब्याप्त भारहीनता के समतुल्य माना जा सकता है। आयुर्वेदशास्त्र में कायाकल्प चिकित्सा का विधान है। उसमें शरीर के पुनर्गठन की, नवीनीकरण की विधा सम्पन्न की जाती है। कहा जाता है कि इससे वृद्धता दूर होती है और यौवन लौट आता है। इस विधान में भी लम्बे समय तक एकान्त और अँधेरे में रहना पड़ता है। औषधि उपचार के अतिरिक्त इस विशेष स्थिति का जो प्रभाव शरीर पर पड़ता है उस का महत्व अधिक माना गया है। तपस्वियों के एकान्त-सेवन-गुफा निवास की बात तो सर्वविदित ही है। उसका कोई अतिरिक्त लाभ न हो तो व्यावहारिक दृष्टि से अनेकों असुविधाओं से भरी हुई इस स्थिति में रहने के लिए कोई क्यों तैयार होगा ? अकारण अपने को इस विपन्नता में धकेलना किसी को क्यों सुहाता ?

वैज्ञानिक, साहित्यकार, शोधकर्ता, योगाभ्यासी प्रायः वैसी ही स्थिति की तलाश करते हैं। भीड़-भाड़ के बीच उनका काम ठीक तरह हो ही नहीं पाता। चिन्तन और मनन के लिए तो विशेष रूप से एकान्त की ही आवश्यकता पड़ती है। आत्मानुसंधान में निरत योगाभ्यासी प्रायः एकान्त वन, पर्वतों की कन्दराओं में रह कर अपने प्रयोग सफलतापूर्वक सम्पन्न करते थे। अभी भी वैज्ञानिक अन्वेषणों के लिए प्रयोगशालाएँ ऐसे ही स्थान और वातावरण में बनी होती हैं जहाँ बाह्य विक्षेपों का प्रभाव कम से कम पहुँचे।

निस्तब्धता की क्षमता दोनों ही प्रकार की है। शोर के अभ्यस्त लोगों के लिए वह बहुत ही कष्ट कर होती है, किन्तु जिनके अभ्यास में आ जाती है—सहन होने एवं रुचिकर लगने लगती है। उनके लिए वह एक वरदान का काम करती है। रात्रि के समय मरघटों में, खण्डहरों या सुनसान स्थानों पर अकेले होने से डर लगता है। इस डर का कारण पूछने पर भूत, चोर, साँप आदि की बात कही जा सकती है, पर वस्तुतः वे शब्द कुछ ठोस उत्तर न होने के कारण ही कह दिये जाते हैं। जो लोग भूत प्रेत पर विश्वास नहीं करते या चोर, साँप आदि का सामने करने की हिम्मत रखते हैं वे भी अन्धेरे एकान्त से डर अनुभव करते हैं यह और कुछ नहीं स्तब्धता का अभ्यास न होने के कारण उत्पन्न रिक्तता की प्रतिक्रिया मात्र है।

रात्रि के सुनसान अन्धेरे में हवा से पत्ते खड़कने, पक्षियों के बोलने या कीड़ों के रेंगने से उत्पन्न हलकी ही आवाजें भी बहुत भयंकर लगती हैं और प्रतीत होता है मानो कोई भयंकर संकट ही सामने आ रहा हो। इसे अपने आप से अपरिचित होने के कारण असहाय और दीन-दुर्बल होने की अनुभूति ही कहा जा सकता है। वस्तुतः मनुष्य अपने आप से डरता है। जब तक औरों के आँचल में छिपा रहता है—भीड़ में खोया रहता है—तब तक अपने को सुरक्षित मानता है किन्तु जब उसे अपना दुर्बल स्वरूप देखने का अवसर एकान्त के समय मिलता है तो उसे बुरी तरह डर लगता है और इसी स्थिति से पीछा छुड़ाने के लिए भीड़ में घुसने की कल्पना या चेष्टा करता है। साधना

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

के समय प्रायः एकांकीपन रहता है। अर्न्तमुखी होने की चेष्टा चलती है। अपने आपे से अपरिचित मन इस स्थिति में रहने से डरता है और भीड़ की तरफ दौड़ पड़ता है। उपासना में मन न लगने की, तरह-तरह के विचार उठने की, अजनबी कल्पनाएँ आने की, स्थिरता न होने की, शिकायत इसी आत्म-विस्मृति का चिह्न है। ऐसे दुर्बल मन वालों को एकान्त की ध्यान साधना अनुकूल नहीं पड़ती। उन्हें कथा, कीर्तन, यज्ञ, तीर्थयात्रा, आरती, प्रार्थना जैसे सामूहिक धर्मानुष्ठान ठीक पड़ते हैं। बहिर्मुखी गतिविधियों का समावेश रहने से इस स्तर के लोग का मन लग जाता है। ऐसे लोग दैनिक जीवन में भीड़ के साथ ही काम कर सकते हैं। यहाँ तक कि सोने के समय भी अन्य लोगों को साथ रखे बिना काम नहीं चलता। सोजाने के बाद भी उन्हें बत्ती जलायें रखने की आवश्यकता पड़ती है। ताकि अन्धेरे का संकट उनके ऊपर टूट न पड़े। जेल के नियम तोड़ने वाले कैदियों को वहाँ के अफसर कई तरह की स्थानीय सजा देते हैं। उनमें से एक है, एकान्तवास जिसे 'काल कोठरी' कहते हैं। आमतौर से उसमें कोई शारीरिक कष्ट मिलने जैसी बात नहीं होती और न वहाँ कोई शारीरिक श्रम करना पड़ता है; फिर भी अकेले दिन गुजारना इतना कठिन पड़ता है कि समय काटे नहीं कटता और कैदी बुरी तरह संत्रस्त रहने लगता है।

आमतौर से सामान्य मनुष्यों के लिए अन्तर्मुखी होना बहुत कठिन पड़ता है। वे दुनिया की बातें बहुत सोच सकते हैं और सांसारिक समस्याओं पर काफी ऊहापोह कर सकते हैं किन्तु आत्म-निरीक्षण और आन्तरिक समाधान की बात सोचना और उस दिशा में कुछ आगे तक बढ़ सकना, उनके लिए सम्भव ही नहीं हो पाता, इसी प्रकार वे भीड़ के साथ रहने और गपबाजी करने में घन्टों गुजार सकते हैं, पर अकेले थोड़ी देर नहीं बैठ सकते। आत्मसम्पर्क उनसे सधता ही नहीं, एकान्त में मन लगता ही नहीं। इसका कारण तलाश करने पर मनोविज्ञानी इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि ऐसे व्यक्ति वे होते हैं जिनका मत अपने व्यक्तित्व के सम्बन्ध में अच्छा नहीं होता। वे उसे बुरा, पिछड़ा और घिनौना समझते हैं फलतः अपने साथ बैठने में उन्हें घृणा उपजती है और नाराजगी होती है। जिस प्रकार गन्दे और अविश्वासी लोगों के पास बैठने को जी नहीं करता। आत्मचिन्तन से ऐसे लोगों का मन उचटता है और एकान्त में उन्हें ही डर लगता है।

इसके विपरीत ऐसा भी देखा गया है कि उस एकान्त अन्धता की स्थिति में कई व्यक्ति आत्मचिन्तन में ही तन्मय रहने लगे और अपनी आन्तरिक दुर्बलताओं को हटाने तथा विशेषताओं को बढ़ाने के लिए सुनिश्चित मार्ग ढूँढ़ निकालने में भी सफल हो गये। इस प्रकार यह स्तब्धता जहाँ अनभ्यस्त होने के कारण अखरी तो, किन्तु थोड़े समय में वह न केवल सहन ही हो गई वरन् उपयोगी तथा रुचिकर भी लगने लगी।

जन्म-जन्मान्तरों के संचित कुसंस्कारों को उखाड़कर उनके स्थान पर मानवी गरिमा के अनुकूल आस्थाओं का जमाना ही संस्कृति एवं सभ्यता है। अभ्यस्त दुष्प्रवृत्तियों को उलटने और उनके स्थान पर सत्प्रवृत्तियाँ जमाने के लिए ही आध्यात्मिकता, आस्तिकता और धार्मिकता का दर्शन बनाया और विधान खड़ा किया गया है। धर्मकृत्य का सारा संरजाम इसी धुरी के इर्द-गिर्द घूमता रहता है। अन्तःचेतना को परिष्कृत करने के लिए ही स्वाध्याय सत्संग से लेकर पुण्य परमार्थ से लेकर तप साधना के विधि-विधानों तक अनेक धर्मकृत्य किये जाते हैं। भजन, कीर्तन, जप, ध्यान, पूजा-पाठ का उद्देश्य इतना ही है कि बाहरी चेतना का अन्तःकरण में उदय उद्भव हो सके, संक्षेप में इस सारी विधा को आत्मपरिवर्तन या आत्म-परिष्कार कह सकते हैं। इसी के लिए धर्म कलेवर का विभिन्न उपचारों के साथ प्रयोग होता रहता है।

देखा गया है कि जितना आवश्यक है उतना लाभ इन प्रयोजनों से हो नहीं पाता। कारण कि उनका प्रभाव कान, आँख, मस्तिष्क तक ही पहुँच पाता है। इन यन्त्रों की बनावट ही कुछ ऐसी है कि किसी प्रभाव से देर तक प्रभावित नहीं रहते। अगले ग्रहण करने के लिए उन्हें पिछला भुलाना पड़ता है। पिछला पैर उठाने पर ही अगला पैर उठता है। प्रगति का क्रम यही है। इसलिए धर्मोपदेशों को भुला देने का दोष भी इन्द्रियों को मस्तिष्क पर लादना व्यर्थ है। उनकी संरचना ही इस प्रकार की है कि वे भले बुरे किसी भी प्रभाव को देर तक पकड़े नहीं रह सकतीं। अन्तःपरिष्कार के लिए आवश्यक है कि अन्तःचेतना की गहरी परतों का स्पर्श और परिवर्तन कर सकने योग्य उपाय ढूँढ़ा जाये। इसके लिए एकान्त सेवन की योग साधना में बहुत प्रशंसा है। जब वह सहन हो जाये तो गुफा गमन जैसे अन्धकार, अभ्यास को भी उसी में सम्मिलित कर लिया जाता है। योगी प्रायः इसी प्रक्रिया को अपनाते देखे गये हैं।

जर्मनी चीन और रूस के अधिनायक, राजनैतिक विरोधियों को, अपने मत बदलने और सहमत होने के लिए 'ब्रेनवाशिंग' पद्धति का उपयोग करते रहे हैं। इसमें उन्हें सफलता भी मिली है। ब्रेनवाशिंग का तात्पर्य है—मस्तिष्क की धुलाई। अर्थात् पूर्व मान्यताओं का बदलाव। इसके लिए समझाने-बुझाने, लाभ-हानि समझाने और लालच दिखाने का पुराना तरीका कमजोर मनःस्थिति के लोगों पर ही सफल होता है। कड़े विचारों वाले, सिद्धान्तवादी लोग प्रायः अपनी बात पर अड़े रहते हैं और परिवर्तन की अपेक्षा मरने या मारने की बात सोचते रहते हैं। ऐसे लोगों को मार देना तो सरल हैं पर उन्हें बदल कर जो लाभ उनके कुशल व्यक्तित्व से उठाया जा सकता है वह भी हाथ से चला जाता है। ऐसी दशा में बदलाव ही अधिक उपयुक्त सोचा गया और उसके लिए तरह-तरह के उपाय निकाले गये। शारीरिक और मानसिक उत्पीड़न तथा भविष्य में इसी प्रकार तिलतिल मरने की विभीषिका एक ओर अनुभव कराई जाती है। दूसरी ओर बीच-बीच में उन सुखद परिस्थितियों का आस्वादन भी करा दिया जाता है जो परिवर्तन कर लेने के उपरान्त सहज ही मिल सकती है। समझाने-बुझाने से लेकर डराने तक के विभिन्न परामर्श भी इसी के साथ-साथ चलते रहते हैं। इस प्रयास से अधिकांश कट्टर भी नरम हो जाते हैं और सिद्ध करते हैं कि 'ब्रेनवाशिंग' कठिन नहीं सरल है। इन उपचारों के फलस्वरूप सामयिक ही नहीं स्थायी परिवर्तन भी होते देखा गया है। बन्धन मुक्त होने पर ऐसे विपक्षी सच्चे मन से पक्ष धर बन जाते हैं। अवसर मिलने पर दुबारा उलटते

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

बहुत कम ही देखे गये हैं। अन्यथा उसी धारा में उनका मन एवं स्वभाव बहने लगता है जिसमें कि उन्हें प्रयत्नपूर्वक बहाया गया था।

ब्रेनवाशिंग के लिए किये गये उत्पीड़नों में अँधेरी एकान्त कोठरी में रखना, बिना चोट या घाव का निशान लगाये सबसे अधिक दबाब डालने वाला तरीका सिद्ध हुआ है। इन कमरों की बनावट ऐसी होती है जिसमें बाहर की आवाज का एक शब्द भी नहीं जाने पाता और न रोशनी की कोई किरन पहुँचती है। कैदीको अकेला बन्द किया जाता है। उस कोठरी में घन्टी बजाने का एक बटन रहता है। जिसे तभी बजाने के लिए हिदायत की जाती है जब विचार बदलने के लिए तैयार हो। इस कमरे में रोटी, पानी, मलमूत्र विसर्जन, शैया, वस्त्र जैसे निर्वाह के आवश्यक साधन बदले और पहुँचाये जाते रहते हैं। इतने पर भी यह निस्तब्धता और तमिस्रा इतनी खलती है। प्रायः एक दिन में ही बन्दी घबरा जाता है और आत्मसमर्पण की घन्टी बजा देता है। दस दिन से अधिक तो कोई भी उस स्थिति को सहन नहीं कर सका है।

आस्थाओं के उलटने में तमिस्रा युक्त एकान्त सेवन का क्या प्रभाव हो सकता है इसकी झांकी 'ब्रेनवाशिंग' के नाम पर चलने वाले उत्पीड़न और उसके परिणाम को देखकर हो सकती है। इसका दूसरा पक्ष भी है कि उस स्थिति में मनःसंस्थान का स्तर प्रायः वैसा हो जाता है जैसा कि अन्तरिक्ष में पहुँचने पर भार विहीन स्थिति में शरीर का अनुभव होता है। पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण को लांघ कर ऊपर पहुँचने के बाद इच्छा-शक्ति के सहारे शरीर को तनिकगति देने पर किसी भी दिशा में चल पड़ना और बढ़ते जाना सहज सम्भव हो जाता है। इसी प्रकार अन्ध एकान्त में मस्तिष्क अन्य दवाबों से मुक्त होकर अभीष्ट चिन्तन अपनाकर मनचाही प्रगति कर सकता है। इस प्रकार यह स्थिति रचनात्मक प्रगति के लिए भी बहुत उपयुक्त बैठती है।

कनाडा के मनोवैज्ञानिकों ने इस अन्ध-निस्तब्धता के समय कैसा अनुभव होता है, इसके परीक्षण किये हैं। इसके लिए ठीक ब्रेनवाशिंग में काम आने वाले कमरों की तरह ही कक्ष बनायें गये। उनमें बन्द किये जाने वाले लोगों ने बाहर निकल कर बताया कि वहाँ भी उन्होंने जोर-जोर की विचित्र आवाजें सुनीं। सीटी, सरसराहट, घड़घड़ाहट, गरजन, खटपट, भगदड़ जैसे शब्द उनके कानों में आते रहते थे। यह आवाजें क्या हो सकती हैं इसका पता लगाने पर यही जाना गया है कि शरीर में होने वाला रक्त संचार, श्वास-प्रश्वास जैसी हलचलों की ही प्रतिक्रिया थी। यही ध्वनि तरंगें उस कमरे में प्रतिध्वनित होती है और बन्दी उन्हें कहीं बाहर से आने वाली आवाजें समझता है।

इन कमरों में पहुँचने वालों ने और भी कई तरह के अनुभव सुनाये, कई उस कमरे में पहुँचते ही गहरी नींद में सो गये और तीस-चालीस घन्टे तक सो लेने के बाद उनकी आँख खुली। जब जागे तो उन्हें लगा कि पहले की तुलना में कहीं अधिक चेतनता और ताजगी उनमें आ गई। कई को बन्द होने से पहले खुजली, खाँसी, जुकाम, सिर दर्द आदि की जो शिकायतें थीं वे अपने आप ही अच्छी हो गई। कइयों ने अन्तप्रेरणा से ही अपनी नशेबाजी जैसी पुरानी आदतें छोड़ दी। तम्बाकू जैसे अभ्यस्त नशे उनके पास मौजूद रहे, पर सहज अरुचि के कारण उनने उन्हें छुआ भी नहीं अथवा एकाध कश लेकर ही फेंक दिया। कइयों की पुरानी स्मृतियाँ जागीं और बीती घटनाओं को इस तरह अनुभव करने लगे मानो अभी कल परसों की ही हों। केई अपने प्रिय विषयों पर अधिक गम्भीरता और तन्मयता के साथ सोचने लग गये और महत्वपूर्ण नतीजों तक पहुँच सकने में सफल हो गये।

एकान्त सहन करने का प्राथमिक अभ्यास काफी कठिन होता है। उसमें मनोबल की आवश्यकता पड़ती है। आत्मदमन करना पड़ता है और पुरानी भीड़-पसन्द आदत को समझा-बुझाकर कठिनाई से इस स्थिति में थोड़ा समय गुजारने के लिए सहमत करना पड़ता है। स्पष्ट है कि इतने भर अभ्यास से मनोबल बढ़ता है और प्रतिपक्षी अभ्यासों से जूझने और उन्हें निरस्त कर सकने की क्षमता का आत्मविश्वास होता है। यह आत्मिक प्रगति की दृष्टि से अच्छी सफलता है। इसके सहारे भविष्य में आत्म परिष्कार के अन्य बढ़े-चढ़े उपाय अपनाये जा सकते हैं और विशिष्ट अध्यात्मिक उपलब्धियाँ प्राप्त की जा सकती हैं। थोड़े-थोड़े समय के लिए—मात्र एकान्त को—मात्र अन्धकार को सहन करने की साधना के सहारे अभ्यास आरम्भ होता है तो आगे चलकर अन्धतायुक्त एकान्त भी कठिन नहीं रहता।

पूर्ण अन्धकार, पूर्ण अन्धकार का लाभ अधिक समय तक न मिल सके तो भी यह प्रयत्न करना चाहिए कि जब भी सुविधा हो जितने समय भी सम्भव हो उसका लाभ उठाया जाना चाहिए। इसी प्रकार मन को भीड़-भाड़ के विचारों से हटाकर किसी एक प्रसंग पर नियोजित करने की ध्यान-धारणा को किसी न किसी रूप में क्रियान्वित करते रहना चाहिए।

साधना की सफलता के लिए संस्कार युक्त वातावरण की आवश्यकता

साधना उपासना की महान महत्ता का यह प्रतिपादन भारतीय दर्शन और योग शास्त्रों में पग-पग पर मिलता है। इतने पर भी यह देखा गया है कि कई बार विधि-विधान का पालन करते हुए भी लोग साधना-उपासना के वह लाभ प्राप्त नहीं कर पाते जिनका इस तरह उल्लेख मिलता है। उसका कारण होता है वातावरण का प्रभाव। यह सच है कि अनेक प्राणवान व्यक्ति अपनी तप साधना और संकल्प शक्ति से वातावरण को भी बदल डालते हैं। किन्तु सच यह भी है कि मनुष्य के विकास में वातावरण का प्रभाव बहुत अधिक मात्रा में होता है। साधना-उपासना चूँकि व्यक्ति के संस्कारों से सम्बन्ध रखती है और प्रत्येक वातावरण अच्छे-बुरे संस्कार समाहित रखता है अतएव उच्चस्तरीय साधनाओं में तो स्थान और वातावरण का महत्व निश्चित ही बहुत अधिक होना चाहिए। वातावरण के प्रभाव की सशक्तता का परिचय देने वाले कितने ही विधेयात्मक एवं निषेधात्मक कथा-प्रसंग इतिहास में मिलते हैं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

इतिहास की प्रसिद्ध घटना है कि जब कौरव-पाण्डवों के युद्ध के लिए स्थान चयन की बात आई तो श्री कृष्ण ने एक विशेष दूतनियुक्त किया उसने सर्वत्र युद्ध स्थल की छानबीन की। कुरुक्षेत्र में उसने परस्पर दो सगे भाइयों को युद्ध करते देखा यह घटना उसने श्री कृष्ण को बताई। फलतः यही क्षेत्र युद्ध के लिए चुना गया, क्योंकि उन्हें सन्देह था भावनाशील होने के कारण कहीं अर्जुन युद्ध का परित्याग न कर बैठे। श्रवणकुमार के बारे में भी ऐसी ही कथा प्रख्यात है। वह जब अपने माता-पिता को काँवर में लिए तीर्थाटन करा रहे थे तो एक स्थान ऐसा आया जहाँ उसने न केवल काँवर पटक दी अपितु अपने माता-पिता को कटु शब्द भी कहे। उस देश से आगे निकल जाने के बाद उसे अपने कथन पर भारी पश्चाताप हुआ। इस पर उसके पिता ने सान्त्वना देते हुए समझाया कि इसमें श्रवण का कोई दोष नहीं। यह स्थान मयदानव का था जिसने कभी अपने माता-पिता को यहीं बन्दी बनाकर मृत्यु के घाट उतार दिया था। कुन्ती के बारे में भी ऐसी ही घटना का उल्लेख पुराणों में मिलता है। भूमि के संस्कार एक तथ्य है इसे कोई भी पवित्र जलाशयों, देवमन्दिरों तथा शमशान घाट में जाकर स्वयं अनुभव कर सकता है।

कुल्लू की मिट्टी सेवों के लिये प्रसिद्ध है अच्छी से अच्छी खाद, जल और मौसम पाकर भी वैसे सेब आज तक अन्यत्र कहीं नहीं उगाये जा सके। नागपुर के संतरे और भुसावल के से केले अन्यत्र नहीं मिलते। मुजफ्फरपुर लीचियों के लिए प्रसिद्ध है तो लखनऊ खरबूजों के लिए, मलीहाबाद और बनारस जैसे स्वादिष्ट आम दूसरी जगह कम मिलते हैं। दुधारू गायें सारे देश में मिलती हैं। किन्तु हरियाणा की गायों का कोई मुकाबला नहीं। कोहकाफ जैसा सौन्दर्य सारी दुनिया में उपलब्ध नहीं, तो रूस का ही अजरबेजान क्षेत्र शत जीवन के लिए विश्व विख्यात है। जहाँ १०० वर्ष से पूर्व मृत्यु को वैसा ही आकस्मिक माना जाता है जैसे किसी की दुर्घटना में मृत्यु हो जाये। यह सब वातावरण के प्रभाव और संस्कार हैं। उनसे प्रभावित हुए बिना मनुष्य कभी रह नहीं सकता, आज की परिस्थितियाँ तो वैसे भी सर्वत्र संस्कारविहीन हो गई हैं सो प्रयत्न करते हुए भी कई बार गायत्री उपासनाओं का अभीष्ट प्रतिफल मिल नहीं पाता। हरिद्वार में ब्रह्मवर्चस की स्थापना का उद्देश्य गायत्री की उच्चस्तरीय साधना के इच्छकों के लिये वह सुयोग ही प्राप्त कराना है।

साधना की सफलता में स्थान, क्षेत्र व वातावरण का असाधारण महत्व है। विशिष्ट साधनाओं के लिए घर छोड़कर अन्यत्र उपयुक्त स्थान में जाने की आवश्यकता इसलिए पड़ती है कि पुराने निवास स्थान का ढर्रा अभ्यस्त रहने से वैसी मनःस्थिति बन नहीं पाती जैसी महत्वपूर्ण साधनाओं के लिए विशेष रूप से आवश्यक है। कुटुम्बियों के परिचित लोगों के साथ जुड़े हुए भले-बुरे सम्बन्धों की पकड़ बनी रहती है। कामों का दबाव बना रहता है। राग द्वेष उभरते रहते हैं। दिनचर्या बदलने पर कुटुम्बी तथा साथी विचित्रता अनुभव करते और उसमें विरोध खड़ा करते हैं। आहार और दिनचर्या बदलने में विग्रह उत्पन्न होता है। घरों के निवासी, साथी जिस प्रकृति के होते हैं वैसा ही वातावरण वहाँ छाया रहता है। यह सभी अड़चनें हैं जो महत्वपूर्ण साधनाओं की न तो व्यवस्था बनने देती हैं और न मनःस्थिति ही वैसी रह पाती है। दैनिक नित्य कर्म के रूप में सामान्य उपासना तो घर पर भी चलती रह सकती है, पर यदि कुछ विशेष करना हो तो उसके लिए विशेष स्थान, वातावरण, सान्निध्य एवं मार्गदर्शन भी चाहिए। यह सब प्राप्त करने के लिए उसके लिए उपयुक्त स्थान का प्रबन्ध करना वह आधार है जिस पर सफलता बहुत कुछ निर्भर रहती है।

मनुष्य के प्रयत्न-पुरुषार्थ का अपना महत्व है, पर यह भी सच है कि वातावरण का प्रभाव उस पर असाधारण रूप से पड़ता है। आकृति और प्रकृति दोनों के ही गढ़ने में वातावरण का महत्वपूर्ण योगदान होता है। ठण्डे देशों के निवासी गोरे रंग के सुदृढ़ और दीर्घजीवी होते हैं। जहाँ गर्मी अधिक पड़ती है, वहाँ के मनुष्य के स्वास्थ गिरने तथा शरीर दुर्बल एवं काले पाये जाते हैं। पशुओं के ऊपर भी यह प्रभाव देखा जाता है। कच्छ, हरियाणा, नागौर आदि क्षेत्रों के गाय, बैल कितने, दुधारू कितने परिश्रमी होते हैं, यह सर्वविदित है। बंगाल और दक्षिणी बिहार में जन्मने गाय बैल अपेक्षाकृत अधिक दुर्बल होते हैं, इसमें नस्ल का उतना श्रेय दोष नहीं जितना कि जलवायु का होता है। उपरोक्त स्थानों के इन पशुओं के स्थान, क्षेत्र यदि बदल दिए जायें तो नस्ल में भी अन्तर पड़ता चला जाता है। यही बात वनस्पतियों के सम्बन्ध में भी है। जड़ीबूटियाँ वही हैं, पर विभिन्न क्षेत्रों में उगाये जाने पर उनके गुणों में न्यूनाधिकता उत्पन्न हो जाती है। हिमालय क्षेत्र के गंगा तट पर उगी ब्रह्मी की तुलना में मैदानी क्षेत्रों में नदियों के किनारे उगी मण्डूकपर्णी के गुणों में भारी अन्तर आ जाता है। अन्यान्य जड़ीबूटियों के सम्बन्ध में भी यही बात है।

विभिन्न प्रकार के फल भी अपनी क्षेत्रीय विशेषताओं के कारण प्रसिद्ध होते हैं। नागपुर क्षेत्र के संतरे, भुसावल के केले, लखनऊ के आस-पास के आम, खरबूजे प्रख्यात हैं। कश्मीर के सेबों की अपनी अलग विशेषता होती है। मैसूर के जंगलों में उगे चंदन वृक्ष अधिक सुगन्धित होते हैं। अन्नादि के गुण स्वभावों में भी वातावरण की भिन्नता के कारण भारी अन्तर देखा जाता है। पंजाब का गेहूँ अन्य प्रांतों की तुलना में कहीं अधिक उत्तम होता है।

मनुष्यों के शरीरों में ही नहीं स्वभावों में भी क्षेत्रीय विशेषताओं के अनुरूप अन्तर पाया जाता है। यों तो मनुष्य स्वतन्त्र और समर्थ है। वह अपनी संकल्प शक्ति के बल से परम्परागत सभी दबाबों को बदल सकने में सैद्धान्तिक दृष्टि से पूर्णतया सक्षम है, पर व्यावहारिक स्तर पर देखा यह जाता है कि वातावरण अपने प्रभाव से उस क्षेत्र के मनुष्यों को ढालता चला जाता है। व्यक्ति की मौलिक विशेषता को मान्यता देते हुए भी यह स्वीकार करना ही होगा कि समाज का बहुसंख्यक वर्ग विचारपूर्ण नहीं वातावरण के प्रभाव में जीवनयापन करता है। जातियों और वंशों में भी केई प्रकार की अपनी-अपनी विशेषता पायी जाती है। ब्राह्मण में धार्मिकता, क्षेत्रीय में अक्खड़ता, वैश्य में अर्थदृष्टि, शिल्पकारों में क्रिया कुशलता जैसी विशेषतायें दूसरों की अपेक्षा कुछ अधिक मात्रा में पायी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

जाती हैं। कायस्थ वर्ग में शिक्षा का बाहुल्य पाया जाता है। पिछड़े वर्ग में अशिक्षा, अस्वच्छता, अशिष्टता पायी जाती है। कुछ समाजों में चोरी, उठाईगीरी की आदत जातीय विशेषता के रूप में मिली होती है। कुछ कायरता और मूर्खता के बदनाम हैं। स्वभावगत इन भिन्नताओं के कारणों की खोज करने पर एक ही तत्व सामने आता है कि अमुक प्रकार के वातावरण में रहने का अवसर मिलता हैं जिससे उसी के अनुरूप विशेषतायें उनमें विकसित हो जाती हैं।

जंगली जातियों में चित्र-विचित्र रिवाज पाये जाते हैं। उनके स्वभाव और अभ्यास भी अपने ढंग के होते हैं। सुधारकों के सुधार प्रयास उसमें परिवर्तन लाने में समर्थ नहीं हो पाते, क्योंकि उनके चारों ओर घिरा वातावरण उन्हें यत्किंचित सुधार स्वीकार करने की ही छूट देता है। परिवर्तन के लिए वातावरण बदलना आवश्यक है। कितने ही अफ्रीकी नीग्रो बहुत समय से अमेरिका में बस गये हैं। उनकी प्रकृति में भारी अन्तर आ गया है। अब अमेरिकी नीग्रो भी प्रायः अमेरिकी गोरों के स्तर का ही जीवनयापन करते हैं। उत्तरी ध्रुव एस्किमो जाति के बहुत से व्यक्ति कनाडा में आ बसे हैं। उनमें आश्चर्यजनक अन्तर आ गया है। इसी प्रकार अन्यान्य देशों में जा बसने वाले अपने मूल देश की अपेक्षा नई परिस्थितियों में नये ढंग से बदलते देखे जाते हैं। कोई-कोई अपवाद ही ऐसे होते हैं जो वातावरण के दवाब से अपने को बचाये रखते हैं तथा अपनी मौलिक विशेषताओं को अक्षुण्ण रखते हैं अन्यथा अधिकांश तो परिस्थितियों के अनुरूप ढलते-बदलते रहते हैं।

सामान्य स्तर का कोई कार्य सामान्य वातावरण में भी किया जा सकता है, पर विशिष्ट स्तर का कार्य करना हो तो उपयुक्त वातावरण की ही खोज-बीन करनी पड़ती है। जहाँ फोटोग्राफिक फिल्में बनायी जाती हैं उस फैक्ट्री में तापमान को एक निश्चित मर्यादा में ही रखना पड़ता है। यदि इसकी उपेक्षा की जाये तो सारे साधनों के रहते हुए भी अच्छी फिल्में बनाना सम्भव नहीं हो सकता। स्वास्थ्य के लिए कुछ पर्वतीय क्षेत्र बहुत ही उपयोगी माने जाते हैं। विशिष्ट रोगियों को, दुर्बल व्यक्तियों को विशिष्ट सेनिटोरियमों में रहने का प्रबन्ध किया जाता है।

निश्चित ही साधना के उच्चस्तरीय आध्यात्मिक प्रयोगों के लिए भारत के हिमालय क्षेत्र को अद्वितीय गौरव प्राप्त है। यह क्षेत्र ऋषि, योगियों की भूमि मानी जाती रही है। उच्च आध्यात्मिक प्रयोग इसी क्षेत्र में अनादि काल से होते चले आ रहे हैं। ऋषि भूमि-देव भूमि के रूप में यह वन्दनीय रहा है। आयुर्वेद, रसायन विद्या, साहित्य सृजन, योगानुसंधान जैसे महत्वपूर्ण प्रयोग हिमालय क्षेत्र की सुविस्तृत प्रयोगशाला में समय-समय पर होते रहे हैं। सप्तऋषियों के महा-मनीषी देव मानवों के कार्यक्षेत्र इसी भूमि में रहे हैं। छात्रों के लिए गुरुकुल श्रेयार्थियों के लिए आरण्यक यहीं थे। राजतन्त्रों के सूत्र-संचालक वशिष्ठ जैसे धर्माध्यक्षों और विश्वामित्र जैस तपस्वी साधकों की तप स्थली इसी भूमि में थी। दिव्यदर्शियों का कथन है कि 'ब्रह्माण्ड की सघन अध्यात्म चेतना' का धरती पर विशिष्ट अवतरण इसी क्षेत्र में होता रहा है। भौतिक शक्तियों के धरती पर अवतरण का केन्द्र-बिन्दु विज्ञान जगत ने ध्रुव-प्रदेश को माना है। अध्यात्म क्षेत्र में वैसी ही मान्यता हिमालय के सम्बन्ध में है। यह क्षेत्र ब्रह्माण्डव्यापी दिव्य चेतना का अवतरण केन्द्र है, जहाँ शोध करते हुए, तप करते हुए, मनीषी साधक गण अपने को देव शक्तियों से सुसम्पन्न करते थे। अभी भी इस क्षेत्र में सारी सूक्ष्म विशेषतायें प्रचुर परिणाम में विद्यमान हैं जो आत्मिक प्रगति के सहयोग के लिए आवश्यक हैं। आत्मसाधना के लिए यह शीत प्रदेश उपयुक्त है, साथ ही जलवायु की दृष्टि से आरोग्यवर्द्धक भी। गंगाजल को वैज्ञानिकों ने दिव्य औषधियों का सम्मिश्रण माना है। ऐसी मान्यता है कि मात्र गंगाजल के सेवन से ही कितनी बीमारियों का उपचार अपने आप हो जाता है।

योगियों, तपस्वियों ने उग्र तपश्चर्याएँ इस क्षेत्र में की हैं जिसके कारण इस वातावरण में विशिष्ट अध्यात्म तत्वों की भरमार है। इस वातावरण में पहुँचने पर मन में अनायास ही-सात्विक-विचारणा, पवित्र भावनाएँ उमड़ने लगती हैं। आज के गये-गुजरे जमाने में भी इस क्षेत्र में सतयुगी वातावरण के दृश्य देखे जाते हैं। ऐसा लगता है कि चारों ओर के संव्याप्त कुलषित वातावरण से यह क्षेत्र अभी भी अछूता है।

सामान्यतया जिस वातावरण में अन्य लोग रहते हैं उसमें विक्षोभकारी तत्वों का बाहुल्य है। साधना-उपासना के विधि-विधान और मर्यादाओं का परिपालन करते हुए भी अभीष्ट लाभ नहीं मिल पाता। विषाक्त वातावरण का असाधारण प्रभाव पड़ता है। साथ ही परिवार समाज के जिस परिवेश में मनुष्य रहता है उसके संस्कार भी बने रहते हैं। फलस्वरूप मन को जबरन उन संस्कारों से मुक्त कर पाना कठिन पड़ता है। ऐसी स्थिति में, साधना का उच्चस्तरीय लाभ उठाने की दृष्टि से आवश्यक होता है कि सदा के लिए न सही, तो कुछ समय के लिए ऐसे सात्विक वातावरण में रहकर साधना की जाये, जहाँ से अभीष्ट परिमाण में आत्मिक ऊर्जा जुटायी जा सके। कहना न होगा इस दृष्टि से हिमालय का उत्तराखण्ड सर्वश्रेष्ठ है।

साधना के लिए सदैव उपयुक्त वातावरण की अपेक्षा रहती है। साधक की आन्तरिक मनःस्थिति एवं बाह्य परिस्थिति का अपना प्रभाव होता है, उससे वातावरण बनता है और प्रवाह-प्रभाव उत्पन्न होता है। आत्मोत्कर्ष के लिए की जाने वाली साधनाओं में तो उपयुक्त वातावरण की अत्यधिक आवश्यकता रहती है। वैज्ञानिक, साहित्यकार, कवि, कलाकार, शोधकर्त्ता, विद्यार्थी आदि बुद्धिकर्मियों के लिए एकाग्रतापूर्वक अपने काम करने पड़ते हैं इसके लिए उन्हें विक्षोभ रहित एकान्त चाहिए। ठीक इसी स्तर का अति महत्त्वपूर्ण कार्य आत्मनिर्माण एवं आत्म-परिष्कार का भी है। इसके लिए वातावरण की अनुकूलता चाहिए। विक्षोभकारी वातावरण में कर्मकाण्ड तो हो सकते हैं। एक निष्ठा नहीं निभ पाती। क्षण-क्षण में सामने आने वाली समस्याएँ, आवश्यकताएँ एवं हलचलें एकाग्रता में विक्षेप उत्पन्न करती हैं और आधे-अधूरे मन से किये हुए साधनाकृत अभीष्ट प्रतिफल उत्पन्न कर सकने में सफल हो नहीं पाते। अस्तु यह आवश्यकता सदा से अनुभव की जाती रही है कि आत्मोत्कर्ष की साधनाओं की क्रिया-प्रक्रिया पूर्ण करने के

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

लिए उपयुक्त वातावरण भी तलाश किया जाये। इस दृष्टि से देव संस्कृति में हिमालय की महत्ता का आदिकाल से गुणगान होता आया है।

सफल साधकों ने जहाँ उपयोगी विधि-विधान अपनाये हैं। उपयुक्त मार्गदर्शन प्राप्त किये गये हैं वहाँ उनने इसके लिए उपयुक्त वातावरण भी तलाश किया है। साधना विज्ञान के इतिहास पर दृष्टि डालते हैं तो पता चलता है कि सफल साधकों में से अधिकांश ने हिमालय में डेरा डाला और वहाँ अपना निर्माण कार्य सम्पन्न किया है। इसके कितने ही कारण रहे हैं। सामान्य धरातल से ऊँचे स्थानों का वायुमण्डल शीतल रहता है। सर्वविदित है कि नीचे स्थानों में गर्मी भी अधिक रहती है और ऊपर से गिरने वाले अवांछनीय रज-कण भी अधिक जमते हैं। इस धूलि के साथ धुँआ जैसे प्रदूषण और विक्षोभकारी विचार भी उतरते बरसते हैं। गर्मी में फैलाव की शक्ति रहती है। इसके सम्पर्क में जो भी आवेगा फैलेगा। नीचे और गर्म स्थानों की अपेक्षा ऊँचे और शीतल स्थान न केवल स्वास्थ्य सम्वर्द्धन के लिए उपयुक्त माने जाते हैं, वरन् उनमें मानसिक स्वास्थ्य, सन्तुलन बढ़ाने की क्षमता भी रहती है। गर्मी के दिनों में साधन सम्पन्न लोग ऐसे लाभ पाने के लिए नैनीताल, मंसूरी काश्मीर आदि स्थानों में अपने रहने की व्यवस्था बनाते हैं।

साधना के लिए भी ऐसे स्थान तलाश किये जाते हैं। आत्मिक स्वास्थ्य सम्वर्द्धन के लिए भी उपयोगी वातावरण मिल सके तो उसका विशेष लाभ होता है। तपस्वी पर्वतों की गुफाओं में निवास करने, कंदमूल जुटाने, वल्कल वस्त्र पहनने जैसे निर्वाह के साधन ढूँढ़ लेते हैं। धूनी जलाकर शीत निवारण की—लौकी, नारियल आदि के बर्तनों की—घास की चटाई बनाने की जैसी सुविधाएँ वहाँ भी मिल जाती हैं। तप-साधना के इतिहास में हिमालय की ऊँचाई और गंगातट की पवित्रता का लाभ उठाने वाले साधकों की संख्या अत्यधिक है। ऐतिहासिक तीर्थ तो अन्यत्र भी हैं पर आत्मसाधना के तीर्थों की संख्या जितनी इस क्षेत्र में है उतनी अन्यत्र कहीं नहीं।

जहाँ जिस स्तर के व्यक्ति रहते हैं—जहाँ जिस प्रकार की हलचलें होती रहती हैं वहाँ के सूक्ष्म संस्कार भी वैसे ही बन जाते हैं और वे बहुत समय तक अपना प्रभाव बनाये रहते हैं। तपस्वियों का प्राण उनके निवास स्थान के इर्द-गिर्द छाया रहता है। सिंह और गाय एक साथ ऋषि आश्रमों में प्रेमपूर्वक रहते थे। हिरन तथा दूसरे पशु-पक्षी वहाँ निर्भयतापूर्वक पालतू बन जाते थे। ऐसे वातावरण में सहज ही मानसिक विक्षोभ शान्त होते हैं और साधना के उपयुक्त मनःस्थिति स्वतः बन जाती है। इस दृष्टि से हिमालय की महत्ता असंदिग्ध है।

यह सब भली-भाँति जानते हैं कि देव संस्कृति ऋषि संस्कृति का उद्भव इसी ब्रह्मावर्त में हुआ जो हिमालय क्षेत्र में स्थित है। संस्कृति का प्रकाश यहीं से सारे विश्व में पहुँचा। श्री मद्भागवत के बारहवें स्कन्ध में दूसरे अध्याय के तीसरे श्लोक में हिमालय में दिव्य सिद्ध पुरुषों का निवास बताया गया है और उनके समवेत होने के केन्द्र को कलाप कहा गया है। १०वें स्कन्ध के ८७वें अध्याय के ५, ६, ७ श्लोकों में भी ऐसा ही वर्णन है। थियोसाफी सम्प्रदाय के क्षेत्र में सिद्ध पुरुषों की पार्लियामेण्ट वहाँ होने और अध्यात्म क्षेत्र के महत्त्वपूर्ण फैसले होते रहने की बात कही गयी है। 'आटोबायोग्राफी ऑफ योगी' ग्रन्थ में ऐसे अनेक प्रसंगों का उल्लेख है जिसमें हिमालय के सिद्धयोगियों के विलक्षण कर्तृत्वों का विवरण है। पाल ब्रिंटन, और रम्पा जैसे शोधकर्त्ताओं ने इस क्षेत्र में समर्थ सिद्ध पुरुषों का अस्तित्व पाया है। दो सौ वर्ष जीवित रहने वाले स्वामी कृष्णाश्रय ने हिन्दू विश्वविद्यालय की आधार शिला रखी थी। वे नग्न अवधूत की तरह हिम प्रदेश में निवास निर्वाह करते थे। जिन लोगों को भी ऐसे शरीरधारी और अशरीरी सिद्ध पुरुषों के साक्षात्कार यहाँ होते रहते हैं, जिनके उनके साथ सम्पर्क सधे हैं उनमें परम पूज्य गुरुदेव को सब भली प्रकार जानते हैं।

हिमालय में छोटे-बड़े जितने देवस्थान हैं उतने अन्यत्र मिलने कठिन हैं। अमरनाथ, ज्वालामुखी, हरिद्वार केदारनाथ, बद्रीनाथ, गंगोत्री, पशुपतिनाथ तो प्रख्यात हैं ही। इनके समीपवर्ती क्षेत्रों में छोटे-छोटे तीर्थों की तो श्रृंखला ही बिखरी पड़ी है। ऋषिकेश से बदीनाथ जाने के मार्ग में ही देव प्रयाग, नन्द प्रयाग, कर्ण प्रयाग आदि कितने ही प्रयाग तथा उत्तर काशी, गुप्त काशी, दिव्य काशी आदि कितने ही तीर्थ मिलते हैं। शिव और शक्ति के विभिन्न काम रूपों के देवस्थान थोड़ी-थोड़ी दूर पर ग्रामों के समीप एवं पर्वतीय घाटियों में सर्वत्र पाये जाते हैं। सती के आत्मविसर्जन का, पार्वती की तप साधना का यही स्थान है। शिव ताण्डव भी यहीं हुआ था। उस अवसर पर प्रयुक्त त्रिशूल उत्तरकाशी के एक प्राचीन स्थान में स्थापित बताया जाता है। जमदग्नि और परशुराम की तप-साधना उत्तरकाशी में सम्पन्न हुई थी।

इन्द्र देवता की सहायता के लिए दशरथ जी अपना रथ लेकर गये थे। पहिया गड़बड़ाने लगा तो कैकेयी ने अपने अँगुली लगाकर विपत्ति का समाधान किया था। ठीक इसी प्रकार एक और वर्णन यह मिलता है कि अर्जुन इन्द्र की सहायता करने गये थे, प्रसन्न होकर इन्द्र ने अर्जुन को रूपसी उर्वशी का उपहार दिया था जिसे उसने अस्वीकार कर दिया था। जहाँ मनुष्यों का आवागमन सम्भव हो सके ऐसा स्वर्ग धरती पर ही हो सकता है। इन्द्र और चन्द्र देवताओं का गौतम ऋषि की पत्नी अहिल्या से छल करना धरती पर ही सम्भव है। दधीचि ने अपने अस्थियाँ याचक देवताओं को प्रदान की थीं आदि-आदि अगणित उपाख्यान ऐसे हैं जिसमें देवताओं और मनुष्यों के पारस्परिक घनिष्ठ सहयोग की चर्चा है। इन पर विवेचनात्मक दृष्टि से विचार करें तो उसी निष्कर्ष पर पहुँचना पड़ता है कि स्वर्ग कहीं भूमि पर ही होना चाहिए और 'देवता' मनुष्यों का कोई वर्ग विशेष ही होना चाहिए। यह क्षेत्र उत्तराखण्ड देवात्मा हिमालय का हृदय क्षेत्र ही है।

प्राचीन काल में देवमानव इसी क्षेत्र में निवास करते रहे हैं। भौतिक और आध्यात्मिक वातावरण उन्हें हर दृष्टि से उपयुक्त लगा होगा और वे यहीं निवास करने लगे होंगे। यहाँ रहकर वे शान्ति चित्त से धर्मतन्त्र की उपलब्धियों से समस्त विश्व को लाभान्वित बनाने की विविध-विधि योजनाएँ बनाते थे, तैयारियाँ करते थे और साधन जुटाते थे। इन कष्टसाध्य

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

महाप्रयासों का नाम ही तप था। तपस्वी देवता एक प्रकार के अध्यात्म विज्ञान के शोधकर्त्ता और विभूति उत्पादक कहे जा सकते हैं। यह क्षेत्र ऐसी वैज्ञानिक प्रयोगशालाओं से भरा पड़ा था जिनमें शरीर यन्त्र और मन तन्त्र के भीतर छिपे हुए शक्तिशाली रहस्यों का अधिकाधिक अनावरण सम्भव हो सके। शास्त्रों का सृजन, योगाभ्यास की उपलब्धियाँ, अध्यात्म दर्शन का विकास, स्वास्थ्य, चिकित्सा, शिक्षाशास्त्र, रसायन, शिल्प कला आदि की भौतिक और आध्यात्मिक उपलब्धियाँ इसी क्षेत्र से निकल कर आती थीं और उनसे लाभान्वित होने वाले उसे स्वर्ग निवासी देवताओं का वरदान कहकर अपनी श्रद्धा व्यक्त करते थे।

देवार्चन हर मनुष्य का कर्त्तव्य था ताकि उस क्षेत्र में किसी प्रकार का अभाव अनुभव न हो। गीता में यज्ञ से देवताओं की पुष्टि की बात कही गई है, इसे सर्वसाधारण द्वारा देव प्रयोजनों के लिए विविध-विधि अनुदान प्रस्तुत करना ही समझा जाना चाहिए। यज्ञ का सीधा अर्थ दान, त्याग एवं बलिदान है। देव प्रयोजनों के लिए श्रम, समय, मन, धन आदि से सहयोग करते रहना है। "यज्ञ से पूजित देवतागण मनुष्यों पर सुख-शान्ति बरसाते हैं और यज्ञ न करने वाले विपत्ति में फँसते हैं।" इस गीता वचन में सामान्य प्रजाजनों को, देव वर्ग को, देव कर्म को, समुचित सहयोग प्रदान करते रहने की अनिवार्य आवश्यकता का उद्बोधन कराता है। यह देवता और कोई नहीं—उस समय स्वर्ग क्षेत्र में निवास करके धर्म प्रेरणा के—भावनात्मक परिस्कार के विविध-विधि आधारों का निर्माण करने वाले महामानव ही थे। समस्त धरती पर स्वर्गीय परिस्थितियों का निर्माण करने के लिए उनका महाप्रयास, जनसाधारण को देव बंदन एवं देव पूजन के लिए अनायास ही प्रेरित करता था।

हिमालय की शोभा का वर्णन करते हुए तत्त्व ज्ञानी कवि कहता है—

देव सेव्यं च तत्स्थानं दैवतानां च दुर्लभम् ।
महापुण्य महोपुण्य पूरषैरवलौकितम् ॥
नैतत् केवलमक्षाणां सदैवल्हादकं मुने ।
सर्वपुण्य महातीर्थमूर्द्ध भूषेति विद्धितम् ॥

यह स्थान देवताओं द्वारा सेवनीय, परम दुर्लभ और महान पुण्यप्रद है। इसका पुण्यात्मा लोग ही अवलोकन करते हैं। हे नारद ! यह स्थान केवल इन्द्रियों को सुख प्रदान करने वाला ही नहीं, किन्तु उसे समस्त महान तीर्थों का शिरोमणि जानो।

हिमालय की छाया-गंगा की गोद और वहाँ का भाव भरा वातावरण-साथ ही यदि शक्तिशाली संरक्षण मार्गदर्शन मिलता हो तो उसे साधना का सुअवसर एवं साधक का सौभाग्य ही माना जाना चाहिए। ऐसे ही वातावरण में निवास करने का स्वर्गीय दिव्य आनन्द प्राप्त करने के लिए राजा भर्तृहरि बेचैन थे। इसके लिए उन्होंने राजपाट का सारा जंजाल त्यागा और योगी का देव जीवन अपनाकर उच्चस्तरीय मनोरथ पूरा करने में सफल हुए। जब तक यह स्थिति न आयी तब तक वे उसी के मनोरम सपने देखते रहे। साधना की दृष्टि से गंगा सान्निध्य महत्त्व शास्त्रकारों ने इस प्रकार बताया है कर्मपुराण में ऋषि कहते हैं।

यत्र गंगा महाभागा स देशस्ततपोवनम् ।
सिद्धक्षेत्रन्तु तज्ज्ञेय गंगातीरं समाश्रितम् ॥

अर्थात्—"जहाँ पर यह महाभागा गंगा है यह देश उसका तपोवन होता है। उसको सिद्ध क्षेत्र जानना चाहिए।"

स्नातानां तत्र पयसि गांगे ये नियतात्मनाम् ।
तुष्टिर्भवति या पुंसां न सा क्रतुशतैरपि ॥

अर्थात्—"गंगा के जल में स्नान किये हुए नियत आत्मावाले पुरुषों की जो तुष्टि होती है वह सौ यज्ञों से भी नहीं होती है।" (पद्म पुराण)

हिमालय को भारतीय संस्कृति का प्रत्यक्ष उद्गम स्रोत कहा जाये, तो इसमें कुछ भी अत्युक्ति न होगी। इतिहासकारों के अनुसार आर्य लोग मध्य एशिया में इसी क्षेत्र में हिमालय क्षेत्र में पहले बसे और इसके उपरान्त भारत के मैदानी प्रदेश में उतरे थे।

स्वर्ग का वर्णन पुराणों में आता है। उसकी प्रायः सूक्ष्म व्याख्या में उदात्त दृष्टिकोण और उत्कृष्ट भाव अभिव्यंजना के रूप में व्याख्या होती है, जो उचित भी है। पर यदि उसका भौगोलिक स्वरूप ढूँढ़ना हो, और सौन्दर्य वातावरण को परखना हो तो वह किसी ग्रह नक्षत्र में नहीं वरन् अपनी धरती पर ही परिलक्षित होता है। उपाख्यानों के आधार पर हिमालय को धरती का स्वर्ग कहा जा सकता है, देवताओं, ऋषियों, तपस्वियों का यह क्रीड़ा प्रांगण है। इसी से भगवान ने गीता में हिमालय को अपना प्रतीक बताया है—'**स्थवरणां हिमालयोहम्**' अर्थात् 'स्थावरों में हिमालय मैं ही हूँ।'

हिमालय देखने भर में निर्जीव पाषाणखण्ड प्रतीत होता है, तात्त्विक दृष्टि से पर्यवेक्षण करने पर वह एक प्रत्यक्ष देव है। जीवन उसके कण-कण में है। हिम की शीतलता अपने दिव्य प्रभाव से उस क्षेत्र में जा पहुँचने वाले प्राणियों के अन्तरंग में प्रवेश करके शान्ति ही प्रदान करती हैं। आत्मसाधना की दृष्टि से इस क्षेत्र का सर्वोपरि महत्त्व प्राचीन काल की तरह अभी भी बना हुआ है और सम्भवतः सदा ही बना रहेगा।

प्राचीन काल में हिमालय क्षेत्रीय स्वर्ग क्षेत्र कहलाता था। देव मानवों की यही भूमि थी। थोयोसोफी वालों की मान्यता है कि अभी भी दिव्य आत्माएँ वहीं निवास करती हैं। चमत्कारों और सिद्धियों की खोज करने वाले प्रत्येक शोधकर्त्ता को हिमालय की कन्दराएँ छाननी पड़ी हैं। हनुमान, अश्वत्थामा आदि चिरंजीवी उसी क्षेत्र में निवास करते हैं। इतिहास साक्षी है कि प्रायः सभी ऋषियों की तपश्चर्याएँ इसी क्षेत्र में सम्पन्न हुई हैं। सप्त ऋषियों की तपोभूमि हरिद्वार के उस स्थान पर थी जहाँ आजकल सप्त सरोवर है। उनके आश्रमों को बचाने के लिए गंगा ने अपनी धारा को सात भागों में बाँटा, यह कथा कई पुराणों में आती है। पाण्डव, धृतराष्ट्र इसी क्षेत्र में तप करते हुए स्वर्ग सिधारे थे। अयोध्या छोड़कर राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न इसी भूमि में तप करते हुए दिवंगत हुए थे। गुरु वशिष्ठ की गुफा यहीं थी। व्यास जी और गणेश जी ने मिलकर १८

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org

पुराण इसी क्षेत्र वसोधारा नामक स्थान में लिखे थे। भगीरथ, परशुराम, विश्वामित्र, दधीचि जैसे परमप्रतापी तपस्वियों की साधना हिमालय में ही सम्पन्न हुई थी।

भगवान राम को चारों भाइयों समेत अपनी विशिष्ट साधना के लिए अयोध्या छोड़कर देव प्रयाग के इर्द गिर्द, गुरु वशिष्ठ के समीप बसना पड़ा था। पाण्डवों की अन्तिम साधना इन्द्रप्रस्थ में नहीं हिमालय में हुई थी और उन लोगों ने यहीं तप साधन करते हुए स्वर्गारोहण किया था। भागीरथ राज-काज चलाते हुए उस स्तर की तपश्चर्या नहीं कर सकते थे जिसके आधार पर गंगोत्री में डेरा डालकर उन्होंने गंगावतरण सम्भव किया। विश्वामित्र राज-काज चलाते हुए गायत्री के दृष्टा ऋषि नहीं बन सकते थे। कण्व ऋषि के आश्रम में पले हुए भरत और वाल्मीकि की कुटी में रहने वाले लव-कुश प्रबल प्रवीण हुए थे। यह लाभ उन्हें किसी होस्टल में रहकर एवं घर की सुख सुविधाओं को भोगते हुए सम्भव नहीं था।

हिमालय शिव का क्षेत्र है। उनका निवास यहीं माना जाता है। उनकी दोनों धर्म पत्नियाँ इसी भूमि में उपजीं। गंगा, यमुना सहित अनेकों पुण्य नदियों का उद्गम यही है भारत की आध्यात्मिक विभूतियों की उत्पादक भूमि यदि हिमालय को माना जाये तो इसमें तनिक भी अत्युक्ति न होगी। इस मूर्तिमान देवता की छाया में बैठकर कितनों ने न जाने क्या-क्या पाया है? अभी भी उसकी वह विशेषता अक्षुण्ण है। जलवायु की दृष्टि से आरोग्य सम्वर्द्धक तत्त्वों की विशेषता से भी यह क्षेत्र अपने देश में सर्वोत्तम है। फिर मानसिक शान्ति और आत्मिक प्रगति के लिए जैसा वातावरण चाहिए वैसा यहाँ सर्वदा उपलब्ध रहता है। ब्राह्मी शिलाजीत, अष्ट वर्ग आदि औषधियाँ अन्यत्र भी पायी, उगाई जा सकती हैं पर हिमालय की भूमि पर जो उगता है उसमें अत्यधिक मात्रा में उपयोगी तत्त्व रहते हैं।

इस गये-गुजरे जमाने में भी इस क्षेत्र में कुछ विशेषताएँ देखी पायी जाती हैं। तीर्थयात्रियों-पर्यटकों की भीड़-भाड़ के साथ अवांछनीय तत्त्वों की घुसपैठ के बावजूद इस क्षेत्र में आज भी देश के अन्य हिस्सों की अपेक्षा ईमानदारी, सदाशयता, सद्भावना और सज्जनता की सत्प्रवृत्तियाँ अधिक सघनता से विद्यमान है। पैदल यात्रियों का बोझ ढोने पहाड़ी कुली प्रायः छल या विश्वासघात करते नहीं देखे जाते।

ये कुछ विशिष्ट उदाहरण हैं, जो हिमालय क्षेत्र की आध्यात्मिक विशेषताओं का संकेत करने में समर्थ हैं। हिमालय पिता की पुण्य छाया अनादिकाल से अध्यात्म-साधकों का प्रिय क्षेत्र रही है और विशिष्ट साधनाओं के निमित्त प्रायः सभी साधक महापुरुष कुछ अवधि के लिए इस वरदानी महिमामयी छाया में आते और कृतकृत्य होकर लौटते रहे हैं। अवतारी पुरुषों राम, कृष्ण, परशुराम आदि के साधना स्थल इसी क्षेत्र में हैं। ऋषियों का तो यह सनातन निवास है। अन्तर्राष्ट्रीय धार्मिक संगठन थियोसॉफिकल सोसाइटी वाले भी ऋषियों (मास्टर्स) का स्थान इसी क्षेत्र को मानते हैं।

जो हो, यहाँ कहना इतना भर है कि प्राचीन काल में देवताओं, ऋषियों, तत्त्वेत्ताओं और तपस्वी साधकों का यह स्थान कर्मक्षेत्र रहा है। उनके सूक्ष्म संस्कार अभी भी इस क्षेत्र में अतिरिक्त रूप से पाये जाते हैं और साधना के लिए अन्यत्र की अपेक्षा यहाँ अधिक अनुकूलता रहती है।

हिमालय की छाया, गंगा की गोद में ब्रह्मवर्चस साधना

साधना में उपयुक्त वातावरण का महत्त्व अत्यधिक माना गया है। अस्त-व्यस्त मनःस्थिति और अनुपयुक्त परिस्थिति में रहते हुए पूजा-पाठ का सुव्यवस्थित क्रम बनता ही नहीं। विक्षोभ भरे वातावरण और प्रपंची जंजाल में उलझे रहने के कारण मन को न तो एकाग्र होने का अवसर मिलता है न श्रद्धा सम्वर्द्धन के लिए आवश्यक शान्ति प्राप्त करने की सम्भावना बनती है। ऐसी दशा में चिह्न पूजा के रूप में की गई उपासना भी ऐसे ही अस्त-व्यस्त बनी रहती है। उसका वैसा प्रतिफल मिलता नहीं जैसा कि शास्त्रकारों ने बताया और सच्चे अर्थों में साधना करने वालों ने पाया है। इस असफलता का कारण है साधना के लिए उपयुक्त वातावरण का अभाव। यदि उसकी व्यवस्था बन सके तो आज भी इन प्रतिपादनों को सही पाया जा सकता है, जो साधना में सिद्धि मिलने के रूप में जाने और माने जाते रहे हैं।

सामान्य घर-गृहस्थी में भी प्रयत्न यही किया जाता है कि पूजा-पाठ के लिए एक अतिरिक्त कक्ष रहे। उसमें सांसारिक प्रवृत्तियाँ न हों। एकान्त का तात्पर्य ही उद्विग्नता उत्पन्न करने वाली हलचलों से रहित स्थान है। घरों में जहाँ ऐसा स्थान होता है वहाँ साधना में मन भी लगता है और उसका उपयुक्त प्रतिफल भी मिलता है। जहाँ उसकी जितनी कमी रहती है वहाँ मन उतना ही उचटता है और वैसी ही कमी सफलता में रह जाती है। जिन घरों में स्थान नहीं होते वे प्रयत्न करते हैं कि किसी समीपवर्ती देवालय, उद्यान आदि शान्त स्थान को ढूँढ़ वहाँ जाकर अपना उपासना कृत्य सम्पन्न करें। विशिष्ट अनुष्ठानों में तो यह प्रयत्न विशेष रूप से किया जाता है। जिन्हें उपयुक्त और अनुकूल स्थान मिल जाता है उन्हें साधना काल में शान्ति भी रहती है और सफलता भी मिलती है।

मनुष्य जहाँ भी रहता है वहाँ का वातावरण उसे प्रभावित करता है। सत्संग मात्र कथन, श्रवण को ही नहीं कहते वरन् उसमें उत्कृष्टता के साथ सघन सम्पर्क होने का भाव है। सत्संग किसी वाचाल से करने पर विचार-विनिमय हो सकता है पर आस्थाओं को प्रभावित परिष्कृत करने के लिए जिस सत्संग की आवश्यकता है उसके लिए परिष्कृत एवं प्रखर व्यक्तित्व चाहिए। उत्कर्ष और अभ्युदय का लाभ उन्हीं के सान्निध्य से होता है। भले ही वे कम वार्तालाप करें। सत्संग का दूसरा आधार है—वातावरण। वातावरण का अर्थ है—स्थान विशेष की परम्परा और गतिविधियों का समन्वय। वातावरण में भी प्रतिभाशाली व्यक्तियों जैसी क्षमता होती है। खाद पानी के मिलने से साधन की सफलता निश्चित हो जाती है। यों भजन भाव कहीं भी किया जा सकता है। उसमें रोकथाम नहीं है। पर मौसम प्रतिकूल होने पर जिस प्रकार पौधे की आवश्यक देखभाल करने के उपरान्त भी वे नहीं फलते-फूलते। उसी प्रकार साधना का विधि विधान उपयुक्त वातावरण की अपेक्षा रखता है। अस्तु साधना का महत्त्व समझने वाले मात्र निर्धारित

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कर्मकाण्ड को ही सब कुछ नहीं मान लेते वरन् उपयुक्त वातावरण भी खोज लेते हैं।

दैनिक उपासना कृत्य तो घर-गृहस्थी के बीच ही चलाना पड़ता है किन्तु उच्चस्तरीय साधना के लिए समय निकालने और साधन जुटाने भर के काम नहीं चलता, वरन् उसके लिए ऐसी अनुकूलता भी ढूँढ़नी पड़ती है जहाँ अभ्यस्त ढर्रे से हटकर उपयुक्त चिन्तन और आचरण में अनायास ही रहना पड़े। आदतों की जड़ें तो अन्तर्मन में रहती हैं, पर उन्हें पोषण वातावरण से मिलता है। हेय परिस्थितियों से दुश्चिन्तन बढ़ता और आचरण गिरता है। अस्तु साधक को जहाँ आत्मविश्वास के साथ आत्म परिष्कार के लिए प्रयत्न करना पड़ता है वहाँ दूसरा उपाय यह भी अपनाना पड़ता है कि उपयुक्त वातावरण के दबाव से सत्प्रवृत्तियों का सम्वर्धन सहज स्वभाव होता रहे। इसी उपक्रम में उन दुष्प्रवृत्तियों का शमन भी हो जाता है जो अभ्यस्त ढर्रे का समर्थन पाकर न हटने का नाम लेती है और न घटने का। विक्षोभकारी वातावरण में कर्मकाण्ड तो हो सकते हैं। एक निष्ठा नहीं निभ पाती। क्षण-क्षण में सामने आने वाली समस्याएँ, आवश्यकताएँ एवं हलचलें एकाग्रता में विक्षेप उत्पन्न करती हैं और आधे-अधूरे मन से किये हुए साधनाकृत अभीष्ट प्रतिफल उत्पन्न कर सकने में सफल हो नहीं पाते। अस्तु यह आवश्यकता सदा से अनुभव की जाती रही है कि आत्मोत्कर्ष का—साधनाओं की क्रिया-प्रक्रिया पूर्ण के लिए उपयुक्त वातावरण भी तलाश किया जाये।

आज प्राचीन काल जैसे तपस्वी नहीं रहे और वह क्षेत्र भी उस स्तर का नहीं रहा। यहाँ भी औद्योगिक प्रवृत्तियाँ तेजी से बढ़ रही हैं तो भी वातावरण में वैसी भावनात्मक विशेषता अभी मिल सकती है जैसी अन्यत्र कदाचित ही कहीं देखने को मिले। अभी भी हिमालय के क्षेत्र में अपराधों की संख्या तुलनात्मक दृष्टि से नगण्य है। लोग बिना ताला बन्द किये मात्र साँकल लगा कर चले जाते हैं और कई-कई दिन बाद आने पर भी अपना सामान जहाँ का तहाँ पाते हैं। तीर्थयात्रियों का बोझ ढोने वाले पहाड़ी कुली मीलों आगे चले जाते हैं, पर कभी किसी को अपना सामान कम होने की शिकायत नहीं करनी पड़ती। ठण्डा प्रदेश होने और नस्ल की विशेषता से इस क्षेत्र के नर-नारियों का रंग-रूप अन्यत्र की अपेक्षा आकर्षक है। मन चले परदेशी भी इस क्षेत्र में बहुत आते हैं। गरीबी भी बहुत है। इतना होते हुए भी व्यभिचार की घटनाएँ सुनने में नहीं आतीं। शान्त-शालीन कठोर श्रम साध्य और सन्तोषी जीवन-क्रम का अद्भुत समन्वय यहाँ देखा जाता है। एक आश्चर्यजनक प्रथा इस क्षेत्र में पाई जाती है कि कई भाइयों की सम्मिलित एक पत्नी होती है किन्तु इस प्रसंग को लेकर कभी उनमें ईर्ष्या-द्वेष उत्पन्न नहीं होता। सहकारी दाम्पत्य-जीवन भी प्रेमपूर्वक निभ सकता है। इसका प्रमाण हिमालय के जौनसार बावर आदि क्षेत्रों में भ्रमण करके कोई भी देख सकता है। निर्धन और अशिक्षित सामान्य जनजीवन में इतनी उत्कृष्टता अभी भी सन् १९७६ में भी देखी जा सकती है तो वहाँ प्राचीन काल में कितनी ऊँची स्थिति रही होगी और अभी भी इस क्षेत्र के उच्च स्तरीय लोगों का स्तर क्या हो सकता है ? इसका अनुमान लगा सकना कुछ कठिन नहीं होना चाहिए, वातावरण की इस प्राकृतिक विशेषता और तपस्वियों की आत्मिक ऊर्जा से भरे वातावरण को देखते हुए यह स्थल यदि साधना के लिए उपयुक्त माना जाता रहा है तो यह मान्यता उचित ही थी।

पाण्डवों ने अपना अन्तिम काल इसी क्षेत्र में पूरा किया था। कृष्ण बद्रीनाथ में बारह वर्ष तप करते रहे थे। राम ने देव प्रयाग में, लक्ष्मण ने लक्ष्मण झूला में, भरत ने ऋषिकेश में और शत्रुघ्न ने मुनि की रेती में अपने तप कुटीर बनाये थे और जीवन का अन्तिम समय इसी क्षेत्र में पूर्ण किया था। सोतों ऋषियों के आश्रम इसी क्षेत्र में थे। भागीरथ तप यहीं पूर्ण हुआ था। अब से दस वर्ष पूर्व अखण्डज्योति में एक विवेचनात्मक लेख लिखा गया था जिसमें इन्द्र आदि देवताओं का निवास एवं स्वर्ग प्रदेश इसी क्षेत्र में होना सिद्ध किया गया था। कैलाश एवं सुमेरु पर्वत देवताओं के निवास स्थल थे। नन्दन वन इधर ही है। स्वर्ग चर्चा से सम्बन्धित अनेक प्रमाण इधर मिलते हैं। मध्य एशिया से आर्यों का भारत प्रवेश हिमालय मार्ग से होना और उनका तिब्बत से नीचे उतरकर डेरा डालना प्रायः इतिहासवेत्ताओं द्वारा कहा जाता है। यह मान्यता भी देवमानवों की राजधानी इस क्षेत्र में होने की संगति बनती है। जो हो, यहाँ कहना इतना भर है कि प्राचीन काल में देवताओं, ऋषियों, तत्त्ववेत्ताओं और तपस्वी साधकों का यह स्थान कर्म क्षेत्र रहा है। उनके सूक्ष्म संस्कार अभी भी इस क्षेत्र में अतिरिक्त रूप से पाये जाते हैं और साधना के लिए अन्यत्र की अपेक्षा यहाँ अधिक अनुकूलता रहती है।

शान्तिकुंज के लिए हरिद्वार का सप्त सरोवर स्थान बहुत ही समझ-बूझकर चुना गया था। हरिद्वार हिमालय का प्रवेश द्वार है। शिव शक्ति सती का अवसान—पार्वती का जन्म और तप यहीं सम्पन्न हुआ था। सप्तपुरी प्रसिद्ध है। उनमें से एक मायापुरी—हरिद्वार भी है। गंगा की सात धाराओं के पुण्य क्षेत्र के बारे में इतिहास यह है कि सप्तऋषि यहाँ तप करते थे। गङ्गा अवतरित हुई तो उन्होंने ऋषि आश्रमों को बिना किसी प्रकार की क्षति पहुँचाये अपना रास्ता बना लिया और सात भागों में विभक्त होकर इस क्षेत्र से आगे चली गई। अभी भी धाराओं के विभाजन का अद्भुत दृश्य यहाँ विद्यमान है। शान्तिकुंज की भूमि जहाँ है वहाँ अब से एक सौ वर्ष पूर्व गंगा की धार बहती थी। भूमि को बचाने के लिए सरकारी बाँध बना, धारा का विस्तार सीमित हुआ और जिस भूमि पर शान्तिकुंज बना है वह क्षेत्र कृषि योग्य बना दिया गया। प्रकारान्तर से इसी बात को यों भी कहा जा सकता है कि गंगावतरण के सतयुग काल से लेकर अब से सौ वर्ष पूर्व तक शान्तिकुंज की भूमि पर गंगा की धारा प्रवाहित होती रही है। अब भी यहाँ के कुँओं का पानी गंगा के पानी बढ़ने, उतरने के क्रम से नीचा-ऊँचा होता रहता है। बालू की एक हलकी-सी परत ही गंगा की मूल धारा और इस भूमि में थोड़ा-सा दृश्य अन्तर प्रस्तुत करती है। जलधारा तो सर्वथा एक ही है। गंगा की बालू और गोल पत्थरों से ही यह भूमि पटी पड़ी है। मूल धारा भी मात्र दो फर्लांग की दूरी पर है और आश्रम की भूमि से उसके दर्शन भली प्रकार किये जा सकते हैं। प्रवेश दिशा को

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

छोड़कर तीनों ओर हिमालय के दिव्य दर्शन होते हैं। थोड़ा ऊँचे चढ़कर दुर्बीन से देखा जाये तो हिमाच्छादित चोटियाँ आसानी से देखी जा सकती हैं।

गंगा का गर्भ, हिमालय का छत्र और सप्तऋषियों का तप—इन तीनोंके समन्वय से यह स्थान अपने आप में श्रेष्ठ परम्पराओं से परिपूर्ण है। साधना की दृष्टि से इस क्षेत्र को परम्परागत रूप से—इसे हर दृष्टि से जीवन्त एवं प्राणवान कहा जा सकता है। अपने प्रयत्न से भी वहाँ के वातावरण में कुछ और प्रखरता लाने का प्रयत्न किया गया है। सन् १९२६ से निरन्तर जलती आ रही अखण्डज्योति की घृत दीप शिखा यहीं प्रतिष्ठापित है। गायत्री मन्दिर के निकट चलते रहने वाले जप, अनुष्ठानों का क्रम अनवरत है। नित्य गायत्री यज्ञ भी सुसंचालित है। यह तीनों ही कार्य इस वातावरण में दिव्यता की सूक्ष्म चेतना का संचार करते हैं। हम भी कुछ न कुछ अपना तप-साधना का क्रम चला कर आश्रम के वातावरण में ऐसी विशेषता उत्पन्न करने का प्रयत्न करते हैं जिससे यहाँ के रहने वालों में अनायास ही प्रखरता उत्पन्न हो सके।

आत्मोत्कर्ष की साधना सफलतापूर्वक सम्पन्न करने के लिए अपना श्रम करना तो आवश्यक है ही—वातावरण का उपयुक्त होना भी कम महत्वपूर्ण नहीं है। जनकल्याण के लिए किये जाने वाले अपने प्रयासों के साथ हिमालय के अधिक एकान्त एवं गहन प्रदेश में विशेष तप-साधना का जुड़ा होना भी सर्वविदित है। इसका कारण विधि-विधान की भिन्नता नहीं, अधिक उपयोगी वातावरण का—अधिक प्रखर सान्निध्य का लाभ लेना ही था। उचित समझा गया कि अखण्डज्योति के वे परिजन जो लेखों का पढ़ लेना ही पर्याप्त नहीं समझते एवं साधना क्षेत्र में कुछ साहस भरे विशिष्ट कदम बढ़ाना चाहते हैं उनके लिए अन्य आधार अपनाने की तरह यह भी आवश्यक है कि वातावरण एवं सान्निध्य की प्रखरता का लाभ उठाते हुए अपनी साधन प्रक्रिया सम्पन्न करें।

साधना की सफलता में स्थान, क्षेत्र व वातावरण का असाधारण महत्व है। विशिष्ट साधनाओं के लिए घर छोड़कर अन्यत्र उपयुक्त स्थान में जाने की आवश्यकता इसलिए पड़ती है कि पुराने निवास स्थान का ढर्रा अभ्यस्त रहने से वैसी मनःस्थिति बन नहीं पाती जैसी महत्व पूर्ण साधनाओं के लिए विशेष रूप से आवश्यक है। कुटुम्बियों के परिचित लोगों के साथ जुड़े हुए भले-बुरे सम्बन्धों की पकड़ बनी रहती है। कामों का दबाब बना रहता है। राग द्वेष उभरते रहते हैं। दिनचर्या बदलने पर कुटुम्बी तथा साथी विचित्रता अनुभव करते और उसमें विरोध खड़ा करते हैं। आहार और दिनचर्या बदलने में विग्रह उत्पन्न होता है। घरों के निवासी, साथी जिस प्रकृति के होते हैं वैसा ही वातावरण वहाँ छाया रहता है। यह सभी अड़चनें हैं जो महत्वपूर्ण साधनाओं की न तो व्यवस्था बनने देती है और न मनःस्थिति ही वैसी रह पाती है। दैनिक नित्य कर्म के रूप में सामान्य उपासना तो घरपर भी चलती रह सकती है, पर यदि कुछ विशेष करना हो तो उसके लिए विशेष स्थान, वातावरण, सान्निध्य एवं मार्ग दर्शन भी चाहिए। यह सब प्राप्त करने के लिए उसके लिए उपयुक्त स्थान का प्रबन्ध करना वह आधार है जिस पर सफलता बहुत कुछ निर्भर रहती है।

प्राचीन काल के सन्त साधकों के जीवन वृतान्त पर दृष्टि डालने से प्रतीत होता है कि उनमें से प्रायः सभी को अपने जन्म स्थान को छोड़कर अन्यत्र कार्यक्षेत्र बनाना पड़ा है। ऐसे उदाहरण कदाचित ही कुछ मिले जिनमें अनभ्यस्त वातावरण और नभ्यस्त सम्पर्क में बने रहकर भी उच्चस्तरीय आत्मिक प्रगति में सफलता पाई हो। यह भौतिक प्रगति में तो अनुकूल रहता है कि अपने परिचित क्षेत्र में व्यवसाय को बढ़ाया जाये। पर आत्मिक प्रगति में आधा व्यवधान तो यही रहता है कि अभ्यस्त लोभ-मोह का, राग-द्वेष का संचित स्वभाव संस्कार अपने रस्मों में जकड़े रहता है और नया अभ्यास अपनाने के प्रयत्नों को परोक्ष रूप से असफल करता रहता है। जो साधना का अर्थ, अन्तःक्षेत्र की विभूतियों को जगाने के लिए आवश्यक पुरुषार्थ मानते हैं उनके लिए यह आवश्यक हो जाता है कि संचित कुसंस्कारों से जूझने और अभिनव जीवनचर्या अपनाने के लिए आवश्यक वातावरण उपलब्ध करें। उनकी बात दूसरी है जो देवता को व्यक्ति मानकर उसकी मनुहार करने को ही वरदान पाने का आधार मानते हैं और उसी स्तर का जाल-जंजाल बुनते रहते हैं।

आत्मिक प्रगति के लिए उपयुक्त वातावरण गंगा की गोद और हिमालय की छाया माना जाता है। साधना के इतिहास पर दृष्टिपात करने से प्रतीत होता है कि ऋषियों और साधकों का समुदाय इसी क्षेत्र में रहकर उपयुक्त प्राण चेतना उपलब्ध करने में सफल हुआ है। ऋषियों का जन्म तो विभिन्न क्षेत्रों में हुआ है पर वे उपयुक्त वातावरण, मार्गदर्शन एवं सहयोग प्राप्त करने की दृष्टि से घर छोड़कर यहीं आ बसे। इसमें उन्हें आरम्भिक असुविधा तो हर परिवर्तन के अवसर पर होने जैसी हुई होगी। किन्तु जब उन्होंने इस परिवर्तन का लाभ देखा तो कई असुविधाएँ रहते हुए वे यहाँ जम गये और यही रम गये। उनके मन में लौटने का विचार तक नहीं आया। यही कारण है कि हिमालय एवं गंगा तट वाला भाग अनादि काल से ऋषि भूमि रहा है। परिस्थितियाँ बदल जाने पर भी वातावरण में वह ऊर्जा अभी भी किसी सीमा तक बनी हुई है। अणु विस्फोट के उपरान्त बहुत समय तक जब उस क्षेत्र पर विकिरण छाया रहता है, तो कोई कारण नहीं कि तप साधना से सुसंस्कारित भूमि और सूक्ष्म संस्कारिता कुछ समय में समाप्त हो जाये।

उच्चस्तरीय साधना के लिए तीर्थ स्थानों में रहने की बात शास्त्रों और आप्त जनों ने बहुत जोर देकर कही है। गायत्री उपासना के सम्बन्ध में तो यह तथ्य और भी उजागर है, गायत्री मन्त्र की सामान्यतः तीन और विशेषतया सात व्याहृतियाँ मानी गई हैं। प्राणायाम में सात व्याहृतियों का प्रयोग होता है। यह व्याहृतियाँ सप्त ऋषियों द्वारा अपनाई गई आस्थाओं एवं परम्पराओं का परिचय देती हैं। सप्तऋषियों की जो साधना भूमि रही है, उसी में गायत्री नगर बसाया गया है। उसे सच्चे अर्थों में जीवान्त तीर्थ कहा जा सकता है। प्राचीन काल के आरण्यकों में जो विशेषताएँ पाई जाती थीं, प्रायः उन सभी का समावेश गायत्री नगर की ब्रह्मवर्चस प्रक्रिया के अन्तर्गत समाविष्ट करने का प्रयत्न किया गया है। स्थूल दृष्टि से यह क्षेत्र दूसरे भूखण्डों की तरह ही धूलि, मिट्टी, पेड़, पानी जैसी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

पदार्थ सम्पदा से बना भर दीखता है, पर जिन्हें सूक्ष्म दृष्टि उपलब्ध है उन्हें उस परोक्ष की झांकी करने में कठिनाई नहीं होती कि साधना को सफल बनाने वाले आधार यहाँ अन्यत्र की अपेक्षा कहीं अधिक उपलब्ध है।

गायत्री नगर की ब्रह्मवर्चस प्रक्रिया ने, उच्चस्तरीय गायत्री उपासना के लिए, इस क्षेत्र को सच्चे अर्थों में साधनात्मक बना दिया है। उसमें साधना की सफलता के सभी आवश्यक तत्व विद्यमान हैं। परम्परा और प्रक्रिया का समन्वय रहने से ही वह प्राण-प्रवाह उत्पन्न होता है जिसको जीवन्त और जाग्रत कहा जा सके। ऐतिहासिक विशिष्टता का परिचय देने वाले तीर्थ तो अन्यत्र भी कितने ही हैं पर जिन आरण्यकों की प्राणवान् ऊर्जा का लाभ प्रचुर परिणाम में मिल सके ऐसे आश्रम इन दिनों अन्यत्र मिलना कठिन है। गायत्री परिवार के परिजनों की साधना में रुचि होना स्वाभाविक है। उनके प्रयत्न भी इस दिशा में चलते ही होंगे। अच्छा होता उन्हें साधना की सफलता के लिए यह सौभाग्य भी मिल सकता कि अवकाश निकालकर वे इस पुण्य भूमि में देर तक ठहर सकते या चिरस्थायी रूप से देव परिवार में सम्मिलित होकर यहीं बसने का प्रयत्न करते।

हिमालय की छाया, गंगा की गोद और यहाँ का भावपूर्ण सुसंस्कारित एवं प्राण ऊर्जा से लबालव भरा वातावरण—साथ ही शक्तिशाली संरक्षण—मार्गदर्शन ऐसा है जो जिन्हें मिल गया, समझना चाहिए कि सौभाग्य ही उदय हो गया। इसी उपयुक्त एवं दिव्य वातावरण की कभी कल्पना करते हुए भर्तृहरि ने कहा था—

गंगातीरे हिमगिरिशिलाबद्धपद्मासनस्य
ब्रह्मज्ञानाभ्यसनविधिना योगनिद्रांगतस्य ।
किं तैर्भाव्यं मम सुदिवसैर्यत्र ते निर्विशंकाः
कण्डूयंते जरठहरिणाः श्रृंगमंगे मदीये ॥

'जीवन का वह सौभाग्य-दिवस कब आयेगा, जब मैं गंगा तट की हिमांचल-शिला पर पद्मासन लगाकर ब्रह्मानन्द में लीन समाधिस्थ बैठूँगा और वहाँ के बूढ़े हिरन मेरे अंगों को अपने सींगों से खुजलायेंगे।'

ब्रह्मवर्चस की साधना एक उच्चस्तरीय तपश्चर्या है। इसके लिए गंगा तट पर साधना का अपना ही महत्त्व है फिर चारों ओर गंगा घिरी होने के बीचों बीच जन शून्य द्वीपों में बैठ कर साधना करने का तो प्रतिफल और भी अधिक विलक्षण होगा। नित्य गंगा स्नान-मात्र जल पान, टहलना-बैठना गंगा माता की गोद में-इन विशेषताओं के कारण ब्रह्म वर्चस् साधना के लिए उपयुक्त वातावरण की ही व्यवस्था हुई है। इसे दैवी अनुग्रह एवं सहयोग के अतिरिक्त और कुछ नहीं कहा जा सकता। इस आश्रम के निर्माण के लिए परम सात्विक धन की भाव भरी श्रद्धा की अपनी महत्ता है। जो शक्ति केन्द्र को सार्थक बनाने के लिए मचलता चला आ रहा है भले ही उसकी मात्रा कितने ही स्वल्प क्यों न हो।

मुनयः सिद्धगन्धर्वा ये चान्ये सुरसत्तमाः ।
गंगातीरे तपस्तप्त्वा स्वर्गलोकेच्युताभवन् ॥११॥
पारिजातसमाः पुष्पवृक्षाः कल्पद्रुमोकमाः ।
गंगातीरे तपस्तप्त्वा तत्रैश्वर्यं लभन्ति हि ॥१२॥
तपोभिर्बहुभिर्यज्ञैर्व्रतैर्नानाविधैस्तथा ।
पुरुदानैर्गतिर्या च गंगा संसेवतां च स ॥१३॥

मुनिगण—सिद्ध लोग-गन्धर्व वृन्द और जो अन्य देवों में परम श्रेष्ठ हैं वे गंगा के तट पर तपस्या करके स्वर्ग लोक में स्थायी रूप से निवास प्राप्त कर अच्युत होते हुए ही वहाँ रहते हैं ॥ ११ ॥

गंगा के तट पर तपश्चर्या करके वहाँ पर परम ऐश्वर्य का लाभ लिया करते हैं क्योंकि वहाँ पर जो पुष्पों वाले वृक्ष हैं वे पारिजात (देवतरु) के समान हैं और समस्त मनोकामना पूर्ण कर देने वाले कल्प वृक्षों के तुल्य होते हैं ॥ १२ ॥

बहुत प्रकार के तपों से, यज्ञ और नाना प्रकार के व्रतों से तथा अधिक दानों से जो मनुष्य को गति प्राप्त होती है वही गति भागीरथी गंगा के जल में स्नानादि से प्राप्त होती है अतः इस गंगा का भली-भाँति सेवन करना चाहिए ॥ १३ ॥

'गंगोत्री माहात्म्य' में गंगा सान्निध्य का गुणगान इस प्रकार किया गया है।

आर्त्तानामार्त्तिनाशाय मोक्ष सिद्धयै तदर्थिनाम् ।
सर्वेषां सर्वसिद्धयै च गंगैव शरणं कलौ ॥

दुःखियों के दुःख नाश के लिए, मुमुक्षुओं की मोक्ष सिद्धि के लिये, और सबको सब प्रकार की सिद्धि के लिए कलियुग में केवल गंगाजी ही शरण है।

रागादि चित्तदोषाश्च क्षीयन्ते तदनन्तरम् ।
दोषक्षये च भगवद् भक्तिर्ज्ञानं च जायते ॥

राग द्वेष आदि चित्त के सब दोष भी उसके पश्चात् क्षीण हो जाते हैं। एवं सब दोष भी नष्ट होने पर निर्मल हुए मन में ईश्वर भक्ति तथा ज्ञान भी उदित होते हैं।

सूक्ष्म ज्ञान गंगा को गायत्री कहा जाता है और उसका मूर्तिमान स्वरूप तरण तारिणी गंगा है। दोनों एक ही तत्त्व के यह दो रूप हैं। शिवजी के मस्तिष्क से निसृत हुई यह ज्ञान गंगा ही भागीरथी बन कर प्रकट हुई है। गायत्री और गंगा की जन्म जयन्ती भी एक ही दिन है। जेष्ठ सुदी दशमी ही गंगा और गायत्री दोनों की जन्म तिथि है। दोनों एक रूप ही समझी जा सकती हैं।

एतां विद्यां समाराध्य गंगा त्रैलोक्य पावनी ।
तेन साऽद्यापि पुण्या शान्ति दा सर्वदेहिनाम् ।
गायत्र्या संयुता तस्या प्रभावमतुल ध्रुवम् ॥

यह ब्रह्म विद्या ही त्रैलोक्य पावनी गंगा बनकर प्रकट हुई। वह प्राणियों को पवित्रता एवं शान्ति प्रदान करती है। गायत्री युक्त होने पर उसका प्रभाव और भी अतुल हो जाता है।

गंगाजल की विशेषता में ऐसे ही दिव्य कारणों का समावेश होने से उसे देव संज्ञा दी गई है। उसके स्नान से शरीर की गर्मी एवं मलीनता हटाना ही नहीं, अन्तःकरण में पवित्रता का संचार होना ही प्रधान हेतु है। इसी उद्देश्य से असंख्य भावनाशील नर-नारी उसमें स्नान करने के लिए दौड़े

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आते हैं और अपनी धर्म भावना तृप्त करते हैं। यह अन्धविश्वास भर नहीं है, जहाँ गंगा की पवित्रता अभी भी अक्षुण्ण है वहाँ उसके तट पर कुछ समय निवास करके यह प्रत्यक्ष अनुभव किया जा सकता है कि उससे आन्तरिक शान्ति का कितना लाभ मिलता है। शहरी कोलाहल-गटरों का गन्दा पानी मिलते चलने से उनका प्रभाव घटते जाना स्वाभाविक है। किन्तु अभी भी हिमालय क्षेत्र में प्रवाहित होने वाली धारा में प्राचीन काल जैसी पवित्रता का अनुभव किया जा सकता है।

सप्त ऋषियों ने अपनी तपस्थली हिमालय की छाया और गंगा की गोद में बनाई थी। भगवान राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न अयोध्या की सुविधाओं को छोड़कर गंगा तट की दिव्य विशेषताओं को ध्यान में रखते हुए ही इस क्षेत्र में तप करने के लिए आ गये थे। तपस्वियों की परम्परा हिमालय क्षेत्र में पहुँचने और गंगातट पर निवास करने की रही है। यह सब अकारण ही नहीं होता रहा है। तत्त्वदर्शी अध्यात्म विज्ञानियों ने शारीरिक, मानसिक और आत्मिक अनुकूलताओं, उपलब्धियों को ध्यान में रखते हुए ही इस प्रकार का चयन किया था। गंगा यों एक नदी भर है, पर सूक्ष्म दृष्टि से उसे प्रवाहमान देवसत्ता ही कहा जा सकता है। उसके स्नान, दर्शन, जलपान आदि से सहज ही पवित्रता का संचार होता है। माता की गोदी में रहने के समान ही उसके सान्निध्य का भाव भरा आनन्द अभी भी भावनाशील लोग सहज ही उपलब्ध करते हैं।

ब्रह्मवर्चस की विशिष्ट साधनाओं की दृष्टि से तो हिमालय क्षेत्र और गंगा तट साक्षात गायत्री सान्निध्य की तरह हैं ही, प्राचीन काल में ऐसे अनेक शक्ति पीठों की स्थापना भी इसी उद्देश्य से की गई। तीर्थ परम्परा के पीछे ऋषियों का यही मन्तव्य रहा है कि वहाँ रहकर साधकगण वातावरण के संस्कारों का विशेष लाभ प्राप्त करें जिससे उनकी साधना का द्रुत विकास सम्भव हो सके। प्राचीन काल में यह परम्परा श्रद्धाजन्य रही है, उसका कोई वैज्ञानिक आधार प्रस्तुत नहीं किया गया। पीछे यह परम्परायें भी विशृंखलित हुई अतएव आज का शिक्षित समुदाय उसे अन्ध श्रद्धा की संज्ञा देता है पर अब विज्ञान भी इस तथ्य को मानने लगा है कि चेतना के क्षेत्र में वातावरण और स्थान विशेष का प्रभाव असंदिग्ध रूप से होता है।

जीन डिक्शन की तरह पिछले दिनों योरोप और अमेरिका में ऐसे कई स्त्री-पुरुष प्रकाश में आये जो मात्र किसी की वस्तु का स्पर्श करके उसके बारे में न केवल वर्तमान अपितु भूत और भविष्य की घटनायें तक जान लेते और बता देते थे। जर्मनी में १२ वर्ष पूर्व इस सम्बन्ध में कुछ वैज्ञानिकों ने विशेष रुचि ली और यह पाया कि ऐसी घटनायें असत्य नहीं होती।

डॉ० राइन के अनुसार—'साइकोमेट्री सिद्धान्त' से इस तथ्य की पुष्टि होती है कि प्रत्येक वस्तु में मनुष्य शरीर में रहने वाले प्राण और मन की तरह का एक सूक्ष्म प्रभाव (ईथरिक इम्प्रेशन) होता है, जो मन को प्रभावित करता है। स्पर्श से मनुष्य के मन के संस्कार उस वस्तु में चले जाते हैं। वह संस्कार पुनः उस व्यक्ति से सम्बन्ध जोड़ लेते हैं इसी आधार पर वह व्यक्ति जानकारी पा लेता है।

मोन्सियन वोविन ने एक यन्त्र बनाया जो मनुष्य शरीर के रेडियेशन की माप करता है। उससे जो तथ्य सामने आते हैं उनमें एक तो यह कि अँगुलियों व हथेलियों पर यह सबसे अधिक होता है। शेष शरीर का सम्बन्ध यहीं से होता है, इसलिए केवल मात्र अँगुलियों से ही शरीर की विभिन्न स्थानों वाली विद्युत या जीवन-शक्ति का पता लगाया जा सकता है। अँगूठे का तो सीधे मस्तिष्क से सम्बन्ध होता है। यही नहीं उसमें जागृत ही नहीं सुषुप्ति अवस्था में भी मस्तिष्क ही हल-चलें प्रभाव डालती रहती हैं। भारतीय संस्कृति में चरण-स्पर्श की परम्परा ने महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त किया है। उसमें महापुरुषों, बड़ों, बुजर्गों, पवित्र नदियों ओर मूर्तियों को प्रणाम करके उनसे प्राण-पवित्रता, ज्ञान-संस्कार और शक्ति ग्रहण करने का यह रहस्य ही सन्निहित है। एकलव्य ने तो अपनी श्रद्धा मिट्टी के द्रोणाचार्य के चरणों में आरोपित कर दी थी। परिणाम यह हुआ कि द्रोणाचार्य को पता भी नहीं चल पाया और एक तरह से उनका सारा ज्ञान चोरी हो गया। 'श्रद्धावान्लभते ज्ञान' के पीछे यही मनोवैज्ञानिक नियम काम करता है, जिसे अब वैज्ञानिक मान्यता भी मिल गई है। इन सब में प्रत्येक वस्तु में मन या ईथरिक इम्प्रेशन होने, सारे संसार में एक समान ऊर्जा तत्त्व (कामन इनर्जेटिक रियेलिटी) होने का सिद्धान्त काम करता है। इस दोनों के संयोग से ही ज्ञान, देश, काल व पदार्थ को प्रभावित करते और इनसे परे की भी जानकारी देते हैं।

प्रकृति विविधा है, पर उसमें एक ही मौलिक तथ्य काम करता है उसी से उसे ऊर्जा मिलती है। विकास साधन मिलते हैं, अभिव्यक्ति मिलती है। यदि सभी के कारण की दिशा में लौटें तो एक ही केन्द्र-बिन्दु मिलेगा। इसी तरह सारे विश्व में एक अति चेतन मन भरा है उससे सम्पर्क सम्बन्ध बनाकर लोग प्राकृतिक रहस्यों को जान सकते हैं। कई बार प्राकृतिक रूप से क्षणिक बोध किसी को भी हो सकता है। यहाँ तक कि कुत्ते, बिल्लियों तथा मकड़ी तक को भी भविष्य और अतीन्द्रिय बोध होते पाया गया है। पर किसी सार्थक उपयोग और लोक-कल्याण की दृष्टि से मिलने वाली शक्ति सामर्थ्य किन्हीं प्रज्ञावान व्यक्तियों को ही मिल सकती है।

योगदर्शन के अध्याय ३ सूत्र ५३ में महर्षि पातंजलि ने बताया है—

जाति लक्षण देशैरन्यतानवच्छेदात्तुल्योस्तयो प्रतिपत्तिः

अर्थात्—जाति, लक्षण और देश भेद मे जिन दो वस्तुओं का भेद नहीं ज्ञात होता एवं दोनों वस्तु तुल्य मालूम होती हैं, उनके भेद का ज्ञान विवेक ज्ञान से ही होता है विवेक ज्ञान को स्पष्ट करते हुए आगे यह बताया है कि लोक को तो जाति, लक्षण देश द्वारा पदार्थों का भेद ज्ञान होता है परन्तु योगियों को बिना जाति लक्षण व देश के विवेक ज्ञान के ही भेद का निश्चय होता है।

जमशेद जी टाटा के आग्रह पर स्वामी विवेकानन्द के इसी दृष्टि से टाटानगर का स्थान उसके प्लान्ट के लिए उपयोगी बताया था जो आज भी चल रहा है। राजस्थान में एक पानी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

वाले महात्मा थे। स्वयं तत्काली प्रधानमंत्री श्री जवाहरलाल नेहरू ने दिल्ली के लिए जल सप्लाई हेतु उनकी सेवायें ली थीं। वे कहीं भी चलकर उस स्थान पर जल की उपलब्धि और मात्रा तक की जानकारी देते थे। यह सारी बातें इसी सिद्धान्त का समर्थन करती हैं कि मन की तरह की एक सूक्ष्म सत्ता प्रकृति में सर्वत्र कार्य करती है। इसमें ज्ञान और शक्तियाँ दोनों सन्निहित हैं उनसे सम्बन्ध स्थापित कर कोई भी ज्ञान, शान्ति और शक्ति प्राप्त कर सकता है। इस तथ्य की पुष्टि श्रीमती एनीबीसेण्ट ने भी की है।

'न्यू वर्ल्ड आफ माइण्ड' के पृष्ठ ८४ पर डा० राइन ने 'इम्प्रिजन्ड-स्प्लेन्डर' के अध्याय ८ में डा० रेनर जानसन ने 'सुपर नार्मल फैकल्टीज इन मैन' में डा० आस्टी तथा डा० हेर्टिहगर ने अपनी पुस्तक 'अल्ट्रा, परसेटिट्व फैक्टरी' में निम्न निष्कर्ष निकालते हुए "स्पर्श ज्ञान" का समर्थन करते हुए कुछ महत्त्वपूर्ण निष्कर्ष इस प्रकार निकाले हैं—

(१) वस्तु का स्पर्श करने वाले को उसके मन के सूक्ष्म संस्कार उस वस्तु के उत्तर आने के आधार पर पहचाना जा सकता है।

(२) एक बार तादात्म्य स्थापित हो जाने पर वस्तु का रहना आवश्यक नहीं।

(३) यदि वस्तु से व्यक्ति का सम्पर्क वर्षों पहले हुआ और अब वह व्यक्ति नहीं भी हो तो भी उसके बारे में न केवल जाना जा सकता है अपितु उसके प्रकाश, उसकी क्षमताओं को भी जाना और ग्रहण किया जा सकता है।

(४) स्पर्श वाली वस्तु या स्थान में भौतिक व रासायनिक दृष्टि से किसी प्रकार का अन्तर नहीं आता। यदि उसके स्वरूप में कुछ परिवर्तन भी हो जाये तो भी वह संस्कार कहीं नहीं जाते।

(५) व्यक्ति जितना प्राणवान या शक्ति-सम्पन्न हो उसी अनुपात पर अनुभूति अधिक स्पष्ट होगी।

डॉ० जानसन ने इस साहसिक ईथर सिद्धान्त की जो फल श्रुतियाँ निकाली हैं वे मन्दिरों, पवित्र जल, भस्म, देवालयों और सिद्ध पीठों की उपयोगिता का दर्शन कराते हैं। सिद्धान्त एक ही है कि ऐसे स्थानों में महापुरुषों के मन और उनके संस्कार उस भूमि के कण-कण में बस जाते हैं और उनका चिरकाल तक अस्तित्व बना रहता है। योगी आत्मा या महापुरुष इन वस्तुओं या स्थानों को अपने संकल्प बल से इतना ऊर्जा सम्पन्न बना देते हैं कि वहाँ आने वाले दुर्बल मनोबल के व्यक्ति भी अनुभूतियों की, साधना की सफलता और स्वल्प प्रयास में ही शक्ति पा जाते हैं। यह शक्ति आत्मविकास का तो प्राण ही है, पर उससे शारीरिक, मानसिक और सांसारिक कठिनाइयों में भी उपयोग होता है। महापुरुषों और सिद्धपीठों की यात्रायें और सत्संग इसी आधार पर आयोजित होते हैं।

ऐसे स्थानों पर 'सम्मिलित मनः शक्ति', 'एसोसियेटेड साइकिक ईथर' विनिर्मित हो जाता है। एक ही तरह पवित्रता के, करुणा उदारता और महानता के संस्कार उमड़ते रहने से उस स्थान पर उन संस्कारों का पुंज बन जाता है। जिससे वहाँ पहुँचने वाले दुष्ट और दुराचारी कमजोर मनःस्थिति या भूत प्रेत आदि बाधाओं से ग्रस्त लोग भी जाकर प्रसन्नता अनुभव करते और शक्ति लेकर लौटते हैं। गायत्री तपोभूमि मथुरा ब्रह्मवर्चस, एवं शान्तिकुंज हरिद्वार को इसी तरह प्रयत्नपूर्वक संस्कारिता किया गया है। यह संस्कार सैकड़ों वर्षों तक हिलाये नहीं हिल सकते। अपितु ऐसे स्थान पर समर्थ सत्ता की स्फुरणाओं, स्पर्शजन्य पवित्रता का, भावनाओं का चिरकाल तक लाभ लिया और अपनी उपासना को शीघ्र सफल किया जा सकता है।

ब्रह्मवर्चस साधना के समय गंगा-स्नान एवं गंगाजल पान से शारीरिक आरोग्य, मानसिक स्फूर्ति एवं भावनात्मक शान्ति की प्राप्ति स्वाभाविक ही है। माँ गंगा की गोद भावनाशील लोगों को भावभरी आनन्दानुभूति प्रदान करती है। सूक्ष्म दृष्टाओं के अनुसार गंगा प्रवाहमान देव-सत्ता है। हरिद्वार तक की गंगा के तट में, इस हिमालयी क्षेत्र में हजारों वर्षों तक तप-परम्परा को बनाए रखने वाले योगियों-ऋषियों- महात्माओं की प्रज्ञा के संस्कार-प्रभावों का साधक स्पष्ट अनुभव करते हैं। भगवान राम, लक्ष्मण, भरत, एवं शत्रुघ्न अन्तिम दिनों में तप के लिए इसी क्षेत्र में आये थे। सप्त ऋषियों ने हिमालय की छाया और गंगा की गोद में ही अपनी तपस्थली बनयी थी। ब्रह्मवर्चस- साधना के लिए गंगा माँ की गोद, हिमालय पिता की छाया, सप्तऋषियों की सुसंस्कारित तपोभूमि—ये ऐसी विशेषताएँ हैं, जो अन्यत्र दुर्लभ हैं। इसके साथ ही युग-निर्माण अभियान के सूत्र-संचालकों का दिव्य संरक्षण तो एक ऐसी विशिष्टता है, जो अनुपम ही है। इस दिव्य वातावरण-संस्कारवान भूमि में साधकों को दिव्य संरक्षण, मार्गदर्शन, प्रकाश और अनुदान की जो व्यवस्था सुलभ होती है, वह ब्रह्मवर्चस, की उच्चस्तरीय साधना में उनके लिए श्रेष्ठतम सहायता सिद्ध होती है।

ब्रह्मवर्चस् साधना में ब्रह्मविद्या एवं ब्रह्मतेज-दोनों की ही उपासना-साधना सम्मिलित है। चेतन ब्रह्मतेज सविता और उसकी शक्ति-ब्रह्मशक्ति-सावित्री दोनों की उपासना साधक को शक्ति-सम्पन्न, तेजस्वी, ज्ञानवान, सद्बुद्धि-सम्पन्न, ऋतम्भरा प्रज्ञायुक्त, विवेकशील, दुरदृष्टा और महान बनाती है। इस साधना-प्रक्रिया में धुलाई और रंगाई के क्रमिक सोपान समाहित हैं। आत्मिक प्रगति के मार्ग में बाधक संचित कुसंस्कारों का प्रायश्चित-परिशोधन, कषाय-कल्मषों की धुलाई, इस साधना का स्वाभाविक ही अनिवार्य अंग है। आहार-बिहार सम्बन्धी संयम और तप-तितीक्षा द्वारा साधक के व्यक्तित्व को दिव्य अवतरण का दवाब सम्भाल सकने योग्य बनाया जाता है। इसीलिए उससे सम्बन्धित समस्त मर्यादाओं का साधक के द्वारा निष्ठापूर्वक निर्वाह आवश्यक है। उसके बिना तो साधक में सिद्धियों की पात्रता ही उत्पन्न न हो सकेगी।

उपवास, ब्रह्मचर्य, स्वयंसेवा, मौन और शारीरिक तितीक्षा के नियम-निर्देशों को स्वयं पर कठोरता से लागू करना-साधना पथ पर अग्रसर होने की आरम्भिक आवश्यकता है। पाप स्वीकृति, पश्चाताप-प्रायाश्चित एवं दृष्टापूर्ति की चन्द्रायण तप-प्रक्रिया के आत्मपरिशोधन का कार्य सम्पन्न होता है। तप-तितीक्षा का अभ्यास सुदृढ़ता एवं सत्पात्रता उत्पन्न करता

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

है। इसके आगे है योगाभ्यास-साधना, जो साधक के व्यक्तित्व के विस्तार, सामर्थ्य एवं स्तर में वृद्धि करती है और उसे परमात्म-सत्ता से जोड़ने की प्रक्रिया सिद्ध होती है। पंचमुखी गायत्री की पंचकोशी साधना पाँचों कोशों का अनावरण करने में समर्थ है। उससे रहस्यमय रत्न-भण्डार, सिद्धियों, विभूतियों का अक्षय कोश प्राप्त करने की चाबी हाथ लगती है।

शरीर में संव्यास प्राण-ऊर्जा को तपश्चर्या परिष्कृत करती है। मनः क्षेत्र की चिन्तन-चेतना की उच्चतम शक्ति स्रोत एवं आस्था केन्द्र से जोड़ने को कार्य योग-साधना द्वारा सम्पन्न होता है।

गायत्री-जप, ध्यान, सोऽहं साधना, नाटक, खेचरीमुद्रा एवं शक्ति संचालन की योग-साधनाएँ साधक की दैवी सिद्धियों, दिव्य अनुभूतियों की सामर्थ्य प्रदान करती है। उसके साथ ही स्नान-भोजन, सूर्योपासना, दीपस्तुति, शयन एवं जागरण जैसे नित्यकर्मों में आत्बोधतत्त्वबोध आदि की धर्मभावनाएँ साधक के भावनात्मक अन्तःक्षेत्र को परिष्कृत, उदात्त, कोमल और अनुभूति-क्षम बनाती है। यज्ञ-कर्म इन सब व्यक्तिगत एवं सामूहिक पुरुषार्थों की समन्वित अभिव्यक्ति है। इन समस्त विधि-विधानों का समावेश साधक अपनी दिनचर्या में किस स्तर पर, किस-किस रूप में करेगा, यह निर्धारण-निर्देशन प्रत्येक साधक की स्थिति के अनुरूप किया जाता है। इस प्रकार साधकों के पुरुषार्थ, वातावरण की सुसंस्कारिता, साधना-प्रक्रिया की समग्रता तथा दिव्य संरक्षण, मार्गदर्शन एवं प्रकाश, अनुदान द्वारा ब्रह्मवर्चस् साधना-प्रक्रिया प्रचण्ड अध्यात्म-ऊर्जा को प्रकट करने में समर्थ है और इस अध्यात्म-ऊर्जा को विकसित करने के लिए अपने कषाय-कल्मषों ने निष्कासन की आवश्यकता पड़ती है, ताकि विकारों के कारण अवरुद्ध हुई आत्मिक ऊर्जा, विकारों के नष्ट होने पर तीव्रगति से उद्बुध हो सके। इस अध्यात्म ऊर्जा—ब्रह्मवर्चस की प्राप्ति के लिए तप-साधन की आवश्यकता पड़ती है। इसका समुचित विधान और मार्गदर्शन की व्यवस्था ब्रह्मवर्चस साधना सत्रों में रखी गई है।

इसके लिए शान्ति-कुंज में हर पाँच साधना सत्रों की व्यवस्था की गई है। उनको २४ हजार गायत्री अनुष्ठान द्वारा सम्पन्न किया जाता है। साथ ही विचार-पद्धति एवं जीवन-प्रक्रिया में काया-कल्प प्रस्तुत करने वाली प्रेरणाएँ भी उपलब्ध की जाती हैं। साधकों की अपनी तपश्चर्या का सत्परिणाम तो हर जगह मिल सकता है, पर यहाँ वातावरण और सान्निध्य के दो अतिरिक्त लाभ और भी हैं जिससे सप्तपरिणामों में तीन गुनी वृद्धि हो सकती है। हिमालय क्षेत्र और गंगा तट की अपनी विशेषता है। शान्ति-कुंज के आश्रम में छाई रहने वाली अतिरिक्त प्राण ऊर्जा का सान्निध्य भी एक अतिरिक्त प्रभाव तेजस् से युक्त है। उसका महत्त्व भी कम नहीं माना जा सकता है। प्रभावी सान्निध्य और प्रत्यक्ष मार्गदर्शन का कोई लाभ न हो ऐसी बात नहीं है।

दस-दस दिवसीय सत्रों को विशेष पर्वों के साथ सम्बद्ध करके रखा गया है—(१) बसन्त पर्व भगवती सरस्वती के अवतरण का—हमारी गतिविधियों के शुभारम्भ का—परा और अपरा प्रकृति के उल्लास का अवसर है। (२) चैत्र की नवरात्रि, नवीन सम्वत्सर, भगवान राम की जन्म जयन्ती। (३) जेष्ठ की गायत्री जयन्ती, भगवती गंगा का, माता गायत्री का जन्म दिन है। (४) आश्विन की नवरात्रि, भगवती दुर्गा की जन्म जयन्ती तथा असुरता की लंका पर भगवान राम की विजय का पर्व है। (५) मार्गशीर्ष की गीता जयन्ती की भगवान कृष्ण का कर्मयोग सन्देश इस विश्व में गुंजित हुआ था। स्थान की दृष्टि से जो महत्त्व तीर्थ स्थानों का है वही महत्त्व काल की दृष्टि से पुण्य पर्वों का है। पाँचों साधना सत्रों को ऐसे समय पर रखा है जिसमें काल चक्र के अनुसार सूक्ष्म जगत से अनायास ही दिव्य तत्त्वों की अनवरत वर्षा होती है। सत्रों का समय निर्धारित करते समय इस तथ्य को भी ध्यान में रखा गया है।

विशिष्ट साधकों को वर्ष में एक बार आने की भी सुविधा मिल सकती है। ऐसे लोग अपना स्थान अमुक सत्र में सुरक्षित करा सकते हैं। जेष्ठ की गायत्री जयन्ती पर किसी का स्थान सुरक्षित नहीं किया जायेगा। गर्मी की छुट्टियों में कई नये लोगों को उस समय ही आने की सुविधा मिलती है। अस्तु उसे खुला रखा गया है। इसके अतिरिक्त सामान्य साधक अपनी पारी की प्रतिक्षा करेंगे जब स्थान खाली होता रहेगा क्रमशः उन्हें बुलाया जाता रहेगा।

प्रभावी प्रशिक्षण के लिये उपयुक्त वातावरण की आवश्यकता

अब यह स्पष्ट होता जा रहा है कि युग संधि के बारह वर्षों में समस्त विश्व को समझदारी, ईमानदारी, जिम्मेदारी, बहादुरी और दयानतदारी का पाठ नये सिरे से पढ़ाना होगा। बिखराव और टकराव को एकता-समता के केन्द्र पर केन्द्रीभूत करना पड़ेगा। इसके बिना शक्तियों का दुरुपयोग रोकना और उन्हें सृजन के सत्सप्रयोजनों में नियोजित कर सकना सम्भव न होगा। उज्जवल भविष्य की सम्भावना इतना बन पड़ने पर ही सुनिश्चित हो सकती है। इस अति महत्वपूर्ण और अतिव्यापक तैयारी के लिये करोड़ों की संख्या में सृजन शिल्पियों को विभिन्न मोर्चों पर उतरना पड़ेगा। अभाव साधनों का नहीं है। शक्ति सम्पादन के स्रोत भी अगणित हैं। कुशलता भी बड़ी मात्रा में मनुष्य समुदाय ने अर्जित कर ली है। कमी केवल एक ही पड़ रही है—उदारमना, प्रतिभाशाली व्यक्तित्वों की। यदि उन्हें जुटाया जा सके तो अन्य सभी कमियों को पूरा करना और समस्याओं को हल कर लेना कुछ भी कठिन न रह जायेगा।

इन दिनों करने योग्य तो अनेक काम हैं। गरीबी हटाओ, शिक्षा बढ़ाओ, साधन जुटाओ, जैसे कार्यों को प्रमुखता दी जा रही है सो ठीक है; पर इससे भी अधिक प्रमुखता देकर उस कमी को पूरा करना है जिसके आधार पर जन-जन में नव चेतना का संचार सम्भव हो सके। स्मरण रहे कि जले हुए दीपक ही दूसरे को जला पाने में समर्थ हो सकते हैं। दीपकों का अनुकरण करने के लिए प्रत्यक्ष आधार खड़े करना ही वह समर्थ माध्यम है जिसके सहारे विचारणाओं, मान्यताओं और तद्नुरूप गतिविधियों का उच्चस्तरीय सूत्र संचालन सम्भव हो सकता है। इन बारह वर्षों में इसी अभाव को पूरा करने की बात को प्रमुखता दी जानी चाहिए।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

अखण्डज्योति परिवार ने अपने समुदाय में से एक लाख सृजन शिल्पी विश्व मानवता के चरणों पर अर्पित करने का संकल्प लिया है। उसे पूरा करने में प्राणपण से कटिबद्ध भी होना है। योजनाबद्ध रूप से प्रयत्नशील होने पर ही भारी भरकम लक्ष्य तक पहुँचना सम्भव हो सकेगा। यों समग्र आवश्यकता को देखते हुए सृजन शिल्पियों की यह संख्या दिखती तो है बहुत कम, परन्तु आशा की जानी चाहिए कि प्रचलन चल पड़ने पर एक पुर्जा दूसरे को धकेलते घसीटते हुए समय की महती माँग का, कुछ कहने लायक अंश पूरा कर सकेगा।

सम्बद्ध लोगों में से भावनाशीलों को शान्तिकुंज में नौ दिवस वाले और एक महीने वाले वरिष्ठ परिजनों के लिए निर्धारित सत्रों में सम्मिलित होने के लिए बुलाया गया है। औसत साढ़े आठ हजार वार्षिक आर्थात् प्रायः ७०० व्यक्तियों को प्रतिमाह आवश्यक प्रेरणा और प्रतिभा देकर उन कार्यों में जुटाना है, जिनके आधार पर नवयुग का वातावरण बन सके; इक्कीसवीं सदी के उज्जवल भविष्य का आधार बनने वाला प्रभात पर्व अपने उदय का प्रमाण परिचय दे सके। यह अपनी हिस्सेदारी है। आशा की जानी चाहिए कि इस मॉडल को खड़ा होते देखकर अन्यान्य प्रतिभायें भी अपने-अपने हिस्से का दायित्व सम्भालेंगी और समग्रता के लिए जो शेष है उसे पूरा करेगी।

धर्मतन्त्र को माध्यम बनाकर, लोक शिक्षण की प्रक्रिया आशातीत उत्साह के साथ चल रही है। कोटि-कोटि व्यक्तियों के दरवाजों पर अलख जगाने और नव सृजन की प्रेरणा उभारने का काम चल रहा है। दीप यज्ञों को प्रचार आयोजनों का स्वरूप दिया गया है। उनमें सम्मिलित होने वाले युग चेतना को ज्वलन्त बनाने के लिए समग्र दान-अंशदान का संकल्प लेते हैं। युग साहित्य के पठन श्रवण से, साप्ताहिक सत्संकल्पों के माध्यम से उनकी संगठन-आत्मसाधना और नवसृजन के क्रियाकलापों को कार्यान्वित करने की विद्या क्रमबद्ध रूप से चलती रहती है। इसी समुद्र मंथन में से कुछ उदीयमान प्रतिभायें हस्तगत होती हैं। इन्हें शान्तिकुंज के सत्रों में सम्मिलित होने की प्रेरण दी जाती है। कुम्हार अपने कच्चे बर्तनों को सुखाकर इकट्ठे करता है और आँवे में एक साथ पकाता है। इसी प्रक्रिया का एक रूप शान्तिकुंज की शिविर योजना है, जो इन सत्रों के माध्यम से आरम्भ से ही चल रही है और लक्ष्य पूरा होने तक अनवरत रूप से चलती ही रहेगी।

स्कूली शिक्षण तो गाँव-गाँव चल सकता है। उसके लिए उपयुक्त शिक्षा प्राप्त शिक्षक भी पाठ्यक्रम पूरा करा सकते हैं। पर जहाँ तक भाव संवेदनाओं के उभारने का, श्रद्धा सम्वर्द्धन का प्रश्न है, यह कार्य चाहे जहाँ, चाहे जिसके द्वारा सम्पन्न नहीं हो सकता। उसे शिल्प शिक्षा की तरह कोई भी कारीगर, किसी भी जगह बैठ कर सम्पन्न नहीं कर सकता। अन्तराल की गहराई में प्रवेश करके, प्रसुप्त श्रद्धा को उभारने के लिए ऐसा माहौल भी चाहिए, जहाँ कथनी और करनी की आदर्शवादी उत्कृष्टता, पूर्णरूप से जाग्रत और जीवन्त पायी जा सके। शान्तिकुंज में ऐसी ही व्यवस्था मुख्यतया आध्यात्मिक संस्कारों को आगे रखकर बनायी गयी है। यही कारण है कि यहाँ के सत्रों में सम्मिलित होने वाले वापस लौटने पर अपने में असाधारण परिवर्तन हुआ अनुभव करते हैं। चिन्तन, चरित्र और व्यवहार में ऐसी उथल पुथल हुई देखते हैं, जिसे कायाकल्प के समतुल्य कहा जा सके।

आदर्शवादी कथन और लेखन सरल है; पर उनका प्रभाव तभी पड़ता है, जब प्रतिपादनकर्त्ता अपने जीवनक्रम में उस विद्या का तालमेल पूरी तरह बैठा सके। इसके अतिरिक्त इस प्रयास के साथ एक और विद्या जुड़नी आवश्यक है, वह है शिक्षा के साथ साधना का समन्वय और उसके लिए उपयुक्त प्राणवान वातावरण।

यह भी किया जा सकता था कि लोगों का खर्च और समय बचाने के लिए स्थान-स्थान पर छोटे-छोटे सत्र नियोजित किये जाये। इस शिक्षण से उथली प्रक्रिया की चिह्न पूजा तो हो सकती थी; पर वह लाभ मिल नहीं पाता जो आग और ईंधन के एक होने पर प्रज्जवलित ज्वाला की तरह दीख पड़ता है।

प्राचीन काल में राजाओं और अमीरों के बच्चे भी वन प्रदेश में बने हुए गुरुकुलों में, कष्ट साध्य जीवन जीते हुए शिक्षा प्राप्त करने के लिए जाया करते थे। पुरोहित वर्ग के साधू-ब्राह्मणों को भी अपनी शिक्षा ऋषिकल्प व्यक्तित्वों के सानिध्य में आरण्यक क्षेत्रों में रहकर पूरी करनी पड़ती थी। महान तपश्चर्याओं का इतिहास हिमालय क्षेत्र के साथ जुड़ा हुआ है। तीर्थ स्थानों में लोग इसलिए जाते थे कि यहाँ से जुड़ा हुआ पुरातन इतिहास अपनी प्रबल प्रेरणाओं की भाव संवेदनाओं को छलछला देता है। गंगा स्नान से जो पवित्रता अनुभव होती है, वह उसी पानी को तालाब या कुलावे से निकाल कर नहा लेने से पूरी नहीं हो सकती। स्थान और वातावरण का अपना महत्त्व है।

सेनेटोरियमों में भरती होकर रोगी इसलिए लाभ प्राप्त करता है कि वहाँ मात्र औषधियों का ही नहीं, आरोग्यवर्द्धक वातावरण का अतिरिक्त लाभ मिलता है। नागपुर के सन्तरे, भुसावल के केले, मैसूर का चन्दन, भलसाड़ के चीकू अपनी विशेषता लिए होते हैं। उन पौधों को अन्यत्र लगाकर उस स्तर का उत्पादन नहीं पाया जा सकता। राजहंस मानसरोवर में ही पाये जाते हैं। कुसंस्कारी कुकर्मों से भरे वातावरण में रहकर किसी की अध्यात्म साधना सफल नहीं हो सकती। बीज अच्छा होना उत्तम है, किन्तु पर्याप्त फसल काटने के लिए मौसम भूमि, खाद-पानी तथा उपयुक्त विद्या भी तो चाहिए।

स्थान विशेष के साथ जुड़े इतिहास और वातावरण महत्त्व एक सार्वभौम सत्य है। येरुशलम जैसा ईसाइयों का अन्य धर्म केन्द्र नहीं बन सकता। संसार भर के बौद्ध भारत में भगवान बुद्ध के लीला केन्द्रों में अपनी श्रद्धाँजलियाँ अर्पित करके ही संतोष की साँस लेते हैं। जैन और सिक्ख तीर्थों के मौलिक स्थानों के सम्बन्ध में भी यही बात है। इमारतों और पुरोहितों का प्रबन्ध अन्यत्र कर लेने पर भी वैसा समाधान हो सकना कठिन है।

स्थानों की अपनी विशेषता और महत्ता न केवल आध्यात्मिक दृष्टि से वरन् भौतिक दृष्टि से भी है। धरती के

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कुछ स्थान ऐसे हैं, जिनकी अपनी विशेषता है। वह विशेषता कृत्रिम रूप से अन्यत्र पैदा नहीं की जा सकती। दक्षिण अफ्रीका में संसार का अधिकांश सोना पैदा होता है। मृतसागर में अत्यन्त गाढ़ा एवं खारा पानी है। बरमूडा त्रिकोण का सम्पर्क अन्तरिक्ष के ग्रीन होल्स से माना जाता है। उसमें से अक्सर जलयान और वायुयान लुप्त होते रहते हैं एवं रहस्य का विषय बने हुए हैं।

खगोल विद्या की आवश्यक जानकारी पर एक विशेष क्षेत्र में भू-चुम्बकीय धाराओं व अन्तरिक्षीय प्रवाहों के आधार पर पिरामिड बने हैं। कोणार्क का सूर्य मंदिर ऐसे स्थान पर बना है जहाँ से सूर्य ग्रहण का अनुसन्धान करने के लिए संसार भर के विज्ञानी वहाँ आते हैं। गर्म पानी के, जमीन से निकलने वाले ऐसे फब्बारे (गीजर्स) मात्र न्यूजीलैण्ड में ही पाये जाते हैं, जिनसे बड़े परिणाम में ऊर्जा पैदा की जाती है। न्यूट्रोन्स कणों के वैज्ञानिक अनुसन्धान की आवश्यकता जब पड़ती है, तो वे मात्र कोलार की सोने की खदानों में ही पाये जाते हैं।

अमेरिका में अन्तरिक्ष कार्यक्रम की देखभाल करने के लिए बड़ी दूरबीनें लगी हैं, पर वे अब उन्हें अधिक उपयुक्त स्थान चुनने की दृष्टि से भारत के हिमालय उत्तराखण्ड के क्षेत्र में लगाना चाहते हैं। इसके लिए अमेरिका ने भारत सरकार से वैसी सहमति प्राप्त करने के लिए प्रयत्न भी किया है। ऐसा उपयुक्त स्थान संसार में अन्यत्र मिला नहीं। रूस के कजाकिस्तान व अजरबेजान क्षेत्र में जितनी लम्बी आयु के जीने वाले दीर्घजीवी होते हैं, संसार में अन्यत्र नहीं देखे जाते। वायु का दबाब जैसा हालैण्ड में है, वैसा अन्यत्र कहीं नहीं। पवन चक्कियाँ उस देश में जितनी सफल हुई हैं उतनी और किसी देश में नहीं। तिब्बत से आगे लम्बा गोबी का पठार ऐसा है, जिसे नितान्त ठण्डा परन्तु सूखा ही कहा जा सकता है; यह अन्यत्र कहीं नहीं है।

पृथ्वी का चुम्बकीय ध्रुव केन्द्र एक ही स्थान पर है। वह इतना सन्तुलित और संवेदनशील है कि वहाँ एक घूँसा भी कसकर मार दिया जाये तो पृथ्वी की धुरी और कक्षा का वर्तमान क्रम ही बदल जाये। उत्तरी ध्रुव और दक्षिणी ध्रुव की अपनी-अपनी विशेषता है। उनके द्वारा पृथ्वी का निखिल ब्रह्माण्ड के साथ आदान-प्रदान चलता है।

शान्तिकुंज की स्थापना के समय भी ऐसी दिव्य विलक्षणता उस क्षेत्र में खोजी गयी और युग साधना के लिए सामर्थ्यवान साधकों को विनिर्मित करने के लिए उसे अनेकों विशेषताओं से सम्पन्न किया गया। पूर्व परम्पराओं और नवीनतम विशिष्ट साधनाओं का समुचित समावेश किया गया है, ताकि वातावरण में अभीष्ट ऊर्जा भरी रहे और इस अध्यात्म संगम का अवगाहन करने वाले समुचित लाभ ले सकें।

गंगा की गोद हिमालय की छाया सप्तऋषियों की तपोभूमि होने के कारण, शान्तिकुंज के स्थान की विशेषता को आध्यात्मिक त्रिवेणी संगम कहा जा सकता है। स्थापना के अवसर पर चौबीस लाख के चौबीस महापुरश्चरणों का यहाँ आयोजन किया गया। ६५ वर्ष से जलने वाली अखण्डज्योति की यहाँ अनुपम स्थापना है। नौ कुण्डों की यज्ञशाला में अनुष्ठानी साधकों द्वारा हजारों आहुतियों का यज्ञ होता है। स्थानीय निवासी तथा बाहर के आगन्तुक सभी अपनी साधना बड़ी मात्रा में करते हैं, जो प्रतिदिन कितने ही लक्ष मन्त्र जप के समकक्ष हो जाता है। यह प्रत्यक्ष है। परोक्ष वह है जिसमें हिमालय की देवात्मा सप्तऋषियों का प्रतीक पूजन अदृश्य सत्ताओं को आकर्षित करता रहता है। संस्थापक ऋषियुग्म की तपश्चर्या अपना विशेष प्रभाव उत्पन्न करती है।

साधना, स्वाध्याय, संयम और सेवा प्रक्रिया को, शिक्षार्थियों को अन्तराल की गहराई तक उतारने की व्यवस्था का सत्रों में समुचित समावेश है। मनोबल और आत्मबल बढ़ाने वाले आहार के साथ दिव्य औषधियों का सेवन भी आवश्यकतानुसार जुड़ा रहता है। ब्रह्मवर्चस शोध संस्थान में बहुमूल्य यन्त्रों द्वारा मूर्धन्य वैज्ञानिक, हर शिविरार्थियों की जाँच पड़ताल करते हैं। साधना की सफलता का अनुमान बहुत कुछ इस आधार पर भी लग जाता है।

शान्तिकुंज आश्रम के निवासियों में से अधिकांश उच्चशिक्षित, सेवा साधना में उच्चस्तरीय तत्परता के साथ निरत और ब्राह्मणोचित्त में पूरी तरह सन्तुष्ट और उल्लसित रहकर देखने वाले यह समझ करते हैं, कि व्यवहार में अध्यात्म तत्त्वज्ञान और नीति संम का समावेश कितना सहज और सुखद है।

पुरातन तीर्थ स्थानों में उच्चस्तरीय विशेषतायें आदि से अन्त तक भरी रहती थीं। प्रयत्न किया गया है कि लगभग वैसा वातावरण यहाँ अदृश्य रूप से बना रहे। तक्षशिला, नालन्दा विश्वविद्यालयों में ऐसी ही विशेषताएँ थीं जिनके कारण वही शिक्षा-साधना करने वाले नर रत्न बनकर निकलें। जिनकी स्थिति इस योग्य हो उन्हें यहीं के वातावरण में रहकर वह तपश्चर्या करनी चाहिए। गंगा जल पीना, गंगा स्नान, आहार सम्बन्धी विशेष प्रतिबन्धों का पालन करने वाले, नियमित प्रकाश एवं अनुदान पाने वाले यह अनुभव करेंगे कि उनकी साधना प्रगति पथ पर द्रुत गति से अग्रसर हो रही है। ब्रह्मवर्चस् का निर्माण जिन दिव्य शक्तियों ने जिस दिव्य प्रयोजन के लिए कराया है वे इस बात के लिए सजग रहेगी कि उनकी इस प्रयोगशाला में जो उत्पादन हो उसकी क्वालिटी घटिया न रहे। घटियापन में उत्पादित सामग्री से उत्पादनकर्त्ता और कारखाने की सम्मिलित रूप से बदनामी होती है। सामान्य मनुष्य असफलता और बदनामी से बचना चाहते हैं तो ब्रह्मवर्चस् के सूत्र संचालक ही क्यों अपने सिर यह अपयश आने देंगे।

दो माह के सत्रों में २४ लक्ष का नहीं मात्र सवा लक्ष का लघु पुरश्चरण कराया जाता है। उसके साथ योग साधना की पाँच धारायें ध्यान, प्राणायाम, त्राटक, नाद एवं मुद्रा आदि को भी जोड़कर रखा जाता है। साधक के स्तर के अनुरूप उसे इन धाराओं के विभिन्न स्तरों का निर्देश देने की व्यवस्था रखी जाती है। गायत्री की पंचमुखी उपासना, पंचकोष अनावरण एवं कुण्डलिनी जागरण प्रक्रिया योग की इन्हीं धाराओं के विभिन्न प्रकार के संयोग प्रयोगों से सम्भव है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

ब्रह्मवर्चस द्वारा वानप्रस्थ परम्परा का पुनर्जीवन प्रधान लक्ष्य है। प्रशिक्षण लगभग उसी स्तर का है। मात्र भजन, पूजन ही पर्याप्त नहीं होता। प्रखर साधना में जीवन को पवित्र और परामर्थ परायण भी बनाना पड़ता है। आत्म साधना और लोक-साधना का खाद पानी पाकर ही साधना का कल्प वृक्ष बढ़ता और फलता-फूलता है। यह तीनों ही प्रयोजन वानप्रस्थ में सधते हैं। भारतीय संस्कृति का मेरुदण्ड वही है। इसी खदान में से ऐसे लोकसेवी निकलते रहे हैं जो व्यक्ति को परिष्कृत और समाज को समुन्नत बना सकने में समर्थ सिद्ध हो सके। आज की साधु संस्थाओं में निठल्ले पड़े रहने, दिन काटते रहने भर की सुविधा तो है, पर वैसी परिस्थितियाँ जिन्हें अस्पताल, विद्यालय के शोध संस्थान एवं प्रयोगशाला की उपमा दी जा सके, कदाचित ही कहीं मिलेगी। ब्रह्मवर्चस् ने इस अभाव की पूर्ति की है। अस्तु उसे आज की स्थिति में अनुपम ही कहा जा सकता है।

उपासना, साधनात्मक नियमों के अतिरिक्त ब्रह्मविज्ञान एवं सेवा साधना के अभ्यास क्रम की व्यवस्था एवं रूपरेखा आदर्श वानप्रस्थ के अनुरूप ही बनायी गयी है। जीवन की अगणित धाराओं को माया के भूल भटकाव से बचाकर ब्रह्ममुख बनाने के लिए किसे, कब, किन परिस्थितियों में क्या करना चाहिए यह जाने बिना वानप्रस्थ स्तर के उत्तरदायित्व पूरे नहीं किये जा सकते। सेवा साधना के सूत्रों को जीवन में उतारने का व्यवस्थित अभ्यास भी उसी के अनुरूप होना आवश्यक है, अन्यथा इच्छा और ज्ञान होते हुए भी कुछ करना सम्भव नहीं होगा।

वानप्रस्थ जीवनचर्या अपनाने वालों के लिए लोकमंगल के धर्म प्रचार का एक उपयोगी तन्त्र भी खड़ा किया जाना है। अन्यथा हर व्यक्ति अपने बूते वह कर भी नहीं सकता। स्वतन्त्र रूप से धर्म प्रचार करने के लिए व्यक्ति को कठिनाई पड़ती है। उसका परिचय कम रहने से कर्मक्षेत्र भी छोटा रहता है और प्रामाणिकता भी संदिग्ध रहती है। मिशन का अंग बनकर धर्म प्रचार के क्षेत्र में उतरने की उपयोगिता एकाकी प्रयत्नों की अपेक्षा सैकड़ों गुनी अधिक है। मिशन का सुविस्तृत कार्यक्षेत्र देश-देशान्तरों में बिखरा पड़ा है। भारत के कोने-कोने में उसका विस्तार है। मिशन की प्रामाणिकता का लाभ उसमें पले पोसे साधकों को सहज ही उत्तराधिकार में मिल जाता है। अधिक व्यापक क्षेत्र में काम करने—अधिक विज्ञ जनों का सहयोग पाने—अधिक लोगों के बीच यश पाने एवं अधिक सेवा करने का जो सुयोग ब्रह्मवर्चस के साधकों को मिल सकता है; उससे उन्हें वंचित ही रहना पड़ेगा जो अलग-थलग रहकर अकेले ही काम करना चाहते हैं। तिनकों से मिलकर रस्सी और सीकों से मिलकर बुहारी बनने की बात सर्वविदित है। संयुक्त शक्ति के सहारे ही बड़े कार्य सम्भव होते हैं। सेना का अंग रहने की स्थिति में किसी योद्धा को अपने पुरुषार्थ को बढ़ाने एवं प्रकट करने का जो अवसर मिलता है वह घर रहकर योद्धा बनने के एकाकी प्रयत्न करने वाले को कहाँ मिल सकता है ?

जिन्हें चुंचू प्रवेश करना हो जहाँ कहाँ का जैसा-तैसा स्वाद चखना हो वे इधर-उधर भटकते हुए आधी-अधूरी साधना करते रहे, पर जिन्हें किसी ठोस परिणाम की अपेक्षा है, उन्हें ब्रह्मवर्चस जैसे साधन सम्पन्न आश्रय में ही अपने सुव्यवस्थित प्रयास चलाने चाहिए। साथ ही ब्रह्मवर्चस में रहकर साधना करने और घर रहकर किसी प्रकार पहिया घुमाते रहने से अस्पताल की भरती और चलती फिरती चिकित्सा जैसा अन्तर रहेगा। जो सफलता मिलने में अन्यत्र दस वर्ष लगेंगे। उसे इस उपयुक्त वातावरण में एक वर्ष में भी पूरा किया जा सकेगा।

● ●

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

साधना की सफलता के दो आधार-अवलम्बन

सद्गुरु की प्राप्ति—एक दिव्य वरदान

सद्गुरु की महिमा गाते-गाते शास्त्रकार थकते नहीं। मनीषियों ने निरन्तर यही कहा है कि आत्मिक प्रगति के लिए गुरु की सहायता आवश्यक है। इसके बिना आत्मकल्याण का द्वार खुलता नहीं। साधना सफल होती नहीं। सामान्य जीवन-क्रम में माता, पिता और गुरु को देव माना गया है और उनकी अभ्यर्थना समान रूप से करते रहने का निर्देश किया गया है।

जिस सद्गुरु का माहात्म्य वर्णन शास्त्रकारों ने किया है वह वस्तुतः मानवी अन्तःकरण ही है। निरन्तर सद्शिक्षण और ऊर्ध्वगमन का प्रकाश दे सकना इसी केन्द्र तत्त्व के लिए सम्भव है। बाहर के गुरु-शिष्य की वास्तविक मनःस्थिति का बहुत ही स्वल्प परिचय प्राप्त कर सकते हैं अस्तु, उनके परामर्श भी अधूरे ही रहेंगे। फिर कोई बाहरी गुरु हर समय शिष्य के साथ नहीं रह सकता जबकि उसके सामने निरूपण और निराकरण के लिए अगणित समस्याएँ पग-पग पर क्षण-क्षण में प्रस्तुत होती रहती हैं। इनमें से किसका किस प्रकार समाधान किया जाय? इसका मार्गदर्शन करने के लिए किसी व्यक्ति विशेष पर निर्भर नहीं रहा जा सकता, भले ही वह कितना ही सुयोग्य क्यों न हो। सुयोग्य व्यक्ति अपने गज से सबको नाप सकते हैं और ऐसी सलाह दे सकते हैं जो उन्हीं के लिए फिट बैठतीं। दूसरों की स्थिति में भिन्नता रहने से परामर्श का स्तर भी बदल जाता था—यह अन्तर कौन करे ? इसे केवल अपना अन्तःकरण ही कर सकता है। क्योंकि भीतरी और बाहरी परिस्थितियों की वास्तविक जानकारी जितनी अपने आपको हो सकती है उतनी और किसी को नहीं।

अपने अन्तःकरण को निरन्तर कुचलते रहने, उसकी पुकार को अनसुनी करते रहने से आत्मा की आवाज मंद पड़ जाती है। पग-पग पर अत्यन्त आवश्यक और अत्यन्त महत्त्वपूर्ण प्रकाश देते रहने का उसका क्रम शिथिल हो जाता है। आत्मा की अवज्ञा करते रहने वालों को ही दुर्बुद्धिग्रस्त और दुष्कर्म लिप्त पाया जाता है अन्यथा सजीव आत्मा की प्रेरणा सामान्य स्थिति में इतनी प्रखर होती है कि कुमार्ग का अनुसरण कर सकना मनुष्य के लिए सम्भव ही नहीं होता। यह आत्मिक प्रखरता ही वस्तुतः सद्गुरु है इसी का नमन, पूजन और परिपोषण करना गुरु भक्ति का यथार्थ स्वरूप है।

गुरु, दीक्षा इस व्रत धारण का नाम है कि "हम अन्तरात्मा का अनुसरण करेंगे।" ऐसा निश्चय करने वाला व्यक्ति मानवोचित चिन्तन और कर्तृत्व से विरत नहीं हो सकता जैसे ही अचिन्त्य चिन्तन मन क्षेत्र में उभरता है वैसे ही प्रतिरोधी देवत्व उसके दुष्परिणामों के सम्बन्ध में सचेत करता है और भीतर ही भीतर एक अन्तर्द्वन्द्व उभरता है। यदि अन्तःचेतना को कुचल-कुचलकर मूर्छित न बनाया गया हो तो वह इतनी प्रखर होती है कि अचिन्त्य चिन्तन के साथ विद्रोह खड़ा कर देती है और उस अवांछनीय विजातीय तत्त्व के पैर उखाड़ कर ही दम लेती है।

शास्त्रकारों ने सद्गुरु का वंदन करते हुए उसे ब्रह्मा, विष्णु, महेश की उपमा दी है। परमानन्ददायक परब्रह्म कहा है। यह उपमा किसी व्यक्ति विशेष के लिए प्रयुक्त नहीं हो सकती भले ही वह कितना ही सुयोग्य क्यों न हो! यह वर्णन विशुद्ध रूप से परिष्कृत अन्तःकरण के लिए ही किया गया है। गुरु को गोविन्द से बढ़कर मानने की मान्यता अन्तरात्मा को परमात्मा का उपलब्धि आधार समझने के लिए ही प्रतिष्ठापित की गई है। निरन्तर सत्परामर्श देने के लिए अहर्निशि साथ रहना उसी के लिए सम्भव है। अपनी वस्तुस्थिति को समझने और तदनुरूप प्रगति पथ पर आगे बढ़ने का क्रम निर्धारण कर सकना उसी के लिए सम्भव है। अस्तु, सद्गुरु की उपमा ऐसी परिष्कृत और प्रखर अन्तरात्मा को ही दी गई है जो अवांछनीयता का डटकर प्रतिरोध खड़ा कर सके और अकर्म में उद्यत उन्मुक्त हाथी जैसे दुःस्साहस को जंजीरों में जकड़ कर उलटा टाँग सके।

व्यक्ति विशेष को गुरु मानने की भी आवश्यकता पड़ती है, पर उसका कार्य सद्गुरु की पहचान करा देना—उसका भक्त, उपासक बना देना भर है। इतने भर से उसकी आवश्यकता पूरी हो जाती है। यात्रा पूरी करने में टाँगों की ही प्रधान भूमिका रहती है लाठी तो सहारा भर देती है। सद्गुरु हमें पार उतारते हैं उन्हें प्राप्त करने के लिए शरीरधारी गुरु भी अपने ढंग की आरम्भिक किन्तु महत्त्वपूर्ण भूमिका सम्पन्न करते हैं इसलिए पूजन-वन्दन उनका भी किया जाता है।

अध्यात्म साधना के क्षेत्र में प्रगति करने के लिए प्रत्यक्ष गुरु का सहयोग नितान्त आवश्यक है। राम और लक्ष्मण का युग्म ही लंका विजय में समर्थ हुआ था। महाभारत की सफलता कृष्ण और अर्जुन के मिलने ने सम्भव की थी। छात्र कितना ही परिश्रम करे बिना शिक्षक के मौखिक या लिखित ज्ञान-दान के बिना उच्च शिक्षा प्राप्त कर सकने में समर्थ नहीं

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

होता। कला, शिल्प विज्ञान, चिकित्सा जैसे महत्त्व पूर्ण विषयों के विद्यार्थी मात्र मौखिक ही नहीं क्रियात्मक व्यावहारिक शिक्षा भी प्राप्त करते हैं; इसके बिना वे अपने विषय में निष्णात पारङ्गत नहीं हो सकते।

गुरु और शिष्य मिलकर यही प्रयोजन करते हैं। कान में मन्त्र फूँक देना या कर्मकाण्ड विधि-विधान बना देने से काम नहीं चल सकता। उन्हें अपनी शक्ति का एक अंश भी देना पड़ता है। इस अनुदान के बिना आत्मिक प्रगति के पथ पर बहुत दूर तक नहीं चला जा सकता। पहाड़ों की ऊँची चढ़ाई चढ़ने के लिए लाठी का सहारा लेना पड़ता है। छत पर चढ़ने के लिए सीढ़ी का अवलम्बन चाहिए। यही प्रयोजन आत्मिक प्रगति के पथ पर चलने वाले पथिक के लिए उसका मार्ग दर्शक एवं साथी सहयोगी पूरी करता है। गुरु की आवश्यकता इसी प्रयोजन को पूर्ण करने के लिये पड़ती है।

माता के उदर में रखे बिना, अपना रक्त-माँस दिये बिना, दूध पिलाये और पालन किये बिना भ्रूण की जीवन प्रक्रिया गतिशील नहीं हो सकती। बालक भोजन, वस्त्र, आदि की सुविधाएँ स्वयं उपार्जित नहीं कर सकता उसे इसके लिये अभिभावकों की सहायता अभीष्ट होती है। छात्र अपने आप पढ़ तो सकता है पर उसे पुस्तक, फीस आदि के खर्च पिता से और शिक्षण सहयोग अध्यापक से प्राप्त करना पड़ता है इसके बिना उसका शिक्षा क्रम मात्र एकाकी पुरुषार्थ से नहीं चल सकता। माता-पिता अपनी सन्तान का पालन-पोषण करते हैं वे बच्चे बड़े हो जाने पर अपने-अपने बच्चों के लालन-पालन की जिम्मेदारी उठाते हैं। यही क्रमानुगत परम्परा चलती रहती है। अध्यात्म मार्ग की प्रगति प्रक्रिया भी इसी प्रकार चलती है। गुरु अपने शिष्य को अपनी तप पूँजी प्रदान करता है तदुपरान्त शिष्य भी उसे अपने लिये दबा कर नहीं बैठ जाता वरन् उस परम्परा को अग्रगामी रखते हुए अपने छात्रों की सहायता करता है।

यों धर्म के दस लक्षण और यम नियम के दस योग आधारों का पालन करते हुए कोई भी व्यक्ति सहज सरल रीति-नीति से जीवन लक्ष्य प्राप्त कर सकता है। न इसमें किसी गुरु की आवश्यकता है न शिष्य की। राजमार्ग पर सही पैरों से चल पड़ने वाला व्यक्ति-मील के पत्थरों को देखते गिनते यथा स्थान पहुँच सकता है पर जिसे उस यात्रा के समीपवर्ती अद्भुत स्थलों को देखना, जानना और वहाँ मिलने वाली उपलब्धियों से लाभान्वित होना हो उसे उस क्षेत्र से परिचित और उपलब्ध हो सकने वाली वस्तुओं को देने-दिलाने में कुशल किसी अनुभवी सहयोगी की आवश्यकता पड़ती है। यदि यह सुयोग न मिल सके तो फिर यात्रा चलती रहती है पर वह नीरस एवं अतिरिक्त उपलब्धियों से रहित एक गतिशीलता मात्र ही रह जाती है। अध्यात्म पथ में प्रगति करते हुए—उस यात्रा से सम्बन्धित विभूतियों को प्राप्त करते हुए, हर्षोल्लास का आनन्द लेते चलना हो तो फिर कुशल सहयोगी की सहायता अनिवार्य ही हो जायेगी। गुरु-शिष्य का सम्मिलन सम्मिश्रण उसी आवश्यकता की पूर्ति करता है।

मेडिकल कॉलेज में पढ़ाई जाने वाली पुस्तकों में वह सब कुछ लिखा है जो वहाँ पढ़ाया जाता है अथवा डॉक्टर बनने के लिये जो जानना चाहिए किन्तु सर्जरी में कोई छात्र तब तक निष्णात नहीं हो सकता जब तक कि उसे उस तरह की व्यावहारिक शिक्षा—कुशल सर्जन के तत्वावधान में न मिले। यों आपरेशन की सारी प्रणाली चित्रों सहित पुस्तकों में लिखी रहती है। फिर भी प्रत्यक्ष पथ प्रदर्शन की आवश्यकता बनी ही रहती है। इन्जीनियरिंग, कला, संगीत, युद्ध-विद्या, रसायन आदि के बारे में भी यही बात है। ऊँची कक्षाओं की बात छोड़िये बाल कक्षा के बालकों के हाथ सचित्र बाल पोथी थमा देने पर भी वे अक्षर और अंक तब तक नहीं याद कर पाते जब तक कि अध्यापक का प्रत्यक्ष सहयोग उन्हें प्राप्त न हो। फिर आत्मिक प्रगति जैसे अप्रत्यक्ष अप्रचलित और दुरूह विषय का प्रशिक्षण तो एकाकी बन ही कैसे पड़ेगा।

रामकृष्ण परमहंस बनने के लिए जन्म-जन्मान्तरों की कठोर साधना अभीष्ट है पर विवेकानन्द बनना सरल है। समुद्र बनना कठिन है पर उसका पानी लेकर आकाश में बादल की तरह उड़ने लगना सरल है। समर्थगुरु रामदास बनने के लिये जन्म की कठिन गति और तलवार की धार पर चलने जैसी साधना करने का साहस सामान्य व्यक्तियों के पास नहीं होता। शिवाजी के रूप में एक नगण्य से व्यक्तित्व वाले बालक का विकसित हो जाना भी सरल है। पारसमणि बनना कठिन है पर लोहे का उसे छूकर सोना बन जाना सरल है। चाणक्य जैसी अग्नि तत्त्व का प्रतिनिधित्व कर सकने वाली सत्ता बन सकना हर किसी का काम नहीं। पर एक दासी पुत्र का दिग्विजयी सम्राट बनकर सफल होना सरल है। बुद्ध जैसी प्रतिभाएँ कभी-कभी ईश्वरीय इच्छानुसार अवतरित होती हैं पर उनकी छाया से अशोक, आनन्द, अंगुलिमाल, आम्रपाली आदि असंख्य व्यक्ति लघुता की परिधि लाँघते हुए महत्ता का वरण कर सकते हैं। गाँधी कभी-कभी ही उत्पन्न हो सकते हैं पर उनका अनुगमन करने वाले व्यक्ति राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री, लोक नेता और ऐतिहासिक महापुरुषों की पंक्ति में अपनी गणना सहज ही करा सकते हैं।

आत्मिक प्रगति की उपलब्धियाँ—भौतिक प्रगति की तुलना में असंख्य गुनी सामर्थ्य सम्पन्न और हर्षोल्लासमय हैं। उन्हें प्राप्त कर सकना मानव जीवन की सबसे बड़ी और सबसे महान सफलता है। जो इस दिशा में बढ़ सका समझना चाहिये हर दृष्टि से कृतकृत्य हो गया।

इस मार्ग पर चलने के इच्छुक साधक को अनुभवी और सही मार्गदर्शक की आवश्यकता अनिवार्य रूप से जुटानी पड़ती है। साथ ही यह भी ध्यान रखना पड़ता है कि कोई विदूषक गुरु पद का प्रहसन रचे न बैठा हो और अपने साथ-साथ अनुगमनकर्त्ता को भी न डुबा रहा हो। सही मार्ग दर्शन की तलाश में निकले हुए आत्म पथ के पथिक को जहाँ श्रद्धालु होना चाहिए वहाँ सतर्क भी। अन्यथा इस धूर्तता के युग में किसी अहेरी के जाल में फँसकर प्रगति तो दूर जो पास में था उसे भी गँवा बैठेगा। जिन्हें समर्थ, आत्मबल सम्पन्न और अनुभवी गुरु का प्रत्यक्ष मार्गदर्शन मिल गया तो समझना

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org

चाहिए कि आत्मिक प्रगति के लिए एक सशक्त अवलम्बन प्राप्त हो गया। ऐसे गुरु न केवल शिष्य का साधनात्मक मार्गदर्शन करते हैं वरन् अपनी शक्ति का एक अंश देकर साधक को आत्मबल से अनुग्रहित करते हैं। साधना ग्रन्थों के अलंकारिक वर्णनों में उस आदान-प्रदान की प्रक्रिया को ही 'शक्तिपात' नाम से सम्बोधित किया गया है।

गुरु द्वारा अपनी शक्ति को हस्तान्तरित करने शक्तिपात द्वारा शिष्य की क्षमताओं को विकसित करने की घटनाओं का उल्लेख योग ग्रन्थों में अनेकों स्थानों पर मिलता है। पहले योग मार्ग पर चलने, साधना पथ पर बढ़ने वाले प्रत्येक व्यक्ति एवं साधक के मन में यह जिज्ञासा उठती है कि शक्तिपात का स्वरूप क्या है? उसकी प्रक्रिया क्या है। इस प्रक्रिया में वैज्ञानिकता का अंश कितना है। शक्तिपात की घटनाएँ यदि सच हैं तो क्या प्रत्येक व्यक्ति ऐसे समर्थ व्यक्ति-व्यक्तियों, महापुरुषों से यह अनुपम उपहार प्राप्त कर सकता है? यदि ऐसा सम्भव है तो उसका स्वरूप क्या है? सामान्य व्यक्ति इसकी परख किस प्रकार कर सकता है? आदि प्रश्न ऐसे हैं जो विचारणीय हैं। साधना मार्ग की ओर उन्मुख हर साधक यह जानने की इच्छुक होता है।

विवेकानन्द संचयन पुस्तक में उल्लेख मिलता है कि रामकृष्ण की अलौकिक शक्ति के संचार का अनुभव विवेकानन्द को हुआ है। उस अवधि में उन्हें दिव्य अनुभूतियाँ हुईं जो वर्णनातीत हैं। इसी प्रकार का प्रसंग योगानन्द के जीवन चरित्र एवं आटोबायोग्राफी ऑफ एथोपी' को पढ़ने पर भी मिलता है। श्री माताजी एवं अरविन्द की पुस्तकों में भी इसी प्रकार का वर्णन आता है। यह पढ़कर प्रत्येक के मन मे वास्तविकता जानने की इच्छा होती है। जो उचित है और स्वाभाविक भी।

गुरु-शिष्य परम्परा में शक्तिपात की यथार्थता पर शक नहीं किया जा सकता। गुरु के अनुदानों को पाकर सामान्य व्यक्ति भी असामान्य महापुरुषों की श्रेणी में जा पहुँचे, इन प्रसंगों से पुराण इतिहास के पन्ने भरे पड़े हैं, पर प्रचलित भ्रान्तियों ने शक्तिपात के स्वरूप को ऐसा बना दिया है जिससे सामान्य व्यक्ति दिग्भ्रान्त हो जाये। शक्तिपात के नाम से तथाकथित गुरुओं ने ऐसे जाल जंजाल खड़े किये हैं जिन्हें देखकर कोई भी व्यक्ति भटक सकता है। अतएव इसके वास्तविक स्वरूप को समझना आवश्यक है।

साधना पथ में गुरुवरण करना होता है 'गुरु' का अर्थ है अन्धकार, 'र' से अभिप्राय है प्रकाश। जो अन्धकार से प्रकाश की ओर ले चले उसे गुरु कहते हैं, गुरु भी दो हैं। एक तो अपने अन्तरात्मा के रूप में बैठा प्रेरणा देता रहता है। दूसरा वह जिसे व्यक्ति के रूप में वरण करते हैं। महत्ता दोनों की ही हैं। मानवी दृष्टि स्थूल है। इस कारण वह सूक्ष्म आत्म प्रेरणाओं को नहीं समझ पाती। आत्मबल सम्पन्न गुरु का वरण इसीलिए किया जाता है। अतः गुरू (आत्मा) को जगाने का भी काम गुरु ही करता है, अपने आत्मबल द्वारा वह शिष्य में ऐसी प्रेरणाएँ भरता है जिससे वह सद्मार्ग पर चल सके। साधना मार्ग के अवरोधों एवं विक्षोमों के निवारण में गुरु का असाधारण योगदान होता है। मानवी सत्ता असीम सामर्थ्यों से युक्त है। सम्भावनाएँ अनन्त हैं। पर जब तक यह आत्मबोध न हो जाय अन्तःशक्ति सम्पन्नता का लाभ मनुष्य को नहीं मिल पाता। गुरु की यही भूमिका होती है। वह शिष्य को अन्तःशक्ति से परिचित ही नहीं कराता वरन् उसे जागृत एवं विकसित करने के हर सम्भव उपाय भी बताता है। उसकी समर्थता का लाभ साधक को आत्म-बल एवं मनोबल के रूप में मिलता है। जो साधक को अवांछनीयताओं से लड़ने, अन्तः विकारों को उखाड़ने की सामर्थ्य देता है।

गुरु का यह अनुदान शिष्य अपनी आन्तरिक श्रद्धा के रूप में उठाता है। जिस शिष्य में आदर्शों एवं सिद्धान्तों के प्रति जितनी अधिक निष्ठा होगी वह गुरु के इस अनुदान से उतना ही अधिक लाभान्वित होता है। प्रत्येक शिष्य अपनी श्रद्धा पूँजी के अनुरूप उसे प्राप्त करता है। समर्थ गुरु के अनुग्रह इसी रूप में बरसते हैं जिनको प्राप्त कर शिष्य अपनी सामर्थ्य बढ़ाता तथा व्यक्तित्व सम्पन्न बनता जाता है। शक्तिपात का यही दर्शन है। यह एक समयसाध्य एवं साधनासाध्य प्रक्रिया है जो अपनी श्रद्धा अभिपूरित साधना द्वारा साधक गुरु से प्राप्त करता है। यह एक आकस्मिक क्रिया नहीं है जिसके द्वारा तत्काल चमत्कारी शक्तियाँ प्राप्त की जा सकती हैं। वरन् एक लम्बे समय तक चलने वाली साधना पद्धति है जिसके अवलम्बन से शिष्य अपनी शक्तियों का विकास करता है। कुसंस्कारों का निष्कासन कर व्यक्ति व्यक्तित्व सम्पन्न बनता है।

सद्गुरु का शक्तिपात इसी रूप में होता है। शिष्य को व्यक्तित्व सम्पन्न बनाने आत्मबल बढ़ाने के रूप में असामान्य पक्ष भी है। पर वह सर्वसुलभ नहीं। पात्रता के अभाव में संकट भी है। वह किन्हीं किन्हीं को प्राप्त होती है। जिन्होंने अपनी क्षमता इस स्तर तक विकसित कर ली है कि शक्ति के अवतरण को धारण कर सकें ऐसे व्यक्तियों को दिव्य अनुदान भी मिलते हैं पर यह प्रक्रिया उच्चस्तरीय है। सर्वजनीन नहीं। विवेकानन्द, योगानन्द को गुरु का शक्तिपात किस रूप में हुआ था, यह विवादास्पद प्रश्न है। उन अनुभूतियों का वर्णन कर सकना सम्भव नहीं। पर गुरु के अनुग्रह की फलश्रुति क्या निकली, उनके जीवन में क्या परिवर्तन आया इससे सभी परिचित हैं। लोहा जिस प्रकार पारस के सम्पर्क में आकर सोना बन जाता है। उसी प्रकार उनके जीवन में आमूल-चूल परिवर्तन आया। जन प्रवाह में बहते हुए ढर्रे के जीवन से मुख मोड़कर वह मार्ग अपनाया जो कठिनाइयों से भरा था। संघर्षों का सहर्ष आह्वान किया तथा उनसे व्यक्तित्व को इतना परिष्कृत किया जिससे सभी लोग प्रकाश एवं प्रेरणा ले सकें। विवेकानन्द में रामकृष्ण परमहंस का व्यक्तित्त्व झाँकता दिखाई पड़ता था। शक्तिपात के समय क्या अनुभूति हुई? कैसे दृश्य दिखाई पड़े जैसे प्रश्नों से कोई लाभ नहीं। उसकी परिणति क्या हुई महत्त्व उसका है। चरित्र की उत्कृष्टता एवं व्यक्तित्व की समग्रता ही गुरु अनुग्रह की वास्तविक उपलब्धि है। यह जिस भी साधक में जितनी अधिक मात्रा में दीख पड़े समझा जाना चाहिए कि गुरु का उतना ही अधिक शक्तिपात उस शिष्य में हुआ है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

यह एकांकी चलने वाली प्रक्रिया नहीं है। वरन् दोहरी पद्धति है। गुरु के अनुदान बरसते हैं और शिष्य को अपनी सघन श्रद्धा का आरोपण करना पड़ता है। श्रद्धा की परिणिति चरित्र निष्ठा के रूप में होती है। पात्रता के विकास द्वारा ही साधक अनुदानों का लाभ उठा पाते हैं।

आत्मिक प्रगति का मूल आधार—'श्रद्धा'

एक ही मन्त्र, एक ही साधना पद्धति और एक ही गुरु के—मार्गदर्शन का अवलम्बन लेने पर भी विभिन्न साधकों की आत्मिक प्रगति अलग-अलग गति से होती है। कोई तेजी से आत्मिक विकास की सीढ़ियाँ चढ़ने लगता है तो कोई मंथरगति से आगे बढ़ता है। इसका क्या कारण है? मनीषियों ने इसका उत्तर एक ही वाक्य में देते हुए कहा है कि 'अध्यात्म-क्षेत्र में श्रद्धा की शक्ति ही सर्वोपरि है। जिस प्रकार शक्ति के आधार पर भौतिक हलचलें और गतिविधियाँ सम्पन्न होती तथा अभीष्ट उपलब्धियाँ हस्तगत होती हैं, उसी प्रकार आत्मिक क्षेत्र में श्रद्धा ही अपनी सघनता या विरलता के आधार पर चमत्कार प्रस्तुत करती है। श्रद्धा विहीन उपचार सर्वथा निष्प्राण रहते हैं और उनमें किया गया श्रम भी प्रायः निरर्थक चला जाता है।' श्रद्धा का महत्त्व बताते हुए गीताकार ने कहा है—

श्रद्धामयोऽयं पुरुषो यो यच्छ्रद्ध स एव सः।

(गीता १७/३)

अर्थात्—यह पुरुष श्रद्धामय है। जो जिस श्रद्धा वाला है अर्थात् जिसकी जैसी श्रद्धा है वह स्वयं भी वही अर्थात् उस श्रद्धा के अनुरूप ही है।

यह श्रद्धा ही है जो निर्जीव पाषाण प्रतिमाओं में भी प्राण भर देती है और उन्हें अलौकिक चमत्कारी क्षमता से सम्पन्न बना देती है। मीरा ने कृष्ण प्रतिमा को अपनी श्रद्धा के बल पर ही इतना सजीव बना लिया था कि वह प्रत्यक्ष कृष्ण से भी अधिक प्राणवान प्रतीत होने लगी थी। श्रद्धा विश्वास के सम्बन्ध में रामायण में एक सुन्दर प्रसंग आता है। सेतुबन्ध के अवसर पर रीछ, वानरों ने राम के प्रति अपने विश्वास का आधार ही लेकर समुद्र में पत्थर तैरा दिए थे, किन्तु स्वयं राम ने अपने हाथों से जो पत्थर फेंके वे नहीं तैर सके। इसी प्रसंग को लेकर शास्त्रकारों ने कहा है, **"राम से बड़ा राम का नाम"** पर नाम में कोई शक्ति नहीं है। शक्ति है उस श्रद्धा में जो अलौकिक सामर्थ्य उत्पन्न करती है, साधारण स्तर के व्यक्तियों को भी असंप्रज्ञात समाधि का सिद्धि श्रद्धा के आधार पर उपलब्ध होने का प्रतिपादन करते हुए महर्षि पातंजलि ने कहा है—

श्रद्धावीर्य स्मृति समाधि प्रज्ञापूर्वक इतरेषाम्।

(योगदर्शन १/२०)

अर्थात्—श्रद्धा वीर्य स्मृति समाधि और प्रज्ञापूर्वक सामान्य योगियों की जो विदेह और प्रकृतिलय नहीं है, असंप्रज्ञात समाधि सिद्ध होती है।

अध्यात्म क्षेत्र में श्रद्धा की शक्ति ही सर्वोपरि है। इस प्रकार शक्ति के आधार पर भौतिक हलचलें गतिशील होती हैं और उनके सहारे अभीष्ट उपलब्धियाँ हस्तगत होती हैं। उसी प्रकार आत्मिक क्षेत्र में 'श्रद्धा' ही मूल है। उसी की सघनता चमत्कार दिखाती है। श्रद्धा विहीन उपचार सर्वथा निष्प्राण रहते हैं और उनमें किया गया श्रम प्रायः निरर्थक चला जाता है। सामान्य लोकव्यवहार में भी दृढ़ता, श्रद्धा विश्वास के आधार पर ही आती है। आत्मविश्वास के बल पर ही कोई बड़े कदम उठा सकना सम्भव होता है। शौर्य और साहस आत्मविश्वास के ही नाम हैं। आशा और उत्साह के मूल में आत्मविश्वास ही काम करता है। परिवार में एक-दूसरे को स्वजन, घनिष्ठ एवं आत्मीय होने की मान्यता ही उन्हें पारस्परिक स्नेह सहयोग के सुदृढ़ सूत्र में बाँधे रहती है। यह मात्र श्रद्धा ही है जिसके आधार पर परिवारों में स्नेह दुलार का अमृत बरसता है और एक-दूसरे के लिए बढ़े-चढ़े त्याग करने को तत्पर रहता है। श्रद्धा की कड़ी टूट जाय तो फिर परिवारों का विघटन सुनिश्चित है वे तनिक-सी बातों पर अन्तः कलह के अखाड़े बनेंगे और देखते-देखते बिखर कर अस्त-व्यस्त हो जायेंगे।

कृषि, उद्योग, शिल्प, खेल आदि सब में अपने कार्यक्रम के सही होने का विश्वास रखकर ही चला जाता है। व्यवसायी एक-दूसरे पर विश्वास करके लेन-देन करते हैं। बैंकें बड़े-बड़े जोखिम उठाती हैं। उधार का आधार ही विश्वास है। कर्मचारियों के हाथ में व्यवसाय की लगाम रहती है, रसोईया भी विष देकर आसानी से सारे घर को मृत्यु की गोद में सुला सकता है। पत्नी सारी सम्पत्ति लेकर गायब हो सकती है। यह आशंकाएँ रहते हुए भी मनुष्य को विश्वास का ही सहारा लेना पड़ता है। अविश्वासी के लिए कोई कारोबार करना तो दूर आशंका ग्रस्त जीवन की भयंकरता का बोलना ही कठिन हो जायेगा और वह चैन से जीवित तक नहीं रह सकेगा। ऐसी स्थिति में कोई किसी पर अपने गुप्त भेद तक प्रकट न कर सकेगा और दुरावपूर्ण मनःस्थिति की घुटन में घुटता हुआ उद्विग्न विक्षिप्त स्तर की जिन्दगी जियेगा।

श्रद्धा और विश्वास के बिना भौतिक जीवन में भी गति नहीं, फिर अध्यात्म क्षेत्र का तो उसे प्राण ही कहा गया है। आदर्शवादिता में प्रत्यक्षतः हानि ही रहती है, पर उच्चस्तरीय मान्यताओं में श्रद्धा रखने के कारण ही मनुष्य त्याग-बलिदान का कष्ट सहन करने के लिए खुशी-खुशी तैयार होता है। ईश्वर और आत्मा का अस्तित्व तक प्रयोगशालाओं की कसौटी पर खरा सिद्ध नहीं होता। वह निश्चित रूप से श्रद्धा पर ही अवलम्बित है। मनुष्य का व्यक्तित्व जिसमें संस्कारों का—आदतों का गहरा पुट रहता है वस्तुतः श्रद्धा की परिपक्वता के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। भिन्न-भिन्न व्यक्तियों में भिन्न-भिन्न प्रकार की आदतें और मान्यताएँ अत्यन्त गहराई तक घुसी रहती हैं और वे उन्हें छोड़ने को सहज ही तैयार नहीं होते। यह संस्कार और कुछ नहीं चिरकाल तक सोचे गये, माने गये और व्यवहार में लाये गये अभ्यासों का ही परिणाम है। तथ्यों की कसौटी पर इन संस्कारों में से अधिकांश बेतुके और अन्धविश्वास स्तर के होते हैं, पर मनुष्य उन्हें इतनी मजबूती से पकड़े होता है कि उसके लिए वे ही 'सत्य' बन जाते हैं और

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सत्य और तथ्य कहकर वह उन पूर्वाग्रहों के प्रति अपनी कट्टरता का परिचय देता है उनके लिए लड़ने-मरने तक को तैयार हो जाता है। यह मान्यता परक कट्टरता और कुछ नहीं मात्र श्रद्धा द्वारा रची गई खिलवाड़ मात्र है।

तर्क की शक्ति का जन्म भी श्रद्धा के गर्भ में से ही होता है? यों तो तर्क विचारणा को जन्म देता है, श्रद्धा विश्वास को। पर विचारणा भी विचार के लिए आधार ढूँढ़ती है। आधार तभी बन सकता है जब विश्वास हो। अन्यथा तर्क बुद्धि तो किसी भी केन्द्र पर चिन्तन को केन्द्रीभूत नहीं कर सकती। यह तो तभी बन पाता है जब विश्वास के सहारे किसी भी विषय पर गम्भीरतापूर्वक विचार किया जाता है। दूसरे शब्दों में यह भी कहा जा सकता है कि श्रद्धा के अभाव में विचारणा—तर्क का प्रदुर्भाव सम्भव नहीं है। किसी विषय पर आस्था ही तर्कों का सृजन करती, उस पर सोचने, सत्यता को ढूँढ़ निकालने को प्रेरित करती है। श्रद्धा मानवी व्यक्तित्व के मूल में घुली-मिली है जिसके बिना एक क्षण भी नहीं रहा जा सकता। आगे बढ़ने, प्रगति करने की बात तो दूर रही। यह बात अलग है कि हम उसका अनुभव न कर सकें।

सूक्ष्म दृष्टि से देखा जाय तो स्पष्ट होगा कि सम्पूर्ण जीवन प्रवाह एवं उसकी उपलब्धियाँ वस्तुतः श्रद्धा की ही परिणिति है। माँ अपना अभिन्न अंग मानकर नौ माह तक अपने गर्भ में बच्चे का सेवन करती है। अपने रक्त माँस को काटकर शिशु को पोषण प्रदान करती है। श्रद्धा का यह उत्कृष्ट स्वरूप है जिसका बीजारोपण माँ बच्चे में संस्कार के रूप में करती है। निस्वार्थ भाव से उसको संरक्षण देती है। अनावश्यक भार कष्टों का जंजाल समझने का कुतर्क उठे तो नव शिशु प्रादुर्भाव ही सम्भव न हो सकेगा।

यह श्रद्धा ही है जिसके कारण बच्चा माँ के सीने से चिपकने, स्नेह-दुलार पाने के लिए लालायित रहता, रोता-कलपता रहता है। मूक-भाषा. वाणी से रहित नवशिशु की श्रद्धा एक मात्र माँ के ऊपर ही होती है। माता-पिता भी निश्छल हृदय से बच्चे के विकास के लिए हर सम्भव प्रयास करते हैं। खाने-पीने, स्वास्थ्य संरक्षण से लेकर शिक्षा-दीक्षा के झंझट भरे सरंजाम जुटाते हैं। समग्र विकास ही उनका एक मात्र लक्ष्य होता है। तर्क तो हर बात को उपयोगिता की कसौटी पर कसता है। इस आधार पर कसने पर माता-पिता को हर दृष्टि से घाटा ही घाटा दिखायी पड़ेगा। बात तर्क की मान ली जाय, तो बच्चे का अस्तित्व ही शंका में पड़ जायेगा। दृष्टिमात्र उपयोगितावादी हो जाय तथा यह परम्परा प्रत्येक क्षेत्र में चल पड़े, तो परिवार एवं समाज विश्रृंखलित हो जायेगा। सभ्यता को अधिक दिनों तक जीवित नहीं रखा जा सकेगा।

श्रद्धा ही पारिवारिक जीवन को स्नेह-सूत्र में बाँधे रहती है। सहयोग करने, अन्य सदस्यों के लिए अपने स्वार्थों का उत्सर्ग करने की प्रेरणा देती है। पारिवारिक विघटनों में इसका अभाव ही कारण बनता है। पति-पत्नी के बीच मनमुटाव, सदस्यों के बीच टकराहट का कारण अश्रद्धा है। तर्क एवं उपयोगिता की कसौटी पर कसने पर तो वृद्ध माता-पिता का महत्त्व भी समझ में नहीं आता। वे भार के रूप में ही दिखायी पड़ते हैं। किन्तु श्रद्धा दृष्टि जानती है कि उनका कितना ऋण चढ़ा है। उनके आशीर्वाद स्नेह को पाने की कामना आजीवन बनी रहती है। यह भाव दृष्टि तो श्रद्धा की ही उपलब्धि है। जो सदा एक युवक को माता-पिता के समक्ष नतमस्तक किये रहती है।

मनुष्य के व्यक्तित्व की ढलाई श्रद्धा की भट्टी के सान्निध्य में होती है। इस श्रद्धा तत्त्व की गरिमा को यदि स्वीकार किया जा सके तो यह भी मानना पड़ेगा कि उसे विकसित, परिष्कृत एवं परिपक्व करने के लिए आस्तिकता की मान्यता का अवलम्बन लेना आवश्यक है। ईश्वर के अस्तित्व की आस्था और उसके साथ तादात्म्य बिठाने के प्रयास में इतना लाभ प्रत्यक्ष मिलता है कि मनुष्य की आदर्शवादी निष्ठाएँ परिपक्व होती हैं और उसके सहारे व्यक्ति ऐसा बनता है जिसमें 'आत्मा' के अस्तित्व का परिचय भीतरी और बाहरी दोनों क्षेत्रों से प्राप्त किया जा सके।

श्रद्धा को महानता का बीज कह सकते हैं। वही उगता, बढ़ता और परिपुष्ट होता है जो जीवन वृक्ष को स्वर्गस्थ कल्पवृक्ष के समतुल्य बना देता है। चेतना का वर्चस्व उसी से निखरता है। नर-वानर का मानव, महामानव, अतिमानव की दिशा में बढ़ चलने का साहस एवं बल श्रद्धा के सहारे ही सम्भव होता है। श्रद्धा और अस्तिकता का एक-दूसरे के साथ अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है। ईश्वर का प्रत्यक्ष अनुग्रह श्रद्धा के रूप में ही मिलता है और जैसे इस तत्त्व की जितनी उपलब्धि हो जाती है उसके जीवन का वन्दनीय बनने की सम्भावना उसी अनुपात से परिपुष्ट होती चली जाती है। इस स्थिति को ऋद्धियों और सिद्धियों की जननी कहा जा सकता है। आस्तिकता का यह परोक्ष प्रतिफल है जिसमें सन्देह की कोई गुन्जायश नहीं है। पूजा का प्रत्यक्ष प्रतिफल मिलने में सन्देह होने पर भी इस श्रद्धा के वरदान को असाधारण वरदान की ही संज्ञा दी जा सकती है।

जीवन को किसी निर्दिष्ट ढाँचे में ढाल देने वाली, सबसे प्रबल एवं उच्चस्तरीय शक्ति श्रद्धा है। यह अन्तःकरण की दिव्यभूमि में उत्पन्न होकर समस्त जीवन को हरियाली से सजा देती है। श्रद्धा का अर्थ है—श्रेष्ठता के प्रति अटूट आस्था। यह आस्था जब सिद्धान्त एवं व्यवहार में उतरती है तो उसे निष्ठा कहते हैं। यही जब आत्मा के स्वरूप, जीवन दर्शन एवं ईश्वर भक्ति के क्षेत्र में प्रवेश करती है तो श्रद्धा कहलाती है।

आस्थाएँ प्रेरणा भरती हैं, गति देती हैं, बढ़ने के लिए गति और सोचने के लिए प्रकाश प्रस्तुत करती हैं। उत्कृष्टता की दिशा में बढ़ सकना आस्थाओं की उपस्थिति के बिना हो ही नहीं सकता। निष्ठा से संकल्प उठता है और संकल्प से साहस और पराक्रम उभर कर आता है। तन्मयता और तत्परता इसी अन्तःस्थिति में किसी प्रयास से नियोजित होती है और मन एवं कर्म का ऐसा स्तर बन पड़ने पर ही महत्त्वपूर्ण प्रगति सम्भव होती है। सोचने से पता चलता है कि बुद्धि की अपनी उपयोगिता होते हुए भी श्रद्धा की शक्ति असीम है। इसलिए श्रद्धा को ही जीवन कहा गया है। व्यक्तित्व और कुछ नहीं—श्रद्धा का प्रतिबिम्ब परिचय भर है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आत्मकल्याण चाहने वाले और ईश्वर प्राप्ति के विभिन्न प्रयासों के लिए इस शक्ति का उभार एवं अवलम्बन आवश्यक है। इसके बिना उस महान् लक्ष्य को प्राप्त नहीं किया जा सकता। अपने अन्तरात्मा में बैठे हुए परमात्मा को देखने, उसे प्राप्त करने का उपाय बताते हुए मनीषियों ने इसी श्रद्धा की गरिमा को प्रस्तुत किया है। रामचरितमानस में श्रद्धा को भवानी और विश्वास को शंकर बताया गया है। इन्हीं दोनों की सहायता से भगवान को प्राप्त किया जा सकता है।

मनुष्य स्थूल कम, सूक्ष्म अधिक है। वह भावनाओं के सहारे पैदा होता, भावनाओं में ही जीवित रहता और भाव जगत में ही विलीन होता है। भावनाओं के प्रति सम्मान ही श्रद्धा है। यह संवेदना जहाँ भी होगी वहीं सन्तोष की निर्झरिणी प्रवाहित हो रही होगी। भगवान् कृष्ण ने कहा है—

सत्वानुरूपा सर्वस्य श्रद्धा भवति भारत।
श्रद्धामनोऽयं पुरुषो यो यच्छ्रद्धः स एव सः॥

(गीता—१७/३)

अर्थात्—हे अर्जुन! यह सृष्टि श्रद्धा से विनिर्मित है जिसकी जैसी श्रद्धा होती है वह पुरुष वैसा ही बन जाता है अर्थात् बुराइयों के प्रति श्रद्धा व्यक्ति को समस्याओं में कैद कर देती है तो आदर्शों के प्रति आस्था मनुष्य जीवन को सुख-शान्ति और प्रसन्नता से भर देती है।

अन्तःकरण की उत्कृष्टता को श्रद्धा के नाम से जाना जाता है, उसका व्यावहारिक स्वरूप है भक्ति। यों साधारण बोलचाल में दोनों का उपयोग पर्यायवाची शब्दों के रूप में होता है। फिर भी कुछ अन्तर तो है ही। श्रद्धा अन्तरात्मा की आस्था है। श्रेष्ठता के प्रति असीम प्यार के रूप में उसकी व्याख्या की जा सकती है। भक्ति उसका व्यावहारिक रूप है। करुणा, उदारता, सेवा, आत्मीयता के आधार पर चलने वाली विभिन्न गतिविधियों को भक्ति कहा जा सकता है। देशभक्ति, आदर्श भक्ति, ईश्वर भक्ति आदि के रूपों में त्याग-बलिदान के, तप-साधना के, अनुकरणीय आदर्शवादिता के अनेकों उदाहरण इसी भक्ति भावना की प्रेरणा से बन पड़ते हैं।

आस्थाएँ-आकांक्षाएँ जब परिपक्व स्थिति में पहुँचती हैं और निश्चयपूर्वक लक्ष्य की ओर बढ़ती हैं तो उन्हें संकल्प कहते हैं। संकल्प की प्रचण्ड शक्ति सर्वविदित है। संकल्पों के धनी व्यक्तियों ने ही सामान्य साधनों और सामान्य अवसरों में भी चमत्कारी सफलताएँ उपलब्ध की हैं। संकल्प की प्रखरता मस्तिष्क और शरीर दोनों को अभीष्ट दिशा में घसीट ले जाती है और असंख्य अवरोधों से टकराती हुई उस लक्ष्य तक पहुँचाती है, जिसे आरम्भ में असम्भव तक समझा जाता था। पुरुषार्थियों की यश गाथा से इतिहास के पन्ने भरे पड़े हैं। वस्तुतः उन्हें संकल्प शक्ति का चमत्कार ही कह सकते हैं। यहाँ इतना और समझने की आवश्यकता है कि संकल्प उभर कर आने से पूर्व विश्वास बनकर मनःक्षेत्र में अपनी जड़ें जमाता है या उस बीज का प्रत्यक्ष पौधा संकल्प रूप में प्रकट होता है। विश्वास की प्रतिक्रिया ही संकल्प है। यही कारण है कि अन्तःकरण की उच्चस्तरीय आस्थाओं को श्रद्धा विश्वास का रूप दिया गया है। वे उत्कृष्ट स्तर के होने पर शिव पार्वती का युग्म बनते हैं और निकृष्ट होने पर आसुरी क्रूर कर्मों में इस प्रकार निरत दिखाई पड़ते हैं जैसा कि उपाख्यानों में दानवों एवं शैतान का चित्रण किया जाता है।

जिसकी जैसी श्रद्धा है वह वैसा ही है। क्रिया, विचारणा और भावना यही चेतना की तीन शक्तियाँ हैं। श्रेष्ठता की दिशा में जब वे बढ़ती हैं तो सत्कर्म सद्ज्ञान एवं सद्भाव के रूप में उन्हें काम करते देखते हैं। इन्हें सुविकसित करने के विज्ञान को अध्यात्म कहते हैं। ब्रह्म विद्या का विशालकाय ढाँचा इसी के निमित्त खड़ा किया गया है। चेतना को श्रेष्ठता के साथ जोड़ देने के प्रयास को ही योग कहते हैं। योग साधना की तीन ही प्रमुख धाराएँ हैं—कर्मयोग, ज्ञानयोग, भक्ति योग। इन्हीं के सहारे जीवन लक्ष्य प्राप्त होने की स्थिति बनती है। इसी त्रिवेणी में स्नान करने से परम पद की प्राप्ति का लाभ मिलता है।

उपरोक्त विवेचना के सहारे हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि मानव जीवन में सबसे बड़ी, सबसे ऊँची, सबसे समर्थ शक्ति 'श्रद्धा' की ही है। मनः स्थिति की परिस्थितियों को सृजन कर्त्ता कहा गया है। शरीर को जन्म तो माता-पिता के प्रयास से मिलता है, पर आत्मा को उत्कृष्टता, श्रद्धा और विश्वास रूपी दिव्यजननी और जनक की अनुकम्पा का फल माना जा सकता है। विधाता द्वारा भाग्य लिखे जाने के अलंकार में तथ्य इतना ही है कि अपना अन्तःकरण अपने स्तर के अनुरूप मनुष्य की प्रगति, अवनति आदि का ताना-बाना बुनता है। अदृश्य कृपा-दैवी अनुग्रह-आदि का तात्विक स्वरूप समझना हो तो उन्हें अन्तःकरण के ही वरदान, अभिशाप कह सकते हैं। लोक व्यवहार में कहा जाता है कि, 'मनुष्य अपने भाग्य का निर्माता आप है।' उत्थान और पतन की कुंजी पूरी तरह उसके अपने हाथ में है और वह सुरक्षित एवं सुनिश्चित रूप में अन्तःकरण में रखी रहती है। इसी चाबी को शास्त्रकारों ने आस्था, निष्ठा, श्रद्धा, भक्ति, विश्वास, संकल्प आदि के नामों से पुकारा है। भावनाओं और आकांक्षाओं के रूप में इसी तथ्य की अलग-अलग ढंग से व्याख्या की जाती है।

उल्लसित वर्तमान और उज्ज्वल भविष्य का निर्धारण पूर्णतया सत् श्रद्धा के हाथ में है। उसी का महत्त्व, मर्म, उपार्जन, अभिवर्द्धन सिखाने के लिए भूतकाल की कथा-गाथाओं को पुरातन उपाख्यानों में पुराण के नाम से जाना और जनाया जाता है। भूत, भविष्य और वर्तमान की सुखद सम्भावनाओं का निर्माण अन्तःकरण के जिस क्षेत्र से विनिर्मित होता है, उसका स्वरूप समझना हो तो एक 'श्रद्धा' शब्द का उपयोग करने से वह प्रयोजन पूरा हो सकता है।

बीज ही वृक्ष बनता है और श्रद्धा ही व्यक्तित्व का रूप धारण करती है, मनुष्य जो कुछ बनता है—जो कुछ पाता है वह समूचा निर्माण 'श्रद्धा' शक्ति के चमत्कार के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। यदि इस ब्रह्म विज्ञान के, आत्मविज्ञान के गूढ़ रहस्य को समझा जा सके तो प्रतीत होगा कि तत्त्वदर्शियों के वेदान्त प्रतिपादन सनातन सत्य की अयमात्मा ब्रह्म-प्रज्ञानं ब्रह्म, तत्त्वमसि, सोहम्, शिवोहम् सच्चिदानन्दोहम्, आदि सूत्र में घोषित किया है। पतन से बचने और उत्थान अपनाने का सुनिश्चित उपाय बताते हुए शास्त्रकार इस उत्तरदायित्व को

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

मनुष्य के अपने कन्धे पर ही लाद देते हैं, वे कहते हैं—**"उद्धरेत् आत्मनात्मानं-नात्मानं अवसादयेत्"** अर्थात् अपना उद्धार आप करो–अपने को गिराओ मत। उसका सुनिश्चित मत है कि उत्थान पतन की मुहिम हर मनुष्य स्वतः ही सम्भालता है। परिस्थितियाँ तो उसका अनुगमन भर करती हैं। दिशा निर्धारण और प्रगति प्रयास अपना होता है—साधन और सहयोग तो उसी चुम्बकत्व के सहारे खिंचते भर चले आते हैं। उत्थान या पतन में से जो भी अपना मन्तव्य हो—व्यक्तियों, साधनों एवं परिस्थितियों का सरंजाम भी उसी स्तर का जुटता चला जाता है। श्रद्धा की इसी गरिमा को देखते हुए अध्यात्म शास्त्र ने मानवी सत्ता में विद्यमान साक्षात् ईश्वरीय शक्ति के रूप में अभिवन्दन किया है।

श्रद्धा वह प्रकाश है जो आत्मा की, सत्य की प्राप्ति के लिए बनाये गये मार्ग को दिखाता रहता है। जब भी मनुष्य एक क्षण के लिए लौकिक चमक-दमक, कामिनी और कंचन के लिये मोहग्रस्त होता है तो माता की तरह ठण्डे जल से मुँह धोकर जगा देने वाली शक्ति यह श्रद्धा ही होती है। सत्य के सद्गुण, ऐश्वर्यस्वरूप एवं ज्ञान की थाह अपनी बुद्धि से नहीं मिलती उसके प्रति सविनय प्रेम भावना विकसित होती है उसी को श्रद्धा कहते हैं। श्रद्धा सत्य की सीमा तक साधक को साधे रहती है, सम्भाले रहती है।

श्रद्धा के बल पर ही मलिन चित अशुद्ध चिन्तन का परित्याग करके बार-बार परमात्मा के चिन्तन में लगा रहता है। बुद्धि भी जड़ पदार्थों में तन्मय न रहकर परमात्मा ज्ञान में अधिक से अधिक सूक्ष्मदर्शी होकर दिव्य भाव में बदल जाती है। स्वयं का ज्ञान और तार्किक शक्ति इतनी बलवान नहीं होती कि मनुष्य निरन्तर उचित-अनुचित, आवश्यक-अनावश्यक के यथार्थ और दूरवर्ती परिणामों को आत्मा के अनुकूल होने का विश्वास दे सके। तर्क प्रायः व्यर्थ से दिखाई देते हैं। ऐसे समय जब अपने कर्मों के औचित्य या अनौचित्य को परम प्रेरक शक्ति के हाथों सौंप देते हैं तो एक प्रकार की निश्चिन्तता मन में आ जाती है। मन का बोझ हलका हो जाता है। जिसकी जीवन पतवार परमात्मा के हाथ में हो उसे किसका भय? सर्वशक्तिमान से सम्बन्ध स्थापित करते ही मनुष्य निर्भय हो जाता है, उसके स्पर्श से ही मनुष्य में अजेय बल आ जाता है व्यक्तित्व में सद्गुणों का प्रकाश और दिव्यता झरने लगती है। जीवन में आनन्द झलकने लगता है। यह सम्बन्ध और स्पर्श जब जक सत्य की पूर्ण प्राप्ति नहीं होती तब तक श्रद्धा के रूप में प्रकट और विकसित होता है। वह एक प्रकार से पाथेय है इसलिये उसका मूल्य और महत्व उतना ही है जितना अपने लक्ष्य का, गन्तव्य का, अभीष्ट का, आत्मा, सत्य अथवा परमात्मा की प्राप्ति का।

परमात्मा के प्रति अत्यन्त उदारतापूर्वक आत्मभावना पैदा होती है वही श्रद्धा है। सात्विक श्रद्धा की पूर्णता में अन्तःकरण स्वतः पवित्र हो उठता है। श्रद्धायुक्त जीवन की विशेषता से ही मनुष्य स्वभाव में ऐसी सुन्दरता बढ़ती जाती है जिसको देख कर श्रद्धावान् स्वयं सन्तुष्ट बना रहता है। श्रद्धा सरल हृदय की ऐसी प्रीतियुक्त भावना है जो श्रेय पथ की सिद्धि कराती है। इसलिये शास्त्रकार कहते हैं—

भवानीशङ्करौ वन्दे श्रद्धाविश्वास रूपिणौ।
याभ्यां बिना न पश्यन्ति सिद्धाः स्वान्तस्थमीश्वरम्॥

(रामायण, बालकाण्ड)

"हम सर्वप्रथम भवानी और भगवान, प्रकृति और परमात्मा को श्रद्धा और विश्वास के रूप में वन्दन करते हैं जिसके बिना सिद्धि और ईश्वर-दर्शन की आकांक्षापूर्ण नहीं होती।"

श्रद्धा का अविर्भाव सरलता और पवित्रता के संयोग से होता है। पार्थिव वस्तुओं से ऊपर उठने के लिए सरलता और पवित्रता इन्हीं दो गुणों की अत्यन्त आवश्यकता होती है। इच्छा में सरलता और प्रेम में पवित्रता का विकास जितना अधिक होगा उतनी ही अधिक श्रद्धा बलवान होगी। सरलता के द्वारा परमात्मा की भावानुभूति होती है और पवित्र प्रेम के माध्यम से उसकी रसानुभूति। श्रद्धा दोनों का सम्मिलित स्वरूप है। उसमें भावना भी है, रस भी। जहाँ उसका उदय हो वहाँ लक्ष्य प्राप्ति की कठिनाई का अधिकांश समाधान तुरन्त हो जाता है।

अज्ञान अन्धकार में भटकते हुए लोकजीवन को सत्य मार्ग पर अग्रसर करने का माध्यम उनके द्वारा जगाई हुई श्रद्धा ही होती रही है। शिष्यों को श्रद्धा का पूर्ण पाठ साधना की स्थिरता के लिए तब भी आवश्यक था, युग और परिस्थितियाँ बदल जाने पर आज भी आवश्यक है। परमात्मा सत्य है उसके गुण और स्वभाव अपरिवर्तनशील हैं इसी तरह वहाँ तक पहुँचने का मार्ग और माध्यम भी अपरिवर्तित ही है। उसे आज भी पाया और अनुभव किया जा सकता है पर उस स्थिति की परिपक्वता के बीच में जो साधनायें, परिवर्तन, हलचल, कठिनाईयाँ और दुरभिसन्धियाँ आती हैं उनमें लक्ष्य प्राप्ति की भावना की स्थिरता के लिए श्रद्धा आवश्यक है।

यहाँ श्रद्धा की शक्ति का संक्षिप्त सा आभास दिया गया है कि उसे मानव जीवन की सर्वोपरि सामर्थ्य के रूप में समझ सकने में सुविधा हो। देवलोक यही है। देवता इसी क्षेत्र में जन्मते, बढ़ते, परिपुष्ट होते और वरदान दे सकने के लिए सक्षम बनते हैं। उनका उदय एवं अस्त भी इसी श्रद्धा के अनन्त अन्तरिक्ष में होता रहता है। मन्त्र, देवता, गुरु, उपासना, साधना सिद्धि, आदि का सारा आधार श्रद्धा की आधारशिला पर खड़ा है। सच तो यह है कि साधना का विशालकाय कलेवर इसलिए खड़ा किया गया है कि उन लौह श्रृंखलाओं में जकड़ कर श्रद्धा विश्वास रूपी महादैत्य को उपयोग प्रयोजन उत्पन्न कर सकने के लिए प्रशिक्षित किया जा सके। श्रद्धा से व्यक्तित्व का निर्धारण होता है—श्रद्धा अनेक क्रियाकलापों का सूत्र संचालन और उन्हें सफलता के उच्चस्तर तक पहुँचा सकना सम्भव होता है। आत्मा का सबसे विश्वस्त और सबसे घनिष्ठ सचिव श्रद्धा ही है। उसी के सहारे आत्मिक प्रगति से लेकर सिद्धि चमत्कार के वरदान पाते और आत्म साक्षात्कार से लेकर ईश्वर दर्शन तक के समस्त दिव्य उपहार प्राप्त होते हैं।

आत्मिक प्रगति का सर्वोपरि आधार 'श्रद्धा' को समझा जा सकता है साधकों की सफलता-असफलता इसी पर निर्भर रहती

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

है। अस्तु, गुरुदीक्षा-शक्तिपात से लेकर अनेकों चित्र-विचित्र कष्टसाध्य तप साधना इसी प्रयोजन के लिए करायी जाती हैं, आकर्षक महात्म्य इसीलिए सुनाये बनाये जाते हैं कि साधक की श्रद्धा अधिकाधिक परिपुष्ट हो सके और अभीष्ट सत्परिणाम प्राप्त कर सकने का अधिकारी बन सके।

श्रद्धा की स्थापना और परिपुष्ट का चिरस्थायी और सर्वमान्य आधार यह है कि जिस तथ्य पर विश्वास जमाया जाना आवश्यक है, उसकी यथार्थता और वैज्ञानिकता को सघन तथ्यों और तर्कों के आधार पर समझ सकने का अवसर दिया जाय। बुद्धि का सर्वतोमुखी समाधान हो सके तो श्रद्धा की स्थिरता सुनिश्चित मानी जा सकती है और उससे अभीष्ट परिणामों की अधिकाधिक अपेक्षा रखी जा सकती है। जिस-तिस से सुनकर जल्दी-जल्दी कुछ सुन समझ कर यदि कोई श्रद्धा बनेगी तो उसकी जड़ें उथली रहने के कारण तनिक से आघात में उखड़ जाने की आशंका बनी रहेगी। प्रायः होता भी ऐसा ही रहता है। अमुक व्यक्ति के कहने से भावावेश उमड़ा और तत्काल वह साधना आरम्भ कर दी। कुछ ही समय बाद किसी दूसरे ने उस विधान के दोष बता दिये और किसी नया प्रयोग के माहात्म्य सुना दिये बस इतने भर से मन शंकाशंकित हो गया और पिछला प्रयोग छोड़कर नया मार्ग अपना लिया। इस परिवर्तन के बीच यह नई आशंकाएँ बनी रहती हैं कि पिछली साधना जिस प्रकार छोड़नी पड़ी थी उसी प्रकार यह भी न छोड़नी पड़े और उसमें भी कोई दोष वैसा ही न घुसा हो जैसा कि पहली वाली में निकल पड़ा था। कभी कोई चर्चा इस नई साधना के विपक्ष और किसी अन्य के पक्ष में सुनाई पडती है तो उसे भी छोड़ने न छोड़ने का असमंजस खड़ा हो जाता है। संदिग्ध, शंका-शंकित मन लेकर सांसारिक प्रयोजन तक में कोई कहने लायक सफलता नहीं मिल सकती फिर आध्यात्म क्षेत्र तो पूरी तरह श्रद्धा की शक्ति पर ही आधारित और अवलम्बित है। यदि मूल तथ्य का अभाव रहा तो फिर ज्यों-त्यों करके कर्मकाण्डों की लकीर पीटते पड़ने से बात बनेगी नहीं। तब असफलताओं का कारण विधि—विधानों की हेरा-फेरी में ढूँढ़ा जाने लगेगा और यह खोज की जाने लगेगी कि किसी क्रियाकृत्य में कोई अन्तर तो नहीं रह गया जिससे असफलता मिली या उलटा परिणाम निकला।

वस्तुतः विधि-विधानों का महत्त्व साधना विज्ञान में एक-चौथाई और श्रद्धा विश्वास का तीन-चौथाई है। सघन श्रद्धा के रहते अटपटे विधि-विधान भी चमत्कारी परिणाम उपस्थित कर सकते हैं। जब अविश्वासी संदिग्ध मनःस्थिति में पण्डिताऊ ढंग से किये गये परिपूर्ण कर्मकाण्ड भी निष्प्राण होकर रह जाते हैं और उनका परिणाम निराशाजनक ही रहता है। अस्तु, साधना क्षेत्र में प्रवेश करने वाले प्रत्येक साधक में श्रद्धा तत्त्व की परिपक्वता का आधार खड़ा करना आवश्यक समझा जाना चाहिए।

श्रद्धा का सहचर है—विश्वास। इसे निष्ठा भी कहते हैं। किसी तथ्य को स्वीकार करने के पूर्व उस पर परिपूर्ण विचार कर लिया जाय। तर्क, प्रमाण, परामर्श परीक्षण आदि के आधार पर तथ्य का पता लगा लिया जाय और समुचित मंथन के बाद किसी निष्कर्ष पर पहुँचा जाय। इसमें देर लगे तो लगने देनी चाहिए। उतावली में इतना अधूरा निष्कर्ष न अपना लिया जाय जिससे किसी के तनिक से बहकावे मात्र से बदलने की बात सोची जाय। कई व्यक्ति विधि-विधानों के बारे में ऐसे ही अनिश्चित रहते हैं। एक के बाद दूसरे से पूछते फिरते हैं। फिर दूसरे का तीसरे से और तीसेर का चौथे से समाधान पूछते हैं। भारतीय धर्म का दुर्भाग्य ही है कि इसमें पग-पग पर मत-भेदों के पहाड़ खड़े पाये जा सकते हैं। यदि मतभेदों और कुशंकाओं के जंजाल में उलझे रहा जाय तो उसका परिणाम मात्र भ्रम-अश्रद्धा-अनिश्चितता एवं आशंका से मनःक्षेत्र भर जाने के अतिरिक्त और कुछ भी न होगा। ऐसी मनःस्थिति में किये गये धर्मानुष्ठानों का परिणाम नहीं के बराबर ही होता है श्रद्धा विश्वास का प्राण ही निकल गया तो फिर मात्र कर्मकाण्ड की लाश लादे फिरने से कोई बड़ा प्रयोजन सिद्ध न हो सकेगा।

विश्वास का तात्पर्य है जिस तथ्य को मान्यता देना उस पर दृढ़ता के साथ आरूढ़ रहना। इस दृढ़ता का परिचय उपासनात्मक विधि-विधानों की जो मर्यादा निश्चित कर ली गई है उसे बिना आलस, उपेक्षा बरते पूरी तत्परता के साथ अपनाये रहने में मिलता है। विधि-विधानों के पालन करने के लिए शास्त्रों में बहुत जोर दिया गया है और उसकी उपेक्षा करने पर साधना के निष्फल जाने अथवा हानि होने, निराशा हाथ लगने का भय दिखाया गया है। उसका मूल उद्देश्य इतना ही है कि विधानों के पालन करने में दृढ़ता की नीति अपनाई जाये। हानि होने का भय दिखाने में इतना ही तथ्य है कि अभीष्ट सत्परिणाम नहीं मिलता। अन्यथा सत्प्रयोजन में कोई त्रुटि रह जाने पर भी अनर्थ की आशंका करने का तो कोई कारण है ही नहीं।

साधना मार्ग पर चलने वाले को अपनी स्थिति के अनुरूप विधि-व्यवस्था का निर्धारण आरम्भ में ही कर लेना चाहिए। जो निश्चित हो जाय उसमें आलस उपेक्षा बरतने की ढील-पोल न दिखाई जाये। दृढ़ता न बरती जायेगी तो आस्था में शिथिलता आने लगेगी। तत्परता मन्द पड़ जायेगी, फलतः मिलने वाला उत्साह और प्रकाश भी धूमिल हो जायेगा।

व्यायाम प्रयोगों के द्वारा शरीर बल बढ़ता है—ज्ञानवृद्धि के लिए शिक्षा का सहारा लिया जाता है। धनी बनने के लिए उद्योग व्यवसाय अपनाने पड़ते हैं। उनके लिए अभीष्ट उपकरणों का संग्रह एवं प्रयोग करना पड़ता है। ठीक इसी प्रकार श्रद्धा और विश्वास को विकसित करने के लिए देव प्रतिमाओं को, तीर्थ स्थलों को, पूजा प्रतीकों को माध्यम बनाना पड़ता है। उन पर आरोपित की गई श्रद्धा, प्रतिध्वनित और प्रतिफलित होकर साधक के पास वापस लौट आती है। गेंद को दीवार या धरती पर मारने से टकराने पर वह उसी स्थान पर लौटती है जहाँ से उसे फेंका गया था। शब्दबेधी बाणों के बारे में कहा जाता है कि वे लक्ष्य वेध करने के उपरान्त लौटकर फिर तरकस में आ घुसते थे। गुम्बज में की गई आवाज गूँजती है और उच्चरित स्थान से आ टकराती है। पृथ्वी गोल है। सीधी रेखा बनाकर यदि लगातार चलते रहा जाय तो चलने वाला लौटकर वहीं आ जायेगा जहाँ से उसने चलना आरम्भ किया था। श्रद्धा को भी पूजा प्रतीकों पर फेंका जाता है। वे निर्जीव होने के कारण स्वयं

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

तो कुछ नहीं कर सकते, पर प्रतिक्रिया को प्रयोगकर्ता के ऊपर निश्चित रूप से वापस लौटा देते हैं। गोबर से बने गणेश भी उतना ही चमत्कारी फल प्रदान कर सकते हैं जितना कि असली गणेश कुछ कर सकने में समर्थ हो सकते थे। एकलव्य ने मिट्टी द्वारा बनी द्रोणाचार्य की प्रतिमा से उतना लाभ प्राप्त कर लिया था, जितना कि असली द्रोणाचार्य से पाण्डवों को नहीं मिल सका। यह श्रद्धा की शक्ति का ही चमत्कार है। देवता का निवास काष्ठ पाषाण आदि में नहीं रहता। **"भावो हि विद्यते देव तस्मात् भावो हि कारणम्"** भावना में ही देवता का निवास रहता है, अस्तु देव दर्शन से होने वाले लाभों में भावना का स्तर ही प्रमुख कारण है। भाव रहित होकर देव प्रतिमाओं की समीक्षा की जाये तो वह धातु और पाषाण के सहारे प्रस्तुत की गई कलाकृति के अतिरिक्त और कुछ भी न रह जायेगी।

श्रद्धा और विश्वास के अभिवर्द्धन में एक जीवित तत्त्व भी सहायक सिद्ध होता है और वह है—गुरु। आत्मिक प्रगति के क्षेत्र में सदा से 'गुरु धारणा' की महत्ता को समझा और स्वीकारा जाता रहा है। उसे **"गुरुर्ब्रह्मा, गुरु र्विष्णु·····", "अखण्ड मण्डलाकारं····· तस्मै श्री गुरवे नमः", "अज्ञान तिमिरान्धस्य·····"** आदि वन्दना स्तवनों में गुरु महिमा एवं गुरु-भक्ति का बढ़ा-चढ़ा माहात्म्य प्रस्तुत किया गया है। इसमें निहित स्वार्थों का, भोले लोगों की भावुकता का शोषण करने की प्रवृत्ति भी काम करती रही है और उससे अनर्थ मूलक अन्धविश्वास भी बहुत फैला है। पर यह कहने और मानने में भी कोई अतिशयोक्ति नहीं कि श्रद्धा तत्त्व की अभिवृद्धि और विश्वास की परिपुष्टि में गुरु धारणा करने से अति महत्त्वपूर्ण प्रतिफल भी उपलब्ध होते हैं।

अध्यात्म दर्शन में सम्प्रदाय भेद से अगणित मान्यताएँ प्रचलित हैं। वे एक-दूसरे से भिन्न ही नहीं प्रतिकूल एवं प्रतिपक्षी भी हैं। साधना विधानों के सम्बन्ध में भी यही बात है। ऐसी दशा में किसे अपनाया जाय, किसे न अपनाया जाय, यह निर्णय कर सकना सामान्य बुद्धि के लिए अति कठिन होता है। संदिग्ध, शंकाशील और अनिश्चित मनः स्थिति में कोई बात न तो पूरी गले उतरती है और न बताये मार्ग पर पूरे उत्साह के साथ चल सकना सम्भव होता है। आधे-अधूरे मन से प्रयोग परीक्षण की तरह किये गये साधन सदा निर्जीव होते हैं। उनका कोई कहने लायक परिणाम नहीं निकलता। इस असफलता से अविश्वास और भी पनपता है और अन्ततः निराशाग्रस्त होकर उस मार्ग से उदासीन होते-होते उसे छोड़ देने की ही स्थिति आ पहुँचती है।

इस अनिश्चितता से बचने के लिए एक ऐसे प्रामाणिक अधिकारी की नियुक्ति आवश्यक होती है, जिसके निर्देश को स्वीकारणीय माना जा सके। फौजी अनुशासन में यही होता है। अफसर आज्ञा देता है और सैनिक उसका प्राणपण से पालन करता है। निर्देश के उचित अनुचित होने का दायित्व अफसर पर रहता है। सैनिक के लिए इतना ही पर्याप्त है कि उसने आदेश का पूर्ण तत्परता के साथ पालन किया। साधना मार्ग में भी इसके अतिरिक्त और कोई गति नहीं। निज के समाधान के लिए किन्हीं सिद्धान्तों की उपयोगिता पर जितना कुछ तर्क, विवाद, अन्वेषण करना हो, उतना पूरी गहराई के साथ कर लेना चाहिए। इसी प्रकार इस मार्ग का पथप्रदर्शक चुनने से पूर्व उसके ज्ञान, अनुभव एवं चरित्र के सम्बन्ध में जितनी भी कुरेदबीन करना सम्भव हो वह कर लेना चाहिए। पर अन्ततः ऐसी स्थिति में पहुँचना ही चाहिए कि किसी के निर्णय और निर्देश को स्वीकार्य अनुशासन की तरह ग्रहण किया जाये और पूर्ण विश्वास के साथ निर्धारित गतिविधि अपनाते हुए आगे बढ़ा चला जाये। इतना बन पड़े तो समझना चाहिए अनिश्चितता और आशंका की स्थिति का अन्त हो गया। अब विश्वासपूर्वक प्रयत्नशील रहकर अभीष्ट लक्ष्य प्राप्त कर सकना सम्भव हो सकेगा।

सिद्धान्तों और कार्यक्रमों के सम्बन्ध में गुरु के अनुशासन को स्वीकार किया जाना चाहिए। इसके लिए एक ही व्यक्ति का निर्देश प्राप्त करना पर्याप्त है। अनेकों मार्गदर्शक नियत करने पर उनके भिन्न-भिन्न अनुभव और निर्देश साधक के मन में फिर अनिश्चितता उत्पन्न कर देंगे। इसलिए एक विषय का एक ही नियत निर्देशक होना चाहिए। कई चिकित्सकों की कई प्रकार की दवाएँ एक साथ खाने या उनके परामर्श में उलट-पुलट करते रहने से लाभ के स्थान पर हानि ही होती है। जीवन अनेक समस्या सूत्रों से बँधा हुआ है। उनकी विशिष्ट धाराओं के विशिष्ट मार्गदर्शक हो सकते हैं। मकान बनाने में इन्जीनियर, इलाज में डॉक्टर, मुकद्मे में वकील को गुरु मानकर चला जा सकता है। भिन्न प्रकार के कार्यों के लिए भिन्न गुरु हो सकते हैं, पर जहाँ तक आत्मिक प्रगति के विशिष्ट मार्ग का सम्बन्ध है वहाँ उस क्षेत्र के दक्ष व्यक्ति की ही सहायता लेनी चाहिए। गुरु एक हो या अनेक इस प्रश्न का एक ही उत्तर है—एक कार्य के लिए एक की ही नियुक्ति लाभदायक रहती है। इसमें निर्देश सम्बन्धी कोई भूल रहेगी तो उसका दोष या दण्ड निर्देशक के पल्ले बँधेगा। साधक को अशुद्ध विधि से साधना करने पर भी अपने विश्वास के अनुरूप निश्चित रूप से सत्परिणाम ही मिल जायेगा।

श्रद्धा की प्रेरणा है श्रेष्ठता के प्रति प्रीति-घनिष्ठता, तन्मयता एवं समर्पण की प्रवृत्ति। परमेश्वर के प्रति इसी भाव सम्वेदना को विकसित करने का नाम है—भक्ति। भक्त को भगवान् के प्रति अनन्य प्रेम उत्पन्न करना पड़ता है और उसे इस स्तर का बनना पड़ता है कि सच्चे प्रेमी की तरह आत्मसात होने और आत्मसमर्पण के बिना चैन ही न पड़े। लौकिक जीवन में पत्नी को पति के प्रति इसी प्रकार आत्मसमर्पण का अभ्यास करना पड़ता है। दीपक पंतग की उपमा इसी प्रसंग में दी जाती है। आमतौर से मनुष्य के अन्तःकरण बड़े नीरस, शुष्क और कठोर होते हैं, उनमें दया, करुणा, ममता, श्रद्धा जैसी दिव्य भावनाओं का अभाव ही रहता है। दैनिक जीवन तो स्वार्थ संघर्षों से ही भरा रहता है। अनभ्यस्त प्रक्रिया स्वभाव का अंग बने भी तो कैसे? भजन-पूजन करने वाले कर्मकाण्डों के तो अभ्यस्त बन जाते हैं, पर उनका भी हृदय खोलकर देखा जाय तो श्रद्धा तत्त्व की मात्रा नहीं के बराबर ही दीख पड़ती है। मशीन की तरह कर्मकाण्डों की चर्खी घुमाते रहने से बात बनती नहीं। उपासनात्मक क्रिया कृत्य तो आवरण मात्र हैं। उसमें प्राण

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

संचार कर सकने की शक्ति तो श्रद्धा में ही सन्निहित है। यदि जीवन ही न रहा तो कठपुतली का तमाशा वह आनन्द नहीं देता जो जीवन्त अभिनय में देखा जाता है।

प्रतिमा के माध्यम से श्रद्धा उत्पन्न करने का आधार निर्दोष तो है, पर उसमें प्रत्युत्तर दे सकने की क्षमता न होने के कारण सब कुछ एकांगी ही रह जाता है। अमुक आपत्तिकाल में लड़कियाँ अपने विवाह आंवले, पीपल आदि वृक्षों के साथ करके भी अपने अभिभावकों को कन्यादान से निश्चिन्त कराती रही हैं। इतने पर भी जीवित व्यक्ति के साथ विवाह करने पर उपलब्ध होने वाले आदान-प्रदान का लाभ उन्हें नहीं ही मिल सका होगा। 'गुरु' रूप में जीवित प्रतिमा में श्रद्धा तत्त्व की प्राण-प्रतिष्ठापना की जाती है और उसके सम्पर्क में अपनी दिव्य सम्वेदनाओं को अग्रगामी बनाया जाता है। इसमें आदान-प्रदान का प्रत्यक्ष सम्पर्क का क्रम चलता है और मार्गदर्शन की सुविधा रहती है। यदि गुरु दिव्यत्व से सम्पन्न है तो उसके सान्निध्य अनुग्रह का प्रत्यक्ष प्रभाव भी उपलब्ध होता है। इससे व्यक्तित्व के विकास में अधिक सुविधा और सरलता रहती है।

माता-पिता के समान ही गुरु को माना गया है। इस त्रयी को ब्रह्मा, विष्णु, महेश की उपमा दी गई है। हिन्दुत्व का प्रतीक यज्ञोपवीत के रूप में धारण किया जाता है। इस संस्कार के अवसर पर गुरु द्वारा गायत्री मन्त्र लेने का विधान है। अध्यापक की सहायता बिना शिक्षा प्राप्त करना कठिन पड़ता है और गुरु के बिना विद्या का व्यावहारिक स्वरूप हृदयंगम किया जाना कठिन पड़ता है यों जानने भर की बात तो पढ़ने या सुनने भर से भी बन जाती है। आत्मोत्कर्ष की साधना में तो गुरु वरण करने की आवश्यकता एक प्रकार से अनिवार्य ही मानी गई है। इस व्यवस्था में श्रद्धा तत्त्व के विकास में एक उपयोगी आधार खड़ा करना होता है। यदि इस चयन एवं नियुक्ति के लिए कोई उपयुक्त सत्पात्र मिल गया तो समझना चाहिए कि सफलता की आधी मंजिल पार हो गई। निष्णात अध्यापक एवं चिकित्सक का सम्पर्क सध जाने से शिक्षा की, चिकित्सा की सफलता प्रायः असंदिग्ध ही हो जाती है, यही बात साधना के मार्ग सम्बन्ध में भी है। प्रखर व्यक्तित्वों से घनिष्ठ सम्बन्ध रखने पर सामान्य व्यक्ति भी असामान्य बनते देखे गये हैं। फिर विधिवत् श्रद्धा शक्ति आत्मीयता के सूत्र में बाँधने वाली गुरुदीक्षा की प्रतिक्रिया उपयोगी परिणाम क्यों न उत्पन्न करेगी? उपासना के विधि-विधान का मार्गदर्शन तो सरल है। उतनी आवश्यकता तो पुस्तकें भी पूरी कर देती हैं। जटिलता तो जीवन साधना में पड़ती है। आये दिन उतार-चढ़ाव और मोड़-तोड़ आते रहते हैं। उनके समाधान का दूरदर्शी निष्कर्ष अनपढ़ बुद्धि से नहीं निकल पाता, वह प्रायः भटकती और अनुपयुक्त निर्णय करती देखी गई है। ऐसी दशा में यदि सत्परामर्श की समुचित व्यवस्था बन सके तो सर्वतोमुखी प्रगति के उपयोगी आधार खड़े होते चले जाते हैं। ऐसे ही अनेकों लाभ हैं, जिनको ध्यान में रखते हुए गुरु वरण करने की आवश्यकता का प्रतिपादन किया गया है। उपयुक्त व्यक्ति पर उपयुक्त मात्रा में सत् श्रद्धा का सूत्र स्थापित किया जाये तो कठिन यात्रा में जानकार और वफादार साथी की तरह लक्ष्य प्राप्ति में बहुत सरलता पड़ती है। इस सम्पर्क से एक पक्ष को वात्सल्य देने का और दूसरों को उसे पाने का लाभ मिलता है। गाय और बच्चा दोनों को ही असीम सन्तोष मिलता है। गुरु और शिष्य का यदि उभयपक्षीय आदर्शवादी सम्बन्ध बन जाये तो फिर उस मिलन का सत्परिणाम सोना और सुगन्ध मिलने की उक्ति से भी अधिक उत्साहवर्द्धक होता है। ● ●

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आहार शुद्धि पर साधना की सफलता निर्भर

आहार शुद्धि साधना का प्रथम चरण

मनुष्य का शरीर तो सामान्य है और उसकी क्षमता भी सीमित है। वह ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियों के सहारे जो कुछ बन पड़ता है, वही करता है। कर्मेन्द्रियाँ हाथ, पैर आदि क्रियारत रहती हैं और ज्ञानेन्द्रियों के माध्यम से जो समीपवर्ती हैं, वह देखा सुना, सूंघा-चखा जाता है। उस आधार पर जानकारियाँ बढ़ती हैं और बुद्धिमत्ता का विकास होता है। शरीर के यह दो कर्म और ज्ञान पक्ष हैं। शेष संचालन तंत्र हैं, जो रेलगाड़ी में कोयला पानी जलाकर भाप बनाने की शक्ति चमड़े के आवरण में ढके हुए अपना-अपना काम करते रहते हैं। मोटी दृष्टि से शरीर यही है। इसको दुर्बलता और रुग्णता से बचाना पड़ता है। तभी वह अपना भीतरी और बाहरी काम ठीक प्रकार कर सकता है।

साधना विज्ञान का प्रथम पक्ष यहीं से आरम्भ होता है कि शरीर को निरोग और सक्षम रखा जाय। इस निमित्त शारीरिक और मानसिक संयम की आवश्यकता पड़ती है। यदि उस ओर उपेक्षा बरती जाय तो कष्ट पीड़ित शरीर अपने आप तक को स्थिर नहीं रख पाता फिर उससे योगाभ्यास जैसे उच्च प्रयोजनों की साधना कैसे सम्भव हो?

इसलिए साधक को यह पाठ पढ़ाया जाता है कि वह उस शरीर उपकरण को सही बना ले, जिससे कि साधना समर लड़ा जाने वाला है। तलवार जंग लगी और बिना धार की हो तो उससे युद्ध मोर्चे पर विजय पाना कठिन है। जो लोग छलांग मार कर सबसे पहले कुण्डलिनी जगाना चाहते हैं, वे क्रमिक विकास के सिद्धान्त को भूल जाते हैं। विद्यार्थी को एक-एक कक्षा पास करते हुए स्नातक बनना पड़ता है। छत पर चढ़ने के लिए एक-एक सीढ़ी चढ़नी होती है। मंजिल पार करने के लिए क्रमबद्ध कदम बढ़ाने पड़ते हैं। बीज से अंकुर, अंकुर से पौधा, पौधे से वृक्ष बनता है यह सब क्रमिक योजना है। शरीर को स्वस्थ रखने के लिए ही अष्टांगयोग में आसन, प्राणायाम का विधान बताया गया है और यम, नियम के परिपालन की आवश्यकता पर सर्वप्रथम जोर दिया है। वर्णमाला और गणित ही सर्वप्रथम पढ़ने पड़ते हैं, आगे की पढ़ाई इसके बाद चलती है। इसलिए स्वास्थ्य सम्पादन को भी योगाभ्यास का प्रथम और प्रमुख अंग माना गया है जिसकी नींव ही कमजोर रहेगी, उस पर सुदृढ़ मकान कैसे बन सकेगा? जड़ें खोखली होने पर पेड़ कितने दिन खड़ा रहेगा? व्यक्तित्व की सक्षमता और प्रखरता के लिए स्वास्थ्य सम्पादन सर्वप्रथम आवश्यक है। उसकी उपेक्षा करके योगाभ्यास करने वालों को सफलता नहीं मिलती। न उनका मन योग में एकाग्र हो पाता है और न शरीर में तप साधना करने के लिए उपयुक्त साहस और संकल्प बल ही संचित हो पाता है। ऐसी दशा में साधनापरक सफलता कैसे मिले?

साधनाओं में इन्द्रिय साधना प्रमुख है। इन्द्रिय साधनाओं में भी दो की प्रधानता है—एक जिह्वा दूसरी ज्ञानेन्द्रिय। यही दो ऐसी हैं जो स्वास्थ्य पर दुहरी कुल्हाड़ी चलाती हैं। यदि इन दो पर अंकुश रखा जा सके तो समझना चाहिए कि आधी में से आधी मंजिल पूरी हो गई। नींव गहरी और मजबूत जम गई: अब इस पर भवन उठाने का कार्य धीरे-धीरे होता रहे तो भी हर्ज नहीं। नींव का कच्चा रहना ही वह जोखिम है, जिसके कारण भव्य और बहुमूल्य भवन भी गहराकर नीचे गिर सकता है।

जिह्वा पर काबू करने के लिए सर्वप्रथम मनोबल रूपी से जूझने की प्रक्रिया द्वारा परिपक्व करना पड़ता है। जब से दूध छोड़ा, अन्नप्राशन आरम्भ किया जाता है, तभी से जिह्वा को दुर्व्यसनी बनने की आदत डाली गई है। तरह-तरह के जायकों का, नशेबाजी जैसा चस्का लगाया गया है। नमक, शक्कर, मसाले और चिकनाई इन चारों में से कइयों का सम्मिश्रण हमारे भोजन में होता है। आरम्भ में तो बच्चा मिर्च जैसी वस्तुएँ लेने में कष्ट अनुभव करता है। शक्कर खाने पर भी उसके मुँह से लार स्रवित होने लगती है। किन्तु जब वही चौके में बनता है, वही पूरे परिवार द्वारा खाया और खिलाया जाता है, उपहार में भी इसी प्रकार की वस्तुएँ दी जाती हैं, तीज-त्योहारों पर और मेहमानों के लिए ही वही अगड़म-बगड़म बनता है, तो बच्चों को भी वही खाना पड़ता है। इसके उपरान्त ढर्रा चल पड़ता है और नशे बाजी जैसी आदत पड़ जाती हैं, जो छुड़ाए नहीं छूटतीं। फिर मनाही की बात की जाय तो यही एक उत्तर दिया जाता है कि यह वस्तुएँ तो स्वास्थ्य के लिए आवश्यक हैं। इनका तो संतुलित भोजन के नाम पर डॉक्टर भी समर्थन करते हैं, फिर इन्हें छोड़कर क्यों मन मारा जाय, और क्यों स्वजनों का आग्रह टाला जाय?

इतने पर भी तथ्य यथास्थान ही रहते हैं। स्वाद के नाम पर अभक्ष्य खाया जाता है और वह भी जायके-जायके में पेट

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

में अधिक मात्रा में पहुँच जाता है। पाचक रस उतने स्रवित नहीं होते। फलतः वह पेट में पड़ा सड़ने लगता है। अपच की व्यथा लग जाती है और सड़ा हुआ आहार विष बन कर दूषित रक्त बनाता है। उसी को विजातीय द्रव्य कहते हैं, उसे जहाँ कहीं जगह मिलती है वहीं रुक जाता है और चित्र-विचित्र लक्षणों वाले नामों से उसका निदान एवं उपचार चल पड़ता है। वस्तुतः रोग का कारण और स्वरूप एक ही है और उसका सबसे बड़ा कारण अपच है, जो स्वाद के कारण अधिक मात्रा में अन्न को पेट में ठूँस लेने से उत्पन्न होता है। उपचार यहीं से होना चाहिए और भोजन को सात्विक बनाया जाना चाहिए।

आध्यात्मिक साधनाओं में सब से अधिक प्रचलित व्रत उपवास है। एकादशी, रविवार, पर्व-त्योहार, देवताओं का जन्म-जयन्ती आदि में उपवासों, का विधान है। कितने ही उपवास महिलाएँ सुहाग के लिए रहती हैं। कुछ किसी कामना से, कुछ किसी प्रतिबन्ध से। कन्यादान के दिन माता-पिता को उपवास रखना पड़ता है। इसका तात्पर्य आध्यात्मिक उद्देश्यों की पूर्ति के अतिरिक्त यह भी है कि पेट को बीच-बीच में छुट्टी देते रहा जाय। उसे निरन्तर न जोते रखा जाय। इससे अपच को घटाने में सहायता मिलती है। उस दिन जो खाया जाता है, उसे फलाहार कहते हैं। भले ही वह मावा, मिठाई या चाट पकौड़ी के रूप में ही क्यों न हो? वस्तुतः उस दिन जल पर रहा जाय। काम न चले तो दूध, छाछ, रस जैसी पतली वस्तुएँ ली जा सकती हैं। ऐसी उपवास साधना वस्तुतः योगाभ्यास का प्रथम चरण हैं। चान्द्रायण-कृच्छ्र चान्द्रायण आदि व्रत इसी निमित्त कराये जाते हैं। अनुष्ठानों में उपवास करने फलाहार पर रहने का ही विधान है।

गाँधी जी ने अपनी सत्य महाव्रत पुस्तक में 'अस्वाद' को प्रथम व्रत बताया है और कहा है कि यदि स्वादों पर विजय प्राप्त कर ली जाय तो अन्य इन्द्रियों का संयम सरल हो जाता है। अस्वाद का तात्पर्य नमक छोड़ना ही नहीं, शक्कर, चिकनाई और मसाले छोड़ना भी है क्यों कि यह सभी मानवी संरचना की दृष्टि से अखाद्य हैं। इन सब में उस विकृत स्वाद का समावेश है, जो प्रकारान्तर से जिम्मेदार हैं। इन्हें छोड़कर जो भी पेय स्तर का भोजन लिया जाय वह उपवास में फलाहार के विधान की पूर्ति करता है। जल्दी हजम होने वाले फल या शाक भी सीमित मात्रा में उपवास जल पर न चल सकने की स्थिति में लिए जा सकते हैं।

प्राकृतिक चिकित्सा विशेषज्ञों ने इस सन्दर्भ में एनीमा की आवश्यकता को और सम्मिलित किया है। उनका कहना है कि आहार की छुट्टी करने की तरह ही पेट में संचित मल का निष्कासन आवश्यक है। जिन्हें ऐनीमा में झंझट मालूम पड़े वे हरड़, सनाय, ईसबगोल की भूसी आदि रोचक वस्तुएँ लेकर पेट साफ कर सकते हैं।

यह तो सामयिक बातें हुईं। वस्तुतः हमारे दैनिक आहार में से हानिकारक स्वादों का एक प्रकार से विसर्जन ही कर दिया जाना चाहिए। सस्ते फलों और शाकों में आम, अमरूद, बेर, शहतूत, जामुन, खरबूजा, तरबूज, ककड़ी, टमाटर, गाजर, भिण्डी आदि ऐसी हैं जिन्हें बिना उबाले ही खाया जा सकता है। कन्दों को तथा तोरइ, लौकी जैसे शाकों को उबाला जा सकता है। अन्न और दालें भी उबाल कर खाई जा सकती हैं। इन सब में शरीर में घुलने लायक नमक और शक्कर पर्याप्त मात्रा में हैं। दूध, दही की चिकनाई घी, तेल की तुलना में सुपाच्य है। चिकनाई की आवश्यकता का तिल, मूँगफली, खोपरा, आदि को पानी में पीसकर काम चल सकता है। इस प्रकार योगाभ्यासी को जब तब उपवास और सामान्य समय में हलके सात्विक आहार को भूख से कुछ कम मात्रा में लेते रहने का नियम बनाना चाहिए। रस एवं रसों को प्रधानता देनी चाहिए। यह उपवास क्रम साधारण जीवन निर्वाह का अंग बना लेने पर स्वास्थ्य सुधरेगा। अनावश्यक वजन घट सकता है, पर जीवन शक्ति का अनुपात निश्चित रूप से बढ़ेगा।

योगाभ्यास के प्रथम चरण में इन्द्रिय निग्रह को अनिवार्य रूप में अपनाना पड़ता है क्योंकि **"जैसा खाये अन्न वैसा बने मन"** वाली उक्ति अक्षरशः सत्य है। तामसिक और राजसिक भोजन करने से न केवल शारीरिक स्वास्थ्य की जड़ खोखली होती है वरन् उनका प्रभाव मानसिक स्तर पर भी पड़ता है। आहार के अनुरूप ही मानसिक स्थिति में तमोगुण छाया रहता है। कुविचार उठते हैं। उत्तेजनाएँ छाई रहती हैं। चिन्ता, उद्विग्नता और आवेश का दौर चढ़ा रहता है। ऐसी स्थिति में न तो एकाग्रता सधती है और न ध्यान धारणा बन पड़ती है। इस विघ्न को जड़ से काटने के लिए आहार की सात्विकता पर सर्वप्रथम ध्यान देने की आवश्यकता है।

जो खाया गया, वह किस प्रकार कमाया गया। यह भी ध्यान देने योग्य है। बेईमानी, बदमाशी, हरामखोरी, चोरी, ठगी आदि के आधार पर जो कमाया गया है, वह भी कुधान्य है। आहार को हलका सुपाच्य ही नहीं होना चाहिए, वरन् उसका उपार्जन भी नीतिपूर्वक किया हुआ होना चाहिए।

पकाने, परोसने वाले के संस्कारों का भी आहार पर असर होता है। दुष्ट दुराचारी भी उसी प्रकार हेय हैं, जिस प्रकार खाज, दाद, कोढ़, क्षय आदि के रोगियों के हाथ का बना या परसा हुआ भोजन अग्राह्य समझा जाता है। सभी जानते हैं कि गंदगी की छूत लगती है। संक्रामक रोग एक से दूसरे पर धावा बोलते हैं, इसी प्रकार कुसंस्कारी, कुकर्मी लोग सम्पर्क में आने वालों को अपनी छूत लगाते हैं। उसी प्रकार चिन्तन, चरित्र और व्यवहार में जिन लोगों ने अनैतिकता भर रखी है, उनका प्रभाव भोजन पकाने और परोसने के माध्यम से भी ग्रहण करने वालों को प्रभावित कर सकता है। जिन होटलों में एक का प्रभाव दूसरे तक न पहुँचने देने के लिए उपयुक्त सावधानी नहीं बरती जाती, समुचित स्वच्छता नहीं रखी जाती, वहाँ का आहार भी साधना मार्ग पर चलने वालों के लिए विघ्न ही सिद्ध होता है। इसलिए शास्त्रों में आत्मिक प्रगति के लिए आहार शुद्धि के सम्बन्ध में सर्वप्रथम ध्यान देने के लिए कहा गया है।

अध्यात्म ग्रन्थों में अन्न को ब्रह्म कहा गया है। शास्त्रकार इसी को प्राण कहते हैं। उपनिषद्कारों ने अन्न ब्रह्म की उपासना

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

हेतु साधक की सहमत करने के लिए अनेकानेक तर्क, तथ्य तथा प्रमाण प्रस्तुत किए हैं। इनका अवगाहन करने पर निष्कर्ष यही निकलता है कि आमतौर से आहार से क्षुधा निवृत्ति और स्वाद तृप्ति भर का जो लाभ समझा जाता है, वह मान्यता अधूरी, अविवेकपूर्ण है। आहार प्रकारान्तर से जीवन है, साधक के लिए तो सफलता प्राप्ति के मार्ग का एक महत्वपूर्ण 'माइलस्टोन' है। यदि इस देवता की आराधना ठीक प्रकार से की जा सके तो शरीर को आरोग्य, मस्तिष्क को ज्ञान-विज्ञान, अन्तःकरण को देवत्व का अनुदान, व्यक्तित्व को प्रतिभावान एवं भविष्य को उज्जवल सम्भावनाओं से जाज्वल्यमांन बनाया जा सकता है।

अथर्ववेद में अनुपयुक्त अन्न को त्याज्य ठहराया गया है। प्राचीनकाल में मात्र पुण्यात्माओं का ही अन्न स्वीकार किया जाता था। किसी के सज्जन, धर्म परायण होने की कसौटी भी एक ही थी—उसने किसका अन्न खाया, वह किस प्रकार उपार्जित था। पुण्यात्मा वही कहाता था जिसका अन्न लोग ग्रहण करते थे।

"सवौ वा एष जग्ध पाप्मा यस्यान्नमश्नन्ति।"

९/६/२५ अथर्ववेद

अर्थात्—वाल्मीकि रामायण में अन्तःकरण को देवता के रूप में प्रस्तुत करते हुए इसी प्रकार कहा गया है—

"यदन्नं पुरुषो भवति तदन्नास्तस्य देवताः।"

अर्थात्—"मनुष्य जैसा अन्न खाता है, वैसे ही उसके देवता खाते हैं।" यदि साधक कुधान्य खाता है तो साधक का इष्ट भी भ्रष्ट हो जाता है और उससे जिस प्रतिफल की आशा की गई थी, वह प्रायः नहीं ही प्राप्त होता।

तैत्तरीयोपनिषद् में ऋषि उद्घोष करते हैं–

"अन्नाद्वै प्रजाः प्रजायन्ते। याःकाश्च पृथिवी श्रित्तः। अथो अन्नेनैव जीवन्ति। अथैनदपियन्त्यन्ततः। अन्न, हिभूतानां ज्येष्ठम्। तस्मात्सर्वौषधयमुच्यते। सर्वं वै तेऽन्नमाप्नुवन्ति येऽन्नं ब्रह्मोपासते।"

द्वितीय अनुवाक

अर्थात्—"इस पृथ्वी पर रहने वाले समस्त प्राणी अन्न से ही उत्पन्न होते हैं। फिर अन्न से ही जीते हैं। अन्त में अन्न में ही विलीन हो जाते हैं। अन्न ही सबसे श्रेष्ठ है। इसलिये वह औषधि रूप कहा जाता है। जो साधक अन्न ब्रह्म की ब्रह्म रूप में उपासना करते हैं; वे उसे प्राप्त कर लेते हैं।"

आगे वे कहते हैं कि इस अन्न रसमय शरीर के भीतर जो प्राणमय पुरुष है, वह अन्न से व्याप्त है। यह प्राणमय पुरुष ही आत्मा है।

इस प्रतिपादन से अनुमान होता है कि कितना महत्व अन्न को हमारे ऋषिगण देते आये हैं। यह सब अकारण नहीं है। अन्न को औषधि की उपमा देते हुए कहा गया है कि यह सभी प्राणियों के क्षुधाजन्य सन्तापों को दूर करता है, साथ ही उनके मन की गतिविधियों दैनंदिन जीवन की हलचलों का भी निर्धारण करता है।

'जैसा खाये अन्न वैसा बने मन' वाली उक्ति बहुत ही सारगर्भित है। मन को सात्विक बनाना आत्मोत्कर्ष की दृष्टि से नितान्त आवश्यक है। उसके लिए आहार शुद्धि का प्रथम चरण माना गया है। तमोगुणी, उत्तेजित करने वाला, अनीति उपार्जित, कुसंस्कारियों द्वारा पकाया, परोसा भोजन न केवल मनोविकार उत्पन्न करता है वरन् रक्त को अशुद्ध, पाचन को विकृत करके स्वास्थ्य संकट भी उत्पन्न करता है। आत्मिक प्रगति में, साधना की सफलता में तो कुधान्य का, अभक्ष्य का विषवत् प्रभाव पड़ता है। मन की चंचलता इतनी तीव्र हो जाती है कि सामान्य क्रियाकलापों में एकचित्त होकर कुछ कर सकना कठिन हो जाता है। फिर साधना में जिस एकाग्रता की, मनोयोग की आवश्यकता है, वह अभक्ष्य एवं अधिक मात्रा में खाने पर मिल ही नहीं सकती।

पिप्पलाद ऋषि पीपल वृक्ष के फल मात्र खाकर अपना निर्वाह करते थे। कणाद ऋषि जंगली धान्य समेंट कर उससे अपने क्षुधा शान्त करते थे। कृष्ण-रुक्मिणी का जंगली बेर खाकर तथा पार्वती का सूखे पत्तों पर रहकर तप करना प्रसिद्ध है। उच्चस्तरीय साधनाओं में व्रत-उपवास का अविच्छिन्न स्थान है। साधना में मन का सात्विक होना अतीव आवश्यक है। इसके लिये अन्न की सात्विकता पर ध्यान देना अनिवार्य हो जाता है। ऐसा न करने से वही स्थिति होती है जो भीष्म पितामह की हुई। वे शरशैया पर लेटे युधिष्टिर को धर्मोपदेश दे रहे थे कि अचानक द्रोपदी हँस पड़ी। वे बोले-"बेटी ! तू इतनी शीलवती है। फिर असमय क्यों बड़ों के समक्ष तू हँसी।" द्रौपदी ने कहा—"पितामह ! अपराध क्षमा करें। जब मेरे वस्त्र खींचे जा रहे थे और दुर्योधन की उस राज सभा में आप भी वहाँ बिराजे हुए थे, तब आपका यह ब्रह्मज्ञान कहाँ चला गया था।" "बेटी तेरा सोचना ठीक है", भीष्म पितामह ने गुत्थी हल करते हुए कहा—"उस समय मैं दुर्योधन का अन्याय पूर्वक अर्जित कुधान्य खा रहा था तो मेरी बुद्धि भी अशुद्ध थी व मन भी कुसंस्कार युक्त था। इसी कारण में अन्याय के विरुद्ध बोल न सका।" कितना मार्मिक प्रेरणाप्रद प्रसंग है यह, जो प्रत्यक्षतः अन्न और चिन्तन का पारस्परिक सम्बन्ध बताता है।

सभी आध्यात्मिक साधनाएँ उपवास प्रधान होती हैं। कई कड़ी होती हैं; कुछ मृदु। पूर्णिमा से पूर्णिमा तक क्रमशः घटाते हुए बढ़ाने वाला चान्द्रायण क्रम इन अंकों में पहले ही विस्तार से समझाया जा चुका है। कुछ लोग मात्र जल या पेय पर उपवास करते हैं। प्राचीन काल के मनोबल और शरीरगत क्षमता को दृष्टिगत रखकर यह कभी ठीक रहा होगा, पर अब बदली हुई परिस्थितियों में इस क्रम को सरल बनाया जा सकता है। पर इसमें उपवास का महत्त्व, अन्न की सात्विकता की प्रधानता अपनी जगह है। उपवास एक शरीरगत तितीक्षा है। अन्न की सात्विकता, उसका चयन तथा उसे ग्रहण की जाने वाली मात्रा का सीमा बन्धन वस्तुतः चिन्तन से जुड़ी हुई एक महत्त्वपूर्ण साधना है।

आरोग्य रक्षा की दृष्टि से पेट को भी साप्ताहिक छुट्टी मिलना चाहिए। उद्योगपति जानते हैं कि श्रमिकों को अवकाश न दिया जाय, उन्हें निरन्तर काम में लगाया जाय, तो उनकी शारीरिक-मानसिक क्षमता घट जाती है। फलतः छुट्टी देने पर

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जितना काम का हर्ज होता है, उससे भी अधिक की हानि होती है। अतएव मालिक और मजदूर दोनों का ही लाभ इसमें है कि श्रम और अवकाश दोनों का तालमेल बिठाकर चला जाये। यही नीति पेट के सम्बन्ध में भी अपनानी पड़ेगी। उसे भी साप्ताहिक अवकाश चाहिए। अवकाश अर्थात् उपवास। पूर्ण उपवास का तात्पर्य है निराहार-जल पर निर्वाह। इतना न बन पड़े तो रस, छाछ जैसे द्रव आहार लिए जाएँ। इतना भी सम्भव न हो तो शाकाहार-फलाहार पर गुजारा किया जाये। वह कठिन पड़े तो एक समय लंघन अथवा आहार का आधा भाग घटा देना चाहिये। जो खाया जाये वह सात्विक, सुपाच्य हो। इन्द्रिय संयम के अभ्यास के रूप में अस्वाद भोजन सप्ताह में एक या दो बार कर लिया जाये तो वह भूख जैसी छोटी कठिनाई बर्दाश्त करने का अभ्यास कराने वाली तितीक्षा से भी अधिक फलदायी होता है। साधक का आहार सात्विकता की दृष्टि से संतुलित होता है। पुष्टाई की दृष्टि से नहीं । इस एक तथ्य को आत्मिक पथ के हर पथिक को ध्यान में रखना होता है।

हठयोग प्रदीपिका कहती है—

अत्याहारः प्रयासश्च प्रजल्पो नियमग्रहः।
जन सङ्गश्च लौल्यं च षडभिर्योगे विनश्यति॥

१/१५

अर्थात्—"अधिक आहार, अधिक परिश्रम, अनियमित दिनचर्या, अधिक लोगों से घिरा रहना, चंचल वृत्ति ये योग मार्ग में साधक के प्रमुख विघ्न हैं।" आत्म परिष्कार की साधना में उच्चस्तरीय सोपानों से पूर्व आहार शुद्धि का व्रत ही लिया जाता है।

छान्दोग्योपनिषद में ऋषि कहते हैं कि "खाया हुआ अन्न तीन प्रकार का हो जाता है। उसका स्थूल भाग मल, मध्यम भाग मांस और सूक्ष्म भाग मन बन जाता है। हे सौम्य ! मन अन्नमय है। प्राण जलमय है, वाक् तेजोमय है।" यह एक सुनिश्चित तथ्य है कि आत्मिक प्रगति का मुख्य माध्यम मन है। वही बन्धन और मोक्ष का कारण है। मन की चंचलता एवं कुटिलता को नियन्त्रित करके ही अध्यात्म साधना के मार्ग से प्रगति होती है और तदनुसार सफलता मिलती है। इस प्रकार न केवल शरीर-शुद्धि एवं योगी के अनुरूप हलकी काया बनाने हेतु अपितु मनोनिग्रह एवं चित्तवृत्तियों के नियंत्रण के लिये भी अन्न-शुद्धि अनिवार्य है। हर मार्गदर्शक साधक को अपने आहार पर ध्यान देने का निर्देश देता है। अन्न के स्तर में जितनी सात्विकता का समावेश होगा, मन उसी अनुपात से निर्मल बनता चला जायेगा।

शास्त्रकार का मत है—

अन्नं न निन्द्यात्। तद् व्रतम्। प्राणो वा अन्नम्। शरीरमन्नादम्। प्राणे शरीरं प्रतिष्ठितम्। शरीरे प्राणः प्रतिष्ठितः। तदेतदन्नमन्ने प्रतिष्ठितम्। स य एतदन्नमन्ने प्रतिष्ठितं वेद प्रतिष्ठिति। अन्न वानन्नादो भवति। महान् भवति प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेन। महान् कीर्त्या।

—तैत्तिरीयोपनिषद ३/७

यहाँ भावार्थ यह है कि अन्न की निन्दा न की जाये। इस तथ्य को समझा जाये कि वही प्राण है और प्राण ही अन्न है। क्योंकि अन्न से ही प्राणों में बल आता है और प्राण शक्ति से ही अन्नमय शरीर में जीवनी शक्ति आती है। प्राण ही शरीर में अन्न के रस को सर्वत्र फैलाता है। यदि आज की वैज्ञानिक भाषा में इस प्राण को 'वायोइलेक्ट्रिसिटी' अथवा जीवकोषों में विद्यमान 'एक्शन पोटेन्शियल' मान लिया जाये तो एन्जाइम्स, पाचक रसों व सूक्ष्म स्रावों के माध्यम से उसकी सारे अवयवों में ऊर्जा-प्राणशक्ति पहुँचाने की भूमिका को स्पष्ट समझा जा सकता है। यह एक सर्वमान्य अनुभूत सत्य है कि प्राणों को आहार न मिलने पर वे शरीर की धातुओं को ही सोखने लगते हैं। शरीर की स्थिति प्राण के अधीन होने से प्राण भी अन्न ही हुआ या उसका सूक्ष्म स्वरूप हुआ। इस तत्त्वदर्शन को समझने वाला ही प्राण-शक्ति का सुनियोजित बल सम्बर्धन, योग साधन, शक्ति उपार्जन एवं प्रसुप्त के जागरण में कर पाता है। ऐसे व्यक्ति की, जो ब्रह्म तेज सम्पन्न होता है, कीर्ति संसार भर में फैलती है, और उससे यह सृष्टि भी अभिनन्दित होती है।

अन्न ही नहीं जल जो नित्य विभिन्न अवसरों पर शारीरिक आवश्यकतानुसार ग्रहण किया जाता है आहार है। उसका भी मनः स्थिति पर प्रभाव पड़ता है। आहार शुद्धि की तरह जलशुद्धि पर भी साधक को ध्यान देना चाहिए। इसीलिये साधना प्रयोजनों में पवित्र नदी-सरोवरों के जल को महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है। कहा गया है—

"आपो वा अन्नम्। ज्योतिरन्नादम्। अप्सुज्योतिः प्रतिष्ठितम्।"

—तैत्तिरीयोपनिषद् ३/८

आज प्राचीनकाल के योगाभ्यासी ऋषियों की भाँति अन्न शुद्धि कर आहार लेना दुश्कर कार्य लगता है। वन्य प्रदेशों में उपलब्ध कन्द मूल, फलों से वे अपना निर्वाह करते थे। उनके निवास भी उन्हीं क्षेत्रों में होते थे। अब वैसी स्थिति तो नहीं रही। पर जितना भी सम्भव हो सके, आहार की सात्विकता और ग्रहण की गयी मात्रा पर अधिकाधिक अंकुश रखना अन्नमय कोष से प्रारम्भ होने वाली साधना प्रक्रिया की सफलता के लिए नितान्त आवश्यक माना जाये। इस सम्बन्ध में शास्त्रमतों व वर्तमान परिस्थितियों में तालमेल बैठाकर कुछ निर्धारण कर लिये जाएँ। सप्ताह में एक दिन उपवास, नियत अवधि के लिए अस्वाद व्रत का पालन, एक समय अन्नाहार, एक समय शाकाहार, दूध, छाछ, रस द्रव्य, कल्प, दलिया या अमृताशन इत्यादि में से किसी एक को अपनाकर साधनावधि इसी प्रकार व्यतीत की जाये। इस तपश्चर्या का महात्म्य अवर्णनीय है। सामान्य जन तो इसकी फलश्रुति चर्मचक्षुओं से स्वास्थ्य में परिवर्तन देखकर ही आश्चर्यचकित हो जाते हैं। जब साधना का, सात्विक जीवन क्रम का तथा सोद्देश्य चिन्तन व दिशा निर्धारण का इसमें समावेश हो जाता है तो अगणित विभूतियों के रूप में इसके परिणाम सामने आते हैं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

साधना पथ के हर जिज्ञासु को इस तथ्य को ध्यान में रखना चाहिए। आहार सम्बन्धी सतर्कता अपनाकर अपने साधना पुरुषार्थ को सफल बनाना हर किसी के लिए सम्भव है।

अन्न का स्तर और उसका शरीर एवं मन पर प्रभाव

अन्न से रस, रक्त, माँस अस्थि, मज्जा, मेद, शुक्र सात धातुओं युक्त शरीर बनता है। आहार पर शरीर की स्थिरता और पुष्टि बहुत कुछ निर्भर रहती है यह सर्वविदित है। इस तथ्य को समझने के कारण ही बहुमूल्य पौष्टिक आहार किया जाता है, शक्तिदायक औषधियाँ खाई जाती हैं। आहार शास्त्र की शोध एवं विवेचना इसी लिए की जाती रहती है कि उसके द्वारा शरीर अधिक स्वस्थ और पुष्ट बने।

आहार का शरीर पर ही नहीं मन पर भी भारी प्रभाव पड़ता है। आहार के भी दो विभाग हैं—एक स्थूल, दूसरा सूक्ष्म। उसका स्थूल भाग शरीर के स्थूल कलेवर रूप में दिखाई पड़ता है। सूक्ष्म भाग उसकी चेतनाशक्ति है जिसे गुण या प्रकृति कह सकते हैं। यह अंश मन का भाग बन जाता है।

भूमिका—पंचतत्वों का जितना अंश अन्न में है उसका प्रभाव शरीर तक सीमित है। पर अन्न के उपार्जन में पकाने, परोसने आदि सम्पर्क में जो भावनाएँ जुड़ती हैं वे खाने वाले के मन पर प्रभाव डालती हैं।

सत, रज, तम, प्रकृति का अन्न भी होता है। आहार का वर्गीकरण इस गुण प्रधानता के आधार पर भी किया जा सकता है। सतोगुणी अपार सद्बुद्धि उत्पन्न करता है और तमोगुणी दुर्बुद्धि उपजाता है।

अन्न के स्थूल रूप को ही नहीं उसकी सूक्ष्म स्थिति को भी ध्यान में रखना चाहिए तभी हमारे शरीर और मन का समुचित परिपोषण हो सकता है।

एतमेव खलु सौम्यान्नस्याश्यमानस्य योऽणिमा स ऊर्ध्वः समुदीषति तन्मनो भवति ॥२॥ —छान्दोग्य ६/६/२

जो अन्न खाया जाता है उसका सूक्ष्म भाग मन बन जाता है।

अन्नमशितं त्रेधा विधीयते तस्य यः स्थविष्ठो धातुस्तत्पुरोषं भवति यो मध्यमस्तन्मा सं योणिष्ठास्तन्मनः ॥१॥

—छान्दोग्य ६/५/१

जो अन्न खाया जाता है। वह तीन भागों में विभक्त हो जाता है। स्थूल अंश मल, मध्यम अंश रस, रक्त, माँस आदि और सूक्ष्म अंश मन बन जाता है।

यदन्नम् पुरुषो भवति तदन्ना स्तस्य देवताः।

—वाल्मीक रामायण

मनुष्य जैसा अन्न खाता है वैसे ही उसके देवता भी बनते हैं।

आहार शुद्धौ सत्वशुद्धौः सत्वशुद्धोः ध्रुवाः स्मृतिः। स्मृतिलम्भे सर्व ग्रन्थीनां विप्रमोक्षस्तस्यै मृदितकषायाय तमसस्पादर्शयति भगवान सनत्कुमारः।

—ब्रह्मोपनिषद

आहार पवित्र होने से अन्तःकरण पवित्र होता है। अन्तःकरण की शुद्धि से विवेक बुद्धि प्रखर होती है उस विवेक से अज्ञान जन्य निविड़ बन्धन खुलते हैं।

यह ज्ञान नारद को भगवान सनत कुमार ने दिया।

अन्नम् न परिचक्षीत। तद व्रतम्....

—तैत्तरीय अष्टम अ.

अन्न की अवज्ञा न करें। यह व्रत है।

अभक्षयस्य निवृत्या तु विशुद्धं हृदयं भवेत्।
आहारशुद्धौ चित्तस्य विशुद्धिर्भवति स्वतः॥
चित्तै शुद्धे क्रमाज्ज्ञानं त्रुट्यन्ते ग्रन्थयः स्फुटं।

—पाशुपतः ब्रह्मोपनिषद

आहार में अभक्ष्य त्याग कर देन से चित्त शुद्ध हो जाता है, आहार की शुद्धि से चित्त की शुद्धि स्वयंमेव हो जाती है। जब चित्त शुद्ध हो जाता है। तो क्रम से ज्ञान होता जाता है और अज्ञान की ग्रन्थियाँ नष्ट हो जाती हैं।

अन्न साधना अध्यात्म साधना का महत्वपूर्ण अंग है। शुद्ध सात्विक, न्याय उपार्जित, संस्कारी आहार प्राप्त किया जाना चाहिए और उसे शरीर के लिए औषधि एवं अन्तःकरण के शुद्धि के लिए भगवान का प्रसाद मानकर रुचि एवं श्रद्धा पूर्वक खाया जाना चाहिए। इस प्रसंग पर शास्त्र का निर्देश इस प्रकार है—

अन्ने संकल्पतेऽन्नस्य संक्लृप्त्यै प्राणः संकल्पते प्राणानां सांलृप्त्यै मन्त्राः संकल्पते मन्त्राणां संक्लृप्त्यै कर्माणि संकल्पन्ते कर्मणां संक्लृपत्यै लोकस्य संकल्पते सर्वं संकल्पते स एष संकल्प संकल्पमुपास्स्वेति॥

—छान्दोग्य २/४/२

अन्न के साथ जुड़ी भावनाओं (संकल्पों) से प्राण समर्थ होते हैं। प्राणों में घुली भावनाओं से मन्त्र समर्थ होते हैं। मन्त्रों में घुली भावनाओं से कर्म प्रबल होते हैं और कर्मों में जुड़ी भावना से फल उपलब्ध होता है। संकल्प ही श्रेष्ठ है सो तुम संकल्पों की उपासना करो।

अन्नाद्वै प्रजायन्ते। काश्च पृथ्वी श्रितः। अथो अन्ने नैव जीवन्ति। अथैनदपियन्तन्ततः। अन्ने हि भसानां जेष्ठ। तस्मात्सर्वौषधयमुच्यते। सर्ववै तेध्न ता स्तुवन्ति येऽन्नेन ब्रह्मोपासते।

—तैत्तरीय उपनिषद्

अन्न से ही प्राणी उत्पन्न होते हैं, उसी के आधार पर जीते हैं और अन्त में उसी में लीन हो जाते हैं। जो अन्न को ब्रह्म मानकर उसकी उपासना करते हैं सो उसे ही प्राप्त कर लेते हैं।

श्रम उपार्जित सद्भाव युक्त, सतोगुणी आहार की ही प्रशंसा है उसी के आधार पर जीवन शुद्धि होती है। मन्त्र, योग, तप भी उसी के आधार पर सफल होते हैं। कुसंस्कारी कुधान्य खाने वालों का न कभी चित्त एकाग्र होता है न उनके जप-तप में सफलता मिलती है।

जिह्वा दग्धा परान्नेन करौ दग्धौ प्रतिग्रहात्।
मनोदग्धम् परस्त्रीभिः कथं सिद्धिर्वरानने॥

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पराया अन्न खाने से जीभ की शक्ति नष्ट हो गई, दान दक्षिणा लेते रहने से हाथों की शक्ति चली गई, पर नारी की ओर मन डुलाने से मन नष्ट हो गया। हे पार्वती। इन ब्राह्मणों को सिद्धि कैसे मिले?

साधना में सफलता प्राप्त करने के इच्छुकों को परमान्न से कुधान्य से तो बचाना ही चाहिए। साथ ही यह प्रयत्न भी करना चाहिए कि उनका सब उपार्जन पुण्य परमार्थ एवं लोक मंगल में लगता रहे।

सबौता एवं जग्ध पाप्मा यस्यान्न मश्नन्ति।

—अथर्व ९/६/२५

जिनका अन्न दूसरे खाते हैं वे ही पुण्यात्मा है।

अन्न के स्थूल सूक्ष्म स्वरूप पर गम्भीरता पूर्वक विचार एवं विनियोग करके ही शरीर और मन को स्वस्थ रख सकना सम्भव हो सकता है।

पूजयेदशनं नित्यमद्याच्चैतदकुत्सयन्।
दृष्ट्वा हृष्येत् प्रसीदेच्च प्रतिनन्देच्च सर्वशः॥
पूजितं ह्यशनं नित्यं बलमूर्जं च यच्छति।
अपूजितम् तु तदभुक्तमुभयं नाशयेदिदम्।
नोच्छिष्टम् कस्यचिद्दान्नाच्चैव तथान्तरा।
न चैवत्यशनम् कुर्यान्न चोच्छिष्टः क्वचिद्व्रजेत॥
अनारोग्यमनायुष्यमस्वर्ग्यं चातिभोजनम्।
अपुण्यं लोकविद्विष्टम् तस्मात्तत्परिवर्जयेत्॥

—मनु २/५४ से ५७

भोजन की पूजा प्रार्थना करे। उसकी निन्दा न करे। भोजन सामने आया देख कर प्रसन्नता अनुभव करे। पूजित अन्न बल और तेज प्रदान करता है। अपूजित अन्न स्वयं भी नष्ट होता है और खाने वाले का भी अहित करता है। जूठन नहीं खानी चाहिए। जो भोजन दीर्घ जीवन आरोग्य, स्वर्ग देने वाला न हो, पेट पालक ही हो उसे त्याग दें। जो पाप की कमाई का हो उसे भी छोड़ दें।

ईशावास्योपनिषद्—में कहा गया है—

ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्य स्विद्धनम्॥

अर्थात्—अखिल विश्व में जड़चेतन स्वरूप जो कुछ भी है वह सर्वव्याप्त ईश्वर से परिपूर्ण है। इस संसार में जो कुछ भोग है, उसे समर्पित कर भोगो। लालच न करो, यह धन तुम्हारा नहीं है।

मनुष्य में एक बहुत बड़ी कमजोरी है कि उसे प्राप्त का अभिमान हो जाता है। यह घर मैंने बनाया है। यह खेत मेरे हैं। इतना धन मैंने कमाया है। मैं इस सम्पत्ति का स्वामी हूँ, जो चाहे करूँ जैसा चाहूँ बरतूँ। इसे अहंकार कहते हैं। कहते हैं अहंकार करने वाले का विवेक नहीं रहता और वह बुद्धि-भ्रष्ट होकर नष्ट हो जाता है। अभिमानी व्यक्ति की भावनायें बड़ी संकीर्ण होती हैं। दूर तक सोचने की उसमें क्षमता न होने से वह अज्ञानियों के काम करता और दुःख भोगता है। इसलिए उसके लिये यह मंगलमय विश्व भी दुःख रूप हो जाता है। वह क्लेश में जीता और क्लेश में मर जाता है।

आप प्रतिदिन भोजन करने बैठते हैं। उस समय स्वाद की भड़क और भूख की जल्दी में आप यह नहीं सोचा करते कि यह आहार किसने प्रदान किया है। कदाचित् आप से कोई यह प्रश्न पूछे तो आप कहेंगें—यह अन्न मैंने पैदा किया है, मेरी धर्मपत्नी ने बनाया। बस यह सब मेरा है इसमें किसी का राई-रत्ती भर अधिकार नहीं है, जैसे चाहूँगा वैसे भोगूँगा।

आपका इस प्रकार सोचना मिथ्या है। माना आपने श्रम किया, तो उसके बदले आप ही तो उसे भोगने जा रहे हैं। आपकी धर्मपत्नी ने बनाया है, इसीलिए तो आपकी इच्छानुसार बना है। पर आप थोड़ा ऊँचे उठकर विचार कीजिये कि आपके इस अन्न में सृष्टि के नियामक परमात्मा का अधिकार भी है। उसने धरती न बनाई होती तो आप अन्न कहाँ उगाते। बीज न बनाया होता तो क्या पैदा कर लेते? फिर कहीं आपका ही अस्तित्व न होता, यह मनुष्य शरीर न मिला होता तो इसे भोगने की सामर्थ्य आप में कहाँ से आती? आपको भोग के साधन प्रदान किये गये हैं तो उस दाता के प्रति आपको कृतज्ञ भी तो होना चाहिए।

भोजन करने के पूर्व आप उसे परमात्मा को समर्पित कर दिया करें, तो इसमें आपका घटेगा कुछ नहीं वरन् अन्न की शक्ति के साथ भावना बल भी बढ़ेगा। आपको शक्ति और ओज प्रदान करने में इस प्रकार की भावना की महत्ता अद्वितीय है।

जो भोजन आप ग्रहण करते हैं उसी के द्वारा आपका पोषण और नव निर्माण नहीं होता, प्रत्युत्त भोजन करते समय आपकी जैसी मनः स्थिति होती है, मन जैसा सूक्ष्म प्रभाव फेंकता है और जैसी भावनायें लेकर भोजन करते हैं। उनका भी आपके जीवन निर्माण से महत्त्वपूर्ण सम्बन्ध होता है। उन भावनाओं का विकास शरीर के रक्त, माँस, वीर्य और प्राण के द्वारा प्रस्फुटित होकर सारे जीवन में बिखर जाता है। परमात्मा को भोजन समर्पित करने से जो सात्विक और पवित्र विचार प्रवाह उमड़ता है वह अपने शरीर और जीवन में घुल जाता है। शरीर पुष्ट और बलिष्ट बनता है। साथ में संकल्प मजबूत होते हैं और उस निश्चयात्मक बुद्धि से बनने वाला जीवनक्रम भी अधिक सुव्यवस्थित बन पड़ता है।

प्रातःकाल से लेकर दोपहर तक काम करने में आपके सामने अनेक प्रकार की परिस्थितियाँ आती हैं। कभी क्रोध उत्पन्न होता है, कभी खिन्नता आती है। कभी भय पैदा होता है, कभी निराशा उत्पन्न होती है। अनेक तरह के बुरे विचार भी प्रभावित करते रहते हैं। काम की कठोरता में उत्तेजना, उद्विग्नता, ईर्ष्या-द्वेष पैदा होना स्वाभाविक-सा है। कई बार दूसरे लोग अपने काम में बाधायें डालते हैं उसके कारण प्रतिशोध की भावनायें भी भड़क उठती हैं। दोपहर को घर लौटते हैं तो

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अशुभ विचारों का पूरा बोझ साथ लेते हैं। यह कुत्सित विचार भोजन करते समय भी बने रहें तो वे स्थायित्व ग्रहण करने लगेंगे। परमात्मा के प्रति समर्पण का विचार करते ही आपकी अन्तरात्मा विशाल होती है। उसमें सारे कलुष काषाय धुल जाते हैं। आगे के लिए एक स्वस्थ चैतन्यता अनुभव करने लगते हैं।

आहार ग्रहण करने के समय भावनाओं के सम्मिश्रण का फल अलौकिक है। इससे आत्मा में स्वर्गीय शान्ति का अवतरण होता है। बच्चे अपनी माँ का दूध पीते हैं। तो कितनी अठखेली करते हैं। कभी मुँह नोचते हैं तो कभी चूम-चटकार करते हैं। तरह-तरह के आमोद-प्रमोद करता है बालक। माँ के प्रति उसकी कृतज्ञता पूर्ण प्रकट होती है। माँ भी यह देखकर अपना ममत्व उड़ेलती है। दूध के साथ भावनायें पिलाती है। बच्चे के स्वास्थ्य और सुडौलता में दूध उतना महत्त्वपूर्ण नहीं होता जितना माँ-बेटे के द्वारा विनिर्मित उल्लास और ममता भरा वातावरण। वह दूध बच्चे के लिये शहद से भी अधिक मीठा, शक्तिवर्द्धक और अमृत के समान होता है।

मनुष्य का पिता परमात्मा है। पिता की शक्ति और सामर्थ्य माता से बढ़कर होती है। अपने पुत्र की भावनाओं को देखकर उसका जी भर आता है, तब वह अपने शिशु को अपनी भावनाओं का रस उसी तरह पिलाता है जैसे माता अपने बेटे को दूध पिलाती है। निर्लेप, भव्य और उत्तम मनः स्थिति सुन्दर स्वास्थ्य के लिए प्रथम आवश्यक तत्त्व है। भयपूर्ण, क्लान्त या उद्विग्न मनः स्थिति में भोजन करना आलस्य और रोग-शोक को नियन्त्रण देना है।

"जो कुछ भी आप लेते हैं वह पाचन के उपरान्त शरीर का एक भाग बन जाता है। उस भोजन के साथ जो कुछ सूक्ष्म विचार थे वे भी शरीर में बस जाते हैं। लोग समझते हैं खाद्य पदार्थ में शक्ति है इसलिये आहार की बाहरी सफाई पर तो ध्यान देते हैं किन्तु आन्तरिक स्वच्छता को उपेक्षित करते हैं इससे उत्तम स्वास्थ्य और नीरोग शरीर की आकांक्षा नहीं सफल होती।" यह शब्द थियोसोफिकल सोसायटी के विद्वान सन्त लेडबीटर ने 'वस्तु की आन्तरिक दशा' नामक पुस्तक में लिखे हैं।

परमात्मा पूर्ण पवित्रता का प्रतीक है। जब वह भोजन में हमारे साथ बैठ जाता है तो सात्विकता की लहर दौड़ने लगती है। परमात्मा का प्रसाद पुष्टिदायक, मधुर स्वादिष्ट और थोड़ा होता है। प्रसाद-भावना से लिया हुआ आहार भी वैसा ही होना चाहिये। मीठा, स्वल्प सात्विक और स्वादिष्ट। इसी में स्वास्थ्य की तृप्ति की सम्भावनायें भी टिकी हैं। जब भगवान् साथ नहीं होता तभी लोग अखाद्य पदार्थ भक्षण करते हैं। असात्विक भोजन लेते हैं। माँस, मिर्च मसालेदार, गरिष्ठ पदार्थ, प्याज और इसी तरह के अन्य दूषित पदार्थों का सेवन वही लोग करते हैं जो परमात्मा को अपने अन्दर धारण नहीं करना चाहते। इसी के फलस्वरूप उन्हें स्वास्थ्य का सुख नहीं मिलता, भावनाओं का सुख नहीं मिलता।

आहार का उद्देश्य मन को, स्वादेन्द्रिय को तृप्त करना मात्र नहीं, वरन् उसका जीवन की गतिविधियों से गहरा सम्बन्ध है। जिस व्यक्ति का जैसा भोजन होगा उसका आचरण भी तदनुकूल होगा।

जिसके जीवन में अनेक बुराइयाँ धँसी हैं, अनेक मनोविकारों से जो ग्रस्त है उसे अपना जीवन सीधी राह पर लाने का प्रारम्भिक एक साधन आहार शुद्धि और परमात्मा को समर्पित कर भोजन लेना है। आहार में ईश्वरीय दिव्यता का समावेश होता है तो काम, क्रोध, उत्तेजना, चंचलता, निराशा, उद्वेग आदि बुराइयाँ दूर होती हैं। स्वस्थ्य, शक्ति और सौन्दर्य बढ़ता है। यह मनुष्य का कर्त्तव्य भी है। जिस परमात्मा ने हमें यह अलौकिक भोग इस धरती में दिया है उसके प्रति समर्पण का भाव न रखें तो यह मनुष्य की धृष्टता होगी। उसे जो मिलता है, मिला है, वह परमात्मा की कृपावश मिलता है। उनकी इस कृपा के प्रति कृतज्ञ होना हमारा प्रमुख कर्त्तव्य होना चाहिये।

अन्न से बनता है मन

अन्न को ब्रह्म कहा गया है। काया का समूचा ढाँचा प्रकारान्तर से खाद्य की ही परिणति है। व्यक्ति का गुण, कर्म स्वभाव का मूलभूत ढाँचा आहार के आधार पर ही बनता है। शिक्षा आदि से तो उस ढाँचे को सँभाला सँजोया भर जाता है। यही कारण है कि अध्यात्म विज्ञान में आहार की उत्कृष्टता को अन्तःकरण, विचारतंत्र एवं कायाकलेवर की पवित्रता प्रखरता का सर्वोपरि माध्यम माना गया है। आहार की शुद्धता पर ही मन का स्तर एवं उसकी शुद्धता निर्भर है। खान-पान जितना सात्विक होगा, मन उसी अनुपात से निर्मल बनता चला जायेगा।

मन को ग्यारहवीं इन्द्रिय कहा गया है। वह भी शरीर का ही एक भाग है। अन्न से रस, रस से रक्त, रक्त से माँस, माँस से अस्थि और मज्जा, मेद, वीर्य आदि बनते-बनते अन्त में मन बनता है। इसमें चेतना का समावेश तो है पर मस्तिष्क संस्थान वस्तुतः अन्न शरीर का ही एक भाग है। इसलिए स्वाभाविक है कि जैसा स्तर आहार का होगा वैसा ही मन बनेगा। शरीर शास्त्री और मनोवैज्ञानिक भी इस सम्बन्ध में प्रायः एक मत हैं कि आहार से मन का स्तर बनता है। प्रकृति की कैसी विचित्रता है कि जहाँ मन की प्रेरणा से शरीर को चित्र-विचित्र काम करने पड़ते हैं वहाँ यह भी एक रहस्य है कि मन का स्तर शरीर द्वारा बनता है। वह शरीर जो आहार का अन्न का उत्पादक है जिसके आधार पर वह बनता बढ़ता, परिपुष्ट बनता और उसी का पाचन समाप्त होने पर अथवा उसमें विषाक्तता रहने पर वह मर भी जाता है। शरीर जहाँ मन का अनुचर है वहाँ उसकी स्थिति को बनाने में प्रमुख भूमिका भी निभाता है। इस उलझन को देखते हुए यह नहीं कहा जा सकता कि शरीर प्रधान है या मन। गुत्थी इस तरह सुलझती है कि दोनों का सृजेता अन्न है। इसीलिए शरीर और मन दोनों का सूत्र संचालन मन को कहा जाये तो कुछ अत्युक्ति न होगी।

अतः जीवन का व्यक्तित्व का स्तर निर्धारित करने के लिए सर्व-प्रथम अन्न के स्वरूप को सँभालना पड़ता है। क्योंकि वही शरीर को विनिर्मित करता है और उसी के अनुरूप

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

मन की प्रवृत्ति बनती है। इस प्रधान आधार की शुद्धता पर ध्यान न दिया जाय तो न शरीर की स्थिति ठीक रहेगी और न मन की दिशाधारा में औचित्य बना रह सकेगा।

अध्यात्म विज्ञान के वैज्ञानिक ऋषियों ने आहार के सूक्ष्म गुणों का उसके समस्त आयामों का अत्यन्त गंभीरता-पूर्वक अध्ययन किया था और यह पाया था कि प्रत्येक खाद्य पदार्थ अपने में सात्विक, राजसिक और तामसिक गुण धारण किये हुए हैं, और उनके खाने से मनोभूमि का निर्माण भी वैसा ही होता है। साथ ही यह भी शोध की गई थी कि आहार में निकटवर्ती स्थिति का प्रभाव ग्रहण करने का भी एक विशेष गुण है। दुष्ट, दुराचारी, दुर्भावनायुक्त या हीन मनोवृत्ति के लोग यदि भोजन पकावें या परोसें तो उनके वे दुर्गुण आहार के साथ सम्मिश्रित हो कर खाने वाले पर अपना प्रभाव अवश्य डालेंगे। न्याय और अन्याय से, पाप और पुण्य से कमाये हुए पैसे से जो आहार खरीदा गया है उससे भी वह प्रभावित रहेगा। अनीति की कमाई से जो खाद्य सामग्री बनेगी, वह अभक्ष्य है। उसका सेवन उपभोक्ता को अपनी बुरी प्रकृति से अवश्य ही प्रभावित करेगा।

इन बातों पर भली प्रकार विचार करके ऋषियों ने साधक को सतोगुणी आहार ही अपनाने पर जोर दिया है। उनका भोजन स्वयं परम सात्विक होता था। महर्षि कणादि अन्न के दाने बीन कर गुजारा करते थे। पिप्पलाद का आहार था, पीपल वृक्ष के फल। वैसी स्थिति यद्यपि आज कहीं नहीं पायी जा सकती, पर जितना कुछ सम्भव है, आहार की सात्विकता और व्यवस्था पर अधिकाधिक अंकुश रखना साधना की सफलता के लिए नितान्त जरूरी है। मद्य एवं अन्यान्य नशीले पदार्थों का सेवन माँस, प्याज, लहसुन, चटपटे एवं उत्तेजक मसाले, गरिष्ट, बासी-बुसे, तमोगुणी प्रकृति के लोगों द्वारा बनाया हुआ अथवा अनीति से कमाया हुआ आहार भी सर्वथा त्याज्य है। इन बातों का ध्यान रखते हुए स्वास्थ्य के लिए या जीवन रक्षा के लिए जो खाद्यान्न मिताहार औषधि रूप समझ कर, भगवान का प्रसाद मानकर ग्रहण किया जायेगा, वह शरीर और मन में सतोगुणी स्थिति पैदा करेगा और उसी के आधार पर साधना मार्ग में सफलता मिलनी सम्भव होगी।

तैत्तरीय उपनिषद् में इस सम्बन्ध में अधिक प्रकाश डाला गया है और आत्म कल्याण के इच्छुकों को आहार-शुद्धि का विशेष रूप से ध्यान रखने का निर्देश किया गया है। अन्तःकरण शुद्ध होने पर विवेक बुद्धि ठीक काम करती है उस विवेक से अज्ञान जन्य बन्धन ग्रन्थियाँ खुलती हैं, फिर परमतत्त्व का साक्षात्कार हो जाता है। पाशुपत ब्रह्मोपनिषद् में भी कहा है कि—"आहार में अभक्ष्य त्याग देने से चित्त शुद्ध हो जाता है। आहार की शुद्धि से चित्त की शुद्धि स्वयमेव हो जाती है। जब चित्त शुद्ध हो जाता है तो क्रम से ज्ञान होता जाता है और अज्ञान की ग्रंथियाँ टूटती जाती हैं" यही बात छान्दोग्य उपनिषद् में कही गई है। उसके अनुसार "आहार शुद्ध होने से अन्तःकरण की शुद्धि होती है। अन्तःकरण के शुद्ध हो जाने से भावना दृढ़ हो जाती हैं और भावना की स्थिरता से हृदय की समस्त गाँठें खुल जाती हैं।"

कुधान्य खाकर साधना करने से साधन का इष्ट भी भ्रष्ट हो जाता है और उससे जिस प्रतिफल की आशा की गई थी वह प्रायः नहीं ही प्राप्त होता। आत्मविद्या के ज्ञाता सदा से यह कहते आये हैं कि आत्मोन्नति की साधना तक प्रक्रिया में आहार शुद्धि का अति महत्त्वपूर्ण स्थान है। यदि उस ओर ध्यान नहीं दिया जाये और प्राणायाम, प्रात्योहार, चेति, धोति आदि आगे के क्रियाकलापों में उलझा जाये तो वह समय पूर्व की बात होगी। अक्षर ज्ञान सीखे बिना किसी बच्चे को ज्यामिति के कठिन प्रश्न हल करने को कहा जाये तो यह अनुपयुक्त ही होगा। आहार में मस्तिष्क और भाव स्तर को सात्विकता की दिशा में अग्रगामी बना सकने वाले तत्त्वों से संयुक्त न बनाया जा सके तो भूखे पेट फुटबाल खेलने जैसा उपहासास्पद होगा। आत्मिक प्रगति के लिये आहार शुद्धि पर पूरा-पूरा ध्यान दिये जाने की आवश्यकता है।

रसायनशास्त्री मानव शरीर को एक रासायनिक पिंड मानते हैं। मुख की लार से लेकर, पाचन संस्थान में स्रवित होने वाले रसों और हारमोनों तक विविध स्राव रासायनिक प्रक्रिया ही उत्पन्न करते हैं। स्नायु संस्थान, तन्त्रिका जाल और कोशिका समूह में जहाँ विद्युत धाराएँ अपना काम करती हैं वहाँ रासायनिक प्रक्रियाएँ भी चलती रहती हैं। अन्न को रक्त के रूप में और रक्त को माँस-मज्जा के रूप में बदलने का काम यही रासायनिक पद्धति करती है जिसके आधार पर जीवन-क्रम के अन्यान्य सारे क्रियाकलाप निर्भर हैं। श्वसन के माध्यम से ऑक्सीजन का शरीर में प्रवेश, रक्त में उसका घुलना और ऊर्जा उत्पन्न करना इसे रासायनिक प्रक्रिया के अतिरिक्त और क्या कहें।

औषधिशास्त्र मनुष्य की रुग्णता और बलिष्ठता के पीछे रासायनिक हलचलों का कारण ही मानता है। मल परीक्षा, मूत्र परीक्षा, रक्त परीक्षा आदि में यही तो देखा जाता है कि भीतर कौन सा रसायन घट या बढ़ रहा है। औषधियाँ क्या हैं? विशुद्ध रूप से रसायन है जो पदार्थ भीतर कम पड़ रहा है या बढ़ रहा है उसे सन्तुलित करने के लिये ही तो विभिन्न प्रकार के खनिज, क्षार, विटामिन, प्रोटीन आदि शरीर में पहुँचाये जाते हैं। ईंट चूने से बने मकान की टूट-फूट भी तो आखिर ईंट चूने से ही सुधारी जाती है। फिर शरीर में आई अव्यवस्था को व्यवस्थित करने के लिये रसायनों के अतिरिक्त और क्या माध्यम हो सकता है? इसी मान्यता पर समस्त औषधिशास्त्र का निर्माण हुआ है।

अध्यात्मशास्त्र भी मानवी चेतना को परिष्कृत करने के लिये रसायनों का प्रयोग करता है। उसकी मान्यता है कि वस्तुओं में स्थूल, सूक्ष्म और कारण यह तीन शक्ति होती हैं। अन्न का स्थूल स्वरूप रक्त माँस बनता है। उसके सूक्ष्म रूप से—मस्तिष्क एवं विचार बनते हैं और कारण रूप भावनाओं का विनिर्मित करता है। यदि सड़ा, बुसा, विषाक्त अन्न होगा तो उससे पोषण तो दूर उलटे रोग उत्पन्न होंगे। यदि दुष्प्रवृत्तियों

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

के साथ कमाया हुआ और दुष्ट मनुष्यों के हाथों बना, परोसा अन्न होगा तो उससे मस्तिष्क में दुर्बुद्धि उत्पन्न होगी। इसी प्रकार यदि उसे प्रसाद भावना से पकाया और औषधि भावना से खाया न गया होगा; बनाने और खिलाने वाले की स्नेहसिक्त सद्भावनाओं का समन्वय न होगा तो उससे खाने वाले का अन्तःकरण विकसित न होगा—उसकी भावनाओं में उच्च स्तरीय उभार न आयेगा। आहार केवल स्थूल दृष्टि से पौष्टिक एवं स्वल्प होना चाहिये वरन् उसके पीछे न्यायानुकूल उपार्जन और सद्भावनाओं के समन्वय का भी तारतम्य जुड़ा रहना चाहिये तभी वह अन्न मनुष्य के तीनों आवरणों का समुचित पोषण कर सकेगा और तभी उसे शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक दृष्टि से सर्वांगीण विकास का अवसर प्राप्त होगा।

आहार के साथ जुड़े हुये कुछ तत्त्व शरीर भूमिका से आगे बढ़कर मनः क्षेत्र को प्रभावित करते हैं इसका प्रमाण वे वस्तुएँ देती हैं जिन्हें नशीली कहते हैं। नशा, पदार्थ का सूक्ष्म गुण है। वह रक्त माँस पर तो प्रभाव डालता ही है साथ ही मस्तिष्क को—मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार को भी प्रभावित करता है। नशे का प्रभाव होते ही मनुष्य का मस्तिष्क बेकाबू हो जाता है और वह कुछ का कुछ सोचने देखने, समझने लगता है। इतना ही नहीं—धीरे-धीरे उस नशेबाजी का प्रभाव सेवनकर्त्ता के गुण, कर्म, स्वभाव पर पड़ता चला जाता है और उसका चरित्र, दृष्टिकोण, स्वभाव आदि का स्तर निरन्तर गिरता चला जाता है। यह तथ्य बताते हैं कि आहार का प्रभाव केवल शरीर तक सीमित नहीं है यह केवल भूख बुझाने, स्वाद देने और रक्त माँस बनाने की स्थूल शारीरिक क्रिया तक सीमित नहीं रहता वरन् उसके सूक्ष्म प्रभाव मस्तिष्क को ही नहीं अन्तःकरण को भी प्रभावित करते हैं।

जैसा खाये अन्न—वैसा बने मन

मस्तिष्कीय विकास की न्यूनाधिकता में उसकी प्राकृतिक संरचना की बात कहकर हम प्रकारांतर से भाग्यवाद और विधि-विधान का ऐसा समर्थन करते हैं जिसे बदलना मनुष्य के बस की बात नहीं है।

दूसरा कारण शिक्षा की कमीवेशी को कहा जाता है। संगति और वातावरण को भी इसमें सहायक या बाधक माना जाता है। यह सभी कारण अपने स्थान पर बहुत हद तक सही भी होते हैं, पर इनसे भी अधिक महत्वपूर्ण और गाँठ-बाँध रखने योग्य बात है कि मस्तिष्क शरीर का एक अवयव भर है भले ही उसकी उपयोगिता और कार्यक्षमता कुछ भी क्यों न हो? अन्य अवयवों पर आहार और व्यायाम का असर पड़ता है। उनकी कमजोरी दूर करने में इन दोनों ही उपायों का प्रयोग किया जाता है। औषधियाँ आहार ही तो हैं। अन्य उपचारों को व्यायाम वर्ग में सम्मिलित किया जा सकता है। अब अन्य अवयवों की अविकसित या विकृत स्थिति को उपचारों द्वारा सुधारा जा सकता है तो कोई कारण नहीं कि मस्तिष्कीय दुर्बलता का समाधान न हो सके।

पुरानी कहावत है—'जैसा खाये अन्न—वैसा बने मन' इस उक्ति को किंवदन्ती मानने का कोई कारण नहीं। आये दिन हम इसे तथ्य रूप में देखते हैं। आहार से रक्त, माँस ही नहीं मन भी बनता है और उसका प्रभाव मानसिक कार्यक्षमता के विकास पर भी पड़ता है। चाय, कॉफी आदि गरम उत्तेजक पदार्थ मन पर उत्साहवर्द्धक प्रभाव डालते हैं। गर्मी से शरीर ही नहीं मन भी संतप्त होता है। शीतल पेय पीने पर मुख एवं पेट में ही ठण्डक नहीं लगती, वरन् मन भी शांत होता है। क्रोध से उद्विग्न व्यक्ति को ठण्डे पेय पीने पर अपने आवेश में घटोत्तरी अनुभव होती है। आहार का मन पर क्या प्रभाव पड़ता है, इसे उष्ण और शीतल पेय लेकर तत्काल अनुभव किया जा सकता है।

इस सन्दर्भ में नशीले पदार्थ अपना विलक्षण ही चमत्कार दिखाते हैं। गाँजा, भाँग, चरस, अफीम, शराब आदि के सेवन करने पर मस्तिष्क की स्थिति जैसी कुछ हो जाती है उससे भारी आश्चर्य होता है। मनुष्य एक प्रकार से अपने स्तर को ही भूल जाता है और लोकव्यवहार की सामान्य क्रिया-प्रतिक्रिया तक लड़खड़ा जाती है। उद्धत अनर्गल सम्भाषण और आचरण करते देखकर यह अनुमान लगता है कि कम से कम कुछ समय के लिए तो नशेबाज की स्थिति लगभग पागल जैसी ही हो जाती है। नशे के आवेश में लोग दूसरों पर आक्रमण करते और अपनी दुर्गति बनाते देखे जाते हैं। युद्ध मोर्चे पर जाने वाले प्रायः शराब का आश्रय लेकर अपने में आक्रामक आवेश उत्पन्न करते हैं। क्रूर-कर्मकर्त्ता भी अपनी सहृदयता एवं विवेकशीलता दबाने के लिए नशे अथवा अन्य उत्तेजक पदार्थ सेवन करते हैं। यह आहार का हानिकारक पक्ष हुआ। इसी का दूसरा पक्ष प्रतिपादन यह है कि सात्विक आहार से बुद्धि सतोगुणी होती है। इतना ही नहीं ऐसे भी खाद्य पदार्थ हैं जो मस्तिष्कीय कार्यक्षमता का सम्वर्द्धन भी करते हैं। बुद्धि कौशल, मनोबल, दूरदर्शिता, यथार्थ चिन्तन, सूझबूझ एवं सही निर्णय लेने जैसी अनेकों मानसिक क्षमताओं के विकास में ऐसे खाद्य पदार्थों की सहायता ली जा सकती है जिनमें मानसिक परिपोषण के उपयुक्त रासायनिक पदार्थों की उपयोगी मात्रा मौजूद है।

मस्तिष्कीय विकास में ऐसे खाद्य पदार्थों का बड़ा योगदान रहता है जो सात्विक प्रकृति के और सुपाच्य माने जाते हैं। गरिष्ठ, चटपटे, तले-भुने, शक्कर की अनावश्यक मात्रा वाले, मसाले डालकर सुगन्धित और रंग डालकर आकर्षक बनाये गये पदार्थ सात्विक प्रकृति के नहीं होते। उनमें उत्तेजना भरी रहती है और वह प्रायः तामसिक स्तर के होते हैं। ऐसे पदार्थों का सेवन अपच, रक्त विकार जैसी विकृतियाँ उत्पन्न करता है और फिर उनसे तरह-तरह की बीमारियाँ उठ खड़ी होती हैं। स्वाद के लिए गरिष्ठ और उत्तेजक पदार्थों को खाने से न केवल सामान्य स्वास्थ्य को वरन् मस्तिष्कीय कोमलता एवं सक्षमता को भी हानि पहुँचती है।

मस्तिष्क को बल देने वाले सात्विक खाद्य पदार्थों की सूची माँगने की आवश्यकता नहीं है। बिना भूने, उबाले अपने प्राकृतिक रूप, रस, गन्ध और स्वाद से हमारी तृप्ति करते हैं उन्हें अपने शरीर रचना के हिसाब से अनुकूल एवं प्राकृतिक कहा जा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सकता है। ऐसे आहार पर निर्भर रहने वाले अध्यात्मवेत्ता अपनी बौद्धिक और आत्मिक विशेषता बनाये और बढ़ाते रहते हैं।

कुछ विशेष पदार्थ ऐसे भी हैं जो सामान्य भोजन की तरह तो नहीं औषधियों के अतिरिक्त परिपोषणों के रूप में लिए जा सकते हैं। इनमें कई उपयोगी जड़ी बूटियों की गणना होती आई है। आयुर्वेद में गोरखमुण्डी, शतावरि, बच, शंखपुष्पी, ब्रह्मी आदि का उल्लेख बुद्धिवर्द्धक पदार्थों के रूप में हुआ है।

आल इण्डिया मेडीकल इन्स्टीट्यूट के शोधकर्त्ताओं ने स्मरण शक्ति बढ़ाने के सम्बन्ध में प्रख्यात ब्राह्मी बूटी पर शोध की है। हर्मेपोनिन मोनिएसा नाम से जानी जाने वाली इस वनस्पति का सत्व इन्जेक्शन द्वारा कुत्तों के मस्तिष्क में पहुँचाया गया तो उससे 'हिपोकैंपस' क्रिया में अपेक्षाकृत अधिक तेजी पाई गई। इस तेजी से यह सिद्ध होता है कि मस्तिष्क ने अपना काम अधिक फुर्ती और अधिक मुस्तैदी से करना आरम्भ कर दिया।

शरीर के सभी क्षेत्र परिपुष्ट और सुविकसित रहते हैं या नहीं, इसमें बहुत कुछ वहाँ के रासायनिक सन्तुलन पर निर्भर है। मस्तिष्क के सम्बन्ध में तो यह बात और भी अधिक सही है। उसमें रासायनिक पदार्थों की मात्रा का सन्तुलन बिगड़ने लगे तो न केवल बुद्धिमत्ता में ही कमी आती है वरन् सनक, आतुरता, अधीरता, उथलापन, दीर्घ सूत्रता जैसे कितने ही मन्द मस्तिष्क रोग आ घेरते हैं। ऐसे लोगों को विक्षिप्त तो नहीं कह सकते किन्तु अस्त-व्यस्त, अव्यवस्थित तो कहा ही जायेगा। मस्तिष्क में जिन रसायनों की उपस्थिति बहुत महत्त्वपूर्ण मानी जाती है उनमें एक 'यूरिक ऐसिड' भी है। रक्त में इसकी मात्रा बढ़ जाय तो जोड़ों की जकड़न, गठिया जैसी शिकायतें बढ़ जाती हैं किन्तु उसकी कमी पड़ना भी कम हानिकारक नहीं है। सन्तुलन की दृष्टि से रक्त में २ मिलीग्राम प्रतिशत ही यूरिक ऐसिड होना आवश्यक है। गठिया की आशंका तो तब होती है जब यह मात्रा ९ मिलीग्राम प्रतिशत तक जा पहुँचती है।

डाक्सी राइबोन्यूक्लिक ऐसिड को बुद्धि और स्मृति का संवाहक माना जाता है। इस पदार्थ की बुद्धि स्तरीय विद्युत में परिणत होने की उत्तेजना यूरिक ऐसिड से मिलती है। कनाडा के जीव रसायनवेत्ता कीथ कैनिथ और अर्थर कापले ने मस्तिष्कीय प्रखरता पर यूरिक ऐसिड की न्यूनाधिकता का भारी प्रभाव पड़ना सिद्ध किया है। इसकी मात्रा सन्तुलित कैसे रहती है—न्यून या अधिक होने के खतरों से किस प्रकार बचाव होता है। इसके शोध प्रयास से यह निष्कर्ष निकला है कि ब्रेन प्रोटीन मेटाबोलिज्म क्रिया द्वारा यूरिक ऐसिड उत्पन्न तो पर्याप्त मात्रा में होता है, पर उसका सन्तुलित मात्रा में रखना कुछ विशेष ऐन्जाइमों पर निर्भर है। यह ऐन्जाइम पशुओं के शरीर में अधिक मात्रा में उत्पन्न होते हैं और उनके मस्तिष्कीय यूरिक ऐसिड को नष्ट करके रख देते हैं। अस्तु उन्हें मूर्ख रहना पड़ता है। किसी प्रकार इन ऐन्जाइमों के आघात आक्रमण से पशुओं का मस्तिष्कीय यूरिक ऐसिड नष्ट होने से बचाया जा सके और सन्तुलित मात्रा में रखा जा सके तो वे भी मनुष्यों के समान ही बुद्धिमान हो सकते हैं। मूर्खता एवं मानसिक दुर्बलता के अन्य कारण भी हो सकते हैं, पर उनमें से एक यूरिक ऐसिड की कमी पड़ जाना भी है। भले ही उसका उत्पादन कम होता हो या विरोधी ऐन्जाइमों की मार से उसकी मात्रा घट जाती हो।

विज्ञानवेत्ताओं ने कुछ लवण, खनिज, वनस्पति, सत्व एवं प्रोटीन ऐसे ढूँढ़ निकाले हैं; जो मस्तिष्क पर सीधा प्रभाव डालते हैं और बुद्धि सम्वर्द्धन से स्मरण शक्ति के विकास में आशाजनक योगदान करते हैं। इस संदर्भ में विश्व भर के रसायनशास्त्री अपने-अपने ढंग से शोध प्रयोग चला रहे हैं और शरीरिक बलवर्द्धक टानिकों की तरह मनःशक्ति को वकसित करने वाले सम्वर्द्धनों के निर्माण का प्रयत्न कर रहे हैं। इन प्रयोग कर्ताओं का विश्वास है कि प्रगति क्रम जिस तरह चल रहा है उसे देखते हुए अगली पीढ़ी के लोगों को मन्दबुद्धि होने का कलंक शायद अपने ऊपर नहीं ही ओढ़ना पड़ेगा।

मन्द मति मनुष्यों के मस्तिष्कीय पिछड़ेपन का कारण खोजने में ब्रिटेन के मैनचेस्टर मेडीकल स्कूल ने मनुष्यों तथा पशुओं पर लम्बी शोध की है और जो निष्कर्ष निकले हैं उनमें से बड़ा कारण भोजन के कुपोषण को भी बताया है। शरीर के अन्य अवयवों की तरह मस्तिष्क भी अपने विकास के लिए आवश्यक खाद पानी माँगता है। उसमें कमी रहने पर विकास क्रम रुकता है और पत्र पल्लव मुरझाते हैं। भ्रूणावस्था में शिशु के लिए जिस पोषण की आवश्यकता होती है यदि यह वहाँ न मिले तो बालक के अन्य अंगों की तरह मस्तिष्क भी दुर्बल बना रहेगा। अन्य अवयवों की दुर्बलता तो छिपी रहती है; पर मस्तिष्कीय पिछड़ापन तो पग-पग पर अपना परिचय देता है।

उपरोक्त शोध संस्थान के दो प्रमुख अन्वेषक डार्विंग और सेन्डस् इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि जिस प्रकार आस्थाओं की मजबूती के लिए आहार में कैलिशयम और आयरन की समुचित मात्रा रहनी चाहिए उसी प्रकार मस्तिष्क का पोषण करने वाले प्रोटीनों की मात्रा तब तक तो मिलती ही रहनी चाहिए; जब तक कि बीस वर्ष की आयु पूरी नहीं हो जाती। इस आयु तक पहुँचते-पहुँचते मनुष्य में बौद्धिक परिपक्वता का बड़ा अंश पूरा हो चुका होता है।

एवोट रासायनिक प्रयोगशाला के शोधकर्ता प्रो. ग्लास्की ने पेमोलीन नामक रसायन खोजा है। अभी इसका प्रयोग चूहों पर चल रहा है। अब तक के निष्कर्ष में जिन चूहों को यह टानिक दिया गया है वे साथियों की तुलना में अधिक बुद्धिमान बन रहे हैं। डॉक्टर जेम्समेकाफ द्वारा इस संदर्भ में की गई रासायनिक खोजें भी मस्तिष्क विज्ञानियों के क्षेत्र में दिलचस्पी के साथ चर्चा का विषय बन रही हैं। जेम होफइन के द्वारा प्रतिपादित रसायन और पशु वर्ग पर परीक्षण के उपरान्त मनुष्यों पर प्रयुक्त हो रहे हैं। उन्हें निरापद और लाभदायक बताया गया है। न्यूयार्क के आइन्स्टाइन कालेज ने ठीक उलटी खोज की है वे तीव्रबुद्धि वालों को मन्द बुद्धि बनाने में भी आशाजनक प्रगति कर रहे हैं उनका कथन है कि सदा सर्वदा बुद्धि-वृद्धि ही आवश्यक नहीं; अपराधी प्रकृति के लोगों को मन्दमति बनाया जा सके तो वे अपेक्षाकृत अधिक शान्ति से रह सकेंगें और दूसरों को कम त्रास दे सकेंगे। विद्रोही प्रकृति के लोगों को इस उपचार से शान्त-सज्जन नागरिक बनाया जा सकेगा।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कोशाओं में पाये जाने वाले राइबो न्यूक्लिक ऐसिड का काम तन्त्रिकाओं में ऐसें प्रोटीन निर्माण करता है जो चेतना की सक्रियता बढ़ाने के लिए विशेष रूप से आवश्यक है। इस प्रोटीन में अमीनों एसिड की प्रधानता रहती है। स्मृति को तीव्र करने की भूमिका विशेष रूप से निभाने वाले रसायनों में प्यूरोमाइसिन प्रख्यात है। अब और भी कई सम्मिश्रण इस प्रकार के तैयार हुए हैं। इनमें एसिटोक्सी साइल्कोहैक्सामाइड ने पिछले दिनों बहुत ख्याति प्राप्त की है। सन् १९६५ में मैग्नीशियम पेपोलिन की समस्त विश्व में बहुत चर्चा थी और कहा जाता था कि यह मस्तिष्क टानिक के रूप में असाधारण क्षमता सम्पन्न है। बहुत समय के प्रयोग निष्कर्षों ने उसे उतना अधिक लाभदायक नहीं पाया जैसा कि उसके निर्माताओं ने दावा किया था।

पशुओं की मस्तिष्कीय क्षमता बढ़ाने के लिए स्ट्रिकिनेन, पिक्रोटाक्सिन, निक्रोटिन और एन्फेटेसाइन वर्ग को औषधि का अभी भी प्रयोग किया जाता है। डा. पेट्रोनोविच और जेम्समैकगाग के संयुक्त प्रयास से चूहों पर बुद्धिवर्द्धक आहार के रूप में मेट्राजोल का प्रयोग किया गया प्रयोक्ताओं ने अपने निष्कर्ष में यह बताया है कि चूहे जितना कुछ सामान्य प्रयोग से २० बार के अभ्यास में सीख पाते थे उतना ५ बार के प्रयत्न से ही समझने लग गये।

ऐसे शोध प्रयत्नों में अमेरिका सबसे आगे माना जाता है। वहाँ लान्स एन्जेल्स कैलीफोर्निया विश्वविद्यालय ने रिवामिनोल नामक योगिक को स्मरणशक्ति बढ़ाने के लिए उपयोगी पोषक घोषित किया है। इसी विश्वविद्यालय के मनोविज्ञानी प्रोफेसर डेविड क्रेस ने इस शोध के सन्दर्भ में एक खतरे की भी चेतावनी दी है कि इसके सेवन से दुष्ट प्रकृति के लोग अपने कुकर्मों में अधिक कुशल और दुस्साहसी होकर अपने तथा समाज के लिए विपत्ति भी खड़ी कर सकते हैं। अस्तु, इन योगिकों का उत्पादन सर्वसाधारण के लिए उपलब्ध नहीं रहना चाहिए। उसका उत्पादन वितरण ही नहीं सामने सेवन करने का अधिकार उच्चस्तरीय विवेकशील लोगों के हाथों में सुरक्षित रहना चाहिए।

मस्तिष्कीय कार्यक्षमता का विकास एवं चिन्तन में आदर्शवादी उत्कृष्टता का समावेश करने के लिए स्वाध्याय, सत्संग, अनुभव सम्पादन प्रशिक्षण आदि प्रयत्नों की तरह ही एक अति महत्त्वपूर्ण उपाय यह है कि आहार ऐसा लिया जाय जिसमें न केवल जल्दी पचने की वरन् सतोगुणी प्रकृति की सूक्ष्म विशेषताएँ भी विद्यमान हों। आहार का निर्धारण करते समय यदि स्वाद को प्रधानता देने के स्थान पर आहार में सन्निहित सतोगुणी विशेषता को ध्यान में रखा जाय तो निश्चय ही इससे मानसिक विकास में असाधारण सहायता मिल सकती है। कहना न होगा कि जीवन की प्रगति और सार्थकता का अवलम्बन मस्तिष्क की दिशा धारा पर निर्भर है और उसको सही रखने के लिए उपयुक्त आहार का महत्त्व समझने और खाद्य के चयन में सतर्कता बरतने की आवश्यकता होगी।

रसायनशास्त्री मानव शरीर को एक रासायनिक पिंड मानते हैं। मुख की लार से लेकर, पाचन संस्थान में स्रवित होने वाले रसों और हारमोनों तक विविध स्राव रासायनिक प्रक्रिया ही उत्पन्न करते हैं। स्नायु संस्थान, तन्त्रिका जाल और कोशिका समूह में जहाँ विद्युत धाराएँ अपना काम करती है वहाँ रासायनिक प्रक्रियाएँ भी चलती रहती हैं। अन्न को रक्त के रूप में और रक्त को मांस मज्जा के रूप में बदलने का काम यही रासायनिक पद्धति करती है जिसके आधार पर जीवन-क्रम के अन्यान्य सारे क्रियाकलाप निर्भर हैं। श्वास के माध्यम से ऑक्सीजन का शरीर में प्रवेश, रक्त में उसका घुलना और ऊर्जा उत्पन्न करना, इसे रासायनिक प्रक्रिया के अतिरिक्त और क्या कहें।

औषधिशास्त्र मनुष्य की रुग्णता और बलिष्ठता के पीछे रासायनिक हलचलों का कारण ही मानता है। मल परीक्षा, मूत्र परीक्षा, रक्त परीक्षा आदि में यही तो देखा जाता है कि भीतर कौन सा रसायन घट या बढ़ रहा है। औषधियाँ क्या हैं? विशुद्ध रूप से रसायन हैं जो पदार्थ भीतर कम पड़ रहा है या बढ़ रहा है उसे सन्तुलित करने के लिये ही तो विभिन्न प्रकार के खनिज, क्षार, विटामिन, प्रोटीन आदि शरीर में पहुँचाये जाते हैं। ईंट चूने से बने मकान की टूट-फूट भी तो आखिर ईंट चूने से ही सुधारी जाती है। फिर शरीर में आई अव्यवस्था को व्यवस्थित करने के लिये रसायनों के अतिरिक्त और क्या माध्यम हो सकता है? इसी मान्यता पर समस्त औषधिशास्त्र का निर्माण हुआ है।

अध्यात्मशास्त्र भी मानवी चेतना को परिष्कृत करने के लिये रसायनों का प्रयोग करता है। उसकी मान्यता है कि वस्तुओं में स्थूल, सूक्ष्म और कारण यह तीन शक्ति होती हैं। अन्न का स्थूल स्वरूप रक्त मांस बनता है। उसके सूक्ष्म रूप से मस्तिष्क एवं विचार बनते हैं और कारण रूप भावनाओं को विनिर्मित करता है। यदि सड़ा, बुसा, विषाक्त अन्न होगा तो उससे पोषण तो दूर उलटे रोग उत्पन्न होंगे। यदि दुष्प्रवृत्तियों के साथ कमाया हुआ और दुष्ट मनुष्यों के हाथों बना, परोसा अन्न होगा तो उससे मस्तिष्क में दुबुद्धि उत्पन्न होगी। इसी प्रकार यदि उसे प्रसाद भावना से पकाया और औषधि भावना से खाया न गया होगा; बनाने और खिलाने वाले की स्नेहसिक्त सद्भावनाओं का समन्वय न होगा तो उससे खाने वाले का अन्तःकरण विकसित न होगा—उसकी भावनाओं में उच्च स्तरीय उभार न आयेगा। आहार केवल स्थूल दृष्टि से पौष्टिक एवं स्वल्प होना चाहिये वरन् उसके पीछे न्यायानुकूल उपार्जन और सद्भावनाओं के समन्वय का भी तारतम्य जुड़ा रहना चाहिये तभी वह अन्न मनुष्य के तीनों आवरणों का समुचित पोषण कर सकेगा और तभी उसे शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक दृष्टि से सर्वांगीण विकास का अवसर प्राप्त होगा।

आहार के साथ जुड़े हुये कुछ तत्त्व शरीर भूमिका से आगे बढ़कर मनः क्षेत्र को प्रभावित करते हैं इसका प्रमाण वे वस्तुएँ देती हैं जिन्हें नशीली कहते हैं। नशा, पदार्थ का सूक्ष्म गुण है। वह रक्त मांस पर तो प्रभाव डालता ही है साथ ही मस्तिष्क को—मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार को भी प्रभावित करता है। नशे का प्रभाव होते ही मनुष्य का मस्तिष्क बेकाबू हो जाता

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

है और वह कुछ का कुछ सोचने, देखने, समझने लगता है। इतना ही नहीं, धीरे-धीरे उस नशेबाजी का प्रभाव सेवनकर्ता के गुण, कर्म, स्वभाव पर पड़ता चला जाता है और उसका चरित्र, दृष्टिकोण, स्वभाव आदि का स्तर निरन्तर गिरता चला जाता है। यह तथ्य बताते हैं कि आहार का प्रभाव केवल शरीर तक सीमित नहीं है यह केवल भूख बुझाने, स्वाद देने और रक्त मांस बनाने का स्थूल शारीरिक क्रिया तक सीमित नहीं रहता वरन् उसके सूक्ष्म प्रभाव मस्तिष्क को ही नहीं अन्तःकरण को भी प्रभावित करते हैं।

आत्मविद्या के ज्ञाता सदा से यह कहते आये हैं कि आत्मोन्नति की साधना तक प्रक्रिया में आहार शुद्धि का अति महत्वपूर्ण स्थान है। यदि उस ओर ध्यान नहीं दिया जाय और प्राणायाम, प्रत्याहार, चेति, धोति आदि आगे के क्रियाकलापों में उलझा जाय तो वह समय पूर्व की बात होगी। अक्षर ज्ञान सीखे बिना किसी बच्चे को ज्यामिति के कठिन प्रश्न हल करने को कहा जाय तो यह अनुपयुक्त ही होगा। आहार में मस्तिष्क और भाव स्तर को सात्विकता की दिशा में अग्रगामी बना सकने वाले तत्त्वों से संयुक्त न बनाया जा सके तो भूखे पेट फुटबाल खेलने जैसा उपहासास्पद होगा। आत्मिक प्रगति के लिये आहार शुद्धि पर पूरा-पूरा ध्यान दिये जाने की आवश्यकता है।

आहार के रासायनिक तत्त्वों का विश्लेषण बहुत पहले से होता रहा है। खाद्य पदार्थों में कौन तत्त्व कितनी मात्रा में होना चाहिये यह तालिकाएँ स्वास्थ्य विभाग की ओर से मुद्दतों से दी जाती रही हैं। जहाँ तक मांसल शरीर का सम्बन्ध है वहाँ तक वे उपयुक्त भी हैं। पर मनुष्य केवल मांस पिण्ड ही तो नहीं है। उसमें बौद्धिक और भाव चेतनाएँ भी मिलती हैं उनके सुपोषण का समावेश भी आहार में होना चाहिए।

नशीले पदार्थों के बारे में कुछ दिन पूर्व तक उसका गुण, खुमारी, मस्ती जितना सीमित माना गया था और इसीलिये लोग उसे थकान मिटाने, गम गलत करने के नाम पर पीते थे। भाँग, गाँजा, चरस, अफीम, शराब जैसे नशीले पदार्थ इसी प्रयोजन के लिए पिये जाते थे। पर अब उनमें अन्य अनेक विशेषताएँ, नवीनताएँ पाई गई हैं कि वे ऐसी अनुभूतियाँ कराते हैं जो सामान्य चिन्तन से बिल्कुल भिन्न प्रकार की होती हैं। कुछ रसायन ऐसे हैं जो मस्तिष्कीय कणों को वर्तमान परिस्थिति एवं उपस्थिति से सर्वथा भिन्न प्रकार की अनुभूतियाँ सामने उपस्थित करते हैं। मस्तिष्कीय कणों की चिन्तनधारा को सामने प्रस्तुत पदार्थों से सर्वथा असम्बद्ध करके किसी ऐसे कल्पना लोक में उड़ा ले जाते हैं जिनका वास्तविकता से दूर का सम्बन्ध भी नहीं है। पुराने नशे वर्तमान स्थिति से तारतम्य तो मिलाये रहते थे, पर इन अभी नये प्रकाश में आये पदार्थों का प्रभाव तो ऐसा होता है कि वर्तमान के साथ मस्तिष्क का तारतम्य बिल्कुल टूट गया और आँखें वह देखने लगीं जो सामने प्रस्तुत यथार्थता से सर्वथा भिन्न था।

मैक्सिको के आदिवासी 'पेयोटे' पौधे का एक मादक रस बनाकर पीते रहे हैं। इस पौधे से हैवलाक एलिस और ई. हकसले के प्रयत्न से एक नया रसायन बना 'मैस्कालिन'। इसका नशा पिया तो इन दोनों वैज्ञानिकों ने अत्यन्त अद्भुत प्रकार की अनुभूतियाँ पाईं।' एलिस ने लिखा है—मैने देखा अत्यन्त सुन्दर हीरे जवाहरात खेतों में बिखरे पड़े हैं, वे देखते-देखते पौधों की तरह उगे, और फूलों से लद गये। वे फूल रंग-बिरंगी तितलियों के रूप में बदलते और आकाश में उड़ने लगे। चमकीले हीरों का फूल और तितलियों के रूप में आकाश में उड़ना मुझे अत्यन्त प्रिय लगा, एलिस के साथी हकसले लिखा है—'ईसा के अवतरण, आदम द्वारा सृष्टि सृजन काल जैसा दिव्य परिस्थितियाँ मैंने अनुभव कीं और किसी युग एवं वातावरण में अपने को पाया जो पवित्र सौन्दर्य—प्रेस—से ओत-प्रोत था। मैने अपने को किसी दिव्यलोक की दिव्य परिस्थितियों में रहता हुआ अनुभव किया।'

मैक्सिको की एक और घटना न्यूयार्क निवासी वैकर आर. गोर्डन वासन ने लिखी है। वह अपनी रूसी पत्नी के साथ आदिवासी क्षेत्र में पहुँचा। उसने वहाँ की सौगात एक चमकीले कुकुरमुत्ते के रूप में चखी। वह उसे अपनी सराय आलीशान महल, बादशाही सजावट, इन्द्र धनुष चित्रकारी, झिलमिलाती हुई दीवारों के रूप में नजर आई। फिर वह सारा महल मोम की तरह पिघल कर एक सुन्दर सरोवर के रूप में बदल गया।

इस विचित्र कुकुरमुत्ते को वासन अपने साथ लाया। इनकी रासायनिक जाँच डा. हाफमैन की रसायनशाला में हुई। उससे एक रसायन बनाया गया—सीलो साद्रविन। इसे साइको कैमिकल—मनोवैज्ञानी औषधि की श्रेणी में सम्मिलित किया गया।

मादक द्रव्य अनुसंधानकर्ता डी. क्वीन्सी ने अपनी पुस्तक 'कन्फेशन्स आफ आपियम ईटर' नामक पुस्तक में अफीम और उसी जाति के अन्य रसायनों का वर्णन करते हुए लिखा कि वे सेवन करने वाले को किसी विचित्र लोक में उड़ा ले जाते हैं और ऐसी कल्पनाएँ दृष्यमान करते हैं जिनका वास्तविकता से बहुत कम सम्बन्ध होता है। अलग-अलग देशों में यह रसायन थोड़े अन्तर के साथ पाया जाता है। मध्य पूर्व के अरब देशों में 'हशीश' 'कीफ' (मोरक्को) मेरी होना (अमेरिका) में प्रचलित है। उनके नाम तकरीरी— दग्गा—मेकोन्हा आदि भी हैं। इनके रसायनों में अन्तर भी होता है और उनकी पिनक में होने वाली अनुभूतियों के स्तर में भी अन्तर रहता है पर यह सब अफीम जाति के ही रसायन हैं।

कुछ ही समय पूर्व एक नया रासायनिक मति परिवर्तन रसायन सामने आया है उसका नाम है— एल. एस. डी.। अँग्रेजी दवाएँ बनाने वाली स्विस कम्पनी 'सेन्डीज' की प्रयोगशाला में काम करते हुए डा. हाफमेन 'अर्गट' नामक औषधि पर अन्वेषण कर रहे थे। उनका प्रयत्न उस अर्गट-फफूंदी से रक्त स्राव रोकने की दवा बनाने के लिए चल रहा था। इसके लिये वे उसे 'लाइसर्जिक ऐसिड' में बदलने का प्रयास कर रहे थे, पर कुछ ऐसी उलट-पुलट हुई कि उस खोज-बीन में एक नया रसायन बन पड़ा, उसका नामकरण हुआ लाइसर्जिक एसिड डाइएथिले, याइड इसी को संक्षेप में एल. एस. डी. कहते हैं। उन्होंने उस रसायन की २० माइक्रोग्राम जितनी जरा-सी मात्रा चखी, बस फिर क्या था वे दिव्यलोकों की सैर

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

करने लगे। उन्हें लगा कि उनकी मृत्यु हो गई, देह सोफे पर पड़ी है, वे आकाश में उड़ रहे हैं और दिव्यलोकों की सैर कर रहे हैं।

केम्ब्रिज विश्वविद्यालय में मनोविज्ञान वर्ग की रसायनों पर प्रयोग करते हुए श्रीमती वार्वेरा डनलप को भी एक रसायन के प्रभाव से ऐसे ही विचित्र अनुभव करने का अवसर मिला। उनके सामने नीबू की कटी हुई दो फाँकें पड़ी थीं उनमें उन्हें सोने के पहाड़, चाँदी के पेड़, अन्तरिक्ष से उतरते अज्ञात चेहरे, सुरम्य सरोवर और बाँसुरी वादन जैसी मुग्धकारी संगीत लहरें उत्पन्न होती हुई अनुभव हुईं।

मस्तिष्क पर पड़ने वाले विभिन्न और विचित्र प्रभावों की ओर उपरोक्त प्रयोग ध्यान, आकर्षित करते हैं और बताते हैं कि मस्तिष्क का स्तर आहार की परिधि से बाहर नहीं है। उसे भी प्रभावित किया जा सकता है। केवल स्वाध्याय, सत्संग, चिन्तन, मनन से ही नहीं—आहार के साथ घुले हुए सूक्ष्म तत्त्वों का सन्तुलन बनाकर मनुष्य के सोचने का तरीका भी समुन्नत किया जा सकता है। इतना ही नहीं भावनाओं की दिशा भी बदल सकती है। अवांछनीय दिशा में चल रही भाव विकृति को आहार शुद्धि के आधार पर मोड़ा और सुधारा जा सकता है। दुष्प्रवृत्तियों में लगे हुये दुर्भावना युक्त मनुष्य के अन्तःकरण को छुपाया जा सकता है और उनकी प्रवृत्ति मनोवृत्ति में अभीष्ट परिवर्तन किया जा सकता है।

कुछ पदार्थ स्वतः ऐसे होते हैं जिनमें स्वतः ही सतोगुणी दिव्य शक्ति रहती है और उनका सेवन क्रियागत रूप से चेतना स्तर में दिव्य प्रवृत्तियों का समावेश करता है। उन्हें या अन्य पदार्थों को, किन्हीं मनस्वी व्यक्तियों की चेतना मिश्रित करके उपयोगी बनाया जा सकता है अथवा अपनी संकल्प शक्ति से भी उन्हें आत्मबलवर्धक बनाया जा सकता है। किन्हीं महापुरुषों के हाथ से स्पर्श करके दिये हुए प्रसाद का यही महत्व है। पूजा के समय प्रयुक्त नैवेद्य और जल भी ऐसा ही प्रभाव ग्रहण कर लेते हैं। पंचामृत, तुलसी-पत्र, यज्ञ भस्म जैसे पदार्थों में स्वयं की शक्ति में जब मन्त्र शक्ति का समावेश हो जाता है तो वे आत्मिक विशेषताओं के अभिवर्द्धन में और भी अधिक योगदान करती हैं। सद्भावना सम्पन्न, माता, पत्नी या बहन के हाथ के बनाये हुए भोजन का महत्व उनकी भावनाओं का समावेश रहने की दृष्टि से है। ब्राह्मण के हाथ का बनाया, परोसा भोजन करने की प्राचीन परिपाटी का आधार भी यही था। भोजन को भगवान का प्रसाद या औषधि, श्रद्धा के साथ ग्रहण करने का फल कितना प्रभावी होता है। इसे कोई भी व्यक्ति अनुभव करके देख सकता है।

आहार का मन से घनिष्ठ सम्बन्ध है। उसमें पाये जाने वाले रसायन अथवा पोषक तत्त्व केवल शरीर तक ही अपना प्रभाव नहीं दिखाते, वरन् मानवी चेतना को भी प्रभावित करते हैं। अन्न का स्थूल स्वरूप अस्थि-रक्त-मांस का निर्माण करता है तो उसके सूक्ष्म रूप से मन-मस्तिष्क एवं विचार बनते हैं और कारण रूप भावनाओं का निर्माण करता है। शारीरिक परिपुष्टता-बलिष्ठता के लिए मात्र योगासन, व्यायाम ही नहीं शुद्ध सात्विक आहार भी स्वस्थ काया, स्वच्छ मन, एवं चेतनात्मक उत्कर्ष के लिए आवश्यक है।

इसीलिए अध्यात्म विद्या-विशारदों ने आत्मिक प्रगति एवं समग्र स्वास्थ्य सम्वर्द्धन के लिए आहार शुद्धि पर सार्वधिक जोर दिया है। उनका कहना है कि मनुष्य केवल हाड़-मांस का पिण्ड तो है नहीं, उसमें बौद्धिक, आत्मिक हलचलें भी सम्मिलित हैं। अतः आहार में उनके समुचित पोषण की भी व्यवस्था होनी चाहिए। गीता के सत्रहवें अध्याय में इसी दृष्टि से त्रिविध आहार का वर्गीकरण किया है जो मानवी चेतना पर सात्विक, राजसिक और तामसी प्रभाव छोड़ते हैं। गीताकार के अनुसार भोजन का प्रयोजन केवल शरीर का पोषण और बल सम्वर्द्धन ही नहीं है, वरन् उससे मानसिक और आत्मिक पोषण भी मिलना चाहिए। बहुत से पदार्थ ऐसे होते हैं जो शरीर की शक्ति-सामर्थ्य को तत्काल बढ़ा देते हैं, परन्तु मनुष्य को मानसिक एवं आतंरिक दृष्टि से अस्त-व्यस्त भी कर देते हैं। नशीले पदार्थों को इसी प्रकार के भोजन की श्रेणी में रखा जा सकता है।

यों आहार के रासायनिक तत्वों, पोषक घटकों का विश्लेषण तो बहुत पहले से होता रहा है कि भोजन में कौनसा पदार्थ कितनी मात्रा में होना चाहिए। किन्तु मन-मस्तिष्क पर पड़ने वाले विभिन्न और विचित्र प्रभावों का अनुसंधान इन्हीं दिनों हुआ है। इस संदर्भ में हुए प्रयोग-परीक्षण सिद्ध करते हैं कि मस्तिष्क का स्तर आहार की परिधि में ही आता है और उससे प्रभावित होता है। आहार विशेषज्ञों का निष्कर्ष है कि केवल स्वाध्याय, सत्संग, चिन्तन, मनन से ही नहीं भोजन के साथ घुले हुए सूक्ष्म तत्त्वों का सन्तुलन बनाकर मनुष्य के सोचने का तरीका भी समुन्नत किया जा सकता है। इतना ही नहीं भावनाओं की दिशा भी बदली जा सकती है। अवांछनीय दिशा में चल रही भाव विकृति को आहार शुद्धि के माध्यम से वांछित दिशा में मोड़ा और सुधारा जा सकता है। दुष्प्रवृत्तियों में लगे हुए दुर्भावनाग्रस्त मनुष्य के अन्तःकरण को परिष्कृत किया जा सकता है और उसकी प्रवृत्ति में मनोवृत्ति में अभीष्ट परिवर्तन किया जा सकता है।

ब्रिटेन के मैनचेस्टर मेडिकल रिसर्च इन्स्टीट्यूट के वैज्ञानिकों ने इस सम्बन्ध में गंभीरतापूर्वक अनुसंधान किया है और निष्कर्ष निकाला है कि आहार का मनुष्य और प्राणियों के स्वभाव, गुण तथा प्रकृति पर भारी प्रभाव पड़ता है। इसके लिए कितने ही परीक्षण किये गये जिनमें से एक चूहों पर था। चूहा स्वभावतः शांत प्रकृति का होता है किसी से लड़ता-झगड़ता या आक्रमण नहीं करता। प्रयोगशाला में पाले गये चूहों में से कुछ को बाहर निकाला गया और उन्हें सामान्य आहार न देकर मिर्च-मसाले तथा मांस और नशीली चीजों से बना आहार दिया गया। इसे खाने से पूर्व वे चूहे बेहद शान्त थे, पर इसके कुछ ही घन्टे बाद, उदण्ड और आक्रामक बन गये। उन्हें वापस पिंजरे में छोड़ा गया तो वे आपस में ही लड़-झगड़ कर लहूलुहान हो गये।

इसके बाद उन्हीं चूहों को दूसरी बार सरल, शुद्ध और सात्विक भोजन दिया। इस पर भी पिछला प्रभाव तो बाकी था, किन्तु चूहे अपेक्षाकृत शान्त थे। कई बार इस तरह का आहार

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

लेने के बाद ही वे अपनी वास्तविक स्थिति में आ पाये। इस तरह के सैकड़ों प्रयोगों द्वारा इस निष्कर्ष पर पहुँचा जा सका कि जो कुछ खाया पिया जाता है, उससे शरीर का पोषण ही नहीं होता वरन् लिया गया भोजन मनुष्य का व्यक्तित्व बनाने में भी असाधारण भूमिका निबाहता है।

आहार का मानवी मस्तिष्क और स्वभाव पर क्या प्रभाव पड़ता है? इस विषय को लेकर पश्चिमी देशों में काफी खोजबीन हो रही है। भारतीय ऋषि-मुनियों ने तो इस विषय पर पहले से ही विशद प्रकाश डाल रखा है कि क्या खाने से बौद्धिक प्रखरता बढ़ती है और कौन सा आहार स्वभाव तथा व्यक्तित्व की मूल परतों को स्पर्श करता है। वैज्ञानिक अन्वेषण भी अब इसी तथ्य की पुष्टि करने में लगे हैं। इसी सम्बन्ध में अमेरिका के बाल्टीमोर शहर के एक स्कूल में ५२ विद्यार्थियों को कुछ दिनों तक विशेष आहार एवं औषधि दी गई। परीक्षणोपरान्त पाया गया कि एक महीने बाद उनकी मस्तिष्कीय क्षमता पहले से अधिक बढ़ गयी थी।

इसी तरह से मिशीगन यूनिवर्सिटी के प्राणिशास्त्रियों ने मस्तिष्क पर आहार के प्रभाव जाँचने के लिए अनेक प्रयोग किये हैं। सुप्रसिद्ध जीवशास्त्री डा. वर्नार्ड एग्रानोफ ने अपने प्रयोगों के दौरान मनुष्येतर प्राणियों की खुराक में फेर बदल कर उन्हें चतुर और भुलक्कड़ बनाने में सफलता प्राप्त की है। उनके अनुसार आहार में सात्विकता की मात्रा घटने-बढ़ने से मस्तिष्क की क्षमता भी घटती-बढ़ती है। दस वर्षों तक लगातार प्रयोग और परीक्षण करने के बाद कैलीफोर्निया विश्वविद्यालय के मूर्धन्य मनोविज्ञानी रिचार्ड थाम्पसन भी इसी निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि बुद्धि दैवी वरदान नहीं है, वरन् उसे मानवी प्रयत्नों से घटाया अथवा बढ़ाया जा सकता है। इस प्रयोग श्रृंखला में उन्होंने कुत्तों, बिल्लियों, चूहों और बन्दरों को भी शामिल किया और प्रतिपादन किया कि अन्य शारीरिक परिवर्तनों के समान ही आहार द्वारा मस्तिष्कीय क्षमता में भी हर स्तर का परिवर्तन कर सकना सम्भव है।

मिशीगन विश्वविद्यालय के ही प्रो० जेम्स मेकानेल ने तो अपने प्रयोगों द्वारा यह भी सिद्ध कर दिया कि आहार में हेर फेर करके स्मरणशक्ति और भाव संवेदनाओं को भी कम ज्यादा घटाया-बढ़ाया जा सकता है। इतना ही नहीं दो व्यक्तियों में स्मृति और अनुभवों का प्रत्यावर्तन भी किया जा सकता है। ठीक उसी प्रकार जैसे एक व्यक्ति का रक्त दूसरे व्यक्ति के शरीर में प्रवेश कराया जा सकता है और टूटे-फूटे अवयवों को बदल कर उनके स्थान पर नये अंग का प्रत्यारोपण किया जा सकता है। उनका मत है कि अगले दिनों बुद्धि की मन्दता, अकुशलता और मानसिक विकृतियों का उपशमन भी खाद्य पदार्थों की सूक्ष्म शक्ति के आधार पर किया जाने लगेगा और तब मनुष्य उस आधार पर अपनी स्मरणशक्ति, बुद्धि कौशल और सूझ-बूझ को बढ़ाकर व्यक्तित्ववान बन सकेगा।

आत्मिक प्रगति के लिए की जाने वाली सभी साधनाओं में आहार की कारणशक्ति को विकसित करके उसके उपयोग का विधान है। मनुस्मृति में साधकों के लिए भक्ष्य-अभक्ष्य आहार की लम्बी सूची बताई गई है और कहा गया है कि आत्मोन्नति के इच्छुकों को अभक्ष्य आहार अनजाने में भी नहीं करना चाहिए। यदि ऐसा हो भी जाय तो चान्द्रायण स्तर का व्रत करना चाहिए। योगशास्त्रों और साधना ग्रन्थों ने तो अंतःकरण को पवित्र एवं परिष्कृत करने तथा मनः संस्थान को प्रखर प्रतिभाशाली बनाने के लिए सात्विक आहार ही अपनाने को कहा है। गीता में भगवान कृष्ण ने भी शरीर, मन और भावनाओं पर आहार के सम्भावित प्रभावों का विस्तारपूर्वक विवेचन किया है। आध्यात्मिक प्रगति के आकांक्षी और साधना मार्ग के पथिक के लिए इस बात का निर्देश दिया गया है कि शाकाहारी सात्विक आहार ही अपनाया जाय और उसकी सात्विकता को भी भावनाओं का सम्पुट देकर आत्मिक चेतना के उत्कर्ष में अधिक सहायता दे सकने योग्य बनाया जाय। भगवान का भोग, प्रसाद, पूजा के समय प्रयुक्त नैवेद्य और जल, पंचामृत, यज्ञाग्नि में पकाया गया चरु द्रव्य इसी प्रकार के पदार्थ हैं जिनकी स्थूल विशेषता न दिखाई देने पर भी उनकी सूक्ष्म सामर्थ्य बहुत अधिक होती है।

आहार न केवल स्थूल दृष्टि से पौष्टिक, स्वल्प और सात्विक होना चाहिए, वरन् उसके पीछे न्यायानुकूल उपार्जन और सद्भावनाओं का समावेश भी होना चाहिए तभी वह अन्य मनुष्य के तीनों आवरणों को पोषित कर सकेगा और स्थूल, सूक्ष्म तथा कारण शरीर को विकसित कर सकेगा। तभी वह शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक दृष्टि से सर्वांगीण विकास कर सकेगा।

सात्विक भोजन का सूक्ष्म प्रभाव

शास्त्र कहते हैं—

"मनएव मनुष्याणां कारणं मोक्ष बन्धयोः।
बन्धाय विषयोसक्तं मुक्तौ निर्विषयं मनः॥"

अर्थात्—'मन ही मनुष्य के बन्ध और मोक्ष का कारण है, क्योंकि विषयों में फँसा हुआ मन बन्धन में है और विषयों से छूटा हुआ मुक्त है।' जब बन्धन और मोक्ष कारण मन ही है, तो मन पर ही क्यों न नियन्त्रण किया जाय? मन को नियन्त्रण करने की एक अमोघ औषधि है, जिसकी महिमा का वर्णन, शास्त्रों में विशद रूप से किया गया है, वह है 'सात्विक भोजन'।

भोजन तीन प्रकार के हैं–सात्विक, राजस तथा तामस। सात्विक भोजन सबसे उत्कृष्ट माना गया है, क्योंकि इससे मन पवित्र होता है, तथा आत्मिक शक्ति बढ़ती है। आत्मिक बल ही मनुष्य का सच्चा बल है। श्रुति कहता है—

"नायमात्मा बलहीनेन लभ्य"

अर्थात्–'इस आत्मा को बलहीन पुरुष प्राप्त नहीं कर सकता।'

सात्विक भोजन से निकृष्ट वृत्तियाँ तत्काल दब जाती हैं, विलासप्रियता का विनाश हो जाता है, सद्भव जागृत होकर शान्ति का प्रादुर्भाव होता है, पापी से धर्मात्मा तथा व्यभिचारी से ब्रह्मचारी बन जाता है, आध्यत्मिक तथा नैतिक शक्तियों का विकास होता है। सात्विक भोजन रसायन है, सम्पूर्ण व्याधियों

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

को नष्ट कर बुढ़ापा रोकने की शक्ति प्रदान करता है, असमय से बालों को पकने नहीं देता तथा वीर्य को उर्द्धगामी बनाता है, सांसारिक प्रपञ्च से उद्धार पाने की उत्कण्ठा जागृत होती है, विवेक और वैराग्य होता है। अतएव मनुष्य को ऐसा भोजन करना चाहिए जिससे मन प्रसन्न रहे, ब्रह्मचर्य की रक्षा हो, धार्मिक विचार तथा तीव्र बुद्धि हो एवं अपनी पुरानी बुरी आदतों, कुविचारों, कुसंस्कारों तथा कुवासनाओं का उन्मूलन हो जाय।

जिन वस्तुओं में सरसता, सुवास, पुष्टि तथा तुष्टि होती है, जो पचने में तो हलकी और शक्ति देने में भारी होती हैं, उन्हीं को सात्विक आहार में ग्रहण करना चाहिए।

मन, बुद्धि तथा इन्द्रियों पर भोजन का बड़ा प्रभाव पड़ता है। अप्राकृतिक भोजन करने वाले राष्ट्र के लिए घातक हैं, क्योंकि उनकी तमोगुणी वृत्तियाँ समाज तथा देश में अशान्ति फैलाती रहती हैं। आज का मानव-जगत इसी आसुरी-भाव को प्राप्त है।

"देहो देवालयः प्रोक्तः"

अर्थात्—देह को परमात्मा का मन्दिर कहा गया है। यह तो परम पवित्र स्थान है, इसमें किसी अपवित्र वस्तु को स्थान देना ठीक नहीं, इसे सर्वदा शुद्ध, पवित्र और शुचि रखना चाहिए। किसी बुरे विचार या किसी बुरी वासना को रखना ठीक नहीं। अशुद्ध भोजन से देह को किसी कुकर्म में प्रवृत्त कराना अनुचित है, क्योंकि यह शिवालय है। पवित्र भोजन से इस देवालय को शुद्ध रखना चाहिये, जिससे देहस्थ भगवान् प्रसन्न होकर हमारी आत्तनाद भरी प्रार्थनाएँ सुन सकें।

हम जो कुछ भी भोजन करते हैं, वह तीन हिस्से में बँट जाता है, उसका जो अत्यन्त स्थूल भाग है, वह मल हो जाता है, जो मध्य भाग है, वह माँस हो जाता है और उससे भी जो अत्यन्त सूक्ष्म भाग है, वह मन हो जाता है। इसलिए मन को पवित्र तथा पारदर्शी बनाने के लिए नैसर्गिक भोजन पर ही वसर करना चाहिए। नैसर्गिक भोजन ऋषियों का भोजन है, हमारे मन को निर्मल धारा में बहा कर मोक्ष या स्वर्ग के दिव्य-द्वार पर पहुँचा सकता है। इसके द्वारा हम भारत को फिर से ऋषि भूमि बनाकर सत्य युग की रचना कर सकते हैं। दाम्पत्य जीवन व्यतीत करने वाले यदि सात्विक भोजन करते हुए गर्भाधान करें तो उनकी संन्तान मेधावी, धर्मात्मा तथा दीर्घायु हो सकती है।

प्राचीन तथा अर्वाचीन काल में जितने महापुरुष हुए हैं, सभी ने भोजन के शुभाशुभ तत्त्व को अनुभव करके विश्व को प्राकृतिक भोजन करने की शिक्षा दी है। कहा भी है—

"यादृशी भक्षयेच्चान्नं बुद्धिर्भवति तादृशी।
दीपास्तिमिर भक्षयतिकज्जलं च प्रसूयते॥"

अर्थात्—मनुष्य जैसा अन्न भक्षण करता है, वैसी ही उसकी बुद्धि हो जाती है।

भोजन सम्बन्धी दो दृष्टिकोण हैं—एक पूर्वीय तथा दूसरा पाश्चात्य। मोटे तौर पर भोजन का भारतीय विभाजन है—सूक्ष्म भोजन तथा स्थूल भोजन। आकाश तत्त्व, वायु तत्त्व, अग्नि तत्त्व तथा जल तत्त्व द्वारा भी हम भोजन पाते हैं। यह भी भोजन है जिसे 'सूक्ष्म भोजन' कहते हैं। स्थूल भोजन में शाक, कंद, तरकारी, फल, दूध, अन्न आदि हैं। पाश्चात्य लोग स्थूल भोजन को ही भोजन मानते हैं। उनका विचार है कि स्थूल भोजन से ही शरीर कायम है तथा प्रोटीन सब से अधिक आवश्यक है—यह हमें शक्ति देता, गर्मी देता तथा कोषाणु आदि बनाता है—भोजन के विषय में यह तो रहा पश्चिमीय मत। पर पूर्वीय मत से प्रोटीन शक्ति और गर्मी देता है, यह बात मान्य नहीं है वह केवल माँस बनाती है तथा कोषाणुओं की पूर्ति आदि करती है यह पूर्वीय मत है। हम जानते हैं कि लम्बे उपवास काल में मनुष्य का माँस तथा वजन तो अवश्य कम होता जाता है पर मनुष्य की स्फूर्ति तथा शक्ति में कमी नहीं होती, वरन् उल्टे वृद्धि होती है। सम्भव है हमारी बात सुन कर कुछ लोग हँसें, किन्तु सत्य सदा सत्य ही रहेगा।

भोजन से तीन वस्तुएँ बनती हैं— (१) पखाना, (२) उससे सूक्ष्म से माँस आदि, (३) तथा उससे भी सूक्ष्म से मन बनता है—यह शास्त्रीय मत है। उपवास काल में गर्मी का ज्यों का त्यों बना रहना तथा शक्ति का भी ज्यों का त्यों बना रहना यह प्रमाण है पूर्वीय मत की सत्यता का कि (केवल माँस घटना) भोजन से केवल माँस बनता है।

हिमालय पर्वत की गुफाओं में अनेक योगी आकाश, वायु, अग्नि तत्त्व, तथा जल से ही सूक्ष्म भोजन प्राप्त करके जीवित ही नहीं, चिरजीवित रहते हैं। सूक्ष्म भोजन होने का तथा उसकी अपेक्षा अधिक महत्ता का यह प्रमाण है।

स्थूल भोजन के भी दो भेद होते हैं—(१) क्षार प्रधान, (२) अम्ल प्रधान। यह अम्ल शरीर में खुरचने का काम करते हैं एक प्रकार की गर्मी तथा एक प्रकार का विष अम्ल पैदा करते हैं। दूसरे प्रकार के भोजन क्षारमय हैं। यह रक्त को शुद्ध करते हैं और बढ़ी हुई गर्मी को कम करते हैं।

नारियल की गरी को छोड़ कर शेष गरीदार मेवे सब एसिड हैं। गरी सूखी हो या कच्ची क्षार मय है। अनाज भी अम्ल पैदा करते हैं। केवल मात्रा कम और अधिक होती है विभिन्न अनाजों में दालें (द्विदल) सबसे अधिक अम्ल पैदा करती हैं। दालों में उत्तमता की दृष्टि से मसूर, फिर मूंग, फिर उरद, फिर अरहर और फिर चना है। इसके बाद गेहूँ का नम्बर आता है और तब जौ, चावल में एसिड सब से कम होता है।

मनुष्य को ८० प्रतिशत क्षार तथा २० प्रतिशत अम्ल चाहिए। पर प्रायः अनाज ही अधिक खाया जाता है। यह हानिप्रद होगा या लाभप्रद इसे हम सफलता पूर्वक समझ सकते हैं। क्षार प्रधान भोजन में सबसे अधिक शाक में, फिर हरी तरकारी में, फिर सूखी तरकारी (आलू, घुइंया, शकरकंद) और तब दूध है अधिक औटाया दूध भी अम्ल प्रधान होने लगता है। मिट्टी और मिट्टी से उत्पन्न हुई वस्तुएँ ही अनाज और फिर कंद तथा मूल ही पृथ्वी तत्त्व में है। क्षार युक्त चीज भी यदि अधिक तली-भुनी जाए तो अम्ल हो जाती हैं। इससे स्वाभाविक रूप से ही खाएँ अधिक महीन न करें, न नफासत दिखावें। (१) अनाज, (२) कंदमूल, (३) फल तथा शाक यह उत्तमता का क्रम है। इनके प्रयोग में धीरे-धीरे कमी करता जाएँ

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

अर्थात् अनाज की मात्रा घटाई जाये, धीरे-धीरे से और फल तथा शाक आदि की मात्रा बढ़ाता जाये। ऐसा करते ही प्रकृति की ओर लौटो, का सिद्धान्त हमारे द्वारा पालन होने लगेगा।

इन्द्रिय-जन्य-ज्ञान प्रायः बड़ा भ्रामिक होता है। तभी एक समय न खाने पर कमजोरी लगने को हम वास्तविक कमजोरी मान बैठते हैं। इसी से साधक को धीरे-धीरे १ से २, २ से ३ और ३ से ४ तक आने पर यकायक उथल-पुथल नहीं होगी। इसी से यकायक भोजन में परिवर्तन करके धीरे-धीरे हेर-फेर करना उचित है।

उपवास का सिद्धान्त भी यहीं से प्रारम्भ हो जाता है। उपवास के माने ही हैं (उप = समीप, वास = बैठना)। आत्मा के अधिक से अधिक समीप बैठना। लम्बे उपवास करने के पूर्व चाहिए कि कुछ दिनों सुबह ९-१० बजे तक फलों या शाकों का रस, १२-१ बजे दोपहर तक कंद, मूल, फल, शाक आदि तथा तीसरी बार ७-८ बजे रात को अन्न लिया जा सकता है। यदि यह क्रम मनुष्य जीवन भर रखे तो कभी अस्वस्थ न हो। दूध, जल तथा रस भी घूंट-घूंट पीने से अधिक पोषण देगा। एक दम गट-गट तथा बहुत-सा पीने से वह पोषण और शक्ति नहीं देगा। जल से पेशाब, फिर उससे सूक्ष्म से रक्तांश (यह रक्त का घनत्व ठीक रखता) और उससे सूक्ष्म से प्राण बनता है ऐसा शास्त्र कहते हैं। अग्नि से हड्डी, फिर मज्जा और उससे सूक्ष्म वाक (बोलने की शक्ति) का निर्माण होता है। पानी का शरीर अधिक शोषण नहीं करता और अधिक लाभ न करेगा, यदि हम अधिक अन्न खाते हैं या शरीर में अधिक विकार हैं तो जल की अधिक मात्रा आवश्यक है। जब गर्मी अधिक होती है तब भूख कम लगती है, यह प्रमाणित करता है कि अग्नि (सूक्ष्म) होने पर अन्न की कम आवश्यकता है। हम जाड़ों में अधिक खाते हैं क्योंकि कपड़े अधिक पहनने से हमारे शरीर के रोंये ढ़के रहते हैं और वायु तत्त्व को वह कम ग्रहण कर पाते हैं। रोम कूपों से अग्नि कम शरीर में पहुँच पाती है क्योंकि सूर्य कम देर आकाश में रहता है। जाड़े में आदमी जल कम पीता है। अतः सूक्ष्म भोजनों की कमी के कारण प्रकृति द्वारा बाध्य होकर हम जाड़ों में स्थूल भोजन अधिक खाते हैं।

यह बात यदि हम याद रखें तो बड़ा लाभ हो कि जितनी ही सूक्ष्म वस्तु हम ग्रहण करते हैं उतनी ही हममें शक्ति बढ़ती है। सेव या अनार फल के रूप में खाने से सेब या अनार का रस अधिक लाभप्रद होता है।

खाद्य-पदार्थों की कारण-शक्ति

पदार्थों को जिस रूप में हम देखते हैं, समझते हैं, वस्तुतः उनकी भीतरी गुप्त शक्ति उससे कहीं अधिक होती है। पानी गड्ढे या तालाबों में ढेरों भरा पड़ा रहता है, पर उसकी कुछ विशेष शक्ति प्रतीत नहीं होती। पर जब उसे भाप के रूप में परिणित किया जाता है तो एक छोटी टंकी भरा पानी हजारों मन भारी रेल को तूफान की चाल से दौड़ा ले जाता है। रेल की चाल वस्तुतः उस थोड़े से कुछ मन पानी की शक्ति है जिसका साधारणतः कुछ विशेष महत्त्व प्रतीत नहीं होता। पानी की सूक्ष्म शक्ति का हम तब अनुमान करते हैं जब वह रेल दौड़ाने का चमत्कार दिखाता है, साधारण बुद्धि उस छिपी शक्ति को समझने में प्रायः असमर्थ ही रहती है।

पानी की यह सूक्ष्म शक्ति वह हुई जिससे रेल चलती है। इससे भी अधिक सूक्ष्म एक और शक्ति उसमें है जिसके कारण शक्ति या अध्यात्म-शक्ति कहते हैं। पानी में पवित्रता की कारण-शक्ति सन्निहित है, जल प्यास को बुझाता है यह सर्व-विदित है, कपड़े, शरीर या फर्श का मैल धो डालना भी उसका गुण है। यह बातें सभी को विदित हैं। पर उसकी कारण-शक्ति को पहचानना हर किसी का काम नहीं। यह मशीनों की सहायता से नहीं जानी जा सकती, वैज्ञानिक उपकरणों की पहुँच अभी इतनी नहीं हो पाई है जिससे यह जाना जा सके कि किस पदार्थ में क्या कारण शक्ति सन्निहित है। उसकी समुचित परीक्षा आध्यात्म शक्ति से ही होती है।

जल में कारण-शक्ति पवित्रता की है। वह न केवल हमारे शरीर का मैल छुड़ाता है वरन् आत्मिक दृष्टि से भी हमें पवित्रता प्रदान करता है। हिन्दू धर्म में स्नान का महत्त्व बहुत बताया गया है। प्रत्येक धार्मिक कार्य के पूर्व स्नान आवश्यक है। दैनिक जीवन में भी नित्य स्नान के बिना भजन, भोजन नहीं होता। स्वास्थ्य विज्ञान की दृष्टि से जाड़े के दिनों में रोज स्नान करना आवश्यक नहीं। योरोप के ठंडे देशों में लोग बहुत-बहुत दिनों बाद नहाते हैं। पर उससे उनके स्वास्थ्य में कोई अन्तर नहीं आता। जाड़े की ऋतु में वैसी ही स्थिति जब इस देश में हो जाय तो शरीर-शास्त्र की दृष्टि से स्नान की उतनी आवश्यकता नहीं रहती। परन्तु अध्यात्म दृष्टि से पानी के अन्दर जो पवित्रता प्राप्त हुई है, उसका उपयोग अन्तःकरण की पवित्रता बढ़ाने तथा स्थिर रखने की दृष्टि से नितान्त आवश्यक माना गया है। इसी आवश्यकता की पूर्ति के लिए हमारी धर्म परम्परा में स्नान को एक आवश्यक धार्मिक कर्त्तव्य माना गया है।

जल की स्थूल शक्ति खेती सींचने, ठण्ड के बनाये रखने, प्यास बुझाने तथा सफाई करने की है। उसकी सूक्ष्म शक्ति रेल को दौड़ाने जैसे प्रचण्ड कार्य कर सकने वाली सामर्थ्य के रूप में परिलक्षित होती है। कारण-शक्ति के रूप में उसकी शक्ति हमारे अन्तःकरण, मन, विचार तथा चेतना स्तर को पवित्रता प्रदान करती है।

सूक्ष्मदर्शी ऋषियों ने अपनी लाखों वर्षों की तप साधनाओं द्वारा उपलब्ध अपनी आत्मशक्ति से संसार के विभिन्न पदार्थों का अन्वेषण एवं विश्लेषण करके उनकी कारण-शक्ति का पता लगाया था और उसके द्वारा मनुष्य के गुण, कर्म, स्वभाव में आवश्यक हेर-फेर करने की प्रक्रिया बनाई थी। वैज्ञानिक प्रयोगशालाओं में जड़ीबूटियों के रासायनिक पदार्थों के खंड-खंड करके उनके सूक्ष्म गुणों का पता लगाया जाता है और उनका किस रोग के निवारण में या किस कार्य में किस प्रकार क्या उपयोग हो सकता है? यह पता लगाया जाता है। यह विश्लेषण कार्य रसायनशाला में लगे कुछ उपकरणों के आधार पर या अन्य परीक्षणों द्वारा जान लिये जाते हैं। पर उनकी कारण-शक्ति का पता लगाने के बारे में कोई वैज्ञानिक

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org

उपकरण नहीं बन सके हैं। वैज्ञानिक क्षेत्र भौतिक शक्ति तक ही सीमित हैं, इसलिए इसके द्वारा कारण-क्षेत्र की खोज कर सकना कठिन भी है।

किसी पदार्थ की स्थूल सामर्थ्य की अपेक्षा उसकी सूक्ष्म शक्ति की क्षमता हजारों गुनी होती है। कपड़े धोने, सफाई का काम करने की अपेक्षा जल की वह सूक्ष्म शक्ति जो रेल चलाती है, हजारों गुनी अधिक महत्त्वपूर्ण है। इससे भी गहरी वह शक्ति है जो पवित्रता प्रदान करती है—वह इस रेल चलाने की सामर्थ्य की तुलना में हजारों गुनी अधिक महत्त्वपूर्ण है। रेल तो बिजली, तेल, पैट्रोल आदि से भी दौड़ाई जा सकती है, पर अन्तःकरण की पवित्रता जो मनुष्य को महापुरुष एवं देवता एक बना सकती है कितनी महान है इसकी कल्पना भी करना कठिन है। जिस प्रकार मामूली वस्तु के भी परमाणु (एटम) उस वस्तु की अपेक्षा करोड़ों गुने शक्तिशाली होते हैं, उसी प्रकार हर पदार्थ की कारण सत्ता में ही उसकी वास्तविक एवं प्रचंड शक्ति छिपी रहती है।

तुलसी का पौधा हमारे यहाँ बहुत पवित्र माना जाता है। उसे घरों में स्थापित करते हैं, पूजा करते हैं, प्रसाद, पंचामृत आदि पवित्र धर्म विधानों में उपयोग करते हैं। कोई व्यक्ति मरने को होता है तो उसके मुख में तुलसीदल डालते हैं। तुलसी के बारे में जो यह पवित्र भावना हमारे समाज में प्रचलित है वह अकारण नहीं है। उसके पीछे उसकी कारण-शक्ति ही सन्निहित है। तुलसी का पौधा जिस घर में रहेगा वहाँ सतोगुणी प्रवृत्तियाँ धर्म भावना, संयम, सदाचार का वातावरण तैयार करेगा, उसमें निरन्तर प्रवाहित होती रहने वाली अदृश्य तरंगें पवित्रता एवं धार्मिकता की चेतना उसी प्रकार फैलाती रहती हैं, जिस प्रकार गुलाब के फूल से सुगन्ध फैलती है। सुगन्ध को हमारी नाक पहचानती है, इसलिए उसके गुण पर अविश्वास का कोई कारण नहीं होता, पर तुलसी की कारण-शक्ति को नाक या आँख से देखा सूंघा नहीं जा सकता इसलिए हमारा मन बहुधा विचलित हो जाता है और अविश्वास एवं संदेह प्रकट करने लगता है।

किसी पौधे या खाद्य-पदार्थ की स्थूल शक्ति वह है जो उसे देखने सूंघने या चखने से अनुभव में आती है। मिर्च का चरपरापन, टमाटर की खटाई, फूल की लुभावनी सूरत तथा गंध उसकी स्थूल सामर्थ्य कही जा सकती है। मिर्च की दाहकता, टमाटर का रक्त शोधक गुण, गुलाब की शीतलता तथा विरेचन उसकी सूक्ष्म सामर्थ्य है जो दिखाई तो नहीं पड़ती पर शरीर यन्त्र के भीतरी कल पुर्जों द्वारा या वैज्ञानिक मशीनों द्वारा आसानी से पहचानी जा सकती है। पर इन पदार्थों में कारण शक्ति मनुष्य के अन्तःकरण पर प्रभाव डालने वाली सामर्थ्य क्या है, इसे किस प्रकार जाना जाये, इसे जानने का एक मात्र तरीका आत्मशक्ति ही है। वह आत्मशक्ति जिसने प्राचीनकाल में खगोल विद्या आदि महत्त्वपूर्ण विद्याओं का बिना किसी मशीन या दुरबीन की सहायता के पूरा-पूरा अन्वेषण कर लिया था, इन पदार्थों की कारण शक्ति को जानने का प्रमुख आधार हो सकती हैं।

वनस्पति विज्ञान की दृष्टि से तुलसी और करंजवा में लगभग एक समान गुण हैं। दोनों ही कीटाणुनाशक तथा ज्वर निरोधक हैं। रासायनिक विश्लेषण की दृष्टि से इन दोनों में आश्चर्यजनक समता है। यह सब होते हुए भी तुलसी की पूजा होती है, उसे घरों में लगाया जाता है पर करंजवा के पौधे को वह श्रेय नहीं दिया गया है। पूजा उपकरणों में तुलसी दल के स्थान पर करंजवा के पत्ते काम में नहीं आ सकते हैं, और न माला के काम में ही तुलसी के स्थान पर करंजवा की लकड़ी काम में लाई जा सकती है। इस भेद-भाव का आधार दोनों की कारण-शक्तियों में अन्तर होना ही है।

हमारे धर्मशास्त्रों में कई वृक्षों, वनस्पतियों, पशुओं, सरिताओं, सरोवरों, पर्वतों, प्रदेशों को विशेष महत्त्व दिया गया है। पीपल का वृक्ष पूजा जाता है, उससे भी बड़े तथा उपयोगी अन्य वृक्षों को वह मान्यता प्राप्त नहीं है। गाय की अपेक्षा भैंस अधिक दूध तथा घी देती है पर उसकी पूजा नहीं होती। क्योंकि गाय के शरीर गोबर, मूत्र, दूध, घी तथा सांस में जो पवित्रता उत्पन्न करने वाले तत्त्व हैं वे भैंस में नहीं हैं। दूध, घी अधिक प्राप्त करने के लिए भैंस खरीदी जा सकती है पर कन्या के विवाह में गौदान के समय तथा मृत्यु काल में वैतरणी पार करने के लिए भैंस का दान करने से काम नहीं चल सकता। पंच गव्य पंचामृत में गोरस ही उपयोग होगा। गाय का दूध पीने वाले में बुद्धिमत्ता, स्फूर्ति, सात्विकता आदि आत्मिक चेतनाएँ बढ़ती हैं। इसके स्थान पर भैंस का दूध अधिक गाढ़ा, स्वादिष्ट चिकना होते हुए भी आलस्य, मंदबुद्धि तमोगुण एवं जड़ता पैदा करता है। मशीनों से इस अन्तर को साबित नहीं किया जा सकता पर दो व्यक्तियों को गाय और भैंस के अलग-अलग दूध पिलाकर कुछ ही दिनों में उसके स्वभाव में उत्पन्न होने वाला अन्तर आसानी से जाना जा सकता है। कारण-शक्ति की परीक्षा का सीधा तरीका यही है कि उन पदार्थों का उपयोग व्यक्तियों को कराकर देखा जाये कि उनके अन्तःक्षेत्र में पहले की अपेक्षा क्या अंतर हुआ। यद्यपि जीवन की गतिविधियाँ अन्य कारणों पर भी निर्भर रहती हैं, पर कोई भी पदार्थ अपनी सूक्ष्म चेतना का प्रभाव उपयोग करने वाले पर छोड़े बिना रहता नहीं है। इसलिए हमें प्रत्येक पदार्थ का उपयोग करने से पूर्व उसकी कारण-शक्ति के बारे में भी जानकारी प्राप्त कर लेनी आवश्यक है।

भौतिक विज्ञान अब धीरे-धीरे यह अनुभव कर रहा है कि खाद्य पदार्थों का प्रभाव शरीर की रासायनिक स्थिति तक ही सीमित नहीं है वरन् उनके सहारे मस्तिष्कीय प्रखरता भी बढ़ाई जा सकती है। मन्दबुद्धि को तीक्ष्ण किया जा सकता है और अकुशलों को कुशल बनाया जा सकता है। मस्तिष्क को कुण्ठित करने वाले नशे जिस प्रकार अपना हानिकारक प्रभाव दिखाते थे अब उसी प्रकार ऐसे रसायन ढूँढ़ निकाले जा रहे हैं जो मस्तिष्क के अविकसित अंगों में पुनर्जीवन भर सकते हैं। यह रचनात्मक दिशा हुई—नशेबाजी से ठीक विपरीत प्रकार की। निषेधात्मक तथ्य बहुत पहले ढूँढ़ लिये गये थे अब विधेयात्मक पक्ष की खोज जोरों से हो रही है। यों ब्रह्मी, शंखपुष्पी, गोरखमुण्डी, वच, सर्प, गधा आदि जड़ी बूटियों का

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

मस्तिष्क पर अच्छा प्रभाव पड़ता है ऐसी मोटी जानकारी किसी कदर पहले भी मौजूद थी।

सन् १९५० में अमेरिका के वाल्टीमोर शहर के एक स्कूल में पढ़ने वाले ५२ छात्रों पर 'स्मार्ट पिल्स' दवा का प्रयोग किया गया। यही गोलयाँ उन्हें करीब एक माह तक सेवन कराई गयीं। इस प्रयोग का उद्देश्य यह जानना था कि औषधियों के सेवन से क्या वास्तव में मंदबुद्धि को प्रखर या तीव्र बनाया जा सकता है? औषधियों का निर्माण भी इसी उद्देश्य को ध्यान में रख कर किया गया था। नियत अवधि तक सेवन कराने के बाद जब विद्यार्थियों पर क्या प्रभाव पड़ा? यह जांचा गया तो पता चला कि इस अवधि में उनकी मस्तिष्कीय क्षमता पहले की अपेक्षा काफी बढ़ गयी है।

मिशिगन यूनिवर्सिटी के जीवशास्त्री बर्नार्ड एवागोफ ने अपने प्रयोगों की परिधि में मछलियों और अन्य प्राणियों को भी रखा। इन प्रयोगों में भी आशाजनक सफलता मिली और न केवल इन प्राणियों को चतुर बनाया जा सका वरन् औषधियों के प्रयोग द्वारा उनकी स्मरणशक्ति को भी कम कर दिया गया। पिछले दिनों हुई वैज्ञानिक शोधों से यह निष्कर्ष सामने आया है कि 'थोरामाइटिन नामक प्रोटीन की मात्रा को यदि आहार में घटाया बढ़ाया जाये तो उससे मस्तिष्क की क्षमता भी घट बढ़ सकती है। कैलीफोर्नियाँ यूनिवर्सिटी के मनःशास्त्री रिचार्ड थाम्पसन ने दस वर्ष तक लगातार शोध करने के बाद यह निष्कर्ष प्रतिपादित किया कि बुद्धि दैवी वरदान नहीं है, उसे मानवी प्रयत्नों से घटाया-बढ़ाया जा सकता है। इन प्रयोगों में उन्होनें कुत्तों, बिल्लियों बन्दरों और चूहों पर जो प्रयोग किये उनसे यह निष्कर्ष सामने आये कि जिस प्रकार किसी मशीन की कार्यक्षमता को थोड़ा बहुत सुधार कर इच्छानुसार कम ज्यादा किया जा सकता है इसी प्रकार हर स्तर की मस्तिष्कीय क्षमता में भी परिवर्तन किया जा सकता है।

प्रो० जेम्स मक्कानेल ने तो अपने प्रयोगों में यहाँ तक सफलता प्राप्त कर ली कि एक व्यक्ति की स्मृतियाँ और अनुभव जो केवल उसी तक सीमित हों और उसने किसी को भी इनके बारे में नहीं बताया हो इन प्रयोगों द्वारा दूसरे व्यक्ति के मस्तिष्क में ठीक उसी प्रकार पहुँचाये या डाले जा सकेंगे जैसे कि ये स्मृतियाँ और अनुभव इस व्यक्ति के अपने स्वयं के अनुभूत हों। प्रो० मक्कानेल का कहना है कि दशाब्दियों पूर्व यह समझा जाता था कि एक मनुष्य का रक्त उसके अलावा दूसरे व्यक्ति के कुछ काम का नहीं है। किन्तु अब यह बात हास्यास्पद लगती है क्योंकि अब चिकित्सा विज्ञान बड़ी सफलता से एक प्राणी का रक्त दूसरे प्राणी के शरीर में पहुँचा देता है, यही नहीं टूटे-फूटे अवयवों के स्थान पर दूसरों के स्वस्थ अवयवों का भी आरोपण सरल हो गया है, उसी प्रकार यह भी सम्भव है कि मस्तिष्क की कोशिकाओं को अदल-बदल कर दो भिन्न स्तर के प्राणियों में बौद्धिक क्षमता का आदान प्रदान किया जा सके।

ये सारे प्रयोग मस्तिष्क पर पड़ने वाले खाद्य-पदार्थों के प्रभाव पर आधारित हैं, अब तक शरीर पर खाद्य-पदार्थों के पड़ने वाले प्रभावों के आधार पर आहार-शास्त्र और चिकित्सा शास्त्र का विशालकाय ढांचा खड़ा किया गया। किन्तु अब खाद्य पदार्थों के मस्तिष्क पर प्रभाव की बात को भी स्वीकार किया जा रहा है और ऐसे रासायनिक द्रव्यों की खोज की जा रही है जिनसे बुद्धि की मन्दता, अकुशलता और मानसिक विकृतियों की भी चिकित्सा की जा सके। इस चिकित्सापद्धति का ढांचा शरीर चिकित्सा को वर्तमान विस्तार से अधिक बढ़ा-चढ़ा बना सकेगा और जन साधारण को मानसिक दुर्बलता तथा रुग्णता से भी बचाया जा सकेगा। इस सफलता के लिए पदार्थों की सूक्ष्म शक्ति को खोजा जा रहा है और उसके उपयोग का प्रयत्न किया जा रहा है। तनाव, अशांति; चिन्ता आदि भावनात्मक विक्षोभों के कारण नींद न आने की शिकायत होने पर नींद लाने वाली दवाएँ, ट्रेक्वलाइजर, औषधियों के प्रयोग की बात तो सर्व विज्ञात है। यह औषधियों का मस्तिष्क पर प्रभाव ही होता है, जो खाद्य-पदार्थों की सूक्ष्मशक्ति से उद्भूत होता है। इस सूक्ष्मशक्ति को अन्यान्य मस्तिष्क प्रयोजनों और विकास के उद्देश्यों में प्रयोग की बात इन दिनों चल रही है। स्पष्ट ही यह सूक्ष्म शक्ति, शरीर का पोषण करने वाली स्थूल शक्ति से भिन्न है। वैज्ञानिकों की मान्यता है कि यह कोई आवश्यक नहीं है कि जो खाद्य शरीर के लिए जितना उपयोगी है वह मस्तिष्क के लिए भी उतना ही उपयोगी हो।

भारतीय मनीषियों ने आहार की इस सूक्ष्मशक्ति के अतिरिक्त उसकी कारण-शक्ति को भी पहचाना और माना है। यह कारण शक्ति आहार की स्थूल और सूक्ष्मशक्ति से ऊपर है। शरीर के तीन कलेवरों की भाँति प्रत्येक पदार्थ, प्रत्येक तत्त्व के भी तीन स्तर हैं जिन्हें स्थूल सूक्ष्म और कारण कहा जाता है। यहाँ चर्चा मानवी सत्ता और आहार की जा रही है। अतः इतना भर जानना पर्याप्त होगा कि शरीर के स्थूल और सूक्ष्म स्वरूप की अपेक्षा कारण रूप अधिक महत्त्वपूर्ण है। इस स्तर को भावना क्षेत्र भी कह सकते हैं। इसी के आधार पर गुण, कर्म, स्वभाव को दिशा मिलती है और समूचे व्यक्तित्त्व का निर्माण होता है। शरीर से बलवान और मस्तिष्क से बुद्धिमान होते हुए भी कोई व्यक्ति भावना स्तर पर गया-गुजरा हो सकता है तथा निकृष्ट कोटि का भ्रष्ट एवं दुष्ट जीवन जी रहा हो सकता है। ऐसे लोग अपने दोष दुर्गुणों के कारण पग-पग पर ठोकरें खाते हैं, और प्रतिभा सम्पन्न होते हुए भी नितान्त असफल जीवन जी कर रोते कलपते संसार से विदा होते हैं। इसके विपरीत भावना स्तर परिष्कृत होने पर शारीरिक, बौद्धिक और आर्थिक दुर्बलताएँ रहते हुए भी भावना की प्रखरता के कारण कई व्यक्ति ऐतिहासिक महामानवों की पंक्ति में जा बैठते हैं, और संसार उनके चरणों पर मस्तिष्क झुकाता है। कारण शक्ति का ही प्रताप है, जिससे शारीरिक और मासिक क्षमताएँ मिला देने पर व्यक्तित्त्व की क्षमता हजारों लाखों गुना महिमावान बन जाती है। भारतीय मनीषियों ने इस शक्ति के विकास में आहार को बहुत अधिक महत्त्व दिया है, और अन्न का महत्व बताते हुए कहा गया है—

अन्नाद्वै प्रजाः प्रजायन्ते। या काश्च पृथिवी श्रिताः।
अथो अन्नेनैव जीवन्ति। अथ नैक्षपि यन्त्यन्ततः॥

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org

अन्न हि? भूतानां ज्येष्ठमात् स्मात्सर्वौषधमुच्यते।
सर्वं वै तेऽन्नमाप्नुवन्ति। येऽन्नं ब्रह्मोपासते॥
अन्न हि? भूतानां ज्येष्ठम्। तस्मात्सर्वौषधमुच्यते।
अन्नाद् भूतानि जायन्ते। जातान्यन्नेन वर्धते॥
अद्यत्योऽत्ति च भूतानि। तस्मादन्न तदुच्यतेइति।

(तैत्रिरीयोपुनिषद् वल्ली २, अ० २०)

अर्थात्—पृथ्वी लोक में निवास करने वाले जितने भी प्राणी हैं, वे सब अन्न से उत्पन्न हुए हैं। अन्न के परिणाम रूप रज और वीर्य से ही उनके शरीर हैं, उत्पन्न होने के बाद उन्हीं से उनका पालन-पोषण होता है। अतः अन्न से ही जीवित रहते हैं। फिर अन्त में इस अन्न में ही विलीन हो जाते हैं। यह अन्न समस्त प्राणियों की उत्पत्ति का आदि कारण है इसी पर सब कुछ निर्भर करता है इसलिए यही सबसे श्रेष्ठ है और सर्वोषध रूप कहलाता है क्योंकि इसी से प्राणियों का क्षुधा जन्य संताप दूर हो जाता है जो साधक इस अन्न की ब्रह्म रूप में उपासना करते हैं वे अन्न के सर्वोषधमय रूप को प्राप्त होते हैं। सब प्राणी अन्न से उत्पन्न होते हैं और उत्पन्न होने के बाद अन्न से ही बढ़ते हैं, उनके अंगों की पुष्टि अन्न से ही होती है।

'**अद्यते अति च इति अन्नम्**' व्युत्पत्ति के अनुसार जो खाया जाता है और जो खाता है वह अन्न है। इस स्थान पर ऋषि ने अन्न को खाद्य-पदार्थ ही नहीं स्वयं खाने वाला भी बताया है। यह तो सर्वविदित है कि कुधान्य खाने से या आवश्यकता से अधिक खा लेने पर पोषण करने और जीवन की रक्षा करने वाला अन्न ही प्राणियों की मृत्यु का कारण बन जाता है। परन्तु ऋषि ने यहाँ एक गम्भीर तथ्य को उद्घाटित किया है कि जो खाया जाता है और सर्वोषध रूप ब्रह्म के रूप में सेवन किया जाता है वह मनुष्य के विकारों और जन्म-मरण के बन्धनों को भी खा जाता है अर्थात् उनसे छुटकारा दिला देता है यह अन्न की कारण शक्ति का ही परिचायक है। अन्न की कारण शक्ति मानवी अन्तःकरण को प्रखर बनाती है। अन्तःकरण की प्रखरता ही वस्तुतः मानवी शक्ति का अजस्र स्रोत है। उसका मूल्य समझने और उस क्षेत्र में प्रगति करने का विज्ञान ही अध्यात्म ही विद्या, ब्रह्मविद्या आदि नामों से पुकारा जाता रहा है। उसी शक्ति को प्राप्त करने के लिए योग साधना के क्षेत्र में अनेकानेक प्रयोग किये जाते रहे हैं किन्तु अब वे प्रयोग एक प्रकार से विलुप्त हो गये हैं मात्र उनकी छाया छुट-पुट कर्मकांडों के रूप में जहाँ-तहाँ टूटे-फूटे खण्डहरों की तरह अपनी कुरूप स्थिति में पड़ी है। इन खण्डहरों से भला भवन का प्रयोजन कैसे पूरा हो सकता है? सर्वांगीण योग साधना का उद्देश्य एकांगी साधना से पूरा करने की आशा किस आधार पर की जा सकती है? यही कारण है कि मात्र शरीर श्रम और वस्तु समुच्चय के आधार पर योग के नाम से जो लकीरें पिट रही हैं। उनका कोई आशाजनक परिणाम प्राप्त नहीं होता है। अन्तः करण का परिष्कार कर चेतना की कारण शक्ति को विकसित करना ही अध्यात्म विज्ञान का एक मात्र उद्देश्य है। इसी विकास के आधार पर तथा प्रचण्ड आत्मबल के सहारे खड़ी रहने वाली, लोककल्याण में प्रयुक्त होने वाली अगणित चमत्कारी ऋषि सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं। इस शक्ति को, आत्मबल को विकसित करने में आहार शक्ति का प्रयोग करना पड़ता है। तैत्तिरीयोपनिषद् में वरुण के पुत्र भृगु ऋषि अपने पिता से परमात्मा को जानने का उपाय पूछते हैं तो वरुण कहते हैं कि अन्न प्राण, नेत्र श्रोत्र मन और वाणी ये सभी ब्रह्म की उपलब्धि के द्वार हैं।

पिता से अप्रत्यक्ष मार्गदर्शन प्राप्त कर भृगु ऋषि ने ब्रह्मचर्य और शम आदि यम नियमों का पालन करते हुए जाना—

अन्नं ब्रह्मेति व्यजानात्। अन्नाद्ध चैव खल्विमानि भूतानि जायंते। अन्नेन जातानि जीवंति। अन्नं प्रयत्यभिविशंति।

अर्थात्—अन्न ब्रह्म है। इस प्रकार जाना क्योंकि सचमुच अन्न से ही ये सब प्राणी उत्पन्न होते हैं, उत्पन्न होकर अन्न से ही जीते हैं और अन्त में यहाँ से प्रयाण करते हुए अन्न में ही प्रविष्ट होते हैं।

अन्न के बाद भृगु ऋषि क्रमशः प्राण, मन, विज्ञान और आनन्दमय कोश को तप और उपासना द्वारा उद्घाटित करते हैं तथा ब्रह्मविद्या की अन्तिम सीढ़ी तक पहुँचते हैं। प्रथम सीढ़ी के रूप में तैत्तिरियोपनिषद की तीसरी वल्ली के सातवें अनुवाक् में कहा गया है—

अन्नं न निन्द्यात्। तद्व्रतम। प्राणोवा अन्नम् शरीर मन्नादम्। प्राणे शरीर प्रतिष्ठितम्। शरीर प्राणः प्रतिष्ठितम्। तदेतदन्नमने प्रतिष्ठितम् सय एतदन्नमने प्रतिष्ठित वेद प्रतिष्ठितम् अन्नवानन्नादो भवति महान् भवति प्रजया पशुभिब्रह्मवर्चसम्। महान् कीर्त्या।

अर्थात्—अन्न की निन्दा न करें। वह व्र है। प्राण ही अन्न है और शरीर उस प्राण रूप अन्न से जीवन के कारण अन्न का भोक्ता है। शरीर प्राण के आधार पर स्थित हो रहा है और शरीर के आधार पर प्राण प्रतिष्ठित हो रहा है। इस तरह यह अन्न में ही अन्न स्थित हो रहा है। जो मनुष्य अन्न में ही अन्न प्रतिष्ठित हो रहा है, यह जानता है वह उसमें प्रतिष्ठित हो जाता है। अतः अन्न वाला और अन्न को खाने वाला हो जाता है। वह समस्त भौतिक सम्पदाओं और आत्मिक शक्तियों से सम्पन्न होकर महान बन जाता है।

उपरोक्त अनुवाक् में आहार की कारण शक्ति से लाभान्वित होने के लिए अन्न की निन्दा न करने का व्रत बताया गया है अगले अनुवाक् में अन्न की अवहेलना न करने अर्थात् उसका दुरुपयोग न करने सात्त्विक अन्न ग्रहण करने आदि की आवश्यकता बताई गई है। खाद्य-पदार्थों की कारण-शक्ति का आत्मविकास में प्रयोग करने के लिए इस प्रकार के अनेकानेक नियमोपनियमों और विधि विधानों का पालन करने के साथ-साथ कई प्रकार के तप अनुष्ठान करना है। सर्वविदित है कि आहार की कारण-शक्ति का उपयोग करने के लिए पिप्पलाद ऋषि केवल पीपल के फल खाकर ही निर्वाह करते थे। औदुम्बर ऋषि का यह नाम केवल इसी कारण पड़ा था। कि वे गूलर खाकर शरीर का निर्वाह करते थे। मौदगल ऋषि का आहार केवल मूंग थी। यह खाद्य पदार्थ भी अनियंत्रित क्रम द्वारा विशिष्ट शक्ति से सम्पन्न किए जाते थे। जैसा कि सभी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जानते हैं कि हमने २४ वर्ष तक जौ की रोटी और गाय की छाछ इन दो वस्तुओं के सहारे शरीर यात्रा चलाते हुए अपनी गायत्री पुरश्चरण साधना सम्पन्न की। यज्ञ विज्ञान के अनुसार विशिष्ट अग्निहोत्रों में ऐसी ही परिष्कृत हवन-सामग्री बहुत परिश्रम पूर्वक तैयार करने का विधान है। यह सब बातें पदार्थों की कारण शक्ति के अस्तित्व एवं उपयोग के तथ्य पर प्रकाश डालती हैं।

प्राचीन मनीषियों ने आत्मोत्कर्ष की साधना में आहार का कारण शक्ति को आत्मसात करके अन्तःकरण को विकसित करने का विशेष विधान, विज्ञान सम्मत आधार पर विनिर्मित किया है। मनीषियों ने इस बात पर भी जोर दिया है कि यदि इस ओर उपेक्षा बरती गई तो आत्मबल सम्वर्द्धन के लिए की जाने वाली साधनाओं में सफलता प्राप्त होना संदिग्ध है। यदि सफलता मिली भी तो वह यत्किंचित ही होगी। वस्तुतः आत्मबल का अभिवर्द्धन ही मनुष्य जीवन की सबसे बड़ी सफलता है। यदि वह पूंजी अभीष्ट मात्रा में मनुष्य के पास हो तो वह शारीरिक मानसिक आर्थिक और लौकिक दृष्टि से ही नहीं आत्मिक दृष्टि से भी सफल सिद्ध होता है। इस संदर्भ में आहार की कारण शक्ति, सतोगुणी विशेषता का उपयोग होना चाहिए।

विज्ञान अभी आहार की स्थूल और सूक्ष्म-शक्ति को ही जान पहचान पाया है, पर अध्यात्म उसकी कारण शक्ति का हजारों वर्ष पता लगा चुका है और वह इस बात पर बार-बार जोर देता है कि अन्तःकरण को परिष्कृत करने के लिए सात्त्विक आहार ही अपनाया जाना चाहिए और उसकी कारण-शक्ति को भावनाओं का संपुट देकर आत्म चेतना को सुविकसित करने में अधिक उपयोगी बनाना चाहिए। इसी कारण साधक को भगवान का भोग प्रसाद यज्ञाग्नि में पकाया गया चरुहव्य तथा इसी प्रकार के पदार्थ जिनमें स्थूल विशेषता परिलक्षित नहीं होती किन्तु उनकी कारण शक्ति अति सामर्थ्यवान होती है, प्रयुक्त करने के लिए कहा जाता है यज्ञ-हव्य के चमत्कारी परिणाम तो कई बार प्रत्यक्ष देखे गये हैं। यज्ञ भस्म के उपयोग से कई बार आधिभौतिक, आधिदैविक और अध्यात्मिक कष्टों की निवृत्ति होती देखी गयी है वह अकारण नहीं है। उसके पीछे आहार की सात्त्विक कारण शक्ति का ही समावेश रहता है। अस्तु, आत्मिकविकास के इच्छुक प्रत्येक साधक की साधना उपासना के साथ आहार सम्बन्धी निर्दिष्ट सावधानियों का भी ध्यान रखना चाहिए।

सात्विक आहार और आत्मसाधना

आत्मोत्कर्ष के लक्ष्य को ध्यन में रखते हुए प्रगति पथ पर पहला चरण बढ़ाने वाले को अपनेआहार को सुधारने ओर उसकी मात्रा में कटौती करनी चाहिए। किसके लिए आहार की कितनी मात्र पर्याप्त है? इसका निर्णय उसी को स्वयं करना होगा। क्योंकि हर व्यक्ति की स्थिति भिन्न होती है। उसके पाचन तन्त्र की क्षमता कितनी है। इसकी जानकारी जितनी अच्छी तरह अपने आप को होती है। उतनी दूसरे को नहीं। इसलिए निर्धारण भी स्वयं ही किया जाना चाहिए।

इसकी दो कसौटियां हैं। एक यह है कि भोजन का भार इतना न बढ़े कि आलस्य आने लगे। लेटने सोने को जी करे। काम करने की इच्छा न रहे । यह बातें बताती है कि भोजन अनावश्यक मात्रा में किया गया। दूसरा यह कि पेट आधा ही आहार से भरे । आधा पानी के लिए और साँस के आवागमन के लिए खाली छोड़ा जाना चाहिए। ठूँस-ठूँस कर इतना न खाया जाना चाहिए कि आग्रह करने पर थोड़ा और खा लेने की गुंजाइश न रहे। तीसरी परख यह है कि दूसरी बार भोजन करने से पूर्व पिछला खाया हुआ भली प्रकार पचगया हो और नया आहार ग्रहण करने की लालसा बलवती हो चले । पेट खाली प्रतीत हो। ऐसी स्थिति न बन पड़े तो समझना चाहिए। कि पहले खाया हुआ अभी पचा नहीं है। अपच की स्थिति में आदत से विवश होने पर खाने की आदत भड़कते ही थाली परोसवा लेना गलती की बात है।

पेट की सामर्थ्य से अधिक खाते रहने से बार-बार जल्दी जल्दी कुछ न कुछ मुंह में ठूँसते रहने की आदत से स्वभाव बिगड़ जाता है और वैसा ही सतत करने की उत्कण्ठा उभरती है। यह आदत एक प्रकार से स्वभाव को ही बिगाड़ देती है और पता नहीं चल पाता कि भूख लगी भी है या नहीं? ऐसी दशा में एक दो के उपवास केवल जल पर रखने और पेट की सफाई और की लिए ऐनीमा आदि लेते रहना से कब्ज से छुटकारा-सा मिल जाता है।उतरी हुई गाड़ी फिर से पटरी पर आ जाती है।

आमतौर से देखा गया है कि लोग प्रायः आवश्यकता से दूना भोजन करते है। ऐसी दशा में मनुष्य रोटी नहीं खाता वरन् रोटी मनुष्य को खाने लगती है। एक साधारण अनुमान यह है कि अभ्यस्त मात्रा में यदि आधी मात्रा घटा दी जाये तो काम मजे मे चलता रह सकता है। पेट को जो अनावश्यक भार ढोने में इतनी सामर्थ्य समाप्त करनी पड़ती है, उस अनाचार से छुटकारा मिल सकता है।

जल्दी जल्दी में उल्टे सीधे ग्रास निगलने नहीं चाहिए वरन् ग्रास को इतना चबाना चाहिए कि वह गले से नीचे सहज ही उतर जाय उसमें मुँह के स्रावों का समुचित समावेश हो जाय।

भोजन में स्वाद के नाम पर मसाले मिठाई चिकनाई मिर्च खटाई इतनी नहीं ड़ालनी चाहिए जिससे स्वाद के चटोरपन में आहार की ज्यादा मात्रा पेट में चली जाय। भोजन का अपना निजी रुचिकर स्वाद है। ग्रास को अच्छी तरह चबा लेने पर उस स्वाद की अनुभूति स्वयं होने लगती है। जितना नमक, शक्कर आदि चाहिए उतना खाद्य पदार्थों में प्राकृतिक मिला रहता है। इसलिए बाहर से जायके के लिए कुंछ भी मिलाने पर की आवश्यकता नहीं पड़ती है।

गान्धीजी ने सप्त महाव्रतों में अस्वाद को प्रथम व्रत बताया है। अस्वाद का तात्पर्य है जायके के लिए आहार में ऊपर से कुछ भी न मिलाना। ऐसा करने से पेट में उतनी ही मात्रा उतर पाती है। जितनी कि वस्तुतः आवश्यक है। नमक

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

मसाले ओर मिठाई ही वह रिश्वत है जिसे जीभ को देकर उससे पेट पर अत्याचार करने के लिए फुसलाया जाता है। अस्वाद आहार पेट में उतनी ही मात्रा में प्रवेश कर पाता है। जितनी कि वस्तुतः आवश्यकता है।

मनुष्य वानर बिरादरी का प्राणी है। उसका स्वाभाविक आहार फल और शाक है। ऊँचें दर्जे के फल ही महँगे होते है। ऋतु फल प्रायः अनाज के भाव ही पड़ जाते हैं। आम, अमरूद, खरबूजा, तरबूज, बेर, जामुन आदि फल अपने समय पर सस्ते ही बिकते है। टमाटर, ककड़ी, भिण्डी, गाजर, मूली आदि शाक कच्चे ही खाये जाते हैं। कुछ हरे शाक ऐसे हैं। जिन्हें उबाल लेने से काम चल जाता है।

इनसे काम न चलता दीखे तो अन्न को उबालकर खाया जाना चाहिए उन्हें बारीकी से न पीसा जाय तो ही अच्छा है। दालें साबुन ही पकानी चाहिए। चावल तो साबुत ही पकता है। गेहूँ, मक्का, ज्वार, बाजरा आदि का दलिया बनाया जा सकता है। उबले अन्न को अमृताशन कहते हैं। वह सुपाच्य भी होता है। और सात्त्विक भी आधी मात्रा फल शाक की और आधी अमृताशन की ली जा सके तो पर्याप्त है।

पानी भी आहार है। एसे गहरे कुँओं से लिया जाये। कृमि कीटकों का सन्देह हो तो उबाल लिया जाय। छानकर तो हर हालत मे पीना चाहिए। भोजन के समय तो कम पानी लिया जाय पर बाद मे एक एक ग्लास पानी लेते रहने का सिलसिला जारी रखना चाहिए और दिन भर में १५-२० ग्लास पानी पी लिया जाय। इससे पेट की सफाई में मदद मिलती है।

आहार को भगवान का प्रसाद या औषधि की भावना से लिया जाना चाहिए। स्वाद के अभाव में नाक-भौं सिकोड़ने की आदत न डाली जाय। जो चीज अपने अनुकूल न पड़ती हो, उसे पहले ही हटा देना चाहिए। ताकि जूठन छोड़ने का अवसर न आये। साधारणतया दोपहर और शाम को दो ही बार भोजन करना चाहिए। प्रातः काल दूध, छाछ, नीबू, शहद जैसी हलकी वस्तुएँ हलका पेय लिया जा सकता है। बीच-बीच में कुछ खाते रहने की आदत तो डालनी ही नहीं चाहिए।

शास्त्रकारों ने हर साधक को—आरोग्यकाँक्षी संयमी, विचारशील को आहार के सम्बन्ध में कुछ विशेष ध्यान देने योग्य परामर्श दिये हैं। छान्दोग्य उपनिषद् का कथन है—"जो खाया जाता है। उसके तीन भाग बनते हैं।—निरर्थक अंश का मल, सार्थक भाग का रक्त-माँस और उसके सूक्ष्म भाग से मन बनता है। यह मन अन्नमय है।"

देवी भागवत का कथन है—"आहार शुद्ध होने पर चित्त निर्मल होता है और निर्मल चित्त से ही धर्मधारण् बन पड़ती है।"

तैत्तरीय का कथन है—"अन्न ही सर्वश्रेष्ठ औषधि है। इसे बुद्धिमानी विचारपूर्वक खाते हैं। अविचारी असंयमी इस अन्न द्वारा ही खा लिए जाते हैं।"

वाल्मीकि रामायण का कथन है—"जैसा जिसका आहार होता है, वैसे ही उसके देवता होते हैं।"

गायत्री उपनिषद् में कहा गया है—"यज्ञ वेदों पर निर्भर है, वेद याक् पर। मन प्राण पर और प्राण अन्न पर निभर है। इसलिए सत्व भोजी ही याज्ञिक हो सकता है।"

तैत्तरीय का एक और कथन है—"आश्चर्य है कि मैं इतना भी नहीं समझ पाया कि व्यक्तित्व आहार पर ही निर्भर है।"

घेरंड संहिता की उक्ति है—"अन्न को अमृतमय बनाकर खाने वाले सिद्ध पुरुष हो जाते हैं। छान्दोग्य का कथन है"—"यह अन्न ही ब्रिह्म है, यही मन है, यही तप है।" मनु कहते हैं—"आलस्य और अन्नदोष से लोग बेमौत मरते हैं।"

पाशुपत ब्रह्मोपनिषद में कहा गया है कि—"अभक्ष्य आहार त्याग देने से अन्तःकरण पवित्र होता है। ज्ञान का उदय होता है और बन्धन टूट जाते हैं। ब्रह्मपुराण में लिखा है"—दलिया, खिचड़ी और सात्त्विक पदार्थों का सेवन उपवास माना गया है। उनसे आत्मशुद्धि होती है और आत्मतेज प्राप्त होता है। कर्मपूराण में लिखा है—"जो पर उपार्जित अन्न खाता है। वह उसके पाप भी खाता है। ऋग्वेद का वचन है कि अन्न का एक अंश परमार्थ के निकालकर तब बचे हुए को ही खाना चाहिए।

ऐसे अगणित शास्त्र वचन हैं, जिनमें न्यायोपार्जित सात्विक आहार पर निर्भर रहकर ही योग साधना करने का निर्देशन है।

आहार की सात्विकता पर अधिक ध्यान दिया जाय

मनुष्य के बल-वीर्य, ओज-तेज, आचार-विचार तथा स्वास्थ्य-संस्कारों का निर्माण अन्न अर्थात् आहार द्वारा होता है। मनुष्य जिस प्रकार का अन्न खायेगा उसका मन, शरीर, बुद्धि तथा आत्मा उसी प्रकार का बनेगा। दूषित अन्न से दूषित और शुद्ध अन्न से शुद्ध। यही कारण है कि भारतीय मनीषियों ने भोजन की शुद्धता पर विशेष बल दिया है।

भोजन के लिए अन्न का प्रकार तथा पाक प्रक्रिया का शुद्ध होना ही नहीं उसकी प्राप्ति का मार्ग तथा उसके साथ संयुक्त भावनाओं का भी शुद्ध होना आवश्यक है। कुमार्ग अथवा कुभावना के साथ प्राप्त किया हुआ अन्न भी दूषित माना जायेगा। यही कारण है कि समाज का सर्वथा मंगल चाहने वाले भारतीय आचार्यों ने बीजारोपण से लेकर भोजन तक अन्न को निर्दोष रखने के लिये नियमों संयमों एवं प्रतिबन्धों का निर्देश किया है। वे तत्त्वदर्शी एवं दूरदर्शी विद्वान इस बात को पूरी तरह जानते थे कि यदि मनुष्य जीवन के आधार अन्न ने किसी अवस्था में स्थूल अथवा भावनात्मक दोष ग्रहण कर लिया तो उसका प्रभाव जनमानस पर प्रतिकूल पड़ेगा। उनके संस्कार आध्यात्मिक जीवन के अनुकूल न होगे। दूषित अन्न के कुप्रभाव से आध्यात्मिकता का ह्रास होगा और समाज में दुष्ट प्रवृत्तियों की वृद्धि होगी जिससे कि मानव जीवन का लक्ष्य सुख शान्तिपूर्वक आत्मोद्धार का प्रयत्न शिथिल पड़ जायेगा। जिसका फल यह होगा कि काम, क्रोध, लोभ, मोह,

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

ईर्ष्या, द्वेष के कलुष एवं कर्दम में फँसे मनुष्यों का बहुमूल्य मानव जीवन निरर्थक एवम निःसार चला जायेगा।

भारतीय धर्म में अन्न को देवता माना गया है और उसी के अनुसार उसे शुद्ध पवित्र तथा आदरपूर्वक उत्पादन सुरक्षा तथा ग्रहण करने का निर्देश दिया गया। उपार्जन में आत्म-निर्भरता, सुरक्षा में सावधानी पकाने में पवित्रता तथा ग्रहण करने में समादर के निर्देश इसीलिए दिए गये हैं कि अन्न अपनी सूक्ष्म स्थिति तक पवित्र निर्दोष निरोग तथा निर्मल बना रहे जिससे उसे खाने पर लोगों की प्रवृतियों पर अवांछनीय प्रभाव न पड़ सके।

मनुष्य जिस प्रकार का अन्न खाता है उसका मन भी उसी प्रकार का बनता है। दूषित तथा तमोगुण प्रधान भोजन करने से मनुष्य का कामी, क्रोधी, कुटिल, कलुषित आदि दूषित प्रवृत्तियों वाला हो जाना स्वाभाविक ही है। सात्त्विकता पूर्ण भोजन करने से मनुष्य का स्वभाव मधुर, सत्य, निष्ठा, निर्लोभ एवं निरामय बनता है। जिससे उसे शान्ति, सन्तोष, सहिष्णुता तथा प्रसन्नता आदि की शुभ प्रवृत्तियाँ प्राप्त होती है। और वह आध्यात्मिक पथ पर निर्विरोध एवं निष्कटक बढ़ता चला जाता है।

आज देश में खाद्यान्न की कमी है। लगभग दस बारह प्रतिशत अनाज प्रतिवर्ष विदेशों से मँगाया जाता है। इस समय आस्ट्रेलिया, कनाडा और विशेषकर अमेरिका हमारा अन्नदाता है। यदि यह देश आज की अन्न की कमी को पूरा करना छोड़ दे तो भारत को एक भयानक संकट का सामना करना पड़ सकता है। यह पर निर्भरता देश की स्वतन्त्रता, प्रभुसत्ता और विशेषकर आत्मसम्मान के लिये भयावह है। हम सब भारतवासियों का मुख्य कर्त्तव्य है कि अन्न विषयक इस विदेशी निर्भरता से अपने देश को मुक्त करें।

इस पर-निर्भरता से जितनी आर्थिक तथा राजनीतिक हानि होती है। उससे कई गुनी हानि आध्यात्मिक होती है। आध्यात्मिक प्रगति के लिए मन बुद्धि तथा आत्मा का मुक्त एवं पवित्र होना बहुत आवश्यक है। मनुष्य के इन तत्त्वों का निर्माण बहुत होना बहुत कुछ अन्न पर निर्भर रहता है। विदेशों से आयात होने वाले अन्न में निश्चय ही विदेशी संस्कार रहते है। जो कि हम भारतीयों के संस्कारों से सर्वथा विपरीत है जहां हम भारतवासी आध्यात्मिक जीवन में विश्वास करते हैं। और तदनुसार ही जीना चाहते हैं। वहां अमेरिका तथा पाश्चात्य देश जो कि इस समय हमारे अन्नदाता बने हैं। घोर भौतिकवाद में विश्वास करते हैं और तद्नुसार ही अपना जीवन जी रहे हैं। विचारों एवं भावनाओं के आधार पर उनकी प्रवृत्तियों का प्रभाव प्रत्येक कार्य पर पड़ता है। अन्न भी उनके विश्वासों एवं भावनाओं से मुक्त नहीं रह सकता। अमेरिका जैसे भौतिक एवं भोगवादी देश के कृषकों के संस्कार अन्न में समाहित होकर भारत आते हैं और भारतीयों का भोजन बनकर 'जैसा अन्न वैसा मन' वाले सिद्धान्त के अनुसार उन पर प्रभाव डालते हैं। आज देश में वैदेशिकता, अभारतीयता, भौतिकता तथा भोगवादिता की वृद्धि दिखाई देने लगी है—कौन कह सकता है कि इसके पीछे उस अन्न का प्रभाव नहीं है जो विदेशों से आता है और भोजन बनकर भारतीयों के संस्कार प्रभावित कर रहा है। अन्न का प्रभाव बड़ा ही सूक्ष्म, दूरगामी एवं स्थायी होता है। इसीलिये भारतीय धर्म में हर एक का हर अन्न खाने का निषेध किया गया है।

दूषित अन्न खाने का प्रभाव इतना दूषित एवं दूरगामी होता है। भारत, अमेरिका आदि देशों से अन्न माँगता है जिसमें उसकी दीनता-हीनता एवं भिक्षावृत्ति छिपी रहती है। भिक्षा रूप में माँगा हुआ अन्न खाने से किसी की आत्मा निर्मल एवं तेजस्वी हो सकती है यह सर्वथा असम्भव है। इससे भारतीयों के स्वाभिमान, आत्मविश्वास तथा मनोबल का पतन होता है।

आज यदि भारतवारी थोड़ा विचार एवं संयम से काम लें तो आध्यात्मिक उन्नति के साथ-साथ देश की खाद्य समस्या भी सहज ही में हल हो जाये। इस खाद्य-संकट को भारतवासियों को दार्शनिक दृष्टिकोण से परमात्मा की कृपा ही समझना चाहिये। ईश्वर ने उन्हें इस संकट के बहाने अध्यात्म की प्रगति, में सहायक आहार नियमन का अवसर दिया है।

देश की दस-बारह प्रतिशत खाद्यान्नों की कमी को भोजन में फलों एवं शाक-भाजी की मात्रा बढ़ाकर पूरा किया जा सकता है। फल एवं शाक-भाजी विशुद्ध सात्विक आहार है। यह मनुष्य के शरीर, मन, बुद्धि एवं आत्मा के लिए बड़ा उपयोगी एवं अनुकूल भोजन हैं।

पूर्वकाल में ऋषि-मुनि अरण्य-आश्रमों में रहकर अधिकांश में कंदमूल एवं फल-फलों पर ही निर्भर रहते थे। वे विशुद्ध एवं सम्पूर्ण सात्विक भोजन के इतने पक्षपाती थे कि आग पर पका तो दूर हल से जुता अन्न भी नहीं खाते थे। उनका एक मात्र आहार कंदमूल एवं फल-फूल ही रहता था। अपने इस आहार सयंम के प्रभाव से वे इतने ऊँचे विचारक दार्शनिक तथा आध्यात्मिक महापुरुष हो सके। फल-फूल एवं कंदमूल का भोजन करने से वे पराकाष्टा तक स्वस्थ एवं पवित्र रहा करते थे। उत्तेजना, आवेश, असन्तुलन एवं विकार उनके पास फटकने न पाते थे। उनकी आत्मा में शान्ति तथा मन में स्थैर्य रहा करता था। जिससे वे इतना ऊँचा चिन्तन एवं कठिन से कठिन तप कर सकने में समर्थ रहा करते थे। उनकी आध्यात्मिक प्रगति को काम, क्रोध आदि विकार अवरुद्ध न कर पाते थे।

दूध, दही, मक्खन, घी आदि पदार्थों में राजस् तत्त्व हो सकता है और है भी किन्तु फल-फूल आदि विशुद्ध सात्विक पदार्थ हैं। इनमें राजस् अथवा तामस का अणुमात्र भी अंश नहीं होता।

फलों के सम्बन्ध में आज पहले जैसी सुविधाजनक स्थिति नहीं है। न तो उस प्रकार के फलों वाले वन रह गये हैं, जो थोड़े बहुत हैं भी वे भी अन्न की खेती बढ़ाने की सनक में दिन-दिन कटते जा रहे हैं। फलों के नये बाग लगाने के विषय में जनता सर्वथा उदासीन होती ज़ा रही है। इसलिये जनसाधारण को पर्याप्त फल मिल सकना कठिन हो गया है। फिर फल सदैव मिलते भी नहीं हैं। उनके उगने की विशेष ऋतु एवं जलवायु होती है जो हर समय बारह मास बनी नहीं रहती।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

बाजार में जो थोड़े-बहुत फल बिकते दिखाई भी देते हैं वे इतने महँगे होते हैं कि जनसाधारण उन्हें खरीद भी नहीं सकता। इसलिये सर्वथा फलों द्वारा ही अन्न की कमी की समस्या हल हो सकना कठिन है। इसके लिये अन्य विकल्प ही खोजना होगा।

फलाहार का सुन्दर, सफल एवं समकक्ष विकल्प शाकाहार है। शाकों, सब्जियों एवं हरी भाजियों में वे सब गुण पर्याप्त मात्रा में रहते हैं जो फलों में पाये जाते हैं। शाक-सब्जियाँ भी फलों के समान ही सात्विक आहार है। यह भी मनुष्य के शारीरिक एवं मानसिक विकारों को शमन कर सात्विक विशेषताओं का समावेश करती हैं। शाकाहार से भी शरीर की अनावश्यक ऊष्मा दूर होती है, रक्त एवं बल-वीर्य में वृद्धि होती है।

इन गुणों के साथ-साथ शाक-भाजी, फलों की अपेक्षा कहीं सस्ती तथा सर्वसुलभ होती है। हर महीने अथवा हर ऋतु में कंद, फूल, फल अथवा पत्र कोई न कोई शाक-भाजी मिलती ही रहती है। शाक-भाजी उपजाने के लिए विशेष प्रकार की भूमि तथा विधि की भी आवश्यकता नहीं रहती। थोड़ी-सी जमीन तथा थोड़े से श्रम धन द्वारा इसका अच्छा खासा उत्पादन किया जा सकता है।

कभी-कभी विरल हो जाने से बाजार में शाक-सब्जियों का भाव भी चढ़ जाता है। असहनीय न होने पर भी जब तब इनका भाव अपेक्षाकृत कष्टकर हो जाता है। इस विरलताजन्य असुविधा से बचने का सीधा सरल-सा उपाय यह है कि हर आदमी अपने घर बाहर अथवा जहाँ उपयुक्त स्थान हो वहाँ शाक-सब्जियाँ स्वयं उपने हाथों से उगायें। लौकी, कद्दू तोरई, करेला, पालक, मेथी, सलाद, टमाटर, सेम आदि न जाने ऐसे कितने शाक हैं जो घरों, पर ही थोड़ी-सी जमीन अथवा छप्पर, खपरैल टीनों एवं मुड़ेरों, दीवारों पर कुछ ही श्रम से उगाये जा सकते है। ग्रामीण क्षेत्रों में तो घरों के आस-पास काफी खाली भूमि पड़ी रहती हैं यहाँ ग्रामीण लोग शाक-सब्जी की उपज कर सकते हैं। वर्षा के दिनों में तो ऐसा उत्पादन बिना किसी विशेष प्रयत्न या तैयारी के ही हो सकता है।

अपने हाथ से शाक उपजाने में स्वावलम्बन की भावना बढ़ेगी, श्रम का अभ्यास होगा, पैसे का मितव्यय होगा और उन आत्मोत्पादित भोजन में जो सात्विक आत्मीयता होगी उससे आत्मा पर बड़ा ही शुभ प्रभाव पड़ेगा जो आध्यात्मिक प्रगति में किसी भी तप, योग अथवा साधना से कम सहायक न होगा। घरों में स्वयं उत्पन्न की हुई हरियाली की प्रसन्न प्रतिक्रिया बड़ी ही अनुकूल एवं मांगलिक होगी। स्वास्थ्य की दृष्टि से घर का वायुमंडल बड़ा ही शुद्ध एवं स्वच्छ रहेगा। वातावरण में हर्ष तथा उल्लास की वृद्धि होगी। इस प्रकार की अनुकूलताएँ आध्यात्मिक उन्नति के लिये सदैव ही वांछित रही हैं और रहेंगी।

इस प्रकार भोजन में ऋतु फलों, शाकों, सब्जियों तथा भाजियों की मात्रा बढ़ा देवें। आवश्यकता का कुछ प्रतिशत स्वयं उत्पन्न कर लेने से देश की खाद्य-समस्या का तो हल होगा ही, साथ ही भारतवासियों की आध्यात्मिक उन्नति में बहुत कुछ सहायता मिलेगी। विदेशी अन्न से देश में बढ़ती हुई भौतिक एवं भोगवादी विकृतियों में कमी होगी और चारों ओर सुख शान्ति की परिस्थितियाँ दृष्टिगोचर होने लगेंगी।

भोजन की शुद्धता का हमारे चरित्र पर प्रभाव

हमारे देश में भोजन की शुद्धता का बड़ा महत्त्व माना गया है। अन्य देश वाले तो भोजन का संबंध केवल स्वास्थ्य से ही समझते हैं पर आर्य जाति के विद्वानों ने चरित्र और धर्म से भी उसका सम्बन्ध माना है। यहाँ पर भोजन के सम्बन्ध में केवल इस दृष्टि से ही विचार नहीं किया जाता था कि वह शुद्ध पदार्थों से और शुद्ध तरीके से बनाया गया है, वरन् उसकी सामग्री भले या बुरे कैसे साधनों से प्राप्त की गई है, इसका भी ध्यान रखा जाता था। उदाहरण के लिये किसी प्रकार की बेईमानी या चोरी से प्राप्त धन से जो भोजन तैयार किया जायेगा, वह चाहे ऊपरी दृष्टि से कैसा भी शुद्ध और सफाई के साथ क्यों न बनाया गया हो उसका प्रभाव हमारे मन पर अच्छा नहीं पड़ सकता। वह अध्यात्मिक भावों का पतन करने वाला ही माना जायेगा।

गीता के १७वें अध्याय में भोजन के सम्बन्ध में कुछ श्लोक हैं जिनमें इस विषय की बड़े तात्विक ढंग से विवेचना की गई है। भगवान ने भोजन तीन प्रकार का बताया है—सात्विक, राजस और तामस, आयु। बुद्धि, बल, आरोग्य, सुख एवं प्रीति को बढ़ाने वाले एवं रसयुक्त, चिकने और रहने वाले स्वभाव से ही प्रिय भोजन को सात्विक कहा गया है। कड़वे, खट्टे, लवणयुक्त, अतिगरम तथा तीक्ष्ण, रूखे, दाहकारक, दुःख, चिन्ता तथा रोगों को उत्पन्न करने वाले खाद्य-पदार्थों को राजस कहा गया है। जो भोजन अधपका, रस रहित, दुर्गन्ध युक्त और बासी, झूठा, अपवित्र हो उसे तामस बतलाया गया है।

गीता के उपर्युक्त विवेचन को ध्यान रखकर जब हम वर्तमान समय में अपने भोजन पर विचार करते हैं तो जान पड़ता है कि हमारे आजकल के खाद्य-पदार्थ विशेषतः तामस और राजस हो गये हैं। इन दोनों प्रकार के गुणों का प्रभाव गीता के १४वें, अध्याय में इस प्रकार बतलाया गया है—"रजोगुण रागमय होता है और इसकी उत्पत्ति कामना तथा वासना से होती है। वह इस जीवात्मा को कर्मों और उनके फलों की शृंखला से बाँधता है। तमोगुण देहधारियों को मोह में डालने वाला है और उसकी उत्पत्ति अज्ञान से होती है। वह जीवात्मा को प्रमाद, आलस्य ओर निद्रा से बाँधता है।"

अब हम सहज में समझ सकते हैं कि आजकल स्वार्थ साधन, प्रमाद, आलस्य, निद्रा, रोग और नीचतायुक्त विचारों की जो अधिकता दिखलाई पड़ती हैं उसका हमारे भोजन से क्या सम्बन्ध है? आज कल शहरों के शिक्षित समाज में अण्डा और मांस आदि की प्रवृत्ति बढ़ रही है। जिन घरों में पीढ़ियों से कभी मांस, मदिरा, अण्डे का व्यवहार तो दूर रहा—नाम तक

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

नहीं लिया जाता था, उन उच्च जातियों के शिक्षित नवयुवकों को होटलों में 'आमलेट' तथा अण्डों से बनी अन्य वस्तुएँ खाते देख हृदय को घोर कष्ट होता है। वे लोग यह तर्क पेश करते हैं कि 'विज्ञान' के अनुसार अण्डा निरामिष भोजन है। पर उनका यह तर्क कुतर्क मात्र है। विज्ञान ने अण्डे को चाहे जो कुछ सिद्ध कर दिया हो पर है तो वह पक्षियों के वीर्य आदि का सम्मिश्रण ही है, फिर यह किस प्रकार सिद्ध किया जा सकता है कि प्रत्येक निरामिष पदार्थ भोजन के उपयुक्त ही होता है। उदाहरण के लिये प्याज, लहसुन आदि वनपस्ति हैं और अनेक रोगों में लाभजनक भी सिद्ध होते हैं, पर उनका भोजन के रूप में नियमित सेवन उत्तेजनाकारी और तमोगुण की वृद्धि करने वाला होता है, इसलिये वि त्याज्य माने गये हैं। इसीलिये भगवान ने गीता में त्याज्य पदार्थों के नाम नहीं गिनाये हैं वरन उनके लक्षणमात्र दे दिये हैं जिससे लोग अपनी बुद्धि से प्रत्येक पदार्थ के प्रभाव को देखकर उनके गुण-दोषों को स्वयं ही जान सकें।

आजकल बड़े शहरों में होटलों का प्रचार बढ़ रहा है। इनमें उत्तम परिवारों के व्यक्ति छोटे-छोटे और पर्दा लगे स्थानों में मांस तथा अण्डे से बनी चीजें और अनेक बार शराब भी उड़ाते देखे जाते हैं। ये होटल प्रायः आधीरात तक चलते रहते हैं, उनकी सभी चीजें तेज मसालेदार और तेज खटाई तथा मिर्च आदि से युक्त होती हैं। अनेक पंजाबी होटलों में तो इन पदार्थों में हलका लालरंग मिलाकर उन्हें और भी वीभत्स बना दिया जाता है। जो लोग इस प्रकार के घोर तामसी और राजसी पदार्थों का सदैव सेवन करेंगे उनसे धार्मिक वृत्ति और उत्तम सांस्कृतिक स्वभाव की क्या आशा की जा सकती है?

आजकल कृत्रिम और डिब्बों में बंद भोज्य पदार्थों का प्रचार बढ़ता जा रहा है और उनका उपयोग फैशन का एक अंग माना जाता है। मैदा के बने महीनों पुराने बिस्कुट, चाकलेट आदि खाना आजकल सभ्यता की निशानी समझा जाता है। डेनमार्क का दूध, कनाडा का मक्खन, आस्ट्रेलिया आदि के डिब्बों में बंद फल आदि महीनों पुरानी वस्तुएँ अगर न खायें तो अपने 'सभ्य' मित्रों की भाषा में पुराणपोथी (आर्थोडाक्स) कहलायेंगे। तात्पर्य यह कि इस समय खाद्य-पदार्थों की आन्तरिक शुद्दता तथा सात्विकता की ओर किसी का ध्यान नहीं है। होटल में बढ़िया काँच की टेबिल पर चमचमाती चीनी-मिट्टी के प्लेटों में सुन्दर सजा हुआ भोजन चाहिये, फिर चाहे उसके बनने का स्थान, सामग्री, बर्तन तथा बनाने वाले कैसे भी गन्दे क्यों न हों।

लहसुन, प्याज खाने वालों के शरीर से, पसीना मल आदि में सबसे बड़ी तीव्र गन्ध आने लगती है। ये आलस्य और प्रमाद की मात्रा बढ़ाते हैं। यही बात अन्य सब तामसी पदार्थों की है। वास्तव में भोजन करते समय विचार करने की मुख्य बात यही है कि उसकी सामग्री सात्विक गुणों को लिये है या नहीं, देखना यह चाहिये कि उसका हमारे स्थूल और और सूक्ष्म और शरीर पर क्या प्रभाव पड़ता है। एक विचारक का कथन है कि "माँस खाकर माँस बढ़ाने की अपेक्षा घास खाकर मर जाना अच्छा है।" इसका आशय यही है कि भोजन करना जीवन का उद्देश्य नहीं माना जा सकता, यह केवल किसी उच्च उद्देश्य की पूर्ति के लिये शरीर को ठीक हालत में बनाये रखने का साधन मात्र है।

इसी प्रकार झूँठा भोजन करने में भी अब विशेष संकोच नहीं किया जाता। एक ही थाली या पात्र में साथ-साथ खाना ही झूँठा खाना नहीं वरन् काँच के गिलासों और चीनी के बर्तनों के व्यवहार से भी यह बुराई पैदा हो जाती है। आधुनिक सभ्यता में इन बर्तनों को मामूली धो लेने से शुद्ध मान लिया जाता है। पर इनको होटलों, शर्बत, लस्सी बेचने वालों आदि के यहाँ किस प्रकार धोया जाता है यह देखने से ही जाना जा सकता है। कितने ही फेरी लगाने वाले तो एक बाल्टी पानी भर कर रख लेते हैं और प्रत्येक जूँठे बर्तन को उसी में एक बार डुबा देने से उसे धोया हुआ मान लेते हैं। स्टेशनों और नुमायशों आदि में आजकल यह नियम भी प्रचलित हो गया है कि एक बर्तन में पोटाश परमैंगनेट (कीटाणु नाशक दवा) घोलकर रख देते हैं और पानी पीने वालों के झूँठे बर्तनों को उसकमें डुबा कर दूसरे को पानी पीने के लिए दे देते हैं। चाहे विज्ञान के सिद्धान्तानुसार यह प्रणाली छूत के रोगों से रक्षा करने वाली हो, पर मन तथा आत्मा पर इसका कुप्रभाव पड़े बिना नहीं रह सकता। स्कूलों और कालेजों के विद्यार्थी एक ही बर्तन में मिल कर खाते हुये प्रायः देखे जा सकते हैं। सबके लिये रखा हुआ सूखा मेवा, फल आदि भी अनेक बार इस प्रकार खाये जाते हैं कि वे थूक लग कर झूँठे हो जाते हैं और फिर अन्य मेवा अथवा फलों के ढेर में मिला दिये जाते हैं। दुःख तो इस बात का है कि इन सब बातें में आजकल कोई बुराई नहीं मानी जाती वरन् इनको गौरव की वस्तु और प्रगति का चिह्न माना जाता है। यही कारण है कि ये खराब आदतें घटने के बजाय तेजी से बढ़ती जा रही हैं।

इस परिस्थिति को देखते हुए इस बात की आवश्यकता है कि हम भोजन के सम्बन्ध में भगवान के महान उपदेशों पर मनन करें और यह निर्णय करें कि हमारा वर्तमान भोजन अवनति की ओर ले जाने वाला है या उन्नति की ओर? उससे हमारे चरित्र का उत्थान होता है या पतन?

आध्यात्म साधना और आहार शुद्धि

मानव देह के निर्माण, पोषण और वृद्धि का मुख्य आधार आहार है। यद्यपि वायु और जल भी मनुष्य के लिए अत्यावशक आहार है, पर चूँकि ये प्रायः अनायास या अल्प आयास से ही प्राप्त होते रहते हैं, इसलिए हम अन्न या अन्य खाद्य-पदार्थों को ही आहार की संज्ञा देते हैं। मनुष्य जिस क्षण से पृथ्वी पर आता है तभी से उसे किसी न किसी रूप में आहार की आवश्यकता होती है, और जब तक उसकी देह पुनः पंचत्व में नहीं मिल जाती तब तक उपना अस्तित्व स्थिर रखने के लिए उसे आहार सम्बन्धी चिन्ता लगी रहती है। यदि विश्लेषण करके देखा जाय तो संसार में बहुसंख्यक व्यक्तियों के लिए तो भोजन या आहार ही जीवन का सर्वप्रधान उद्देश्य और कार्य है, वे इसी के लिये जीते और मरते हैं। आज सभ्य

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

समाज में भी ऐसे लोगों की कमी नहीं जिनका ध्यान सदैव भोजन के प्रश्न पर ही केन्द्रित रहता है और जो सबेरे उठते ही यह हिसाब लगाया करते हैं कि आज किस समय क्या-क्या भोज्य सामग्रियाँ बनाई जायेंगी? ऐसे भी असंख्य लोग पाये जाते हैं जो भोजन के लिए अपने स्वास्थ्य, आरोग्य, पदवी, प्रतिष्ठा तक का बलिदान कर डालते हैं और केवल भोजन सम्बन्धी स्वाद के लिये प्राण उत्सर्ग कर देते हैं।

पर यदि हम ऐसे 'पेटू' या 'स्वाद-प्रिय' लोगों की बात छोड़ भी दें तो संसार में कोई भी विद्वान, बुद्धिमान, विचारक, पण्डित, सन्त, महात्मा ऐसा नहीं मिलेगा, जिसको आहार की आवश्यकता न हो और जिसे इस संबंध में थोड़ी बहुत चिन्ता न करनी पड़ती हो। कारण यही है कि शरीर के अस्तित्व का आधार आहार ही है और इसी के द्वारा हमको वह शक्ति प्राप्त होती है जिससे हम जीवन के विविध व्यापारों को सम्पन्न कर सकते हैं। मानव जीवन का सर्वोच्च लक्ष्य अध्यात्मिक उन्नति बलताया गया है और उसे प्राप्त करने के लिये मनुष्य को भौतिक जगत का ध्यान कम करके परमात्मा का ध्यान, भजन, साधन करने की आवश्यकता होती है। पर यदि आहार का अभाव हो जाय तो यह भजन और ध्यान दो-चार दिन भी नहीं हो सकता। इसी तथ्य को समझ कर कोई अनुभवी कहा गया है—"भूखे भजन न होय गुपाला, यह लेओ अपनी कण्ठी माला।"

आहार के इतना महत्वपूर्ण विषय होने पर भी; मानव-जीवन के साथ उसका ऐसा घनिष्ठ और अविच्छेद्य सम्बन्ध होने पर भी, हम देखते हैं कि उसकी उपयोगिता और महत्व पर लोग बहुत कम ध्यान देते हैं और उसका एकमात्र उद्देश्य और विधि यही समझते हैं कि किसी प्रकार रुचि के अनुकूल पदार्थों से पेट को भर लिया जाये। कुछ अधिक बुद्धिमान और समझदार हुये तो भोजन का निर्णय करते समय स्वास्थ्य का भी ध्यान रख लेते हैं और केवल जीभ के स्वाद को महत्व न देकर अपनी शारीरिक प्रकृति के अनुकूल पौष्टिक और सुपाच्य पदार्थों का चुनाव करते हैं। पर इससे आगे बढ़कर इस बात पर विचार करने का कष्ट शायद लाख में से एक व्यक्ति भी नहीं उठाता कि शरीर के अतिरिक्त भोजन का हमारे मन से भी सम्बन्ध है और फिर उसका प्रभाव बुद्धि तक भी पहुँचता है। मन और बुद्धि ही मनुष्य की सांस्कृतिक और आध्यात्मिक प्रगति के मुख्य आधार हैं और जो मनुष्य इस क्षेत्र में अग्रसर होने की चेष्टा नहीं करता उसका मानव-जीवन ही व्यर्थ है। इसलिए जो व्यक्ति वास्तव में अपना कल्याण चाहता है और इस नर जन्म को सफल बनाने की इच्छा रखता है उसे आहार-शुद्धि पर अवश्य ध्यान देना चाहिये।

हम यह स्वीकार करते हैं कि हिन्दू-समाज के एक वर्ग में आहार-शुद्धि का नियम अभी तक पाया जाता है। हमारे कितने ही प्राचीन प्राणाली के भई चौके-चूल्हें के नियमों का बड़ी कट्टरता से पालन करते हैं और ऐसे लोग भी पाये जाते हैं जो बाहरी व्यक्ति का हाथ लग जाना तो दूर, उसकी छाया पड़ जाने से भी भोजन को अशुद्ध और त्याज्य मान लेते हैं। ऐसे व्यक्तियों और घरों की बातें भी हमने सुनी हैं जो भोजन के प्रत्येक पदार्थ को, यहाँ तक कि लकड़ी और कोयलों को भी धोकर ही चौके के भीतर ले जाते हैं। हम इन बातों की उपेक्षा नहीं करते और न इनके महत्व को न्यून करना चाहते हैं। भोजन की सामग्री के संग्रह करने और पकाने में सफाई और शुद्धता का जितना भी अधिक ख्याल रखा जाय उतना अच्छा ही है। पर इतना हर अवश्य कहेंगे कि यह सफाई वास्तविक होनी चाहिये केवल दिखावटी और नाम मात्र की नहीं। हमने देखा है कि जो लोग अपने चौके को किसी को नहीं छूने देते और लकड़ियों पर भी गंगा या जमुना जल के छींटे मार देते हैं वे ही चौके के भीतर ऐसा कपड़ा पहन कर जाते हैं जो गन्दगी की खान होता है। अथवा यदि उनके बर्तनों की परीक्षा की जाय तो उनके किनारों या भीतरी भागों में महीनों पुरानी गन्दगी मिल सकती है। उन बर्तनों का मुकावला यदि किसी अंग्रेज के, जो खाने से धर्म और पाप-पुण्य का कोई सम्बन्ध नहीं जोड़ता, चीनी मिट्टी और कांच के चमचमाते बर्तनों से किया जाय तो हमको अपनी 'शुद्धता' पर कभी गर्व करने का अवसर नहीं मिल सकता।

पर यह शुद्धता भी बाहरी ही है। अनपढ़ लोग भले ही चौका-चूल्हा में पाप-पुण्य समझा करें पर हमारे पूर्वजों ने इन नियमों को सफाई और स्वास्थ्य की दृष्टि से ही जारी किया है। यह सच है कि प्रत्येक मनुष्य के आचार और विचारों में एक प्रकार की शक्ति होती है जिसका प्रभाव आस-पास के पदार्थों और वातावरण पर पड़ता है। कुछ लोगों के विचार तो स्वभावतः ऐसे प्रबल होते हैं कि उनकी दृष्टि जिस किसी वस्तु या पदार्थ, खास पर उत्तम भोज्य पदार्थ, सुन्दर वस्त्राभूषण, आकर्षक बालक बालिका पर पड़ती है, यही उससे प्रभावित हो जाता है। यदि ऐसा व्यक्ति नीच और दुष्टतायुक्त विचारों का हुआ तो उससे हानि होना भी अवश्यम्भावी होता है। हम पुराने विचारों के घरों में जो 'नजर' लगने की बात प्रायः सुना करते हैं उसका यही रहस्य है। इसलिए भोजन को बाहरी व्यक्तियों के सम्पर्क से पृथक रखना और शुद्धता पूर्वक एकांत स्थान में ग्रहण करना किसी दृष्टि से बुरा या निरर्थक नहीं कहा जा सकता, बल्कि वह शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य की दृष्टि से लाभदायक ही है।

पर इस बाह्य शुद्धि की अपेक्षा भी आहार की आन्तरिक शुद्धि अधिक ध्यान देने योग्य है। बाह्य शुद्धि में कुछ त्रुटि होने से उसका स्वास्थ्य पर जो कुप्रभाव पड़ता है उसका निराकरण आगे चल कर संयम, उपवास, औषधि आदि द्वारा हो सकता है। पर हमारा आहार जिस स्रोत या साधन से हमको उपलब्ध होता है वही यदि अशुद्ध है—दूषित अथवा पाप युक्त है तो उसका जो बुरा प्रभाव हमारे मन, बुद्धि और आत्मा पर पड़ेगा उससे छुटकारा पा सकना वैसा सहज नहीं है उदाहरणार्थ जो धन चोरी, डाका या किसी की हत्या करके लाया गया है, उससे शारीरिक पुष्टि भले ही प्राप्त हो जाय, पर मन और आत्मा की तुष्टि उससे कभी नहीं हो सकती। आप इतने बड़े-बड़े डाकुओं और प्रसिद्ध चोरों के नाम सुनते रहते हैं, वे लोग सदैव हजारों

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

और लाखों रुपया प्राप्त करके मौज-मजा करते रहते हैं, पर उनमें से कभी कोई सुखी, शान्त और सन्तुष्ट देखने में नहीं आया। वे चाहे पकड़े जायें और चाहे कानून के चंगुल से बच भी जायें पर उनका सुख, मौज-मजा क्षणस्थायी ही होता है। अपने मन में तो वे सदा तरह-तरह के अनुतापों और भयों के अनुभव करते ही रहते हैं, पर कुछ ही समय में उनको पापों का फल प्रत्यक्ष रूप से भोगते हुए भी देखा जा सकता है। यही बात अन्य व्यवसायों के विषय में भी कही जा सकती है।

लोग समझते हैं कि व्यापार, नौकरी, लेन-देन आदि में चालाकी से रुपया कमाने में कोई दोष नहीं हो सकता। पर हम बताना चाहते हैं कि बेईमानी और कपट का व्यवहार किसी भी रूप में और किसी भी क्षेत्र में क्यों न किया जाये वह बुरा ही है और उसका फल सदैव हानिकारक ही होगा। कौन कह सकता है कि आपकी जेब को काट कर सौ रुपया निकाल लेने वाला गिरहकट तो पापी है और विश्वास रखने वाले ग्राहकों को एक सेर 'शुद्ध' घी में पाव भर डालडा मिलाकर बेचने वाला और इस प्रकार प्रतिमास सौ-दो-सौ, या अधिक रुपया बेईमानी से कमाने वाला दुकानदार उससे अधिक पापी नहीं है? जो पुलिस वाला सौ रुपया के वेतन के अलावा दो-ड़ेढ-सौ रुपया मासिक अपराधियों को छोड़कर प्राप्त करता है, या जो अदालत का पेशकार या मजिस्ट्रेट मुकदमें वालों से हजारों रुपया रिश्वत लेकर झूठ को सच करते रहते हैं, निरपराधी व्यक्तियों को दण्डित करते हैं, क्या ऐसे भ्रष्टाचारी पापी नहीं है? आप कैसे आशा कर सकते हैं कि जो रुपया इस प्रकार लोगों पर अन्याय करके, उनकी आत्मा जो दुःखी करके प्राप्त किया गया है, जिसमें अनेक लोगों की 'हाय' का असर समाया हुआ है, उसके द्वारा प्राप्त किया गया भोजन अपने शरीर, मन और आत्मा के लिये वैसा ही उपयोगी और लाभदायक सिद्ध होगा, जैसा कि दिन भर तन तोड़कर मजदूरी द्वारा अथवा ईमानदार और परिश्रम के साथ नौकरी करके प्राप्त किया हुआ भोजन होता है? प्रकट में चाहे बेईमानी करने वाला व्यक्ति दूध-मलाई, हलुआ-पूरी खाय और ईमानदार व्यक्ति रोटी-दाल जैसे साधारण भोजन से ही पेट भरले, पर दोनों प्रकार के व्यक्तियों के आन्तिरक जीवन पर दृष्टि डाली जायेगी तो पहले की अपेक्षा दूसरे प्रकार का व्यक्ति अधिक सुखी और सन्तुष्ट प्रतीत होगा।

जिस आधार पर असत उपायों द्वारा कमाये गये धन द्वारा प्राप्त भोजन त्याज्य माना गया है, वह बात मांस-भोजन आदि पर लागू होती है। जिस व्यक्ति को आत्म-जगत का कुछ ज्ञान है, वह भली प्रकार जानता है कि आध्यात्मिक दृष्टि से समस्त संसार में एक ही तत्व व्याप्त है और जीव-मात्र एक ही परमात्मा के अंश स्वरूप है। इस समय चाहे मनुष्य अधिक चैतन्य, ज्ञान और बुद्धि से युक्त जान पड़ता हो, पर भौतिक उपादान और आत्मशक्ति की दृष्टि से उसमें और अन्य छोटे या बड़े प्राणियों में कोई अन्तर नहीं है। इसलिए जो मांस किसी प्राणी को मार कर और कष्ट पहुँचा कर प्राप्त किया गया है, उसमें उसके करुण और आर्तभाव अवश्य लिपटे रहेंगे और वे उसे भोजन के रूप में ग्रहण करने वालों की मानसिक स्थिति पर अवश्य विपरीत प्रभाव डालेंग। जिन देशों के निवासी प्राकृतिक परिस्थितियों के कारण विवश होकर माँस-मछली का भोजन करते हैं वे क्षम्य माने जा सकते हैं, पर यह निश्चित है कि वे आध्यात्मिक प्रगति के पथ पर अग्रसर नहीं हो सकते। यही कारण है कि प्राचीन काल से ही यह भारत भूमि देवताओं के लिए भी दुर्लभ मानी गई थी, क्यों कि यहाँ फल-मूल की अधिकता होने से आहार-शुद्धि अधिक सम्भव है और आध्यात्मिक प्रगति के अन्य साधन भी सुलभ हैं।

आहार और आध्यात्मिकता का सम्बन्ध ऐसा अकाट्य है कि आत्मकल्याण की कामना रखने वाले व्यक्ति को उसमें सदैव सावधान रहना आवश्यक है। आहार की बाह्य और आन्तरिक दोनों प्रकार की शुद्धि परमावश्यक है।

मन सोचता है और तद्नुरूप शरीर कार्य करता है। शरीर का विश्लेषण करने पर प्रतीत होता है कि वह कुछ रासायनिक पदार्थों का संयोग कुछ है। यह रासायनिक पदार्थ पाँच तत्वों के संयोग से बनते हैं। तत्त्व जड़ हैं, इसलिए शरीर भी जड़ है। उसके गुण, कर्म, स्वभाव में जो उत्कृष्टता निकृष्टता पाई जाती है, वह वस्तुतः मन के स्तर पर निर्भर है। शरीर एक वाहन उपकरण मात्र है। वह चलाने वाले के इशारे पर चलता है। इन्द्रियलिप्सा भी वस्तुतः मनोविकारों के रूप में ही प्रादुर्भूत होती है। मन की चंचलता ही इन्द्रियों को चंचल बनाती है। निग्रहीत मन लिप्साओं के प्रति अरुचि दिखाता है तो इन्द्रियों की लालसा भी सहज ही शान्त हो जाती है।

इतने पर भी दोष और श्रेय शरीर को ही मिलता है। क्योंकि वही व्यक्ति का दृश्य रूप है। उसकी स्वच्छता, सज्जा, सभ्यता ही नहीं आदतें भी मन पर ही निर्भर रहती है। उसका स्तर शरीर के हर क्रियाकलाप से झलकता रहता है। शरीर और मन के सम्मिश्रण से ही व्यक्तित्व एवं स्तर बनता है।

मन को ग्यारहवीं इन्द्रिय कहा गया है। वह भी शरीर का ही एक भाग है। जिस प्रकार मन की प्रेरणा से शरीर काम करता है, उसी प्रकार यह भी एक परोक्ष तथ्य है कि शरीर के अनुरूप मन का भी सम्मान विनिर्मित होता है।

शरीर का रासायनिक विश्लेषण करने पर स्पष्ट हो जाता है कि वह आहार का-अन्न का उत्पादन है। अन्न के आधार पर ही शरीर बनता, बढ़ता, गढ़बड़ाता, परिपुष्ट होता, उसी का पाचन समाप्त होने पर वह मर भी जाता है।

शरीर आरम्भ में शुक्राणु और डिम्बाणु के समन्वय से बना पानी के एक छोटे बबूले की तरह होता है। इसके बाद माता के शरीर से शिशु के शरीर में आहार पहुँचता आरम्भ होता है। फलतः वह बढ़ने लगता है और नौ महीने में इतना परिपक्व हो जाता है कि प्रसव के उपरान्त संसार के दबाबों को सहन कर सके। इस स्थिति तक पहुँचाने का श्रेय माता द्वारा दिये गये उस अन्न को है जो नाल मार्ग से शिशु को निरन्तर मिलता रहता है।

जन्मने के उपरान्त उसे आहार की जरूरत पड़ती है। वह दूध के रूप में मिलता है। दूध भी आहार है—आहार अर्थात् अन्न। कुछ दिन बाद अन्न के रूप में दूसरी वस्तुएँ खाने लगता है और अन्नतः पूर्णतया आहार पर निर्भर हो जाना है। अच्छे

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आहार से शरीर सुविकसित परिपुष्ट होता है और उसका स्तर घटिया रहने पर कुपोषण के शिकार बालक या व्यक्ति दुर्बल रह जाते हैं। आहार का स्तर एवं अनुपात पेट की आवश्यकता के अनुरूप न रहने पर अपच रहने लगता है और वह अपच ही चित्र-विचित्र बीमारियों का प्रधान कारण होता है। विषाणुओं का आक्रमण भी रक्त की शुद्धता न होने पर ही होता है और अशुद्ध रक्त बनने का कारण अपच है। अपच आहार की क्रमव्यवस्था बिगड़ जाने की ही परिणति है। तात्पर्य यह है कि बलिष्ठता, सुन्दरता से लेकर दुर्बलता और रुग्णता का प्रमुख कारण आहार के स्तर को ही समझा जा सकता है।

आहार के आधार पर शरीर बनता और बढ़ता है। रुग्णता को दूर करने में काम आने वाली औषधियाँ भी आहार बनकर ही शरीर में पहुँचती और पचती हैं। आहार में विषाक्तता रहने पर शरीर की मृत्यु होने में भी देर नहीं लगती। इसलिए प्रत्यक्ष जीवन का आधार आहार ही माना गया है। वह न मिले तो मनुष्य दुर्बल होने लगता है और अन्ततः प्राण त्याग देता है।

अन्न से रस—रस से रक्त, रक्त से मांस, मांस से अस्थि और मज्जा भेद वीर्य आदि बनते-बनते अन्त मन बनता है। मन में चेतना का समावेश तो है, पर मस्तिष्क संस्थान वस्तुतः अन्न शरीर का ही एक भाग है। इसलिए स्वाभाविक है कि जैसा अन्न खाया वैसा मन बने। शरीरशास्त्री और मनोविज्ञानी इस सम्बन्ध में प्रायः एक मत है कि आहार से मन का स्तर बनता है। प्रकृति की कैसी विचित्रता है कि जहाँ मन की प्रेरणा से शरीर को चित्र-विचित्र काम करने पड़ते हैं वहाँ यह भी एक रहस्य है कि मन का स्तर शरीर द्वारा बनता है। वह शरीर जो अन्न द्वारा विनिर्मित होता है। शरीर जहाँ मन का अनुचर है वहाँ उसकी स्थिति को बनाने में प्रमुख भूमिका भी निभाता है। इस उलझन को देखते हुए कहा नहीं जा सकता कि शरीर प्रधान है या मन। गुत्थी इस तरह सुलझती है कि दोनों का सृजेता अन्न है। इसलिए शरीर और मन का सूत्र-संचालक यदि अन्न को कहा जाय तो कुछ अत्युक्ति न होगा।

जीवन का—व्यक्तित्व का स्तर निर्धारित करने के लिए सर्वप्रथम अन्न के स्वरूप को सम्भालना पड़ता है। क्योंकि वहीं शरीर को विनिर्मित करता है और उसी के अनुरूप मन की प्रवृत्ति बनती है। इस प्रधान आधार की शुद्धता पर ध्यान न दिया जाय तो न शरीर की स्थिति ठीक रहेगी और न मन की दिशाधारा में औचित्य बना रह सकेगा।

आध्यात्मिक साधना क्रम में लोग एक भूल करते हैं कि वर्णमाला पढ़े बिना, एम० ए० की पुस्तक खरीद लाते हैं। उसे पढ़ने का हठ और पढ़ाने का आग्रह करते हैं। कई प्रकार के उपासनात्मक कर्मकाण्ड सीखने और उनहें जल्दी-जल्दी निपटा कर तुर्त-फुर्त सिद्ध चमत्कार बटोरने की फिराक में रहते हैं। अच्छा होता कि कोई इन बाल-बुद्धि वाले लोगों को यह समझा सकने में समर्थ हुआ होता कि हर साधना मन की एकाग्रता और पवित्रता से सधती है। इस श्रीगणेश के बिना गाड़ी एक कदम नहीं चलती जो साधना उपचार में मन की भूमिका को समझ लेगा उसे मनोनिग्रह की साधना को प्राथमिकता देनी होगी। इसके बाद अन्यान्य कर्मकाण्डों में हाथ डालने की बात सोची जा सकेगी।

मन निग्रह हठयोग से नहीं हो सकता। हठयोग के लिए अन्यान्य क्रियाकलापों का सुविस्तृत क्षेत्र पड़ा है। पर आहार शुद्धि तो हर हालत में आरम्भिक तथा अनिवार्य है। हठ का आश्रय लेना हो तो भी सर्वप्रथम यही हठयोग साधना चाहिए कि आहार को पवित्रतम बनाया जायेगा। उसका स्तर और अनुपात मर्यादाओं के बन्धन में जकड़ कर रखा जायेगा।

आहार के सम्बन्ध में विचार करते समय थाली में परोसी गई वस्तुओं का निरीक्षण-परीक्षण करने से पूर्व यह देखना होगा कि वह ईमानदारी की कमाई है या नहीं? उसमें चोरी, ठगी, हरामखोरी जैसे तत्त्वों का सम्मिश्रण तो नहीं। जो बिना मेहनत के अथवा कम मेहनत में अधिक कमाने के लालच में अनीतिपूर्वक कमाया गया है। वह अभक्ष्य है। चाहे उस अनुपयुक्त कमाई से फल दूध-जैसी व्रत उपवास में खरीदी गई वस्तु ही क्यों न खरीदी या परोसी गई हों।

आहार की शुद्धता रासायनिक पदार्थों पर निर्भर नहीं है वरन् उसकी कारण शक्ति पर निर्भर है। तथा कथित सात्त्विक पदार्थ खाते रहा जाय पर उनके उपलब्ध करने के तरीके में यदि अनीति अनाचार का समावेश है तो समझना चाहिए कि उससे बना यह शरीर या मन, आत्मिक प्रगति की अगली कठिन यात्रा में चल न सकेगा। अपंग की तरह जहाँ का तहाँ खड़ा रहेगा।

साधक का सात्त्विक आहार-विहार

आध्यात्मिक साधना के दिनों मे उपासना परक जो नियम-उपनियम बनाये बताये गये हैं, वे तो श्रद्धापूर्वक समग्र अनुशासन के साथ पूरे करने ही चाहिए, पर साथ ही एक बात यह भी भूलनी नहीं चाहिए कि उन दिनों आहार-विहार की सात्त्विकता का अनुबन्ध भी ठीक तरह पालन करना चाहिए। अस्तव्यस्त जीवनचर्या अपनाते हुए पूजा-उपासना के कुछ नियम पालन कर लेने भर से साधना समग्र रूप से सफल नहीं हो सकती। जिस प्रकार पूजा काल में शरीर को शुद्ध करना आवश्यक है, धुले कपड़े ही पहनने चाहिए, उसी प्रकार यह भी आवश्यक है कि आहार-विहार की पवित्रता में व्यतिरेक न होने दिया जाय।

उचित प्रसिद्ध है कि "जैसा खाये अन्न, वैसा बने मन।" मन भी शरीर का ही एक भाग है। मस्तिष्क को ही ग्यारवीं इन्द्रिय माना गया है। आहार से ही शरीर के दृश्यमान और अदृश्य अवयव विनिर्मित होते हैं। आहार में मात्र दृश्य शरीर को ही परिपुष्ट करने की क्षमता नहीं, वरन् उससे सूक्ष्म शरीर और कारण शरीर भी प्रभावित होते हैं। मन का प्रवाह भी उसी दिशा में बहने लगाता है। मद्य-माँस जैसे अभक्ष्य उदरस्थ करने पर उनका तामसिक प्रभाव अन्तःचेतना पर भी पड़े बिना नहीं रहता। शरीर से कोई व्यक्ति मोटा-तगड़ा या बलिष्ठ बन जाय, तो भी यह आशा नहीं करनी चाहिए कि उसका मानसिक स्तर भी सात्त्विक बना रहेगा, आत्मबल बढ़ेगा और अन्तःकरण में सात्त्विक भावनाएँ उठेंगी। आहार का स्थूल प्रभाव अंग-अवयवों पर पड़ता है, पर पर उसकी सूक्ष्मशक्ति मनुष्य के

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

अन्तराल तक जा पहुँचती हैं और अपना समुचित प्रभाव छोड़ती हैं।

इसलिए साधना के दिनों में उपवास का नियम है। फलाहार दूध, छाछ पर रहकर साधक अपना साधनाक्रम पूरा करते हैं। इतना न बन पड़े, तो रोटी-पूड़ी आदि न खाकर दलिया खिचड़ी जैसे अमृताशन आधे समय खाकर काम चलाना पड़ता है। कम से कम इतना तो करना ही चाहिये कि एक समय भोजन किया जाये और दूसरे समय उपवास रखा जाये। इससे पेट को विश्राम मिलने से स्वास्थ्य लाभ भी होता है और मनःक्षेत्र में सात्विकता बनी रहने से साधना की सफलता निश्चय रहती है।

आहार के बाद जीवन निर्वाह का दूसरा चरण है विहार। विहार अर्थात् रहन-सहन। इसे इन्द्रिय संयम भी कह सकते हैं। इन्द्रियों में कामेन्द्रियों को अधिक प्रबल माना जाता है। साधना काल में ब्रह्मचर्य पालन का प्रचलन है। शारीरिक काम सेवन की तरह ही कामुक चिन्तन का ही मानसिक पवित्रता पर बुरा असर पड़ता है। उन दिनों नर-नारी के बीच माता, भागिनी, पुत्री जैसे पवित्र सम्बन्धों की ही कल्पना करनी चाहिऐ। ऐसा साहित्य नहीं पढ़ना चाहिए, एसे खेल तमाशे नहीं देखने चाहिए, जो मन में कामुकता के विचार भड़काते हों।

चटोरेपन में सम्मिलित हैं मसाले मिठाई पकवान आदि। चटोरापन भड़काने वाले आहार का साधनाकाल में विशेष रूप से निषेध है। सात्त्विक जीवन जीना हो और आत्मबल बढ़ाना हो, तो आहार ही नहीं विहार में भी सात्त्विकता का अधिकाधिक समावेश करना चाहिऐ।

अन्य इन्द्रियाँ भी विचारों को प्रभावित करती हैं, मन पर अपना प्रभाव छोड़ती हैं। इसलिए इनसे अश्लील बातें, निन्दा, चुगली, छल, कुटिलता जैसे मानिसक अनाचारों को न तो जीभ द्वारा प्रस्तुत होने देने चाहिए और न उन्हें सुनना ही चाहिऐ। जहाँ ऐसे प्रसंग चल रहे हों, वहाँ से उठ कर अन्यत्र ही चले जाना उचित है। आँखों से अश्लील आचरण के सम्बन्ध में उत्तेजना प्रदान करने वाले दृश्यों से अपने को बचाना चाहिए। अवांछनीय प्रसंगों से स्वयं को दूर ही रखना चाहिए।

अनाचारी चिन्तन और क्रियाकलाप में निरत रहने वाले व्यक्ति जब भी इकट्ठे होते हैं अपने स्तर का वातावरण बनाते हैं। जब तक उनको कड़े विरोध द्वारा निरस्त न किया जाये, विरोध करके दूर न किया जाये, तब तक अवांछनीय प्रसंग अपना गहरा प्रभाव छोड़ने से रुकते नहीं। शरीर से भले ही अपना बचाव कर लिया जाये पर जो लोग वैसा कर रहे हैं जहाँ का वातावरण वैसा है, वहाँ अपना सम्पर्क किसी प्रकार साधना भी उन लोगों के लिए हानिकारक सिद्ध होता है, जो सात्त्विकता बनाये रहना चाहते और साधनारत होकर आत्मकल्याण का प्रयोजन साधने के इच्छुक हैं।

आहार का इन्द्रियों से सीधा सम्बन्ध है। यही कारण है कि आध्यात्मिक साधना की सफलता के लिए सबसे पहला एवं अनिवार्य कदम "इन्द्रिय निग्रह बताया गया है यों ज्ञानेन्दियाँ पाँच मानी जाती हैं, पर उनमें से दो ही प्रधान हैं पहली-स्वादेन्द्रिय और दूसरी कामेन्द्रिय। इनमें से स्वादेन्द्रिय प्रधान है। उसके वश में आने से कामेन्द्रिय भी वश में आ जाती है। रसना को जिसने जीता, वह विषय वासना पर भी अंकुश रख सकेगा। चटोरा आदमी ब्रह्मचर्य से नहीं रह सकता, उसे सभी इन्द्रियाँ परेशान करती हैं, विशेष रूप से काम वासना तो काबू में आती ही नहीं। इसलिए इन्द्रिय-निग्रह की तपश्चर्या संयम साधना स्वाद को जिह्वा को वश में करने से आरम्भ की जाती है। चटोरेपन की वेदी पर न केवल आरोग्य और दीर्घ जीवन बली चढ़ जाता है, वरन् आत्मसंयम की साधना भी मात्र मखौल बनकर रह जाती है।

आरोग्य ही नहीं, मन को वासनासक्त होने से रोकने के लिए भी यह आवश्यक है कि रसनेन्द्रिय पर अंकुश लगाया जाय। इस दृष्टि से नमक या मीठा दोनों में से एक को छोड़ने के रूप में आरम्भिक कदम उठाया जा सकता है। यह एक निराधार भय है कि इन्हें छोड़ देने से स्वास्थ्य खराब हो जायगा। सच तो यह है कि इस संयम से पाचन क्रिया ठीक होती है, रक्त शुद्ध होता है, इन्द्रियाँ सशक्त रहती हैं, तेज बढ़ता है और जीवन काल बढ़ जाता है। इससे भी बढ़ा लाभ यह है कि म काबू में आता है।

नशेबाजी, अभक्ष्य भक्षण एवं चटोरेपन को रोक देने से वासना पर जो नियंत्रण होता है, वह धीरे-धीरे सभी इन्द्रियों को वश में करने वाला सिद्ध होता है। जिस प्रकार पाँचों ज्ञानेन्द्रियों में जिह्वा और जननेन्द्रिय प्रबल हैं, उसी प्रकार स्वाद के षट्रसों में नमक और मीठा प्रधान है। चटपटा, खट्टा, कसैला आदि तो उनके सहायक रस मात्र हैं। इन दो प्रधान रसों पर नियंत्रण कर लेना षट्रसों को त्यागने के बराबर है। जिसने स्वाद और काम प्रवृति को जीता, उसकी इन्द्रियाँ वश में हो गई, ऐसा ही समझना चाहिए। मन को वश में करने के लिए यह संयम-साधना हर साधक को किसी न किसी रूप में करनी ही होती हैं।

संयमी और सदाचारी ही प्राणवान, शक्तिवान स्वस्थ एवं संस्कारी बनते तथा भौतिक और आध्यात्मिक आनन्द की उपलब्धि कर सकते हैं। ओजस्वी, तेजस्वी एवं मनस्वी होने का अर्थ है मन, वचन तथा कर्म से सभी इन्द्रियों पर नियंत्रण रखना। ब्रह्मचर्य इसे ही कहा जाता है। इसका पालन न तो कठिन है और न ही असम्भव। आवश्यकता मात्र ऊर्ध्वरेता बनने और ऊँचा उठने की आकांक्षा की है। इस सम्बन्ध में महात्मा गाँधी का कहना है कि आत्मसंयम की साधना करने वाले को सर्वप्रथम अपनी रसना को वश में रखना अनिर्वाय है। इसके लिए स्वाद नियंत्रण परमावश्यक है। उनके अनुसार जो रसना अर्थात् जीभ के स्वाद पर विजय नहीं प्राप्त कर सकता, वह विषय वासनाओं पर भी विजय नहीं प्राप्त कर सकेगा। इसलिए ब्रह्मचर्य पर जिनकी आस्था है, उन्हें अस्वादव्रत लेना चाहिए और सात्विक आहार भूख से कम खाना चाहिए।

आहारशास्त्रियों एवं मनोचिकित्सा विज्ञानियों का कहना है कि उत्तेजना पैदा करने और वासना को भड़काने वाले कारणों में आहार एक प्रमुख कारण हैं। इस सम्बन्ध में जर्मनी के मूर्धन्य मनोविज्ञानी डॉ. कैलाग ने गहन अनुसंधान किया है और

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

निष्कर्ष प्रस्तुत करते हुए अपनी कृति—'प्लेन फैक्ट्स' में लिखा है कि प्रायः यह आम मान्यता है कि आहार एक साधारण-सी वस्तु है, किन्तु यह सबसे बड़ी भ्रान्ति है। वस्तुतः मनुष्य जैसा भी, जो कुछ भी, भक्ष्य-अभक्ष्य स्वादवश या पोषण हेतु खाता है, उसका सीधा असर उसके मन पर पड़ता है। मन का पोषण खाद्य वस्तुओं के सूक्ष्म प्राण का अवशोषण करने पर होता है। उनकी दूषणता या सात्त्विकता के अनुरूप ही मन की चंचलता या स्थिरता निर्भर करती है। शरीर क्रिया विज्ञानियों ने भी इस तथ्य की पुष्टी कर दी है कि हमारे विचार खाद्य वस्तुओं के अनुरूप ही बनते बिगड़ते रहते हैं। जो व्यक्ति सुरापान करते, मांस-मछली भक्षण करते अथव धूम्रपान करते हैं, उनके लिए अपने विचारों को पवित्र रख सकना तथा इन्द्रिय निग्रह कर सकना आसमान में बिना पंख के विचरण करने की आशा करने के समान है। यदि वह पवित्र जीवन व्यतीत कर सकें, तो एक चमत्कार होग, किन्तु मानसिक पवित्रता रख सकना तो उनके लिए सर्वथा असम्भव ही होगा।

इसी तरह का शोधपूर्ण निष्कर्ष डॉ० आर्थर कोवेन का है। अपनी पुस्तक—'साइन्स आफ न्यू लाइफ' में उन्होंने लिखा है कि "काम वासना को उत्पन्न करने के कारणों में दूषित आहार मुख्य है। यह कल्पना करना कि खान-पान में माँस, मदिरा, अण्डा, बीड़ी-सिगरेट, मिर्च-मसाला, अचार, खटाई, मिठाई और चाय-कॉफी आदि का स्वाद जिह्वा चखती रहे और व्यक्ति कामुकता से बचा रहे, एक असम्भव कल्पना है।" यदि इस तरह का आहार आसमान के फरिश्ते को भी दिया जायेगा तो उसे खाने से उसमें भी वासना-विकृति उत्पन्न हुए बिना न रहेगी, फिर सामान्य मनुष्य का तो कहना ही क्या, जिसमें हजारों कुसंस्कार पहले से ही विद्यमान हों। ऐसे में न तो इन्द्रिय संयम सध सकता है, न मानसिक नियंत्रण में दृढ़ता आ सकती है। कामुकता से जीवन रस तथा स्नायुशक्ति दोनों का ह्रास होता है और अनेकानेक शारीरिक-मानिसक उपद्रव उठ खडे होते हैं।

अपनी वासनाओं पर काबू रखना, उन्हें कुमार्ग पर न जाने देने मनुष्य के शोर्य पराक्रम एवं पुरुषार्थ का प्रधान चिह्न है। मनः क्षेत्र में कुहराम मचाने वानी उत्तेजनाएँ, आवेश, असन्तुलन एवं विकार इन्द्रियों के असंयम के ही परिणाम होते हैं। जब तक स्वाद या चटोरेपन के वशीभूत हो स्वादेन्द्रिय पेट पर अत्याचार करती रहेगी, तब तक इन विकारों से छुटकारा पाना सम्भव नहीं।

वस्तुतः आहार का खान-पान का उद्देश्य शरीर रूपी इंजन को सुचारू रूप से गतिशील रखने के लिए पर्याप्त ईंधन प्रदान करना है, न कि स्वादेन्द्रिय की कभी न पूरी हो सकने वाली इच्छापूर्ति, जैसा कि वर्तमान में प्रचलन है। भोजन को आवश्यकता से अधिक महत्त्व देना तथा स्वादपूर्ण आहार का सेवन करने को बिनोवा ने एक प्रकार की हिंसा कहा है। उनका यह कथन सर्वथा उचित भी है, क्यों कि खाद्य पदार्थों में कृत्रिम रस पैदा करना अंततः शरीर व मन को उत्तेजित करना है। ये विकार ही हिंसा को उत्पन्न करते या वासना को भड़काते हैं। स्वाद-नियंत्रण की उपलब्धियों के बारे में विवेकानंद का कहना है "मैने अपने सोने और खाने पर इच्छित नियंत्रण रखा है। इसी आधार पर मैं अपना मनोबल, पराक्रम और धैर्य विकसित कर सका। इन्द्रिय संयम अर्थात् ब्रह्मचर्य पालन के लाभों में यह लाभ भी सम्मिलित है।"

मन को वश में करने तथा कामेन्द्रियों सहित अन्यान्य इन्दियों को नियंत्रित रखने-निग्रहीत करने के लिए स्वादेन्द्रिय की संयम साधना हर साधक को किसी न किसी रूप में करनी ही चाहिए इस दिशा में एक कदम उठना ही चाहिए, भले ही वह आरम्भ में अस्वाद व्रत के रूप में ही क्यों न हो। वस्तुतः अस्वादव्रत अपने आप में एक महाव्रत है। महात्मा गाँधी ने इसकी भूरि-भूरि प्रशंसा की है और अपने सप्तमहाव्रतों में इसे प्रमुख स्थान दिया है। यह एक ऐसा महाव्रत है, जिसे उन्होंने स्वयं एवं विनोबा जैसे अनेकों महामानवों ने अपनाया और उस आधार पर अपने आहार विहार को उत्तेरात्तर शुद्ध-सात्त्विक बनाते हुए साधना पथ पर आगे बढ़े और अभीष्ट लक्ष्य को प्राप्त करने में सफल हुए। सप्ताह में एक दिन भी इसे पालन किया जाय, तो मन की संयम शक्ति और दृढ़ता बढ़ती है। यह बढ़ोत्तरी धीरे-धीरे मनुष्य में उन गुणों का भी विकास कर देती है, जो महापुरुषों-महामानवों में होने ही चाहिए।

वस्तुतः आहार का सम्बन्ध सिर्फ शरीर से ही नहीं है, वरन् उससे बुद्धि भी प्रभावित होती है। जो सिर्फ शारीरिक स्वास्थ्य की दृष्टि से, जीभ के स्वाद की दृष्टि से भोजन का चयन करते हैं, उन्हें यह नहीं भूलना चाहिए कि मानसिक विकास के लिए सात्त्विक आहार का होना अनिवार्य है।

न्यूयार्क के सुप्रसिद्ध शरीर विज्ञानी बी. एन. कोलोवस्की का कहना है कि व्यक्ति की बौद्धिक क्षमताओं का सीधा सम्बन्ध मानसिक संरचना से होता है। मनुष्य के खान-पान की विधि व्यवस्था ही उसकी बौद्धिक शक्ति का निर्धारण करती है। शरीर को स्वस्थ रखने के लिए जितनी सात्त्विक आहार आवश्यक है उतना ही मानसिक दृष्टि से स्वस्थ रहने के लिए भी। रक्त देखने में भले ही स्थूल है, पर उसकी सूक्ष्म संरचना इतनी विलक्षण है कि मस्तिष्कीय सूक्ष्मतम कोशिकाओं को प्रभावित किए बिना नहीं रहती। आहार जितनी शुद्ध, सात्त्विक रहेगा, उतना ही बुद्धिवर्द्धक होगा। इसके लिए आवश्यक नहीं कि कीमती पदार्थों को आहार में सम्मिलित किया जाये, अंकुरित अन्न से भी वह प्राप्त हो सकता है। विशेषज्ञों के अनुसार मस्तिष्क की जिन कोशिकाओं में रक्त प्रवाह जितना अधिक होगा, उतनी ही मात्रा में सुविकसित रहेंगी।

विश्वविख्यात वैज्ञानिक अलबर्ट आइंस्टीन के मस्तिष्क के परीक्षणोपरान्त यह पाया गया कि उसमें किसी प्रकार की कोई विशेष संरचना तो नहीं थी, पर उनके शरीर का रक्त प्रवाह इतना तीव्र और व्यस्थित था जिससे मस्तिष्कीय कोशिकाओं में ऑक्सीजन और पोषक तत्त्वों की मात्रा आवश्यकतानुरूप पहुँचती रही। इससे ही उनकी बौद्धिक क्षमता विकसित हुई इसके लिए उन्होंने अलबर्ट आइंस्टीन के प्राकृतिक जीवन के साथ सरल, सस्ता, सुपाच्य आहार को प्रमुख बतलाया।

साधारणतः हर मनुष्य के मस्तिष्क में १० अरब से लेकर २० अरब कोशिकाएँ विद्यमान रहती हैं। इनमें से मात्र पाँच

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

प्रतिशत कोशिकाएँ ही विकसित स्तर की होती है। इनके सम्बन्ध २० हजार अन्य केन्द्रों से भी जुड़े रहते हैं, जिनके द्वारा मनुष्य वस्तुओं का अनुभव करने लगता है। यदि कोशिकाओं का परिपोषण भली-भाँति होता रहे, तो वे अपनी क्षमताओं का पूरा परिचय देने में सफल होती हैं। मानवी मस्तिष्क शरीर का एक अनिवार्य, महत्त्वपूर्ण एवं सक्रिय भाग है। बाहर से आई ऑक्सीजन एवं आहार ऊर्जा का एक-तिहाई भाग मस्तिष्क द्वारा ही अवशोषित किया जाता है। इससे स्पष्ट है कि आहार मात्र शरीर का पोषण ही नहीं करता, वरन् अपने सात्त्विक, राजजी एवं तामसिक गुणों से मस्तिष्क को प्रभावित करता है। इसी बात का उल्लेख भगवान श्रीकृष्ण गीता में करते हैं। उन्होंने आहार को तीन भागों में बाँटा है। जो जीवन को बढ़ाये, ऊर्जा, शक्ति, स्वास्थ्य, आनन्द की अनुभूति कराये, ऐसे आहार को उन्होंने सात्त्विक कहा है। तीक्ष्ण, अम्ल, लवण, पेट में जलन उत्पन्न करने वाला आहार राजसिक एवं गरिष्ठ, बासी, दुर्गन्धयुक्त, अभक्ष्य आहार को तामसिक की संज्ञा दी है।

'दि इन्स्टीट्यूट फोर दि अचीवमेन्ट ऑफ ह्यूमेन पोटेंसिएल, फिलैडेल्फिया' के सुप्रसिद्ध अनुसंधानकर्त्ता डॉ० राबर्ट डोमैन ने कुछ ऐसे रहस्यमय तथ्यों को उजागर किया है, जिनकी खोज आज से २००० वर्ष पूर्व चिकित्सा विज्ञान के जन्मदाता हिप्पोक्रैटीस ने की थी। डॉ० डोमेन के अनुसार यदि शरीर का परिपोषण सात्त्विक एवं सुपाच्य आहार से होता रहे तो उसका प्रभाव मस्तिष्क पर भी अनुकूल पड़ता है, पर यदि रक्त संचार में किसी प्रकार की बाधा अव्यवस्था अखाद्य पदार्थों, नशीले पदार्थों के कारण होती है, तो मिरगी, हिस्टीरिया, विक्षिप्तता, सनक, उद्विग्नता जैसी बीमारियों का उत्पन्न होना भी सुनिश्चित है, ऐसा उनका कथन है।

अनुसंधानकर्त्ताओं ने मस्तिष्कीय संरचना को चार भागों में बाँटा है। मैंडुला, पॉस, मिडब्रेन और कार्टेक्स। मस्तिष्क की सम्पूर्ण कोशिकाओं का ९० प्रतिशत भाग मस्तिष्क के एक भाग कार्टेक्स में रहता है। यही वह स्थान है, जिससे शरीर का संचालन, नियमन होता है। यह महत्त्वपूर्ण भाग खान-पान से सीधा सम्बद्ध है। कुछ ऐसे व्यक्ति होते हैं, जिनका यह भाग विकसित नहीं होता इसके कारण उन पर मानसिक दबाव बना रहता है। ऐसे व्यक्ति अस्त-व्यस्त, अन्यमनस्क एवं अस्थिर चित्त वाले होते हैं। इनका चिन्तन कहीं टिकता नहीं। ऐसे व्यक्ति सामान्यतया क्रोधी स्वभाव के होते हैं। बल्गारिया के वैज्ञानिकों ने अने शोध के दौरान पाया कि तीक्ष्ण, अम्लता लिए, वासी, दुर्गन्धयुक्त, अति चीनी, अति नमक युक्त भोजन ग्रहण करने से मस्तिष्क के इस महत्त्वपूर्ण भाग (कोर्टेक्स) में उथल-पुथल मच जाती है, जिसके कारण अनेकानेक रोग उत्पन्न होते हैं। वहाँ के वैज्ञानिकों ने मस्तिष्क की अन्तर्निहित क्षमताओं के विकास हेतु आहार की सात्त्विकता पर जोर दिया है। इस विधि से उन्होंने अनेक रोगियों को मस्तिष्क सम्बन्धी रोगों से मुक्त किया है। अमेरिका के सुप्रसिद्ध स्नायु विशेषज्ञ डॉ. रिचार्ड वर्टमेन ने अपने कई वर्षों के परीक्षणों से निकले निष्कर्षों से स्पष्ट किया है कि मस्तिष्क से निकलने वाले स्नायु जो सन्देश समस्त शरीर में भेजते हैं, वह रक्त में समाहित पोषक तत्त्वों पर निर्भर करता है। मादक पदार्थ रक्त में सम्मिलित होकर विषाक्तता उत्पन्न करते हैं और मन को कुमार्गगामी बनाते हैं। ऐसे व्यसनी व्यक्तियों की बुद्धि, कुण्ठित हो जाती है, जो सतत् अभ्यास में पड़कर चिरस्थाई हो जाती है। जिन व्यक्तियों को नींद नहीं आती, उनमें इनका कारण गलत आहार भी बताया जाता है। डॉ० वर्टमेन के अनुसार उनके शरीर में नींद उत्पन्न करने वाला हारमोन कम हो जाता है, जिसके कारण 'ट्रप्टोफेन' नामक अम्ल की क्रियाशीलता कम हो जाती है। यही पोषक तत्त्वों के निर्माण में सहायक होता है। आहार विज्ञान के अनुसंधानकर्ताओं के अनुसार दूध, हरी सब्जी तथा अंकुरित अन्न से 'ट्रिप्टोफेन' की पर्याप्त मात्रा उपलब्ध होती है। मनोवैज्ञानिक हैरिस लिवर मैन ने भी सात्त्विक, सुपाच्य तथा पोषक तत्त्वों से भरे शाकाहारी आहार को शारीरिक ही नहीं मनोरोगों को दूर करने का एक सस्ता एवं अनूठा उपचार बताया है। लिवरमैन ने रोगियों की मनःस्थिति को भली-भाँति समझा और जीवन की सफलता-असफलता, उत्कर्ष-अपकर्ष, उन्नति-अवनति, उत्थान-पतन को मनुष्य की मनःस्थिति की सफलता और निर्बलता का ही परिणाम बताया है। यह अमीनो अम्ल मस्तिष्क को शान्तिपूर्ण ढग से विकसित होने का अवसर प्रदान करता है।

उद्वेग, शोक, चिन्ता, दुःख, निराशा और जीवन के प्रति अविश्वास रखने वाले व्यक्तियों को फिलाडेल्फिया के विशेषज्ञों ने कार्बोहाइड्रेट की परिमार्जित उवं परिशुद्ध मात्रा दी, जो उन्हें अंकुरित अन्न से प्राप्त हुआ था। इससे उनके चिन्तन एवं परेशानी में असाधारण परिवर्तन हुआ। अमेरिका में तो अब इस उपचार प्रणाली से गर्भस्थ शिशुओं को लाभान्वित किया जा रहा है। अस्पतालों में इस तरह के पदार्थ को सुरक्षित रखने की व्यवस्था भी बनाई गई है, जो अंकुरित अन्न से प्राप्त हुआ है।

लम्बे समय से संग्रहीत स्मृतियों को उभारने का कार्य भी इसी आधार पर सम्पन्न होता है। सात्त्विक आहार से उपलब्ध 'ट्रिप्टोफेन' पीड़ा से परेशान व्यक्ति की सहनशक्ति को बढ़ा देता है एवं स्मरणशक्ति के ह्रास को रोकता है।

इन वैज्ञानिक तथ्यों के आधार पर अब यह स्पष्ट हो गया है कि ऋषियों द्वारा प्रतिपादित 'सात्त्विक आहार से मानसिक शुद्धता' की धारण निर्मूल और कपोल कल्पना मात्र नहीं है, वरन् इसमें उतनी ही सच्चाई है जितनी अभक्ष्य भक्षण की हानियों में। अतः प्रत्येक को अपने भोजन में सात्त्विकता का ही अधिकाधिक समावेश करना चाहिए।

आहार और उसकी पोषक शक्ति

कहा जाता है कि चरक महर्षि अपनी संरचना और शिक्षा का समुचित विस्तार कर चुके तो उन्हें यह जानने की सूझी कि उनके प्रतिपादन का रहस्य कितनों ने समझा इसका पता लगाया जाय।

उपरोक्त प्रयोजन के लिए महर्षि ने एक कपोत का रूप बनाया और उस क्षेत्र में पहुँचे, जहाँ चिकित्सकों की भरमार थी।

पक्षीरूपधारी चरक ने अपनी भाषा में चिकित्सकों से एक मार्मिक प्रश्न पूछा—'कोऽरुक्' अर्थात् कौन रोगी होता है। यह

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पूछने से उनका मन्तव्य यह था कि जो मूल कारण को जानता होगा वही उसकी रोकथाम के उपाय सोचेगा। चिकित्सा उपचार भी उसी का सफल होगा। अन्यथा औषधि मात्र से अस्वस्थता का स्थायी निराकरण कहाँ सम्भव है। कपोत चरक ने बारी-बारी सभी से चिकित्सकों के सम्मुख वही प्रश्न दुहराया 'कोऽरुक्' अर्थात् रोगी कौन बनता है? निरोग कैसे होता है?

प्रश्न के उत्तर में सभी ने अपनी मान्यता व्यक्त की। रोग मुक्त होने के निमित्त सभी उपचार बताते हुए चले गये किसी ने भी यह न बताया कि रोगी पड़ने का अवसर ही न आवे, अथवा जो रुग्ण हो गया है उसे सहज ही उससे छुटकारा पाने का अवसर मिल जाय।

उत्तर सभी के शास्त्र सम्मत थे, पर उनमें सार सिद्धान्त का समावेश न रहने से उन्हें सन्तोष न हुआ और वे खिन्न मन से उदास होकर एक कोने में जा बैठे। सोचने लगे या तो मुझे पक्षी समझ कर उपेक्षित किया गया है। अथवा इन लोगों का अनुभव गम्भीर नहीं है।

उधर से महर्षि बागभट्ट निकले। उनसे भी कपोत ने वही प्रश्न पूछा। उन्होंने कपोत रूपी चरक को पहचान लिया और नतमस्तक होकर उन्हीं की भाषा में प्रत्युत्तर देते हुए तीन प्रतिपादन प्रस्तुत किये।

"मित् भुक्"—अर्थात् भूख से कम खाना।

"हित् भुक्"—अर्थात् सात्त्विक खाना।

"ऋत् भुक्"—अर्थात् न्यायोपार्जित खाना।

जो इन तीनों बातों का ध्यान रखेगें उन्हें बीमार पड़ने का अवसर ही न आवेगा। ऐसी दशा में बिना चिकित्सा के ही स्वास्थ्य ठीक बना रहेगा।

इन दिनों स्वास्थ्यकर आहार के सन्दर्भ में अमुक रसायनों के बाहुल्य को सन्तुलित आहार कहा जाता है और अमुक की कमी रहने पर कुपोषण की शिकायत होने की बात कही जाती है। इन दिनों कुपोषण दूर करने के लिए खाद्य सन्तुलन पर बहुत महत्त्व दिया जा रहा है। और यह सोचा जा रहा है कि किस प्रकार आहार का रासायनिक स्तर बढ़ाया जाय। यह प्रयत्न सामान्यतया ही है। रासायनिक उत्कृष्टता की बात का महत्त्व मिलना चाहिए पर साथ ही यह भी ध्यान रखा जाना चाहिए कि पकाने की प्रक्रिया एवं खाने की पद्धति में तो कहीं कोई त्रुटि नहीं रही है। इस सन्दर्भ में बरती गई लापरवाही ऐसी है जिसके कारण बहुमूल्य पौष्टिक पदार्थ भी तथा कथित कुपोषण वाले आहार से भी गये बीते बन जाते हैं।

कुपोषण वाले पदार्थों के कारण शरीरिक विकास में जो कमी रह जाती है। तथा मानसिक विकास में अवरोध उत्पन्न होता है, उसकी जानकारी सर्वविदित है। अब इस क्षेत्र में चल रहे अनुसन्धानों ने एक नया मोड़ लिया है कि जिनको पर्याप्त मात्रा में पुष्टाई मिलती है वे कुपोषण ग्रस्तों से भी गई गुजरी स्थिति में क्यों पड़े रहते हैं। उन्हें वे लाभ क्यों नहीं मिलते जो खाद्य रसायनों का गुण गान करते हुए आमतौर से बताये जाते हैं।

इस असमंजस का समाधान ढूँढ़ने के लिए स्वास्थ्य विज्ञान में संलग्न कितने ही शोध संस्थान अपने-अपने ढग से काम कर रहे हैं। इन्डियन कौंसिल ऑफ मेडीकल रिसर्च—इन्डियन इन्स्टीयूट ऑफ मेडीकल साइन्स नेशनल इन्स्टीटयूट आफ न्यूट्रीसन— पोस्ट ग्रेजुएट इन्स्टीट्यूट ऑफ मेडीकल एजूकेशन एण्ड रिसर्च जैसी भारत की शोध संस्थाएँ न केवल देश की आर्थिक परिस्थितियाँ अधिक उपयोगी खाद्यान्नों की सिफारिशों कर रही हैं वरन् यह भी सोच रही है कि उपयोगी स्तर का आहार ग्रहण करने पर भी असंख्यों को क्यों उसका लाभ नहीं मिलता है। यह समस्या उन सभी लोगों की है जो आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न और बौद्धिक दृष्टि से सुशिक्षित होते हुए शारीरिक दृष्टि से दुर्बल ओर रुग्ण बने रहते हैं। इससे प्रतीत होता है कि आहार का सन्तुलित होना ही पर्याप्त नहीं, वरन् उसके पकाये और खाये जाने का तरीका भी अपना विशिष्ट महत्त्व रखता है। इस सन्दर्भ में बरती गई असावधानी भी आहार का स्तर मूल्यवान होते हुए भी उसके प्रभाव परिणाम से वंचित रहना पड़ता है।

तेज आग पर देर तक पकाने से सभी खाद्य पदार्थ अपनी मौलिक विशेषताओं का अधिकांश भाग गँवा बैठते हैं। चिकनाई में तलने-भूनने से रही बची उपयोगिता भी नष्ट हो जाती है। मसाले की भरमार से वह आहार न रहकर नशा रहित मादक द्रव्य बन जाता है और उत्तेजना ही नहीं विषाक्तता भी उत्पन्न करता है।

खाने के सम्बन्ध में बरती जाने वाली भूलें और भी दुर्भाग्यपूर्ण हैं। कम चबाये जल्दी-पल्दी में निगलते जाना आहार को मुख में सम्मिलित होने वाले पाचक रसों से वंचित रखना है। जायकेदार चीजें स्वभावतः भूख से अधिक मात्रा में उदरस्थ होती रहती हैं। एकबार का किया हुआ आहार पचने से पहले ही उस पर नई खेप की बात लद जाती है। यही है अपच का प्रधान कारण। पेट में बिना पचा आहार सड़ता है। सड़ने से उत्पन्न विषैले गैसें शरीर के विभिन्न अवयवों में पहुँच कर वहाँ चित्र-विचित्र की बीमारियों का सृजन करती हैं। इन गलतियों के रहते पौष्टिक भोजन भी कुपोषण के कारण अखाद्य ठहराये जाने वाले आहार से भी गया बीता बन जाता है।

आवश्यक नहीं कि गरीब लोगों को कीमती खाद्य सामग्री खरीदने के लिए दबाया और उनकी परिस्थिति का उपहास उड़ाया जाय। अच्छा यह है कि हरे शाक-भाजी बिना पकाये या कम पकाये खाने की आदत डाली जाये और उनमें पाये जाने वाले बहुमूल्य क्षार एवं खनिजों को पोषण में सम्मिलित होन का अवसर दिया जाय। सूखे अन्नों को अंकुरित करके तथा धीमी गति से आग पर उबाल कर खाने का तरीका भी ऐसा है, जिससे मोटे अनाज मेवे जैसा गुण देने लगते हैं।

प्राकृतिक खाद्य पदार्थों में अंकुरित आहार सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है। अंकुरित होते समय बीजों में पायी जाने वाली प्रोटीन विटामिन एन्जाइम एवं मिनरल, खनिज, लवण की वृद्धि असाधारण रूप से होती है। अंकुरण के समय अन्न की जीवनी शक्ति विकासोन्मुख एवं अधिक सक्रिय होती है। उस स्थिति में एन्जाइम की मात्रा बीजों में अत्यधिक बढ़ जाती है। जो शरीरगत चयापचय क्रिया को अधिक अच्छी तरह सम्पन्न कर रक्त-संचार व पाचन तन्त्र को विशेष शक्ति प्रदान करते हैं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

तेज आग पर उबाल देने या भून देने से बीजों की अंकुरण क्षमता नष्ट प्रायः हो जाती है और जीवनी शक्ति भी बहुत मात्रा में कम हो जाती है। अंकुरित आहार कम मात्रा में ग्रहण किए जाने पर भी पोषण की आवश्यकता पूरी हो जाती है। अंकुरित करने के लिए कोई भी अनाज या बीज प्रयोग किया जा सकता है। उनमें परिवर्तन भी करते रहना चाहिए। सामान्यतया अंकुरण के लिए गेहूँ, चना, मूँग, मूँगफली, मटर, सोयाबीन आदि प्रयुक्त किये जाते हैं।

अंकुरित किए गये अन्न एवं बीजों में प्रोटीन की प्रचुरता हो जाती है। साथ ही जटिल एवं गरिष्ठ प्रोटीन का रूपान्तरण सरल प्रोटीन अमीनो एसिड्स में हो जाता है। बीजों का अंकुरण के पश्चात् श्लेष्मा कारक एवं गैस उत्पन्न करने का दोष बहुत ही न्यून रह जाता है। अंकुरण के तीन-चार दिन बाद गेहूँ में विटामिन 'सी' की मात्रा तो ३०० प्रतिशत तक बढ़ जाती है। इसी प्रकार विटामिन 'बी' कॉम्प्लेक्स की मात्रा भी अंकुरण की प्रक्रिया में कई गुना बढ़ जाती है।

अंकुरण की सरल विधि से सस्ता व सहज ही पौष्टिक भोजन हर किसी को उपलब्ध हो सकता है। इससे प्रचुर मात्रा में प्रोटीन विटामिन एवं पोषक तत्त्व मिल जाते हैं, कुपोषण की समस्या का सहज समाधान इससे हो सकता है। यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि अंकुरित आहार सस्ता, सन्तुलित व पूर्ण आहार है।

आहार के निर्धारण में अब एक और तत्व सामने आया है जिसे खाद्य की जीवनी शक्ति एवं प्राण ऊर्जा कहा गया है। यह रासायनिक संरचना से भिन्न है। अब तक प्रोटीन, स्टार्च, लवण, खनिज आदि रसायनों का सन्तुलन ही खाद्य का स्तर गिना जाता रहा है, अब उन पदार्थों में पायी जाने वाली प्राण चेतना का अन्वेषण वर्गीकरण भी चल रहा है और उस सूक्ष्म प्रभाव के आधार पर उपयोगिता एवं समर्थता का प्रतिपादन होने लगा है। भारतीय अध्यात्म विज्ञान की सूक्ष्मदर्शी सदा से पदार्थों की सात्त्विक, राजस, तामस प्रभृति की चर्चा करते रहते हैं। यह सब क्या है। उसकी व्याख्या पिछले दिनों तो नहीं हो सकी थी पर अब इस नई खोज से यह पता लगता है कि पाये जाने वाले रसायनों से भी अधिक महत्त्वपूर्ण पदार्थ की प्राण ऊर्जा होती है।

प्राण शक्ति या सूक्ष्म शक्ति जिसे विज्ञान की भाषा में 'बायोप्लाज्मा' कहते है, सृष्टि के प्रत्येक कण-कण में विद्यमान है, परन्तु चेतन तत्त्वों विशेषतः जीव-जन्तु, मनुष्य एवं पेड़-पौधों में अधिक सक्रिय रहती है। सन् १९६८ में रूस के कुछ प्रसिद्ध वैज्ञानिकों के एक संगठन ने अपने अनुसन्धान कार्य का प्रकाशन कराया जिसमें उन्होंने लिखा था कि 'समस्त चेतन प्राणियों, पौधों, मनुष्यों एवं जानवरों में एक स्थूल शरीर होता है और एक सूक्ष्म शरीर। सूक्ष्म शरीर में ही प्राणशक्ति रहती है।'

अमेरिका के येल यूनीवर्सिटी के डॉ० वर्र एवं नार्थाप ने दो वृक्षों के बीच एक सेन्सिटिव वोल्टमीटर जोड़कर निःसृत होने वाली सूक्ष्म प्राणशक्ति का मापन व अंकन का सफल प्रयोग किया। इस शोधकार्य में उन्हें कई वर्ष तक अथक परिश्रम करना पड़ा।

पौधों में प्राणशक्ति के निरन्तर प्रवाह के सम्बन्ध में 'क्रिस्टोफर बर्ड' एवं 'पीटर टॉम्किन्स' ने अपनी "दी सीक्रेट लाइफ ऑफ प्लान्ट" पुस्तक में लिखा है कि पौधे भी अन्य जीवों एवं मनुष्य की तरह प्राणशक्ति के स्तर से प्रभावित होते हैं। पौधों की प्राणशक्ति मनुष्यों और जीव जन्तुओं को प्रभावित करती है। जैव रसायन विशेषज्ञों 'डॉ० एरन फ्रीट फेफर' ने पशु, मनुष्य व पौधों की सूक्ष्म प्राणिक शक्ति का परीक्षण किया। उन्होंने अपने प्रयोगों से सिद्ध किया है कि प्रकृतिक भोज्य-पदार्थों में प्राणशक्ति का स्पन्दन अधिक सशक्त होता है। शारीरिक आवश्यकताओं के लिए प्राकृतिक भोजन में पाये जाने वाले विटामिन, खनिज, लवण उपयुक्त व पर्याप्त हैं। कृत्रिम खाद्य पदार्थों में प्राण शक्ति की मात्रा न्यून होने से उनका जैविक महत्त्व बहुत कम होता है।

फ्रान्स के इन्जीनियरा 'आन्द्रेसिमेन्टन' ने खाद्य पदार्थों में निहित प्राण शक्ति को मापने का कार्य एक प्रकार का दोलन यन्त्र बनाकर किया। उनकी शोध से पता चला है, कि अन्न, ताजे, फल, हरी साग-सब्जियों आद में प्राण शक्ति की अधिकता होती है। माँस में पायी जोने वाली प्राण शक्ति न्यून एवं घटिया होती है, पकाने पर तो लगभग प्राणशक्ति से रहित ही हो जाता है। सिमेन्टन महोदय के अनुसार भोजन पकाने की रासायनिक विधियों एवं सुरक्षित रखने की रासायनिक प्रक्रियायें हानिकारक हैं। उन्होंने अपेन शोध प्रयोगों के आधार पर निष्कर्ष निकाला कि स्वास्थ्य को अक्षुण्ण बनाये रखने, जीवनी शक्ति से भरपूर रखने के लिए अनाज, फल, साग-सब्जी जैसे उच्च शक्ति सम्पन्न खाद्य पदार्थों का प्रयोग करना चाहिए।

सात्त्विक आहार की विशेषता को अभी तक अनुभव नहीं किया जा रहा था। अब उस रहस्य की परतें खुल रही हैं। और माँस जैसे तामस तथा स्निग्धता की भरमार वाले राजस पदार्थों की तुलना वह खाद्य कहीं अधिक लाभदायक है जिन्हें सतोगुण माना गया है वे शरीर ही नहीं मन का भी परिपोषण और अभ्युदय करते हैं।

महर्षि बाणभट्ट का वह उत्तर जो उन्होंने कपोत चरक को दिया था। अव विज्ञान की कसौटी पर अक्षरशः खरा उतरता जा रहा है। आरोग्य रक्षा और समर्थ शरीर बनाये रहने के यही उपयुक्त मार्ग भी है।

आहार साधना एक महत्त्वपूर्ण तपश्चर्या

आहार—स्वयं में एक परिपूर्ण चिकित्सा है। यह तो मात्र मन की दुर्बलता है जो व्यक्ति को भाँति-भाँति के आहार स्वादेन्द्रियों की तृप्ति ग्रहण करने हेतु लालायित करती रहती है। स्वास्थ्य के बिगड़ने, जीवनी शक्ति कमजोर होने की प्रक्रिया यहीं से आरम्भ होती है। अच्छा होता कि व्यक्ति प्रकृति में विचरण करते प्राणियों से कुछ शिक्षा लेता है, अपना जीवन क्रम यथासम्भव स्वाभाविक बनाये रखता। परन्तु कृत्रिम जीवन का अभ्यासी मनुष्य आज अपने ढर्रे में कोई परिवर्तन किसी भी परिस्थिति में स्वतः स्वीकार नहीं करता। प्रकृति ही अपनी ओर

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

से उसे दण्ड देती है तो उसे रोग विशेषों में पप्यापथ्य के रूप में स्वाद को अच्छी लगने वाली वस्तुएँ वरबस छोड़नी पड़ती हैं।

इस ढर्रे को तोड़ने की विधि एक ही है, किसी तरह अपने वर्त्तमान परिकर से निकलकर न्यूनतम एक आहार पर रहने के क्रम को अपनाया जाय। इसके लिए किंचत मनोबल से सही काम चलाया जा सकता है। यह मृदु तपश्चर्या सफल हो गयी तो आगे कड़ी तपस्या भी सम्भव है। आहार कल्प की दृष्टि से सामान्यतया अमृताशन का प्रयोग सर्वसुलभ माना जाता है। गेहूँ, चावल, मूँग इन तीन के मिश्रण से दाल-चावल दलिया-दाल का संयोग बनता है। अच्छा तो यह है कि एक धान्य से काम चलाया जाय। दलिया या चावल को दूध, गुड़ आदि क संयोग से स्वादिष्ट भी बनाया जा सकता है। अकेली मूँग भी उबाल कर एक महीने तक भोजन का काम भली प्रकार दे सकती है। आग्रह या असमर्थता हो तो दो का संयोग करना चाहिए। स्मरण रहे हर धान्य अपने आप में पूर्ण हैं। उसमें वे सभी वस्तुयें मौजूद हैं जो शरीर के लिए आवश्यक हैं। सच तो यह है कि शरीर के पाचक रस ही विभिन्न खाद्यान्नों को अपने उपयुक्त परिवर्तित करते और बदलते हैं। सुअर और दुम्बा मेढ़ा के शरीर में चर्बी की मात्रा अत्यधिक होती है। वे इसे मात्र घास से ही प्राप्त कर लेते हैं। जबकि घास में चर्बी का अंश अत्यल्प मात्रा में होता है। शरीरगत पाचक रस सत्तू जैसी स्वत्व रहित वस्तु को भी उलट-पुलट कर शरीर के लिए उपयुक्त क्षमता वाले रक्त में बदल देते हैं। शाकाहार में एक अन्न, एक फल, एक शाक भर रहने में हर्ज नहीं । कल्प का वास्तविक तात्पर्य यही है। दूध कल्प, छाछ कल्प, आम्र कल्प, खरबूजा कल्प आदि का तात्पर्य ही यह है कि नियत अवधि तक उस एक ही वस्तु का सेवन किया जाय। दूसरी और कोई वस्तु पेट में न जाने दी जाय। एक अन्न से नाक-भौं सिकोड़ने वालों के लिए ही मूँग की दाल का मिश्रण करके संख्या दो कर लेने की छूट दी गई है। अन्यथा उपयुक्त यही है कि किसी एक अन्न पर निर्भर रहा जाय। उसके साथ दूसरी वस्तु का मिश्रण न किया जाय। किसी खाद्य पदार्थ को अपना पूरा प्रभाव दिखाने का अवसर इसी आधार मिलता है। अन्यथा दो या अधिक वस्तुओं का मिश्रण करने पर हर वस्तु अपना प्रभाव खोती चली जाती है। मिश्रणों के आधार परस नये-नये किस्म के चित्र-विचित्र प्रभाव उत्पन्न होते हैं और मूल विशेषता एक प्रकार से समाप्त ही होती जाती है।

अन्नों में प्राकृतिक अन्न कहीं अधिक प्राणवान होते हैं। गेहूँ चावल आदि की प्रचलित किस्में चित्र विचित्र संकरत्व करके, विलक्षण-विलक्षण खाद देकर—कलम बनायी विकसित की गयी हैं। फलतः आकृति मूल रूप से मिलती-जुलती रहने पर भी उनके गुणों में भारी अन्तर आ गया है। ऐसी दशा में अच्छा तो यही होता कि मनुष्य की करतूत अछूत वन्य प्रदेशों में अपने आप उगने वाले धान्यों का प्रयोग कल्प काल में किया जाय। ऐसे धान्यों में उत्तर प्रदेश की भूमि में सामां, मकरा, मालकांगनी, चैना, महुआ जैसे जंगली अन्न कुछ समय तक पर्याप्त मात्रा में उत्पन्न होते थे। गरीब लोग उन्हीं पर निर्वाह करते थे। ये अपेक्षाकृत अधिक पौष्टक, सात्विक एवं गुणकारी होते हैं। जौ की एक प्राकृतिक किस्म 'जई' होती है। चावल में जंगली चावल को 'साठी' कहते हैं। इन सबके गुण पृथक्-प्रथक् हैं। यदि इनमें से किसी एक अन्न का कल्प किया जा सके तो उसके चमत्कारी परिणाम उत्पन्न होगें।

कठिनाई एक ही है कि अब भूमि का उपयोग कीमती फसल उत्पन्न करने में होने लगा है। फलतः जंगली अन्नों के उत्पादन का क्षेत्र समाप्त होता चला जाता है। गरीब लोग भी अब उनके लिए प्रयत्न नहीं करते। फलतः वे अधिक पौष्टिक और सात्विक प्रजातियाँ क्रमशः लुप्त और समाप्त होती चली जा रही हैं। फिर भी जिन्हें अन्न कल्प करना हो उन्हें इतना तो ध्यान रखना ही चाहिए कि जिसका सेवन किया जाय वह सात्विक क्षेत्र में सात्विक खाद पानी से उत्पन्न किया गया हो। आजकल बूचड़खानों का रक्त, मछली का खाद, मनुष्य के मल-मूत्र की खाद वाले एवं गन्दे पानी से सींचे गये अन्न अधिक मात्रा में उपजते तो हैं पर गुणों की दृष्टि से उनका स्तर घटिया एवं विकृत होता चला जाता है। रासायनिक खादें एवं कीटनाशक दवाएँ जब आहार का रंग बन जाती हैं तो पेट भरने के लिए उनका उपयोग भले ही होता रहे वे अल्प जैसे उच्चस्तरीय उद्देश्यों में प्रयुक्त होने योग्य रहती ही नहीं।

आहार की किस्म ही नहीं, उसका स्तर भी उत्तम हो तभी अभीष्ट उद्देश्यों की पूर्ति भली प्रकार होती है। पकाने वाले के व्यक्तित्व का प्रभाव भी कम महत्व का नहीं। चाहे जैसी प्रकृति आदत वाले, अस्वस्थ, अस्वच्छ, दुष्ट, दुर्गुणी, मूर्ख, अनगढ़ व्यक्ति का बनाया—परोसा भोजन भी उस उद्देश्य की पूर्ति में बाधा ही डालता है, जिसके लिए कि कल्प साधना जैसी तपश्चर्या की योजना बनी है। अन्न के बाद फल ऋतु फल एवं शाकों का नम्बर आता है। जिनका अपना बगीचा है वे बिना कलम वाले पेड़ पर पके फल लेकर कल्प कर सकते हैं। बाजार में जो बिकते हैं उनमें से बहुत कम ऐसे हैं जिनका कल्प के लिए उपयोग हो सके। आमतौर से वे पेड़ से कच्चे तोड़े जाते हैं। समय बीतते-बीतते पक जाते हैं या भूसे अनाज आदि में दबाकर पकाये जाते हैं। इनका स्वाद भले ही मीठा हो जाय गुणों की दृष्टि से वे नितान्त कच्चे ही होते हैं और लाभ के स्थान पर हानि पहुँचाते हैं। कलमी, आम, बेर, चीकू, जामुन, अमरूद, आदि का इन दिनों खूब प्रचलन है। आकार का स्वाद उनका भले ही बड़ा रहे पर वे अपनी मौलिक विशेषताओं से कहीं अधिक दूर हट गये होते हैं। अस्तु उनके प्रयोग की उपेक्षा ही की जानी चाहिए। वे मँहगे भी तो होते हैं।

फलों के बाद मौसमी फलों की बारी आती है। इनमें आम, शहतूत, लीची, शरीफा, अनन्नास, बेर, अमरूद आदि को चुना जा सकता है। खरबूजा, तरबूजा अपनी किस्म के आम हैं वे भी प्रयोग में लाये जा सकते हैं। शाकों में लौकी, तोरी, परवल, टमाटर, गाजर, मूली, अरबी, शकरकन्द, जमीकन्द, रतालू आदि भी यों शाकों में गिने जाते हैं। वस्तुतः वे गुणों की दृष्टि से अन्न वर्ग में आते हैं, भारी पड़ते हैं। फलतः उनका कल्प प्रयोजनों में उपयोग नहीं होता। पत्तीदार शाकों में पालक, चौराई, मैंथी, सरसों ग्राह्य हैं पर उन्हें पूरे आहार की तरह पचाने

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

की क्षमता किन्हीं-किन्हीं में ही होती है। जिनका पेट गड़बड़ाता है, उन्हें दस्त होने लगते हैं। पीपल, बरगद, गूलर, अंजीर, किस्म के फल भी अपने प्रकृति के अलग ही हैं। महुये का फूल भी इस प्रयोजन में आ सकता है पर इनका पूर्ण परीक्षण इसी प्रकार कर लेना चाहिए। जैसे कि पेन्सिलीन आदि के प्रयोग से पूर्व उसकी प्रतिक्रिया जाँचन या चमड़ी पर जाँच पड़ताल की जाती है। इनमें से किसी का प्रयोग करना हो तो पहले दस-पांच दिन उन पर निर्भर रह कर पेट की क्षमता परख लेनी चाहिए। तब एक महीने की साधना में उनका निश्चित उपयोग करने की बात सोचनी चाहिए।

यह आहार तप हर किसी से नहीं निभ पाते। अपनी मनःस्थिति अपने से नहीं सही आँकी जा सकती। मार्गदर्शक से पूछे बिना किसी भी प्रयोग को आरम्भ न कर हर पक्ष पर पहले पूरा विचार कर लेना चाहिए। वर्णित धान्य फल, ऋतु फल, शाक आदि में से चाहे जो चुन लिया जाय ऐसा नहीं हो सकता। इन्हें उपचार की ही तरह प्रयुक्त किया जाता है इसके लिए निर्णय करने से पूर्वसाधक की शारीरिक मानसिक स्थिति देखनी जाँचनी होती है। उपरोक्त खाद्यों में से प्रत्येक की अपनी-अपनी विशेषतायें तथा खामियाँ हैं। इसी प्रकार किसी प्रकृति या परिस्थिति के लिए कोई वस्तु अनुकूल कोई प्रतिकूल पड़ती है। एक वस्तु सभी के लिए एक जैसी प्रतिक्रिया उत्पन्न करे, ऐसा नहीं होता। इससे पेट के पाचक रसों को अभ्यस्त ढर्रे की भिन्नता के कारण एक ही खाद्य पदार्थ कई मनुष्यों पर भिन्न-भिन्न प्रकार के प्रभाव छोड़ते हैं। इसलिए खाद्य की विशेषताएँ और उपयोगिताओं को अपनी भिन्नताओं को ध्यान में रखते हुए अनुभवी व्यक्तियों को ही यह निर्णय करना चाहिए कि किसे किस अन्न-शाक या फल आदि का कल्प कराया जाय। इसमें उपभोक्ता की रुचि के साथ भी तालमेल बिठाने की आवश्यकता पड़ती है। यदि कोई व्यक्ति किसी पदार्थ से सर्वथा अरुचि व्यक्त करे तो उसके उपयोगी होते हुए भी मनोवैज्ञानिक कारणों से वह उल्टी प्रतिक्रिया प्रकट करती है। जो लोग प्याज-लहसुन नहीं खाते उन्हें उनकी गन्ध नहीं सुहाती और लाभ-हानि की चर्चा करने से पूर्व ही उन्हें पूर्वाग्रहों के कारण उल्टी आने लगती है। ऐसी दशा में कल्प कैसे हो?

जड़ी-बूटी कल्प का अपना पृथक विज्ञान है। किस व्यक्ति की शारीरिक और मानसिक स्थिति के अनुरूप किस बूटी के रासायनिक पदार्थ उपयोगी पड़ते हैं। इसका तालमेल बिठाते हुए ही यह निर्णय करना पड़ता है कि किसके लिए किसका उपयोग समाधान कारक रहेगा।

कल्प साधना में आहार कल्प की तरह बूटी कल्प भी कराया जाता है। इसके लिए उसे एक महीने तक ५० ग्राम नित्य कल्क पेट में पहुँचाया जाता है। कल्क से तात्पर्य है—पतली चटनी। लगभग ठण्डाई से कुछ गाढ़ी सीरप स्तर की। निर्धारित बूटी का कल्क प्रातःकाल खाली पेट लिया जाता है।

कल्प प्रयोजन के लिए पाँच बूटियाँ ली गयी हैं। (१) तुलसी, (२) शंख पुष्पी, (३) ब्राह्मी, (४) शतावर, (५) अश्वगंधा। यों उनके अतिरिक्त कई कल्प व्यवस्था में आयुर्वेद में प्रचलित हैं जिनमें (१) त्रिफला, (२) हरीतकी, (३) पुनर्नदा, (४) आँवला, (५) विधारा, (६) गिलोय, (७) सोंठ, (८) बिल्व, (९) निर्गुण्डी, (१०) मुशली आदि प्रमुख हैं। किन्तु उन्हें विशेष परिस्थितियों में—विशेष व्यक्तियों के लिए ही प्रयुक्त किया जाता है। सामान्यतः उपरोक्त पाँच में से सभी अपने गुणों के अनुरूप सभी प्रकृति के व्यक्तियों की काया तथा मानवीय संरचना के अनुसार सन्तुलन बिठाने में काम दे जाती हैं। युवा-व्यक्तियों को एक महीने में ५० ग्राम नित्य बूटी सेवन कराई जाती है। यह सेवन उतार-चढ़ाव का चान्द्रायण पद्धति से होता है। प्रथम पन्द्रह दिन थोड़ी-थोड़ी करके मात्रा बढ़ाना और फिर बाद के पन्द्रह दिन में मात्रा को क्रमशः घटाते चलना। कल्प प्रयोग की यह एक विशेष पद्धति है। बूटी कल्प में गंगाजल ही प्रयोग होता है। उसे पीसने-छानने-बनाते समय उस प्रयोजन के लिए निर्धारित नियमों का पालन करने वाले हाथ ही काम करते हैं। अन्नाहार एवं शाकाहार में पकाने की पद्धति में भी अध्यात्म स्तर के साथ जुड़ी हुई पद्धतियाँ अपने-अपने प्रभाव का समावेश कर देती हैं और वह सामग्री अपने ढंग की आन्तरिक विशिष्टताओं से सम्पन्न हो जाती है।

पदार्थ के तीन स्वरूप हैं—ठोस, द्रव तथा वायु। उसी को आहार में अन्न, जल और श्वास के माध्यम से ग्रहण किया और जीवित रहा जाता है। इसी क्रम का स्तर बढ़ा दिया जाय तो उसकी प्रभाव परिधि स्थूल शरीर से आगे बढ़कर सूक्ष्म और कारण शरीर तक जा पहुँचती है। कल्प साधना में वह आहार सेवन कराया जाता है जिसमें उसकी सूक्ष्म और कारण शक्ति भी संयुक्त रूप में सम्मिलित हुई हो। इस प्रकार उसे एक प्रकार का तप साधन जैसा व्रत उपवास स्तर का—परम सात्विक एवं दिव्य औषधि जैसी विशेषताओं से युक्त करने का प्रयत्न किया जाता है। आहार की उत्कृष्टता एवं निर्माण तथा सेवन में जुड़ी हुई भावना का समावेश होने से उसका लाभ और भी अनेक गुना बढ़ जाता है।

अमृताशन में अन्न, बूटी कल्प और प्रज्ञापेय में जल तथा नित्य के अग्निहोत्र में सम्मिलित रहने पर वायुभूत आहार को मुख नासिका तथा अन्यान्य छिद्रों के माध्यम से भीतर पहुँचाया जाता है। यह समग्र समुच्चय ऐसा है जिसमें तीनों शरीरों के परिशोधन एवं सम्वर्द्धन—ये दोनों ही उद्देश्य भली प्रकार पूर्ण होते हैं। अन्य चिकित्सापद्धतियाँ मात्र व्यक्ति के अंग विशेषों का उपचार करती हैं और कारण समझे जाने वाले विष को अन्य विषाक्त द्रव्य से मारने का प्रयत्न करती हैं। किन्तु कल्प साधना में प्रयुक्त होने वाला आहार उपचार ऐसा है जिसमें मात्र निवारण-निराकरण नहीं वरन् परिवर्तन भी जुड़ा हुआ है।

अन्न को ब्रह्म कहा गया है। काया का समूचा ढाँचा प्रकारान्तर से खाद्य की ही परिणति है। व्यक्तित्व का गुण, कर्म, स्वभाव का—मूलभूत ढाँचा आहार के आधार पर ही बनता है। शिक्षा आदि से तो उस ढांचे को सम्भाला संजोया भर जाता है। यही कारण है कि अध्यात्म विज्ञान में आहार की उत्कृष्टता को अन्तःकरण विचार तंत्र एवं काय-कलेवर की पवित्रता प्रखरता को सर्वोपरि माध्यम माना गया है। व्रत उपवास में खाली पेट रहने के अतिरिक्त ऐसे पदार्थ सेवन करने का विधान है जो

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

परम सात्विक हो तथा स्वल्प मात्रा में लिये गये हों। यह पद्धति कल्प साधना में अपनाई जाती है। इस प्रकार आहार साधना को एक प्रकार का उपवास समझा जा सकता है एवं इसके माध्यम से आत्म-परिष्कार की सम्भावना पर भली-भाँति विश्वास किया जा सकता है।

उपवास-साधना

साधनाओं में उपवास का महत्त्वपूर्ण स्थान है। प्रायश्चित्यों के लिए तथा आत्मशुद्धि के लिए उपवास सर्वोत्तम साधन माना जाता है। किसी शुभकार्य को आरम्भ करते हुए प्रायः उपवास का आश्रय लिया जाता है। कन्यादान के दिन माता-पिता उपवास रखते हैं। यज्ञोपवीत व्रतबन्ध, समावर्तन, वेदारम्भ आदि संस्कारों के दिन ब्रह्मचारी को उपवास रखना आवश्यक है। अनुष्ठान के दिन में यजमान तथा आचार्य को उपवास रखना होता है। नवदुर्गा के नौ दिन कितने ही स्त्री-पुरुष पूर्ण या आंशिक उपवास रखते हैं।

भूल, अपराध, पाप अथवा न करने योग्य का हो जाने पर उपवासों द्वारा प्रायश्चित्य किया जाता है। आत्मबल बढ़ाने के लिए, आन्तरिक पवित्रता में अभिवृद्धि करने के लिए उपवास अचूक अस्त्र है। विश्वविभूति महात्मा गाँधी ने अपने जीवन में कई बार उपवास का आश्रय लिया है। उन्होंने इक्कीस-इक्कीस दिन के उपवास किये हैं। सत्याग्रह के रूप में एक महान अस्त्र के रूप में भी उपवास किया जाता है। वीर यतीन्द्रनाथ दास देशभक्त मेक्विन्वी जैसी आत्माओं ने निराहार से आत्मविसर्जन किया था। भगवान बुद्ध और भगवान् महावीर ने अपने जीवन में लम्बे-लम्बे उपवास किय थे, और उस तपश्चर्य प्रताप से आत्म दर्शन करने में सफल हुए थे।

उपवास के संकल्प के साथ-साथ सात्विक की तरंगें अन्तःकरण में उठना आरम्भ होती हैं और रजोगुण, तमोगुण की कमी होने लगती है। गीता कहती है कि—'निराहार रहने से विष निवृत होते हैं।' शुभ कर्मों के लिए सात्विकता का अधिकता आवश्यक है इसलिए प्रत्येक कृत्य के साथ उपवास को सम्बन्धित रखा गया है। आवेशों का उफान भूखे रहने पर घट जाता है। विषय-विकारों का हलका पड़ता है और विकार से पीड़ित मनुष्य को इस महौषधि द्वारा तुरन्त पवित्रता की शीतलता अनुभव होने लगती है।

स्वास्थ्य की दृष्टि से उपवास का असाधारण महत्व है। रोगियों के लिए इसे एक प्रकार की जीवन भूरि ही कह सकते हैं। चिकित्सा शरीर का रोगियों को एक दैवी उपदेश है कि—"बीमारी को भूखा मारो" भूखे रहने से बीमारी मर जाती है और रोगी बच जाता है। संक्रामक कष्ट सब खतरनाक रोगों में साधन ही एक मात्र चिकित्सा है—मोतीझरा, निमोनिया, त्रिशूचिका, प्लेग, सन्निपात, टाइफाइड, जैसे रोगों में कोई भी चिकित्सा उपवास का आश्चर्य हटाने का साहस नहीं कर सकता। प्राकृतिक चिकित्सा विज्ञान तो समस्त पूर्ण या आंशिक उपवास को ही सर्वप्रधान उपचार बताता है। इस तथ्य को हमारे माननीय ऋष्टिगण भी भली प्रकार जानते थे। इसलिए उन्होंने धार्मिक कृत्यों में इस साधना को बड़ा महत्व दिया है। एकादशी, रविवार, अमावश्या पूर्णमासी चतुर्थी प्रभूति व्रत हर महीने निश्चित है। इसके अतिरिक्त हर महीने में दो चार विशेष व्रत भी होते हैं, इनके लम्बे चौड़े माहात्म्यों का उल्लेख पुराणों में मिलता है। इन माहत्म्यों का इतना आकर्षक वर्णन इसलिए है कि लोगों की रुचि इस ओर आकर्षित हो और वे उपवास के द्वारा प्राप्त होने वाले शारीरिक तथा आत्मिक लाभों को उठावें।

अध्यात्म मार्ग के पथिकों के लिए उपवास साधना को अपनाना आवश्यक है। इससे उनके आत्मिक दोष घटते और आत्मबल बढ़ता चले। उपवास तीन प्रकार के होते हैं। (१) दैनिक, (२) नियत कालीन, (३) विशिष्ट। इन तीनों का विवेचन नीचे किया जाता है।

(१) **दैनिक उपवास**—नित्य जो अन्न ग्रहण किया जाता है, वह उपवास के स्वल्पहार की तरह हो। जिस दिन उपवास होता है उस दिन बीच में कुछ स्वल्पाहार किया जाता है उसके लिए सात्विक, नमक आदि स्वादिष्ट मिश्रणों से रहित आहार लिया जाता है। दैनिक उपवास करने वाले को दोपहर को एक बार पूर्ण आहार अन्नाहार लेना चाहिए। उसमें मिर्च-मसालों का पूर्णरूपेण त्याग रहे। केवल नमक लिया जा सकता है। मीठा लेना हो तो बहुत थोड़ा लेना चाहिए। रोटी में कई अनाजों का मिश्रण न हो एक ही किस्म का अन्न होना चाहिए। रोटी के साथ दूध, दही, छाछ, दाल, साग में से कोई एक चीज ली जा सकती है। कई दालों का, कई सागों का मिश्रण या थाली में कई प्रकार के पदार्थों का होना ठीक नहीं। चावल, दलिया, खिचड़ी आदि के सम्बन्ध में भी यही नियम है कि दो वस्तुओं से अधिक का सम्मिश्रण न हो। भोजन अपने हाथ से बनाया जा सके तो सबसे अच्छा नहीं तो ऐसे विश्वस्त व्यक्ति द्वारा बनाया हुआ तो होना ही चाहिए जो सात्विक प्रकृति का और शुद्ध चरित्र का हो, कारण यह है कि भोजन बनाने वाले की मनोवृत्तियों का आहार पर बड़ा भारी प्रभाव पड़ता है और उसे खाने वाले के मन में भी वैसे ही भाव उत्पन्न होते हैं।

शाम को अन्नाहार न लेकर फल एवं दूध लिया जा सकता है। दैनिक उपवास रखने वालों को केवल एक कालिक आहार पर रहने की आवश्यकता नहीं है। यदि साधक बालक या श्रम जीवी है तो प्रातःकाल भी दूध ले सकता है।

बासी, बुसा, घी, तेल में तला हुआ, गरिष्ठ, बहुत अधिक जलाया या भूना हुआ, मिर्च-मसाले, खटाई-मिठाई, से सरावोर आहार त्याज्य है। इस प्रकार विवेक पूर्वक जो सात्विकता प्रधान आहार लिया जाता है वह फलाहार स्वल्पाहार के समान है। इस प्रकार आहार करता हुआ मनुष्य उपवास के फल को ही प्राप्त होता है।

(२) **नियतकालीन**—किसी निर्धारित समय पर जो उपवास किये जाते हैं वे नियत कालीन कहलाते हैं। एकादशी, अमावश्या, पूर्णमासी, रविवार, शिवरात्रि, नवदुर्गा आदि नियत-कालीन उपवास हैं। दैनिक की नियतकालीनों में अधिक कड़ाई बरती जाती है। इनमें एक ही बार फलाहार करना चाहिए। जो लोग दैनिक उपवास करने की स्थिति में नहीं हैं उन्हें नियतकालीनों को ही अपनाना चाहिए। समय-समय पर निराहार रहने से पेट में संचित मलों का पाचन हो जाता है तथा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

मनोविकारों की शुद्धि होती रहती है। महीने में कम से कम दो उपवास तो अवश्य ही करने चाहिए इसके लिए दोनों पक्षों की एकादशियाँ या अमावश्या पूर्णमासी नियत कर लेनी चाहिए। यदि महीने में चार दिन सम्भव हो तो सप्ताह का कोई एक दिन तेजवृद्धि और प्रतिभा विकास के लिए उत्तम है।

(३) **विशिष्ट**—आत्मशुद्धि के लिए, अपराधों के प्रायश्चित्य स्वरूप अथवा किसी विशेष प्रयोजन के लिए जो उपवास किये जाते हैं। वे विशिष्ठ कहलाते हैं। इनकी कोई मर्यादा नियत रहनी चाहिए। अपनी शक्ति और सामर्थ के अनुसार उनकी अवधि नियत करनी चाहिए। बिल्कुल निराहार व्रत स्वस्थ अवस्था में एक दिन से अधिक न करना चाहिए। दूध या फलों का रस जैसी कोई चीज लेते रहना ठीक है।

उपवास सम्बन्धी कुछ आवश्यक नियम

(१) उपवास के दिन कड़ा शारीरिक या मानसिक परिश्रम नहीं करना चाहिए। उस दिन यथा सम्भव अधिक विश्राम लेना चाहिए।

(२) उपवास के दिन खूब पानी पीना चाहिए बिना इच्छा के भी पीना चाहिए जिससे पेट अच्छी तरह धुल जावे। पानी के साथ नीबू या थोड़ा नमक भी मिला लिया जावे तो पेट की सफाई में और भी मदद मिली है।

(३) उपवास समाप्त करते ही गरिष्ठ चीजें अधिक मात्रा में खाने से उलटी हानि होती है। इसलिए उपवास तोड़ते समय थोड़ी मात्रा में हलकी सुपाच्य चीजें लेनी चाहिए। जितने समय उपवास किया हो, उतने ही समय पीछे भी साधारण आहार पर धीरे-धीरे आने में लगाना चाहिए।

(४) उपवास काल में आवश्यकता होने पर सुपाच्य फल शाक या दूध ही लेना चाहिए। गरिष्ठ पकवान या मिठाइयाँ खाना उपवास व्यर्थ बना देता है।

(५) उपवास काल में आत्मचिन्तन, ईश्वरीय ध्यान स्वाध्याय, सत्संग आदि सात्विकता बढ़ाने वाले कामों में विशेष रूप से समय लगाना चाहिए।

ब्रह्मचर्य-साधन के लिए बाहरी उपचारों की भाँति जैसे खुराक की किस्म और उसकी मिकदार की मर्यादा की जरूरत है वैसी ही उपवास की भी समझनी चाहिए। इन्द्रियाँ ऐसी बलवान हैं कि उन्हें चारों ओर से, ऊपर से, नीचे से, यानी दसों दिशाओं से घेरने पर ही वे वश में रहती हैं। यह सब जानते हैं कि बिना भोजन पाये वे काम नहीं कर सकती। मैं निःशंक भाव से कह सकता हूँ कि इन्द्रिय-दमन के निमित्त इच्छापूर्वक किये गये उपवास से इंद्रियों को वश में करने बड़ी मदद मिलती है।

कितने ही लोग उपवास करते हुए भी जो नाकामयाब रहते हैं उसकी वजह यह मानकर चलना है कि उपवास ही सब कुछ कर देगा—सिर्फ स्थूल उपवास करना और मन से छप्पन भोगों का मजा लूटना है। वे उपवास-काल में इन विचारों का मजा लूटते रहते हैं कि जब उपवास तोड़गें तो क्या-क्या खायेंगे, और फिर शिकायत करते हैं कि स्वादेन्द्रिय (जिह्वा) और जननेन्द्रिय का सयंम नहीं हुआ। उपवास की सच्ची उपयोगिता वहीं होती है जहाँ मनुष्य का मन भी देह-दमन का साथ देता है। मतलब हुआ कि मन में विषयभोग के प्रति वैराग्य होना जरूरी है।

विषयों की जड़ें मन में रहती हैं। उपवास आदि साधनों की मदद तो काफी मिलती है तथापि अनुपात में वह कम होती है। उपवास करते हुए भी मनुष्य का विषयासक्त रहना सम्भव है, लेकिन उपवास के बिना विषयासक्त का जड़ मूल से नाश सम्भव नहीं है, इसलिए ब्रह्मचर्य के पालन में उपवास अनिवार्य अंग-स्वरूप है।

भोजन के सम्बन्ध में सावधानी

थियोसोफिकल सोसाइटी के प्रसिद्ध नेता महात्मा लेडबीटर ने "वस्तु की आन्तरिक दशा" (Hidden Side of Things) नामक एक बहुत ही विवेकपूर्ण पुस्तक लिखी है, उसमें वे एक स्थान पर कहते हैं—जो कुछ भोजन हम खाते हैं, वह पाचन के उपरान्त शरीर का एक भाग बन जाता है। उस भोजन पर जिस प्रकार के सूक्ष्म प्रभाव अंकित होते हैं, वे भी हमारे शरीर में बस जाते हैं। लोग खाद्य वस्तुओं की केवल बाहरी सफाई पर ध्यान देते हैं किन्तु वे यह भूल जाते हैं कि बाहरी सफाई पर ध्यान देना जितना आवश्यक है, उससे कहीं अधिक आवश्यक उसकी आन्तारिक स्वच्छता पर ध्यान देना है। भारतवर्ष में भोजन की आन्तरिक स्वच्छता को अधिक महत्व दिया जाता है। हिन्दू लोग अपने से नीच विचार के लोगों के हाथ का बना हुआ या उनके साथ बैठकर खाना इसलिये ना पसंद करते हैं, कि उनके हीन विचारों से प्रभावित होने से भोजन की पवित्रता जाती रहेगी। विलायत में लोग बाहरी सफाई को ही पर्याप्त समझते हैं, वे नहीं जानते कि केवल इतने से ही भोज्य पदार्थ उत्तम गुण वाले नहीं बन जाते।

भोजन पर उसके बनाने वाले का सबसे अधिक प्रभाव पड़ता है। विज्ञान बताता है कि मानवीय विद्युत का सबसे अधिक प्रभाव अँगुली को पोरुओं में से प्रवाहित होता है। जिस भोजन को बनाते समय बार-बार हाथ से छुआ गया है, वह उसके अच्छे या बुरे असर से अवश्य ही प्रभावान्वित होगा। यह सच है कि अग्नि पर पकने से उसके बहुत से दोष जल जाते हैं, तो भी वह सम्पूर्ण प्रभाव से रहित नहीं हो जाता। केवल छूने से ही भोजन पर वैयक्तिक विद्युत असर नहीं पड़ा वरन् पास बैठने वालों से भी वह आकर्षित होता है, क्योंकि भोजन मनुष्य की प्रिय वस्तु है और एक व्यक्ति जब दूसरे की थाली पर विशेष दिलचस्पी के साथ दृष्टि डालता है तो उस पर उसकी दृष्टि का असर पड़ता है। यदि कोई दुःखी होकर किसी को भोजन दे तो उसे खाने वाला जरूर रोगी हो जायगा ऐसा देखा जाता है। किसी के हाथ से छीन कर या समाज में बैठ कर दूसरों के दिये बिना जो खाता है वह भी उन खाद्य पदार्थों के साथ एक प्रकार की ऐसी विद्युत ले जाता है जो करीब-करीब विष का काम करती है और उससे वमन तक हो सकती है। एकान्त स्थान में या चौके में बैठकर भोजन करना इस दृष्टि से बहुत ही अच्छा है कि उस पर भीड़-भाड़ की दृष्टि नहीं पड़ती।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

हाँ, एक ही घर के या एक ही प्रकार के विचारों वाले लोग पास-पास बैठ कर भोजन कर सकते हैं, क्योंकि उनमें एक-दूसरे के प्रतिपूर्ण सहानुभूति होती है और जातीय शीत स्वभाव बहुत कुछ मिलते-जुलते हैं, किन्तु दूसरे लोगों में ऐसा नहीं हो सकता। बनाने वाले या परोसने वाले के शारीरिक और मानसिक गुण, हाथों का प्रभाव, अनिवार्यत: भोजन पर पड़ता है। माता, बहन या पत्नी के हाथ का परोसा हुआ रूखा-सूखा भोजन बाजार के हलुवे से अधिक गुणकारक होता है। क्योंकि उनकी प्रेम भावनाएँ भी उनमें लिपट आती हैं, शबरी के बेरों की श्रीरामचन्द्र जी ने और विदुर के शाक की भगवान कृष्ण ने बड़ी प्रशंसा की है। यह प्रशंसा उनका मन बढ़ाने के लिए ही न थीं, वरन् सत्य भी थीं। प्रेम की सद्भावनाओं में इतने रुचिर तत्व होते हैं कि उनसे साधारण भोजन भी बहुत उच्चकोटि का बन जाता है। होटलों में खानेवाले व्यक्ति हमेशा पेट की शिकायत करते हैं। कहते रहते हैं—होटलों में रोटी कच्ची मिलती है, शाक खराब मिलता है, इसलिए वह हमें हजम नहीं होती। किन्तु वास्तविक कारण दूसरा ही है। होटल वालों की नीयत यह रहती है कि ग्राहक कम भोजन खावे जिससे हमें अधिक लाभ हो। यह भावनाएँ भोजन के साथ पेट में पहुँचती हैं और ऐसी-परिस्थिति उत्पन्न करती हैं कि खाने वाले की भूख घट जावे। बाजारों में बिकने वाली मिठाइयाँ या अन्य दूसरी खाद्य वस्तुएँ प्रदर्शनार्थ रखी जाती हैं। रास्ता निकलने वाले अधिकांश लोगों का मन उन्हें देखकर ललचाता है, परन्तु वे कारणवश उन्हें खरीद नहीं सकते। कई बार छोटे बच्चे और गरीब लोग उनकी ओर बड़ी ललचाई हुई दृष्टि से देखते हैं परन्तु अपनी बेवशी के कारण मन मारकर दु:खी होते हुए देखते हुए चले जाते हैं। ऐसे व्यक्तियों की यह बेवशी भरी इच्छाएँ उस मिठाई आदि में प्रचुरमात्रा में लिपट जाती हैं। अनेक मनुष्यों की ऐसी भावनाओं को वह बाजारू भोजन अपने में इकट्ठा करता रहता है कुछ समय उपरान्त उनका एक बोझ जमा होजाता है और पूर्णत: अखाद्य बना देता है। 'बाजारू भोजन से बीमार बड़ते हैं' यह अनुभव बिल्कुल सत्य है। इसका कारण और कुछ नहीं हो सकता है। घृत, मिष्ठान जैसी बलवर्द्धक वस्तुओं से बने हुए पदार्थ भी हानि पहुँचावे तो इसका भला इसके अतिरिक्त और क्या कारण होगा?

जब थाली सामने आवे तो थोड़ा-सा जल लेकर उसके चारों तरफ फेर दो और एक मिनट तक आँखें बन्द करके इस सामग्री को परमात्मा के समर्पण करते हुए मन ही मन प्रार्थना करो कि—"हे प्रभो! यह भोजन आपको समर्पित है। इसे पवित्र और अमृतमय बना दीजिए।" जब नेत्र खोलो तो विश्वास करो कि तुम्हारी प्रार्थना स्वीकार कर ली गई है और उसमें अब केवल लाभकारी तत्व ही रह गये हैं। सच्चे हृदय से प्रभु की प्रार्थना करके और उसमें पवित्रता एवं अमृतत्व की भावना के उपरान्त जो भोजन किया जाता है, वह बहुत से हानिकारण प्रभावों से मुक्त हो जाता है और स्वास्थ्य की उन्नति में सहायता करता है। आहार की सात्विकता को बनाये रखने की दृष्टि से निम्नलिखित बातों का विशेष ध्यान रखना चाहिए—

(१) भोजन की सबसे पहली शर्त यह है कि वह उत्तम और श्रेष्ठ कमाई का हो। जो भोजन अधर्म अथवा किसी पाप कर्म द्वारा उपार्जित कर्म से प्राप्त किया जाता है उसका परिणाम हानिकारक होता है।

इसके सम्बन्ध में एक दृष्टान्त दिया जा रहा है कि एक महात्मा किसी राजा के यहाँ आया करते थे और वहाँ उनका बड़ा सम्मान होता था। एक दिन राजा के यहाँ भोजन करने के उपरान्त उन्होंने कुछ देर विश्राम किया। चलते समय उनकी दृष्टि स्नानगृह की खूंटी पर टंगे रानी के हार पर पड़ी जिसे वह संयोगवश स्नान करते समय वहाँ भूल गई थी। महात्मा ने उसे वहाँ से उतार कर अपने वस्त्रों में रख लिया और अपने स्थान को चले गये। यहाँ जब रानी को हार का ख्याल आया तो उसकी खोज होने लगी और सेवकों ने बहुत दौड़-धूप की पर कोई फल न निकला। एक दिन दोपहर के समय वे ही महात्मा हार को लेकर राज दरबार में आये और उसे लौटा कर उन्होंने अपना अपराध स्वीकार किया। साथ ही यह भी कहा कि मुझे इसका न्यायोचित दण्ड दिया जाय, जिससे मैं इस पाप से छुटकारा पा सकूँ। उनके बहुत आग्रह करने पर उस युग के कानून के मुताबिक उनके दोनों हाथ काट डाले गये। पर राजा को इस बात का आश्चर्य बना रहा कि ऐसे संसार में वीतराग स्वभाव के महात्मा ने ऐसा काम क्यों किया? मंत्रियों ने उनको सुझाया कि हो सकता है उस दिन महात्मा जी ने ऐसा भोजन कर लिया होगा जिससे उनके चित्त में इस प्रकार का दूषित विकार उत्पन्न हो गया। जब इस विषय में अधिक जाँच की गई तो मालूम हुआ कि उस दिन जो भोजन बना था उसमें वह अन्न सम्मिलित था जो सरकारी पुलिस ने चोरों के गिरोह को पकड़ कर बरामद किया था। उसके स्वामी का पता न लगने के कारण उसे राज्य-भंडार में जमा कर लिया गया और उत्तम श्रेणी का देखकर उसमें से कुछ चावल राजा के भोजनालय में भेज दिया गया।

सम्भव है यह दृष्टान्त कल्पित ही हो और केवल शिक्षा देने की गरज से बनाया गया हो, पर इसमें सन्देह नहीं कि खोटी कमाई का भोजन मनुष्य के मन में अच्छे संस्कार उत्पन्न नहीं कर सकता। उसके प्राभाव से चित्त में अवश्य ही खोटे भाव उत्पन्न होंगे और कार्य रूप में भी उनका परिणाम बुरा ही होगा।

(२) भोजन का सादा, ताजा और सब तरह का स्वच्छ होना भी परमावश्यक है। तरह-तरह के जायकेदार भोजन पाचन शक्ति पर भार स्वरूप हो जाते हैं। इसके सिवाय ऐसा भोजन 'स्वाद' के कारण प्राय: अधिक भी कर लिया जाता है जो अनपच उत्पन्न करके चित्त को बिगाड़ता है। इसके सिवाय माँस, मदिरा, लहसुन, प्याज और अधिक मसालेदार, भोजन सदैव उत्तेजक होता है और उससे मनुष्य के मन में तामसी विचार उत्पन्न होते हैं। इसलिये जो लोग भजन, या जप में मन को एकाग्र करना चाहते हैं उनके लिये ऐसा भोजन वर्जित है।

(३) भोजन बनाने और परोसने वाले शुद्ध आचरण के और उच्च विचारों के व्यक्ति हों। क्योंकि भोज्य पदार्थों में इनका हाथ बार-बार लगता है और उसका प्रभाव पड़ता है। वह

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

प्रभाव शरीर और मन पर भी प्रकट होता है। सबसे उत्तम भोजन तो वही माना जाता है जो अपने से उच्च आचरण वाले व्यक्ति के द्वारा तैयार किया गया हो। इसलिए कदाचित प्राचीन समय में ब्राह्मणों के हाथ का भोजन सर्वश्रेष्ठ माना गया था। पर अब अवस्था बदल गई है और जो ब्राह्मण रसोइये का काम करते हैं उनके आचरण प्रायः पतित हो गये हैं, वे नशा करते हैं और गन्दे भी बहुत रहते हैं। इसलिये उनके हाथ का भोजन अब लाभ के बजाय हानिकारक ही सिद्ध होता है।

ऐसी दशा में सबसे अच्छा नियम यह है कि अपना भोजन अपने ही हाथ से बनाया जाय या अपनी माता के हाथ का बना भोजन किया जाय। माता का स्नेह ऐसा उच्चकोटि का होता है कि उसके हाथ के भोजन से हानि की सम्भावना की ही नहीं जा सकती। यदि माँ वृद्ध और असमर्थ हो तो फिर पत्नी के हाथ का भोजन करना चाहिये पर उसको भी धार्मिक और पवित्र विचारों का बना लेना आवश्यक है। उसको नीच संगति से सदैव पृथक रखना चाहिये।

(४) भोजन यथा सम्भव एकान्त में करना चाहिए जहाँ उस पर किसी की दृष्टि न पड़े। मेस्मरेजिम वालों ने सिद्ध करके दिखा दिया है कि मनुष्य की आँख में बिजली की शक्ति है, जिसका भला या बुरा प्रभाव सामने के पदार्थ पर पड़ सकता है। बहुत से लोगों की दृष्टि प्राकृतिक रूप से ऐसी खराब होती है कि उससे भोजन बिगड़ जाता है अथवा उसमें दूषित प्रभाव पैदा हो जाता है। ऐसी आशंका से बचने के लिये भोजन एकान्त में करना लाभकारी है।

(५) भोजन सामने आने पर पहले अपने इष्टदेव या गुरू मूर्ति का ध्यान करें और उनको मानसिक भोग लगा कर, भोजन को उनका प्रसाद समझ कर ग्रहण करें। भोजन का थोड़ा-सा अंश कुत्ता, चिड़ियों आदि प्राणियों के लिये निकाल थाली के बाहर भूमि पर रख देना चाहिये। जो इस तरह भोजन करता है वह प्रायः भोजन में इन सब नियमों का पालन करने से स्वास्थ्य और मन दोनों की उन्नति प्राप्त करता है और आत्मिक-साधन में सुविधा रहती है।

आध्यात्म साधना में शुद्ध एवं सात्त्विक आहार की क्या भूमिका होती है, इस संदर्भ में निम्न प्रसंग को पढ़ कर जाना सकता है।

श्री गुरूगोविन्द सिंह जी महाराज के पास खूब अशर्फियाँ थी, खजाना था फिर भी वह यवनों से युद्ध होते समय अपने लड़ाकू शिष्यों को मुट्ठी भर चने देते थे। एक दिन उन मनुष्यों में से एक मनुष्य ने श्री गुरूगोविन्दसिंह जी की माता जी से जाकर कहा कि माता जी—हमें यवनों से लड़ना पड़ता है और गुरूगोविन्दसिंह जी ने पास अशर्फियाँ हैं, खजाने हैं फिर भी वह हमें एक मुट्ठी चने ही देते हैं और लड़वाते हैं। माताजी ने श्री गुरूगोविन्दसिंह जी को अपनी गोद बैठा कर कहा कि—पुत्र यह तेरे शिष्य तेरे पुत्र के समान हैं फिर भी तू इन्हें एक मुट्ठी चने ही देता है ऐसा क्यों करता है?

श्री गुरूगोविन्दिसिंह जी ने माता जी को उत्तर दिया—माता क्या तू मुझे—अपने पुत्र को कभी विष दे सकती है?

माता जी ने कहा—नहीं।

गुरूगोविन्दिसिंह जी ने कहा—माता मेरे यहाँ पर जो अशर्फियाँ हैं, खजाने हैं वह इतने पवित्र नहीं हैं उनके खाने से इनमें वह शक्ति नहीं रहेगी। जो मुट्ठी भर चने खाने से इनमें शक्ति है वह फिर न रहेगी और फिर यह लड़ भी नहीं सकेंगे।

बीस अँगुलियों की कमाई का, धर्म उपार्जित, भरपूर बदला चुका कर ईमानदारी से प्राप्त किया हुआ अन्न ही मनुष्य में सद्बुद्धि उत्पन्न कर सकता है। जो लोग अनीति युक्त, अन्न ग्रहण करते हैं उनकी बुद्धि असुरता की ओर ही प्रवृत्त होती है। चित्रकूट में हमने एक महात्मा को खेती करते देखा, एक महात्मा दरजी का काम करते थे। परिश्रम और ईमानदारी के साथ कमाये हुए अन्न से ही शुद्ध बुद्धि हो सकती है और तभी भगवद् भजन, साधना, कर्त्तव्यपालन, लोकसेवा आदि सात्विक कार्य हो सकते हैं।

● ●

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

साधना में मन की मूल भूमिका

समस्त सफलताओं का मूल—मन

पदार्थ जगत की अपनी सत्ता है। किन्तु व्यक्ति चित्त में पदार्थों की प्रक्रिया और प्रभाव मात्र बाह्य पदार्थ पर निर्भर नहीं। उसमें मानवी चेतना के ढाँचे और स्तर का भी हाथ रहता है। इस प्रकार व्यक्ति चित्त का संसार, बाह्य संसार का यथावत् प्रतिरूप नहीं होता। अपितु वह एक अनौखा संसार होता है। उस चित्त में भरे संसार की शुद्धि ही साधना का विषय है। वह शुद्धि पदार्थ जगत के प्रति दृष्टिकोण को परिमार्जित-परिवर्तित करती है। साथ ही मनःशक्ति से पदार्थ जगत पर भी सुनिश्चित प्रभाव पड़ता है। इस संशोधन और शक्ति उपार्जन की प्रक्रिया ही मनोमय कोश की साधना है।

मनोयोगपूर्वक अध्ययन करने वाले छात्र ऊँची श्रेणी में उत्तीर्ण होते हैं। दत्तचित से कृषिकर्म में निरत किसान अच्छी फसल काटते हैं। उत्साह भरे मन के व्यायामपरायण लोग पहलवान कहलाते हैं और कुश्ती लड़ते तथा जीतते हैं। सूझ-बूझ और तत्परता से भरा-पूरा मन व्यापारिक सफलतायें प्राप्त करने का उपकरण सिद्ध होता है। निष्ठापूर्ण ही मन साधना में सिद्धि दिलाता है। तन्मय चित्त कलाकार दर्शकों का मन मोहते हैं। विभिन्न क्षेत्रों की सफलतायें उन प्रयोजनों में लगाई जाने वाली मनःशक्ति की प्रखरता, तीव्रता, एकाग्रता तथा तल्लीनता पर निर्भर करती हैं। उपकरण पदार्थों और सुविधाओं की समानता के बावजूद मनोयोग की तीव्रता-मन्दता के भेद से भिन्न-भिन्न परिमाण प्राप्त होते हैं।

पदार्थ में केवल अस्तित्व है। जीवन उससे भिन्न है। इसीलिए जीवन के नियम पदार्थ के नियमों से भिन्न होते हैं। पदार्थों की कोई स्वतन्त्र संकल्प शक्ति नहीं होती। जीवन का सारा ही विकास संकल्प शक्ति के कारण सम्भव हुआ है। यह संकल्प ही जीवधारियों की विशेषता है। मनुष्य सुविकसित चेतना स्तर का स्वामी इसीलिए माना जाता है कि उसकी संकल्प शक्ति अधिक सक्रिय है। संकल्प शक्ति की न्यूनाधिकता ही प्रगति के भिन्न-भिन्न स्तर का कारण बनती है। अंधकार से प्रकाश की ओर मृत्यु से अमरत्व की ओर संकल्प शक्ति ही ले जाती है।

प्रचण्ड संकल्प शक्ति के अभीष्ट परिणाम अवश्यम्भावी हैं। योगवाशिष्ठ में कहा गया है—

दृढ़भावनया चेतो यद्यथा भावयत्यलम्।
तत्तत्फलं तदाकारं तावत्मनं प्रपश्यति॥

(योग० ४/२१/५६-५७)

अर्थात्—हे राम! यह मन दृढ़ भावना वाला होकर जैसी कल्पना करता है, वह उसी मात्र में उतने ही समय तक, वैसे ही फल का अनुभव करता है।

अतः प्रगति साधना का मुख्य क्षेत्र संकल्पक मन ही है। मन की उपेक्षा कर साधना सम्भव नहीं। जो लोग मन के इस महत्व को भुलाकर, अशुद्ध या अनिश्चित मन से साधना मार्ग में प्रविष्ट होते हैं, वे चाहे शरीर को जितना कस लें—तपा लें, सफलता नहीं प्राप्त कर सकते। व्रत, उपवास, तप-तितीक्षा, शीत आदि का सहन किस मनोभूमि के साथ किये जा रहे हैं। इसकी भी सजगता बरतनी चाहिए। मात्र तन को तपाने, शरीर को कसने से शारीरिक स्तर के ही थोड़े-बहुत लाभ दृढ़ता आदि के रूप में मिल सकेंगे।

उस स्थिति में कठोर शारीरिक तप के बाद भी सफलता न मिलने का दोष साधनाक्रम को देने की मूढ़ता भी कुछ लोग कर सकते हैं। किन्तु मन की उपेक्षा करके की जाने वाली समस्त साधनायें निष्फल ही रहती हैं, यह तथ्य है। यह कभी भी नहीं भूलना चाहिए कि साधना का आरम्भ मन से होता है—तन से नहीं।

मनुष्य को आगे बढ़ने, ऊँचे उठने की प्रेरणा और शक्ति कहाँ से मिलती है? एक ही उत्तर है मन से। शास्त्रकारों ने मन को ही बन्धन और मोक्ष का कारण बताया है—"मन एवं मनुष्याणां कारण बंध मोक्षयो।" मन में प्रचण्ड प्रेरक शक्ति है। इस प्रेरक शक्ति के द्वारा ही वह अपने कल्पना चित्रों को इतना सजीव कर देता है कि मनुष्य बालक की तरह उन्हें प्राप्त करने, साकार करने के लिए दौड़ पड़ता है। बच्चे जिस तरह रंग-बिरंगी तितलियों के पीछे दौड़ते हैं, तितलियाँ जिधर जाती हैं उधर ही भागते हैं, उसी प्रकार मन में जैसी कल्पनाएँ, इच्छाएँ, वासनाएँ, आकांक्षाएँ और तृष्णाएँ उठती हैं उसी ओर मनुष्य क्रियाशील हो जाता है।

इसीलिए कहा गया है कि मन बड़ा चंचल है। वह किसी एक वस्तु की ओर ध्येय पर केन्द्रित नहीं होता। कोई एक सुन्दर कल्पना आती है तो उसके लिए ताने-बाने बुनने लगता है। उसके बाद कोई और नई सूझ आती है तो वह पिछली बातों को भूलकर उनमें रम जाता है और उन्हें पूरा करने के लिए ताना-बाना बुनने लगता है।

ऐसी बात नहीं है कि मन यह सब अकारण या निरुद्देश्य करता हो। मन की इस चंचलता के पीछे सुख की आकांक्षा ही निहित है। सुख की आकांक्षा मन के अन्तराल में प्रधान रूप से

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

काम करती है, इसलिए वह जिस बात में, जिस दिशा में, सुख प्राप्ति की कल्पना कर सकता है, जहाँ समझता है कि यहाँ सुख प्राप्त हो सकता है वहाँ अपनी कल्पना के अनुसार उसे एक सुन्दर और मनमोहक रूप प्रदान करता है तथा रंग-बिरंगी योजनाएँ तैयार करता है। मस्तिष्क उसी की ओर लपकता है, शरीर उसी दिशा में काम करने लगता है। इसके साथ-साथ वह नई-नई कल्पनाएँ भी करने लगता है। एक योजना पूरी नहीं हो पाता है कि उससे भी एक नई योजना और तैयार हो जाती है, पहली को छोड़कर नई में प्रवृत्ति हुई, फिर वही क्रम आगे भी चला। उसे छोड़कर और नया आयोजन किया। इस प्रकार अनेक अधूरी योजनाएँ पीछे छूटती जाती हैं और नई बनती जाती हैं। अनियन्त्रित मन का यही क्रम, यही क्रियाकलाप होता है। वह न जाने किन-किन तृष्णाओं में भटकता और असफलताओं की, अधूरे कार्यक्रमों की अगणित ढेरियाँ लगाकर जीवन को मरघट जैसा कर्कश बना देता है। अर्जुन ने भगवान् से मन की इस चंचलता को सुख प्राप्ति में बाधक बताते हुए कहा है—

योऽयं योगस्त्वया प्रोक्तः साम्येन मधुसूदन।
एतस्याहं पश्यामि चंचलत्वात्स्थितिं स्थिराम्॥
चंचलं हि मनः कृष्ण प्रमाथि बलवद् दृढम्।
तस्याहं निग्रहं मन्ये वायोरिव सुदुष्करम्॥

(गीता ६/३३,३४)

अर्थात्—हे मधुसूदन! जो यह योग आपने समत्व भाव से कहा है, इसकी मैं मन के चंचल होने से बहुत काल तक ठहरने वाली स्थिति को नहीं देखता। क्योंकि हे कृष्ण यह मन बड़ा चंचल और प्रमथन स्वभाव वाला तथा बड़ा दृढ़ और बलवान है, इसलिए उसका वश में करना मैं वायु की भाँति अति दुष्कर समझता हूँ।

भगवान कृष्ण ने भी मन के निग्रह को दुष्कर बताते हुए उसकी उच्छृंखलता, चंचलता को आत्म-कल्याण के पथिकों के लिए हानिकर बताया है—

यततो ह्यपि कौन्तेय पुरुषस्य विपश्चितः।
इंद्रियाणि प्रमाथीनि हरन्ति प्रसभं मनः।
इंद्रियाणां हि चरतां यन्मनोऽनु विधीयते।
तदस्य हरति प्रज्ञां वायुर्नावमिवाम्भसि।

(गीता २-६०,६७)

अर्थात्—हे कौंतेय ! अभ्यासशील बुद्धिमान पुरुष के भी मन को ये उद्दण्ड इन्द्रियाँ बलपूर्वक हर लेती हैं।

जैसे वायु जल में नाव को हर लेती है, वैसे ही इन्द्रियों के पीछे चलने वाला मन पुरुष का विवेक हरण कर लेता है।

भगवान् बुद्ध ने मन की चंचलता के सम्बन्ध में कहा है—

यो सहस्सं सहस्सेन संगामे मानुसे जिने।
एकं च जेय्य अतानं स वे संगाम जुतयो॥

(धम्मपद १०३)

अर्थात्—मनुष्य हजारों लोगों को युद्ध में हजारों बार जीत ले, पर सबसे बड़ा विजेता वही है जिसने एक अपने पर विजय प्राप्त कर ली हो।

मन की चंचलता स्वाभाविक है और उसे निग्रहीत कर पाना भी दुष्कर है, परन्तु ऐसा नहीं है कि उस पर विजय प्राप्त की ही नहीं जा सके। मन की चंचलता और निग्रह के हानि-लाभ को यदि समझा जा सके तो निश्चित रूप से मनःसंयम की दिशा में अग्रसर हुआ जा सकता है। सूर्य की सामान्य धूप शरीर पर पड़ती है, कठिन गर्मी में भी उसे सहा जा सकता है। क्योंकि किरणें बिखरी हुई होती हैं, इसलिए वे अपना सामान्य ताप ही दे पाती हैं। किन्तु नतोदर शीशे के लेन्स से एक इन्च स्थान पर पड़ने वाली धूप को यदि केन्द्रित कर लिया जाये तो उस ताप को शरीर का कोई भी अंग सहन नहीं कर सकेगा। कोई भी वस्त्र उसमें बिना जले न रहेगा। उससे कहीं भी अग्नि पैदा की जा सकती है। आजकल तो इसी पद्धति से सौर ऊर्जा के व्यापक उत्पादन की बात सोची जा रही है और उससे विविध कार्य सम्पन्न करने की योजनाएँ बनाई जा रही हैं।

सूर्य किरणों की केन्द्रीभूत शक्ति के समान ही निग्रहीत मन की सामर्थ्य भी अपार है। अस्त-व्यस्त मनोदशा में जीवन का कोई प्रयोजन पूरा नहीं होता। किन्तु यदि उसे एक लक्ष्य पर ही स्थिर कर दिया जाये तो उससे साधारण जीवन में भी कई गुनी शक्ति दिखाई देने लगती है और मनचाही कल्पना पूरी की जा सकती है, योजनाएँ कार्यान्वित की जा सकती हैं और विभिन्न क्षेत्रों में सफलताएँ अर्जित की जा सकती हैं।

आत्मकल्याण के क्षेत्र में तो मनःसंयम और भी आवश्यक है। शास्त्रों में मन को मनुष्य का शत्रु और मन को ही मनुष्य का मित्र बताया गया है तथा वश में किया हुआ मन अमृत के समान, कल्पवृक्ष के समान और अनियन्त्रित मन को हलाहल विष के समान बताया गया है। इसका कारण यह है कि मन के ऊपर जब कोई नियन्त्रण या अनुशासन नहीं होता तो वह सबसे पहले ऐन्द्रिक भोगों में ही सुख खोजता है और उनके लिए दौड़ता है। जीभ से तरह-तरह के स्वाद चाटने की लपक उसे सताती है। रूप यौवन के क्षेत्र में काम-किलोल करने के लिए इन्द्र के दरबार की अप्सराओं को कल्पना जगत में ला कर वह खड़ा कर देता है। नृत्य, गीत, वाद्य, मनोरंजन, सैर सपाटा, मनोहर दृश्य, सुवासित पदार्थ उसे लुभाते हैं और वह उनके निकट अधिक से अधिक समय बिताना चाहता है। सरकस, थियेटर, सिनेमा, खेल, क्लब आदि के मनोरंजन क्रीड़ास्थल उसे रुचिकर लगते हैं। शरीर को सजाने या आराम देने के लिए विलासिता के उपकरण जुटाना उसे आवश्यक लगता है। इसका एक कारण यह भी है कि इन सब बातों में वह अपने अहंकार की पूर्ति समझता है।

अस्तु, मन को इस व्यर्थ निरुद्देश्य भाग-दौड़ को रोक कर उसे निग्रहीत करना चाहिए। सारी सिद्धियों का मूल मनःसंयम

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

में है। परन्तु वह केवल साधारण पुरुषार्थ से मिलने वाली नहीं है। मन की संयम साधना किसी भी पुरुषार्थ से, योग से बढ़ कर है। कहा जा चुका है कि मन की शक्तियाँ विलक्षण हैं। संसार में जिस किसी ने भी जो कुछ उन्नति और उत्कर्ष की स्थिति प्राप्त की है उसके मूल में मन की ही शक्ति विद्यमान है। मनुष्य का सुख-दुःख, बन्धन और मोक्ष भी मन के आधीन है। संसार में ऐसा कोई स्थल नहीं जहाँ मन न जा सके, लोक और परलोक में भी मन क्षण भर में जा सकता है। प्रत्यक्ष प्रमाणों से प्राप्त होने वाला ज्ञान भी मन के द्वारा ही प्राप्त होता है। इसकी महत्ता का विवेचन करते हुए ऋषियों ने कहा है, 'रथ चक्र की नाभि में जिस प्रकार पहियों के अरे प्रतिष्ठित हैं, उसी प्रकार ऋक, यजुः और सामवेद का ज्ञान मन में प्रतिष्ठित है' (शुक्ल यजुर्वेद ३४। ५)। यदि मन शुद्ध पवित्र और संकल्पवान बन जाये तो जीवन की दिशाधारा ही बदल जाये। इसीलिए कहा गया है कि जिसने मन को जीत लिया उसने सारा संसार जीत लिया।

मन एव मनुष्याणां कारणं बन्ध मोक्षयो

घटना २१ जनवरी, १७९३ की है। मादाम लुहरवेट अपने ४ वर्षीय पुत्र आरमण्ड को लेकर फ्रान्स के सम्राट लुई सोलहवें को दिया जाने वाला मृत्युदण्ड देखने गयीं। लुई सोलहवें की हत्या इतनी नृशंसतापूर्वक की गयी कि वहाँ का वीभत्स दृश्य देखकर आरमण्ड बहुत सहम गया। मादामलुहरवेट अपने बच्चे को लेकर घर लौट आयीं और आरमण्ड खेलने लगा। खेलते-खेलते उसे वह वीभत्स दृश्य याद आया और अचानक बेहाश होकर गिर पड़ा। बेहोश आरमण्ड को अस्पताल ले जाया गया। डॉक्टर ने जाँच की और बताया कि बच्चे के मन पर किसी घटना का बहुत अधिक प्रभाव पड़ा है।

आरमण्ड होश में तो आ गया पर उस घटना का प्रभाव उसके मन मस्तिष्क पर इस बुरी तरह हावी हो गया कि वह सो नहीं सका। एक दिन, दो दिन, सप्ताह, दो सप्ताह, उपचार किया गया। महीनों तक ट्रैंकुलाइजर्स (नींद की औषधि) दी गयी, मालिश भी की गयी। किन्तु नींद नहीं आयी तो नहीं ही आयी।

माता-पिता को इस बात की चिन्ता हुई कि उनके बेटे के स्वास्थ्य पर न सोने के कारण प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा। एक-दो दिन ही न सोने से मन उद्विग्न हो उठता है। विक्षिप्तता आने लगती है। सामान्य व्यक्ति यदि आठ घण्टे प्रतिदिन नींद न ले तो उन्हें अपना सामान्य जीवन क्रम भी चलाना कठिन हो जाये। परन्तु आरमण्ड को देखकर यह सारी धारणाएँ निर्मूल सिद्ध हुई।

न सोने के बावजूद भी आरमण्ड नियमित रूप से पढ़े, वे और लोगों की तरह शारीरिक श्रम करते। इतना ही नहीं पढ़-लिखकर वकील बन गये। रात में जब लोग सो जाया करते तब भी वह मुकदमों के मजबूत तैयार किया करते। आरमण्ड जैक्विस के नाम से विख्यात उपर्युक्त वकील जीवन के अन्तिम क्षणों तक नहीं सो पाये। ७१ वर्ष की आयु में आरमण्ड की मृत्यु सन् १८६४ में हुई। इस बीच उन्हें एक क्षण को भी नींद नहीं आयी।

इस तरह की और कई घटनाओं को संकलित करने और उनका अध्ययन करने के बाद डॉ. सोलेमन ने एक पुस्तक लिखी है—"माइण्ड मिस्ट्रीज एण्ड मिरकल्स"। इस पुस्तक में उन्होंने लिखा है कि मन एक बहुत ही सूक्ष्म, रहस्यमयी और अद्‌भुद शक्तिशाली सत्ता है। उसके रहस्यों को समझ पाना अति दुष्कर है। भारतीय तत्वदर्शन में तो मन को ही सब सफलता-असफलताओं का मूल कहा है। यहाँ तक कि उसे ही बन्धन और मोक्ष का कारण कहा गया—"मन एवं मनुष्याणां कारणं बन्ध मोक्षयो" अर्थात् बन्धन और मुक्ति का कारण यह मन ही है।

उपरोक्त घटना का विश्लेषण करते हुए डॉ. सोलेमन ने लिखा है—"लुई को दिये गये मृत्युदण्ड से आरमण्ड की मनश्चेतना इतनी आतंकित या विचलित हो गयी थी कि उसने ७१ वर्ष की आयु तक आरमण्ड को सोने नहीं दिया। परिस्थितियों और घटनाओं से प्रभावित मन शरीर को किस प्रकार नचाता है, इसके उदाहरण तो आये दिन देखने में आते ही हैं। क्षुब्ध स्थिति में लटका हुआ विवर्ण चेहरा, चिन्ता और परेशानी के समय नींद का उड़ जाना, प्रसन्नता के समय खिल उठना आदि बातें मन और शरीर के सम्बन्धों को प्रमाणित करती हैं।"

यह तो सामान्य जीवन की छोटी-छोटी बातें हैं जिनमें मन का शरीर पर प्रभाव परिलक्षित होता है। अन्यथा मनुष्य का मन बड़ा समर्थ और बलवान है। भगवान् श्रीकृष्ण ने भी कहा है—

असंशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहंचलम्।

(गीता, ६। ३५)

अर्जुन! निस्सन्देह यह मन चंचल और कठिनता से वश में होने वाला है। सभी शास्त्रकारों और योगी सिद्ध महापुरुषों ने मन को समस्त शक्तियों का भण्डार निरूपित करते हुए इसको वश में करना आवश्यक बताया है क्योंकि जीवसत्ता और ब्रह्मसत्ता के बीच यदि कोई चेतन सत्ता काम करती है, उन्हें मिलाती है या विलग करती है तो वह मन ही है।

मन की इस शक्ति को भारतीय महर्षि मुनियों ने पहले ही जान लिया था। आधुनिक विज्ञान भी अब उसकी प्रचण्ड सामर्थ्य को स्वीकार करने लगा है। साइकोलॉजी, पेरा-साइकोलॉजी, मेटा फिजिक्स और फेथहीलिंग आदि विज्ञान की धारायें मनःशक्ति के ही अध्ययन और शोध की धारायें हैं। इसे दुर्भाग्य ही कहना चाहिए कि जिस तरह मनुष्य ने शरीर को भोग की वस्तु मानकर अपने आपको महान आध्यात्मिक सुख सम्पदाओं से वंचित कर लिया है। उसी प्रकार मन जैसी प्रचण्ड शक्ति का उपयोग भी वह केवल लौकिक स्वार्थों और इन्द्रिय भोगों तक ही सीमित रखकर उसे नष्ट करता रहता है।

मन भौतिक शरीर की चेतना शक्ति है। आई के शक्ति सिद्धान्त के अनुसार एक परमाणु से ३,४५,९६० लाख कैलोरी शक्ति उत्पन्न हो सकती है वस्तुतः एक परमाणु में कितनी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

शक्ति है इसका तो अभी ठीक-ठीक पता भी नहीं चलाया जा सका है क्योंकि इस क्षेत्र में नित नये रहस्य खुलते जा रहे हैं। फिर भी पदार्थ को शक्ति में बदलने की जितनी सम्भावनायें सामने आयी हैं उनके अनुसार एक पौण्ड अर्थात् ४५० ग्राम पदार्थ की शक्ति १४ लाख टन कोयला जलाने पर प्राप्त होने वाली शक्ति होगी।

यद्यपि पदार्थ को पूरी तरह शक्ति में बदल पाना अभी सम्भव नहीं हुआ है। यदि वह सम्भव हो जाये तो ४५० ग्राम कोयले से सम्पूर्ण अमेरिका के लिए एक माह तक चलने वाली बिजली तैयार हो सकती है। विज्ञान के लिए पदार्थ को शक्ति में रूपान्तरित करना भले ही सम्भव न हुआ हो परन्तु परमात्मा ने मनुष्य शरीर को इस प्रकार सृजा है कि उसके पास शरीर की विद्युत शक्ति मन के रूप में पहले से ही विद्यमान है। मन शरीर द्रव्य की विद्युत शक्ति ही है और यदि इसका पूरी तरह उपयोग किया जा सके तो ६० किलोग्राम वाले शरीर की विद्युत शक्ति अर्थात् मन की सामर्थ्य पूरे भारत को १० वर्ष तक विद्युत देती रह सकती है।

डॉ. बैनेट ने इसी आधार पर मन के लिए कहा है कि यह एक महान विद्युत शक्ति है। इस शीर्षक से उन्होंने एक पुस्तक भी लिखी है, जिसका नाम है 'माइण्ड ए ग्रेट इलेक्ट्रिकल फोर्स', इस पुस्तक में उन्हें बहुत सारे तथ्य और आँकड़े दिये हैं तथा बताया है कि इस शक्ति को एक निश्चित दिशा में नियोजित कर दिया जाये तो उसके चमत्कारी परिणाम प्राप्त किये जा सकते हैं।

वेद ने इस शक्ति को 'ज्योतिषां ज्योति' कहा है। इसकी प्रचण्ड क्षमता से ही भारतीय योगी ऋषि प्राचीन काल में शून्य आकाश में स्फोट किया करते थे और इसी शक्ति द्वारा समस्त भूमण्डल की मानवीय समस्याओं का समाधान और नियन्त्रण करते थे। शेर और गाय को एक ही घाट पर पानी पिलाने की क्षमता इसी शक्ति में विद्यमान थी।

इस सन्दर्भ में गीताकार ने छठवें अध्याय में एक और महत्वपूर्ण निर्देश दिया है—

आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः ॥५॥
बन्धुरात्मात्मनस्तस्य येनात्मैवात्मनाजितः
अनात्मनस्तु शत्रुत्वे वर्तेतात्मैव शत्रुवत् ॥६॥

अर्थात्—आत्मचेतना आप ही अपना मित्र है और आप ही अपना शत्रु। आत्म सत्ता जिसे यहाँ मन के अर्थ में प्रयुक्त किया गया है उस व्यक्ति का तो आप ही अपना मित्र है जिसने जीत लिया है और जिसने मन पर कोई नियन्त्रण नहीं कर रखा उसके साथ यह आप ही शत्रु की तरह बर्तता है।

मनुष्य इतनी अतुल शक्ति सम्पत्ति का स्वामी होते हुए भी केवल उसका नियन्त्रण और नियोजन न कर पाने के कारण परमुखापेक्षी तथा दीन बना रहता है। अनियन्त्रित और अपरिष्कृत मन के दुष्परिणाम शक्ति के दुरुपयोग की तरह के ही तो होंगे। आग से खाना बनाया जाये या आग लगायी जाये, बिजली से रोशनी पैदा की जाये अथवा प्राण संकट खड़ा किया जाये, अणुशक्ति का उपयोग मानव कल्याण के लिए किया जाये अथवा नरसंहार के लिए—यह उपयोग की दिशा पर ही निर्भर है। मनःशक्ति को विकृत और घृणित बनाये रखकर उसके दुरुपयोग दुष्परिणाम का आधार ही खड़ा किया जाता है।

हाल ही में हुए प्रयोगों और परीक्षणों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि रोगों की जड़ शरीर में नहीं मनुष्य के दूषित मन में है। अमेरिका में रोगियों का मनोविश्लेषण करने के बाद यह पाया गया है कि यों तो अधिकांश रोगी मानसिक दृष्टि से अस्वस्थ थे किन्तु पेट के मरीज शत प्रतिशत रूप से दूषित मनोविकारों वाले व्यक्ति थे। डॉ. केनन ने, जिनकी अध्यक्षता में अमेरिका के डॉक्टरों और मनश्चिकत्सकों ने यह अध्ययन किया—लिखा है आमाशय का सीधा सम्बन्ध मस्तिष्क के 'आटोनेमिक' केन्द्र से होता है। स्म्पेथेटिक और पेरा-सिम्पेथेटिक यह आटोनेमि केन्द्र के दो भाग हैं जो पेट की क्रियाओं को संचालित करते हैं तथा पाचन रस उत्पन्न करते हैं। यदि व्यक्ति की मनःस्थिति अस्त-व्यस्त और आवेगग्रस्त होती है तो उसका पेट की क्रियाओं पर विपरीत प्रभाव पड़ता है और उसका पेट हमेशा के लिए खराब रहने लगता है।

डॉ० क्रेन्स डोलमोर और डॉक्टर रोओ द्वारा सन् १९२३ में की गयी शोधें शरीर और मन के सम्बन्धों पर विस्तृत प्रकाश डालती हैं। उनका कहना है शरीर में कोई रोग उत्पन्न हो ही नहीं सकता जब तक कि मनुष्य का मन स्वस्थ है। उन्होंने अपनी पुस्तक में दो फोटो भी प्रकाशित किये हैं। एक फोटो पचास वर्ष की आयु वाले व्यक्ति का है और दूसरा सत्तर वर्ष की आयु वाले व्यक्ति का। सत्तर वर्ष की आयु वाले फोटो में चेहरे पर कोई झुर्री नहीं, कोई सिकुड़न नहीं और बुढ़ापे का कोई लक्षण नहीं है जबकि पचास वर्ष की आयु वाले व्यक्ति का फोटो देखने से लगता है कि यह व्यक्ति बूढ़ा ही नहीं रोगी भी है, धँसी-आँखें, पिचके गाल और सूखा चेहरा रुग्णता के प्रतीक नहीं तो क्या हैं?

यह तो शरीर पर पड़ने वाले मन के प्रभाव का उल्लेख है। समाज में भी रोग, शोक, संहार, युद्ध, दंगे और लड़ाई-झगड़े दूषित मनःस्थिति और विकृत विचारों वाले व्यक्तियों के कारण ही उत्पन्न होते हैं। जितने भी युद्ध और नरसंहार हुए उनके कारण प्रायः ऐसी मनःस्थिति के व्यक्ति ही होंगे। विकृत मनःस्थिति किस प्रकार के अनर्थ उत्पन्न करती है इसका ताजा उदाहरण द्वितीय विश्वयुद्ध है जिसमें दो करोड़ से भी अधिक व्यक्ति मारे गये। एक व्यक्ति की क्रूरता, हिंसता और अंहवादिता के कारण ही संसार के लाखों लोग अकाल युद्ध के गाल में कवलित हुए और एक व्यक्ति की परिष्कृत, शुद्ध सात्विक मनःस्थिति का प्रभाव देखना हो तो वह महात्मा गाँधी, अब्राह्म लिंकन, मार्टिन लूथरकिंग आदि महापुरुषों के रूप में देखा जा सकता है जिन्होंने अकेले ही अपने समाज व संसार में महत्त्वपूर्ण क्रान्तिकारी परिवर्तन प्रस्तुत किये।

आण्विक शक्ति के सदुपयोग और विध्वंस प्रयोगों की तुलना मनःशक्ति से को जा सकती है। संसार में सूखते जा रहे ऊर्जा स्रोतों के पूरी तरह चुक जाने के बाद वैज्ञानिकों की आँखें

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अणुशक्ति की सम्भावनओं पर ही टिकी हुई हैं। अणुशक्ति का विध्वंसकारी रूप कितना भयावह है, यह संसार पिछले विश्व युद्ध में देख की चुका है और अब जबकि उस क्षेत्र में काफी विकसित तकनीक उन्नत कर ली गयी है तब तो कहा जा रहा है कि दो-पाँच बम ही इस सारी पृथ्वी का जीवन नष्ट करने के लिए पर्याप्त होंगे।

मन की शक्ति अणुशक्ति से किसी प्रकार भी कम नहीं है। बल्कि उससे अधिक ही समर्थ और प्रचण्ड है। इतिहास पुराणों में वर्णित शाप और वरदान की घटनायें इसी मनःशक्ति के विध्वंस और सृजन उपयोगों के उदाहरण हैं। इस तथ्य को भारतीय तत्वदर्शियों ने बहुत पहले ही लिख दिया है—"मनःमातस देवी चतुर्वर्ग प्रदायकम्"—अर्थात् मन की शक्ति में धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष दिलाने वाली सभी शक्तियाँ भरी पड़ी हैं, उसकी शुद्ध, सात्विक और विधेयक शक्ति का ज्ञान होने के कारण ही वे प्रातःकाल प्रार्थना किया करते थे—

यस्मान्न ऋते किंचन कर्म क्रियते
तन्मे मनः शिव संकल्पमस्तु।

अर्थात्—जिसके बिना संसार का कोई भी कर्म नहीं हो सकता वह मेरा मन शिव संकल्प वाला हो।

जितं जगत् केन? मनो हि येन

किसी गाँव में एक बालक रहता था। उसने हाथी, बैलगाड़ी, रेल, मोटर आदि सभी सवारियाँ चढ़ी थीं। ऊँट के विषय में उसने सुना था, चढ़ा नहीं था। उसकी इच्छा सदैव ऊँट की सवारी करने को हुआ करती थी।

एक बार वह घर को लौट रहा था। रास्ते में एक व्यापारी अपने ऊँट को बैठाकर नदी में स्नान करने चला गया था। ऊँट को विश्राम देने के लिए उसने काँठी और नकेल दोनों खोल दी थीं। ऊँट देखते ही बालक प्रसन्नता से नाचने लगा। वर्षों की अधूरी साध पूरी करने का इससे सुन्दर अवसर कहाँ मिलता? छलाँग लगाई और ऊँट की पीठ पर जा बैठा। अपने स्वभाव के अनुसार ऊँट एकाएक उठा और रास्ते-कुरास्ते भाग चला। लड़का घबड़ाया पर अब क्या हो सकता था? नकेल थी नहीं, ऊँट को काबू कैसे करता? जिधर जी आया ऊँट उधर ही भागता रहा। बालक की घबराहट भी उतनी बढ़ती गई। मार्ग में दो पथिक जा रहे थे, बालक की घबराहट देख कर उसने पूछा—बालक कहाँ जाओगे? लड़के ने सिसकते हुए जवाब दिया—भाई जाना तो घर था किन्तु अब तो जहाँ ऊँट ले जाये वहीं जाना है। इसी बीच वह एक पेड़ की डाली से टकराया और लहूलुहान हो कर भूमि पर जा गिरा।

बालक की कहानी पढ़कर लोग मन ही मन उसकी मूर्खता पर हँसेंगे पर आज संसार की स्थिति भी ठीक इस बालक जैसी ही है। मन के ऊँट पर चढ़ कर उसे बे-लगाम छोड़ देने का ही परिणाम है कि आज सर्वत्र अपराध, स्वेच्छाचारिता, कलह और कुटिलता के दर्शन हो रहे हैं। मन के नियंत्रण में न होने के कारण लोग पारलौकिक जीवन की यर्थाथता, आवश्यकता और उपयोगिता को भूल कर लौकिक सुख-स्वार्थ की पूर्ति में संलग्न हो गये हैं कि उन्हें भले-बुरे, उचित-अनुचित का भी ध्यान नहीं रहा।

मनुष्य के शरीर में सभी कुछ महत्व का है और तो और नाखून, पंजे, अँगुलियाँ और पाँव-हाथ तक बड़े उपयोगी हैं, परन्तु मन का महत्व सर्वाधिक है। इसकी विलक्षण शक्तियाँ हैं। मनुष्य का सुख-दुःख, बन्धन और मोक्ष यह सभी मन के आधीन हैं। शास्त्रकार ने कहा—"मन एवं मनुष्याणां कारणं बन्ध मोक्षयो" मनुष्यों के बन्धन और मोक्ष दोनों का कारण मन ही है। सांसारिक वैभव चाहिये तो उसको भी मन प्रदान करता है और परम-सुख, मोक्ष चाहिए तो उसका भी प्रदाता मन ही है। मनुष्य की सेवा में हर घड़ी मन ताबेदार सेवक की तरह तैयार खड़ा रहता है। वह कभी थकता नहीं, कभी रुकता नहीं। कभी वृद्ध नहीं होता सतत् उद्योग उसका स्वभाव है। इच्छायें करते रहना और उनकी पूर्ति के पीछे भागते फिरने में ही उसे आनन्द आता है। मन की सामर्थ्य अपार है वह सब कुछ कर सकता है। किन्तु उसमें स्वेच्छाचारिता की बुराई भी है। अनियंत्रित मन नकेल रहित ऊँट की तरह ही मनुष्य को पथ भ्रष्ट करता और घर—जीवन लक्ष्य—की ओर ले जाने की अपेक्षा इन्द्रिय सुखों के बीहड़ में ले जाकर किसी रोग, शोक, कलह, कुटिलता, कुसंग, कुमार, कुटेव से टकराकर पटक देता है। मनुष्य का जन्म जिस उद्देश्य की पूर्ति के लिये हुआ था उसका स्मरण भी नहीं आता, उल्टे यह जीवन भी नारकीय बन जाता है।

सारी सिद्धियों का मूल मनःसंयम में है। परन्तु वह केवल साधारण पुरुषार्थ से मिल जाने वाली नहीं। मन को साधना किसी भी पुरुषार्थ से, योग से बढ़कर है। इसीलिए शास्त्रकार ने कहा—"जितं जगत केन ? मनो हि येन"। जिसने मनको जीत लिया उसने संसार को जीत लिया।

मन की शक्तियाँ विलक्षण हैं। मनुष्य का सुख-दुःख बन्धन और मोक्ष मन के आधीन है। संसार में ऐसा कोई स्थल नहीं जहाँ मन न जा सके, लोक और परलोक में भी मन एक पल में जा सकता है। जिसे आँखें देख नहीं सकती, जो कान सुन नहीं सकते, मन उसे भी सरलता से ग्रहण कर सकता है। उसकी चंचलता को रोका जा सके और पारदर्शी काँच की तरह स्वच्छ बनाया जा सके तो आत्म-साक्षात्कार का नित्य निरतिशय सुख भी मन के आधीन है। "मन सैवानुद्रष्टव्यम्" आत्म-साक्षात्कार के लिए मन ही नेत्रवत्र है ऐसा श्रुति में कहा गया है।

संसार में हम जो भी उन्नति और उत्कर्ष प्राप्त करते हैं। उनका मुख्य कारण हमारा स्वस्थ शरीर, परिवक्व ज्ञान, और सक्षम ज्ञानेन्दियाँ कही गई हैं। कानों से सुनाई न देता हो पावों से चल न सकते हों, आँखों में देखने की शक्ति न हो, तो कितना ही कुशाग्रबुद्धि क्यों न हो, न तो किसी सफलता का सम्पादन कर सकता है और न अर्थोपार्जन। ऐसा व्यक्ति संसार में दीन-हीन ही रहेगा। अपनी साधारण जीवन यात्रा के लिए भी वह दूसरों का भार बनकर जियेगा। स्वस्थ और सक्षम ज्ञान

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

और कर्मेन्द्रियाँ ही हमारे विकास के मुख्य साधन हैं परन्तु यह नहीं भूलना चाहिए कि इनका प्रवर्तक हमारा मन है। यदि मन असहयोग करे, कुमार्ग में चलने की हठधर्मी करे तो एक भी इन्द्रिय प्रयोजन की, काम की नहीं हो सकती। प्रेममार्ग पर, इन्द्रियों की क्षणिक वासना में भटका कर शरीर को रोग-शोक का घर बना देने वाला अपना मन ही है।

मनुष्य का मन पारे की तरह है। अशुद्ध पारा खा लेने पर मनुष्य का जीवन संकट में पड़ जाता है किन्तु वही पारा जब शुद्ध और आयुर्वेदिक रीति से संस्कारित कर लिया जाता है तो वह एक अमूल्य औषधि बन जाता है। संस्कारहीन मन मनुष्य के अमूल्य जीवन को नष्ट-भ्रष्ट कर डालता है और यदि मनुष्य का मन सुसंस्कृत है तो वह इस लोक और परलोक में भी आनन्द प्राप्त करता है, उसका उद्धार हो जाता है।

मन की व्याख्या में इतना जान लेना आवश्यक है कि वह कोई स्थूल अंग नहीं है। हाथ को सरलता से बन्धन में लाया जा सकता है, नियंत्रित किया जा सकता है, पर मन को नहीं। वह एक अदृश्य तत्व है। जीव के विचार करने के तंत्र को मन कहते हैं अन्तःकरण की जितनी उथल-पुथल है उसका कारण मन ही है। अन्तर्जगत में क्रियाओं की प्रेरणा देने वाली शक्ति का नाम मन है। वह प्रेरणायें अच्छी भी हो सकती हैं बुरी भी, उपयोगी भी हो सकती हैं और अनिष्टकारक भी। उपयोगी प्रेरणाओं पर चलने से अच्छे कार्य होते हैं, अच्छे फल मिलते हैं; वैसे ही बुरे विचारों का प्रतिफल बुरा होता है। इन्हीं दो अवस्थाओं में जागरूकता और दृढ़तापूर्वक अच्छाई को पकड़े रहने का नाम मनो-नियंत्रण है। मन की इच्छाओं में केवल उन्हीं को क्रियान्वित किया जाये जो आत्मा के विकास के लिये आवश्यक है। इससे अधिक इन्द्रिय सुखों की तृष्णा को दबाये रखना ही चतुराई है, मनोनिग्रह है, जो इस कला को सीख लेते हैं उसका यह जीवन भी सफल होता है और परलोक भी। इसीलिये मन को ही बन्धन और मुक्ति दोनों का कारण बताया गया है।

प्रत्यक्ष प्रमाणों से उत्पन्न होने वाला ज्ञान वस्तुतः मन के द्वारा ही उत्पन्न होता है। जब शरीर को कोई कष्ट होता है, भूख लगती है, सर्दी या गर्मी की पीड़ा होती है, तब बुद्धि में ज्ञान की स्फुरणा बन्द हो जाती है। यद्यपि ज्ञान ही मनुष्य की विशेषता है, ज्ञान ही से मनुष्य का जीवन मधुर है और मोक्ष भी प्राप्त होता है, पर ज्ञान अपने आप में कोई वस्तु नहीं, वह मन की शक्ति है। इसलिये ज्ञान से भी बड़ी शक्ति मन है और वही मनुष्य के कल्याण-अकल्याण का मुख्य कारण कहा गया है।

ऋषियों ने प्रार्थना में कहा है—

यस्मिन्नृचः साम यजूंऽषि यस्मिन्प्रतिष्ठिता रथनाभाविवारः।
यस्मिंश्चित्तं सर्वमोतं प्रजानां तन्मे मनः शिव संकल्पमस्तु॥

(शुक्ल यजु० ३४/५)

अर्थात्—रथ चक्र की नाभि में जिस प्रकार पहियों के अरे प्रतिष्ठित हैं उसी प्रकार ऋक्, यजुः, और सामवेद का ज्ञान मन में प्रतिष्ठित है। ऐसी अपार सामर्थ्य और शक्ति वाला हमारा मन शुभ संकल्प वाला हो।

मन की शक्ति अपार है। वेगवान होने के कारण वह शीघ्र वश में नहीं आता। बिगड़ उठे तो ऊँट में चढ़ने के इच्छुक बालक की तरह झकझोर कर रख देता है। यदि मन शुद्ध, पवित्र और संकल्पवान बन जाये तो हमारे जीवन की धारा ही बदल सकती है। "जिसने मन को जीत लिया उसने जगत को जीत लिया" की कहावत चरितार्थ हो सकती है।

मनस् तत्त्व का दर्शन और विज्ञान

योगवाशिष्ठ में महर्षि वशिष्ठ ने श्रीराम की मानव जीवन की महत्ता व गरिमा समझाते हुए कहा है—"हे राम! मैं तुम्हें एक रहस्य की बात बताता हूँ कि सम्पूर्ण सृष्टि में मनुष्य से श्रेष्ठ कोई जीवधारी नहीं है।" आखिर वह कौन-सी विशिष्टता है जो मनुष्य को विलक्षण क्षमता सम्पन्न, असीम सम्भावनाओं का स्वामी बनाती है, जिसमें वह पशुओं से भी श्रेष्ठ बन जाता है। इस विषय में ऋषि-मनीषियों का मत है कि संरचना ही नहीं, कार्य पद्धति के क्षेत्र में भी जब हम मानवी काया, विशेषत मानव मस्तिष्क पर दृष्टि डालते हैं, तो अन्य जीवों से सर्वोपरि एवं विभूति सम्पन्न नजर आता है।

आज विज्ञान विकास की सभी सीमाएँ पार कर चुका है। आधुनिकतम यंत्रों की खोज हो चुकी है, जो सूक्ष्म से सूक्ष्म की जानकारी कराते हैं। फिर भी मानव मस्तिष्क के बारे में हमें मात्र सात से तेरह प्रतिशत जानकारी है। शेष सारा जखीरा अविज्ञात के गर्त्त में पड़ा है। वह अपनी चमत्कृतियाँ दिखाता रहता है, पर कारक घटकों की खोज अभी तक नहीं हो पायी है। न्यूरोलॉजी, न्यूरोहिस्टो केमिस्ट्री, न्यूरोएण्डोक्राइनोलॉजी, न्यूरोफिजियोलॉजी नाम से अनेक विधाएँ इन दिनों सक्रिय हैं। पर वे भी अविज्ञात की सायलेण्ट एरिया की कोई विशेष जानकारी नहीं करा पाती हैं। मस्तिष्कीय विकार या मानसिक विकृति से शारीरिक व्याधि का कारण क्या हो सकता है, यह तो वे बताते हैं पर क्यों? यह नहीं बता पाते।

जहाँ तक संरचना का प्रश्न है, मानव एवं पशु दोनों के मस्तिष्क की बनावट कुछेक अपवादों को छोड़कर मिलती है। वे एक समान आकृति, संरचना और संघटन वाले होते हैं। चिम्पांजी का मस्तिष्क सर्वाधिक विकसित बताया जाता है एवं विकास क्रम की दृष्टि से मानव के सर्वाधिक निकट भी। सीखने की दृष्टि से अन्य जानवरों से यह अधिक कौशल सम्पन्न है। चिम्पांजी का मस्तिष्क मनुष्य के मस्तिष्क से थोड़ा छोटा होता है, किन्तु हाथी और टॉलफिन के मस्तिष्क उससे बड़े होते हैं। घ्राण की उच्चविकसित इन्द्रियों के होने के बावजूद भी पशु बुद्धिमता, तर्कक्षमता, लॉजिक आदि के क्षेत्र में मनुष्य से पीछे हैं। वे अक्षर, शब्द, वाक्य, व्याकरण का उपयोग करना नहीं जानते, न ही उन्हें यह सिखाया जा सकना सम्भव है। पशुओं का मस्तिष्क ज्यामिति, त्रिकोणमिति जैसी जटिलताओं को समझने में अक्षम है। कल्पना जगत में विचरण सम्भवतः वे भी करते होंगे, पर उसका प्रकटीकरण काव्य या लेखन के रूप में मनुष्य ही कर पाता है। यहाँ मनुष्य व पशुओं में अन्तर का पता लगता है। अमीबा से बन्दर व बन्दर से मनुष्य के विकास का सिद्धान्त प्रतिपादित करने वाले यहाँ यह समझाने में स्वयं को

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

असमर्थ पाते हैं कि चेतना के विकास के दो सोपानों में इतना अन्तर क्यों ?

वस्तुतः अन्तर उस मनस्तत्व के कारण है 'जिसे समष्टि का एक अंग माइण्ड स्टाफ बताया गया है।' जानवरों का मस्तिष्क मूल प्रवृत्तियों (इंस्टीक्ट्स) के आधार पर कार्य करता है, जबकि मानवी मस्तिष्क इनसे भी इतर विकसित विभूतियों के आधार पर काम करता है जो कि मानव-मानव में विकास क्रम के व प्रसुप्त के उभार के कारण भिन्न-भिन्न परिमाण में सक्रिय पायी जाती है।

इसके विपरीत मनुष्य के विकास में उसे मिली एक दिव्य विभूति एक विशेष भूमिका निभाती है। वह है—मानव की स्वतंत्र चयन बुद्धि। इसकी परिधि अत्यन्त विशाल अपरिमित है। मनुष्य सीखता है और विकसित होता जाता है। अनुभूतियों के आधार पर सृजन में निरत देखा जाता है। उसकी जिज्ञासु बुद्धि भाँति-भाँति के आविष्कार उससे करा लेती है। ज्ञान—विज्ञान, कला, लालित्य, संगीत, काव्य आदि अनेक क्षेत्रों में मानवी मस्तिष्क सक्रिय देखा जाता है। यह मस्तिष्क भाव संवेदनाओं से प्रभावित भी होता है व स्वयं तथा औरों को भी भावना मिश्रित विचारणा से प्रभावित करता देखा जाता है। पूर्वार्त्त दार्शनिकों ने 'मन' होने के कारण ही उसे मनुष्य कहा है। प्रकारान्तर से मनुष्य और पशु के बीच यह मन ही एक विशिष्ट एवं काफी महत्वपूर्ण अंतर स्थापित करता है।

मनुष्य पेट-प्रजनन के ढर्रे वाले पाशविक स्तर से ऊपर उठना चाहता है। यह 'इच्छा-शक्ति' उसके अन्तराल में हमेशा न्यूनाधिक रूप में क्रियाशील रहती है। अपने आपको नर, मानव, महामानव और देवमानव बनाने के लिए उसे 'फ्री-च्वॉयस' का परमात्मा द्वारा अधिकार मिला हुआ है। इस अधिकार का सदुपयोग, भले ही वह न करे। आलस्य और प्रमाद में पड़कर आदमी अपने नर मानव के सामान्य स्तर से पतित भी हो सकता है और नर-पामर, नर-पशु तथा नर-पिशाच की पदवी भी हासिल कर सकता है। मनुष्य अपने स्वरूप को, अपनी गौरव-गरिमा को, भली प्रकार जानता है, पर पशु नहीं। मनुष्य अपने आध्यात्मिक और भौतिक-वैभव को अपने उपासना साधना के प्रबल पुरुषार्थ से सहस्रों गुना बढ़ा सकता है, और चाहे तो पतन पराभव के गर्त में भी जा सकता है।

यह इच्छा शक्ति या मनस्तत्त्व वैज्ञानिकों की दृष्टि में अस्तित्वहीन है। पाश्चात्य मनोविज्ञान एवं पदार्थ विज्ञान मन एवं मनुष्य को भौतिक पदार्थ-कणों का समुच्चय भर मानता है। उनके अनुसार विचारणा तथा भावनाएँ यथा प्रेम, क्रोध, प्रसन्नता, निराशा, स्नायुओं में रासायनिक परिवर्तन की प्रतिक्रिया मात्र है। इन्हें इलेक्ट्रोड द्वारा विद्युत प्रवाह से अथवा ड्रग्स द्वारा बदला जा सकता है। चार्ल्स डार्विन का विकासवादी सिद्धान्त एवं फ्रायड का मनोविज्ञान का सिद्धान्त इसी धुरी पर घूमता है। इस प्रकार पशु व मनुष्य उनके अनुसार मात्र 'मैटर' है। जॉन हॉपकिन्स यूनिवर्सिटी के मनोविज्ञान विभाग के शोधकर्त्ता अध्यक्ष डॉक्टर सोलेमन स्नाइडर से एक पाश्चात्य पत्रकार ने इंटरव्यू के दौरान पूछा—'क्या स्वतन्त्र इच्छा शक्ति को मस्तिष्क के विद्युत प्रवाह अथवा स्नायु रासायनिक क्रिया में परिवर्तित किया जा सकता है?' तब डॉक्टर स्नाइडर का उत्तर था कि 'हम' नहीं जानते कि मन मस्तिष्क से किस प्रकार जुड़ा है। आधुनिकतम यन्त्रों के बावजूद हम यह बता पाने में असमर्थ हैं कि मन की प्रक्रियाओं का संचालनकर्ता कौन है, व मस्तिष्क का स्थूल मेमैटर उसमें कितनी भूमिका निभाता है?'

यह उत्तर विज्ञान को एक छोटी परिधि में सीमाबद्ध कर देता है। इससे यही भाव निकलता है कि मात्र प्रत्यक्ष की खोज़ तक वैज्ञानिक सफल हो पाये हैं। प्राणशक्ति, चेतन शक्ति, इच्छाशक्ति, संकल्पबल, जिजीविषा जैसी विधाएँ मेमैटर रूपी लिबलिबे पदार्थ में विद्यमान हैं। वे प्रत्यक्ष दिखाई नहीं देतीं पर उनके मानवी चिंतन, व्यवहार पर पड़ने वाले प्रभाव स्पष्ट देखे जा सकते हैं। योगवाशिष्ठ में मन को संकल्पात्मक शक्ति बताया गया है। कहा गया है कि मन बुद्धि के निश्चयों से प्रेरित होता है और बुद्धि अहंकार से नियंत्रित की जाती है। यही नहीं संकल्प व मन को अभिन्न बताया गया है।

रामास्य मनसो रूपं न किञ्चिदपि दृश्यते।
संकल्पनं मनो विद्धि संकल्पात्तन्निबध्यते॥

इस प्रकार मन ही संकल्पों द्वारा संसार की रचना करता बताया गया है। इस सूत्र में हमें सारी जिज्ञासाओं का समाधान मिल जाता है। मन अनुभूति का विषय है। पुराणों में इस मनस्तत्त्व को 'मनोमय' कहा गया है। शिव संकल्प मंत्रों में उसे 'ज्योतिषां ज्योतिः'—विद्युत शक्ति के समान माना गया है।

भारतीय मनोविज्ञान एवं आर्षवाङ्मय द्वारा प्रदत्त मनस् सम्बन्धी विशिष्ट ज्ञान को यदि आधुनिक विज्ञान की उपलब्धियों से जोड़कर प्रस्तुत किया जा सकना सम्भव हो तो उन सभी सिद्धियों, विभूतियों का रहस्योद्घाटन होने लगता है जिनसे महामानव सम्पन्न देखे जाते हैं। विलक्षण प्रतिभा, स्मरण शक्ति, अजेय संकल्प, बल एवं प्रखरता के मूल में विकसित मनस्तत्व को कारण माना जा सकता है। सभी में प्रसुप्त रूप में बीज के समान ये छिपी पड़ी रहती हैं। जो इन्हें जगा लेते हैं, वे अतीन्द्रिय क्षमता सम्पन्न, प्रतिभा-मेधा सम्पन्न महापुरुषों के रूप में प्रतिष्ठित होते हैं।

मनुष्य पशु रूप में जीवन जीने के लिए नहीं ऊर्ध्वगामी यात्रा करते हुए कुछ विशिष्ट कर दिखाने के लिए जन्म लेता है। हर नवजात बच्चे में यह प्रकाश पुञ्ज देखा जा सकता है। जीवन यात्रा में कषाय-कल्मशा के कारण यह प्रक्रिया मंद होती जाती है। यदि आत्मबोध द्वारा अपने वैभव को जाना व समुन्नत बनाया जा सके तो योगवाशिष्ठ के रहस्योद्घाटन को सत्यापित किया जाना असम्भव नहीं।

मन अदृश्य है और अदृश्य सूक्ष्म शक्तियों का ज्ञान न होने से मनुष्य उनका लाभ नहीं उठा पाता। शरीरबल, बुद्धिबल तथा अन्यान्य भौतिक सम्पदाएँ जो प्रत्यक्ष दिखायी पड़ती हैं, प्रायः उन्हें ही करतलगत करने का प्रयास किया जाता है, पर कुछ ऐसे भी होते हैं जो समुद्र से मोती निकालने जैसे दुःसाहसी कार्य की तरह शक्ति अर्जित करने के लिए अधिक गहराई में

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

डुबकी लगाने का जोखिम उठाते और उनमें से थोड़े सफल होते भी देखे जाते हैं। शक्ति का भाण्डागार प्रकृति और चेतना दोनों ही क्षेत्रों में भरा पड़ा है। अनुसंधान एवं उससे जुड़ी उपलब्धियों के लिए प्रकृति एवं चेतना से समन्वित् एक सर्वांगपूर्ण प्रयोगशाला मानवी काया के रूप में हर व्यक्ति को मिली हुई है, जिसमें एक से बढ़कर एक सम्भावनाएँ निहित हैं, जो हर पुरुषार्थी के मानस पटल पर दस्तक देती तथा उन्हें हस्तगत करने के लिए मूक आह्वान करती हैं।

पदार्थ की स्थूल शक्ति की तुलना में परमाणु की सूक्ष्म शक्ति कितनी अधिक प्रचण्ड, सामर्थ्यवान् हो सकती है, यह सत्य सदियों तक तो अविज्ञात रहा, पर अब किसी से छुपा नहीं रह गया है। शरीर और उससे जुड़ी इन्द्रियों की बनावट ही ऐसी है कि मनुष्य दृश्य अथवा प्रत्यक्ष लाभ देने वाले भौतिक घटकों को ही अधिक महत्त्व देता है। फलतः उनसे सीमित ही लाभ उठा पाता है। शरीर बल एवं बुद्धिबल का मानव ने महत्व समझा और उनसे एक सीमा तक लाभान्वित हुआ है। पर इतने पर भी सूक्ष्म शक्ति स्रोतों का महत्व कम नहीं हो जाता। उनकी गरिमा एवं सामर्थ्य यथावत् है। शरीर एवं बुद्धि की तुलना में मन अधिक सूक्ष्म, विलक्षण एवं सामर्थ्यवान् है, पर उसकी क्षमता का विकास बिरले कर पाते तथा बिरले ही उससे लाभ उठा पाते हैं। व्यक्तित्व के सर्वाधिक महत्वपूर्ण एवं समर्थ घटक के उपेक्षित पड़े रहने से ही अधिकांश व्यक्तियों का जीवन व्यर्थ भटकाव में व्यतीत होता है तथा शरीर एवं बुद्धि से समर्थ होते हुए भी वे अपने जीवन को सही दिशा एवं प्रेरणा देने में प्रायः असमर्थ सिद्ध होते हैं।

भारतीय ऋषियों की पहुँच प्रकृति एवं चेतना के गहन परतों तक थी। उन्होंने भौतिक जगत एवं उनसे जुड़े उपादानों को उतना ही महत्व दिया जितना कि शरीर व्यापार को गतिशील रखने के लिए आवश्यक था। शरीर एवं बुद्धि का मन न केवल संचालक है, वरन् मनुष्य के उत्थान-पतन का कारण भी है, यह वे भली-भाँति जानते थे। उनका उद्घोष था—

"तस्मान्मन कारणमस्ति जन्तोर्बन्धस्य मोक्षस्य च वाविधाने।"

(विवेक चूणामणि)

अर्थात्—जीव के बन्धन और मोक्ष के विधान में मन ही प्रधान कारण है।

यही कारण था कि उनकी अधिकांश चेष्टाएँ—जप-तप की प्रक्रियाएँ, मानसिक परिष्कार एवं विकास के लिए चला करती थी। शोधन, अभिवर्द्धन से प्रचण्ड मनोबल एवं प्राण ऊर्जा का अभ्युदय होता था, जिसके सहारे वे न केवल अपने व्यक्तित्व को ऊँचा उठाते थे, वरन् उनसे मानव जीवन की अगणित समस्याओं का समाधान प्रस्तुत करते थे। स्वस्थ, सभ्य एवं सुसंस्कारी समाज की संरचना इसीलिए हो सकी थी कि हर व्यक्ति जीवन की गरिमा एवं उसका लक्ष्य समझता था तथा यह भी जानता था कि शरीर एवं बुद्धि की लगाम मन के हाथों में है। यदि उसका सुधार, सम्भाल एवं विकास कर लिया जाये तथा उसकी शक्ति को जीवन लक्ष्य की दिशा में नियोजित कर लिया जाये तो मनुष्य के लिए कुछ भी असम्भव न रह जाये। अतिमानवी शक्तियों का प्राकट्य भी उस युग में इसी कारण सम्भव हो सका था।

बुद्धिवादी युग की यह विडम्बना ही है कि मन जैसे चैतन्य, विलक्षण एवं व्यक्तित्व के सर्वाधिक महत्वपूर्ण घटक को जानने एवं उसकी शक्तियों का लाभ उठाने का प्रयास नहीं किया जा रहा है। आधुनिक मनोविज्ञान ने मन की चेतन-अचेतन परतों की बनावट एवं क्रिया-प्रणाली की जो सीमित जानकारियाँ दी हैं उनसे मन की विशिष्ट सम्भावनाएँ उजागर नहीं होतीं। उल्टे मूर्धन्य मनःशास्त्री फ्रायड के प्रतिपादित सिद्धान्तों से यही भ्रान्ति अधिकांश बुद्धिजीवियों में बनी हुई है कि मनुष्य मूल प्रवृत्तियों का गुलाम है, सैक्स ही प्रमुख प्रेरक शक्ति है, पर प्रगति के इस युग में वे मान्यताएँ जो भ्रान्तिपूर्ण हैं, अधिक समय तक अपनी जड़ें जमाये नहीं रख सकतीं। अतीन्द्रिय सामर्थ्य के प्रमाण में आयी अनेकानेक साक्षियों, इच्छाशक्ति के चमत्कारों, भविष्य बोध की सामर्थ्य जैसी घटनाओं ने यह सिद्ध कर दिया है कि मनुष्य की सम्भावनाएँ असीम हैं। मन के भीतर ही शक्ति का सागर लहलहा रहा है—चैतन्य ऊर्जा का वह केन्द्र है। इससे मानवी सत्ता की गरिमा समझने तथा उसकी महानता में विश्वास रखने वाले मनःशास्त्रियों को मन के सम्बन्ध में नये सिरे से शोध करने की प्रेरणा मिली है। जैसे-जैसे वे खोज की गहराई में उतर रहे हैं, यह मान्यता सप्रमाण परिपुष्ट होती जा रही है कि मन एक प्रचण्ड ऊर्जा का स्रोत है। वह न केवल शरीर एवं बुद्धि का नियन्त्रणकर्त्ता है वरन् मानवी उत्थान-पतन का माध्यम भी है।

मनुष्य की महानता में विश्वास रखने वाले मनःशास्त्री मैस्लो का कहना है कि "मन एक प्रकार का एम्प्लिफायर है जिसके सहारे हमें दृश्यों, घटनाओं अथवा तथ्यों को समझने में मदद मिलती है। वह ठीक तरह से चलता रहे तथा सही दिशा में उसकी ऊर्जा नियोजित रहे तो जीवन सन्तुलित, सुव्यवस्थित तथा प्रसन्नचित्त बना रहता है। जबकि परेशानी, चिन्ता, भय, आशंका की घड़ियों में उस ऊर्जा का प्रवाह अवरुद्ध हो जाता तथा अनेकानेक प्रकार की समस्याएँ उठ खड़ी होती हैं और मनुष्य को अनायास ही बेतरह परेशान करती हैं। मन के एम्प्लिफायर को जब कोई चिन्तित, भयभीत व्यक्ति चालू करता है तो उसकी कठिनाइयाँ बढ़ने के स्थान पर घटनी आरम्भ हो जाती हैं। मस्तिष्क का प्रीफ्रन्टलल्यूकोटामी भाग इस एम्प्लिफायर के तार का काम करता है। फलतः मस्तिष्क भी मन की प्रेरणाओं, सन्दर्शों से सक्रिय बन जाता है। सक्रियता की विधेयात्मक स्थिति में अशान्तिकारक अवरोध अपने आप दूर हो जाते हैं। रचनात्मक कार्यों में व्यस्त रहने पर उस एम्प्लिफायर से शक्ति मिलती रहती है।"

मनः एम्प्लिफायर का स्वरूप स्पष्ट करते हुए मनोवैज्ञानिक मैस्लो कहते हैं—"यह एक प्राण ऊर्जा का सरोवर है। इस

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सरोवर में नदी के जल प्रवाह की तरह प्राण ऊर्जा सतत् प्रवाहित होती रहती है।" मैस्लो के अनुसार—"आनन्ददायक घड़ियों में, जिसे उन्होंने मनोविज्ञान की भाषा में 'पिक एक्सपैरिमेन्स' नाम दिया है, यह ऊर्जा संचित-संग्रहित होती रहती है तथा भावी उपयोग में काम आ सकती है। प्राण ऊर्जा ही 'ओवर फ्लो' होकर दूसरों को आकर्षित-प्रभावित करती तथा उन्हें सहयोगी बनाकर असम्भव कार्य को भी सम्भव करने-कराने में समर्थ होती है।" मैस्लो के अनुसार—"प्राण ऊर्जा का सतत् गतिशील रहना स्वास्थ्य सन्तुलन तथा व्यक्तित्व विकास के लिए आवश्यक है। यह गतिशीलता विधेयात्मक चिन्तन एवं संरचनात्मक कार्यों में निरत रहने से ही बनी रह सकती है।"

फ्रायड की मान्यता से ठीक विपरीत मैस्लो का कहना है कि "मूल प्रवृत्तियों में ऐसी एक भी नहीं है जिन पर मनुष्य नियन्त्रण न कर सके। हर पशु-प्रवृत्ति का परिष्कार, सुधार मनुष्य के लिए सम्भव है। असम्भव इसलिए लगता है कि वह मन की सामर्थ्य से अपरिचित रहता है तथा उसके चिन्तन में निषेधात्मक तत्वों का बाहुल्य होता है। अपने प्रति अपनायी गयी निषेधात्मक दृष्टि ही मनःऊर्जा की गति एवं प्रवाह को अवरुद्ध करती तथा प्रगति पथ को अवरुद्ध कर देती है।" उनका मत है कि "व्यापक स्तर पर जन-समुदाय में ऐसी निषेधात्मक दृष्टि बनाने में जिम्मेदार वे तथाकथित दर्शन भी हैं जो डार्विन तथा फ्रायड जैसे नियतिवादी दार्शनिकों द्वारा दिये गये हैं। भ्रान्त करने वाले उस वैचारिक जाल से मनुष्य को बाहर निकलना होगा तथा अपने ही भीतर महानता के बीजों को टटोलना-खोजना होगा जो हर व्यक्ति के मन की अदृश्य सूक्ष्म परतों में विद्यमान हैं और विकास के लिए मनुष्य से समुचित खाद-पानी की अपेक्षा करते हैं। मानसिक परतन्त्रता की यह स्थिति ही इस युग की हर समस्या के लिए जिम्मेदार है जिसके पाश को तोड़ना एवं उससे निकलना, आगे बढ़ने ऊँचे उठने की दिशा में पहला साहसिक कदम है।"

स्वास्थ्य, सन्तुलन एवं विकास का मानसिक स्वतन्त्रता से कितना गहरा सम्बन्ध है, इसका एक निष्कर्ष मनःशास्त्री फ्रैंकल ने प्रस्तुत किया है। एक प्रयोग अध्ययन में उन्होंने देखा कि कुछ कैदियों को आजीवन कारावास की सजा मिली तथा कुछ को उसी केस में कुछ वर्षों की कैद के बाद छूटने का दण्ड मिला। जिन्हें जीवन भर की कैद मिली, उनका स्वास्थ्य दिन-प्रतिदिन गिरता गया, विक्षिप्तों जैसी स्थिति बन गयी। कुछ ने तो थोड़े समय बाद ही दम तोड़ दिया। पर जिन्हें छूटने की आशा थी, उनके ऊपर विशेष प्रभाव नहीं पड़ा।" फ्रैंकल कहते हैं कि मनुष्य पशु-प्रवृतियों का गुलाम है, इस मान्यता ने समाज के अधिकांश व्यक्तियों को मानसिक पराधीनता की जंजीरों में बुरी तरह जकड़ दिया है। फलतः वह आत्मविश्वास गँवा बैठा है। न केवल मनोविज्ञान ने वरन् आधुनिक ज्ञान की अन्य राजनीति, साहित्य, दर्शन, इतिहास जैसी विधाओं ने भी उन्हीं निषेधात्मक तथ्यों को उभारा और प्रश्रय दिया है। ये सब सम्मिलित रूप से मिलकर मानवी प्रकृति के लगभग आधे हिस्से को पंगु बना देते हैं। मात्र शेष आधी के बल पर ही मनुष्य अपनी पहचान एवं अस्तित्व बनाये हुए है। मानसिक पंगुता की इस स्थिति में मनुष्य अपनी महानता तथा भीतर सन्निहित असीम अद्भुत सम्भावनाओं को उजागर कर सकेगा, यह असम्भव है। सम्भावना मनःसामर्थ्य को समझने तथा उनके सहारे प्रसुप्त आत्मविश्वास को जगाने से ही बन सकती है।

व्यावहारिक धरातल पर यह कैसे बन पड़े? मनःशास्त्री फ्रैंकल का मत है, सर्वप्रथम यह विश्वास सुदृढ़ करना होगा कि मनुष्य की मानसिक क्षमता शारीरिक की तुलना में न केवल समर्थ है वरन् हर समस्या का समाधान करने में समर्थ है। अस्त-व्यस्त रहने तथा असंयमित दिनचर्या के कारण शरीर की शक्ति खोखली हो जाती है। उससे भी अधिक बर्बादी निरुद्देश्य चिन्तन के भटकाव के कारण मनःऊर्जा की होती है। क्योंकि हमारी अधिकांश इच्छाएँ और चेष्टाएँ अनुपयुक्त और अदूरदर्शितापूर्ण होती हैं। सुनिश्चित उच्चस्तरीय आदर्श एवं दिशाधारा का चयन और निर्धारण हो सके तो उस फुलझड़ी की भाँति व्यर्थ उड़ जाने वाली मनःशक्ति का सुनियोजन और सदुपयोग सम्भव हो सकता है। श्रेष्ठ आदर्श का निर्धारण और उसकी पूर्ति की उत्कट आकांक्षा स्वयं में एक ऐसी प्रेरक शक्ति है जो प्रेरणा के साथ-साथ दूरदर्शी विवेक को जलाती है। दूरदर्शी विवेक का अभ्युदय एक ऐसी महान उपलब्धि है जिसके सहारे मनुष्य के सामान्य से असामान्य महामानव बनने तक की सम्भावना बन जाती है।

दूरदर्शिता से मानसिक सन्तुलन बनता और मनःशक्ति का सुनियोजन होने लगता है। तब मनुष्य परिस्थितियों की गुलामी कभी स्वीकार नहीं करता। हर स्थिति में सदा सन्तुष्ट, प्रसन्नचित्त और प्रफुल्लित रहने वाली मनःस्थिति की अनुभूतियों को ही मनःशास्त्री मैस्लो ने 'पिक एक्सपेरिमेन्स' नाम दिया है। इस स्थिति को सदा कैसे बनाये रखा जाये? मैस्लो अपनी पुस्तक 'न्यू डायमेन्शन्स ऑफ साइकोलॉजी' में लिखते हैं कि "सदा दूरगामी, विधेयात्मक बातें सोची जायें। साथ ही डिप्रेशन, निराशा, हतोत्साह उत्पन्न करने वाली निषेधात्मक बातों को मन में जड़ न जमाने दिया जाये। जब कभी भी वे मानसिक परतों पर अड्डा जमाने की कोशिश करें, विधेयात्मक विचारों की सुसज्जित सेना से उन्हें खदेड़ कर बाहर कर दिया जाये।"

मनःशास्त्री मानसिक परिष्कार सन्तुलन एवं विकास के जो विचार एवं सिद्धान्त प्रस्तुत कर रहे हैं, भारतीय ऋषि सदियों पूर्व से उनका प्रतिपादन करते चले आ रहे हैं। देवासुर संग्राम का वर्णन पौराणिक गाथाओं में मिलता है। यह मन में चलने वाले विधेयात्मक, निषेधात्मक, रचनात्मक तथा ध्वंसात्मक विचारों के युग्म का अलंकारिक चित्रण है। निषेधात्मक चिन्तन से बचने, दुष्प्रवृत्तियों से छुटकारा पाने, सत्प्रवृत्तियों की प्रतिष्ठापना करने के लिए उन्होंने मनःस्थिति की तरह मात्र वैचारिक स्तर पर ही समाधान प्रस्तुत नहीं किया, वरन् उन्हें आदत, व्यवहार एवं आचरण का अंग बनाने की दृष्टि से सुनिश्चित उपाय भी सुझाया है जो हर युग के लिए शाश्वत एवं अपरिवर्तनीय है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जप, तप की साधना-उपासना की सामान्य तथा कठोर आध्यात्मिक उपचार मनःस्थिति के परिशोधन एवं उसमें सन्निहित प्रचण्ड ऊर्जा, जिसे मनोबल-संकल्प बल के नाम से जाना जाता है, के लिए किये जाते थे। अभ्यास में—संस्कारों में घुल न पाने के कारण सद्विचार मानवी विकास में उतने सहायक सिद्ध नहीं हो पाते। उन्हें आचरण में उतारने की दृष्टि से पुनरावृति होना आवश्यक है। प्रतीक क्रियाओं एवं माध्यमों से उनका अभ्यास किया जाता है। तप-तितीक्षा से संकल्पबल मजबूत होता, मनोबल उभरता तथा सद्मार्ग पर चलने का आधार सुदृढ़ बनता है। सद्विचारों को आचरण में—व्यवहार में—उतारने का यही एक मार्ग है। भारतीय योग मनोविज्ञान वैचारिक समाधान प्रस्तुत करता है, तो योगाभ्यास-साधन उपासना, तप-तितीक्षा की प्रक्रिया अन्तःकरण में जड़ जमाये कुसंस्कारों के परिशोधन तथा सुसंस्कारों की प्रतिष्ठापना का प्रयोजन पूरा करती है। जिनका अवलम्बन लेकर हर कोई न केवल मन की उपयोगिता-उपादेयता को समझने में समर्थ हो सकता है वरन् मनःशक्ति को उभारने-विकसित करने में भी सफलता प्राप्त कर सकता है।

मनःशास्त्री फ्रैंकल का यह कहना अत्यन्त सारगर्भित है कि शरीर एवं बुद्धि के संचालक मन की उपेक्षा का ही परिणाम है कि समाज के अधिकांश् व्यक्ति भौतिक सुविधाओं से सुसम्पन्न होते हुए भी मानसिक रूप से बीमार हैं। यह बढ़ती हुई स्थिति हमें निराशामय भविष्य की ओर ही ले जा रही है। अवएव इस युग की सबसे प्रमुख आवश्यकता है मन की सामर्थ्यों को समझना—उभारना तथा अति मानसिक शक्तियों का उजागर करना। इसके बिना भौतिक अन्यान्य शक्तियों का सही रूप से लाभ उठा सकना मानव जाति के लिए सम्भव न होगा।

रामकृष्ण परमहंस कहा करते थे सब कुछ मन की लीला है। मन से ही मनुष्य बद्ध है और मन से ही मुक्त। मन पर जैसा रंग चढ़ाओगे उसी रंग में रंग जायेगा। एक ही मन विभिन्न भावों से विभिन्न व्यक्तियों से भिन्न-भिन्न तरह का प्यार करता है। एक स्त्री को एक भाव से तथा सन्तान को वह दूसरे भाव से स्नेह करता है। ईश्वर प्रेम में मन के भावों का स्वरूप सर्वथा बदल जाता है।

महर्षि रमण के अनुसार सुख और दुःख मन के पहलू हैं। मनुष्य मन और शरीर को ही यथार्थ समझता है तथा अपने सत्यानन्द स्वरूप आत्मा को भूल गया है जिसके कारण ही विविध प्रकार के दुःखों की उत्पत्ति होती है । दुःखों से यदि निवृत्ति पानी है तो मन की लीलाओं को जानने तथा उससे परे जाने का प्रयत्न करना चाहिए।

मन का स्थूल रूप मानवी मस्तिष्क है जो बाह्य जगत से इन्द्रियों तथा असंख्य संवेदनशील नाड़ियों द्वारा जुड़ा रहता है। उनके माध्यम से सूचनाएँ एकत्रित करता है। टेलीविजन यन्त्र की भांति मस्तिष्क रूपी इलेक्ट्रॉनिक यन्त्र में घटनाओं-दृश्यों के चित्र चित्रित होते रहते हैं। मन की स्थूल परत ही अभिव्यक्त होती है तथा सांसारिक कार्यों में उसकी सामर्थ्य का ही प्रयोग हो पाता है। जबकि अति सामर्थ्यवान अति मानस प्रसुप्त पड़ा रहता है। उसको जागृत करना ही परम पुरुषार्थ है। ऋतम्भरा प्रज्ञा सम्पन्न राम, कृष्ण, बुद्ध, ईसा, शंकराचार्य, रामकृष्ण, महर्षि, रमण प्रभृति प्रतिभाएँ उस महान जागरण की ही परिणति हैं। उनकी ये विशेषताएँ कहीं बाहर से आसमान से नहीं टपकीं वरन् मन की सूक्ष्म परतों के जागरण के फलस्वरूप प्रकट हुई।

भौतिक संसार में मानसिक शक्ति की अभिव्यक्ति किसी में शौर्य के रूप में प्रकट होती है, किसी में कला के रूप में तो किसी में, प्रतिभा के रूप में। किसी-किसी में वह शक्ति पशुता के रूप में भी अपना परिचय देती है। पर कुछ ऐसे भी महामानव होते हैं जो उस शक्ति की अन्तिम अवस्था को प्राप्त कर प्रकृति के बन्धनों से सर्वदा के लिए मुक्त हो जाते हैं।

रामकृष्ण परमहंस ने उसी महाशक्ति को काली अथवा महामाया के नाम से सम्बोन्धित किया है। शक्ति पूजा भी प्रकारान्तर से उस महाशक्ति की अभ्यर्थना का ही रूप है। उनका कहना था कि किसी ने प्रकृति को, माया को, भोग विलास की वस्तु मान लिया तो वह मृग मारीचिका की भाँति उसके पीछे भागता फिरेगा तथा असन्तुष्टि तथा अतृप्ति की आग में जलता रहेगा। रावण तथा दुर्योधन जैसे प्रतापी राजाओं को भी उस आग में जल कर राख हो जाना पड़ा।

उस शक्ति का सम्बन्ध जब राज सत्ता, वैभव एवं शौर्य से जुड़ जाता है तो व्यक्ति नेपोलियन, हिटलर, सिकन्दर, अर्जुन तथा कर्ण जैसे महाबली बन जाते हैं। वही शक्ति जब प्रज्ञा के रूप में अभिव्यक्त होती है, तो शंकराचार्य, विवेकानन्द, कुमारिल, अरस्तु और कान्ट जैसे विद्वान प्रकट होते हैं, जिसने उस प्रकृति को विज्ञान के रूप में परब्रह्म की शक्ति मान लिया तो वह न्यूटन और आइन्स्टीन हो गया और जिसने प्रस्तर की प्रतिमा को ही काली मान लिया, वह रामकृष्ण परमहंस हो गया। जिसने उस प्रकृति को आदर्श व्यवस्था मान लिया वह मर्यादा पुरुषोत्तम राम बन गया। जिसका उस प्रकृति से संयोग हो गया वह, योगीराज कृष्ण हो गया।

ज्ञान का स्रोत वस्तुतः मनुष्य का मन है। कोई भी ज्ञान बाहर से नहीं आता, सब कुछ अन्दर ही है। आविष्कार का अर्थ है—मनुष्य का अपनी अनन्त शक्ति स्वरूप आत्मा पर आच्छन्न आवरण हटा लेना। संसार भर में ज्ञान के क्षेत्र में जो कुछ भी विद्यमान है वह मन से ही निकला है।

समस्त उपलब्धियों का मूल 'मन'

मन को समस्त सफलताओं-असफलताओं का मूल माना गया है। मनुष्य को आगे बढ़ाने, ऊँचे उठाने की प्रेरणा यहीं से मिलती है। शास्त्रकारों ने इसे ही बन्धन और मोक्ष का कारण बताया है। यही मनुष्य का मित्र और शत्रु भी है। वश में किया हुआ मन अमृत के समान और अनियंत्रित मन हलाहल विष जैसा विनाशकारी सिद्ध होता है। मनुष्य को नारकीय एवं घृणित-पतित अवस्था तक पहुँचा देना अथवा उसे मानव भूसुर बना देना मन का ही खेल है।

मन बड़ा चंचल और वासनामय है। इन्द्रियादिक सम्पूर्ण शरीर पर उसी का आधिपत्य है और आत्मा का मन पर। मन सदैव संकल्प-विकल्पों, तर्क-वितर्कों के जाल-जंजाल के उधेड़बुन में उलझा रहता है। वह निश्चल कभी नहीं बैठता और न ही

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उसे मारा जा सकता है। वह बड़ा समर्थ और बलवान है। भगवान श्रीकृष्ण ने कहा है—

"असंशयं महाबाहो मनोदुर्निग्रहं चलम्।"

(गीता ६/३५)

अर्थात् "हे अर्जुन! निस्सन्देह यह मन चंचल और कठिनता से वश में होने वाला है। इसका धर्म सदा गतिशील, चंचल, स्वभावयुक्त है 'चंचलत्व' मनो धर्मो वन्हिधर्मो यथोष्णता।' वह किसी एक वस्तु और ध्येय पर केन्द्रित नहीं होता है। कोई एक सुन्दर कल्पना आती है तो उसके लिए ताने-बाने बुनने लगता है। इसके बाद कोई और नई सूझ आती है तो वह पिछली बातों को भूलकर उसमें रम जाता है और उन्हें पूरा करने के लिए ताना-बाना बुनने लगता है।

ऐसी बात नहीं है कि मन यह सब अकारण या निरुद्देश्य करता हो। उसकी इस चंचलता के पीछे सुख की आकांक्षा ही निहित है। वह केवल महत्तर सुख की खोज में घूमता है। उसकी यह प्रवृति अधिक से अधिक विकास के लिए तृप्ति-तुष्टि के लिए होती है। इसीलिए वह जिस बात में जिस दिशा में सुख प्राप्ति की कल्पना कर सकता है, जहाँ समझता है कि यहाँ सुख प्राप्त हो सकता है वहाँ अपनी कल्पना के अनुसार उसे एक सुन्दर और मनमोहक रूप प्रदान करता तथा रंग-बिरंगी योजनाएँ तैयार करता है। मस्तिष्क उसी ओर लपकता है और तदनुरूप शरीर भी उसी दिशा में काम करने लगता है। इस प्रकार वह न जाने किन-किन मृग तृष्णाओं में मनुष्य को भटकाता है और असफलताओं की अधूरे कार्यक्रमों की ढेरियाँ लगा कर जीवन को मरघट जैसा कर्कश बना देता है।

किन्तु अणुशक्ति से भी अधिक प्रचण्ड शक्ति वाले इस मन को जब साथ लिया जाता है, प्रशिक्षित विकसित कर लिया जाता है, निर्मल और पवित्र बना लिया जाता है, उसे शुभ और कल्याणकारी विचारों से भर लिया जाता है तो वही निग्रहीत मन शिव-संकल्प वाला बन जाता है। शाप, वरदान से लेकर कहीं भी किसी भी क्षण किसी की भी सहायता कर सकता है—मार्ग दर्शन दे सकता है। परिष्कृत पवित्र मन आत्मभाव में लीन होकर मोक्ष का मार्ग प्रशस्त करता है।

मन का वश में होने का अर्थ उसका बुद्धि के विवेक के नियन्त्रण में होना है। बुद्धि जिस बात में औचित्य अनुभव करे, कल्याण देखे, आत्मा का हित-लाभ स्वार्थ समझे, उसके अनरूप कल्पना करने, योजना बनाने, प्रेरणा देने का काम करने को मन तैयार हो जाये तो समझना चाहिए कि मन वश में हो गया है। क्षण-क्षण में अनावश्यक दौड़ लगाना, निरर्थक स्मृतियों और कल्पनाओं में भ्रमण करना अनियंत्रित मन का काम है। जब वह वश में हो जाता है तो जिस काम पर लगा दिया जाये उसमें लग जाता है।

मन की एकाग्रता एवं तन्मयता में इतनी प्रचण्ड शक्ति है कि उस शक्ति की तुलना संसार की और किसी शक्ति से नहीं हो सकती। निग्रहीत मन ऐसा शक्तिशाली अस्त्र है कि उसे जिस ओर भी प्रयुक्त किया जायेगा उसी ओर आश्चर्यजनक चमत्कार उपस्थित हो जायेंगे। सूर्य की किरणें जब चारों ओर बिखरी रहती हैं तो उनसे गर्मी और रोशनी भर प्राप्त होती है और इसके अतिरिक्त उनका कोई विशेष उपयोग नहीं हो पाता। पर जब आतिशी शीशे द्वारा उन किरणों को एकत्रित कर दिया जाता है, तो जरा से स्थान की धूप से अग्नि जल उठती है और देखते-देखते वह दावानल का रूप धारण कर सकती है। जैसे एक-दो इंच क्षेत्र में फैली हुई धूप का केन्द्रीकरण भयंकर दावानल के रूप में प्रकट हो सकता है, वैसे ही मन की बिखरी हुई कल्पना आकांक्षा और प्रेरणा शक्ति भी जब एक केन्द्र-बिन्दु पर एकाग्र होती है तो उसके फलितार्थी की कल्पना मात्र से आश्चर्य होता है।

जप तप, एवं योगसाधना के विविधि विशाल कर्मकाण्डों का सृजन इसीलिए हुआ है कि चित्तवृत्तियाँ एक बिन्दु पर केन्द्रित होने लगें तथा आत्मा के आदेशानुसार उसकी गतिविधियाँ हों। महर्षि पातंजलि ने योग की परिभाषा करते हुए कहा है कि 'योगश्चित्तवृत्ति निरोधः' अर्थात् चित्त की वृत्तियों का निरोध करना रोक कर एकाग्र करना ही योग है। इस दिशा में सफलता मिलते ही अन्तरात्मा का परमात्मा से सायुज्य हो जाता है और वह उनमें सन्निहित समस्त ऋद्धि-सिद्धियों का स्वामी बन जाता है। वशवर्ती मन के प्रयोग से संसार के किसी कार्य में प्रतिभा, यश, विद्या, स्वास्थ्य, भोग, अन्वेषण आदि जो भी वस्तु अभीष्ट होगी, वह निश्चित ही प्राप्त होकर रहेगी। उसकी प्राप्ति में संसार की कोई शक्ति बाधक नहीं हो सकती। पारमार्थिक आकांक्षाओं की पूर्ति से लेकर समाधि सुख तक एकाग्र मन से उपलब्ध होती है।

निग्रहीत मन की इस शक्ति को भारतीय महर्षियों मुनियों ने बहुत पहले जान लिया था। उसकी महत्ता का प्रतिपादन करते हुए जनक के यज्ञ में याज्ञवल्क्य और अश्वलायन के संवाद में याज्ञवल्क्य ने कहा है— मन ही देवता है। मन अनन्त है, अतः उस मन से मनुष्य अनन्तलोक भी जीत लेता है। प्रश्नोपनिषद (२/२) में भी मन को देवता कहा है। छान्दोग्य उपनिषद् में सनतकुमार ने नारद को उपदेश देते हुए कहा है—मन ही आत्मा है, मन ही लोक है और मन ही ब्रह्म है। तुम मन की उपासना करो। उसकी उपासना करने वाला, जहाँ तक उसकी गति है वहाँ तक वह स्वेच्छापूर्वक जा सकता है। मुक्तिकोपनिषद् में वर्णन है—"सहस्रों अंकुर, त्वचा, पत्ते शाखा, फल-फूल से युक्त इस संसार वृक्ष का यह मन ही मूल है। यह संकल्प रूप है। संकल्प को निवृत्त करके उस मनस्तत्व को सुखा डालो जिससे यह संसार वृक्ष भी सूख जाये। तैत्तरीय उपनिषद् में मन को ब्रह्म बतलाया है और कहा है कि सचमुच मन से ही समस्त प्राणी उत्पन्न होते हैं, उत्पन्न होकर मन से ही जीते हैं तथा इस लोक से प्रयाण करते हुए अन्त में उसमें ही सब प्रकार से प्रविष्ट हो जाते हैं। गीता १०/१२ में भगवान कृष्ण ने कहा है—"इन्द्रियों में मन में हूँ। वेद में इसे ही 'ज्योतिषां ज्योति' कहा गया है।"

इस प्रकार सभी शास्त्रकारों से और योगी सिद्ध महापुरुषों ने मन को समस्त शक्तियों का भण्डार निरूपित करते हुए इसको वश में करना आवश्यक बताया है, क्योंकि जीवसत्ता और ब्रह्मसत्ता के बीच यदि कोई चेतन सत्ता करम करती है,

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

उन्हें मिलाती है या विलग करती है, तो वह मानसिक चेतना ही है। ऋग्वेद में कहा है "हे मनुष्य यदि तू मन को स्थिर करने में समर्थ हो जाये तो तू स्वयं ही समस्त बाधाओं और विपत्तियों पर विजय पा सकता है।"

मन की पवित्रता, निर्मलता, एकाग्रता स्थिरता और निग्रह के लिए भारतीय तत्वदर्शियों, योगाचार्यों ने विशिष्ठ साधना उपक्रमों का अविष्कार किया और बताया है कि सतत् अभ्यास और विवेक वैराग्य द्वारा मन को वशवर्ती बनाया जाता है। अर्जुन को सम्बोधित करते हुए गीता के छठे अध्याय के ३५ वें श्लोक में भगवान श्रीकृष्ण ने कहा है—"मनोदुर्निग्रहंचलम् अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते।" आद्यशंकराचार्य ने इसकी विशद व्याख्या की है। यहाँ अभ्यास का अर्थ है वे योग साधनायें जो मन को रोकती हैं। वैराग्य का अर्थ है व्यावहारिक जीवन को संयमशील और व्यवस्थित बनाना। प्रलोभन को जीतना ही वैराग्य है। आद्यशंकराचार्य के अनुसार मन का सीधा सम्बन्ध श्वास-प्रश्वास से है। इस प्रक्रिया को नियंत्रित नियमित करने से मनःस्थिति को वशवर्ती बनाया जा सकता है। प्राणायाम एवं ध्यान साधना द्वारा मन की चंचलता, घुड़दौड़, विषय-लोलुपता, ऐषणा प्रकृति को रोककर ऋतम्भरा बुद्धि के अन्तरात्मा के अधीन किया जा सकता है।

निश्चय ही मन की शक्तियाँ विलक्षण हैं। मनुष्य का सुख-दुःख बन्धन, मोक्ष सभी इसी के अधीन हैं। तत्वदर्शी ऋषियों ने बहुत पहले ही कह दिया है, "मनः मातस देवो चतुर्वर्ग प्रदायकम" अर्थात् मन की शक्ति में धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष दिलाने वाली सभी शक्तियाँ भरी पड़ी हैं। यदि मन, शुद्ध, पवित्र और संकल्पवान बन जाये तो जीवन की दिशाधारा ही बदल जाये। इसीलिए कहा गया है कि जिसने मन को जीत लिया उसने सारा संसार जीत लिया।

मन को जीतना—सबसे बड़ी विजय

इस प्रत्यक्ष संसार के अतिरिक्त मनुष्य का एक मानसिक संसार भी होता है। इसका संचालक मनुष्य का गुप्त मन होता है। मनुष्य का यह मानसिक संसार बड़ा ही व्यस्त और विचित्र होता है। प्रतिक्षण इसमें नई-नई कल्पनायें और कामनायें जन्म लेती रहती हैं, जिनमें से बहुत सी मर भी जाया करती हैं और बहुत सी पलती-पनपती रहती हैं और किसी दिन अवसर पाकर हमारे बाह्य संसार के बीच प्रकट होने लगती हैं।

मनुष्य का यह मानसिक संसार बड़ा गुप्त होता है। इसका दर्शन संसार में किसी को नहीं हो पाता। हाँ, अपने मनोराज्य का स्वामी मनुष्य अवश्य इसे देखा करता है। सो भी तब ठीक से देख पाता है, जब उसका विवेक प्रखर और प्रबुद्ध हो। अन्यथा देखता हुआ भी वह इसे नहीं देख पाता। इसका तात्पर्य यह है कि जिस व्यक्ति ने अपने विवेक को प्रखर और प्रकाशित नहीं किया होता है, वह मानसिक संसार की क्रियायें देखता तो है किन्तु न तो उनका तात्पर्य समझ पाता है और न उनसे होने वाले हानि-लाभ को ही विदित कर पाता है। ऐसी दशा में उसका देखना न देखना बराबर ही होता है।

यह मनोराज्य बड़ा सूक्ष्म होता है, अस्तु स्थूलताओं की गति इसमें नहीं हो पाती। यह स्वयं भी निराकार होता है और निराकार शून्य में ही स्थित रहता है। सूक्ष्म होने से इसमें बड़ी प्रबल शक्तियों का निवास रहता है। जो मनीषी व्यक्ति इस मानसिक संसार पर पूरा-पूरा आधिपत्य और शासन स्थापित कर लेता है, वह त्रिलोक और त्रिकाल का ज्ञाता हो जाता है, आत्मा में निवास करने वाले अमृत का भोगी बन जाता है। पूर्वकालीन भारतीय ऋषि-मुनियों ने, जिन्होंने देशकाल को जीत लिया था और आत्मा के अमृत पर अधिकार स्थापित कर लिया था, अपनी साधना, उपासना और तपश्चर्या द्वारा पहले इस मनोराज्य पर ही विजय प्राप्त की थी। मनोजयी सर्वजयी होता है, इसमें कोई संदेह नहीं।

इस मनोविस्तार के पीछे आत्मा का क्षेत्र रहता है। उसमें प्रवेश करने के लिये पहले इसे ही भेदन करना पड़ता है। जब तक इस लोहावरण का भेदन नहीं होता, आत्मलोक का मार्ग प्रशस्त नहीं होता। आध्यात्मिक समर का यह दूसरा मोर्चा है। पहला मोर्चा शारीरिक अर्थात् स्थूल संसार का होता है। आध्यात्म योद्धा को पहले इन्द्रियों, उनकी तृष्णाओं और वासनाओं पर विजय प्राप्त करनी होती है, अनन्तर वह इस विजय का शंख फूँकता हुआ मानसिक मोर्चे की ओर बढ़ता है और इसको जीतने के बाद आत्मिक क्षेत्र में प्रवेश कर पाता है।

मनुष्य इस स्थूल जगत् में जिस क्रिया को भी व्यक्त करता है, उसका जन्म पहले पहल मानसिक लोक में ही होता है। अपनी जन्मभूमि के अनुसार वह क्रिया भी निराकार रूप में जन्म लेती है—जिसे विचार कह सकते हैं। क्रियाओं का जन्म पहले विचारों के रूप में ही होता है। उसके बाद वे मन से प्रेरित होकर स्थूल जगत में आतीं और इन्द्रियों द्वारा अपनी अभिव्यक्ति पाती हैं।

स्पष्ट है कि भूमि के अनुसार फसल पैदा होती है। भूमि अच्छी और स्वस्थ होगी तो फसल भी सुन्दर और स्वस्थ होगी। भूमि विकृत और मलीन होगी तो फसल भी उसी के अनुसार रद्दी और निम्नकोटि की होगी। इतना ही क्यों यदि भूमि में विषैले तत्वों का समावेश होगा तो उसकी उपज भी विषाक्त ही होगी। इसी प्रकार मनोभूमि के अनुसार मनुष्य के विचारों का जन्म होता है। मनोभूमि सुन्दर, स्वस्थ, अनुकूल होगी, तब सुन्दर, स्वस्थ और अनुकूल विचारों का जन्म होगा। विचारों के अनुसार क्रियायें होंगी और क्रियाओं के अनुसार परिणाम। विकृत एवं विषाक्त मनोभूमि की गर्भ से विकृत और विषैले विचार जन्मेंगे, अपकर्मों में व्यक्त होंगे और तदनुसार दुर्भाग्यपूर्ण परिणाम सम्पादित करेंगे। कर्मों का परिणाम मनुष्य के सम्पूर्ण जीवन, उसके जन्म-जन्मान्तरों और लोक-परलोक से सम्बन्धित होते हैं। इस प्रकार मनुष्य की सुगति और अपगति का सारा निर्माण उसकी मनोभूमि के ही अधीन है।

मनुष्य जीवन में मनोराज्य का बहुत महत्व है। इसकी अनुकूलता-प्रतिकूलता पर ही मनुष्य का उत्थान- पतन निर्भर है। मनुष्य के मनोराज्य में सद् और असद् दोनों तरह की वृत्तियों

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org

का निवास रहता है। किन्तु प्रायः सद्वृत्तियों पर असद्वृत्तियाँ हावी रहती हैं। इसका मुख्य कारण यह है कि असद्वृत्तियाँ आपसे-आप चैतन्य और सक्रिय रहती हैं, किन्तु सद्वृत्तियाँ नहीं। जहाँ दुष्ट स्वभावतः चंचल और क्षिप्र रहते हैं, वहाँ सज्जन, शान्त, गम्भीर और स्थिर रहने के अभ्यस्त रहते हैं। इसका भी एक विशेष कारण है। यह कि दुष्ट ध्वंस-प्रवर्तक होते हैं और सज्जन, सृजन-प्रवर्तक। ध्वंस के लिए किसी प्रकार के सोच-विचार अथवा योजन-नियोजन की आवश्यकता नहीं होती, वह तो उनका स्वाभाविक खेल होता है। किन्तु सृजन की प्रक्रिया तो विचार, चिन्तन और व्यवस्थित योजना के अधीन होती है। फिर सद्वृत्तियाँ तो उन्नति, सफलता और अमृत तक की प्रदायिका होती हैं, उन्हें आत्मगौरव और आत्म-श्लाघ होना ही चाहिए। जब तक कोई उनका आह्वान नहीं करेगा, उनसे सम्पर्क स्थापित नहीं करेगा, तब तक वे किसी की सेवा सहायता के लिये अपने-आप क्यों दौड़ने लगेंगी।

अस्तु जीवन में अभ्युदय चाहने वाले व्यक्ति को मनोनुकूलता के लिये उसकी सद्वृत्तियों को प्रबल बनाना होगा और उनके द्वारा असद्वृत्तियों को पराजित कराकर मनोराज्य से बाहर खदेड़ देना होगा। मनोभूमि पर सोई हुई सद्वृत्तियाँ जब एक बार प्रबुद्ध कर दी जाती हैं तो वे फिर तो अपनी विरोधी वृत्तियों से आपसे-आप संग्राम छेड़ देती हैं। ज्यों-ज्यों असद्वृत्तियाँ परास्त होती जाती हैं, मनुष्य की उन्नति का भव्य मार्ग प्रशस्त होता जाता है। किन्तु सद्वृत्तियों की सहायता के लिये मनुष्य को भी कुछ न कुछ करते रहना होगा। वह यह कि अपने उद्देश्य के शुभ संकल्पों को निरन्तर बढ़ाता रहा जाये। मनुष्य के एक शुभ संकल्प में पूरी एक सेना की भाँति शक्ति होती है। इस कुमुक को पाकर सद्वृत्तियों का उत्साह बढ़ेगा, उनमें विश्वास आयेगा और वे उत्तरोत्तर प्रबल होती चली जायेंगी।

किसी शुभ कल्पना अथवा कामना मात्र को शुभ संकल्प नहीं कहते। शुभ संकल्प वास्तव में वह निष्ठा, वह लगन और वह तीव्रता होती है, जो किसी लक्ष्यपूर्ण शुभ कामना अथवा कल्पना के साथ जुड़ी रहती है। एकान्त निष्ठा और अखण्ड लगन से रहित कोई भी शुभ विचार, संकल्प नहीं बनता। किसी विचार में यह निष्ठा और यह लगन तभी आती है, जब वह मनुष्य के सम्पूर्ण चेतन द्वारा स्वीकृत और विवेक द्वारा प्रमाणित कर दिया जाता है। जिस विचार की शुभता में जितना ही संशय अथवा संदेह रहेगा, वह उतनी ही संकल्पता से दूर रहेगा। अस्तु इस विषय में मनुष्य को अपने विवेक से पूरा-पूरा काम लेते रहना चाहिये।

मानव-मन में एक से एक चमत्कारी शक्तियों का भण्डार भरा हुआ है। सद्वृत्तियों की सहायता से मन पर अधिकार होते ही मनुष्य उसकी सारी शक्तियों का स्वामी बन जाता है। किन्तु शक्तियों का स्वामी भर हो जाने से महानता का प्रयोजन नहीं हो सकता। उसके लिये शक्तियों के सतत् उपयोग की आवश्यकता है। जिन शक्तियों का उपयोग नहीं होता, वे कुण्ठित होकर नष्ट हो जाती हैं।

प्रयत्नपूर्वक मानसिक शक्तियाँ पा जाने के बाद एक बार पुनः असदाशयता का खतरा खड़ा हो जाता है। कोई भी शक्ति अपने में कोई विश्वस्त वस्तु नहीं होती। उससे जहाँ लाभ हो सकता है, वहाँ हानि भी। शक्ति के सदुपयोग से जहाँ मनुष्य ऊँचा चढ़ सकता है, बड़ी से बड़ी सफलता पा सकता है। वहाँ उसके गलत प्रयोग से वह अपनी शक्ति मनुष्य की दुश्मन बन जाती है और वह अपने शस्त्र से ही आहत हो जाता है।

मनुष्य के मनोराज्य का बहुत महत्व है। उसे सदाशयों द्वारा वशीभूत करके सिद्धि की ओर बढ़ाया जाना चाहिये, किन्तु पश्चात विकारों से सावधान रहने की आवश्यकता है। उसका एक ही उपाय है और वह यह कि शुभ संकल्पों को त्यागा न जाये।

मनोयस्यवशे तस्य भवेत्सर्वं जगद्वशे

बिखराव के कारण सौर ऊर्जा का अधिकांश भाग यों ही बेकार चला जाता है। उसकी थोड़ी मात्रा ही प्राणधारी तथा वृक्ष-वनस्पति अपनी आवश्यकता के अनुसार ग्रहण कर पाते हैं। एक बिन्दु पर सूर्य की कुछ किरणों को केन्द्रित किया जा सके तो उससे दावानल जैसी स्थिति उत्पन्न हो सकती है। वैज्ञानिकों का ऐसा मत है कि बिखराव को समेटा और सूर्य की प्रचण्ड ऊर्जा को कैद किया जा सके तो मात्र उसकी एक दिन की शक्ति से सम्पूर्ण विश्व की वर्षों की ऊर्जा आवश्यकता की आपूर्ति होती रह सकती है।

शरीर की स्थूल इन्द्रियों की तुलना में मन की सामर्थ्य कई गुनी अधिक है। मनःशक्ति की तुलना सौर ऊर्जा से की जा सकती है। जिस प्रकार फैले होने व सतत् नष्ट होते रहने के कारण सूर्य शक्ति से विशेष लाभ उठाते नहीं बनता। गर्मी, ताप जैसे सामान्य प्रयोजन ही पूरे हो पाते हैं। उसी तरह मन से निस्सृत होने वाली इच्छाएँ, आकांक्षाएँ दैनिक जीवन की सामान्य आवश्यकताओं की पूर्ति मात्र कर पाती हैं। मन की चंचलता के कारण वे कोई विशेष प्रभाव नहीं दिखा पातीं, अन्यथा उनमें वह सामर्थ्य है कि एक दिशा लक्ष्य विशेष पर अपने बिखराव को रोककर केन्द्रित किया जा सके तो चमत्कारी परिणाम प्रस्तुत हो सकते हैं। मनोबल, संकल्प बल की चर्चा की जाती है। यह और कुछ नहीं निग्रहीत मन की ही शक्ति है जो सामान्य से लेकर असामान्य प्रयोजन सम्पन्न कर सकने में सक्षम है। संकल्प बल द्वारा जड़ एवं चेतन को न केवल प्रभावित किया जा सकता है, उनमें आवश्यक हेर-फेर भी किया जा सकता है।

हारे-थके टूटे निराश मनःस्थिति वाले अधिकांश व्यक्ति मनोबल-संकल्पबल की दृष्टि से कमजोर होते हैं। शारीरिक एवं मानसिक आधि-व्याधियों से भी ऐसे ही व्यक्ति अधिकतर घिरे रहते हैं। छोटी-मोटी बीमारियों में भी वे अधिक पीड़ा-कष्ट की अनुभूति करते हैं जबकि इच्छा शक्ति के धनी कठिन और असाध्य रोगों में भी हँसते-मुस्कराते रहते और दृढ़ मनोबल के सहारे शीघ्र ही अच्छे होते देखे जाते हैं। इच्छा शक्ति दृढ़ हो तो दीर्घ, स्वस्थ जीवन ही नहीं, चिरयौवन का लाभ भी प्राप्त किया जा सकता है तथा कुछ समय के लिए तो अधिक आयु के साथ प्रकट होने वाले प्रौढ़ता के चिह्नों को भी एक किनारे

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

छोड़ा जा सकता है, प्रस्तुत है ये घटना जो यह बताती है कि संकल्पबल के सहारे रोग निवारण ही नहीं आयु को भी आगे ढकेलना सम्भव है।

डॉ० वैनेट द्वारा लिखित 'ओल्ड एज, इट्स कॉज एण्ड प्रीवेन्शन' में एक घटना का उल्लेख इस प्रकार है। १९ वर्षीया एक फ्रान्सीसी युवती का एक अमेरिकन युवक से विवाह होना निश्चित हुआ। युवक निर्धन था। इसलिए उसने यह तय किया कि पहले अमेरिका जाकर धनोपार्जन करेगा और फिर लौटकर शादी करेगा। तीन वर्ष तक वह परिश्रम करता रहा। इस अवधि में उसने पर्याप्त धन एकत्रित कर लिया, पर दुर्भाग्यवश एक मुकदमे में उसे पन्द्रह वर्ष की सजा हो गई। पन्द्रह वर्ष बाद वह फ्रान्स वापस लौटा तो यह देखकर आश्चर्यचकित रह गया कि उसकी मंगेतर का स्वास्थ्य और सौन्दर्य पूर्ववत् था। ३४ वर्ष की आयु में भी वह १९ वर्ष की युवती लगती थी। विवाहोपरान्त उसने एक दिन पत्नी से उसके सौन्दर्य का राज पूछा। युवती ने बताया कि वह नित्य प्रातः एक बड़े शीशे के सामने खड़ी होकर अपने चेहरे को देखकर मन ही मन यह अनुभव करती थी कि आज बिलकुल वैसी ही हूँ जैसी कि कल थी। प्रचण्ड इच्छा शक्ति के कारण ही वह अपने यौवन को ३४ वर्ष की आयु में भी अक्षुण्ण बनाये रखने में सक्षम हुई।

फिनलैंड की एक युवती के गर्भाशय में कैंसर हो गया। डॉक्टरों ने रोग को असाध्य घोषित करते हुए उसे कुछ दिनों का मेहमान बताया, इस युवती से पड़ौसी युवक मीनर मेंटन को गहरी सहानुभूति थी। उसने युवती के समक्ष विवाह का प्रस्ताव रखा। निराशा के घोर प्रस्ताव में भटकती युवती को जैसे जीने के लिए प्रकाश रूपी सम्बल मिल गया हो। विवाह सम्पन्न हुआ। अनुकूल सहचर पाकर जैसे वह अपना रोग ही भूल गई। जो सदा बिस्तर पर लेटी रहती थी, अब सदा चलती-फिरती, हँसती-हँसाती नजर आती थी। एक वर्ष बाद उसे एक पुत्र हुआ। डॉक्टरों ने परीक्षा करने पर पाया कि युवती में कैन्सर रोग का नामो-निशान नहीं था। बच्चा भी पूर्ण स्वस्थ और निरोग था। चिकित्सकों ने इस घटना को मनोबल का चमत्कार माना।

मनःशक्ति का एक पक्ष एकाग्रता का है। इसका अभ्यास बन जाने पर असम्भव समझे जाने वाले काम भी सम्भव हो सकते हैं। थोड़ी देर के लिए किसी विषय विशेष पर ध्यान को केन्द्रित कर अपने शारीरिक कष्टों को भी भुलाया जा सकता है। लोकमान्य तिलक के जीवन की एक बहुचर्चित घटना इसी तथ्य का बोध कराती है। मवाद भर जाने के कारण लोकमान्य तिलक के अंगूठे का ऑपरेशन होना था। डॉक्टर क्लोरोफॉर्म लेकर पहुँचे ताकि उसे सुंघाकर ऑपरेशन किया जा सके। तिलक ने कहा "बेहोश करने की आवश्यकता नहीं है। मुझे एक प्रति 'गीता' की लाकर दे दो।" जितनी देर ऑपरेशन चलता रहा तिलक गीता पढ़ने में तल्लीन रहे। उन्हें कष्ट की थोड़ी भी अनुभूति नहीं हुई। इसका कारण स्पष्ट करते हुए उन्होंने चिकित्सकों को बताया कि कष्टों की अनुभूति शरीर को नहीं मन को होती है। मन यदि किसी अन्य विषय पर केन्द्रित हो तो शरीर के कष्टों को पूर्णतया भुलाया जा सकता है।

मन की सामर्थ्य का असामान्य पक्ष वह है जिसके द्वारा वस्तुओं एवं व्यक्तियों को प्रभावित किया जाता है। निग्रहीत मन की शक्ति ही प्रचण्ड संकल्प बल के रूप में प्रकट होती है, जिसके द्वारा एक स्थान पर बैठकर दूरवर्ती व्यक्तियों को प्रभावित करना तथा जड़ वस्तुओं में भी हलचल उत्पन्न कर सकना सम्भव है। ऐसी सामर्थ्य से सम्पन्न कितने ही व्यक्तियों के समाचार समय-समय पर प्रकाशित होते हैं।

रूसी महिला 'रोजा मिखाइलोवा' अपनी इच्छा शक्ति से जड़ वस्तुओं में हलचल पैदा करने के कितने ही प्रदर्शन कर चुकी हैं। पत्रकारों के समक्ष एक बार उन्होंने दूर मेज रखी डबल रोटी को निर्निमेष दृष्टि से देखा और जैसे ही मुख खोला डबलरोटी अपने आप मेज पर से उठी मिखाइलोवा के मुँह में जा पहुँची। इस तरह के अनेकों प्रदर्शनों द्वारा वे लोगों को आश्चर्यचकित करती रही हैं।

'बिटवीन टू वर्ल्डस्' पुस्तक में डॉ० नैन्डोर ने ऐसे शक्ति सम्पन्न कितने ही व्यक्तियों का उल्लेख किया है। डॉ० वैन्शनोई भी उन्हीं में से एक हैं। बिना स्पर्श किये वे वस्तुओं को एक स्थान से दूसरे स्थान पर खिसका देते हैं। उनकी इस विलक्षण सामर्थ्य की परीक्षा वैज्ञानिकों एवं पत्रकारों द्वारा ली जा चुकी है। डॉ० फोडोर ने अपनी पुस्तक में लिखा है कि एक बार प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक जुंग अपने मित्र मनोविज्ञानी डॉ० फ्रायड से मिलने गये। चर्चा संकल्प बल पर चल पड़ी। फ्रायड ने जुंग की इस बात को मानने से इन्कार कर दिया कि इच्छा शक्ति द्वारा जड़ वस्तुओं को भी प्रभावित किया जा सकता है। जुंग एक स्थान पर बैठ गये तथा उन्होंने अपनी प्रचण्ड संकल्प शक्ति का प्रयोग किया। ऐसा लगा कि कमरे की सभी वस्तुएँ काँपने लगी हों, मेज पर रखी पुस्तकें कमरे की छत पर उछल कर जा चिपकीं। फ्रायड को अपना मत बदलना पड़ा। इसे उन्होंने न केवल स्वीकार किया वरन् इसका अपने ग्रन्थों में उल्लेख भी किया।

अमेरिका का यूरी गैलर नामक व्यक्ति अपनी विलक्षण शक्ति के लिए काफी दिनों तक चर्चा का विषय बना रहा। इच्छा शक्ति द्वारा वह दूर रखे चम्मच, लोहे की छड़ों को तोड़-मरोड़ देने का प्रदर्शन विशाल जनसमूह के समक्ष अनेकों बार कर चुका है।

ब्रिटिश काल में सर जॉन बुडरफ कलकत्ता हाइकोर्ट के चीफ मजिस्ट्रेट थे। एक संस्मरण में उन्होंने लिखा है कि एक बार वे ताजमहल के संगमरमर के फर्श पर बैठे थे। साथ में उनके एक भारतीय मित्र भी थे। बातचीत के प्रसंग में संकल्प शक्ति की चर्चा चल पड़ी। बुडरफ को इस पर विश्वास न था, मित्र से उन्होंने संकल्प शक्ति का प्रमाण देने को कहा। उनके भारतीय मित्र ने कहा कि एक छोटा प्रमाण तो मैं भी दे सकता हूँ। सामने जो लोग बैठे हैं उनमें से आप जिसे कहें, उसे उठा दूँ और वापस जहाँ कहें वहाँ बिठा दूँ। बुडरफ ने उन व्यक्तियों में एक को चुना और यह भी बता दिया कि उसे किस स्थान पर बैठाना है। मित्र ने अपनी शक्ति का प्रयोग किया। फलस्वरूप वह व्यक्ति अकारण उठा और बुडरफ द्वारा बताये

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

गये स्थान पर जा बैठा। इस घटना का उल्लेख बुडरफ ने अपनी एक पुस्तक में विस्तृत रूप से किया है।

भारतीय योग विद्या में रुचि रखने वाले प्रसिद्ध फ्रान्स के विद्वान 'लुई जकालियट' ने अपनी पुस्तक में गोविन्द स्वामी नामक एक भारतीय योगी का उल्लेख किया है जो अपनी इच्छा शक्ति से जल के भरे घड़े को हवा में ऊपर उठा देता था। मिनटों तक घड़ा अधर में लटका रहता था।

निग्रहीत मन की सामर्थ्य और चमत्कारों की घटनाओं से तो भारतीय धर्मग्रन्थों के पुराण एवं इतिहास भरे पड़े हैं। इसे एक सूत्र रूप में इस रूप में योग वाशिष्ठ में कहा गया है—

"मनोहि जगतां कर्तृ मनोहि पुरुषः स्मृतः।"

३।९।१४

अर्थात्—'मन ही जगत का कारण और स्मृतियों वर्णित पुरुष है।'

'एलेक्जेंडर राल्फ' ने 'द पावर आफ माइन्ड' नामक पुस्तक में विभिन्न प्रमाण देते हुए लिखा है कि एकाग्रता के अभ्यास द्वारा मानव मन शरीर के बाहर स्थित सजीव एवं निर्जीव पदार्थों पर भी इच्छानुकूल प्रभाव डाल सकता है। उसका कहना है कि यह एक निर्विवाद तथ्य है कि दृढ़ इच्छा शक्ति द्वारा स्थूल जगत पर नियन्त्रण सम्भव है।

पदार्थ शक्ति कितनी सामर्थ्यवान हो सकती है इसे आइन्स्टीन के ऊर्जा समीकरण द्वारा समझा जा सकता है। ऊर्जा समीकरण के अनुसार एक ग्राम पदार्थ को यदि पूर्णतया शक्ति में बदला जा सके तो उससे प्रकाश की गति × प्रकाश की गति अर्थात् (३० अरब × ३० अरब) अर्ग ऊर्जा उत्पन्न होगी जो लगभग २१४ खरब ३० अरब कैलोरी उष्मा के समतुल्य होगी। एक कैलोरी ऊष्मा का तात्पर्य है एक ग्राम पानी का ताप एक डिग्री सेण्टीग्रेट बढ़ाने में प्रयुक्त ऊष्मा की मात्रा। उपरोक्त ऊष्मा का अर्थ हुआ कि एक ग्राम के भौतिक द्रव्य में ही इतनी ऊर्जा सन्निहित है कि उससे २ लाख १४ हजार ३ सौ टन शून्य डिग्री सेण्टीग्रेड वाले पानी को सौ डिग्री सेण्टीग्रेड तक खौलाया जा सकता है। एक पौण्ड पदार्थ की शक्ति उतनी होगी जितनी १४ लाख टन कोयला जलाने से उत्पन्न होगी। अभी तक वैज्ञानिक इस तरह की कोई तकनीक विकसित नहीं कर सके हैं जिससे पदार्थ को पूर्णतः शक्ति में बदला और उस शक्ति का पूरा-पूरा उपयोग किया जा सके। भौतिक विज्ञानियों के अनुसार एक पौण्ड पदार्थ को पूर्णतया ऊर्जा में बदल कर उपयोग करना सम्भव हो सके, तो मात्र उतने से पूरे अमेरिका को एक माह तक विद्युत सप्लाई की जा सकती है।

यह तो पदार्थ की सामर्थ्य हुई। उसका नगण्य घटक परमाणु की शक्ति तो और भी प्रचण्ड है जिसकी चर्चा इन दिनों सर्वत्र है। जड़ परमाणुओं की तुलना में मन की सामर्थ्य कई गुनी अधिक है। उसे भी परमाणु शक्ति को उभारने जैसी प्रक्रिया अपनायी जा सके तो वह चमत्कारी परिणाम प्रस्तुत कर सकता है। इसके लिए साधना का अवलम्बन लेना पड़ता है। मनोनिग्रह एवं एकाग्रता का दुहरा अभ्यास इच्छा शक्ति-संकल्प शक्ति को दृढ़ बनाने के लिए करना पड़ता है। ध्यान के विभिन्न साधना उपचार इसी प्रयोजन की पूर्ति के लिए किये जाते हैं। अलग-अलग मनःस्थिति के व्यक्तियों के लिए अलग-अलग ध्यान उपचार बताये जाते हैं। इस प्रक्रिया को अपनाकर कोई भी अपने मन को इतना समर्थ और सशक्त बना सकता है ताकि उससे सामान्य से लेकर असामान्य प्रयोजन पूरा कर सके।

निग्रहीत मन की अपार सामर्थ्य

सूर्य की स्वाभाविक धूप जो शरीर पर पड़ती है कठिन गर्मी में भी उसे शरीर सहन कर लेता है। किरणें बिखरी हुई होती हैं अतः वे अपना सामान्य ताप ही दे पाती हैं। किन्तु नतोदर शीशे के लेन्स से एक इंच स्थान की धूप को केन्द्रित कर दिया जाये तो उस ताप को शरीर का कोई भी अंग सहन न कर सकेगा। कोई भी वस्त्र उसमें बिना जले न रहेगा। उससे कहीं भी अग्नि पैदा की जा सकेगी और विविध प्रयोजन पूरे किये जा सकेंगे।

सूर्य-किरणों की केन्द्रीभूत शक्ति की तरह निग्रहीत मन की शक्ति और सामर्थ्य भी अतुलित हैं। अस्त-व्यस्त मनोदशा से जीवन का कोई विशेष उद्देश्य पूरा नहीं होता। सामान्य श्रेणी के जीवों की तरह ही वह आहार-विहार की सांसारिक बातों में ही उलझा रहता है किन्तु यदि उसे एक लक्ष्य पर स्थिर कर दिया जाये तो उससे साधारण जीवन में भी कई गुनी शक्ति दिखाई देने लगेगी और मन चाही कल्पना पूरी की जा सकेगी।

साधारण लोगों के मन की कोई निश्चित गति नहीं होती। तालाब के पानी की तरह जिधर से हवा चली उधर से, वैसी ही कम-ज्यादा वेग वाली लहरें उठने लगेंगी। प्रायः लोग अपने से बड़े, पास-पड़ोस और उस समाज के व्यक्तियों के आचरणों का ही अनुकरण करते रहते हैं और उतने ही क्षेत्र में विचार उठाते रहते हैं। इससे मनुष्य के जीवन में कोई विशेषता नहीं आती। किन्तु यदि मन को संकल्पपूर्वक किसी विशेष लक्ष्य की पूर्ति में लगा दिया जाता है तो उसमें समुद्री ज्वार-भाटे की तरह ऐसी शक्ति भर जाती हैं कि कठिन दिखाई पड़ने वाले कार्य भी आसानी से पूरे हो जाते हैं। लोग उनकी सफलता पर आश्चर्य प्रकट करते हैं, यह सब उन्हें चमत्कार-सा लगता है। पर चमत्कार-सी दिखाई दिने वाली यह सफलता एकाग्र मन की संग्रहीत शक्ति के परिणाम से और कुछ अधिक नहीं होती। मन की तन्मयता में वह शक्ति है तो बड़े से बड़े कार्य आसानी से पूरे कर सकती है।

मन में उठने वाली इन विचार तरंगों को स्वेच्छापूर्वक विचरण न करने देना चाहिए। क्योंकि निरन्तर उठते रहने वाले विचार अच्छे-बुरे जैसे भी होंगे वैसे ही तत्व वे सूक्ष्म जगत से आकर्षित करते रहेंगे और वह विचार स्वभाव में परिणत होने लगेगा। बाह्य रूप से शारीरिक परिवर्तन भले ही दिखाई न पड़े पर यदि कुविचारों में ही मन रस लेता रहे तो बुरे स्वभाव का

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

परिपक्व हो जाना अवश्यसम्भावी है। इस अवस्था में मनुष्य अपना नैतिक पतन तो करता ही है औरों को भी पथ-भ्रष्ट करने का एक सजीव केन्द्र-सा बन जाता है। इस तरह के विचारों वाले मनुष्य की समीपता जिसे भी मिलेगी उनके भी दुष्ट और दुराचारी हो जाने की सम्भावना रहेगी।

मनःशक्ति के इस दूषित-पक्ष को देखकर ही उसे स्वेच्छाचारी न होने देने की सलाह दी गई है। शास्त्रकारों ने निरन्तर अभ्यास द्वारा उसे नियंत्रण में रखने की शिक्षा दी है। उन्हें यह मालूम था कि दृष्य जगत के सम्पर्क में रहने के कारण मनुष्यों की वासना एवं तृष्णा परक आकांक्षाओं का उठना स्वाभाविक है। उन्हें जिधर आकर्षण दिखाई देगा उधर ही दौड़ेंगी। मन को स्थूल भोगों में ही अधिक सुख मिलता है अतः उसकी इच्छायें, आकांक्षायें, कल्पनायें तथा विचारणायें भी वैसी ही अधोगामी होंगी। हीन विचारों के कारण मनुष्य के जीवन में चंचलता, अस्थिरता, क्षुद्रता और निकम्मापन आता है फलस्वरूप यह जीवन अनेक कष्टों एवं उद्वेगों में फँसा रहता है। उस उलझन में न किसी तरह की भौतिक उन्नति ही हो पाती है न आध्यात्मिक लक्ष्य ही पूरा हो पाता है।

अनियंत्रित मन प्रयोग रूप में अनेकों आकांक्षायें बनाता बिगाड़ता रहता है। कभी वह असंख्य धन प्राप्त करने की इच्छा करता है, कभी विद्वान होने का सपना देखता है। पहलवान बनने, नेता बनने, प्रतिष्ठा पाने, धनी होने, भोग भोगने की अनेकों योजनायें वह बनाया करता है। यह योजनायें स्थिर नहीं होती हैं। औरों के जीव की प्रतिक्रिया स्वरूप ही वह इन लालच भरे सपनों के पीछे अंधी दौड़ लगाया करता है। पर उसकी कोई भी आकांक्षा निर्दिष्ट नहीं होती। हृदय की संवेदनशीलता के कारण वह प्रत्येक अवस्था में अपने आपको ही ठीक समझता है, पर इन अनेक कामनाओं का वह समन्वय नहीं कर पाता। एक ही समय पर कोई वक्ता बनना चाहे और पहलवान बन सके यह असम्भव है। एक बार में एक ही क्रिया को अधिक सुविधा और सफलतापूर्वक पूरा किया जा सकता है। अभी खाना, अभी पानी, अभी घर, अभी दुकान, अभी रेल, अभी मोटर—सब बातें एक साथ नहीं होतीं। उन्हें क्रमिक रूप से पूरा करने से ही कोई उचित व्यवस्था बन पाती है। इनका क्रम किस प्रकार हो? कौन-सी आकांक्षा किस सीमा तक संजोकर रखी जाय ? उसकी पकड़ कितनी मजबूत हो ? इन सब पर भली प्रकार विचार करने से ही जीवन-दशा को सुनियोजित रखा जा सकता है।

सबसे महत्व की बात यह है कि एक लक्ष्य के लिये अनेक आकांक्षायें परस्पर पूरक कैसे बनें? इस स्थिति को यदि विचारपूर्वक समझ लिया जाये तो अपने अभीष्ट मनोरथों को लोग बड़ी आसानी से पूरा कर सकते हैं। इच्छायें जीवन के विशिष्ट पहलू व परिस्थितियों से बँधी होती हैं, अतः उनका योग्य निर्धारण तथा उपयोग सम्पूर्ण जीवन का एक केन्द्र बिन्दु, एक लक्ष्य निश्चित करने में है। यह लक्ष्य जितना महान होगा, उच्चस्तरीय, भव्य सम्पूर्ण जीवन को दृष्टिगत रखकर निर्धारित, सर्वांगीण और व्यापक होगा, इच्छाओं और आकांक्षाओं का वेग भी उतनी ही मजबूती तथा कठोरता से सम्हालने की जरूरत पड़ेगी। छोटी ऊँचाई से गिरने पर चोट की उतनी आशंका नहीं रहती जितनी बड़ी ऊँचाई से गिरने पर लग सकती है। ऊँचे लक्ष्यों को साधने के लिए इसीलिए अधिक लगन, गहन तत्परता और कठोर मानसिक नियंत्रण की आवश्यकता पड़ती है। यदि मन को साध लिया जाये और वह रुचिपूर्वक लक्ष्य पूर्ति में लगा रहे तो कठिनाइयाँ सरल हो जाती हैं और मनुष्य अभीष्ट सफलता प्राप्त कर लेता है।

पर यह कार्य उतना सरल नहीं है। लक्ष्य पूर्ति के मार्ग में अनेक द्विविधायें तथा उलझन भरे प्रश्न आते हैं जिनका निराकरण करना कठिन हो जाता है। एक प्रश्न के दो पहलू आ जाते हैं, दोनों ही उचित और आवश्यक प्रतीत होते हैं पर चुनाव एक का ही करना होता है। कभी-कभी ऐसा होता है कि आवश्यकता से भिन्न कोई बात सामने अटल प्रारब्ध बनकर आ जाती है उस समय यह अनुमान करना कठिन हो जाता है किसे ग्रहण करें और किसे छोड़ दें। पर यदि मन स्वस्थ और नियंत्रित है तो वह अपने विवेक बल से अच्छे-बुरे का, उचित-अनुचित का ज्ञान प्राप्त कर परिस्थितियों को काबू में ला सकता है। आवश्यकता सिर्फ इतनी है कि ऐसी स्थिति में विवेक का अंकुश, मनः नियंत्रण इतना कठोर हो कि उसे प्रलोभनों की ओर झुकने न दिया जाये। क्योंकि मन प्रायः अपनी रुचि के ही निर्णय निकालता है जो लक्ष्य-पूर्ति में बाधक भी हो सकते हैं।

आशा, विश्वास, दृढ़ता, तन्मयता, कर्मठता, धैर्य और कष्ट सहिष्णुता मनोबल के प्रतीक हैं। मन को संतुलित अवस्था में रखने, एक ही लक्ष्य की ओर उसे प्रेरित करने में इन गुणों का प्रादुर्भाव होता है और आन्तरिक महानता विकसित होने लगती है। इन गुणों से मन की तमाम शक्तियाँ केन्द्रीभूत होकर एक प्रचण्ड दावानल-सी बन जाती है। ऐसे बलवान मन को चाहे जहाँ लगा दिया जाये उधर से ही सफलता का मार्ग खुलता हुआ दिखाई देगा। निराशा, उद्विग्नता, चंचलता और अश्रद्धा यह मनोविकार है। ईर्ष्या, विद्वेष, कुढ़न, चिड़चिड़ापन आदि से मानसिक शक्तियों का पतन होता है और जीवन में किसी विशेषता या महत्ता के दर्शन नहीं होते। यह दोनों ही पहलू मनुष्य के सामने हैं जिसे चाहें चुन ले और वैसा ही सफल या असफल जीवन बना ले।

मन बड़ा शक्तिशाली है। पर उससे कोई विशिष्ट लाभ तभी प्राप्त किया जा सकता है जब उसे पूर्ण नियंत्रण में रखा जाये। जीवन-लक्ष्य की प्राप्ति, सांसारिक सुख-सुविधायें प्राप्त करने के लिए भी यह शर्त अनिवार्य है। हमारा मन वश में हो जाये तो इस जीवन को स्वस्थ व समुन्नत बना सकते हैं और पारलौकिक जीवन का भी मार्ग प्रशस्त कर सकते हैं।

एक बार स्वामी विवेकानन्द हैदराबाद गये। वहाँ एक ब्राह्मण रहता था, जिसके सम्बन्ध में उन्होंने सुना था कि "वह

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

मनुष्य न जाने कहाँ से अनेक वस्तुयें उत्पन्न कर देता है।" वह उच्च खानदान का और शहर का नामी व्यापारी था। स्वामी जी उसके पास गये और अपने चमत्कार दिखाने को कहा। उस समय वह बेचारा बीमार था। भारतवर्ष में ऐसा विश्वास है कि अगर कोई पवित्र मनुष्य किसी के सिर पर हाथ रख दे तो उसकी बीमारी ठीक हो जाती है। वह ब्राह्मण स्वामी जी के समीप जाकर बोला—"भगवन् ! पहले आप मेरे सिर पर हाथ रख दें तो मेरा बुखार भाग जाये। अनन्तर में अपने चमत्कार दिखाऊँगा।" स्वामी जी ने शर्त स्वीकार कर ली।

वह मनुष्य अपनी कमर में एक चिथड़ा पहने था। अन्य सब कपड़े उतार कर रख दिये। अब उसे केवल एक कम्बल ओढ़ने को दिया गया। शीत के दिन थे और भी अनेक लोग एकत्रित हो गये। उसने कम्बल ओढ़ा और एक कौने में बैठ गया।

इसके बाद उसने कहा—"आप लोगों को जो कुछ चाहिये, वह लिखकर दीजिये।" सबने कुछ लिख-लिखकर दिया, स्वामी जी ने स्वयं भी उन फलों के नाम लिखकर दिये, जो उस प्रान्त में पैदा ही नहीं होते थे, किन्तु आश्चर्य कि उसने कम्बल में से अंगूर के गुच्छे तथा संतरे इतनी अधिक मात्रा में निकाल कर दिये कि उनका वजन उस मनुष्य के वजन से दोगुना होता। वह फल सबने खाये भी। खाने योग्य थे भी, अन्त में स्वामी जी के आग्रह पर उसने सौ डेढ़-सौ गुलाब के फूल निकाल कर दिये। प्रत्येक फूल बढ़िया खिला हुआ और पंखुड़ियों पर सबेरे के ओसबिन्दु विद्यमान थे, न कोई खण्डित फूल था, न मुरझाया और न टूटा।

इस घटना पर अपनी सम्मति व्यक्त करते हुए स्वामी विवेकानन्द जी लिखते हैं—"लोग इसे जादू मानते हैं। चमत्कार कहते हैं। अवांछित है ऐसी मान्यता है किन्तु मैं ऐसा नहीं मानता। यह सत्य का ही प्रदर्शन था। जो है ही नहीं उसकी छाया कहाँ से आ सकती है, इसलिये यह माया नहीं थी।"

"यह मन की अनन्त शक्तियों का प्रमाण है, हम मन से जो चाहे उत्पन्न कर सकते हैं। मन के भीतर सारी सृष्टि की समृद्धि और सम्पत्ति है। शर्त यही है कि हम मन से काम लें। अनियन्त्रित मन अपना भी बुरा करता है, संसार का भी। हैदराबाद का यह ब्राह्मण मन से तो काम लेता है, मगर यह नहीं जानता कि मन से काम ले रहा है, वह भी भ्रान्त है, इसलिये वह चमत्कार की दुनिया तक ही सीमित रह गया। अपने अन्दर ईश्वर को व्यक्त नहीं कर पाया।'

मानव मन की अद्भुत और अविश्वसनीय शक्तियाँ कई प्रकार से सिद्ध हो चुकी हैं, उसमें वह क्षमता है कि मात्र कल्पना-शक्ति से समय और अन्तरिक्ष पर विजय प्राप्त कर चेतन को अचेतन से पृथक् कर सकता है।

लिथूयानिया निवासी रैबी एलिजा के सम्बन्ध में कहा जाता है कि उसे विचित्र मानसिक शक्ति प्राप्त थी पर उस पर उसका नियन्त्रण न होने के कारण वह शक्ति भी जीवन में कुछ काम न आई। उसने अपने जीवन में दो हजार से अधिक पुस्तकों को एक बार पढ़कर याद कर लिया था। कोई भी पुस्तक लेकर किसी भी पन्ने को खोलकर पूछने पर वह उसके एक-एक अक्षर को दोहरा देता था। उसका मस्तिष्क सदैव क्रियाशील रहता था, इसलिये पुस्तकालय के बाद भी उसे अपने हाथ में पुस्तक रखनी पड़ती थी, दूसरे कामों से चित्त हटते ही वह पुस्तकें पढ़ने लग जाता था।

पिल्सबरी अमेरिका के हैरी नेल्सन को भी ऐसी विलक्षण मानसिक शक्ति प्राप्त थी। उसे शतरंज का जादूगर कहा जाता था। यह एक साथ बीस शतरंज के खिलाड़ियों की चाल को याद रख सकता था। बीस-बीस खिलाड़ियों से खेलते समय कई बार उसे मानसिक थकावट होने लगती थी, उस थकावट को उतारने के लिये वह ताश भी खेलने लगता था।

जर्मनी के राजा की एक लाइब्रेरी प्रसा में थी। इसके लाइब्रेरियन मैथुरिन बेसिरे को आवाज सम्बन्धी याददास्त अद्भुत थी। एक बार उसकी परीक्षा के लिए बारह देशों के राजदूत पहुँचे और उन्होंने अपनी-अपनी भाषा में बारह वाक्य कहे। जब वे चुप हो गये तो बेसिरे ने बारहों भाषाओं के बारहों वाक्यों को ज्यों के त्यों दोहरा दिये। वह एक बार में ही कई व्यक्तियों की आवाज सुनता रहता था और आश्चर्य यह था कि सब की बात उसे अक्षरशः याद होती जाती थी। ऐसी विलक्षण प्रतिभा फ्रान्स के प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ लिआन गैम्बाटा और रिचार्ड पोरसन नामक ग्रीक पण्डित को भी उपलब्ध थी।

मन की शक्ति की तीव्रता का अकंन नहीं किया जा सकता। हजारों घोड़ों की क्षमता वाले इन्जिन और रॉकेट भी इतनी तेज नहीं दौड़ सकते। यदि मन को वश में किया जा सके तो मनुष्य हजारों कोस दूर बैठे किन्हीं दो व्यक्तियों की बातचीत को ऐसे सुन सकता है, जैसे वह अपनी बगल में बैठे बातचीत कर रहे हैं। ऐसे दिखाई देने लगते हैं, जैसे अपनी उनसे एक फुट की दूरी भी नहीं है। यही नहीं हजारों कोस दूर हुए बैठे व्यक्ति के मन की भी बात जानी जा सकती है। दूरदर्शन, दूरश्रवण आदि कई सिद्धियाँ निग्रहीत मन की ही देन होती हैं। महामुनि पंतजलि ने योग का लक्षण बताते हुए लिखा है—'योगश्चित्तवृति निरोध' अर्थात्—चित्त की वृत्तियों को रोके रहना योग है। योग सिद्ध पुरुष सब कुछ कर सकता है। वह ब्रह्म प्राप्ति का अनिर्वचनीय सुख प्राप्त कर सकता है, चमत्कार दिखाकर लोगों की दृष्टि में प्रभावशील बन सकता है। मेस्मरेजम और हिप्नोटिज्म यह सब मन की तुच्छ कलायें हैं। कहा जाता है, इनसे साधक का कोई आत्मकल्याण नहीं होता, उसके लिए मनोबल आध्यात्मिक शोध में नियोजित किया जाता है।

अन्तर्शोध की स्थिति को यद्यपि इस तरह अभिव्यक्त नहीं किया जा सकता तो भी विचारशील व्यक्ति मन की इस अद्भुत शक्ति और उसके चमत्कारों का विवरण पढ़, सुन और देखकर इस दैवी शक्ति के विकास का प्रयास अवश्य कर सकते हैं। भारतवर्ष जैसे योग प्रणेता देश में ऐसे चमत्कारों की कमी नहीं है। इसे विदेशी लोग भी मानते हैं। एक अमरीकी संवाददाता ने एक घटना का उल्लेख करते हुए लिखा—"भारतवर्ष की एक नदी में जहाज द्वारा यात्रा कर रहा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

था। जैसे ही जहाज बन्दरगाह पर पहुँचा एक भारतीय एक गठरी लिये लंगोटी लगाये जहाज पर चढ़ आया। उसने वहाँ पड़ी रस्सी का एक गोला बण्डल उठा लिया, उसका एक सिरा खोल कर गांठ लगा दी और उसे उसने बड़े जोर से आकाश की ओर फेंक दिया। गाँठ ऊपर चढ़ती जाती थी और नीचे का गोला अपने आप खुलता जाता था। थोड़ी देर में सारी रस्सी आकाश में उड़कर लोप हो गई। पास में एक टूटा नारियल पड़ा था। साधु ने उठाकर पानी भरा छोटा-सा नारियल उसमें थोड़ा ही पानी आया पर उससे उसने एक पूरी बाल्टी भर दी। फिर दूसरा डोल मँगाकर उसे भी भर दिया। इस तरह उसने कोई पन्द्रह डोल भर दिये, इसके बाद उसने नारियल को उठाकर कुछ पढ़ा, नारियल तो लुप्त हो गया और जब हाथ नीचे किया तो उसके स्थान पर एक डोल हाथ में था। हम यह देखकर बहुत आश्चर्यचकित थे कि यह सब क्या हो रहा है।"

पाल ब्रान्टन ने भारतवर्ष में इस तरह के चमत्कारों को ढूँढ़-ढूँढ़कर देखा और बाद में इस गुप्त विद्या के प्रतिपादन में पुस्तक लिखी। पांडिचेरी के फ्रांसीसी न्यायाधीश लुई जेकालियट ने भी एक ऐसी ही पुस्तक लिखी है, जिसमें भारतवर्ष की इस पुरातन विद्या की भूरि-भूरि प्रशंसा की है।

जिसे दूसरे लोग चमत्कार, आश्चर्य और गुप्त विद्या मानते हैं। उसे भारतीय ऋषियों योगियों ने मन की शक्ति का छोटा-सा चमत्कार माना है, जो आकर्षक तो लगता है, किन्तु आत्मकल्याण में बाधक है। मनोनिग्रह का लक्ष्य आत्मा का वेधन करना है जिसे प्राप्त कर मनुष्य जीवन मुक्त और स्वर्ग का अधिकारी बनता है।

श्रीरामोत्तरतापनीयोपनिषद् में मनोमय शक्ति का विवेचन करते हुए बताया है कि भौंहों और नासिका की जहाँ सन्धि है वही स्वर्ग तथा उससे भी उच्च परमधाम का सन्धि स्थान है, वही अविमुक्त है। ब्रह्मज्ञानी जन इसी सन्धि की संध्या रूप में साधना करते हैं। जो साधक इस प्रकार जानने वाला है कि अव्यक्त् ब्रह्म की साधना का स्थान अविमुक्त क्षेत्र आधिभौतिक स्थान है और भौंहों पर तथा नासिका का संधि स्थान (यहीं मन का ध्यान किया जाता है) आध्यात्मिक काशी है वही ज्ञानी यथार्थ ज्ञानोपदेश में समर्थ हो सकता है। यही सबसे बड़ा तीर्थ और देवताओं के लिये भी पवित्र है। यही परमात्मा प्राप्ति का स्थल है। यहाँ से जब प्राणी के प्राण निकलते हैं तो अमृतत्त्व की प्राप्ति होती है। मनोमय शक्ति की यही साधना सही अर्थों में अभीष्ट भी है। चमत्कारों से कुछ भला नहीं होता।

योग कुण्डल्युपनिषद् में—ब्रह्माजी ने योग विद्या प्राकट्य किया है द्वितीय अध्याय की प्रथम पांच ऋचाओं में उन्होंने मन को ही ब्रह्म प्राप्ति का मुख्य साधन बताते हुए लिखा है—"मनुष्य कामनाओं से ग्रसित होकर विषयाकांक्षी होता है। विषय में पड़कर कामनायें घटती नहीं बढ़ती ही रहती हैं। मन की शक्ति इस तरह विशृंखलित और केवल लौकिक कार्यों में ही नष्ट होती रहती है। इसलिये शुद्ध परमात्म-भाव की प्राप्ति के लिये विषय और कामना दोनों का त्याग करना और आत्म में ध्यान लगाना आवश्यक है, जो अपने हित की इच्छा रखता है उसे विषयों में इस शक्ति को नष्ट नहीं करना चाहिए और शक्ति में प्रवेश कर उसी में स्थित रहना चाहिये। मन द्वारा मन को देखकर और समझकर उसका त्याग करना ही परमपद है। उत्पत्ति और स्थिति का प्रधान बिन्दु मन ही है।" आगे के मन्त्रों में मन द्वारा षटचक्रों के वेधन का विस्तृत विधान भी मिलता है, यह बहुत ही महत्वपूर्ण योग विद्या है। 'पंचकोशी साधना' इसे ही कहते हैं। उसके लाभ अनन्त हैं पर पूर्व में मनोनिग्रह और उस शक्ति को आत्मा में नियोजित करना अत्यावश्यक है।

मनुष्य का मन उस तलघर की तरह है जिसमें पुरानी वस्तुयें भी होती हैं और नई भी। जीवन नित्य नूतन है किन्तु मन सदैव ही पुरातन बना रहता है। उसमें अतीत की धूल इकट्ठी होती रहती है। यह धूल चेतना के दर्पण को ढक देती है, पदार्थ जन्य मोह ही जागृत रहता है। तब यह मन बन्धन हो जाता है। यह संस्कार जितने जटिल होते हैं, आधिभौतिक दुःख भी उतने ही बढ़ते जाते हैं। आत्मा पर इसलिये बन्धन भी मन ही है। जीवन के अनुभव के लिए मन की कारा से मुक्ति आवश्यक है। इस महाशक्ति को आत्मा में ढाल देने से सही सच्चे सुख और स्वर्ग की प्राप्ति होती है।

सुसंस्कृत मन—दिव्य क्षमताओं का अजस्र भाण्डागार

मन की तीन प्रकार की अतिन्द्रिय क्षमताएँ बतायी गयी हैं। प्रथम वह पदार्थों के रहस्यमय स्वरूप की जानकारी प्राप्त कर सकता है। द्वितीय चर्मचक्षुओं से परे दूरवर्ती स्थानों की जानकारी प्राप्त कर सकता है। तृतीय इसके अन्दर भूत और भविष्य को जानने की क्षमता भी विद्यमान है। प्रत्येक मनुष्य के मन के अन्दर ये तीनों क्षमताएँ सुषुप्तावस्था में विद्यमान हैं। न्यूनाधिक रूप से इसकी जानकारी समय-समय पर आकस्मिक अनुभूतियों अथवा स्वप्नों के माध्यम से मिलती रहती है। मन की इन सभी क्षमताओं को कौन कितने अनुपात में विकसित कर सकता है यह प्रत्येक मनुष्य के अपने स्तर एवं प्रयास पर निर्भर करता है।

सामान्य मनुष्य की मनःशक्ति का क्षेत्र बहुत सीमित होता है। उसके मन की ये तीनों क्षमताएँ संकीर्ण व उथली होती है। पर जैसे-जैसे मानसिक क्षमता बढ़ती जाती है, अन्तरंग जगत विकसित होता जाता है—वैसे-वैसे मन की सामर्थ्य भी बढ़ती जाती है।

मनुष्य के स्वयं के अन्दर ही ऐसी विलक्षण क्षमता विद्यमान है जिसे सर्वसाधारण नहीं जान पाते और वे मन की क्षमता को अन्य प्राणियों की तरह उदर पूर्ति और वंश वृद्धि में प्रयुक्त करते हुए जीवन गँवा देते हैं। इसके विपरीत ऋषि ज्ञानी योगी अन्तरंग जगत में प्रसुप्त पड़ी हुई क्षमताओं को जगा कर स्वयं तो प्रखर और तेजस्वी जीवन जीते हैं तथा जनसामान्य को भी इससे लाभान्वित करते हैं। वे अपनी अतीन्द्रिय क्षमताओं के आधार पर स्थान और काल की दूरी को कुछ ही क्षणों में पार कर लेते हैं। काल की सीमा पार कर भूत और भविष्य का ज्ञान प्राप्त कर लेते हैं। यजुर्वेद में भी मन की इस सामर्थ्य का वर्णन इस प्रकार आता है—

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org

ओऽम् येनेदं भूतं भुवनं भविष्यत् परिग्रहीतममृतेन सर्वम्॥

(यजु०)

"जिस अमृत रूप मन ने इन सम्पूर्ण भूत, वर्तमान और भविष्य को सब प्रकार से चारों ओर से ग्रहण किया हुआ है।" अर्थात् संस्कृत और सुनियोजित मन भौतिक एवं आत्मिक ऋद्धि-सिद्धियों का उत्पादक क्षेत्र होता है।

मन पर जन्म-जन्मान्तरों के संस्कार जमे रहते हैं। पूर्व जन्मों में साधा हुआ मन अगले जन्मों में भी उन्हीं क्षमताओं से परिपूर्ण होता है। यही कारण है कि कई बच्चों मे जन्म से ही विलक्षणताएँ पायी जाती हैं। जो कुछ भी बौद्धिक क्षमता और आन्तरिक प्रखरता प्राप्त है। जरूरी नहीं कि वे इसी जन्म की हों। यहाँ न केवल पुनर्जन्म की ही बात कही जा रही है। वरन् यह भी सुनिश्चित है कि पूर्व संस्कारों के प्रतिफल अगले जीवन में देखे जा सकते हैं। मन को निकृष्ट बनाना या उत्कृष्ट बनाना यह हर व्यक्ति पर निर्भर करता है। उसी के अनुरूप वह जीवन में आन्तरिक और बाह्य दोनों उपलब्धियों प्राप्त कर सकता है।

मन जागृत अवस्था में जिस प्रकार इन्द्रिय सामर्थ्य से कई गुना अधिक काम कर दिखाता है उससे भी अधिक विलक्षण चमत्कारपूर्ण कार्य निद्रितावस्था में कर सकता है। जागृतावस्था में इन्द्रियों के माध्यम से मन का सम्बन्ध बाह्य जगत से होता है। निद्रा की स्थिति में इन्द्रिय क्षमता का कोई उपयोग नहीं होता है। फिर भी मन ऐसी दौड़ लगाता है कि स्थान और काल की दूरी का कोई महत्त्व नहीं रहता। यहाँ तक कि इस दृष्टि में ऐसी कोई सीमा रेखा नहीं जहाँ मन की पहुँच न हो। यजुर्वेद ३४-९ में भी मन की इस सामर्थ्य का वर्णन इस प्रकार किया गया है—

"वह कौन सा वन है? वह कौन सा वृक्ष है जिससे इस पृथ्वी का निर्माण हुआ है। हे मनीषियों इस प्रश्न का उत्तर अपने मन से सही पूछो। वही इस धरती को वर्तमान स्वरूप देने का श्रेयाधिकारी है।"

मन की शक्ति अपरिमित है जिसका कोई ओर-छोर नहीं है। सृष्टि को आरम्भ से लेकर जन्म-जन्मान्तरों के अनुभव जिस पर अंकित होते आये हैं। उन्हीं पूर्व संस्कारों के आधार पर भावी सम्भावनाओं को भी सरलतापूर्वक जाना जा सकता है। विगत जन्मों के सभी भले-बुरे संस्कार मन पर अंकित होते हैं लेकिन वे याद नहीं रहते, इसका कारण यह है कि मन वर्तमान परिस्थितियों में ही उलझा रहता है। मन स्थूल जगत से इतना अधिक सम्बद्ध होता है कि रात-दिन में ऐसा कोई क्षण शेष नहीं रहता जिसमें बाह्य जगत से सम्बन्ध विच्छेद हो जाये। स्थूल जगत के प्रभाव से ही वह हर क्षण प्रभावित रहता है और इस दृश्य जगत को ही सब कुछ मान बैठता है। सूक्ष्म की ओर उसका ध्यान जाता ही नहीं। अपने अन्त में झांकने का अवसर उसे मिलता ही नहीं है। योगियों को विगत जन्मों की कई बाते याद रहती हैं। इसका कारण है कि उनका बाह्य जगत से सम्बन्ध उस सीमा तक ही होता है, जितना कि उचित है। उनकी संसार में स्थिति 'पद्मपत्रमिवाम्भज्ञा' जल में कमल की भाँति होती है। मन पर उनका पूरा नियन्त्रण होता है। वे मन को स्थूल जगत में लिप्त होने का अवसर ही नहीं देते। बाह्य प्रभाव उनके मन पर अंकित नहीं हो पाते। अन्तर्जगत में वह विचरण करता उसकी गहराई में प्रवेश करता और मनःसमुद्र से ऐसे अमूल्य रत्न खोज लाता है कि सामान्य बुद्धि जिस पर आश्चर्य किये बिना नहीं रहती।

महर्षि पातंजलि ने योग-दर्शन में इसी रहस्य की चर्चा की है—

"संस्कार साक्षात्कारकरणात् पूर्वजातिज्ञानम्"

अर्थात् संस्कारों से साक्षात्कार होने पर पूर्व जन्मों का ज्ञान हो जाता है।

स्पष्ट है कि मन पर पड़े हुए संस्कार कभी विनष्ट नहीं होते। अपनी सामर्थ्य के अनुरूप मनुष्य उन्हें पुनः जागृत कर सकता है। स्वप्नावस्था इनके प्रकटीकरण का एक सरल माध्यम है। योगी मनीषी तो जागृत अवस्था में भी पूर्वस्मृतियों का लाभ उठा सकते हैं। किन्तु सामान्य मनुष्यों को स्वप्नों के माध्यम से ही इसकी अनुभूति होती है। योगी का मन पर इतना नियन्त्रण होता है कि वह इच्छानुसार मनःशक्ति को नियोजित कर सकता है। पूर्व संस्कारों को जागृत कर सकता है। विचित्र स्वरूप प्रकट करते हैं। स्वप्नों में ही निरर्थक उछल-कूद मचाते रहने वाला व्यक्ति स्वयं इसका महत्त्व समझ नहीं पाता मात्र आश्चर्यान्वित होता रहता है। यदि मन को थोड़ा भी साध लिया जाये तो ये स्वप्न भी हमारे लिये बहुत उपयोगी बन सकते हैं। अन्तस्तल की प्रसुप्त शक्तियों के जागरण का आधार बन सकते हैं।

ग्रन्थों में तो यहाँ तक कहा गया है कि मनुष्य अपनी मनःशक्ति को विकसित करके अन्य प्राणियों की भाषा, स्वभाव, कार्य आदि का भी ज्ञान प्राप्त कर सकता है, क्योंकि इस जीवन से पूर्व मनुष्य प्रायः सभी प्राणियों की योनि में जन्म ले चुका होता है। इतना ही नहीं अन्तर्मुखी होकर सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का ज्ञान भी प्राप्त किया जा सकता है, क्योंकि जीव कभी न कभी सारे ब्रह्माण्ड की परिक्रमा कर चुका है और उसकी मनःचेतना में उस जानकारी का बहुत कुछ पूर्व ज्ञान बना होता है।

मन की तीन अवस्थाएँ होती हैं— (१) स्वप्नावस्था, (२) जागृतावस्था, (३) सुषुप्तावस्था। जागृत और सुषुप्तावस्था के बीच की अवस्था स्वप्न की होती है। बृहदाण्यकोपनिषद् में इसका उदाहरण इस प्रकार दिया गया है—कि जिस प्रकार एक बड़ा मगरमच्छ नदी के एक तट से दूसरे तट की ओर आता जाता है उसी प्रकार मनुष्य भी स्वप्नावस्था में पड़ा हुआ नदी के दोनों किनारों की तरह जागृत और सुषुप्ति के सिरों का स्पर्श करता रहता है। जीवन रूपी प्रवाह के जागृत और सुषुप्ति दो किनारे हैं। स्वप्नावस्था को मध्य धारा कहा जा सकता है। इस दृष्टि से भी स्वप्नावस्था का महत्त्व असामान्य है।

सामान्यतः स्वप्न में दो क्रियाएँ होती हैं एक तो बुद्धि व इन्द्रियों का बाह्य जगत से सम्बन्ध विच्छेद होना तथा दूसरा मन का अन्तर्जगत में विचरण करना। स्वप्न व मन की एक विशेष

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अवस्था है जिसमें ये दोनों क्रियायें अनिवार्य रूप से होती हैं। मन की अनेकों क्रियाओं में स्वप्न भी एक महत्वपूर्ण क्रिया है।

एक तो स्वप्न प्राकृतिक होते हैं। दूसरे प्रयत्नपूर्वक उत्पादित। दिवास्वप्न-कल्पनाओं के साथ तन्मय हो जाने पर दिखाई पड़ते हैं। अचेतन को तांत्रित करके भी हिप्नोटिज्म पद्धति से स्वप्निल स्थिति उत्पन्न की जा सकती है। किन्तु उच्चस्तरीय मनःसाधना में यह कार्य ध्यान धारणा द्वारा एकाग्रता उत्पन्न करके भी किया जा सकता है। समाधि इस विज्ञान की चरम परिणिति है। उसमें जो दिव्य दर्शन होता है उसे सत्य का साक्षात्कार एवं ईश्वर सान्निध्य स्तर का समझा जा सकता है। उस स्थिति में विराट ब्रह्माण्ड के सभी रहस्य अपने आप प्रकट होने लगते हैं। चेतना जगत की बह्य सत्ता अपना अन्तराल उस स्थिति में साधक के सामने खोलकर रख देती है। कहने वाले तो इस स्थिति को भी एक विशेष प्रकार का स्वप्न ही कहते, समझते देखे गये हैं।

तत्वदर्शियों के मन के दो भेद बताये गये हैं। एक समष्टिगत मन और दूसरा व्यष्टिगत मन। ब्रह्म का मन समष्टिगत है और समस्त प्राणियों का मन व्यष्टिगत। ब्रह्म के मन के आधार पर ही सृष्टि के सम्पूर्ण क्रियाकलाप निर्धारित होते हैं। सृष्टि की उत्पत्ति भी ब्रह्म की इच्छा से हुई। ऋग्वेद में कहा गया है—

"कामास्तदग्रे समवर्ततााधि मनसोरेतः प्रथमं यदासीत्"

जब सृष्टि बनने लगी तो सबसे पहले काम की उत्पत्ति हुई। यह काम मन का रेतस् अर्थात् वीर्य है।

ब्रह्म ही सृष्टि का निर्माता नियन्ता है। सम्पूर्ण सृष्टि ब्रह्म की इच्छा से उत्पन्न हुई। सृष्टि की गतिशीलता ब्रह्म के मन द्वारा ही संचालित है। ब्रह्म के इस समष्टिगत मन से ही व्यष्टिगत मन की उत्पत्ति हुई है। समुद्र की असंख्य लहरों के समान, सूर्य की अनेकानेक किरणों के समान ही समष्टिगत मन और व्यष्टिगत मन का एक-दूसरे से जुड़े हुए हैं। ब्रह्म के मन का अंश ही व्यष्टिगत मन है। जो सामर्थ्य समष्टिगत मन में है वही व्यष्टिगत मन में भी बीज रूप में विद्यमान है।

सामान्यजनों का मन भ्रान्तियों के जाल-जंजाल में उलझा हुआ और लिप्साओं में भटकता हुआ देखा जाता है। अवास्तविक और अनुपयोगी उड़ानें उड़ने में ही प्रायः उसकी क्षमता नष्ट होती है। यह अनगढ़ मनःस्थिति है। यदि उसे सुधारा बदला जा सके और निग्रहीत एवं सुसंस्कृत बनाया जा सके तो निश्चय ही साधा हुआ मन कल्प वृक्ष की तरह सब कुछ प्रदान करने वाला और परम लक्ष्य अमृतत्व की प्राप्ति तक पहुँच सकने में सहायक हो सकता है।

काया पर समग्र नियंत्रण की दिव्य क्षमता

अपनी काया पर मनुष्य का सीमित नियन्त्रण है। इच्छानुसार हाथ-पैर भर चलाने के लिए वह स्वतन्त्र है। मोटे-तौर पर खाने-कमाने जैसे कार्यों में ही कोई व्यक्ति अपने शरीर पर नियन्त्रण कर पाता है। आहार, व्यायाम, खेल-कूद, दौड़ आदि के सहारे वह पहलवान जैसा भी कुछ बन सकता है। इससे आगे की अवयवों की भीतरी क्रिया पद्धति पर उसका प्रत्यक्ष नियन्त्रण कुछ नहीं। रक्त संचार, आकुंचन-प्रकुंचन, निमेष-उन्मेष, श्वास-प्रश्वास जैसी क्रियायें अचेतन मन के द्वारा संचालित होती हैं। इस पर इच्छा शक्ति का नगण्य जितना ही नियन्त्रण रहता है। इन्हें स्वसंचालित संस्थान द्वारा अपने सहज क्रम में नियमित रूप से संचालित किया जाता रहता है, चाहे व्यक्ति चाहे अथवा न चाहे। यह ढर्रा अभ्यस्त चेतना संस्थान द्वारा अविज्ञात रूप से गतिशील बना रहता है। सामान्य स्थिति में इसे रोकना या घटाना-बढ़ना किसी के अपने हाथ में नहीं होता।

यदि इस क्षेत्र का नियमन संचालन जागृत मस्तिष्क में काम करने वाली इच्छा शक्ति के हाथों हो सके तो ऐसे व्यक्ति को शरीर का पूर्ण स्वामी कहा जा सकता है। तब वह भीतर क्रियाओं को घटाने-बढ़ाने में ही नहीं उनकी दिशाधार बदलने में भी समर्थ हो सकता है। ऐसा व्यक्ति रुग्णता की व्यथा को अपने मनोबल से हटा सकता है। जराजीर्ण अवयवों का काया कल्प कर सकता है। मृत्यु की घड़ी टाल सकता है। प्रसुप्त शक्ति भण्डारों को जगा सकता है। अतीन्द्रिय क्षमताओं का धनी हो सकता है और शरीर क्षेत्र में ऐसे पराक्रम कर सकता है जो कई सामान्य लोगों के लिए असम्भव ही कहे जायेंगे।

शरीर पर नियन्त्रण करने वाली इस क्षमता को कई बार अविश्वासियों को विश्वास दिलाने के लिए—प्रमाण परीक्षण के रूप में प्रस्तुत किया जाता है। इसका उद्देश्य यह सिद्ध करना है कि मानवी संकल्प बल के लिए यह सम्भव है कि कोई अपने शरीर की भीतरी अविज्ञात एवं प्रसुप्त क्षमताओं को प्रखर बनाकर दूसरों की तुलना में अधिक समर्थ सिद्ध हो सके।

शरीर में अगणित सामर्थ्यें भरी पड़ी हैं। वे प्रसुप्त स्थिति में रहती हैं। उन तक सामान्य इच्छा शक्ति की पहुँच नहीं होती। पर यदि प्रयत्नपूर्वक वैसी सामर्थ्य उत्पन्न की जा सके तो व्यक्ति अपने में असाधारण क्षमता की अभिवृद्धि अनुभव करेगा और जितना कुछ सामान्य व्यक्ति कर पाते हैं, उसकी तुलना में असंख्यों गुना अधिक कर सकेगा।

यही बड़ी सफलता है। इसे कोतूहल प्रदर्शन की बाजीगरी न समझी जाये। प्रदर्शन तो मात्र तथ्यों से अवगत होने एवं विश्वस्त मानने मनवाने के लिए किये जाते हैं। उपयोगिता यह है कि जिस काया की स्वल्प क्षमता का ही उपयोग होता रहता है, यदि उस पर अधिकाधिक अधिकार पाया जा सके तो व्यक्ति की विशिष्टता सिद्ध पुरुषों जैसी हो सकती है। अणिमा, महिमा आदि सिद्धियों के अधिष्ठाता ऐसे ही लोग होते हैं और वे असाधारण स्तर के पुरुषार्थ करके न केवल स्वयं लाभान्वित होते हैं वरन् उस उपलब्धि का एक छोटा अंश दूसरों की सहायता के लिए देकर पुण्य परमार्थ के भागी बन सकते हैं। काया पर असाधारण नियन्त्रण कर सकने के कितने ही प्रमाण समय-समय पर मिलते रहते हैं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सन १८३७-३८ की बात है। डॉ० मैक ग्रेगर नामक एक अंग्रेज भारतीय योग विद्या का चमत्कार देखना चाहता था। अतः उसने इसका जिक्र महाराजा रणजीतसिंह से किया। सन्त हरिदास महाराजा रणजीतसिंह के गुरु थे। उन्होंने उनसे योग विद्या का कोई चमत्कार दिखाने का निवेदन किया। सन्त हरिदास इसके लिए तैयार हो गये और ४० दिनों तक उन्होंने निराहार भूमिगत रहने का निश्चय किया। इसके लिए जमीन में एक बड़ा गड्ढा खोदा गया। सन्त हरिदास ने मुख को छोड़कर सारे इन्द्रिय द्वारा मोम से बन्द कर लिये। अन्त में जीभ को तालू कण्ठ से लगाकर मुख से जाने वाली श्वास का मार्ग भी बन्द कर दिया। फिर एक काष्ठ सन्दूक में बन्द हो गये। सन्दूक में ताला लगाकर उसे सील-बन्द कर दिया गया। तत्पश्चात् उसे गड्ढे में डालकर ऊपर से मिट्टी ढक दी गयी और सीमेंट से प्लास्टर कर दिया गया। ४० दिन बाद जब सन्दूक को खोला गया तो सन्त हरिदास शान्त प्रसन्न मुद्रा में बैठे मिले। उनकी शरीर परीक्षा की गयी । नाड़ी हृदय में किसी प्रकार का स्पन्दन नहीं था। समस्त शरीर अत्यन्त ठण्डा था। गर्मी थी तो सिर्फ सिर पर चोटी वाले स्थान में। परीक्षण के बाद कान-नाक से मोम निकाल ली गई और गुनगुना पानी सम्पूर्ण शरीर पर छिड़का जाने लगा। धीरे-धीरे चेतना लौटने लगी। हृदय धड़कने लगा और नाड़ियाँ चलने लगीं। थोड़ी देर में सन्त हरिदास उठकर खड़े हो गये। अभी भी उनके चेहरे पर पूर्ववत् चमक विद्यमान थी। वहाँ उपस्थित सभी सज्जन यह देख आश्चर्यचकित रह गये।

'हिस्ट्री ऑफ दि सिख्स' पुस्तक में इस घटना का उल्लेख करते हुए डॉ० मैक ग्रेगर ने लिखा है—"श्वास प्रश्वासों को बन्द कर जीवित रहना एक विलक्षण बात है। दीर्घकालीन उपवास का उन साधु महाराज पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा था। उनके चेहरे की चमक और प्रसन्नता में कोई अंतर नहीं आया था।"

इसी प्रकार सन्त हरिदास ने दूसरी समाधि सन १८३८ में पटियाला नरेश के समक्ष ली थी। समाधि की प्रक्रिया तो पहली ही जैसी थी, किन्तु भूमिगत रहने की अवधि इस बार दस महीने की थी। समाधि के बाद सम्पूर्ण खेत में जौ की बोवाई कर दी गई, ताकि यदि हरिदास जमीन से बाहर निकले तो पता चल जाये। नियत अवधि के बाद गड्ढा खोदा गया और सन्दूक को बाहर निकाला गया। सन्दूक खोलने पर इस बार भी उनकी वही स्थिति पायी गयी जैसी आरम्भिक समाधि में थी। इस बार भी वे थोड़ी ही देर में सामान्य स्थिति में आ गये। फिर तोपें दागकर उनका सम्मान किया गया और बहुमूल्य उपहार भेंट किये गये। कैप्टन ओस बर्न ने इस घटना का उल्लेख अपनी पुस्तक 'रणजीतसिंह' में बड़े भावपूर्ण शब्दों में करते हुए लिखा है—भारतीयों के पास ऐसा अलभ्य ज्ञान और विलक्षण क्षमताएँ हैं जो अलौकिकता और भौतिकता से बढ़कर हैं। अन्यथा इसे प्राप्त करने के लिए वे इतने कठोर तप और योगाभ्यास न करते।"

"हारवर्ड इन्स्टीट्यूट फॉर साइकिक एण्ड कलचर रिसर्च" की ओर से डॉ० थेरेस ब्रासे अपने दल के साथ भारत में योग विलक्षणता की शोध करने आयी थीं। उन्होंने समाधिस्थ योगियों के शरीरों की उसी स्थिति में पूरी-पूरी जाँच की और पाया कि वे लगभग मृत स्थिति में पहुँचने पर भी सामान्य स्थिति में जीवित रह रहे हैं और उनके शरीर में कोई अवांछनीय स्थिति उत्पन्न नहीं हो रही है। इस सम्बन्ध में आगे के अनुसन्धान करने के लिए श्रीमती ब्रोसे एक फ्राँसीसी शरीर विज्ञानी डॉ० माइलोवेनोविच के साथ भारत आयी थीं, उन्होंने इस सम्बन्ध में अपने शेष सन्देहों को भी दूर कर लिया। कुछ समय के लिए दिल की धड़कन बिलकुल बन्द कर लेने का दावा भी उसने सही पाया। ऐसे योगी तो बहुत से हैं जो सामान्यतया प्रति मिनट ७२ बार की धड़कन को घटाकर ६० की संख्या तक शिथिल कर लेते हैं। तीन दिन से लेकर २८ दिन तक बिना साँस लिए, बिना अन्न-जल ग्रहण किये, बिना मल-मूत्र विसर्जन किये—समाधिस्थ रहने वाले योगियों में से भी अधिकांश के दावे सही पाये गये। उनके संज्ञा शून्य होने की बात उनका हाथ बर्फ में दबाये रहने और आग का स्पर्श करने पर भी खरी उतरी। एक योगी संकल्प बल से जिस भी अंग से कहा जाये उसी से पसीना निकाल देते थे। लन्दन में एक भारतीय योगी ने सन् १९२८ में एक सार्वजनिक प्रदर्शन किया था। उसने नाड़ी की गति को न्यूनतम २० और अधिकतम १२० करके डॉक्टरों को आश्चर्यचकित कर दिया था। वह अपनी माँसपेशियों और त्वचा को इतनी कड़ी कर लेता था कि सामान्य हथियार के प्रभाव का भी उन पर कुछ प्रभाव न पड़े।

पचास के दशक की बात है। मिशिगन विश्वविद्यालय के चिकित्सा संस्थान ने समाधि की स्थिति में शरीर और मन की स्थिति का विवेचन करने के लिए एक भारतीय योगी शान्तानन्द को चुना था। प्रयोगशाला में उनकी समाधि स्थिति का अनेक यन्त्रों से परीक्षण किया गया था, उससे निष्कर्ष निकला कि उस अवस्था में शरीर की आन्तरिक हलचलें अत्यन्त न्यून हो जाती हैं—मस्तिष्क मूर्च्छा स्थिति में चला जाता है। फिर भी शरीर में सड़न अथवा विघटन की कोई बुरी प्रक्रिया आरम्भ नहीं होती। यहाँ तक कि विभिन्न छिद्रों से निसृत होते रहने वाले मलों में प्रक्रिया रुक जाने से भी कोई विषाक्त प्रभाव दृष्टिगोचर नहीं होता। भूमि समाधि की घटनाओं में से एक का परीक्षण उदयपुर आयुर्विज्ञान, महाविज्ञान के प्रांगण में ली गई एक समाधि का हुआ था। डॉक्टरों ने समाधि से पूर्व विविध परीक्षाएँ लीं। योगी के शरीर के साथ 'इलेक्ट्रो कार्डियोग्राफ', 'पॉलीमाफ' आदि कई यन्त्र फिट किए गए और उनका लेखा-जोखा बाहर निरन्तर अंकित होता रहे ऐसी व्यवस्था की। आठ दिनों बाद समाधि खोली गई योगी मूर्च्छित था। उसका तापमान ८७.६ था जबकि सामान्यतया ९८.४ होता है। निर्धारित निर्देशों के अनुसार गरम पानी से स्नान कराया गया और मालिश की गई तो चेतना फिर लौट आई।

'हवा में उड़ने वाले साधु' के रूप में विख्यात 'जासेप' का जन्म १६०३ में इटली के कापरटिनो नामक स्थान पर हुआ था। पिता बढ़ई का काम करते थे। उनके काम में कोई रुचि न रख यह अनूठा बालक बचपन से ही अन्तर्मुखी अध्यात्म

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्रधान अभिरुचि का था। पूजा वेदी के समक्ष वह घण्टों बैठा रहता था। एक दिन वह चर्च में प्रार्थना कर रहा था कि उसने एक तीव्र गर्जना की और हवा में ऊपर उठ गया। उठकर वह हवा में तैरने लगा। थोड़ी देर की उड़ान के बाद वह पूजा की वेदी पर उतरा जो कि जलती मोमबत्तियों व पुष्पों से सुसज्जित थी। पुनः गर्जना के साथ वह वहाँ से उड़ा तथा पहले वाले स्थान पर घुटने टेककर उतर आया और पुनः प्रार्थना आरम्भ कर दी। उसके इन चमत्कारों की चर्चा बड़ी तेजी से फैली। बेटिकन में पोप के दर्शन को जब वह गया तो वहाँ अंकित चित्रों को देखते ही वह हवा में उड़ने लगा तथा समीप जा-जाकर माइकेल एन्जेलों की कलाकृतियों को देख हर्षित हो चीत्कार करने लगा। पोप के नीचे उतरने के आदेश पर वह नीचे उतर आया व घुटने टेककर प्रार्थना में मग्न हो गया। अकेले की नहीं उसने कभी अपने पिता के साथ, कभी भाइयों को लेकर भी उड़ाने भरीं। चिकित्सक के रूप में बाद में ख्याति प्राप्त जोसेप चमत्कारी चिकित्सा कर कई मनोरोगियों को स्वास्थ्य लाभ दे सकने में सफल हुआ। इसके पीछे क्या रहस्य था कोई जान नहीं पाया।

एक बार वाराणसी के ३०० वर्षीय दिगम्बर योगी श्री तैलंग स्वामी को पकड़ने के लिए पुलिस को निर्देश मिले क्योंकि वे नंगे घूमते थे। पुलिस के जवान उन्हें ढूँढ़ते हुए मणिकर्णिका घाट पर पहुँचे। जब पुलिस दो गज थी, तभी तैलंग स्वामी उठे और दौड़कर गंगाजी में कूद पड़े। पुलिस बाहर प्रतीक्षा करती रही—किन्तु स्वामी जी बाहर न निकले। अगले दिन वे घूमते पाये गये। स्वामी को किसी ने कुछ खाते नहीं देखा था फिर भी उनका वजन प्रति वर्ष १ पौण्ड बढ़ जाता था। ३०० वर्ष की अवस्था में उनका वजन ३०० पौण्ड हो गया था। दूसरे दिन पुनः पुलिस ने उन्हें वहीं देखा। पुलिस को देखकर वे पुनः गंगाजी की ओर भागे लेकिन इस बार उन्होंने डुबकी नहीं लगाई अपितु जल के ऊपर से ही दौड़ते हुए उस पार निकल गये।

उपरोक्त उदाहरण रहस्य रोमांच के आख्यान मात्र नहीं हैं वरन् मानवी संकल्प शक्ति की वरीयता, अद्‌भुतता के प्रत्यक्ष प्रमाण हैं। यह सामर्थ्य पिण्ड के एक-एक घटक में कूट-कूट कर भरी गयी, इन सिद्धियों का प्रयोग मानव की असामान्यता बताने व असीम सम्भवानाओं की ओर इशारा करने मात्र के लिए ही होता रहा है। मानवी संकल्प बल कितना महान है, कितना कुछ कर सकता है, इसे साधारण जन भी समझ सकें तो अपने सामान्य जीवन क्रम में ही बहुत कुछ ऐसा किया जा सकता है जिसे अद्‌भुत कहा जा सके।

शास्त्रकारों का मत है कि योगाभ्यास, साधना, इत्यादि में चित्त की वृत्तियों की निरोध प्रक्रिया द्वारा मनुष्य अनेकों अलौकिक क्षमताएँ और दिव्य शक्तियाँ हस्तगत कर सकता है। दूरदर्शन, दूरश्रवण, भूत-भविष्य का ज्ञान जैसी विलक्षण उपलब्धियों का उद्‌भव भी सम्भव है। मनीषियों के अनुसार-कितनों को अणिमा, महिमा, लघिमा, गरिमा जैसी ऋद्धियाँ-सिद्धियाँ भी हस्तगत होती हैं। कुछ लोग इन्हें कल्पना लोक की उड़ान कहते हैं किन्तु अनेकों ऐसे उदाहरण यह सिद्ध करते हैं कि अतीन्द्रिय सामर्थ्य एक तथ्य पूर्ण सत्य है। योग साधनाओं के द्वारा आत्मशोधन तथा आत्मपरिष्कार के माध्यम से उन्हें विकसित किया जाना सम्भव है। व्यष्टि मन द्वारा विश्व ब्रह्माण्ड में व्याप्त परम चेतना से तादात्म्य स्थापित करना और अनेकों लौकिक समस्याओं का समाधान खोज लेना, कष्ट कठिनाइयों की पूर्व सूचना प्राप्त कर लेना भी सम्भव है।

एक समय था जब अतीन्द्रिय चमत्कारों को देवी-देवताओं, भूत-पलीतों की करतूत समझा जाता था। उनके अनुग्रह और दुराग्रह तथा कोष का अनुमान लगाकर पूजा उपचार का ताना-बाना बुन लिया जाता था। किंवदन्तियों, दन्तकथाओं, मूढ़ मान्यताओं के वे दिन अब नहीं रहे। अतीन्द्रिय ज्ञान अब एक वैज्ञानिक तथ्य माना जाने लगा है। यों सामान्य जानकारियाँ ज्ञानेन्द्रियों के सहारे ही प्राप्त की जाती हैं। किन्तु अब शोध का, विश्लेषण का विषय, छठी इन्द्रिय बन गई है। मनुष्य कई बार ऐसी जानकारियाँ प्राप्त करता है जो इन्द्रियों के ज्ञान से सर्वथा बाहर की बात होती है। अमेरिकी मनोचिकित्सक डॉ० बर्नार्ड जॉनसन ने अपनी पुस्तक 'बियोन्ड टेलीपैथी' में ऐसी अनेकों घटनाओं का उल्लेख किया है। विद्वान लेखक ने प्रमाणित किया है कि कितने ही मनुष्यों में ऐसी क्षमता होती है जिससे वे दूरस्थ स्थानों की घटनाओं की जानकारी बिना किसी संचार साधन के अनायास प्राप्त कर लेते हैं।

प्राचीन काल की ऐसी अनेकों घटनाओं का वर्णन मिलता है जिनमें अतीन्द्रिय क्षमताओं के आधार पर दूरश्रवण, दूरदर्शन, श्राप, वरदान आदि के विवरण दिये गये हैं। महाभारत युद्ध का पूरा विवरण संजय द्वारा हस्तिनापुर में बैठकर धृतराष्ट्र को बिना किसी दूरसंचार साधन के दिव्यदृष्टि के आधार पर ही सुनाया था। जब कि युद्ध कुरुक्षेत्र के मैदान में ५० योजन दूर चल रहा था। ऐसे अनेकों अतीन्द्रिय क्षमता सम्पन्न ऋषियों का उल्लेख भारतीय धर्म ग्रन्थों में मिलता है जिन्होंने श्राप अथवा वरदान के बल का प्रयोग कर दुष्टता का दमन और श्रेष्ठता को संरक्षण प्रदान किया था। योग तत्त्वोपनिषद् में कहा गया है कि जैसे-जैसे चित की सामर्थ्य बढ़ती है वैसे ही दूरश्रवण, दूरदर्शन, वाक्‌सिद्धि, कामनापूर्त्ति आदि की अनकों विलक्षण सिद्धियाँ मिलती चली जाती हैं। चित्त की सामर्थ्य मनोनिग्रह जैसे आध्यात्मिक व्यायामों से ही बढ़ना सम्भव है।

अमेरिका के मनःशक्ति संस्थान के निदेश डॉ० ब्रूकेल्स के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति में अतीन्द्रिय क्षमताएँ प्रसुप्त पड़ी हैं जिन्हें वह प्रयत्नपूर्वक जाग्रत कर सकता है। कभी-कभी यह शक्तियाँ अनायास ही जाग्रत हो जाती हैं और व्यक्ति में ऐसी विलक्षणताएँ उत्पन्न हो जाती हैं जो दूसरों के लिए कौतूहल का विषय बन जाती हैं। पराविज्ञान की शोधों के अनुसार यह सिद्ध हो चुका है कि मनुष्य की मानसिक शक्तियाँ इतनी सीमित नहीं हैं जितनी कि प्रतिदिन के क्रिया-कलाप में दिखायी देती हैं। उसका बहुत बड़ा अंश तो प्रसुप्त ही पड़ा रहता है। जिसका लोग उपयोग ही नहीं कर पाते। जिस प्रकार मनुष्य की सारी आर्थिक पूँजी काम नहीं आती उसी प्रकार उसकी मानसिक

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

क्षमताओं का भी उपयोग नहीं हो पाता, ऐसी मान्यता मनीषियों की है।

मैस्मरेजम के आविष्कर्ता डॉ० मैस्मर के अनुसार मन को यदि अनावश्यक संग्रह और तुच्छ इन्द्रिय भोगों से विरत किया जा सके, उर्ध्वगामी बनाया जा सके तो वह ऐसी विलक्षण शक्ति से सम्पन्न हो सकता है जो साधारण लोगों को चमत्कृत कर सके। किन्तु उन्हें उच्चस्तरीय प्रयोजनों में लगाकर आत्मिक प्रगति का पथ प्रशस्त किया जा सकता है। मन आकाश में भ्रमण कर सकता है और उन घटनाओं को ग्रहण कर सकता है जिन्हें हमारी ज्ञानेन्द्रियाँ ग्रहण नहीं कर पातीं तथा जिन्हें हमारा तर्क व्यक्त करने में असमर्थ है। अमेरिका के प्रसिद्ध विद्वान डॉ० जे० बी० राइन ने भी अपनी पुस्तक 'न्यू फ्रन्टियर्स ऑफ माइण्ड' में अनकों ऐसी घटनाओं का वर्णन किया है। वे भी मानते हैं कि चिन्तन और अभ्यास द्वारा मन और विचारणाओं को सामान्य से असामान्य बनाया जा सकता है, और भूत अथवा भविष्य की घटनाओं की जानकारी प्राप्त की जा सकती है।

शोध निष्कर्ष के उपरान्त वैज्ञानिक इस नतीजे पर पहुँचे हैं कि शरीर की प्रत्येक कोशिका में एक पृथक मन होता है। कोशिकाओं के मनों का समुदाय ही समग्र मन का निर्माण करता है। इसलिए मन को एक वस्तु न मानकर अध्यात्मशास्त्र में उसे मनोमय कोश कहा गया है। शरीर के समस्त अंग अवयव इसी के अनुशासन में कार्य करते हैं। मन की क्षमता इतनी प्रचण्ड होती है कि शरीर और समीपवर्ती परिकर ही नहीं देश, देशान्तरों की जानकारी पल भर में प्राप्त करने में समर्थ है। इस सम्बन्ध में वैज्ञानिकों का कहना है कि जिस प्रकार ध्वनि तरंगों को पकड़ने के लिए रेडियो में एक विशेष प्रकार का क्रिस्टल फिट किया जाता है वैसे ही काया का क्रिस्टल मन है। विज्ञानवेत्ता कहते हैं कि बोले गये शब्द ब्राह्माण्ड में व्याप्त ईथर में समा जाते हैं किन्तु उनकी प्रवाही गति बहुत धीमी होती है। इन्हीं शब्दों को यदि विद्युत तरगों में परिवर्तित कर दिया जाये तब इनकी शक्ति और गति प्रचण्ड रूप धारण कर लेती है और वे चारों ओर बड़े वेग से फैलने लगती हैं। इन्हीं शब्द तरंगों को रेडियो पकड़ लेता है जिसे हम दूर बैठकर सुन सकने में समर्थ होते हैं उसी प्रकार मन भी सृष्टि में घटित घटनाओं की जानकारी प्राप्त कर लेता है। डॉ० हार्टलाइन ने नेत्र कोशिकाओं में उत्पन्न विद्युत आवेगों को इलेक्ट्रॉनिक युक्तियों से रिकॉर्ड कर इलेक्ट्रोरेटीनोग्राम द्वारा बताया है कि प्रत्येक नेत्र कोश में उस बिम्ब की समस्त बारीकियाँ, रंग, रूप निहित होती हैं, जो एक सेकण्ड के करोड़ वें हिस्से में उस प्रतिबिम्ब को अगले कोश को प्रेषित कर देता है। इस प्रकार बिम्ब की सूचना प्रकाश की गति से मस्तिष्क के दृश्यमान स्थान में पहुँच जाती है। इसी प्रकार काया के कोशों में सन्निहित जानकारी मन तक सतत् सम्प्रेषित होती रहती है।

ऊर्जा का प्रकाश में बदलना एक जटिल प्रणाली है किन्तु वैज्ञानिकों का यह मत है कि जब ऊर्जा किसी वस्तु में प्रवेश करती है तो उसके परमाणु उत्तेजित हो उठते हैं, जब शान्त होकर मूलस्थान को लौटते हैं तो सोखी गई ऊर्जा को प्रकाश में बदल देते हैं। इस क्रिया को 'संदीप्ति' कहते हैं। यह गुण संसार के सभी पदार्थ और प्राणियों में पाया जाता है। हम उसे जानते नहीं, पर वैज्ञानिक, दार्शनिक, मनोवैज्ञानिकों का यह कथन सही है कि मनुष्य जो कुछ सोचता और करता है, वह छिपाए नहीं छिपता, क्योंकि सूक्ष्म प्रकाश की तरंगें उसे बाहर निकालती रहती हैं। यदि हम उन तरंगों से भी सूक्ष्म तरंगों के प्रेषण में सफलता प्राप्त कर लेते हैं तो आसानी से दूसरों के मन की बात, भविष्य की सम्भाव्य घटनाओं, योजनाओं की जानकारी प्राप्त करने में सफल हो सकते हैं। इस तथ्य की पुष्टि श्रीमती जे० सी० ट्रस्ट ने 'अणु और आत्मा' नामक ग्रंथ में भी दी है। दूसरों के मन की बात जान लेना, अथवा भविष्य के संकेतों को समझ पाने के लिए अतीन्द्रिय क्षमताओं को विकसित करना पड़ता है। इसके लिए यह आवश्यक है कि मन पर नियंत्रण, अनुशासन रखकर उसकी ऊर्जा को बिखरने से रोका जाये। विभिन्न अध्यात्म उपचार तथा नादयोग, त्राटकयोग, लययोग इत्यादि इसी निमित्त किये जाते हैं। वे मनोनिग्रह द्वारा मनःशक्ति सम्वर्द्धन तो करते ही हैं, असाधारण क्षमता सम्पन्न बनकर 'साधना से सिद्धि' की सम्भावना को भी साकार बनाते हैं।

मन को सुधारा-सधाया जा सकता है

जल्लाद अपनी जिन्दगी में कई व्यक्तियों को फाँसी के फन्दे पर चढ़ाकर मौत के घाट उतार देता है। फाँसी की टिखटी से लटकी काया, पीड़ा से ऐंठता शरीर और लम्बाती गर्दन देखकर भी उसके मन में कोई दुःखदाई प्रतिक्रिया नहीं होती। इसके विपरीत कई व्यक्ति ऐसे होते हैं जिनमें किसी का कराहना, दर्द से बिलबिलाना भी नहीं देखा जाता। कसाई अपने व्यवसाय में सैकड़ों ही नहीं हजारों पशुओं की गर्दन छुरी से रेत देता है। उन जानवरों की छटपटाहट, चीखने, चिल्लाने का उन पर कोई असर नहीं होता, पर कई व्यक्ति ऐसे होते हैं जिनसे किसी प्राणी के चोट लगने पर उनके शरीर से बहता हुआ खून भी नहीं देखा जा सकता। वे किसी पशु की भी कराह या आर्त्तनाद सह नहीं सकते।

इस प्रसंग की यहाँ चर्चा का यही मन्तव्य है कि प्रत्येक व्यक्ति की अनुभूतियाँ सभी परिस्थितयों में एक समान नहीं रहतीं। इसलिए किस व्यक्ति के मन पर, कौन सी घटना का अच्छा या बुरा प्रभाव पड़ेगा ? इसका कोई मोटा सिद्धान्त स्थिर कर पाना कठिन है। मानसिक आघात किन कारणों से पहुँचते हैं ? इसका सामान्य विवेचन भी नहीं किया जा सकता। कई व्यक्ति आए दिन अपमान सहते रहते हैं और उसके इतने अभ्यस्त हो जाते हैं कि उसका उनके मन पर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ता। पर कई व्यक्ति ऐसे भी होते हैं जो छोटी-सी बात को बहुत ज्यादा महत्व देकर तड़प उठते हैं। बदला लेने की सोचते हैं। द्रौपदी ने दुर्योधन से एक निर्दोष और छोटा-सा मजाक ही किया था कि "अन्धों के अन्धे होते

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

हैं।" दुर्योधन ने उस मजाक को अक्षम्य अपराध मान लिया और मन में ऐसी गाँठ बाँध ली कि प्रतिशोध की चरम सीमा तक जा पहुँचा। एक निर्दोष परिहास ने उसके मन-मस्तिष्क पर जो चोट पहुँचाई होगी, इन शब्दों ने उसे जिस बुरी तरह तिलमिला दिया होगा, उसकी कल्पना नहीं की जा सकती। तभी तो उस आघात की गहराई के समतुल्य प्रतिशोध चुकाकर उसने अपने आघात को हलका करने का प्रयास किया। इसी प्रकार प्रत्येक व्यक्ति घटनाओं और प्रसंगों की अलग-अलग ढंग से व्याख्या करता है और हर घटना को प्रत्येक व्यक्ति अपनी दृष्टि से देखता तथा उसकी प्रतिक्रिया ग्रहण करता है।

इसीलिए कहा गया है, कौन किस घटना प्रसंग को किस दृष्टि से देखेगा, उसकी क्या व्याख्या करेगा और उससे क्या प्रतिक्रिया ग्रहण करेगा ? इसका कोई निश्चित मापदण्ड नहीं हो सकता, कानून और न्याय व्यवस्था में इस तरह के मापदण्ड निर्धारित हैं कि अमुक तरह के आचरण असामाजिक और अपराध हैं तथा दण्डनीय हैं, लेकिन इनमें भी अपराधी की नीयत, परिस्थिति, प्रतिक्रिया, आदि का ध्यान रखा जाता है। सम्भव है अपराध गलती, गफलत या भ्रान्त स्थिति में बन पड़ा हो, इस स्थिति में दण्ड हलका भी किया जाता है, लेकिन मन के लिए ऐसी कोई आचार संहिता या मापदण्ड नहीं है कि वह किस घटना को किस रूप में ग्रहण करेगा ?

यही कारण है कि एक ही परिस्थिति में कोई व्यक्ति सुखी, सन्तुष्ट और प्रसन्न दिखाई पड़ता है तो दूसरा उसी परिस्थिति के सामने आने पर नाटकीय यन्त्रणा भोगता दीख पड़ता है। वस्तुतः किसी भी घटना का आघात या प्रतिक्रिया इस बात पर निर्भर है कि सहने वाले व्यक्ति की भावुकता एवं विचार शक्ति का समन्वय किस रूप में हुआ है ? सम्पन्न और समृद्ध व्यक्तियों को जिनका व्यापार व्यवसाय करोड़ों रुपयों का चलता है, कुछ लाख का घाटा हो जाता है तो उनकी स्थिति में कोई विशेष अन्तर नहीं आता। वे उसी तरह वैभव सम्पन्न जीवन जीते हैं और सुख सुविधाओं का लाभ उठाते हैं। किन्तु तुलनात्मक दृष्टि से तनिक से घाटे के कारण उनके मन में जो-जो व्यथा अनुभव होती है, जो पीड़ा होती है, उसे मनोशारीरिक रोगों के रूप में देखा जा सकता है। इसके विपरीत एक साधारण स्थिति का व्यक्ति, जो निर्वाह भर कमा पाता है कभी कुछ भी न कमा पाने के बाद भी उतना खिन्न नहीं होता है। क्या कारण है ? एक ही उत्तर है—मनःस्थिति की बनावट।

आमतौर पर समझा जाता है कि इच्छित परिस्थितियाँ प्राप्त होने पर ही मनुष्य सुखी होता है। पर वस्तुस्थिति सर्वथा इसके विपरीत होती है। मनःस्थिति को, दृष्टिकोण को, यदि परिष्कृत कर लिया जाये तो सोचने समझने का तरीका इतना सरल और सुखद बन जाता है कि व्यक्ति किन्हीं भी परिस्थितियों में सुखी सन्तुष्ट रह सकता है। अन्धकार में रखी हुई सभी वस्तुएँ काली जान पड़ती हैं परन्तु जब उन पर प्रकाश की किरणें पड़ती हैं और उनका पूरा स्वरूप सामने आता है तो अलग-अलग चमकने लगती हैं। उसी प्रकार सोचने समझने की प्रकाशवान प्रक्रिया को एक ऐसा दिव्य आलोक कहा जा सकता है, जिसके प्रकाश में सारा समीपवर्ती क्षेत्र अन्धकार की कालिमा से मुक्त हुआ आभायुक्त देखा जा सकता है।

प्रसिद्ध जर्मन चिकित्सा पत्रिका 'मेडिजिनेस क्लीनिक' में छपे एक विस्तृत लेख में कई शरीर विज्ञानियों के अनुभवों का सारांश छापा है। इसमें अनेक प्रसिद्ध चिकित्सकों ने अपने अनुभव लिखे और बताया कि पीड़ा का जितना अंश शारीरिक कारणों से जन्मता है उससे कहीं अधिक मानसिक कारणों से रोग और पीड़ा अनुभव होते हैं।

एक डॉक्टर ने अपना अनुभव लिखते हुए बताया है कि कुछ प्रयोगों में उन्होंने विशुद्ध पानी की सुई लगाकर रोगी को बताया कि यह गहरी नींद की दवा है। उसी से दर्द के कारण बेहाल हुए जा रहे व्यक्तियों की पीड़ा खत्म हो गई और वे चैन की नींद सोने लगे। इसके विपरीत मार्फिया के इन्जेक्शन देकर यह कहा गया कि, इस दवा से शायद दर्द थोड़ा बहुत हलका पड़े और सम्भव है थोड़ी नींद आए। दवा हलकी ही है। यह कहकर संदेह पैदा कर दिये जाने से उनकी प्रतिक्रिया वैसी नहीं हुई, जैसी कि होनी चाहिए। इसी तरह के प्रयोगों में विपरीत व्याख्या करते हुए भिन्न दवा बताकर जब एक ही दवा रोगियों को दी गई तो सब पर अलग-अलग प्रतिक्रिया का कारण शरीर और मन की अलग-अलग संरचना होना भी समझा गया। इस स्थिति में एक ही रोगी पर एक ही बीमारी में एक ही दवा का अलग-अलग प्रभाव बताकर प्रयोग किया गया तो उसके भी भिन्न-भिन्न प्रभाव पड़े। इन सब प्रयोगों से इस निष्कर्ष पर पहुँचा गया कि रोग की अपेक्षा मनःस्थिति रोगी को अधिक पीड़ा पहुँचाती और कष्ट देती है।

रोगी को ही क्यों स्वस्थ व्यक्ति के सम्बन्ध में भी यही नियम लागू होता है। इस सम्बन्ध में पर्याप्त परीक्षण करने के बाद वैज्ञानिक इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि एक ही तरह के दर्द को भिन्न-भिन्न मनःस्थिति के व्यक्ति अलग-अलग तरह से अनुभव करते हैं। डरपोक रोगी एक ही तरह के दर्द से बेतरह चीखते चिल्लाते हैं। साधारण मनःस्थिति वाले हलके-हलके कराहते रहते हैं और साहसी लोग इसी कष्ट को बहुत हलका मानते हैं। युद्ध के मोर्चे पर घायल होने वाले सैनिक अपनी वीरता के आवेश में रहने के कारण बहुत कम कष्ट अनुभव करते हैं, जबकि उतने ही कष्ट में सामान्य व्यक्ति कई गुना बढ़-चढ़कर चीखते चिल्लाते हैं।

शरीर पर ही जब मनःस्थिति का इतना प्रभाव पड़ता है तो सुख-दुःख, हर्ष, शोक, जो मानसिक धरातल पर ही अनुभव किए जाते हैं, मनःस्थिति की बनावट के अनुसार उनका बढ़ा या घटा हुआ स्वरूप अनुभव होना स्वाभाविक ही है अस्तु हर स्थिति में अपनी मनोभूमि को शान्त और सन्तुलित रखा जाये। घटनाओं को घटने से रोक पाना मुश्किल है, दूसरे व्यक्ति कैसा व्यवहार करें कि वह अपने को प्रिय लगे, इस पर भी किसी का कोई वश नहीं। क्यों नहीं, अपने आप को ही इस प्रकार सामंजस्य

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

बिठाना सिखाया जाये कि हर परिस्थिति में सुखी और सन्तुष्ट रहा जा सके। यदि अपने कष्टों, समस्याओं, कठिनाइयों और परेशानियों को सन्तुलित और परिष्कृत दृष्टिकोण के प्रकाश में रख कर उनका विश्लेषण किया जाये तो आधी से अधिक कठिनाइयाँ आधारहीन, मिथ्या और निर्मूल सिद्ध होंगी। इस सन्तुलित और पिरष्कृत दृष्टिकोण को अपनाकर कोई भी व्यक्ति प्रत्येक परिस्थिति में प्रसन्न रह सकता है।

मन एक शक्तिशाली किन्तु अनगढ़ तन्त्र है, उसे जिस प्रकार सिखाया जाये उसमें आरम्भिक आना-कानी के उपरान्त आरोपित ढाँचे में ढलने के लिए सहमत हो जाता है। सरकस में काम करने वाले जानवर इसके उदाहरण हैं, वे अपनी अभ्यस्त आदतें छोड़कर ऐसे करतब करने लगते हैं मानो उन्होंने अपनी बिरादरी से अथवा परम्परा से रिश्ता तोड़कर नये स्तर का स्वभाव एवं अभ्यास अपना लिया हो। ऐसे ही आश्चर्यजनक परिवर्तन मनुष्यों के स्वभावों में भी होते रहते हैं। कितने ही भली परम्परा छोड़कर बुराई और बुरी आदतें छोड़कर भलाई की नीति अपनाते देखे गये हैं। इसका आधारभूत कारण एक ही है कि मनुष्य फौलाद, पत्थर का नहीं, मोम जैसी मुलायम वस्तु का बना हुआ है, जिसे आत्मचिन्तन, संगति प्रभाव एवं परिस्थितियों के दबाव से सरलतापूर्वक बदला जा सकता है।

देखना यह होगा कि मन को किस प्रकृति में ढालना है, दूरदर्शी विवेकशीलता से अपनाकर इस निष्कर्ष पर पहुँचा जा सकता है कि किस स्तर की मनःस्थिति उपयोगी सिद्ध होगी। उसी स्तर का अध्ययन, सान्निध्य, मनन, चिन्तन आरम्भ कर दिया जाये तो क्रमशः मनोभूमि निर्धारित ढाँचे में ढलने लगेगी और अभ्यस्त ढर्रा बदलने लगेगा। परायों को अनगढ़ों को जब प्रयत्नपूर्वक सुधारा, सिखाया जा सकता है तो कोई कारण नहीं कि अपना मन और स्वभाव अवांछनीय प्रवाह में बहने से रोककर उपयोगी दिशाधारा अपनाने के लिए सहमत न किया जा सकेगा। आत्म निर्माण ही, भविष्य निर्माण है। उसी को भाग्य निर्माण भी कहते हैं। यह लगता तो अपने बस से बाहर है किन्तु वास्तविकता यह है कि प्रयासपूर्वक यह कठिन काम भी सरल बनाया जा सकता है।

मनःक्षेत्र के खरपतवार उखाड़ें

मस्तिष्क की उर्वरता अद्‌भुत है, झरने के उद्‌गम की तरह उसका प्रवाह अनवरत जारी रहता है। उपजाऊ भूमि में वर्षा के दिनों निरन्तर खरपतवार उगते रहते हैं। मच्छर-मक्खियों का उत्पादन भी ऐसा ही है। उनका प्रजनन एक से अनेक रूप में हर दिन विकसित होता रहता है। मस्तिष्क में उठने वाली विचार तरंगों का भी यही हाल है। कल्पनाएँ हर समय उठती रहती हैं। टिड्डी दल की तरह अपनी गुफा से निकलकर सारे आसमान में छा जाती हैं। विचारों की प्रक्रियाएँ भी ऐसी ही हैं। वह घटनाओं की तरह बरसतीं और फुब्बारों की तरह उछलती देखी जाती हैं। दूध के झाग की तरह वे उठतीं और क्षण-क्षण में बैठती रहती हैं।

कब क्या विचार उपज पड़ें इसका कोई ठिकाना नहीं। उर्वरता कुछ न कुछ उगलती ही रहती है। मस्तिष्क बिना कल्पनाएँ किये रह नहीं सकता। बात की बात में विचारों की झड़ी लग जाती है। इनकी शृंखला अस्त-व्यस्त तो होती है पर टूटती नहीं। उनका सिलसिला चलता ही रहता है।

किसके मस्तिष्क में किस प्रकार के विचार बहुलता से उठेंगे, इसका अनुमान इस बात से लगाया जा सकता है कि पूर्व संचित संस्कार कैसे रहे हैं। कोयले की खदान में से कोयला निकलता है और गेरू की खदान में से गेरू। संग्रहीत संस्कार एक प्रकार के मिट्टी में दबे हुए बीज हैं जो नमी का मौसम आते ही अंकुरित होने और बढ़ने फैलने लगते हैं।

पुरानी आदतें, स्मृतियाँ, रुचियाँ, घटनाएँ, परिस्थितियाँ भूतकालीन हो जाने पर भी अपनी जड़ें हरी रखे रहती हैं। जब भी अनुकूलता होती है, तभी वे पतझड़ के उपरान्त फूटने वाली कोंपलों की तरह नये रूप में प्रकट होती हैं। उनका स्वेच्छाचार देखते ही बनता है। तात्कालिक उस प्रकार की कोई घटना या आवश्यकता न होने पर भी इस प्रकार के विचार उठने लगते हैं जिन्हें सामयिक समस्या के साथ सम्बन्ध रूप में जोड़ सकना कठिन पड़ता है।

खेतों में अपने-अपने क्षेत्रों में प्रचलित खरपतवार अनायास ही उगते हैं। मस्तिष्कों में भी ऐसा ही होता है। संस्कार, संगति एवं अभिरुचि के अनुरूप ही विचार उठते हैं। जो रसीला अनुभव आस्वादन होता रहा है उसकी पुनरावृत्ति करने के लिए मन चलता है, और कल्पनाओं का ज्वार उठता है। दूसरों को जो करते और लाभ उठाते देखा गया है, उसका अनुकरण करने के लिए भी मन करता है। उसी के अनुरूप ताना-बाना बुनता है। निराशा, भय, आशंका, असफलता, विपत्ति आदि की कुकल्पनाएँ ही बहुत उठती रहती हैं। ईर्ष्या-द्वेष से प्रेरित कई उत्तेजनाएँ मन के सामने योजनाओं का रूप धारण करके आती हैं। आक्रमण प्रतिशोध के लिए कुछ किया जाना चाहिए, ऐसे प्रवंचकों का आधा अधूरा स्वरूप अविकिसित रूप में पड़ा रहता है। कुछ को बड़ा आदमी बनने की धुन सवार रहती है। वे जल्दी ही अमीर बनने के लिए अनैतिक आचरणों की योजनाएँ बनाये रहते हैं। उन्हीं स्तरों के घुले-मिले विचार आमतौर में मस्तिष्क की परिधि में घूमते रहते हैं।

खरपतवार भूमि की उर्वरता चूराती है और जितनी जगह में जड़ जमा लेती है उतनी में अन्य उपयोगी पौधों को नहीं पनपने देती। कुदरती पौधों की जड़ें मजबूत होती हैं और अपने अस्तित्व बनाये रहने के लिए आवश्यक दृढ़ता भी बनी रहती है। इसलिए बिना बोये भी उनकी सत्ता अधिकांश धरती को घेरे रहती है। इसमें से कुछेक ही ऐसे होते हैं जो पशुओं के चारे में काम आ जाते हैं। शेष तो कटीले, विषैले होने के कारण जगह घेरने के अतिरिक्त और किसी काम के नहीं। विचारों के सम्बन्ध में भी यही बात है, वे सब उत्पादित होने पर हेय स्तर के ही होते हैं। उनकी उपस्थिति चिन्तन को विकृत ही करती रहती है, व्यक्तित्त्व को अनगढ़ और आचरण को ऐसा जिससे आत्म प्रवचना एवं लोक भर्त्सना के अतिरिक्त और कुछ हाथ

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

न लगे। यह स्थिति घाटे की है। यह बनी रहे तो मनुष्य को भीतर से खोखला और बाहर से ढकोसला बना कर छोड़ती है।

चतुर किसान खेत के खरपतवार उखाड़ने के लिए हल जोतता है। जुताई के अन्य तरीके भी अपनाता है, उसकी इच्छा रहती है कि खेत साफ सुथरा रहे। ताकि भूमि में उर्वरता बनी रहे और लाभदायक फसल बोने उगाने के प्रयत्न में सफलता मिले। यही वास्तविकता भी है जो गुड़ाई, निराई नहीं करते, उनका बीज भी मारा जाता है और फसल काटने का अवसर भी हाथ नहीं लगता है। कृषि कर्म में एक बीज से सौ दाने उत्पन्न होने का लाभ विवरण सभी को विदित है। किन्तु यह सार्थक तभी होता है जब खेत को खरपतवार से, पौधों में लगने वाले कीड़ों से, बचाव की समुचित व्यवस्था बना ली जाये, अन्यथा उस खरपतवार को भी कीड़े-मकोड़े खाते रहते हैं, परिपुष्ट होकर अच्छी फसल पर आक्रमण करते हैं और उस किसान के लिए सब मिल कर सिर दर्द ही बनते हैं। खरपतवार से निबटना ही एक मात्र उपचार किसान के लिए है।

यही रीति-नीति उन सभी बुद्धिमानों को अपनानी पड़ती है, जो अपने बहुमूल्य मस्तिष्क के रूप में बहुमूल्य उपार्जन से लाभान्वित होना चाहते हैं। मनोनिग्रह इसी को कहते हैं। वश में किया हुआ मन, मित्र और उच्छृंखल रहने पर उसी को शत्रु कहते हैं। शत्रुता को मित्रता में बदलने के लिए सज्जनता और बुद्धिमता को विशाल रूप में प्रयत्न करना पड़ता है। ठीक इसी प्रकार मन को दुष्प्रवृत्तियों दुरभिसंधियों से विरत करने के लिए उसे बहुत तर्क और प्रमाण प्रस्तुत करते हुए समझाना, बुझाना और भटकाव से विरत करके सही मार्ग पर लाना पड़ता है। यह कार्य कठिन तो है पर असम्भव नहीं। अन्तर्मुखी न होने और बाहरी प्रपंच में उलझे रहने के कारण मन अपनी मलीनता समेत किसी कोने में छिपा बैठा रहता है। उसकी करतूतें सहज ही पकड़ में नहीं आतीं, इसलिए उसे सुधारा कैसे जाये ? सह सोचते भी नहीं बन पड़ता।

मन को वश में करना परम पुरुषार्थ माना गया है। उसे हाथी, शेर जैसे विकराल जीवों को वशवर्ती बनाकर उनके माध्यम से अपना गौरव-गरिमा एवं उन्हें प्रशिक्षित करके लाभ उठाने का व्यवसाय करना है। वशवर्ती मन को किसी भी उपयोग, चिन्तन एवं प्रयास में लगाया जा सकता है, उससे मनचाहा लाभ उठाया जा सकता है। किन्तु यदि मनःक्षेत्र में अराजकता, अनुशासनहीनता चल रही हो, स्वेच्छाचार का बोलवाला हो, तो किसी उपयोगी योजनाबद्ध कार्य में उसे लगा सकने की सम्भावना ही नहीं बनती।

विचारों की शक्ति महान है। उसे चेतना की प्रचण्डता कहते हैं, वह जिस भी दिशा में चल पड़ती है, जिस कार्य में जुट पड़ती है, उसे सफलतापूर्वक पूरा करके ही रहती है। कुविचारों को रोकने का सही तरीका एक ही है कि उनके सामने सद्विचारों की सुनियोजित शृंखला हर समय बनी रहे। कुविचार उठते ही उनका प्रबल विरोध किया जाये। उनसे होने वाली हानियों को समझा और समझाया जाये। राजमार्ग पर चलने से लम्बा लक्ष्य भी सरलतापूर्वक पूरा हो जाता है। यह तथ्य यदि हृदयंगम किया जा सकता है तो मन मनाने से भी मान जाता है। वह कुसंग की मलीनता त्यागकर सन्मार्ग के इर्द-गिर्द महकने वाले पुष्पों का रसास्वादन करते हुए आगे बढ़ता है।

मन पर लगाम लगे तो कैसे ?

मन को वश में रखने के लिए अध्यात्म प्रसंगों में सदा कहा और दुहराया जाता है। पर यह नहीं बताया जाता कि यह किस प्रकार किया जाये ? इसलिए ध्यान, प्राणायाम जैसी विधियाँ बताई जाती हैं। पर देखा गया है कि उन विधाओं को अपनाने पर भी मन एकाग्र नहीं होता, पकड़-पकड़ कर बिठाने पर भी मेंढक की तरह उछल जाता है। क्षण भर का अवसर मिलते ही कहीं से कहीं पहुँचता है। इस पकड़-धकड़ में प्रयत्नकर्ता ही थकता है। मन का तो स्वभाव ही ठहरा। वह पवन की तरह एक जगह स्थिर नहीं रह सकता। पखेरू की तरह उसकी उड़ते रहने जैसी आदत जो है। हिरन को पकड़कर बाँधना उसे हाथ-पाँव तोड़ लेने के लिए बाधित करना है।

मन रस की खोज से मारा-मारा फिरता है। उसे उसी की लगन और ललक है। कस्तूरी के हिरन को उस गंध के प्रति अत्यधिक लगाव होता है उसी को खोजने के लिए, पाने के लिए वह लालायित होता है। जिधर भी मुँह उठता है, उधर ही दौड़ पड़ता है। यह भाग-दौड़ तब तक जारी रहती है जब तक कि उसे गंध के उद्गम का पता नहीं चल जाता।

मन को सरसता चाहिए। ऐसी स्थिति जिसमें रसास्वादन का अवसर मिले, आनन्द की अनुभूति हो। नीरस क्रियाकलापों में उसे रुचि नहीं हो पाती इसलिए वह अपना अभीष्ट तलाशने दूसरी जगह चल पड़ता है। तितलियाँ-भौंरे जहाँ-तहाँ उड़ते फिरते हैं पर जब उन्हें सुगंध भरे फूल मिल जाते हैं तब शान्ति के साथ स्थिरतापूर्वक बैठ जाते हैं और प्रमुदित होकर समय गुजारते हैं फिर उन्हें उचटने उखड़ने की आवश्यकता नहीं रहती। यहाँ बंधन उसके लिए कारगर होता है कि जिसकी तलाश है उसे उपलब्ध करा दिया जाये। डोरी से जकड़ने पर तो पशु भी अपने हाथ-पैर तुड़ा लेते हैं। विवशता में ही कोई कैद में रहना स्वीकार करता है। हथकड़ी-बेड़ी, बैरक, तालों संतरी आदि की व्यवस्था न हो तो कोई कैदी जेल में रहना स्वीकार न करे। खिड़की खुलते ही तोता पिंजरे से निकल भागता है और फिर पीछे की ओर देखता तक नहीं। यही बात मन के सम्बन्ध में भी कही जा सकती है। उसे नीरसता पंसद नहीं, सहन नहीं। इसलिए उसे जिस-तिस खूँटे में बाँधने पर भी स्थिरता अपनाते नहीं बनती, उसे उन्मुक्त आकाश के मनोरम दृष्य देखने का चाव जो है।

मन को वश में करने के अनेकानेक लाभ हैं। वह शक्तियों और विभूतियों का पुञ्ज है। जिस काम में भी लगता है उसे जादुई ढंग से पूरा करके रहता है। कलाकार, वैज्ञानिक, सिद्धपुरुष, महामानव, सफल, सम्पन्न सभी को वे लाभ मन की एकाग्रता, तन्मयता के आधार पर मिले हुए होते हैं। इस तथ्य को जानने वाले इस कल्पवृक्ष को दूर रखे रहना नहीं चाहते। इस दुधारू गाय को, तुर्की घोड़े को, पालने का जी सभी का होता है। पर वह हाथ आये तब न ?

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आमतौर से कामुकता, जिह्वा स्वाद, सैर-सपाटे, विलास-वैभव, यश, सम्मान पाने की सभी की इच्छा होती है। उन्हीं को खोजने की मन कल्पनाएँ करता और उड़ाने उड़ता रहता है। विकल्प जब दूसरा नहीं दीखता तो उसी कुचक्र में उलझे रहना पड़ता है। जहाज के मस्तूल पर बैठे कौवे को कोई और गन्तव्य भी तो नहीं दीखता। मन को कहीं कोई ऐसा स्थान या ऐसा काम जो उसकी रुचि का हो, सुहाये, मिलना चाहिए।

रुचियाँ बदलती रहती हैं या बदली जा सकती हैं। छोटे बच्चे खिलौनों के लिए मचलते हैं। कुछ बड़े होने पर सामर्थ्यों के साथ खेल खिलवाड़ के लिए उत्सुक रहते हैं। युवक होने पर अच्छे नम्बरों से उत्तीर्ण होने की लगन लगती है। तरुण होने पर धन कमाने—गृहस्थ बनने की इच्छा होती है। बूढ़े भजन करते और कथा सुनते हैं। बचपन में बढ़ी हुई स्फूर्ति हर घड़ी कुछ न कुछ करते रहने की उमंग करती रहती थी पर बूढ़े होने पर विश्राम करना और चैन से दिन काटना सुहाता है। यह परिवर्तन बताते हैं कि मन का कोई एक निश्चित रुचि केन्द्र नहीं है। व्यक्तित्व के विकास और परिस्थितियों के परिवर्तन के साथ वह अपना रुझान बदलता रहता है। जमीन के ढलान के अनुरूप नदी-नाले अपनी दिशा मोड़ते और चाल बदलते रहते हैं। मन का भी यही हाल है। वह चट्टान की तरह हठीला नहीं, मिट्टी की तरह उसे गीला किया जा सकता है और चतुर कुम्हार की तरह उसे किसी भी ढाँचे में ढाला जा सकता है। मन को चालू गाड़ी की तरह किसी भी सड़क पर चलाया जा सकता है। इस बदलाव में आरम्भिक अड़चनें तो आती हैं, पर सिखाने, सधाने पर वह सरकस के जानवरों की तरह ऐसे तमाशे दिखाने लगता है जो उसकी जन्मजात प्रकृति के अनुरूप नहीं होते। मन को भी इसी प्रकार एक दिशा से दूसरी दिशा में ले जाया जा सकता है। एक प्रकार के अभ्यास से विरत करके दूसरे प्रकार के स्वभाव का बनाया जा सकता है।

जंगली वन्य पशु अनाड़ियों की तरह भटकते हैं पर जब वे पालतू बन जाते हैं तो मालिक की इच्छानुसार अपनी गतिविधियों को बदल लेते हैं। मन के सम्बन्ध में भी यही बात कही जा सकती है। उसकी रंगीली उड़ानें वासना, तृष्णा की जन्म-जन्मान्तरों से अभ्यस्त रही हैं इसलिए इस जन्म में भी वह पुराना, पहचाना मार्ग ही जाना-पहचाना समझा-बूझा लगता है। इसलिए स्वेच्छाचार के लिए वह आतुर फिरता है किन्तु मनुष्य पर अनेक बंधन हैं। पशुओं की तरह वह कुछ भी कर गुजरने के लिए स्वतंत्र नहीं है। मर्यादाएँ, वर्जनाएँ और जिम्मेदारियाँ एक सीमा तक ही सीमित रहने के लिए उसे विवश करती हैं, इसलिए वह एक जगह काम न बनता देखकर दूसरी जगह दौड़ता है। मृगतृष्णा में भटकने वाले हिरन की तरह उसकी कुलाचें मार्ग-कुमार्ग पर भटकती रहती हैं। कल्पनाओं के अम्बार छाये रहते हैं। बन्दर जैसी उछल-कूद जारी रहती है। किसी डाली पर देर तक बैठे रहने की अपेक्षा उसे जिस-तिस का रंगढंग देखने और उन्हें हिलाने पर मिलने वाले चित्र-विचित्र अनुभव की तरह विभिन्नता और सफलता देखने की उमंग उठती रहती है। यही है मन की भगदड़, जिसे रोकने के लिए मूलभूत आधार बदलने की आवश्यकता पड़ती है।

मन का केन्द्र बदला जा सकता है। पशु-प्रवृत्तियों की पगडण्डियाँ उसकी देखी-भाली हैं। पर मानवी गरिमा का स्वरूप समझने और उसके शानदार प्रतिफल का अनुमान लगाने का अवसर तो उसे इसी बार इसी शरीर में मिला है। इसलिए अजनबी मन की अड़चन होते हुए भी तर्क, तथ्य, प्रमाण, उदाहरणों के सहारे उसे यह समझाया, जताया जा सकता है कि पशु प्रवृत्तियों की तुलना में मानवी गरिमा की कितनी अधिक श्रेष्ठता है। दूरदर्शी विवेक के आधार पर यह निर्णय, निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि आदर्शवादिता और कर्त्तव्यपरायणता अपनाने पर उसके कितने उच्चस्तरीय परिणाम प्रस्तुत हो सकते हैं।

पुराने ढंग की ईश्वर भक्ति में मन लगाने और साधनाओं में रुचि लेने के लिए परामर्श दिया जाता है किन्तु पुरातन के विज्ञान को हृदयंगम कराये बिना उस दिशा में न तो विश्वास जमता है और न मन टिकता है। बदली हुई परिस्थितियों में हम कर्मयोग को ईश्वर प्राप्ति का आधार मान सकते हैं। कर्त्तव्य को, संयम को, पुण्य परमार्थ को, ईश्वर का निराकार रूप मान सकते हैं। कामों के साथ आदर्शवादिता का समावेश रखा जा सके तो वह सम्मिश्रण इतना मधुर एवं सरस बन जाता है कि उस पर मन टिक सके। चिड़िया अपने घोंसले को प्रतिष्ठा का प्रश्न मानकर तनमन्यतापूर्वक बनाती है। हम भी अपने क्रियाकलापों में मानवी गरिमा एवं सेवा भावना का समावेश रखें तो उस केन्द्र पर भी मन की तादात्म्यता स्थिर हो सकती है। मन को निश्चित दिशा प्राप्त हो सकती है।

मन को निग्रहीत कर तन्मय किया जाय

हमारा मस्तिष्क एक उर्वर उद्यान है। उसमें जो कुछ बोया जाता है वही उगता और फलता-फूलता है। विचार ही वह बीज है जो बोये जाने पर उगे बिना नहीं रहते। यह उगना मात्र दर्शनीय बन कर नहीं रहता, वरन् उसके प्रतिफल भी समयानुसार सामने आते हैं।

समझा जाता है कि कर्म का प्रतिफल मिलता है। जो जैसा करता है वैसा भरता है। जो बोया गया है वही काटा जाता है। इस कथन में इतना और जोड़ा जाना चाहिए कि जो सोचा जाता है, वह कालान्तर में किया भी जाता है। मस्तिष्क में अनगढ़ विचार आते रहते हैं। ऐसी कल्पनायें उठती रहती हैं, जिनका न सिर होता है न पाँव। कितने ही व्यक्ति बिना पंख की रंगीली कल्पनाओं में उड़ते रहते हैं। कुछ का चिन्तन ऐसा होता है, जिसका परिस्थितियों के साथ कोई तालमेल नहीं बैठता। कई पिछली घटनाओं का स्मरण करते रहते हैं। जो बीत गया, उसे ताजा करके गड़े मुर्दे उखाड़ने की कहावत चरितार्थ करते रहते हैं। कुछ की आदत भविष्य के सपने देखने

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

की होती है, वे मात्र सुखद कल्पनाओं में डूबे रहते हैं और सहज सफलताओं के उपलब्ध होने की कल्पना करते रहते हैं। कइयों का चिन्तन इसके प्रतिकूल होता है। वे अनिष्ट की आशंका का भयावह चित्र खड़ा करते हैं। उन्हें लगता है मानो कोई विपत्ति का पहाड़ सिर पर टूटने वाला है। किसी व्यक्ति के द्वारा कष्ट या हानि पहुँचाये जाने की कुकल्पना उमड़ती घुमड़ती रहती है। यह विचार प्रक्रिया होती तो काल्पनिक है, पर उसकी प्रतिक्रिया समूचे मनःक्षेत्र को हड़बड़ा देती है। उद्विग्न मन उस योग्य नहीं रहता कि विचारों का विश्लेषण कर सके और उनमें से सम्भाव्य और असम्भव का वर्गीकरण कर सके। यह न बन पड़ने पर मधुर कल्पनायें एक प्रकार के और दुःखद सम्भावनायें दूसरे प्रकार के दिवास्वप्न विनिर्मित करती हैं। यों यह काल्पनिक संरचनायें निरर्थक और निराधार होती हैं तो भी उनका प्रभाव उत्पन्न हुए बिना नहीं रहता।

कामुकता के अश्लील विचार इतने आकर्षक और उत्तेजक होते हैं कि उनमें उलझा हुआ मन किसी उपयोगी, वास्तविक चिन्तन पर चित्त एकाग्र करने में असमर्थ हो जाता है। इस प्रकार के विचारों में निमग्न विद्यार्थी अक्सर परीक्षा में फेल होते रहते हैं। पाठ्यक्रम पर, पाठ्य-पुस्तकों पर, चित्त एकाग्र ही नहीं होता। कुकल्पनायें उसे उड़ाये-उड़ाये फिरती हैं। फलतः वे योजनायें पीछे हट जाती हैं, जिन पर योजनाबद्ध ध्यान दिये जाने की आवश्यकता थी।

जो विचारों का महत्व नहीं समझते, वे उन्हें किसी भी दिशा में उड़ते रहने की छूट दे देते हैं। यह उच्छृंखलता बाद में स्वभाव बन जाती है। अनगढ़ सपने रात में ही नहीं, दिन में भी देखते रहते हैं। उनमें से जो मधुर होते हैं, लिप्सा, लालसा के साथ जुड़े होते हैं, शेखचिल्ली का उदाहरण बनते हैं और मन के मोदक खाते रहते हैं। जिन्हें अनिष्ट की आशंका घेरती है, वे हानियों, आक्रमणों, बीमारियों, गृह-नक्षत्रों द्वारा उत्पन्न की जाने की विभिषिकाओं के डरावने दृश्य रचते और उन्हें वास्तविकता की तरह अनुभव करते, डरते, काँपते हैं। खाली दिमाग को शैतान की दुकान कहा गया है। मन खाली नहीं बैठ सकता। अवकाश के क्षण में वह ऐसी ही उड़ाने उड़ता रहता है, जिनमें हर्षातिरेक या भयावह सम्भाव्य के रंग-बिरंगे चित्र सामने आते रहते हैं। यह नशेबाजी जैसी मनःस्थिति है, इसमें उद्विग्नता का ही आवेश भरा दौर चढ़ा रहता है।

छुट्टल मन उस घोड़े के समान है, जिस पर लगाम नहीं चढ़ाई गई। वह किसी भी दिशा में छलाँगे लगा सकता है। इसमें घोड़ा थकता है, ठोकरें खाता है। साथ ही सवार को भी किसी खाई-खन्दक में गिरा सकता है। अव्यवस्थिति कल्पनायें करते रहने वाला एक प्रकार से विक्षिप्त, सनकी बन जाता है। ऐसी मानसिक अराजकता बहुमूल्य सम्पदा को बरबाद कर देती है, जिसे योजनाबद्ध रूप से किन्हीं सद्दुद्देश्यों के लिए प्रयुक्त किया गया होता, तो उसका उपलब्धियों से भरापूरा सत्यपरिणाम सामने आता।

बुद्धिजीवी यशस्वी होते हैं और साथ ही अनेक उपलब्धियाँ विभूतियाँ अर्जित करते हैं। इनकी प्रमुख विशेषता एक ही होती है कि वे मन को उद्धत उड़ानों में उड़ने न देने की सुव्यवस्था बनाते हैं। मनोयोग साधते हैं। अभीष्ट का निर्धारण करते हैं और उस पर गंभीरता भरी एकाग्रता का अभ्यास करते हैं। अर्जुन के मत्स्यवेध की कथा जिन्हें विदित है वे जानते हैं कि एकाग्रता और सफलता का कितना घना सम्बन्ध है। वास्तुशिल्पी विशालकाय भवन बना कर खड़ा करते हैं, पर इससे पूर्व उसकी समग्र कल्पना उनके मस्तिष्क में उतरती है, कागज पर नक्शा बनता है या छोटा मॉडल विनिर्मित होता है। यह मात्र मानसिक परिश्रम है। इसके सही बन जाने पर आधे उद्देश्य की पूर्ति हो जाती है, फिर साधन और श्रमिक जुटाने की धन साध्य व्यवस्था बनाना मात्र ही शेष रह जाता है। यदि नक्शा सही न बन सके तो समस्त साधन उपलब्ध होते हुए भी निर्माण में भूल होती रहेगी और जब बन कर खड़ा होगा तब कुरूप होगा। कल्पना कर्म का पूर्व रूप है। यदि सही विषय की सही कल्पना कर सकना बन पड़ा तो समझना चाहिए कि कार्य का पूर्वार्द्ध पूरा हो गया। कलाकार, साहित्यकार, वैज्ञानिक अपने-अपने कार्य का पूर्व ढांचा खड़ा करने में ही अपनी समूची कल्पनाशक्ति को नियोजित करते हैं। उसके समग्र सम्पन्न हो जाने पर संरचना का प्रत्यक्ष ढांचा खड़ा होने में कोई कठिनाई नहीं रहती। तब मात्र श्रम करना साधन जुटाना शेष रह जाता है।

छोटे-बड़े सभी कार्यों में कृत्य की रूपरेखा सही कल्पना के माध्यम से ही खड़ी करनी पड़ती है। यह उन्हीं के लिए शक्य है जो मन को अनगढ़ उड़ानें उड़ने से रोकने का अभ्यास कर लेते हैं। इसी को मनोनिग्रह या चित्तवृत्तियों का निरोध कहा गया है। इसी को अध्यात्म की भाषा में योग कहते हैं। योग का तात्पर्य है मानसिक क्षमता को अभीष्ट प्रयोजनों में समग्र रूप से तल्लीन करने की क्षमता। यह बहुत बड़ी उपलब्धि है। इसे करतलगत कर लेने पर महान मानसिक क्षमता का उच्चस्तरीय सदुप्रयोग बन पड़ता है और ऐसी सफलताओं का संयोग हस्तगत होता रहता है जिन्हें सराहा और श्रेय दिया जा सके।

क्रिया का कितना ही महत्व क्यों न हो पर वह होती प्रत्यक्ष एवं दृश्य रूप ही है। उसका पूर्व ढांचा मनःसंस्थान के क्षेत्र में ही विनिर्मित होता है। विचार ही उनका ताना-बना बुनते हैं। उन्हीं के द्वारा योजनायें बनती हैं और कार्यान्वित भी वही करते हैं।

अपना निज का व्यक्तित्व ढालने में भी विचारों की ही प्रमुख भूमिका रहती है। विचारों की अनुपयुक्तता मनुष्य को पतन-पराभव के गर्त में गिराती है और उनके उच्च उज्जवल आदर्शवादी होने पर प्रतिभा-प्रखरता निखरती है। इसलिए कहा गया है कि जीवन की अन्यान्य विधि व्यवस्थायें बनाने से पूर्व विचारों की अनगढ़ उड़ानें उड़ने से रोकनी चाहिए। निग्रहीत मन को ऐसे प्रयोजनों में तन्मय होने की कला सिखानी चाहिए जो प्रगति की दिशा में अग्रसर कर सके। विचारों को मानव जीवन की महती शक्ति माननी चाहिए और उसे संयत सुनियोजित करने की साधना करनी चाहिए।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

मनःविकास के भिन्न-भिन्न सोपान

महर्षि पातंजलि ने अपने योगदर्शन में चित्त की भिन्नता को ध्यान में रखते हुए पांच प्रकार के व्यक्तित्वों का उल्लेख किया है। इन्हीं आधारों पर व्यक्ति का उत्थान-पतन निर्भर करता है जो अपने आप बनाया एवं बिगाड़ा जाता है। वस्तुतः मनुष्य किसी बाह्य शक्ति द्वारा नियंत्रित नहीं है, अपितु वह स्वयं चिन्तन, चरित्र एवं व्यवहार में उत्कृष्टता अथवा निकृष्टता का चयन कर स्वयं को उठाता अथवा गिराता है। इसी को महर्षि पातंजलि चित्त की विभिन्न भूमियां कहते हैं एवं इन्हें क्षिप्त, मूढ़, विक्षिप्त, एकाग्रता, निरुद्ध के नाम से पुकारते हैं।

क्षिप्तावस्था में मनुष्य न तो अपने उत्थान की बात सोच पाता है और न ही समाज में कोई महत्वपूर्ण भूमिका निभा पाता है। ऐसे व्यक्तियों को नर पशु की संज्ञा दी जाये तो अत्युक्ति नहीं होगी। ये शरीर से तो मनुष्य दिखाई पड़ते हैं, किन्तु इनकी मानसिक संरचना पाशविक संस्कारों से युक्त होती है। मन इतना चंचल रहता है जिससे चिन्तन, पेट और प्रजनन के इर्द-गिर्द घूमा करता है एवं इसके लिए ऐसे व्यक्ति कुछ भी नीति-अनीति का आचरण करने के लिए सदा तत्पर रहते हैं। फलतः निरन्तर दुःखी, चिन्तित और शोकपूर्ण जीवन बिताते हैं। हमेशा कार्य में लगे रहने पर भी कोई महत्वपूर्ण लक्ष्य भेद नहीं कर पाते। अस्त-व्यस्त एवं अदूरदर्शितापूर्वक कार्य करने वाले भी इसी वर्ग में आते हैं।

दूसरी अवस्था है मूढ़ता की। इस प्रकृति के मनुष्य निद्रा, मोह, भय, आलस्य, तन्द्रा, दीनता आदि दुर्गणों से घिरे रहते हैं एवं ठीक ढंग से सोच विचार नहीं कर सकते, क्योंकि बौद्धिक शक्तियों पर आवरण पड़ा होता है। काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार से ग्रसित होकर वे विपरीत और अनुचित कार्यों में प्रवृत्त रहते हैं। नैतिक मर्यादा एवं अनुशासन को तोड़ने वाले ऐसे ही व्यक्ति होते हैं। जन प्रवाह में बहने में इन्हें कोई भी हानि नहीं दीखती। मछली की तरह प्रवाह के विपरीत चलने की नीति का पक्ष साहस लेने एवं उस प्रवाह को मोड़ने का साहस ये व्यक्ति नहीं जुटा पाते।

इस क्रम में विक्षिप्तावस्था तीसरा चरण है। इस प्रकार के मनुष्यों का स्तर पूर्व की दो श्रेणियों की तुलना में कुछ ऊँचा अवश्य होता है पर फिर भी इन्हें जनसंख्या का एक घटकभर माना जा सकता है। योग्यता, तत्परता एवं सम्पन्नता का अभाव न होते हुए भी कृपण एवं कायर बने रहते हैं। साहस एवं उदारता होते हुए भी वे संकीर्णता की परिधि में ऐसे जकड़े होते हैं, जिसमें कुछ करते धरते बनता नहीं। ये जिस-तिस प्रकार जीवन तो जी लेते हैं। किन्तु आत्मसन्तोष दैवी अनुग्रह एवं लोकसम्मान जैसी उपलब्धियों को प्राप्त कर सकने में वे सर्वथा असमर्थ होते हैं। उनकी गणना व्यक्तित्व की दृष्टि से अविकसित और असहायों में ही होती है क्योंकि वे मात्र अपना ही बोझ किसी प्रकार उठा पाते और सहायता को अपने तक सीमित रख कर कृपण-कंजूस बने रहते हैं।

एकाग्रावस्था चित्त की अगली कड़ी है। इससे सम्पन्न लोगों की ही गणना प्रतिभाशालियों में होती है। ने लोभ, मोह, अहंकार से सर्वथा बचे रहते हैं। वे चिन्तन, चरित्र एवं व्यवहार में ऐसी उत्कृष्टता ले आते हैं जिनका अनुकरण कर परिकर में रहने वाले अन्यान्य लोग लाभान्वित होते हैं। भौतिक प्रगति का श्रेय भी इन्हें ही मिलता है सूझ के धनी एक साथ अनेकों पक्षों पर दृष्टि रख सकने की क्षमता होने के कारण व्यवस्थापक एवं शासनाध्यक्ष भी कहलाते हैं। कलाकारों, साहित्यकारों, बुद्धिजीवियों का वह वर्ग भी इनके अन्तर्गत आता है जो लोकमंगल के लिए ही अपनी प्रतिभाओं का सदुपयोग करते हैं। इस प्रकार के मनीषी वैज्ञानिक, साधु, सज्जन, सेवाभावी लोग नगण्य से साधनों से सदाशयता की रीति-नीति अपनाते हुए हँसता-हँसाता जीवन जी लेते हैं। इन्हीं लोगों ने कभी देश-देशान्तरों में प्रगतिशीलता का सर्वतोमुखी, सुसम्पन्नता एवं सुसंस्कारिता का वातावरण बनाकर रख दिया था। सतयुग के आदर्श ऐसे ही लोगों के स्थापित किये हुए हैं।

पाँचवी एवं अन्तिम अवस्था 'निरुद्धावस्था' है। यह चेतना की चरम स्थिति है एवं व्यावहारिक, चारित्रिक दृष्टिकोण से सर्वोपरि अवस्था है। इस अवस्था को पातंजलि ने समाधि के रूप में तो योगी राज अरविन्द ने सुपरमाइन्ड के रूप में चित्रित किया है। वस्तुतः यही वह उत्कृष्ट अवस्था है जिसमे समाधि जैसी क्षमताएँ एवं ऋद्धियों-सिद्धियों के भण्डार हस्तगत हो जाते हैं। इन्हें देवमानव एवं महापुरुष जैसे नामों से पुकारते हैं। ये सभी इन्द्रिय, समय, साधन एवं विचार संयम से उत्पन्न शक्ति को आत्म परिष्कार से लोकमंगल तक के उच्चस्तरीय प्रयोजनों में ही नियोजित करते हैं। इनकी निजी आवश्यकताएँ सीमित होती हैं। समाज का नवोत्थान एवं सामयिक समस्याओं का समाधान ही इनका मुख्य लक्ष्य होता है। फलतः प्रत्येक कार्य को, जिसे हाथ में लिया गया है, वे अभिरुचि, उत्कण्ठा, मनोयोग एवं उत्साह के साथ सम्पादित करते हैं। लक्ष्य में लोक-कल्याण जुड़े होने के कारण आत्मसन्तोष, लोकसम्मान एवं दैवी अनुग्रह की वर्षा इन पर अपने आप होती है। व्यक्तित्व चुम्बकीय एवं विश्वस्त स्तर का विकसित होता है। यह मनुष्य के प्रगतिक्रम की अन्तिम अवस्था है जिसे 'प्रतिभा की महासिद्धि' की अवस्था कहते हैं जो समय का कायाकल्प करके वातावरण में नव जीवन का प्राण प्रवाह भर देती है।

प्रत्येक व्यक्ति को अपने अन्तराल में झांक कर देखना चाहिए कि महर्षि पातंजलि द्वारा बतायी गयी उपरोक्त पाँच अवस्थाओं में उनका अपना स्थान कहाँ पर है, जिसे आगे विकसित किया जा सके और अपने व्यक्तित्व को पाँचवें स्तर तक देवमानव महापुरुषों के समकक्ष उठाया जा सके, ताकि जीवन लक्ष्य की प्राप्ति हो सके।

वस्तुतः जीवन यात्रा में जो अगणित पड़ाव आते हैं, प्रकारान्तर से उन्हीं की विवेचना महर्षि पातंजलि द्वारा वर्णित इन पाँच अवस्थाओं में हुई है। आज के मनोविज्ञान की कसौटी पर यदि इन पाँचों स्थिति का विश्लेषण किया जाये तो इन्हें अचेतन, चेतन, अवचेतन, सचेतन, सुपर चेतना की परिधि में बाँटा जा सकता है। जिन भिन्न-भिन्न अवस्थाओं का वर्णन दृष्टा से ऋषिवर ने किया, उनसे गुजरते हुए हमारे आस-पास के लोग ही हमें दिखाई देंगे । 'क्लीनीकल साइकोलॉजी' नाम की

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

मनोविज्ञान की शाखा इन्हीं लक्षणों का वर्णन कर उन्हें न्यूरोटिक, साइकोटिक, साइकोसोमेटिक, डेमन्टीक, मेण्टली रिटार्डेड आदि नामों से समझाती रही है। मूल तत्वदर्शन एक ही है कि मनुष्य अनगढ़ है, भटका हुआ है, किन्तु सुगढ़ बनने की व प्रगति के मार्ग पर चल पड़ने की अनन्त संभावनायें इसमें विद्यमान हैं। कालीदास व वरदराज जैसे, मूढ़ जब प्रतिभा सम्पन्न बन सकते हैं तो क्यों नहीं हर व्यक्ति उस दिशा में अध्यवसाय करता है। कुसंस्कारों की मलिन पर्त का अनावरण कर व्यक्ति यदि अन्तर्क्षेत्र को जगा सके तो प्रतिभा के चरम शिखर पर पहुँच सकने का पथ निश्चित ही प्रशस्त हो सकता है।

मन की शक्ति एकाग्रता एवं मनन से विकसित होती है। इधर-उधर चंचलतापूर्वक भ्रमण करने से, चिन्ताओं एवं भ्रान्तियों के वशीभूत होने से, मनःप्रवृत्ति अनेक दुर्दमनीय कष्टों का अनेक पराजयों का कारण बनती है। यदि एक निर्दिष्ट कार्य में मन एकाग्र न किया जाये तो समस्त प्रयत्न निष्फल होते हैं। निर्दिष्ट समय पर अन्य समस्त विचारों को मनःप्रदेश से बहिंगत कर एक तत्व पर अन्तर्क्षेत्र एकाग्र करने से मन की शक्ति प्रकट होती है।

एकाग्र ध्यान के दो मुख्य प्रकार हैं—अक्रिय तथा सक्रिय। अक्रिय ध्यान में इन्द्रियों को शान्त कर मनोवृत्ति को ग्राहक किया जाता है। समस्त वृत्तियाँ को पूर्ण शान्त रखना होता है। "मैं पृथ्वी पर परमात्मा-तत्व का महत्तम, सर्वोच्च एवं सर्वोत्कृष्ट रूप हूँ—केवल इसी भाव पर चित्तवृत्तियों को एकाग्र रखना होता है।" ध्यान का दूसरा भेद है—सक्रिय ध्यान। सक्रिय ध्यान में मन को क्रियात्मक ग्रहणोचित वृत्ति में रखा जाता है। एकाग्रता से शब्द सुनना होता है। एक ही साथ भावनाओं को ग्रहण करना एवं बाहर भेजना होता है। इस प्रकार मन की द्विधा क्रिया होती है। जो कुछ कहा जाता है, उसे सुनने एवं उसी समय निर्णय करके मूक मानसिक उत्तर देते हैं।

हमें क्या इष्ट है ?

तुम अपना अक्रिय ध्यान उस व्यक्ति की ओर मत करो जो तुमसे अनुग्रह अथवा लाभ उठाना चाहता है। यद्यपि तुम्हें दूसरे की भावनाएँ ग्रहण करनी चाहिए, तथापि तुम्हें अपने मन को ऐसी विहित वृत्ति रखनी चाहिए जिससे तुम पर किसी अवांछनीय प्रभाव का आक्रमण न हो सके। तुम्हें द्वारपाल के समान स्थिर रहना चाहिए तथा किसी अनुचित तथा अनर्थकारी सूचना (Suggestion) का संचार मन के भीतर न होने देना चाहिये बाहर भेजा हुआ प्रत्येक विचार तुम्हारी इच्छा के वश में होना चाहिए। जब तक सद्भाषण स्वभाव स्थिर रूप से न बन जाये तब तक प्रत्येक शब्द को सावधानी से बोलते रहो तथा प्रत्येक कार्य सूक्ष्म अन्तरात्मा की अनुमति से करते रहो। प्रत्येक कार्य में अपनी सच्ची संकल्प शक्ति का संचार करते रहो।

दार्शनिक कैन्ट ने एक स्थान पर निर्देश किया है कि नीतिमय जीवन का प्रारम्भ होने के लिये विचार क्रम में परिवर्तन तथा आचार का ग्रहण आवश्यक है। भारतीय परिभाषा के अनुसार—

सत्येन लभ्यस्तपसा होष आत्मा।
सम्यक् ज्ञानेन ब्रह्मचर्येण नित्यम्॥

—उपनिषद्

अर्थात्—सत्य, तप तथा सात्विक ज्ञान और नित्य निर्विकार रहने से ही आत्मतत्व का दर्शन हो सकता है। ये सभी बातें मनःसाधना की ओर संकेत करती हैं। जीवन में दर्शन का फल है मनः सभ्यता का उदय। साधना की भावना से सात्विकी श्रद्धा का जन्म होता है। जिज्ञस्य विषय को अपने अध्यवसाय की क्षमता के अनुभव का विषय बना सकना ही श्रद्धा का लक्षण है। भारतीय विचारकों ने अपने वाङ्मय के उषाकाल से ही इस महत्वपूर्ण तत्व को समझकर उसका प्रचार किया है। ज्ञानसिद्धि, ऋषि-महर्षियों को जो साक्षात्कार था उसको उन्होंने 'श्रुति' कहा है। श्रुति का जन्म प्रज्ञा से होता है। प्रज्ञा (Intuition) ज्ञान प्राप्ति का सबसे सूक्ष्म साधन है। योग समाधि के द्वारा चित्त को संस्कृत करने का फल हमारे ज्ञान यन्त्र के लिये पातजंलि ने यों बतलाया है—'ऋतम्भरा तत्र युला' अर्थात् आध्यात्मिक दर्शन की उच्चतम अवस्था में ऋतम्भरा प्रज्ञा का उदय होता है। ऋत जिसमें भरता हो, ऐसी बुद्धि ऋतम्भरा है। मन के तर्क-वितर्क द्वारा संचय होने वाला ज्ञान सत्य है। हृदय की अनुभति या तत्व साक्षात्कार से उपलब्ध अनुभव 'ऋत' है। योगी की प्रज्ञा ऋतात्मक ज्ञान का भरण करती है।

बुद्धि का यथार्थ स्वरूप

बुद्धि, यथार्थ में प्रतिभा का एक संस्कारित स्वरूप है। भावुकता अर्थात् कल्पनात्मक सहानुभूति, बुद्धि का एक गुण है। नाना प्रकार के विचार कल्पनाएँ मानस चित्र निर्माण करना, सोचना, तर्क करना बुद्धि के व्यापार हैं। कुशाग्र बुद्धि वाला व्यक्ति अधिक स्पष्ट मानस-चित्र विनिर्मित करता है। कल्पना करना, ज्ञान के आधार पर उन मानस चित्रों को अधिकाधिक स्पष्ट करना, उनमें भावुकता (Feeling) का संचार करना यह बुद्धिमानों की आन्तरिक अवस्था है। जब तक उक्त तत्वों में पूर्ण सामंजस्य नहीं तब तक बुद्धि में परिपक्वता का संचार नहीं हो सकता। तर्क से कल्पना का अनौचित्य प्रक्षालित होता है और बुद्धि का विशुद्ध व्यावहारिक रूप प्रकट होता है। बुद्धिमान की विविध योजनाएँ व्यावहारिकता के आधार पर विनिर्मित होती हैं। मनुष्य के मन का विकास, अधिकता, उसकी बुद्धि के विकास पर ही निर्भर ही है। बुद्धि की शक्ति मस्तिष्क के सूक्ष्म कोषों (Cells) में निवास करती है। जिज्ञासा एवं स्मरणशक्ति बुद्धि के विशिष्ट अंग-प्रत्यंग है। मनन से मन की शक्ति बढ़ती है। निर्दिष्ट समय पर दूसरे सब विचारों को छोड़कर एक आत्मतत्व पर मन को एकाग्र करना चाहिये।

चित्त की शाखा-प्रशाखाएँ

चित्त का प्रधान कार्य जानना या अनुभव करना है। चित्त को योगदर्शन एवं सांख्य सूत्रों में प्रकृति के सतोगुण का परिणाम माना गया है। चित्तवृत्तियों का भंडार है। चित्त की

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

वृत्तियों को वश में करना, रोकना, विरोध करना ही शान्ति का मूल है—योगश्चित्त वृत्तिविरोध।

चित्त की वृत्तियों के दो भेद हैं—अन्तःवृत्तिः, वहिर्वृत्ति। कुछ व्यक्तियों की वृत्ति बाह्य-संसार की उलझनों से ऊबकर अन्तःकरण के विवेक की ओर लग जाती है। इसमें व्यक्ति अन्तः जगत के गूढ़ रहस्यों में पूर्ण निमग्न रहता है। वह आत्मा के अन्तराल में विचरण करता है। प्रकृति पुरुष का वास्तविक ज्ञान ही उसका प्रधान लक्ष्य होता है और इस तत्व ज्ञान प्राप्ति से समस्त कलेश दूर हो जाते हैं।

द्वितीय वृत्ति है वहिर्वृत्ति अर्थात् केवल सांसारिक वस्तुओं का देखना सुनना, उनमें लिप्त रहना रजोगुण एवं तमोगुण के कारण विषयों की ओर वृत्ति झुकी रहती है, जैसे काम, क्रोध, लोभ, आलस्य इत्यादि में प्रवृत्ति। अधिकांश अस्थिर व्यक्तियों की वृत्ति वहिर्वृत्ति ही होती है। विषयों में लिप्त रहने के कारण उन्हें नाना प्रकार के कलेशों को भोगना पड़ता है। भोग की सांसारिक वृत्तियों को क्लिष्ट कहते हैं।

पातंजलि के अनुसार चित्तवृत्तियाँ

वृत्तियाँ अगणित भी हो सकती हैं। महर्षि पातंजलि के अनुसार वृत्तियों का स्वरूप देखिये। महर्षि पातंजलि कहते हैं :- प्रमाण विपर्यय विकल्प निद्रा स्मृतयः (१, ६)। लौकिक ज्ञान का जो सम्बन्ध है, वह प्रमाण कहलाता है। इसके तीन भेद हैं—प्रत्यक्ष, अनुमान एवं आगम। प्रत्यक्ष वह ज्ञान है जो नेत्रों इत्यादि इन्द्रियों से प्राप्त है। अनुमान उसे कहते हैं जिसे हम कुछ चिह्न देखकर अनुमान कर लेते हैं। 'अगाम' शास्त्रोक्त वचन अर्थात् सच्चे तत्व ज्ञानी आम मनुष्यों के शब्दों द्वारा प्राप्त होता है। अन्य चार वृत्तियाँ ये हैं—

विपर्यय—जिससे मिथ्या ज्ञान हो। विपर्य या मिथ्या ज्ञानमनद्रप प्रविष्ठाम अर्थात् वह ज्ञान जो सच्चे रूप में स्थिर नहीं है।

विकल्प—जो वस्तु शून्य अर्थात् वास्तव में कुछ हो ही नहीं, किन्तु केवल शब्द मात्र से जाना जाये। वेदान्ती समग्र संसार की वस्तुओं को विकल्प ही मानते हैं।

निद्रा—किसी पदार्थ के न होने का प्रत्यय अर्थात् ज्ञान जिस वृत्ति का आलम्बन है उसे निद्रा कहते हैं, जब स्वप्न आते हों तो वह निद्रा नहीं है।

स्मृति—अन्तिम वृत्ति स्मृति है। यह अनेक दुःखों का कारण बन जाती है। अतएव, इसका विरोध होना आवश्यक है (अनुभूताविषयाऽसम्प्रमोपः स्मृति)। स्मृति अनुभव से न्यून का तो ज्ञान कराती है, किन्तु अधिक का नहीं।

उक्त वृत्तियाँ यदि सात्विक हों तो सुख उत्पन्न करेंगी और सुख से राग उत्पन्न होगा। अर्थात् मन सुख के वशीभूत होगा तो मुक्ति में बाधा पड़ जायेगी। इन वृत्तियों का विरोध ही मुक्ति की इच्छा करने वाले को परमावश्यक है।

मन से मन का योग

अलाबामा (अमरीका) राज्य के गाड़स डेन नगर के पास एक गाँव में रहने वाले एक हाईस्कूल के विद्यार्थी को अपने मित्र को चिढ़ाने की सूझी। कोयल बोलती है तो उसको चिढ़ाने के लिये गाँव के बच्चे उसी की ध्वनि और लहजे में जब वह कुहू करती है तो वे स्वयं भी कुहू करते और बड़े प्रसन्न होते हैं। इसी विनोद के भाव में इस विद्यार्थी ने भी अपने मित्र को चिढ़ाना प्रारम्भ किया। पर उसकी प्रक्रिया अन्य लोगों से न केवल भिन्न थी अपितु विलक्षण भी थी जिसे अतीन्द्रिय क्षमता ही कहा जा सकता है।

फ्रैंक रेन्स नामक इस विद्यार्थी की विशेषता यह थी कि वह अपने साथी के कुछ भी बोलने के साथ ही हूबहू वही शब्द उसी लहज में और बिना एक क्षण का विलम्ब किये उसके अक्षरों से अक्षरों की ताल बैठाते हुये मानो उसके मन में भी उस समय वही भाव उठ रहे हों जो वह दूसरा साथी व्यक्त कर रहा था, बोलने लगता था।

इस घटना को प्रस्तुत करते हुए भारतीय योग दर्शन की उपलब्धियों की ओर सहज ही ध्यान आकर्षित हो जाता है और मानना पड़ता है कि 'मन' जो कि एक अव्यापक शक्ति है यदि उसे एकाग्र और उस पर नियंत्रण प्राप्त किया जा सके तो मनुष्य ऐसी न जाने कितनी ही अतीन्द्रिय क्षमताएँ अपने आप में विकसित कर सकता है जो दूसरों को कौतूहल-सी लगें। दूसरों के मन की बात तत्काल जान लेना भी उसका एक लाभ है। उसका रहस्य समझाते हुये महर्षि वशिष्ठ लिखते हैं—

दृढ़भावनया चेतो यद्यथा भावयत्यलम्।
तत्तफलं तदाकारं तावत्कालं प्रपश्यति॥

योग वाशिष्ठ ४।२१।५६-५७

हे राजन! यह मन दृढ़-भावना वाला होकर जैसी कल्पना करता है उसको उसी आकार में उतने समय तक और उसी प्रकार का फल देने वाला अनुभव होता है।

फ्रैंक रेन्स ने यद्यपि इस जन्म में किसी प्रकार का न तो योगाभ्यास किया है और न ही उसे 'मन की एकाग्रता' के भारतीय तत्व दर्शन का ही ज्ञान है। उसे जो कुछ प्राप्त है उसे पूर्व जन्मों की साधना का संस्कार ही कहा जा सकता है पर एक बात निर्विवाद है कि उसकी मानसिक एकाग्रता और स्मरण शक्ति दोनों आश्चर्यजनक हैं। अतीन्द्रिय क्षमताओं की जाँच करने वाले कई विशेषज्ञों और मनोवैज्ञानिकों ने उनकी जाँच की तो वह यह नहीं बता पाये कि इसका रहस्य क्या है, स्वयं फ्रैंक रेन्स भी नहीं जानता पर उसकी दृढ़ एकाग्रता इस बात का प्रमाण है कि उसमें यह संस्कार अनायास ही नहीं पूर्व जन्मों के ही हो सकते हैं। वह जब पढ़ते थे तभी एक बार के अध्ययन से पूरी पुस्तक अक्षरशः कंठस्थ कर लेते थे। एक बार परीक्षा में एक ऐसा प्रश्न आया जिसे वह नहीं जानते थे, उस समय इस अतीन्द्रिय क्षमता ने साथ दिया। एक-दूसरे विद्यार्थी के मुख की भावभंगिमा को देख-देख कर उन्होंने, उसने जो कुछ लिखा था वही स्वयं भी परीक्षा-पुस्तिका में लिख दिया।

विद्यार्थी जीवन से ही उन्हें अपनी इस अतीन्द्रिय क्षमता का सार्वजनिक प्रदर्शन करना पड़ा और शीघ्र ही वह अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति तक पहुँच गये। जिसने भी उनका कार्यक्रम

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

देखा वह आश्चर्यचकित रह गया। पाश्चात्य लोग जिज्ञासु होते हैं पर दिक्कत यह है कि उन्हें आध्यात्मिक तत्वों का ज्ञान नहीं, कदाचित उन लोगों को भारतीय योगविद्या के सिद्धान्तों की वैज्ञानिक जानकारी दी जाये तो वे भारतीय योग का न केवल स्वागत करें वरन् प्रयोग के लाभ भी उठाएँ। यह तो हम भारतीय ही हैं जो अपने इस महत्वपूर्ण तत्वज्ञान से कुछ लाभ नहीं उठा पाते, डरते रहते हैं कि कहीं इस दिशा में जाकर वैराग्य धारण न करना पड़े। लौकिक जीवन की सुव्यवथित तैयारी में भी योग से बढ़कर कोई साधन नहीं है। यह अभी हम भारतीयों को ही पता नहीं, विदेशी तो बाद की बात है।

फ्रैंक रेन्स की विशेषता यह है कि वह केवल अमरीकी भाषा जानते हुए भी दुनियाँ भर की तमाम भाषाओं में बोलने वाले के साथ वही अक्षर बिलकुल वैसे ही उच्चारण और भावभंगिमा के साथ दोहरा देते हैं। एक बार प्रसिद्ध हास्य अभिनेता जेरी ल्यूबिर ने एक कार्यक्रम रखा। इसमें जिना लोलो ब्रिगिडा नामक एक स्त्री ने भाग लिया। ब्रिगिडा विश्व की अनेक भाषायें बोल लेती हैं। उन्होंने पहले तो एक-एक भाषा के वाक्य बोले जिन्हें रेन्स ने उनके उच्चारण के साथ ही दोहरा दिया। तब फिर वे खिचड़ी बोलने लगीं जिसमें थोड़ी इंगलिश भी थी, हिन्दी, रशियन, जर्मन और फ्रेंच भी, आश्चर्य कि खिचड़ी भाषा के खिचड़ी वाक्य-विन्यास को भी उन्होंने ज्यों का त्यों दोहरा दिया। यह विवरण मार्च १९६८ के अंक में हिन्दी डाइजेस्ट ने भी छापा था।

एक बार किसी दर्शक ने कह दिया कि रेन्स बोलने वाले के ओठों की हरकत से बोले जाने वाले शब्द का अनुमान करके उच्चारण करता है। यद्यपि रेन्स बोलने वाले के इतना साथ बोलता है कि अनुमान की कल्पना ही नहीं की जा सकती फिर भी उन्होंने तब से अपना मुँह उल्टी दिशा में करके बोलना प्रारम्भ कर दिया और इस तरह यह प्रत्यक्ष सिद्ध हो गया कि—

मनो निर्मलसत्वात्म यद्भावयतियादृशम्।
तत्तथाशु भवत्येव यथाऽवर्तो भवेत्पयः॥

योग वाशिष्ठ ४।१७।४

अर्थात् मन यदि शुद्ध है तो जैसे जल भँवर का रूप धारण कर लेता है, वह जिस वस्तु की जैसी भावना करता है, वह अविलम्ब वैसी ही हो जाती है और दूसरे की मन की बात अपने मन में उतर आती है।

यह केवल दृढ़ भावना से ही सम्भव नहीं मन का शुद्ध होना भी आवश्यक है—"मलिनं हि मनोऽवीर्य न मिथःश्लेषमर्हति" अशुद्ध मन शक्तिहीन होता है, वह दूसरे के मन के साथ एक रस संगम नहीं कर सकता।

फ्रैंक रेन्स का आहार-विहार बहुत शुद्ध, प्रकृति सात्विक और विचार बड़े धार्मिक हैं। वे स्वयं यह बात मानते हैं कि यह सब जो वह दिखा देते हैं वह एकाएक नहीं हो जाता वरन् पहले मैं उसकी तैयारी करता हूँ। यदि मेरा आहार-विहार कभी अशुद्ध हो गया तो मैं इस तरह का प्रदर्शन कर नहीं पाता। इसलिये जब वे कार्यक्रम रखते हैं उन दिनों पूर्ण पवित्रता का ध्यान रखते हैं।

एक बार न्यूयार्क में उनकी अद्भुत परीक्षा ली गई। एक डॉक्टर नियुक्त किया गया। उसने एक लगभग २० पेज का वैज्ञानिक लेख तैयार किया जिसमें चिकित्साशास्त्र के ऐसे कठिन शब्दों का बहुतायत से प्रयोग किया गया था जिनकी सर्वसाधारण को जानकारी तो दूर बड़े-बड़े डॉक्टर तक शुद्ध उच्चारण नहीं कर सकते थे। डॉक्टर एक कोने में खड़े हुये और फ्रैंक रेन्स दूसरे कोने में। रेन्स के सामने टेप रिकॉर्डर था और मुँह डॉक्टर से उल्टी दिशा में, अर्थात् वह डॉक्टर को देख भी नहीं सकते थे। कार्यक्रम शुरू हुआ। डॉक्टर स्पीच पढ़ता गया रेन्स साथ-साथ दोहराते गये पीछे जब टेप रिकॉर्डर सुना गया तो लोग आश्चर्यचकित रह गये कि साधारण शिक्षा वाले रेन्स ने वह कठिन उच्चारण भी कितने साफ और स्पष्ट ढंग से कर दिये हैं। लोग 'मनुष्य मन' की इस विलक्षण शक्ति पर आश्चर्यचकित रह गये।

न्यायदर्शन के प्रथम अध्याय प्रथम आन्हिक के १६वें सूत्र में मन की परिभाषा करते हुए लिखा है—

"युगपज्ज्ञानानुत्पत्तिर्मनसोलिंगम्"

एक समय में दो पदार्थों का ग्रहण ज्ञान नहीं होता उसे मन कहते हैं अर्थात् मन एक ऐसी शक्ति है जो एक बार में केवल एक ही वस्तु से तादात्मय कर सकती है या एक ही ज्ञान को ग्रहण कर सकती है। अर्थात् मन सर्वत्र एक है—"ज्ञान योग पद्यादेकं मनः" मन एक बार में केवल एक ही ज्ञान कर सकता है। इसके अनुसार यदि मन सभी बाहरी चंचलताओं से हटाकर एकाग्र किया जा सके तो सभी कर्मेन्द्रियों और ज्ञानेन्द्रियों की सूक्ष्म क्षमताओं को अतीन्द्रिय रूप में प्राप्त किया जा सकता है। क्योंकि आँख जो देखती हैं, कान जो सुनता है, जिह्वा जो खाती है, वह सब मन की ही तो अनुभूति है। आँखें अपने आप देखने की क्रिया का विश्लेषण नहीं कर सकतीं, यदि मन न हो। इसलिये योगीजन कोई भी साधना की शुरूआत मन को एकाग्र करने से प्रारम्भ करते हैं। मन एकाग्र हो जाये तो फिर सिद्धियाँ तो कैसी भी अपने आप उपार्जित की जा सकती हैं। टेलीफोन और टेलीविजन पर भी अपने कार्यक्रम प्रदर्शित करके फ्रैंक रेन्स ने उपरोक्त बातों की सत्यता प्रमाणित कर दी। टेलीफोन पर चाहे कितनी दूर कोई व्यक्ति खड़ा हो, चाहे जिस भाषा में बोलता जाये। हाथ में टेलीफोन पकड़े फ्रैंक रेन्स भी उसके साथ ही वही उच्चारण दोहराते चले जाते हैं। यहाँ तो ओंठ क्या उस व्यक्ति का शरीर ही हजारों मील दूर होता है। यही बात टेलीविजन पर भी होती है। अब तक उनके टेलीविजन पर लगभग २५ कार्यक्रम हो चुके हैं। जेरी ल्यूविस जॉनसन और जैक पार के साथ उन्होंने 'आई हैव गाट ए सीक्रेट' और 'टु नाइट' कार्यक्रमों में भी भाग लेकर लोगों को आश्चर्यचकित किया है, पर उनकी इस आश्चर्यजनक क्षमता का उपयोग मात्र मनोरंजन रह गया है। उसका उपयोग किसी बड़े कार्य में होना चाहिये था जैसा कि फ्रैंक रेन्स स्वयं कहते हैं कि—मेरे भीतर

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

से ऐसी आवाज आया करती है कि आगे एक ऐसा युग आ रहा है जब लोगों में इस तरह की अतीन्द्रिय क्षमताएँ सामान्य हो जावेंगी। मुझे ऐसा लगता है कि मुझे उसी दिशा में काम करना चाहिए। यह प्रेरणा क्यों उठती हैं, कहाँ से आती हैं, यह वे स्वयं नहीं जानते।

शरीर और मन के भीतरी संस्थानों और चक्रों में प्रवेश कर अतीन्द्रिय क्षमताओं की प्राप्ति और अन्य पदार्थों को अपनी इच्छानुसार प्रयोग करने की सामर्थ्य को ईशत्व सिद्धि कहा गया है। कुछ योगी इसे ही ज्ञान सिद्धि के नाम से पुकारते हैं। यह मन को पूर्ण एकाग्र कर लेने से मिलती है। तीक्ष्ण बुद्धि, तीव्र स्मरणशक्ति, भूत और भविष्य की घटनाओं को जान लेना समीपवर्ती परिस्थितियों का समान रूप से ज्ञान, पूर्व जन्मों की स्मृतियाँ, अन्तःकरण में निस्पृह प्रेम और वैराग्य की जागृति यह उसके प्रभाव हैं। सब प्राणियों के मनोगत भावों को जान लेना मन की एकाग्रता का बहुत स्थूल लाभ है। वस्तुतः बन्धन मुक्ति, स्वर्ग और सद्गति का कारण भी शास्त्रकारों ने मन को ही माना है। इन्हें प्राप्त करना ही इस शक्ति की सार्थकता है।

मन की कई परतें हैं, उसके एक से बढ़कर एक उच्चस्तरीय आयाम हैं, जैसे—चेतन, अचेतन, अतिचेतन, सुपरचेतन आदि। इनमें से अचेतन मन की उच्चस्तरीय सत्ता में सूक्ष्म जगत के साथ सम्बन्ध जोड़ने की क्षमता है। दृश्य जगत का व्यवहार मन और बुद्धि के सहारे चलता रहता है। शरीर की निर्वाह व्यवस्था को यथाक्रम सुसंचालित बनाये रहने का काम मस्तिष्क के पिछले भाग में अवस्थित अचेतन क्षमता चलाती रहती है। इससे आगे का उच्च स्तर जिसे दिव्य चेतन कहते हैं, विशिष्ट शक्तियों से भरा पूरा है। सामान्यतया वह कुंभकर्ण जैसी गहन निद्रा में पड़ा रहता है। यदि उसे जागृत होने का अवसर मिल जाये तो व्यक्तित्व को देवोपम बनाने से लेकर चमत्कारी सिद्ध पुरुषों जैसे अलौलिक स्तर के ज्ञान और कर्म का परिचय दे सकता है। विज्ञानमय कोश की जागरण साधना इसी दिव्य चेतना को समुन्नत बनाने की प्रक्रिया का नाम है।

मनोविश्लेषणवादी मनोवैज्ञानिकों के अनुसार हमारी सचेतन (कॉन्शस स्टेट) अवस्था से गहरी एक अन्य चेतना है, जो (अनकॉन्शस स्टेट) अचेतन अवस्था कहलाती है। सचेतन अवस्था किसी समुद्र में तैरते विशाल हिमखंड (ग्लेशियर या आइसबर्ग) का ऊपर निकला हुआ दशमांश भाग है और अचेतन अवस्था समुद्र की ऊपरी सतह के नीचे पानी में छिपे फैले ग्लेशियर का शेष विशाल भाग है, जो सचेतन से नौ-दस गुना बड़ा है। ग्लेशियर का कुछ हिस्सा पानी की ऊपरी सतह को कुछ ऊपर से, कुछ नीचे से छू रहा होता है, यही सचेतन-अचेतन के बीच की अवचेतन (सबकॉन्शस) अवस्था है।

वैज्ञानिकों की मान्यता है कि कथित गुह्य शक्तियाँ वस्तुतः अत्यन्त शक्तिशाली अचेतन मस्तिष्क की ही करामातें हैं। मृतात्माओं, देवात्माओं से सम्पर्क के ठोस प्रमाण भी उपचेतन एवं अवचेतन की अज्ञात सामर्थ्य का ही परिणाम है। सम्मोहन अतीन्द्रियानुभूति परक स्वप्न, समस्याओं का अचेतन मस्तिष्क द्वारा आकस्मिक समाधान (किसी निश्चित समस्या पर मनन करते हुए सो जाने पर अचेतन मस्तिष्क द्वारा सोते समय ही उसका कोई ऐसा समाधान ढूँढ़ निकालना, जो जगने पर बुद्धि-पटल पर स्पष्टतः उभरकर विस्मित कर दे।) आदि सभी के प्रति वैज्ञानिकों की मान्यता यही है कि वे अवचेतन मस्तिष्क की गतिविधियाँ हैं।

फ्रायड ने 'सेल्फ' को तीन भागों में बाँटा है—'ईगो' अर्थात् चेतन आत्म, 'इड' यानी सहज प्रेरणाओं का अचेतन भण्डार, 'सुपर ईगो' यानी नैतिक प्रेरणाओं और मान्यताओं का क्षेत्र। प्रेम की सहज प्रेरणा (इन्स्टिन्क्ट) या मूल प्रवृत्ति को उसने 'लिबिडो' का विशेषण दिया। उनके अधिकांश लेखनों में 'लिबिडो' तथा सामाजिक मान्यताओं के अन्तर्द्वन्द्व का विवेचन है। उसके अनुसार 'लिबिडो' का असन्तुष्ट अंश मार्गान्तरित होकर सृजन के विविध रूपों में प्रवाहित होता है और उदात्तीकरण के द्वारा कला तथा संस्कृति के विविध क्षेत्रों में सक्रिय होता है। जुंग ने 'लिबिडो' की व्यापक व्याख्या का और सभी मूल प्रवृत्तियों से उसे सम्बद्ध बताया, न कि मात्र प्रेम से। जुंग ने 'सामूहिक अवचेतन' की भी धारणा दी। 'कॉम्प्लेक्स' की भी उसने विशेष व्याख्या की और प्रतिपादित किया कि 'कॉम्प्लेक्स' का अर्थ होता है—अचेतन मस्तिष्क में किसी भी विचार-समूह का एक विशिष्ट भावावेग के साथ विद्यमान होना।

अचेतन की खोज जैसे-जैसे बढ़ती जाती है, अलौकिक कही-समझी जाने वाली अनेक बातों के सूत्र स्पष्ट होते जाते हैं। साथ ही विज्ञान के अब तक के अनेक सिद्धान्तों एवं नियमों का आधार भी ध्वस्त हो रहा है। नये नियमों का उदय, समर्थन हो रहा है। मनोविज्ञान की तो अधिकांश स्थापित मान्यताओं में भारी उलट-पुलट हो रही है।

यही कारण है कि प्रारम्भ में अनेक वैज्ञानिकों-मनोवैज्ञानिकों ने उन तथ्यों पर विश्वास करने से ही इन्कार कर दिया था, जो आज परामनोविज्ञान का आधार बने हुए हैं। उन्हें प्रारम्भ में विचित्र और वाहियात बातें मात्र माना गया था।

बहुत दिन नहीं हुए जब मानसिक क्रियाकलापों को शारीरिक आवश्यकताओं के अनुसार चलने वाला माना जाता था। भूख लगती है, इसीलिए पेट भरने की चिन्ता मस्तिष्क को होती है और पैर उधर मुड़ जाते हैं, जहाँ उदर-भरण हो सके। हाथ खाद्य-पदार्थों को मुँह तक पहुँचाते, मुँह उन्हें चबाता, पेट पचाता है। इसी तरह प्रत्येक मानसिक गतिविधि देह की जरूरतें पूरा करने के लिए ही होती है।

अचेतन मन की प्रारम्भ में जब जानकारी मिली, तब भी ध्यान इसी ओर दिया गया कि शरीर को जीवित गतिशील रखने के लिए वह निरन्तर हमारे अनजाने ही चलने वाले विविध क्रियाकलापों का संचालन करता है जैसे—रक्तसंचार, श्वास-प्रश्वास, हृदय की धड़कन, आकुंचन-प्रसारण, पाचन-विसर्जन, पलकों का झपकना, आदि। इस प्रकार बहुत समय तक मस्तिष्क को शारीरिक प्रयोजनों का पूर्तिकारक अवयव ही माना गया। विचार-शक्ति शारीरिक आवश्यकताओं

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

की ही अनुवर्ती, अनुचरी मानी गयी। शरीर से सम्बद्ध समस्याओं के समाधानकारक उपाय ढूँढ़ने और उनके व्यवहार की व्यवस्था बनाने में ही विचारशक्ति की पूर्ण सार्थकता मानी गयी। पर यह शिशु मान्यता अधिक दिन नहीं टिकी। शोध क्षेत्र में प्रौढ़ता बढ़ी और धीरे-धीरे वैज्ञानिकों का ध्यान इस ओर गया कि ऐसे भावों की भी मनुष्य मस्तिष्क में कमी नहीं, जो शरीर को लाभ पहुँचाना तो दूर, उल्टे हानि ही पहुँचाते हैं। औरों के दुःख से स्वयं दुःखी हो जाने, पर-सेवा, लोकमंगल के लिए सर्वस्व न्यौछावर कर देने, देश समाज, विश्वमानव के लिए अपनी सुख-सुविधाएँ ठुकरा देने आदि आचरणों से शरीर को तो कोई भी सुख मिलता नहीं, कष्ट ही भोगना पड़ता है। फिर, यह भी देखा गया कि भावनाएँ व्यक्ति को क्रियाशील ही बनाती हों सो नहीं, वे तो शरीर और मन की सामान्य कार्य-व्यवस्था को भी कभी-कभी अस्त-व्यस्त करके रख देती हैं। किसी प्रियजन की मृत्यु से हृदयगति अवरुद्ध हो सकती है, मस्तिष्क विक्षिप्त हो सकता है। नृशंस क्रूर-कर्मों को देखकर भय से कई लोग अचेत हो सकते हैं, कुछ अन्य क्रोध से अत्यन्त उत्तेजित हो सकते हैं।

इस दिशा में ध्यान देने पर मस्तिष्क के अचेतन स्तरों की विशालता-विवधता की ओर ध्यान गया। भावनाओं का महत्व जाना गया। अमरीकी वैज्ञानिकों डॉ पाल मैकलीन, डॉ. जोसे डैलगेडी आदि ने गहन विश्लेषण कर निष्कर्ष निकाला कि भावनाएँ शारीरिक व मानसिक स्वास्थ्य को अत्यधिक प्रभावित करती हैं। व्यक्ति की अनेक शारीरिक-मानसिक हलचलें इन्हीं भावनाओं के संकेत पर होती रहती हैं।

वैज्ञानिकों ने देखा कि आहार-विहार का अपना महत्व है, पर उतनी भर व्यवस्था सध जाने पर स्वास्थ्य ठीक ही बना रहे, यह निश्चित नहीं। अध्ययन-अध्यापन द्वारा चेतन मन की जानकारी बढ़ती है; पर शिक्षा-सुविधाएँ उपलब्ध हो जाने पर व्यक्ति मनोविकारों से रहित, स्वस्थ मस्तिष्क सम्पन्न हो जाये, यह अनिवार्य नहीं।

यहीं से मन के अचेतन—अधोचेतन—स्तरों की ओर ध्यान गया। ड्यूक विश्वविद्यालय में परामनोविज्ञान विभाग के अध्यक्ष डॉ. राइन ने अपनी पुस्तक 'द रीच ऑफ माइन्ड' में 'फाइव ग्रेट स्टेप्स' शीर्षक के अन्तर्गत अपने अनेक वर्षों के अनुसंधानों को संश्लिष्ट रूप में प्रस्तुत किया।

इस प्रकार अचेतन मन की अनन्त सामर्थ्य के द्वार खुले। मायर्स ने इसे 'सब्लीमाइनल माइन्ड' नाम दिया। मस्तिष्क के अचेतन स्तरों की खोज इन दिनों गम्भीरतापूर्वक की जा रही है। मनोवैज्ञानिकों ने मस्तिष्क के तीन कार्यक्षेत्र माने हैं—(१) चेतन, (२) उपचेतन, (३) अचेतन।

उपचेतन तथा अचेतन मस्तिष्क के क्रियाकलापों के बारे में जैव भौतिक-विज्ञानी दृष्टि से अभी तक ठीक-ठीक कुछ भी नहीं कहा जा सकता। इलेक्ट्रोएनसेफालोग्राम से भी इस विषय में स्पष्ट कुछ नहीं जाना जा सका है। अल्फा, बीटा, डेल्टा, थीटा आदि मस्तिष्कीयलयों (रिद्मों) से मस्तिष्क की विश्रान्ति, सतर्कता, उद्वेग, सुषुप्ति, स्वप्नावस्था आदि का भान मात्र होता है। मस्तिष्क के विद्युत चुम्बकीय क्षेत्र की भी ऐसी व्यापक जानकारी नहीं मिल सकी है कि कुछ निश्चित निष्कर्ष उस आधार पर निकाले जा सकें। मस्तिष्क के मुख्य भाग (फोरब्रेन) बाबत मात्र ३ प्रतिशत जानकारी मिल सकी है, ९७ प्रतिशत अभी भी अविज्ञात ही है। सूक्ष्म विद्युदग्रों द्वारा स्मरणशक्ति को जाग्रत एवं संवेदना-विशेष को उद्दीप्त करने के प्रयोग किए जा रहे हैं। फ्रेंच वैज्ञानिक प्रो० डेलगार्डो ने लूलू नामक डरपोक जानवर की कनपटी में सूक्ष्म विद्युदाग्र (इलेक्ट्रोड) के द्वारा एक विशेष भाग को उत्तेजित कर दिया, जिससे वह निर्भीक आचरण करने लगा। रूसी वैज्ञानिक प्रोफेसर एनोरवीन ने अपने प्रयोगों द्वारा 'रेटिक्युलर फॉर्मेशन' की उन ग्रन्थियों का पता लगाया, जिनमें से कुछ मधुर रसों का स्राव करती हैं और प्रसन्नता-प्रफुल्लता, हँसी, मृदुता, शिष्टता, सौम्यता आदि प्रतिक्रियाओं को जन्म देती हैं, तो दूसरी ऐसे रस स्रवित करती हैं, जो चिन्ता, क्षोभ, निराशा, उद्वेग को जन्म दें। डॉ० एनोरवीन ने यह भी पता लगाया कि इन ग्रन्थियों का स्राव भी विचारों एवं भावनाओं से ही नियन्त्रित होता है।

कनाडा के शोधवैज्ञानिक डॉ० डब्ल्यू० जे० पैनफील्ड ने अपने प्रयोगों द्वारा स्मरणशक्ति की पट्टियों के बारे में आश्चर्यजनक जानकारी एकत्र की। एक व्यक्ति की स्मरणशक्ति की पट्टी के किसी विशेष हिस्से में विद्युत-दौड़ने पर उसकी पूर्वजन्म की स्मृतियाँ जागृत हो गईं। इन्हीं प्रयोगों से यह भी जाना गया है कि हम जो भी काम करते हैं, वह कितना भी छिपकर क्यों न करें, अचेतन मस्तिष्क में वह सब अंकित होता रहता है।

मस्तिष्क के इन अचेतन स्तरों का ज्ञान हो जाने पर आधुनिक सभ्यता का आधार ही बदल जाएगा। इस सभ्यता का वर्तमान आधार चेतन मन की क्रियाएँ हैं। यह मन सदा बाह्य वस्तुओं और विषय-सुख में संलग्न रहता है। जब अपने ही भीतर के विशाल खजाने की जानकारी मिल जाएगी, तो उसकी प्राप्ति के लिए सचेष्ट हो जाना स्वाभाविक है।

प्राचीन भारतीय मनीषी मानव-मन के इन स्तरों की जानकारी रखते थे। मन को इन शक्तियों को अभिव्यक्त करने और इन पर अधिकार रखने की कला ही योग है। अचेतन की अनन्त सामर्थ्य का योग-शक्ति द्वारा प्रयोग कर प्राचीन भारतीय मनीषी 'अतीत-अनागत के ज्ञान', सर्वभूत-सतज्ञान, परचित ज्ञान, पूर्वजन्मों के ज्ञान, भुवनज्ञान, कायव्यूह ज्ञान, तराव्यूह ज्ञान, तारागति ज्ञान, दूरश्रवण, दूरबोध, सर्वज्ञत्व आदि अलौकिक शक्तियों से सम्पन्न होते थे। योगवाशिष्ठ में इसीलिए मन को 'आकाश के समान सर्वत्र स्थित' कहा गया है।

पूर्वाभास, दूरदर्शन, अप्रत्यक्ष की जानकारी, विचारसंचार, देवात्म सम्पर्क आदि कितनी ही अलौकिकताएँ अपने अचेतन केन्द्र को इन सबकी परोक्ष जानकारी होने का ही परिणाम है। सचेतन मस्तिष्क की दृष्टि से यह पूर्वाभास चमत्कारी या अलौकिक कहा जा सकता है, पर है यह मस्तिष्क की स्वाभाविक क्षमता ही कई पशुओं में यह क्षमता विशेष विकसित होती है। उसी के कारण वे समीपी पर्यावरण में हो रही हलचलों का स्वरूप समझ लेते हैं और कुछ ही क्षणों बाद

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सम्भावित आघात को समझकर, उससे बच निकलते हैं। गिरने वाली इमारत की बिल्लियाँ इसी केन्द्र की पूर्वाभासी शक्ति के कारण चल देती हैं। अपने लिए घातक पशुओं, सिंह, चीता, तेंदुआ आदि की शाकाहारी या अपेक्षाकृत दुर्बल पशुओं द्वारा दूर से ही उपस्थिति जान लेने की शक्ति इससे भिन्न है। उसका सम्बन्ध विशेषकर विकसित घ्राण-शक्ति तथा श्रवण-शक्ति या त्वचा की अति विकसित संवेदन क्षमता से होता है। यों, हैं ये सब केन्द्र भी सेरिब्रम में ही।

मस्तिष्कीय शक्ति की इन्हीं विशेषताओं का इच्छित विकास व्यक्तित्व को अनन्ताविभूति सम्पन्न बना सकता है। श्रवण-शक्ति की दिव्य-क्षमताएँ विकसित कर अनन्त ब्रह्माण्ड में होने वाली हलचलों को सुना-समझा जा सकता है और विश्व में घटित होने वाले घटनाक्रम को जाना जा सकता है। प्राणियों की मनःस्थितियों के कारण उत्पन्न होने वाली अदृश्य ध्वनियों को समझने की क्षमता भी विकसित की जा सकती है और मानव ही नहीं, पशु-पक्षियों, जीव-जन्तुओं की मनःस्थिति का परिचय प्राप्त किया जा सकता है।

दृश्य-शक्ति का विकास कर अदृश्य जगत की सूक्ष्म हलचलों को प्रत्यक्षवत् देखा-समझा जा सकता है और गुप्त रहस्यों का ज्ञान हो सकता है। दूर की घटनाओं का ज्ञान, दूरवर्ती आकाश में हो रही सूक्ष्म हलचलों का ज्ञान एवं स्वप्नावस्था में दिव्य-दृश्य तथा भविष्य में घटित होने वाली घटनाओं का पूर्वाभास इसी दृश्य-शक्ति या तृतीय नेत्र के विकास की साधना के सत्परिणाम हैं। घ्राण-शक्ति का विकास भी ऐसे ही चमत्कारी सुफल सामने ला सकता है। कुत्तों जैसे जानवरों की विकसित घ्राण-शक्ति का सदुपयोग कर आज अपराधों के अचेष्टा में उनसे सहायता ली ही जा रही है। स्वाद-शक्ति (रसना) और वाकशक्ति (वाणी) का विकास तृप्ति एवं वाग्बल का वचन-सिद्धि का आधार बनता है। त्वचा की संवेदनशीलता का विकास कर उससे परिवेश के सूक्ष्मातिसूक्ष्म स्पन्दनों को ग्रहण एवं विश्लेषित किया जा सकता है।

प्रखरता के आधार पर विचार-शक्ति तीन भागों में विभक्त होती है—(१) मन्द विचार इनमें जड़ता की मात्रा अधिक होती है। इसीलिये यह न तो दूर तक जा सकते हैं न किसी को प्रभावित कर सकते हैं। ऐसे लोग अदूरदर्शी, अविवेकी और समस्याग्रस्त होते हैं। (२) जनसाधारण मन्द विचारों की कोटि में आते हैं, यह लोग अपनी सफलता और सांसारिक-जीवन किसी तरह गतिशील तो कर लेते हैं, सम्पत्ति और विद्या-बुद्धि भी प्रचुर संचित कर लेते हैं किन्तु असाधारण कार्य करने की क्षमता उनमें भी नहीं होती। (३) इन्हीं विचारों को गहनता से सोचने और सम्पूर्ण ध्यान शक्ति समर्पित कर देने से वे अत्यधिक वेगवान बलवान हो उठते हैं। उनकी अधिक प्राणशक्ति काम करने लगती है। हृदय और मस्तिष्क की शक्ति भी संयुक्त हो जाती है। यह वेग तुरन्त आश्चर्यजनक परिणाम देने वाले तथा अनेकों लोगों को इच्छित दिशा में चलाने की सामर्थ से ओत-प्रोत हो जाते हैं। ऐसे मस्तिष्क न केवल रचनात्मक अपितु ध्वंसात्मक कार्य भी कर सकते हैं। दूर-संचार, दूरदर्शन, दूर-श्रवण और पूर्वाभास आदि अतीन्द्रिय कार्य इसी तरह की ध्यानस्था विचार-शक्ति के ही परिणाम होते हैं।

विज्ञानमय कोण के भाण्डागार में अतीन्द्रिय अद्भुत क्षमताओं के कोष भण्डार भरे पड़े हैं। खदान खोद कर रक्त राशि पाने वालों की तरह हम भी साधना प्रयत्नों द्वारा अपनी अलौकिक सिद्धियाँ-लौकिक जीवन में प्रकट कर सकने योग्य बन सकते हैं।

गायत्री उपासना से अचेतन का परिष्कार

देखने में मनुष्य यों हाड़-मांस का पिंड दिखाई पड़ता है, पर वस्तुतः उसमें चेतना का पुञ्ज विद्यमान है। इस चेतना में ही मनुष्य का व्यक्तित्व घुला रहता है। इसे ही मनुष्य का अस्तित्व अथवा उसका वास्तविक मूल्य कहा जा सकता है। अध्यात्म विज्ञान ने चेतना के सम्बन्ध में जो जानकारियाँ एकत्र की हैं वह मनोविज्ञान के माध्यम से प्राप्त जानकारियों से सर्वदा भिन्न हैं, परन्तु उस आधार पर भी अध्यात्म की कई मान्यताएँ प्रमाणित और पुष्ट होती हैं।

किसी वस्तु की पहले हमें जानकारी प्राप्त होती है। फिर उसके सम्बन्ध में प्रिय या अप्रिय इच्छा उत्पन्न होती है। इसके उपरान्त उसे पाने, हटाने या उपेक्षा करने की क्रिया आरम्भ होती है। इस दृष्टि से प्राथमिकता ज्ञान की है। उसके बाद इच्छा और क्रिया का उदय होता है। विचार उठने से लेकर किसी निर्णय निष्कर्ष पर पहुँचने तक चेतना द्वारा उसे कितनी ही प्रक्रियाओं से गुजारा जाता है और निरखा-परखा जाता है। उस पर कितने ही दृष्टिकोणों से विचार कर लिया जाता है। साधारणतया इन परखों के लिए जाँच-पड़ताल के कुछ आधार मनःक्षेत्र में प्रस्तुत रहते हैं। ये आधार हैं—(१) समानता, (२) विपरीतता, (३) समीपता, (४) बारम्बारता, (५) नवीनता, (६) प्रबलता, (७) प्राथमिकता। इन्हीं आधारों पर हमारे तर्क पक्ष-विपक्ष की सम्भावनाओं को प्रस्तुत करते हैं। अपने या दूसरों के अनुभवों के सहारे—प्रमाण साक्षी ढूँढ़कर-सम्भावनाओं का कल्पना चित्र खड़ा करके हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि जो इच्छा उठ रही है उसे किस हद तक और किस प्रकार पूरा किया जा सकता है।

छोटे बच्चों में इच्छा एवं कल्पना की ही भरमार रहती है। तर्क-वितर्क करके किसी निर्णय पर पहुँचने के लिए गुण-अवगुण समझाने वाले दृष्टिकोण का उनमें विकास नहीं होता अस्तु उनकी कल्पनायें मधुर या भयानक होते हुए भी वे कुछ निर्णय नहीं कर पाते। ऐसी दशा में उनके अंग भी इच्छा पूर्त्ति के लिए आवश्यक क्रियायें कर नहीं पाते। उनके अंग कोमल होते हैं सो ठीक है पर उससे भी अधिक बड़ा अशक्तता का कारण निर्णायक शक्ति का अभाव ही होता है।

अन्य जीव-जन्तुओं के सचेतन मन की अपेक्षा अचेतन अधिक समर्थ होता है। इसलिए उनके परम्परागत चिरसंचित अनुभव जो अभ्यास या संस्कार के रूप में जमें होते हैं उपयोगी निर्णय सहज ही कर देते हैं। उन्हें कब क्या करना है? इसका

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

निष्कर्ष निकालने के लिए बहुत सोच-विचार नहीं करना पड़ता—इसके लिए उन्हें तर्क-वितर्क का सहारा नहीं लेना पड़ता। उनकी सहज चेतना ही आवश्यक मार्गदर्शन कर देती है। किन्तु मनुष्य के बारे में यह बात नहीं है। उसका सचेतन प्रबल होता है और अचेतन की हर बात को सहज ही स्वीकार नहीं करता। उनके लिए परिस्थितियों और सम्भावनाओं के भले-बुरे पक्षों को समझ कर अन्तिम फैसला करना चाहता है। इसलिए निर्णायक मार्गदर्शन अचेतन के हाथ से निकलकर सचेतन के कन्धों पर चला जाता है। इसी विशेषता के कारण उसे मननशील मनुष्य कहा जाता है। मनुष्य के सर्वाङ्गीण उत्कर्ष ने उसे अनेक परिस्थितियों और समस्याओं से निपटने के लिए बाध्य किया है इसलिए उसकी चेतना का भी बहुमुखी विकास हुआ है। अन्य जीवों के सामने वैसा कुछ नहीं। उन्हें मात्र शरीर यात्रा के सम्बन्ध में ही सोचना पड़ता है। आहार, विश्राम, सुरक्षा एवं प्रजनन की समस्याओं को सुलझाने के अतिरिक्त उन्हें अधिक कुछ नहीं सोचना पड़ता। उनका समाज बहुत छोटा और बहुत उथला होता है। घोंसले के अतिरिक्त और कुछ निर्माण या संचय उन्हें नहीं करना पड़ता। अस्तु मस्तिष्क को अधिक कुछ सोचने की आवश्यकता भी नहीं पड़ती। आवश्यकता को आविष्कारों की जननी कहा गया है। चेतनात्मक विकास से मनुष्य को लाभान्वित कराने का श्रेय उसकी परिस्थितियों एवं समस्याओं को ही है जिन्हें उसने अपने क्रमिक विकास के साथ-साथ अनवरत रूप से आगे बढ़ाया है।

किस प्रकार यह क्रमिक विकास किया? यह जानने से पहले मानवी चेतना के सम्बन्ध में मनोवैज्ञानिक क्या कहते हैं? यह जान लेना उचित होगा। मनोविज्ञानवेत्ताओं ने मानवी चेतना को तीन भागों में बाँटा है—(१) सचेतन (कॉन्शस), (२) अर्द्धचेतन (सब-कॉन्शस), (३) अचेतन (अनकॉन्शस)। सचेतन—वह जो हमारी विवेक बुद्धि के रूप में काम करता है। अर्द्धचेतन वह जो रक्त-संचार, श्वास-प्रश्वास, आंकुचन-प्राकुंचन आदि शरीर की संचालन प्रक्रियाओं का नियन्त्रण करता है। अचेतन वह जिसकी गहन पर्तों में हमारे भूतकालीन संस्कार सुषुप्त अवस्था में जमें पड़े रहते हैं और अवसर पाकर सजग होते रहते हैं।

सचेतन को तीन भागों में विभक्त किया गया है—(१) ज्ञानात्मक (नॉलिज), (२) भावात्मक (फीलिंग), (३) कार्यात्मक (विलिंग)। विद्वान जुंग ने चेतना स्तरों को पाँच भागों में बाँटा है—(१) सम्वेदना, (२) भावना, (३) अर्न्तदृष्टि, (४) स्मृति, (५) संवेग। उन्होंने उनमें से प्रत्येक के कई उपभेद भी गिनाये हैं।

फिर भी सामान्यतया मनोविज्ञान के क्षेत्र में सचेतन, अवचेतन और अचेतन ही मन के विभाग-उपभाग समझे जाते हैं। मनोविज्ञानी ड्रमंग एवं मैलौने यह मानते हैं कि चिन्तन की प्रखरता, जो सामान्यता सचेतन मन की दक्षता प्रतीत होती है, वस्तुतः अचेतन द्वारा प्रदत्त की हुई होती है। अचेतन एक तिजोरी है जिसमें उपयोगी और अनुपयोगी सभी प्रकार के रस-विष भरे होते हैं उनमें से जिन्हें आगे कर लिया गया होगा वे ही सचेतन पर अधिकार जमा लेंगी और उनकी अभीष्ट दक्षता प्रखर करती चली जायेंगी। बुद्धिमान, विवेकशील, दूरदर्शी और निर्णय लेने वाले और सही ढंग से काम करने वाले व्यक्ति वस्तुतः अचेतन की गहरी पर्तों मे ही अपनी इन विशेषताओं को उपलब्ध करते हैं।

जे० डब्ल्यू० ब्रिज ने बताया है कि व्यक्तित्व को पतनोन्मुख और अस्त-व्यस्त बनाने की प्रक्रिया भी अनजाने ही चलती रहती है। अचेतन में सब कुछ भला-भला ही जमा नहीं है वरन् पाशविक कुसंस्कार भी उसमें सत्प्रवृत्तियों की अपेक्षा कहीं अधिक मात्रा में जमे रहते हैं। बगीचे में जितने उपयोगी पेड़-पौधे होते हैं उससे कही बड़ी मात्रा में घास-पात, खरपतवार उगते हैं। उन्हें काटा-छाँटा न जाये तो फिर उपयोगी पेड़ों का विकासक्रम रुक जायेगा, यही बात मनःक्षेत्र में उगी हुई प्रवृत्तियों के बारे में लागू होती है। अवाँछनीयताओं पर नियन्त्रण न किया जाये उनकी उपेक्षा बरती जाये तो वे सत्यवृत्तियों की अपेक्षा कहीं आगे बढ़ती हैं। इस बढ़ोत्तरी से घिरा हुआ व्यक्ति गँवार, अस्त-व्यस्त, अदूरदर्शी और कुमार्गगामी बन जाता है।

सिगमंड फ्रायड का मत यह है कि अव्यक्त मनःक्षेत्र ही व्यक्तित्व का आधारभूत कारण है। मनुष्य जैसा भी कुछ है उसकी जड़ अचेतन में गहराई तक घुसी हुई पाई जायेंगी।

सचेतन को शिक्षा, स्वाध्याय, सत्संग, चिन्तन, मनन आदि द्वारा प्रशिक्षित एवं परिष्कृत किया जा सकता है। पर अचेतन पर इन प्रक्रियाओं का बहुत थोड़ा प्रभाव पड़ता है। उसे निरन्तर के दीर्घकालीन अभ्यास ही प्रभावित करते हैं। इस दृष्टि से तत्व-वेत्ताओं ने कितने ही प्रकार की विशिष्ट साधनायें विनिर्मित की हैं। इन्हें योगाभ्यास के नाम से पुकारा जाता है। जप और ध्यान इस प्रयोजन की मनौवैज्ञानिक आवश्यकता पूरी करते हैं। आसन, प्राणायाम, व्रत, उपवास, ब्रह्मचर्य, मौन, तप आदि क्रिया करके अभ्यासों का दीर्घकालीन सेवन भी अचेतन मन को उत्कृष्ट स्तर का बनाने में सहायक होता है। लोहे को गर्म करके ही अभीष्ट आकृति में ढाला जा सकता है। अचेतन को अवांछनीय स्थिति से छुड़ा कर परिष्कृत स्तर का बनाने के लिए योग और तप जैसे उपायों का अवलम्बन लेना पड़ता है।

मूल व्यक्तियों की तीन परतें होती हैं—(१) अहं (ईगो), (२) परिष्कृत चेतना (सुपर ईगो), (३) इदम् 'इड' (बहिरंग समूह चेतना)।

अहम् वह स्तर है जिसमें हमें आत्मसत्ता का बोध होता है। परिष्कृत वह है जिसमें आदर्शों के अपनाने एवं विशिष्ट बनने की आशंका प्रबल रहती है। इदम् वह जो अपने परिवार एवं समाज के साथ जुड़ा रहता है। परिस्थितियों के अनुरूप अपने सम्बन्ध में सुख-दुःख की उत्थान-पतन की मान्यतायें बदलता रहता है। इसी सन्दर्भ में स्त्री-पुरूष की मान्यता भी है। प्राणी अपने को नर या नारी मान लेता है तो उसी के अनुरूप उसकी विचारणा एवं चेतना ढलने लगती है। यौन अवयवों का विकास इस मान्यता के अनुरूप ही होता है। पुराना शरीर छोड़ने पर भी यह मान्यता बनी रहती है और अगले जन्म में उसी वर्ग में जन्म ग्रहण कराती है। जो पुनर्जन्म नहीं मानते

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उनके सम्बन्ध में यह कहा जा सकता है कि रज-वीर्य के गुणसूत्रों में पाये जाने वाले जीवाणुओं की संज्ञा में पायी जाने वाली प्रबलता भ्रूण में नर-नारी के लक्षण पैदा करती है। शरीर की स्थिति के अनुरूप प्राणी अपने आपको नर-नारी लिंग का मानता है। यह बात स्थूल विश्लेषण की दृष्टि से ही सही है। गहराई तक उतरा जाये तो यह पता चलता है कि जीवधारी की सूक्ष्मसत्ता में जो नर या नारी की मान्यता घुसी होती है वही उसमें लिंग भेद के लक्षण उत्पन्न करती है।

अपने सम्बन्ध में जैसी भी मान्यतायें अचेतन में जमी हुई होंगी हमारा जीवन क्रम भी उसी दिशा में अग्रगामी होगा और परिस्थितियाँ उसी प्रकार की बनती ढलती चली जायेंगी। यों प्रयत्न पुरुषार्थ के बाह्य प्रयत्नों से भी अभीष्ट दिशा में प्रगति की जा सकती है पर अन्तःक्षेत्र की अनवरत प्रेरणा से तो मनुष्य अनायास ही स्व-संचालित यन्त्र की तरह आगे बढ़ता जाता है। अन्तःस्थिति के अनुरूप बाह्य साधनों का विकसित होते जाना और उसी दिशा में अनवरत प्रगति होते जाना सहज स्वाभाविक है।

अचेतन मन की व्याख्या स्नायु सिद्धान्त— न्यूरोलॉजिकल थ्योरी एवं मानसिक सिद्धांत— साइकोलॉजिकल थ्योरी—के आधार पर की जाती है, शरीर गत स्नायु संस्थान की उत्तेजना से अचेतन मन की स्थिति बनती या बदलती है। यह प्रतिपादन स्नायु सिद्धान्तवादियों का है। मानसिक सिद्धान्त वाले यह कहते हैं कि मनःस्थिति का शरीर पर पूरा नियन्त्रण है। मन जिस दिशा में चलेगा शरीर को उसी ओर चलना पड़ेगा। यह पक्ष मृत्यु तक को स्वनिर्मित या स्वेच्छित बताता है जबकि यह कहना-सुनना बहुत अजीब-सा लगता है।

उपरोक्त दोनों मान्यताओं का समन्वय विद्वान मार्टिन प्रिंस ने किया है। वे मनोस्नायु सिद्धान्त का प्रतिपादन करते हैं। उनकी साइको-न्यूरोलॉजिकल थ्योरी—स्नायु संस्थान और अचेतन मन के समन्वय पर ही व्यक्तित्व की कोई दिशा धारा निर्धारित होना मानते हैं। दोनों पक्षों को अपूर्ण ठहराते हैं और कहते हैं इनमें से किसी एक की गति-विधियाँ अपूर्णता और अस्त-व्यस्तता के रूप में ही बनी रहती हैं।

व्यावहारिक जीवन में जो क्रियाकलाप मनोयोगपूर्वक देर तक अपनाया गया है वही संस्कार बनकर अचेतन में समा जायेगा और फिर उसकी प्रेरणा से व्यक्तित्व की अनेक धाराओं एवं क्रियाओं का प्रवाह बढ़ेगा। अचेतन अत्यन्त शक्तिशाली होते हुए भी स्वनिर्मित नहीं है। हमारे दीर्घकालीन मनोयोगों एवं क्रियाकलापों से ही उसका निर्माण एवं परिवर्तन होता है।

हाथों को अभ्यस्त करने और मस्तिष्क को शिक्षित करने के लिए जिस प्रकार दीर्घकालीन प्रयत्न किये जाते हैं उसी प्रकार अचेतन मन को पाशविक कुसंस्कारों से मुक्त करने, देवोपम अन्तःस्थिति प्राप्त करने के लिए आध्यात्मिक साधना क्रम अपनाना पड़ता है। गायत्री साधना से इसी प्रयोजन की पूर्ति होती है। साधना का सूक्ष्म प्रभाव असंस्कृत अचेतन को परिष्कृत कर देता है जिस प्रकार अनाड़ी मस्तिष्क प्रगति में बाधक है उसी प्रकार असंस्कृत अचेतन भी व्यक्तित्व को विकसित होने के मार्ग में प्रधान अवरोध है। ज्ञान और कौशल प्राप्त करने के लिए जिस प्रकार सामान्य प्रशिक्षण प्रयासों की उपयोगिता समझी गई है, उससे भी अधिक अचेतन को परिष्कृत करना आवश्यक है। इसमें गायत्री साधना तथा योग और तप ही समर्थ हैं।

मन की संस्कार साधना तपश्चर्या द्वारा

मन की दो सर्वज्ञात विशेषताएँ हैं—चंचलता एवं सुख लिप्सा। बन्दर जैसी उछल-कूद, आवारा छोकरों जैसी मटरगश्ती, चिड़ियों की तरह यहाँ-वहाँ फुदकते फिरना, उसकी चपलवृत्ति को सन्तुष्टि पहुँचाते हैं। कल्पना के महलों की सृष्टि, कल्पना लोकों का तीव्र भ्रमण-विचारणा, उसकी शक्ति का बड़ा अंश तो इन्हीं भटकनों, जंजालों में नष्ट हो जाता है। शक्ति का यह व्यर्थ छीजन रोककर उसे सुनिश्चित एवं सार्थक प्रयोजन में केन्द्रित करना ही योगाभ्यास है। शक्तियों का यह सही उपयोग जीवन में स्पष्ट और आश्चर्यजनक परिणाम सामने लगता है। पिछड़ेपन के स्थान पर प्रगतिशीलता आ जाती है। दरिद्रता समृद्धि में परिणित हो जाती है। भटकाव की जगह प्रचण्ड पुरुषार्थ की प्रवृत्ति पनपने पर परिस्थितियाँ अनुकूल बनने लगती हैं और साधन संचित होने लगते हैं। लौकिक सफलताएँ भी लक्ष्य केन्द्रित पुरुषार्थ का ही परिणाम होती हैं। मन की भटकन रोककर ही उसे लक्ष्योन्मुख बनाया जा सकता है।

यही सधा हुआ मन आत्मिक क्षेत्र में लगाये जाने पर सुषुप्त शक्ति केन्द्रों को जागृत व क्रियाशील बनाता है और दिव्य क्षमताएँ प्रकाश में आती हैं। अन्तश्चेतना का परिष्कार सामान्य व्यक्ति को महामानव स्तर पर ले जाकर ही रहता है। प्रगति का सम्पूर्ण इतिहास मनःशक्ति के पुञ्जीभूत, लक्ष्य केन्द्रित पुरुषार्थ की ही यशगाथा है। चंचलता की प्रवृत्ति को पुरुषार्थ की प्रवृत्ति में परिवर्तित करने का पराक्रम ही प्रगति का सार्वभौम आधार रहा है।

मन की दूसरी प्रवृत्ति है—सुख लिप्सा। शारीरिक सुखों के भोग का माध्यम है—इन्द्रियाँ। उनके द्वारा विभिन्न वासनाओं का स्वाद मिलता है। पेट और प्रजनन से सम्बन्धित सुखों के लिए तरह-तरह की चेष्टाओं में ही मन उलझा रहता है और इन सुखों की प्राप्ति के प्रयास के लिए प्रेरणा ही नहीं देता, बल्कि इनकी मात्र कल्पनाएँ करने में भी बहुत अधिक समय नष्ट करता है। फिर इन भौतिक सुखों के लिए साधन जुटाने में भी मन को जाने कितने ताने-बाने बुनने पड़ते हैं। इन्द्रियों की प्रिय वस्तु या व्यक्ति देखने, सुनने, छूने, सूँघने अथवा स्वाद लेने की लिप्साएँ मन को ललक से भर देती हैं और वह उसी दिशा में लगा रहता है। अहंकार की पूर्ति के लिए मन औरों पर प्रभाव डालने हेतु तरह-तरह की चेष्टाएँ करता है और व्यक्ति भाँति-भाँति के ठाट-बाट बनाता है। संग्रह और स्वामित्व की इच्छाएँ भी अनेक विधि प्रयत्नों का कारण बनती है। इन सभी इच्छाओं, आकांक्षाओं की प्यास को व्यक्त करने के लिए ही तृष्णा शब्द का प्रयोग होता है। अहं-भावना पर आघात पहुँचते

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

ही प्रतिशोध की उत्तेजना प्रबल हो उठती है। इच्छित विषय पर अपना हक मान लेना और फिर उसके न प्राप्त होने या प्राप्ति में बाधा पड़ने पर भड़क उठना भी, अहंता पर आघात के ही कारण होता है। यह उत्तेजना ही क्रोध है। काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर आदि सम्पूर्ण विकार-समूह वस्तुतः मन में उठने वाली प्रतिक्रियाएँ मात्र हैं, जो भौतिक सुख की लिप्साओं के कारण उठती रहती हैं। लिप्सा की इस ललक की दिशा को उलट देना ही 'तप' है। वह दूसरी दिशा भौतिक सुखों की वासना, तृष्णा और अहंता की पूर्ति से होने वाले क्षणिक सुखों की नहीं है। वरन् आनन्द की है, आनन्द उपभोग से नहीं, उत्कर्ष और उत्सर्ग से प्राप्त होता है। सुख मन का विषय है। जब कि आनन्द और आत्मसन्तोष आत्मा का। सुख लिप्सा का अभ्यस्त मन आनन्द के अस्वाद को नहीं जान पाता और जिसे जाना ही नहीं, उसके प्रति गहरी स्थायी प्रीति, सच्चा आकर्षण सम्भव नहीं। आनन्द की आकांक्षा विषय-लोलुप मन में प्रगाढ़ नहीं होती। उसके लिए तो मन का प्रशिक्षण आवश्यक है। यह प्रशिक्षण-प्रक्रिया ही तप है। तपस्वी को कष्ट इसी अर्थ में सहना पड़ता है, कि अभ्यस्त सुख का अवसर जाता रहता है। शारीरिक सुख-सुविधाएँ सिमटती हैं, मानसिक आमोद-प्रमोद का भी अवकाश नहीं रहता और आदर्शनिष्ठ आचरण आर्थिक समृद्धि के भी आड़े ही आता है। प्रत्यक्ष तौर पर तो, ऐसे परिणामों के लिए किया जाने वाला प्रयास मूर्खता ही प्रतीत होगा।

लेकिन श्रेष्ठ उपलब्धियों का राजमार्ग यही है। किसान, विद्यार्थी, पहलवान, श्रमिक, व्यवसायी, कलाकार आदि को भी अपनी प्रगति व उपलब्धियों की प्राप्ति के लिए बाल-चंचलता से मन को विरत ही करना पड़ता है और अपने नीरस प्रयोजनों में ही मनःशक्ति नियोजित करनी पड़ती है। शौक-मौज के अभ्यस्त उनके संगी उन लोगों की ऐसी लक्ष्योन्मुख प्रवृत्तियों का मजाक भी उड़ाते हैं लेकिन सभी जानते हैं कि अन्ततः बुद्धिमान और प्रगतिशील ऐसे ही लोगों को माना जाता है, जो चित्त की चपलता को नियन्त्रित कर उसे अपने लक्ष्य की ओर ही लगाये रहते हैं—वह कृषि का क्षेत्र हो या शिक्षा का, शरीर सौष्ठव का हो या आर्थिक समृद्धि का, कलाकौशल का हो या वैज्ञानिक आविष्कार का अथवा दार्शनिक चिन्तन-मनन का।

मन लक्ष्य की ओर सरलता से नहीं लगता। सरकस का शेर जंगल से पकड़ लाये जाने के प्रारम्भिक दिनों में अपने आक्रामक रुख पर ही अड़ा रहता है। उसे आज्ञाकारी, स्वामिभक्त तथा उत्पादक बनाने में समय लगता है। मन की चंचलता और सुख-लिप्सा की अनगढ़ आदतों को छुड़ाने में काफी समय लगता है, इसके लिए कई बार ऊपर से निष्ठुर तथा कठोर दिखाई देने वाले काम करने पड़ते हैं, ताकि वह अपेक्षाकृत नीरस किन्तु उपयोगी प्रवृत्तियों में संलग्न होने का अभ्यस्त बन सके। यही तप है, जिसके बाह्य स्वरूप में तो निष्ठुरता झलकती है, किन्तु इस निष्ठुरता के मूल में आत्मोत्कर्ष का दुलार-प्यार ही छलकता देखा जा सकता है। मन के प्रिय सुख को, गौण मानकर आत्मा को प्रिय आत्मसन्तोष, आनन्द की प्रधानता समझते हुए तदनुरूप अपने अभ्यस्त ढर्रे में परिवर्तन लाना ही तपस्वी जीवन कहा जा सकता है। शारीरिक, मानसिक, आर्थिक असुविधाओं का, तितिक्षा का, अभ्यास तप का अनिवार्य अंग इसलिए है कि मन के दीर्घ कुसंस्कारों, अनगढ़ आदतों को, लिप्सा और चपलता को छुड़ाया, धोया जा सके। उसकी ललक, अधोगामी, बहिरंग आकांक्षाओं की ओर से परिवर्तित होकर ऊर्ध्वगामी अन्तरंग आदर्शवादिता की ओर बढ़ चले, यही तप-साधना का एकमात्र उद्देश्य है। आरम्भिक कष्ट वस्तुतः उज्जवल सम्भावनाओं का द्वार है। वे तप की गर्मी से उत्पन्न कष्ट हैं, जिनकी अन्तिम परिणति श्रेयस्कर ही होने वाली है। तपाने से वस्तुएँ गरम होती हैं और उनमें संशोधन होता है, दृढ़ता आती है तथा स्तर बढ़ता है। व्यक्ति के साथ यही होता है। कच्ची मिट्टी से बनी ईंटों का मकान है अनगढ़ व्यक्तित्व, जिसका वर्षा के आघातों से गल जाना ही सुनिश्चित है। तप की आग में जब यही ईंटें, व्यक्तित्व के घटक तपा लिये जाते हैं, तो उनसे बना व्यक्तित्व पक्की ईंटों के मकान जैसा मुद्दतों तक टिकने वाला बन जाता है। चूने, सीमेन्ट का उदाहरण भी यही तथ्य सामने लाता है। चूना, सीमेन्ट वस्तुतः कंकड़-पत्थरों का पका हुआ चूरा ही तो है। वे ही कंकड़-पत्थर यदि यों ही पीस लिए जायें तो उनसे भवन-निर्माण का कार्य चल नहीं सकता। उन्हें ही पकाने-संशोधित करने पर उनमें ईंटों को पकड़ रखने और मकान को टिकाऊ बनाने की क्षमता आ जाती है। खदान से कच्ची अवस्था में निकले धातु अयस्क भट्टी में तपाये जाने पर ही शुद्ध व उपयोगी बन पाते हैं। तीक्ष्ण शस्त्रों, औजारों की धार अधिक गर्मी देकर ही सुस्थिर बनाई जाती है।

आयुर्वेद में भस्मों का विशिष्ट महत्व है। लौहभस्म, स्वर्णभस्म, वंगभस्म, प्रवालभस्म, अभ्रकभस्म आदि के गुण प्रख्यात हैं। भस्मों में कई गुने अधिक गुण आ जाते हैं। ये भस्में इन वस्तुओं को तपाने का ही तो परिणाम हैं। बल्ब का तनिक-सा 'फिलामेन्ट' तपने पर आलोक बिखरता है। दीपक भी तपकर ही ज्योति दान देता है। रेलगाड़ी के इंजन को तपे हुए पानी की भाप ताकत देती है और वह कई गुनी वजनी रेलगाड़ी को खींच-धकेल ले जाती है। आम को पाल में पकाने की विधि प्रसिद्ध है, जो उसकी खटास को मिठास में बदल देती है। अन्य कई कच्चे फलों को भी भूसे या अनाज की गर्मी में बन्द रखकर पकाया जाता है। सामान्य पानी को तपाकर वाष्पीकृत कर 'डिस्टिल्ड वाटर' के रूप में औषधि-उपयोगी बनाया जाता है।

प्रारम्भ में तो तप प्रक्रिया कष्टकारक होती है। तितीक्षा इन्हीं कष्टों को सहने का नाम है। सुविधाजीवी व्यक्ति पुरुषार्थ खोते जाते हैं। तप-तितीक्षा द्वारा पुरुषार्थ को प्रबल बनाया जाता है। तीक्ष्णता की रक्षा, वृद्धि रगड़ द्वारा ही झेली है। उस्तरे पर धार रखने से ही वह पैना और चमकदार बनता है। स्वर्ण तथा अन्य धातुएँ तपा कर ही कोमल बनाई जाती हैं और तभी आभूषण बनाने योग्य होती हैं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

फौजी जवानों को नित्य ही परेड करनी पड़ती है और दौड़ लगानी होती है। प्राचीनकाल में गुरुकुलों में विद्यार्थियों को दैनिक जीवनक्रम में ही श्रम, कष्ट, सहिष्णुता, अनुशासन, उत्कृष्ट चिन्तन तथा सादगी को स्थान देते हुए स्वस्थ शरीर, निर्मल, प्रशांत तथा सहनशील मन और विकसित अन्तःकरण की साधना में उत्तीर्ण होना पड़ता था।

इतिहास, पुराणों के असंख्य आख्यान तप साधना के गुणगान से भरे पड़े हैं। विशिष्ट मनस्वियों को तप-साधना द्वारा ही विभूतियाँ अर्जित करनी होती थीं। पार्वती का शिव से विवाह, ध्रुव का ब्रह्माण्ड का केन्द्र बन जाना, भागीरथ द्वारा गंगा को पृथ्वी पर लाना, दधीचि द्वारा अपना अस्थिदान तथा उनसे असुर-संहारक वज्र का निर्माण, अगस्त्य ऋषि द्वारा समुद्र शोषण, विश्वामित्र द्वारा नूतन सृष्टि का सृजन, सात साधारण व्यक्तियों का सप्तर्षि बनना आदि अनेक असामान्य घटनाएँ तप द्वारा ही सम्भव हुई हैं। ऐसी आख्यायिकाएँ, कथाएँ हमारे प्राचीन वाङ्मय में भरी पड़ी हैं, जो तप की ही शक्ति को अभिव्यक्त करती हैं।

स्वायम्भुव को मनु और शतरूपा को राम जैसा तथा स्वयं कृष्ण व रुक्मणि को प्रद्युम्न जैसा पुत्र पाने के लिए लम्बी अवधि तक तपस्या करनी पड़ी। कश्यप तथा अदिति की तपस्या ने ही कृष्ण को उनकी गोदी में खेलने का अवसर व सौभाग्य सुलभ बनाया। दिलीप को सुसन्तति प्राप्त करने के लिए अपनी रानी के साथ दीर्घकाल तक ऋषि वशिष्ठ की गायें चराने की तप-साधना करनी पड़ी।

तप ही विशिष्ट सामर्थ्य का स्रोत है। प्रसुप्त शक्तियों का जागरण तप द्वारा ही सम्भव है। आत्मसाधना में तप को ही प्रमुखता दी गई है।

तप की भिन्न-भिन्न क्रियाओं का अपना वैज्ञानिक महत्व है। व्रत, उपवास, ब्रह्मचर्य आदि का अभ्यास शरीर को समर्थ और सुदृढ़ बनाता है।

आहार-शुद्धि का महत्व सर्वविदित है। आहार का सूक्ष्म अर्थ भी है, पर यदि खाद्य वस्तुओं के ही सम्बन्ध में विचार करें, तो भी हमें उसके लाभ स्पष्ट दीख जायेंगे। अन्न का मन से घना सम्बन्ध है। अन्न किस तरह से प्राप्त किया गया है, यह भी महत्वपूर्ण है। नीति से उपार्जित परिश्रमपूर्वक प्राप्त अन्न ही आध्यात्मिक विकास का आधार हो सकता है। आहार का सात्विक होना भी आवश्यक है। उसे पकाने वाले तथा परोसने वाले शरीर और मन से पवित्र हों तथा भोजन करने वाले की मनोभूमि सात्विक हो, ईश्वर को मन-ही-मन भोग लगाकर प्रसाद रूप में, औषधि समझते हुए भोजन किया जाये और जीभ के चटोरेपन से पूरी तरह बचा जाये। जूठन के रूप में अन्न देवता की उपेक्षा व अपमान न किया जाये।

दो बार से अधिक भोजन न करने का नियम बना लिया जाये और दूध, छाछ, रस, क्वाथ आदि सात्विक पेय पदार्थ ही बीच में लिये जायें। भूख से कम भोजन किया जाये और वह भली-भाँति चबा-चबाकर।

सप्ताह में एक दिन अथवा एक जून उपवास करना उचित है। इससे पेट को विश्राम मिलता है, अपच दूर होकर पाचन क्रिया तीव्र होती है तथा थकान मिटती है। साथ ही मनोविकारों का भी शमन होता है। व्रत-उपवास का हमारी परम्परा में सदा से महत्व है। विभिन्न पुण्यपर्वों, शुभ अवसरों पर उपवास का विधान है। कणाद् ऋषि शिलौन्यवृत्ति से जंगली धान्य से उदर-भरण करते थे। पिप्पलाद ऋषि पीपल-फल ही खाकर रहते थे। महाभारत की कथा है कि शरशैया पर पड़े भीष्म के सदुपदेशों से द्रोपदी के मन में शंकाएँ घुमड़ने लगीं कि इतने सुन्दर विचार तो आज ये व्यक्त कर रहे हैं, पर कौरव जब मुझे भरी सभा में निर्वसन कर रहे थे, तब यह सद्ज्ञान कहाँ चला गया था? उसने भीष्म पितामह से पूछ ही लिया। उत्तर में भीष्म ने यह कहा—कि उन दिनों कुधान्य खाने के कारण मैं धर्मबुद्धि होते हुए भी उसके अनुसार आचरण का साहस नहीं कर पाया। यह अभक्ष्य-भक्षण से मनोबल के ह्रास का ही स्पष्ट प्रमाण है।

प्रत्येक व्यक्तिगत सत्कार्य सामाजिक शुभ की भी साधना होती है। शुद्ध आहार से व्यक्तिमन की शुद्धि एवं आत्मबल की वृद्धि के कारण जहाँ वातावरण में सात्विकता आती है वहीं सप्ताह में एक दिन के उपवास का क्रम चल पड़े, तो देश की जटिल खाद्य समस्या का भी समाधान सम्भव है और अपच ही प्रायः सब रोगों की जड़ होने के कारण स्वास्थ्य-संकट में भी बहुत अधिक कमी आ जाये।

'अस्वाद' व्रत भी आहार-शुद्धि का ही अंग है। गाँधी जी ने 'सप्तमहाव्रत' प्रतिभा में अस्वाद को प्रथम व्रत माना है। नमक, मसाले, शक्कर आदि वस्तुओं को अलग से मात्र स्वाद के लिए ही खाया जाता है। अन्यथा अन्न, शाक, फल, दूध आदि द्वारा जरूरी शक्कर व नमक की मात्रा मिल ही जाती है। सप्ताह में एक दिन अस्वाद व्रत करने पर स्वादेन्द्रिय में नियन्त्रण रहता है। स्वादेन्द्रिय पर नियन्त्रण से मनोनिग्रह सरल हो जाता है।

मनोनिग्रह ही योग का मार्ग है। मनोनिग्रह का एक महत्वपूर्ण व्रत ब्रह्मचर्य है। रतिक्रिया द्वारा बहुमूल्य जीवन रस को क्षणिक सुख में गँवा देने का शौक बहुत मँहगा पड़ता है। इस दिशा में संयम बरतने पर यही शक्ति शारीरिक-मानसिक सुदृढ़ता के काम आती है और यह संचित शक्ति आत्मिक प्रगति में सहायक होती है। ब्रह्मचर्य मात्र शारीरिक नहीं, मानसिक प्रक्रिया है। मानसिक कामुकता प्रतिपल मनःशक्ति को घटाती है। घटे हुए मनोबल से आत्मोत्कर्ष सम्भव नहीं होता। शारीरिक क्रियाएँ न करते हुए भी कामुक चिन्तन करना मानसिक व्यभिचार है और आत्मिक प्रगति में उससे भारी अवरोध आ उपस्थित होता है।

मन को कामुक चिन्तन से बचाने के लिए प्रतिपक्षी पवित्र भावों को मन में लम्बे समय तक स्थान देना चाहिए। सृजनात्मक शुभ चिन्तन ही मनोविकारों को नष्ट करता है। इसके लिए स्वाध्याय, सत्संग, मनन-चिन्तन द्वारा मनोभूमि को परिपक्व-प्रौढ़ बनाना होता है। तब उस मनःस्थिति में कुविचार फैल ही नहीं सकते। ब्रह्मचर्य व्रतधारी महापुरुषों, हनुमान, भीष्म,

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

शंकराचार्य, समर्थ गुरु रामदास, विवेकानन्द आदि के उज्ज्वल चरित्रों का स्मरण-चिन्तन-मनोभूमि के पवित्र संस्कारों को सुदृढ़ बनाता है। स्वादेन्द्रिय और कामेन्द्रिय की स्थूल एवं सूक्ष्म लिप्साओं पर नियन्त्रण ही इन्द्रिय निग्रह की दिशा व विधि है।

तपश्चर्या का तीसरा महत्वपूर्ण अंग है—प्रायश्चित। अपने द्वारा की गई भूलों के लिए शारीरिक-मानसिक दण्ड प्रताड़ना ही प्रायश्चित रूपी तप है। नैतिक गलतियों के लिए भोजन में व नींद में आंशिक कटौती, अतिरिक्त श्रम, अमुक समय का मौन आदि का, स्वयं ही निश्चय कर प्रायश्चित-व्यवस्था सम्भव है। विगत जीवन के बड़े अपराधों के लिए विशेष प्रायश्चित किसी नीतिवेत्ता के परामर्श से किये जा सकते हैं, ताकि मन पाप-भार से निवृत्ति पा सके।

सूक्ष्म शरीर से सम्बन्धित तपश्चर्या की दिशा वैराग्य है अर्थात् तृष्णा, लोभ-मोह का परित्याग। सरलता तथा सादगी से भरा जीवन, श्रेष्ठ विचारों से भरे मन-मस्तिष्क द्वारा ही सम्भव है। भौतिक इच्छाएँ व जरूरतें घटाकर ही समय और श्रम में बचत की जा सकती है और वह श्रमशक्ति तथा मनोयोग परमार्थ-प्रयोजनों में लगाया जा सकता है।

श्रेष्ठ जीवन की दिशा में चलने वालों को अनीति के अभ्यस्त लोगों का उग्र विरोध और उसके परिणाम स्वरूप आक्रमण भी झेलना पड़ता है। इस हेतु आवश्यक साहस व सहिष्णुता भी तप ही है।

आलस्य व प्रमाद से मुक्त जीवन ही तपस्वी जीवन हो सकता है। इसके लिए निरन्तर जागरूकता व सतत् अभ्यास आवश्यक है। संघर्षों की रगड़ से मानवीय प्रतिभा तीक्ष्णतर होती चलती है।

गीताकार ने जिस मन को ही बन्धन-मोक्ष का कारण और उसे ही भयंकर शत्रु तथा घनिष्ठतम मित्र बताया है। वही कुसंस्कारी मन बन्धन का कारण होता है, अनेक विपत्तियाँ उत्पन्न करता है और वह त्रास देता है जो बुरे से बुरा, निर्दय से निर्दय शत्रु भी नहीं दे सकता। उसके विपरीत जिसका मन सुसंस्कारी है, उसे उसी धरती पर जीवन-मुक्ति का, स्वर्गीय सुख-शान्ति का, देवलोक में रहने का आनन्द मिलता है। कुमार्गगामी मन ही मनुष्य को घृणित, निकृष्ट स्तर पर ले जाकर पटक देता है और वही यदि सन्मार्गगामी बन जाये तो सामान्य स्तर के मनुष्य को महामानव, नर-नारायण, पुरुष-पुरुषोत्तम, सन्त, ऋषि और देवता बनने की परिस्थितियाँ उत्पन्न कर देता है।

मन को परिष्कृत करना गायत्री साधना का महत्वपूर्ण आधार है। मनोमय कोश परिष्कार साधन में यह प्रयत्न करना पड़ता है कि हमारा मन कुसंस्कारिता से विरत होकर वैसा बने जैसा एक श्रेष्ठ मनुष्य का होना चाहिए। एक भ्रान्त धारणा यह फैल पड़ी है कि "पूजा के समय भगवान की छवि पर जिसका मन एकटक लगा रहे उसका मन वश में हो गया।" यह एकाग्रता की साधना मात्र है, जिसे मैस्मरेजम विद्या के ज्ञाता त्राटक आदि की सहायता से बड़ी आसानी से प्राप्त कर लेते हैं। हिसाब जोड़ने वाले मुनीम, निशाना साधने वाला बन्दूकची, मैस्मरेजम का खेल दिखाने वाले बाजीगर, सरकस में खेल करने वाले नट, शोध करने वाले वैज्ञानिक इस कला में निष्ठागत होते हैं। उनको अपना मन एक दिशा में लगा देने की सिद्धि मिली हुई होती है। यदि ऐसे लोग चाहें तो ईश्वर की अमुक छवि पर घण्टों ध्यान लगाये आसानी से बैठे रह सकते हैं। इतने पर भी यह नहीं कहा जा सकता कि उनका मनसंग्रहीत हो गया और वे मोक्ष के अधिकारी हो गये। माना कि एकाग्रता भी मन की एक सफलता है और उससे ध्यान साधना में एक सीमा तक सहायता मिल सकती है। पर एकाग्रता को ही मन को जीतना कहा जाये, यह वज्र-मूर्खता से कम भ्रान्ति न होगी।

मनोमय कोश की साधना मन को सुसंस्कृत बनाने का प्रयास है। परिष्कृत और पवित्र मन निस्संन्देह आत्मिक लक्ष्य को प्राप्त कर सकता है। फिर चाहे वह किसी छवि पर एकाग्र होता हो, चाहे न होता है। एकाग्रता मस्तिष्क की सफलता है और विशालता हृदय की गरिमा। मन को एकाग्र करना एक तृण समान लाभ है। उसकी तुलना में हृदय को विशाल बना लेना हिमालय जैसी सफलता माना जा सकता है। गायत्री की पंचकोशी साधना में मन का एकाग्र होना उतना आवश्यक नहीं माना गया है जितना अन्तःकरण का उदार, विशाल, महान और पवित्र बनाना है। हमें इस तथ्य को भली प्रकार बार-बार हृदयङ्गम कर लेना चाहिए।

इस सन्दर्भ में कई साधनाएँ बताई जा चुकी हैं। हमारी मनोभूमि में क्या आस्थाएँ जमें? इसकी एक सुव्यवस्थित संहिता 'युग निर्माण सत्संकल्प' की थोड़ी-सी पंक्तियों में समाविष्ट है। इन थोड़ी-सी पंक्तियों में वह सब कुछ बता दिया गया है जो हमारी मान्यताओं और आस्थाओं का आधार होना चाहिए। इस सत्संकल्प को हमें बहुत ही ध्यानपूर्वक पूरे मनोयोग के साथ दिन में कम से कम एक बार अवश्य ही पढ़ना चाहिए और चिन्तन एवं मनन द्वारा समय-समय पर यह विचार करते रहना चाहिए कि इस आस्था को जीवन में कितना उतार लिया गया तथा कितना उतारना शेष है। जो शेष हो उसकी पूर्ति के लिए रोज ही सोचना चाहिए और रोज ही एक कदम आगे बढ़ाना चाहिए। 'सत्संकल्प' के अनुरूप जीवन ढाल लेने में सफलता प्राप्त कर लेने की स्थिति को यदि जीवन मुक्ति कहा जाये तो उसमें तनिक भी अत्युक्त न होगी । मुक्त पुरुष का अन्तःकरण कैसा हो सकता है? उसकी गतिविधियाँ कैसी रह सकती हैं? इसका सजीव चित्रण इस छोटे-से संकल्प में मौजूद है। प्रयत्न यह होना चाहिए कि हमारी मनोभूमि ऐसी ही बने और हमारी गतिविधियों का निर्धारण इसी आधार पर हो। इसके लिए बार-बार जब कभी अवकाश मिले तभी हमें चिन्तन मनन करना चाहिए। मनोमय कोश की यह साधना गत वर्षों में बताई जा चुकी है।

प्रातःकाल उठते ही अपनी दिनचर्या बनाना, रात को सोते समय अपने कार्यों की व्यवस्था एवं उत्कृष्टता-निकृष्टता का लेखा-जोखा लेना पूजा उपासना का ही एक अंग मानना चाहिए। यह प्रक्रिया आत्म-शोधन के लिए अनिवार्य पद्धति है, जिसे प्रत्येक साधक को बिना चूक एवं बिना नागा अपनाये ही रहना चाहिए। भजन में स्थान, साधना एवं परिस्थिति जन्य कठिनाई से कभी चूक भी हो सकती है, पर उठते और सोते

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

समय अपने उत्थान-पतन का विचार-विश्लेषण करना तो ऐसा सरल एवं स्वाभाविक है कि उसमें नागा होने का कोई प्रश्न ही नहीं उठता।

स्वाध्याय आत्मा की खुराक है। जिस प्रकार शरीर को भोजन दिया जाता है उसी प्रकार जीवनोत्थान के लिए प्रकाश, प्रेरणा एवं मार्ग दर्शन लेने वाला साहित्य मनोयोगपूर्वक नित्य ही पढ़ना चाहिए। यह कार्य प्राचीन कथा-पुराण दुहराते रहने से नहीं वरन् उस साहित्य द्वारा पूरा होगा जो हमारी आज की समस्याओं पर आज की परिस्थितियों के अनुरूप सुझाव एवं प्रकाश प्रदान कर सकें। सत्संग का उद्देश्य आज की परिस्थितियों में ऐसा साहित्य ही पूरा कर सकता है। तथाकथित सत्संगी तो हमें उल्टे भ्रम-जंजाल में फंसा कर पथ भ्रष्ट कर देते हैं। प्रबुद्ध सत्संग की पूर्ति पढ़े-लिखे लोगो को स्वाध्याय द्वारा और बिना पढ़े लोगों को उसे सुनकर करनी चाहिए। मनोमय कोश की साधना में प्रबुद्ध साहित्य के स्वाध्याय का महत्वपूर्ण स्थान है।

व्यक्ति का मन समाज के समग्र मन का ही एक अंश है। चारों ओर दूषित मनोविकारों का साम्राज्य छाया हुआ हो तो उसका प्रभाव सामान्य स्तर के मन भी ग्रहण करते ही हैं। इसलिए अपने मन की शुद्धता अक्षुण्ण बनाये रहने के लिए यह आवश्यक है कि अपने सम्पर्क में आने वाले लोगों का मन भी शुद्ध बनाने के लिए यथा सम्भव प्रयत्न करें। जिस प्रकार शरीर को निरोग रखने के लिए शरीर की ही नहीं वस्त्र, मकान, अन्न, जल, वायु आदि की स्वच्छता पर भी ध्यान रखना पड़ता है। वैसे ही अपनी मानसिक शुद्धि के लिए अपने सम्पर्क में आने वाले लोगों का मानसिक स्तर सुधारना आवश्यक है। सद्ज्ञान प्रसार की कार्य पद्धति युग निर्माण योजना की रीढ़ है। उसके अनेकों प्रकार—लोक सेवा के अनेकों उपाय, समय-समय पर बनाये जाते रहते हैं। अपनी परिस्थिति के अनुसार हमें यह प्रयत्न करना ही चाहिए कि जहाँ तक अपना सम्पर्क क्षेत्र हो वहाँ तक सद्विचारों का, सत्प्रेरणा का प्रकाश फैले। इसके लिए हमें दीपक का अनुकरण करना चाहिए और कुछ समय नियमित रूप से ज्ञान यज्ञ के लिए देते रहना चाहिए। मनोमय कोश की साधना का यह एक महत्वपूर्ण अभ्यास है।

इस समय अभ्यास में कुविचारों को सद्विचारों से काटने का अभ्यास करना चाहिए। अपने मन में उठने वाले विचारों पर सूक्ष्म समीक्षा दृष्टि गढ़ाये रहना चाहिए और जब भी कुविचार उठते देखें तो उनके विरोधी काटने वाले सद्विचारों का प्रवाह मन में जारी कर देना चाहिए। काम विकार उठते ही सुन्दर शरीर के भीतर भरी हुई गन्दगी का स्मरण करने लगना, लोभ के विचार आते ही धन और शरीर की नश्वरता एवं अनीति से उपार्जन के दुष्परिणामों का चिन्तन करना, क्रोध आते ही अपने से भी वैसी ही भूलें होते रहने की बात सोचना और जिस पर क्रोध किया जा रहा है उसके प्रति ममता, आत्मीयता का आरोपण करने लगना—इन उपायों से दुष्ट विचारों को सद्विचारों से काटा जा सकता है। संघर्ष किये बिना कुविचार हटाये नहीं जा सकते। इसके लिए अपनी दुर्वासनाओं के विरुद्ध सद्भावनाओं की सेना तैयार कर लेनी चाहिए और यह नोट कर रखना चाहिए कि जब अमुक प्रकार के कुविचार उठेंगे तब उनका प्रतिरोध अमुक प्रकार के सद्विचारों से किया करेंगे। अवसर आते ही उनका प्रयोग भी आरम्भ कर देना चाहिए।

कुविचारों से संघर्ष करने का यह अभ्यास इतना महत्वपूर्ण है कि इसे जो जितने उत्साहपूर्वक अपनायेगा उसे आत्मिक प्रगति की दिशा में गायत्री की उच्चस्तरीय पंचकोशी साधना के अभ्यास में उतनी ही सहायता मिलेगी। मनोमय कोश के परिष्कार की यह बहुत ही महत्वपूर्ण एवं उत्कृष्ट साधना है। साधकों को इसे पूरी श्रद्धा के साथ अपनाना चाहिए।

मनोभूमि के परिष्कृत करने के लिए यह साधन क्रम अपनायें

सार्वभौम और सर्वजनीय उपासना में कर्मकाण्ड परक स्वेच्छा की भिन्नता रह सकती है पर उसके भाव पक्ष में एकरूपता रखनी ही होगी । अस्तु हमें उसी दृष्टिकोण को अपनाकर चलना चाहिए।

भजन, चिन्तन, मनन और समापन इन चार भागों में हमें अपनी उपासना पद्धति को विभाजित कर लेना चाहिए।

भजन का अर्थ है ईश्वर की समीपता—उसे अपने में ओर अपने को उसमें ओत-प्रोत होने की समर्पण अथवा अवतरणपरक ध्यान धारणा।

चिन्तन का अर्थ है—अपने स्वरूप का, लक्ष्य तथा कर्तव्य का, स्पष्ट चित्र मनोभूमि में प्रखर करना।

मनन का अर्थ है—जीवनोद्देश्य की पूर्ति के लिए अभीष्ट आदर्शों का अपने जीवन क्रम में, गुण-कर्म स्वभाव में कितना समन्वय हो सका इसका विश्लेषण और जो न हो सका उसकी पूर्ति के लिए आयोजन-नियोजन।

समापन का अर्थ है—हर समय अपने मानसिक चिन्तन और शारीरिक कर्तृत्व पर पर्यवेक्षक अफसर अधिकारी की तरह निरीक्षण, नियन्त्रण तथा अव्यवस्था का तत्काल निराकरण।

इन चार आधारों का व्यावहारिक रूप यह हो सकता है कि जब भी शरीर शुद्धि के उपरान्त भजन के लिए बैठा जाये तो अपना निर्धारित कर्मकाण्ड करते समय इस भावना को प्रबल किया जाये कि हम और ईश्वर दोनों अति समीप और अति घनिष्ठ बन कर बैठने वाले हैं और दोनों की द्वैत सत्ता के एकीकरण का आधार जुटाया जा रहा है। शरीर शुद्धि इसलिये आवश्यक है कि उसके साथ मन की शुद्धि का सम्बन्ध जुड़ा हुआ है। मलीन स्थान, मलीन काया, मलीन वस्त्र, मलीन उपकरण यदि पूजा के अवसर पर भी बने रहें तो मन में भी मलीनता की ही घटा छाई रहेगी। इसलिए न केवल शरीर ही शुद्ध करना चाहिए वरन् पूजा के स्थान एवं उपकरणों को भी अधिक से अधिक स्वच्छ करने का प्रयत्न करना चाहिए।

बूढ़े, बीमार, कमजोर व्यक्तियों को स्नान सम्बन्धी छूट मिल सकती हैं। जिन्हें शीत ऋतु का प्रभाव सहन न होता हो

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

वे बिना स्नान के भी उपासना कर सकते हैं। गुरुदेव को भी कभी-कभी जब बर्फीले तूफान आते हैं, तब स्नान की सुविधा नहीं रहती और वे बिना उसके भी काम चलाते हैं। पिछले प्रवास काल में भी कई बार उन्हें स्नान की सुविधा न होने से उसका व्यतिक्रम करना पड़ा पर इससे उपासना-क्रम को भी छोड़ बैठना उचित नहीं समझा गया। हाँ, मल-मूत्र का त्याग, हाथ, पैर, मुख आदि की शुद्धि की ओर शुद्ध वस्त्र धारण जैसी व्यवस्था तो बना ही लेनी चाहिए।

अपने किसी परम प्रिय और सम्मानित स्नेही के घर पर पधारते समय जो स्वच्छता, सतर्कता बरती जाती है। लगभग वैसी ही तैयारियाँ पूजा अवसर पर करनी चाहिये और भी आगे बढ़ें तो पत्नी जिस तरह स्वच्छ सुसज्जित होकर सुहागरात को पति के पास जाती है लगभग वैसी ही शारीरिक मानसिक स्थिति में पूजा के स्थल पर बैठना चाहिए। पूजा उपकरण भले ही थोड़े हों, सस्ते हों, पर उन्हें स्वच्छ और सुसज्जित रखने में कसर नहीं उठा रखनी चाहिए। भजन, जप, पूजन इसी भावना के साथ करना चाहिए कि सचमुच परम सत्ता का विशेष अवतरण अपने समीप हो गया और उसका शिष्टाचार परक स्वागत सम्मान सम्पन्न किया जा रहा है। बहुत आगे चलकर यह भजन क्रम विशुद्ध मानसिक भी हो सकता है। तब किसी वस्तु या क्रियाकलाप की आवश्यकता नहीं रहती पर आरम्भिक साधकों को तो पूजा के सभी साधन जुटाने चाहिए और निर्धारित विधि-विधान के साथ जप, पाठ, पूजन आदि सम्पन्न करने चाहिए। गायत्री उपासकों के लिए गायत्री महाविज्ञान में तथा समय पर लेखों में सारा विधान बताया जा चुका है उसी की पुनरावृत्ति यहाँ आवश्यक नहीं।

पूजापरक कर्मकाण्डात्मक विधि-विधान ईश्वर की समीपता का और उनके स्वागत सम्मान का प्रयोजन पूरा करता है। इसके बाद द्वितीय चरण ध्यान का है। गुरुदेव का परम प्रिय और अनुभूत ध्यान यह है कि अपने आपे को ईश्वर में समर्पित करा दिया गया और दिव्य सत्ता अपने में ओत-प्रोत हो गई। बिजली का करेण्ट जब हीटर के तारों में आता है तो वे लाल हो जाते हैं। उसी प्रकार ईश्वरीय सत्ता के अपने भीतर अवतरण होने से अपनी रोम-रोम उसी से भर गया और हीटर के तारों की तरह लाल हो गया जैसे घी अग्नि में डालने पर वह अपना पूर्व स्वरूप खो बैठता है और मात्र लपट के रूप में दीखता है। उसी प्रकार यह अनुभूति होनी चाहिए कि अपना आपा पूर्णतया ईश्वरीय सत्ता में समर्पित कर दिया। अहंता समाप्त हो गई और जो कुछ है वह अग्नि की लपट के रूप में ईश्वर की सत्ता के रूप में है। यह ध्यान बहुत ही महत्वपूर्ण है। अपने दोष-दुर्गुणों को ईश्वरीय अग्नि में जल जाने ओर दिव्य तत्वों के अपने शरीर मन तथा अन्तःकरण में भर जाने की मान्यता इस ध्यान से निरन्तर पुष्ट और प्रत्यक्ष होती चलती है।

साकार उपासक ईश्वर के किसी रूप की कल्पना कर सकते हैं और उसके साथ मानवी रिश्तों में से कोई रिश्ता जोड़ कर घनिष्ठता समीपता, और प्रेम भावना से भरी-पूरी उमङ्गों की—उस स्तर के क्रियाकलाप की—अनुभूति कर सकते हैं। जप के साथ भी इस तरह का ध्यान किया जा सकता है और बिना जप के भी। अपनी मनोभूमि के अनुसार जो भी ठीक पड़ता है, उसी क्रम को अपना लेना चाहिए।

भगवान को आकाश में सूर्य की तरह चमकते हुए और उसके प्रकाश एवं ऊष्मा से अपने शरीर, मन एवं अन्तःकरण को ज्योतिर्मय होने का ध्यान भी कई साधकों को अधिक रुचिकर लगता है।

यह ध्यान, जप के साथ भी हो सकता है और अलग भी। पाठ-पूजन में चूँकि मन उन क्रियाकलापों से बंधा रहता है। इसलिये उनके साथ तो समीपता स्वागत जैसा भाव ही रहता है। पर जप के साथ ध्यान चल सकता है। माला यदि ध्यान में व्यवधान उत्पन्न करे तो समय की नियमितता के लिए घड़ी से भी काम चल सकता है। जप पूजन में पन्द्रह मिनट और ध्यान में पन्द्रह मिनट कम से कम आधा घण्टे तो उपासना में लगाना ही चाहिए। इससे अधिक जिससे जितना बन पड़े कर सकते हैं। दिन में कई बार किया जा सकता है। ध्यान की यह प्रक्रिया तो ऐसी है कि मानसिक जप की तरह उसे कभी भी सुविधा और अवकाश के समय किया जा सकता है।

चिन्तन और मनन की एक ही प्रक्रिया समझी जा सकती है। उसे दो खण्डों में विभक्त माना जा सकता है। इसके लिए सर्वोत्तम समय वह है जब प्रातःकाल आँख खुल जाती है और शैया त्यागने की तैयारी में थोड़ी देर करवटें बदली जाती हैं। आमतौर से लोग आँख खुलते ही शैया त्याग नहीं कर देते वरन् कुछ समय ऐसे ही उनींदे पड़े रहते हैं। यह समय सुविधा का है। मल-मूत्र त्यागने के बाद भी कुछ समय एकान्त में बैठकर या बिस्तर में लेट कर यह चिन्तन मनन की प्रक्रिया चलाई जा सकती है। कम से कम पन्द्रह मिनट तो इसमें भी लगाने चाहिये। चिन्तन करना चाहिए। अपना आपा—ईश्वर का अंश पुत्र और प्रतिनिधि, शुद्ध, निर्विकल्प दिव्य चेतना एवं क्षमताओं से परिपूर्ण है। अपना शुद्ध स्वरूप यही है। शरीर और मन अपने दो औजार—वाहन हैं। इन्हें अपने से पृथक् रखकर दो सेवकों के रूप में देखने-समझने की मान्यता विकसित करनी चाहिए। चौरासी लाख योनियों में सर्वश्रेष्ठ सुरदुर्लभ कलेवर प्रदान करने का ईश्वरीय प्रयोजन एक आदर्श मनुष्य का उदाहरण प्रस्तुत करता समझा जाना चाहिए कि ईश्वर ने अपनी सृष्टि को सुन्दर सुविकसित, समुन्नत एवं सुव्यवस्थित करने के लिए उसे अपने सहायक प्रतिनिधि के रूप में इस संसार में भेजा है। जीवन की सार्थकता, आत्मिक पवित्रता, और लोक मंगल में तत्परता बढ़ाते रहने से ही सम्भव हो सकती है। इस तथ्य को गहराई तक हृदयङ्गम करने की विचारणा को ही चिन्तन माना जाना चाहिए। इसे आत्मबोध या आत्मजागरण साधना भी कह सकते हैं।

मनन इसी चिन्तन प्रवाह का पूरक है। अपनी मानसिक गतिविधियों और शारीरिक क्रियाकलापों का शवच्छेद विश्लेषण करना चाहिए। देखना चाहिए कि मनुष्यता के आदर्शों में से कितना अंश गुण, कर्म, स्वभाव में सम्मिलित हो गया। उपलब्धियों पर सन्तोष व्यक्त करना चाहिए और जो कमियाँ दिखाई पड़े उन्हें पूरा करने के लिये क्या किया जाय? कैसे किया जाय? कब किया जाय? इस पर विचार करना चाहिए।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

यह मानकर चलना चाहिए कि आदर्शों का धर्म मान्यताओं का कहना, सुनना, पड़ना, जानना ही पर्याप्त नहीं वरन् उन्हें क्रियाकलाप में भी समन्वित किया जाना चाहिए। लोभ, मोह, कायरता जैसी कौन कमजोरियाँ हैं जो जीवन को आदर्श बनाने में अड़चन उत्पन्न करती हैं; उन दुष्प्रवृत्तियों को अपना सबसे बड़ा शत्रु मानना चाहिए और उनके उन्मूलन के लिये आत्मबल जगाना मनन का महत्वपूर्ण अंग है। विचारणा के इन क्षणों में यह योजना बनानी चाहिए कि अपनी हेय गतिविधियों को कैसे छोड़ा जा सकता है। आदर्श महामानव बनने के लिए क्या कदम उठाया जा सकता है? इस परिवर्तन का आरम्भ कैसे किया जाये और अन्त कहाँ किया जाये? इस प्रकार योजनायें बनाना और उन्हें कार्यान्वित करने लिए के मन को वैसा ही उद्‌बोधन देना चाहिए जैसा कि जामवन्त ने समुद्र लाँघने के लिए हनुमान को दिया था। चिंतन की प्रक्रिया को प्रगति पथ पर बढ़ चलने की योजना व्यवस्था भी कह सकते हैं। इसे प्रातःकाल चारपाई पर पड़ें या एकान्त में बैठे-लेटे तो नित्यकर्म के रूप में करना चाहिए। इसके अतिरिक्त जब भी एकान्त हो—मन खाली हो तब उसी दिशा में उधेड़-बुन आरम्भ कर देनी चाहिए।

समापन जागने से लेकर सोने तक निरन्तर चलते रहने वाले निरीक्षण, नियंत्रण एवं निराकरण का क्रम है। जिसे प्रत्येक शारीरिक और मानसिक क्रियाकलाप के साथ जोड़ कर रखना चाहिए। समझना चाहिए कि शरीर और मन हमारे दो नौकर हैं। हम उनके ऊपर निरीक्षक, नियंत्रणकर्ता है, हमें उनकी प्रत्येक हरकत पर कड़ी नजर रखनी चाहिये और देखना चाहिये कि वे हरामखोरी या बदमाशी तो नहीं कर रहे हैं। मस्तिष्क में अशुभ चिन्तन तो नहीं चल रहा--शरीर असुर कर्म तो नहीं कर रहा। ओटोमेटिक मशीनें अपने आप चलती रहती हैं और उनके निरीक्षक मशीन की गतिविधियों को सर्तकतापूर्वक बैठे रहते हैं। जहाँ तनिक-सी भी कोई गड़बड़ी दिखाई पड़ती है तुरन्त सुधारते हैं। अपनी जिम्मेदारी समझते हैं कि यदि मशीनों ने गड़बड़ की तो उस निरीक्षक के कान खींचे जायेंगे। ठीक यही दृष्टि जागृति के प्रत्येक क्षण में बनाये रखनी चाहिए और असुर चिन्तन अथवा अशुभ कर्म का आरम्भ होते ही उसे प्रचण्ड विरोध करके निरस्त करना चाहिए।

समापन का अर्थ अनुचित को निरस्त करना ही नहीं वरन् उचित को प्रोत्साहित एवं योजना बद्ध बनाना भी है। हर दिन सावधानी के साथ सवेरे ही दिनचर्या बना लेनी चाहिए और समय का एक क्षण भी व्यर्थ न जाने पाये तथा इन दोनों सेवकों को उपयुक्त कर्तृव्य में जुटाये रखा जाये यह भी आवश्यक है। 'हर दिन नया जन्म हर रात नई मौत' के सूत्र को व्यवहार में कार्यान्वित करते हुए हर नया दिन पिछले दिनों की अपेक्षा अधिक संतोषजनक उपलब्धियों से भरा हुआ रहे इसका प्रयत्न करना चाहिए। रात्रि को सोते समय दिन भर के क्रियाकलापों का लेखाजोखा लेना चाहिए और अगले दिनों भूलों को सुधारने तथा सत्प्रवृत्तियों को बढ़ाने का संकल्प लेकर सोना चाहिए।

भजन, मनन, चिन्तन और समापन की गतिविधि, उपासना पद्धति, गुरुदेव के प्रत्येक परिचित और सम्पर्क में रहने वाले को आरम्भ कर देनी चाहिए। इस प्रकार जाती हुई भूमि में उनके लिए उन विभूति वृक्षों का आरोपण सम्भव होगा जिनकी इन दिनों वे पौध तैयार कर रहे हैं।

आत्मसाक्षात्कार की द्विविध तपश्चर्या

मुक्ति पथ एवं योग साधन पर बड़ा ही विचारोत्तेजक एवं मार्गदर्शक विवेचन शास्त्रों में किया गया है। महर्षि याज्ञवल्क्य एवं महाराज जनक के मध्य सम्वादों के माध्यम से योग साधन का अन्तिम उपाय वैराग्य और अभ्यास को बताया है। जनक के पूछे जाने पर "विज्ञातारमरे के विजानीयत?" (विधाता को किसके द्वारा जानें) महर्षि उत्तर देते हैं—

"यमेवैष वृणुते तेन लभ्य स्तस्यैष आत्मा वृणुते तनूं स्याम्।"

अर्थात्—वह तपः शुद्ध चेतना का वरण करके स्वयं ही अपने स्वरूप को प्रकट करता है तथा-

एतैस्यायैर्यतते यस्तु विद्वांसस्तस्यैष आत्मा विशते ब्रह्मधाम्।

अर्थात्—उस परम सत्ता से साक्षात्कार उचित उपाय करने से ही सम्भव होता है। (मुण्डकोपनिषद् ३/२/४) ये उचित उपाय हैं वैराग्य और अभ्यास। सांसारिक विषयों की क्षणभुंगरता और अस्थायित्व पर चिन्तन करके मन को उनमें न रमने देना वैराग्य है। यह विचार परक है। इन्द्रियों का सहज रुझान विषयों की ओर होता है। विषयासक्ति से उन्हें निकालकर आत्म लक्ष्य प्राप्ति में सहयोग करने वाली—जीवनोद्देश्य को सार्थक करने वाली—गतिविधियों में प्रवृत्त करने को अभ्यास कहते हैं।

अभ्यास में दुहरी प्रक्रिया अपनानी होती है। एक मानसिक परिशोधन के लिए तप-तितीक्षा की, दूसरी सत्प्रवृत्ति सम्वर्द्धन के लिए साधना उपचार की । मानसिक परिशुद्धि के पूर्व मन के दोषों को जानना आवश्यक है। विषय सेवन इन्द्रिय का सहज स्वभाव है, पर उसमें मनोयोग होने से प्रत्येक विषयानुभूत मन पर एक आसक्तिजनक संस्कार छोड़ती है। विषय सुख तो क्षणिक होते हैं, पर मन की विशेषता यह है कि जब उसे कोई विषय प्राप्त नहीं होता, तो वह अपने पूर्वानुभव जन्म संस्कार के कारण उसे पाने की लालसा करता है। इसे ही मनीषियों ने राग कहा है। राग अप्राप्त सुख का स्मरण दिलाकर अभाव का दुःख देता है। फिर अनेकों प्रकार के दोषों की शृंखला चल पड़ती है। राग से द्वेष और द्वेष से क्रोध की उत्पत्ति होती है। राग से परिग्रह का लोभ पैदा होता है। द्वेष, घृणा, ईर्ष्या और हिंसा की दुर्भावनाएँ जगाता है. फिर छल, कपट, अहंकार, कुटिलता, असहिष्णुता, कृतघ्नता जैसी दुष्प्रवृत्तियों का सिलसिला आरम्भ हो जाता है। मन की आसक्ति अन्ततः पतन का कारण बनती है। इस तथ्य को ध्यान में रखकर मन को आत्मचिन्तन में सदा निरत रखने से वैराग्य का भाव जाग्रत होता है।

मन, बुद्धि और अहंकार की संयुक्त भूमि का नाम ही चित्त है। चित्त शुद्धि के लिए अभ्यास आवश्यक है। मुनि पातंजलि ने योगाभ्यास के आठ अंग बताये हैं।--यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारण, ध्यान और समाधि।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

यम नियमासन प्राणायाम—
प्रत्याहार धारणाध्यान समाधयोऽष्टाश्रंगानि।

(पा० यो० सू० १/३३)

अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य एवं अपरिग्रह ये पांच प्रकार के निषेध यम कहलाते हैं। नियम के अन्तर्गत बाह्याभ्यन्तर परिशुद्धि के लिए की जाने वाली सभी क्रियायें आती हैं। शरीर की बाह्य स्वच्छता का अपना महत्व है पर इससे भी अधिक महत्वपूर्ण है 'आन्तरिक पवित्रता' । मन की शुद्धि में भोजन का अत्यधिक महत्व है। 'अन्यमयंहि सोम्य मनः' छान्दोग्य उपनिषदकार के अनुसार अन्न से ही मन भी पुष्ट होता है। यह तथ्य प्रतिपादित है। जैसे भोजन होगा वैसी ही प्रवृति होगी। चित्त की पाँच अवास्थायें योग ग्रन्थों में वर्णित हैं—मूढ़, क्षिप्त, विक्षिप्त, एकाग्र और निरुद्ध। तमसाछन्न चित्त मूढ़ता ग्रस्त होता है। रजस तत्व की प्रधानता में वह क्षिप्त रहता है। सत्व प्रधान चित्त ही सरलता से एकाग्रता से होकर ध्यान-धारणा और समाधि की उच्चस्तरीय साधनाओं में सहायक होता है। इन्द्रियों को उत्तेजित करने वाले खट्टे, मीठे, तीक्ष्ण, राजसी और तामसी भोजन से मन में अस्थिरता और मलीनता बढ़ती है। अस्तु साधना पथ के साधक के लिए सरस, स्निग्ध, मृदु और नीति पूर्वक उपार्जित पवित्र आहार का सेवन सर्वश्रेष्ठ माना गया है।

सुख-दुःख हर तरह की परिस्थिति में सन्तुष्ट रहने को सन्तोष कहते हैं। कुसंस्कारों के परिशोधन एवं सुसंस्कारों के अभिवर्द्धन के लिए स्वेच्छापूर्वक जो कष्ट उठाया जाता है—वह तप कहलाता है। स्वयं के अध्ययन विश्लेषण के लिए किया जाने वाला अध्यवसाय स्वाध्याय है। अपने चित्त को श्रद्धापूर्वक परमात्मा के दिव्य स्वरूप में नियोजित करना ईश्वर प्राविधान कहलाता है।

मेरुदण्ड को सीधा रखकर शरीर को हलचलों से रहित स्थिति में स्थिर करना आसन है। प्राणों की गति पर इच्छित नियन्त्रण नियमन कर लेना प्राणायाम कहलाता है, जिसके अनेकों भेद-उपभेद हैं। विविध प्रयोजनों के लिए विभिन्न प्रकार के प्राणायाम किए जाते हैं। इन्द्रियों को विषयों से खींचकर आत्माभिमुखी प्रवृत्तियों में समाहित कर देना प्रत्याहार है। प्रत्याहार में इन्द्रियों सहित मन के साथ जोर-जबरदस्ती करनी पड़ती है। अड़ियल घोड़ा शीघ्रता से काबू में नहीं आता। इन्द्रियाँ भी आरम्भ में बगावत करती हैं। पर बारम्बार उन पर अंकुश रखने पर उनकी विषय लोलुपता समाप्त हो जाती है। यम, नियम, आसन, प्राणायाम और प्रत्याहार योग के पांच बहिरंग पक्ष हैं, जो शारीरिक क्रियाओं से सम्बन्धित हैं। धारणा, ध्यान और समाधि वे अन्तरंग साधन हैं जो मन और बुद्धि के भाव परक पुरुषार्थ पर आधारित हैं।

निर्धारित समय के लिए किसी स्थान विशेष में चित्त को बाँधने का नाम धारणा है। धारणा के अवलम्बन के लिए मन में ईश्वर के किसी स्वरूप की कल्पना करनी पड़ती है। किसी देवता अथवा देवी की मूर्ति, दीपक की ज्योति, उदीयमान सूर्य आदि किसी स्वरूप में मन को स्थिर करना पड़ता है। इसका अगला चरण ध्यान है। जब चित्त पर्याप्त समय तक अपने इष्ट में स्थिर हो जाये तो इसे ध्यान कहते हैं। ध्यानाभ्यास करते-करते जब ध्यान के अवलम्बन का स्थूल स्वरूप विलीन हो जाता है तथा चित्त मात्र इष्ट के गुण या विशेषता से ओत-प्रोत होकर स्थिर हो जाता है तो उस अवस्था को समाधि कहते हैं। समाधिवस्था में दृष्टा को अपने भौतिक शरीर का बोध नहीं रहता। साधक और साध्य की सत्ता एक हो जाती है। भौतिक शरीर चैतन्य रहित होते हुए भी आन्तरिक चैतन्यता अधिकतम होती है। समाधि की परिपक्वता से चेतना सूक्ष्म से सूक्ष्मता तत्वों का साक्षात्कार करने में समर्थ होती चली जाती है।

समाधिवस्था में श्वासोच्छ्वास क्षीण हो जाता है। पर्वतों के उत्तुंग शिखरों पर वायु दाव की न्यूनता के कारण पर्वतारोहियों की श्वास में ऑक्सीजन की मात्रा कम पड़ जाती है, जिससे मस्तिष्क की कोशिकायें ठीक प्रकार काम नहीं कर पाती। प्रायः भ्रम होने लगता है और सांस लेने में कठिनाई होती है। पर समाधि की स्थिति इससे उल्टी है। मन और प्राण की चंचलता थम जाने से स्वतः समाधि अवस्था में श्वास लेने की आवश्यकता नहीं महसूस होती। मस्तिष्क को किसी प्रकार कष्ट नहीं होता। शरीर और मन की चंचलता में होने वाले प्राण का अपव्यय रुक जाता है। फलतः मस्तिष्क में प्राण की अधिकता से वह और भी अधिक सक्षम हो जाता है। मन की अवचेतन ग्रन्थियाँ खुलने लगती हैं। चित्त में अनेकों जन्मों के संस्कार अंकित एवं संग्रहीत रहते हैं। वे समाधिवस्था के अन्तःप्रकाश में प्रत्यक्ष साकार होकर समाप्त होते अथवा वांछित दिशा पाते रहते हैं।

'पातंजलि योग दर्शन' में समाधि की विभिन्न अवस्थाओं का वर्णन है। जब चित्त किसी एक तत्व पर अधिक देर तक स्थिर न रहकर उसके नाम, अर्थ और ज्ञान में संचरित होता है, तो उसे सवितर्क समाधि कहा गया है। जब चित्त अधिक शान्त होकर मात्र अर्थ में स्थिर हो जाता है, तो वह समाधि निर्वितर्क कहलाती है। विचारपूर्वक सूक्ष्म तत्वों पर स्थिर चित्त जब उनके स्वरूप को जान लेता है तो उसे विचारानुगात समाधि की प्रथम अवस्था 'सविचार' समाधि कहा गया है। सूक्ष्मतत्व का स्वरूप विलीन होकर जब उसके ज्ञान में समाधि होने लगती है तो उसे निर्विचार समाधि कहते हैं।

इन अभ्यासों से मन की चंचलता समाप्त हो जाती है और दृष्टा साधक उसे जिस भी लक्ष्य की ओर नियोजित करता है, वह आज्ञाकारी के रूप में उधर ही स्थिर हो जाता है। परिष्कृत और निर्मल चेतना प्राण को मनचाही दिशा में प्रवाहित कर सकती है। प्राण पर नियमन एवं नियन्त्रण से उसे शरीर के किसी भी अंग में भेजकर अभीष्ट प्रकार का कार्य सम्पादित कराया जा सकता है। इस प्राण विद्युता से व्यक्तियों एवं वातावरण को भी प्रभावित कर सकना सम्भव है। बाहर से भी प्राण तत्व को खींचकर अपने शरीर में प्रचुर परिणाम में भर सकना प्राण पर नियन्त्रण हो जाने पर शक्य हो जाता है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

निर्विचार समाधि की परिपक्वता से अन्तःकरण शान्त, निर्मल और ज्योतिर्मय हो जाता है। ऐसी स्थिति में साधक एक अनिर्वचनीय आनन्द की अनुभूति करता है। इसे ही 'आनन्दानुगत' समाधि कहते हैं। जब चित्त की विषय, वृत्ति पूर्णतया समाप्त हो जाती है तथा मात्र स्वानुभव ही शेष बचता है तो उसे 'अस्मितानुगत' समाधि कहा जाता है। ये निर्विचार समाधि की उच्चतर स्थितियाँ हैं जिन्हें 'सम्प्रज्ञात' समाधि कहा गया है। ऋतम्भरा प्रज्ञा की यही स्थिति होती है। ऐसी पवित्र प्रज्ञा से अनुप्राणित अन्तःकरण में सत्य स्वयं ही अपने शाश्वत स्वरूप में प्रकट होने लगता है।

प्रज्ञा के ज्योतिर्मय प्रकाश में अवस्थिति होने पर साधक की सम्पूर्ण सत्ता भी आलोकित हो उठती है। उस ज्योति में एकाग्रता बनी रहने पर सम्पूर्ण चेतना में प्रकाश फैल जाता है जो समाधि की दृढ़ता में और भी दिव्यतर होता जाता है। उस अलौकिक दिव्य प्रकाश में दृष्टा साधक का पृथक् अस्तित्व भी विलीन हो जाता है। तब यह अनुभव होता है कि ज्ञाता ज्ञेय से सर्वथा भिन्न है। जिसे पाने के लिए असाधारण पुरुषार्थ किया गया वह तो अपनी ही आत्मा है। दृष्टा और परम ध्येय—इष्ट के इस पूर्ण एकाकार होने को ही असम्प्रज्ञात समाधि कहते हैं। चित्त के सच्चित् में पूर्णतः विलीन होने से भव बन्धन समाप्त हो जाते हैं। सच्चिदानन्द स्वरूप का दिग्दर्शन होता है। यह अनुभव अनिवर्चनीय और वर्णनातीत है।

योग साधन के दो चरण वैराग्य और अभ्यास का अवलम्बन लेकर हर साधक आत्मिक प्रगति का मार्ग प्रशस्त कर सकता है। वैराग्य के लिए मनःस्थिति के अनुरूप चिन्तन के आधार क्या हों? अभ्यास किस क्रम से और किस प्रकार आरम्भ किया जाये? इसका निश्चय निर्धारण हर कोई नहीं कर सकता। मरीज स्वयं दवा का निर्धारण करने लगे तो उसे कितने ही संकटों का सामना करना पड़ सकता है। कुशल चिकित्सक का परामर्श उसके लिए आवश्यक है। यह सच है कि साधना पथ पर पुरुषार्थ साधक को स्वयं करना पड़ता है, पर पथप्रदर्शक के मार्ग-दर्शन के बिना भटकाव की गुंजाइश अधिक है। अस्तु साधना मार्ग पर चलने वाले हर जिज्ञासु साधक को संरक्षण मार्गदर्शन की व्यवस्था भी बनाकर चलना चाहिए। वैराग्य और अभ्यास के तत्व दर्शन के इस विवेचन में तो अध्यात्म साधना के विशाल स्वरूप की एक झांकी मात्र करायी गयी। सोपानों पर चढ़ते-चढ़ते इनके उच्चस्तरीय आयाम भी खोले जाने हैं। इन्हें साधक क्रमशः मार्गदर्शन के रूप में प्राप्त करते रहेंगे।

सिद्धियों का मूल—एकाग्रता

कर्मयोग, भक्तियोग, लययोग, नादयोग, ध्यान, धारण, जपयोग इत्यादि जितने साधन हैं वे सब अन्तःकरण की शुद्धता, पवित्रता तथा एकाग्रता के लिये हैं। चंचल मन से किया हुआ कोई भी साधन योग नहीं हो सकता।

रसस्य मनसश्चैव चञ्चलत्वं स्वभावतः।
रसबद्धो मनोबद्धं किं न सिध्यति भूतले॥

—वराहोपनिषद्

पारद और मन यह स्वभावतः चंचल हैं यदि पारद को और मन को बद्ध कर दिया जाये तो फिर त्रैलोक्यं में अप्राप्य कुछ भी न रहेगा।

जिस प्रकार अस्थिर जल में अपना प्रतिबिम्ब साफ नहीं दीखता, उसी प्रकार जब चित्त चंचल है, तब तक अपना आत्मस्वरूप प्रकट नहीं होता। इसलिए मन को साधन द्वारा एकाग्र करने का अवश्य प्रयत्न करना चाहिए, जिससे अन्तःकरण की शुद्धि होती रहेगी और शुद्धता के साथ-साथ एकाग्रता बढ़ती जायेगी। संकल्प और विकल्प करते रहना यह तो मन का धर्म है, इसलिए साधन द्वारा धैर्य पूर्वक मन को साधनारूढ़ करके मन को शनैःशनैः जीतना चाहिए। मन पर नियन्त्रण किये बिना साधन सफल नहीं होता और साधक निरुत्साह हो जाता है।

मनोविज्ञान शास्त्रियों का कथन है कि मन का नियन्त्रण करने से एक महान सूक्ष्म बलवती शक्ति उत्पन्न होती है जिसका परिचय होना अल्पज्ञ मनुष्यों को दुष्कर है, मनोनियम से कायिक, मानसिक और सामाजिक उन्नति होती है। कर्मयोगी, भक्तियोग, लययोग, हठयोग, रागयोग, तथा तपयोग इनमें सरल और सहज साध्य केवल जपयोग है, मन्त्र का जप मनोयोग के साथ करने से एकाग्रता साध्य होती है।

वृत्ति को अन्तर्मुखी करना साधक का ध्येय है। इसलिए अपने नेत्र को मिलित रख कर मन्त्र के अक्षरों पर मन को दृढ़ आरूढ़ करना और ध्यान सहित जप करना, इस प्रकार बिना नागा दृढ़ विश्वास तथा श्रद्धापूर्वक करने से वृत्तियों जगत की और बाहर बिखरी हुये विचार अन्तर्मुखी होने लगते हैं।

जिस प्रकार सूर्य की किरण सूत्र को जला नहीं सकतीं पर जब सूर्यकान्त कांच द्वारा किरणों को एकत्र कर दिया जाय तो प्रत्यक्ष अग्नि प्रकट हो जाती है और सूत्र को जलाकर भस्म कर देती है इसी प्रकार—

"यदा पंचवतिष्ठन्ते ज्ञानानि मनसा सह"

जिस समय पंच कर्म इन्द्रियाँ पंच ज्ञानेन्द्रियां अपने विषयों की ओर नहीं जाती हैं, तब मन निश्चल हो जाता है। बाह्य सृष्टि और अपने स्वशरीर की विस्मृत होती रहे तब जानना चाहिये कि मन की एकाग्रता होनी प्रारम्भ हो रही है। इस प्रकार एकाग्रता का साधन संयमपूर्वक करते रहने से साधक सिद्धि के सन्निकट पहुँचेगा। अन्तःकरण में पूर्ण उत्साह मन की प्रसन्नता भी प्रतिदिन वृद्धिगत होने लगेगी और इष्ट मनोरथ भी अपने सफल होते ही रहेंगे। मन में अनेक विलक्षण शक्तियाँ भरी हुई हैं। पर वे यत्र-तत्र बिखरी पड़ी रहती हैं जिससे इनका समुचित विकास नहीं हो पाता और मनुष्य उनके अद्भुत लाभों से वंचित रह जाता है। बारूद जमीन पर बिछा दी जाये और उसमें आग लगा दी जाये, तो वह साधारण रीति से जल जाने के अतिरिक्त और कोई विशेष कार्य न करेगी। पर यदि उसी बारूद को बन्दूक की नली में विधिपूर्वक प्रयोग किया जाये तो वह दूरस्थ लक्ष्य का भी वेधन कर सकती है, इसी प्रकार मानसिक शक्तियाँ यदि बिखरी रहेंगी, तो उनसे कोई विशेष लाभ उठाना सम्भव न होगा।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

अनेक सन्त महात्माओं में अनेक प्रकार की सिद्धियाँ होने के वर्णन सुने जाते हैं। उनके कार्य अनेक बार ऐसे होते हैं जिन्हें साधारण मनुष्य नहीं कर सकता। उनकी यह सिद्धियां आत्मिक एकाग्रता के ऊपर निर्भर रहती हैं। मनुष्य शरीर में अनन्त शक्ति केन्द्र छिपे पड़े हैं, वे साधना की एकाग्रता द्वारा सक्रिय एवं प्रकट होते हैं। बहिर्मुखी लोग व्यर्थ की बातों में अपने मन को उलझाये रहते हैं। और उस अमूल्य शक्ति भण्डार के लाभ से अपरिचित तथा वंचित रह जाते हैं। किन्तु जो लोग अन्तर्मुखी होकर अपने चित्त को जप, ध्यान आदि में एकाग्र करके एकाग्रता को बढ़ाते हैं। वे अपनी ज्ञानेन्द्रिय, आत्मिक शक्तियों का दर्शन करते हुए आत्मसाक्षात्कार का परमानन्द प्राप्त करतें हैं। निरन्तर के आत्मा में दत्तचित्त होकर सरकस में काम करेने वाले नट जिस पर अपने शरीर द्वारा आश्चर्यजनक करतब दिखाते हैं। वैसे ही सिद्ध पुरुष आत्मिक एवं मानसिक शक्तियों पर चित्त एकाग्र करके साधना द्वारा अनेक सिद्धियों के स्वामी बन जाते हैं। सबसे बड़ी बात है अपने आपको भवबन्धनों से मुक्त कर लेना तथा आत्मा का साक्षात्कार करके जीवन मुक्त बनती है। इस महासिद्धि के लिए भी चित्त की चंचलता को दूर करके एकाग्रता का अभ्यास बढ़ाना ही है। ● ●

www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

साधना से सूक्ष्म शरीर का विकास-विस्तार

स्थूल से प्यार—सूक्ष्म का तिरस्कार क्यों ?

मनुष्य के एक नहीं तीन शरीर हाते हैं—स्थूल, सूक्ष्म और कारण-शरीर। दृश्यमान स्थूल शरीर ऊपर का होता है। इसके भीतर 'सूक्ष्म शरीर' है जो अदृश्य प्रवृत्तियों और शक्तियों के साथ जुड़ा रहता है। तीसरा अन्तराल का गहरा स्तर वह है जिसे 'कारण शरीर' कहते हैं। इसका संबंध परब्रह्म और उसकी सत्ता से है। इसके लिए योग साधन एवं तपश्चर्या की एक-एक करके सभी सीढ़ियाँ पार करनी पड़ती हैं। स्थूल से आगे सूक्ष्म और सूक्ष्म से आगे बढ़ कर कारण शरीर में प्रवेश करना पड़ता है, तब कहीं योगशास्त्रों में वर्णित ऋद्धि-सिद्धियों के दर्शन होते हैं। प्राचीनकाल का समूचा इतिहास इन्हीं आध्यात्मिक उपलब्धियों सें भरा पड़ा है जिसे ऋषियों, तत्वदर्शियों, योगियों और सन्तों का इतिहास कहा जा सकता है, वे अपने संकल्पबल से या सूक्ष्म शरीर से परकाया प्रवेश से लेकर सुदूर ग्रह-नक्षत्रों तक की यात्रा पलक झपकते ही कर लेते थे।

कहा जा चुका है कि शरीर केवल वह एक ही नहीं है जिसे हम धारण किये हुए हैं और जो दीखता अनुभव होता है, उसके भीतर और शरीर हैं जिन्हें सूक्ष्म और कारण शरीर कहते हैं। इनमें सूक्ष्म शरीर अधिक सक्रिय और प्रभावशाली है। मरण के उपरान्त उसी का अस्तित्व रह जाता है, और उसी के सहारे नया जन्म होने तक की समस्त गतिविधियाँ चलती रहती हैं।

मरने के उपरान्त इन्द्रियाँ, मन, संस्कार तथा पाप-पुण्य साथ जाते हैं। मरण से पूर्व वाले जन्म का स्मरण भी इसी शरीर में बना रहता है इसलिए अपने परिवार वालों को पहचानता और याद भी करता है। अगले जन्म में इस पिछले जन्म के संस्कारों को ढोकर ले जाने में भी यह सूक्ष्म शरीर ही काम करता है। वस्तुतः मरण के पश्चात् एक विश्राम जैसी स्थिति आती है उसमें लम्बे जीवन में जो दिन रात काम करना पड़ता है, उसकी थकान दूर होती है, जैसे रात को सो लेने के पश्चात् सबेरे ताजगी आती है उसी तरह नये जन्म के लिए इस मध्य काल के विश्राम से फिर कार्य क्षमता प्राप्त हो जाती है। जिनका मृत्यु के उपरान्त तुरन्त पुर्नजन्म हो जाता है उन्हें पूरा विश्राम न मिल पाने से थकान बनी रहती है और शरीर तथा मन में अस्वस्थता देखी जाती है।

सूक्ष्म शरीर इस जन्म में भी स्थूल शरीर के साथ ही सक्रिय रहता है रात्रि को सो जाने के उपरान्त जो स्वप्न दीखते हैं वह अनुभूतियाँ सूक्ष्म शरीर की ही हैं। दिव्य दृष्टि, दूरश्रवण, दूरदर्शन, विचार संचालन, भविष्य ज्ञान, देव दर्शन आदि उपलब्धियाँ भी सूक्ष्म शरीर के माध्यम से होती हैं। प्रत्याहार, धारण ध्यान और समाधि की उच्च स्तरीय योग साधना द्वारा इसी शरीर को समर्थ बनाया जाता है। ऋद्धियों और सिद्धियों का स्रोत इस सूक्ष्म शरीर को माना जाता है।

भारतीय योग शास्त्रों में सूक्ष्म शरीर को भी स्थूल शरीर की तरह ही प्रत्यक्ष और प्रमाणित माना गया है और उसका स्वरूप तथा कार्य क्षेत्र विस्तार पूर्वक वर्णन किया गया है। वह दुर्बल कैसे हो जाता है और उसे सशक्त कैसे बनाया जा सकता है इसका विस्तृत विवेचन किया गया है। कहा गया है सूक्ष्म शरीर में विकार उत्पन्न हो जाने से स्थूल शरीर भी अस्वस्थ और खिन्न रहने लगता है। इसलिये समग्र समर्थता के लिये स्थूल शरीर की ही तरह सूक्ष्म शरीर का भी ध्यान रखा जाना चाहिए।

यदि आत्मा को अमर माना जाये, मरणोत्तर जीवन को मान्यता दी जाये तो सूक्ष्म शरीर का अस्तित्व भी मानना पड़ेगा। स्थूल शरीर तो मत्यु के साथ ही समाप्त हो जाता है। नया शरीर तुरन्त ही नहीं मिलता, उसमें देर लग जाती है। इस मरण और जन्म के बीच की अवधि में प्राणी क्को सूक्ष्म शरीर का सहारा लेकर ही रहना पड़ता है। शरीर धारण कर लेने के बाद भी उसके अन्तर्गत सूक्ष्म शरीर और कारण शरीरों का अस्तित्त्व बना रहता है। अतीन्द्रिय ज्ञान उन्हीं के द्वारा होता है और उपासना साधना द्वारा इन्हीं दो अप्रत्यक्ष शरीरों को परिपुष्ट बनाया जाता है। यह अन्तर शरीर यदि बलवान हो तो बाह्य शरीर में तेज, शौर्य, प्रकाश, बल और ज्ञान की आभा सहज ही प्रस्फुटित दीखती है। उत्साह और उल्लास भी सूक्ष्म शरीर की निरोगता का ही परिणाम है।

स्वर्ग और नरक का जैसा कि वर्णन है उसका उपभोग सूक्ष्म शरीर द्वारा ही सम्भव है। पिछले जन्म के ज्ञान, संस्कार गुण, रुचि आदि का अगले जन्म में उपलब्ध होने का आधार भी यह सूक्ष्म शरीर है। भूत प्रेतों का अस्तित्त्व इसी परोक्ष शरीर पर निर्भर है और दिव्य अनुभूतियाँ, योग की सिद्धियाँ स्वप्नों पर परिलक्षित सचाइयाँ आदि प्रक्रियाएँ सूक्ष्म शरीर से ही सम्भव हो सकती हैं। यदि स्थूल शरीर मात्र का अस्तित्त्व माना जाये तो फिर नास्तिकों का वही मत प्रतिपादित होगा जिसमें कहा गया है कि—मृत्यु के बाद फिर आना कहाँ होगा, जब तक जीना है सुख से जियो और ऋण लेकल घृत पियो।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

इतिहास प्रसिद्ध घटना है कि महर्षि हर्ष के शिष्य व्याड़ी ने एक बार मगध के सम्राट महपद्मनन्द के मृत शरीर में परकाया प्रवेश किया था। पद्मनन्द के मन्त्री शकटार उस समय सिकन्दर के आक्रमण से चिन्तित थे तभी मृत पद्मनन्द के जीवित हो उठने पर आश्चर्य हुआ वे वस्तुस्थिति को समझ गये अवएव राजा को जीवित ही रखने की इच्छा से उन्होंने व्याड़ी की लाश को जलवा दिया इस पर नन्द के शरीर में प्रविष्ट व्याड़ों को तब तक उसी शरीर में रहना पड़ा जब तक चन्द्रगुप्त ने उसकी हत्या नहीं की।

रामकृष्ण परमहंस ने महाप्रयाण के उपरान्त भी विवेकानन्द को कई बार दर्शन तथा परामर्श दिये थे। पुराणों में तो पग-पग पर ऐसे कथानकों का उल्लेख है।

थियोसोफिल सोसाइटी की जन्मदात्री मैडम ब्लावटस्की के बारे में कहा जाता है कि वे अपने को कमरे में बन्द करने के उपरान्त भी जनता को सूक्ष्म शरीर से दर्शन और उपदेश देती थीं। कर्नल टाउन शेड के बारे में भी ऐसे ही प्रसङ्ग कहे जाते हैं। पाश्चात्य योग साधकों में से हैवर्टलमान, लिण्डार्स, एन्ड्रू जैक्शन, डा० माल्थ, जेल्ट, कारिंगटन, डुरावेल, मुलडोन, अलिवर लाज, पावस डॉ० मेस्मर, ऐलेक्जेन्ड्रा, डेविडनीत, ब्रण्टन आदि के अनुभवों और प्रयोगों में सूक्ष्म शरीर की प्रमाणिकता सिद्ध करने वाले अनेक प्रमाण उपस्थित किये गये हैं। जे० मुलडोन अपने स्थूल शरीर से सूक्ष्म को पृथक करने के कितने प्रदर्शन भी कर चुके थे। इनमें इस सबकी चर्चा अपनी पुस्तक 'दी प्रोजेक्शन आफ आस्टल कॉंडी' में विस्तार पूर्वक की है।

मान्य किया जाये या न किया जाये इससे क्या होता है ? सचाई तो सचाई है और जब वह सामने आती है तो भौतिक दृष्टि से सोचने वाले हक्के-बक्के रह जाते हैं और आत्मा के अस्तित्त्व को, चेतना की शक्ति को न समझने के कारण हतप्रभ हो उठते है। घटना ७ नवम्बर १९१८ की है। तब पहला विश्व युद्ध चल रहा था। एक फ्रान्सीसी लड़का टैड जिसका पिता फ्रान्स के मार्चे पर लड़ रहा था, खेलते-खेलते एक दम चिल्लाया—मेरे पिता का दम घुट रहा है। वे एक तंग कोठरी में बन्द हो गये हैं और उन्हें कुछ भी दिखायी नहीं दे रहा है। घर के लोग कुछ भी नहीं समझ पाये। टैड इतना कहकर बेहोश हो गया था। कुछ देर बेहोश रहने के बाद उसे होश आया और वह बोला—अब वे ठीक हो जायेंगे। घर के लोगों ने टैड के बेहोश होने से पूर्व कहे गये शब्दों और बाद में होश आने पर कहे शब्दों से इतना ही अन्दाज लगाया कि टैड ने अपने पिता के सम्बन्ध में कोई दुःस्वप्न देखा होगा। बात जहाँ की तहाँ समाप्त हो गई।

प्रथम विश्व युद्ध जब समाप्त हुआ और टैड के पिता घर लौटे तो स्वजनों को उस दिन की घटना याद आ गयी, जब टैड के पिता ने बताया कि ७ नवम्बर को मैं मरते-मरते बचा। पूछा गया कि क्या बात हुई तो उन्होंनें बताया कि मैं उस दिन एक गैस चैम्बर में फँस गया था, जिससे दम घुटने लगा था। मुझे दिखायी देना भी बन्द हो गया था । तभी मैंने देखा कि टैड जैसा एक लड़का उस युद्ध की विभिषिका में न जाने कहाँ से आ पहुँचा और उसने चैम्बर का मुँह खोलकर, मुझे हाथ पकड़ कर बाहर खींचा तभी मेरी यूनिट के सैनिकों की दृष्टि मुझ पर पड़ी और उन्होंने मुझे अस्पताल तक पहुँचाया। यह विवरण सुनकर ही घर वालों को उस दिन टैड के चीखने बेहोश होने तथा होश में आने पर आश्वस्त ढङ्ग से बात करने की घटना याद आयी।

इटली के एक पादरी अलफोन्सेस लिगाडरी के साथ २१ सितम्बर १९७४ को ऐसी ही घटना घटी। उस दिन वे ऐसी गहरी नींद में सोये कि जगाने की बहुत कोशिशें करने के बाद भी ना जगाये जा सके। यह भ्रम हुआ कि कहीं वे मर तो नहीं गये हैं। इस भ्रम की परीक्षा के लिए उनकी जाँच की गयी तो पता चला कि वे पूरी तरह जीवित हैं। कई घण्टों तक वे इसी स्थिति में रहे। उन्हें जब होश आया तो देखा कि आसपास लगभग सभी साथी सहयोगी खड़े हुए हैं। उन्होंने अपने साथियों से कहा—'मैं आपको एक बहुत ही दुःखद समाचार सुना रहा हूँ कि हमारे पूजनीय पोप का अभी-अभी देहान्त हो गया है।' साथियों ने कहा—"आप तो कई घण्टों से अचेत हैं, आपको कैसे यह मालूम हुआ।

लिगाडरी ने कहा—मैं इस देह को छोड़कर रोम गया हुआ था और अभी-अभी वहाँ से ही लौटा हूँ। उनके साथियों ने समझा कि वे कोई सपना देखकर उठे हैं और सपने में ही उन्होंने पोप की मृत्यु देखी होगी। चार दिन बाद यह खबर लगी कि पोप का देहान्त हो गया है और वह उसी समय हुआ जब कि लिगाडरी अचेत थे तो उनके मित्र साथी चकित रह गये।

एक स्थान पर रहते हुए भी मनुष्य अपनी आत्मा की शक्ति द्वारा दूरवर्ती क्षेत्रों में सन्देश पहुँचा सकता है। उपरोक्त घटनाओं में जाने-अनजाने सूक्ष्म शरीर ही सक्रिय रहा है। यदि सूक्ष्म शरीर की शक्ति को जाग्रत कर लिया जाये तो उससे जब चाहें तब मन चाहे करतब किये जा सकते हैं। १९२९ में अल्जीरिया में कैप्टन दुबो के साथ ऐसी ही घटना घटी, जिससे सूक्ष्म शरीर के अस्तित्त्व और उसकी शक्तिमत्ता का प्रमाण मिलता है। कैप्टन दुबो जब अल्जीरिया के एक छोटे से गाँव से कुछ रोगियों को देख कर लौटे रहे थे, गाँव का मुखिया अब्दुल उन्हें धन्यवाद देने के लिये उनके साथ-साथ आया, बातों ही बातों में अब्दुल ने कैप्टन से सूक्ष्म शरीर के अनेक चमत्कारों का उल्लेख कर दिया। दुबो ने अब्दुल की बातों में कोई रुचि नहीं दिखाई और उल्टे इसे गप्पबाजी कहा। इस पर अब्दुल ने कहा कि मैं इसे प्रमाणित कर सकता हूँ कैप्टन ने जब उसकी यह बात सुनकर भी अविश्वास से सिर हिलाया तो अब्दुल कुछ देर के लिए ध्यानस्थ हुआ और फिर आँखें खोलकर बोला—आप अपने पीछे मुड़कर देखिए। जैसे ही उन्होंने पीछे मुड़कर देखा तो उन्होंने दीवार पर एक ऐसी कलाकृति टंगी पायी जो उन्हें बहुत प्रिय थी और इस समय वहाँ से हजारों मील दूर पेरिस में उनके घर पर थी।

उसी दिन कैप्टन दुबो के पिता पियरे ने पेरिस की पुलिस में रिपोर्ट लिखाई कि उनके घर से १० लाख रुपये मूल्य की एक अद्वितीय कलाकृति चोरी चली गयी। पुलिस कमिश्नर पियरे के अच्छे मित्र थे, उन्होंने शिकायत मिलते ही अपने

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

सर्वश्रेष्ठ गुप्तचर कलाकृति की खोज में लगा दिये। कई दिन तक लगातार खोज चली, पर कलाकृति की खोज न की जा सकी। जिस कमरे में कलाकृति टंगी थी, उसमें किसी के जबरन प्रवेश करने या अँगुलियों के निशान नहीं मिले थे। पियरे ने इस कलाकृति की चोरी की खबर अपने पुत्र को भी दी तब सारी बात जानकर कैप्टन दुबो, पुलिस कमिश्नर और अन्य अधिकारियों को भी बड़ा आश्चर्य हुआ।

इन घटनाओं के कारण जो अनेक देशों एवं अनेक लोगों के साथ घटी हैं, वैज्ञानिकों का ध्यान भी इस ओर जाने लगा है। विज्ञान भी यह सोचने के लिए विवश हुआ कि क्या स्थूल शरीर से परे भी मनुष्य का कोई अस्तित्त्व है, जो उसके सन्देशों को सुदूर क्षेत्रों में पहुँचाता है, तथा ऐसे-ऐसे काम कर डालता है जो शरीर द्वारा ही किये जा सकते हैं। बिना किसी स्थूल माध्यम के एक मनुष्य के विचारों और सन्देशों को पहुँचाने की इस प्रक्रिया का नाम है, परामानसिक संचार (टैलीपेथी)। रूस के लेनिनग्राड विश्वविद्यालय में फिजियोलौजी विभाग के अध्यक्ष प्रो० लियोनिद वासिलयेव ने अभी कुछ समय पूर्व एक अनूठा प्रयोग किया है। स्मरणीय रूस का शासनतन्त्र धर्म, ईश्वर और आत्मतत्त्व की मान्यता को न केवल अनावश्यक मानता है वरन् उसे अफीम भी बताता है। फिर भी इस तरह की घटनाओं के कारण वास्तविकता की ओर उनका ध्यान गये बिना नहीं रहा। प्रो० वासिलयेव ने टैलीपैथी द्वारा कई मील दूर स्थित एक प्रयोगशाला में कार्यरत अनुसन्धानकर्त्ताओं को सम्मोहित कर दिया और वे लोग जो प्रयोग कर रहे थे, उनसे वह प्रयोग छुड़वाकर किसी दूसरे प्रयोग में लगा दिया। अनुसन्धानकर्त्ता वैज्ञानिक अनजाने ही परवश से होकर वासिलयेव के सन्देशों का पालन करने लगे और उन्हें यह भान तक नहीं हुआ कि वे क्या कर रहे हैं ? इस प्रयोग के द्वारा प्रो० वासिलयेव इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि एक व्यक्ति किसी दूसरे व्यक्ति को केवल अपने संकल्पों के द्वारा ही प्रभावित कर सकता है और उसे अपना आज्ञानुवर्ती बना लेता है। इसके लिए न किसी भौतिक माध्यम की आवश्यकता होती है, तथा न ही किसी और साधन की। यहाँ तक कि स्थान की दूरी भी इस प्रक्रिया में कोई अवरोध उत्पन्न नहीं करती है।

भारतवर्ष में स्वामी विशुद्धानन्द तथा स्वामी निगमानन्द जी भी अपनी ऐसी अनुभूतियों को प्रमाणित कर चुके हैं कहा जाता है कि तैलंग स्वामी को नंगे फिरने के अपराध में काशी के एक अँग्रेज अधिकारी ने जेल में बन्द करा दिया। दूसरे दिन वे जेल से बाहर टहलते हुए पाये गये। नाथ सम्प्रदाय के महीन्द्रनाथ, गोरखनाथ, जालन्धरनाथ, कणप्पा आदि के बारे में भी ऐसे ही वर्णनों का उल्लेख है।

आत्मा के अस्तित्त्व और शरीर न रहने पर भी उसका अस्तित्त्व बने रहने के बारे में पाश्चात्य दार्शनिकों और तत्त्व वेत्ताओं में से जिन्होंने इस सम्बन्ध में अधिक स्पष्ट समर्थन किया है उनमें राल्फ वाल्डो ट्राइन मिडनी, फ्लोवर, एलाव्हीलर, बिलकाक्स, विलयमवाकर, एटकिंसन, जेम्स, केनी आदि का विशेष रूप से उल्लेख किया जा सकता है। पुराने दार्शनिकों में से कार्लाइले इमर्सन, काण्ट, हेगल, थामस, हिलमीन डायसन आदि का मत भी इसी प्रकार का था।

जो कार्य हम स्थूल जीवन में करते हैं या मस्तिष्क में जैसे विचार भरे रहते हैं उनकी छाप सूक्ष्म शरीर पर पड़ती रहती है और वह छाप ही संस्कार बन जाती है। मनुष्य का चिन्तन और कर्म जिस दिशा में चलता रहता है कालान्तर में वही स्वभाव बन जाता है और बहुत समय तक जिस स्वभाव को अभ्यास में लाया जाता रहता है उसी तरह के संस्कार बन जाते हैं। यह संस्कार ही परिपक्व होकर शुभ अशुभ प्रारब्ध एवं कर्मफल का रूप धारण करते रहते हैं। इस प्रकार कर्मफल प्रदान करने की स्व-संचालित प्रक्रिया भी इसी सूक्ष्म शरीर से सम्पन्न होती रहती है।

जोहानीज वर्ग (अफ्रीका) का एक गड़रिया बकरियाँ चरा कर लौट रहा था। उसने एक झाड़ी के पास खों-खों कर बबून-बँदरिया देखी लगता था वह बच्चा अपने माँ-बाप से बिछुड़ गया है। गड़रिया उसे अपने साथ ले आया और जोहानीज वर्ग के एक औद्योगिक फार्म के मालिक को उपहार में दे दिया।

सामान्यतः सृष्टि का विज्ञान सम्मत नियम यह है कि कोई भी जीव अपने माता-पिता के गुणसूत्रों क्रोमोसोम्स से प्रभावित होता है। शरीर के आकार-प्रकार से लेकर आहार-विहार और रहन-सहन की सारी क्रियायें मनुष्य ही नहीं जीव-जन्तुओं में भी पैतृक होती हैं। इस नियम में थोड़ा बहुत अन्तर तो उपेक्षणीय हो सकता है पर असाधारण अपवाद उपेक्षणीय नहीं हो सकते जो संस्कार सैकड़ों पीढ़ी पूर्व में भी सम्भव न हों, ऐसे संस्कार और जीव-जन्तुओं के विलक्षण कारनामे भारतीय दर्शन के पुनर्जन्म और जीव द्वारा कर्मवश चौरासी लाख योनियों में भ्रमण के सिद्धान्त को ही पुष्ट करते हैं।

अफ्रीका की जिस बबून बँदरिया की घटना प्रस्तुत की जा रही है उसमें असाधारण मानवीय गुणों का उभार उस औद्योगिक फार्म में पहुँचते ही उसकी आयु के विकास के साथ प्रारम्भ हो गया। उसे किसी से कोई प्रशिक्षण नहीं मिला, फिर उसमें, उस विलक्षण प्रतिभा का जागरण कहाँ से हुआ जिसके कारण वह इस परिवार की अन्तरंग सदस्या बन गई ? आज के विचारशील मनुष्य के सामने यह एक जटिल और सुलझाने के लिये बहुत आवश्यक प्रश्न है।

बँदरिया का नाम आहला रखा गया। फार्म—मालिक एस्टन को पशुओं से बड़ा लगाव है उनकी उपयोगिता समझने के कारण ही उन्होंने फार्म के भीतर ही एक पशुशाला भी स्थापित की है। उसमें गायें, बछड़े, बछड़ियाँ, कुत्ते, बकरियाँ आदि दूध देने वाले पशु भी पाले हैं, उनसे उनकी अच्छी आय भी होती है और बचे समय के उपयोग का साधन भी। पशुओं को चराने और उनकी देख-रेख के लिये एक नौकर रखा गया था। यह बँदरिया भी उसे ही देख-रेख के लिये दे दी गई।

नौकर उसे साथ लेकर गौ-चारण के लिये जाता था धीरे-धीरे उसको अभ्यास हो गया। एक दिन किसी कारण से अपने गाँव चला गया उस दिन बिना किसी से कुछ कहे ठीक समय पर बँदरिया भेड़-बकरियों को बाड़े के बाहर निकाल ले गई और दोनों कुत्तों की सहायता से उन्हें दिन भर चराती रही। उसने चरवाहे का नहीं कुशल चारवाहे का काम किया। भटके

हुये मेमनों को उनके माता-पिता तक बगल में दाबकर पहुँचाकर, जिनके पेट आधे भरे रह गये उन्हें हरी घास वाले भू-भाग की ओर घेरकर पहुँचा कर उसने अपनी कुशलता का परिचय दिया। शाम को कुछ ऐसा हुआ कि एक बकरी का एक बच्चा तो जाकर स्तनों में लगकर दूध पीने लगा, दूसरा कहीं खेल रहा था। आहला ने देखा कि वह अकेला ही सारा दूध चट किये दे रहा है उसने उसे पकड़कर वहाँ से अलग किया। दूसरे बच्चे को भी लाई तब फिर दोनों को एक-एक स्तन से लगाकर दूध पिलाया। मालिक यह देखकर बड़ा खुश हुआ। उसने चरवाहे को दूसरा काम दे दिया, तब से आहला लगातार १६ वर्ष तक चरवाहे का काम करती आ रही है। इस अवधि में उसने पशुओं की सुरक्षा, स्वास्थ्य, रख-रखाव में ऐसे परिवर्तन और नये प्रबन्ध किये हैं जिन्हें देखकर लगता है मानो वह पूर्व जन्म में कोई गड़रिया रही हो और उसने भेड़-बकरियाँ चराने से लेकर उनकी व्यवस्था तक का सारा काम स्वयं किया हो।

वह शिकारी जन्तुओं से मेमनों की रक्षा करती है। शाम को हर एक पशु की गणना करती है। कोई पशु बिछुड़ गया हो, कोई मेमना कहीं पीछे रह गया हो तो वह स्वयं जाकर उसे ढूँढ़कर लाती है। फुरसत के समय उनके शरीर के जुयें मारने से लेकर छोटे-छोटे मेमनों के साथ क्रीड़ा करने की सारी देख-रेख आहला स्वयं करती है। उसे देखकर जोहानीज वर्ग के बड़े-बड़े वकील और डॉक्टर भी कहते हैं—इस बँदरिया के शरीर में यह कोई मनुष्य आत्मा है। कदाचित् उन्हें पता होता कि जीवनी शक्ति के रूप में आत्मा एक है दो नहीं, वह शक्ति इच्छा रूप में इधर-उधर विचरण करती और कभी मनुष्य तो कभी पशु-पक्षी और अन्य जीव के रूप में जन्म लेती रहती है।

योग वाशिष्ठ में इस तथ्य को बड़ी सरलता से प्रतिपादित किया गया है। लिखा है—

ऐहिकं प्राक्तनं वापि कर्म यद्चितं स्फुरत् ।
पौरषोऽसौ परो यत्नो न कदाचन निष्फलः ॥

३ ।९५ ।३४

अर्थात् पूर्व जन्म और इस जन्म में किये कर्म, फल-रूप में अवश्य प्रकट होते हैं। मनुष्य का किया हुआ यत्न, फल लाये बिना नहीं रहता है।"

कर्म की प्रेरणा मन की इच्छा और आवेगों से होती है इसलिये इच्छाओं को ही कर्मफल का रूप देते हुये शास्त्रकार ने आगे लिखा है—

कर्म बीजं मनः स्पन्दः कथ्यतेऽयानुभूयते ।
क्रियास्तु विविधास्तस्य शाखाश्चित्र फलास्तरोः ॥

—योग वासिष्ठ ३ ।९६ ।११

अर्थात्—मन का स्पन्दन ही कर्मों का बीज है, कर्म और अनुभव में भी यही आता है। विविध क्रियायें ही तरह-तरह के फल लाती है।

नये शरीर में आने के पश्चात् अपने पूर्व अनुभवों का विवरण लिखते हुये एक जाग्रत आत्मा की अनुभूति का वर्णन वेद में इस प्रकार आता है—

पुनर्मनः पुनरायुर्म आगन्पुनः प्राणः पुनरात्मा म आगन् पुनश्चक्षुः पुनः श्रोत्र म आगन्। वैश्वानरोऽदब्ध स्तनूपा अग्निनः पातुः दुरितादवधात् ॥ —यजुर्वेद ४ ।१५

अर्थात्—शरीर में जो प्राण शक्ति (आग्नेय-परमाणुओं के रूप में) काम कर रही थी मैंने जाना नहीं कि मेरे संस्कार उसमें किस प्रकार अंकित होते रहे। मृत्यु के समय मेरी पूर्व जन्म की इच्छायें, सोने के समय मन आदि सब इन्द्रियों के विलीन हो जाने की तरह मेरे प्राण में विलीन हो गई थी वह मेरे प्राणों का (इस दूसरे शरीर में) पुनर्जागरण होने पर ऐसे जाग्रत हो गये हैं जैसे सोने के बाद जागने पर मनुष्य सोने के पहले के संकल्प विकल्प के आधार पर काम प्रारम्भ कर देता है। अब मैं पुनः आँख, कान-आदि इन्द्रियों को प्राप्त कर जाग्रत हुआ हूँ और अपने पूर्वकृत कर्मों का फल भुगतने को बाध्य हुआ हूँ।

इस कथन से आधुनिक विज्ञान का 'ज़ीन्स-सिद्धान्त' पूरी तरह मेल खाता है। कोश के आग्नेय या प्रकाश भाग को ही प्राण कह सकते हैं। पैतृक या पूर्व जन्मों के संस्कार इन्हीं में होते हैं यदि प्राणों की सत्ता को शरीर से अलग रखकर उसके अध्ययन की क्षमता विज्ञान ने प्राप्त करली तो पुर्नजन्म और विभिन्न योनियों में भ्रमण का रहस्य भी वैज्ञानिक आसानी से जान लेंगे।

तथापि तब तक यह उदाहरण भी इस परिकल्पना की पुष्टि में कम सहायक नहीं। आहला बँदरिया उसका एक उदाहरण है बन्दरों में मनुष्य से मिलती-जुलती बौद्धिक क्षमता तो होती है पर यह कुशलता और सूक्ष्म विवेचन की क्षमता उनमें नहीं होती यह संस्कार पूर्व जन्मों के ही हो सकते हैं। आहला की यह घटना दैनिक हिन्दुस्तान और दुनिया के अन्य प्रमुख अखबारों में भी छप चुकी है। दिलचस्प बात तो यह है कि आहला एक बार कुछ दिन के लिये कहीं गायब हो गई। फिर अपने आप आ गई। इसके कुछ दिन पीछे उसके बच्चा हुआ। बच्चे के प्रति उसका मोह असाधारण मानवीय जैसा था। दैवयोग से बच्चा मर गया पर आहला उसे तब तक छाती से लगाये रही जब तक वह सूख कर अपने आप ही टुकड़े-टुकड़े नहीं हो गया। कुछ दिनों पूर्व पुनः गर्भवती हुई और उसकी खोई हुई प्रसन्नता फिर से वापस लौट आई।

बँदरिया ही क्यों अपने असाधारण कारनामों के लिए कैरेकस का एक तोता पिछले वर्ष ही विश्वविख्यात हो चुका है। इस तोते के बारे में लोगों का कहना है कि उसमें किसी कम्युनिस्ट नेता के गुण विद्यमान हैं। तोते को तोड़-फोड़ की कार्यवाही में सहयोग देने के अपराध में कैरेकस से २८७ मील दूर फाल्कन राज्य के सैनफ्रान्सिस्को स्थान पर बन्दी बनाया गया।

यह तोता क्यूबा के 'फिडल कास्ट्रो' विचार धारा के साम्यवादी गुरिल्लों को 'हुर्रा' कहकर उत्साहित किया करता और उन्हें क्यूबाई भाषा से मिलते-जुलते उच्चारण और ध्वनि में मार्गदर्शन किया करता, गुरिल्ले उसके संकेत बहुत स्पष्ट समझने लगे थे उन्हें इस तोते से बड़ी मदद मिलती थी। उन्होंने इसका नाम 'चुचो' रखा था। अब इस तोते की जीभ साफ की जा रही है और उसे नई विचार धारा में ढालने का प्रयास किया जा रहा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

है, किन्तु उसके संस्कारों में साम्यवाद की जड़ें इतनी गहरी जम गई हैं मानो उसने साम्यवाद साहित्य का वर्षों अध्ययन और मनन किया हो। तोते की यह असाधारण क्षमता इस बात का संकेत है कि अच्छे या बुरे कोई भी कर्म अपने सूक्ष्म संस्कारों के रूप में जीव का कभी भी पीछा नहीं छोड़ते चाहे वह बन्दर हो या तोता।

यह दो उदाहरण व्यक्तिगत है, एक और उदाहरण ऐसा है जो यह बताता है कि व्यक्ति ही नहीं यदि—सामाजिक परम्परायें विकृत हो जायें और किसी समाज के अधिकांश लोग एक से विचार के अभ्यस्त हो जायें तो उन्हें उन कर्मों का फल सामूहिक रूप से भोगना पड़ता है। सन् १९१० के लगभग की बात है दक्षिण पश्चिमी अमरीका सामाजिक अपराधों का गढ़ हो चुका था। माँसाहारी होने के कारण वहाँ के लोग उग्र स्वभाव के तो होते ही हैं। हत्या, डकैतियों की संख्या दिनों दिन बढ़ रही थी। ऐसे कई कुख्यात अपराधी मर भी चुके थे। उन्हीं दिनों वहाँ पाई जाने वाली भेड़ियों की 'लोबो' जाति में कई ऐसे खूँख्वार भेड़िये पैदा हुये जिनके आगे लोग हत्या और लूट-पाट करने वालों का भी भय भूल गये।

कोलोरेडो का एक भेड़िया इतना दुष्ट निकला कि उसने अपने थोड़े से ही जीवन काल में इतने पशु-मारे कि उनकी क्षति का यथार्थ अनुमान लगाने के लिए सरकारी सर्वेक्षण किया गया और यह पाया गया कि इस एक भेड़िये ने १०००२० डालर के मूल्य के पशुओं को केवल शौक-शौक में मार डाला। इसे लोग 'कोलोरेडो का कसाई' कहते थे और उसके असाधारण बुद्धि कौशल को देखकर मानते थे ऐसी चतुरता तो मनुष्यों में ही हो सकती है। प्रश्न यह है कि कोई खूँख्वार मनुष्य ही था जिसने कर्मफल या पूर्व जन्मों के संस्कारों के कारण भेड़िये के रूप में जन्म लिया।

१९१५ में ऐसे भेड़ियों का आतङ्क छा गया और तब सरकार को उन्हें मरवाने के लिए काफी धन भी खर्च करना पड़ा। 'जैक द रिपर' भेड़िये को सरकार ने इनाम देकर मरवाया। एक तीन टाँग का भेड़िया, जिसने केवल अपना शौक अदा करने के लिए लगभग १ हजार पशुओं का वध किया, वह भी ऐसे ही मारा गया। इसकी बुद्धि बताते हैं मनुष्यों से कम नहीं थी। धोखा देने संगठित रूप से आक्रमण करने, चकमा देने में वह आश्चर्यजनक चतुरता बरतता। एक बार टेड़ी रूजवेल्ट नामक एक व्यक्ति ने अपने नौ शिकारी कुत्तों के साथ इस कसाई का पीछा किया। भेड़िया भागता ही गया रुका नहीं, रात होने को आई कुत्ते रोक लिये गये। बस भेड़िया भी वहीं रुक गया। रात को कैम्प लगाकर टेडी रुक गया और उस कैम्प में घुसकर एक-एक करके भेड़िये ने नौवों कुत्तों को मार दिया और किसी को पता भी नहीं चल सका।

बँदरिया से लेकर तोते और भेड़िये तक के यह असाधारण संस्कार विश्व चिह्न हैं और वे यह बात सोचने के लिये विवश करते हैं कि क्या सचमुच ही कर्मफल जैसी कोई ईश्वरीय व्यवस्था भी है जो इच्छा-शक्ति (जीव) को सैकड़ों योनियों में भ्रमण कराती है घूमती रहती है ?

'दि ह्यमन परसनैलिटी एण्ड इट्स सरवाइवल आफ बाडीली डेथ' के लेखक सुप्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक श्री एफ० डब्लू० एच० मेयर्स ने एक ऐसी ही घटना दी है—यह घटना अमरीका के वर्जीनिया प्रान्त में प्रकाशित होने वाली मेडिको लीगल पत्रिका के जून १८९६ अङ्क में छपी थी और श्री ड्यूरी उसके लेखक थे। घटना इस प्रकार है—

"एक हृष्ट-पुष्ट व्यापारी जिसकी आयु लगभग ५० वर्ष रही होगी, व्यापार के लिये सामान लेने की दृष्टि से एक दूसरे शहर गया। उसे श्री के० कहते थे। बड़ा ही नेक ईमानदार सच्चरित्र और शान्तिप्रिय। काफी दिन शहर में रहकर उसने तिजारत की, मित्रों से मिला और सामान इकट्ठा किया। अन्त में सामान जहाज की एक कोठरी में बन्द कराया। टिकट भी बुक करा ली, किन्तु जब जहाज चलने लगा तो बहुत खोजबीन करने पर भी उस व्यापारी का कोई पता न चला।"

"६ माह बाद वह घर आया तो अत्यन्त दुर्बल और अशान्त-सा हो गया था। वस्त्र वही पहले वाले थे। जेब में जहाज की कोठरी की चाभी भी पड़ी थी। जब उसे होश आया तो उसने अपने आपको एक फलों वाली गाड़ी हाँकते हुए पाया। उसे यह जरा भी याद न था कि वह वहाँ कब, क्यों और कैसे आया उसे जहाज के कमरे में प्रवेश तक का स्मरण था, उसके बाद ६ माह तक उसने क्या किया, कहाँ रहा, इसका उसे कुछ भी याद नहीं रहा।"

इसी पुस्तक के पैरा २२५ में मेयर्स ने एक घटना दी है—एल्या जेड नाम की कन्या बड़ी सुशील और बुद्धिमान थी। काफी परिश्रम करने के कारण उसका स्वास्थ्य कुछ बिगड़ गया। इस अवस्था में २ वर्ष रहने के बाद एकाएक बालिका का व्यक्तित्व बदल गया। उसने कहा—मेरा नाम 'दुआई' है वह अमरीका के आदिवासियों की भाषा बोलने लगी, जिसका पहले उसे जरा भी ज्ञान नहीं था। इस अवस्था में उसकी फुर्ती प्रसन्नता देखते बनती थी। वह अनोखी और मनोरंजक बातें करती थी, जब उस शरीर में फिर एल्या जेड आ जाती थी तो वही पहले की-सी रुग्ण हो जाती थी।"

यह दो उदाहरण लिखने के बाद मेयर्स ने लिखा है "भौतिक मस्तिष्क से एक ही परिस्थिति में दो भिन्न-भिन्न व्यक्ति कैसे उत्पन्न हो सकते हैं, शरीर की बनावट में कोई अन्तर आये बिना स्मृति का बदल जाना और कोई नया व्यक्तित्व व्यक्त होना आत्मा के अस्तित्व का ही प्रमाण है। यह अनुसन्धान बताते हैं कि मनुष्य में आत्मा है और यह आत्मा मृत्यु के पश्चात् भी जीवित रहती है। यह बात चाहे साइन्स पढ़े-लिखे हों, चाहे साइन्स को मानने वाले हों, स्वीकार किये बिना कल्याण नहीं।

स्वप्न में विचार, ज्ञान और स्मृति भी आत्मा के अस्तित्व को ही प्रमाणित करते हैं। "फ्रायड लिखते हैं कि स्वप्न 'इच्छा पूरक' होते हैं" और भूतकालीन समस्याओं के लिये नाटक की तरह हैं अर्थात् मनुष्य दिन में जो कुछ सोचता और करता है, उनमें से कई बातें ऐसी होती हैं, जिन्हें वह बहुत चाहता है पर कर नहीं पाता चूँकि वह उन पर विचार कर चुका होता है।

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

इसलिये उस दमित विचार की फोटो अचेतन मस्तिष्क में जम जाती है और रात में जब मनुष्य सोता है, तब वही दृश्य उसे स्वप्न की तरह दिखाई देने लगते हैं।

आज स्वप्नों के बारे में लोगों की ऐसी ही या इसी से मिलती-जुलती मान्यतायें हैं पर आत्मविज्ञान की दृष्टि में स्वप्न मनुष्य जीवन की महत्वपूर्ण प्रक्रिया है। उसका सम्बन्ध भले ही अचेतन मन से हो पर वह होता सनातन अर्थात् जब से जीव का प्रादुर्भाव हुआ है तब से और आगे होने वाली घटनाओं से भी सम्बन्ध रखता है। इसलिये स्वप्न को भी आत्मा के अस्तित्व के प्रमाण के रूप में लिया जा सकता है। ऐसे स्वप्न जो उपरोक्त घटना की तरह काफी समय बाद होने वाली घटनाओं का भी पूर्वाभास करा देते हैं, उसके प्रमाण माने जा सकते हैं।

ब्वायल शिमला में अफसर थे। उन्होंने एक रात स्वप्न में देखा कि उनके श्वसुर की मृत्यु इंग्लैण्ड के ब्राइटन नगर में अमुक मकान में इस समय हुई। जबकि कुछ दिन पूर्व ही उनके स्वास्थ्य की कुशल-मंगल आई थी, इसलिये उन्हें इस तरह की कोई आशंका या चिन्ता भी नहीं थी, किन्तु बाद में उन्हें पत्र मिला जिसमें उनका स्वप्न बिल्कुल सत्य निकला।

भारतीय योगियों ने गहन योग साधनाओं के आधार पर इस विज्ञान के अनेक रहस्यों का ज्ञान प्राप्त किया है। यह योग साधनायें भले ही कठिन हों, सर्व सुलभ न हों पर यह एक प्रकार की निनान्त वैज्ञानिक प्रक्रिया है। साधना, विधानों को अपनाकर आत्मसत्ता की अनुभूति सामने खड़े हुए पुरुष को देखने की तरह ही अत्यन्त स्पष्ट रूप से की जा सकती है। इन अनुभूतियों के आधार पर ही हमारा उपनिषद्कार कहता है—

अंगुष्ठ मात्रः पुरुषो मध्य आत्मनि तिष्ठति ।
ईशानो भूतभव्यस्य न ततो विजुगुप्सते ॥

एतद्वै तत् ।

अंगुष्ठ मात्रः पुरुषो ज्योतिरिवाधूमकः ।
ईशानो भूतभव्यस्य स एवाद्य स उश्वः ॥

एतद्वै तत् ।

— कठोपनिषद द्वितीय अध्याय प्रथम बल्ली, १२।१३

अर्थात्—यह आत्मा ही वह परमेश्वर है, जिसे जान लेने पर मनुष्य किसी की निन्दा नहीं करता। वह परम पुरुष अंगुष्ठ मात्र देह गह्वर में स्थित होकर भूत, भविष्यवत् आदिकालों में सब पर शासन करता है। यही वह परमेश्वर है, जो आज भी है, कल भी रहेगा। वह अंगुष्ठ प्रमाण परिमाण वाला पुरुष निर्धूम ज्योति (अत्यन्त उज्जवल प्रकाश) के समान है एवं भूत, भविष्यत् सब कालों पर शासन करता है।

यदि ऐसी विराट् शक्ति देह में स्थित है तो उसकी अनुभूति क्यों नहीं होती है ? उसका कारण इसी उपनिषद के प्रथम अध्याय की तीसरी बल्ली में इस प्रकार बताया है—

एष सर्वेषु भूतेषु गूढात्मा न प्रकाशते ।
दृश्यते त्वग्रया बुद्धया सूक्ष्मया सूक्ष्मदर्शिनि ॥

तीसरी बल्ली, १२

यस्त्वविज्ञानवान् भवत्यमनस्कः सदाशुचः ।
न स तत्पदमाप्नोति संसारं वाधि गच्छति ॥

तीसरी बल्ली, ७

अर्थात्—परमात्मा सभी में आत्मा के रूप में देहधारियों में निवास करता हुआ भी अपनी माया से आच्छादित रहने के कारण प्रकट नहीं होता। केवल सूक्ष्मदर्शियों को ही सूक्ष्म बुद्धि द्वारा दर्शन देता है। अविवेकी बुद्धि और असंयत मन वाला अपवित्र हृदय मनुष्य जन्म-मृत्यु के चक्र में घूमता रहता है और परमपद को कभी प्राप्त नहीं कर सकता।

आत्मा—शरीर नहीं, शाश्वत और स्वतन्त्र द्रव्य

आत्म जिज्ञासु नचिकेता यमाचार्य से आग्रह करता है—

येयं प्रते विचिकित्सा मनुष्ये,
अस्तीत्येके नायमस्तीति चैके ।
एतद्विद्यामनुशिष्टस्त्वयाहं ।
वराणामेष वर स्तृतीयः ॥

—कठोपनिषद १।२०

भगवन् ! कुछ लोग कहते हैं आत्मा है, कुछ कहते हैं यह शरीर ही आत्मा है। मृत्यु के पश्चात् आत्मा का कोई अस्तित्व नहीं है। सही तत्व क्या है सो आप मुझे बतायें यह मेरा तीसरा वर है।

नचिकेता की तरह संसार का प्रायः हर व्यक्ति जिसने गहन तप साधना, योगाभ्यास, स्वाध्याय और दीर्घकालीन मनन चिन्तन के बाद आत्मतत्व की स्पष्ट अनुभूति नहीं कर ली इस विषय में द्विविधापूर्ण स्थिति में रहता आया है आत्मा का कोई अस्तित्व है भी अथवा नहीं, यह एक ऐसा महत्वपूर्ण प्रश्न है जिसे सुलझा न पाने वाले जीवन भर उलटी और अन्धकार पूर्ण दिशाओं में भटकते रहते हैं पर जो इस स्थिति के बारे में निश्चिन्त होकर आत्मानुभूति कर लेते हैं वे अपना जीवन धन्य मानते हैं।

इस सम्बन्ध में हिन्दू दर्शन की मान्यतायें बिलकुल स्पष्ट हैं। महर्षि चरक और इसी तरह के थोड़े ही विचारक हुये हैं जिन्होंने आत्मा को शरीर या द्रव्य की चेतना के अतिरिक्त कुछ नहीं माना जबकि अधिकांश तत्ववेत्ता उसे शरीर से भिन्न एक शाश्वत और स्वतन्त्र तत्व मानते रहे हैं। योगाभ्यास की ऐसी जटिल विधियाँ खोज निकाली गई हैं जो जीवित अवस्था में ही आत्मचेतना को शरीर से बाहर कर लेने और स्वेच्छा से किसी भी शरीर में प्रविष्ट होने के प्रमाण प्रस्तुत कर चुकी हैं। इस कथन की पुष्टि में

(१) जगद्गुरु शंकराचार्य ने मण्डन मिश्र की धर्मपत्नी भगवती भारती से शास्त्रार्थ करने के लिये कामशास्त्र का अध्ययन आवश्यक होने पर माहिष्मती नगर के राजा के शरीर में 'परकाया प्रवेश' किया था। वे प्रतिदिन अपनी आत्मचेतना को शरीर से निकाल लेते थे। शव जंगल में पड़ा रहता था और उनकी आत्मचेतना राजा के शरीर में बनी रहती थी। रात्रि के समय वे अपने निजी शरीर में आ जाते थे तब राजा का

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

शरीर शव हो जाता था। एक ही आत्मा द्वारा दो शरीरों के उपयोग के इन उदाहरण से आत्मा का पृथक अस्तित्व प्रतिपादित होता है।

(२) सन् १९३९ में पश्चिमी कमान के सैनिक कमाण्डेन्ट श्री एल० पी० फैरेल ने आसाम-बर्मा सीमा पर एक योगी को अपनी आँखों अपने वृद्ध शरीर से निकल एक स्वस्थ युवक के शव में प्रविष्ट होकर जीवित देखा था। यह घटना अखण्ड ज्योति मई १९७० के अङ्क पेज २९—३० में छपी है।

(३) सामान्यतः शरीर का जीवन श्वाँस क्रिया पर आधारित माना जाता है पर सन्त हरदास ने महाराज रणजीत सिंह तत्कालीन अँग्रेज जनरल वेन्टुरा और अनेक अँग्रेज पदाधिकारियों की उपस्थिति में एक माह की समाधि लगाकर दिखा दिया कि आत्मा का शरीर से उतना ही सम्बन्ध है जितना किसी मशीन से विद्युत शक्ति का। आत्मा के न रहने पर शरीर मृत हो जाता है।

यह सैकड़ों में एकाध उदाहरण है जब कि भारतीय धर्म-शास्त्र और तत्त्व दर्शन के पन्ने-पन्ने ऐसी घटनाओं से भरे पड़े हैं। भारतीय आचार्य इस सम्बन्ध में पूर्णतया आश्वस्त हैं और बताते हैं—

व्यतिरेकस्तद् भावाभावित्वान्नतूपलब्धिवत्।

वेदान्त ३।३।५४

अर्थात्—"शरीर और आत्मा एक नहीं हैं शरीर में रहते हुये भी आत्मा का अभाव हो जाने से शरीर को किसी बात का ज्ञान नही हो सकता।"

आत्मा की सत्ता और स्वतन्त्रता के सम्बन्ध में करोड़ों वर्ष पूर्व स्थापित ऋषियों की मान्यतायें अब विज्ञान की कसौटी पर भी सत्य सिद्ध होती जा रही है। इस सम्बन्ध में शरीर का निर्माण करने वाले जीव-कोषों को बड़ा महत्त्व दिया जा रहा है। जीवित शरीर और मृत शरीर में क्या अन्तर है इस सम्बन्ध में अमरीका की राकफेलर संस्था के डॉ० बेकाफ और डॉ० स्टेनली ने बहुत परिश्रम और खोजें की हैं। यद्यपि उन्होंने अपना अन्तिम मत प्रतिपादित नहीं किया पर यदि भारतीय तत्त्वदर्शन को सामने रखकर उन खोजों पर विचार किया जाये तो इन वैज्ञानिक उपलब्धियों से भी वही तथ्य प्रतिध्वनित होंगे जो भारतीय दर्शन से ध्वनित होते हैं।

इन वैज्ञानिकों का कथन है कि जीवित अणु रासायनिक प्रक्रिया के प्रभाव से स्वयं ही उत्पन्न होते हैं अर्थात् आत्मा शरीर की रासायनिक चेतना है पर वे अणु तभी तक उत्पन्न होते हैं जब तक कि वे जीवित पदार्थ (प्रोटोप्लाज्मा जिससे कि शरीर का निर्माण होता है) से सम्बन्धित रहते हैं। अर्थात् चेतना का सम्बन्ध चेतना से ही है इस कथन के अनुसार आत्मा शरीर से भिन्न है।

यह एक स्वयं सिद्ध सत्य है कि मृत्यु के अनन्तर शरीर की सारी तन्मात्रायें समाप्त हो जाती हैं जो प्राणी अभी तक चलता, फिरता, खाता, पीता, सूँघता, मल-उत्सर्जन करता, खाँसता—छींकता, जम्हाई लेता, सोचता, बोलता, परामर्श करता, प्रेम, दया, करुणा या घृणा, द्वेष और क्रोध व्यक्त कर रहा था मृत्यु होने के बाद शरीर ज्यों का त्यों होने पर भी अब वैसी क्रियायें क्यों नहीं करता ?

वैज्ञानिक के समक्ष प्रश्न यह था कि प्रत्येक अस्तित्व का भार होना चाहिए। यदि प्रकाश—कणों के इलेक्ट्रॉन अत्यधिक तीव्र गति से गतिशील न रहे होते और इस कारण उन्होंने अपने आप को गुरुत्वाकर्षण से मुक्त न कर लिया होता तो प्रकाश की मात्रा को भी तौलना सम्भव हो जाता। शक्तियों—चाहे वह विद्युत हो, प्रकाश, ध्वनि ताप या चुम्बक हो, की परिभाषा यह है कि उनमें भार नहीं होता, वे वस्तुयें प्रभाव से ही जानी जा सकती हैं। केवल प्रभाव से ही किसी वस्तु के विश्लेषण को मानने के लिये वैज्ञानिक तैयार नहीं होते इसी कारण विज्ञान और मनोविज्ञान दोनों में मेल नहीं हो पाता और एक सनातन प्रश्न इस बौद्धिक—प्रखरता के युग में भी अधूरे का अधूरा छूट जाता है।

फिर भी कुछ वैज्ञानिकों का ध्यान प्रसंगवश इधर गया और उन्होंने कुछ ऐसे कारण पाये जो आत्मा के अस्तित्व के प्रमाणीकरण में बड़े सहायक सिद्ध हुये। इंग्लैण्ड के डॉ० किलनर एक बार अस्पताल में रोगियों का परीक्षण कर रहे थे। एक मरणासन्न रोगी की जाँच करते समय उन्होंने देखा कि उनकी खुर्दबीन (माइक्रोस्कोप) के शीशे पर एक विचित्र प्रकार के रंगीन प्रकाश कण जम गये हैं जो आज तक कभी भी देखे नहीं गये थे। दूसरे दिन उसी रोगी के कपड़े उतरवा कर जाँच करते समय डॉ० किलनर फिर चौके उन्होंने देखा जो रंगीन प्रकाश कल दिखाई दिया था आज वह लहरों के रूप में माइक्रोस्कोप के शीशे के सामने उड़ रहा है। रोगी के शरीर के चारों ओर छः-सात इंच परिधि में यह प्रकाश फैला था उसमें कई दुर्लभ रासायनिक तत्त्वों के प्रकाश-कण भी थे। उन्होंने देखा जब-जब वह प्रकाश मन्द पड़ता है तब-तब उसके शरीर और नाड़ी की गति में शिथिलता आ जाती है। थोड़ी देर में एकाएक प्रकाश-पुंज विलुप्त हो गया। अब की बार जब उन्होंने नाड़ी पर हाथ रखा तो पाया कि उसकी मृत्यु हो गई है। डॉ० किलनर अनुमान करते रहे कि आत्मचेतना कोई प्रकाश जैसा द्रव्य है और वह शरीर से पृथक द्रव्य और गुणों वाला है इसमें कुछ सन्देह नहीं।

पीछे डॉ० किलनर ने यह घटना कई पत्र-पत्रिकाओं और अखबारों में छपवाई। वैज्ञानिक की बात कोई अन्धविश्वास नहीं हो सकती इसलिये दूसरे वैज्ञानिकों का भी ध्यान उधर गया। इस घटना को अमरीका के वैज्ञानिक डॉक्टर विलियन मैग्डूगल ने बहुत महत्त्व दिया। उन्होंने एक ऐसे तराजू का निर्माण किया जिसमें पलँग के साथ एक आदमी का भार भी तोला जा सकता हो और बाल जितनी सूक्ष्म वस्तु का भी भार लिया जा सकता हो। एक बार एक मरणासन्न रोगी पहुँचा। उन्होंने उसे उसी तराजू के एक पलड़े पर बिस्तर सहित लिटा दिया और प्रत्येक स्थिति में उसके सूक्ष्म भार के अन्तर को भी अलग कागज पर अंकित करते रहे। जैसे ही रोगी के प्राण निकले यन्त्र की सुई एक औंस (आधी छटाँक) कम वाले चिह्न पर आकर स्थिर हो गई। इससे यह सिद्ध हो गया कि चेतना चाहे किसी भी द्रव्य से बनी हो पर उसके सूक्ष्म शरीर का भी

भार हो सकता है। अन्य रोगियों की परीक्षा करने पर यह भार डॉ० मैग्डूगल ने १/४ औंस से लेकर डेढ़ औंस तक पाया। जितना वजन कम मिला यह पाया गया कि वह व्यक्ति उतना ही बुद्धिमान, विद्वान और गुण सम्पन्न रहा है जबकि भार की अधिकता वाले गुणों की दृष्टि से निम्न स्तर के व्यक्ति थे। ऐसे प्रयोग लास ऐन्गिल्स के डॉ० ट्वाइनिंग और कार्नल विश्व-विद्यालय के डॉ० ओटोरान ने भी किये उनकी मान्यतायें भी ऐसी ही हैं।

प्रकाश कणों या दिव्य-ज्योति के रूप में प्रवाहमान आत्मा के बारे में भारतीय तत्त्वदर्शियों के यह कथन कि आत्मा (१) सनातन है, (२) आत्मा सर्वव्यापी है, (३) आत्मा स्वाधीन है। पर कर्म बन्धनों में बँधा होने के कारण वह शरीरों में आया जाया करता है अब विज्ञान के भी प्रतिपाद्य विषय बन गये हैं। अमरीका की हार्वर्ड यूनिवर्सिटी के वैज्ञानिक डॉ० जेम्स वाट्सन और इंग्लैण्ड की कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी के डॉ० फ्रान्सिस क्रिक ने जीवित-कोश (सेल—अर्थात् जीवित द्रव्य का छोटे से छोटा टुकड़ा जिससे शरीर बनता है) के नाभिक (न्यूक्लियस) में ही ज्ञान व संस्कार—गुणसूत्र (क्रोमोसोम) पाये जाते हैं यह पैडीदार और बीच-बीच डोरी में लगी गाँठों की तरह होते हैं। इन गाँठों को जीन्स (संस्कार सूत्र) कहते हैं। नाभिक प्रकाश तत्त्व है और उसी में जीवन तत्त्व होना उसका प्रकाश पुंज होना प्रमाणित करता है यही निकल जाने से शरीर निष्प्राण हो जाता है। इससे सिद्ध है कि वह पदार्थ से पृथक अस्तित्व वाला है।

मनुष्य शरीर में ६०० खरब जीवित कोश पाये जाते हैं इन कोशों में जितने जीन्स होते हैं उनकी लम्बाई एक 'कोश' में ५ फुट तक हो सकती है। ६०० खरब कोशों में जीन्स की लम्बाई ३००० खरब फुट होगी यह एक अनुमानित लम्बाई है वास्तविकता तो अनन्त है यदि अपना ज्ञान इस चेतना के सूक्ष्म में स्थिर कर दिया जाये तो मनुष्य अपने आपको विश्वव्यापी चेतना के रूप में ही पायेगा। इसी का नाम आत्मानुभूति या आत्म-साक्षात्कार है, यह स्थिति कठिन अभ्यास से ही बन पाती है जब तक मनुष्य अपने इस विराट् स्वरूप को नहीं पहचानता और भौतिक पदार्थों के सुख की इच्छा किया करता है तब तक वह जीव है, बन्धन में पड़ा हुआ मानवेतर योनियों में भ्रमण करता रहता है आत्मा में स्थिर हो जाने का कदाचित् अवसर मिल जाता है तो यही जीव युग-युगान्तरों के कल्मष-काषाय धोकर इसी शरीर से स्वर्ग और मुक्ति का रसास्वादन करता हुआ अपना पारमार्थिक लक्ष्य पूरा करता है।

आत्मशक्ति का कुछ ठिकाना नहीं ?

४२ वर्ष पूर्व सन् १९२७ की बात है, एक दक्षिणी साधु कलकत्ता जा रहे थे। सम्भवतः उनके पास उपयुक्त टिकट नहीं था, इसलिये टिकट चेकर ने उन्हें बीच के ही एक स्टेशन पर उतार दिया। यह समाचार कलकत्ते से प्रकाशित होने वाले 'स्टेट्समैन' में भी छपा था।

यह तो साधुओं की अकारण बाढ़ ने योग की प्रतिष्ठा घटाई है, अन्यथा योग विशुद्ध विज्ञान है। भौतिक विज्ञान में जो महत्ता ताप, विद्युत, प्रकाश शब्द, चुम्बक आदि शक्तियों की है, आत्म-शक्ति का स्वरूप और महत्ता उससे हजारों गुना अधिक है। योगी शक्ति का पुंज होते हैं, तब जबकि उन्होंने वस्तुतः योग अष्टाँग नियमों—(१) यम, (२) नियम, (३) आसन, (४) प्राणायाम, (५) प्रत्याहार, (६) ध्यान, (७) धारणा और (८) समाधि का अभ्यास किया हो। जिस प्रकार जनरेटर से विद्युत उत्पन्न करते हैं, उसी प्रकार शरीर रूपी मशीन में उक्त साधनों का अभ्यास करने से आत्मा की शक्ति के अनन्त स्रोत जाग पड़ते हैं। यह शक्ति जिस किसी योगी के पास होगी, वह निर्भय होगा, निष्काम होगा, मुक्त होगा संसार के किसी भी व्यक्ति का उस पर प्रभाव न होगा वरन् वह सब का स्वामी, देवतुल्य होगा।

शरीर तो सबके एक से ही होते हैं, इसलिये योगी की पहचान शरीर से नहीं की जा सकती। आत्मशक्ति का परिचय ही उसकी असली पहचान है। साधु अपमानपूर्वक निकाल दिये गये। यद्यपि वे स्वयं रेल से उतरने को तैयार थे पर टिकट कलेक्टर ने कुछ ऐसी अपमानजनक भारतीय साधु और योग-विद्या पर आक्षेप करने वाली बातें कह दीं कि साधु का स्वाभिमान जाग गया। क्रुद्ध नहीं हुये वे। क्रोध आता तो वे टिकट कलेक्टर को पहले नष्ट करते पर उन्होंने ऐसा न कर भारतीय योग-विद्या का गौरव प्रदर्शित करके ही उसके दम्भ को चकनाचूर करने का निश्चय किया।

सन्त रेलगाड़ी से उतर कर एक खम्भे के सहारे बैठ गये। किसी से कुछ बोले नहीं। निश्चल निस्तब्ध मुद्रा में बैठे साधु की दृष्टि एकटक इंजन के पहियों में लगी हुई थी।

गार्ड ने हरी झण्डी दिखाई, सीटी बजाई, ड्राइवर ने एक्सीलेटर दाबा पर गाड़ी स्टार्ट न हुई। सोचा ब्रेक न जाम हो गये हों, उन्हें देखा—खुले पड़े थे। इंजन के एक-एक पुर्जे की जाँच कर ली गई, कहीं कोई खराबी नहीं। गार्ड हरी झण्डी दिखाता रहा, गाड़ी लाल झण्डी। वह टस से मस न हुई ड्राइवर सारी शक्ति लगाकर हार गया।

दो घन्टे तक यही स्थिति रही। स्टेशन पर तहलका मच गया, हेडक्वार्टर को फोन किया गया, फिटरों ने लाइन की जाँच कर ली गई, कहीं रत्ती भर त्रुटि न निकली। इसी बीच किसी व्यक्ति की दृष्टि उन महात्मा पर पड़ी। उनकी आँखों से तीव्र ज्योति इंजन पर पड़ रही थी। लोगों को अब कारण समझते देर न लगी। अधिकारीगण उन सज्जन को आगे लेकर साधु के पास आये उन्हें प्रणाम कर क्षमायाचना की, उठाया और आदरपूर्वक गाड़ी में बैठाया और तब गाड़ी ऐसे स्टार्ट हो गई, जैसे वह इसी की प्रतीक्षा में थी।

जड़ प्रकृति को नियन्त्रण में रखने और उस पर स्वामित्व स्थापित करने की जो सामर्थ्य भौतिक शक्तियों में नहीं, वह आत्मा के अन्तराल में भरी पड़ी है, हम भी चाहें तो योग के अष्टाँग नियमों का अभ्यास कर उस शक्ति की न्यूनाधिक मात्रा की अनुभूति और उपलब्धि कर सकते हैं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

संसार नाचता है एक अँगुली के इशारे पर

अगस्त १९६५ की बात है, बम्बई में एक फ्रान्सीसी परामनोवैज्ञानिक श्री पाल गोल्डीन आये थे। गोल्डीन का कथन है—मनुष्य जितना व्यक्त है उतना ही नहीं है, वरन् वह अव्यक्त भी बहुत अधिक है। और इस शरीर में व्याप्त यह जो अव्यक्त अतीन्द्रिय (छठी शक्ति या सिक्स्थ सेन्स) सत्ता है वह इतनी बलवान, साधनों सामर्थ्यों से परिपूर्ण है कि उसे पूर्णरूप से जान लेने और प्राप्त कर लेने वाला मनुष्य कभी दुःखी और अभावग्रस्त नहीं रह सकता वह चाहे तो सारे संसार को एक अँगुली के इशारे पर नचा सकता है।

आज की दुनिया तो तर्कवाद पर विश्वास करती है। श्रद्धा और विश्वास के लिये अब लोगों के अन्तःकरण में स्थान कहाँ रहा ? आज की अशान्ति, बढ़ते अपराध, द्वेष, क्लेश और वैमनस्य परस्पर विश्वास के अभाव में ही बढ़ रहे हैं। लोग तो त्यागी तपस्वी आत्माओं द्वारा लिखित वेद-पुराणों पर विश्वास नहीं करते पाल गोल्डीन की बात को ही कैसे मान लेते ? कुछ लोगों ने कहा—आप पचीस-पचास लोगों को ही नचा कर दिखा दीजिये हम मान लेंगे हाँ सचमुच आत्मा नाम की कोई शक्तिशाली सत्ता मनुष्यदेह में है।

श्री पाल गोल्डीन बोले—देह में नहीं यह कहो प्राणिमात्र सब वही एक आत्मा के विभिन्न रूप हैं। आत्मा को जानना और प्राप्त करना ही मनुष्य शरीर में अवतरण का मूल उद्देश्य है। चमत्कार और प्रदर्शनों से अहंकार बढ़ता है, आत्मकल्याण में बाधा उत्पन्न होती है, आप सब लोग तो भारतीय हैं यह बातें तो आप सबने पढ़ी हैं और जानते हैं कि आत्मा को प्राप्त सिद्ध योगी उस शक्ति से संसार का अपने धर्म, जाति, संस्कृति और मानवता का कल्याण करते हैं। चमत्कार के छलावे में नहीं आते फिर आप लोग ही प्रदर्शन की बात करते हैं। अच्छा चलो यही तो होगा कि मेरी शक्ति थोड़ा व्यर्थ चली जायेगी पर आप भारतीय लोगों ने ही आत्मा पर विश्वास न किया, उसका उद्बोधन, उसकी प्राप्ति न की तो मानवता की लोककल्याण की पारमार्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति कौन करेगा। इसलिये जाओ मंजूर किया—१५ अगस्त के दिन उस शक्ति का प्रदर्शन भी करके दिखायेंगे।

"१५ अगस्त को माटुँगा बम्बई के षणमुखानन्द हाल में फ्रांस के परामनोवैज्ञानिक आत्मशक्ति का प्रदर्शन करेंगे" यह समाचार अखबारों, पर्चों, पत्र-पत्रिकाओं द्वारा सारे शहर में आँधी तूफान की तरह फैल गया। उस दिन हजारों लोग यह प्रदर्शन देखने षणमुखानन्द हाल में उपस्थित हुए। ठीक बारह बजे जब हाल खचाखच भर गया और भीड़ को रोकना कठिन हो गया तो हाल के दरवाजे बन्द कर दिये गये। अब रंगमंच पर थे पाल गोल्डीन और उनके सामने विस्मय विस्फारित बम्बई के हजारों नागरिक।

"आत्मशक्ति पर विश्वास नहीं करते, जिन्हें मनुष्य की भौतिक शक्ति पर ज्यादा विश्वास है वे लोग कृपा कर इधर स्टेज में आ जायें" पाल गोल्डीन ने सामने आते ही कहा। एक-एक करके सैकड़ों लोग जिन्हें अपने मनोबल पर बड़ा विश्वास था वहाँ पहुँच गये। पाल गोल्डीन ने एक बार उन सब की ओर देखा—हाल में ऐसी निस्तब्धता छा गई जैसी नील आर्मस्ट्राँग ने चन्द्रमा पर उतर के भी न पाई होगी। अब गोल्डीन ने कहा—आप लोग देख रहे हैं यह सब लोग अपने को बड़ा शक्तिशाली मानते हैं। अभी में चुटकी बजाऊँगा और आप लोग देखेंगे कि इनमें से एक भी स्टेज पर खड़ा नहीं रहता। इतना कहकर उन्होंने माइक पर चुटकी बजाई। चुटकी बजाना था कि जैसे बिल्ली को देखकर चूहे भागते हैं, स्टेज पर चढ़े सभी व्यक्ति उतर कर भागे जैसे उनको भीतर से किसी ने बलात् डरा दिया हो। बात ही बात में सचमुच स्टेज खाली हो गया।

हम नहीं जानते शरीर में साँस कौन लेता है। हम नहीं जानते विचार कहाँ से उत्पन्न होते हैं। आँखों का मिचकाना (पलकों का खुलना बन्द होना), नाड़ी की गति, हिचकी, जम्हाई जैसी क्रियायें कहाँ से प्रेरित होती हैं, इन छोटी-छोटी क्रियाओं पर नियन्त्रण भी नहीं कर सकते फिर स्थूल शरीर को ही सब कुछ मानना उचित नहीं। पाल गोल्डीन आज उस मौलिकतावादी मान्यता को ही पराजित करने को खड़े हुए थे। उन्होंने एक बार उपस्थित कई हजार लोगों की ओर देखा और बोले—यहाँ तक आने में सब लोग बहुत थक गये हैं अब थोड़ा आराम कर लीजिये यह कहते-कहते उन्होंने चुटकी बजाई और जैसे बाजीगर के इशारे पर बन्दर कला दिखाता है वैसे ही हाल में उपस्थित विशाल जनसमूह बात की बात में इस तरह अपनी-अपनी कुर्सियों पर ढेर हो गया मानो उनमें से हर व्यक्ति १४-१४ घन्टे के परिश्रम से इस तरह थक कर चकनाचूर हो गया हो कि अपने आप को सम्भालने की शक्ति भी समाप्त हो गई हो। श्री पाल गोल्डीन थोड़ी देर में दुबारा चुटकी न बजाते तो बहुत सम्भव था लोगों के दिलों की धड़कन बन्द हो जाती। चुटकी बजाते ही फिर सब लोग स्वस्थ होकर अपने-अपने ठिकानों पर सम्भलकर बैठ गये।

यह सब मैं कोई हिप्नोटिज्म या बाजीगरी नहीं कर रहा। श्री पाल गोल्डीन बोले—"आत्मा की शक्ति इतनी प्रचंड और प्रखर है कि उसके सहारे कोई चाहे तो हजारों लाखों मील दूर बैठे व्यक्ति से ऐसे सम्पर्क स्थापित कर सकता है, लोगों को प्रेरित और प्रभावित कर सकता है, एक बार में सैकड़ों को रोग-मुक्त कर सकता है, रोगी बनाना तो क्या मार भी सकता है। आप सब लोग भारतीय हैं, अष्ट सिद्धियों के बारे में सबने सुना होगा वह तो जादू नहीं वरन् आत्मशक्ति के सामान्य गुण मात्र होते हैं।' इसके बाद उन्होंने २५-३० लोगों को जिनमें महिलायें भी थीं ऊपर स्टेज पर बुलाया और सब से बारी-बारी से पूछा, "आपको कोई चर्मरोग, खाज, खुजली, दाद वगैरह तो नहीं है ?' प्रायः सभी ने इनकार किया। जो नहीं बोले उन्हें नीचे उतार दिया। फिर हाथ की चुटकी बजी और जैसे सिनेमा का पर्दा उठाते ही कोई प्रहसन दृश्य सामने आ जाता है—सब के सब कोई हाथ, कोई पाँव, कोई नाक तो कोई गर्दन इस तरह खुजलाने लगे जैस उन्हें खुजली की पुश्तैनी बीमारी रही हो।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

यदि पाल गोल्डीन दुबारा चुटकी न बजाते तो बहुत सम्भव था लोग खुजला खुजलाकर अपना खून निकाल लेते।

एक सीन का पटाक्षेप और दूसरा प्रारम्भ। पाल गोल्डीन ने उन्हीं लोगों में से एक से पूछा—"आप गाना जानते हैं ?" 'नहीं' उत्तर मिला। दूसरे से पूछा—"आप नृत्य कर सकते हैं ?" उत्तर मिला—'नहीं।' इस तरह एक-एक करके किसी से हारमोनियम बजाने की बात पूछी तो किसी से सरोद वायलिन, वंशी, तबला ओर झाँझ की। सबने इन्कार किया तो सबको सम्मोहित से करते हुए पाल गोल्डीन ने हँसी की—"तब तो भाई आज का संगीत कार्यक्रम फेल हो जायेगा—खैर कोई बात नहीं—जब तक आत्मा की शक्ति है घबराने की जरूरत नहीं।" इनके बाद उन्होंने आर्कस्ट्रे का सारा सामान स्टेज पर मँगाया और एक कोने में रख दिया। फिर एक चुटकी बजी और देखते ही देखते सारा सीन बदल गया। जो लोग अभी नाचने गाने से इन्कार कर रहे थे, गिटार और बायोलिन जिन्होंने हाथों से नहीं छुए थे वही लोग आगे बढ़े और एक-एक वाद्य उठाकर ऐसे बजाने लगे मानो वे किसी संगीत विद्यालय के शिक्षक हों। एक क्षण में ही गाने वाले गाने लगे, नृत्य करने वाले नृत्य करने लगे। जितनी बार चुटकी बजी उतनी ही बार धुन बदली। फ्राँसीसी, अमेरिकी, भारतीय सभी तरह की धुनें और सभी तरह के नृत्य और गीत—दर्शक भी मुग्ध और अनोखे कलाकार भी। सारा काम यन्त्रवत् जैसे बिजली बटन दबाते ही जल पड़ती, उठाते ही बुझ जाती वैसे ही सारा दर्शक समाज पाल गोल्डीन की अँगुलियों के इशारे पर नाना प्रकार के करतब कर रहा था और गोल्डीन बताते जा रहे थे—"यह सब मेरी नहीं उस आत्मसत्ता की शक्ति से हो रहा है जो जन-जन के अन्तःकरण में व्याप्त नाना शरीरों, रूपों में अभिव्यक्त हो रहा है। जिसे जानना ही मनुष्य का जीवन-लक्ष्य है। जिसको जाने बिना मनुष्य बन्धनों से छुटकारा नहीं पाता। सच्चे सुख, शान्ति और संतोष की दात्री यह आत्मा ही है। उसे जानने का प्रयत्न म करने वाला अपना जीवन व्यर्थ ही गँवाता है।

पाल ने इस तरह के और भी अनेक करतब दिखाये, जो लोग जो काम नहीं करना चाहते थे उन्हें अन्तः प्रेरित करके उन्होंने उसे वह काम खुशी-खुशी करने को विवश करके दिखा दिया। कि मनुष्य को भौतिक सामर्थ्य नगण्य और तुच्छ है सर्व समर्थ तो आत्मा ही है। उन्होंने अन्त में लोगों से कहा—अब सब लोग एक-दूसरे को नये साल की मुबारकबाद देंगे और विदा हो जायेंगे, तो सबने चिल्लाकर कहा—अगस्त के महीने में नया साल कैसा ? तब पाल हँसे और बोले—बावलो ! आत्मा कोई मरने जीने वाला पदार्थ नहीं, उसके लिये समय का कोई प्रतिबन्ध नहीं उसके लिये हर क्षण सब कुछ नया है और आप लोग भी देखेंगे कि आज से सचमुच नया साल आरम्भ हो गया है। इसके बाद फिर चुटकी बजी फिर वही—जादू—अभी तक जो लोग मना कर रहे थे। वही एक-दूसरे को शुभकामनायें देने लगे सारे हाल में हलचल मच गई पाल ने चुटकी बजाई तब खामोशी आ पाई।

पाल जो अपने आपको पूर्व जन्म का भारतीय बताते हैं उन्होंने प्रश्न किया—आप लोगों ने क्या यह सब स्वेच्छा से किया—तो सब ने कहा—उन्हें यह तो पता रहता था कि हम अमुक काम कर रहे हैं पर क्यों और किसकी प्रेरणा से कर रहे हैं हम जान नहीं पाये।

प्रदर्शन समाप्त हो गया। लोग अपने घरों को लौट आये। आत्मा के प्रति लोगों में जिज्ञासायें उमड़ी और फिर शान्त हो गई क्योंकि यह आखिर प्रदर्शन ही तो था। जब तक अन्तःकरण से इतनी प्रखर जिज्ञासा न उत्पन्न हो कि मनुष्य शरीर नश्वर है अमर तो वह आत्मचेतना ही है, उसे ही प्राप्त करना चाहिये—तब तक ऐसे प्रदर्शन भी काम नहीं देते। आत्म-साक्षात्कार के लिये उत्कृष्ट अभिलाषा और वैराग्य तो अपने आप जगाना पड़ता है तब कहीं मनुष्य उसकी प्राप्ति के साधना पथ पर निष्ठा पूर्वक अग्रसर हो पाता है। यह समाचार १६ अगस्त में बम्बई के अधिकांश समाचार पत्रों में भी छपा था। २४ जुलाई १९६६ के धर्मयुग अङ्क में सभी फोटो देकर इस घटना को विस्तार से छापा गया था।

स्थूल से असंख्य गुना समर्थ

जो कुछ आँखों से दिखाई देता है उस स्थूल के परिणाम स्वल्प हैं और प्रभाव सीमित। उससे आगे गहराई में सूक्ष्म तक उतरना आरम्भ करते ही बहुमूल्य सम्पदाएँ उपलब्ध होने लगती हैं। धरती की ऊपरी परत कूड़े कंकर और धूल मिट्टी से ढकी रहती है, खोदना आरम्भ करते ही पानी से लेकर अनेकानेक बहुमूल्य खनिज सम्पदाएँ मिलती चली जाती हैं। सागर की ऊपर सतह पर प्रथम तो खारे पानी के अलावा कुछ मिलता ही नहीं मिलता भी है तो कोई और कचरे से भिन्न नहीं होता, पर गहराई में तलहटी तक जाने वाले गोताखोर उसमें से बहुमूल्य मोती, मूँगा, रत्न सम्पदा बटोर लाते हैं।

यह तो हुई स्थूल की स्थूल विशेषताएँ। प्रभाव की दृष्टि से भी स्थूल की शक्ति सामर्थ्य सीमित ही हैं। एक मिर्च खाने वाले का मुँह ही जलाती है, अन्य औरों पर उसका कोई असर नहीं पड़ता परन्तु वहीं मिर्च जलकर वायुभूत होती है तो आस-पास कई वर्ग मीटर के क्षेत्र में बैठे लोगों की नाक में छींक और सिर में दर्द पैदा करवा देती है। होम्योपैथी जैसे निरापद और स्थाई प्रभाव डालने वाली चिकित्सा पद्धति का आधार दर्शन भी सूक्ष्म परक है। होम्योपैथी इसी विज्ञान पर आधारित है कि वस्तु जितनी सूक्ष्माति सूक्ष्म हो जायेगी उतनी गुणकारी होती जायेगी। इसीलिए मूल औषधि के हजारवें लाखवें हिस्से तक उसका विभाजन किया जाता है और वह परिणाम में उतनी ही गुणकारी होती है।

कील दो वस्तुओं को जोड़ने में ही काम आती है। ज्यादा से ज्यादा उससे दीवार में गड्ढा किया जा सकता है अथवा किसी के चुभ जाने पर छोटा-सा घाव भर हो सकता है। पर उसका अरब-खरब का भी अरब-खरब वाँ मात्र परमाणु लाखों मनुष्यों को मारने, पहाड़ों को मिटा कर खाई बनाने और बड़े-बड़े राकेट चलाने, बिजली पैदा करने में समर्थ होता है। जिसे परमाणु शक्ति कहा जा सकता है। कील के उस सूक्ष्माति सूक्ष्म भाग की, जिसे परमाणु की सीमा रेखा में भी बाँधना सम्भव नहीं है। अन्तर्निहित ऊर्जा का केन्द्रीकरण किया जा सके

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

और ध्वंस कृत्य में लगाया जा सके तो उतने से ही इस समस्त भूमिण्डल का विनाश हो सकता है। स्मरणीय है अब तक किये जाने वाले परमाणु विस्फोटों में विस्फोट से उत्पन्न होने वाली परमाणु ऊर्जा का एक सीमित अंश ही प्रयुक्त हो सका है। अधिकांश तो तत्काल अन्तरिक्ष में विलीन हो जाता है। इस शक्ति का सृजनात्मक प्रयोग भी इतना व्यापक प्रभावोत्पादक और शक्तिशाली है कि उससे उतनी ही गर्मी मिल सकती है जितनी कि सूर्य से प्राप्त हो सकती है।

अब तक जड़ पदार्थों की सूक्ष्म सामर्थ्य का ही विवेचन किया गया, चेतन की सूक्ष्म सामर्थ्य उससे असंख्य गुना सामर्थ्यवान है। भारतीय ऋषियों ने आरम्भ से ही गाया है—**"अणोरणीयान महतो महीयान आत्मा गुह्यायां विहितो सृजन्तो।"** परन्तु इस तथ्य को कुछ वर्षों पूर्व तक कल्पना की उड़ान और वायवीय दर्शन भर समझा जाता था, परन्तु परामनोविज्ञान की अधुनातन शोधें इसी निष्कर्ष बिन्दु पर पहुँच रही हैं कि अदृश्य अतिसूक्ष्म चेतन सत्ता की सामर्थ्य कल्पना तथा अनुमान से परे है।

प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक वालकालियर ने कहा है कि भौतिकशास्त्र और जीवशास्त्र के क्षेत्र में आने वाले स्थूल शरीर के अतिरिक्त जीवधारियों का एक सूक्ष्म शरीर भी है जो अलौकिक से भरा पड़ा है। यह शरीर मृत्यु के बाद भी बना रहता है। सूक्ष्म की जब शोध चली तो मेटा साइकिक, साइकिक, पेरासाइकोलौजी, मेटा साइकोलौजी जैसे मनोविज्ञान की कितनी ही धारायें निकल पड़ीं और सूक्ष्म चेतना की अलौकिक सामर्थ्य पर्त दर पर्त निरन्तर खुलती जा रही है।

भारतीय मनीषियों ने अपने ढंग से इस तथ्य का पता काफी पहले ही लगा लिया था और योगसाधनाओं के रूप में व्यक्ति की रहस्यमयी क्षमताओं को शुद्ध, प्रखर, तथा विकसित बनाने की तकनीक विकसित कर ली थी। उन उपलब्धियों को अब तक चाहे जो कुछ कहा जाता रहा हो परन्तु ज्ञात इतिहास के आधुनिक युग में भी ऐसी असंख्यों घटनायें घटी हैं जो मनुष्य की अलौकिक अभौतिक सामर्थ्य को प्रमाणित करती है।

व्यक्तिगत जीवन में मनुष्य के सामान्य क्रियाकलाप भी संकल्पशक्ति के सहारे चलते हैं, संकल्पशक्ति को चेतना का ही स्फुरण कहना चाहिए इसे मनःशक्ति भी कहा जाता है और सूक्ष्म शरीर का एक नाम मानस शरीर भी है। मनःशक्ति के संकल्प शक्ति के साधारण प्रयोग हर कोई कर सकता है। उदाहरण के लिए रात को संकल्प करके सोया जाये कि सुबह तीन बजे उठना है तो ठीक तीन बजे ही आँख खुलती है। सामान्य व्यक्तियों की संकल्प शक्ति इससे अधिक विकसित नहीं हो पाती जैसे साधारणतया कुँआ खोदने के लिए खुदाई का क्रम पानी निकलने तक जारी रखा जाता है। आकस्मिक रूप से किन्हीं विशेष अवसरों पर संकल्प शक्ति का विस्फोट व्यक्ति से चमत्कारी काम भी करवा लेता है। उस स्थिति में शरीर की चाहे जो दशा हो संकल्प पूरे कर ही लिए जाते हैं। वर्ष १९७७ के २२ अगस्त की ही घटना है। मध्य प्रदेश राज्यपरिवहन निगम की एक बस नागपुर से इलाहाबाद जा रही थी। नागपुर से ही उसमें कुछ डाकू चढ़ गये।

जब बस नागपुर जबलपुर के बीच सबसे बेहड़ रास्ते से गुजर रही थी तभी एक डाकू ने रिवाल्वर तानकर ड्राइवर से बस रोकने का आदेश दिया। उस समय बस एक ऐसी सड़क से गुजर रही थी जिसके आस-पास बहुत नीची ढलान थी। आगे पुल था। अचानक बस रोकने से बस उन खाइयों में भी लुढ़क सकती थी और पुल पर पहुँचते नदी में भी गिर सकती थी ऐसी स्थिति में बस में बैठे सभी यात्री समाप्त हो जाते। डाकू इस बात को नहीं समझ रहे थे और उन्होंने ड्राइवर के पेट में गोली मार दी। गोली लगने पर भी ड्राइवर ने स्टियरिंग नहीं छोड़ा। जब बस नहीं रुकी तो डाकू ने दूसरी गोली ड्राइवर के सिर में मारदी। सिर और पेट से खून के फब्बारे छूट गये परन्तु ड्राइवर ने फिर भी स्टियरिंग नहीं छोड़ा। करीब एक किलोमीटर तक बस को चलाने के बाद, जब बस ने पुल पार कर लिया और सीधी सड़क पर पहुँच गई तो ड्राइवर ने ब्रेक दबाया और उसी समय निष्प्राण होकर स्टियरिंग पर लुढ़क गया।

सामान्यतः सिर और पेट में गोली लगने के बाद व्यक्ति की तत्काल मृत्यु हो जाती है परन्तु ड्राइवर के मन में बस में सवार यात्रियों को बचाने का संकल्प था परिणामस्वरूप उसने मृत प्राय स्थिति में भी अपना काम पूरा किया। इस संकल्प शक्ति को परामनोविज्ञानवेत्ताओं ने सूक्ष्म ऊर्जा का नाम भी दिया है। इस मानवीय ऊर्जा से ही दैनिक जीवन के क्रियाकलाप चलते हैं पर यह नहीं मान लेना चाहिए कि इसकी मात्रा इतने तक ही सीमित है। इस शक्ति को किसी प्रकार बढ़ाया जा सके तो चमत्कार जैसे लगने वाले कार्य भी बांये हाथ का खेल बन जाते हैं। योगीजन इस शक्ति को भले कार्यों में लगाते हैं और दुष्ट प्रकृति के लोग दुष्प्रयोजनों में। आग का भोजन बनाने और घर जलाने में कुछ भी प्रयोग किया जा सकता है।

एक रूसी महिला नेल्या मिखायलोव में सहसा यह शक्ति असामान्य रूप से विकसित हुई। नेल्या उन दिनों चल रहे युद्ध के समय मोर्चे पर घायल सैनिकों की परिचर्या सुश्रूषा का काम कर रही थी। युद्ध के मोर्चे पर वह स्वयं जाती और हताहत सैनिकों को चिकित्सा कैम्प तक पहुँचाने का कार्य करती। एक बार वह शत्रु पक्ष द्वारा छोड़ी गई गोली से घायल हो गयी। गम्भीर आहत स्थिति में उसे अस्पताल में भरती कराया गया और वहीं उसमें इच्छा शक्ति से वस्तुओं को हटाने गिराने की शक्ति अनायास प्राप्त हुई। मास्को विश्वविद्यालय के जीवशास्त्री एडवर्ड नोमोव ने नेल्या का परीक्षण किया। प्रयोगशाला में उसने मेज पर बिखरी माचिस की तीलियों को बिना हाथ घुमा कर जमीन पर गिरा दिया। फिर वही तीलियाँ काँच के डिब्बे में बन्द की गई। जीवशास्त्री को यह आशंका थी कि कहीं नेल्या कोई गुप्त टेकनीक का उपयोग तो नहीं कर रही है। नेल्या ने फिर हाथ घुमाया तो काँच के डिब्बे में बन्द तीलियाँ हिलने सरकने लगीं।

इसी तरह नेल्या ने मेज पर थोड़ी दूर पड़े रोटी के टुकड़े पर अपना ध्यान केन्द्रित किया तो वह टुकड़ा खिंच कर नेल्या

के पास आ गया। नेल्या का भली-भाँति परीक्षण किया गया। उसने एक चम्मच को बिना हाथ लगाये वहीं बैठे-बैठे बरतन से निकाल कर अपनी मेज पर खींच लिया। बरतन उस मेज से लगभग दो मीटर दूर रखा था। चम्मच इतनी दूर पर हवा में तैरता हुआ-सा आया। जैसे कोई व्यक्ति हाथ में पकड़ कर उसे वहाँ ला रहा हो। इन सारे परीक्षणों और प्रयोगों के बाद जीवशास्त्री एडवर्ड नोमोव तथा उनके अन्य सहयोगी इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि नेल्या के मस्तिष्क में विद्युत शक्ति-सी बाँधती है और उसकी देह से चुम्बकीय शक्ति निकलती है जबकि नेल्या का कहना था वह इच्छा और उस इच्छा पर अपना ध्यान केन्द्रित करने के अलावा कुछ नहीं करती।

तो क्या संकल्प और इच्छा शक्ति इतनी अद्‌भुत तथा चमत्कारी है। शास्त्रों ने कहा है **"संकल्प मयोऽयं पुरुष"** यह पुरुष (शरीर पुर में रहने वाली चेतन) संकल्प मय है।

संकल्प को ही ब्रह्म की शक्ति भी कहा जाता है। आप्त बचन है—एकोऽहं बहुस्यामः ब्रह्म ने संकल्प किया कि एक से अनेक हो जाऊं और वह एक से अनेक हो गया। संकल्प शक्ति को सूक्ष्म का चमत्कारी विज्ञान कहा जाता है। प्राचीन काल में ऋषियों महर्षियों ने इसी सूक्ष्म तत्त्व की शोध और खोज में अपना समय लगाया तथा आधुनिक काल के यशस्वी भौतिकविज्ञान की अपेक्षा अनेक गुना लाभों से लाभान्वित हुए। यह तो असंदिग्ध तथ्य है कि मनुष्य शरीर में अनेकों प्रकट और सूक्ष्म शक्तियाँ विद्यमान है। योग साधना द्वारा उन शक्ति केन्द्रों को, चक्रों को, ग्रन्थियों और मातृकाओं को ही जाग्रत किया जाता है तथा अलौकिक सिद्धि सामर्थ्य प्राप्त की जा सकती है। योगसाधना द्वारा व्यक्ति की सीमित चेतना को विराट की असीम चेतना के साथ उसी प्रकार सम्बन्धित कर दिया जाता है जिस प्रकार किसी रेडियो के यन्त्र आकाश में तैरने वाली ध्वनि तरंगों से सम्बन्धित होते हैं।

यह तो स्पष्ट है ही कि मनुष्य का अस्तित्व के दिखाई पड़ने वाले बाहरी कायकलेवर तक ही सीमित नहीं है बल्कि वह उससे बहुत सूक्ष्म, चेतन और शक्तिशाली है। आवश्यकता इस बात की है कि उसकी कार्य प्रणाली को समझा और विश्लेषित किया जाये तथा उससे लाभान्वित हुआ जाय। जड़ परमाणु से इतने चमत्कारी लाभ उठाये जा सकते हैं तो चेतन सूक्ष्म का लाभ कितना चमत्कारी होगा न कहना आसान है न कल्पना करना।

स्थूल शरीर की सीमित शक्ति

स्वप्नों के सम्बन्ध में यह भी एक मान्यता है कि सोते समय जीव भ्रमण पर निकल जाता है और जहाँ जो देखता है उसकी स्मृति ध्यान में रखते हुए सबेरे उठता है। उनमें से बहुतेरे सांकेतिक भाषा में देखे या समझे गये होते हैं। उनका फलितार्थ लगाना पड़ता है।

कई भूत प्रेतों के आवेशों और उनके द्वारा उत्पन्न किये गये रोग शोकों को मृतात्माओं की देन मानते हैं।

समाधि में सूक्ष्म शरीर और स्थूल शरीर की डोर तो बँधी रहती है पर प्राणों के ब्रह्मरन्ध्र में विलीन हो जाने पर स्थिति अर्ध मृतक जैसी हो जाती है।

शरीर के चारों ओर विशेषतया मुख मण्डल के इर्द-गिर्द छाये हुए सेजोवलय को सूक्ष्म शरीर की अनुकृति मानते हैं। उसके साथ एक प्रकार का चुम्बकत्व घुला रहता है जो सम्पर्क क्षेत्र को प्रभावित करता या प्रभावित होता रहता है। परलोकवासियों के सम्बन्ध में कहा जाता है कि वह सूक्ष्म शरीर से स्वर्ग नरक में रहता है। इसके बाद पुनर्जन्म लेता है।

वैज्ञानिक परीक्षणों से भी उसकी पुष्टि हुई है। मरने से ठीक पहले और उसके उपरान्त शरीर के भार में अन्तर पड़ता है और प्राण निकलते ही अपेक्षाकृत हलका हो जाता है। इस हलकेपन को सूक्ष्म शरीर का भार माना जाता है।

कई प्रिय वस्तुओं से मृतात्मा को बहुत लगाव होता है। उन्हें बहुधा उसके इर्द-गिर्द मँडराता अनुभव किया गया है। इसलिए एक मान्यता यह भी है कि उन वस्तुओं को किसी सत्पात्र को दान कर देना चाहिए। स्मृति के रूप में उसे सुरक्षित भी नहीं रखना चाहिए। अन्यथा वह लगाव न छूटने से मृतात्मा प्रगति की दिशा में आगे नहीं बढ़ पाती।

किसी प्रियजन की विपत्ति में सहायता करने से मृतात्माएँ दौड़ी चली आती है और यथा सम्भव उनकी सहायता भी करती हैं और उनकी कठिनाइयों के निवारण का उपयुक्त मार्गदर्शन भी करती हैं।

कई मरणासन्न व्यक्तियों के सम्बन्ध में ऐसा अनुभव किया गया है कि उस समय उन्हें मृतक घोषित कर दिया गया। सभी लक्षण भी मृत जैसे ही थे। फिर भी चिकित्सकों ने ऑक्सीजन देकर, हृदय की मालिश करके, बिजली के झटके देकर उन्हें जीवित रखा और किसी प्रकार उनके प्राण लौट आए। इस मरण और पुनर्जीवन के मध्यवर्ती समय में जीवात्मा यह अनुभव करती रही कि उसका सूक्ष्म शरीर ऊपर उठकर हवा में तैरता रहा। डॉक्टर नर्सों की बातें सुनता रहा। इसके बाद शरीर में फिर से चेतना जागी और उनका उड़ता हुआ शरीर पुराने शरीर में प्रविष्ट कर गया।

इसी प्रकार एक और मरणासन्न रोगी ने कहा कि उसके स्वर्गीय प्रियजन ऊपर आकाश से उतर रहे हैं और कह रहे हैं कि हमें साथ लेने आए हैं। वहाँ हमारे साथ रहने में तुम्हें कोई कष्ट न होगा। इसके बाद की अनुभूतियों का वर्णन करते-करते उसके प्राण पखेरू उड़ गये।

किन्हीं आत्माओं ने अपने प्रियजनों को ऐसे स्वप्न देने की विधा अपनाई है, जिसके आधार पर उनका जन्म अमुक स्त्री के पेट से अमुक समय होना था। प्रमाण स्वरूप कुछ चिह्न भी उनके शरीर पर पहले वाले थे। जन्म होने के उपरान्त उनके शरीर पर न केवल ऐसे ही चिह्न पाये गये वरन् मुखाकृति और शरीर भी वैसा ही पाया गया। बड़े होने पर उन्होंने उन्हीं कामों में रुचि ली जिनमें कि उनकी पूर्व रुचि थी।

एक मृतात्मा को किसी ने कत्ल करके नाले में फेंक दिया था। मृतात्मा ने घर वालों को सूचित किया कि उसका शरीर अमुक स्थान पर दुर्दशाग्रस्त स्थिति में पड़ा है। उसे निकालकर मरण संस्कार कराया जाये। उसने मारने वालों के नाम भी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

बताये। पता लगाने पर मृतात्मा का संकेत बिलकुल सच निकला और अपराधियों के पास मारने के प्रमाण भी पकड़े गये।

यों स्थूल शरीर से सूक्ष्म शरीर मरण के उपरान्त ही अलग होता है। किन्तु योगाभ्यास से उसे पृथक करने की कला भी सीखी जा सकती है और एक ही शरीर को इन स्थानों में काम करते हुए देखा जाता है। परकाया प्रवेश की घटना में स्थूल शरीर के सुरक्षित रखने की व्यवस्था बनाकर आद्य शंकराचार्य जैसी आत्मा दूसरे के शरीर में प्रवेश करके अन्य प्रकार के अनुभव प्राप्त करती रही है। कई मृत बालकों ने अपनी बहुत शोकाकुल माताओं के गर्भ में पुनः प्रवेश करके उसी प्रकार का जन्म लिया है। कुछ बालकों को पुनर्जन्म की घटनाओं की स्मृति रहती है। किन्तु वे यह नहीं बता पाये कि मरण और जन्म के बीच में वे कहाँ किस स्थिति में रहे। यों लगे जन्म लेने के उपरान्त उनने पूर्व जन्म के सम्बन्धियों को, घर को पहचाना और अपनी वस्तुओं को देखकर न केवल अपनी होने की बात कही वरन् यह भी बताया कि वे उन्हें किस प्रकार प्राप्त हुई और उनका यथा उपयोग करते थे। यह स्मृति कुछ वर्षों ही रही, बड़े होने पर वे सभी बातें विस्मरण हो गई।

श्मसान साधना करने वाले कापालिक भी ऐसी विलक्षणताएँ प्राप्त कर लेते हैं कि वे किसी को क्षति पहुँचा सकें। लाभ तो वे बेचारे क्या पहुँचा सकते हैं। किसी कुकर्म में किसी को सफलता दिलाकर उसके बदले में उपहार पा सकते हैं।

छाया पुरुष सिद्धि में भी यही होता है कि अपने ही शरीर और स्वभाव का एक सूक्ष्म शरीरधारी नया व्यक्ति उत्पन्न कर लिया जाता है और उससे वह काम लिया जाता है जो समान शक्ति एवं योग्यता वाला व्यक्ति कर सकता है। आरम्भ में छाया पुरुष का कार्य क्षेत्र सीमित होता है। पर अभ्यास परिपक्व हो जाने से सूक्ष्म शरीर स्थूल शरीर से ही चिपका नहीं रहता, वरन् उसे कितनी ही दूर तक कितने ही दिन को, कितने ही कठिन काम के लिए भेजा जा सकता है और वह पुराने स्थूल शरीर की तुलना में सूक्ष्म ज्ञानेन्द्रियों के सहारे ऐसी जानकारियाँ प्राप्त कर सकता है जिसका किसी को कानों-कान पता नहीं होता।

सिद्ध पुरुष जब अपने सूक्ष्म शरीर की शक्ति को सुविकसित देखते हैं तो स्थूल शरीर को त्याग देते हैं और सूक्ष्म शरीर के सहारे अपने निर्धारित कार्यों को चौगुना-सौगुना करते रहते हैं। तब उन्हें स्थूल शरीर के लिए अन्न, वस्त्र, निवास के लिए भी कोई प्रबन्ध नहीं करना पड़ता और साथ ही यदि आवश्यकता पड़ती है तो अपना सारा स्थूल शरीर वाला प्रयोजन सूक्ष्म शरीर से ही पूरा कर लेते हैं।

अमेरिका के प्रख्यात पत्रकार एवं लेखक बर्नार्ड हटन ने स्वयं पर घटित इस प्रकार की एक घटना का उल्लेख अपनी कृति 'हीलिंग हैन्ड्स' में किया है। घटना सन् १९५८ की है। हटन महोदय 'पोलियो माइलिटिस' नामक बीमारी से पीड़ित थे। नेत्र ज्योति अत्यन्त क्षीण हो चुकी थी। उनकी चिकित्सा कर रहे नेत्र रोग विशेषज्ञ डॉ० हडसन ने उनकी बीमारी को असाध्य करार दिया और कहा—कि आपरेशन करने पर आँखों की शेष क्षीण ज्योति के भी चले जाने का खतरा है। श्रीमती पर्ल हटन को यह ज्ञात था कि बीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध के सुविख्यात नेत्र चिकित्सा विज्ञानी स्वर्गीय डॉ० लैंग की अशरीरी आत्मा एलिसबरी के मिस्टर चैपमैन के माध्यम से अब तक सैकड़ों असाध्य नेत्र रोगियों की चिकित्सा कर चुकी हैं। अतः उनने अपने पति को एलिसबरी जाने का अनुरोध किया। बर्नाडे हटन अपनी पत्रकारिता वाली बुद्धि को लेकर एलिसबरी पहुँच गये।

मि० चैपमैन के यहाँ उन्हीं की प्रतीक्षा की जा रही थी। गाड़ी से उतरते ही हटन महोदय को एक कक्ष में बुलाया गया, वे यह देखकर आश्चर्यचकित थे कि युवक चैपमैन के व्यक्तित्व में आकस्मिक परिवर्तन कैसे हो गया। वह उनके कंधे पर हाथ रखे कह रहे थे "आइये मि० हटन ! आप नेत्ररोग से पीड़ित हैं। मैं डॉ० लैंग हूँ आपकी हर सम्भव सहायता करूँगा।" चैपमैन यह सब कुछ आँख बंद किये तंद्रा जैसी अवस्था में कह रहे थे हटन की तर्क बुद्धि इसे कभी सम्मोहन सोचती, कभी टेलिपैथी, तो कभी थॉट ट्राँसफरेन्स, तो कभी दिव्य दृष्टि आदि विचारों का ऊहापोह उनके मन में चल ही रहा था कि डॉ० लैंग ने कहा कि—"तुम्हें माइनस १८ नम्बर का चश्मा लगता है।" उस समय वास्तव में उन्हें इसी नम्बर का चश्मा लगता था। हटन की आँखों को दो-तीन बार अँगुलियों से स्पर्श करके डॉ० लैंग ने बताया—कि "तुम्हारी आँखों का बचपन में जो आपरेशन हुआ था—बिल्कुल ठीक था" तब हटन की उम्र ६ वर्ष की थी और उस घटना को वो भूल चुके थे। आपरेशन करने वाले डॉक्टर की भी मृत्यु हो चुकी थी।

बर्नार्ड हटन की आँखों को दुबारा अँगुलियों से स्पर्श करके डॉ० लैंग ने कहा —'तुम्हारी आँखों का वीट्रियस ड्रेनेज सिस्टम ठीक से काम नहीं कर रहा है—डिप्लोपिया हो गया है। जिस बीमारी के वायरस तुम्हें कष्ट दे रहे थे वे तो तुम्हारे चिकित्सक के उपचार से नष्ट हो गये हैं, परन्तु उसके स्थान पर प्रतिक्रिया स्वरूप नयी भंयकर बीमारी हो गयी है।हिपेटाइटिस वायरस के आक्रमण के कारण यकृत को क्षति पहुँच रही है ओर कष्ट बढ़ रहा है—शक्ति क्षीण हुई जा रही है।' हटन को डॉ० लैंग की यह सब बातें रोग, रोग की व्याख्या आदि एक पहेली सी लग रही थीं। उनकी तार्किक बुद्धि हतप्रभ थी। तभी डॉ. लैंग ने कहा—'मैं तुम्हारी आँखों का आपरेशन करूँगा जिसमें तुम्हें कोई कष्ट नहीं होगा, क्योंकि यह आपरेशन सूक्ष्मशरीर का होगा—स्थूल का नहीं—तुम हमारी बातें और उपकरणों का प्रयोग अनुभव करोगे पर देख नहीं सकोगे। मेरे अन्य सहायक सूक्ष्म शरीरधारी आत्मायें भी हैं।

इतना कहकर डॉ० लैंग ने अपना काम प्रारम्भ कर दिया। हटन अँगुलियों को चलते हुए, आपरेशन के उपकरणों के इधर-उधर प्रयोग करते हुए अनुभव कर रहे थे। डॉ० लैंग बीच में बोलते जा रहे थे —" मैं तुम्हारे लैंस, रेटिना आदि का परीक्षण कर रहा हूँ। कुछ मिनट बाद उन्होंने कहा—अब आपरेशन पूरा हो गया है तुम्हारे सिलियरी मसल्स अत्यन्त कड़े

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

हो गये थे। इसके पश्चात उन्होंने अपने सहायकों से कहा—यदि हिपेटाइटिस वायरस का आपरेशन न किया गया तो यह आपरेशन अधिक लाभदायक न होगा।' डॉ० लैंग ने एक बार फिर से आँखें बन्द की मुद्रा में ही हटन के शरीर पर हाथ फेरा बर्नार्ड हटन को लगातार महसूस हो रहा था जैसे उनके मूर्छित शरीर पर आपरेशन किया जा रहा हो।

आपरेशन पूरा करने के बाद डॉ० लैंग ने हाथ के सहारे से बर्नार्ड हटन को उठाकर बैठा दिया। उस समय उन्हें काफी कमजोरी अनुभव हो रही थी, तभी मार्गेट नामक एक नर्स आयी उसने उन्हें, खड़ा होने में मदद की चलते समय डॉ. ने कहा—"मि. हटन, मैं आपकी बराबर सहायता करता रहूँगा और अपने सूक्ष्म शरीर से आपके सूक्ष्मशरीर में आपरेशन भी करता रहूँगा। आपकी नेत्र ज्योति पुनः वापस आ जायेगी और आपका जीवन सुखमय बीतेगा, ऐसी मुझे पूरी आशा है।"बर्नार्ड हटन अपनी उक्त कृति में लिखते हैं कि वापसी में जिस समय उन्हें कार में बिठाया गया था, उस समय आँखों से कुछ भी दिखाई नहीं पड़ रहा था, परन्तु थोड़ी ही देर में धीरे-धीरे सब कुछ स्पष्ट नजर आने लगा। वह प्रसन्नतापूर्वक अपने घर आ गये। बार-बार उनका हृदय अदृश्य पितरसत्ता द्वारा की गयी अप्रत्याशित सहायता से भर आता था। इसके पश्चात उसका सारा जीवनक्रम ही बदल गया।

'मिस्ट्रीज ऑफ अनेक्स्प्लेंड' एवं 'इन विजबॅल हेल्पर्स' नामक आदि पुस्तकों में इस तरह की अनेकों घटनाओं का विस्तार वर्णन है जिसमें मनुष्य के कार्यों में अशरीरी दिव्यपितर आत्माओं द्वारा अप्रत्याशित रूप से सहायता प्रदान की गयी। इसी शृंखला में एक घटना सन् १९६७ की है। हडसन नदी के किनारे बने हुए विक्टोरिया कालीन एक भव्य मकान को लोगों ने भुतहा कह कर छोड़ दिया था, जिसे श्रीमती एकले नामक एक महिला ने खरीद लिया, और उसमें सपरिवार रहने लगी। एक रात्रि उन्हें एक प्रेतात्मा दिखाई दी जिसे देखकर वे भयभीत हो गयीं और जैसे ही वहाँ से भागने के लिए पीछे मुड़ी उन्होंने देखा कि वही छाया की उनके मार्ग में खड़ी है। इस पितर छाया ने धीमे स्वर में कहा—"तुम डरकर भागो नहीं। अभी तक जितने भी व्यक्ति इस मकान में आये हैं—वह भयभीत होते रहे हैं, जब कि हमारा उद्देश्य मनुष्यों को डराना और नुकसान पहुँचाना नहीं, वरन् उनकी सहायता करना और सहानुभूति अर्जित करना है।" वे आश्वस्त हुई और बोलीं—"आप लोग कौन हैं—कितने व्यक्ति हैं व इस रूप में आपको क्यों भटकना पड़ रहा है?" प्रेतात्मा ने जबाव दिया—हम लोग तीन व्याक्ति हैं जो तुम्हारे वंश के ही हैं। तुम्हारा यहाँ आना एक संयोग मात्र नहीं है। हमारे द्वारा एकले को दी गयी विचार रूप में प्रेरणा ही तुम्हें यहाँ लायी है। मरणोत्तर जीवन में एक योनी ऐसी होती है जिससे उच्च-अशरीर आत्मायें सहायक आत्मायें के रूप में सूक्ष्म जगत में भ्रमण करती रहती हैं। और जरूरत मन्दों की सहायता करती रहती हैं। जब इस मकान को भुतहा ठहरा दिया गया तो हमने उचित समझा कि तुम्हें यहाँ बुलाया जाये। श्रीमती एकले काफी देर तक अपने पितर से बात करती रहीं। बाद में अनेकों प्रसंगों पर पितर आत्मायें उन्हें सहयोग देती रहीं।

अमेरिका के राष्ट्रपति अब्राहम लिंकन का तो प्रेतात्माओं पर इतना विश्वास था कि अक्सर एक प्रेत विद्या विशारद कुमारी नैटिकोलन वर्ग को ह्वाइट हाउस में बुलाया करते थे और उसके माध्यम से पितर आत्माओं से सम्पर्क कर महत्त्वपूर्ण निर्णय लेते थे। महयुद्ध के दिनों में तो प्रेतात्मायें उनकी विश्वस्त मित्र हो गयी थी, जिसकी मदद से लिंकन को उपद्रवियों के ऐसे-ऐसे रहस्यों का पता चल जाता जिन्हें खुफिया विभाग द्वारा प्राप्त करना सम्भव न था अपने जीवन के दुःखद अन्त को भी उन्होंने प्रेतात्माओं के माध्यम से जान लिया था। ह्वाइट हाउस ऐसी सन्देश देने वाली पितर आत्माओं की कथाओं से अभी भी जुड़ा हुआ है। कैलिफोर्निया की महिला रोज मेरी ब्राउन ने अपनी पुस्तक 'डू वी डाई' में अपनी आत्मकथा में लिखा है कि जब वह २७ बर्ष की थी, तब एक दिन विश्व प्रसिद्ध विगतात्मा संगीतकार जिसमें बिथोवेन मोजार्ट आदि शामिल थे, को देखकर वह डर गयी। उसके विचार पढ़कर आश्वासन देते हुए उन्होंने कहा—'हम तुम्हारे माध्यम से संगीत के विकास की अपनी इच्छा पूरी करना चाहते हैं। इस दिशा में तुम अपनी योग्यता बढ़ाती जाओ, उसमें हम सभी तुम्हारी मदद करेंगे'। इस तरह वे आत्मायें १५ वर्षों तक संगीत साधना में उसका सतत मार्गदर्शन करती रहीं। परिणाम यह हुआ की सन् १९६८ में बी. बी. सी. ने ब्राउन के संगीत पर आधारित एक वृतचित्र प्रसारित किया। विश्व के तत्कालीन संगीत विशारदों ने उसे देखने सुनने के बाद एक ही निष्कर्ष निकाला कि यद्यपि यह सब ब्राउन की ही रचनायें हैं, तथापि यह निस्संदेह एक अविश्वसनीय घटना है कि विश्व के विगत प्रसिद्ध संगीतकार द्वारा मार्गदर्शन प्राप्त कृतियाँ हैं।

ब्राजील के बेलो होरीजोटे जनपद के जोंस पेड्रो डी फ्रीरास नामक एक कृषक के पुत्र 'एरिगो' ने ऑकल्ट मेडिसिन के इतिहास में अभूतपूर्व नाम कमाया है जब वह स्कूल में पढ़ता था तभी से उसे सिरदर्द की शिकायत रहती थी। वयस्क होने पर दर्द भी बढ़ता गया, साथ ही स्वप्न में उसे कुछ चिकित्सक प्रेतात्मायें भी दिखने लगीं जो उसे बराबर निर्देश दिया करती थीं। उसे आदेश दे रही एक अशरीरी आत्मा ने अपना परिचय देते हुए बताया कि वह डॉक्टर एडोल्फो फिट्ज नामक जर्मन शल्य चिकित्सक है जिसकी मृत्यु प्रथम विश्वयुद्ध में हुई थी। वह परोपकारी चिकित्सक था। जो जरूरतमंद गरीब रोगियों की शल्य चिकित्सा मुफ्त में कर दिया करता था। उसने आगे बताया कि वह मैक्सिको के पिछड़े प्रदेशों में अपना परोपकारी कार्य आरम्भ करना चाहता है और इसके लिए उसे एरिगो जैसे दयालु हृदय माध्यम की आवश्यकता है। उसका सिर दर्द भी जरूरतमंद रोगियों की सेवा से ही ठीक होगा। इस प्रकार स्वप्न और सिरदर्द से पाँच वर्ष तक कसमकस करने के पश्चात् एरिगो को अंततः डॉ. फिट्ज का निर्देश मानना ही पड़ा और पहली शल्य क्रिया अपने एक पड़ोसी से आरम्भ की जिसे फेफड़े का कैंसर था। एरिगो के लिए यह एक विस्मयकारी घटना थी कि एक अशरीरी आत्मा उसके माध्यम से इतने

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जटिल आपरेशन को कुछ ही सेकिण्डों में कैसे सफलतापूर्वक कर सकी।

अब तो एरिगो के लिए शल्य चिकित्सा दैनिक जीवन का क्रम बन चुका था जो सन् १९५६ से जीवन पर्यन्त तक निर्वाध रूप से चलता रहा। आपरेशन के अतिरिक्त वह लोगों की निस्वार्थ सेवा में लगा रहता। ख्याति फैलती चली गयी। सन् १९६३ में उसके चमत्कारिक कार्यों की जाँच करने के लिए विश्वविख्यात चिकित्सक डॉ. अंद्रीजा पुहरिश की अध्यक्षता में ख्याति प्राप्त दस चिकित्सकों की एक टीम नियुक्ति हुई। देखा गया कि एरिगो के अस्पताल में सुबह से ही सैकड़ों मरीज जमा हो जाते थे जिन्हें वह जाँच पड़ताल करने के पश्चात एक सामान्य से क्षुरे से शल्य क्रिया करके छुट्टी दे देता था। रोगियों के घाव कुछ ही मिन्टों में अच्छे हो जाते थे। एक ही परीक्षण में उसके पास एक हजार रोगियों को बुलाया गया जिनमें से ५४५ के पास अपने-अपने चिकित्सकों के निदान कार्ड भी थे जिन्हें जाँचकर्ता दल ने अपने पास रख लिया। पाया गया कि एरिगो ने तदनुरूप ही रोगी की पहचानकर उनका उपचार सफलतापूर्वक कर दिखाया। इस पूरी प्रक्रिया का फिल्मांकन भी किया गया था ताकि किसी प्रकार के संदेह की गुंजायश न रहे। सन् १९७१ में एरिगो की मृत्यु हुई, इससे पूर्व तक डॉ. एडोल्फो फिट्ज की आत्मा उसके माध्यम से शल्य चिकित्सा का अपना परोपकारी काम बराबर करती रही।

प्रमाणित तो होता है, सूक्ष्म शरीर का अस्तित्व

सूक्ष्म शरीर की सत्ता और सामर्थ्य स्थूल काया की तुलना में असंख्य गुना अधिक है। अध्यात्म क्षेत्र में इसके पग-पग पर प्रमाण उपलब्ध हैं। आध्यात्मिक जगत की प्रसिद्ध घटना है कि मण्डन मिश्र के जगत गुरु आद्यशंकराचार्य से शास्त्रार्थ में पराजित हो जाने बाद उनकी धर्मपत्नी विदुषी भारती ने मोर्चा संभाला। उसने शंकराचार्य से 'कामविद्या' पर ऐसे जटिल प्रश्न पूछे जो इन जैसे ब्रह्मचारी संन्यासी की कल्पना से भी परे थे किन्तु वे योगी थे, उन्हें मण्डल मिश्र जैसे महान पण्डित की सेवाओं की अपेक्षा थी, सो उन्होंने महिष्मती नरेश के मृतक शरीर में प्रवेश किया और कामशास्त्र का ज्ञान प्राप्त किया। तत्पश्चात् वापस अपने शरीर में आकर उन्होंने भारती के प्रश्नों का उत्तर दिया। परकाया प्रवेश की यह घटना पिण्ड की सामर्थ्य के उस सूक्ष्म चेतन पक्ष का परिचय देती है, जिसे रहस्यमय विभूतियों से सम्पन्न माना गया है।

सूक्ष्म शरीर द्वारा परकाया प्रवेश की एक दूसरी इतिहास प्रसिद्ध घटना महर्षि उपवर्ष के शिष्य देवदत्त की है जिन्होंने पाटलिपुत्र के राजा महापद्मनन्द के मृत शरीर में प्रवेश तो पा लिया था, पर फिर बाहर निकल नहीं सके थे।

कहा जा चुका है कि—महर्षि उपवर्ष के तीन शिष्य थे प्रथम वररुचि या कात्यायन जो पीछे सम्राट चन्द्रगुप्त के महामंत्री बने थे। इन्होंने पाणिनि के व्याकरण के सूत्रों की टीका की थी। दूसरे थे—'व्याडी'—जिन्होंने एक विशाल व्याकरण ग्रंथ लिखा था और तीसरे थे देवदत्त जो योग विद्या में निष्णात् थे और परकाया प्रवेश तक की विद्या जानते थे। गुरू दक्षिणा—की एक लाख स्वर्ण मुद्रायें प्राप्त करने के लालच में इन्होंने तुरन्त मृत्यु को प्राप्त महापद्मानन्द के शरीर को माध्यम बनाया और दोनों साथियों पर अपने शरीर की रक्षा भार सौंप कर उनके सूक्ष्म शरीर से जा घुसे। सारे राज्य में छाई दुःख की लहर एकाएक खुशी में बदल गयी। चारों ओर उत्सव मनाये जाने लगे। कुशाग्र बुद्धि महामंत्री शकटार ने जब पुनर्जीवित महापद्मानन्द के गुण, कर्म, स्वभाव, व्यवहार एवं पाण्डित में परिवर्तन पाया तो उन्हें वस्तु स्थिति समझते देर न लगी कि यह सारा खेल योग विद्या के ज्ञाता देवत्त का है। उन्होंने निश्चय किया कि जैसे भी देवदत्त के पूर्ववर्ती शरीर को ढूँढ़ कर शवदाह करा दिया जाय ताकि महापद्मानन्द को इस रूप में ही जीवित रखा जा सके। यह वह समय था जब सिकन्दर सम्राट पुरू को परास्त कर झेलम तक आ पहुँचा था। अगली लड़ाई उसकी पाटलिपुत्र से ही होने वाली थी। ऐसी स्थिति में अपने सिपाहियों का मनोबल बढ़ाये रखना आवश्यक था। अतएव शकटार ने अपने विश्वासपात्र सैनिकों को भेजकर व्याडी के विरोध के बावजूद भी देतदत्त के शरीर का अग्नि संस्कार करा दिया। देवदत्त को जब इस बात का पता चला तो माथा पीटते रह गये। बाद की कथा तो सब जानते ही हैं।

विश्वविख्यात चित्रकार गोया की आत्मा अमेरिका की एक विधवा हैनरोट के शरीर में प्रविष्ट हो गयी थी। यह घटना अमेरिका में प्रसिद्ध है। नये शरीर में गोया ने 'ग्वालन' नामक सुन्दर कलाकृति का निर्माण किया। विधवा हैनरेट ने अपने जीवनकाल में कभी कोई चित्र नहीं बनाया था। अमेरिका विशेषज्ञों को विधवा के व्यवहार में गोया की आत्मचेतना झाँकती दिखाई देती थी। वे इसे परकाया प्रवेश की घटना मानते थे।

योग सूक्ष्म का विज्ञान है। यह परमसत्ता से संबंध जोड़ने, आत्मानुभूति कराने का सुनिश्चित साधन है। यह राह भले ही कठिनाइयों की, आत्म नियन्त्रण, आत्म—सुधार की हो, पर एक वैज्ञानिक पद्धति जिसके परिणाम सुनिश्चित होते हैं। उस कठिन मार्ग पर चलने वाली आस्था को उक्त चमत्कारी सिद्धियाँ निःसंदेह परिपुष्ट करती हैं। मानवीकाया की सूक्ष्म संरचना ही कुछ ऐसी है कि अन्तराल में प्रसुप्त उस बीज भण्डार को विकसित किया जा सके तो वह उसे अनंत गुना सामर्थ्यवान बना देती है। स्थूल से सूक्ष्म और सूक्ष्म के कारण शरीर की सत्ता इसी स्तर की है। विज्ञान जगत के अनुसंधान कर्ताओं ने भी अब भारतीय दर्शन के इस तथ्य की पुष्टि कर दी है और कहा है कि मनुष्य की 'ईथरिक बॉडी' अर्थात् सूक्ष्म शरीर की सामर्थ्य स्थूल की तुलना में कई गुना अधिक है। वह शरीर के अन्दर और उसके बाहर भी कार्य करता रह सकता है। अत्यन्त अल्पसमय में दूरवर्ती स्थानों की यात्रा कर सकता है और जरूरतमन्दों की सहायता कर सकता है।

ऑक्सफोर्ड स्थिति 'साइकोफिजिकल रिसर्च सेन्टर' के मूर्धन्य परामनोविज्ञानियों ने—'एस्ट्रल ट्रैवल' अर्थात् 'सूक्ष्म शरीर की यात्रा' पर गहन अध्ययन एवं अनुसंधान किया है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

संस्थान के प्रमुख अनुसंधान अधिकारी डॉ० चार्ल्स एम० क्रीरी का कहना है की जन सामान्य में से लगभग दस् प्रतिशत व्यक्तियों को अपने जीवन में सूक्ष्म शरीर के दूसरे स्थानों की यात्रा के अनुभव अवश्य होते हैं। इनमें से अधिकांश घटनायें दुर्घटना या शल्य क्रिया के समय घटित होती हैं। उनके अनुसार इस तरह के अनुभव प्रायः शान्त एवं विश्रान्तिपूर्ण मनःस्थिति में होते हैं। गहन निद्रा में भी स्थूल शरीर से बाहर निकल कर सूक्ष्म शरीर यात्रा की घटनायें प्रकाश में आती रहती हैं।

विश्व प्रख्यात लेखक अर्नेस्ट हैमिंग्वे ने अपनी कृति 'फेअरवैल टू आर्म्स' में ऐसे अनेकों रहस्यमय संस्मरणों का वर्णन किया है जिनमें व्यक्तियों ने अपने स्थूल शरीर से सूक्ष्म शरीर को अलग कर स्वयं की शल्य क्रिया होते या दुर्घटना में शरीर को अशक्त पड़े देखा है। इसी तरह सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक रेमण्ड मूडी ने इस तरह के कितने ही उदाहरण ढूँढ़ निकाले हैं जिनमें रोगियों ने अपनी मृत्यु को बहुत पास से देखा है कि किस तरह कष्टकर परिस्थितियों में भौतिक शरीर से सूक्ष्म शरीर अलग होकर उन सारे दृश्यों को देखता रहा जिसमें उसे स्वस्थ करने के चिकित्सकों के प्रयत्न भी सम्मिलित थे। इस संदर्भ में तंत्रिका विशेषज्ञों का कहना है कि सामान्य अवस्था में स्थूल शरीर एवं सूक्ष्म शरीर दोनों संपूर्ण ऐक्य की स्थिति में रहते हैं, किन्तु कई बार बहुत-सी ऐसी परिस्थितियों भी आती हैं जब दोनों शरीर एक-दूसरे से अलग हो जाते हैं। तब सूक्ष्म शरीर के लिए कहीं भी गमन कर सकना संभव हो जाता है। इतने पर भी वह भौतिक शरीर से एक सूक्ष्म सूत्र द्वारा संबंध बनाये रखता है। मृत्यु हो जाने पर यह संपर्क सूत्र समाप्त हो जाता है और सूक्ष्म शरीर पूरी तरह स्वतंत्र हो जाता है।

यह एक तथ्य है कि सांसारिक कष्ट कठिनाइयाँ स्थूल शरीर के साथ ही जुड़ी रहती हैं, सूक्ष्म शरीर को इस प्रकार की कोई आधि-व्याधि नहीं व्यापती। 'ट्वेन्टी फिफ्थमैन' नामक पुस्तक में ऐड मोरेल ने एक ऐसे ही व्यक्ति की घटना प्रकाशित की है जिसे जेल के भीतर भीषण यंत्रणायें सहनी पड़ती थीं। अभ्यास द्वारा उसने अपने सूक्ष्म शरीर को स्थूल काया से अलग करने की विद्या सीख ली थी और यंत्रणा के उन क्षणों में सूक्ष्मशरीर से जेल के बाहर विचरण करने चला जाया करता था।

पोलैण्ड का एक प्रतिभाशाली इंजीनियर अपनी अतीन्द्रिय क्षमता के लिए विख्यात था। अपने एक चिकित्सक मित्र के परामर्श पर उसने सूक्ष्म शरीर से सुदूर प्रान्तों की यात्रायें की। स्थूल शरीर से सूक्ष्म शरीर के अलग हो जाने पर परीक्षणकर्त्ता वैज्ञानिकों ने पाया कि उस समय उसके भौतिक शरीर में जीवन नाम का कोई लक्षण विद्यमान नहीं होता था। हृदय की धड़कन, नाड़ी गति, श्वास-प्रश्वास आदि बंद हो जाते थे। अन्यान्य वैज्ञानिक परीक्षणों ने भी इस तथ्य की पुष्टि की है। कैलीफोर्निया यूनिवर्सिटी के ख्याति प्राप्त मनोविज्ञानी डॉ. चार्ल्स टी. स्टार्ट ने वैज्ञानिक उपकरणों के माध्यम से शारीरिक क्रियाकलापों की मोनीटरिंग करने पर पाया कि स्थूलकाया से सूक्ष्म सत्ता के निकल जाने पर समस्त कायिक गतिविधियाँ ठप्प पड़ जाती हैं और जैसे ही सूक्ष्म शरीर पुनः अपनी पंच भौतिक काया में लौट आता है वे फिर सक्रिय हो उठती हैं। उनके इस अनुसंधान की प्रमाणिकता को अमेरिकन सोसाइटी फार साइकिकल रिसर्च ने भी स्वीकृति प्रदान की है।

अभ्यास द्वारा भौतिक शरीर से सूक्ष्म शरीर को अलग करने के अतिरिक्त भी कितनी ही बार ऐसी घटनायें घटित होती हैं। जो सूक्ष्म शरीर की सत्ता में परिचय कराती हैं जिन्हें चिकित्सालयों के रिकार्ड में देखा जा सकता है। घटना फाकलैण्ड की है जब ब्रिटेन और अर्जेण्टीना के बीच युद्ध हुआ था। एक सैनिक अचेतावस्था में अस्पताल में भर्ती किया गया था। गहन उपचार के बाद जब मूर्च्छा जागी तो उसने डॉक्टरों को बताया कि अमुक गाँव में अमुक परिवार में उसका मृत शरीर पड़ा है, जिसको तुरन्त दफना दिया जाय। वस्तुतः उसने अपने पोते के शरीर में प्रवेश पा लिया था। जाँचकर्त्ताओं को उसने बताया कि उस परिवार का वह एक मात्र पुरुष सदस्य था जिसका जीवित रहना आवश्यक था। उसका प्राणान्त हो जाने पर इस शरीर में मुझे सूक्ष्म शरीर से प्रवेश करना पड़ा। इसी तरह की न्यूयार्क के लेनोवस हिल हास्पिटल के चिकित्सा विज्ञानी डॉ. रसल मैक रॉबर्ट ने एक पादरी का वर्णन किया है जिसने अपने सूक्ष्म शरीर द्वारा यात्रा करके चिकित्सकों को यह सोचने के लिए विवश कर दिया था कि भौतिक शरीर के अन्दर कोई सूक्ष्म सत्ता भी विद्यमान है जिसकी सामर्थ्य उसकी तुलना में असंख्य गुनी अधिक है।

मूर्धन्य परामनोविज्ञानी सिल्वान मुल्डून का कहना है कि वस्तुतः सूक्ष्मशरीर ब्रह्माण्डीय ऊर्जा का सघनीकृत रूप मात्र है। योगसाधना एवं तपश्चर्या से ब्रह्माण्डीय चेतन ऊर्जा सूक्ष्म शरीर में जैसे-जैसे सघन होती जाती है वह सशक्त एवं परिपुष्ट बनता जाता है। उसकी क्षमता भौतिक काया से कई गुनी बढ़ी-चढ़ी होती है जिसके लिए समय, स्थान, दूरी आदि जैसे कारक कोई अर्थ नहीं रखते उनके अनुसार सूक्ष्म शरीर से यात्रा करने के पश्चात् जितनी ताजगी और स्फूर्ति की अनुभूति होती है, उतनी स्थूल शरीर से कभी भी संभव नहीं हो पाती। इसे उन्होंने मन की यात्रा कहा है जो प्रबल संकल्प बल के सहारे संपन्न होती है।

छाया-पुरुष, महज दिवास्वप्न नहीं, एक सत्य

यदि किसी को अपनी ही प्रतिमूर्ति सामने दीख पड़े, तो इसे क्या कहा जाय-भूत ? भ्रम ? या सत्य? भूत इसलिए नहीं कहा जा सकता कि व्यक्ति अपनी अनुकृति को अपनी ही आँखों से सामने देखता है, जबकि प्रेत मरणोत्तर जीवन की स्थिति है। भ्रान्ति की मान्यता इसलिए अमान्य हो जाती है कि यह किसी एक को तो हो सकती है, अनेक को नहीं और जब एक ही भ्रम अनेकों को होने लगे, तो फिर यह भ्रम नहीं हो सकता। इसे सत्य कहना चाहिए। तो क्या ऐसा सत्य सम्भव है ? रहस्यवादी इसका उत्तर 'हाँ' में देते हुए कहते हैं कि इसमें असम्भव जैसा कुछ भी नहीं।

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

साधना विज्ञान में एक साधना 'छाया-पुरुष' की बतायी गई है। इसमें अपनी ही प्रतिकृति को दर्पण में देख-देख कर श्रद्धा और विश्वास के माध्यम से उसे इतना सशक्त और सबल बना लिया जाता है कि वह एक स्वतंत्र सत्ता की तरह काम करने लगती है। आरम्भ में यह सत्ता निर्बल होती है और मात्र दर्शन-झाँकी जैसे कार्य ही सम्पन्न कर पाती है; किन्तु जैसे-जैसे व्यक्ति की संकल्प शक्ति बढ़ती जाती है, वैसे ही वैसे 'छाया-पुरुष' की समर्थता भी बढ़ने लगती है। फिर स्वामिभक्त सेवक की तरह ऐसे कार्य करवाने में साधक उससे सफल हो जाता है, जो सामान्य स्तर के साधक के लिए सम्भव नहीं होता और सामान्य स्तर का व्यक्ति उसे सिद्ध योगी मानने लगता है, जबकि उसकी अपनी योग्यता मात्र इतनी भर होती है, कि उसने अपनी गहन आस्था का आरोपण कर उसमें स्वयं को अनुप्राणित कर लिया। इसके अतिरिक्त अन्य कोई विभूति उसके अन्दर होती नहीं। यों कई विभूतिवान ऐसे भी होते हैं, जो अपनी प्रचण्ड तपश्चर्या द्वारा अपने आप को एक से अनेक में विभाजित कर उन्हें इतना सामर्थ्यवान बना लेते हैं कि एक ही समय में कई-कई स्थानों पर भिन्न-भिन्न कार्य कर सकें; पर यह सब उच्चस्तर की तप साधना द्वारा ही सम्भव हो पाता है। इससे कम में इतना ही शक्य है, जितना 'छाया-पुरुष' स्तर के साधक कर पाते हैं। यदा-कदा यही छाया-पुरुष वैसे लोगों के सम्मुख प्रकट हो जाते हैं, जो तप जैसे कोई क्रियाकृत्य तो नहीं करते; पर जिनका अन्तराल तनिक शुद्ध और संकल्प सात्विक हो। ऐसे में अनेक बार ये महत्त्वपूर्ण सूचनाएँ दे जाते हैं, जो बाद में सही साबित होती हैं। ऐसी ही कुछ घटनाएँ पिछले दिनों घटित हुईं और सत्य भी सिद्ध हुईं।

प्रख्यात जर्मन कवि जोहानन उल्फगैंग वान गोएथ ने अपनी आत्मकथा में एक ऐसे ही प्रसंग का उल्लेख किया है। उन्होंने लिखा है कि सन् १७७१ की एक सुबह वह घोड़े पर सवार होकर एक सुनसान रोड पर डुजेनहीम (जर्मनी) की ओर चले जा रहे थे, तभी पीछे से एक अन्य घुड़सवार बड़ी द्रुत गति से आगे निकल गया। अभी वह कुछ सोच पाते कि सामने एक अद्‌भुत दृश्य दिखाई पड़ा। उसी सड़क पर उनकी ओर आते हुए एक दूसरा घुड़सवार दिखाई पड़ा। वह घुड़सवार तो क्या था, बिल्कुल उनकी कार्बन कापी थी। अन्तर मात्र परिधान का था। उसने स्वर्णिम आभा लिए भूरे रंग की पोशाक पहन रखी थी। गोएथ ने ऐसी पोशाक अपने जीवन में पहले कभी नहीं देखी थी पर वह सबसे अधिक आश्चर्यचकित उसके पहनावे पर नहीं, उस शक्ल पर हो रहे थे जो उनकी अपनी थी। वे अभी इसी असमंजस में थे कि यह दूसरा गोएथ कहाँ से कैसे आ गया ? इतने में ही वह देखते हैं कि सामने वाला गोएथ उन्हें हाथ हिला रहा है, ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार विदाई के समय हाथ लहरा कर व्यक्ति एक-दूसरे के प्रति शुभकामना और खुशियाँ व्यक्त करते हैं। कुछ ही पल में दृश्य तिरोहित हो गया। गोएथ उलझन में पड़ गये कि जो कुछ उनने देखा, वह आँखों का भ्रम तो नहीं था ? पर मन इसे भ्रम मानने को तैयार नहीं हो रहा था। केवल दृश्य को झलक-झाँकी भर होती, तो कुछ हद तक उसे भ्रान्ति मानी जा सकती थी; पर उस नकली गोएथ का मुस्कराना, हाथ हिलाना और विचित्र लिवास इन्हें भ्रम कैसे माना जाय ? आँखें सब कुछ साफ-साफ सामने देख रही थीं, फिर किस प्रकार इसे झुठलाया जाय ? बुद्धि कुछ काम नहीं कर रही थी। कुछ दिनों तक गोएथ को यह घटना परेशान किये रही। फिर वह सब कुछ भूल गये। इस बीच आठ वर्ष का लम्बा अन्तराल बीत गया। एक दिन गोएथ बड़े विस्मय में पड़ गये; क्योंकि वह एकदम वैसे ही लिवास में उक्त रोड से घोड़े पर सवार होकर गुजर रहे थे। तब उन्हें आठ वर्ष पूर्व की वह घटना याद आयी, जिसमें उन्होंने स्वयं को ही सुनहले भूरे वस्त्रों में सुसज्जित देखा था। गुत्थी अब सुलझ चुकी थी। उन्हें उक्त घटना का पूर्वाभास हुआ था। सूचना उनके ही छाया-पुरुष ने वैसे ही वस्त्राभरण में स्वयं को अलंकृत कर दी थी। यह घटना तो महज छाया-पुरुष के अस्तित्व की बानगी देती है।

सत्रहवीं शताब्दी के मूर्धन्य मनीषी जॉन ओब्रे ने एक पुस्तक लिखी है—'ब्रीफ लाइव्स'। इस रचना में उन्होंने ऐसे अनेक उद्धरणों की चर्चा की है, जिसमें व्यक्ति को अपनी ही अनुकृति से आमना-सामना हुआ हो। एक घटना तत्कालीन प्रख्यात ज्योतिषी सर रिचर्ड नेपियर से संबद्ध है। एक बार नेपियर एक सराय में पहुँचे। रात्रि हो चुकी थी। नेपियर को उनका कमरा दिखाने दरबान उन्हें इमारत की ऊपरी मंजिल में स्थित उनके कमरे तक पहुँचाने गया। कमरे में प्रवेश कर नेपियर ने जब बिस्तर की ओर देखा, तो वह यह देख कर चौंक गया कि उसमें एक शव पड़ा है। उसने आक्रोश प्रकट करते हुए दरबान से इसकी शिकायत की, तो दरबान ने बिस्तर को जाँचते-परखते हुए आश्चर्य व्यक्त किया कि यहाँ तो कोई मृतक नहीं पड़ा है। बिस्तर तो सर्वथा खाली है। नेपियर ने एक बार फिर बिस्तर पर दृष्टि डाली। उसे पुनः पूर्ववत दृश्य दिखाई पड़ा। इस बार उसने तनिक निकटता और सूक्ष्मता से अवलोकन किया, तो ज्ञात हुआ कि यह तो उसका ही शव है। बिछावन में उसका अपना ही शरीर चेतनाहीन स्थिति में पड़ा था। कुछ क्षण तक अपनी उपस्थिति का भान कराने के उपरान्त दृश्य गायब हो गया। नेपियर ने यही समझा कि यह उसका दृष्टि भ्रम था। यह तो ओब्रे की कृति से ही ज्ञात हो सका कि वह उसका दृष्टि भ्रम नहीं, वरन् पूर्वाभास था। ओब्रे ने लिखा है कि इस घटना के कुछ ही माह उपरान्त नेपियर की मृत्यु उसी कमरे में उसी स्थिति में सोते-सोते हुई, जिस दशा में उसने स्वयं अपनी लाश देखी थी।

जॉन बास्को ने अपनी कृति 'स्ट्रेंज एनकांउण्टर्स' में ऐसी कई घटनाओं का वर्णन किया है, जब व्यक्ति को अपने ही 'ब्लू प्रिन्ट' से सामना हो गया हो। १९२९ के रोमन पाटरी सन्त आर्थर बर्जर का उल्लेख करते हुए वे लिखते हैं कि एक दोपहर जब वे एक हलकी झपकी के पश्चात जगे, तो उन्हें एक दिव्य दर्शन हुआ। उन्होंने सामने ही एक आभावान, कुहरे जैसी हूबहू अपनी ही अनुकृति देखी। अनुकृति की निगाहें आर्थर बर्जर पर टिकी थीं। चेहरे पर प्रसन्नता झलक रही थी और आँखों में एक विचित्र चमक थी। दोनों एक दूसरे को पाँच सेकेण्ड तक निहारते रहे, फिर अचानक बर्जर की प्रतिमूर्ति आँखों से ओझल हो गई।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

एक ग्रीक प्रोफेसर पेड्रो केरोलिनो की चर्चा करते हुए बास्को अपने ग्रन्थ में लिखते हैं कि एक दिन जब पेड्रो शाम के समय कॉलेज से अपने कमरे में आया, तो दरवाजा खुला देख कर चौंका। अन्दर झाँक कर देखा, तो प्रकाश हो रहा था, जबकि उसे यह भली-भाँति स्मरण है कि कॉलेज जाने से पूर्व उसने बिजली के स्विच बन्द किये थे और दरवाजे में ताला भी लगाया था। जब किवाड़ खुला देखा, तो उसे यही लगा कि चोर घुस आये हैं। वह सावधानी से कमरे के भीतर प्रवेश करने लगा। सामने का पर्दा धीरे-धीरे हटाया, तो उसने देखा कि एक व्यक्ति उसकी ओर पीठ किये दीवार पर कील ठोक रहा है। उसे पूरा विश्वास हो गया कि वह चोर ही है; पर कील ठोकते देख कर वह कुछ असमंजस में पड़ गया। पेड्रो दबे पाँव उसकी ओर बढ़ने लगा। कुछ समीप आने पर उसने देखा कि वह व्यक्ति पेड्रो की ही एक फ्रेम की हुई तस्वीर दीवार में कील के सहारे लटका रहा है। वह कुछ क्षण खड़ा रहा और उस अविज्ञात व्यक्ति की अगली हरकत की प्रतीक्षा करने लगा। चित्र टाँग लेने के उपरान्त वह व्यक्ति मुड़ा, तो यह देख कर स्तम्भित रह गया कि वह तो उसी की प्रतिछाया है। कुछ पल तक दोनों एक दूसरे को देखते रहने के पश्चात् अनुकृति अन्तर्द्धान हो गई।

पढ़ने-सुनने में ऐसी घटनाएँ बड़ी अटपटी जान पड़ती हैं और दृष्टिभ्रम-सी लगती हैं; पर साधना विज्ञान के छाया-पुरुष वाली मान्यता उक्त भ्रान्ति को निर्मूल साबित कर देती है, जिसमें कहा गया है कि साधना-विज्ञान में अपना ही प्रतिरूप तैयार कर लेने और उससे तरह-तरह के कार्य करवा लेने में आश्चर्य अथवा अचम्भा जैसा कुछ भी नहीं है। यदि व्यक्ति थोड़ा-सा प्रयास करे, तो नियमित अभ्यास द्वारा वह अपना न सिर्फ छाया-पुरुष तैयार कर सकता है, अपितु उससे अनेक ऐसे भी कार्य करवा सकता है, जो स्वयं उसके लिए सम्भव नहीं।

जब सूक्ष्म देह करने लगती है लोक-लोकांतरों की यात्रा

संत-सत्पुरुष सत्पात्रों की तलाश में फिरते रहते हैं। उपयुक्त पात्र मिल जाने पर वे उनकी सहायता करते हैं और मार्गदर्शन भी। जनसामान्य उनके अनुग्रह से इसलिए वंचित रहते हैं कि कृपा प्राप्त करने के लिए व्यक्ति में जो योग्यता होनी चाहिए, उसे वह संपादित नहीं कर पाते, जितना संपन्न करते हैं, वह उनकी कृपा के लिए पर्याप्त नहीं होता, इसलिए अक्सर यह देखा जाता है कि समर्थों का अनुदान विपन्नों को उपलब्ध नहीं होता, जबकि आंतरिक संपन्नतायुक्त साधक उसे अनायास ही प्राप्त करते रहते हैं।

घटना १९३७ की है। काशी में केदार मालाकार नामक एक सोलह वर्षीय बालक बंगाली टोला के अपने मकान में माँ-बहन के साथ रहता था। जिन दिनों की यह बात है, उन दिनों उसके पिता का देहांत हो चुका था। परिवार में माँ, बहन और भानजा रह गये थे। केदार पास के ही एक स्कूल में पढ़ता था। इन्हीं दिनों बालक के साथ अकस्मात् एक अद्भुत घटनाक्रम जुड़ गया था। वह अपना स्थूल शरीर छोड़कर घंटों बाहर रहता और फिर स्वतः उसमें प्रवेश कर जाता। जब यह बार-बार का क्रम हो गया, तो एक दिन उसके परिवार वालों ने उससे प्रश्न किया कि आखिर अचानक यह विद्या उसमें कहाँ से आ गयी। उसका कहना था कि वह ऐसी कोई विद्या नहीं जानता, जिसे असाधारण कहा जा सके। जो कुछ घटित हो रहा है, उसमें न तो उसकी स्वयं की कोई शक्ति है, न इच्छा ही। यह सब एक देव पुरुष की सहायता से सम्पन्न होता है। जब वह आकर सामने प्रकट होते हैं, तो सूक्ष्म शरीर देह से स्वतः पृथक् हो जाता है, फिर उनका अनुसरण करते हुए वह उसी लोक में चला जाता है, जिस लोक के उक्त दिव्यात्मा-वासी होते हैं। वहाँ उसे अलग-अलग स्थलों पर ले जाया जाता है, और अगणित प्रकार के ज्ञान-विज्ञान के रहस्यों की जानकारी दी जाती है। कार्य पूरा होने के उपरांत वह पुनः पृथ्वी पर अपनी स्थूल काया में लौट आता है।

केदार प्रायः कहा करता था कि ले जाने वाला देवदूत एक ही है, सो बात नहीं। भिन्न-भिन्न भुवनों के भिन्न देवदूत हैं, जिस भुवन में ले जाया जाना अभीष्ट होता, उसके दूत आते और अपने साथ ले जाते। इसमें उसकी अपनी आकांक्षा कार्य करती, ऐसी बात नहीं थी या तो दूत अपनी इच्छा से अथवा उक्त लोक के अधिष्ठाता की मर्जी से आ और उसे साथ ले जाते। कहाँ जाना है ? क्या करना है . इन सब मामलों में केदार परतंत्र था। इनके लिए उसे दूत पर निर्भर रहना पड़ता था। वह जहाँ जाता, केदार को साथ-साथ चलना पड़ता, मानों उसकी सूक्ष्म सत्ता दूत के आकर्षण से स्वयमेव खिंची चली जाती हो।

शरीर से बाहर निकलने (आउट ऑफ बाडी एक्सपीरियन्स—OBE) और लोक-लोकान्तरों का भ्रमण करने संबंधी इस अद्भुत क्रिया का आरम्भ कब और कैसे हुआ ? इस बारे में कहता कि एक बार वह दशाश्वमेध बाजार में खरीददारी करने गया था। रास्ते के एक पेड़ पर उसे एक ज्योतिर्मय सत्ता दिखाई पड़ी। उसे देखकर वह विस्मय विमूढ़ हो गया। सोचा उसे दूसरे को भी दिखाऊँ। आस-पास देखा कोई था नहीं, इसलिए किसी राहगीर के आने का इंतजार करने लगा। यह विचार मन में जैसे ही आया वह दिव्य शरीरधारी आँखों से ओझल हो गया। इसी क्षण उसके अंदर कुछ अजीबोगरीब परिवर्तन महसूस हुआ। ऐसा क्यों हो रहा है ? वह समझ नहीं पाया। इसके बाद आवश्यक सामग्री क्रय करने के उपरांत वह घर आ गया। घर आने पर उसकी स्थिति और बिगड़ती-सी प्रतीत होने लगी। शरीर अस्वाभाविक रूप से तपने लगा। असह्य पीड़ा भी शुरू हो गई। परिवार वाले चिंतित हो उठे, पर दो दिन तक यह दशा रहने के पश्चात् उसकी अवस्था में सुधार आने लगा और फिर जल्द ही तकलीफ ठीक हो गई और वह भी ठीक हो गया। उस देवात्मा से सम्पर्क का यह प्रथम अनुभव था। इसके बाद वह सत्ता अक्सर आने लगी। जब आती, तो अब पहले जैसी वेदना का अनुभव तो नहीं होता, किंतु उसकी उपस्थिति से केदार की सूक्ष्म देह निकल कर उसके साथ चल पड़ने के लिए विवश हो जाती। यह क्रम अंत तक जारी रहा।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

शरीर से बाहर निकलने पर उसे कैसा अनुभव होता है ? इस बारे में उसका कहना था कि देह के बंधन से मुक्त होने पर अचानक उसकी काया और यह दुनिया एक प्रकार से अदृश्य हो जाती है एवं एक शून्य का सा आभास होने लगता है। मार्गदर्शक सत्ता के आकर्षण से वह उसी शून्य को भेदते हुए अग्रसर होता है। इस क्रम में आगे बढ़ते हुए दोनों एक ऐसे स्थल पर पहुँचते हैं, जो भयंकर तरंगयुक्त होता है। यहाँ काया को ऐसा महसूस होता है, जैसे उसे तीव्र विद्युतीय झटके लग रहे हों। उसके इसी प्रकृति के कारण केदार ने उस स्थान का नाम 'झटिका' रख दिया। इसके आगे इन्द्रियाँ निष्प्रभावी हो जाती हैं, फलतः बाद का ज्ञान अग्राह्य बन जाता है।

लोकान्तर यात्रा का प्रायः यही क्रम रहता, जिसके उपरांत केदार हमेशा एक नये भुवन में पहुँचता और वहाँ की नई जानकारी अर्जित करता, किन्तु इस क्रम में कई बार उसे गम्भीर वेदना सहनी पड़ती और यात्रा अधूरी छोड़ कर शरीर में वापस लौटना पड़ता। ऐसा प्रायः तब होता, जब पृथ्वी पर उसकी चेतनाहीन काया को कोई अशुद्ध शरीर मन से स्पर्श कर देता।

इस प्रकार समय बीतने के साथ-साथ बालक का यह अद्‌भुत विकास भी उत्तरोत्तर बढ़ता गया। उसकी इस प्रगति को देखकर सूक्ष्म जगत में गति रखने वाले महापुरुष प्रायः यही मंतव्य प्रकट करते कि उस पर ऊर्ध्वलोक के किसी देवपुरुष की कृपा हुई है, अन्यथा साधारण बालक के लिए ऐसा कौशल दिखा पाना सम्भव नहीं था। शरीर से बाहर निकलने की प्रक्रिया में क्रमिक विकास होता गया और अंत में तो उसके निज के पुरुषार्थ की बिल्कुल भी आवश्कता नहीं रही। विकास की मध्यावस्था में प्रत्यक्ष दूत की मदद तो जरूरी नहीं होती, किन्तु फिर भी परोक्ष प्रेरणा अपरिहार्य थी। अपने बूते ही शरीर से बहिर्गमन कर किसी भी लोक में अप्रतिहत आने-जाने की अवस्था जब प्राप्त हो गई, तब लोग इतर लोक संबंधी उससे तरह-तरह के प्रश्न करने लगे। वह हर एक की जिज्ञासा का समुचित समाधान करता। ऐसे ही एक अवसर पर जब उससे यह कहा गया कि इस विश्व से बाहर जाकर इसकी ओर दृष्टिपात करो और यह बताओ कि यह कैसा लग रहा है ? प्रश्नकर्ता इस सवाल के द्वारा बालक की परीक्षा लेना चाहते थे और यह निश्चय करना चाहते थे कि क्या सचमुच उसकी गति लोक-लोकांतरों तक है क्या? क्षणमात्र में वह देह से बाहर निकल कर पलक झपकते ही लौट आया और सवाल का सटीक उत्तर यह कहते हुए दिया कि यह जगत बाहर से ऐसा दिखाई पड़ता है, मानों कोई मनुष्य अपने दोनों हाथों को दायें-बायें फैलाये हुए निश्चल खड़ा हो, ठीक वैसे ही जैसे ईसा मसीह का क्रास। उपनिषदों में वर्णित वैश्वानर विद्या यही है। जैन आचार्य भी ऐसा ही मत प्रकट करते हैं। एक अन्य अवसर पर जब महाशून्य से बैंकुंठ के स्वरूप के बारे में पूछा गया और उसका सही-सही वर्णन करने को कहा, तो पुनः केदार अपनी काया से बाहर निकला और पल भर में तथ्य का पता लगा आया। उसका कहना था कि महाशून्य से बैकुंठ दक्षिणावर्त शंख जैसा बाहर से दिखाई पड़ता है। शास्त्रों के पुरुषोत्तम क्षेत्र में इसका ऐसा ही उल्लेख मिलता है। इस प्रकार देखा गया कि वह न सिर्फ कलेवर से बाहर निकल सकता है, वरन् तथ्यों का सही-सही पता लगाने में भी समर्थ है।

वह जिन-जिन भुवनों में जाता, वहाँ की भाषाएँ भी सीख आता और यदा-कदा इसका प्रयोग स्थूल देह में लौटने के पश्चात् पृथ्वी पर भी करता देखा जाता। लोकव्यवहार में वह कई बार उन-उन लोकों की सर्वथा अनजान और अपरिचित शब्दावलियों का प्रयोग भूल वश कर देता। सामने वाला जब उनके प्रति अपनी अनभिज्ञता प्रकट करता, और आशय न समझ पाने की स्थिति में मौन बना रहता, तभी केदार को अपनी त्रुटि का भान हो पाता।

संध्या समय वेदपाठ करना, उसका नियमित क्रम था, किन्तु उसका वेद प्रचलित वेद से भिन्न था। उसके पाठ में उदात्त, अनुदात्त एवं त्वरित स्वरों का स्पष्ट समावेश होता, पर शब्द उसके बिलकुल भिन्न थे, न तो वे संस्कृत के शब्द होते, न हिन्दी के, अपितु इनसे पृथक और ही प्रकार के उनके उच्चारण थे। सुनने वालों ने समझा कि देवलोक की यात्रा से कदाचित् इसने देवभाषा सीख ली हो और उसी वाणी में वहाँ का वेदपाठ कर रहा हो। जिज्ञासा-समाधान के लिए जब इस आशय का प्रश्न किया गया, तो आश्चर्य व्यक्त करते हुए उसने कहा लौकिक भाषा की तरह वहाँ की देववाणी पढ़ या सुन कर नहीं सीखनी पड़ती। सीखने-समझने की वह प्रक्रिया पृथ्वी से बिल्कुल भिन्न है। जिस भी लोक में धरती का कोई सूक्ष्म शरीरधारी मनुष्य जाता है और वहाँ के जिस भी देवपुरुष से वार्तालाप करना अभीष्ट होता है, उसके भ्रू-मध्य से एक ज्योति किरण निकल कर सामने वाले के भ्रू-मध्य को स्पर्श करती है। इतने से ही वह मनुष्य वहाँ के भाव और भाषा का जानकार हो जाता है। इसके बाद वह न सिर्फ वहाँ की बोली समझने लग जाता अपितु स्वतंत्र रूप से विचार-विनिमय भी कर सकता है। जो कुछ उसे कहना होता, वह सब वहाँ की भाषा, शब्द और ध्वनि के हिसाब से प्रकट होने लगता है। पृथ्वी की तरह वहाँ शब्दों और वाक्यों को स्मरण करके रखने की जरूरत नहीं पड़ती।

विभिन्न लोकों का भ्रमण करना अब केदार का एक प्रकार से नियमित क्रम बना गया था। वह दिन-रात जब भी इच्छा होती, दिव्य लोकों की यात्रा पर निकल जाता और इच्छानुसार देवपुरुषों के दर्शन-स्पर्शन कर लौट आता। केदार की यह अलौकिक क्षमता केवल कौतुक-कौतूहल मात्र बन कर रह गई हो, सो बात नहीं। इसके माध्यम से उसने अनेक प्रकार के अलौकिक ज्ञान-विज्ञान के रहस्य प्राप्त किये थे, जिनका समय-समय पर वह प्रयोग और प्रदर्शन भी करता था। एक ऐसे ही अवसर पर काशी की 'सिद्धि माँ' नामक एक सिद्ध स्त्री भी उपस्थित थी। केदार का चमत्कार देखकर उन्होंने कहा कि "यह सब ठीक है। ब्रह्मांड घूमना लोक-लोकान्तरों की सैर करना और वहाँ उपलब्ध हुए विज्ञान के आधार पर चमत्कार करना-इन्हें अद्‌भुत तो कहा जा सकता है, पर पर्याप्त नहीं। जीवन का चरम लक्ष्य ईश्वर-प्राप्ति है। सद्‌गति तभी संभव है। यह तब तक शक्य नहीं, जब तक व्यक्तित्व को अंदर बाहर से सरल और समान न बना लिया जाय। जीवन का सबसे बड़ा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

चमत्कार यही है। इस एक को संपादित कर लेने पर शेष ऋद्धि-सिद्धियाँ स्वयमेव हस्तगत होती चली जाती हैं, अस्तु जीवन का प्रथम और प्रमुख लक्ष्य आत्म-परिष्कार होना चाहिए, तभी वह स्थिति उपलब्ध हो सकती है, जिसे साधना का सर्वोपरि चमत्कार और संयम का दिव्य उपहार कहा गया है। तुम्हें उसी को लक्ष्य बनाना चाहिए।"

यह सत्य है कि अंतस् के परिमार्जन के बिना बाह्य स्तर का दिव्य सहयोग भी अपर्याप्त साबित होता है। इसलिए महापुरुषगण वैसे सत्पात्रों की तलाश में रहते हैं, जिनकी आंतरिक भूमि उर्वर हो, जिसमें अनुदान का बीजारोपण करने पर अंकुरित होकर पल्लवित-पुष्पित हो सके। अतएव अनुदान पाने के लिए हम सिद्ध पुरुषों की खोज में अपना समय न गँवायें। अपने अंतस् को सुविकसित और सुसम्पन्न करें, हमें उनकी अयाचित अनुकंपा मिलती चलेगी। देने और पाने का आध्यात्मिक आधार यही है। इसी पर ध्यान केन्द्रित किया जाना चाहिए।

संसार के विकास-क्रम को चलाने वाला —सिद्ध संघ

हमारे देश में साधारण तौर से लोग विश्वास करते हैं कि महात्मा लोग जंगल अथवा पहाड़ों की गुफाओं में रहते हैं और कभी-कभी मनुष्यों के मध्य में भी आ जाते हैं। उनमें अनेक दिव्य शक्तियाँ रहती हैं, जैसे देखते-देखते दृष्टि से लोप हो जाना, आकाश में उड़ जाना, दूसरे के मन की बातों को बिना कहे जान लेना इत्यादि। ऐसे महात्माओं के दर्शन दुर्लभ होते हैं। बहुत से लोग उनके दर्शनों के निमित्त पर्वतों पर जाकर रहते हैं, पर सबको उनका दर्शन नहीं होता। दर्शन उन्हीं को होता है जिनके पूर्व जन्मों के संस्कार इसके योग्य होते हैं। इस सम्बन्ध की पौराणिक कथाओं से यह भी ज्ञात होता है कि कई ऐसे महात्मा हैं जो अमर हैं और जो पृथ्वी में प्रलयकाल तक जीवित रहेंगे। ऐसी बहुत-सी सच्ची और झूठी बातें महात्माओं के सम्बन्ध में प्रचलित हैं और साधारण लोग बोलचाल में किसी भी साधु, फक्कड़, नंग-धड़ंग| व्यक्ति को महात्मा कहने लग जाते हैं। पर वास्तव में 'महात्मा' का दर्जा बहुत ही ऊँचा है। ऐसे लोग बहुत कम देखने में आते हैं, जो वास्तविक महात्माओं के अस्तित्व और उनके कार्यों के विषय में यथार्थ ज्ञान रखते हों।

साधारण भाव से हम देखते हैं कि ऋषि, महात्माओं के वर्णन प्रत्येक जाति की धर्म-पुस्तकों में पाये जाते हैं। प्रत्येक मजहब के संस्थापक प्रायः ऐसी ही श्रेणी के जीव होते हैं। भिन्न-भिन्न देशों के इतिहासों को पढ़ने से भी पता चलता है कि वहाँ कभी ऐसे प्रभावशाली व्यक्ति हुए हैं, जिनको उस समय के साधारण मनुष्यों में नहीं गिन सकते। ऐसे लोग महात्मा या उनके द्वारा भेजे गये विशेष श्रेणी के आध्यात्मिक शक्ति-सम्पन्न जीव होते हैं। महात्मा पद पर पहुँचने से मनुष्य जीव रूप से हटकर असली आत्म-स्वरूप में पहुँच जाता है। आत्मा का प्रधान स्थान अनुपादक लोक है। पर महात्मा के पद पर पहुँचते-पहुँचते उसमें ऐसी शक्तियाँ पूर्ण रूप से विकसित हो जाती हैं कि अनुपादक लोक से लेकर नीचे आत्म, बुद्धि, मानसिक, भुवः तथा भू जिस लोक में वह उतरना चाहे, उसी लोक के शरीर का वह अपनी इच्छा-शक्ति से निर्माण कर सकता है और कार्य हो जाने पर पुनः शरीर का नाश भी कर सकता है। महात्मा लोग आवागमन के बन्धन से मुक्त रहते हैं। अगर वे नीचे के लोकों में उतरते हैं तो उनका यह कार्य बिल्कुल स्वेच्छापूर्वक होता है। पर एक बात यह भी स्मरण रखनी चाहिए कि महात्मा लोग भिन्न-भिन्न लोकों में केवल खेल-कूद अथवा तमाशा करने हेतु नहीं चढ़ते अथवा उतरते हैं। सबसे पहले नोट करने की बात तो यह है कि इस दर्जे पर पहुँचने पर ईश्वर की शक्ति के साथ उनका एक्य हो जाता है, इसलिए उनका आगे का जीवन केवल ईश्वर की इच्छा अर्थात् उसके विधान के अनुसार चलने के लिए होता है। भगवान की अनन्त लीला के भिन्न-भिन्न भागों को पूरा करने के लिए वे सज्ञान रूप से उस लीला के एक-एक अंग बन जाते हैं और अदृश्य रूप से ईश्वरीय विधान के अनुसार इस समग्र विश्व में विकास और संचालन में लगे रहते हैं।

मुख्य रूप से ये महात्मागण सात प्रकार के कार्यों से सम्बन्ध रखते हैं। इनमें से छः विभाग तो ऊपर के लोकों में अवस्थित हैं, पर सातवें विभाग का सम्बन्ध प्रत्यक्ष रूप से हमारी पृथ्वी से रहता है और उससे सम्बन्ध रखने वाले सभी महात्मा इसी पृथ्वी के किसी भाग में रहकर कार्य करते रहते हैं। ये ही संसार के सच्चे सद्गुरु हैं और वे अधिकारी मनुष्य को शिष्य रूप में ग्रहण करके योग-मार्ग और आवागमन से छूटने की प्रणाली का सदुपदेश करते हैं पर किसी विशेष व्यक्ति से इनका सांसारिक तात्पर्य नहीं रहता। वे तो मनुष्यमात्र को सहायता देने और उनका उत्थान करने के निमित्त निर्माण पद के अन्य आनन्द को त्याग कर पृथ्वी के वातावरण में रचे हैं। इनका समस्त जीवन ही सेवामय होता है।

इन महात्माओं के विषय में एक और बात जान लेनी चाहिए, कि ये अत्यन्त उदार भाव के होते हैं। हम लोगों की तरह जाति, देश अथवा धर्म का भेद-भाव इनमें नाममात्र को नहीं पाया जाता। ये मनुष्य मात्र के लिए नहीं होते हैं। जिस प्रकार प्रकाश, वायु जल आदि मनुष्य के लिए एक हैं, वैसे ही यह महात्मा लोग भी मनुष्य मात्र के लिए एक भाव रखते हैं फिर भी अपने-अपने कार्यों के संचालन की सुविधा के अनुसार वे भिन्न-भिन्न स्थानों में आश्रम बना के रहते हैं। ऐसे आश्रम जगह-जगह समस्त संसार में वर्तमान हैं। पर भारतवर्ष ऐसे आश्रमो का प्रमुख केन्द्र जान पड़ता है। ये बहुधा ऐसे निर्जन, अगम स्थानों में, पहाड़ों अथवा तराइयों में आश्रम बने हैं, जहाँ साधारण तौर से मनुष्य इनको नहीं जान सकते और इसके महत्वपूर्ण कार्यों में बाधा नहीं पहुँचा सकते। इसे ऐसा नहीं समझना चाहिए कि मनुष्यों के झंझटों से वे अपने को दूर रखना चाहते हैं। मनुष्य के झंझटों को निपटाने के लिए ही तो ये अपने मोक्ष के आनन्द को त्यागकर पृथ्वी के साथ सम्बन्ध कायम रखते हैं। इनका इस प्रकार संसार में रहते हुए भी संसार से अलग रहना ठीक वैसा ही है, जैसा विशेष कार्य करते समय

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

हमारा अपने बच्चों को अलग रखना होता है। इस प्रकार अपने को अलग रखने यह अर्थ कदापि नहीं होता कि हम अपने बच्चों से प्रेम नहीं रखते अथवा उनके लिए कार्य करना नहीं चाहते। फिर इन महात्माओं के लिए तो ऐसा विचार और भी लागू नहीं होता। जिन लोगों को इनके दर्शनों का सौभाग्य प्राप्त हुआ है, वे सभी एक स्वर से कहते हैं कि ये दया, प्रेम तथा सेवा के पूर्ण अवतार होते हैं।

संसार से अपने को अलग रखने और अपने स्थूल शरीर द्वारा संसार के मध्य में प्रकट न होने का एक प्रधान कारण यह भी है, कि क्रियाशक्ति द्वारा ये अपने लिए जिन-जिन स्थूल शरीरों का निर्माण करते हैं, वे अत्यन्त पवित्र, कोमल और सूक्ष्म उपतत्वों के बने हुए अत्यन्त प्रभावशाली होते हैं। इस संसार के रात-दिन के प्रतिकूल कर्म्मों से उन शरीरों का शीघ्र ही नाश हो सकता है पर उनका ध्यान केवल अपने स्थूल शरीरों को सँभालने और उनकी रक्षा करने में ही नहीं लगा रहता। इसलिए अपने महान कार्यों के संचालन के ख्याल से ही वे अपने स्थूल शरीरों को साधारण सांसारिक वातावरण से बचाकर रखते हैं। फिर भी ऐसी बात नहीं है कि वे कभी अपने स्थूल शरीर को संसार में लाते ही न हों। ऐसे अनेक उदाहरण मिलते हैं जब उन्होंने अपने स्थूल शरीरों को मनुष्यों के मध्य में उतारा है। पर ऐसा कभी-कभी ही होता है। साधारणतः वे वासना देह अथवा मानिसक शरीरों द्वारा ही मनुष्यों से सम्बन्ध रखते हैं। इन्हीं सूक्ष्म शरीरों द्वारा ही वे संसार में जहाँ कहीं आवश्यकता होती है वहीं बात की बात में पहुँच जाया करते हैं। अगर कहीं स्थूल रूप में प्रकट होना आवश्यक हुआ तो यह भी उनके लिए बिलकुल साधारण बात है। वे फौरन वहीं पर एक नया स्थूल शरीर बनाकर प्रकट हो जाते हैं और कार्य समाप्त होने पर उसका वहीं विनाश भी कर देते हैं। इस प्रकार अपने असली स्थूल शरीर को सदा व्यवहार करने की आवश्यकता नहीं रहती। इस भाँति वे अपने स्थूल शरीरों को स्वास्थ्यकर वातावरण में रखकर, उन्हें कई सौ क्या कई हजार वर्षों तक कायम रख सकते हैं।

इन महात्माओं के अस्तित्व, निवास तथा कार्य आदि के सम्बन्ध में इस समय के अनेक जीवित मनुष्यों की साक्षियाँ मौजूद हैं। उनके कई शिष्य आजकल संसार में वर्तमान हैं, जिन्होंने उनसे दीक्षा ग्रहण की है और जो उनके आश्रमों में भी हो आये हैं। 'महात्मा' कौन हैं, कहाँ रहते हैं और उनसे प्रेरणा पाकर वर्तमान महापुरुष किस प्रकार जगत का कल्याण साधन कर रहे हैं, आदि बातें जानने से पूर्व यह जाना लेना आवश्यक है कि देवात्मा हिमालय ही वह केन्द्र है जहाँ सिद्ध सन्तों-ऋषियों योगियों का निवास है।

आध्यात्मिक ज्ञान अथवा आत्मविद्या भारतवर्ष की विशेषता है। यहाँ बड़े से बड़ा और छोटे से छोटा व्यक्ति भी इस सम्बन्ध में कुछ न कुछ विचार रखता है और उन बातों की महत्ता को स्वीकार भी करता है। इस मनोवृत्ति के कारण इस देश में साधू, महात्माओं का बड़ा मान है। उच्चकोटि के विद्वान अथवा तपस्वियों की तो क्या बात, साधारण साधू वेषधारी लोग भी यहाँ जन-श्रद्धा के आधार पर सम्मान और सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करते रहते हैं। इतना ही नहीं बहुसंख्यक धूर्त, ढोंगी और ठग श्रेणी के व्यक्ति भी इस वेष में अपने को छिपाकर सर्वसाधारण के पूजनीय बन बैठते हैं और जब तक किसी घटनावश उनका भंडाफोड़ नहीं होता तब तक मौज करते रहते हैं। इस सबके मूल में यही भाव काम करता है कि हमारे देश में सदा से बड़े-बड़े साधू, महात्मा, योगी, सिद्ध पुरुष होते आये हैं और वे इसी वेष में रहते थे। इसलिये लोग किसी भी साधु वेषधारी को देखकर सोचते हैं कि कहीं यह भी कोई पहुँचा हुआ महात्मा न हो और इसकी सेवा से हमारी मनोकामनाएँ पूर्ण हो सकें।

इसमें तो सन्देह नहीं कि हमारे यहाँ प्राचीन काल से बड़े-बड़े त्यागी और तपस्वी महात्मा होते आये हैं, जिन्होंने लोगों के कल्याण के लिये अपना सर्वस्व अर्पण कर दिया और अनगिनती व्यक्तियों को अपत्तियों से मुक्त किया। यहाँ पर ऐसे महापुरुषों का भी आविर्भाव हो चुका है जो मुक्ति प्राप्त करके भी संसार में केवल इसी कारण बने रहे जिससे कि उनके द्वारा साधारण मनुष्यों को उन्नति-मार्ग में सहायता मिलती रहे। पुराणों में हमको ऐसे महान व्यक्तियों के नाम भी मिलते हैं जो अमर-पद को प्राप्त कर चुके हैं और आज भी संसार के किसी भाग में और किसी भी रूप में रह कर भूमण्डल की व्यवस्था में सहयोग कर रहे हैं। पर हमारे देश में बीच के समय में शिक्षा का अभाव हो जाने के कारण इन सब बातों का वास्तविक रहस्य लोग भूल गये और इस सम्बन्ध में तरह-तरह की भ्रमपूर्ण कल्पनाएँ करके इनकी कहानी किस्से की तरह कहने-सुनने लगे। यही कारण है कि आधुनिक ढंग के पढ़े-लिखे व्यक्ति इन बातों को कोरी गप्प समझते हैं और उन्होंने विशिष्ट शक्ति सम्पन्न महापुरुषों अथवा सिद्ध महात्माओं पर विश्वास करना ही छोड़ दिया है। पर इधर कुछ समय इस देश और विदेशों के अनेक शिक्षित व्यक्तियों के मन में आध्यात्मिक भाव का उदय हुआ है और वे इन विषयों की खोज तथा व्याख्या करके कितने ही छिपे हुए रहस्यों का उद्घाटन कर रहे हैं। इस सम्बन्ध में थियोसोफिकल सोसाइटी (ब्रह्म विद्या-समाज) के कितने ही संचालकों तथा साधुओं ने विशेष रूप से श्रम किया है और संसार की व्यवस्था में भाग लेने वाले इन 'महात्माओं' का सर्वाङ्गपूर्ण विवरण अपनी पुस्तकों में लिखा है। यह तो नहीं कहा जा सकता कि उन्होंने जो कुछ लिखा है वह ज्यों का त्यों ठीक है, पर इतना अवश्य है कि उनकी बातें कम से कम बुद्धि संगत ढंग से कहीं गई हैं। आध्यात्मिक ज्ञान से शून्य अथवा उसके विरोधी लोगों के लिये तो इस प्रकार की बातें सर्वथा निरर्थक और निराधार कल्पना के सिवाय कुछ नहीं हो सकतीं, पर जो लोग इस भूमि की आध्यात्मिक शक्ति पर विश्वास रखते हैं और "हिमालय के दुर्गम भागों में रहने वाले महात्माओं" के चमत्कारों का वर्णन कहते और सुनते रहते हैं उनके लिए यह वर्णन निस्सन्देह अत्यन्त आकर्षक जान पड़ेगा।

थियोसोफी सिद्धान्त के अनुसार पवित्रता के मार्ग के चार दर्जे हैं—(१) श्रोतापत्ति, (२) सकृदागामी, (३) अनागामी और (४) अर्हत्। इनको सिद्ध करके इनसे आगे का—अशेष

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

नाम का पद प्राप्त करने से मनुष्य उतनी उन्नति साध चुकता है जितनी इस कल्प में साधनी चाहिये। फिर उसे इस पृथ्वी पर या किसी दूसरे गोले (ग्रह) पर जन्म लेने की आवश्यकता नहीं रहती। ऐसे मनुष्य के सामने जब सात मार्ग आते हैं जिनमें से वह कोई भी एक ग्रहण कर सकता है। उनमें से बहुत मार्ग तो ऐसे हैं कि जिनको ग्रहण करने से मनुष्य इस पृथ्वी को छोड़कर दूसरे भारी कामों में लगता है। शायद वे काम सारे सौरमंडल से सम्बन्ध रखते हैं। इसलिए जो लोग अभी तक अशेष पद को प्राप्त हो चुके हैं उनमें से बहुतों का हाल हम लोगों को मालूम नहीं हो सकता।

बाकी के जो लोग हम नर-तनधारियों के लिये कार्य कर रहे हैं उनके दो विभाग हो सकते हैं, एक स्थूल-देहधारी और दूसरे वे जिन्हें स्थूल देह नहीं हैं। जिन्हें स्थूल देह नहीं है वे 'निर्वाण काय' कहाते हैं। मान लो कि वे इस भूलोक और निर्वाणलोक के बीच में स्थित हैं। वे मनुष्य जाति के कल्याणार्थ आत्मिक बल उत्पन्न करने में अपना सारा समय बिताते हैं। यह बल या शक्ति एक कुण्ड में जमा होती है और पृथ्वी पर स्थित महात्मा तथा उनके शिष्य मनुष्य जाति के हित के जो कार्य करते हैं उनमें से इस बल का उपयोग करते हैं।

स्थूल देहधारी महात्माओं की संख्या बहुत थोड़ी है। ये किसी एक देश से सम्बन्ध नहीं रखते वरन् इनका कार्य सारे जगत से सम्बन्ध रखता है। इस भूलोक में वे सब इकट्ठे नहीं रहते, पर ऊँचे के लोकों में वे एक-दूसरे से सदैव मिलते रहते हैं। उन्हें पुनर्जन्म का बन्धन तो है नहीं, इसलिये एक शरीर के जीर्ण हो जाने पर ये अपने कार्य की आवश्यकतानुसार जहाँ चाहें वहाँ दूसरा शरीर ग्रहण कर लेते हैं। इसलिये इनका शरीर किस देश का है यह कोई महत्व की बात नहीं। इस समय कई के शरीर तो भारतीय हैं, एक चीन का, दो अंगरेजी, एक इटली का, एक हंगरी का और एक सीरिया के शरीर वाला है। पर हम फिर यह बतला देना चाहते हैं कि इन लोगों के लिये किसी खास देश का शरीर होना कुछ भी महत्व नहीं रखता। यह वर्णन हमने सिर्फ इसलिये किया है ताकि लोग समझ सकें कि महात्माओं को किसी एक जाति का मानना भूल की बात है।

इस 'सिद्ध-संघ' के मुख्य अधिपति के विषय में अधिक कहने में भक्तिवश हमको संकोच लगता है। बड़े महाद्वीपों और खण्डों की व्यवस्था इनके हाथ में है। कोई एक करोड़ अस्सी लाख वर्ष बीते जब कुछ महर्षिगण इस पृथ्वी के विकास-क्रम में सहायता देने यदि यहाँ आये थे। उस समय तक मनुष्य शरीरों की उन्नति बिल्कुल नहीं हुई थी और उनमें यह शान्ति नहीं थी कि वह सिद्ध-सम्प्रदाय में किसी पद के योग्य हो सकता। इसलिये इन शुक्रलोक के महर्षियों ने मानव जाति को उन्नति का मार्ग दिखलाया जिससे धीरे-धीरे यह भी अनेक उन्नति-प्राप्त जीव उत्पन्न होने लगे। तब ये महर्षिगण दूसरे लोकों में वहाँ के विकास में सहायता देने के लिये मुक्त हो गये। पर उनमें एक अब भी हमारे यहाँ सर्वोच्च पद पर अधिष्ठित हैं। इस पृथ्वी के विकास की सब व्यवस्था इन्हीं के हाथ में है, मनुष्य का विकास ही नहीं, वरन् पशु, वनस्पति, खनिज और उसके नीचे के भौतिक वर्ग और सब छोटे-बड़े देव वर्गों के विकास की व्यवस्था भी ये ही करते हैं।

इन अधिपति जो कि नीचे अन्य विभागों की व्यवस्था करने वाले महात्मा हैं उनके कार्यों का पूरा वर्णन कर सकना भी कठिन है। उनमें से एक मूल जाति में 'मनु' होते हैं जिनका कार्य बड़ी अड़चनों का होता है। दूसरे धर्माधिपति होते हैं। इस संसार में जहाँ जैसे धर्म की आवश्यकता पड़ती है वहाँ वैसा ही धर्म प्रचार करते हैं। कभी इस कार्य के लिये आवश्यकतानुसार अपने किसी शिष्य को भेज देते हैं और कभी स्वयं ही जन्म लेते हैं इन्हें पूर्वीय देशों में बहुधा 'बोधिसत्व' कहते हैं। हाल में इस पद पर भी मैत्रेय ऋषीश्वर विराजमान हैं। इनसे पूर्व इस पद पर 'गौतमबुद्ध' विराजमान थे। 'बुद्ध' का पद प्राप्त होने के बाद जीव का इस पृथ्वी पर फिर जन्म नहीं हो सकता और किसी उत्तराधिकारी को अपना काम सौंप कर बहुधा पृथ्वी के सम्बन्ध से बाहर चला जाता है। पर भगवान गौतम बुद्ध ने 'बुद्ध' पद पाकर भी पृथ्वी को सहायता देने के हेतु से उससे किसी प्रकार का सम्बन्ध जारी देखा है। हर वर्ष एक बार सिद्ध-संघ को उनके दर्शन होते हैं और उनका आशीर्वाद मिलता है जिसे सारी पृथ्वी में फैला देते हैं। आर्य जाति की आरम्भ की उप जातियों में धर्म की शिक्षा देने के लिये इनके लिये इन्होंने बार-बार जन्म लिया था। मिश्र देश में रहस्य-ज्ञान-समाज का ज्ञान बताने वाले 'हर्मीज' ये ही थे। सूर्य और अग्नि की पूजा के पारसी धर्म की स्थापना करने वाले आदि जटदुश्त ये ही थे, ग्रीस देश की रहस्य-ज्ञान-समाज (मिस्टरीज) का ज्ञान प्रकट करने वाले आरफियास ये ही थे। इसी प्रकार इन्होंने और कितने ही धर्मों की स्थापना करके विभिन्न देशों के निवासियों को विकास-मार्ग में आगे बढ़ाया था।

इस विवरण से स्पष्ट हो जाता है कि इस जगह का विकास 'राम भरोसे' नहीं चल रहा है जैसा लोग बिना विचारे मान लेते हैं। इसके विपरीत जगत की व्यवस्था और शासन विधि-विधान के अनुसार बहुत चतुराई से किया जाता है। यह 'महात्मा-संघ' इस कार्य को यथा सम्भव साधता है। मनुष्य की जो स्वतन्त्र इच्छा-शक्ति है उसमें बाधा न डाल कर जितनी व्यवस्था हो सके उतनी ही ये करते हैं। ये संसार के प्रमुख मनुष्यों के साथ मिल कर काम करने का प्रयत्न करते रहते हैं। ये उनके चित्त में सलाह और सूचनाओं को प्रेरित करते हैं और उनको समस्त जगत के भ्रातृत्व की ओर चलने की प्रेरणा करते हैं जिससे आगे चलकर युद्ध का सर्वथा लोप हो जाय। पर हमें यह भी ध्यान में रखना चाहिये कि उन्हें सब लोगों के भाग्य-प्रारब्ध का भी विचार करना पड़ता है और उसमें बाधा नहीं डाली जा सकती।

पर सब कुछ होने पर भी ये 'महात्मा' हमारे समान मनुष्य ही हैं। उनके शरीर हम लोगों की अपेक्षा बहुत अधिक शुद्ध और पूर्ण हैं जिससे वे हमारे लिये असम्भव कार्यों को सहज में करते रहते हैं। वे वास्तव में पर्वतों के ऐसे स्थानों पर आश्रम बनाकर रहते हैं, जहाँ उनकी अनुमति बिना कोई पहुँच नहीं सकता। पर साधन करने से मनुष्य उन तक पहुँच कर उनका

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

कृपा पात्र बन सकता है और उनकी सलाह से बड़े-बड़े कार्यों को सम्पन्न कर सकता है। कहा जाता है कि थियोसोफिकल सोसाइटी की संस्थापिका मैडम ब्लेवेटस्की ने तिब्बत के पहाड़ों में स्थित सिद्धाश्रम में रह कर ही अपनी 'सीक्रेट डाक्ट्रिन' पुस्तक लिखी थी और उनके बाद इस समाज के और भी कई प्रमुख सदस्य अपने साधन के बल से आश्रम में जाकर महात्माओं के दर्शन कर चुके हैं।

हिमालय में अमर आत्माओं का रहस्य

पश्चिमी कमान के सैनिक कमाण्डेन्ट श्री एल० पी० फैरेल एक बार कुमायूँ नरेश के साथ हिमालय की यात्रा पर गये। बात लगभग १९४० की है तब यहाँ अँग्रेजों का शासन था। एक उच्च पदाधिकारी होते हुए भी उनकी धर्म में बड़ी आस्था थी, उन्होंने गहन आध्यात्मिक तथ्यों का पता लगाया जिनका उल्लेख उन्होंने अपने जीवन परिचय में किया है।

एक दिन उनकी भेंट एक महात्मा से हुई। महात्मा ने पराशक्ति द्वारा प्रेरणा देकर भारत के मैदानी भाग से एक युवक को बुलाया था। उन्होंने उस युवक से कहा—वत्स ! मैं तुम्हारा एक जन्म का नहीं कई जन्मों का मार्गदर्शक हूँ। तुम्हें इसलिये बुलाया है कि तुम भी अन्य व्यक्तियों की तरह ही आत्मिक शक्ति सांसारिक सुखोपभोग और तुच्छ ई य वासनाओं में खर्च मत कर देना। भारतवर्ष की आध्यात्मिक जागृति के लिये मैं तुम्हें सदैव से ही तपाता चला आ रहा हूँ। अब भारत में स्वर्ण-युग आने वाला है उसके लिये लोगों को आध्यात्मिक धार्मिक एवं नैतिक शिक्षण का काम तुम्हें करना है। इसके लिये तुम्हारे अन्दर जो शक्ति जागृत होगी उसके लिये पहले साधना करनी पड़ेगी। तुम्हें उन साधनाओं की जानकारी के लिये ही यहाँ बुलाया है।

इस घटना का उल्लेख करते हुए श्री फैरेल लिखते हैं कि—युवक ने प्रश्न किया—भगवन् मेरी बुद्धि पर अज्ञान का पर्दा चढ़ा है मैं कैसे जानूँ कि आप मेरे बहुत समय से मार्गदर्शक रहे हैं ? इस पर महात्मा ने एक प्रयोग दिखाया ठीक चलचित्र की भाँति। वह चित्र मैंने स्वयं देखा। महात्मा ने किसी अज्ञात शक्ति से ऐसा किया। वह चित्र देख कर मुझे ऐसा लगा कि इन महात्मा की आयु १००० वर्ष भी हो सकती है बल्कि इससे भी अधिक हो सकती है।

उनकी शारीरिक बनावट में क्रमशः अन्तर होता गया था जिससे पता चलता था कि इन्होंने कई बार स्थूल शरीर का कायाकल्प किया है। यह सब मैं उनकी कृपा से ही जान पाया उसके बाद न तो मैं दुबारा उन सन्त के ही दर्शन कर सका और नहीं उस युवक के बारे में ही कुछ जान सका जिससे उन महात्मा ने कहा था—आने वाले युग में लोगों की जीवन पद्धति क्या हो, जिसमें धर्म अध्यात्म, भारतीय संस्कृति का भी समावश रहे, इसका तुम्हें मार्गदर्शन करना है।

'योगी की आत्म-कथा' के परिच्छेद ३४ में सुप्रसिद्ध भारतीय योगी श्री श्यामाचरण लाहिड़ी के जीवन की घटना का भी एक ऐसा ही उल्लेख है, जिससे पता चलता है कि उन्हें भी किसी हिमालयवासी महात्मा ने आत्मप्रेरणा, से बुलाकर योग-विद्या सिखाई जिससे योग को नष्ट होने से बचाया जा सके। १९६९-७० में कल्याण में एक साधु की हिमालय के दुर्लभ प्रान्तों की यात्रा का दर्शन छपा था। वर्णन अतिरंजित जैसा था उसमें यह बताया गया था कि उसने हिमालय में महाभारत काल के मनीषियों को समाधिस्थ देखा है। वहाँ अग्नि-धूनियाँ जल रही हैं बरगद के वृक्ष खड़े हैं वहाँ का दृश्य बिल्कुल ऋषि आश्रमों जैसा आज भी है।

यह श्रद्धा पोषित घटनायें कही जा सकती हैं। पर पिछले दिनों एवरेस्ट पर चढ़ने के जितने भी अभियान हुये हैं उन सब में एक प्रश्न चिह्न हिम-मानव का उभरा है। ऊँचे चढ़ने वाले पर्वतारोहियों में से प्रायः सभी ने या तो हिम-मानव की आकृति अथवा पैरों के निशान देखे जाने का जिक्र किया है। किन्तु इस हिम-मानव के सम्बन्ध में अब तक कोई सुनिश्चित जानकारी नहीं दे सका। प्रश्न अब भी रहस्यमय बना हुआ है।

शिव, भैरव, हनुमान अश्वत्थामा आदि प्राचीन देवी देवताओं और सिद्ध महापुरुषों के अमर होने का उल्लेख भारतीय धर्म ग्रन्थों में बहुतायत से मिलता है। बल्कि पुराण में एक आख्यायिका आती है—जब कल्कि भगवान् ने देखा कि सारा संसार काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर आदि विकारों में आकंठ डूबा पड़ा है आत्माओं का प्रकाश नष्ट हो चुका है तो उन्होंने अज्ञानान्धकार में भटकते लोगों के उद्‌बोधन और उन्हें स्वर्ग और बन्धन मुक्ति का मार्ग दिखाने का निश्चय किया। अन्धकार बड़ा गहरा था। लौकिकता, भौतिकता और इन्द्रिय वासनाओं से सारा संसार बुरी तरह जकड़ा हुआ था। कल्कि भगवान् ने मो न्धकार में डूबे विश्व को जगाने के लिये जो शक्ति चाहिए उसमें कमी अनुभव की, तब उन्हें उनके गुरु परशुराम ने हिमालय बुलाया और जहाँ स्वयं उन्होंने तप किया था वहाँ तप कराकर उनमें उस प्रचंड शक्ति का जागरण कराया जो युग-परिवर्तन के लिये अभीष्ट थी।

भगवान् परशुराम का जन्म कई सतयुगों से पूर्व वैदिक-युग का है कलियुग में भी उनकी उपस्थिति उनकी अमरता का द्योतक है और इस बात का घोषणा पत्र भी कि उन जैसी अमर आत्मायें अभी भी हिमालय में है। डॉ० हरिदत्त भट्ट शैलेश ने धर्मयुग के २३ अगस्त १९६४ के अंक में अपने 'जाँवली (गढ़वाल) पहाड़ी जो २२००० फुट ऊँची है, के पर्वतारोहण का रोचक वर्णन देते हुए स्वीकार किया है कि वहाँ पर हिम-सवलन की एक भयंकर दुर्घटना से किसी शक्ति ने ही—बलात् बचाया अन्यथा हम सब के सब वहीं दब कर मर गये होते। यह सब घटनायें इस तथ्य की ही पुष्टि करती हैं कि हिमालय में प्रचंड अतीन्द्रिय क्षमताओं वाली अमर आत्मायें अभी भी हैं और अनन्त काल तक रहेंगी।

अमरता भारतीय योग की ही उत्कण्ठा नहीं है आज के वैज्ञानिक भी अमरता की शोध बड़ी तत्परता से कर रहे हैं। रूस, फ्रान्स, ब्रिटेन, जर्मनी सभी देशों के जीव-वैज्ञानिक वृद्धावस्था और मृत्यु के कारणों की खोज लम्बे अर्से से करते आ रहे हैं। अकेले अमरीका में एक हजार से अधिक दल इस दिशा में सक्रिय हैं और उन्होंने अपनी अब तक की उपलब्धियों के आधार पर भी यही निष्कर्ष निकाले हैं कि मृत्यु कोई

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

आवश्यक घटना नहीं, वृद्धावस्था एक प्रकार का रोग है। यदि उसका उचित उपचार मिल जाये तो मनुष्य हजारों वर्ष तक जी सकता है। आयुर्वेद में कायाकल्प के जो विधान दिये हैं वह भी इसी सिद्धान्त की पुष्टि करते हैं। अब तो विज्ञान स्पष्ट रूप से उन बातों को स्वीकार करने लगा है।

मृत्यु वस्तुतः काल की सीमा नहीं वरन् शरीर की व्यवस्था में व्युक्तक का परिघटित रूप मात्र है। युवावस्था में जिस शरीर की माँस पेशियों का भार १०० पौण्ड होता है वृद्धावस्था में कुल ७० पौण्ड रह जाता है। उसी के अनुरूप शारीरिक शक्ति भी कम हो जाती है। युवा व्यक्ति का हृदय ६ लिटर रक्त पंप करता है, वृद्ध का ३ ही लिटर। फेफड़े अपनी आधी क्षमता खो देते हैं। मस्तिष्क से शरीर और शरीर से मस्तिष्क को समाचार लाने ले जाने वाले तंत्रिका तंतुओं की शक्ति में १५ प्रतिशत का ह्रास हो जाता है। मस्तिष्कीय द्रव्य का भी भार ३·०३ पौण्ड से घटकर २·२७ पौण्ड रह जाता है। शारीरिक क्षमताओं में धीरे-धीरे ह्रास ही वृद्धावस्था का कारण और जीवन गति का रुक जाना ही मृत्यु है। यदि जीवन की गति को प्रखर रखा जा सके और शरीर को बनाने वाले कोशों के नवीनीकरण की क्रिया में अतंर न आने दिया जाये तो मनुष्य को चिरकाल तक जीवित रखा जा सकता है। जीवन तत्व (जीन्स) अमर पदार्थ है यदि वह नष्ट होता तो शरीर के नष्ट होने का कोई कारण नहीं होना चाहिये यह तो हमारी जीवन पद्धति का दोष है कि हम अपने जीवन प्रवाह को कमजोर बनाकर शरीर को भी कमजोर बना डालते हैं।

आयुर्वेद पर दृष्टिपात करने से पता चलता है कि प्राचीन काल के ऋषि मनीषियों ने उन 'पौधों जड़ी' बूटियों फलों और रसायनों का पता लगा लिया था जो शरीर के स्थूल कोशों को निरन्तर बदलते रहने में सहायक होते हैं। यह बात अब विज्ञान भी मानता है और विज्ञान जगत का यह एक बहुचर्चित मुहावरा बन गया है कि—"मनुष्य आहार नहीं खाता, आहार स्वयं मनुष्य को खाता है"। हमारा स्थूल शरीर रक्त से पोषण पाता है। रक्त नाड़ियों के रूप में सारे शरीर को आक्सीजन देता है। आक्सीजन और दूसरे 'नर्क्स फलूड' ही शरीर में चेतना का संचार करते हैं। यह सब भावनाओं द्वारा होता है। विचार और भावनायें ही शरीर में हारमोंस का स्राव करती हैं। यह हारमोन्स ही शरीर की सारी गतिविधि (मेटाबोलिज्म) का नियंत्रण करती हैं। इससे प्रकट होता है कि अन्तिम रूप से शरीर के पोषण और उसे स्वस्थ रखने का सर्वाधिक उत्तरदायित्व भावनाओं और विचारों या वास्तविक जीवन तत्व को ही है। साल्योन नामक पक्षी को देखा गया है कि वह अंडा देने के बाद रोग का शिकार हो जाती है। खोज करने से पता चला है कि अंडा देने के बाद उसकी पिचुट्री ग्रन्थि (यही विचार या भावसंस्थान है।) उत्तेजित हो उठती है और उससे ए० सी० टी० एच० हारमोन्स भारी मात्रा में स्रवित होने लगता है जिससे वह बीमार पड़ जाती हैं। ऐसा कई जीव जन्तुओं के बारे में होता है। इससे यह प्रतिपादित होता है कि यदि मनुष्य अपनी विचार-प्रणाली को सशक्त बनाकर काम ले और अपना आहार सूक्ष्म रखे तो वह इच्छानुसार आयु बनाये रखने में समर्थ हो सकता है।

विचार नियंत्रण प्रणाली का अभी तक पाश्चात्य वैज्ञानिक ज्ञान नहीं कर सके। अपनी भावनाओं में क्या ऐसी भी शक्ति है कि वे आकाश में तैरते हुए जीवन प्रवाह (जीन्स) को बिल्कुल शुद्ध रूप में ग्रहण कर सकें यह विद्या अभी केवल भारतीय योगी जानते हैं पर अब वैज्ञानिक भी उसकी पुष्टि करने लगे हैं। उदाहरण के लिये सन् १९२९ में स्ट्रासवर्ग के कुछ जीव वैज्ञानिकों ने बत्तखों पर 'जीन्स' बदलने का प्रयोग किया। कैम्पबेल और पेकिस जाति की दो बत्तखें चुनी गई। एक के डी० एन० ए० (कोश का पैडी नुमा वह सूक्ष्म भाग जिसमें जीवन रहता है) दूसरे के पहले में प्रवेश कराये। इससे दोनों के रंग में परिवर्तन दिखाई देने लगा। कुछ ही दिनों में कैम्पबेल का खाकी रङ्ग पेकिस में उभरने लगा और कैम्पबेल की गर्दन श्वेत पड़ने लगी।

विज्ञान ऐसे थोड़े प्रयोग कर सकता है। एक दो गुण-सूत्र बदल लेना सफलता की प्रारम्भिक सीढ़ी है। १० अरब मनुष्य के प्रजनन कोशों में 'न्यूक्लिओटाइडों' के लगभग दस अरब जोड़े होते हैं। प्रत्येक जोड़े में ४६ गुण सूत्र। अभी इनमें परिवर्तन करके मनुष्य के स्वभाव में ही परिवर्तन करना कठिन हो रहा है। अभी तो शरीर में कुछ ऐसे कोश हैं जो एक बार बनने के बाद कभी भी बदलते नहीं उन्हें स्वस्थ रखे जाने का प्रश्न तो और भी टेढ़ा है विज्ञान को वहाँ तक पहुँचने में लम्बा समय लग सकता है पर योग विज्ञान और भारतीय रसायन पद्धति में वह ज्ञान पहले से ही विद्यमान है यदि उसे खोजा जा सके तो मनुष्य को इच्छानुसार जीवित रख सकना कोई कठिन बात नहीं जैसा कि हिमालय के उपरोक्त उदाहरणों से स्पष्ट है।

यह सब कठिन साधनाओं के अतिरिक्त उपयुक्त वातावरण पर भी निर्भर है। अनेक वैज्ञानिकों ने उसके लिये ऐसे तापमान की आवश्यकता बताई है जो शून्य से भी कम हो। 'स्पेश ओडिसी' में श्री क्लार्क ने भी लिखा है कि २००-२००, ४००-४०० वर्षों में पूरी होने वाली अन्तरिक्ष यात्राओं में मनुष्य को सुषुप्त रखकर उन्हें लम्बी आयु प्रदान करने में शून्य तापमान से कम तापमान आवश्यक होगा। इन सब उदाहरणों से स्पष्ट है कि यदि हिमालय में ऐसी कोई अमर आत्मायें हों तो उसे आश्चर्य न मानकर सत्य माना जाये यदि यह आत्मायें इस देश को जागृत करने और अध्यात्म ज्ञान की एक नई दिशा देने का प्रयत्न कर रही हों तो इसे भी आश्चर्य न मानकर तथ्य और सत्य ही माना जाना चाहिये।

इसी तरह अन्य घटना सन् १९४२ की है जब कुमायूँ के राजा साहब ने परिश्रमी कमांड के तत्कालीन सेनापति (जी० ओ० सी० एन० सी०) श्री एल० पी० फैरेल को वन-विहार के लिये आमन्त्रित किया। श्री फरेल को ही आमन्त्रित करने का विशेष कारण यह भी था कि वह अँग्रेज होते हुये भी भारतीय धर्मदर्शन एवं संस्कृति से अत्यधिक प्रभावित थे। कई योगियों के चमत्कार देखने का जब से उन्हें अवसर मिला था तब से तो वे पूर्ण शाकाहारी भी बन गये थे। आत्मा, परमात्मा की शोध और प्राप्ति की उनमें प्रबल जिज्ञासा जग पड़ी थी यही कारण था कि उन्हें जब भी कभी हिमालय की ओर जाने का अवसर

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

मिलता वे उससे चूकते नहीं वरन् बड़ी प्रसन्नता के साथ इस आशा से जाते थे कि कहीं किसी और ऐसे योग्य साधु के दर्शन हो जायें जो आत्मा के रहस्य खोल सके और उसकी प्राप्ति की कुन्जी प्रदान कर सके तो अपना जीवन ही सार्थक हो जाये।

कुमायूँ की पहाड़ियों पर कई दिन घूमते, वन-श्री का अवलोकन करते हुये एक दिन श्री फैरेल राजा साहब और रानी साहब के साथ नैनीताल के पास एक ऐसे स्थान पर पहुँचे जहाँ की फूलों की छटा देखते ही बनती थी। समय काफी हो चुका था यह स्थान भी बहुत रमणीक था सो उस दिन पड़ाव के लिये उसे ही चुन लिया गया। आज्ञा होते ही खेमे गाढ़ दिये गये। थोड़ी देर पहले जो स्थान निविड़ एकान्त था अब उसी में सैकड़ों तम्बू लग गये, सेवक, सेविकाओं की चहल-पहल और व्यस्तता दिखाई देने लगी।

रात के बारह बजे तक गपशप भोजन-पान चलता रहा और इसके बाद फिर सन्नाटा छाने लगा। सब लोग अपने-अपने बिस्तरों पर चले गये और दिन भर के थके होने के कारण थोड़ी ही देर में सो गये।

नींद का पहला चरण पूरा ही हुआ था कि श्री फैरेल ने अनुभव किया कि उनकी चारपाई पर कोई है। नींद टूट गयी उन्होंने स्पष्ट सुना कोई उनका नाम लेकर कह रहा था। "मिस्टर फैरेल—जिस स्थान पर आपका यह तम्बू लगा है इसकी हमें पहले से ही आवश्यकता है तुम इस स्थान को खाली कर दो, मेरी बात तुम्हारी समझ में न आये तो सामने उत्तर-पश्चिम में जो पहाड़ी दिखाई दे रही है वहाँ आओ मैं तुम्हें सब समझा दूँगा।"

"पर आप हैं कौन"—यह कहते हुये फैरेल ने चारपाई से उठकर टार्च जलाया। तारा तम्बू प्रकाश से भर गया पर वहाँ कोई भी तो नहीं आया था। फैरेल महोदय बाहर आये पर वहाँ भी तो कोई नहीं था। किसी के पैरों के निशान भी तो नहीं थे जिससे पता चलता कि कोई वहाँ आया है। एक बार तो उन्हें कुछ भय-सा लगा किन्तु दूसरे ही क्षण वे चुपचाप तम्बू में चले गये और पुनः सोने के लिये लेट गये। लेटते समय उन्होंने घड़ी देखी—रात के साढ़े तीन बजे थे।

बहुत प्रयत्न करने पर भी उन्हें नींद नहीं आ रही थी किसी तरह आँखें मूँद लेते थे तभी फिर किसी के आने की सी आहट हुई। लेटे ही लेटे उन्होंने आँखें खोलीं और देखा कोई छाया—पुरुष सामने खड़ा है इस बार भी उसने यही शब्द कहे। फैरेल ने पहचान के लिये जैसे ही टार्च जलाई कि वहाँ न तो कोई छाया थी न आदमी वही एकान्त। सारे शरीर से पसीना फूट पड़ा। कई बार युद्ध में भयंकर रक्तपात देखकर भी न डरने वाला यह सेनाधिकारी भी एक बार अतीन्द्रिय सत्ता की कल्पना मात्र से सहम उठा। देह काँपने लगी, मुँह से एक शब्द फूटना भी आफत थी। चुपचाप आँखें ही मूँदते बनीं। फिर सबेरे तक न उसने आँखें खोलीं और न कुछ देखा या सुना पर एक विलक्षण आकर्षण उठ रहा था कि क्यों न उस पहाड़ी पर चलकर देखें बात क्या है ? जूते, कपड़े पहनकर बाहर निकले देर से सोने के कारण अभी तक भी सब लोग सोये पड़े थे। श्री फैरेल बाहर निकले और चुपचाप उस पहाड़ी की ओर चल पड़े।

श्री फैरेल महोदय ने इस घटना का वृतान्त बताते हुए स्वयं लिखा है—"जिस स्थान पर पहुँचने के लिये मुझे निर्देश दिया गया था वहाँ तक पहुँचने का रास्ता बहुत दुर्गम, सकरा और भयावह था, मैं ऊपर चढ़ने के लिये बिल्कुल समर्थ न था पर मैं निरन्तर अनुभव कर रहा था कि कोई व्यक्ति मेरे साथ-साथ रास्ता दिखाता चल रहा है। वही मुझे ऊपर चढ़ने की शक्ति दे रहा है। साढ़े तीन घण्टे के कड़े परिश्रम के बाद मैं ऊपर चढ़ पाया। हँफहफी और पसीने के कारण दम फूल रहा था, आगे चलना कठिन दिखाई दे रहा था सो वहीं पड़े एक चौकोर पत्थर पर थोड़ा आराम करने की इच्छा से बैठ गया।"

अभी दो क्षण भी नहीं बीते थे कि ठीक उसी आवाज ने चौंकाया—मिस्टर फैरेल ! अब तुम अपने जूते वहीं उतार दो और धीरे-धीरे उतर कर यहाँ मेरे पास आओ ! इन शब्दों के साथ ही श्री फैरेल की दृष्टि उठी उन्होंने देखा एक अति जर्जर शरीर किन्तु मस्तिष्क से झर रही अपूर्व तेज राशि वाले साधु सामने खड़े हैं। मैं इनको जानता तो क्या इससे पहले कभी देखा भी नहीं यह मेरा नाम कैसे जान गये ? यह यहीं थे तब बिल्कुल इन्हीं के शरीर जैसी छाया रात मेरे तम्बू तक कैसे पहुँची ? न कोई बेतार का तार न रेडियो माइक्रोफोन फिर इनकी हूबहू आवाज मेरे पास तक कैसे पहुँची ? आदि कई प्रश्न एक साथ श्री फैरेल के मस्तिष्क में उठ खड़े हुए। उनके इन प्रश्नों पर एक ओर प्रश्न चिह्न लगाते हुये साधु ने कहा—तुम जो सोच रहे हो वह एकाएक समझने वाली बातें नहीं हैं, समझ सकते भी नहीं क्योंकि उसके लिये लम्बे समय तक साधना और योगाभ्यास करना पड़ता है, जीवन के सुख और इन्द्रियों के आकर्षण त्याग कर लम्बे समय तक तप करना पड़ता है वह न आपके लिये सम्भव है न आप जान सकते हैं आपको तो जिस काम के लिये बुलाया है उसी के लिये यहाँ आ जाइये।

फैरेल आश्चर्य चकित रह गये कि यह व्यक्ति मनुष्य है या देवता बातें मेरे मन में उठ रही हैं और जान यह रहे हैं मनुष्य भी क्या कोई पुस्तक है ? जिसके सम्पूर्ण रहस्य को, अप्रकट को इस तरह पढ़ा जा सकता है ? इस तरह के विचित्र प्रश्न और चिन्तन करते हुये श्री फैरेल चलचित्र की छाया की तरह नीचे उतरने लगे और थोड़ी देर में ही वहाँ पर जा पहुँचे जहाँ साधु बैठे थे। वहाँ एक व्यक्ति के आराम करने भर की जगह और धूनी में जल रही आग के अतिरिक्त कुछ भी नहीं था।

आगे की घटना श्री फैरेल लिखते हैं—"साधु ने अपने जर्जर हाथ मेरी पीठ पर फेरे और मैं चौंका—वृद्ध शरीर में यह क्या विद्युत की सी शक्ति—मेरा शरीर जो अभी-अभी थकान के मारे टूट रहा था फूल की तरह हलका जान पड़ा। श्रद्धावश मैं झुका और उनके चरण स्पर्श किये। साधु सैकड़ों देखे थे पर अनुभव करता हूँ जिन साधु-सन्तों ने भारतीय दर्शन को प्रभावित किया और उसका सम्मान बढ़ाया है वे गली-गलियारों में घूमने और भीख माँगने वाले बाबा नहीं ऐसे एकान्त सेवी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

साधना निष्ठ साधु ही हैं। जो शरीर से ८०-९० पौण्ड होकर भी शक्ति और सामर्थ्य में हजारों बमों की क्षमता से भी शक्तिशाली और ज्ञान-विज्ञान के भंडार होते हैं।"

साधु ने बताया—'वह स्थान जहाँ आपका तम्बू लगा है वहाँ पहुँचने के लिये मैंने एक युवक को प्रेरित किया है। वह मेरा पूर्व जन्म में शिष्य था, साधना अधूरी रह गई है अब मैं फिर उसे लोकमंगल के लिये साधना और तप कराना चाहता हूँ पर उसकी पूर्व जन्मों की स्मृतियाँ सो गई हैं इस जन्म के संस्कार और परिस्थितियाँ उसे खींचती हैं इसलिये वह साधना में आरूढ़ नहीं हो पा रहा। मैंने उसे प्रेरणा देकर बुलाया है वह आया और निर्देशित स्थान न पा सका तो उसे भ्रम होगा और मैं जो चाहता हूँ वह न हो पायेगा इसलिये आप वह स्थान तुरन्त खाली कर दें।

श्री फैरेल ने कहा—भगवन् आप मुझे भी अपने पूर्व जन्मों की कुछ बातें बतायें ? इस पर साधु बोले—बेटा ! यह सिद्धियाँ तमाशे के लिये नहीं होतीं, इनका एक प्रयोजन है उसी में खर्च किया जाना उचित है, हाँ यदि तुम चाहो तो उस लड़के के पूर्व जन्म का विवरण दिखाते समय उपस्थित रह सकते हो। बस अब जाओ ? खेमे में तुम्हारे लिये हलचल मच रही है मुझे भी जल्दी है।

श्री फैरेल जहाँ-जहाँ गये थे वापस लौट आये। यहाँ सचमुच उनकी तीव्रता से खोज हो रही थी। श्री एल. पी. फैरेल ने सारी बातें राजा साहब को बताई और वह स्थान छोड़कर खेमे को २०० गज दूर कर लिया।

सायंकाल होने तक एक युवक सचमुच इधर-उधर कुछ देखता हुआ सा उस स्थान में आ पहुँचा। सब ओर से तसल्ली कर वह युवक वहाँ बैठ गया तब तक श्री फैरेल भी वहाँ पहुँच गये, उनकी जिज्ञासायें तीव्र हो रही थीं, साधु भी थोड़ी ही देर में वहाँ आ पहुँचे। श्री फैरेल और युवक दोनों ने उन्हें प्रणाम किया और आदेश की प्रतीक्षा में खड़े हो गये।

वह स्थान पेड़ों की झुरमुट में था। उसकी सफाई की गई। अग्नि जलाकर साधु ने कुछ पूजा की, मन्त्र पढ़े और एक स्थान में हमको बैठा लिया। अब तक चारों ओर पूरी तरह अँधेरा छा चुका था।

साधु ध्यानावस्थित होकर बैठ गये। उनके मस्तिष्क से प्रकाश की रेखा फूटी और एक वृक्ष के मोटे तने पर गोलाकार बिम्ब उभर उठा—फिर उसमें जो कुछ देखा वह बिल्कुल ठीक सिनेमा की तरह व्यवस्थित चलता-फिरता बोलता नाटक-सा था। जिसमें उस युवक के पूर्व जीवन की अनेक घटनायें ठीक चलचित्र जैसी ही प्रत्यक्ष आँखों से दिख रही थीं। बीच-बीच में वह युवक कुछ उत्तेजित-सा हो उठता था, हाँ-हाँ यह सब मैंने ही किया है ऐसा बोल पड़ता था। उसकी मृत्यु तक की सारी घटनायें श्री फैरेल ने भी देखीं तो वे भारतीय दर्शन की इस महानतम उपलब्धि से इतने प्रभावित हुये कि अपना सारा जीवन और अपने संस्कार ही बदल कर उन्होंने अपने को पूरा भारतीय बना लिया।

युवक ने अन्त में साधु को प्रणाम कर कहा—"भगवन् ! अब मेरा मोह टूट चुका है, मैं अपनी छोड़ी हुई साधना और कठिन तपश्चर्या के लिये पुनः तैयार हूँ आप मुझे रास्ता दिखाइये ताकि मैं उस छोड़े हुये अधूरे कार्य को पूरा कर सकूँ।"

साधु ने कहा—बच्चे, आज तुम यहीं विश्राम करो प्रातःकाल घर लौट जाना। फिर उचित समय पर मैं अपने आप तुम्हें बुला लूँगा। श्री फैरेल के जीवन में यह दूसरी घटना बड़ी भारी घटना थी, जिसने उन्हें भारतीय तत्वज्ञान की प्रामाणिकता का बोध कराया। वे इसके बाद यह नहीं जान सके कि वह युवक कब साधना के लिये बुलाया गया। बाद में वह कौन हुआ, किस नाम से विख्यात हुआ क्या काम किया पर उन्होंने जो कुछ देखा उसको लेकर वे हिन्दुस्तान से इंग्लैण्ड तक भारतीय धर्म और अध्यात्म के गीत गाते रहे। इस घटना की पुष्टि अपने एक लेख में स्वयं श्री फैरेल ने १७ मई १९५९ के साप्ताहिक हिन्दुस्तान में भी की थी।

वस्तुतः हिमालय प्रदेश सच्चे योगी महात्माओं का चिरकाल से खास केन्द्र है। इस पुण्य प्रान्त में जैसे महान योगी हो चुके हैं वैसे अन्य प्रान्तों में बहुत ही कम हुए हैं। अब भी वहाँ बड़े-बड़े महात्माओं के वर्तमान होने की बात सुनी जाती है। सुना जाता है कि तिब्बत का ज्ञानगंज योगाधर्म योगियों का एक महान् शिक्षालय है, जिसमें सैकड़ों महान योगी अब भी वर्तमान है। हिमालय में कई योगियों के दर्शन भाग्यवान पुरुषों को हो जाते हैं। स्वामी माधवतीर्थ जी दण्डी सन् १९४० में वहाँ गये थे। उन्हें एक महात्मा मिले। आपने उस, घटना को काशी के 'पन्था' नामक बंगला-पत्र में लिखा है, उसका मर्म इस प्रकार है—

"इस शरीर ने गौरीगिरि की परिक्रमा करने के लिए अक्षय तृतीया के दिन काठगोदाम से यात्रा की। शैल पुत्री तीर्थ का दर्शन करते समय यहाँ भी कतिपय महापुरुषों के दर्शन हुए।

यह शरीर गौरी तीर्थ में जिस पर्वत पर गया, वह हिमाचल प्रदेश का एक उत्कृष्ट स्थान है। स्वयं गौरी ने इस पर्वत पर शिव की आराधना की थी। जगत में देखा कोई कवि या कालाविद पैदा नहीं हुआ जो हिमालय के सौन्दर्य को व्यक्त कर सके। केवल यह सौन्दर्य ही तीर्थ यात्रियों के पथ की सारी क्लान्ति दूर कर देता है।

और भी दो एक पहाड़ी गौरी के दर्शन के लिए जा रहे थे। उनसे मुलाकात होने पर इस शरीर ने पूछा कि यहाँ कोई साधु-महात्मा है कि नहीं ? अगर हैं तो कहाँ पर ? उन लोगों ने अँगुली का इशारा करके तीन-चार स्थान दिखा दिये। ये सब प्रायः ३-४ कोस की दूरी पर थे। फिर दिखा कर उन्होंने कहा उस पहाड़ पर कभी-कभी एक महापुरुष आकर रहते हैं। जो स्थान समीप में दिखाया, वह भी बहुत ऊँचा था, परन्तु महापुरुष के दर्शन की आकांक्षा अत्यन्त बलवती होने के कारण इस शरीर ने उस पहाड़ पर चढ़ना शुरू कर दिया। वहाँ पहुँचने पर

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org

महात्मा के दर्शन मात्र से ऐसा मालूम हुआ कि आप कोई महापुरुष हैं, दिव्य दर्शन हैं।

एक छोटी-सी गुफा में वे महात्मा पद्मासन लगा कर बैठे थे। नेत्र बन्द थे, श्वास भी शायद बन्द था। सामने पाँच-छः हाथ की दूरी पर एक सूखा हुआ वृक्ष पृथ्वी पर पड़ा था, उसमें आग लगा दी गई थी। इस शरीर की उपस्थिति की बात शायद महात्मा जी को मालूम नहीं हुई। परन्तु झोला कम्बल रख कर नमो नारायण का उच्चारण करते ही उन्होंने नेत्र खोल कर इस शरीर को देखा और उसी क्षण पुनः नेत्र बन्द कर लिये।

उस समय मध्याह्न का समय प्रायः बीत चुका था। सूर्य देव पश्चिम आकाश में ढल चुके थे। प्रातः काल से पर्वत पर चढ़ते-चढ़ते शरीर भूख, प्यास से क्लान्त हो रहा था। पर्वत पर पहाड़ियों के घर हैं, परन्तु शरीर वहाँ जाने में अशक्त था। झोला, कम्बल, वर्दी रख कर, झरने में हाथ मुँह धोकर, अंजुली पानी पीते ही शरीर बहुत कुछ स्वस्थ हो गया। कम्बल बिछाकर गुफा के बाहर आसन लगा कर यह शरीर आराम करने लगा। महात्मा जी के यहाँ भोजनादि का कोई बखेड़ा किसी समय नहीं होता, यह बात उनके सामान को, जो वहाँ था देखने से ही मालूम होती थी। अतएव सहज ही धारणा हो गई थी कि वे भोजन नहीं करते। दर्शन तो हुए, परन्तु दर्शन का आनन्द नहीं मिला, क्यों कि वे मौन थे।

अन्य दिनों इस शरीर के झोले में चने का सत्तू और गुड़ रहता था। देव संयोग से यह भी आज नहीं था, अतएव यह निश्चित था कि आज भोजनादि की कोई व्यवस्था न हो सकेगी। सोचा संध्या के पहले बस्ती में जाने पर जो होगा सो होगा नारायण का स्मरण करते हुए समीप बैठ कर महात्मा के दर्शन करने में समय बिताने लगा उस समय शरीर भूख के मारे व्याकुल था।

जहाँ पर यह शरीर था वहाँ से बहुत दूरी तक दिखाई देता था। घास चरती हुई गाय जिस तरह स्वाभाविक ढंग से घूमती है, उसी तरह घूमती फिरती एक सफेद गाय महात्मा की गुफा के द्वार पर आकर पीछे के दोनों पैरों को थोड़ा फैला कर खड़ी हो गई। उस समय महात्मा ने नेत्र खोल कर मुस्कराते हुए गाय की ओर देखा। गाय के एक थन से खूब बारीक धार से दूध झरने लगा। यह शरीर जैसे मन्त्र द्वारा चालित हो, इस तरह अपने आसन से उठ खड़ा हुआ। महात्मा के आसन के पास काठ का एक बड़ा-सा पात्र उलट कर रक्खा था। उसे उठा कर उस शरीर ने गाय के थन के आगे रख दिया, उस समय गाय के चारों थनों से दूध अबाध गति से उस पात्र में झरने लगा। देखते देखते वह भर गया। प्रायः ४-५ सेर दूध होगा, महात्मा के सामने वह रक्खा गया, इस शरीर के साथ जो जल पात्र था वह भी थन के नीचे रक्खा गया। तब महापुरुष ने 'माई ! माई !' कह कर दो बार उच्च-स्वर से पुकारा। उसके क्षण भर बाद हवा का शब्द सुनाई पड़ा, मानो दूर से आँधी आती हो। यह शब्द कहाँ से आ रहा है, कुछ समझ में नहीं आया। क्षण भर बाद मालूम हुआ कि महापुरुष की नासिका श्वास से बाहर निकल रहा है। देखते-देखते उनका स्थूल शरीर अत्यन्त कृश हो गया। इसके बाद उन्होंने दूध का पात्र मुँह में लगाया और सारा दूध चढ़ा गये। इस बीच दूसरा पात्र भी भर गया और ये उसे भी खाली कर गये। पुनः उनका पात्र स्तन की नीचे रक्खा गया और दूध से भर जाने पर वे उसे भी पी गये। इस प्रकार दूध के तीन पात्र वे पी गये। अब दोनों पात्रों का दूध पीने के लिये महात्माजी इस देव को दशारा किया। आदेश होते ही कमंडल का दूध पी लिया गया। महापुरुष के पात्र का भी कुछ दूध पिया गया। पेट में और स्थान न रहा। अपूर्व स्वाद था। दूध के ऐसे माधुर्य रस का अनुभव और कभी नहीं हुआ था। असीम तृप्ति हुई। महात्मा के दर्शन से जो तृप्ति आज हुई, उस से शरीर धारण करना पूर्ण सार्थक हो गया। उनके सुख से निकली हुई कोई बात सुनने को नहीं मिली। बहुत देर तक इस आशा में शरीर बैठा रहा। संध्या से पहले वे आसन से उठ कर झरने की ओर गये जहाँ पर यह शरीर था वहाँ से झरने तक अच्छी तरह दिखायी पड़ता था। वहाँ से वे अदृश्य हो गये। किसी ओर दिखाई न पड़े। बहुत खोजने पर भी फिर दर्शन नहीं हुए। संध्या समय बस्ती में जाकर इस शरीर ने आश्रय लिया। दो तीन दिन और दर्शन की चेष्टा की गई। पर्वतीय लोगों ने कहा बीच-बीच में महापुरुष वहाँ आते हैं। कभी-कभी दूसरे पहाड़ पर उनका आसन पड़ता है। जो दर्शन करता है, उसका जीवन धन्य है। नारायण का स्मरण करते हुए बहुत खोज की गई, परन्तु फिर दर्शन नहीं हुए।

तिब्बत के सिद्ध लामा योगी

डॉक्टर अलेक्जेण्डर कैनन, हाँगकाँग (चीन) में नाइट पदवी धारी एक प्रतिष्ठित व्यक्ति हैं, तथा गुप्त विद्याओं के रहस्यों के गम्भीर अन्वेषक हैं। एक लामा योगी ने उनको निमंत्रण दिया था। अतः वे अपने एक साधु मित्र के साथ लामा योगी के यहाँ जा रहे थे। उन्हें इस यात्रा में तथा जीवन भर में आध्यात्मिक तथा योग के सम्बन्ध में जो अनुभव हुए उनका इनविजिवल इन्फ्लूएन्स (Invisible Influence) नामक पुस्तक में उन्होंने लिखा है। उपर्युक्त यात्रा में वृत्तांत में एक स्थान पर वे लिखते हैं—

"जहाँ लामा रहते थे, उस मन्दिर के पास हम पहुँच रहे थे। मन्दिर कुछ ही दूर सामने था, परन्तु रास्ते में हमारे सामने एक बड़ी खाई थी, जिसे हम पार कर ही नहीं सकते थे। यह खाई पचास गज चौड़ी और बहुत गहरी थी। समझदार और अन्तर्दर्शी लामा ने हमारी सहायता के लिये अपना एक दूत भेजा था, जो खाई के किनारे हमें उपस्थित मिला। उस दूत ने खाई पार करने के लिये प्राणायाम, शिथिलीकरण तथा कुछ और ऐसे ही योग के साधन बतलाये। यद्यपि योग के साधनों से हम अभ्यस्त थे, तथापि खाई पार करने के लिये ऐसे साधन करने में उस समय मन ही मन हँसी आई और आश्चर्य हुआ, तथा खाई पार करने के लिये वे साधन हमें वैसे ही प्रतीत हुए जैसे कि मन के लड्डुओं से पेट भरना। दूत ने हमें एक प्रकार का प्राणयाम तथा ऑटोहाइपोनिसिस (Autohypnosis) करने को कहा। आदेशानुसार हमने खाई पार करने की तैयारी इसी साधन द्वारा की। फिर एक क्षण में ही हम दोनों (मैं और मेरे साथी साधु मित्र) खाई के उस पार कुशलपूर्वक पहुँच गये।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

परन्तु हमारे साथ जो बच्चे थे, वे इसी पार रह गये। हमने उन्हें लौट जाने को आज्ञा दे दी थी। हमने देखा कि हमारा सामान भी उसी पार पड़ा हुआ था।"

फिर जब डॉक्टर कैनन लामा योगी के यहाँ से कुछ सप्ताह पश्चात् लौटे तो खाई पार करते समय पुनः वैसी ही घटना हुई। जब भरी सभा में लामा ने डॉक्टर साहब का स्वागत किया, उस समय का उनका अनुभव और भी अजीब है। लामा बैठे हुए थे और उनके शरीर के चारों ओर तीन फीट के घेरे में नीले रंग का तेजस् था। फिर कफन में लपेटा हुआ एक मृत मनुष्य का शरीर लाया गया। डॉक्टर साहब को उस शरीर को देखने जाँचने की अनुमति दी गई। परीक्षा करने पर डॉक्टर साहब को मालूम हुआ कि उस मनुष्य को मरे चौबीस घण्टे से अधिक समय बीत चुका है। इसके पश्चात लामा के आज्ञा देते ही उस मरे हुए मनुष्य ने आँखें खोलीं, फिर वह उठ कर खड़ा हो गया और दो साधुओं की सहायता से लामा की दृष्टि से अपनी दृष्टि मिलाये हुए लामा के पास तक गया और प्रणाम करके वापस आकर पुनः कफन में जाकर 'मरा' हो गया।

इस आश्चर्य को देख कर डॉक्टर साहब के मन में यह प्रश्न उठा कि यह प्राणायाम और राजयोग युक्त साधन की कोई घटना है अथवा और कुछ है? उन्होंने प्रश्न किया ही नहीं कि इतने में बिना कुछ पूछे या सुने ही, मानो टेलिपेथिकली (Telepathically) विचारों द्वारा ही लामा को डॉक्टर साहब के मन के विचार मालूम हो गये हों, लामा ने उत्तर दिया कि यह मनुष्य सात वर्ष से मरा हुआ है तथा अगले सात वर्षों तक भी इसी प्रकार सुरक्षित मृत अवस्था में रह सकता है। इसकी आयु कई सौ वर्षों की है, तथा और भी कई सौ वर्षों तक यह इसी प्रकार जिन्दा रह सकता है।

तब डॉक्टर साहब ने प्रश्न किया कि इसके शरीर के गुप्त मन और आत्मा कहाँ हैं ? जाँच करने से तो यह मालूम पड़ा। लामा ने उत्तर दिया कि इसका आत्मा और मन खास कार्यों के लिये पृथ्वी पर सर्वत्र (Special Missions) भेजा जाता है। खाई पार करने में जिसने आपको सहायता दी थी, वह यही दूत था।

लौटते समय भी जब दूत खाई पर उपस्थित था तब डॉक्टर साहब ने प्रश्न किया—'मुझे जीवन में ऐसे अजीब अनुभव क्यों हो रहे हैं ? दूत ने डॉक्टर साहब की त्रिकुटी पर दृष्टि जमाते हुए प्रेम से उत्तर दिया—'हम लोग आज—कल की आधुनिक स्थिति के अनुसार आपका मूल्य नहीं आँकते, हम तो आपकी विमूढ़, शक्तियों के अनुसार आपकी जाँच करते हैं। हमें तो आपके भविष्य से प्रयोजन है। आपके भविष्य में यह बात अंकित है और आपको श्रद्धापूर्वक इस मार्ग का अनुसरण करने से कोई रोक नहीं सकता।'

इसके अतिरिक्त डॉक्टर साहब ने और भी अजीब घटनाएँ देखीं।

प्रसिद्ध फ्रेंच परिवाजक देवी श्रीमती अलेक्जेण्ड्रा डेविड नील ने भी सिद्ध योगियों की बहुत खोज की है। वे ब्रुसेल्स विश्वविद्यालय की प्रोफेसरी छोड़कर बौद्ध धर्म में दीक्षित हुईं और १२ वर्ष तक तिब्बत में रहकर लामा योगियों के साथ रहकर आध्यात्म विद्या का अभ्यास किया। उन्होंने अपनी पुस्तक में लामा योगियों की असाधारण सिद्धियों का वर्णन करते हुए एक घटना का इस प्रकार उल्लेख किया है—

"उत्तरी तिब्बत के छङ्ग थे पठार में मेरी एक लुङ्ग-गोम-पा योगी से भेंट हुई। मैं अपने पुत्र और सेवकों के साथ उस पठार को पार कर रही थी। इतने में मुझे एक छोटी काली चीज बहुत दूर से अपनी ओर दौड़ती हुई दिखाई दी। दुर्बीन लगाकर देखा तो एक मनुष्य आकृति दिखाई दी। इस सघन वन में यात्री का दिखाई देना एक आश्चर्य की बात थी। सोचा, शायद कोई यात्री भटककर इधर आ निकला होगा, चलो इसे भी साथ ले चलें। शङ्का निवारण के लिये मैंने अपनी दुर्बीन सेवक को दी और ध्यानपूर्वक देखने का आदेश किया। वह बोला—'लामा लुङ्ग-गोम छीग पा', अर्थात् यह तो लामा सिद्ध योगी के समान दिखाई देता है। मैंने ऐसे सिद्धों की करामातों के बारे में बहुत कुछ सुन रखा था। किन्तु आँखों से देखने के थोड़े ही अवसर मिले थे। मैं द्रुतवेग से अपनी ओर आते हुए उस योगी को ध्यानपूर्वक देखने लगी और सोचने लगी कि जब यह पास आवेंगे तो उन से कुछ बातें करूँगी और फोटो खींचूंगी।

सेवक ने मेरी उत्सुकता को पहचान लिया और कहा—'देवीजी, आप इस योगी को भूलकर भी न छेड़ना, ऐसा करने से प्राणों पर संकट आ सकता है।" मैंने उसकी बात मान ली और जरा हटकर खड़ी हो गई। जब वह हमारे पास से गुजरा तो मैंने देखा कि उस सिद्ध योगी की आँखें अधखुली थीं और आकाश में किसी ऊँचे पदार्थ को स्थिर दृष्टि से देखता था। वह रेलगाड़ी की तेजी से दौड़ रहा था। ऐसा प्रतीत होता था मानो उसका शरीर एक गेंद है, जो बार-बार जमीन में लगती और जोर से उछलती हुई आगे चली जा रही है। वह धुनी हुई रुई की तरह हलका लगता था। बाँए हाथ में वस्त्र और दाहिने हाथ में 'फुर्वा' (अभिमंत्रित छुरी) लिए हुए था। यह छुरी उसे छड़ी की तरह जमीन छूने पर सहारा देती जाती थी। कुछ ही क्षणों में वह इतनी दूर निकल गया कि फिर मैं उसे दुर्बीन की सहायता से भी न देख सकी।

आगे थेबगिपाई क्षेत्र पर जाकर अपने साथियों से मैंने उस दृश्य का वर्णन किया तो उन्होंने बताया कि 'लुङ्ग-गोम-पा' सिद्ध योगी रुई की तरह हलके बन जाने और हवा की तरह दौड़ने में पूर्ण दक्ष होते हैं। उन्हें और भी अनेक प्रकार की सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं।

हवा में महल और आधी रात में सूर्य

श्री श्यामाचरण लाहिड़ी प्रसिद्ध योगी और सन्त तब दानापुर कैन्ट (पटना) में एकाउन्टेन्ट थे। सन् १८६१ की बात है उन्हें सरकारी तार मिला जिसमें आदेश मिला था रानीखेत ट्रान्सफर का। ट्रान्सफर की कोई सम्भावना न थी पर जब वह हो ही गया तो श्री लाहिड़ी वहाँ से चल कर रानीखेत जा पहुँचे।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जिस आफिस में वे काम करते थे उसके सम्मुख ही द्रोण पर्वत है। काम के बीच रह रहकर उन्हें एक आवाज-सी सुनाई पड़ा करती। लगता उन्हें कोई उस पहाड़ी की ओर आकर्षित कर रहा है। दो दिन तक तो वे उन अज्ञात प्रेरणाओं को दबाते रहे पर तीसरे दिन उन्हें चलना ही पड़ा।

अभी रात होने को देर थी पर भगवान् सूर्य अस्ताचल के समीप जा पहुँचे थे। द्रोण पर्वत पर पहुँचकर श्री लाहिड़ी ने चारों ओर दृष्टि घुमाकर प्रकृति के मनोरम दृश्य देखे। बड़ी देर तक वे सृष्टा की अनुपम कारीगरी को निहारते और सोचते रहे मनुष्य को एक छोटा-सा उद्यान लगाने में कितना परिश्रम जुटाना पड़ता है फिर जिसने सारी पृथ्वी को ही एक मनोरम उद्यान के रूप में बनाया, जो इस उपवन की निरन्तर काट-छाँट खाद-पानी—किया करता है वह कितनी सर्वशक्तिमान सत्ता होगी।

यह विचार करते हुए वे घर लौटने के लिए मुड़ना ही चाहते थे तभी एक ओर से हलकी मधुर आवाज सुनाई दी—वत्स ! ठहरो ! लाहिड़ी ने पीछे मुड़कर देखा भगवान् भास्कर तो अस्त हो चुके थे पर उसी दिशा में कुछ सौ गज के फासले पर ही एक चाँदी के रुपये जितना गोल दिव्य प्रकाश छिटक रहा था मानो आज ध्रुव धरती पर उतर आया था। इस तेज-बिन्दु से किरणों की सी आभा छिटक रही थी। लाहिड़ी महाशय ने एक दो बार पुकारने वाले को ढूँढ़ना चाहा पर और तो कोई दिखाई न दिया हाँ दृष्टि उस तेजोवलय पर टिक कर अवश्य रह गई। अब तक स्पष्ट हो चुका शब्दवत आदेश उस प्रकाश से ही आ रहे थे।

श्री लाहिड़ी ने कभी पढ़ा था—

अयं होता प्रथमः पश्यतेममिदं ज्योतिरमृतं मर्ष्येषु ।
अयं सज्ज्ञे ध्रुव आ निषत्तोऽमर्त्य स्तन्वा वर्धमानः ॥
ध्रुव ज्योतिर्निहितं दृशये कं मनो जविष्ठ पतयत्स्वन्तः ।
विश्व देवाः समनसः सकेता एकं क्रतुमभि वियन्ति साधु ॥

ऋग्वेद ६/९/४-५

अर्थात्—नाशवान् शरीर के साथ बढ़ने वाला यह अमर आत्मा प्रकट हुआ। यह जीव (चेतना) है वह ज्योति रूप—तेजोमय है। सांसारिक सुखोपभोग की तृष्णा में यह तेज नष्ट हुआ पतन का कारण बनता है जबकि परमात्मा को धारण करने से वह बढ़ता है और अदृश्य एवं अद्भुत क्षमतायें विकसित करता है।

इस तत्त्व दर्शन को समझना आज प्रत्यक्ष सम्भव हुआ प्रकाश एक शक्ति है, शब्द भी एक शक्ति है दोनों परस्पर परिवर्तनीय है दोनों आत्मा के लक्षण हैं पर अभी तक शरीर से पृथक् आत्मचेतना की अनुभूति सम्भव नहीं हुई थी सो श्री लाहिड़ी को यह अनुभूति आज सम्भव हुई। योगीजन अपनी चेतना को शरीर से पृथक् कर किस प्रकार अतीन्द्रिय विहार करते होंगे यह आज समझना सम्भव हुआ। पर सब कुछ था विस्मय बोधक ही श्री लाहिड़ी कुछ ठगे से खड़े थे।

तभी उस प्रकाश पुंज से पुनः पुकार आई। तात। तुम्हारा दानापुर से स्थानान्तर हुआ नहीं कराया गया, इस पर्वत शिखर तक तुम आये नहीं लाये गये। अब मेरे साथ आओ और मैंने तुम्हें जिस हेतु बुलाया है उस प्रयोजन को पूरा करो।

बिल्ली को देखकर भयभीत चूहे अपने आप उसकी ओर बढ़ जाते हैं, घने जंगलों में पाये जाने वाले अजगरों में एक वीभत्स सम्मोहन शक्ति होती है उसे देखते ही शिकार अपने आप मुँह में दौड़े चले आते हैं ऐसे ही सम्मोहित श्री लाहिड़ी उस प्रकाश पुंज के पीछे-पीछे चल पड़े। प्रकाश पुंज एक गुफा के समीप जाकर रुका। श्री लाहिड़ी ने देखा—प्रकाश तो अन्तर्धान हो चुका है—एक साधु वहाँ खड़े मुस्करा रहे हैं। उन्होंने पुकारा—श्यामाचरण डरो नहीं आओ मेरे पास आओ।

एक अजनवी को अपना नाम लेते सुनकर श्री लाहिड़ी का विस्मय और भी बढ़ गया। उन्होंने पूछ ही तो लिया आप कौन हैं, मुझे यहाँ क्यों लाया गया, यहाँ मुझे कब तक ठहरना पड़ेगा ?

यह प्रश्न पूछने की अपेक्षा—तुम यह पूछते—मैं कौन हूँ तो मुझे अधिक प्रसन्नता होती तात ! यह सांसारिक नियम है कि लोग दुनिया भर का ज्ञान तो अर्जित करते हैं एक दूसरे के बारे में चढ़ बढ़कर बातें भी कर लेते हैं किन्तु आत्मतत्व के बारे में तथाकथित प्रबुद्ध व्यक्ति भी नहीं जानते कि वे कहाँ से आये ? क्यों आये ? और जब यह शरीर नहीं रहेगा तो इस अपने 'अहंभाव' का क्या होगा ? मैंने तो तुम्हें इसीलिए बुलाया है कि तुम्हें आत्मबोध हो ताकि पीछे जो एक महत्त्वपूर्ण काम कराना है, अध्यात्म को जीवित रखने का भार तुम पर डालना है—उस क्षमता का विकास भी हो सके।

तो भी तुम जो जानना चाहते हो वह भी तुम्हें जानने को मिलेगा। मुझे पता है कि तुमको दानापुर से यहाँ आने में कष्ट हुआ, यहाँ आफिस में तुम्हारा बहुत-सा काम बाकी पड़ा है जिसे तुम रात में करते हो—पर यह काम उससे भी आवश्यक था इसलिए मैंने ही तुम्हारे आफिसर के मन में तुम्हारे ट्रान्सफर का भाव पैदा किया, मेरा ही आकर्षण था जो तुम्हें यहाँ तक लाया गया। तुम मुझे भूल गये, इस स्थान को भी भूल गये। लो, अब मैं फिर से याद दिलाता हूँ यह कहते-कहते योगिराज समीप आ गये और उन्होंने पास आते ही अपना दाहिना हाथ श्री लाहिड़ी के सिर में रख दिया—मानो वे तांत्रिक प्रयोग करना चाहते थे।

श्री लाहिड़ी अभी तक की बातों पर चिन्तन कर रहे थे और सोच रहे थे—क्या जिस प्रकार रेडियो एक निश्चित फ्रीक्वेंसी पर लगाये जाने पर केवल उसी फ्रीक्वेंसी पर प्रसारित रेडियो स्टेशन की खबरें ग्रहण करता है—ठीक उसी प्रकार मनुष्य के मस्तिष्क को भी मानसिक शक्तियाँ द्वारा विचार और सन्देश भेजे जा सकते हैं ? अभी यही समाधान नहीं हो पा रहा था कि साधु के हाथ का एक विलक्षण झटका-सा लगा और ऐसा लगा कि शरीर में बिजली की सी एक कोई शक्ति भरने लगी। शरीर-धीरे-धीरे कोमल हो चला, तन्द्रायें जाग उठीं, मन का अन्धकार घुलने लगा, ऋतम्भरा प्रज्ञायें जागने लगीं। सब कुछ अलौकिक था। उससे भी अलौकिक थीं वह अनुभूतियाँ

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

जो उस सम्मोहित अवस्था में स्वप्न की नाईं मस्तिष्क में स्पष्ट उभरने लगीं।

श्री लाहिड़ी ने देखा मैं पूर्व जन्म में योगी था—यह साधु मेरे गुरु हैं हजारों वर्ष की आयु हो जाने पर भी वे शरीर को अपनी योग क्रियाओं द्वारा धारण किये हुए हैं उन्हें याद आया कि पिछले जन्म में वे योगाभ्यास तो करते रहे पर मन की सुखोपभोग की वासनायें नष्ट नहीं हुईं।

साधु ने अपना हाथ कब हटा लिया यह उन्हें पता ही नहीं चल पाया—मानसिक कल्पना के दृश्य और भी गहरे होते जा रहे थे जिनमें उनके अनेक जन्मों की स्मृतियाँ साकार होती चली जा रही थीं। उन्होंने जगमगाते हुए सूर्य को देखा और उस दिव्य प्रकाश में अलंकृत भव्य महल जिसमें सुख के हर एक साधन विद्यमान थे। मन हर वस्तु का रसास्वादन करता था पर किसी में तृप्ति नहीं हो रही थी। इस तरह श्री लाहिड़ी ने अपने पिछले अनेक जन्मों के दृश्यों से लेकर वहाँ पहुँचने तक का सारा वर्णन चल चित्र की भाँति देख लिया तब कहीं सम्मोहन टूटा। वे विस्मय के साथ आत्मबोध से भर चुके थे और योगिराज सम्मुख खड़े मुस्करा रहे थे।

उन्होंने कहा—बेटा भूखे होगे, देखो वह बर्तन रखा है उसमें से जो जी भरे लेकर खालो—आज का काम समाप्त हुआ, तुमने अपने आपको पहचान लिया—अब मैं तुम्हें क्रिया-योग की दीक्षा दूँगा—जिससे तुम भारतीय योग धर्म और दर्शन को जिन्दा रखने वाला ज्ञान और क्षमता सम्पादित कर सको।

श्री लाहिड़ी ने मिट्टी के उस बर्तन से वह वस्तुएँ निकाल कर खाईं जो वहाँ तो क्या वहाँ से सैकड़ों मील दूर तक भी उपलब्ध नहीं थीं। चेतना और योग की शक्ति के उस प्रथम परिचय ने उनकी निष्ठा दृढ़ कर दी। पूर्व जन्मों के संस्कार भी जाग उठे थे। और अब वे अपने आपको योगाभ्यास के लिए पूर्ण सुनिश्चित और खाली अनुभव कर रहे थे। अपने गुरुदेव को पहचान कर उन्होंने बारम्बार प्रणाम किया और आवश्यक तैयारियों के लिए वापस लौट पड़े।

यह घटना श्री लाहिड़ी के प्रशिष्ठा श्री स्वामी योगानन्द ने भी अपनी पुस्तक 'आटोबायोग्राफी आफ एयोगी' में दी है। श्री लाहिड़ी ने एकबार रानीखेत से लौटते हुए मुरादाबाद में अपने कुछ मित्रों को भी सुनाई। स्थूलवादी पाश्चात्य सभ्यता से प्रभावित उन मित्रों ने श्री लाहिड़ी का इस बात को लेकर खूब उपहास किया। इस पर दुःखी होकर श्री लाहिड़ी ने अपने गुरु का आह्वान किया। एक प्रकाश पुंज के मध्य छाया—शरीर से उपस्थित होकर गुरु ने उन मित्रों की भ्रांति का निवारण तो कर दिया पर साथ ही उन्होंने श्री लाहिड़ी को भी डाँटा और कहा—योग शक्तियों का उद्देश्य प्रदर्शन नहीं आत्मकल्याण और लोकमंगल की आवश्यकताओं को पूरा करना होता है फिर कभी ऐसे प्रदर्शन में मत फँसना अन्यथा फिर पहले जैसी योग भ्रष्टता के भागी बनोगे। श्री लाहिड़ी को अपनी भूल का बड़ा पश्चाताप हुआ उसके बाद से ही उन्होंने योग शक्ति के सार्वजनिक प्रदर्शन की बात का परित्याग कर दिया और क्रियायोग के अभ्यास में जुट गये।

एक शरीर यहाँ भी—वहाँ भी

'श्रीमान् जी ! मुझे अपने गुरुदेव के दर्शन करने वाराणसी जाना है। मुझे तीन-दिन का अवकाश चाहिये और आज थोड़ा जल्दी अवकाश चाहिए, ताकि रात की गाड़ी पकड़ने के लिये तैयारी कर सकूँ।' गोरखपुर के एक रेलवे दफ्तर में यह शब्द एक छोटे-से कर्मचारी अविनाश बाबू ने आफिस इंचार्ज श्री बाबू भगवतीचरण घोष (कलकत्ता निवासी) से कहते हुए छुट्टी का प्रार्थना-पत्र प्रस्तुत किया।

श्री भगवतीचरण बाबू रुष्ट हो उठे—छुट्टी ! छुट्टी !! छुट्टी !!! तुम्हारे गुरुदेव हुए या आफत हो गये। जब देखो, उनके ही दर्शनों को जाते रहते हो। कल जाना है, तो चले जाना। अभी जाकर काम करो।

अविनाश बाबू चुपचाप अपनी कुर्सी के पास आ गये, पर उनका मन काम करने में न लगा। जैसे-तैसे आफिस के घण्टे पूरे किये, इसी बीच कुछ नरम-से हुए भगवतीचरण जी आये और बोले—चलो मेरी कार पर, मैं तुम्हें घर छोड़ दूँगा, तो बनारस जाने की तैयारी कर लेना।

अविनाश और भगवतीचरण दोनों कार से चल पड़े। अविनाश का मकान सड़क से कुछ दूर मोड़ पर पड़ता था, मोड़ तक कार चली गई। इधर अविनाश बाबू भारी हृदय से उतर रहे थे, उधर दूसरी खिड़की के पास कोई व्यक्ति आया और भगवतीचरण से बोला—"भगवती बाबू, आप अपने मातहतों के प्रति बहुत निर्दय हैं। आपका यह स्वभाव अच्छा नहीं।" बस, इतने ही शब्द, इतनी ही देर की पहचान। आकृति तो पूरी-की-पूरी भगवतीचरण के मन में बैठ गई, पर वह आश्चर्यचकित रह गये कि यह एक सेकण्ड में उस सुनसान में कौन व्यक्ति था, जो एकाएक प्रकट हुआ और इस तरह आदेश देकर अन्तर्धान हो गया, मानो उसकी मुझसे वर्षों से पहचान रही हो। उनका शरीर भय से काँप रहा था। यह शब्द अविनाश ने भी सुने थे, पर उन्होंने किसी को देखा नहीं। इस एक छोटी-सी घटना ने भगवतीचरण के जीवन में क्रांतिकारी परिवर्तन कर दिया। वे जीवन भर के लिये आध्यात्मिक जिज्ञासु और श्रद्धालु बन गये। उन्होंने उसी समय अविनाश से कहा—तुम तैयारी करो, कल हम भी तुम्हारे साथ अपनी कार में बनारस तुम्हारे गुरुदेव के दर्शन करने चलेंगे।

दूसरे दिन दोनों ही व्यक्ति बनारस के महान योगी श्री श्यामाचरण लाहिड़ी के पास गये। भगवती बाबू उन्हें देखते ही आनन्द-आश्चर्य में डूब गये। ठीक यही आकृति थी, जो कल उन्हें आदेश देने गई थी। यही नहीं, उनका आश्चर्य तब सीमा पार कर गया, जब श्री लाहिड़ीजी ने उनके वहाँ पहुँचते ही पूछा—आप तो भगवतीचरण हैं न ? आप अपने मातहतों के प्रति बहुत निर्दय स्वभाव हैं, यह अच्छा नहीं। ठीक कल वाले शब्द उसी आवाज में दोहराये गये। एक व्यक्ति एक ही समय में दो स्थानों पर उपस्थित रहे, यह एक महान आश्चर्य था। पर योगी के लिये यह सब व्यक्ति के सूक्ष्म शरीर का खेल है। वे

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

इसे आश्चर्य नहीं मानते वरन् योग की अणिमा, गरिमा, लघिमा, महिमा, प्राप्त, प्राकम्प, ईशत्व, वशत्व जैसी सिद्धियों-सामर्थ्यों का एक नगण्य अंश मानते हैं।

बातचीत के समय श्री लाहिड़ी ने योग और तत्वदर्शन के अनेक गूढ़ दृष्टांत बताये। उन्होंने एक अति आश्चर्यपूर्ण रहस्य बताया कि हिमालय में एक ऐसे साधु हैं, जिनकी आयु का कोई भी अनुमान नहीं। कई युगों से भारतवर्ष में प्रकट होने वाली सद्गुरु आत्माओं को आत्मबोध, ज्ञान और प्रकाश वही देते आ रहे हैं। भारतवर्ष में जितने भी सिद्ध महापुरुष हुए हैं, उनकी दीक्षा इन साधु ने ही की है। वे दिगम्बर बर्फ की चट्टानों या कहीं ऐसे स्थान में रहते हैं, जहाँ केवल सूर्य झाँक सकता है, पृथ्वी का तो वही प्राणी वहाँ पहुँच सकता है, जिसे वह आप ही बुलाना चाहें।

वाराणसी में श्री अविनाश और भगवतीचरण द्वारा परमयोगी श्री लाहिड़ी की भेंट के दो और भी महत्त्वपूर्ण प्रसंग हैं—एक तो यह कि श्री भगवतीचरण को कोई सन्तान नहीं थी। उन्होंने आशीर्वाद दिया कि आपको सन्तान तो होगी, पर आध्यात्मिक प्रताप से उत्पन्न होने के कारण अन्तर्दर्शी होगी। उसे धर्म और समाज की सेवा और आत्मोत्थान की उच्चस्तरीय साधना के लिये आपको छोड़ना पड़ेगा। भगवतीचरण ने यह शर्त स्वीकार करली।

दूसरा प्रसंग श्री अविनाश का है। उन्होंने निवेदन किया—गुरुदेव ! अब तो सांसारिकता से जी भर गया। नौकरी-चाकरी करते भजन-पूजन हो नहीं पाता। इसलिये अब आप आज्ञा दें तो सर्विस छोड़ दूँ और अपना मन योगाभ्यास में लगाऊँ।

श्री लाहिड़ीजी ने कहा—बेटा ! साधना और अभ्यास के लिये गृहस्थ और सामाजिक जीवन का परित्याग आवश्यक नहीं। अपनी समर्थता बढ़ाकर सामाजिक उद्देश्य भी पूरे किये जा सकते हैं और आध्यात्मिक अनुभूतियों पर भी यदि तुम्हें कुछ दबाव अनुभव होता है, तो पेंशन के लिये प्रार्थना पत्र भेज दो। पेंशन मिलने लगेगी, तो गुजारे की दिक्कत नहीं होगी।

लेकिन गुरुदेव !—श्री अविनाश ने चिन्तित स्वर में पूछा—अभी तो मेरी सर्विस अधिक-से-अधिक चार वर्ष की ही होगी। मुझे पेंशन कौन दे देगा ? इस पर श्री लाहिड़ीजी बोले—बेटा ! योगी और ईश्वर-निष्ठ व्यक्ति यद्यपि ऐसा कभी-कभार किसी उद्देश्य के लिये ही करते हैं तथापि वे कहीं भी, कानून का उल्लंघन करके भी, किसी भी बड़े पदाधिकारी तक को गलत बात सही मनवा सकते हैं। तुम उसकी चिन्ता न करो। अपना प्रार्थना-पत्र भर दो, लिखना कि रीढ़ की हड्डी में दर्द है। आगे हम सब ठीक कर लेंगे।

इसके बाद भगवतीचरण ने वहाँ दीक्षा भी ली और दोनों शिष्य गोरखपुर लौट आये। यह एक विलक्षण सत्य है कि श्री अविनाश ने प्रार्थना-पत्र दिया, उनकी डॉक्टरी जाँच हुई और पता नहीं क्यों और कैसे उन्हें थोड़ी ही सर्विस के बाद पेंशन बाँध दी गई। अविनाश गृहस्थ से बदलकर स्वामी प्रणवानन्द बने गये। अनेक सिद्धियों और सामर्थ्यों को अर्जित करते हुए वे योग की परिपक्व अवस्था तक पहुँच गये, तब तक भी उन्हें पेंशन मिलती रही।

समय पाकर श्री भगवतीचरण के एक पुत्र हुआ। यही पुत्र बाद में श्री लाहिड़ीजी के सामर्थ्यवान शिष्य श्री मुक्तेश्वर का शिष्य बना और बाद में योगानन्द के नाम से न केवल भारतवर्ष वरन् अमेरिका और यूरोप में विख्यात हुए। यह घटनायें, जो यहाँ प्रस्तुत की जा रहीं हैं, वह उन्हीं की आत्मकथा 'एक योगी की आत्म-कथा' (आटोबाईग्राफी ऑफ ए योगी) का अंश है।

श्री योगानन्द तब लड़के थे और कलकत्ता में रहते थे। श्री प्रणवानन्द तब बनारस आ चुके थे। एक बार श्री भगवती बाबू को श्री केदारनाथ नामक बनारस के एक व्यक्ति से कुछ काम पड़ा। परिस्थितिवश वे उसका पता नहीं जानते थे। इसलिये उन्होंने अपने पुत्र योगानन्द को दो पत्र देकर बनारस भेजा। एक पत्र श्री स्वामी प्रणवानन्द (यही पहले भगवती के आश्रि कर्मचारी थे) के नाम था, दूसरे में कोई पता न था। केवल—केदारनाथ के लिये लिखा था। लड़के को बताया गया था कि स्वामीजी केदारनाथ को जानते हैं, वह यह पत्र उन तक पहुँचाने में मदद करेंगे।

योगानन्द के जीवन में आध्यात्मिक तत्त्वों के प्रति घोर आकर्षण और तीव्र जिज्ञासा पैदा करने वाली यह प्रथम और अन्तिम घटना थी, जिसने उनके जीवन की दिशा को एकदम आध्यात्म की ओर मोड़ दिया।

जैसे ही प्रणवानन्द के पास पहुँचे, उन्होंने कहा—आओ छोटे महाशय ! (बंगाल में छोटे बच्चों को ऐसे ही सम्बोधित करते हैं) क्या तुम भगवतीचरण के पुत्र हो ?

हाँ बच्चे ने आश्चर्यचकित हो उत्तर दिया—मैं श्री भगवतीचरण का ही पुत्र हूँ। क्या आप स्वामी प्रणवानन्द हैं ? स्वामीजी ने मुस्करा कर कहा—हाँ। मानो उनकी पैनी दृष्टि बच्चे में छिपे आध्यात्मिक संस्कारों को पहले ही ताड़ गई थी, तभी जान-बूझकर ऐसे रहस्यमय दृश्य और वातावरण उपस्थित कर रहे थे अन्यथा योगी जब चाहे, जिसके सम्मुख प्रदर्शन करते नहीं। वे अपनी यौगिक शक्तियों का प्रदर्शन अधिकारी पात्रों के सामने ही करते हैं।

बच्चे ने केदारनाथ का पत्र देते हुए कहा—यह पत्र श्री केदारनाथ जी को देने के लिये पिताजी ने दिया है, आप उनका पता बता दें या उन्हें यहीं बुलवा दें।

स्वामीजी का संक्षिप्त उत्तर था—अभी प्रबन्ध किये देता हूँ—यह कहकर उन्होंने आँखें सिकोड़ी। ऐसा लगा जैसे ध्यानस्थ हो रहे हों। थोड़ी ही देर में वे पूर्ण समाधि की-सी स्थिति में चले गये। बच्चे ने समझा, स्वामी जी पूजा या ध्यान कर रहे होंगे, वह कमरे में रखी खड़ाऊँ, पूजन-सामग्री और दूसरी वस्तुओं की ओर देखने लगा। कोई १० मिनट यह सन्नाटा रहा होगा, एकाएक स्वामीजी बोले—अभी आधे घन्टे में केदार बाबू यहीं आ रहे हैं।

आधे घण्टे पीछे उन्होंने कहा—देखो, नीचे कौन आ गया। लड़का तुरन्त सीढ़ियाँ उतर कर नीचे गया, उसका वर्णन

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

करते हुए स्वामी योगानन्द ने स्वयं ही अपनी आत्मकथा में लिखा है—

मैंने नीचे जाकर पूछा—क्य। आप ही केदारनाथ हैं ? वे बोले—हाँ, अभी आधा घण्टे पहले स्वामीजी मुझे बुलाने गये थे। उस समय मैं गंगा-स्नान करने गया था। मुझे पता नहीं स्वामीजी को कैसे पता चल गया कि मैं वहाँ हूँ, जबकि मेरी उनसे १०-१५ वर्षों से भेंट नहीं हुई।

मैं चौंका कि स्वामीजी तो मेरे सामने बैठे रहे, फिर वे यहाँ कैसे पहुँच गये ? मैंने पूछा—वे क्या पहने थे ? इस पर केदारनाथ ने बताया—लंगोटी और खड़ाऊँ। गंगाजी से कुछ दूर तक वे मेरे साथ आये, फिर पूछा—तुम कितनी देर में पहुँच रहे हो ? वहाँ तुम्हारी एक लड़का प्रतीक्षा कर रहा है। मैंने कहा—आधे घण्टे में। इसके बाद घर गया और सीधा यहाँ चला आया।

मैं चकित था कि स्वामीजी लँगोटी तो पहने थे, पर खड़ाऊँ भी उनकी बगल में रखा है, उन्होंने बड़े विश्वासपूर्वक कहा भी कि केदारनाथ आधे घण्टे के बाद आ रहे हैं। यह सब क्या है ? स्वामीजी एक ही समय में दो स्थानों में कैसे ?

दोनों व्यक्ति ऊपर आ गये। आवश्यक बातें हुईं। इसके बाद लड़के ने अपनी जिज्ञासा और आश्चर्य स्वामीजी को प्रकट किया। श्री प्रणवानन्द हँसे और बोले—बेटा ! योगी के लिये यह सब खेल है। यहाँ मेरा स्थूल शरीर था, वहाँ सूक्ष्म शरीर। दोनों एक जैसे हैं, पर सामर्थ्यों में अलग-अलग। यह जब तुम कभी योगाभ्यास करोगे, तो अपने आप जान लोगे कि यह सूक्ष्म शरीर ही है, जिस पर स्थूल शरीर का जीवन आधारित है, वही सूक्ष्म शरीर स्वप्न, सुषुप्ति और मृत्यु के बाद भी क्रियाशील रहता है। इस रहस्य को तुम भली-भाँति योगी बनकर ही समझ सकोगे।

योगानन्द ने वहीं निश्चय किया कि आगे से वे अपना जीवन आध्यात्मिक साधनाओं में लगाकर अतीन्द्रिय शक्तियों का विकास और परमानन्द की प्राप्ति करेंगे।

काल से अतीत, अतीत-ब्रह्माण्ड विज्ञानात्मा की अनुभूति

मंगोलिया से अरब तक पहुँचने के लिये अफगानिस्तान, ईरान, ईराक, जोर्डन आदि देश पार करके जाया जा सकता है। कई दिन की हवाई यात्रा क्या एक क्षण में सम्भव है ? अपने जीवन की एक अद्‌भुत घटना का वर्णन करते हुए इस प्रश्न का उत्तर और भारतीय दर्शन के—कालातीत आत्मा सिद्धान्त की पुष्टि का प्रमाण प्रस्तुत किया है अरब के सुप्रसिद्ध दार्शनिक और योगी श्री सुग्रअल-जहीर ने।

श्री जहीर योग की उच्च—भूमिका में प्रवेश के इच्छुक थे—तब वे एक गृहस्थ का जीवन जी रहे थे। सांसारिक सुखोपभोग के बीच कभी-कभी वे अपनी वृद्धावस्था और मृत्यु की कल्पना करते तो चित्त डोल जाता, वैराग्य उत्पन्न होता और वे सोचने लगते क्या संसार के अन्तिम—सत्य के दर्शन नहीं हो सकते ? इस जिज्ञासा ने ही उन्हें बौद्ध योगियों की शरण लेने और साधना जन्य जीवन जीने की प्रेरणा दी थी। तभी उन्होंने गृहस्थ का परित्याग कर दिया। एक लामा योगी को अपना मार्गदर्शक उन्होंने चुना और योगाभ्यास प्रारम्भ कर दिया।

उन्हीं दिनों की घटना ही श्री जहीर अपने गुरु और कुछ अन्य लामाओं के साथ वन-विहार के लिये निकले थे। योग और उच्च स्तरीय साधनाओं में जहाँ शारीरिक चेतना और मन में तीव्र परिवर्तन तथा विचार मंथन प्रारम्भ हो जाता है वहाँ सांसारिक विषय-वासनाओं तथा पूर्व जन्मों के अशुभ प्रारब्ध योग भी पूरा जोर आजमाते हैं। साधक पथ भ्रष्ट न हो जाये उसकी आत्मनिष्ठा प्रगाढ़ बनी रहे ताकि वह योग की कठिनाइयों को पार करने का साहस स्थिर रख सके, विज्ञ योगी और मार्गदर्शक साधक को शक्ति भी देते हैं और अपनी सिद्धि का लाभ भी। वन में घूम रहे अल-जहीर के मस्तिष्क में आत्मा के अस्तित्व और उसकी प्राप्ति के सन्दर्भ में तर्क-वितर्क उठ रहे थे। मन की बात जान लेने वाले सूक्ष्मदर्शी लामा—गुरु ने उनके अन्तःकरण को पढ़ा। पास में पड़े एक प्रस्तर खण्ड पर बैठते हुए उन्होंने कहा—तुम लोग थक गये होगे, वह देखो ! वह रहा जलकुण्ड, वहाँ से पानी पीकर आ जाओ और थोड़ा विश्राम कर लो तब चलेंगे।

अल-जहीर और अन्य लामा जब तक लौटे मार्गदर्शक—लामा ने एक श्वेत पत्थर का तस्तरी नुमा टुकड़ा कहीं से प्राप्त कर लिया। श्री जहीर के वापस आते ही बोले—जो आत्मा सृष्टि के कण-कण में व्याप्त है वही विराट ब्रह्माण्ड में; तुम चाहो तो कालातीत आत्मा की अनुभूति इसी पत्थर में ही कर सकते हो।

सो कैसे—? जिज्ञासु जहीर ने प्रश्न किया। लामा ने बताया—योगी में जब तक आत्मानुभूति की क्षमता का स्वतः विकास नहीं हो जाता तब तक उसकी चेतना को सम्मोहित कर सुसुप्ति अवस्था में ले जाया जा सकता—और उसके अनेक पिछले जन्मों के दृश्यों का ज्ञान कराया जा सकता है। आत्मा चूँकि काल से अतीत है इसलिये उसकी गहराई तक पहुँच कर स्वयं को आत्म-स्वरूप में परिणत करना तो समय और साधना साध्य प्रक्रिया है किन्तु कुछ एक जन्मों की दूरानुभूति अथवा घटित होने वाली परिस्थितियों का पूर्णाभास कराया जाना नितान्त सम्भव है। लो अब तुम इस पत्थर पर अपनी दृष्टि जमाना और मैं तुम्हें उसकी अनुभूति कराऊँगा।"

जहीर ने पत्थर में दृष्टि जमाते ही अनुभव किया कि उनकी बाह्य चेतना ज्ञान शून्य हो चली और अब वे धीरे-धीरे प्रगाढ़ निद्रा की ओर बढ़ चले। अब जैसे कोई स्वप्न देखता है, स्वप्न में कुआँ, बावड़ी, जानवर देखता है वैसे ही श्री जहीर ने देखा कि एक अत्यन्त तेजस्वी दिव्य आत्मा उनके सम्मुख खड़ी कह रही है—लो अब तुम तैयार हो जाओ मैं तुम्हें उस निविड़ की ओर ले चलता हूँ जहाँ सब कुछ आत्मा ही आत्मा चेतना ही चेतना है, अचेतन और अनात्म कुछ भी नहीं हैं। श्री जहीर आगे लिखते हैं—

"अभी तक आँखों के सामने घिरा अन्धकार दूर हो गया और मुझे लगा कि मैं समय की सीमओं को छोड़ता हुआ अपने

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

भूतकाल की ओर बढ़ रहा हूँ। जैसे कल्पना के साथ विचार ही नहीं उठते दृश्य भी मानस पटल पर बनते जाते हैं उसी प्रकार भूतकाल के प्रवाह में विगत जीवन की स्मृतियाँ भी सजीव हो चलीं। मैंने देखा मैं पूर्व जन्म में एक सामान्य व्यक्ति था और भौतिक आकर्षणों से घिरा जीवन जीकर नष्ट हो गया। उससे भी पूर्व लगता था मैं कोई पक्षी रहा होऊँ, हवा में उड़ने और पृथ्वी के ऊपर विचरण के वह दृश्य कभी साँस को तेज कर देते कभी मद्धिम और मैं अपने विचारों की धड़कन भी स्पष्ट सुन रहा था लगता था अतीन्द्रिय अवस्था में विचार ही वाणी का काम करते हैं।"

"अब मैंने अपने आपके ४ जन्म पूर्व के जीवन में बासठवें वर्ष में प्रवेश किया। रेल में बैठा यात्री जिस प्रकार रेलवे लाइन के किनारे-किनारे के दृश्य देखता है, वृक्ष, मकान, दुकानें, खेत, नहरें वैसे ही आत्मचेतना के प्रवाह में अतीत दृष्टिगोचर होता चल रहा था। प्रभावी दृश्यों की तरह उस समय की प्रभावी अनुभूतियाँ आज भी भूलती नहीं। मैं तब काली आँखों वाला एक योगी था और मैंने देखा कि मेरा मठ भी यहीं मंगोलिया में ही था जहाँ इन दिनों मैं विचरण कर रहा हूँ। आश्चर्य है कि पूर्व जन्मों के संस्कार किस प्रकार मनुष्य को खींच-खींच ले जाते हैं। मैंने देखा एक दिन मेरे पास एक सुन्दर युवती आई उसे देखते ही मैं अपनी सारी साधना, सारा ज्ञान भूल बैठा। वह स्त्री मेरे योगच्युत होने का कारण बनी जहाँ मैं आत्मा के साक्षात्कार की दिशा में बढ़ रहा था, वहाँ कामग्रस्त मुझ योगी को रोग और शोक, आधिव्याधि और पतन ने आ घेरा। कर्म की प्रतिक्रिया से भला संसार में कौन बचा है। मेरे इस शरीर का अन्त भी बड़ा ही दुःखद हुआ और इसके बाद का तो बड़ा ही घृणित जन्म जीना पड़ा मुझे।"

यह विवरण किसी कल्पना लोक की अतिरंजना नहीं वरन् एक उस धर्म और देश के प्रख्यात दार्शनिक श्री सुग्र-अल-जहीर की आप-बीती और अपनी लेखनी से लिखी यथार्थ घटना है जिसमें आत्मा के आवागमन—पुनर्जन्म पर विश्वास नहीं किया जाता। अरब देश और इस्लाम धर्म में जन्मे श्री जहीर ने स्वीकार किया है कि "आत्मा के अस्तित्व और विज्ञान सम्बन्धी इस्लाम मान्यतायें गलत हैं योग साधनाओं द्वारा प्राप्त यथार्थ के आधार पर मैं कह सकता हूँ कि भारतीय आत्मविद्या जैसा सच्चा और महान विज्ञान दुनिया में अन्यत्र नहीं। एक दिन सारे विश्व को इन तथ्यों को स्वीकार करने को विवश होना पड़ेगा"—यह घटना उन्हीं की सुप्रसिद्ध पुस्तक "मंगोलिया मठभूमि की आध्यात्मिक यात्रा" से उद्धृत की जा रही है।

"मैं जितना गहराई में गया मुझे विराट विश्व की उतनी ही प्रगाढ़ अनुभूति होती गई और मैं अनुभव करता गया कि व्यष्टि चेतना जीव है और उसी चेतना का समष्टि रूप परमात्मा—यद्यपि मैं उस छोर तक नहीं पहुँच सका। चार दिन तक लगातार वैसी ही योग निद्रा में प्रकाश की गति से ब्रह्माण्ड की जिस सीमा तक जा सकता था उतने विराट् की अनुभूति हुई पर संसार का विस्तार तो करोड़ों प्रकाश वर्षों का है उसे इस स्थूल देह से प्राप्त कर सकना कहाँ सम्भव था। मैंने मृत्यु की वह विकराल नदी देखी जिसमें संसार में जन्मे जीव डूबते उतराते रहते हैं। जैसे-जैसे गहराई बढ़ी गतियाँ निश्चेष्ट और ध्वनियाँ शान्त होती जा रही थीं, नीरवता और नीलेपन की ओर बढ़ते हुए मुझे अलौकिक अनुभूतियाँ हुईं जिनका शब्दों में वर्णन कर सकना कठिन है क्योंकि वह उपमायें धरती पर हैं नहीं, जो वस्तुयें अदृश्य हों उनका परिचय उपमाओं से ही दिया जा सकता है, उपमायें ही न हों तो फिर विराट् कैसे समझाया जा सकता है।"

"अब मैं वापस लौटता हूँ तो उसी क्रम से अनेक चित्र और दृश्य देखते-देखते फिर एक बार अपनी जन्मभूमि अरब के उस मकान में आकर विचार ठहर जाता है जहाँ कुछ दिन पूर्व मैं अपनी माँ, पत्नी और बच्चों के साथ रहता था। उसकी एक-एक घटना को मैंने देखा यह घटनायें ही मेरे द्वारा देखे गये अब तक के सभी दृश्यों की सत्यता का प्रमाण है क्योंकि इस जीवन की घटनाओं की सत्यता—असत्यता पर तो कोई शंका नहीं हो सकती। मैंने आज की स्थिति में भी अपनी पत्नी को देखा और अनुभव किया—मनुष्य की उस दुर्बलता को, जो वह यह मानकर किया करता है कि मुझे तो कोई देख नहीं रहा। पर मैं अनुभव करता हूँ कि मनुष्य हजार कोठरियों के अन्दर छिपा हो तो भी वह हजार आत्माओं द्वारा और परमात्मा द्वारा देखा जाता रहता है।"

"धीरे-धीरे मेरी निद्रा समाप्त हुई तब मालूम पड़ा कि ४ दिन में कितने विस्तृत जीवन के दृश्य देख आया अब तो यही लगता है कि संसार में काल से अतीत, ब्रह्माण्डों से भी—अतीत यह विज्ञानमय आत्मा ही सत्य है इसीलिये अब सांसारिक भोगों की आकांक्षा को त्यागकर आत्म-साक्षात्कार के प्रयत्न में जुट गया हूँ।"

इन्द्रियातीत ज्ञान—मनुष्य के लिए नितान्त सम्भव

ड्यूक विश्वविद्यालय में परामनोविज्ञान से सम्बन्धित एक स्त्री से सम्बन्धित घटना इस प्रकार है—

"दूसरा महायुद्ध प्रारम्भ हो चुका था। तब मेरे पति को स्नायु सन्निपात (नर्वस ब्रेक डाउन) हो गया। वे घर से लगभग ५० मील दूर एक चिकित्सालय में चिकित्सा करा रहे थे। हम दोनों प्रतिदिन एक-दूसरे को पत्र लिखते। एक दिन शाम को मैं अपने ड्राइंगरूम में अकेली बैठी थी। आठ बजने को थे कि एकाएक मुझे बेचैनी होने लगी। बहुत प्रयत्न करने पर भी व्यग्रता बढ़ती ही गई। इस अनायास परिताप का कारण समझ नहीं पा रही थी। मुझे ऐसा लगा, जैसे मुझे कोई टेलीफोन की ओर आकर्षित कर रहा है। मुझे ऐसा लगा कि अपने पति को टेलीफोन करूँ, इसी गरज से टेलीफोन के पास तक चली गई। मुझे अनावश्यक फोन करने की मनाही कर दी गई थी, इसलिये आस-पास चक्कर तो काटती रही पर फोन न कर सकी और फिर चुपचाप लौट आई।

दूसरे दिन पति के दो पत्र आये। एक तो प्रतिदिन लिखा जाने वाला पत्र था, जो नियमित रूप से आता था। दूसरा उससे पहले लिखा गया था और उसमें पतिदेव ने मुझसे ठीक आठ

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

बजे फोन पर बातचीत करने को लिखा था। इसके दूसरे दिन एक और पत्र आया, जिसमें लिखा था—"मैं आठ बजे टेलीफोन पर तुम्हारी व्यग्रता से प्रतीक्षा करता रहा। मुझे बहुत बेचैनी रही।"

इस घटना से सिद्ध होता है कि हमारे अन्तःकरण और मन में उठा कोई भी भाव या विचार नष्ट नहीं होता वरन् वह सम्बन्धित व्यक्ति तक पहुँचता है और भावनायें जितनी हार्दिक और प्रखर होती हैं, उतनी ही तेजी से प्रभावित और प्रेरित भी करती हैं। देव उपासनाओं से मिलने वाला अनुग्रह और प्रार्थना से मिलने वाला आशीर्वाद भी इसी तरह होता है। उससे अधिक अतीन्द्रिय ज्ञान से जीवन की अमरता सिद्ध होती है।

वह इस तरह कि जब हम स्वप्नावस्था में होते हैं तो भी इन्द्रियातीत ज्ञान की अनुभूति होती रहती है। ऐसा लगता है, जैसे हम प्रत्यक्ष शरीर से चल-फिर, उठ-बैठ और क्रियायें कर रहे हों। उस समय की कितनी ही अनुभूतियाँ इतनी सच्ची निकलती हैं कि आश्चर्यचकित रह जाना पड़ता है। अपने पति की हत्या से पूर्व ही राष्ट्रपति अब्राहम लिंकन की पत्नी ने एक सुस्पष्ट स्वप्न में अपने पति की मृत्यु का दृश्य देखा था।

पौराणिक कथा है कि "भरत ने कई दिन पूर्व ही अयोध्या में होने वाले विग्रह और दशरथ की मृत्यु का भविष्य-दर्शन स्वप्न में किया था।" प्राचीन टेस्टामेंट की एक घटना से यह भी सिद्ध होता है कि इस तरह का इन्द्रियातीत ज्ञान जागृत अवस्था में भी हो सकता है और किसी को विचार-संचार भी किया जा सकता है। एक बार राजा वेलसज्जार अपने मेहमानों के साथ भोजन के लिये बैठे, तभी उन्हें किसी के हाथ ऊपर उठते और अँगुली से दीवाल पर कुछ शब्द लिखे दीखे। भविष्य वक्ता डेनिपल ने उक्त सारी घटना की व्याख्या करते हुये बताया कि "राजा का राज्य और अस्तित्व खतरे में है।" वैसा ही हुआ भी। प्रातःकाल होने से पूर्व ही सम्राट की हत्या कर दी गई और डोरिस नाम के एक उच्च-पदाधिकारी ने राज्य सत्ता पर अपना अधिकार कर लिया।

अपने भावों को व्यक्त करने के लिये जब आत्मा को बोलने की इच्छा होती है तो वह बुद्धि द्वारा अर्थों को संग्रहीत कर मन को इस कार्य के लिये प्रेरित करती है। मन शरीरस्थ अग्नि द्वारा प्राण-वायु को गरम करके उसे अपने प्रयोजन के लिये गतिमान करता है। नाभि प्रदेश से उठता हुआ, यह वायु छाती (उरस) आदि स्थानों में से उत्क्रमण कर कण्ठ प्रदेश में पहुँचता है। उपरोक्त प्रक्रिया वायु और आकाश तत्त्वों से मिलकर कम्पन करती है, इस ध्वनि कम्पनों का अभ्यान्तर प्रयत्नों से किसी के भी पास पहुँचाया जा सकता है।

दूरस्थ व्यक्तियों को इसी विद्या से प्राण और विचार देकर उन्हें प्राणवान बनाया जा सकता है अथवा कोई विशेष सन्देश भेजा जा सकता है। इस क्रिया को आध्यात्मिक भाषा में आत्मा की विवशता कहते हैं। प्राणवान आत्मायें मृत्यु के उपरान्त भी इस तरह के विचार-क्रम में संलग्न रहती हैं। उन्मुक्त हुई आत्मायें लोक-लोकान्तरों में विचरण करती रहती और वहाँ की परिस्थितियों का आनन्द लूटती रहतीं, उपासना काल में साधकों को दिखाई देने वाले नृत्य-गायन और संगीतों की मधुर-ध्वनियाँ भी इसी प्रकार सुनी जाती हैं, वह प्रसारण किसी विशेष लोक या स्थान से सुनिश्चित रूप से संचारित होते हैं, अब यह आत्मा की पवित्रता और मलिनता पर निर्भर है कि वह किसी सन्देश या दृश्य को कितनी स्पष्टता से देखें। पवित्र आत्माओं को दृश्य और सन्देश बिल्कुल साफ और स्पष्ट मिलते हैं, जबकि अपवित्र आत्मायें देख-सुनकर भी सही अर्थ नहीं समझ सकतीं।

'छायापुरुष' की सिद्धि और 'प्रकाश-शरीर' के द्वारा एक स्थान से दूसरे स्थान पहुँच किसी को कोई मार्गदर्शन करना भी सम्भव है, और मन की बातों को जान लेना भी। इस सम्बन्ध में योगी श्री श्यामाचरण लाहिड़ी के जीवन की एक महत्त्वपूर्ण घटना इस प्रकार है—

श्री लाहिड़ी दानापुर में सेना विभाग के आंकिक थे। उनका रानीखेत से दानापुर के लिये स्थानान्तर हुआ। रानीखेत में उनका सम्बन्ध एक योगी से था, जिसे वे अपना गुरु मानते थे। दानापुर जाते हुये वे मुरादाबाद अपने एक मित्र के यहाँ रुके। बात-बात में उन्होंने अपने गुरु की चर्चा छेड़ दी और उनकी अलौकिक शक्तियों का वर्णन करना प्रारम्भ कर दिया। मित्रों के सामने जो बात थी नहीं उसे उनने स्वीकार करने से मना कर दिया। और कहा कि तुम यह सब प्रत्यक्ष दिखाओ तो मानें—श्री लाहिड़ी ने अपने आपको एक कमरे में बन्द करके गुरु का आह्वान किया। बताते हैं एक प्रकाश वहाँ आया। उसमें से एक छाया हिलती-डुलती दिखाई दी। उसने उपस्थित लोगों से बातचीत भी की पर तब तक उन्होंने इस घटना को सम्मोहन (मैस्मरेजम) जैसी क्रिया समझी अन्त में योगिराज ने अपने हाथों के माँस का स्पर्श भी कराया। चलते समय वे श्री लाहिड़ी से भविष्य में फिर कभी वैसा न करने का आदेश भी दे गये।

मनोगतिशीलता वस्तुतः शरीर या किसी शारीरिक ऊर्जा से सम्बन्ध नहीं रखता। उसका सम्बन्ध प्राण और संकल्प (सूक्ष्म शरीर) से रहता है पर उसकी शक्ति अपरिमित होती है, शाप और वरदान तक उससे सफल होते देखे जाते हैं। एक बार दक्षिणेश्वर के काली मन्दिर में भक्तों के एक मेले में रानी रासमणि भी सम्मिलित हुई। रानी से दक्षिणेश्वर मन्दिर को बहुत धन मिलता था। स्वामी रामकृष्ण परमहंस ने सहसा उन्हें जोर का तमाचा मार दिया। तो उनके अंग-रक्षक बहुत नाराज हुये पर रानी ने उन्हें शान्त करते हुये स्वीकार किया कि उन्हें ऐसे पवित्र स्थान में जो बात नहीं सोचनी थी, वह सोच रही थीं। उसे रामकृष्ण परमहंस किस प्रकार जान गये इसे तब बड़ी आश्चर्य की दृष्टि से देखा गया पर अब परामनोविज्ञान इस मन की संकल्प-सिद्धि का छोटा-सा चमत्कार मानता है। स्वामी विवेकानन्द ने सिस्टर निवेदिता को इसी तरह अपनी मृत्यु का पूर्व-ज्ञान करा दिया था।

स्वामी शिवानन्द ने एक बार एक ग्रामीण की जो उन्हें दूध पहुँचाने जाता था, एक साँप से रक्षा की। जब वह स्वामी जी के पास पहुँचा तो उन्होंने जाते ही पूछा—"साँप ने कहाँ काटा ?" वह व्यक्ति यह सुनकर आश्चर्यचकित रह गया।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

रास्ते में साँप ने जहाँ काटा था, वह स्थान दिखाया और स्वामी जी ने मन्त्र बल से उसे अच्छा कर दिया।

स्थूल इन्द्रियों की ज्ञान-शक्ति बहुत सीमित है। आँखें थोड़ी दूर तक देख सकती हैं, कान थोड़ी दूर का सुन सकते हैं, मुख से निकाली हुई आवाज को दो-तीन फर्लांग से अधिक दूर तक नहीं पहुँचाया जा सकता। पर जब आत्मचेतना स्थूल शारीरिक ऊर्जा से हटकर सूक्ष्म मनः स्थिति में केन्द्रित होने लगती है तो उसकी ज्ञान की क्षमतायें बढ़ने लगती हैं। मन की शक्तियों को जितना अधिक नियन्त्रण किया जा सके, उतनी ही विलक्षण अनुभूतियाँ प्राप्त की जा सकती हैं। मन से सूक्ष्म आत्मा है, आत्मा की उपासना करते हैं और उनके समीप पहुँचने लगते हैं तो दूर प्रदेशों के दृश्य, श्रव्य, आदि ऐसे दिखाई व सुनाई देने लगते हैं, जैसे वह बिल्कुल पास का दृश्य हो। आत्मा जब 'परमात्मा' की स्थिति में पहुँचने लगती है, तब त्रिकाल-दर्शन, सर्वात्मभूति की विलक्षण क्षमतायें मिलने लगती हैं। अन्तिम भूमिका सर्वशक्तिमान भूमिका होती है।

यह अपार क्षमतायें अदृश्य होने पर भी सूक्ष्म रूप से शरीर में विद्यमान हैं किन्तु साधारण मनुष्य काम, क्रोध, लोभ, मोह, वासना, धन-संचय, ईर्ष्या-द्वेष, छल, झूठ, दम्भ, पाखण्ड आदि मनोविकारों से अपनी आत्मा को मलिन बनाये रहता है, फलतः उसमें ऐसे चित्रों और अनुभूतियों का अंकन नहीं हो पाता। इसीलिये दूसरों की ऐसी क्षमताओं पर विश्वास भी नहीं करते।

आत्मा शरीर से विलग रहने पर भी जब ज्ञान की स्थिति (अर्थात् सुख-दुःख, हानि-लाभ, जीवन-मरण) में रहती है तो निश्चित ही उसका शरीर से बहुत बड़ा सम्बन्ध नहीं। यद्यपि आत्मा और शारीरिक ऊर्जा के सम्मिलन से उन चमत्कारों को दिखाया जा सकता है पर इस समन्वय का मूल उद्देश्य जीवन-लक्ष्य की अनुभूति और प्राप्ति है, यदि हम ऐसा सुन्दर शरीर पाकर भी उसे क्षणिक सुखों की लिप्सा में व्यर्थ नष्ट करते हैं तो उसे पाने को कोई अर्थ सिद्ध न हुआ मानना चाहिये।

परातत्त्व-ज्ञान इस सम्बन्ध में विस्तृत खोज कर रहा है और वह यह मानने लगा है कि विश्व में कई ऐसी सत्तायें काम कर रही हैं, जिनसे मिलाप हो जाने से मनुष्य लौकिकता से उठकर अपने अविनश्वर जीवन की सुखानुभूति कर सकता है। प्रमाण के लिये वे ऐसे इन्द्रियातीत ज्ञान को प्रस्तुत करते हैं और कहते हैं कि जब आत्मचेतना शरीर का सम्बन्ध बना रहने पर भी इन्द्रियों से परे का ज्ञान संग्रहीत कर सकता है तो मुक्त अवस्था में तो वह और भी आश्चर्यजनक उपलब्धियों का स्वामी होता होगा। उदाहरणार्थ ईसा के समकालीन योगी एपोलिनियस ने भारत में योग विद्या सीखी और भूत-भविष्य को देखने की क्षमता प्राप्त की। उसने कई मृतकों को भी जला दिया था।

लुम्मा के फ्रीडियन नामक एक पाश्चात्य योगी ने ओसर नदी की धारा को ही बदलकर देश को नष्ट होने से बचाया। श्री एडवर्ड निनेसमैन ने लिखा है कि—"एक बार महात्मा इसीडोर के घर कुछ अतिथि आये। उन्होंने योग विद्या से तुरन्त ही एक व्यक्ति को प्रभावित कर भोजन के उतने थाल मँगवा लिये। यह देखकर सभी आगन्तुक आश्चर्यचकित रह गये।"

यह चमत्कार और कुछ नहीं आत्मचेतना की अमर अनुभूतियाँ हैं, उन्हें कोई भी व्यक्ति प्राप्त कर सकता है, शर्त यही है कि आत्मा मनोविकारों, द्वेष, दुर्भावों से मुक्त रहनी चाहिये। स्वच्छ दर्पण में जैसे सूर्य की किरणें साफ चमकती हैं, उसी प्रकार निष्कलुष आत्मा में भूत और भविष्य का ज्ञान चमकता है। इस ज्ञान को पाकर मनुष्य अमरत्व पर विश्वास करने लगता है और उसकी प्राप्ति के प्रयत्न भी।

सिद्धि और सिद्ध पुरुषों का स्तर

भौतिक सिद्धियाँ तो उन कीड़े-मकोड़ों में भी पाई जाती हैं जो चलते समय पैर के नीचे दबकर मर जाते हैं। मक्खी आकाश में उड़ सकती है, बत्तख पानी पर चल सकती है, मछली जल में रह सकती है, गीध दूर तक देख सकता है, मकड़ी को वर्षा का भविष्य ज्ञान रहता है, जुगनू का तेज चमकता है, सर्प दंश से क्षण भर में मृत्यु होती है, कहते हैं नीलकण्ठ पक्षी के दर्शन से लक्ष्मी मिलती है। दर्द बन्द करने में छिपकली का तेल काम आता है। गिरगिट कई तरह के रूप बदलता है। यदि इन्हीं सिद्धियों को प्राप्त करने के लिए साधना की जाये तो सफलता के अन्तिम शिखर पर चढ़ते-चढ़ते वहाँ पहुँचा जा सकता है जहाँ यह कीड़े-मकोड़े पहले से ही पहुँचे हुए हैं।

लोगों को कौतूहल दिखाकर अपनी विशेषता सिद्ध करने की आत्मश्लाघा पूरी करने की ही यदि हविस हो तो इसके लिए इतनी कष्ट साध्य गतिविधि अपनाने और सामान्य सुख-सुविधायें छोड़ने की तनिक भी आवश्यकता नहीं है। लोगों को अचम्भे में डालने का काम बाजीगर बड़ी अच्छी तरह करते हैं। वे इतनी अलौकिकतायें दिखाते हैं कि आश्चर्यचकित होना पड़ता है। वहाँ 'कला' कुछ भी मुश्किल नहीं है। हाथ की सफाई का अभ्यास थोड़े दिनों में हो जाता है और बाजीगरी सिखाने वाले उन रहस्यों को सिखा भी सकते हैं।

देखना यह है कि इससे अपना क्या लाभ हुआ और क्या दूसरों का हित साधा ? दस पैसे नाव वाले को देकर आवश्यकता के समय नदी पार हो सकती है। रोज तो कोई पानी पर चलता नहीं, हर जगह पुल हैं। नावें मौजूद हैं इस सिद्धि को कोई व्यक्ति बहुत कष्ट सहकर प्राप्त कर ले तो उसे दस पैसे नाव वाले को न देने भर की ही बचत हुई। बीमार को अच्छा करने में सिद्ध पुरुष जितना लाभ पहुँचाते हैं उससे हजारों गुने अधिक रोगी एक डॉक्टर अच्छे करता है। योगी कितने अन्धों को आँखें देगा पर आँख के डॉक्टर तो अपनी जिन्दगी में हजारों अन्धों को अच्छा करते हैं। योगी बनने की अपेक्षा डॉक्टर बनना क्या बुरा है। उसमें कष्ट भी कम—लाभ भी अधिक। भारत से इंगलैण्ड उड़कर जाने की सिद्धि बहुत तप के बाद मिलेगी पर हवाई जहाज में थोड़ा-सा किराया देने पर वह कार्य आसानी से हो सकता है। दूरदर्शन, दूरश्रवण के लिए जब

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

टेलीफोन, रेडियो, टेलीविजन मौजूद हैं तो फिर उन सिद्धियों को प्राप्त करने की क्या जरूरत रह गई ?

साधना, तपश्चर्या और योगाभ्यास का मात्र एक ही प्रयोजन है अपने अन्तःकरण में प्रसुप्त अगणित सत्प्रवृत्तियाँ का जागरण। सद्भावनाओं का उन्नयन। दृष्टिकोण का परिष्कार। कर्त्तव्य में देवत्व के समावेश का अभ्यास। सिद्धियों की उत्कृष्टता इसी कसौटी पर परखी जाती है। इसी से अपना भला होता है और इसी से संसार का।

आत्मा को परमात्मा के साथ जोड़ देना। अन्तःकरण को प्रेम से लबालब भर लेना—निश्चल निर्मलता विकसित करना और लोकमंगल के लिए आत्मोत्सर्ग करना। यह सिद्धियाँ जिसके पास हैं असल में वही सच्चा और उच्चकोटि का सिद्ध पुरुष है।

सिद्ध पुरुषों का स्वरूप और अनुग्रह

समुद्र को यों अचल और अस्थिर माना जाता है फिर भी वह गतिविधियों से रहित नहीं रहता। उसके विभिन्न स्वरूप भी बनते रहते हैं। ऊँची-नीची लहरें, जवार-भाटे, तूफान, भँवर आदि के कारण वह चंचल भी दिखाई पड़ता रहता है। सूर्य की ऊर्जा एक है जो सर्वत्र अपनी सौरमण्डल परिधि में वितरित होती रहती है, पर उस एकरसता में भी अन्तर रहता है। समीपवर्ती बुध अग्निपिण्ड की तरह तपता है, जबकि मध्यवर्ती दूरी वाले पृथ्वी, मंगल जैसे ग्रहों में सह्य तापमान रहता है। दूरवर्ती नेपच्यून, प्लूटो जैसे ग्रह सदा शीतल ही रहते हैं। उन तक सौर ताप स्वल्प मात्रा में पहुँचता है। पर ब्रह्म की एकता, अखण्डता और समस्वरता में कोई व्यवधान नहीं पड़ता, पर परिस्थितियों के अनुरूप उसकी विराट सत्ता हलचल रहित नहीं होती। उसकी इच्छा एवं व्यवस्था को पूरा करने के लिये विविध माध्यम भी अपना-अपना काम करते रहते हैं। उत्पादन, अभिवर्द्धन और परिवर्तन की त्रिविध प्रक्रियाएँ तो अपने ढंग से चलती ही रहती हैं, फिर भी समय-समय पर बादलों का उठना, बरसना मेघों का कड़कना, चमकना, तूफान, अन्धड़, चक्रवात जैसे दृश्य भी प्रकृति क्षेत्र में दीख पड़ते हैं। यों ब्रह्म की तरह प्रकृति को भी शान्त और व्यवस्थित माना जाता है, पावन सर्वदा एक नियत प्रवाह में बहती है। किन्तु उसमें भी यदा-कदा जहाँ-तहाँ भयंकर चक्रवात और तूफान उठते देखे गये हैं। ऋतुप्रभाव से उसका तापमान भी न्यूनाधिक हो जाता है। इसको कहते हैं—एकता के बीच अनेकताओं का रहना। अनेकताओं के बीच एकता के दर्शन करना। पृथ्वी गोल है। फिर भी उसमें पर्वतों खन्दकों की कमी नहीं, द्वीपों महाद्वीपों के कारण वह छिन्न-भिन्न एवं अनेक रूप में बँटी हुई भी दीखती है। इसे नियन्ता की उसकी इच्छा या व्यवस्था की विचित्रता ही कह सकते हैं।

परब्रह्म एक है उसे विराट् विश्व के रूप में प्रत्यक्ष रूप में भी देखा जा सकता है। भूलोक अथवा ब्रह्माण्ड उसकी प्रत्यक्ष छवि है। इस विशालता में चलती रहने वाली विभिन्न हलचलों का क्रियान्वयन में उसकी विभिन्न सामर्थ्य काम करती रही है, उसी प्रकार जैसे कि शरीर के अनेक अवयव मिलजुल कर जीव चेतनाओं के अनुशासन में काम करते रहते हैं। प्रकृति में ताप, ध्वनि और प्रकाश की शक्तियाँ सक्रिय हैं। पंच तत्त्वों, पंच प्राणों का अपना एक विशिष्ट परिकर है जो जीवधारियों के उत्पादन अभिवर्द्धन में कार्यरत रहता है।

विश्व व्यवस्था के चेतना क्षेत्र को गतिशील बनाने में पराशक्ति के कितने ही सचेतन घटक हैं। इनमें सर्वोच्च स्तर के हैं—देव। जो ब्रह्म चेतना के अतीव निकट एवं उसके साथ जुड़े हुए माने जाते हैं। उनकी संरचना अपेक्षाकृत अधिक प्रत्यक्ष है। वे ईश्वर इच्छा व्यवस्था को कार्यान्वित करने में सन्देशवाहक की भूमिका निभाते हैं असन्तुलनों को सम्भालते हैं। क्षतियों की पूर्ति करते हैं। अनौचित्य को औचित्य में बदलते हैं। जीवात्माएँ उनका आश्रय लेकर परमतत्त्व तक पहुँचने में सुविधा अनुभव करती हैं। सीढ़ियों पर पैर रखते हुए छत तक पहुँच जाना भी तो सरल पड़ता है। प्राणियों के संकटों एवं अभावों की पूर्ति के लिए वे ब्रह्मतत्व से आवश्यक समर्थता एवं सम्पन्नता उपलब्ध करके अभावग्रस्तों को उपलब्ध कराते रहते हैं। उनका प्रधान कार्य ही सन्तुलन बनाये रहना है। जब कभी उसमें बिगाड़ आता है तो उसका समाधान करने के लिए उनकी दौड़-धूप विशेष रूप से क्रियाशील होती देखी जाती है। यह देव ही जब तब अवतारों के रूप में प्रकट होते हैं। समूची ब्रह्म सत्ता तो अपना व्यापक रूप यथावत ही बनाये रहती है। निराकार को साकार नहीं बनना पड़ता। उस प्रयोजन को देव शक्तियाँ ही निपटा देती हैं।

देव समुदाय का दूसरा वर्ग ऐसा है जो प्रकृति के जन समुदाय के अधिक निकट है। मनुष्यों में, क्षेत्रों में, व्यवस्थाओं में उसकी विशेष दिलचस्पी होती है। अपनी सीमित सामर्थ्य के अनुरूप वह बिना प्रमाद किये अपना कर्त्तव्यपालन भी करता रहता है। इस समुदाय में यक्ष, गन्धर्व और सिद्ध पुरुष आते हैं। यक्ष गन्धर्व सुरक्षित सेना की तरह है, उन्हें कार्य में तभी जुटना पड़ता है जब कहीं महत्त्वपूर्ण कार्य अड़ता है। इन्हें दिकपाल या दिग्गज के नाम से भी जाना जाता है। अन्तर्ग्रही विपत्तियों से वे पृथ्वी को बचाते हैं। अभावों को जहाँ-तहाँ से पूरा करते हैं। गन्धर्व, उल्लास के कर्णधार हैं। शरीर को जिस प्रकार अन्न, वस्त्र की, मस्तिष्क को जिस प्रकार ज्ञान अनुभव की आवश्यकता पड़ती है उसी प्रकार अन्तःकरण उल्लासभरा विनोद मनोरंजन चाहता है। कला का प्रयोजन यही है। वस्त्र इसका प्रतिनिधित्व करता है। सौन्दर्य एवं माधुर्य इसका सहचर है। काम-कौतुक में भी उसका हस्तक्षेप है। यह गन्धर्व क्षेत्र है। ये शक्तियाँ भी अपने अंग से हर प्राणी को जिस-तिस सीमा तक अनुदान जुटाती रहती है। देव, यक्ष और गन्धर्व उच्च लोक के वासी, उच्च भूमिकाएँ निभाने वाले माने गये हैं। वे पात्रता के अनुरूप अहेतुकी कृपा करते रहते हैं। कभी-कभी आराधना अनुष्ठान से भी आकर्षित होते और अनुग्रह करते देखे गये हैं।

भूलोकवासी प्राणियों से अधिक घनिष्ठ सम्बन्ध रखने वाले, उनके कार्यों में अधिक रुचि लेने वाले, अधिक सहयोग करने वाले दो वर्ग हैं—एक सिद्ध पुरुष दूसरे पितर। दोनों के शरीर तो सूक्ष्म होते हैं और वे आवश्यकतानुसार अपना परिचय स्थूल शरीरधारियों जैसा भी देने लगते हैं, पर उनकी सत्ता, महत्ता, शक्ति एवं इच्छा के बीच असाधारण अन्तर पाया जाता

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

है। फिर भी दोनों की गणना सूक्ष्म शरीरधारी मान्य स्तर से कुछ ऊँचे उठे हुए मूल्यों में ही की जा सकती है।

सिद्ध पुरुष योग और तप का आश्रय लेकर अपने स्थूल शरीर का ही सूक्ष्मीकरण कर लेते हैं। यह भी हो सकता है कि वे मिट्टी के समान इस शरीर का परित्याग कर दें और सूक्ष्म शरीर द्वारा उन कार्यों में संलग्न हों जो लोकमंगल के लिए नितान्त आवश्यक हैं। शरीर के सीमा बन्धन में बँधे रहने पर जीवात्मा को जहाँ कई प्रकार की सुविधा, सरसता का लाभ मिलता है वहाँ यह कठिनाई भी है कि कार्य उतना ही हो सकता है जितना कि काया की सीमित शक्ति के अन्तर्गत बन पड़ता है। सूक्ष्म शरीर सक्रिय हो उठने पर वे सारे व्यवधान दूर हो जाते हैं जो शरीर को सीमित एवं आधि-व्याधि ग्रसित बनाये रहते थे। सीमा टूट जाने पर वे अपने को असीम अनुभव करते हैं। जीवित स्थिति के साधक जिन्हें अतीन्द्रिय क्षमताओं के रूप में प्राप्त करके गौरवान्वित होते थे, उससे अनेक गुनी दिव्य शक्तियाँ सूक्ष्म शरीर धारी सिद्ध पुरुषों को अनायास ही ऋषि-सिद्धियों के रूप में मिल जाती हैं। वे स्थूल काया का या तो पूर्णतया परित्याग कर देते हैं या फिर उसे प्रबल अध्यात्म प्रयत्नों द्वारा सूक्ष्म कर लेते हैं। सूक्ष्म शरीर की जीवन अवधि असीम है। वह युग-युगान्तरों तक भी उसी स्थिति में रह सकता है। आवश्यकतानुसार वह अपने पुराने शरीर को भी धारण कर सकता है या अन्य किसी की आकृति धारण करके अपने अस्तित्व एवं पराक्रम का परिचय दे सकता है। ऐसे सिद्ध पुरुष प्रकारान्तर से उच्च कोटि के योगी हैं जिनकी क्षमता देवलोक के साथ जुड़ती है और क्रियाशीलता लोकहित के कामों में लगी रहती है। उनकी भूमिका जिम्मेदार उद्यान के माली जैसी होती है। वे विशाल अन्तरिक्ष में कहीं भी रह सकते हैं, आवश्यकतानुसार कहीं भी पहुँच सकते हैं, पर पाया यही गया है कि वे निर्धारित जिम्मेदारी को पूरा करने के उपरान्त वापस हिमालय के देवात्मा क्षेत्र में ही लौट आते हैं। वहाँ विश्राम करते हैं, थकान उतारते हैं और गँवाई शक्ति को पूरा करने के लिए अथवा भविष्य के लिए सामर्थ्य संचय करने के लिए अपने ढंग की विशेष साधना आरम्भ कर देते हैं। खाली समय को वे स्वेच्छाचार में नहीं बिताते, वरन् योजनाबद्ध रूप से उसकी उच्च स्तरीय शक्ति संचय का प्रयास करते रहते हैं ताकि समय की पुकार पर किसी भी क्षेत्र की उन्हें जो भी प्रेरणा मिले उसे बिना हिचक क्रियान्वित कर सके।

इसी अवधि में उनका एक कार्य और भी होता है—वंश वृद्धि। वे भी परब्रह्म की तरह एक से अनेक बनना चाहते हैं। अनेकों को अपने सदृश बनाना चाहते हैं। अपने संचित अनुदानों का एक बड़ा अंश उन्हें प्रदान भी करते रहे हैं। अभिभावक यही करते हैं। सन्तान पर अपना समय, मनोयोग एवं वैभव निःसंकोच लुटाते हैं। अल्प समर्थों में अति समर्थ बनाने के लिए प्रयत्नशील रहते हैं। हर पिता अपनी सन्तान को अपने ही सदृश तथा अपने से भी अधिक बढ़ा-चढ़ा देखना चाहता है। अभिभावकों और सन्तान के बीच इसी आधार पर आदान-प्रदान चलता रहता है और कई सौभाग्यशाली उत्तराधिकारियों को सहज ही धनाध्यक्ष बनने की तरह सिद्ध पुरुषों के अनुग्रह से वह असाधारण क्षमताएँ एवं सफलताएँ प्राप्त कर लेते हैं जो निजी प्रयत्नों से कदाचित ही उपलब्ध हो पातीं।

सिद्ध पुरुषों की अनुकम्पा, सहायता प्राप्त करने के लिए कितने ही लोग लालायित फिरते हैं। उनके दर्शन करने और चमत्कार देखने के लिए आतुर फिरते हैं। इसके लिए वन पर्वतों की खाक छानते हैं, पर ऐसे लोगों को असफलता ही मिलती है, क्योंकि दिव्यदर्शी सिद्ध पुरुष घट-घट की जान लेते हैं। उन लोगों का क्षुद्र मनोरथ ऐसा होता है जिसे परखने में उन्हें तनिक भी कठिनाई नहीं होती। वे मदारी के हाथ की कठपुतली बनने में अपना अपमान अनुभव करते हैं। फिर क्षुद्रजनों के मनोरंजन या कामना पूर्ति के लिए वे क्यों अपना तप या समय खराब करें ? वे भली प्रकार जानते हैं कि उन्हें अपना बहुमूल्य अनुग्रह किस व्यक्ति के किस काम के लिए प्रदान करना है ? ऐसे सत्पात्रों को वे स्वयं तलाशते फिरते हैं और जहाँ खिला कमल दीखता है उस पर भौंरे की तरह वह स्वयं जा पहुँचते हैं। उद्देश्य स्पष्ट है, प्रामाणिक प्रतिभावानों को सत्प्रवृत्ति सम्वर्द्धन में जुटाने के लिए आवश्यक सहयोग प्रदान करना। यह हर किसी से करते नहीं बन पड़ता। जिनने पहले से ही अपने चिन्तन, चरित्र और व्यवहार को उदार साहसिकता से ओत-प्रोत कर रखा है, जिनने संयम साधा है, लोभ, मोह, अहंकार से छुटकारा पाया है, उन निस्पृह व्यक्तियों से यह आशा की जा सकती है कि वे लोकमंगल की साधना में निरत हो सकेंगे। पुण्य प्रयोजनों के लिए अपने श्रम, समय, मनोयोग एवं साधनों को लगावेंगे। इस स्तर की उत्कृष्ट प्रामाणिकता को सिद्ध करने में जिन्होंने अनेकों बार अग्नि परीक्षाएँ उत्तीर्ण करने के प्रमाण प्रस्तुत किये हैं। उन्हें ही देव पुरुष दिव्य प्रयोजनों के लिए वरण करते हैं। दर्शन या अनुग्रह उन्हें ही प्रदान करते हैं। करने के बाद यह भी देखते रहते हैं कि जो दिया गया है वह पुण्य प्रयोजनों में लगा या नहीं। जिन्हें मात्र स्वार्थ ही नशे की तरह सवार है उनकी क्षुद्रता दुर्गन्ध की तरह उड़ती रहती है और किसी सिद्ध पुरुष के समीप पहुँचने पर उसे समीप नहीं आने देती। हेय मनोभूमि के लोग ललक लिप्साओं की पूर्ति के लिए सिद्ध पुरुषों को अपने चंगुल में फँसाने के लिए बहेलिया की तरह जाल बिछाये फिरते हैं, पर वे राजहंस, परमहंस ऐसे हैं जो यह भली-भाँति जानते हैं कि कुपात्रों और सुपात्रों की सहायता करने पर उसके क्या बुरे, भले परिणाम होते हैं ? कुपात्रों के हाथ पहुँची दिव्य शक्ति वैसे ही विग्रह खड़े करती ह जैसे कि भस्मासुर, मारीच, रावण, हिरण्यकश्यप, महिषासुर आदि के हाथों सिद्धियाँ पहुँचने में अनर्थ खड़े हुए हैं। सिद्धों को तलाशने के लिए जहाँ-तहाँ मारे-मारे फिरने वाले निश्चित रूप से खाली हाथ लौटते हैं। वे असफलता के उपहास से बचने के लिए मन-गढ़न्त झूठे उपाख्यान गढ़ लेते हैं और भोले भावुकजनों पर अपनी धाक जमाने के लिए उन मन-गढ़न्तों का प्रचार करते हैं कि उनकी अमुक क्षेत्रों में किन्हीं सिद्ध आत्माओं से भेंट हुई। उन्होंने यह दिया, यह कहा आदि। ऐसी मन-गढ़न्त बातें अनेकों के मुँह से सुनी जाती हैं और किंवदन्ती के रूप में जहाँ-तहाँ प्रचारित होती हैं। इनकी सचाई जाँचने के लिए एक ही कसौटी

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

है कि भेंट करने वाला उत्कृष्ट चरित्र का विशिष्ट व्यक्तित्त्व सम्पन्न था या नहीं। उसने दिव्य अनुग्रह को पाकर लोकमंगल के लिए कोई महत्त्वपूर्ण त्याग पुरुषार्थ किया या नहीं।

सिद्ध पुरुषों के दर्शन और अनुदान

लम्बी अवधि तक अपना अस्तित्व बनाये रहने वाले सिद्ध पुरुष सूक्ष्म शरीर धारी होते हैं। स्थूल शरीर की एक सीमा मर्यादा है। भारत की जलवायु में सौ वर्ष की आयु को पूर्ण माना गया है। **'जीवेम शरदः शतम्'** आदि वेद मन्त्रों में इसी तथ्य का रहस्योद्घाटन किया गया है। आशीर्वादों में सौ वर्ष तक जीवित रहने की कामना की जाती है। कभी-कभी कहीं-कहीं कुछ लोग अधिक समय भी जीवित रहते देखे गये हैं। पर वे अपवाद हैं। अपवाद तो किसी भी क्षेत्र में दृष्टिगोचर हो सकते हैं।

सिद्ध पुरुष बहुधा हिमालय क्षेत्र में निवास करते हैं। जहाँ शीत की प्रधानता होती है। उस क्षेत्र का अधिकांश भाग बर्फ से ढका रहता है। जो हिमि प्रदेश के जीव-जन्तु हैं, वे तो गुफाओं में जाकर गहरी निद्रा में सो जाते हैं और जब बसन्त आता है और आहार तथा जल की व्यवस्था हो जाती है तो नींद खुलती है और बाहर निकलते हैं। यह हिमानी प्राणियों के लिए प्रकृति की विशेष व्यवस्था है। मनुष्य शरीर की संरचना ऐसी नहीं है। उसे अन्न जल ही नहीं आग जलाने के लिए ईंधन की भी व्यवस्था करनी पड़ती है। इसके अतिरिक्त मल-मूत्र त्यागने एवं आच्छादन की भी। वह समान्यतया बन नहीं पाता। इसलिए बद्रीनाथ, केदारनाथ, गंगोत्री, यमुनोत्री आदि के देवालयों की प्रतिमाएँ भी अन्यत्र ले जायी जाती हैं। उतने समय के लिए कपाट बन्द रहते हैं। ऊँचे क्षेत्रों के निवासी भी अपने पशुओं को लेकर नीचे मैदानी क्षेत्रों में आ जाते हैं, और वह समय सुविधा के स्थानों में ही व्यतीत करते हैं।

हिमालय पर जो लोग साधना के लिए जाते हैं, वे भी शीतकाल में वह स्थान छोड़कर नीचे चले आते है। स्थूल शरीर धारी यह गतिविधि अपनाते हैं। क्योंकि उसे जीवित रखने के लिए जिन साधनों की आवश्यकता पड़ती है, वे सहज उपलब्ध नहीं होते। यदि कोई हठपूर्वक वहाँ रहना ही चाहे तो ढेरों सामग्री एकत्रित करनी पड़ेगी जैसी कि पर्वतारोहियों को कुलियों का काफिला समान ढोने के लिए साथ लेकर चलना पड़ता है। जो इस प्रकार की व्यवस्था करेगा, उसके लिए शरीर धारण किये रहना ही एक समस्या हो जायेगी। इसलिए हिमालय यात्रा एवं उधर टिकने के लिए मई से सितम्बर तक के ही प्रायः छः महीने वहाँ रहकर अपना स्थान छोड़ देना पड़ता है। ऐसी उलट-पुलट में गहन स्तर की साधनाएँ नहीं हो सकती। यह एक साधारण बात है। सामान्य जन स्वास्थ्य लाभ या साधना आदि प्रयोजनों के लिए उपरोक्त व्यवस्थाएँ बनाते और सुविधा के स्थान बदलते रहते है।

प्रश्न सिद्ध पुरुषों का है। वे सूक्ष्म शरीरधारी ही होते हैं। स्थूल शरीर का समापन कर चुके होते हैं। सूक्ष्म शरीर धारी सत्ताएँ स्थूल शरीर से नेत्र आदि इन्द्रियों से नहीं देखे जा सकते। यदि दीखने लगें तो मनोकामनाओं वाले लोग उन्हें कहीं से भी ढूँढ़ निकालें और हजार प्रकार के प्रपंच रचकर अपनी हठ पूरी करके टालें। ऐसी विपत्ति में यदि वे फँसते फिरें तो वे प्रयोजन पूरे किस प्रकार कर सकेंगे, जिसके लिये ऐसी कष्ट साध्य परिस्थितियों में रहने और भीड़ से बचने का उनने निश्चय किया होता है। यदि प्रपंच में फँसने और लोगों से घिरे रहने का ही मन होता तो फिर उनके लिए शहर कस्बों में डेरा डालना क्या बुरा था ? साधन भी जुटते रहते। लोगों की भीड़ भी जमी रहती और प्रचार विज्ञापन भी होता रहता, जैसा कि आजकल के महन्त मठाधीशों के साथ होता देखा जाता है।

यह भली-भाँति समझ लेना चाहिए कि जीवन निर्वाह के दुर्लभ साधनों का छः महीने चल सकने वाला जखीरा जमा करने के उपरान्त ही कोई हिमाच्छादित प्रदेशों में रहने का साहस कर सकता है। ध्रुव प्रदेशों की यात्रा करने यों अनेकानेक खोजी दल गये हैं, उन्हें कितना साधन साथ लेकर चलना पड़ा है, इस विवरण के रुचि रखने वाले लोग पत्रों तथा पुस्तकों में पढ़ते रहे हैं, सामान्य शरीर लेकर सामान्य व्यक्ति वहाँ किस तरह रह सकेगा ? यह समझ में आने योग्य बात नहीं है।

ऐसी अनगढ़ किंवदन्तियाँ अक्सर सुनने को मिलती रहती हैं, जिनमें किन्हीं कोतूहलप्रियों को अपनी विशेषता का ढिंढोरा पीटने वालों द्वारा यह कहते सुना गया है कि हम हिमालय गये। हमसे किसी सिद्ध पुरुष ने भेंट की कठिनाइयाँ पूछी। गुफा में ले गये। अमुक भोजन कराये। और मनमाँगे आशीर्वाद दिये। इन कथा गाथाओं के पीछे तनिक भी सच्चाई नहीं होती। क्योंकि साधारण चर्म-चक्षुओं से किसी सिद्ध पुरुष के सूक्ष्म शरीर को नहीं देखा जा सकता। न कानों से उनकी बात सुनी जा सकती है, न जीभ से कुछ कहा जा सकता है। एक सूक्ष्म शरीर दूसरा स्थूल शरीर इनकी परस्पर संगति बैठती ही नहीं।

फिर अदृश्य रहने के लिए जब उन्होंने सूक्ष्म शरीर अपनाया है तो वे सभी को देख सकते हैं। उन्हें कोई सामान्य व्यक्ति नहीं देख सकता। विशेषतया वे व्यक्ति जो अपनी लौकिक कामनाएँ पूरी करने के फेर में है। उनमें इतनी विशेषता होती है कि किसी के भी मन की बात जान सकें और यदि वह व्यक्तिगत लाभ से नहीं, विश्वकल्याण की किसी महती आवश्यकता के निमित्त समर्पित है तो उनके भीतरी अन्तराल में ही आवश्यक जानकारी एवं क्षमता प्रदान कर दें। लौकिक और पारलौकिक स्वार्थ साधना के फेर में जो लोग हैं, उन्हें वे अपना सूक्ष्म शरीर, स्थूल शरीर में परिणत करके पिछलग्गू बनाएँ, इसके पीछे न कोई तर्क है, न तथ्य।

सिद्ध पुरुषों का भी अपना स्वरूप, प्रयोजन एवं स्तर है। वे किसी को अपनी सहायता प्रदान करते हैं। अपने तप का कोई भाग काट कर प्रदान करते हैं, तो उसका कारण कोई अत्यन्त उच्चस्तरीय प्रयोजन होना चाहिए। वह दर्शन परामर्श अनुदान चमत्कार दिखाने, अहंकार बढ़ाने एवं स्वार्थ साधने के निर्मित नहीं हो सकता।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org

सामान्य जीवन व्यतीत करने वाले, साधारण प्रपंचों में फँसे रहने वाले व्यक्ति उन्हें देख पायें या सम्पर्क साध पायें, जेब काट लायें यह सम्भव नहीं। वे इतना विवेक सँजोये होते हैं कि इधर-उधर फिरने वाले प्रपंचियों की वास्तविकता पहचान सकें और अपने को उनके चंगुल से बचाने के लिए अदृश्य स्थिति में ही बने रहें। यही कारण है कि चेला मूँड़ने वालों से वे किसी भी प्रकार सम्बन्ध स्थापित नहीं करते। वे अपना कल्पना के आधार पर जो कुछ गढ़ते रहें, कहते रहें, यह उनकी इच्छा।

सिद्ध पुरुष अपनी व्यक्तिगत अपूर्णताएँ सूक्ष्म शरीर धारण करने से पहले ही पूर्ण कर चुके होते हैं, उन्हें स्वर्ग मुक्ति, सिद्धि प्राप्त करने की आवश्यकता नहीं पड़ती। उनका उस स्थिति में रहने का एक ही प्रयोजन होता है। ईश्वर के पार्षद के रूप में उनकी सृष्टि के असन्तुलनों को सन्तुलनों में बदलने के लिए अदृश्य वातावरण को प्रभावित करना। यह कार्य उन्हें ईश्वर ही सौंपता है। अपनी निजी इच्छाएँ तो वे बहुत पहले ही समाप्त कर चुके होते हैं, उनकी कोई निजी योजना भी नहीं होती। जो बताया जाता है, मात्र उसे ही उतना ही करते रहते हैं।

सिद्ध पुरुषों को भी कभी-कभी शरीर धारियों के साथ सम्पर्क बनाने की आवश्यकता पड़ती है। क्योंकि वे स्वयं तो शरीर धारी होते नहीं। पर कुछ काम ऐसे कराये जाने की जरूरत पड़ती है, जिसके लिए काया एवं साधनों की आवश्यकता होती है। इसके लिए उन्हें ऐसे सत्पात्र ढूँढ़ने पड़ते हैं जो प्रामाणिकता और उत्कृष्टता की कसौटी पर पहले से ही अपने को खरा सिद्ध कर चुके हों। अप्रामाणिक और अनगढ़ व्यक्ति तो सिद्धि अनुदानों को पाकर बौखला जाते हैं और ऐसा कुछ कर बैठते हैं, जिसे अनर्थ ही कहा जा सके। इस कारण किसी को सिद्धि पुरुषों की तलाश में नहीं जाना पड़ता, वे स्वयं ही उन्हें आवश्यकता अनुभव करा देते हैं और सौंपे गये कार्य के लिए जितनी दिव्य क्षमता की आवश्यकता पड़ती है, उसे हस्तान्तरित कर देते हैं।

शिवाजी, चन्द्रगुप्त, विवेकानन्द आदि को गुरुओं ने ही तलाश किया था। वे उन्हें ढूँढ़ने तलाशने के लिए कहीं मारे-मारे नहीं फिरे थे। विश्वामित्र स्वयं ही दशरथ पुत्रों को माँगने उनके घर गये थे। सिद्ध पुरुषों को मात्र अपना हाथ बँटाने के लिए किसी शरीर धारी की काया तलाश करनी पड़ती है। जब वे परख लेते हैं कि यहाँ कामनाओं की कीचड़ नहीं, समर्पण की दिव्य भावना का अस्तित्व मौजूद हैं, तो वे स्वयं ही उनके सिर पर छा जाते हैं। उसकी समूची सत्ता को अपने में घुला लेते हैं, पर इससे पूर्व वे हजार बार परखते हैं कि कोई अपनी निज की लौकिक या पारलौकिक स्वार्थ सिद्धि के लिए उन्हें फँसाने और अनुचित लाभ न उठाने लगे। जो हर कसौटी पर खरे सिद्ध होने की स्थिति में पहुँच चुके होते हैं मात्र उन्हीं पर हाथ डालते है, उन्हीं से कुछ आशा करते हैं और जो देना हो, उन्हीं को देते हैं।

साथ ही यह चौकसी भी रखते हैं कि मनुष्य में आमतौर से पाई जाने वाली वासना, तृष्णा और अहन्ता की पूर्ति के लिए उनके दिये अनुदानों का दुरुपयोग तो नहीं हो रहा है। यदि ऐसा दीखता है तो अपने अनुदान वापस भी ले लेते हैं। ऐसी दशा में वह देव दीक्षित नहीं रहता, वरन् जादूगरों की तरह माया जाल रचता रहता है। ऊँचा चढ़कर गिरने वाले को चोट भी अधिक लगती है। जबकि जमीन पर खड़ा हुआ व्यक्ति फिसल पड़ने पर यत्किंचित चोट खाकर ही खड़ा हो जाता है।

सिद्ध पुरुषों की तलाश में न हम हिमालय जाएँ और न कहीं अन्यत्र। अपनी पात्रता बढ़ायें। कमल पुष्प वत अपने को खिलाने का प्रयत्न करें, ताकि मधु-मक्खी भौंरे, तितली उस पर स्वयं मँडराने लगें। चिड़ीमारों और मछियारों की विधा अपना कर कोई सिद्ध पुरुषों को नहीं फँसा सकता। उनकी गुहार भी नहीं करनी पड़ती और न भटकने तलाशने की आवश्यकता पड़ती है। अपनी पवित्रता का विकास ही वह उपाय उपचार है जिसके सहारे सिद्ध पुरुषों को सत्पात्रों की तलाश करनी पड़ती है। स्मरण रखने योग्य तथ्य एक ही है कि दैवी विभूतियाँ मात्र दैवी प्रयोजनों के लिए ही हस्तगत होती है। उनसे प्रत्यक्ष या परोक्ष स्वार्थ नहीं साधा जा सकता। ईश्वर की विश्ववाटिका को सींचने, समुन्नत, सुव्यवस्थित बनाने के निमित्त ही किसी को दिव्य-सिद्धियाँ मिली हैं और भविष्य में मिलती रहेंगी।

सिद्धों की सहायता सदैव पुण्य प्रयोजनों के लिये

मादक द्रव्यों की भाँति सम्पदाओं सफलताओं का भी एक नशा होता है। जिन्हें असाधारण रूप से बल, वैभव, पद, गौरव आदि मिलता है वे अहंता की मादकता से उन्मत्त जैसे हो जाते हैं। मर्यादाओं को तोड़ने, वर्जनाओं की उपेक्षा करने और अपराधी स्तर के उद्धत आचरणों में निरत होने लगते हैं। अनुकरण की छूत एक से दूसरे को लगती है। अनाचार उत्पीड़न की प्रतिक्रिया उत्पन्न होती है। प्रतिशोध, प्रति-प्रतिशोध का क्रम चल पड़ता है। नियति भी उद्धतों की प्रताड़ना किये बिना चैन से कब बैठती है ? मनः स्थिति में घुसी हुई विषाक्तता परिस्थितियों में विद्रोह के तत्त्व उभारती है। संघर्ष खड़े होते हैं। साथ ही प्रकृति भी अनेकानेक प्रतिकूलताएँ विपत्तियाँ विभीषिकाएँ बरसाने लगती हैं। अशान्ति के अनेकानेक विस्फोट फूटने लगते हैं। वातावरण संकटों, असंतोषों अभावों से भर जाता है।

मनुष्य यों चाहे तो चिन्तन, चरित्र, व्यवहार की उत्कृष्टता बनाये रहकर सुख शान्ति का माहौल बनाये रह सकता है। स्नेह सहयोग की नीति अपना कर हँसती-हँसाती जिन्दगी जी सकता है। जितने साधन उपलब्ध हैं उन्हें मिल बाँटकर खाते हुए प्रगति और प्रसन्नता भरपूर मात्रा में उपलब्ध कर सकता है। पर वह ऐसा करता नहीं है। क्षुद्रता जब भी साधन सम्पन्न होती है तभी विष उगलती है। कुमार्ग अपनाने का प्रतिफल विपत्तियों और विग्रहों के रूप में ही सामने आ सकता है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

यही सब बार-बार होता रहता है। अनैतिकता की अराजकता बार-बार उभरती रहती है। समुद्र में ज्वार और पवन में तूफान आने की तरह जब मानवी क्रियाकलापों में अनैतिकता की अराजकता उभारती है तो विश्व संतुलन बिगड़ने लगता है। यदि वह उसी रूप में चलता रहे तो महाविनाश जैसे विग्रह खड़े होते हैं। इनकी रोकथाम आवश्यक है। असंतुलन को संतुलन में बदलने से ही बात बनती है। उफानों को रोकने के लिए चूल्हे में जलती अग्नि बुझानी पड़ती है और उफनते झागों में पानी डालना पड़ता है। इसकी व्यवस्था भी नियन्ता ने बना रखी है। सृष्टि संतुलन की जिम्मेदारी देवात्माओं सिद्ध पुरुषों को सौंपी है। उनकी विशिष्टता का उपयोग इसी में है कि सृष्टि के बिगड़ने वाले संतुलन को समय-समय पर नियंत्रित करते रहें। प्रगति के मार्ग में आये हुए अवरोधों को हटाते रहें। यह एक प्रकार से स्रष्टा का हाथ बँटाना है। विश्व उद्यान के मालियों को यही करना पड़ता है। वे उसे समुन्नत बनाने के लिए खाद पानी की व्यवस्था करते-खरपतवारों को उखाड़ते और उजाड़ने वाले तत्त्वों से निपटते हैं। देवात्माओं की शक्ति सामर्थ्य इसी प्रयोजन में निरन्तर रहती है। वे अधर्म के उन्मूलन और धर्म के संस्थापन वाली ईश्वरीय इच्छा को पूर्ण करने में अपनी सत्ता और क्षमता को होमते रहते हैं। गिरों को उठाते, उठने वालों को बढ़ाते, भटकों को राह दिखाते और पीड़ितों की सहायता करते हैं। आत्मा की गरिमा इसी में है कि वह अपना दुलार बिखेरे और वैभव को बाँटे। अनीति से निपटे। नीति को बनाये और बिगड़े हुए संतुलन को बनाये। देवात्माएँ यही करती रहती है। अपनी अपूर्णता दूर करने के लिए योग तप का आश्रय लिया जाता है। साथ ही जो कुछ उच्चस्तरीय वैभव प्राप्त होता है उसे सत्प्रवृत्ति सम्वर्द्धन में लगाया जाता है। सिद्धपुरुषों का यही एकमात्र क्रियाकलाप रहता है। वे बादलों की तरह सुसम्पन्न बनते हैं और अपनी विभूतियों को आवश्यक प्रयोजनों के लिए भूखण्डों पर बरसा देते हैं।

सिद्धपुरुष इसी के लिए अवसर की तलाश में रहते हैं। जहाँ अपने सहयोग की आवश्यकता समझते हैं वहाँ उसे बिना माँगे अहेतुकी कृपा के रूप में मुक्तहस्त से बिखेर देते हैं। साथ ही ऐसे सुसंस्कारी व्यक्तित्वों को भी ढूँढ़ते रहते हैं जिन्हें सामान्य से असामान्य बनाकर अपने ऊपर लदे हुए दायित्व में भागीदार बनाने के लिए सहयोगी स्तर तक विकसित किया जा सके। साधक ऐसे ही व्यक्तित्वों को कहते हैं। पुण्य परमार्थ की उमंगों को उभारना ही साधना है। साधकों को सिद्धी की और सिद्धों को साधकों की आवश्यकता पड़ती है। दोनों एक दूसरे को खोजते हैं। संयोग मिल जाने पर अंधे अपंगों का संयोग बना कर अपूर्णता को पूर्णता में बदलते हैं।

सिद्धपुरुष सूक्ष्म शक्ति प्रधान होते हैं उनका सूक्ष्म शरीर प्रखर होता है। साधक की स्थिति स्थूल शरीर में समाहित होती है। स्थूल को वरिष्ठता सूक्ष्म के संयोग से प्राप्त होती है। काया की वरिष्ठता प्राण बाहुल्य से है। साधक को काया और सिद्ध को प्राण कहा जा सकता है। दोनों एक दूसरे के पूरक हैं। एकाकी सिद्ध मात्र होने से प्रत्यक्ष हलचलों के संयोजन में असमर्थ रहता है। इसी प्रकार एकाकी साधक प्राण शक्ति की न्यूनता के कारण वैसा कुछ कर नहीं पाता जिसे अलौकिक या चमत्कारी कहा जा सके। ऐसा बन पड़ना दोनों के संयोग से ही सम्भव होता है। इसलिए सिद्ध साधकों को और साधक सिद्धों को तलाशते देखे गये हैं। जब यह संयोग मिल जाता है तो दोनों पक्ष कृतकृत्य हो जाते हैं। दो पहियों की गाड़ी सरपट दौड़ने लगती है।

सिद्ध पुरुषों का प्रधान कार्य सृष्टि का संतुलन बनाये रहना है। इसलिए उन्हें साथी सहयोगियों की आवश्यकता पड़ती है इसलिए उत्सुकता पूर्वक सत्पात्र साधकों को तलाशते रहते हैं। साधकों के लिए अपने बलबूते अधिक कुछ कर सकना सम्भव नहीं होता। बालक को अभिभावक का, अध्यापक का सहयोग चाहिए। इसके बिना एकाकी निर्वाह या विकास बन नहीं पड़ता। साधक भी उच्चस्तरीय उत्कर्ष के लिए समर्थ सहयोगी की आवश्यकता अनुभव करता और उसे खोजता है।

साधक और सिद्ध आदर्श मार्ग के दो पथिक हैं। दोनों ही दो बैलों की तरह एक जूए में जुतते हैं जिसका ढाँचा विश्व संतुलन का परिवहन करते रहना है। एक दूसरे का सहयोग पाकर कृतार्थ भी होते हैं और सच्चे मन से सहयोग भी करते हैं। पहुँचना तो दोनों को एक ही गन्तव्य पर है।

इसके विपरीत एक ऐसी अड़चन भी है जो दोनों के बीच कभी सच्चा सहयोग बनने ही नहीं देती। वह है ललक, लिप्सा, कामना, स्वार्थपरता। देखा गया है कि तथाकथित आध्यात्मवादियों में से अधिकांश ऐसे होते हैं जो सम्पन्नता सफलता के भौतिक प्रयोजनों के लिए किन्हीं देवताओं अथवा देवपुरुषों का श्रम उपार्जित वर्चस्व मुफ्त में ही लूटना चाहते हैं। इसके लिए अपने को भक्त सिद्ध करने का मुखौटा लगाते हैं। आकुल व्याकुल फिरते हैं।

भक्त वेशधारी जो भी सोचते हों पर देवात्माओं की अन्तर्दृष्टि आर-पार जाने वाली होती हैं। उन्हें वस्तु स्थिति समझने में कभी भ्रम नहीं होता। उन्हें किसी बहाने फुसलाया नहीं जा सकता।

जिसके नाम की चिट्ठी होती है पोस्टमैन उसका घर तलाशता हुआ स्वयं पहुँच जाता है। खिले फूल की गंध पाकर भौंरे, तितलियाँ, मधुमक्खियाँ स्वयं ही दौड़ जाती हैं, इसी प्रकार जिन आत्माओं में उदात्त चिन्तन आदर्श चरित्र, स्नेह, सद्भाव का विकसित स्वरूप दीख पड़ता है उन्हें सिद्धपुरुष अपने लिए उपयोगी मान लेते हैं और उन्हें समीप लाने के लिए अर्जित विभूतियों द्वारा निहाल करने के लिए स्वयं ही उन्हें खोज लेते हैं। उनके घर पर जा पहुँचते हैं। विवेकानन्द के घर रामकृष्ण परमहंस स्वयं पहुँचे थे। शिवाजी से समर्थ गुरु रामदास ने किसी बहाने स्वयं सम्पर्क बनाया था। चाणक्य और चन्द्रगुप्त का सुयोग भी इसी प्रकार बना। ऐसे सुयोग घर जाकर भी बनाये जा सकते हैं और अपने आकर्षण से कहीं बाहर बुलाकर उनसे सम्पर्क साधा जा सकता है। हर हालत में इसमें परख, चयन, आमंत्रण, आकर्षण समर्थ शक्तियों का ही होता है। अनुग्रहकर्त्ता तो निमित्त मात्र होते हैं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org

कई कौतूहल को कसौटी मान कर उनकी तलाश में निकलते हैं और कामनाएँ पूरी कराने के लिए उनका अनुग्रह चाहते हैं। वे भूल जाते हैं कि कोई निजी स्वार्थों की पूर्ति के लिए किसी पर किस लिए अनुदानों की वर्षा करेगा ? परमार्थ के लिए तो उदारचेता बड़े-बड़े दान दे देते हैं। हरिश्चन्द्र, दधीचि, शिवि, भामा शाह आदि ने जब उच्च प्रयोजन सामने खड़े देखे तो उनकी झोली भर दी। पर हट्टे-कट्टे भिखारी जब कोई बहाना बना कर भीख माँगने निकलते हैं तो उन्हें दुत्कार ही मिलती है। आध्यात्म क्षेत्र में समर्थों के विशिष्ट अनुदान सत्पात्रों को मिलने की परम्परा रही है। लालची, स्वार्थी मतलब गाँठने के लिए भीख माँगने या जेब काटने के लिए अपने को अध्यात्मवादी लबादे में लपेटते हैं तो उनकी पोल तत्काल खुल जाती है। ऐसे लोगों को निराश होकर वापस लौटना पड़ता है।

जिन लोगों ने इस प्रकार की खोज में लम्बी दौड़-धूप की है वे निराश होने पर अपनी प्रतिष्ठा बचाने के लिए मन-गढ़न्त कहानियाँ बना लेते हैं और परिचित लोगों के आगे सिद्धों से भेट के लम्बे चौड़े किस्से सुनाते हैं। इस कौतुक को सुनने से किन्हीं का मनोरंजन तो हो सकता है। आरम्भ में कुछ समय के लिए असमंजसयुक्त विश्वास भी कर लेते हैं पर वस्तुस्थिति प्रकट होने में देर नहीं लगती जब व्यक्तित्त्व और व्यवहार में किन्हीं उच्चस्तरीय गतिविधियों का समावेश नहीं दीखता तो वे समझ लेते हैं कथन में प्रपंच मात्र था। पारस को छूकर लोहा सोना बन जाता है। स्वाति की बूँद से सम्पर्क होने पर सीप मोती बन जाती है। चन्दन वृक्ष के समीप उगने वाले झाड़ महकने लगते हैं तो कोई कारण नहीं कि सिद्धपुरुषों की अनुकम्पा पाने वाला घटिया जीवन जीता रहे और बचकानी प्रवृत्तियों के बाड़े में कैद रहे।

सिद्धपुरुषों को उद्देश्य किन्हीं लालची अहंकारी लोगों की कामनाएँ पूरी करते फिरना नहीं है। न वे इसके लिए अपनी तपस्या को कूड़े के ढेर पर बखेरते हैं। उनकी स्वयं की सत्ता उत्कृष्टता का परिपोषण करने के लिए समर्पित हुई तो वे अपने बहुमूल्य तप का समापन किसी को कौतूहल दिखाने के लिए किन्हीं की ललक लिप्साएँ पूरी करने के लिए क्यों खर्च करेंगे? इस नग्न सत्य को ऐसे हर व्यक्ति को भली प्रकार समझ लेना चाहिए जो सिद्ध पुरुषों को खोजने और उनसे लाभ उठाने के लिए जहाँ-तहाँ भटकते हैं। उन्हें वरदान अनुग्रह प्राप्त करना तो दूर, दर्शन तक का लाभ नहीं मिलता। भले ही उनकी मौजूदगी समीपवर्ती क्षेत्र में ही क्यों न हो?

कभी-कभी ऐसा होता देखा गया है एक ठग को दूसरा बड़ा ठग अपने चंगुल में फँसा लेता है और पकड़े हुए शिकार को झोले में डालकर अपना स्वार्थ सिद्ध करता है। प्रेत-पिशाचों में से यक्ष-गंधर्वों से कुछ ऐसे मनचले होते हैं जो इन प्रपंची लोगों की मनोभूमि को ताड़ लेते हैं और उन्हें फँसाकर मनमाने कृत्य कराने के लिए वाहन जैसा उपयोग करते हैं। यह वर्ग भी सूक्ष्म शरीरधारी होता है। निकृष्ट वर्ग में गिने जाने पर भी वेष बदलकर किसी भी रूप में प्रकट होने की कला में अभ्यस्त होता है। उनके लिए सिद्धपुरुषों जैसा रूप बना लेने में भी कठिनाई नहीं होती। मूर्खों के साथ वे धूर्तों जैसे व्यवहार करते हैं। कौतुक-कौतूहल दिखा कर उन्हें मन्त्र मुग्ध कर लेते हैं और सम्मोहित की तरह उन्हें अँगुली के इशारे पर कठपुतली की तरह नचाते हैं। इस प्रकार जकड़े पकड़े गये लोग भी अपने को सिद्धपुरुषों के साथ सम्पर्क होने की मान्यता में जकड़ जाते हैं और उनकी इच्छानुसार उचित-अनुचित का विचार किये बिना हेय कृत्य करने लगते हैं। अघोरी, कापालिक, तान्त्रिक स्तर के लोग इसी प्रकार के कुचक्र में फँसे हुए होते हैं। संत का जीवन आदर्शवादी और परमार्थ परायण होना चाहिए। पवित्रता और प्रामाणिकता उनकी महानता को सिद्ध करने वाली कसौटियाँ सही सिद्ध करती दीख पड़नी चाहिए। पर इसके विपरीत जब दीख पड़ता है कि कोई संत वेष धारण करके भी अभक्ष्य खाता, अपेय पीता, अपवित्र उपकरण धारण करता और कुकर्मों में निरत रहता दीख पड़ता है तो समझा जाना चाहिए कि वह किसी प्रेत-पिशाच का वाहन बन गया, किसी वेताल योनि ने इसे अपने फँदे में फँसा लिया। ऐसे लोगों की गतिविधियाँ मारण, मोहन, उच्चाटन, वशीकरण आदि हेय कृत्यों में संलग्न रहती हैं, वे इसी प्रकार की चर्चाएँ एवं चेष्टाएँ करते हैं। नाम तो देवता सिद्ध होने जैसा लेते हैं पर वस्तुतः वे किन्हीं प्रेत पिशाचों के वशवर्ती होते हैं। वे ही विलक्षण वस्तुएँ लाकर दिखा देने, कौतूहल प्रकट करने जैसी आश्चर्यचकित करने वाले कृत्य करते देखे जाते हैं। इन प्रदर्शनों का उद्देश्य मात्र चकित व्यक्तियों को सम्मोहन जाल में फँसा लेना होता है। इन्हें जो सिद्धपुरुष मान बैठते हैं। वे उनके चक्कर में आकर अपना सब कुछ खो बैठते हैं। यथार्थ के सिद्धपुरुष सदैव स्वयं पुण्य प्रयोजनों में लगे रहते हैं एवं सत्पात्रों को चुनकर उन्हें भी यही प्रेरणा देते हैं।

दैवी अनुकम्पा कैसे व किन्हें मिलती है ?

दैवी अनुग्रह किन्हें प्राप्त होता है ? सूक्ष्म सत्ताएँ किन पर अनुकम्पा बरसाती हैं ? यह जानने से पूर्व यह तथ्य भली-भाँति समझ लेना चाहिए कि सिद्ध पुरुष, महामानव मात्र उत्कृष्ट चरित्रवान, संयमी, तपस्वी, संतोषी और परमार्थपरायण के साथ ही सम्बन्ध जोड़ते हैं। अपनी अति महत्त्वपूर्ण तप-सम्पदा का एक भाग देकर अनुग्रहीत को इस योग्य बनाते हैं कि वह निजी सामर्थ्य कम पड़ने पर भी उस अनुदान के सहारे पुण्य परमार्थ के निमित्त कोई बड़े कदम उठा सके। बढ़-चढ़ कर काम कर सके। प्रतिकूलताओं के बीच रहकर भी यशस्वी हो सके। बड़े त्याग बलिदान करके असंख्यों के लिए मार्गदर्शक बन सके। जहाँ ऐसा कुछ घटित होता दिखे तो समझना चाहिए कि किसी तपस्वी सिद्धपुरुष की अनुकम्पा उन्हें उपलब्ध हुई है। व्यक्तिगत भौतिक सफलताएँ पितर आत्माओं के अनुग्रह से प्राप्त हुई समझी जा सकती हैं। दृश्य रूप में सामान्य व्यक्तियों को न सिद्ध पुरुष, न पितर दिखाई देते है, न ही अपने अस्तित्व का वे कभी परिचय देते हैं।

सिद्धपुरुषों को सूक्ष्म शरीरधारी ऋषि कहना चाहिए। योगी तपस्वी जब तक स्थूल शरीर धारण किये रहते हैं, तब तक उन्हें ऋषि कहते हैं। जब वे स्थूल शरीर की अपेक्षा सूक्ष्म शरीर

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

में रहने लगते हैं तब वे दिव्य पुरुष बन जाते हैं। इन्हीं को सिद्ध पुरुष भी कहते हैं। इन्हें देव और मनुष्य का मध्यवर्ती स्थिति में रहने वाला समझा जाता है। साधारणतया वे अदृश्य ही रहते हैं, पर आवश्यकता पड़ने पर स्थूल काय कलेवर भी वे धारण कर लेते हैं। जिस शरीर से तप किया और सिद्धि पाई है, वह उन्हें प्रिय भी लगता है और उसे प्रकट करना भी सरल पड़ता है। इसलिए जब कभी किन्हीं को उनका दर्शन होता है तो वही काया सामने आती है। उतनी ही वयदृष्टिगोचर होती है जितनी में उसने स्थूल शरीर का सूक्ष्मीकरण किया था। इस परिवर्तन के दोनों ही स्वरूप हो सकते हैं, एक यह कि अवधारित शरीर को उसी प्रकार अलग कर दिया जाये, जिस प्रकार सर्प, कंचुली छोड़कर नई त्वचा वाली स्फूर्तिवान काया का उपयोग करता है। छोड़ा हुआ शरीर नष्ट भी किया जा सकता है और ऐसा भी हो सकता है कि स्थूल का धीरे-धीरे परित्याग करते-करते स्थिति मात्र उतनी ही रहने दी जाये जिसमें कि सूक्ष्म ही शेष रहे। तत्त्वतः सिद्ध-पुरुष सूक्ष्म शरीरधारी ही होते हैं। आवश्यकतानुसार कभी-कभी वे स्थूल शरीर से भी प्रकट होते हैं। ऐसा विशेषतया तब होता है जब उन्हें किसी या किन्हीं शरीरधारियों के साथ सम्पर्क बनाने वार्तालाप करने की आवश्यकता होती है।

प्रकट होना या न होना यह पूर्णतया उनकी अपनी इच्छा पर निर्भर है। किसी के आग्रह अनुरोध का उन पर कोई दबाव नहीं पड़ता। कारण कि सिद्ध पुरुष मात्र कुछ उच्च उद्देश्यों की पूर्ति को ही ध्यान में रखते हैं जब कि सामान्यजन कौतुक कौतूहल देखने या चमत्कारों का रस लेने, मनोकामना पूरी कराने के फेर में रहते हैं। इस स्तर की निकृष्ट मनोभूमि के दर्शन अभिलाषा में भी घोर स्वार्थ ही भरा होता है। उसे वे कुचक्र भर समझते हैं और अपने को उस जाल में फंसने से स्पष्ट इन्कार कर देते हैं। उन्हें मात्र उन्हीं के सम्मुख प्रकट होने की उपयोगिता प्रतीत होती है, जिन्हें महत्त्वपूर्ण परामर्श देने पर उसकी पूर्ति हो सकने की पात्रता परिलक्षित होती है। कोई अपनी बेटी को कुपात्र वर के हाथों जान बूझ कर नहीं सौंपता। फिर दिव्यदर्शी आत्माएँ अपने अत्यन्त कष्टपूर्वक कमाया हुआ तप किसी की चाहना भर से प्रभावित होकर देने के लिए क्यों कर सहमत हो सकती हैं।

यों सिद्ध पुरुषों का शरीर सूक्ष्म होने के कारण उन्हें आकाश गमन की सिद्धि होती है। वे इच्छानुसार चाहे जिस क्षेत्र या स्थान में तत्काल जा पहुँच सकते हैं। फिर भी वे पतंग की तरह नहीं उड़ते फिरते। किसी एक या किन्हीं स्थानों को अपने लिए नियत करते हैं। जहाँ शक्ति संचय के लिए वे तप करते रहते हैं, जो स्थूल शरीरधारियों के विधि-विधानों से सर्वथा भिन्न होता है।

सूक्ष्म शरीर के साथ तन्मात्राएँ जुड़ी होती हैं। शब्द, रूप, रस, गंध स्पर्श में सूक्ष्म शरीर को भी आसक्ति हो सकती है। यह कामनाएँ प्रकारान्तर से बन्धन में बांधती और विशालता को संकुचित करती हैं। इसलिए इन्हें भी उसी प्रकार काटना पड़ता है, जैसे कि स्थूल शरीर से वासना तृष्णा के, लोभ मोह के बंधन बंधते हैं और समुन्नत स्तर तक व्यक्तित्व को नहीं पहुँचने देते। उसी प्रकार सूक्ष्म शरीरधारियों के लिए पंच तन्मात्राओं के बंधन जकड़ते तो हैं और अधिक ऊँची आत्मिक स्थिति पर अग्रगामी नहीं बनने देते। एकाग्रता को चंचलता में बदलती है। ऐसी स्थिति में वे देवात्मा बनने की स्थिति में नहीं पहुँच पाते। इसलिए तप का आश्रय उन्हें भी लेना पड़ता है अपूर्णताओं को पूर्णता में विकसित करने के लिए। इसलिए उन्हें भी अपने लिए साधना हेतु उपयुक्त स्थान चुनना पड़ता है।

स्थान चयन में उन्हें दो तथ्यों को ध्यान में रखना पड़ता है। एक यह कि वह कोलाहल रहित हो। प्रकृति की स्वाभाविक निस्तब्धता में किसी कारण विक्षेप न पड़ता हो। दूसरे यह कि जब भी सूक्ष्म शरीर को स्थूल आकार में बदलना पड़े तब उसके लिए आवश्यक ताप और आहार उपलब्ध हो सके। इसके लिए गुफाएँ उपयोगी पड़ती हैं। वे पर्वतों के फैलने सिकुड़ने से बन जाती हैं। उनमें से कितनी ही ऐसी भी होती हैं जिनमें सूक्ष्म शरीरधारी ही नहीं स्थूल शरीर वाले प्राणी भी शीतकाल तन्द्रित स्थिति में रहकर गुजार सकें।

कुछ दशकों पूर्व देवात्मा हिमालय के यातायात वाले स्थानों के समीप की गुफाओं में ऐसी आत्माएँ रहा करती थीं। तब यात्रियों की धूम-धाम नहीं थी। मार्ग कच्चे और अगम्य थे। इसलिए दुस्साहसी आत्मवान ही उस क्षेत्र की यात्रा पर सिर पर कफन बाँधकर चलने जैसी मनोभूमि बनाकर निकलते थे। पर अब वैसा बिल्कुल भी नहीं है। बसावट बढ़ती जा रही है। मार्ग बनते जा रहे हैं। वाहन दुर्गम-मार्गों पर चलने लगे हैं। यात्रियों की संख्या हर वर्ष कई गुनी हो जाती है। इन सब के कारण वातावरण में कोलाहल बढ़ता ही है। साधारण स्तर के व्यक्तित्वों का चिन्तन चरित्र भी उस क्षेत्र को प्रभावित करता है। साधनारत सिद्ध पुरुषों को उसमें घुटन अनुभव होती है। फलतः वे उन स्थानों को छोड़कर सघन वनों में ऊँचे पर्वतों में इसलिए चले जाते हैं कि उन्हें मानव संकुल से उत्पन्न असुविधा का सामना न करना पड़े। अब यदि उनकी उपस्थिति का पता चल सके तो खोजी को ऐसे क्षेत्रों में पहुँचना पड़ेगा जो सर्व सुलभ नहीं है। इस कारण अब वह दूरी बहुत बढ़ गई है जिसको कभी सरलतापूर्वक पार किया जा सकता था और सिद्ध पुरुषों से सम्पर्क साधा जा सकता था। खोजी वर्ग के लोग भी अपनी जीवट और तितीक्षा की दृष्टि से बहुत दुर्बल रहने लगे हैं। भौतिक लाभ के लिए सिद्ध पुरुषों का सम्पर्क कुछ विशेष लाभदायक नहीं होता। आत्मिक प्रगति की अभिलाषा अब किन्हीं विरलों में ही देखी जाती है। ऐसी दशा में उन्हें आपस में मिलाने वाले आधार ही एक दूसरे से प्रायः विपरीत स्तर के हो जाने पर दोनों ओर से ऐसे प्रयत्न नहीं होते कि सामान्य साधकों और सिद्धपुरुषों में पारस्परिक सम्बन्ध बनें, दर्शन एवं परामर्श सम्भव हो। सिद्धपुरुष परमार्थ प्रयोजनों के लिए उपयुक्त उच्चस्तरीय आत्माओं को तलाशते हैं। जबकि कौतुक-कौतूहल देखने की मनोभूमि वालों को मुफ्त के ऐसे वरदान अनुदान चाहिए जो उन्हें सम्पन्न, समृद्ध, युवक, यशस्वी अधिकारी, विजयी, जैसे लौकिक सफलताएँ मात्र दर्शन नमन के बदले दे या दिला सकें। अन्तर बहुत बड़ा हो गया है। यही कारण है कि पुरातन काल में साधकों और सिद्धों के जो संयोग

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

बनते थे वे अब सम्भव स्तर के बन गये हैं, सिद्ध पुरुष दैवी सत्ता के संदेश वाहक देवदूत हैं पार्षद है।

देवी चेतना निर्गुण-निराकार होने से स्वयं कार्य तो नहीं कर पाती, पर अपने पार्षदों को माध्यम बना कर वह ऐसे सभी कार्य करा लेती है, जिनमें ज्ञानेन्द्रियों, कर्मेन्द्रियों की आवश्यकता पड़ती हो। 'पार्षद' का अर्थ है—समीपवर्ती। जो ईश्वरीय सत्ता की दिव्य विभूतियों को अपने में जिस मात्रा में ग्रहण-धारण कर लेते हैं, उन्हें भागवतसत्ता का उतना ही निकटवर्ती अथवा कृपापात्र माना जाता है। ऐसे ही लोगों को संसार संतुलन सही बनाये रखने वाले कार्य करने का आदेश-निर्देश उस निराकार सत्ता की ओर से मिलता है, जिन्हें वे पूरा कर भी दिखाते हैं। इस प्रक्रिया में दैवी शक्ति का सहयोग उन्हें मिलता रहता है। आभास ऐसा होता है, जैसे उसने स्वयं के पराक्रम से यह सब कुछ कर दिखाया है, पर वास्तविकता यह है कि इसमें बाजीगर और कठपुतली वाला खेल ही क्रियान्वित होता है। व्यक्ति माध्यम तो बनता है, पर शक्ति अदृश्य सत्ता की ही काम करती है।

मनुष्य की शक्ति बहुत सीमित है। उसका शरीर व बुद्धिबल भी नगण्य जितना है। साधन-सहयोग भी वह एक हद तक ही एकत्र कर सकता है। आकांक्षाओं और संकल्पों की पूर्ति परिस्थितियों पर निर्भर है। यदि संकट खड़े करने वाला विपरीत प्रवाह चल पड़े तो बने काम भी बिगड़ने लगते हैं। इसके विपरीत यदि परिस्थितियाँ अनुकूल होकर साथ देने लगें, तो ऐसा भी हो सकता है, जिसमें सरसों को पहाड़ बनने का अवसर मिले एवं **"मूक होहि वाचाल" और "पंगु चढ़हि गिरिवर गहन"** की रामायण उक्ति प्रत्यक्ष होती और लोगों को अचम्भित करती दिखाई पड़े।

भारत एवं विश्व के इतिहास में ऐसे कई मौके उपस्थित हुए है, जिसमें इस प्रकार के अद्भूत आश्चर्य होते दिखाई पड़े है। यदि कहीं इस प्रकार के चमत्कार दीख पड़ें, तो उनमें अदृश्य दैवी चेतना का ही हाथ समझा जा सकता है, भले ही प्रत्यक्ष रूप में श्रेयाधिकारी कोई व्यक्ति क्यों न बने।

थियोसाफिकल सोसाइटी के संचालकों ने भी इस तथ्य को स्वीकारते हुए यह प्रतिपादन विवेचन विस्तारपूर्व किया है कि हिमालय का हृदय समझे जाने वाले उत्तराखण्ड के देवात्मा क्षेत्र में सिद्ध संतों के सभासम्मेलन चलते रहते हैं। उनके निर्णय सदा अदृश्य सहायकों के माध्यम से क्रियान्वित होते हैं। इससे सामान्य जनों को जाने-अनजाने ऐसी सहायताएँ मिलती रहती हैं, जिन्हें वे स्वयं के पराक्रम से सम्पूर्ण जीवन में भी उपलब्ध नहीं कर सकते थे।

अदृश्य वातावरण में उपयोगी प्रवाह उत्पन्न करने एवं उसे झकझोरने के क्रम में महर्षि अरविंद का नाम लिया जा सकता है। स्वाधीनता संग्राम के दिनों में सूक्ष्म वातावरण को गर्म करने में उनने जो असाधारण भूमिका निभायी थी, उसे सूक्ष्मदृष्टा जानते हैं। उन दिनों भारत ने ऐसे कितने ही प्रबल पुरुषार्थी उत्पन्न किये, जैसे उदाहरण इतिहास के दूसरे कालों में देखने को नहीं मिलते हैं। स्वतन्त्रता प्राप्ति का प्रत्यक्ष श्रेय यों तो इस दौरान जूझने वाले सेनानियों और मार्गदर्शी नेताओं को ही जाता है, पर दिव्य दृष्टा महापुरुष यह समझ सकते हैं कि इसमें परीक्षा भूमिका महर्षि जैसे योगियों एवं महाकाल के परिवर्तनकारी दिव्य प्रवाह की ही रही है।

सन्त कबीर का अवतरण तत्कालीन समाज में संव्याप्त मूढ़-मान्यताओं और अन्ध परम्पराओं का खण्डन करने एवं विभिन्न सम्प्रदायों के बीच पारस्परिक सद्भाव बढ़ाने के निमित्त हुआ था। उन्होंने अपने जीवन काल में कितने ही लोगों को ऊँचा उठाया व आगे बढ़ाया। वे मुसलमानों से जितना सद्भाव रखते थे, उससे किसी भी प्रकार कम महत्त्व हिन्दुओं एवं अन्य धर्मावलम्बियों को नहीं देते थे। सभी के लिए उनके दिल में एक जैसा प्यार था। यह बात कट्टर मुसलमानों को बुरी लगी। वे नहीं चाहते थे कि इस्लाम वंश में पैदा होकर कबीर हिन्दू धर्म का प्रचार करें। उनमें से कुछ लोगों ने इसकी शिकायत तत्कालीन मुस्लिम बादशाह सिकन्दर लोदी से की। बादशाह ने कबीर को मृत्युदण्ड सुनाया। उन्हें लोहे की बेड़ी में कस कर बहती गंगा में फेंक दिया गया। कबीर डूबे, पर मरे नहीं। चमत्कार यह हुआ कि अन्दर जाते ही लोहे के बन्धन स्वतः टूट गये। वे बहते-बहते किनारे आ लगे। जब यह अद्भुत घटना बादशाह तक पहुँची तो वे अचम्भे में पड़ गये, बाद में क्षमा माँगी तथा धार्मिक एकता सम्बन्धी प्रचार करने की छूट दे दी। प्रस्तुत घटना में कबीर की जीवन-रक्षा अदृश्य सत्ता ने ही की थी, यही माना जायेगा।

विवेकानन्द ने अपने अनुभवों का उल्लेख करते हुए एक स्थान पर लिखा है कि—"अमेरिका में धर्म सभा एवं अन्य धार्मिक सम्मेलनों में जब मैं बोलने के लिए खड़ा होता था, तो आरम्भ में चिन्ता रहती थी कि क्या कुछ कह सकूँगा, पर जैसे ही बोलना आरम्भ करता था, तो ऐसा लगता था, मानो कोई दिव्य सत्ता जिह्वा पर सवार होकर बोलने के लिए प्रेरित कर रही है। तब मैं तन्द्रा की स्थिति में ऐसी ज्ञान की बातें करने लगता था, जिसकी जानकारी स्वयं मुझे भी नहीं होती थी। तब ऐसा प्रतीत होता था कि जीभ तो हमारी है, पर वाणी किसी और की।"

यह एक सुविदित तथ्य है कि उच्च उद्देश्यों के निमित्त तपस्वियों एवं देव सत्ताओं की कृपा-वर्षा, अनुदान-वरदान के रूप में सदा होती रहती है। गाँधीजी के प्रखर व्यक्तित्व के पीछे देवी अनुकम्पा ही थी। महामना मालवीय, हिन्दू विश्वविद्यालय की, हीरालाल शास्त्री वनस्थली बालिका विद्यालय की, श्रद्धानन्द गुरुकुल कांगड़ी की स्थापना जैसे महत् कार्य मात्र अपने पराक्रम के बलबूते नहीं, दैवी अनुदानों के सहारे ही पूरा कर सके। सुग्रीव, विभीषण, नरसी मेहता, सुदामा आदि को उच्च स्थिति प्राप्त कराने में भगवतसत्ता ही सहायक रही। भागीरथ द्वारा गंगा अवतरण एवं परशुराम द्वारा अनीति उन्मूलन में शिवजी का भारी योगदान था। हनुमान-जामवन्त आदि को इतिहास में अविस्मरणीय बनाने वाले भगवान राम ही थे। कुमारजीव, संघमित्रा, महेन्द्र आदि को बुद्ध ने वह सामर्थ्य प्रदान की थी, जिसके बल पर ही वे क्रमशः चीन एवं श्रीलंका में धर्मप्रचार में अग्रणी भूमिका निभा सके। समर्थ का प्रत्यक्ष और परोक्ष आशीर्वाद यदि शिवाजी को न मिला होता, तो वे

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

वह सब कुछ न कर पाते, जो कर गुजरे। उनकी भवानी तलवार के विषय में कहा जाता है कि यह उन्हें देवी की ओर से गुरु माध्यम से प्राप्त हुई थी। गुजरात के जलाराम बापा का अक्षय अन्न भण्डार भगवान के ही अनुदान-आशीर्वाद का प्रतिफल था।

अरविंद आश्रम की श्री माँ ने अपने जीवन चरित्र में इस बात का उल्लेख किया है कि जब वह छोटी-सी बालिका थीं, तभी से बराबर उन्हें ऐसा प्रतीत होता था, कि उनके पीछे कोई अतिमानवी शक्ति है, जो जब तब उनके शरीर में प्रवेश कर उनसे अलौकिक कार्य करा जाती है। उन्होंने लिखा है कि इसी दिव्य सत्ता ने उन्हें भारत आकर श्री अरविंद से सम्पर्क करने और शेष जीवन समाजोत्थान के कार्य में लगा देने का निर्देश किया था।

इन उदाहरणों से स्पष्ट है कि महान व्यक्ति के महान कार्य मात्र व्यक्तिगत पुरुषार्थ के बलबूते सम्भव नहीं होते, श्रेय, प्रदान करने वाली दैवी अनुकम्पा ही इनकी पृष्ठभूमि में काम करती है। पात्रता विकसित करके ही कोई भी सहज ही इन अनुदानों से लाभान्वित हो सकता है।

परम सत्ता के सन्देशवाहक देवदूतों के दिव्य दर्शन

देवदूत अनेक बार मनुष्यों को चेतावनी, सत्परामर्श, भविष्यवाणी बताते एवं मनुष्यों को अपने अदृश्य रूप का प्रत्यक्ष दर्शन कराते हैं। उनके बताये संकेतों पर चलकर कितने ही धर्मप्रेमी लाभ भी उठाते हैं। ऐसे घटनाक्रमों में से कुछ प्रामाणिक प्रसंग बहुचर्चित भी रहे हैं एवं कौतूहल के विषय भी।

यूरोप में दैवी सत्ता के अस्तित्व एवं उनके चमत्कारों पर विश्वास करने वाले सर्वाधिक व्यक्ति पाये जाते हैं। कुछ तथ्यान्वेषियों द्वारा पश्चिम जर्मनी के बर्लिन शहर में ५ वर्ष पूर्व किये गये पर्यवेक्षणों से पता चला है कि वहाँ की ५३ प्रतिशत जनता अलौकिक चमत्कारों पर पूरी तरह विश्वास करती है।

एक घटना १९४७ की है। ब्रेसिया (इटली) से पाँच किलोमीटर दक्षिण में 'मौन्टीकियारी' नगर में पैरिनागिली नाम की एक परिचारिका (नर्स) रहती थी। अचानक ही पैरिना की दृष्टि एक हवा में तैरती हुई महिला पर पड़ी। अस्पताल के प्रार्थना स्थल की ओर से आती इस अजनवी महिला की छाती पर तीन तलवारें गढ़ी हुई थीं। लेकिन खून का नामोनिशान तक नहीं था। इस भयावह दृश्य को देखकर साथ चल रहे अनेकों व्यक्ति चीख उठे और चीत्कार करते हुये इधर-उधर दौड़ते बने। पैरिना नहीं घबराई। अपने सत्साहस का परिचय देते हुये उस दिव्य प्रतिमा से उसके प्रकटीकरण का कारण पूछने लगी। प्रत्युत्तर में उस विलक्षण प्रतिमा ने बड़े ही दुःखद शब्दों में कहा कि तप, त्याग और प्रार्थना का व्रत जीवन में निरन्तर बना रहना चाहिए। इसका अभाव ही आज की विपन्न परिस्थितियों का मूल कारण है।

१३ जुलाई, १९४७ को यह घटता पुनः घटी। अब की बार तलवार के स्थान पर तीन फूल उसके पास थे। जिनका रंग सफेद, लाल और पीला था। पैरिना ने जब इस प्रेतात्मा से इस रहस्य के विषय में पूछा तो श्वेत वस्त्रधारी महिला ने बताया कि "मैं ईसा मसीह की ही नहीं वरन् जगत जननी हूँ। १३ जुलाई को हर वर्ष 'रोजा मिस्टिका' के रूप में मनाया जाना चाहिए जिससे लोगों में धार्मिकता की भावनाएँ जग सकें।" तब से निरन्तर यह दिन उसी रूप में मनाया जाता है।

रोगोपचार (फेथ हीलिंग) में भी इस दिव्यात्मा की भूमिका बड़ी ही विलक्षण रही है। अभी भी मौन्टीकियारी के निवासियों का ऐसा विश्वास है कि सामूहिक प्रार्थना के बल पर इस शक्ति का आह्वान करके अनेकानेक आधिव्याधियों से मुक्ति पाना सम्भव है। इस घटना के परिणाम स्वरूप रोम तथा इटली के लोगों ने सामूहिक उपासना तथा धर्मानुष्ठानों को जीवन का अति आवश्यक अंग मानते हुए अपनाया एवं अपने पूर्व जीवन-क्रम को आमूल-चूल बदला है।

स्पेन में आइबोरा नामक एक स्थान है। यहाँ पर स्मृति अवशेष के रूप में रखा हुआ एक रक्त रंजित वस्त्र आज भी लोगों की श्रद्धा का प्रतीक बना है। वर्ष में हर १६ अगस्त को यहाँ सामूहिक उपासना का क्रम चलता है। धर्मानुष्ठान का यह उपक्रम ईसवी शताब्दी १०१० से प्रचलित है। लोगों का अभिमत है कि यह वस्त्र किसी बलिदानी शहीद का है जो अपने धर्म की रक्षा हेतु प्राण न्यौछावर कर चुका है। जब सामूहिक उपासना का क्रम चलता है तो यह रक्त अचानक ही खौलने लगता है। घटनाक्रम की सत्यता का गहनता से अवलोकन करते हुये पोप चतुर्थ ने इसे सार्वजनिक साधना का केन्द्र घोषित किया। लोग बड़ी श्रद्धा से आते एवं यहाँ उपासना कर प्राण शक्ति लेकर जाते हैं।

"मिरेकल्स आफ दी गोडस्" के लेखक एरिक बॉन डैनीकेन ने विश्व के लगभग सभी तीर्थ स्थानों का बड़ी गहनता के साथ अवलोकन किया है। मिलान के दक्षिण में सैन डैमियानो एक ऐसा तीर्थ स्थल है जहाँ पर अभी भी सूर्य की देवी की उपासना का उपक्रम चलता है। जब पुरश्चरण की ध्वनि बड़े ही लयबद्ध ढंग से धीमे स्वर में यात्रियों को सुनाई देती है। लोगों का ऐसा विश्वास है कि सूर्य की देवी की उपासना से रोगोपचार में काफी सफलता मिलती है। वहाँ के पुरोहित अध्यात्म चिकित्सा को अत्यधिक महत्त्व देते हैं। प्रत्येक गुरुवार को 'मामा रोजा' जो वहाँ की प्रसिद्ध देवी समझी जाती है, उपस्थित श्रद्धालुओं को अभिनव प्रेरणा प्रदान करती है। १७ नवम्बर, १९७० को वहाँ उपस्थित सैकड़ों व्यक्तियों ने सूर्य-चिकित्सा से लाभ उठाया। इस घटना का उल्लेख 'औब्जरवेटरे रोमानो' में हुआ है।

जिन पुण्य आत्माओं ने अपने धर्म और संस्कृति की सुरक्षा हेतु अपने को बलिदान कर दिया उनकी प्रेतात्माएँ आज भी लोगों के लिए प्रेरणाप्रद बनी हुई हैं। २३ फरवरी, १२३९ को मुस्लिम सैनिकों ने स्पेन कोडोल पहाड़ी पर निवासरत पुरोहितों की हत्या कर दी और उन्हें अलग-अलग कपड़ों में बाँधकर फेंक दिया। दर्शकों का कहना है कि कोई भी दुराचारी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org

प्रवृत्ति का मनुष्य उनके दिव्य प्रकाश के पास जाते ही विकलाँगता का शिकार होता तथा बेहोश होकर गिर पड़ता है। डैरोका धर्मस्थल पर प्रतिष्ठापित इन छः पुरोहित सैनिकों की रक्तवेदी आज भी पूरे स्पेन के लोगों के लिए श्रद्धा का विषय बनी हुई है। प्रायश्चित करने एवं उपासना कृत्य अपनाने पर दुराचारियों को भी क्षमा मिल जाती है एवं थोड़ा कष्ट भुगतने के बाद वे स्वस्थ हो जाते हैं।

अपर एल्सेक (फाँस) में ट्रौइस—ऐपिस के निकट एक धार्मिक प्रवृत्ति के किसान की बड़े ही दर्दनाक ढंग से हत्या कर दी गयी। ३ मई, १४९१ को डैटर स्कोर नाम का एक लुहार वहाँ से गुजरा तो उसे नारी स्वरूप शक्ति का दिव्य दर्शन हुआ जिसके एक हाथ में श्वेत हिमवर्त्तिका तथा दूसरे हाथ में हरितिमा का प्रतीक अनाज की तीन बालियाँ थीं। उसका कहना था कि यदि अपराधों की गति ऐसी ही रही तो लोगों को प्राकृतिक प्रकोपों का शिकार बनना पड़ेगा। दुर्भिक्ष से लेकर अनेकानेक बीमारियाँ फैलेंगी। ट्रौइस-ऐपिस में ऐसा ही हुआ और वहाँ के लोगों को बड़ी ही मुसीबतों का सामना करना पड़ा। तभी से एल्सेक को वहाँ के एक सुप्रसिद्ध धर्म स्थल के स्वरूप में माना जाने लगा है। भारत की ही तरह वहाँ भी वार्षिक मेले लगते हैं एवं नित्य लोग दर्शन कर देवदूतों के सन्देश को दुहराते हुए संकल्प लेकर जाते हैं।

धार्मिक भावनाओं से ओत-प्रोत लोगों को ईश्वर ने प्रत्यक्ष रूप से अनुगृहीत किया है। जैसाकि अनेकों उदाहरणों से प्रकट होता है। फ्रांस में बैसकन नाम एक नगर है। ३ दिसम्बर, १७१२ को वहाँ के मैगाफोलिस नामक मन्दिर में एक घटना घटी। उस समय पुजारी के अतिरिक्त स्थानीय लोग भी १० हजार की संख्या में उपस्थित थे। उपस्थित जन समुदाय ने प्रातःकाल ९ बजे एक विशालकाय आकृति वाले मनुष्य को हवा में तैरते हुये देखा। उसने बड़ी तेजी के साथ तीन आवाजें निकाली "मनुष्यो, मनुष्यो, मनुष्यो ! तुम्हें अपनी रीति-नीतियों को सही ढंग से निर्धारित करना चाहिए। अन्यथा विपत्तियों का सामना करना पड़ सकता है।" दृश्य को देखने वालों का ऐसा विश्वास है कि यह दिव्य ज्योति कोई दिव्य चेतना का ही सन्देश पहुँचाने आई है। अपराधों में वृद्धि के परिणाम स्वरूप ही ऐसा हुआ है। भय से आक्रान्त होकर कुछ की मृत्यु तो तत्काल हो गयी। कुछेक ने अपनी सूझ-बूझ का परिचय देते हुए धार्मिक कृत्यों की परम्परा को पुनः आरम्भ कर दिया। घनघोर वर्षा तथा भूकम्प के कारण पूरा नगर नष्ट हो चुका था लेकिन तीन इमारतें सुरक्षित बच गयीं। जहाँ पर उक्त धर्मकृत्यों को पूरा किया गया। बैसकन में उस समय से ही अपनी चिर-पुरातन मान्यताओं को पुनः स्थापित करने हेतु उत्साहवर्द्धक प्रयास जारी हैं।

ये कतिपय उदाहरण दैवी सत्ता के अस्तित्व के परिचायक तो हैं ही, यह भी प्रमाणित करते हैं कि समय-समय पर परम सत्ता इनके माध्यम से जन-जन को चेतावनी देती है। यदि समय रहते अपनी जीवन पद्धति बदल ली जाय, आचरण में परिवर्तन लाया जा सके तो दैवी प्रकोपों से बचा एवं अन्यों को बचाया जा सकता है।

पालब्रिन्टन द्वारा गुप्त भारत की खोज

इंग्लैण्ड में जन्मे पाल ब्रिन्टन उन दिनों पत्रकारिता से सम्बन्धित कार्य करते थे पर उनका भारत के प्रति आकर्षण फिर भी कम नहीं हुआ। उन्होंने मनोविज्ञान और दर्शनशास्त्र पढ़ा ताकि अपनी अनवरत जिज्ञासा का वे आगे चलकर समाधान कर सकें। भारत की रहस्यमयी विभूतियों के सम्बन्ध में उनका अन्तःविश्वास, अध्ययन और जानकार व्यक्तियों से परामर्श मिलकर ऐसी मनः स्थिति उत्पन्न कर सके जिसे रोके रहना देर तक सम्भव न हो सका और वे इंग्लैण्ड में बिखरे हुए कार्यक्रमों को समेटकर भारत की लम्बी यात्रा पर निकले—गुप्त भारत की खोज के लिए।

उन्होंने दर्शनीय स्थानों, बड़े नगरों की ओर तनिक भी ध्यान न दिया वे परिचय सम्पर्क में आ सकने वाले योगियों का पता लगाते हुए सुदूर यात्राएँ करते रहे। उन्हें भेंट परामर्श करने और अनुकूलता की पृष्ठभूमि बनाने में काफी श्रम करना पड़ा। जिनके साथ उनकी भेंटें हुईं उनमें से कितने ही जादूगर थे या तान्त्रिक। उनका जीवन ठाट-वाट का था। कुछ चमत्कारी प्रदर्शन करने की स्थिति में थे और इसके बदले वे कुछ राशि चाहते थे। उस विद्या का, तत्त्व दर्शन, रहस्य या अभ्यास का विधान सिखाने के लिए तैयार न हुए। क्योंकि उनकी जड़ें खोखली थीं। वे केवल उथली हाथ की सफाई या मनोबल के प्रहार से छोटे-मोटे चमत्कार दिखाने की स्थिति में थे। पर वे चमत्कार ऐसे न थे जो कौतूहल उत्पन्न करने से आगे बढ़कर किसी व्यक्ति में परिवर्तन लाने या समाज की किसी समस्या का समाधान करने में समर्थ होते। जादू-चमत्कारों से तो केवल बाल-बुद्धि लोगों को अचम्भे में डाला जा सकता है। प्रबुद्ध व्यक्ति तो केवल एक ही बात परखता है कि इन आत्मिक कहे जाने वाले प्रयोगों में व्यक्ति विशेष को अचम्भे में डालने के अतिरिक्त उसे ऊँचा या वरिष्ठ बनाने की क्षमता है या नहीं। उनकी रुचि लोककल्याण में केन्द्रित हुई या नहीं और उसके निमित्त निजी प्रयत्नों से अथवा अपने भक्तजनों के सहयोग से कुछ किया या नहीं।

इस दृष्टि से उनकी यात्रा का पहला चरण उथला ही रहा। विभिन्न देशों से आने वाले जादूगर तो उनके देश में भी आते रहते थे और अपनी कला के सहारे आजीविका चलाते थे। उसी स्तर के कौतूहलों को देखने भारत नहीं आये थे जिनके बारे में उनने पहले ही बहुत कुछ देखा, सुना या पढ़ा था।

पाल ब्रिन्टन इसी स्तर के लोगों की प्रशंसा सुनाते भटकते रहे। कुछ ऐसे लोगों से भी मिलना हुआ जो दार्शनिक भूमिकाएँ विस्तारपूर्वक बता सकते थे पर उन्हें स्वयं कर दिखाने की स्थिति में न थे। बताया गया कि इसके लिए उन्हें हिमालय की खोज करनी पड़ेगी। व्यवहार जगत में तो योगी, तान्त्रिक और जादूगर ही अपनी प्रतिभा से भावुकजनों को प्रभावित कर सकते हैं। कठिनाई यह थी कि पाल ब्रिन्टन, दर्शन शास्त्र,

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

मनःशास्त्र और चमत्कारवाद की पृष्ठभूमि से पहले ही अवगत होकर इस देश में आये थे ताकि यथार्थता के बदले भ्रम जंजाल बटोर कर न ले आयें। उनने तथाकथित चमत्कारी व्यक्तियों के प्रश्नों की झड़ी लगाकर वस्तुस्थिति समझने की कोशिश की और चमत्कार दिखाने से पूर्व अपनी तलाशी देने का अनुरोध किया तो वे उसे अपना अपमान मान बैठे। वस्तुस्थिति यही थी जिसे भारत में बहु प्रचलित "चोर की दाढ़ी में तिनका" वाली उक्ति में व्यक्त किया गया है।

प्रसिद्ध पुरुषों में—पते ठिकाने वाले चमत्कारी लोगों से मिलकर उनने करामातें तो बहुत देखीं पर ऐसा कुछ न पाया जिससे आत्मवादियों में पाई जाने वाली व्यक्तित्व की महानता का भी परिचय उपलब्ध होता हो। ऐसों में उन्हें केवल एक ही व्यक्ति मिले। अरुणाचलम् के महर्षि रमण जो बालकों की तरह भोले और सज्जनों की तरह विनम्र थे। वे जो जानते थे उसे बताने में भी संकोच न करते थे। उनके साथ मनुष्यों से भी अधिक पशु-पक्षियों का भी परिवार रहता था जो नियत समय पर उनके दर्शन प्रवचन में बिना नागा उपस्थित होता और बिना लड़-झगड़ अपने-अपने नियत स्थान पर बैठता था।

इन खोज-प्रयासों में उन्हें वैसा अधिक मात्रा में न मिला, जिसके लिए वे प्रसन्न होते और सन्तोष लेकर वापस लौटते।

इसके उपरान्त उन्होंने जाना कि शरीर साधना करने वाले योगी ही जहाँ-तहाँ मिलेंगे। ऋषियों की तलाश करने के लिए उन्हें वहाँ जाना पड़ेगा जहाँ सर्वसाधारण की पहुँच नहीं होती। वे स्थान हिमालय की कन्दराएँ हैं। उपयुक्त वातावरण उन्हें उसी क्षेत्र में मिलता है। शीत की प्रधानता से उनकी लक्ष्य यात्रा सरल पड़ती है और कौतुकप्रिय लोगों के आवागमन से उनके कार्य में विक्षेप भी नहीं पड़ता। ऐसे एकान्तप्रिय व्यक्तित्व ऋषि कहलाते हैं। जब कि योगी अपने प्रदर्शन के लिए जन संकुल स्थानों में अपने अड्डे जमाते रहते हैं।

पाल ब्रिन्टन ने हिमालय क्षेत्र में प्रवेश किया और वहाँ की कन्दराओं में प्रवेश किया। इसमें व्यक्तिगत सम्पर्क ऐसा नहीं मिला जो उन्हें उपयुक्त स्थानों तक पहुँचा सके और उन ऋषि आत्माओं से मिला सके। यह कार्य उन्हें अपनी अन्तःचेतना को कम्पास मानकर उसकी संकेत सूचना के आधार पर दिशा निर्धारण करना पड़ा। कदाचित ही कभी कोई सहयात्री मिला। वह प्रथम अपरिचित प्रतीत होता था पर नियत स्थान तक पहुँचा देने की उनकी अनुकम्पा को देखते हुए प्रतीत हुआ कि वह अगाध उत्सुकता का समाधान करने में सहयोग देने की इच्छा से ही दूत भेजने का प्रयत्न योजनाबद्ध किया हुआ था।

पाल ब्रिन्टन की ऐसे कितने ही दिव्य पुरुषों से भेंट हुई पर आपका मौखिक रूप से कोई वार्तालाप न हो सका। इतने पर भी उन्हें अन्तःकरण में प्रेरणा प्रवाहों की अनुभूतियों का लाभ उठाते रहने के कारण यह अनुभव नहीं हुआ कि वे निस्तब्ध सुनसानों में बैठे हैं। क्षुधा निवारण के लिए उनका उपहार और रात्रि हो जाने पर रहने की सुविधा भी उन्हें उपलब्ध कराई जाती रही। इस यात्रा में उन्हें उस उत्कण्ठा का समाधान हो गया जिसके लिए वे इंग्लैण्ड छोड़कर कष्ट साध्य और खर्चीली यात्रा करने के लिये यहाँ आये थे।

पाल ब्रिन्टन की शोध सफल और सन्तोषजनक रही यों पूर्वार्द्ध में उन्हें विलक्षणता दिखाने वाले तथाकथित चमत्कारवादियों के फेर में पड़े रहकर यात्रा का प्रथम चरण अनावश्यक भ्रम जंजाल में भी बिताकर बर्बादी भी बहुत सहनी पड़ी।

पाल ब्रिन्टन अपनी यात्रा समाप्त करते समय अरुणाचलम् महर्षि रमण के आश्रम में अपना उत्साह बने रहने का आशीर्वाद माँगने फिर से गये और वह उन्हें मिल भी गया।

उन्होंने इंग्लैण्ड लौटकर अपने अनुभवों का वर्णन विवेचन करने वाली कितनी ही शोधपूर्ण पुस्तकें लिखीं हैं जिसके नाम हैं—(१) मैसेज फ्राम अरुणालचम्, (२) ए हरमिट इन द हिमालयाज्, (३) दि इनर रियलिटी, (४) दि हिडेन टीचिंग वियाण्ड योगः आदि प्रमुख हैं। इनका संसार की प्रमुख १२ भाषाओं में अनुवाद भी हुआ है।

इन पुस्तकों की भूमिकाएँ ऐसे लोगों ने लिखी हैं जो अपनी प्रामाणिकता और अध्यात्म विषयों की जानकारी के सम्बन्ध में पहले से ही प्रख्यात रहे हैं।

पाल ब्रिन्टन का भारत यात्रा के उपरान्त उत्साह ठण्डा नहीं हुआ। वरन् वे संसार के ऋषियों की स्थिति और विश्व की शान्ति एवं प्रगति के प्रयासों में लगे रहे। यों वर्णन उन्होंने उनका भी किया है जो लोगों का ध्यान अपनी ओर खींचने और सस्ता सम्मान पाने के लिए कुछ अद्भुत प्रपंच रचते रहते हैं।

अपने को जानें, साधें और भव-बन्धनों से छूटें

संसार में जानने को बहुत कुछ है। पर सबसे महत्त्वपूर्ण जानकारी अपने आप के सम्बन्ध की है। उसे जान लेने पर बाकी जानकारियाँ प्राप्त करना सरल हो जाता है। ज्ञान का आरम्भ आत्म ज्ञान से होता है, जो अपने को नहीं जानता वह दूसरों को क्या जानेगा?

आत्मज्ञान जहाँ कठिन है वहाँ सरल भी बहुत है। दूसरी वस्तुएँ दूर भी हैं और उनका सीधा सम्बन्ध भी अपने से नहीं है। किसी के द्वारा ही संसार में बिखरा हुआ ज्ञान पाया और जाना जा सकता है। पर अपना आपा सबसे निकट है, हम उसके अधिपति हैं—आदि से अन्त तक उसमें समाये हुए हैं, इस दृष्टि से आत्मज्ञान सबसे सरल भी है। शोध करने योग्य एक ही तथ्य है—आविष्कृत किये जाने योग्य एक ही चमत्कार है—वह है अपना—आपा। जिसे पाने के बाद और कुछ पाना शेष नहीं रह जाता।

बाहर की चीजों को ढूँढ़ने में मन इसलिए लगा रहता है, कि अपने को ढूँढ़ने के झंझट से बचा जा सके। क्योंकि जिस स्थिति में आज हम हैं उसमें अँधेरा दीखता है और अकेलापन। यह डरावनी स्थिति है। सुनसान को कौन पसन्द करता है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

खालीपन किसे भाता है। अपने को इस विपन्न स्थिति से परक है, स्वयं ही अपने को डरावना बना लिया है और उससे भयभीत होकर स्वयं ही भागते हैं। अपने को देखने खोजने और समझने की इच्छा इसी से नहीं होती और मन बहलाने के लिए बाहर की चीजों को ढूँढ़ते फिरते हैं कैसी है यह विडम्बना।

क्या वस्तुतः भीतर अँधेरा है ? क्या वस्तुतः हम अकेले और सूने हैं ? नहीं प्रकाश का ज्योति-पुंज अपने भीतर विद्यमान है और एक पूरा संसार ही अपने भीतर विराजमान है। उसे पाने और देखने के लिए आवश्यक है कि मुँह अपनी ओर हो। पीठ फेर लेने से तो सूर्य भी दिखाई नहीं पड़ता और हिमालय तथा समुद्र भी दीखना बन्द हो जाता है। फिर अपनी ओर पीठ करके खड़े हो जायें तो शून्य के अतिरिक्त और दीखेगा भी क्या ?

बाहर केवल जड़ जगत है। पंच भूतों का बना हुआ निर्जीव। बहिरंग दृष्टि लेकर तो हम मात्र जड़ता ही देख सकेंगे। अपना जो स्वरूप आँखों से दीखता है कानों से सुनाई पड़ता है जड़ है। ईश्वर को भी यदि बाहर देखा जायेगा तो उसके रूप में जड़ता या माया ही दृष्टिगोचर होगी। अन्दर जो है वही सत् है। इसे अन्तर्मुखी होकर देखना पड़ता है। आत्मा और उसके साथ जुड़े हुए परमात्मा को देखने के लिए अन्तर्दृष्टि की आवश्यकता है। इस प्रयास में अन्तर्मुखी हुए बिना काम नहीं चलता।

स्वर्ग, मुक्ति, सिद्धि, शान्ति आदि विभूतियों की खोज में कहीं अन्यत्र जाने की जरूरत नहीं है। बाहर भरी हुई जड़ता में चेतना कैसे पाई जा सकेगी। जिसे ढूँढ़ने की प्यास और पानी की चाह है वह तो भीतर ही भरा पड़ा है। जिसे कुछ मिला है यहीं से मिला है। कस्तूरी वाला हिरन तब तक उद्विग्न और अतृप्त ही फिरता रहेगा जब तक कि अपने ही नाभि केन्द्र में कस्तूरी की सुगन्ध सन्निहित होने पर विश्वास न करेगा, बाहर जो कुछ भी चमक रहा है सब अपनी आँखों का प्रकाश प्रतिबिम्ब मात्र है।

श्रुति कहती है—अपने आपको जानो अपने को प्राप्त करो और अमृतत्व में लीन हो जाओ। उसी को ऋषियों ने दुहराया और तत्त्वज्ञानियों ने उसे ही सारी उपलब्धियों का सार कहा है। क्योंकि जो बाहर दीख रहा है वह भीतरी तत्त्व का ही विस्तार है। अपना आपा जिस स्तर का होता है संसार का स्वरूप भी वैसा ही दीखता है। बाहर हमें जैसा देखना पसन्द हो उसे भीतर से खोज निकालें। यही अन्वेषण की चरम सीमा है।

दुःख, दारिद्रय, शोक, सन्ताप और अभाव, उद्वेग का निवारण करने के लिए इन अनात्म तत्त्वों की अन्तरङ्ग में जमी हुई जड़ों को खोदना पड़ेगा। भीतर का दीपक जलने पर ही बाहर फैले हुए अन्धकार का समाधान होगा। जो कुछ हमारे लिए अभीष्ट और आवश्यक है उसकी समस्त सम्भावनायें अपने भीतर सुरक्षित रखी हुई हैं। आवश्यकता उन्हें प्रयोग करने की है। अपने आपे का प्रयोग करना यदि हमें आया होता तो हम दूसरे ईश्वर बन सकने में समर्थ होते। अपने को खोकर हमने खोया ही खोया है। बाहर ढूँढ़ने में जीवन गँवा डाला, पर मिला कुछ नहीं, मिलता तब जब बाहर कुछ होता।

अनात्म तत्वों की जो गन्दगी भीतर भर गई है उसे निकाल दें तो शेष वही रह जाता है जो हमारा स्वरूप है। कुछ पाने के लिए कुछ खोने के लिए तप साधन किये जाते हैं। आत्मा तो स्वयं उपलब्ध ही है। उसे पाने के लिए कुछ करना नहीं है। करने की बात इतनी ही है कि जो अनुपयुक्त और अवांछनीय अपने भीतर भर लिया है उसे निकाल कर फेंक दें। यह परिशोधन ही उपलब्धि का निमित्त बन जाता है।

किसी तत्ववेत्ता से जिज्ञासु ने पूछा—गुरुदेव, तप साधना से आपने क्या पाया ? उन्होंने उत्तर दिया—खोया बहुत पाया कुछ नहीं। जिज्ञासु ने आश्चर्य से पूछा—ऐसा क्यों ? ज्ञानी ने कहा—जो पाने लायक था वह तो पहले से ही प्राप्त था। जो खोने लायक विषय, विकार और अज्ञान, अन्धकार के अनात्म तत्व भीतर घुस पड़े थे, उन्हें साधना ने निकाला भर है। इस तरह साधक—साधना में खोता ही खोता है पाता कुछ नहीं हम स्वप्न खोते हैं तब सत्य पाते हैं।

रोवर गोडल ने अपनी पुस्तक 'दी कन्टेन्योटेरी साइन्सेज एण्ड दी लिबरेटिव एक्सपीरियेन्स ऑफ योग' में लिखा है—'मनुष्य के यह जानने से पहले कि वह वास्तव में क्या है, अब तक के जाने हुए को भूलना होगा। वर्तमान नकारात्मक मान्यताओं के कारण मानव अपने भीतर स्थूल अहंवाद के साथ जुड़ी हुई मिथ्या मान्यताओं से ही परिचित हो पाया है। आत्मिक प्रगति के लिए हमें आत्मबोध का प्रशिक्षण आरम्भ से ही करना होगा। क्योंकि उन तथ्यों को जिन पर आत्मोन्नति निर्भर है एक प्रकार से हमने भुला ही दिया है।'

कालिदास ने कहा है—अपने को जानने का प्रयत्न करो। अपने स्वरूप को समझो और जिस लिये जन्मे हो उस पर विचार करो। तुम्हें दिशा मिलेगी और सही दिशा में कदम उठ गये तो वह प्राप्त करके रहोगे जिसके पाये बिना अपूर्णता और अतृप्ति घेरे ही रहेगी।

स्वामी विवेकानन्द ने एक कथा सुनाई—एक तत्व ज्ञानी अपनी पत्नी से कह रहे थे, सन्ध्या आने वाली है, काम समेट लो। एक सिंह कुटी के पीछे यह सुन रहा था उसने समझा सन्ध्या कोई बड़ी शक्ति है, जिससे डर कर यह निर्भय रहने वाले ज्ञानी भी अपना सामान समेटने को विवश हुए हैं। सिंह चिन्ता में डूब गया और उसे सन्ध्या का डर सताने लगा।

पास के घाट का धोबी दिन छिपने पर अपने कपड़े समेट कर गधे पर लादने की तैयारी करने लगा। देखा तो गधा गायब। उसे ढूँढ़ने में देर हो गई। रात घिर आई और पानी बरसने लगा। धोबी को एक झाड़ी में खड़खड़ाहट सुनाई दी समझा गधा है। सो लाठी से उसे पीटने लगा—धूर्त यहाँ छिपकर बैठा है। सिंह की पीठ पर लाठियाँ पड़ीं तो उसने समझा यही सन्ध्या है सो डर से थर-थर काँपने लगा। धोबी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

उसे घसीट लाया और कपड़े लाद कर घर चल दिया। रास्ते में एक दूसरा सिंह मिला उसने अपने साथी की दुर्गति देखी तो पूछा—यह क्या हुआ? तुम इस प्रकार लदे क्यों फिर रहे हो। सिंह ने कहा—"सन्ध्या के चंगुल में फँस गये हैं वह बुरी तरह पीटती है और इतना वजन लादती है।"

सिंह को कष्ट देने वाली सन्ध्या नहीं उसकी भ्रांति थी जिसके कारण धोबी को कोई बड़ा देवदानव समझ लिया गया और उसका भार एवं प्रहार बिना सिर हिलाये स्वीकार कर लिया गया। हमारी यही स्थिति है अपने वास्तविक स्वरूप को न समझने और संसार के साथ—जड़ पदार्थों के साथ अपने सम्बन्धों का ठीक तरह ताल-मेल न मिला सकने की गड़बड़ी ने ही हमें उन विपन्न परिस्थितियों में धकेल दिया है जिनमें अन्धकार के अतिरिक्त और कुछ दीखता ही नहीं। इस भ्रान्ति को ही माया कहा गया है। माया को ही बन्धन कहा गया है और दुःखों का कारण बताया गया है। यह माया और कुछ नहीं वास्तविकता से अपिरिचित रखने वाला अज्ञान ही है।

गीता में माया की व्याख्या और प्रतिक्रिया समझाते हुए भगवान ने कहा है।

अज्ञानेनावृत्तं ज्ञानं तेन मुह्यन्ति जन्तवः।

ज्ञान अज्ञान के द्वारा ढक दिया गया है, इस कारण सब प्राणी मोह को प्राप्त होते हैं।

नाहं प्रकाशः सर्वस्य योगमाया समावृतः।

अपनी योग माया से ढके हुए होने के कारण मैं सबके लिए दृश्य नहीं हूँ।

दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया।

तीन गुणों से युक्त इस मेरी माया को पार करना बड़ा कठिन है।

शरीर को आत्मा समझ बैठने—शरीर के सुख-दुःख, हानि-लाभ और संयोग-वियोग को आत्मा पर घटित हुई मान लेने से मनुष्य दुःखी होता है, उपलब्धियों की अपेक्षा यदि अपना ध्यान आत्मा के निर्मल निर्विकार स्वरूप में बना रहे और जीवकोद्देश्य की पूर्ति के लिए कर्त्तव्य कर्मों को करते रहने एवं दिव्य विचारों में रमण करने की प्रवृत्ति अपना ली जाये तो न दुःख की गुंजायश रहे न शोक की। अपने को आत्मा बना इस संसार को परमेश्वर का स्वरूप मानकर परमात्मा के लिए आत्मा द्वारा प्रस्तुत किये जाने वाले अनुदानों—कर्त्तव्य कर्मों को अपनाते हुए जीवन यात्रा पूरी करने लगे तो सारे दुःख दूर हो जायें जिन्हें अज्ञानता के कारण मायाबद्ध जीव पग-पग पर भुगतता रहता है।

आत्म-साधना के तीन चरण

मानवीय अस्तित्व को तीन भागों में बाँट सकते हैं— (१) स्थूल, (२) सूक्ष्म, (३) कारण। अध्यात्म शास्त्र में इन्हें ही मनुष्य के तीन शरीर कहा गया है। केले के तने की तरह अथवा प्याज की तरह-परत-दर-परत उधेड़ते जाने पर हमें रक्तमाँस निर्मित स्थूल शरीर के भीतर सूक्ष्म शरीर और उसके भी भीतर कारण-शरीर का बोध होता है। मानो शरीर के ऊपर क्रमशः बनियान, कुर्त्ता, जाकेट पहन रखा गई हों।

स्थूल शरीर माँ के पेट से प्रारम्भ होकर शमशानघाट में समाप्त हो जाता है। इहलौकिक क्रियाकलापों का यही माध्यम है। खाने, सोने, चलने, रोटी कमाने, शुभ-अशुभ कर्म करने, इन्द्रिय-सुख भोगने आदि के प्रयोजन इसी शरीर से पूरे होते हैं।

सूक्ष्म शरीर चिन्तन-मनन, आकांक्षा, अभिरुचि आदि मानसिक गतिविधियों का केन्द्र व माध्यम है। इसका प्रधान कार्यस्थल मस्तिष्क ही है, यद्यपि सामान्यतः यह पूरे स्थूल शरीर में उसी तरह व्याप्त है, जैसे दूध में घी।

तीसरा कारण-शरीर आत्मा के अति समीप है तथा उच्चस्तरीय दिव्य भावनाओं का आधार है। दया, प्रेम, कर्त्तव्यनिष्ठा, संयम, करुणा, सेवा-धर्म, कोमल संवेदनादिक उच्चभाव इसी में उठते रहते हैं। जो लोग क्रूरता और दुष्टता में ही परिपक्व हो जाते हैं, उनका कारण शरीर भी क्रूरचेष्टाओं हेतु सहमत हो जाता है।

साधना का अर्थ है इन तीनों ही शरीरों की समुचित साज-सम्हाल और उत्कर्ष की व्यवस्था। साधना की दिशा में प्राथमिक पग है—उपासना। भजन-पूजन, जप-ध्यान, व्रत-उपवास आदि उपासना—अभ्यास मन की प्रवृत्ति को पदार्थपरकता से चेतना की ओर मोड़ते हैं। विश्वव्यापी चेतना के स्मरण और सानिध्य की अनुभूति की आकांक्षा जागृत हो जाने पर मनोवृत्तियों का वासना और तृष्णा की दिशा में भटकाव, समय, शक्ति और पुरुषार्थ का भयानक दुरुपयोग प्रतीत होने लगता है। तब मनःशक्ति को संयमित कर परमार्थ में नियोजित करने की प्रवृत्ति दृढ़ होती जाती है। यही साधना है। उपासना दिन के एक छोटे से अंश में, निश्चित समय तक की जाती है, साधना एक अविच्छिन्न प्रक्रिया है। वह पूरे जीवन का ही नाम है। साधनामय जीवन आन्तरिक पवित्रता को निखारता जाता है और ईश्वरीय प्रकाश का दिव्य दर्शन कराता है। मानवीय व्यक्तित्व में देवत्व के अवतरण की यही प्रक्रिया है।

साधना के दो वर्ग हैं—(१) विशिष्ट लोगों की—विशिष्ट प्रयोजन हेतु विनिर्मित विशिष्ट प्रक्रिया। (२) सर्वसाधारण के लिए सहज सुगम सौम्य-पद्धति।

विशिष्ट प्रक्रियाएँ असाधारण मनोबल-सम्पन्न, कठोर तपश्चर्या के लिए समुद्यत, सांसारिक उत्तरदायित्वों से निवृत्त लोगों—योगी, यती, एकान्तवासी लोगों के लिए हैं। हठ रोग, षटचक्र वेधन, कुण्डलिनी जागरण, लययोग, ऋजुयोग, प्राणयोग आदि की साधनाएँ इसी वर्ग की हैं। पर यह मार्ग अत्यन्त कठिन है। भूल होने पर इस राह में खतरे ही खतरे हैं। निश्चय ही इसमें ऋद्धि-सिद्धि प्राप्त होती है। पर उन उपलब्धियों से चमत्कार-प्रदर्शन द्वारा लोगों को विस्मित—चकित कर देने की बात—आकांक्षा मात्र अहंकार ही बढ़ाती हैं। सिद्धियों द्वारा किसी का तात्कालिक कष्ट निवारण भी सम्भव है और उसमें

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

थोड़ा बहुत आत्मसन्तोष भी प्राप्त हो जाता है। लेकिन यह मार्ग है जोखिम भरा ही।

चमत्कारों के लोभ से इस राह पर चल पड़ने वाले अधिकांश साधक साधना-पथ की कठिनाइयों और लम्बाई से निराश होकर या तो विरत हो जाते हैं या फिर अपनी असफलता की झेंप मिटाने के लिए धूर्तता के द्वारा लोगों को चमत्कृत करने का निकृष्ट व्यवसाय अपनाकर स्वयं भी पतित होते और दूसरों को भी गड्ढे में धकेलते हैं। मात्र असामान्य साहसी व्यक्ति ही इस मार्ग में बढ़ सकते हैं, सो भी विशिष्ट परिस्थितियाँ बन पड़ें तभी।

सौम्य साधना पद्धति का राजमार्ग सर्वसाधारण के लिए सुगम है। आजीविका-उपार्जन तथा सामान्य गृहस्थ जीवनयापन करते हुए इस साधना क्रम को अपनाया जा सकता है। इस पथ पर सहज ही गतिशील रहा जा सकता है। इसीलिए शास्त्रकारों और ऋषियों ने सर्वसाधारण को इसी पथ के अवलम्बन हेतु प्रात्साहित किया है। इस मार्ग द्वारा जादूगरी जैसे चमत्कार भले न प्राप्त हो, पर नर को नारायण की स्थिति तक पहुँचा देने का वास्तविक चमत्कार निश्चित ही सम्भव है।

इस सौम्य साधना पद्धति द्वारा स्थूल, सूक्ष्म, कारण तीनों शरीरों का संस्कार-परिष्कार, परिमार्जन और परिवर्द्धन किया जाता है। इसके तीन प्रयोग हैं—(१) कर्मयोग, (२) ज्ञानयोग, (३) भक्तियोग। तीनों की सुसन्तुलित क्रियापद्धति का अवलम्बन ही श्रेयस्कर है। श्रीमद्भगवद्गीता में इसी का प्रक्रिया विवेचन है। धर्मशास्त्रों का विशालकाय-कलेवर भी इसी त्रिविध तत्वज्ञान की विवेचना में ही खड़ा किया गया है। अपनी विचारपद्धति, कार्यपद्धति और भावस्थिति में यदि इन आस्थाओं का समुचित समावेश कर लिया जाये, तो हम अपनी असह्य यन्त्रणा की वर्तमान मनोभूमि से मुक्त होकर इसी शरीर से अपने जीवन में देवत्व के अभ्युदय की अनुभूति कर सकते हैं। देश, काल, पात्र की स्थिति के अनुरूप साधनाओं को मूल उद्देश्य सुरक्षित हुए कार्यपद्धति में सामयिक हेर-फेर किये जाते रहे हैं और किए जाने ही चाहिए। सृष्टि के आरम्भ से आज तक समय-समय पर ऋषियों ने इसी त्रिविध साधना का—विभिन्न विधिविधानों के रूप में, अपने समय के साधकों की मनोभूमि तथा सामाजिक परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए मार्ग-निर्देश किया है। इस क्रिया-विधान में कर्मयोग, भक्तियोग एवं ज्ञान-योग तीनों का इस ढंग से समावेश किया गया है कि व्यक्ति के तीनों शरीर परिपुष्ट होते चलें और समाज में विकास के पुण्य-प्रयोजन का भी कार्य होता चले।

कर्मयोग की आधारशिला है प्रातःकाल आँख खुलते ही चारपाई पर पड़े-पड़े 'हर दिन नया जन्म, हर रात नई मौत' की विचारणा—प्रक्रिया को अपनाना तथा प्रस्तुत दिन के सर्वोत्तम सदुपयोग की तैयारी कर निश्चित कार्यक्रमों-गतिविधियों एवं विचार-प्रक्रिया का निर्धारण। सम्पूर्ण दिन मन में किस स्तर की भावनाएँ किस काम के साथ संयोजित की जायेंगी, यह भी निश्चित कर लेना अनिवार्य है। दिन भर इसी निर्धारण का दृढ़ता से पालन सामान्य जीवन क्रम को ही कर्मयोग की साधना का फल प्रदान करेगा।

फिर रात्रि में शयन पूर्व बिस्तर पर पहुँचते ही दिन की गतिविधियों का लेखा-जोखा कर सफलताओं के लिए ईश्वर को धन्यवाद देना तथा भूलों के लिए सच्चे पश्चात्ताप के साथ क्षमा प्रार्थना कर, पूर्ण निश्चिन्तता के साथ, शान्तिपूर्वक माता निद्रादेवी की गोद में सो जाना।

कर्मयोग की इस साधना के साथ ही ज्ञानयोग की साधना भी जुड़ी है। उस हेतु मन में उत्कृष्ट विचारों का अनवरत समावेश आवश्यक है। प्रेरक स्वाध्याय ही इसका मार्ग है। रूढ़िवादी रीति से किन्हीं पुरानी, किस्से कहानी जैसी किताबों का वासी रहना घोटना स्वाध्याय नहीं। व्यावहारिक जीवन में आदर्शवादिता एवं उत्कृष्टता की दिशा दिखलाने वाला स्वाध्याय ही आवश्यक है और उसे दैनिक जीवन का एक नित्य कर्म मानकर किया ही जाना चाहिए। व्यक्ति एवं समाज के नव-निर्माण हेतु उपयोगी उत्कृष्ट साहित्य के दैनन्दिन स्वाध्याय के लिए समय अनिवार्यतः निकालना ही चाहिए।

यह हुई ज्ञान-योग की निजी साधना। इसे ज्ञान-यज्ञ का रूप देना चाहिए। समाज में सद्विचारों का सर्वाधिक अभाव है। विश्वव्यापी शोक-सन्ताप का यही कारण है। जनमानस का स्तर परिवर्तित करने पर ही दुःख दारिद्रय की प्रचण्ड आग बुझेगी। विचारक्रान्ति आज की सर्वोपरि आवश्यकता है। ज्ञान-यज्ञ इसी आवश्यकता की पूर्ति करने वाला महान अभियान है। एक घण्टा समय और दस पैसा नित्य खर्च करना देखने में तो एक छोटा ही काम है, पर उसका सम्मिश्रित परिणाम अत्यधिक है, युग-परिवर्तन का वह एक सशक्त माध्यम है। साधक का आत्मकल्याण एवं विश्वकल्याण दोनों ही ज्ञान-यज्ञ द्वारा सहज सम्भव हैं।

भक्तियोग का अर्थ है अन्तरात्मा में दिव्यभावनाओं का अनवरत प्रवाह। परम ब्रह्म से अपने अनन्य प्रेम का स्मरण, तादात्म्य की प्रचण्ड अनुभूति और जघन्य उभयपक्षीय प्रभु-हिलोर की प्रखर अनुभूति का स्मरण-अभ्यास अवरुद्ध आन्तरिक रसस्रोता को पुनः मुक्त करता है। इन गहरे प्रेमस्रोतों का प्रांजल प्रवाह सम्पूर्ण परिवेश में सरसता, सामञ्जस्य तथा प्रफुल्लता की वृद्धि करता है। सच्चा प्रेमी—सच्चा भक्त मात्र ईश्वरीय ध्यान-छवि को प्यार नहीं करता अपितु—ब्रह्माण्ड में सव्याप्त ईश्वरीय सत्ता से—प्राणिमात्र से—अनन्य आत्मीयता भरा प्रेम सम्बन्ध प्रस्थापित कर लेता है। यह तादात्म्य—भावना पग-पग पर करुणा, उदारता, सद्भावना, सहृदयता, सहानुभूति, सेवा, सज्जनता के रूप में कार्यरूप में प्रकट परिणत होती रहती है। ईश्वर भक्त परिग्रही या स्वार्थी कैसे हो सकता है ? उसके लिए तो एक ही मार्ग है—अपनी समस्त उपलब्धियों को विश्वमानव के चरणों में व्यवहारतः समर्पित कर देना। इससे कम में कभी भी ईश्वरीय अनुकम्पा प्राप्त भी नहीं हो सकती। लोकमंगल में अपना सर्वस्व समर्पण करने वाला परमार्थ—परायण व्यक्ति ही सच्चा ईश्वर भक्त कहा जा सकता

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

है। अपने परिवार का पालन भी वह इसी भावभूमि के आधार पर ही करता है सभी लोगों के साथ उसके व्यवहार का भी यही आधार होता है। वासना-तृष्णा से सर्वथा रहित, निर्मल-निश्चिन्त अन्तःकरण वाला व्यक्ति ही, भक्ति योग का अधिकारी है। शबरी, मीरा, सूर, तुलसी आदि भक्तों ने तथा सभी ऋषि मुनियों ने इसी भावभूमि पर पहुँच कर ईश्वर दर्शन—आत्म साक्षात्कार का परमानन्द प्राप्त किया था और सभी दूसरों के लिए भी वही राजमार्ग खुला है।

बनियाइन-कुर्त्ता-जाकेट पहने हुए कोई भी व्यक्ति अपना शरीर नहीं देख सकता। आत्मा भी इसी तरह तीन आवरणों में बन्द है इस आवरणों को खोलने के लिये जप, तप ध्यान, मुद्रा, आसन प्राणायाम प्रत्याहार आदि का इतना विशाल क्षेत्र खड़ा कर दिया है कि प्रत्येक स्थिति का व्यक्ति, हर परिस्थिति और वातावरण का निवासी उनमें से अपने अनुकूल साधना विधान चयन कर आत्मा प्रभूति के मार्ग में चल पड़ सकता है तो भी साधना का मार्ग अति दुष्कर है इसे समर अर्थात् मुँह की संज्ञा दी गई है युद्ध में लोग विजयी ही नहीं होते पराजित भी होते हैं और मृत्यु के घाट भी उतर जाते हैं अतः योद्धागण आत्म-सुरक्षा की ढाल लेकर ही मैदान में उतरते हैं। अपने अनुसार साधना उपासना का निर्धारण हर किसी से सम्भव नहीं होता अतएव योग्य मार्गदर्शन की आवश्यकता पड़ती है जो समय-समय पर उस मार्ग में आने वाली अड़चनों का समाधान करते रहें जिन्हें इस तरह का सुयोग मिल जाये उन्हें मनुष्य शरीर देने के बाद इसे परमात्मा का दूसरा अनुग्रह समझना चाहिये।

किन्तु सामान्यतः योग्य मार्गदर्शन का मिलना कठिन कार्य है। इस युग में तो धर्म के नाम पर सिवाय जनश्रद्धा के दोहन और साधनाओं के नाम पर एक दो आसन प्राणायाम सिखाकर जिज्ञासु साधक का धन हड़प लेने की युक्ति ही योग साधना स्थलों में दिखाई देती है। इन दुर्भाग्यों से बचाने के लिये ही ब्रह्मवर्चस की स्थापना की गई है समय-समय पर यही आत्मबोध की साधनाओं का प्रशिक्षण चलता रहता है किन्तु वह हर व्यक्ति के लिये सुलभ हो यह आवश्यक नहीं इसी कारण इन पंक्तियों में नितान्त सरल और सुविधाजनक आत्म-बोध साधना दी गई थी यह साधारण दीखने वाली आत्मबोध साधना वस्तुतः यदि सच्चे मन से कर ली जाये तो उतने से ही लोग अन्तरंग की अनुभूति कर सकते और मनुष्य जीवन की सार्थकता सिद्ध कर सकते हैं।

कर्मयोग द्वारा स्थूल शरीर का परिष्कार ज्ञानयोग द्वारा सूक्ष्म की अनुभूति करते हुये भक्ति श्रद्धा और निष्ठा विकसित कर हर कोई कारण शरीर आत्मा का अन्तःदर्शन कर सकता है। उस स्थिति में मिलने वाली शान्ति, प्रसन्नता, आत्मबल और आत्म विभूति की तुलना में संसार में बड़े-से-बड़े भौतिक सुख तुच्छ ही ठहरते हैं। हम शरीर नहीं आत्मा हैं शरीर का ही नहीं आत्मा को भूलें कहीं इसी में अपना समाज और समूची मानवता का कल्याण सन्निहित है।



Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org

ऋद्धि-सिद्धियों का स्वरूप व उनका जागरण

ऋद्धि-सिद्धियों का रहस्योद्घाटन अपने ही अन्तराल में

विश्व संरचना से सृष्टा ने अणु और विभु का—लघु और विशाल का जोड़ा बनाकर रखा है। सौरमण्डल विभु है और परमाणु का अन्तराल लघु दोनों के बीच असाधारण साम्य है आकार का अन्तर होते हुए संरचना और कार्यपद्धति की दृष्टि से दोनों की सत्ता एवं स्थिति प्रायः एक ही स्तर की है। विराट् ब्रह्माड विभु है सौरमण्डल लघु। ब्रह्माण्ड में असंख्य सौरमण्डल हैं उनकी अन्तःव्यवस्था जिस क्रम से चलती है। एक सौर मण्डल दूसरे के साथ किस प्रकार बँधता और आदान-प्रदान करता है उसका विस्तृत क्रियाकलाप यदि छोटे रूप में देखना हो तो सौरपरिवार की सीमा में बँधे हुए ग्रह-उपग्रहों की अन्तःव्यवस्था को देखकर तथ्यों का अनुमान लगाया जा सकता है।

समाज एवं राष्ट्र की स्थिति क्या होती है और उसके सामने क्या समस्या रहती हैं—उनका समाधान कैसे होता है उसका संक्षिप्त संस्करण परिवार है। इस छोटे से दायरे में वह सब कुछ देखा समझा जा सकता है जो राष्ट्र का सुविस्तृत पर्यवेक्षण करने पर उपलब्ध होता है। समुद्र का छोटा नक्शा तालाब है। दोनों के बीच गहराई और परिधि का अन्तर तो भिन्न है, पर क्रियाकलाप और स्वरूप एक है।

प्रकृति पदार्थों की तरह ही लघु और विभु की व्यवस्था प्राणि जगत में भी चलती है। समूची काया जिन नियम बन्धनों में बँधकर अपना निर्वाह करती है, उन्हीं विधानों का अनुकरण काया का छोटा घटक 'जीवकोष' अपने अन्तःक्षेत्र में करता है। परमाणु की ही तरह जीवकोष के भीतर भी एक सुविस्तृत संरचना है। उसके भीतर चल रहे क्रियाकलापों का निरीक्षण किया जाय तो प्रतीत होगा कि वह छोटी-सी इकाई अपने भीतर एक समूची जीवन व्यवस्था सँजोये बैठी है और उसके इतने ही वर्ग विभाजन हैं जितने की बड़े रूप में शरीर के अंग अवयवों के रूप में देखे एवं पाये जाते हैं। संक्षेप में जीवकोष एक शरीर है। जिस प्रकार अनेक मनुष्य मिलकर एक समाज बनाते हैं और किसी व्यवस्था में बँधकर समाज संगठन के रूप में अपना क्रियाकलाप चलाते हैं, उसी प्रकार जीवकोष भी अपने असंख्य साथियों को एक सहयोगी समाज बनाये हुए हैं। इन छोटे जीवकोष सदस्यों के बीच एक परिपूर्ण समाज व्यवस्था है और नियम बन्धन तथा आदान-प्रदान का ठीक वैसा ही उपक्रम बना हुआ है जैसा कि मनुष्य-मनुष्य के बीच सुव्यवस्थित समाज व्यवस्था के अन्तर्गत पाया जाता है।

बीज में वृक्ष की समग्र सत्ता मौजूद है और शुक्राणु में परिपूर्ण मानवी काया का अस्तित्व है। ज्वाला और चिन्गारी में गुण, धर्म का असंदिग्ध साम्य है। विस्तार की बात दूसरी है।

मानवी सत्त में प्रकृति कलेवर और चेतना का अस्तित्व घुला मिला है। दोनों के संयोग से मनुष्य का अस्तित्व बनता है। प्रकृति और पुरुष के बारे में भी यही बात है। दोनों के मिलने से विराट् ब्रह्म बनता है। यदि उसका स्वरूप देखा जा सके तो प्रायः वैसा ही होगा जैसा जीवधारी का कलेवर है। उस विराट् को यदि कोई दिव्यदर्शी देख पाये तो उसे अपने निजी अस्तित्व के समतुल्य ही दिखाई देगा। मनुष्य को विराट् की झाँकी मनुष्य के रूप में और पशु-पक्षियों को उन्हीं की आकृति में दृष्टिगोचर होगा, जब शरीर और प्राण अलग होते हैं तो मृत्यु की स्थिति आती है। जब प्रकृति और पुरुष अलग होते हैं तो महाप्रलय की स्थिति आती है और समस्त दृश्यमान अपना स्थूल विस्तार समेटकर शक्ति-सत्ता में विलीन हो जाता है। जन्म-मरण प्राणियों का भी होता है और प्रकृति-पुरुष भी इसी क्रम में संयुक्त-वियुक्त होकर प्रलय एवं सृजन का खेल-खेलते रहते हैं।

चेतना स्तर पर मुनष्य की जीव सत्ता ब्रह्म के समतुल्य है, मूल अस्तित्व की दृष्टि से दोनों के बीच अद्‌भुत साम्य है। जिन कारणों से विभेद की स्थिति उत्पन्न होती है उन आवरणों को हटा दिया जाय। तो फिर नर ही नारायण के समतुल्य दृष्टिगोचर होने लगेगा। पुरुष और पुरुषोत्तम के बीच जो अन्तर पाया जाता है वह स्तर का नहीं आकार का है। इसी से जीव को ईश्वर का अंश माना गया है और उसके मध्य पाये जाने वाले अन्तर को ही चिन्गारी एवं ज्वाला की तरह एक ही स्तर का कहा गया है। सुविकसित आत्मा ही परम आत्मा-परमात्मा है। वेदान्त दर्शन ने इस तथ्य को **शिवोहम्-सच्चिदानन्दोहम्-तत्वमसि-अयमात्मा ब्रह्म** आदि सूत्रों में प्रकट किया है और कहा है कि माया का आवरण हटते ही दोनों न केवल एक समान स्तर के दिखाई पड़ते हैं, वरन् अधिक घनिष्ठ होने पर आग और ईंधन के मिलने से एकात्म भी हो जाते हैं। ऋषि, देवदूत, सिद्ध पुरुष एवं अवतारें की स्थिति ऐसी ही होती है। उनके आवरणों को हटाकर आत्मसत्ता को उसके वास्तविक स्तर तक पहुँचा दिया होता है। मोक्ष, ब्रह्म निर्वाण, ईश्वर प्राप्ति, ब्रह्मानन्द

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

आदि शब्दों में इसी स्थिति के नीचे-ऊँचे स्तरों का वर्णन किया गया है।

पिण्ड और ब्रह्माण्ड की उपमा उसी आधार पर दी जाती है कि सृष्टा ने एक विराट बनाकर दूसरा उसका छोटा स्वरूप बनाने का उपक्रम किया है। इसी से उसे 'अणेरणीयान् महत्तो महीयान्' कहा गया है। मानवी शरीर में पाँच तत्व हैं यह विशाल ब्रह्माण्ड भी इन्हीं से बना है। मनुष्य में प्राण है और ब्रह्माण्ड में महाप्राण का स्पन्दन है। महत्तत्व की हिरण्यगर्भ की व्याख्या करते हुए ब्रह्माण्ड के अन्तराल में काम करने वाली मूल सत्ता का स्वरूप समझाने का प्रयत्न किया जाता है। इस ऊहापोह में अन्ततः अद्वैत की एकत्व की स्थिति ही सामने रह जाती है। पृथकता का अस्तित्व इतना ही है कि लघु और विभु की उभयपक्षी संरचना जीव और ब्रह्म के रूप में—पिण्ड और ब्रह्माण्ड के रूप में विद्यामन है उन्हीं के बीच तरह-तरह के आदन-प्रदान चलते रहते हैं। यही है सृष्टि में होने वाली अनेकानेक गतिविधियों का मूल कारण। प्रकृति अपने स्तर पर और पुरुष अपने स्तर पर छोटे और बड़े का मध्यवर्ती आदान-प्रदान चलाते रहते हैं और प्रपंच का सारा खेल कौतूहल की तरह चलता रहता है। दृष्टा ने इसी स्थिति से हतप्रभ होकर कहा है—"**आश्चर्यवत् पश्यति कश्चिदेन**....."

जीव और ब्रह्म के मध्य न केवल साम्य है, वरन् आदान-प्रदान का नियत क्रम भी चल रहा है। सामान्यतः वह उतना ही रहता है जितने से प्राणी का निर्वाह क्रम चलता रहे। विशेष प्रयत्न से इसे और भी अधिक बढ़ाया जा सकता है। उसे एकात्मता के स्तर तक पहुँचाया जा सकता है। भक्त के भगवान बन जाने साधक के सिद्ध बन जाने की—जो चर्चाएँ होती रहती हैं उसका तात्पर्य इतना है कि तुच्छ को महान बनाने की सम्भावना को प्रत्यक्ष करके दिखा दिया गया। अणु सामान्य अवस्था में पदार्थ की एक नगण्य जैसी इकाई है, पर यदि उसे विकसित विखण्डित किया जाय तो उससे भयंकर विस्फोट और ऊर्जा का प्रचण्ड उत्सर्ग होता है। जीव घट के सम्बन्ध में भी यही बात है। उसकी सत्ता में सन्निहित दोनों ही पक्ष उन सम्भावनाओं से भरे-पूरे हैं कि अपने उद्गम केन्द्र के साथ अधिक घने सम्बन्ध बना सके और उनके साथ आश्चर्यजनक आदान-प्रदान की विधि व्यवस्था बना सके।

शरीर प्रकृतिजन्य है और जीव ब्रह्म से सम्बद्ध है। विराट् रूप में प्रकृति और पुरुष की शक्ति अत्यन्त विस्तृत है। इतनी विस्तृत कि उस पर प्रकाश डाल सकने की बौद्धिक अक्षमता को स्वीकार करते हुए अचित्य, अगोचर, अनन्त, असीम, अनिर्वचनीय आदि शब्दों में वस्तुस्थिति सामने रख दी गई है। विज्ञानी यही कहते हैं कि प्रकृति के अनेकों रहस्य जानकर अनेकों उपलब्धियाँ प्राप्त कर दी गईं। भविष्य में इस शोध प्रयास के चलते रहने पर और भी बहुत कुछ मिलने की आशा है। इतने पर भी प्रकृति के रहस्य और शक्ति स्रोत इतने विस्तृत हैं कि उन सबको समान रूप से जान सकना मनुष्य के लिए कभी भी सम्भव न हो सकेगा।

ब्रह्म के सम्बन्ध में भी यही बात है। दिव्य दृष्टि से उसे समझने और सम्पर्क साधने में बहुत कुछ सफलता मिलती है। इतने पर भी अपना स्वतन्त्र अस्तित्व बनाये रहने वाले जीव के लिए उसे पूरी तरह समझ सकना सम्भव नहीं है। बूँद की तरह आत्म विसर्जन करके समुद्र में विलीन होकर तद् रूप बनना हो तो बात दूसरी है। शरीर प्रकृति का प्रतिनिधि है और जीव ब्रह्म की प्रतिकृति। दोनों में वह क्षमता विद्यमान है कि अपने-अपने उद्गम स्रोतों के साथ अधिकाधिक घनिष्ठता प्राप्त करे और आदान-प्रदान का आधार सुविस्तृत करने में उच्चस्तरीय सफलता प्राप्त करे। साधना के माध्यम से महत्वाकांक्षी एवं पराक्रमी लोग इस प्रयोजन में कुछ हद तक सफल होते और 'सिद्ध' कहलाते देखे भी गये हैं।

घनिष्ठता की उपासना है। उपासना का अर्थ है—समीप बैठना। अर्थात् घनिष्ठ होना आत्मीयता की एकता की रज्जु से बंध जाना। यह प्रक्रिया निश्चित रूप से जादुई है। मनुष्यों के बीच यही मैत्री है। कुटुम्बी और सम्बन्धी कहलाने वाले इसी भाव एकता के कारण परस्पर घनिष्ठ बनते हैं और एक-दूसरे के प्रति आदान-प्रदान का उपक्रम आरम्भ कर देते हैं। छोटे-बड़ों को श्रद्धा, विश्वास, सम्मान, समर्पण, अनुशासन एवं निर्भरता के रूप में अपनी आत्मीयता का परिचय देते हैं, बड़े अपने ज्ञान, वैभव, कौशल, दुलार, वात्सल्य आदि से निहाल करते हैं। यह घनिष्ठता की, आत्मीयता की प्रतिक्रिया है, जिससे छोटे और बड़े दोनों ही लाभान्वित एवं प्रसन्न होते हैं। इसी प्रक्रिया को अध्यात्म क्षेत्र में भक्ति भावना, उपासना साधना आदि के नाम से पुकारते हैं। सामान्यतः जीव ब्रह्म के बीच इतना ही सम्बन्ध रहता है कि निर्वाह के लिए आवश्यक चेतना का एक अंश उपलब्ध होता रहे। इतना ब्रह्म अनुदान मनुष्य समेत सभी प्राणियों को समान रूप से उनकी स्थिति एवं आवश्यकता के अनुरूप सहज ही उपलब्ध होता रहता है। इससे आगे की विशिष्ट स्थिति प्राप्त करने के लिए अतिरिक्त प्रयास करना पड़ता है। इसी को आत्म परिष्कार की योग धारणा एवं तपश्चर्या कहते हैं।

साधना से जीव चेतना का स्तर एवं चुम्बकत्व बढ़ता है वह ब्रह्म सत्ता के भाण्डागार से अपनी स्थिति एवं आवश्यकता के अनुरूप ऐसी विभूतियाँ उपलब्ध करती हैं जो सर्वसाधारण को समान्यतया मिलते नहीं हैं। छोटे बल्ब को बिजली के तार से कम रोशनी मिलती है, पर यदि उसे बदलकर बड़ा बल्ब लगा दिया जाय तो वही तार अधिक रोशनी देने लगता है। साधना अर्थात् बल्ब का स्तर बदलना और अधिक रोशनी पाने की व्यवस्था बनाना। इस प्रयास को संसार के समस्त पुरुषार्थों से—समस्त व्यवसायों से—अधिक लाभदायक माना गया है। वैभव, बल, कौशल एवं यश यही सांसारिक सफलता के तीन स्वरूप हैं। सामान्य पुरुषार्थ के प्रतिफल हैं। आत्मिक पुरुषार्थ के रूप में जो साधना की जाती है उससे जीव चेतना का स्तर उठता है। फलतः उसका मूल महत्त्व एवं वर्चस्व भी उसी अनुपात से बढ़ता है। महामानवों में यही विशेषता पायी जाती है। सिद्ध पुरुष विकसित स्तर के लोग ही होते हैं। महात्मा, देवात्मा और परमात्मा, सन्तऋषि और देवदूत आत्मिक विकास

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

की दिशा में अग्रसर होने वालों को मिलने वाली उपलब्धियाँ हैं। इन्हें ईश्वर की घनिष्ठता से ऐश्वर्य मिलता है। उसी का परिचय विभूतियों के रूप में दृष्टिगोचर होता है। इन उपलब्धियों के सहारे वे आत्मसन्तोष, लोकसम्मान, विशिष्ट सहयोग एवं दिव्य जगत के विशिष्ट अनुवाद प्राप्त करते और हर दृष्टि से असामान्य सिद्ध होते हैं। जीव और ब्रह्म के सम्बन्ध सूत्र को अधिक सशक्त बनाने पर असंख्य अध्यात्म क्षेत्र की प्रतिभाएँ अपनी विशिष्टता सिद्ध करती रही हैं। स्वयं आनन्द लेती और असंख्यों में उल्लास उत्कर्ष का लाभ देती रही हैं।

शरीर प्रकृति का प्रतिनिधि है। प्रकृति के अन्तराल में जो ज्ञात एवं अविज्ञात सामर्थ्यें भरी पड़ी हैं, उन सबका भार तत्त्व मानवी काया के विभन्न घटकों में बीज रूप विद्यमान है। बीज को प्रयत्नपूर्वक वृक्ष बनाया जा सकता है। काय साधना से निर्वाह भर में समर्थ सीमित रहने वाला मनुष्य प्रकृति सत्ता के साथ अधिक घनिष्ठ होता जाता है और उससे कहीं अधिक प्रतिभा एवं प्रखरता से सम्पन्न होता है जैसी कि सर्वसाधारण में पाई जाती है।

प्रकृति के रहस्यों को ढूँढ़ने और करतलगत करने में इन्द्रियों की सामर्थ्य से काम नहीं चलता, उसके लिए वैज्ञानिक यन्त्र उपकरणों की आवश्यकता होती है। प्रयोगशाला के उपकरण हैं, वैज्ञानिक उपलब्धि के प्रमुख साधन हैं। बुद्धि की विलक्षणता उन्हीं के सहारे सफलता के लक्ष्य तक पहुँचती है। जितने भी महत्वपूर्ण आविष्कार हुए हैं, उनमें वैज्ञानिकों की बौद्धिक प्रतिभा ही नहीं समर्थ प्रयोगशाला भी योगदान देती रही है। यन्त्र उपकरणों की सहायता के बिना विज्ञान क्षेत्र की उपलब्धियाँ सम्भव ही नहीं हो सकती थीं। इसे एक अद्‌भुद रहस्य ही कहना चाहिए कि मानवी काया एक सर्वसाधन सम्पन्न प्रयोगशाला है और उसमें ऐसे घटक विद्यमान हैं जो थोड़ी-सी ऊर्जा प्राप्त कर लेने पर जागृत होते और अतिमहत्वपूर्ण वैज्ञानिक उपकरणों की भूमिका भली प्रकार पूरी करते देखे गये हैं।

समय-समय पर ऐसे समाचार पढ़ने को मिलते रहते हैं कि अमुक व्यक्ति में ऐसी विलक्षणताएँ पाई गईं जिन्हें अलौकिक एवं असाधारण ही माना जाय। समझा जाता है कि यह किसी देवी-देवता का वरदान रहा होगा, पर वास्तविकता यह है कि काय कलेवर में विद्यमान प्रसुप्त सामर्थ्यें ही प्रयत्नपूर्वक जगाई या अनायास ही जग गई होती हैं। फलतः उस तरह के घटनाक्रम घटित होने एवं अनुभव होने लगते हैं जिन्हें चमत्कारी सिद्धियों की—अतीन्द्रिय क्षमता की—संज्ञा दे सके। ऐसी कौतूहल भर आश्चर्यचकित करने वाली विलक्षणताओं का परिचय यदा-कदा मिलता रहता है, जिन्हीं अद्‌भुद एवं असाधारण कहा और हतप्रभ बना जा सके। इस प्रकार के रहस्य रोमांच प्रकृति की क्रम व्यवस्था का व्यतिरेक नहीं, वरन् उसी के अर्न्तगत है। प्रसुप्ति की जागृति ही इन चमत्कारों का रहस्योद्‌घाटन है। यह जागरण पूर्व संचित संस्कारों से किसी के अनुदान से अथवा साधनात्मक प्रयत्नों से सम्भव हुआ, यह दूसरी बात है। हर हालत में बीज का विकास एवं प्रसुप्ति का जागरण ही इन विलक्षणताओं का आधारभूत कारण होता है। अतीन्द्रिय क्षमताओं का—सिद्धि चमत्कारों का रहस्य इतना ही है।

काय साधना तपश्चर्या कहलाती है और चेतनात्मक उत्कर्ष को योगाभ्यास कहते हैं। जीव और ब्रह्म के मध्यवर्ती सम्बन्ध सूत्र को बलिष्ठ बनाने के लिए भाव सम्वेदना तथा ध्यान धारण का अवलम्बन लेना पड़ता है। यही योगाभ्यास की—ब्रह्म चिन्तन की एवं भक्ति भावुकता की पृष्ठभूमि है। हठयोग के अन्तर्गत सभी साधनाएँ तपश्चर्याएँ कहलाती हैं। व्रत, ब्रह्मचर्य, तप, प्रतिक्षा, संयम, निग्रह आदि उपचारों से काया के सूक्ष्म घटकों को उत्तेजित किया जाता है। स्वाभाविक जीवन-क्रम को विशिष्ट स्तर तक पहुँचाने के लिए प्रचण्ड संकल्प शक्ति उभारनी पड़ती है और रहस्यमय शक्ति केन्द्रों को उत्तेजना देनी पड़ती है। संक्षेप में यही तप साधना है। साधना से सिद्धि का तथ्य इसी आधार पर प्रत्यक्ष प्रकट होता है।

अपने व्यक्तित्व को समुन्नत बनाने की प्रक्रिया का नाम साधना है। गुण, कर्म, स्वभाव में समाई हुई दुष्प्रवृत्तियों को हटाने और उनके स्थान पर उत्कृष्ट चिन्तन एक आदर्श कर्तृत्व की सत्प्रवृत्तियों को प्रतिष्ठित करना यह जीवन साधना है। इसे संस्कृति साधना भी कह सकते हैं। आत्म-निर्माण में सफल व्यक्ति ही संसार में सफल और सम्मानित बनते हैं। आस्तिक और नास्तिक-स्वार्थी और परमार्थी, हर सफल व्यक्ति को अपनी विचारणा और कार्यपद्धति को एक विशेष्ट ढाँचे में ढालना पड़ता है। अनगढ़ व्यक्ति, आलसी प्रमादी, व्यसनी एवं दुर्गुणी होते हैं। फलतः उन्हें हेय स्थिति में ही पड़ा रहना पड़ता है। असहयोग दुर्व्यवहार की शिकायतें करते और दुर्भाग्य का रोना रोते ही उनकी जिन्दगी कटती है। अनगढ़ व्यक्तित्व कौड़ी मोल का होता है। फलतः वह अपने अथवा दूसरे के द्वारा भार की तरह छाया रहता है। किन्तु यदि उसे सुदृढ़ सुसंस्कृत बना लिया जाये तो हर दिशा में सफलता के द्वार खुलते हैं और असंख्यों को समर्थ सम्मान सहयोग मिलता है। यह जीवन साधना का प्रतिफल व्यक्तित्व के परिष्कार का प्रत्यक्ष उपहार है। साधना का प्रतिफल व्यक्तित्व के परिष्कार का प्रत्यक्ष उपहार है। साधना का प्रथम सोपान यही है। इसे आत्मिक प्रगति के उच्चस्तरीय क्षेत्र में प्रवेश करने की प्राथमिक कक्षा परीक्षा कहा गया है। बड़े या महान बनने के लिए भौतिक या आत्मिक उपलब्धियाँ प्राप्त करने के लिए इस प्रवेशिका प्रशिक्षण के बिना अग्रिम कक्षाओं में प्रवेश मिलता नहीं।

काय साधना को हठयोग या तन्त्र साधना कहते हैं। मन साधना को राजयोग कहा जाता है। और इसके लिए तन्मयता का अभ्यास करना पड़ता है। इन प्रयत्नों द्वारा काय संस्थान को इस योग्य बनाया जाता है कि विश्वव्यापी प्रकृति शक्तियों के साथ अधिक घनिष्ठता स्थापित करना और आवश्यकतानुसार आदान-प्रदान की सुविधा उपलब्ध करना सम्भव हो सके। इसी प्रकार जीव चेतना को योगाभ्यास से इस स्तर तक पहुँचाना पड़ता है कि वह परब्रह्म की दिव्य सम्पदा में से अभीष्ट अंश बिना किसी कठिनाई के प्राप्त कर सके। ब्रह्म सम्पर्क को ऋद्धि और प्रकृति सान्निध्य को सिद्धि कहते हैं। यह सम्पर्क और

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

सान्निध्य उससे कहीं अधिक उच्चस्तरीय है जो सामान्य जीवन क्रम में हर किसी को उपलब्ध रहता है उसे साधनात्मक प्रयत्न पुरुषार्थ के सहारे ही उपार्जित करना पड़ता है।

मनुष्य के चिन्तन एवं व्यवहार का कार्य क्षेत्र सीमित है, इसलिए उसकी दृष्टि एवं समर्थ्य भी सीमित रहती है। चिन्तन का स्तर और क्षेत्र ऊँचा उठने से मिलने वाली तत्व दृष्टि से दिव्य दृष्टि से जो—देखा समझा जाता है। वह क्रमशः सुविस्तृत एवं असीम बनता जाता है। इस स्तर पर पहुँची हुई चेतना अपने इर्द-गिर्द ही असीम एवं अद्‌भुत का दर्शन करती है। साथ ही उसके साथ सम्बन्ध साधने अधिकार पाने तथा लाभ लेने का भी साहस जुटाती है।

स्थूल दृष्टि से अपने चारों ओर मिट्टी लकड़ी के आडम्बर खड़े हैं और प्राणियों की औंधी-तिरछी निरर्थक हलचलें भर दिखाई पड़ती हैं। सूरज निकलता और डूबता है। भूख लगती और नींद आती है। कमाने और भोगने का पहिया लुढ़कता और प्रतिकूलता-अनुकूलता के ज्वार भाटे आते रहते हैं। जन्मने, मरने की भगदड़ मची रहती है और रोने-गाने का सिलसिला चलता है। बस इतनी ही है सामान्य दृष्टि की परिधि इतने से शरीर यात्रा के लिए अनिवार्य साधन जुटाना भर सम्भव हो जाता है। अध्यात्म दर्शन अपनाने वाले वे ज्ञान चक्षु खुलते हैं और दिव्य दृष्टि मिलती है। सूक्ष्मदर्शी और दूरदर्शी यन्त्रों के सहारे वह दृष्टिगोचर होता है जो चर्म-चक्षुओं की सीमा से बाहर है। प्रकृति और पुरुष की विशालता समर्थता एवं विलक्षणता उसी दिव्य दृष्टि के सहारे से दीख पड़ती है। तभी यह उमंगें भी उठती हैं। इस विराट से क्यों न सम्बन्ध साधा जाये और उससे घनिष्ठता बनाने पर उपलब्ध होने वाले लाभों को क्यों न उठाया जाये। यही है साधना क्षेत्र में प्रवेश कराने वाली अन्तःप्रेरणा जिसके द्वारा जीवन साधना-काय साधना एवं मनःसाधना के त्रिविध उपक्रम हाथ में लिये जाते हैं। उन्हीं को कर्मयोग, ज्ञानयोग एवं भक्तियोग कहते हैं।

इस ब्रह्माण्ड में अब तक जितने ग्रह नक्षत्रों का पता चला सका है उन सबमें पृथ्वी अपने ढंग की अनौखी है। उसमें ऋतुचर्या आहार सुविधा एवं प्राणी संरचना तो अद्‌भुत है ही इसके अतिरिक्त उसके वातावरण में प्रकृति शक्तियों का अजस्र भाण्डागार एक से एक रंगीली तरंगों से हिलौरें लेता रहता है। विज्ञान ने प्रकृति से जो पाया है उसकी तुलना में अविज्ञात और असंप्राप्त असंख्य गुना बड़ा है आखिर यह सब आता कहाँ से है अन्य ग्रहों की तुलना में पृथ्वी का अनुपम होना आखिर है क्यों ? इन प्रश्नों का गहन अवगाहन करने पर पता चलता है कि पृथ्वी के ध्रुव प्रदेशों में पाया जाने वाला चुम्बकत्व ऐसा अद्‌भुत है जो प्रकृति की झोली में से अपने उपयोग की सामग्री चुनता, बटोरता रहता है। धरती पर पाई जाने वाली सम्पदा धूलि के कणों से बने इस क्षुद्र ग्रह की नहीं, वरन् ब्रह्माण्ड के वैभव में से चुन-बुनकर समेटी है। यह चुनने समेटने का कार्य जिस चुम्बकत्व से होता है वह सर्वथा भौतिक नहीं है उसमें चेतन का भी प्रचुर सम्मिश्रण है। अन्यथा उपयोगी-अनुपयोगी का चुनाव और उपलब्धियों के ग्रहण विसर्जन का निर्धारण किस प्रकार सम्भव होता ? ध्रुवीय चुम्बकत्व को भौतिक जगत की प्राण सत्ता कहा जा सकता है। चेतन सत्ता का चुम्बकत्व जीव प्राण है। यह ब्रह्माण्ड व्यापी महाप्राण का विस्तार में छोटा किन्तु स्तर में समकक्ष स्वरूप है। पृथ्वी सांस लेती है ब्रह्माण्ड का वैभव खींचती है, उससे परिपुष्ट होती है और जो कचरा है उसे फिर उसी महागर्त में धकेल देती है। पृथ्वी की तरह ही काया भी सांस लेती है। सामान्यतया उससे प्राण वायु का ग्रहण और कार्बन का निस्सारण होता रहता है। किन्तु आवश्यकतानुसार इसी तन्त्र से महाप्राण को अभीष्ट मात्रा में आमन्त्रित, आकर्षित करके धारण करने और प्राणवान बनने का लाभ लिया जा सकता है। प्रकृति और पुरुष से सम्बन्ध साधने के लिए जो अनेकों सूत्र कायसत्ता में विद्यमान हैं, उनमें से एक प्राण तत्व भी है। जिसे श्वांस प्रावास क्रम से सामान्यतः प्राणविद्या द्वारा विशेष रूप से आकर्षित किया जा सकता है।

मस्तिष्क, मेरुदण्ड, षटचक्र, ग्रन्थि संस्थान, उपत्यिकापरिकर, स्वर लहरें, चुम्बत्व, विद्युत प्रभाव, सम्वेदन, चित्त, संकल्प जैसे अगणित रहस्य स्रोत इस काया में विद्यमान हैं। इनकी प्रसुप्त स्थिति को जागृति में बदलने पर उसकी समर्थता रहस्यमय सार की विनिर्मित और प्रकट होती है। इस सामर्थ्य के सहारे काया में समस्त प्रकृति के किसी भी संरचना का कोई भी अंश मानवी उपयोग के लिए घसीटा जा सकता है। उसी प्रकार जीव चेतना को ब्रह्म के समतुल्य पराक्रम कर सकने का सुअवसर मिलता है। ब्रह्म के सम्बन्ध में बहुत कम जाना जा सकता है। किन्तु जो माना जा सकता है उससे इतना तो स्पष्ट है कि इस ज्ञान पक्ष से सम्पर्क साधने पर मनुष्य चेतना क्षेत्र का वरिष्ठ अधिकारी बन सकता है और ऋषियों, सिद्धों और देवभूतों जैसी महान भूमिकायें निभा सकता है। इसी प्रकार भौतिक क्षेत्र में मानवी काया सर्व सुविधा सम्पन्न प्रयोगशाला का काम दे सकती है। प्रयोगशालाओं में कम्प्यूटरों, रेडियो, टेलीस्कोपों-इलेक्ट्रोनिक माइस्कोप स्तर के बहुमूल्य उपकरण लगे होते हैं। मानवी सत्ता में ऐसे रहस्यमय संस्थान उपकरणों की भरमार है। जिनकी सहायता से प्रकृति के गूढ़ रहस्यों का पता लग सकना और उनमें से जितने कुछ अपने लिए उपयोगी, आवश्यक हैं, उन्हें इस अभीष्ट मात्रा में उपलब्ध कर सकना सम्भव हो सकता है। सभी जानते हैं कि मूल्यवान उपकरणों वाली प्रयोगशालाएँ कितनी लागत और मेहनत से बनती हैं। काय सत्ता की प्रयोगशाला में ईश्वर विनिर्मित है। उसमें मानवी स्तर पर उपलब्ध होने वाली सामग्री की अपेक्षा अत्यधिक उच्चस्तर की सामग्री लगी है, फलतः उसकी क्षमता भी विलक्षण ही हो सकती है। आँखों के लेन्स के समतुल्य अभी तक कोई कैमरा नहीं बन सका और कानों के समतुल्य ध्वनि ग्राहक। हर घटक की विलक्षणता अद्‌भुत है। संरचना की दृष्टि से ही नहीं समर्थता और उत्कृष्टता की दृष्टि से भी उसका प्रत्येक घटक मानवी उत्पादनों की तुलना में असंख्य गुना विशिष्ट है। इनको समर्थ बनाना और उनसे उपयुक्त लाभ लेना भौतिक विज्ञानियों को भले ही कठिन प्रतीत होता हो, पर आत्मविचार के निर्धारण यह सम्भव कर सकते हैं कि सामान्य मनुष्य को हर दृष्टि से अपने असामान्य वर्चस्व का प्रकटीकरण सम्भव हो सके।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

ऋषियों और सिद्धियों का वर्णन पौराणिक कथा प्रसंगों में भरा पड़ा है। उसमें बहुत कुछ सरलतापूर्वक समझ में आने योग्य और बहुत ही बुद्धि की वर्तमान सीमा से बाहर है। अष्ट सिद्धि—नव निधि के प्रतिपादन पर दृष्टिपात करने से यह मानना पड़ता है कि यदि कोई इन्हें प्राप्त कर सके तो उसका स्तर अतिमानव-देवता जैसा ही हो सकता है। उसे सर्वज्ञाता, सर्व समर्थ जैसी मान्यता मिल सकती है। पौराणिक, उपाख्यानों में आने वाली विलक्षण आत्माओं के क्रियाकलाप पर अविश्वास किया जाये तो भी ऐतिहासिक एवं प्रमाणिक घटनाओं में ऐसे अगणित प्रसंग मौजूद हैं, जिनके सम्पन्नकर्ताओं को अतिमानव कहने में किसी को कोई कठिनाई नहीं हो सकती। समय का प्रवाह उलटने और जटिल परिस्थितियों को बदलने में ऐसे ही लोगों की सामर्थ्य काम देती है, जिनमें साधन, बल, स्वल्प होते हुए भी दैवी सामर्थ्य के अंश अत्यधिक मात्रा में विद्यमान थे। निजी विर्चस्व, सृष्टि सन्तुलन और प्रगति सम्वर्द्धन, अशुभ निराकरण जैसे अनेक समायिक एवं चिरस्थायी महत्व के प्रयोजन पूरे कर सकना उनके लिए सम्भव होता है।

ऋद्धियाँ जीव और ब्रह्म की घनिष्ठता की प्रतिक्रियाएँ हैं। सिद्धियों में काया की प्रकृति को अन्तराल से प्रभावित करने की क्षमता है। इस सन्दर्भ में जो घटित होता रहता है उसे स्वीकार करने पर भी तब तक असमंजस ही बना रहेगा जब तक कि उसको तथ्य, तर्क और प्रमाण के आधार पर प्रकृति और ब्रह्म के साथ सम्पर्क साधने और उसका सत्परिणाम उपलब्ध होने का रहस्य उद्घाटन सर्वसाधारण के सामने प्रस्तुत न किया जाये।

मण्डन मिश्र और आद्य शंकराचार्य के बीच होने वाले शास्त्रार्थ में जब मण्डन मिश्र हारने लगे तो उनकी पत्नी विदुषी भारती ने शंकराचार्य को शास्त्रार्थ के लिए चुनौती दी। काम शास्त्र के विषय में अनेकों गूढ़ प्रश्नों के उत्तर देने में शंकराचार्य असमर्थ सिद्ध हुए। उन्होंने उत्तर के लिए समय की माँग की। कहा जाता है कि काम कला का अनुभव प्राप्त करने के लिए उन्होंने अपनी आत्मा को राजा सुधन्वा के शरीर में प्रविष्ट कराया और कामशास्त्र का ज्ञान प्राप्त किया। तत्पश्चात वापस अपने शरीर में आकर उन्होंने विदुषी भारती के प्रश्नों का उत्तर दिया। परकाया प्रवेश की यह घटना पिण्ड की सामर्थ्य के उस चेतन पक्ष का परिचय देती है, जिसे रहस्यमय विभूतियों से सम्पन्न माना गया है।

'नाथ सम्प्रदाय' के आदिगुरु मुनिराज 'मछन्दरनाथ' के विषय में भी कहा जाता है कि उन्हें परकाया प्रवेश की सिद्धि प्राप्त थी। सूक्ष्म शरीर से वे अपनी इच्छानुसार गमनागमन विभिन्न शरीरों में करते थे। एक बार अपने शिष्य गोरखानाथ को स्थूल शरीर की सुरक्षा का भार सौंपकर एक मृत राजा के शरीर में उन्होंने सूक्ष्म शरीर में प्रवेश किया था। "महाभारत के शान्ति पर्व" में वर्णन है कि सुलभा नामक विदुषी अपने योगबल की शक्ति से राजा जनक के शरीर में प्रविष्ट कर विद्वानों से शास्त्रार्थ करने लगी थी। उन दिनों राजा जनक का व्यवहार भी स्वाभाविक न था। 'अनुशासन पर्व' में ही कथा आती है कि एक बार इन्द्र किसी कारण वश ऋषि देवशर्मा पर कुपित हो गये। उन्होंने क्रोधवश ऋषि की पत्नी से बदला लेने का निश्चय किया। देवशर्मा का शिष्य 'विपुल' योग साधनाओं में निष्णात और सिद्ध था। उसे योग दृष्टि से यह मालूम हो गया कि मायावी इन्द्र, गुरु पत्नी से बदला लेने वाले हैं। 'विपुल' ने सूक्ष्म शरीर से गुरु पत्नी के शरीर में उपस्थित होकर इन्द्र के हाथों उन्हें बचाया।

पांतजलि योग दर्शन में सूक्ष्म शरीर से आकाश गमन, एक-ही समय में अनेकों शरीर धारण, परकाया प्रवेश जैसी अनेकों योग विभूतियों का वर्णन है। जो प्रकारान्त से जीवात्मा की अकूत सामर्थ्य और शरीरान्त उसकी स्वतन्त्र सत्ता का ही प्रतिपादन करती है। सत, रज, तम से बने संसार और पंच भौतिक शरीर से जुड़े आकर्षणों में अत्यधिक लिप्त होने के कारण अपनी मूल सत्ता, जो समस्त शारीरिक एवं मानसिक हलचलों का केन्द्र है, का बोध नहीं हो पाता। बाह्याकर्षणों के आवरणों को चीरकर निकल सकना सम्भव हो सके तो प्रतीत हो गया कि अपनी ही आत्मसत्ता में ऋद्धि-सिद्धियों का ऐसा विलक्षण भण्डार छुपा पड़ा है। जिसे जानकर समष्टि चेतनासत्ता से सम्बन्ध जोड़ सकना तथा विभूति सम्पन्न-सामर्थ्यवान बन सकना सम्भव है। इसी तथ्य को ऋषि ने एक प्रकार कहा है—

करामलकवद्विश्वं तेन योगी प्रपश्यन्ति।
दूरतो दर्शनं दूरश्रवणं चापि जायते॥
भूत भव्यं भविष्यं च वेत्ति सर्वकारणम्।
ध्यान मात्रेण सर्वेषां भूतानां च मनोगतम्॥

अर्थात्—"योगी को अदृश्य जगत दृश्यवत दीखता है। उसे दूरदर्शन-दूरश्रवण की विभूतियाँ उपलब्ध होती हैं। ध्यान मात्र से योगी भूत, भविष्य, वर्तमान तथा प्राणियों के मनोगत भाव जान लेता है।"

अदृश्य जगत को जान लेना—उसमें सूक्ष्म शरीर द्वारा प्रवेश कर विचरण कर सकना सम्भव है। परकाया प्रवेश की घटनाएँ उसी तथ्य पर प्रकाश डालती हैं। शरीर से परे जीवात्मा के स्वतन्त्र अस्तित्व का जहाँ इनसे परिचय मिलता है वहीं उसकी विलक्षण सामर्थ्य का भी वे बोध कराती हैं।

रिसर्चेज आफ अनकान्शस माइन्ड इन ट्वेन्टीन्थ सेन्चुरी' पुस्तक के लेखक हैं—दो अमेरिकी परामनो-वैज्ञानिक। शरीर से परे जीवात्मा की स्वतन्त्र सत्ता, मरणोपरान्त उसके अस्तित्व के प्रमाण सम्बन्धित अनेकों घटनाओं का उल्लेख उस पुस्तक में है। उनमें से कुछ घटनाएँ इस प्रकार हैं—

एक अमेरिकी बर्तन विक्रेता घर से टहलने निकला पर वापस घर नहीं लौटा। दो वर्षों तक उसका कुछ भी पता नहीं चला। इसके बाद वह अचानक एक दिन अपने घर पहुँचा। घर वालों के पूछने पर कि इतने दिन वह कहाँ रहा, कुछ भी उत्तर न दे सका। खोजबीन आरम्भ हुई लम्बी ढूँढ़-खोज के उपरान्त यह मालूम हुआ कि सैकड़ों मील दूर एक नगर में वह मशीन मरम्मत आदि का काम करता रहा। जहाँ वह काम करता था। वहीं दो वर्षों पूर्व एक कारीगर काम करता था जिसकी एक दुर्घटना में आकस्मिक मृत्यु हो गई। उसी के स्थान पर वह काम करता रहा। अपना नाम भी वही बताता था जो कारीगर

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

का था। न केवल नाम बल्कि उसका आचरण, व्यवहार भी करीगर जैसा ही था। उसे दुकान से सम्बन्धित व्यक्तियों का पूरा विवरण कारीगर जैसा ही याद था। दो वर्षों बाद एक अचानक उसे अनुभव हुआ कि वह कारीगर नहीं कसेरा है तथा इस व्यवसाय एवं स्थान से पूर्णतया अपरिचित है। यह स्मरण होते ही वह घर वापस आ गया तथा पहले की भाँति अपना व्यवसाय करने लगा।

राड्स नगर का एक कर्मचारी ऐसेलबर्न बैंक से दस हजार का चैक भुनाकर निकला पर घर न जाकर कहीं और चला गया। घर वालों ने गायब होने की रिपोर्ट पुलिस विभाग में लिखायी। खोजबीन करने पर वह एक दूसरे नगर में चीनी का व्यवसाय करता पाया गया। अपने को वह 'कार्टर' कहता था जबकि उसका पुराना नाम 'राबर्ट केल्सन' था। घर वालों ने जाकर उसे वापस चलने के लिए आग्रह किया, पर उसने उन्हें पहचानने से भी इन्कार कर दिया। एक वर्ष तक वह इस व्यवसाय में लगा रहा। अचानक एक दिन उसे वास्तविकता का बोध हुआ कि वह कार्टर नहीं राबर्ट है तथा उसे घर वापस जाना चाहिए। व्यापार समेटकर वह घर पहुँचा। खोज करने पर ज्ञात हुआ कि उसी नगर में कार्टर नामक एक प्रसिद्ध चीनी व्यवसायी था जो कुछ ही माह पूर्व मरा था। उसका व्यवहार केल्सन जैसा ही था।

इंग्लैण्ड के एक पादरी मोटर दुर्घटना में बेहोश हो गये। उन्हें अस्पताल लाया गया। उपचार से वे होश में तो आ गये, पर उनके व्यवहार में विचित्र परिवर्तन दिखायी पड़ा। वे बच्चे जैसा आचरण करने लगे तथा अपना नाम मिल्टन बताते थे। पता लगाने पर मालूम हुआ कि उसी मुहल्ले का एक बच्चा जिसका नाम मिल्टन था कुछ ही दिनों पूर्व मरा था। उसके व्यवहार, आदतों तथा पादरी के व्यवहार में कोई अन्तर नहीं पाया गया। कुछ माह के बाद वे अपने असली व्यक्तित्व में लौट आये।

परामनोविज्ञान पर शोध करने वाले घटनाओं के सकलकर्ता इन लेखकों ने अपने शोध निष्कर्ष में कहा कि अपनी अतृप्त आकांक्षाओं की पूर्ति के लिए अदृश्य आत्मायें कभी-कभी सशरीर व्यक्तियों को अपना माध्यम बनाती हैं। प्रायः ऐसे व्यक्ति उनका शिकार बनते हैं जो कमजोर मनोभूमि के होते हैं। इन पर सरलता से नियंत्रण प्राप्त करना तथा अपनी इच्छानुवर्ती काम करा लेना अदृश्य अतृप्त आत्माओं के लिए सुगम पड़ता है। कभी-कभी ऐसी घटनाएँ भी प्रकाश में आती हैं जिसमें एक व्यक्ति के मरणोपरान्त तुरन्त उसके शरीर पर दूसरी आत्मा ने स्थायी रूप से अपना आधिपत्य जमा लिया हो। रूस के यूराप्रान्त में मोरवर्न नगर में इब्राहीम चारको नामक एक धनी यहूदी रहता था एक बार वह गम्भीर रूप से बीमार पड़ा। कुछ दिनों बाद हृदय की धड़कन बन्द होने पर डॉक्टरों ने उसे मृत घोषित कर दिया। उसे दफनाने की तैयारी चल रही थी। इतने में उसकी चेतना पुनः वापस लौटी और वह उठ बैठा। पर अब उसकी स्थिति बिल्कुल ही भिन्न थी। उसने अपने ही कुटुम्ब के सदस्यों को पहचानने से इन्कार कर दिया। वह अपनी मूल भाषा हिब्रू न बोलकर 'लैटिन' में बात करने लगा। उसने अपने को ब्रिटिश कोलम्बिया (अ. उ. अमेरिका) का एक चिकित्सक बताया। नाम था इब्राहीम इरहम। खोजबीन की गई तो मालूम हुआ कि न्यूवेस्ट मिनिस्टर में इब्राहीम इरहम नामक एक चिकित्सक की मृत्यु कुछ दिनों पूर्व हुई है उसकी पत्नी एवं बच्चे भी हैं। कोलम्बिया के समाचार पत्रों में "इब्राहीम चारको के शरीर में इब्राहीम इरहम की आत्मा का प्रवेश" शीर्षक से इस सम्बन्ध में विस्तृत समाचार छपा। इब्राहीम चारकों के शरीर में प्रविष्ट इब्राहीम इरहम की आत्मा ने अपनी पत्नी से मिलकर परिचय दिया। पहले तो पत्नी को विश्वास नहीं हुआ पर उसने ऐसे रहस्यों का उद्घाटन किया जो मात्र इरहम और उसकी पत्नी की जानकारी तक सीमित थे साथ ही उसका स्वभाव भी बिल्कुल इरहम जैसा ही था। फलस्वरूप पत्नी को मानना पड़ा कि इब्राहीम चारको के शरीर में उसके पति की आत्मा ही है।

इसी से मिलती-जुलती एक घटना प्रथम विश्व युद्ध की है। दो अमेरिकी सैनिक युद्ध के एक मोर्चे पर घायल हो गये नाम थे—डान और बॉब। डान की मृत्यु हो गई पर उपचार के बाद 'बॉब' ठीक हो गया। पर शरीर से बॉब होते हुए भी उसकी मूल प्रकृति बॉब जैसी नहीं थी। ठीक होते ही वह अपने को 'डान' कहने लगा। युद्ध समाप्त होने पर वह अपने घर न जाकर डान के घर पहुँचा। डान के परिवार के सदस्यों से उसने अपना परिचय डान के रूप में दिया। आकृति की भिन्नता के कारण परिवार वालों ने पहले तो उसे पागल समझा किन्तु उसने डान के जीवन की अनेकों प्रमाणिक घटनाओं का उल्लेख किया। उसकी आदत, अभिरुचियाँ भी ठीक डान जैसी थीं। इसी बीच घर वालों को सूचना मिली कि डान युद्ध मोर्चे पर गोली लगने से मृत्यु हो गई। अन्ततः सबको यह मानना पड़ा कि बॉब के शरीर में डान की आत्मा ने प्रवेश कर अपना आधिपत्य जमा लिया है।" एक अन्य घटना स्पेन की है। एक बार हाला और मितगोल नाम की दो लड़कियाँ अपने अभिभावकों के साथ बस से वापस घर लौट रही थीं। मार्ग में बस दुर्घटनाग्रस्त हो गई। अनेकों व्यक्ति मारे गये। दोनों लड़कियाँ भी बुरी तरह घायल हो गईं। मितगोल की कुछ घण्टों बाद मृत्यु हो गई। हाला इसके कुछ समय बाद होश में आयी। पर अब वह शरीर से 'हाला' होते हुए भी हाला न थी। मितगोल एवं हाला दोनों के अभिभावक घटनास्थल पर मौजूद थे। हाला के पिता ने उससे घर चलने को कहा पर उसने साथ जाने से इन्कार पर दिया। उसने बताया कि वह हाला नहीं मितगोल है। वह मितगोल के पिता के पास पहुँची तथा घर चलने के लिए आग्रह करने लगी। हाला के पिता ने समझा शायद दुर्घटना से उसका मानसिक सन्तुलन बिगड़ गया हो। वे उसे जबरन घर ले गये, पर वह किसी भी घर के सदस्य को पहचान न सकी और निरन्तर यह रटती रही कि वह हाला नहीं मितगोल है। हाला को लेकर उसके अभिभावक मितगोल के घर पहुँचे। तुरन्त ही वह मितगोल की माँ को देखते ही जा लिपटी और फूट-फूट कर रोने लगी। मितगोल के पिता उसके

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

दुर्घटनाग्रस्त शरीर को स्वयं दफना चुके थे, पर हाला का स्वभाव शत-प्रतिशत मितगोल जैसा ही था। मितगोल से सम्बन्धित अनेकों पूर्व जीवन की घटनाओं का उसने सही-सही वर्णन कर सबको आश्चर्यचकित कर दिया।

जीवात्मा द्वारा शरीर रूपान्तरण की ये घटनाएँ भौतिकवाद की एक मान्यता का खण्डन करती हैं कि वृक्ष वनस्पतियों की भाँति मनुष्य भी एक चलता-फिरता पौधा है। जड़-पिण्डों की तरह एक दिन नष्ट हो जाता है। आदि और अन्त, जीवन और मरण से परे अपनी स्वतन्त्र सत्ता का बोध कराने के लिए ही सम्भवतः आत्मसत्ता इन विलक्षण घटनाओं के रूप में अपना परिचय देती है।

प्रसुप्ति से निकला और आत्मजागरण, आत्मबोध की दिशा में बढ़ा जा सके तो प्रतीत होगा कि अपने ही अन्तराल में शक्ति का अकूत भण्डार छिपा पड़ा है। ऋद्धि-सिद्धियाँ अपनी ही अन्तः गुहा में विद्यमान हैं। मानवी पुरुषार्थ भौतिक उपलब्धियों के इर्द-गिर्द ही प्रायः घूमता रहता है। फलतः उतना ही मिल पाता है जितना मात्र जीवन-निर्वाह के लिए पंच भौतिक शरीर की आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु आवश्यक है। समुद्र के बाहर इर्द-गिर्द चक्कर काटने वाले मात्र सीपी-घोंघे ही प्राप्त कर पाते हैं ? आह समुद्र की गहराई में डुबकी लगाने वाले सहासी ही अमूल्य मोती प्राप्त करते हैं।

बहिरंग की तुलना में अन्तरंग जगत असंख्य गुना अधिक सम्पन्न है। उसे कुरेदा, उभारा और उछाला जा सके तो मनुष्य इसी जीवन में ऋद्धि-सिद्धियों का स्वामी बन सकता है। जीवन-मुक्ति का आनन्द ले सकता है। आत्मशक्ति के जागरण और आत्म-साक्षात्कार की दिव्य उपलब्धियों से लाभान्वित होने के लिए अन्तरंग जगत की आत्मसाधना का अवलम्बन लेना आवश्यक है।

सिद्धि के सिद्धान्त

आध्यात्म विद्या में जिन्होंने थोड़ा बहुत भी प्रवेश किया है वे जानते हैं कि साधना से सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं। अष्ट सिद्धि और नव निधि प्रसिद्धि सिद्धि विभिन्न योगों द्वारा विभिन्न शक्तियों का मिलाना प्रकट ही है। इन्द्रियों के आकर्षक भोगों को सुख सुविधा को, ऐश, आराम को छोड़कर कोई व्यक्ति कष्टदायक, कठोर, नीरस, श्रम साध्य साधना में प्रवृत्त होता है तो वह ऐसा करने के लिए योंही उद्यत नहीं हो जाता। ज्यादा कीमती चीज के लिए कम कीमती चीज का त्याग किया जाता है। साधना का कष्ट इसलिए सहन करते हैं कि जिन सुखों का त्याग किया गया है उससे अधिक मूल्यवान सुख प्राप्त हो। यदि ऐसा न होता तो कोई भी व्यक्ति साधन का कष्ट सहने को तैयार होता।

अनेक अवसरों पर अनेक व्यक्तियों द्वारा ऐसे कार्य करते हुए किन्हीं व्यक्तियों को देखा जाता है जैसे कि कार्य साधारण आदमी आमतौर पर नहीं कर सकता। आम जनता के साधारण दायरे से बाहर की जो चीज होती है वह सिद्धि कहलाती है। जैसे हवा में उड़ने वाला मनुष्य सिद्ध कहा जायेगा किन्तु पक्षी को कोई सिद्ध न कहेंगे। पक्षी आमतौर से उड़ते है इसलिए उनके उड़ने में कुछ अचंभा नहीं है। मनुष्य के उड़ने में इसलिए अचंभा है क्योंकि आमतौर से मनुष्य प्राणी उड़ा नहीं करता। पानी में रहना हमारे लिए सिद्धि है मछली के लिए नहीं, एक घंटे में बीस मील की चाल से दौड़ना हमारे लिए सिद्धि है पर घोड़े के लिए नहीं। हाथी को कोई मनुष्य पछाड़दे तो उसे सिद्ध कहा जायेगा किन्तु सिंह जो अक्सर हाथियों को पछाड़ता रहता है सिद्ध नहीं कहलाता। कहने का तात्पर्य यह है कि इस समय जो बातें सब किसी में दिखाई नहीं पड़ती वह बातें किसी विशेष व्यक्ति में हो तो उसे आध्यात्मिक भाषा में 'सिद्ध' शब्द से पुकारा जायेगा। आश्चर्यजनक और असाधारण कार्यों का ही दूसरा नाम 'सिद्ध' है।

एक समय में जो बात साधारण होती है वही बात समय और परिस्थिति के प्रभाव से असाधारण हो जाती है। सतयुग, त्रेता आदि प्राचीन युगों में अब की अपेक्षा मनुष्य अधिक ऊँचा-लम्बा चौड़ा, अधिक खाने वाला और अधिक काम करने वाला होता था, किन्तु इस समय में तब की अपेक्षा आदमी की काया, खुराक और मजबूती बहुत घट गई है। सतयुग के लम्बे-तगड़े आदमी को अब लाकर दिखाया जाये या अब के आदमियों को तब सतयुग वालों को दिखाया जाता तो निःसंदेह आश्चर्य की सीमा न रहती। तब का मनुष्य तब अचंभे की चीज न था, अब भी अचंभे की चीज नहीं है, किन्तु समय और परिस्थिति के कारण जो परिवर्तन हो गया है वह परिवर्तन ही अचंभे का कारण है। एक देश वाले दूसरे देश वालों के रीति-रिवाज, खान-पान, वेष-भूषा और भाषा को आश्चर्यजनक समझते हैं लेकिन अपने देश की प्रथा प्रणाली किसी को अचरज की मालूम नहीं देती। सिद्धियाँ हमें आश्चर्य में डालती है। क्यों ? इसलिए कि वे आम लोगों में वर्तमान समय में नहीं देखी जाती। जो वस्तु सब किसी की है, (१) चमक आ जाती है, (२) शरीर में एक विशेष प्रकार की सोंधी-सोंधी गन्ध आने लगती है, (३) किसी वस्तु पर थोड़ी देर दृष्टि जमाई जाय तो उस वस्तु के आस-पास चिनगारियाँ-सी उड़ती दिखाई पड़ती हैं, (४) किसी आदमी को स्पर्श करें तो उसे कुछ फुरहरी रोमांच या झटका सा मालूम देता है, (५) शरीर में हलकापन और चित्त में भारीपन प्रतीत होता है, (६) पवित्रता, परोपकार और सात्विकता के विचारों की ओर रुचि बढ़ती है, (७) आँखों में नीलापन और नमी बढ़ जाती है, (८) निद्रा में कमी हो जाती है, (९) स्वप्न में प्रकाशवान और पुरुष जाति की वस्तुएँ अधिक दिखाई पड़ती हैं, (१०) घृत युक्त पदार्थों की ओर अधिक रुचि रहती है। यह आवश्यक नहीं कि यह सब लक्षण पूर्ण रूप से प्रकट ही हों, इनमें से थोड़े से चिह्न भी किन्हीं अंशों में प्रस्फुटित हो रहे हों तो साधक अपनी साधना पर सन्तोष कर सकता है।

साधक जब सिद्ध के रूप में परिणत होना आरम्भ करता है तो उस समय उसकी अन्तः चेतना बलयुक्त होती है। बिजली के करेंट को जिस ओर से लगा दिया जाय उधर ही काम करने लगते हैं, पंखा, बत्ती, रेडियो, टेलीफोन, मोटर, मशीन,

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

जिस यंत्र के साथ बिजली का तार जुड़ जाता है उसमें क्रियाशीलता आ जाती है। इसी प्रकार साधक अपनी अन्तःशक्ति को जिधर भी लगा देता है उधर चमत्कारिक सफलता दिखाई देने लगती है। सिद्धि को आठ प्रकार का और ऋद्धि को नौ प्रकार का कहा गया है परन्तु मूल में एक ही वस्तु है। अलग-अलग सफलताओं के अलग-अलग नाम रख लिये गये हैं तो भी उन सफलताओं का स्रोत एक ही है। जो पहलवान है वह दौड़ भी सकता है, कूद भी सकता है, कुश्ती भी लड़ सकता है और भारी वजन को भी उठा सकता है। इसी प्रकार आत्मबल जिसमें है वह विभिन्न प्रकार के कठिन कार्यों में आश्चर्यजनक सफलताएँ पा सकता है।

गायत्री की उपासना से जिसने आत्मशक्ति एकत्रित की है, उसे चाहिए कि अपनी बुद्धि को शुद्धपवित्र और सात्विक बनाता हुआ जीवन को आदर्श बनावे। क्योंकि सबसे बड़ी सम्पत्ति इस दुनिया में यह है कि किसी मनुष्य को आदर्श व्यक्ति या महापुरुष कहा जाये। जिसके विचार और कार्यों की नकल करते हुए लोग अपने को भाग्यवान समझें वह महापुरुष धन्य हैं। अपनी स्वार्थ भावना, लिप्सा और भोग-इच्छाओं पर संयम करता हुआ परोपकार परमार्थ और सत्यकार्यों में लगा रहे। स्वयं ऊँचा उठे और दूसरों को ऊँचा उठावे। गायत्री द्वारा बुद्धि का परिमार्जन और सत्मार्ग का अनुगमन इन दो कार्यों का कहना श्रेष्ठ है। शुभ कर्मों द्वारा आत्मा को परमात्मा बना देना, मुक्तिपद प्राप्त करना भला इससे बड़ी सिद्धि और क्या हो सकती है?

आवश्यकता पड़ने पर उस शक्ति से दूसरे कार्य भी लिये जा सकते हैं। जैसे—(१) गायत्री मन्त्र को भोजपत्र या शुद्ध कागज पर रक्त चंदन की स्याही बनाकर अनार की कलम से शुद्ध होकर लिखें और उसे कवच की तरह ताबीज में भरकर किसी को धारण करादें तो उसकी आपत्ति मिट जायेगी और मनोवांछा पूरी होने योग्य बल मिलेगा। (२) गयात्री मन्त्र की आहुतियाँ से हवन करके उस भस्म को सुरक्षित रख लेना चाहिये इस भस्म को मन्त्र पढ़ते हुए किसी के मस्तक पर लगा दिया जाय तो उसको रोग-शोक-चिन्ता एवं भय से छुटकारा मिलता है। (३) गंगाजल को गायत्री मन्त्र से अभिमंत्रित करके मार्जन करने से भूत, बाधा, उन्माद, प्रलाप तथा अन्य मानसिक अव्यवस्थाओं का निवारण होता है। (४) गायत्री मन्त्र के साथ औषधि सेवन करने से रोगी को कई गुना लाभ होता है। (५) किसी मनुष्य की मूर्ति का ध्यान करते हुए मन्त्र का जप करने से वह मनुष्य अपने प्रति उदारता एवं सहानुभूति के भाव रखने लगता है। (६) केशर की स्याही और अगर की लकड़ी की कलम से काँसे की थाली के भीतरी भाग में १०१ बार गायत्री मन्त्र लिखकर गर्भवती को पिलाने से पुत्र उत्पन्न होता है। (७) चाँदी पात्र में पाँच तोले ताजा कुँए का जल लेकर प्रातः काल सूर्य के सन्मुख खड़े होकर १०१ बार गायत्री का जप करके पिलाने से स्त्री-पुरुषों के रज तथा वीर्य के दोष दूर होते हैं। (८) रविवार को मध्यान्ह काल में सूर्य के सम्मुख खड़े होकर गायत्री की पाँच माला जपने से शत्रुओं के दुष्प्रयत्न निष्फल हो जाते हैं। (९) गायत्री जपते हुए शयन करने से अच्छी नींद आती है और दुःस्वप्न नहीं होते। (१०) सिन्दूर और घृत मिलाकर व्यापार के स्थान या भण्डार गृह में गायत्री लिख देने से लक्ष्मीजी का निवास होता है अच्छा लाभ रहता है।

इस प्रकार एक नहीं अनेकों लाभ हैं जो साधक को स्वयं अनुभव आने लगते हैं। जिस कार्य में भी गायत्री माता की सहायता लेकर हाथ डाला जाता है उसमें विजय ही मिलती है। गायत्री की महिमा अपार है वह कहने, सुनने और लिखने वाँचने की नहीं वरन् स्वयं अनुभव करने की बात है।

सिद्धियों का मूल प्रयोजन

अपने ज्ञान विज्ञान के हथियारों को तेज करके प्रवृति के छिपे हुए तत्वों को मनुष्य धीरे-धीरे खोदता और निकालता चला आ रहा है। जिस दिन जलती हुई अग्नि का मनुष्य ने आविष्कार किया और उसका सदुपयोग सीखा उस दिन एक असाधारण युगान्तरकारी समय है। उस दिन के अपने आविष्कार पर मनुष्य फूला न समाया होगा। वास्तव में अग्नि को ढूँढ़ निकालना एक असाधारण क्रान्ति थी, साधारण पशु की अपेक्षा इसी आविष्कार ने मनुष्य को हजारों गुना ऊँचा उठा दिया। एक-एक करके धीरे-धीरे खेती करना, पशु पालना कपड़े बनाना, हथियार चलाना, मकान बनाना, लिखना-पढ़ना आदि अनेक आविष्कार हुए हर एक आविष्कार ने पहले की अपेक्षा मानव जीवन की सुख-सुविधाओं में वृद्धि की। यह क्रम अभी तक निरन्तर बढ़ता चला आ रहा है। सुख और समृद्धि का प्यासा मनुष्य नित नये साधनों और तत्वों की खोज करता चला आ रहा है। अनेक वैज्ञानिक आविष्कार हो चुके हैं एवं बड़ी तेजी से और नये-नये हो रहे हैं इस गतिविधि का कभी अन्त न होगा। आदमी अपनी अधिक सुविधा के साधन अन्त तक ढूँढ़ता ही रहेगा और ढूँढ़ने वाले को कुछ न कुछ नया मिलता ही रहेगा। यह थोड़ा-कुछ न कुछ इकट्ठा होते-होते इतना अधिक हो जायेगा जिसकी महत्ता आज कल्पना में भी नहीं आ सकती है।

एक जमाना था जब मनुष्य का छोटा-सा मस्तिष्क अधिक से अधिक सुविधाओं की इतनी ही कल्पना कर सकता था। जो आज बहुत छोटी और थोड़ी मालूम पड़ती है। जब जल समूहों को पार करने के अच्छे साधन न थे तब इच्छा होती थी कि पानी पर चल सकें। पक्षियों को आकाश में उड़ता देखकर इच्छा होती थी आकाश में उड़ सकें। घोड़े आदि जानवरों को द्रुति गति से भागता देख कर इच्छा होती थी तीव्र गति से गमन कर सकें। अपनी शक्तियों में न्यूनतम देखकर उसने पूर्णता की बात सोची। आँखें थोड़ी-सी दूर तक की चीज देख सकती थीं इसलिए इच्छा हुई दूर की चीजें देख सकें। कान थोड़ी दूर की बात सुन सकते थे। इसलिए इच्छा हुई 'दूर की बातें सुन सकें।' और भी अनेक इच्छाएँ थीं—चाहा जाता था वरुण देवता प्रसन्न होकर जल की कमी न रहने दें। सूर्य देवता प्रसन्न होकर मन माना प्रकाश दिया करें। वायु देवता ऐसे वश में रहें कि जब चाहें तब चलकर उष्णता मिटा दिया करें। अग्नि देवता प्रसन्न होकर वर्षा में भी प्रकट हो जाया करें।

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

एक समय यह सब बातें कल्पना का विषय थीं। मनुष्य सोचता था कि यह सब वस्तुएँ यदि मुझे मिल जाएँ तो मैं अत्यन्त सुखी हो जाऊँगा। किन्तु आज करीब उन सभी इच्छाओं को मनुष्य ने अपने बुद्धिबल और बाहुबल की सहायता से पूर्ण कर दिया है। पानी के जहाज-अग्निवोट-बड़े से बड़े समुद्रों के ऊपर लाखों मन माल और हजारों यात्री लादे हुए निधड़क घूमते फिरते हैं। हवाई जहाज में बैठकर आकाश में पक्षियों की तरह उड़ा जा सकता है। मोटर या रेल में बैठकर घोड़ों से कई गुना तेज चला जा सकता है। दूरबीन और टेलीवीजन की सहायता से घर बैठे हजारों योजन के दृश्य, आँखों से देखे जा सकते हैं। टेलीफोन और रेडियो के द्वारा पृथ्वी के एक कौने की बात दूसरे कौने पर बैठकर सुनी जा सकती हैं। नल आप के घर में दिन-रात जल की वर्षा करते हैं। खेतों में नहर लिए हुए वरुण देवता खड़े है। आज्ञा पाते ही बिजली का प्रकाश करने को सूर्यनारायण तैयार हैं। बटन दबाने की देर है कि वायुदेव चौकीदार की तरह पंखा करने में जुट जायेंगे। यहीं तक नहीं अग्निवाण, मोहनास्त्र, विद्युतावाण, ब्रह्मपाश, नागपाश आदि शत्रु निवारण के महान हथियारों की सीमा को तोड़-फोड़ कर आज के युद्ध अस्त्र अपने गजब के चमत्कार दिखा रहे हैं। बीस हजार वर्ष पुराने जमाने का कोई आदमी यदि आज के जमाने को देखने के लिए जीवित रहा होता तो निःसन्देह मुक्तकंठ से उसे कहना पड़ता—यह सिद्धों का, यज्ञ गंधर्वों का युग है। यहाँ सिद्धियाँ हर एक मनुष्य के पैरो में लोटती फिरती हैं। जो बातें हमारे जमाने के लोगों को स्वर्गलोक के देव लोगों का वैभव मालूम होती थीं वह मृत्युलोक के साधारण व्यक्तियों के चारों ओर बिखरी पड़ी हैं। इसी प्रकार आज के जमाने का मनुष्य यदि किसी प्रकार पाँच हजार वर्ष तक जीवित रह सके तो तब वह ऐसे-ऐसे नये साधन देखेगा जिन्हें देखकर उसके आश्चर्य की सीमा न रहेगी। तब वह आदमी कहेगा आज मैं ऐसी-ऐसी सिद्धियाँ लोगों के पैरों में पड़ी हुई देखता हूँ जो सन् १९४५ ई. के लोगों को स्वप्न में भी प्राप्त न थीं और कोई इनकी कल्पना भी न कर सकता था।

अभी बहुत-सी कल्पनाएँ इच्छाएँ और भी बाकी हैं। जैसे अदृश्य हो जाना, अमर हो जाना, छोटा हो जाना, बड़ा हो जाना, शरीर बदल लेना आदि-आदि। विज्ञान ने शारीरिक आविष्कार में अभी उतनी प्रगति नहीं की है जितना कि भौतिक आविष्कारों की दशा में। फिर भी बन्दर की गिल्टियाँ लगाकर बूढ़े को जवान बना देना, नौजवानों के खून के इंजैक्शन लगाकर फिर तरुणाई ला देना, मनुष्यों की तरह बात-चीत और काम करने वाले मशीनों के आदमी बना लेना, हड्डी टूट जाने पर वहाँ जानवरों की हड्डी फिट कर देना, आदि प्रगतियाँ धीरे-धीरे हो रही हैं। कौन जानता है कि दस पाँच हजार वर्ष पीछे अणिमा महिमा, लघिमा आदि सिद्धियाँ उस जमाने आविष्कारों के सामने वैसी ही तुच्छ न मालूम पड़ने लगेंगी जैसी कि आज पानी पर चलना और तेज दौड़ना आदि निरर्थक मालूम पड़ती हैं।

पुरानी पुस्तकों में नाना प्रकार की सिद्धियों का वास्तविक, काल्पनिक, रोचक, अलंकारिक और आकर्षण वर्णन लिखे हुए मिलते हैं। इस उल्लेख का एक मात्र हेतु यह है कि मनुष्य अधिकतम सुख-सुविधाओं की आकांक्षा करें और उनकी प्राप्त के प्रयत्न में जुटे रहें। तत्वदर्शी आचार्य जानते हैं कि जीव का व्यक्तिगत और सामूहिक लाभ इसी में है वह उन्नति के पथ पर तीव्रगति से जुटा रहे। सृष्टि के आदि में देवता और राक्षसों ने मिल कर समुद्र का खारी और निरर्थक जल मथ डाला था, फल स्वरूप उन्हें चौदह अमूल्य रत्न तो उसी समय मिल गये थे। तब से आज तक असंख्य मनुष्य समुद्र के गर्भ में से सम्पत्तियों से महा भण्डार ढूँढ़ते और निकालते रहे हैं। ढूँढ़ने वालों का पौरुष थक जायेगा पर समुद्र की रत्न राशि न घटेगी, यह एक शाश्वत सत्य है कि 'मंथन सें रत्न मिलती थी। बुद्धि का मंथन कीजिए, विद्या पढ़िए, शरीर का मंथन कीजिए, पहलवानी कीजिए, आत्मा का मंथन कीजिए, योग साधिए संसार का मंथन कीजिए' महत्त्वपूर्ण कार्यों का सम्पादन कीजिए जिधर भी पग बड़ाइये जिधर भी मंथन कीजिए रत्नों को राशि मिलेगी। इस संसार में दृश्य और अदृश्य अनेकों समुद्र हैं, आप जिसका भी मंथन करेंगे, जिस दिशा में प्रगति करेंगे उसी दिशा में सफलताओं का सिद्धियों का समूह प्राप्त होगा।

हमारे यहाँ मथुरा से छः मील दूर वृन्दावन में एक 'पुराना गोविन्दा' नाम का मन्दिर है। इसकी इमारत बड़ी आलीशान है—कहते हैं कि उसे रातोंरात किसी भूत ने बना दिया था। इसके पड़ौस में ही रंगजी का मन्दिर है। यह सेठ लखमीचन्द्रजी का बनवाया हुआ है। जयपुर वाला मन्दिर भी पास ही है। यह दोनों मन्दिर भी अपने ढंग के अनौखे हैं और इनके अन्दर भी ऐसी विशेषताएँ हैं जिनके कारण वह भी उस भूतों के बने मन्दिर से कम नहीं ठहरते। भूत, देव, दानव और यक्ष राक्षसों की शक्तियो का बड़ा महत्त्व दिया जाता है परन्तु सच पूछा जाय तो मनुष्य स्वयं इन सब से ऊपर है। मनुष्य ने भक्त बनकर भगवान को वश में कर लिया है, तपस्या करके देवताओं को अपने काबू में कर लिया है, पुरुषार्थ और बुद्धि कौशल से सृष्टि की समस्त जड़ चेतना शक्ति पर अपना अधिकार कर लिया है। इस लोक में जैसे देवताओं की शक्तियों की प्रशंसा की जाती है कौन जानता है कि बेचारे देवता इस सर्वग्राही मानव प्राणी की क्रियाशक्ति को देखकर दाँतों तले अँगुली दबाये बैठे होंगे।

मनुष्य स्वयं शक्ति सम्पन्न, तेजपुन्ज, महानताओं का भण्डार और सिद्धियों का समूह है। इसकी नस-नस में सिद्धियों और बोटी-बोटी में ऋद्धियाँ समाई पड़ी हैं। जब तक यह सोया हुआ, आलसी और अचेतन्य पड़ा है तब तक यह दीन, दरिद्री, भाग्य का मारा ग्रहों का सताया है जब वह जागृत होकर अपनी शक्तियों का निरीक्षण करता हुआ अपना गौरव अनुभव करता है, और अपने पुरुष नाम को सार्थक करता हुआ पुरुषार्थ करने पर खड़ा होता है तो एक से एक बड़ी सिद्धि, एक से एक महान सम्पदा उसके चरणों में लोटती है। भगवान ने पातंजलि योगदर्शन में कहा है—'प्रतिभायाँ सर्व सिद्धि' अर्थात्-प्रतिभा से सब सिद्धियाँ मिलती हैं। सम्पूर्ण सिद्धियों की जननी प्रतिभा है। प्रतिभाशाली मनुष्य एक प्रकार का 'सिद्धि पुरुष' होता है,

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

वह जिस काम में हाथ डालता है उस काम में सफलता ही सफलता मिलती है। जब कोई मनुष्य अपनी महानता का अनुभव करता हुआ आत्मविश्वास और दृढ़ता के साथ किसी कार्य को पूरा करने में जुट पड़ता है तो उसमें सफलता प्राप्त कर ही लेता है। संसार का इतिहास ऐसे महापुरुषों की गुण गाथाओं से भरा पड़ा है जो आरम्भ में छोटे थे। गरीब घर में जन्मे थे, कोई उनका सहायक न था, साधनों से वे सर्वथाहीन थे तो भी उन्होंने प्रयत्न किया अपनी प्रतिभा के बल पर उन्नति की और अन्त में विजयी वीर पुरुषों की श्रेणी में अपना नाम लिख कर बिदा हुए। क्या यह सफलताएँ समृद्धियाँ किसी ने कृपा पूर्वक उन्हें उपहार में दी थीं ? नहीं-कदापि नहीं जो कुछ पाया, जो कुछ कमाया उन्होंने अपनी प्रतिभा के बल से उपार्जित किया। प्रतिभा ही सर्व सिद्धियों की जननी है—पातंजलि का यह कथन मिथ्या नहीं है।

नाना प्रकार की सिद्धियों का वर्णन प्राचीन पुस्तकों में मिलता है। उन्हें पढ़कर आप ऐसा न समझें कि बस यही सिद्धियों की अन्तिम मर्यादा है। पानी पर चलना, हवा में उड़ना, दूर की बात सुनना, दूर तक देखना, तेज चलना, यह सब आकांक्षाएँ मनुष्य ने अब बहुत अंशों में पूरी करली हैं जो अंश शेष हैं उसकी पूर्ति भी निकट भविष्य में हो जानी सम्भव है। आकांक्षायें नित नई पैदा होती हैं और कालान्तर में उनकी पूर्ति भी हो जाती है इस प्रकार सिद्धियों की सीमा भी नई निर्धारित होती है। आप इस बाह्य रूप में मत उलझिये वरन् गहरे उतरिए और अनुभव कीजिए कि सिद्धियों का आकर्षण इसलिये बनाया गया है कि मनुष्य साधना में प्रवृत्त रहे। साधना स्वयं एक सिद्धि है। काम करने में, संघर्षरत होने में, आगे बढ़ाने की तैयारी में, पुरुषार्थ में खुद एक आनन्द है और वह आनन्द सफलता के उपभोग से अधिक है कुछ देखते हुए मनुष्य का अंतःकरण जितना आशा, उत्साह, उल्लास, और भविष्य की कल्पना में आनन्द विभोर रहता है कुआ खुद जाने पर, उसका पानी प्रयोग में लाने पर उतना नहीं रहता। विवाह से पूर्व कितनी खुशी होती है परन्तु बीबी घर में आ जाने पर, बाल बच्चे हो जाने पर तो एक झमेला खड़ा हो जाता है। सफलता स्वयं उतनी आनन्ददायक नहीं है जितनी उसकी साधना। आज हवा में उड़ने वाले जहाजों का और तेज ले जाने वाली मोटरों का क्या महत्त्व है ? कुछ नहीं। इसी प्रकार अन्य इच्छाएँ जो आज लालायित किये हुए हैं पूर्ण हो जाने पर नीरस प्रतीत होंगी। आनन्द साधना में है। विज्ञ पुरुषों ने सिद्धि पथ पर चलने के लिए हमें इसीलिए प्रेरित किया है कि निरन्तर साधना में लगे रहें और उसका आनन्द निरन्तर चखते रहें। अमुक सीमा तक—अमुक सिद्धि तक—पहुँच जाने पर भी ठहरना न चाहिए वरन् निरंतर आगे ही बढ़ते रहना चाहिए।

साधना का एक मात्र है 'आत्मोन्नति'। आप अपनी उन्नति के मार्ग पर अग्रसर रहिए, अपने को अधिक से अधिक उन्नतिशील बनाने में जुटे रहिए। आत्मोन्नति ही सिद्धि है, यही विश्व की सेवा और परमार्थ है। अपने आप को उन्नतिशील बनाकर एक ऐसा नमूना संसार के सामने पेश किया जा सकता है कि जिसके नकल करने के प्रयत्न मात्र में दूसरों का भला हो। जो महापुरुष इस संसार से चले गये हैं वे भी संसार की बहुत भारी सेवा अब तक कर रहे हैं उनके चरित्र से असंख्य मनुष्य को बल मिलता है और पथ प्रदर्शन होता है। अपनी भीतरी और बाहरी उन्नति से सन्तुष्ट नहीं होना चाहिए वरन् आगे ही बढ़ते चलना चाहिए। स्वास्थ्य, ज्ञान, मैत्री, प्रतिष्ठा, सभ्यता, धन तथा साइन्स ये सातों वस्तुएँ अधिक से अधिक मात्रा में उपार्जित करनी चाहिए और इनका उपयोग सत्कार्यों में लोकहित के परमार्थ के कामों में करना चाहिए। आत्मोन्नति की साधना का मार्ग ऐसा आनन्द मय है कि उसे प्रत्यक्ष सिद्धि की कहा जा सकता है।

अष्ट—सिद्धियों एवं नवनिधियों का स्वरूप व उनका जागरण

आत्मा अनंत शक्तियों का भांडागार है। उसमें अपने उद्गम केन्द्र परमेश्वर की समस्त शक्तियाँ बीज रूप में सन्निहित हैं। उन्हें उगाने और बढ़ाने के लिए योग साधना एवं तपश्चर्या का खाद-पानी लगाना पड़ता है, साथ ही साथ उच्चस्तरीय चरित्र निष्ठा एवं उदार सेवा सहायता का अवलंबन अपनाना पड़ता है। इस नीति को अपनाकर कोई भी साधक बुद्धिमान माली की तरह अपने अंततः क्षेत्र में विद्यमान ऋद्धि-सिद्धियों को उभार कर उनसे भरा-पूरा उद्यान खड़ा कर सकता है। इसके लिए बाहर से कुछ ढूँढने, या लाने या पाने की आवश्यकता नहीं है। मात्र कषाय कल्मषों की परतों को हटा देने भर का साहस सँजों लेना पर्याप्त है। आत्मशोधन और आत्म परिष्कार ही विभिन्न साधनाओं, तपश्चर्याओं का वास्तविक उद्देश्य है। अंगारे पर चढ़ी राख की परत ही उसे धूमिल और निस्तेज बना देती है। यह परत हटते ही अंगारा फिर अपनी गर्मी और प्रकाश का परिचय देने लगता है। चिंतन, चरित्र एवं कर्तृत्व को यदि उत्कृष्ट एवं उच्चस्तरीय बना लिया जाय तो फिर आत्मिक प्रखरता के कारण उपलब्ध होने वाली असंख्य ऋद्धि-सिद्धियों के मार्ग में और कोई बड़ा व्यवधान शेष नहीं रह जाता है।

योगाभ्यास परक साधना एवं उपासना के समस्त क्रियाकलाप विधि विधान इस उद्देश्य के लिए विनिर्मित हुए हैं कि उनमें निर्दिष्ट संकेतों का अनुसरण करते हुए मनुष्य अपने व्यक्तित्व को अधिकाधिक परिष्कृत एवं उदात्त तथा स्वयं को पवित्र बनाता चले। आत्म परिष्कार की इस प्रक्रिया में जिसने जितनी सफलता पायी वह उसी स्तर का सन्तऋषि महामानव देवता एवं अवतारी कहा गया। सामान्य मनुष्यों की तुलना में इन महामानवों को ब्रह्मलोक के निवासी कहा और उन्हें चमत्कारी माना जाता है। लौकिक सफलताओं को समृद्धि कहते हैं। किन्तु आत्मोत्कर्ष की अलौकिक उपलब्धियाँ 'विभूतियाँ' तथा 'सिद्धियाँ' कहलाती हैं। सिद्ध पुरुषों के चमत्कारी कर्तृत्व ही संसार भर के महामानवों को ऐतिहासिक श्रेय सम्मान प्रदान करते हैं। उनकी गतिविधियाँ एवं सफलतायें असाधारण होती हैं। इसलिए उन्हें चमत्कारी भी कहा जाता है। यह चमत्कार बाजीगरों की जादूगरी जैसी कौतुक कौतूहल नहीं होते वरन् इस

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

तरह अर्जित प्रतीत होते हैं कि भव-बंधनों में जकड़े हुए दीन दयनीय मनुष्यों के लिए जो सम्भव नहीं था वह उन्होंने सामान्य परिस्थितियों और स्वल्प साधनों से ही किस प्रकार आश्चर्यजनक ढंग से कर दिखाया। साधना से सिद्धि मिलने और सिद्धि के चमत्कारी होने की मान्यता का यही सुनिश्चित और ठोस आधार है।

जीवनोद्देश्य की पूर्णता ही सबसे बड़ी सिद्धि मानी जाती है। साधना का लक्ष्य उसे प्राप्त करना है। योगशास्त्रों एवं उपनिषदों में वर्णित चौरासी प्रकार के योग एवं विविध विधि तप-साधनाओं का लक्ष्य उसी तक पहुँचाने का है। साधना मार्ग पर चलते हुए मील के पत्थरों की तरह अनेकों छोटी-बड़ी सिद्धियाँ भी बीच-बीच में आती रहती हैं। इनमें लौकिक ऐश्वर्य और पारलौकिक सुख-शान्ति का मार्ग प्रशस्त होता है।

सिद्धियों का वर्णन सभी योग ग्रन्थों में मिलता है। योग और सिद्धपुरुषों में कुछ विलक्षण प्रतिभा सामर्थ्य एवं शक्ति देखी जाती है। उनमें सामान्य मनुष्य की अपेक्षा कहीं विशिष्ट आत्मबल होता है जो विविध रूपों मे परिलक्षित होता है। सिद्धपुरुष अपनी उपार्जित सिद्धियों का लाभ अपने निज के लिए नहीं उठाते पर उनसे दूसरे सत्पात्रों को लाभान्वित करते रहते हैं। आपना आत्मबल देकर दूसरों की आत्मा को ऊपर उठा देने की महान सेवा तो वे निरन्तर करते ही रहते हैं। यदा-कदा किन्हीं सांसारिक अभाव और कष्टों से पीड़ित व्यक्तियों को अपनी साधना का एक अंश देकर उन्हें कष्टमुक्त कर देते हैं। ऐसी स्थिति में उन्हें अपना पुण्य तप कष्ट पीड़ित को दान रूप में देना पड़ता है और उसके कठिन प्रारब्ध भोग को भुगतने को स्वयं तत्पर होना पड़ता है। संसार में हर वस्तु एक नियत नियम के आधार पर चल रही है। केवल कोरे आशीर्वाद देने से किसी का कोई भला नहीं हो सकता। सच्चा आशीर्वाद जो फलित हो वही व्यक्ति दे सकता है जिसके पास तप की पूँजी संग्रहीत हो और उसके एक भाग को आशीर्वाद के साथ देते हुए दूसरे का कठिन प्रारब्ध भोगने के लिए स्वयं तैयार हो। शक्तिपात के द्वारा दूसरों की आत्मा को ऊँचा उठाने में भी यही प्रक्रिया पूर्ण करनी पड़ती है यह सब सिद्ध पुरुषों के लिए ही सम्भव है और सिद्धि साधना के ऊपर टिकी हुई है। कठिन तपश्चर्या एवं उच्चस्तरीय व्यक्तित्व द्वारा ही उसे उपार्जित या उलब्ध किया जा सकता है। उपहार रूप में वह किसी को नहीं मिलती।

साधना मार्ग में अग्रसर साधकों को समयानुसार जो सिद्धियाँ मिलती हैं। उनका वर्णन योगशास्त्र एवं उपनिषदों में मिलता है। उनकी संख्या आठ हैं, जिन्हें अष्ट सिद्धियाँ भी कहते हैं। उनका वर्णन इस प्रकार है—

(१) **आत्म सिद्धि**—इन्द्रिय संयम, मनोनिग्रह, स्थित प्रज्ञता की प्राप्ति 'समाधि' आत्मा साक्षात्कार 'ईश्वर दर्शन' तत्वज्ञान भूतजय मोक्ष मंचक्लेशों से निवृत्ति भव-बंधनों से मुक्ति संसार की किसी भली बुरी परिस्थिति का प्रभाव ग्रहण न करना।

(२) **विविधा सिद्धि**—पंच तत्त्वों पर नियंत्रण उनके द्वारा अभीष्ट वस्तुयें तथा परिस्थितियाँ उत्पन्न कर सकना दूसरों के मन में अपनी भावना तथा मान्यता की स्थापना।

(३) **ज्ञान-सिद्धि**—तीक्ष्ण बुद्धि, तीव्र स्मरण शक्ति भूतकाल में हुई तथा भविष्य में होने वाली घटनाओं को जान सकना दूरस्थ और समीपवर्ती परिस्थितियों का समान रूप से साक्षात्कार पूर्वजन्मों का वृत्तांत जानना सब प्राणियों के मनोगत भावों को जानना, शास्त्रों का सारदर्शन, अन्तःकरण में वैराग्य और निस्पृह प्रेम।

(४) **तपसिद्धि**—कठोर तप कर सकने की शक्ति, सर्दी-गर्मी को बिना कष्ट के सहन भूख प्यास पर नियन्त्रण जल थल और आकाश पर विचरण कर सकना।

(५) **क्षेत्र सिद्धि**—थोड़े स्थान में बहुत विस्तृत वस्तुओं का समा सकना, सूक्ष्मशरीर द्वारा देश-देशान्तरों ओर लोक-लोकान्तरों में भ्रमण कर सकना अपने तेजस् को बाहर दूर-दूर तक फैला कर उस क्षेत्र के दुःख तथा अभावों को दूर कर सकना शरीरस्थ देवताओं का साक्षात्कार।

(६) **देवसिद्धि**—देवताओं, यक्ष, गंधर्व, प्रेत, पिशाच, बेताल, ब्रह्मराक्षस, छाया पुरुष आदि का अनुग्रह स्वामित्व और सहयोग प्राप्त करना। मन्त्र सिद्धि, सिद्ध योगियों का ब्रह्मरंध में सम्बन्ध-सान्निध्य, षट्चक्रों और कुण्डलिनी का जागरण।

(७) **शरीर सिद्धि**—दृष्टि या स्पर्श मात्र से दूसरों को निरोग और कष्ट मुक्त कर देना है। अपार शारीरिक बल, अद्भुत मनोबल, उत्कृष्ट चिंतन, निर्बाध भाषण, शाप-वरदान से दूसरों को नष्ट कर देना या जीवन दान देना स्पर्श से पदार्थों का स्वादिष्ट और सुगन्धित हो जाना, स्वल्प आहार से बहुतों की तृप्ति कर देना वाणी एवं आशीर्वचनों का सफल होना शरीर का कायाकल्प दीर्घजीवन या अमर होना।

(८) **विक्रिया सिद्धि**—अपने शरीर अन्य शरीरों में परिवर्तित कर लेना, दूसरों के शरीरों को परवर्तित कर देना, शरीर को अति भारी, अति हल्का, अति सूक्ष्म, अति विशाल बना लेना, अन्तरध्यान हो जाना, सर्ववशीकरण, सब कामनाओं की पूर्ति के साधन जुटाना।

पातंजलि योगदर्शन एवं अन्यान्य ग्रन्थों में जो आठ सिद्धियाँ गिनायी गयी हैं, वे इस प्रकार हैं (१) अणिमा—शरीर को अणु के समान सूक्ष्म कर लेना, (२) महिमा—शरीर को बहुत बड़े आकार का बना लेना, (३) गरिमा—शरीर को बहुत भारी बना लेना, (४) लघिमा—शरीर को बहुत हलका कर लेना, (५) प्राप्ति—दूरस्थ पदार्थों को स्पर्श अथवा प्राप्त कर लेना, (६) प्राकाम्य—कामनाओं को अभिलाषित रूप में पूर्ण कर लेना, (७) ईशित्व—शरीर और मनके भीतर संस्थानों एवं चक्रों पर प्रभुता तथा संसार के अन्य पदार्थों को अपनी इच्छानुसार प्रयोग कर सकने की सामर्थ्य, (८) वशित्व—सब परिस्थितियों अथवा वस्तुओं को अपने वशवर्ती रख सकना।

अन्य शस्त्रों में सिद्धियों को अन्य रूपों में भी उपस्थित किया गया है, जिनका उल्लेख कई प्रकार से मिलता है। आद्य शंकराचार्य के मतानुसार सिद्धियाँ निम्न प्रकार की हैं—

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

(१) जन्म सिद्धि—जन्म से ही पूर्व संचित संस्कार तथा वैभवप्राप्त होना, (२) शब्द ज्ञान सिद्धि—श्रवण मात्र से ही अनुमान होना, (३) शास्त्र ज्ञान सिद्धि—शास्त्रों के अभ्यास से असाधारण बुद्धि का विकास, (४) आधिभौतिक ताप सहन शक्ति, (५) आध्यात्मिक ताप सहन शक्ति, (६) आधि दैविक सहन शक्ति, (७) विज्ञान सिद्धि—अंतः करण से तत्त्वज्ञान का स्फुरन होना, (८) विद्या सिद्धि—विद्या के द्वारा अविद्या का नाश किन्हीं-किन्हीं शास्त्रों में (१) परकाया प्रवेश, (२) जल आदि में असंग, (३) उत्क्रान्ति, (४) ज्वलन, (५) दिव्य श्रवण, (६) आकाश मार्ग गमन, (७) प्रकाशावरण क्षण, (८) भूत जय आदि को अष्टसिद्धियाँ माना गया है

सच तो यह है कि मनुष्य शरीर मे समस्त देवशक्तियाँ विद्यमान हैं जिन्हें साधना एवं तपश्चर्या द्वारा जागृत एवं विकसित किया जाता है। इस दिशा में अपने गुण, कर्म, स्वभाव एवं चिन्तन, चरित्र, व्यवहार में साधक जितनी अधिक पवित्रता एवं प्रखरता का समावेश करता जाता है, उसी क्रम से एक से बढ़कर एक उच्चस्तरीय विभूतियाँ, सिद्धियाँ हस्तगत होती चली जाती हैं। मनुष्य का मौलिक स्वरूप देवत्व प्रधान है। अतः शारीरिक, मानसिक और आत्मिक क्षेत्र की सिद्धियाँ भी अगणित प्रकार की हैं, उन्हें आठ या किसी अन्य संख्या में विभाजित नहीं किया जा सकता। आत्मबल को जिस दिशा में लगा दिया जाय, उसी में चमत्कार पैदा हो जायेगा और वह एक स्वतन्त्र सिद्धि दिखाई देने लगेगी।

साधना की सफलता के रूप में उपरोक्त सिद्धियाँ समयानुसार सामने आती हैं, पर उनकी ओर आकर्षित होना, उन्हें अधिक महत्त्व देना, उनका प्रदर्शन करना अथवा उनसे कोई भौतिक लाभ उठाना, गर्व करना और चमत्कारी बनकर लोगों को अपने पीछे लगाना एक भारी भूल है।

योगदर्शन विभूति पाद (३७) में कहा गया है— **"ते समाधावुपसर्गा व्युत्थाने सिद्धयः।"** अर्थात् ये सिद्धियाँ समाधि में विघ्न रूप हैं। जागृत अवस्था में सिद्धियाँ हैं। इसी ग्रन्थ में वि. पा. के ५०वें सूत्र में उल्लेख है—**"तद्वैराग्यादपि दोष बीज क्षये कैवल्यम्।"** अर्थात् इन सिद्धियों से भी मन हटा लेने पर दोषों का बीज नाश होकर मुक्ति की प्राप्ति होती है। इसी प्रकार 'योग सुधाकर' में कहा है—**'यदि तन्नापेक्षास्यतातदा मोक्षाद् भ्रष्टः। कथं कृतकृत्य ताधिधात्'** अर्थात् यदि इन सिद्धियों की आकांक्षा रही तो साधक मोक्ष-पथ से भ्रष्ट हो जायेगा। फिर उसे लक्ष्य प्राप्ति कैसे होगी?

ईश्वर का अनुग्रह तथा पूर्णता का लक्ष्य प्राप्त करने के लिए एक मात्र उपाय साधना है। इसे परम पुरुषार्थ माना गया है। अपने कुसंस्कारों से निरन्तर लड़ते रहना, जीवन क्षेत्र में सत्प्रवृत्तियों की फसल उगाना, पशुता का देवत्व में परिणत कर देना—यही है साधना का स्वरूप। साधना उपक्रमों के साथ जुड़े हुए इस दिशा निर्धारण को जो समझते हैं और बिना हारे अनवरत प्रयास करते हैं, उन्हें सिद्ध पुरुष होने का अवसर निश्चित रूप से मिलता है। साधना से सिद्धि का सिद्धान्त अकाट्य है। प्रयास के साथ जुड़ी हुई उपलब्धि का प्रमाण, परिचय हर साधक कभी भी, कहीं भी प्राप्त कर सकता है। साधक को सिद्धियाँ मिलती हैं जिसको देखते हुए यह जाना जा सकता है कि साधना में कितनी प्रगति हुई। सिद्धियाँ और चमत्कारी क्षमतायें, दैवी अनुग्रह केवल इसलिए उपलब्ध होते हैं कि उनका उपयोग मानव कल्याण के लिए किया जा सके। यही साधना का मूल लक्ष्य है एवं इसी राजमार्ग पर चलते हुए वह सब कुछ पाने का प्रयास किया जाना चाहिए जो कि साधक को अभीष्ट है।

साधना-क्षेत्र में अग्रसर होने पर आत्मिक बल बढ़ने से कई प्रकार की शक्तियाँ, सिद्धियाँ, अतीन्द्रिय क्षमतायें प्राप्त होती हैं परन्तु कुछ प्रत्यक्ष सिद्धियाँ ऐसी हैं जिनका हर कोई प्रत्यक्ष अनुभव कर सकता है।

(१) जिसकी दिलचस्पी आत्मिक क्षेत्र में होती है वह आत्मा को शरीर से भिन्न समझता है और सांसारिक पदार्थों की नश्वरता को भली भाँति समझता है, इसलिये थोड़ी वस्तुएँ प्राप्त होने पर भी बिना कुड़कुड़ाये काम चला लेता है और वियोग, हानि, नाश आदि के कारण दुःखी नहीं होता तीन चौथाई दुःख मानसिक होता है, इनसे उसे सहज ही छुटकारा मिल जाता है। लोग दुःख निवारण के लिये सारा जीवन खपा देते हैं फिर भी सन्तोष की स्थिति प्राप्त नहीं होती किन्तु आत्मज्ञान से अनायास ही उसकी प्राप्ति हो जाती है यह पहली सिद्धि है। (२) आत्मभाव, प्रेम सद्भाव, ईमानदारी, सेवा सहायता की बुद्धि जागृत होने से अपना व्यवहार दूसरों के साथ बहुत ही उदार, विनम्र और मधुर होने लगता है फलस्वरूप दूसरों का व्यवहार भी अपने साथ वैसा ही मधुर, सहायता पूर्ण एवं सरस होता है मित्रों प्रेमियों, हितचिन्तकों और प्रशंसकों की संख्या बढ़ने से मन प्रसन्नता और प्रफुल्लता से भंग रहता है यह दूसरी सिद्धि है। (३) आत्म-निरीक्षण द्वारा कुवृत्तियों को पहचान कर उनसे बचने का प्रयत्न करते रहने से मानसिक शान्ति बनी रहती है, पापों की बढ़ोतरी नहीं होती चित्त की शुद्धि होने से अन्तःकरण हलका होता रहता है और नाना प्रकार के मानसिक विक्षेप उठकर घबराहट बैचेनी उत्पन्न नहीं करते यह तीसरी सिद्धि है। (४) चित्त की स्थिरता का शरीर पर भारी प्रभाव पड़ता है इन्द्रिय संयम और शान्त मस्तिष्क के कारण शरीर निरोग और दीर्घजीवी रहता है यह चौथी सिद्धि है। (५) सात्विक वृत्तियों के बढ़ने से धैर्य, साहस, स्थिरता, दृढ़ता, परिश्रमशीलता की वृद्धि होती है, इनसे असंख्य प्रकार की योग्यताएँ बढ़ती हैं और कठिन काम आसान हो जाते है यह पांचवीं सिद्धि है। (६) मनुष्यता की मात्रा बढ़ जाने से सब लोग उसका विश्वास करते हैं, विश्वास के पथ प्रदर्शन, नेतृत्व और कार्यक्रम को लोग अपनाते हैं, उसके व्यक्तित्व की जमानत पर बड़ी से बड़ी जोखिम उठाने और त्याग करने को लोग तैयार हो जाते हैं, बिना राज्य शासन करना छटवीं सिद्धि है। (७) बुद्धि परिमार्जित होने के कारण दूसरों की मनोदशा समझने की योग्यता हो जाती है, निर्मल बुद्धि पर स्वच्छ दर्पण की तरह दूसरों के मन का चित्र स्पष्ट रूप से आ जाता है। अन्य व्यक्तियों के मनोगत भावों को समझकर उनके साथ तदनुकूल व्यवहार करने से अपनी कार्य पद्धति सफल लाभदायक एवं मिलनसार होती है, यह सातवीं सिद्धि है। (८) आत्मा की पवित्रता के कारण जीवन मुक्ति

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

मिलती है ईश्वर प्राप्ति होती है, सत्‌चित्त आनन्द पूर्ण स्थिति में निवास होता है, स्वर्ग और पुनर्जन्म मुट्ठी में रहते हैं यह आठवीं सिद्धि है। इन अष्ठ सिद्धियों को अध्यात्म पथ के साधक अपनी साधना के अनुसार न्यूनाधिक मात्रा में प्राप्त करते है, जिस सुख की तलाश में बहिमुर्खी व्यक्ति घोर प्रयत्न करते हुए मारे-मारे फिरते हैं फिर भी निराश रहते हैं उससे कई गुना सुख आध्यात्म साधक अनायास ही पा जाते हैं। अष्ट सिद्धि के प्रभाव से उनका जीवन हर घड़ी आनन्द से परिपूर्ण रहता है, दुःख की छाया पास में नहीं फटकने पाती।

नव सिद्धियाँ दूसरों के ऊपर प्रभाव करने के लिये हैं। पहलवान शारीरिक बल को बढ़ाकर स्वास्थ्य जन्य सुख भोगता है साथ ही उस बल के प्रभाव से दूसरों को हाने लाभ पहुँचाता है इसी प्रकार आत्मिक पहलवानों की ऋद्धियाँ सिद्धियाँ हैं। सिद्धियों के बल से अपने आप को उन्नत, पवित्र, शान्त, निर्भय एवं आनन्दित बनाता है और ऋद्धियों के बल से दूसरो को हानि लाभ पहुँचाता है। नौ ऋद्धियाँ निम्न प्रकार है:—

(१) आत्म बल के साथ जो भावना दूसरे पर फेंकी जाती है वह बाण के समान शक्तिशाली होती है। उनके आशीर्वाद एवं श्राप दोनों ही फलदायक होते हैं। श्राप और वरदान की प्राचीन गाथाएँ झूठी नहीं हैं, तपस्वी पुरुष सच्चे हृदय से किसी को आशीर्वाद दें तो वह व्यक्ति लाभान्वित हो सकता है और श्राप से आपत्ति में पड़ सकता है यह प्रथम ऋद्धि है। (२) तपस्वी पुरुषों की मामूली चिकित्सा से असाध्य और कष्ट साध्य रोग दूर हो सकते हैं उनकी चिकित्सा में आध्यात्मिक अमृत मिला होने के कारण ऊँचे चिकित्सकों की अपेक्षा भी वे अधिक लाभ पहुँचा सकते हैं यह दूसरी ऋद्धि है। (३) साधकों के आस-पास का वातावरण ऐसा विचित्र एवं प्रभावशाली होता है कि उसमें रहने से लोगों में असाधारण परिवर्तन हो जाता है। बुरे और ढीले स्वभाव के व्यक्ति साधु पुरुषों की संगति में रह कर बहुत कुछ बदल जाते हैं। उनकी शारीरिक और मानसिक बिजली इतनी तेज होती है कि पास आने वाले व्यक्ति को अपने रंग में रंगे बिना अछूता नहीं छोड़ती यह तीसरी ऋद्धि है। (४) मैस्मरेजन, हिप्नोटिज्म परकाया प्रवेश आदि तरीकों से वे निकटस्थ या दूरस्थ मनुष्य को सम्मोहित करके उसके अन्दर के मानसिक दोषों को हटा सकते हैं और उसके स्थान पर सद्‌गुणों के बीज अन्तर्मन में जमा सकते हैं यह चौथी ऋद्धि है। (५) पूर्व कर्मों के फलस्वरूप जिस प्रकार का भविष्य बन रहा है उसको पहले से ही देख सकते हैं यह पांचवीं ऋद्धि है। (६) भूतकाल की घटनाएँ और विचार धाराएँ नष्ट नहीं हो जाती वरन् ईथर तत्व में अंकित रहती हैं आध्यात्म साधक किसी व्यक्ति का भूतकाल अपनी दिव्य दृष्टि से देख सकता है और बिना पूछे किसी व्यक्ति का परिचय जान सकता है। यह छटवीं ऋद्धि है। (७) योग साधक अपनी शक्ति, पुराण, तपस्या, आयु, योग्यता का कुछ अंश दूसरों को दान कर सकता है तथा किसी के पाप और कष्टों को स्वयं भुगतने के लिये आत्मबल से अपने ऊपर ले सकता है यह सातवीं ऋद्धि है। (८) आत्मशक्ति से युक्त अपनी विचार धाराओं को अदृश्य रूप से ऐसे प्रचण्ड प्रभाव के साथ बहा सकता है कि असंख्य जनता को उन विचारों के सामने झुकना पड़े, आपने देखा होगा कि वक्की उपदेशक इधर-उधर कतरनी-सी जीभ चलाते फिरते हैं पर उनका कुछ भी प्रभाव नहीं होता, किन्तु सच्चे महापुरुष थोड़ा कहते हैं तो भी उनके प्रचण्ड विचार बड़े-बड़े कठोर हृदयों में पार हो जाते हैं उनका ऐसा तीव्र प्रभाव होता है कि उपेक्षा करना कठिन हो जाता है, आत्मशक्ति युक्त महापुरुष अपने मनोबल से जनता के विचार पलट सकते हैं युगान्तर उपस्थित कर सकते हैं यह आठवीं ऋद्धि है। (९) निराशों को आशान्वित, आलसियों को उद्यमी, मूर्खों को पंडित, रोने वालों को आनन्दित, पापियों को पुण्यात्मा, दरिद्रों को ऐश्वर्यवान, अभावग्रस्तों को वैभवशाली बना देना, सोते हुओं को जगा देना, नर को नारायण के रूप में परिवर्तित कर देना, अर्ध-मृतकों में प्राण फूँक कर सजीव कर देना यह नवमीं ऋद्धि है।

अष्ट सिद्धि नव ऋद्धि से स्वभावतः योगी लोग सम्पन्न होते हैं, जिसकी जितनी जैसी साधना है उसे उसी मात्रा में ऋद्धि सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं। इनका दुरुपयोग करना बुरा है। जहाँ इनसे बचने के लिये कहा गया है वहाँ उसका तात्पर्य इनका दुरुपयोग न करने से है अथवा कौतूहलपूर्ण बाजीगरी के निरर्थक खेलों में रुचि न लेने से है। योगी को स्वभावतः ऋद्धि सिद्धियाँ मिलती हैं यह प्राकृतिक क्रम है।

अध्यात्म क्षेत्र की तीन विशिष्ट सिद्धियाँ

सामान्य जन, अनेकानेक क्षुद्र योनियों के कुसंस्कारों से लदे होते हैं। शिश्नोदर-परायण पशु प्रदर्शन में ही उनका मन रमता और प्रयत्न चलता है। इस क्षेत्र से उठकर मानवी गरिमा के क्षेत्र में प्रवेश करने की प्रक्रिया अध्यात्म तत्त्वज्ञान और साधना विधान के सहारे ही सम्भव होती है। उसका आलोक अन्तराल में प्रवेश करता है, तो पुण्य-परमार्थ की प्रवृत्तियाँ उभरती हैं। पुण्य अर्थात् आत्मसंयम, परमार्थ अर्थात् सत्प्रवृत्ति सम्वर्द्धन में उत्साह। इन्हीं के समन्वय को देवत्व कहते हैं। महामानवे का यह कार्य क्षेत्र है। उनकी विचारणा एवं तत्परता इन्हीं दो प्रयोजनों पर केन्द्रित होती है, फलतः वे स्वयं कृतकृत्य होते हैं। और अपने सम्पर्क क्षेत्र में शलीनता का वातावरण उत्पन्न करने में चन्दन वृक्ष का उदाहरण बनते हैं। यह अध्यात्म क्षेत्र ही देवमानवों की नर-रत्नों की खदान है। इस विद्या का जब, जितना प्रचलन विस्तारण होता है, तब उसी अनुपात से वैयक्तिक प्रखरता का विस्तारण होता है, तब उसी अनुपात से वैयक्तिक प्रखरता और सामूहिक समर्थता की अभिवृद्धि होती है। सर्वतोमुखी प्रगति का पथ प्रशस्त होता है। चेतना में उत्कृष्टता का स्तर बढ़ने से स्वल्प साधनों को मिल-बाँटकर खाया और संतोषपूर्वक रहा जा सकता है। जबकि इनकी कमी पड़ने पर लोग आपस में टकराते और नारकीय दुष्प्रवृत्तियों में

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सर्वत्र अशान्ति उत्पन्न करते हैं। भले ही सम्पदा के पर्वत ईर्द-गिर्द ही क्यों न खड़े रहें।

इन तथ्यों पर ध्यान देने से अध्यात्म तत्त्वज्ञान और साधना विज्ञान की व्यावहारिक गरिमा प्रकट होती है। यह प्रतिफल ऐसे हैं, जिन्हें अपनाये जाने पर मनुष्य में देवत्व का उदय होना निश्चित है। जहाँ सज्जनता बढ़ने, वहाँ अपनी इसी धरती पर स्वर्ग जैसा वातावरण बिखरा-बिखरा फिरेगा। यही है—अध्यात्म की विभूतिवान परिणति, जिसके लिए उसे विचारशीलों द्वारा असाधारण महत्त्व दिया गया है और उनके महात्म्यों का वर्णन अलंकारिक आकर्षणों सहित व्यक्त किया गया है।

इसे दुर्भाग्य ही कहना चाहिए कि चेतना को नरक से उबार कर स्वर्ग में पहुँचने वाली इस विद्या को जादूगरी-बाजीगरी की पंक्ति में बिठा दिया गया है। प्रचलन में अध्यात्म का अर्थ कौतुक-कौतूहल चमत्कार जैसा माना जाता है और उस आधार पर छुट-पुट-सी हेरा-फेरी करने पर विपुल सम्पदायें मनमानी सफलतायें पाने का सपना देखा जाता है। अकर्मण्य लोग पुरुषार्थ के बल पर वैभव खोदने में सफल नहीं होते, तो इन हथकण्डों के सहारे सम्पत्तिवान और यशस्वी बनने की बात सोचते हैं। कईयों को चित्र-विचित्र दृश्यों के देखने की बाल-सुलभ उत्सुकता रहती है। कोई देवी देवता के अपने ईर्द-गिर्द नाचने-कूदने का दृश्य देखना चाहते हैं। कुछ को कुण्डलिनी सर्पिणी की फुफकार सुनने, आँखों के आगे आज्ञा चक्र घूमने, आकाश से पुष्प वर्षा होने जैसे कौतूहलों का मजा लूटने की इच्छा रहती है। कुछ हवा के हाथों मार कर इलायची, जलेबी आदि माँगने और मुफ्त की वस्तुओं का स्वाद चखना चाहते हैं। संक्षेप में यही है—ऋद्धि-सिद्धि का कौतुक-कौतूहल जिसके आधार पर किसी को गढ़ा दबा खजाना बताने का प्रलोभन और किसी को मारण-मोहन का भय दिखाकर अँगुली के इशारे पर नचाया जाता है। कुछ देवताओं के सोल-एजेण्ट बनते हैं और कुछ भविष्यवक्ता—भाग्यविधाता होने का दावा करते हुए अपने को सिद्ध पुरुष के रूप में चमत्कारी घोषित करते हैं। अब अणिमा महिमा जैसी हवा में उड़ने, पानी पर चलने और अदृश्य बनने जैसी करामातों के दावेदार तो नहीं रहे, पर बाजीगरों की तरह बालों में से बालू निकालने वालों की अभी भी कमी नहीं है। आश्चर्य होता है कि यह सारा भ्रम-जंजाल अध्यात्म के साथ कैसे जुड़ गया ? देवता से मलीनता का यह अम्बार किस प्रकार चिपक गया ?

अध्यात्म क्षेत्र के साधकों को जहाँ दूरदर्शी विवेकवान् होना चाहिये था, तथ्य और सत्य की परख में रस लेना चाहिए था, संयमी और परोपकार जैसी प्रवृत्ति से उन्हें विभूतिवान् रहना चाहिए था, वहाँ मुफ्त की मनोकामनायें पूरी कराने और कौतूहल देखने की ललक से उनका मनःक्षेत्र किस कारण इतना दिग्भ्रान्त और कलुषित हो गया। पुरातन उदाहरणों में अध्यात्म क्षेत्र के साधक और प्रवक्ता ऋषि स्तर के ही दीख पड़ते हैं। उन्हें ऋषि तुल्य जीवनयापन करते और अहर्निश लोकसेवा में प्राणपण से निरत पाते हैं। पर आज तो सब कुछ उल्टा है। तथाकथित साधु-सन्तों की मनःस्थिति और परिस्थिति को कसौटियों पर कसने पर प्रतीत होता है कि महामना के स्थान पर प्रवंचना और विडम्बना ने बुरी तरह आधिपत्य जमा रखा है।

चमत्कारवाद की घुसपैठ इस क्षेत्र में कैसे हुई ? इसका आधार तपश्चर्या के आधार पर उपलब्ध होने वाली अतीन्द्रिय क्षमता के साथ जुड़ता-सा दीखता है। अन्तराल की गहन परतों में साधना के आधार पर प्रवेश करने वाले निःसन्देह अतीन्द्रिय क्षमतायें अर्जित करते हैं। अतिमानस का निखार होने पर व्यक्ति अति मानव बनता है। ऐसों के पास देवोपम स्तर की क्षमतायें होनी चाहिए। होती भी हैं। पर प्रश्न यह है कि उनका प्रदर्शन कौतुक-कौतूहल प्रदर्शित करने के लिए क्यों हो ? क्यों न उस विशिष्टता के आधार पर लोकमंगल की सामयिक एवं महत्त्वपूर्ण अवश्यकताओं को पूरा किया जाय ? पुरातन काल की ऋषि परम्परा यही थी। आत्मबल के धनी एक-एक महामानव ने अपने उपार्जन को सत्प्रवृत्ति सम्वर्द्धन के लिए प्रस्तुत किया है। किसी को चमत्कार तमाशे नहीं दिखाये। फिर आज उस प्रदर्शन की आवश्यकता क्यों पड़ गई ?

तथ्य यह है, कि किसी क्षेत्र में असाधारण पुरुषार्थ करने पर उसकी असाधारण उपलब्धियाँ भी हस्तगत होती हैं। सामान्यतया स्थूल शरीर ही व्यवहार में आता है और उससे सम्बन्धित बलिष्ठता, सम्पन्नता, प्रतिभा जैसी सम्पदायें उपार्जित की जाती हैं। सूक्ष्म शरीर और कारण के क्षेत्र और भी अधिक महत्त्वपूर्ण विभूतियों से भरे पड़े हैं। उसमें सृष्टा का समस्त वैभव बीजरूप से प्रतिष्ठित है। प्रयत्नकर्ता उस सम्पदा को कुरेदने, उभारने और बटोरने में समर्थ हो सकते हैं। अतीन्द्रिय क्षमता का भण्डार हस्तगत कर सकते और देवमानव स्तर के चमत्कारी सिद्ध पुरुष बन सकते हैं। अध्यात्म क्षेत्र के वरिष्ठों में ऐसी ऋद्धि-सिद्धियों के समय-समय पर दर्शन होते भी रहते हैं। इसमें इतना तो सिद्ध होता है कि तपश्चर्या एवं योगसाधना के सहारे सूक्ष्म शरीर और कारण शरीरों की क्षमता को देवोपम स्तर तक उभारा-उठाया जा सकता है।

इतना जानने वालों को इतना और भी जानना चाहिए कि जिनके पास ऐसी विभूतियाँ होती हैं, वे उनका प्रदर्शन कौतुक-कौतूहल दिखाने जैसी आत्मश्लाघा एवं बाल-क्रीड़ा में कभी भी न करेंगे और ठगों की चापलूसी से प्रभावित होकर कुपात्रों की मनोकामना के निमित्त लुटाने की भूल करेंगे। उन्हें ध्यान रहता है कि इस उपार्जन का सदुपयोग मात्र लोकमंगल एवं सत्प्रवृत्ति सम्वर्द्धन के निमित्त ही हो सकते हैं। ऐसी दशा में कौतुक-कौतूहल देखने वालों और मुफ्त का वरदान बटोरने वालों का पक्ष हेय रहने से उन्हें निराश रहना पड़ता है। अध्यात्म क्षेत्र के सुसम्पन्नों में से प्रत्येक का स्तर एवं प्रयास यही रहा है। उनका उच्चस्तरीय उपार्जन व्यक्ति विशेष को इन्द्रकुबेर बनाने का नहीं वरन् मात्र लोकमंगल के लिए नियोजित रहा है। पुराण काल के ऋषियों से लेकर तत्कालीन बुद्ध, शंकर समर्थ परमहंस, गाँधी जैसे सन्त अध्यात्मवादी अपनी शक्ति को महान प्रयोजन में ही निरत रखे रहे हैं। सतप्रयोजनों के लिए ही उन्होंने अपनी सम्पत्ति के अनुदार हस्तान्तरित किए हैं। किसी भी लुटेरे की दाल उनके आगे नहीं गली। व्यक्तिगत सम्पन्नता पाने और गुलछर्रे उड़ाने के लिए कोई भी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

धूर्त उनकी जेब काट लाने में कुछ भी विडम्बना रचकर सफल नहीं हो सका। सन्त, सामान्य जनों की मनोदशा मोड़ते और सुधारते हैं। सस्ती चापलूसी के बदले अपने बहुमूल्य भण्डारों को, कुपात्रों को लुटाने या चित्र-विचित्र करामातें दिखाने की भूल सन्तों अध्यात्मवादियों में से आज तक किसी ने भी नहीं की है। जिनकी जेब खाली है, उन्हें ही करोड़पति जैसी शेखी बघारने और विडम्बना रचने में संलग्न देखा जाता है विभूतिवान् जिस तप साधना से सिद्धियों को अर्जित करते हैं, उसी जिम्मेदारी के साथ उसका उपयोग भी फूँक-फूँककर करते हैं। लुटाने का पाखण्ड रचने वालों में से शत-प्रतिशत ढपोलशंख ही होते हैं।

अतीन्द्रिय क्षमताओं की ऋद्धि-सिद्धि ऋषि स्तर के विशिष्ठ व्यक्तियों के पास ही होती है और उसका प्रयोग विशिष्ट प्रयोजनों के लिए ही होता है। सर्वजनीन सिद्धियाँ तीन हैं—(१) आत्मसन्तोष, (२) जनसहयोग और (३) दैवीअनुग्रह। इन्हें अध्यात्मवादी हाथों हाथ प्राप्त करता है और उनके महत्त्वपूर्ण प्रतिफल का रसास्वादन करते हुए अपने आपको कृत-कृत्य अनुभव करता है। यह सिद्धियाँ ऐसी हैं जिन्हें पारस, कल्पवृक्ष और अमृत की उपमा निःसन्देह दी जा सके।

आत्मसन्तोष के लिए ही दिन-रात श्रम करते और भले-बुरे कार्यों में हाथ डालते हैं। सम्पन्नता, बुद्धिमत्ता, प्रतिभा कितनी ही अधिक अर्जित करने पर उनका लाभ शरीर भर को मिलता है, आत्मा की क्षुधा पिपासा आन्तरिक उत्कृष्टता एवं उदार सेवा साधना से ही तृप्त होती है। सच्चे अध्यात्मवादी को इन्हीं दो प्रयत्नों में सर्वतोभावेन निरत होना पड़ता है, फलतः असीम मात्रा में आत्मसन्तोष मिलता है। जड़ें मजबूत एवं गहरी होने से ही वृक्ष विकसित होता है। आत्मा के समर्थन एवं आशीर्वाद से ही व्यक्तित्त्व की महानता उभरती है। फलतः साहस, उत्साह और संकल्प की कमी नहीं रहती। आत्मसन्तोष और आत्मबल अन्योन्याश्रित हैं। जहाँ एक होगा, वहाँ दूसरा भी रहेगा अन्तर्द्वन्द्व ही आत्मबल को नष्ट करते हैं। जहाँ आत्मा और परमात्मा की व्यक्ति और आदर्श की एकता है, वहाँ हर घड़ी प्रसन्नता बनी रहेगी और उल्लास भरी उमंगें उठती रहेंगी।

आत्मबल संसार का सबसे बड़ा बल है। वह जहाँ होता है, वहीं अन्य बल भीतर से उपजते बढ़ते भी हैं, और बाहर से खिंचते भी चले आते हैं। आत्मसम्पदा के धनी लोगों को भौतिक सम्पन्नता की भी कमी न रही। जहाँ क्षुद्रता से घिरे लोग कुकर्म करते और हेय स्तर अपनाने पर भी दरिद्र उद्विग्न बने रहते हैं, वहाँ आत्मबल के धनी बुद्ध और गाँधी की तरह हर स्तर की विभूतियों से घिरे रहते हैं। यह बात दूसरी है कि क्षुद्रजनों की तरह अपना पराया सब कुछ उदरस्थ ही नहीं करते रहते, वरन् उसे सत्प्रयोजन के निमित्त भगवान के खेत में बोते रहते है ताकि अदृश्य स्तर की दिव्य विभूतियों से उनका कोष हजारों गुना बढ़ता रहे। जिसे खिलाने में मजा आया वह खाने में काटौती करता है और ईश्वरचन्द्र विद्यासागर की तरह दूसरों को खिलाता रहता है। शबरी इसी आधार पर कृत-कृत्य हुई थी। गोपियों ने यही नीति अपनाकर भगवान् को ललचाया और आंगन में नचाया था। क्षुद्र जन खाना ही खाना जानते हैं, जबकि महान खिलाने का आनन्द लूटते और आत्मसन्तोष आत्मबल के धनी बनते हैं।

अध्यात्म क्षेत्र की दूसरी सिद्धि है—लोकसम्मान—जन सहयोग। हर किसी ही इच्छा लोकसम्मान पाने की होती है। सज-धज, ठाट-वाट में ढेरों समय और धन इसलिए लगता है कि लोगों की आँखों में चकाचौंध उत्पन्न हो, वरिष्ठता स्वीकारें, प्रभावित हों और वाह-वाह करने लगें। इस ललक की पूर्ति के लिए मनुष्य निरन्तर लालायित रहता है। 'स्टेट्स' बनाना 'स्टेण्डर्ड मेण्टेन' करना इसी को कहते हैं। इसी विडम्बना में मनुष्य का अधिक चिन्तन, श्रम और उपार्जन खप जाता है फिर भी पल्ले कुछ नहीं पड़ता, वरन् उलटे ईर्ष्या का शिकार होना पड़ता है। अपव्यय जन्य तंगी और उसकी पूर्ति के लिए अनीति अपनाने का एक कुचक्र अलग ही चल पड़ता है।

अध्यात्मवादी की आत्मपरिष्कार और लोकमंगल में संलग्न सत्प्रवृत्तियाँ जन-जन का मन जीत लेती हैं, सहज श्रद्धा उत्पन्न करती हैं, श्रेष्ठता को सदा वरिष्ठता मिलती है और उसे हार्दिक स्नेह सम्मान मिलता है। शत्रु भी प्रशंसा करते हैं। इसी आधार पर मनुष्य प्रामाणिक बनता है। जो प्रामाणिक है उसे भरपूर सम्मान मिलता है। यह तथ्य भी स्मरण रखने योग्य है कि सम्मान के साथ सहयोग भी जुड़ा हुआ है। जो जिसकी इज्जत करेगा वह उसका अनायास ही सहयोग करेगा। सहयोग ही वह आधार है, जिसके सहारे बहिर्मुखी प्रगति के पथ पर अग्रसर होना किसी के लिए सम्भव होता है। महामानवों को सफलतायें इसी आधार पर सम्भव हुई हैं। उन्होंने अपनी टाँगों से छलांग नहीं लगाई वरन् लोगों ने कन्धों पर बिठा कर उनको ऊपर उठाया और सफल बनाया है। इस स्तर की सफलता भले ही आँखों से तत्काल प्रत्यक्ष न दीखती हो, पर उसकी परोक्ष परिणति को तनिक-सी गहराई में उतरने पर सहज ही जाना जा सकता है। इस स्तर की सफलता को सच्चे अर्थों में सिद्धि कहा जा सकता है। इससे अपना ही नहीं दूसरे असंख्यों का भी भला होता है। आश्रितों को अनुकरण की प्रेरणा मिलती है और वातावरण में उत्कृष्टता का पक्ष उभर कर आता है।

दैवी अनुग्रह तीसरी सिद्धि है। सत्यप्रयोजन में आमतौर से सर्वसाधारण का व्यंग, उपहास, असहयोग, विरोध ही रहता है। प्रचलन के विपरीत कदम बढ़ाने वालों के मार्ग में लोग पग-पग पर अड़चनें, अटकाते, निरुत्साहित करते और विपरीत परामर्श देते हैं। ऐसी दशा में श्रेय पथ के पथिक को आत्म-विश्वास के सहारे एकाकी आगे बढ़ना होता है। स्पष्ट है कि विरोध में सारा वातावरण और प्रयास में साधन रहित एकाकी फिर सफलता कैसे मिली ? इस सन्दर्भ में परा दैवी शक्तियाँ सहायता करती और प्रतिकूलता को अनुकूलता में बदलती देखी गई हैं। इन्हीं के समर्थन से आदर्शवादी संकल्प को स्थिर रखने और साहस बनाये रहने में समर्थ होता है। आदर्शवादियों की सफलता का यही परोक्ष इतिहास है। उन्हें दैवी अनुग्रह के सहारे ही भँवरों को पार करते हुए, पार पहुँचाने का सौभाग्य मिला है। इतना ही नहीं, उसने अपनी नाव खेते हुए अगणित अन्यान्यों को भी पार उतारा है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

अणिमा, महिमा, लघिमा आदि सिद्धियाँ सम्भव हैं या नहीं? चमत्कार दिखाने और निहाल बनाने की जादूगरी का अध्यात्म से कोई सम्बन्ध है या नहीं ? इसका निर्णय इस विज्ञजन को अपने विवेक से करना चाहिए। किन्तु इस तथ्य को निश्चित रूप से गिरह बाँध लेना चाहिए कि अध्यात्म मार्ग का अवलम्बन करने पर व्यक्तित्त्व में उत्कृष्टता की सामर्थ्य का जो लाभ मिलता है, उसके सहारे आत्मसन्तोष जनसहयोग दैवी अनुग्रह की अजस्र वर्षा निश्चित रूप से होती है।

रहस्यमय सिद्धियाँ जो प्रत्यक्ष होती जा रही हैं

आदिमकाल के मनुष्य की न कोई भाषा थी न लिपि। बन्दरों की तरह अनगढ़ शब्द बोलकर वह अपनी बिरादरी वालों से तात्कालिक आवश्यकताओं के सम्बन्ध में साधारण-सा विचारों का आदान-प्रदान कर लेता था। पर प्रगति के लिए उसकी उत्कट अभिलाषा बनी रही। चेष्टा भी होती रही। इसका परिणाम हुआ उसने बहुत कुछ ऐसा सीखा और पाया जो अनादिकाल से उसे उपलब्ध नहीं था। आग जलाने, पहिया बनाने, वनस्पति उगाने, पशु पालने, वस्त्र बुनने और निवास आच्छादान बनाने जैसे आविष्कारों में जब वह सफल हुआ तो माना गया कि देवों ने सुख-सुविधा के अनेक साधन उस पर बरसा दिए।

इस प्रगतिशीलता पर विराम नहीं लगा। उसकी अग्रगामिता निरन्तर जारी रही। फलतः साहित्य, कला, संगीत, दर्शन, तर्क जैसे वैदिक और रेल, मोटर, तार, रेडियो जैसे विद्युत संचालित उपकरण बनाने का अवसर मिला। एक-एक करके प्रकृति के रहस्य खुले और मनुष्य क्रमशः अधिक कुशल, अधिक समर्थ बनता चला गया। वह गति अभी रुकी नहीं। जल-थल मथ डालने के बाद वह अन्तरिक्ष पर अधिकार करने की फिराक में है। महाविनाश के परमाणु बम जैसे साधन तो बना लिए हैं। आत्मघाती नशों का अभ्यास कर लिया है। पर सन्तुलित सृजन का क्षेत्र अधूरा पड़ा है। उस क्षेत्र में श्रीमन्त ही लाभान्वित हो रहे हैं। सामान्यजनों की—पिछड़े हुओं की—प्रगति अभी भी रुकी हुई है।

प्रगति के अनेक क्षेत्रों में एक महत्वपूर्ण धारा अध्यात्म की भी है। सामान्य मनुष्य उपार्जन, विलास, वैभव एवं सुरक्षा के ही सरंजाम जुटाता रहता है। उसे दौलत की असीम प्यास है ताकि उस आधार पर मनचाही वस्तुयें खरीद सके।

यह रहस्य चिन्तन की गहराई में उतरने वालों के ही हाथ लगा है मानवी चेतना को सुगठित, सुनियोजित एवं समुन्नत बना लेने पर व्यक्तित्त्व में चार चाँद लगते हैं। वह प्रतिभावान बनता है एवं सज्जनता के चुम्बकत्व से अनेकों का स्नेह-सहयोग अपनी ओर आकर्षित करता है। लोकव्यवहार में प्रामाणिकता को ही सबसे बड़ी पूँजी माना गया है। जिसे सज्जनोचित व्यवहार आ गया, तत्परता तन्मयता का अभ्यास कर लिया, समझना चाहिए कि उसने सर्वतोमुखी उत्कर्ष का द्वार खोल लिया।

व्यक्तित्त्व निर्माण से आगे का चरण, रहस्य भरे अध्यात्म क्षेत्र की अधिक जानकारी प्राप्त करना और उस परिधि पर छाई मूर्छना को जागृत में बदल देना है। यह साधना मार्ग है। इस पर चलते हुए सचेष्ट व्यक्ति उन क्षमताओं को जगाकर हस्तगत करता है, जो सर्वसाधारण को आश्चर्य चकित करती है। उन चमत्कारों को लोग देवी देवताओं का वरदान उपहार मानते हैं और इसे अदृश्य शक्तियों की अनुकम्पा मानते हैं किन्तु तथ्यतः वह आत्मजागरण का ही प्रतिफल होता है। बौद्धिक तथा भावनात्मक सम्पदाओं का केन्द्र बिन्दु अपना अन्तःकरण ही है। साधारण स्थिति में पड़ा रहने पर वह पेट-प्रजनन और प्रदर्शन की क्षुद्रताओं को पूरा करने के प्रयत्न में ही जुटा रहता है। प्रबल प्रयत्न करने पर भी यत्किंचित ही हाथ लगता है।

अध्यात्म विज्ञान का क्षेत्र इतना सीमित नहीं है कि उससे प्रतिभाशाली व्यक्तित्त्व का ही निर्माण, उपार्जन हो सके। वरन् इतना भी है कि गहन अन्तराल में छिपी हुई शक्तियों को जगाया और उभारा जा सके। उन बीज सूत्रों की कृषि करके विभूतियों की अच्छी खासी फसल उगाई जा सके।

मानवी चेतना की केन्द्र स्थली मस्तिष्क को माना जाता है। उसकी ऊपरी परत परिस्थिति को सुलझाने में कर्मरत रहती है। मध्यवर्ती परत को अचेतन कहते हैं। उससे शरीर और मन के विविध क्रिया एवं कलापों का सूत्र-संचालन सूक्ष्म रूप से होता रहता है। अन्तिम परिधि उच्चस्तरीय है। उसे प्रज्ञा, भूमा, दिव्यचितना आदि नामों से जाना जाता है। इसी में ऋद्धि-सिद्धियाँ सन्निहित रहतीं तथा साधना मार्ग अपनाने पर प्रस्फुटित भी होती हैं। शरीर अपने आप में एक उच्चस्तरीय बिजली घर है। उसकी साधना कर लेने पर अगणित वैज्ञानिक उपकरणों तथा अवलम्बनों का समुच्चय एक ही स्थान पर मिल जाता है। अन्तराल में छिपे हुए यह शक्ति स्रोत जब गतिशील होते हैं तो मनुष्य देवमानव की, सिद्ध पुरुष की—भूमिका निभाने लगता है। यह विभूतिमत्ता कहीं बाहर से नहीं आती अपितु भारत में ही उगती है। साधना किसी देवता को फुसलाने या अनुगृहीत करके बदले की अनुकम्पाद प्राप्त करने के लिए नहीं की जाती। उनका उद्देश्य अन्तराल की उस तिजोरी की चाभी प्राप्त करना है जिसमें दिव्यलोक की अनेकानेक रहस्यमयी सिद्धियों के भण्डार भरे पड़े हैं।

सिद्धि चर्चा सभी को आकर्षक और आश्चर्यजनक लगती है। वह प्रभावित एवं आकर्षित भी करती है। इसलिए आत्मिक प्रगति का लेखा-जोखा लेते समय यह पूछा जाता है कि इस प्रयास से क्या विशेषतायें हस्तगत हुईं। धन न सही, वर्चस्व तो उपलब्ध होना ही चाहिए।

अणिमा, महिमा, लघिमा और अष्टसिद्धियों की बात पुरानी हो गई। पूर्व युगों में काय संरचना आकाश और वायु प्रधान होती थी। तब अभ्यासी के लिए अदृश्य हो जाना, विशाल या छद्म रूप बना लेना जैसी विशेषताओं का प्रदर्शन सम्भव था। पर अब तो युग के अनुरूप मानवी काया में पृथ्वी तथा जल तत्त्व की प्रधानता रह गई है। अन्न, जल पर ही वह आश्रित है, इसलिए प्राचीन काल जैसी दिव्य क्षमताओं का

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org

प्रदर्शन तो सम्भव नहीं रहा, पर सामान्य सिद्धियों का प्रदर्शन अभी भी हो सकता है होता रहता है।

प्रत्यक्षवादी विज्ञानवेत्ताओं ने अकाट्य प्रमाण उदाहरणों के आधार पर यह पाया है कि थोड़े से अभ्यास से कुछ सिद्धियाँ मजबूत मनोबल वाले सहज ही अपने में विकसित कर सकते हैं। इनमें कुछ बहुचर्चित एवं सर्वविदित हैं। उन्हें अविश्वासी दृष्टि रखकर इस प्रकार कितनी ही कसौटियों पर कसा गया है ताकि उसमें छल प्रपंच की कहीं कोई गुंजाइश न रहे। इन सिद्धियों में चार प्रमुख हैं—(१) टेलीपैथी, (२) अतीन्द्रिय दृष्टि, (३) पूर्वज्ञान, (४) साइको काइनोसिस जिसे विलक्षण अनुभूतियों का सम्मिश्रण भी कह सकते हैं।

टेलीपैथी विचार-संचरण है। एक स्थान पर बैठा हुआ व्यक्ति किसी दूरवासी के साथ मानसिक सम्पर्क मिला सकता है। उसके विचार जान सकता है और अपने विचारों से उसे अवगत करा सकता है। यह रेडियो टेलीविजन से मिलती जुलती पद्धति है। जो कार्य तार टेलीफोन जैसे यन्त्रों की सहायता से होता है वह बिना किसी प्रत्यक्ष माध्यम से सम्पन्न होने लगता। पति-पत्नी के—माँ-बच्चों के वात्सल्य में तो भावनाओं का आदान-प्रदान दूरी का व्यवधान रहते हुए भी चलता रहता है। इसी को किसी साधारण परिचित या अपरिचित पर भी प्रयोग किया जा सकता है। बड़े परिणाम में जनसमुदाय पर एक विशेष प्रकार का मानसिक दबाव डालने के लिए ब्रेनवाशिंग का प्रयोग होता है वैज्ञानिक क्षेत्र में इसे ब्रेन वाशिंग का नाम दिया जाता है। एक तरह की विचारधारा को दूसरे प्रकार की दिशा में उलट देना इसी प्रक्रिया के अन्तर्गत आता है।

अतीन्द्रिय दृष्टि में एक्स-रे, लेसर किरणों जैसी विशेषता पैदा होती है। इसे तीसरा नेत्र खुलना भी कहते हैं। ज्ञान-चक्षुओं का उन्मीलन भी। किसी के मन की बात, उसकी जेब या अटैची टटोल लेना, जमीन में गड़े धन या खोये कागजों, पदार्थों को ढूँढ़ निकालना भी इस आधार पर सम्भव हो सकता है। भूमि के भीतर जलस्रोतों का पता लगाया जा सकता है। जिन गोपनीय बातों को साधारण बुद्धि रहने या साक्षी के अभाव में साधारण रीति से नहीं जाना जा सकता है, उनका ज्ञान अतिन्द्रिय दृष्टि के विकसित होने पर सहज की प्राप्त किया जा सकता है।

पूर्वजन्म की स्मृति साधारणतया छोटे बालकों में देखी गई है। प्रस्तुत परिवार के साथ सम्बन्ध घने न होने और पिछले जन्म के सम्बन्धों में झोल न पड़ पाने की दशा में अक्सर अपने पिछले जन्म का विवरण बताते हैं और बताये हुए स्थान तक ले पहुँचने पर वे अपने सम्बन्धियों तथा वस्तुओं को पहचानते और घटित हुई घटनाओं को बताते भी हैं। पर यह स्थिति आयु बढ़ने के साथ-साथ समाप्त होती जाती है। इस साधारण क्रम में असाधारण साधना विज्ञान द्वारा की जा सकती है। अपना पूर्वजन्म जाना जा सकता है और दूसरों के सम्बन्ध में ऐसा विवरण बताया जा सकता है जो परीक्षा की कसौटी पर खरा उतरे।

पूर्वज्ञान सिद्धि को भविष्य कथन भी कह सकते हैं। व्यक्ति विशेष का जीवन-क्रम किस दिशा में मोड़ लेने जा रहा है। सांसारिक गतिविधियाँ किस रूप में विकसित होने जा रही हैं। इसका पूर्वज्ञान आत्मसाधना से हो सकता है। प्रत्यक्ष में प्रकट होने से पूर्व किसी भी घटना का पूर्व रूप अदृश्य जगत में बन जाता है। यह आभास अनेक पशु-पक्षियों को होता है। कोई दुर्घटना घटित होने वाली होती है या ऋतु परिवर्तन होना है तो वे अपनी सूक्ष्म क्षमता से उसकी जानकारी प्राप्त कर लेते हैं और बचाव के उपाय समय रहते करने लगते हैं। मौसमी गुब्बारे उड़ाकर यह जाना जाता है कि वर्षा कब और कहाँ होने वाली है। इस पूर्वज्ञान क्षमता को मनुष्य भी विकसित कर सकता है। अनिष्टों से बच सकता है और जो शुभ सम्भावना है उसकी तैयारी पहले से ही करने पर उपलब्धियों का सदुपयोग हो सकता है। यकायक विपत्ति या सम्पत्ति आ धमकने पर मनुष्य घबरा जाता है और यह नहीं सोच पाता कि आगत परिस्थिति से कैसे निपटा जाय। पर यदि पूर्वज्ञान के आधार पर सम्भावनाओं को जाना जा सके तो आवश्यक प्रबन्ध कर लेने की बात बन सकती है। इस ज्ञान के अभाव में कितने ही व्यक्ति मरते समय अपने पीछे अनेक झंझट छोड़ जाते हैं। यदि उन्हें सम्भावना का ज्ञान रहा होता तो समय रहते वे काम निपटा सकते थे जो पीछे उलझते और समस्यायें पैदा करते रहे।

अदृश्य जगत के प्राणियों से सम्बन्ध स्थापित करने की सिद्धि में—भूत प्रेतों के कष्टदायक आक्रमणों से बचा जा सकता है। साथ ही यह भी हो सकता है कि जो उनमें से उदार प्रतिभावान है उसकी अनुकम्पा उपलब्ध की जाय और उसकी सहायता से ऐसा लाभ उठाया जाय जिसे एकाकी व्यक्ति बिना किसी सहायता के आश्चर्यजनक रूप से उपलब्ध नहीं कर सकता। समर्थ व्यक्ति प्रत्यक्षतः जो किसी को लाभ-हानि पहुँचा सकते हैं उससे अधिक मात्रा में वे सूक्ष्म शरीर से सम्भव कर सकते हैं।

परकाया प्रवेश की सिद्धि में अपनी विशेषतायें दूसरे के शरीर में प्रवेश की जा सकती हैं। मैस्मरेजम और हिप्टोनिज्म के समस्त क्रियाकलाप इसी आधार पर सम्पन्न होते हैं। अपनी विद्युत शक्ति में दूसरों के शारीरिक, मानसिक रोग दूर किये जा सकते हैं। सम्मोहित करके मन की गाँठ खोली जा सकती है। उसके छिपे रहस्य उगलवाये जा सकते हैं। गुण, कर्म, स्वभाव में अभीष्ट परिवर्तन किया जा सकता है। इस प्रयोग को एक प्रकार का वशीकरण भी कह सकते हैं।

यह सामान्य उपचार है जिसकी यथार्थता के अनेकानेक प्रमाण आये दिन मिलते रहते हैं शोधकार्य में निरत रहकर हम ऐसी सिद्धियों को भी पा सकते हैं जो सामान्य मनुष्य को असाधारण शक्ति सम्पन्न बना दे।

साधारणतया मनुष्य को अपने निकट परिकर को तथा सम्बन्धित वस्तुओं और घटनाओं की ही जानकारी रहती है। वर्तमान से अधिक भविष्य तथा विगत जन्मों की घटनाओं का उसे ज्ञान नहीं होता। वह एक सीमित दशा में देख, सुन, समझ, सोच सकता है। यों उसका सम्बन्ध असीम सत्ता से है। किन्तु

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

इसकी भी जानकारी प्रत्येक मनुष्य को कहाँ रहती है। कुछ ऐसी घटनाएँ दैनिक जीवन में यदा-कदा घट जाती हैं जिनके आधार पर कहा जा सकता है कि मनुष्य में कोई विलक्षण शक्ति कार्य करती है जो भूत, भविष्य, वर्तमान में झाँकने की शक्ति रखती है। जिसके आधार पर मनुष्य को त्रिकालदर्शी होने तथा पूर्वाभास, भविष्य दर्शन, भविष्य कथन करने की शक्ति प्राप्त हो जाती है। कितने ही व्यक्तियों में यह अनायास उभरती है। कितने ही प्रयत्नपूर्वक उसे विकसित कर लेते हैं।

पृथ्वी की ऊपरी परत को देखने से तो ऐसा लगता है कि उसमें घास-पात, वृक्ष वनस्पति उगाने भर की क्षमता है किन्तु उसकी गहराई में खोदने पर बहुमूल्य रत्न-राशि मीठे जल का अगाध महासागर तथा अनेकों प्रकार की बहुमूल्य खनिज सम्पदा छिपी पड़ी मिलती हैं। ठीक इसी प्रकार शरीर की दृश्य श्रम शक्ति और मनन चिन्तन की शक्ति भी परे गहराई में जाने पर उन क्षमताओं का अस्तित्त्व सामने आता है जिन्हें अतीन्द्रिय क्षमता अथवा दैवी अनुकम्पा के नाम से जाना जाता है। वस्तुतः वह व्यक्ति की अविज्ञात उच्चस्तरी सामर्थ्य ही है, जिसे प्रयत्नपूर्वक जागृत किया और बढ़ाया जा सकता है। इन समस्त अलौकिक क्षमताओं के केन्द्र व्यक्ति के मस्तिष्क में विद्यमान हैं जो चेतना से सम्बन्धित हैं तथा अतिसूक्ष्म हैं। ये व्यष्टि सत्ता को समष्टि से जोड़ते हैं।

प्रयत्नपूर्वक अतीन्द्रिय क्षमता विकसित कर लेना एक विज्ञान सम्मत प्रक्रिया है किन्तु जब यह शक्ति स्वयमेव उभरती है और भूत भविष्य की घटनाओं की जानकारी सामने आती है तब अनायास कोई विज्ञान सम्मत समाधान नहीं सूझ पड़ता है। अतः चमत्कार मानने पर लोगों को विवश होना पड़ता है। जबकि होता यह है कि किन्हीं व्यक्तियों के पास पूर्व संचित ऐसे संस्कार होते हैं जो परिस्थितियों वश अनायास ही उभर आते हैं। वर्षा के दिनों में ऐसे कितने ही पौधे घास-पात के रूप में उपज पड़ते हैं, क्यों कि उनके बीज जमीन में पहले से ही दबे पड़े रहते हैं। यही बात उन व्यक्तियों पर लागू होती है, जो बिना किसी प्रकार की अध्यात्म साधनाएँ किये अलौकिक क्षमताओं का परिचय देने लगते हैं।

पिछले दिनों इस क्षेत्र में काफी शोध अनुसंधान हुआ है और उन प्रयासों के फलस्वरूप उपयोगी निष्कर्ष भी सामने आये हैं। परामनोविज्ञान, मेटाफिजिक्स, साइकोसाइबरनेटिक्स, साइकोकाइनेसिस जैसी कितनी ही चेतनात्मक विधाएँ अब रेडियो, इलेक्ट्रॉनिक्स, कम्प्यूटर विज्ञान आदि की तरह विकसित हो रही हैं। अचेतन मन, सुपर माइण्ड आदि की सामर्थ्य के सम्बन्ध में जैसे-जैसे जानकारियों के परत खुल रहे हैं वैसे स्पष्ट होता जा रहा है कि साधारण-सा लगने वाला मनुष्य असीम-अनन्त शक्तियों—क्षमताओं का भण्डार है। कठिनाई मात्र इतनी भर है कि उसकी अधिकांश अंतः शक्तियाँ प्रसुप्त अविज्ञात स्थिति में पड़ी हैं जिन्हें अब तक जागृत होने का उसने अवसर ही नहीं प्रदान किया। जन्म-जन्मान्तरों के अथवा वर्तमान जीवन में एकत्रित कषाय-कल्पषों की मोटी परत को हटाना यदि सम्भव बन पड़े तो हम में से हर कोई अतीन्द्रिय सामर्थ्यों का पुंज दृष्टिगोचर होगा।

पाश्चात्य परामनोविज्ञानियों ने अतीन्द्रिय क्षमताओं को चार मुख्य भागों में विभक्त किया है—(१) परोक्ष दर्शन अर्थात् वस्तुओं और घटनाओं की वह जानकारी जो ज्ञान प्राप्ति के सामान्य आधारों के बिना ही उपलब्ध हो जाती है। (२) भविष्य ज्ञान—बिना किसी मान्य आधार के भविष्य के गर्भ में झाँककर घटनाओं को घटित होने से पूर्व जान लेना। (३) भूतकालिक ज्ञान। (रिट्रोकोग्नीशन) बिना किसी साधन के अविज्ञात भूतकालीन घटनाओं की जानकारी। (४) टेलीपैथी अथवा विचार सम्प्रेषण—बिना किसी आधार अथवा यन्त्र के अपने विचार दूसरों के पास पहुँचाना तथा दूसरों के विचार ग्रहण करना। इनके अतिरिक्त भी साइकोकाइनेसिस, हिप्नोसिस, साइकिक फोटोग्राफी, डाउसिंग, 'आइलेस'। साइट, बायोरेपर्ट जैसी अनेकानेक विधाएँ हैं जो दर्शाती हैं कि अतीन्द्रिय सामर्थ्य का, ई. एस. पी. का क्षेत्र कितना बड़ा है।

शास्त्रकारों ने इसका आधार विज्ञान मय कोष को माना और उसे विशिष्ट क्षमता सम्पन्न बताया है। जिसका केन्द्र अचेतन है। इसका आधार प्राण विद्युत को माना गया है। यह एक ऐसा चुम्बक है जो सांसारिक जीवन में प्रभावोत्पादक शक्ति एवं प्रतिभा के रूप में दृष्टिगोचर होता है। उनका कहना है कि इस तत्त्व को यदि अधिक सक्षम बनाया जा सके तो कितनी ही विशेषताएँ उत्पन्न हो सकती हैं, जिन से व्यक्तित्त्व में असाधारण परिवर्तन सम्भव है। इस ऊर्जा में वह शक्ति है जो सूक्ष्म जगत के प्रवाहों को अपनी ओर मोड़ सकने, और उसके सम्पर्क से कई महत्त्वपूर्ण कार्य सिद्ध कर सकने की सामर्थ्य रखती है। विज्ञानमय कोष को समझने उसे परिष्कृत, परिमार्जित करने के उपाय-उपचारों का अध्ययन लेकर अतीन्द्रिय क्षमताओं का विकास किया जाना सम्भव है, वैज्ञानिक भी अब इस तथ्य को स्वीकारने लगे हैं।

इस सन्दर्भ में अमेरिकी मनोवैज्ञानिक डा. नेलसन बोल्ट का कथन है कि मनुष्य के अन्दर एक बलवती आत्मचेतना रहती है, जिसे जिजीविषा या प्राणधात्री शक्ति कह सकते हैं। यह न केवल रोग निरोधन अथवा अस्तित्त्व संरक्षण के अविज्ञात साधन जुटाती है वरन् चेतना जगत में चल रही उन हलचलों का पता लगा लेती है जो संकट या विपत्ति बनकर अपने या अपनों से सम्बन्धित परिजनों पर आ सकती है। सुख-सुविधा जैसी परिस्थितियों के संकेत अविज्ञात से भले ही न मिलें किन्तु अनिष्ट की आशंका या अस्तित्त्व के संकट की सूचना अविज्ञात के अंचल से मिलती रहती है। इससे यह सिद्ध होता है कि दृश्य जगत से परे कोई परम चेतना सत्ता विश्व ब्रह्माण्ड की सन्तुलन व्यवस्था, क्रमबद्धता बनाए हुए है और उसका संचालन, संरक्षण सतत् करती रहती है।

सुविख्यात परामनोविज्ञानी डॉ. हैराल्ड के अनुसार यह आवश्यक नहीं कि पूर्वाभास के संकेत स्वप्न, तन्द्रा या निद्रावस्था में ही मिलते हों। अपितु जागृत और चितन अवस्था में भी कितनी ही बार मनुष्यों को ही नहीं वरन् पशु-पक्षियों तथा अन्य जीवधारियों तक को संकटों से बचने जीवन रक्षा के संकेत प्रकृति से मिलते रहते हैं, जिनका सामयिक परिस्थितियों से कोई सम्बन्ध नहीं होता। पूर्वाभास के सम्बन्ध में दो व्यक्तियों की

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

परस्पर सघन आत्मीयता का बहुत बड़ा हाथ रहता है। जर्मन मनःशास्त्री डॉ. हेमबुक ने अपने शोध निष्कर्षों में इस बात का उल्लेख किया है कि अतीन्द्रिय क्षमता शक्ति पुरुषों की अपेक्षा नारियों में अधिक पाई जाती है, क्योंकि उनके स्वभाव में कोमलता हृदय में करुणा, दया, ममता, उदारता जैसे सद्गुणों का बाहुल्य रहता है। इसी कारण नारियों को अध्यात्म क्षेत्र में अधिक शीघ्र सफलता मिलती है।

योगशास्त्रों में वर्णित है कि सतत् साधना एवं योगाभ्यास करते-करते मनुष्य में दिव्य शक्तियों का प्रादुर्भाव होने लगता है जिन्हें सिद्धियों के नाम से जाना जाता है। दिव्यदर्शन, दिव्यश्रवण, दूरदृष्टि, भूत-भविष्य कथन, महिमा, लघिमा, गरिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशित्व, वशित्व आदि अनेकों सिद्धियों का उल्लेख है। वैज्ञानिक आधारों के अभाव में अब तक इन्हें कल्पित माना जाता था, किन्तु अनेकानेक घटनाक्रमों, सिद्धि अवस्था को प्राप्त महामानवों, ऋषिकल्प व्यक्तित्वों का विश्लेषण-परीक्षण करने पर वैज्ञानिकों ने पाया है कि अतीन्द्रिय सामर्थ्य केवल कहने-सुनने तक सीमित नहीं है, वरन् यह तथ्य पूर्ण और विज्ञान सम्मत प्रक्रिया है। मनोनिग्रह योग-साधना की विविध प्रक्रियाएँ अपनाकर इन्हें उभारा जा सकता है और उसके द्वारा विश्व-ब्रह्माण्ड में संव्याप्त परम चेतना से तादात्म्य स्थापित कर लाभान्वित हुआ जा सकता है।

मनुष्य में काम करने और सोचने की क्षमता है। इन्हीं दोनों के समन्वय से अनेकानेक प्रकार की कलाओं और कुशलताओं का स्वरूप सामने आता है। उपार्जनों और उपलब्धियों के पीछे इन्हीं क्षमताओं का संयोग उपयोग काम कर रहा होता है। समृद्धि और वैभव के जो कुछ चमत्कार दीखते हैं उनके पीछे मनुष्य की यह शारीरिक और मानसिक क्षमताएँ ही काम कर रही होती हैं।

अतिरिक्त क्षमताएँ इससे आगे भी भूमिका में उत्पन्न होती हैं। इन्हें विभूतियाँ कहते हैं और इनके पीछे दैवी अनुकम्पा काम करती समझी जाती है। ऋद्धि-सिद्धियों का क्षेत्र यही है। योगाभ्यास-तपश्चर्या, तन्त्र प्रयोग, भक्ति साधना आदि अनुष्ठानों का आश्रय लेकर इन्हें प्राप्त करने का प्रयत्न किया जाता है।

चेतना की गहरी खोजबीन करने पर पता चला है कि यह बाह्य उपार्जन नहीं—आन्तरिक उद्भव है। मानवी सत्ता का बहुत थोड़ा अंश ही प्रयोग में आ सका है। जितना ज्ञात है और जिसका प्रयोग होता है वह बहुत थोड़ा अंश है इससे कितनी ही गुनी सम्भावनाएँ मानवी सत्ता के गहन अन्तराल में छिपी पड़ी हैं। धरती की ऊपरी सतह पर तो घास-पात उगाने की क्षमता ही दिख पड़ती है। कहीं धूलि, कहीं पत्थर बिखरे दीखते हैं, पर गहराई तक खोदते जाने पर बहुमूल्य खनिजों की परतें उपलब्ध होती जाती हैं। ठीक इसी प्रकार शरीर की श्रम शक्ति और मन की चिन्तनशक्ति से आगे गहराई में उतरने पर उन क्षमताओं का अस्तित्त्व सामने आता है जिन्हें अतीन्द्रिय या दैवी कहते हैं। वस्तुतः वे भी व्यक्ति की अपनी अविज्ञात एवं उच्चस्तरीय सामर्थ्यें ही होती हैं। उन्हें प्रयत्नपूर्वक जगाया या बढ़ाया जा सकता है।

पाश्चात्य मनोवैज्ञानिकों ने जो सामान्य सिद्धियाँ खोजी हैं वे उन्हें चार वर्गों में विभक्त करते हैं—(१) क्लेयर वायेन्स (परोक्ष दर्शन) अर्थात् वस्तुओं या घटनाओं की वह जानकारी जो ज्ञान प्राप्ति के सामान्य आधारों के बिना ही उपलब्ध हो जाये। (२) फ्रीकाग्नीशन (भविष्य ज्ञान) बिना किसी मान्य आधार के भविष्य की घटनाओं का ज्ञान। (३) रेट्रोकांग्नीशन (भूतकालिक ज्ञान) बिना किन्हीं मान्य-साधनों से अविज्ञात भूतकालीन घटनाओं की जानकारी। (४) टेलीपैथी (विचार-सम्प्रेषण) बिना किसी आधार या यन्त्र के अपने विचार दूसरों के पास पहुँचाना तथा दूसरों के विचार ग्रहण करना। इस वर्गीकरण को और भी अधिक विस्तृत किया जाय तो उन्हें ११ प्रकार की गतिविधियों में बाँटा जा सकता है।

चमत्कारी अनुभव मोटेतौर पर निम्न वर्गों में विभक्त किया जा सकता है:—

(१) बिना किन्हीं ज्ञातव्य साधनों के सुदूर स्थानों में घटित घटनाओं की जानकारी मिलना।

(२) एक व्यक्ति को दूसरे व्यक्ति की मनःस्थिति तथा परिस्थिति का ज्ञान होना।

(३) भविष्य में घटने वाली घटनाओं का बहुत समय पहले पूर्वाभास।

(४) मृतात्माओं के क्रियाकलाप जिससे उनके अस्तित्त्व का प्रत्यक्ष परिचय मिलता हो।

(५) पुनर्जन्म की वह घटनायें जो किन्हीं बच्चों, किशोरों या व्यक्तियों द्वारा बिना सिखाये-समझाये बताई जाती हों और उनका उपलब्ध तथ्यों से मेल खाता हो।

(६) किसी व्यक्ति द्वारा अनायास ही अपना ज्ञान तथा अनुभव इस प्रकार व्यक्त करना जो उसके अपने व्यक्तित्त्व और क्षमता से भिन्न और उच्च श्रेणी का हो।

(७) शरीरों में अनायास ही उभरने वाली ऐसी शक्ति जो सम्पर्क में आने वालों को प्रभावित करती हो।

(८) ऐसा प्रचण्ड मनोबल जो असाधारण दुस्साहस के कार्य विनोद की साधारण स्थिति में कर गुजरे और अपनी तत्परता से अद्भुत पराक्रम कर दिखाये।

(९) अदृश्य आत्माओं के सम्पर्क से असाधारण सहयोग सहायता प्राप्त करना।

(१०) शाप और वरदान जिससे दीर्घकाल तक व्यक्तियों व वस्तुओं पर प्रभाव बना रहता है।

(११) परकाया प्रवेश या एक आत्मा में अन्य आत्मा का सामयिक प्रवेश सिद्ध होता है।

इनके अतिरिक्त भी कुछ विविध तथा विसंगत बहुवर्गीय क्रम की भी घटनायें हो सकती हैं। जिन्हें अतीन्द्रिय क्षमतायें कहते हैं।

अतीन्द्रिय ज्ञान-एक्स्ट्रा आर्डिनरी सेन्स पर एप्शन—की प्राप्ति में यों मस्तिष्क के अचेतन भाग के अन्य केन्द्र भी काम करते हैं, पर आज्ञाचक्र का उपयोग सबसे अधिक होता है। धूमिल स्थिति में तो दर्पण पर अपनी आकृति तक देखना सम्भव नहीं होता, फिर धूमिल आज्ञाचक्र क्या काम करेगा।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कैमरे के लैन्स पर धूल जम रही हो तो साफ फोटो कहाँ आता है ? आँखें दुःखने आ जायें या पट्टी बाँध ली जाय तो दृश्य कहाँ दिखाई देते हैं। इसी प्रकार धूमिल आज्ञाचक्र अपनी क्षमता का प्रकटीकरण प्रसुप्त स्थिति में नहीं कर सकता। सक्षम बनाने के लिए उसे स्वच्छ एवं जागृत बनाने की आवश्यकता होती है। इस विभाग को अध्यात्म की भाषा तृतीय नेत्र कहा जाता है उसमें दिव्य दृष्टि का अस्तित्त्व पाया जाता है, दिव्य दृष्टि का अर्थ है वह देख पाना जो नेत्र गोलकों की सामर्थ्य से आगे की बात है।

प्रसिद्ध जादूगर गोगियापाशा और प्रो. सरकार नेत्रों से कड़ी पट्टी बँधवाकर घनी आबादी की भीड़ भरी सड़कों पर मोटर साइकिल दौड़ाने के अपने करतब दिखा चुके हैं। इन प्रदर्शनों से पहले विशेषज्ञों ने अनेक प्रकार से यह परीक्षा कर ली थी कि इस स्थिति में आँखों से देख सकने की किसी प्रकार कोई गुंजाइश नहीं है। प्रदर्शनों के समय दुर्घटना न होने देने के यों सरकारी प्रबन्ध भी थे पर वैसा अवसर ही नहीं आया। प्रदर्शन पूरी सफलता के साथ सम्पन्न हुए और दर्शकों में से सभी को यह विश्वास करना पड़ा कि बिना आँखों की सहायता के भी बहुत कुछ देखा जाना सम्भव हो सकता है।

इसी से मिलती-जुलती एक घटना अमेरिका की भी है। पोद्देशिया नामक महिला घोर अँधेरे में आँखों से पट्टी बाँधकर दृश्य देखने और रंग पहचानने का दावा करती थी। उसकी परीक्षा बर्नार्ड कालेज न्यूयार्क की वैज्ञानिक मण्डली ने की। परीक्षा समिति के अध्यक्ष डॉ. रिचर्ड यूटस ने घोषित किया है। वस्तुतः महिला में वैसी ही क्षमता है जैसा कि उसका कथन है। 'तन्त्र विद्या' के विश्वकोश 'एन साइक्लोपीडिया ऑफ दि आकल्ट' ग्रन्थ में ऐसे ढेरों उदाहरणों का वर्णन है जिनमें मनुष्य में पाई जाने वाली अतीन्द्रिय क्षमताओं का उल्लेख है। फ्रान्सीसी नाविक फोन्टान जन्मान्ध था, पर वह अपनी अँगुलियों से छूकर सब कुछ उसी तरह जान लेता था जैसा कि आँखों वाले नेत्र से देखकर जानते हैं। फ्रान्सीसी कवि और वैज्ञानिक 'जूल्स रोमेन्स' ने परीक्षा दृष्टि विज्ञान में गहरी दिलचस्पी ली और अपने शोध प्रयासों से सिद्ध किया था कि नेत्रों के द्वारा मस्तिष्क में दृश्य सूचना पहुँचाने वाले ज्ञान तन्तुओं के समान ही सम्वेदना वाहक धागे शरीर के अन्य अंगों में भी मौजूद रहते हैं। यदि उनहें विकसित किया जा सके तो दृष्टि प्रयोजन अन्य अवयवों की सहायता से भी पूरा किया जा सकता है।

चैकोस्लोविया से परा मनोविज्ञान संस्थान के प्राध्यापक 'मैलिन रिज्ल' और लैनिनग्राड विश्वविद्यालय के प्राध्यापक 'वेलिलियेव' अपनी शोध समीक्षा में उस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि मनुष्य में अतीन्द्रिय क्षमता का अस्तित्व मौजूद है किन्तु वह क्यों विकसित होती है और किस प्रकार से बढ़ाया जा सकता है, यह अभी भी रहस्य का विषय है।

इटली के एक पादरी जोसेफ ने अपने समय में हवा में उड़ सकने की क्षमता प्रदर्शित करके अनौखी ख्याति पाई थी। इस सिद्धि की चर्चा तब तो देश भर में फैल गई जबकि उसने मृत्यु से कुछ ही समय पूर्व एक डॉक्टर को भी अपने साथ हवा में उड़ाकर दिखा दिया।

जोसेफ की मृत्यु १६६३ में हुई। जब वह मरणासन्न था जो प्रसिद्ध चिकित्सक फ्रांसेस्को थिरयोली को चिकित्सा के लिए बुलाया गया। डॉक्टर ने अपने संस्मरण में लिखा है—मैं देख-भाल कर रहा था कि जोसेफ ने मेरा हाथ पकड़ा और हवा में तैरने लगा। उससे जकड़ा हुआ मैं भी उड़ रहा था। इसके बाद वह मुझे भी उड़ाते हुए फ्रांस के गिरजे तक ले गया और वहीं बैठकर प्रार्थना करने लगा। मुझसे कहा आपके इलाज की जरूरत नहीं रही। मुझे भगवान ने बुलाया है सो मैं जल्दी ही परलोक जा रहा हूँ। डॉक्टर सन्न रह गया और बिना इलाज किये ही वापस लौट गया। दूसरे दिन उसकी मृत्यु हो गई।

इटली के सरकारी कागजों में जोसेफ के हवा में तैरने के कितने ही प्रसंग हैं जो पुलिस तथा दूसरे अफसरों ने तथ्य का पता लगाने के लिए जाँच-पड़ताल के सम्बन्ध में संग्रह किये थे। किंवदन्तियों से लेकर प्रत्यक्षदर्शियों तक के ऐसे अनेकानेक प्रसंग इटली की जनता में प्रचलित हैं जिनसे पता चलता है कि वह पादरी ऊँची रखी हुई ईसा की मूर्तियों तक उछल कर जा पहुँचता था और ऐसे ही कुछ देर अधर में लटका रहता था। लोग उसे अलौकिक क्षमताओं से सम्पन्न सिद्ध पुरुष मानने लगे थे।

पादरी जोसेफ का पिता इटली के फेलिक्स डेला नामक गाँव में रहता था और बढ़ई का काम करता था। गरीबी और बेकारी से दुःखी होकर वह अपनी गर्भवती पत्नी को लेकर कहीं गुजारे का आसरा ढूँढ़ने के लिए चल पड़ा। सन् १६०३ की बात है रास्ते में ही इस लड़के का जन्म हो गया। वह बहुत ही दुर्बल हड्डियों का ढाँचा मात्र था। जन्म से ही बीमार रहने लगा और थोड़े दिन में ही पेट की भयंकर व्यथा में ग्रसित हो गया। इलाज के लिए पैसा न होने से बाप ने एक साधु की शरण ली। साधु ने कहा—"इसका शरीर मर चुका है केवल आत्मा ही धरती पर बाकी है।" इतने पर भी उसने कहा वह बचा लिया जायगा और पादरी होकर जियेगा। सचमुच ही वह बच गया और बचपन से ही साधुओं जैसा पूजा-पाठ का जीवनयापन करने लगा। उसकी उपासना चलती रही और चमत्कारी ख्याति बढ़ती गयी। उसकी विशेषताओं में प्रार्थना के अवसरों पर हवा में तैरने लगने की प्रसिद्धि सर्वत्र फैली हुई थी।

लार्ड अडारे ने अपनी आँखों देखा ऐसा विवरण "रिपोर्ट आफ दि डायलोक्टिकलस सोसाइटी ऑन स्प्रिच्युलिज्म" में प्रकाशित कराया था, जिसके अनुसार एक व्यक्ति को उन्होंने हवा में पक्षी की तरह उड़ते और तैरते देखा था। उनके इस विवरण की यर्थाथता के लिए दी रायल एस्ट्रानोमिकल सोसाइटी के अध्यक्ष की साक्षी भी जोड़ी गई थी।

इस विवरण में होम नामक एक ऐसे अद्‌भुत व्यक्ति का उल्लेख है जिसे कितनी ही तरह की चमत्कारी सिद्धियाँ प्राप्त थीं। वह हवा में उड़ सकता था। जलते हुए अंगारे बहुत देर तक हाथों पर रखे रहता था।

इन सिद्धियों की चर्चा हुई तो बहुतों ने अविश्वास किया और इसे अफवाह फैलाकर धोखाधड़ी करने की संज्ञा दी।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

फलतः प्रख्यात और प्रामाणिक विज्ञान वेत्ता सर विलियम क्रुक्स की अध्यक्षता में एक शोध समिति इसके परीक्षण के लिए बनाई गई। समिति इतना ही बताने में समर्थ हुई कि होम के बारे में जो कहा गया वह सही है। उसमें कोई चालाकी नहीं है किन्तु यह बता सकना कठिन है कि यह सब कैसे होता है ? ब्रिटिश सोसाइटी फार साइकिक रिसर्च के प्रतिनिधि एफ. डब्ल्यू. मेयर्स से इस सम्बन्ध की भेंटवार्ता में प्रो. क्रुक्स ने अपने परीक्षण, अनुभव और निष्कर्ष का विस्तारपूर्वक वर्णन सुनाया और कहा चालाकी जैसी कोई बात नहीं है। अस्तु इस प्रकार की घटनाओं को विज्ञान की नई शोध का विषय माना जाना चाहिए और उन्हें अविश्वास न मानकर नये सिरे से खोज का प्रबन्ध करना चाहिए। क्रुक्स ने अपने परीक्षण के समय होम में ऐसी विलक्षण शक्ति भी पाई कि वह अपने प्रभाव से दूर रहते हुए भी बिना छुये वस्तुओं को इधर से उधर हटा सकता था और ऐसी वस्तुएँ प्रस्तुत कर सकता था जो वहाँ पहले से कहीं भी नहीं थीं।

गेविन मैक्सवेल ने दिव्य दृष्टि के अस्तित्व को खोजने में गहरी दिलचस्पी ली है और उन्होंने लम्बी जाँच पड़ताल के बाद यह पाया कि बहुतों में सहज ही दृष्टि होती है। लगातार प्रयत्न और अभ्यास करने पर उसे बढ़ाया जा सकता है किन्तु कितने ही बिना किसी अभ्यास के भी उस क्षमता से सम्पन्न पाये जाते हैं। पर वे अपनी अनुभूतियों को प्रकट करने में प्रायः डरते रहते हैं। ढोंगी समझे जाने किसी को बुरा लगने सही न होने पर खिल्ली उड़ने अपनी अनुभूतियों पर पूर्ण विश्वास न होने जैसे कारणों से भीतर से जो आभास मिलता है। उसे प्रकट नहीं कर पाते और छिपाये ही रहते हैं। यदि पूर्वाभासों के प्रकटीकरण की परम्परा चल पड़े तो फिर प्रतीत होगा कि मनुष्यों में बुद्धिमत्ता की ही तरह अपरात्मानुभूति का अस्तित्व भी बड़ी मात्रा में मौजूद है। प्रयत्नपूर्वक विकसित करने पर तो उसे और भी अधिक सक्षम बनाया जा सकता है। अशिक्षितों को शिक्षित बनाकर जिस प्रकार बुद्धि वैभव बढ़ाया जाता है। उसी प्रकार यह भी सम्भव है कि जनसाधारण में सामान्यतः और कुछ विशिष्टों में विशेषतया पाई जाने वाली दिव्य दृष्टि को समर्थ बनाना और उससे लाभ उठाना हो सके।

गेविन मैक्सवेल ने अपने अनुसन्धानों में एक अस्सी वर्षीय अन्धे का वर्णन किया है। जिसने समुद्र में डूबी हुई एक मछहारे की लाश का सही स्थान बताने और उसे बाहर लाने में सहायता की थी। उन्होंने पच्छिमी पठार के द्वीप समूहों के लोगों में यह क्षमता विशेष रूप से पाये जाने का उल्लेख किया है। शमूस फियारना द्वीप में एक मछुआ मछली पकड़ते समय गाँव के समीप की खाड़ी में डूब गया। उसकी लाश निकालने और विधिवत दफनाने के लिए सारा गाँव उत्सुक था। सभी नावें कई दिन तक लगातार खाड़ी में चक्कर काटती रहीं पर किसी के काँटे में लाश फँसी नहीं। निराशा छाई हुई थी। तभी एक अस्सी वर्षीय अन्धे कैलम मेकिनन ने कहा आप लोग मुझे नाव में बिठाकर ले चलें और खाड़ी में घुमाते रहें। सम्भवतः में लाश को तलाश कर दूँगा। वैसा ही किया गया। सही जगह मिलने पर बुड्ढा चिल्लाया—काँटा डालो लाश ठीक नीचे है। वैसा ही किया गया। फलतः मृतक को बाहर निकाल लिया गया और उसे विधिवत दफनाया गया।

यह दिव्यदृष्टि भौतिक क्षेत्र में अदृश्य को देखने और अविज्ञात को जानने में काम आती है और आध्यात्मिक जगत में दूरदर्शिता एवं विवेकशीलता को विकसित करती है। ऐसे दिव्यदर्शी, तत्त्वदर्शी कहलाते हैं। उन्हें जो सूझता है और दीखता है। वह बहुत की उच्च स्तरीय होता है। पदार्थों में चेतना और प्राणियों में आत्मा को देख पाना इस तत्त्वदर्शी दृष्टि के लिए सम्भव है। ऋतम्भरा प्रज्ञा के नाम से यही प्रख्यात है, गायत्री महामन्त्र में इसी की आराधना है। इसकी उपलब्धि होने पर सर्वत्र अपनी ही आत्मा बिखरी दीखती है और अन्यायों के सुख-दुःख अपने ही प्रतीत होता है। इन्हीं से आत्म-साक्षात्कार और ईश्वर दर्शन का परम लक्ष्य प्राप्त होता है। दिव्यदर्शी भगवान बुद्ध ने कहा था कि जब करुणा के नेत्र खुलते हैं तो मनुष्य अपने में दूसरों को और दूसरों में अपने को देखने लगता है। करुणा की दृष्टि ही माया का उच्छेद होता है और उसके पार पूर्णता की परम ज्योति का दर्शन होता है। इसी परम ज्योति को प्राप्त करना मनुष्य जीवन का परम लक्ष्य है।

सिद्धि के प्रमुख आधार अवलम्बन

सिद्धियों की उपलब्धि के आत्मविद्या विशेषज्ञों ने चार निमित्त कारण बताये हैं—(१) जन्म, (२) मन्त्र, (३) तप, (४) औषधि। आवश्यक नहीं कि इन चारों का ही संयोग बन पड़े। इनमें से एक भी यदि ठीक प्रकार सध जाये तो कुछ उतने भर से अभीष्ट फल प्राप्त हो सकता है।

जन्म से तात्पर्य है—जन्मान्तरों में किये गये पुण्यपरमार्थों के प्रतिफल। शरीर छूट जाने पर भी शुभ-अशुभ कर्म प्राणी के साथ जाते हैं और वे अगले जन्मों में फलित होते हैं। ताड़ के फल को अंकुरित होने में यदि एक वर्ष लग जाता है। पुण्य कर्मों को फलित होने में यदि एक वर्ष लगता है तो आश्चर्य भी क्या है ? कर्मफल तत्काल नहीं मिलते दूध को दही बनने में कुछ समय लगता है।

देखा गया है कि कुछ को बचपन से ही विलक्षण प्रतिभा प्राप्त होती है। शुकदेव ने जन्मते ही वैराग्य ले लिया था। यह संस्कार उनके पूर्व संचित योग परायणता के प्रतिफल थे। मीरा की भक्ति ही ऐसी थी जो बिना किसी के बताये समझाये अनायास ही निर्झर की तरह फूट पड़ी थी। यह मानवी विवेक की कसौटी है कि तत्काल फल न मिलने पर अधीर न हो। बुरे का बुरा अच्छे का अच्छा फल तो मिलता है, पर यह सब तत्काल ही नहीं होता है। वटवृक्षों को फल्लावित होने में मुद्दत लगती है। कर्मफल भी समय साध्य है। देर लगती देखकर कई व्यक्ति अधीर हो जाते हैं और नास्तिक जैसा मन बना लेते हैं। जिन्हें सृष्टा की सुनिश्चित विधि-व्यवस्था पर विश्वास है वि जानते और मानते हैं कि जो बोया है उसे काटने का अवसर अवश्य मिलेगा। भले ही उसमें कुछ देर लगे। कई जन्म से ही अपंग होते हैं। कइयों में शिक्षा प्राप्त करने से पूर्व ही कई विलक्षणताएँ दीख पड़ती हैं। इन्हें उनके पूर्वजन्मों का उपार्जन संचय ही समझना चाहिए। इस संयोग से समझा जा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सकता है। चाहने मात्र से ऐसी सुखद परिस्थितियाँ उपलब्ध नहीं की जा सकतीं।

दूसरा आधार है मन्त्र। मन्त्र अर्थात् एकाग्रता साधना शब्द शक्ति का उन्नयन साधना द्वारा प्रसुप्त शक्तियों का जागरण। मन्त्र कुछ शब्दों को रटते रहने भर से नहीं सध जाता। उसके लिए वे सभी प्रयास करने पड़ते हैं जो साधक की पात्रता को विकसित परिष्कृत करें। उपजाऊ भूमि में ही अनाज की हरी-भरी फसल लहलाती है। बीज का कितना ही महत्त्व क्यों न हो उसकी सर्वांगपूर्णता में कोई खोट भले ही न हो पर अकेले उतने भर से काम नहीं चल जाता है। भूमि में उर्वरता आवश्यक है। साथ ही खाद पानी की व्यवस्था और रखवाली की सतर्कता भी नियोजित रहनी चाहिए। मन्त्र की रटन भर से कोई सिद्ध पुरुष नहीं बन जाता है। निर्धारण में अटूट श्रद्धा भी रहती है। चरित्र तो साधकोचित रखना ही पड़ता है। ऐसी दशा में सफलता का एक ही मार्ग है कि साधकोचित चरित्र अपनाया जाय और भाव भरी श्रद्धा का अवलम्बन ग्रहण करते हुए सफलता के लक्ष्य तक पहुँचा जाय। इस मार्ग पर चलते हुए कितने ही सफलता के चरम शिखर तक पहुँच भी चुके हैं। मन्त्र विद्या की महत्ता के सम्बन्ध में बहुत कुछ कहा जाता रहा है जो प्रयत्नरत होते हैं। वे वैसी सफलतायें प्राप्त करते हैं।

तीसरा सिद्धि मार्ग है—तप। तप का अर्थ है तपाना। तपाना किसको ? अपने आप को, शरीर को, मन को, अंतःकरण को। तपाने से बर्फ पिघलती है। ईंधन पाकर ज्वाला भभक उठती है। कच्चा लोहा पक्का बन जाता है। यहाँ तक कि मिट्टी के बरतन भी धातु की तुलना करने लगते हैं। सोने की चमक अग्नि पर पकने से ही उभरती है। काय सत्ता में भी वैश्वानर प्राणाग्नि महामेघ आदि अनेकानेक शक्तियों का समावेश है। वे आमतौर से प्रसुप्त स्थिति में रहती हैं। पर जब तपस्वी की ताप ऊर्जा उन्हें उत्तेजित करती है तो सभी अपना-अपना काम आश्चर्यजनक रीति से करने लगती हैं। इसका प्रतिफल सिद्धि चमत्कार के रूप में सामने आता है।

सिद्धि प्रतीत का चौथा उपाय है—औषधि। औषधि से तात्पर्य है यहाँ अभिमंत्रित वनौषधि। उनका प्रभाव अपने विशेष ढंग का है। कुछ तो जड़ी-बूटियाँ अपने निजी गुणों के कारण ही मानवी चेतना को असाधारण रूप से प्रभावित करने की क्षमता रखती हैं। कुछ को किसी महाप्राण द्वारा अपनी आत्मशक्ति का वाहन बना कर उसे असाधारण स्तर का बनाया और सेवनकर्ता का हित साधा जाता है।

गाँजा, भाँग, चरस, अफीम, वस्तुतः वनस्पतियाँ ही हैं, जो अपनी उत्तेजक क्षमता के कारण पीने वाले के होश-हवाश गुम कर देती हैं। शराब भी वनस्पतियों को सड़ा कर निकाला गया अर्क ही है। तम्बाकू-चाय आदि के उनके वनस्पति वर्ग भी ऐसी ही हैं। जो मादक उत्तेजना उत्पन्न करते हैं। यह बुरा पक्ष हुआ जिसके प्रयोग से मनुष्य उन्मादी जैसा हो जाता है और अनेक प्रकार की हानियाँ उठाता है।

इस सन्दर्भ में दूसरा उजला पक्ष भी है। अश्वनी कुमारों ने वयोवृद्ध च्यवन ऋषि को वनस्पतियों का एक ऐसा योग दिया था जिसका सेवन करने से उनकी जराजीर्ण स्थिति देखते-देखते नवयौवन में बदल गई थी। लक्ष्मण को मेघनाद द्वारा मारी गई ब्रह्मशक्ति का आघात लगने पर वे मूर्छित मरणासन्न स्थिति में थे। सुषेण वैद्य द्वारा बताई संजीवनी बूटी को हनुमान जी पर्वत क्षेत्र से लाये और उसका सेवन करते ही वे पुनः पूर्वत सचेतन हो गये। ऐसी अन्यान्य विशेषताओं को देखते हुए चरक सुश्रुत बाणभट्ट जैसे वनस्पति विज्ञानियों ने गम्भीर अनुसंधान किये थे और उसका सर्वसाधारण के लिए अतीव लोक कल्याणकारी उपयोग किया था। ऐसे ही प्रयोगों के कारण आयुर्वेदशास्त्र का क्रमशः विकास होता आया और एक सांगोपांगशास्त्र विनिर्मित हुआ।

सोमपान वह विद्या है जिसमें सोमवल्ली को सोम सूत्रों में अनुप्राणित किया जाता है। देव स्तर के मानव उसका उपयोग करके अपनी श्रद्धा युक्ति निष्ठा का विकास विस्तार करते हैं। यज्ञों में वनस्पतियों को उत्पादन से लेकर समीकरण तक शक्ति तप के रूप में विनिर्मित किया जाता है। उसी का दिव्य मन्त्रों के साथ यजन होता है। अग्निहोत्र द्वारा वनस्पतियाँ ऊर्जा रूप में बदल जाती हैं। सम्पर्क में आने वालों पर सम्बद्ध वातावरण पर असाधारण प्रभाव छोड़ती हैं। उसका प्रतिफल शारीरिक, मानसिक रोगों के निवारण में वायुमण्डल के संशोधन में पर्जन्य के अभिवर्षण में महती भूमिका निभाना है।

पंचामृत में चरणामृत में तुलसी पत्रों का समन्वय रहता है। जिन भावनाओं के साथ पूजा अर्चना की जाती है। उसका उच्चस्तरीय भावतत्त्व इस द्रव्य में समाविष्ट हो जाता है फलतः उसकी प्रकृति भी वैसी ही बन जाती है। जो सेवन करता है वह अपने को श्रद्धासिक्त अनुभव करता है। इस वनस्पति को माध्यम बनाकर आत्मशक्ति की क्षमता का वितरण कहा जा सकता है।

उपयुक्त चारों ही आधार अपनी-अपनी स्थिति के अनुरूप प्रभावोत्पादक परिणाम उत्पन्न करते हैं। इनका लाभ सिद्धि उपलब्धि तक पहुँचे तो इसमें कुछ भी आश्चर्य नहीं समझा जाना चाहिए। मात्र एक ही अड़चन शेष रहती है प्रयोक्ताओं का स्तर। उनका चिन्तन चरित्र और व्यवहार। इसे उत्कृष्ट बनाने में ही समय, श्रम एवं मनोयोग का नियोजन करना पड़ता है। वह न बन पड़े तो समझना चाहिए कि पथ्य बिगाड़ते रहने पर उपचार कारगर नहीं होता। साधक का व्यक्तित्व गया-गुजरा होता हो तो उस की समुचित साधना का भी उपयुक्त लाभ न मिल सकेगा।

साम्य भाव से सिद्धि

समता—सब प्राणियों में आत्मीयता का, बराबरी का भाव रखना अति उत्तम आध्यात्मिक गुण है। साम्य भाव मनुषोचित आवश्यक तत्त्व है इसे व्यक्तिगत जीवन में नित्य काम में लाना चाहिए। सामाजिक तथा आर्थिक क्षेत्र में भी समता की उदार प्रणाली का प्रसार करना चाहिए। नीचे पद्म पुराण के कुछ श्लोक दिये जाते हैं। तुलाधर की असाधारण सिद्धियों को देखकर नरोत्तम ने ब्राह्मण वेषधारी भगवान से पूछा था कि इसके पास इतनी सिद्धियाँ होने का क्या कारण है ? भगवान ने उसे बताया कि समता समस्त सिद्धियाँ की जननी है

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org

सत्येन सम भावेन जितं तेन जगत्त्रयम्।
तेनातृप्यन्त पितरो देवा मुनि गणैः सह॥
भूत भव्य प्रवृत्तं च तेन जानाति धार्मिकः।
नास्ति सत्यात्परो धर्मो नानृतात्पातकं परम्॥
विशेषे सम भावस्य पुरुषस्यानघस्य च।
अरि मित्रेष्युदासीने मनोयस्य समं व्रजेत्॥
सर्व पाप क्षयस्तस्य विष्णु सायुज्यतां व्रजेत्।
समोधर्मः समः स्वर्गः समं हि परमं तपः॥
यस्यैव मानसे नित्यं समः स पुरुषोत्तमः।
विशेषे सर्वलोकेषु समो योगिष्वलोलुपः॥
एव योवर्तते नित्यं कुल कोटि समुद्धरेत्।
सत्यं दमः शमश्चैव धैर्यस्थैर्यमलोभता॥
अनाश्चर्यमनास्तस्यं तस्मिन् सर्वं प्रतिष्ठितम्।
तेनैव देव लोकस्य नर लोकस्य सर्वशः॥
वृत्तं जानाति धर्मज्ञस्तस्य देहे स्थितो हरिः।
लोके तस्य समोनास्ति समः सत्यार्जवेषु च॥

—पद्मपुराण सृष्टि खंड अध्याय ४७

हे ब्रह्मन्! उस धर्मात्मा तुलाधार ने सत्य और समता से तीनों लोकों को जीत लिया है। इसी से उसके ऊपर पितर-देवता और मुनि सब प्रसन्न रहते हैं। इन्हीं गुणों के कारण वह भूत और भविष्यत की सब बातें जानता है। सत्य से बढ़कर कोई धर्म और असत्य से बढ़कर कोई पाप नहीं है। जो पुरुष पाप से रहित और समभाव में स्थित है, जिसका चित्त शत्रु मित्र और उदासीन के प्रति समान है उसके सब पापों का नाश हो जाता है और वह विष्णु भगवान के सायुज्य को प्राप्त होता है। समता धर्म और समता ही उत्कृष्ट तपस्या है। जिसके हृदय में सदा समता विराजती है वही पुरुष सम्पूर्ण लोकों में श्रेष्ठ, योगियों में गणना करने योग्य और निर्लोभ होता है। जो सदा इसी प्रकार समता पूर्ण बर्ताव करता है वह अपनी अनकों पीढ़ियों का उद्धार कर देता है। उस पुरुष में सत्य, इन्द्रिय संयम मनोनिग्रह धीरता, स्थिरता निर्लोभता और आलस्यहीनता ये सभी गुण प्रतिष्ठित होते हैं। समता के प्रभाव से धर्मज्ञ पुरुष देवलोक और मनुष्यलोक के सम्पूर्ण वृत्तान्तों को जान लेता है। उसकी देह के भीतर साक्षात श्री विष्णु भगवान विराजमान रहते है। सत्य और सरलता आदि गुणों में उसकी समानता करने वाला इस संसार में दूसरा कोई नहीं होता। वह साक्षात धर्म का स्वरूप होता है और वही इस जगत को धारण करता है। समता, जन्म, मन्त्र, तप और औषधि के अतिरिक्त भी कई सरल साधन ऐसे हों जो साधक को सिद्धावस्था तक पहुँचा सकते हैं। उनमें से कुछ इस प्रकार हैं—

प्रार्थना से सिद्धि

अनके बार ऐसा देखा गया है कि सच्चे हृदय से भगवान की प्रार्थना करने से, अपना इच्छित मनोरथ पूरा कर देने की प्रभु से याचना करने से, वह कार्य पूरा हो जाता है। इस प्रार्थना से सिद्धि मिलने का एक आध्यात्मिक रहस्य है—वह यह है कि प्रार्थना करने वाले को यह विश्वास रहता है कि (१) परमात्मा ऐसा शक्तिशाली है कि वह चाहे तो आसानी से मेरी इच्छा को पूरा कर सकता है। (२) परमात्मा दयालु है। उसके स्वभाव को देखते हुए यह आशा की जा सकती है कि मेरे कार्य को पूरा कर देगा। (३) मेरी माँग उचित, आवश्यक और न्याय संगत है इसलिए परमात्मा की कृपा मुझे प्राप्त होगी। (४) अपने अन्तःकरण का श्रेष्ठतम भाग, श्रद्धा, विश्वास, परमात्मा पर आरोपण करते हुए सच्चे हृदय से प्रार्थना कर रहा हूँ। इसलिए मेरी पुकार सुनी जायेगी। इन चारों तथ्यों के मिलने से याचक की आकांक्षा प्रबल हो उठती है और उसके पूरे होने का बहुत हद तक उसे विश्वास हो जाता है, आशा की किरणों का प्रकाश उसके अन्तःकरण में बढ़ जाता है।

ऐसी मानसिक स्थिति का होना सफलता की एक पूर्व भूमिका है। तरीका चाहे कोई भी हो पर मनुष्य यदि अपनी मानसिक स्थिति ऐसी बनाले कि मेरा मनोरथ सफल होने की पूरी आशा, पूरी सम्भावना है तो अधिकांश में उनके मनोरथ पूरे हो जाते हैं। क्योंकि आशा और सम्भावनामयी मनोदशा के कारण शारीरिक और मानसिक शक्तियाँ असाधारण रूप से जाग उठती हैं और उत्तमोत्तम उपाय सूझ पड़ते हैं। मार्ग निकलते हैं, एवं सहयोग प्राप्त होते हैं, जिनके कारण सफलता का मार्ग बहुत आसान हो जाता है और प्रायः वह प्राप्त भी हो जाती है।

सिद्धि का मूल—साधना है

प्राणिमात्र को कुछ न कुछ इच्छा लगी रहती है और अपनी-अपनी कामनापूर्ति हो जाय, यह सभी प्राणी चाहते हैं। सारी प्रवृत्तियाँ किसी न किसी इच्छा की पूर्ति के लिए ही होती है। अच्छी हो या बुरी। जिस अभीष्ट के लिए हम निरन्तर प्रयत्नशील हैं वह प्राप्त हो जाय, यह इच्छा किसे नहीं होती ? हाँ सबकी चाह अलग-अलग अवश्य है। कोई कुछ चाहता है और कोई कुछ और ही, पर चाह कुछ न कुछ पाने की सबको अवश्य है। इसीलिये प्रवृत्तियाँ भी अलग-अलग प्रकार की होती हैं। जिसे जिस स्थान जाना है वह उसी के पहुँचने वाले मार्ग को अपनायेगा न! चाह मात्र से ही कार्य सिद्धि नहीं होती। अतः उसकी प्राप्ति के लिए अनुकूल प्रवृत्तियाँ अपनानी पड़ती हैं। साध्य को निश्चित कर साधनों को अपनाने से सिद्धि मिलती है। अतः सिद्धि का मूल साधना में है।

इच्छित कार्य का पूर्ण होना ही उसकी सिद्धि है। इच्छाएँ अनेक तो कार्य भी अनेक होंगे ही और कार्य विविध, तो उनके फल भी भिन्न-भिन्न होंगे। अतः सिद्धि भी विविध प्रकार की समझिये। जो व्यक्ति जो परिणाम चाहता है। उसकी प्राप्ति ही उसकी सिद्धि है। साधना का फल ही सिद्धि है। सिद्धि मिली तो साधना की पूर्णता हुई।

सिद्धि के लिए साधना की आवश्यकता है। उसके बिना सिद्धि नहीं मिल सकती। साधना द्वारा सुषुप्त शक्तियाँ जाग्रत होती हैं एवं जाग्रत शक्तियाँ सबल बनती हैं, जिससे सिद्धि सहज हो जाती है। वास्तव में आत्मा की अनेक शक्तियाँ सुषुप्त अवस्था में पड़ी हुई हैं, जो आवरित हैं—उनका मान ही पहले नहीं होता। इसलिये मनुष्य कह बैठता है कि मैं इसे नहीं

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कर सकता, या मेरे लिये यह असम्भव है, क्योंकि, अन्तर्गुप्त शक्तियों के सम्बन्ध में उनकी कल्पना ही नहीं होती है, जब दूसरे व्यक्तियों को उस काम को करते देखता है। तो विचार होता है कि यदि वह परमार्थ कर सकता है तो मैं क्यों नहीं कर सकूँगा ? इसलिए कहा गया है कि साधनों में बल प्राप्त करने के लिए किसी पूर्ण साधक का आदर्श सामने रखना चाहिए। सम्भव हो तो उसके सानिध्य में साधना प्रारम्भ करना चाहिए। प्रभु को देख कर अपनी अन्तर्निहित प्रभुता का मान होता है और महापुरुषों की साधना पर विचार करने से ही साधना की प्रेरणा मिलती है। मार्गदर्शन व पक्ष मिलता है, दृष्टान्त के लिए कहा गया है—

अब कुल गत केहरी लहे रे।
निज पर सिंह निहाल।
तिमि प्रभु भक्ति भवि लहे रे।
आत्म शक्ति सम्भाल.....जिन गरजेरे।

अर्थात्—एक सिंह का बच्चा बकरियों के डोले में जन्मतेही रहने लगा। इसलिए वह अपने आपको उसके जैसा बकरा मान बैठा, अपने सिंहत्व के बल पौरुष को भूल गया। पर बड़े होने पर अचानक एक दिन अपने जैसे ही सिंह को देखा और जब अन्य बकरियों का झुण्ड भाग खड़ा हुआ तो उसने सोचा इनके भागने का कारण क्या ? विचार करने पर उसने अपने स्वरूप को जाना, उसे अपने बल पौरुष का भाव ही आया, वैसे ही प्रभुत्व अपनी आत्मा है पर यह जीव आदि संस्कारों से स्वरूप भुला बैठा है, प्रभु दर्शन कर उसे अपनी प्रभुता स्मरण हो आती है और वह साधना पथ में प्रपंच हो जाता है।

शक्ति साधन में ही है या साधना द्वारा ही शक्ति प्रकट व प्राप्त की जा सकती है। फिर इसका उपयोग सही दिशा में किया जाय या उल्टी दिशा में, यह तो साधक पर निर्भर है। मन्त्र को लीजिये अक्सर वही है जो हम रात-दिन व्यवहार करते हैं। केवल उनका अमुक शक्ति का संयोजन उच्चरण कर दिया जाता है। पर इतने से ही उनका फल नहीं मिलता है। उसमें जो फलदातृ शक्ति का विकास या प्रादुर्भाव होता है, उसका कारण तो उस मन्त्र की साधना करने में है। अमुक परिमाण में, अमुक तरीके से उसका तप किया जाय, तो शब्दों में साधना के द्वारा एक विशेष शक्ति उत्पन्न होती है। वहाँ उस मन्त्र की सिद्धि है वही फलती है। वास्तव में साधना से आत्माविश्वास ही फलता है। शब्द तो निर्मित मात्र है, शब्द मन्त्र तो वही का वही है पर साधना की कमीबेशी के कारण सबको सिद्धि एक जैसी नहीं मिलती। किसी का झण्डा ऐसा रामबाण होता है कि तुरन्त फल देता है। तब वही मन्त्र दूसरा व्यक्ति बोलता है पर उससे वैसा चमत्कार उत्पन्न नहीं देखा जाता साधना के तारतम्य से ही सिद्धि का तारतम्य होता है, हर प्रकार की सिद्धि में साधना की आवश्यकता ही है।

अब हमें देखना यह है कि साधना कहते किसे हैं? साधक साध्य की प्राप्ति के लिए जो अनुकूल प्रयत्न करता है वही प्रयत्न साधना है। किसी कार्य को अनेक बार करना अभ्यास कहलाता है और साध्य को ठीक कर उससे दिशा में अभ्यास बढ़ाते जाना ही साधना है।

कार्य की गुरुतर व समान्यता के कारण साधना भी चिरकालीन व अल्पकालीन होती है, दीर्घकालीन साधना में अग्नि धैर्य की बड़ी आवश्यकता होती है। जब चाहा, फल नहीं मिल पाता। फल देने की शक्ति विकसित हो जाये व अपने गुण ग्रहण की योग्यता हो तभी फल मिल सकता है। किसी-किसी साधना को वर्षों तक निरन्तर करना पड़ता है, उसका फल तुरन्त चाहें तो कैसे मिल सकता है ? कहा गया है—

धीरे-धीरे ठाकरा, धीरे सब कुछ होय।
माली सींचे सौ घड़ा, ऋतु आया फल होय।

जब तक साधना अधूरी है उसकी फलरूपी सिद्धि भी अधूरी रहेगी, साधना जितनी ही निर्बल होगी फल सिद्धि उतनी ही कच्ची होगी। अतः उतावलेपन से काम नहीं चलता है। जिसको जितने समय तक जिस ढंग से करना आवश्यक है, उसे उसी प्रकार, उतने समय तक करते रहने से फल मिलेगा। स्त्री गर्भ में वीर्य पड़ते ही बच्चा नहीं हो जाता, उसे परिपक्व बनने के लिए ९ महीना लग जाते हैं। इससे पहले यदि प्रसव होता है तो कच्चाई रह जाती है। २-४ महीने में स्राव हुआ बच्चा आकार नहीं पा सकेगा। माँसपिंड बोडीरूप में ही निकल जायेगा। उतावली करने से नुकसान है, उसी प्रकार जितना प्रयत्न, समय व श्रम उपेक्षित है उतना होने से ही फल मिलेगा। धैर्य से साधना करते जाना अनुकूल साधना जुटाते जाना व उसका बल बढ़ाते जाना आवश्यक है।

दूसरी बात साधना में विघ्न बाधायें भी आती हैं, उनसे विचलित नहीं होना चाहिए। विघ्न बाधायें परीक्षा रूप हैं। उनमें डटे रहने से बल मिलता है, सिद्धि सहज व शीघ्र हो जाती है। विघ्न बाधाओं से विचलित हुआ तो किये-कराये पर पानी फिर जाता है, सब व्यर्थ चला जाता है। भविष्य में उस निराशा व असफलता के कारण मन निरुत्साह हो जाता है। अतः कोई कार्य प्रारम्भ करने की इच्छा ही नहीं होगी।

अधैर्य से या बिना व्यवस्था के सब गुड़गोबर हो जाता है। अतः साधना करते हुए जो विघ्न-बाधाएँ आयें उनको शान्ति के साथ सहन करते हुए, पार कर जाना पड़ता है।

साधना प्रारम्भ करने के लिए उत्कृष्ट इच्छा, दृढ़ निश्चय, परिपूर्ण आत्मविश्वास व पूरी लगन पूर्वक निरन्तर प्रयत्न का होना परम आवश्यक है, उत्कृष्ट इच्छा के बिना साधना में रस नहीं मिलेगा। रस न मिलने पर अधिक दिन चलाये रखना कठिन हो जाता है। सिद्धि के लिए जितनी भूख, इच्छा बेचैनी होगी, साधना में उतना ही बल एवं रस मिलेगा। इस प्रकार दृढ़ निश्चय के बिना उत्साह मन्दता आती रहेगी। विघ्न बाधाएँ आते ही मन उचट जायेगा, आगे बढ़ने का उत्साह जाता रहेगा। फिर तो साधना के द्वारा सिद्धि मिलना सुनिश्चित प्रतीत नहीं होगा। अतः साधना पूर्ण नहीं होगी। मन में यदि दुविधा रही तो फल पाते न देख उसे व्यर्थ समझते ही शिथिलता आ जायेगी, अतः मन में अखण्ड आत्मविश्वास होना चाहिये कि

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

फल में देरी कारणवश हो सकती है, पर साधना कभी निष्फल नहीं जाती। देर सबेर फल अवश्य मिलेगा ही। अतः बीच में छोड़ देने की आवश्यकता नहीं। कार्य करते रहना है जब साधना सिद्धि के योग्य हो जायेगी। फल स्वयं मिल जायेगा। साधना से सिद्धि का घनिष्ठतम सम्बन्ध है। यावत साधना की पूर्णता ही सिद्धि है। वस्तुतः एक ही वस्तु के दो छोर हैं। एक छोर से आरम्भ होता है। जितना-जितना आगे बढ़ा जाता है, दूसरा छोर नजदीक आने लगता है और उस छोर पर पहुँच जाना ही तो सिद्धि है। बीच में ही प्रतिकूल संयोगों से अटक गये, प्रवृत्ति में शिथिलता आ गई, छोड़ दी, तो बीच में ही लटके रहेंगे, यावत 'इतो भ्रष्टः ततः भ्रष्ट' से ही हो जायेंगे।

सिद्धि साधनों पर ही आश्रित नहीं, साधना पर आश्रित है। एक व्यक्ति को साधना अधिक मिलने पर ही यदि वह साधन ठीक से नहीं करेगा तो सिद्धि नहीं मिलेगी या कम मिलगी। तब दूसरे व्यक्ति को साधन कम ही मिले हों पर साधना ठीक करता है, तो सिद्धि सहज में ही परिपूर्ण मिलेगी। एक धनी के लड़के को पुस्तकें व शिक्षा आदि के साधनों की कमी नहीं होती पर वह इतनी लगन व निष्ठा से काम नहीं करता। अतः उतनी सफलता नहीं मिलती। जबकि गरीब विद्यार्थियों को पुस्तकें इधर-उधर से माँग जाँच कर देखनी पड़ती हैं, पूछताछ भी दौड़-धूप करके करनी पड़ती है। पर उसे साधना अधिक करने से सफलता अधिक मिलती है।

"यादृशीर्साधनायस्य-सिद्धिर्भवति तादृशी....."

साधना करते समय तो दत्तचित्त हो उसके आगे बढ़ाने का ही प्रयत्न करते रहना चाहिए। फल की उस समय चिन्ता न हो। फल तो अवश्य मिलेगा ही, यह आत्मविश्वास भर चाहिए। हर समय फल प्राप्ति सम्मुख रहा वही मुख्य रहा तो साधना ठीक से नहीं होगी। मन की शक्ति बिखर जायेगी। यह ठीक है कि लक्ष्य विहीन साधना निष्फल है। लक्ष्य एवं साध्य निश्चित हो। पर हर समय ही यदि फल का ही ध्यान रहा तो फल पाने में देरी होने लगेगी। प्रयत्न शौथल्य से दूसरी बात यह कि जो फल माँगता है उसे तो उतना ही मिलता है, पर जो माँगता नहीं जो अपना कार्य ठीक से किये जाता है। उसे अपेक्षाकृत फल अधिक ही मिलेगा। फल माँगना तो सौदा हो गया। उसका मोल तो माँगने जितना ही है, तब फलाकांक्षा रहित साधना का फल अपरिमित है। इसीलिए गीता में कहा गया है कि कार्य करते जाओ, फलाकांक्षा न रखो। प्रकृति के घर में अन्धेरा नहीं, जो बिना माँगे मिलेगा नहीं, उसे उलटा अधिक मिलेगा, निस्वार्थ साधना के कारण।

साधना को आगे बढ़ाने के लिए यह परमावश्यक है कि साधना में अहंकार न आने का लक्ष्य रखा जाय। मैं ऐसी व इतनी अच्छी साधना करता हूँ, दूसरा वैसी कर नहीं सकता, वह मेरे सामने तुलना में करती ही क्या है ? जब भी ऐसा अहंकार हृदय में उदित हुआ कि आगे बढ़ना रुक जायेगा, पतन का वहीं से प्रारम्भ हुआ समझिये। जब तक वह यह मानता है कि अभी चलना बहुत दूर है, अभी तक पहुँचे ही कितनी दूर हैं, अमुक महापुरुष ने कैसी जबर्दस्त साधना की, उसके सामने मेरी साधना का ठिकाना ही क्या ? तो वह अपनी कमी देख कर और अधिक बल के साथ आगे बढ़ने का प्रयत्न करेगा, पर जहाँ अहंभाव बढ़ा कि बेपरवाही आई। अहं में क्रोध आदि बढ़ते हैं गाड़ी पटरी से उतर जाती है, पीछे उसके पतन का क्या ठिकाना ? जहाँ तब उसको सम्भालने वाला ही साधन नहीं मिलेगा। पतनोन्मुख पत्थर लुढ़कता ही रहेगा। चढ़ने में देर लगती है, प्रयत्न करना पड़ता है, गिर पड़ना तो सहज ही होता है, तुरन्त होता है, एक पत्थर को ऊपर चढ़ाने में कितना समय व शक्ति लगती है, गिरने में सैकिन्ड भी नहीं लगते।

साधना का उद्देश्य साकार से निराकार की ओर बढ़ना है, व उसकी पूर्णता तक पहुँच जाना है। साधन, भजन साकार होता है पर उसके द्वारा निराकार में पहुँचा जाता है। दूसरे शब्दों में कहें तो साधना से निराकार भी साकार हो जाता है, प्रारम्भ में जो सिद्धि हमें हृदयगम्य व अगोचर होती है, वही साधना के द्वारा अनुभवगम्य व दृष्टिगोचर हो जाती है। कल्पना का सत्य साकार उपस्थित होता है। कल्पना के पंख लग जाते हैं। साधना द्वारा जो चाहे हो सकता है। जो पहले विचार रूप में था, वह प्राप्त होने पर सम्मुख व प्रत्यक्ष हो जाने से साकार हुआ ही समझिये। साधना से असाध्य-सुसाध्य एवं असम्भव-सम्भव हो जाता है।

प्रत्येक कर्म की कुशलता, साधना पर अवलम्बित है। संगीत को ही लीजिये, कई वर्षों की साधना से स्वर एवं वादन की कुशलता प्राप्त होती है, तो आध्यात्मिक साधना तो बहुत बड़ी चीज है। उसके लिए और भी अधिक तल्लीनता एवं प्रयत्न की आवश्यकता होगी ही, अतः सिद्धि चाहिये, तो साधना करते रहिये।

किसी भी कार्य की सफलता उसमें मन, वचन, तृष्णा की सम्पूर्ण शक्तियों के नियोजित करने पर ही निर्भर है। मन किधर ही है पर वचन और काया की प्रवृति मन्त्रवत् हो रही है। जब मन में ही करने की इच्छा नहीं, पर दबाव से लोक दिखावे के लिए प्रवृत्ति चाहते हैं तो उससे इच्छित फल कभी नहीं मिल सकेगा। अतः साधना करने में पूरी लगन से जुटना आवश्यक है।

बाधक कारणों के हटाये बिना भी साधना कार्य कारी नहीं होती। इसलिए सहायक हो उन्हें अपनावें व बन्धन हों उनसे दूर रहने का ध्यान करें। जिस कार्य के लिये जिन साधनों की आवश्यकता है पहले उनको सरल करने का प्रयत्न करिये। सीरा बनाना है तो आटा, चीनी, घी, अग्नि, पानी, कढ़ाई, करछी, सब साधना चाहिये। उनके बिना सीरा बनेगा कैसे ? जहाँ तीव्र साधना की इच्छा है, वह ध्यानपूर्वक साधन जुटा ही लेगा स्वयं भी मिल जायेंगे। उसका काम रुकेगा नहीं।

सफलता न मिलने पर हम प्रायः साधनों को दोष देते रहते हैं पर अपनी कमी पर विचार नहीं करते। यह हमारी महान भूल है। साधक को प्रतिमास आत्मनिरीक्षण करते रहना आवश्यक है। तब भी जहाँ जितनी भी अपनी त्रुटि मालूम हो तुरन्त उसे सुधारने व दूर करने का प्रयत्न करिये।

स्वामी विवेकानन्द ने सच्ची सिद्धि प्राप्त करने के लिये ७ सीढ़ियाँ बतलायी हैं:—

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

१. **शम और दम**—मन को भीतर या बाहर भटकने से रोकना और इन्द्रियों को अपने केन्द्रों में लगा के रखना—इसी का नाम 'शम' तथा 'दम' है। मन को बहिर्मुख होने से रोकना यह 'शम' कहलाता है और इन्द्रियों के बाहरी साधनों का निग्रह, इसी का नाम 'दम' है।

२. **तितिक्षा (आदर्श सहनशीलता)**—दुःख आता है तो आने दो। आये हुए दुःखों को सहन करना, उन्हें रोकने या दूर करने का विचार भी न करना, तज्जन्य शोक या आवेग मन में पैदा भी न होने देना—इसी का नाम 'तितिक्षा' है।

३. **उपरति**—इन्द्रियों के विषयों का विचार भी न करना।

४. **श्रद्धा**—'श्रद्धा, मनुष्य का धर्म के प्रति और परमेश्वर के प्रति अमर्याद विश्वास है।'

५. **समाधान**—परमेश्वर में अपने मन को निरन्तर एकाग्र करने का अभ्यास।

६. **मुमुक्षा**—एक रोटी के टुकड़े का, एक सांस भर हवा का कपड़े, लत्ते का, देशाभिमान का, अपने देश का, अपने नाम का या अपनी कीर्ति का मनुष्य दास है। इन से स्वतन्त्र होने की अभिलाषा।

विषय निस्सार हैं और सुख-दुःख का कोई अन्त नहीं है। दुःख के साथ सुख और सुख के साथ दुःख लगा हुआ है। दुःख के पीछे दौड़ना जिस तरह मनुष्य की कीर्ति के लिये अधःपतन है, उसी तरह सुख के पीछे दौड़ना भी अपना अधःपतन कर लेना है। मुमुक्षु को उन दोनों ही का तिरस्कार करना चाहिये।

७. **नित्यानित्य विवेक**—प्रत्येक वस्तु अस्थिर है यह सारा विश्व ही परिवर्तनशील पिण्ड है। बस वही एक है, जो कभी नहीं बदलता—वह है ईश्वर। और हम उस के जितने ही अधिक नजदीक जावेंगे। उतनी ही कम हम में परिवर्तन या विकार होगा। और जब हम उस परमेश्वर तक पहुँच जावेंगे, उसके सामने जाकर खड़े होवेंगे तो हम प्रकृति को जीत लेंगे।

इन सात मान्यताओं को अपनी मनोभूमि में जमाने वाला, इन सात सीढ़ियों पर चढ़कर ऊपर उठने वाला मनुष्य न केवल आत्मानुभूति प्राप्त करता है, वरन् सिद्धियों और ईश्वर प्राप्ति का अधिकार होता है।

सिद्धियाँ देखिये, जानिये

साधना उपासना प्रायः तीन प्रयोजनों के लिए की जाती है। पहली लौकिक सफलताओं के लिए, जिनमें कोई मनोकामना की पूर्ति अवरोध हटने-मिटने और अभीष्ट उपलब्धियाँ प्राप्त करने का उद्देश्य रहता है। पता नहीं साधना उपासना से किसी का यह उद्देश्य पूरा होता है अथवा नहीं क्योंकि यह उद्देश्य विशुद्ध रूप से लौकिक और भौतिक है और साधना उपासना आत्मिक आध्यात्मिक प्रयास है। मनोकामनाओं की पूर्ति में इस तरह के प्रयास शायद ही पूरे होते हों। कुछ लोगों के हो भी जाते होंगे पर निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि आध्यात्मिक प्रयोगों द्वारा अनिवार्य रूप से भौतिक मनोकामनाओं की पूर्ति हो ही जाती है।

लौकिक कामनाओं की पूर्ति से हटकर कई लोग अतिमानवीय क्षमतायें प्राप्त करने के लिए साधना का मार्ग अपनाते हैं। उसमें यदाकदा सफलता मिल भी जाती है और ठीक ढंग से यदि साधना की जाय तो निश्चित रूप से सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं। आत्मिक कल्याण के लिए किये जाने वाले योगाभ्यासों में भी अपने आप भी कितनी ही अतीन्द्रिय क्षमताएँ जागृत होती हैं। महर्षि पतंजलि ने उन सिद्धियों का उल्लेख योगदर्शन के विभूति पाद में सविस्तार किया है। अणिमा, लघिमा, महिमा, गरिमा, प्राप्ति, प्रकाम्य, वशित, ईशित्व, काय सम्पत, मनोजवित्व, विकरण, प्रधान-जय, भूत जय, आकाशगमन, प्रतिभा, श्रावण, वेदन, आदर्श, आस्वाद और वार्ता आदि अनेक सिद्धियों का उल्लेख किया गया है, पर साधक को इनमें ही न उलझ जाने के लिए सतर्क भी किया है। क्योंकि ये सिद्धियाँ अन्तिम लक्ष्य 'आत्मकल्याण' में बाधक ही बताई गई हैं।

यह ठीक है कि मनुष्य अनन्त शक्तियों और सम्भावनाओं से भरा हुआ ईश्वर का ज्येष्ठ पुत्र राजकुमार है। पर उसकी अधिकांश शक्तियाँ सुषुप्त ही रहती हैं। इसका कारण परमात्मा की दुराव भरी इच्छा नहीं है वरन् यह मनुष्य के हित में ही है क्योंकि पात्रता से अधिक यदि उसे कुछ मिल गया तो उसमें लाभ की अपेक्षा हानि ही अधिक है। कम योग्यता वाले और कम विकसित व्यक्ति के हाथों में अधिक अधिकार और अधिक शक्तियाँ सौंप दी जायें तो वह अपना और समाज का भला करने की अपेक्षा नुकसान ही ज्यादा करेगा। अनगढ़ और पागल व्यक्ति के हाथ में यदि बन्दूक थमा दी जाये तो वह अपने अलावा अन्य लोगों को भी उसका निशाना बना सकता है। बच्चों के हाथ में विस्फोटक पदार्थ सौंप दिये जायें तो वह स्वयं जल मरने के साथ-साथ दूसरी अन्य हानियाँ भी पहुँचा सकते हैं। यही बात सिद्धियों और अतीन्द्रिय सामर्थ्यों के सम्बन्धों में भी लागू होती है। दक्षिण-मार्गी साधना करते हुए यह सिद्धियाँ उन्हीं लोगों को हस्तगत होती हैं जो उनका सदुपयोग करना जानते हैं।

बहुत से लोग हठपूर्वक भी यह सिद्धियाँ प्राप्त कर लेते हैं। सिद्धियाँ बुरी नहीं हैं, परन्तु उनके सदुपयोग की, सार-सँभाल की कला न आती हो तो उससे परमाणु शक्ति के कारण होने वाले विनाश जैसी सम्भावनाएँ हर घड़ी बनी रहती हैं। परमाणु शक्ति के ध्वंसात्मक उपयोग की थोड़ी बहुत जानकारी तो प्रायः सभी को है। उसकी सृजनात्मक सम्भावनाओं के बारे में भी पिछले दिनों काफी प्रयोग किये गये हैं और उन प्रयोगों के माध्यम से सृजन की कितनी ही ऐसी सम्भावनाओं को स्वीकार किया गया है जो अगले दिनों साकार हो सकेंगी। सर्दी-गर्मी, वर्षा ऋतुओं में हेर-फेर करना तक इन प्रयोगों के द्वारा सम्भव हो सकेगा। समुद्र की अथाह जलराशि से उसके खारेपन को अलग कर मीठा पानी प्रचुर मात्रा मे उपलब्ध किया जा सकेगा। मरुस्थल तथा ऊबड़-खाबड़, पहाड़ी और बंजर भूमि को उपजाऊ बनाया जा सकेगा। समुद्र में वनस्पतियाँ उगा कर आहार की समस्या का समाधान सम्भव हो सकेगा। मानवीय श्रम का बोझ बिजली सम्हाल लेगी व लोग केवल मनोरंजन के लिए काम किया करेंगे। संसार के एक कोने

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org

में रहने वाले मनुष्य का सम्पर्क दूसरे छोर पर रहने वालों के साथ क्षण भर में स्थापित हो सकेगा आदि-आदि।

अणु के स्वरूप, शक्ति और बाहुल्य पर दृष्टिपात करें तो यह जानकर आश्चर्य होता है कि अपने अति समीप ही अतिशय शक्ति का इतना बड़ा भण्डार प्रस्तुत है कि उससे लाभ उठाते नहीं बनता। उसकी शक्ति की संक्षिप्त जानकारी भी आश्चर्यचकित कर देती है। अणु का आकार एक इंच के बीस करोड़वें भाग के बराबर होता है। अब तक बने किसी भी सूक्ष्मदर्शी यन्त्रों में से किसी के भी द्वारा अणु को अकेला नहीं देखा जा सका और न ही उसे तोलने की कोई तराजू बनाई जा सकी है।

पदार्थ के सबसे छोटे इस कण के बारे में अभी पूरी तरह नहीं जाना जा सका है पर उससे शक्ति प्राप्त करने में अवश्य सफलता प्राप्त कर ली गई है। परमाणु द्वारा शक्ति उत्पन्न करने की प्रक्रिया अणु—विखंडन कहलाती है। इसके लिए मूलतः यूरेनियम धातु का प्रयोग किया जाता है। उस पर न्यूट्रान्स का आघात करने से अणु विखण्डन हो जाता है। उपलब्ध यूरेनियम पूरी तरह विखण्डन के योग्य नहीं। उसका एक प्रतिशत से भी कम अंश विखण्डनीय होता है। शेष ९९.२९ प्रतिशत भाग बेकार चला जाता है। प्रयत्न यह हो रहा है कि इस भाग के विखण्डन में सहायता देने योग्य बनाया जाये। विज्ञान की भाषा में शुद्ध अंश को यूरेनियम-२३५ तथा अशुद्ध अंश को यूरेनियम-२३८ कहा जाता है। अशुद्ध यूरेनियम पर न्यूटाणुओं का आघात करके उसे भी एक नये पदार्थ प्लूटोनियम-२३९ में परिणत कर लिया जाता है। इस प्रकार लगभग सारा मसाला ही घुमा-फिरा कर परमाणु शक्ति उत्पन्न करने में प्रयुक्त किया जा सकेगा।

एक घन फुट यूरेनियम में इतनी शक्ति उत्पन्न की जा सकती है जितनी कि १७ लाख घन फुट कोयले में से अथवा ७२ लाख गैलन तेल में होती है। इसे १२० खरब घन फुट प्राकृतिक गैस के बराबर भी समझा जा सकता है। यूरेनियम में अग्नि और रेडियम सक्रियता दोनों गुण हैं। इसलिए उसके निर्माण एवं उपयोग में पूरी-पूरी सावधानी बरतनी पड़ती है। तनिक-सी असावधानी के कारण महाविनाश उत्पन्न हो सकता है। पिछले दिनों अमेरिका में हैरिसवर्ग के पास एक नदी के द्वीप पर स्थित परमाणु बिजली घर में ऐसी ही दुर्घटना घटी। हालांकि सावधानी के तौर पर तुरन्त ध्यान दिया गया। फिर भी जितनी रेडियोधर्मिता फैलने का अनुमान लगाया जा रहा है वही महाविनाशकारी है।

परमाणु बिजली घरों में ऐसी व्यवस्था होती है, कि संयन्त्रों में साधारण-सी भी गड़बड़ी आ जाय तो खतरे की सूचना देने वाली बत्तियाँ जलने लगती हैं। पिछले दिनों इसी तरह बत्तियाँ जल उठीं। सोचा गया कहीं कोई साधारण-सी गड़बड़ी होगी। लेकिन जब संकट बड़ा दिखाई दिया तो रेडियो-धर्मिता से दूषित पानी बड़े पैमाने पर बाहर निकलने लगा। करीब ढाई लाख गैलन पानी बाहर आया। यदि ऐसा नहीं किया जाता तो बिजली घर की भट्टी के पूरी तरह से गल जाने या फट जाने का भय था।

वैज्ञानिक जाँच-पड़ताल के दौरान पता चला कि उस भट्टी के भीतर ८८० घनफुट का विराट बुलबुला बन गया। अगर यह बुलबुला और बड़ा होता जाता है। तो इस बात की पूरी सम्भावना है कि भट्टी में आने-जाने वाला पानी रुक जाये और भट्टी का तापमान बढ़ जाये। इस जाँच-पड़ताल के समय भट्टी का तापमान ६०० डिग्री फारेनहाइट था। यदि भट्टी में आने-जाने वाला पानी रुका ही रहा तो वह ३००० डिग्री फारेनहाइट तक पहुँच जायेगा। उस स्थिति में भट्टी का सारा यूरेनियम पिघलकर जमीन में रिसने लगेगा। शुद्ध यूरेनियम इतनी बेधक धातु है कि पृथ्वी को तोड़ती फोड़ती उसके दूसरे छोर तक पहुँच जायेगी। ऐसी दशा में पूरी पृथ्वी के ही विनष्ट हो जाने की सम्भावना व्यक्त की गई है। अमेरिका के परमाणु-विदों का कहना है कि यदि यूरेनियम धातु पिघल कर जमीन में रिसने लगी तो वह रिसते-रिसते चीन तक पहुँच जायेगी। ऐसी दशा में पृथ्वी पर कैसा विनाशकारी दृश्य उपस्थित हो जायेगा। इसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती।

इसके अलावा वैज्ञानिकों ने एक-दूसरे खतरे की ओर भी संकेत किया है। वह यह कि भट्टी को ठण्डा रखने के यदि सारे प्रयास विफल रहे तो उसमें हाइड्रोजन गैस की मात्रा बढ़ती जायेगी। अगर वह बहुत ज्यादा हो गई तो विस्फोट होने का खतरा है। विस्फोट इतना जबर्दस्त हो सकता है कि न केवल भट्टी बल्कि भट्टी के चारों ओर बनी कंक्रीट सीमेन्ट की दीवारें भी फट जायेंगी और रेडियोधर्मी विकिरण चारों ओर फैल जायेगा तथा सारा वायुमण्डल प्रदूषित हो जायेगा। ऐसी दशा में दूर-दूर तक के प्राणियों का जीवन अस्तित्व तो खतरे में पड़ ही जायेगा। समस्त पृथ्वीवासियों का स्वास्थ्य भी संकटग्रस्त हो उठेगा।

अणु में इतनी विनाशकारी शक्तियाँ भी छिपी हैं, और शान्तिपूर्ण प्रयोगों के लिए किये जाने वाले प्रयोगों में भी तनिक-सी असावधानी बड़े भारी संकट और विनाश प्रस्तुत कर सकती है। फिलहाल विनाशाकारी प्रयोजनों के लिए तो उसका खुलेआम उपयोग होने की सम्भावनाएँ क्षीण ही हैं। अभी अणु शक्ति से बिजली का उत्पादन, पनडुब्बियों का संचालन, अन्तर्ग्रहीय ग्रहों की यात्रा करने वाले राकेटों के प्रक्षेपण जैसे ही काम लिए जा रहे हैं। परन्तु निरापद वह भी नहीं है।

निर्जीव और जड़ अणु इतना शक्तिमान है तो चेतना की सामर्थ्य को तो उससे असंख्यों गुना अधिक होना चाहिए। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि अणु विज्ञान से बढ़कर आत्मविज्ञान है। जड़ अणु में जब इतनी शक्ति विद्यमान है तो जड़ की तुलना में चेतन का जो अनुपात है उस हिसाब से आत्म-शक्ति की महत्ता बहुत ज्यादा होनी चाहिये। अणु विज्ञानी अपनी उपलब्धियों पर गर्वान्वित हैं और उस सामर्थ्य को युद्ध अस्त्र से लेकर बिजली की कमी को पूरा करने जैसी योजनाओं में प्रयुक्त करने के लिए प्रयत्नशील है। आत्मविज्ञानियों का कर्त्तव्य है कि वे उसी लगन और तत्परता के साथ आत्मशक्ति की महत्ता व उपयोगिता को इस प्रकार प्रमाणित करें कि सर्वसाधारण के लिए उसकी गरिमा समझ सकना सम्भव हो सके।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

इन बातों को स्पष्ट किया जा सके तभी यह समझा जा सकेगा कि सिद्धियाँ दिव्य शक्ति के वरदान हैं, तो उपयोगी, पर उन्हें सम्हाल कर रखना अति दुष्कर है। थोड़ी भी कहीं चूक या असावधानी हुई तो अणु ऊर्जा के बिखर जाने की तरह ही उससे भी हानि होने का भय है। आत्मशक्ति का बिखराव रावण, कुम्भकरण, भस्मासुर, हिरण्यकश्यपु की तरह विध्वंसकारी खलनायक बन कर ही छोड़ता है। अस्तु आत्मिक कल्याण के इच्छुकों को इनके लिए न लालायित रहना चाहिए और न ही इनके प्रलोभन में फाँसना चाहिए। वैसे ही परमेश्वर के इतने अजस्र अनुदान प्रत्यक्ष रूप से मनुष्य को मिले हैं कि उन्हीं का ठीक तरह उपयोग किया जाय तो यह जीवन स्वर्गोपम बन सकता है। प्रत्येक माता-पिता को अपनी संतान से प्यार होता है और वह स्वयं कष्ट सहकर उनके भरण-पोषण का ही नहीं शिक्षा-दीक्षा, ब्याह-शादी, रोटी, रोजगार तक का प्रबन्ध करता है फिर भी उसके सुख-दुःख में हर समय पूरी सहायता करने के लिए तत्पर रहता है।

मनुष्य भी परमेश्वर की सन्तान है। उसके प्रेम की विशिष्टता का परिचय इसी से मिलता है कि मनुष्य को ईश्वर प्रदत्त अत्यधिक सुविधाएँ उपलब्ध हैं। ऐसा लगता है मानो यह सारा जगत ही मनुष्य की सेवा, सुविधा और प्रसन्नता के लिए बना है। जिस ओर भी दृष्टि दौड़ाई जाय उसी ओर हर्षोल्लास प्रदान करने वाले साधनों का बाहुल्य दिखाई देता है। विवेकपूर्वक विचारपूर्ण दृष्टि से देखा जाय तो चारों ओर सुख सुविधायें भरी पड़ी हैं। उनके रहते सिद्धियों की आकांक्षा लोभवृत्ति की ही परिचायक होंगी।

चमत्कारी सिद्धियों का यथार्थ

मनुष्य का निर्माण करते समय परमात्मा ने उसमें इतनी सम्भावनायें भर दी हैं कि उनकी कोई सीमा नहीं है। वैज्ञानिक और आध्यात्मिक सभी दृष्टियों से अध्ययन और विश्लेषण करने पर भी यह नहीं जाना जा सका है कि मनुष्य के विकास की अन्तिम सीमा क्या है ? इतना ही कहा जा सकता है कि ईश्वर के सम्बन्ध में, उसकी शक्तियों और विशेषताओं को लेकर जो कल्पनायें की जाती हैं, वे सभी मनुष्य में बीज रूप से विद्यमान हैं। वह चाहे तो इन शक्तियों को बड़े मजे से विकसित कर सकता है और सृष्टि की प्रत्येक कृति में जो चमत्कार दीख पड़ता है उसी प्रकार वह अपने व्यक्तित्त्व एवं कर्तृत्व को बढ़-चढ़ कर सराहनीय, अभिनन्दनीय तथा अनुकरणीय बना सकता है। ऋषि योगी तपस्वी और महामानव इसी चमत्कारी स्तर के हुए हैं। उनका जीवन क्रम इतनी उच्चकोटी का रहा है कि वे सामान्य मनुष्यों की तुलना में बहुत उच्चकोटि के कहे जा सकते हैं।

मानव जाति को उन्होंने अपने अनुदानों से जिस प्रकार उपकृत किया उसका स्मरण कर, उनके सामने श्रद्धा से नतमस्तक ही होना पड़ता है। जिन परिस्थितियों में रहते हुए उन्होंने उत्कृष्ट आदर्शवादिता को अपनाये रखा उसे एक चमत्कार ही कहा जा सकता है। परन्तु आजकल चमत्कारों की दूसरी ही परिभाषा की जाती है। इस शब्द का और ही अर्थ लगाया जाता है, जिसकी न आवश्यकता और न उपयोगिता।

मनुष्य का या सिद्ध, सन्तों का सबसे बड़ा चमत्कार है उनका आत्मबल, जो उन्हें कठिन से कठिन और प्रतिकूल से प्रतिकूल परिस्थितियों में भी अपने आदर्शों तथा सिद्धान्तों पर दृढ़ बनाये रहता है। यही चमत्कारी क्षमता, जिसे आत्मबल कहा जा सकता है सिद्धार्थ को गौतम बुद्ध, एक छोटे से राज्य के राजकुमार को महावीर, गड़रिये के बेटे को ईसा, सामान्य साधु को समर्थ रामदास, वासना में लिप्त कामुक व्यक्ति को तुलसीदास, एक पुजारी को रामकृष्ण परमहंस, घर से भागे हुए नवयुवक को ऋषि दयानन्द, साधारण वकील को विश्व वंदय महात्मा गाँधी, एक अध्यापक को महायोगी अरविन्द बनाता है। सामान्य परिस्थितियों में रहते हुए ऊपर उठ कर महामानवों और देवपुरुषों को पंक्ति में जा विराजना क्या कम बड़ा चमत्कार है ? किन्तु लोगों की चमत्कारी परिभाषा ही भिन्न है और वे बाजीगर के से करतबों को चमत्कार मान बैठते हैं, जिससे न किसी को लाभ मिलता है न किसी को कोई प्रेरणा या प्रकाश। इस तरह के करतब जादूगर भी बता सकते हैं। परन्तु लोग उन्हें बाजीगर कहते हैं, तथा वही करतब कोई धर्मध्वजी साधू वेशधारी व्यक्ति बताता है तो उसे सिद्ध पुरुष, चमत्कारी महा-मानव कहने लगते हैं और उसके सामने नतमस्तक हो जाते हैं।

यदि जरा भी समझ और विवेक से काम लिया जाय तो आसानी से समझा जा सकता है कि उस तरह का चमत्कार बताने की किसे फुरसत है और उसका क्या उद्देश्य हो सकता है ? जिनमें आत्मबल होता है, वे उसका भौंड़ा-प्रदर्शन नहीं करते। उन्हें न लोंग-इलाइची हवा में से निकाल कर उछालते रहने की फुरसत है तथा न ही बालों में से बालू निकाल कर दिखाने की जरूरत है कि आओ देखो मेरे पास कितनी ऋद्धि-सिद्धि है ? सम्पन्न व्यक्ति अपने धन को सुरक्षित रखते है तथा उसे मजबूत तिजोरियों में बन्द कर किसी को बताते नहीं। पूछने पर चुप हो जाते हैं या टाल जाते हैं। कारण स्पष्ट है कि बहुमूल्य उपलब्धियाँ यदि खुली पड़ी रहें तो उनके चोरी होने, खोजाने का पूरा खतरा रहता है। वास्तव में जिन्होंने कोई आध्यात्मिक सम्पदा कमाई है, उन्हें इस तरह का चमत्कार प्रदर्शन करने की जरूरत नहीं है।

ऐसी बात नहीं है कि वे चमत्कारों का प्रदर्शन करने में असमर्थ होते हैं। आत्मबल सम्पन्न व्यक्ति किसी भी असम्भव काम को सम्भव कर दिखाता है। सृष्टा के सृष्टि नियमों को नियंत्रित करने की उसमें सामर्थ्य होती है। परन्तु वह अपनी सामर्थ्य का दुरुपयोग नहीं करता। जहाँ-कहीं आवश्यकता होती है, वहाँ केवल दूसरों के कल्याण और लोकमंगल के लिए ही वह अपनी शक्तियों का उपयोग करता है। इसलिए जहाँ अलौकिक चमत्कारों का विज्ञापन और प्रदर्शन किया जा रहा हो, वहाँ समझना चाहिए कि खतरा है। ऐसे प्रसंगों में हाथ की सफाई-चालाकी के अतिरिक्त और कुछ हो नहीं सकता जो इस तरह के चमत्कारों से प्रभावित होकर तथाकथित अलौकिक महापुरुषों के फेर में पड़ेगा। उसे अन्ततः पछताने के सिवा कुछ भी हाथ न लगेगा। अक्सर ठग और धूर्त किस्म के लोग ही

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

इस तरह के चमत्कारी वेश बना कर अपना उल्लू सीधा करने के लिए भोले, सीधे और नासमझ लोगों को ठगते रहते हैं।

इन तथाकथित अलौकिक चमत्कारी सिद्धि सम्पन्न समझे जाने वाले व्यक्तियों की अपेक्षा तो बाजीगर ही अधिक ईमानदार होते हैं। वे संत बाबाओं की तरह किसी को अपने चंगुल में तो नहीं फंसाते, न उनकी तरह के अनैतिक प्रतिपादन करते हैं। प्रदर्शन के समय वे स्पष्ट रूप से अपनी चतुरता, कलाकारिता और हाथ की सफाई होने की बात कह देते हैं और इन प्रदर्शनों का उद्देश्य लोगों का मनोरंजन कर अपना गुजारा करना बता देते हैं। लोग भी जादूगरी के सम्बन्ध में यही धारणा बना कर काम चला लेते हैं कि यह मनोरंजक व्यवसाय है किन्तु तथाकथित अलौकिक बाबाओं के दावों से तो वे इतना प्रभावित होते हैं कि उनके आज्ञा इच्छानुवर्ती दास बन जाते है।

कहना नहीं होगा कि इस तरह के दावे और साधू बाबाओं द्वारा किये जाने वाले चमत्कारी प्रदर्शन लोगों को अन्धविश्वास ही बनाते हैं। बहुतों के मन में वैसी सिद्धियाँ प्राप्त करने की ललक भी उत्पनन होती है और इस ललक के कारण वे वास्तविक अध्यात्म से हजारों मील दूर हट जाते हैं। इस सम्बन्ध में यह स्पष्ट जान लेना चाहिए कि अध्यात्म का चमत्कारों से कोई सम्बन्ध नहीं। अध्यात्म की चमत्कारी उपलब्धि कुछ होती है तो वह केवल आत्मबल ही है। इस बढ़े हुए आत्मबल के कारण कई व्यक्तियों में अतीन्द्रिय शक्तियाँ भी विकसित हो जाती हैं। उनका विकास साधक की मनःस्थिति और प्रकृति में वैसा परिष्कार आने पर ही होता है, जब वह उसकी निष्ठा इनके उपयोग और प्रयोग की सीमाएँ जान लेती हैं तथा उन मर्यादाओं के प्रति दृढ़ हो जाती हैं फिर वह व्यक्ति सामान्य नहीं रह जाता उसकी चेतना उच्चस्तरीय कक्षा में पहुँच जाती है, जो अपने आत्मबल का, सिद्धियों का उपयोग केवल महत्त्वपूर्ण प्रयोजनों के लिए ही कर पाते हैं।

कभी-कभी किन्हीं साधनों में साधना करते हुए भी कुछ विशेष क्षमताएँ जाग्रत हो जाती हैं। मनीषियों ने उन क्षमताओं को कौतूहलवश प्रयोग में लाने के लिए कड़ाई के साथ मना किया है। भगवान बुद्ध के सम्बन्ध में प्रसिद्ध है कि उन्होंने अपने एक शिष्य का स्वर्ण कमंडल तुड़वाकर नदी में फिकवा दिया था, जो उनसे अपनी अतीन्द्रिय क्षमता से लागों को चमत्कृत करने के लिए प्राप्त किया था। इससे भगवान बुद्ध ने बड़ा रोष व्यक्त किया था और अपने सभी शिष्यों को एकत्रित करके यह प्रतिबन्ध लगा दिया था कि उनमें से कभी कोई आलौकिक चमत्कार न दिखाए। तांत्रिक साधनाएँ कर जल पर चलने की सिद्धि प्राप्त करने वाले एक अन्य योगी को उन्होंने यह कह कर निरुत्साहित किया था कि यह छोटी-सी सफलता प्राप्त करने के लिए बारह वर्ष व्यर्थ श्रम किया। नदी पार करने के लिए तो मल्लाह को कुछ पैसे देकर नाव में बैठना ही पर्याप्त है।

आध्यात्मिक साधनाओं से साधक की आत्मचेतना परिष्कृत होती हैं और उसमें कई विलक्षणताएँ उत्पन्न हो जाती हैं। परन्तु ऋषि मुनियों ने इन विलक्षणताओं पर गर्व करने से तो मना किया ही है, इनकी उपेक्षा का भी निर्देश किया है। योग साधना के परिणामस्वरूप प्राप्त होने वाली सिद्धियाँ का उल्लेख करते हुए महर्षि पतंजलि ने कहा "ते समधाबुपसर्ग_" (योग दर्शन ३/३७) अर्थात् ये सिद्धियाँ यदि प्राप्त हों तो साधक को इनका त्याग कर देना चाहिए क्योंकि इससे साधना में विघ्न उत्पन्न होता है। सिद्धियों के आकर्षण में उलझ कर व्यक्ति अपने लक्ष्य को भूल जाता है तथा आत्मोद्धार के लिए प्रयत्न करना छोड़ देता है।

यही कारण है कि आत्मोद्धार के लिए साधना कर परमहंस स्थिति में पहुँच जाने वाले महापुरुषों ने इस तरह की क्षमताओं का परिचय देने से सदैव इन्कार ही किया है। इस युग के महान सन्त और परम सिद्ध सन्त स्वामी रामकृष्ण परमहंस के सम्बन्ध में विख्यात है, कि किसी व्यक्ति ने उनके पास जा कर पूछा था कि "यदि आपने ईश्वर को प्राप्त कर लिया है और ईश्वर का सिद्ध होना मानते हैं तो ऐसा कोई प्रमाण दीजिये जिससे उसके अस्तित्त्व का पता लगे।" प्रश्नकर्त्ता ने सहज जिज्ञासा के भाव से यह पूछा था इसलिए रामकृष्ण ने उसका समाधान करते हुए कहा था कि इससे बड़ा चमत्कार क्या हो सकता है कि इतना विराट और विशाल जगत सुव्यवस्थित रीति से चल रहा है। चाँद है, सूरज है, तारे हैं, मैं हूँ, तुम हो, पशु-पक्षी हैं, कीड़े-मकोड़े हैं यह कोई कम बड़ा चमत्कार है ? रामकृष्ण के पास स्वयं कई अलौकिक सिद्धियाँ थीं। चाहते तो वे कोई भी चमत्कार बताकर प्रश्नकर्त्ता को चमत्कार और प्रभावित कर सकते थे, किन्तु उन्होंने ऐसा नहीं किया। क्योंकि वे जानते थे कि ऐसे प्रदर्शन प्रश्नकर्त्ता के मन में आत्मोत्कर्ष की आकांक्षा उत्पन्न करने के स्थान पर इन सिद्धियों को प्राप्त करने की ललक उत्पन्न करेगा और वह साधन मार्ग से विचलित हो जायेगा।

आलौकिक शक्तियाँ हैं, उन्हें प्राप्त किया जा मकता है। उनको प्राप्त करने को सुसंगत विज्ञान है परन्तु व्यक्ति और समाज का कल्याण करने वाले अध्यात्म से उनका कोई सम्बन्ध नहीं है। न ही उनकी कोई उपयोगिता है। इसलिए ईश्वरीय विधान के अनुसार उन्हें अविज्ञान एवं रहस्य के आवरण में छिपा रहने दिया जाय, यही उचित है। परमात्मा ने मनुष्य की सहज क्षमताओं को जान बूझ कर उतना ही सीमित रखा है जिससे कि जीवन क्रम सामान्य ढंग से चलता रहे। कल्पना कीजिए अतीन्द्रिय क्षमताएँ उपलब्ध होतीं तो मनुष्य का क्या हाल होता ? पूर्वाभास हर किसी को होने लगे तो स्वाभाविक ही मृत्यु का समय सब को मालूम हो जायेगा और वह काफी समय पहले से ही उदास, खिन्न, भयभीत और क्षुब्ध रहने लगेगा। अतीन्द्रिय दर्शन या श्रवण की शक्ति सहज उपलब्ध होती तो किसी भी व्यक्ति के लिए अपना निजी जीवन निज तक सीमित रखना ही सम्भव नहीं होता। सब दूसरों की व्यक्तिगत बातों को जानते और कान लगाते कि कौन क्या मन्त्रणा कर रहा है ? इस जानकारी के आधार पर वह दूसरों के हितों पर कुठराघात करने की चेष्टा भी करता और लोग ऐसा करने लगते तो सृष्टि व्यवस्था का क्या स्वरूप बनता ?

परमात्मा ने इन्हीं कारणों से मनुष्य को उतनी ही इन्द्रिय क्षमता दी है कि उसका अपना निजी जीवन भी सरलतापूर्वक

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

चलता रहे और सृष्टि क्रम में भी कोई व्यवधान न आये। इससे न्यूनाधिक देने में मनुष्य का लाभ कम और हानि ही अधिक होती। इसीलिए अतीन्द्रिय क्षमताएँ सर्वसुलभ नहीं हैं और न ही उसकी आवश्यकता है। जो जितना आवश्यक है वह उतना ही सुलभ है। हवा, पानी, आहार, वस्त्र, निवास आदि आवश्यकताएँ क्रमशः कम अनिवार्य होती गई है इसलिए इनकी सरल सुलभता भी जटिल और श्रम साध्य होती चली गई हैं।

अस्तु न तो सिद्धियों के लिए लालायित होने और उन्हें प्राप्त करने के लिए ललक उठने की आवश्यकता है तथा न ही किन्हीं में वैसी शक्तियाँ देख कर प्रभावित होना चाहिए। इस तथ्य को भली-भाँति समझ लेना चाहिए और गाँठ बाँध लेना चाहिए कि चमत्कारों का अध्यात्म से कोई सम्बन्ध नहीं है। अध्यात्म की सबसे बड़ी चमत्कारी सिद्धि आत्मबल है जो व्यक्ति के उत्कर्ष में तो सहायक है ही, उसके बल पर वह असंख्य व्यक्तियों के लिए भी प्रकाश व प्रेरणाएँ प्रदान कर सकता है। उस सिद्धि को प्राप्त करने और उसी क्षमता का अधिकाधिक अभिवर्द्धन करने के लिए प्रयासरत रहना चाहिए।

चमत्कारी शक्तियाँ

जीवोऽनन्तबलोपेतः पितालौकिक शक्तिमान्।
वर्तते तस्य सन्त्येताः दास्यश्च ऋद्धि सिद्धयः॥

वस्तुतः शास्त्र का यह कथन बहुत ही अनुभवपूर्ण है कि **"जीव अनन्त बल वाला और अलौकिक शक्तियों का पिता है, ऋद्धियाँ सिद्धियाँ उसकी दासी हैं।"** सचमुच हमारी मानसिक रचना ऐसी अद्‌भुत है कि उसका सम्भावनाओं के सम्बन्ध में बहुत ही कम जानकारी प्राप्त की जा सकी है जितनी जानकारी मिली है वह ऐसी है कि अपने अलौकिक चमत्कारों से आश्चर्यचकित कर देती है।

अष्ट सिद्धियों नवसिद्धियों की मान्यता योगशास्त्र के अन्तर्गत है। पातंजलि ने योग के चमत्कारों पर प्रकाश डालते हुए साधन पाद के सूत्रों में बताया है कि अमुक अवस्था में पहुँचे मनुष्य से हिंसक पशु भी बैर त्याग देते हैं उसके निकट गाय और सिंह एक घाट पानी पीते हैं, वह जो कुछ भी कह दे वही वाणी सत्य हो जाती है, सम्पूर्ण रत्न धन सम्पदा उसके सामने उपस्थित रहते हैं, मन मानो बल हो जाता है। अपने और दूसरों के जन्म-जमान्तरों का वृत्त जान पड़ता है, उसके शरीर के काट डालने पर भी पीड़ा नहीं होती आत्मदर्शन करता है, वशीकरण में निपुण हो जाता है, इन्द्रियाँ दूरदर्शी हो जाती है। बहुत दूर के वृत्तान्त कानों से सुनाई पड़ते हैं। दूरस्थ वस्तुओं को आँखें देखती हैं। नाक सूँघती है, जिह्वा चखती है ? शरीर भाप के समान हलका होकर कहीं भी उड़ सकता है, अदृश्य हो सकता है, पानी पर चल सकता है, वेश बदल सकता है चाहे जितना छोटा या बड़ा बन सकता है। सर्दी-गर्मी भूख प्यास का प्रभाव नहीं पड़ता, प्राण रोक कर यथेच्छ काल तक जीवित रह सकता है, गढ़ी हुई छिपी हुई या अदृश्य वस्तु उसे दिखाई पड़ती है। भूत, भविष्य और वर्तमान का ज्ञान होता है, जीव जन्तुओं की या अन्य भाषा-भाषियों की बोली समझ पड़ती है दूसरे के मन की बातें मालूम हो जाती हैं। मृत्यु को जान लेता है, ग्रहों, नक्षत्रों तथा ब्रह्माण्डों की गतिविधि के बारे में जानकारी हो जाती है, सिद्ध आत्माओं से साक्षात्कार करता है, पाँचों तत्त्व आज्ञाकारी बन जाते हैं, शाप और वरदान देने की शक्ति आ जाती है। जो चाहे सो घटना घटित कर सकता है। यह सब किस प्रकार होता है, इसका कुछ संकेत योगदर्शन के विभूति पाद में किया गया है।

संसार के समस्त देशों में ऐसी जनश्रुतियाँ और लिखित भाषाएँ उपलब्ध होती हैं, जिससे प्रतीत होता है कि प्राचीन काल में वहाँ कुछ व्यक्ति ऐसे रहे हैं, जो असाधारण शक्तियों से सम्पन्न थे वे व्यक्ति ऐसे काम कर सकते थे, जो और लोगों के लिए बड़े आश्चर्य से भरे हुए, अनहोने एवं असाधारण लगे। यह सब गाथाएँ निरीकपोल कल्पनाएँ नहीं हैं। हो सकता है कि कहीं-कहीं कुछ अतिरंजित वर्णन भी हों पर इनका कुछ न कुछ आधार अवश्य है। श्रंखला बद्ध इतिहास का अध्ययन करने से ऐसी सच्चाइयाँ सामने आ जाती हैं। जिनमें अलौकिकताएँ स्वीकार करनी ही पड़ती हैं। अब तक कुछ ऐसे ध्वंशावशेष प्राप्त होते हैं, जिनके गर्भ में दैवी चमत्कारों की गाथायें दबी पड़ी हैं।

उन्नीसवीं सदी में हमारा यह नवविकसित बालक—भौतिक विज्ञान—यह साबित नहीं कर सका था। कोई ऐसी अदृश्य शक्ति है जिसके द्वारा मनुष्य की साधारण मर्यादा से बड़े काम हो सकते हैं। इसलिए चारों ओर यह घोषणा की जा रही थी कि अलौकिकवाद निरर्थक है, मिथ्या है, पाखण्ड है। कुछ दम्भी व्यक्ति जीविकोपार्जन के लिए यह सब मन-गढ़न्त रचते हैं। चूंकि भौतिक विज्ञान ने नित नये आविष्कारों के निर्माण का तांता बाँध कर अपनी प्रामाणिकता को सिद्ध किया और आध्यात्मिक वाद का ह्रास हो जाने से चमत्कारी प्रमाण चाहे जहाँ उपलब्ध न हो सके। यह दोनों संयोग एक साथ ही आ मिले इसलिए अदृश्य शक्तियों के खंडन में कोई विशेष बाधा न रही। भौतिक विज्ञान का साहस यहाँ तक बढ़ा कि उसने ईश्वर की बात तो दूर आत्म तत्त्व तक का अस्तित्त्व मानने से इन्कार कर दिया। कहा जाने लगा—'बोलता पुरुष' कुछ नहीं पंचतत्त्वों से बने हुए शरीर में एक शक्ति वैसे ही उत्पन्न हो जाती है। जैसे ताँबे और जस्ते के तारों को एक विशेष विधान के साथ मिला देने के कारण अनेक कार्य करने वाली बिजली बन जाती है। उपरोक्त मत की पुष्टि करते हुए कुछ मनुष्य की आकृति के यन्त्र भी बने हैं, जो बिजली की शक्ति से कुछ मनुष्य जैसे कार्य भी कर लेते थे। ऐसे युग में स्वाभाविक ही था कि जनसाधारण को विज्ञानवादियों का मत स्वीकार्य होता। एक स्वर से आलौकिकवाद को कल्पना की उड़ान या पाखंड घोषित किया जाने लगा। किसकी हिम्मत थी जो 'विजयी' विज्ञान के विरुद्ध जवान खोलता। जो लोग अलौकिकता का अनुभव करते थे, वे भी बेचारे अपना मजाक उड़वाना नहीं चाहते थे, इसलिए उन्होंने भी मौन रहना ही उचित समझा। विज्ञान युग ने चारों ओर विजय पताका फहरा दी कि, हमने अन्धविश्वासों को उखाड़ कर फेंक दिया। अब कोई देवी, देवता, सिद्ध, योगी, भैरव, बैताल अपना अस्तित्व प्रकट करने का साहस न करेगा।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सचाई आखिर सचाई ही है। उसके अन्दर आत्मजीवन की मात्रा इतनी होती है कि पत्थर को भी तोड़ कर बाहर निकल आती है। एक ओर यह सिद्ध किया जा रहा था कि संसार में दैवी शक्ति कुछ नहीं है दूसरी ओर आँखों के सामने ऐसी घटनायें घटित होती हुई उपस्थित हो रही थी। जिनका समाधान करने वाला कोई उत्तर देने में विज्ञान ने अपने को असमर्थ पाया। सर आलीवर लॉज सर कोनन डायल कर्नल विकलेण्ड आदि प्रसिद्ध तथा प्रतिष्ठित महानुभावों ने अनेक और अत्यन्त आश्चर्यजनक घटनाओं का प्रत्यक्ष अनुभव करने के उपरान्त तत्सम्बन्धी प्रचण्ड तार्किक विवेचना और अन्त में इस निश्चय पर पहुँचे कि—"दृश्य जगत के अतिरिक्त कुछ ऐसी अदृश्य सत्ताएँ भी काम करती हैं, जो ज्ञानवान हैं, विचार बुद्धि रखती हैं और मनुष्य की अपेक्षा असंख्य गुनी शक्तिशालिनी हैं। यह सत्तायें कभी-कभी किन्हीं विशेष मनुष्यों पर कारणवश आकर्षित होती हैं और उसे अद्‌भुत प्रसंगों का अनुभव कराती हैं।" थियोसोफिकल सोसायटी की जीवनदात्री श्रीमती एनी बीसेण्ट एक समय नास्तिकता के विचार रखती थीं किन्तु प्रत्यक्ष प्रमाणों ने इस बात के लिए विवश कर दिया कि वे अपने विचारों को बदल डालें। श्रीमती बीसेण्ट अदृश्य शक्तियों पर इतना अधिक विश्वास करती थीं कि यदि कोई भारतीय होता तो उसे घोर अन्धविश्वासी की उपाधि दे दी जाती। उनके तत्त्वाधान में एक अंग्रेजी पुस्तक प्रकाशित हुई, जिसका हिन्दी अनुवाद दैवी सहायता के नाम से छपा है। इस पुस्तक में ऐसी ही कतिपय प्रत्यक्ष घटनाओं के संस्मरण हैं। जो अदृश्य देवताओं और गुप्त सिद्धियों की मान्यता को प्रमाणित करती हैं।

आध्यात्मिक दृष्टिकोण से सिद्धियाँ

मनुष्य को अपने महान तेज एवं सामर्थ्य का तब तक ज्ञान नहीं होता जब तक उसे आत्मभाव की चेतना तथा आत्म-तत्त्व का बोध न हो जाय। आध्यात्मिक दृष्टिकोण हो जाने के उपरान्त मनुष्य के जीवन में एक महान परिवर्तन होता है। उसे ऐसा प्रतीत होता है मानो वह अन्धकार से दिव्य प्रकाश में आ गया हो अथवा घोर स्वप्नावस्था से जागृति में आ गया हो। जिन क्षुद्र तनिक-तनिक-सी बातों पर उथले व्यक्ति नित्य प्रति दुःख क्लेश भोगते तथा लड़ते झगड़ते हैं। वे आत्म परिचय सम्पन्न सिद्ध को वस्तुतः अत्यन्त तुच्छ क्षुद्र तथा सार-विहीन प्रतीत होती है। कारण वह अपने अन्तःस्थित आत्मा के विकास के कारण विक्षेप रहित शान्त तथा उद्वेग से मुक्त रहता है तथा अपने ईश्वरत्व सत्-चित आनन्द में निवास करता है।

आध्यात्मिक दृष्टिकोण को प्रकट करने वाला एक अत्यन्त संक्षिप्त साधन है—और वह है अपनी आत्मा का विकास। शक्ति का एक वृहत परिणाम इस भण्डार में एकत्रित है उसे संकल्प (Determination), सूचना (Suggestion) तथा मनोबल (Will-power) से विकसित करना पड़ता है। अपनी आत्मा की दिव्य शक्तियों की अभिवृद्धि करने का प्रत्येक व्यक्ति को पूर्ण अधिकार है। हमारी आत्मा में महान शक्ति इसीलिए दी गई है कि हम उसका जितना भी सम्भव हो सदुपयोग करें उससे यथेष्ट लाभ उठावें और उस अनन्त चेतन तत्त्व की समीचीन रूप से अभिवृद्धि करें।

ज्यों-ज्यों तुम अन्तरात्मास्थित सामर्थ्यों को प्रकट करोगे—अतिष्करण करोगे त्यो-त्यों शरीर से पृथक इन्द्रियों तथा मनोविकारों से मुक्त हो विशेष रूप से महत् बनते जाओगे। ये दिव्यशक्ति तुम्हारे अन्तर्मन में अज्ञानवश सुप्त पड़ी है। केवल उन्हें जागृत भर करने की आवश्यकता है। ध्यान तथा मनन से इन शक्तियों को सरलतापूर्वक दृढ़ किया जा सकता है। ध्यान के बिना हम अपनी आत्मा को शक्ति नहीं दे सकते। संसार के उत्तम से उत्तम मानसिक अभ्यास करने वालों का विश्वास है कि ये शक्तियाँ निरन्तर अभ्यास व्यवस्थित अभ्यास द्वारा बढ़ाई जा सकती हैं। अभ्यास द्वारा जितने अंशों में हम निज आत्मा का विकास कर सकेंगे, उतने ही अंशों में उसका यथार्थ उपयोग भी कर सकेंगे।

कितने ही व्यक्ति यह समझ बैठते हैं कि हम कुछ भी दिव्यता प्राप्त नहीं कर सकते। साधारण व्यक्तियों की सम्पत्ति है कि प्रतिभा, सिद्धियाँ या शक्तियाँ ईश्वर प्रदत्त प्रसार है तथा ईश्वर के अनुग्रह मात्र हैं। क्या तुम भी ऐसा ही सोचते हो ? क्या प्राचीन रूढ़ियाँ तुम्हें भी परास्त कर रही हैं।

आज के दार्शनिक कहते हैं कि प्रत्येक मनुष्य अलौकिक शक्तियाँ प्राप्त कर सकता है। कुछ में आलौकिक शक्तियाँ हों, और कुछ में वे बिल्कुल न हों—सो बात नहीं है। मनुष्य उत्तम व्यापारी, लेखक, वक्ता, कवि, कलाभिज्ञ एवं जिस विद्या में भी सिद्धि प्राप्त करना चाहे अन्तरात्मा में दृढ़ निश्चय से बन सकता है। सिद्धि की शक्ति के निमित्त अन्तरमन को अधिकाधिक जागृत पुष्ट एवं सम्पन्न करने की आवश्यकता है। प्रत्येक बात जो आत्मा में प्रकट होती है—उत्तम प्रकार से उपयोग करना सीखो और तुम में अधिक कार्य करने की कुशलता प्राप्त होगी।

प्रकृति ने मनुष्य को अपनी इच्छा-सिद्धि के निमित्त यथेष्ठ साधन और सामर्थ्य प्रदान किये हैं। मनुष्य का स्वभाव ज्यों-ज्यों विशुद्ध आत्मिकभाव और पवित्र आत्मिक दृष्टिकोण को बढ़ाता जाता है। त्यों-त्यों उसमें ज्ञान रूपी दीपक का प्रकाश सामर्थ्य पुष्ट मनोबल भी बढ़ते जाते हैं। उसके अन्तःकरण का प्रगाढ़ अज्ञान तिमिर नष्ट हो जाता है। मन की वृत्तियों का भयंकर उत्पात निरन्तर चाचल्य दारुण प्रहार दूर हो जाता है। वह जगत के मिथ्या प्रपंचों थोथे प्रतिबंधों से मुक्त होकर अलभ्य सामर्थ्य प्राप्त करता है। फिर उस पर विक्षेप का बल प्रहार जादू कदापि नहीं चल पाता।

ज्ञान की सद्‌भावना एवं धारणा द्वारा आन्तरिक सामर्थ्य उद्‌नासित हो उठते हैं और प्रत्येक मनुष्य हमारी ओर आकर्षित होता है। अध्यात्मिक दृष्टिकोण का अर्थ है मन की उच्च भूमिका में प्रवेश करना। आत्मा के बिल्कुल समीप इससे संलग्न मन की सर्वोच्च भूमिका है। वहाँ ही अप्रतिम वस्तुओं का अखण्ड सद्‌भाव रहता है। इस उच्च प्रदेश के चिंतवन मात्र ही पूर्णरूप से निर्मल है। ऐसे उच्चतम प्रदेश में जाने का मार्ग मानस-प्रदेश विहारियों को अभ्यास व मनोबल से मिल जाता है। प्रत्येक व्यक्ति को अपनी आत्मा में अधिकाधिक बल संग्रह

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

करना अपेक्षित है। इस बल को प्राप्त करना बड़ी से बड़ी सिद्धि है।

जिस प्रकार भोजन करने के पश्चात् अन्य कुछ खाने की क्षुधा नहीं रह जाती है और सुस्वाद एवं आकर्षक भोजन सामने लाने से भी उसे खाने की इच्छा नहीं होती उसी प्रकार आध्यात्मिक भोजन चख लेने के बाद इन्द्रियों की परिमित आदि से प्राप्त होने वाला ज्ञान सच्चा वास्तविक ज्ञान नहीं है उसकी प्राप्ति से आन्तरिक शान्ति प्राप्त नहीं होती। सच्चा ज्ञान तो आत्मानुभूति से ही प्राप्त होता है।

तुम निज आत्मा के अन्दर प्रवेश करो। वही तुम्हारा वास्तविक सत्‌चित आनन्द परम विशुद्ध स्वरूप है। वहीं तुम्हें सत्यज्ञान उपलब्ध हो सकेगा। भ्रान्तियों तथा अज्ञान-जन्य निश्चय से मुक्ति के तत्त्व आत्मा के अन्दर प्रवेश करने पर ही प्राप्त हो सकेंगे। वृत्तियों को अन्तर्मुखी करने से तुम्हारा मन पवित्र हो जायेगा और इन्द्रियाँ परिश्रान्त हो जायेंगी। चित्तात्मा में अन्तर्ज्योति चमकने लगेगी और सर्वात्म दृष्टि की प्राप्ति हो जायेगी।

भूला व्यक्ति पूर्व संचित अज्ञान के कारण देह पूजा में निरत रहता है, विषयों के प्रति अत्यन्त आसक्त बना रहता है, क्षण परिवर्तित देशकाल से परिच्छन्न, अनित्य, विनाशी, दुःख के हेतु मिथ्या अभिमान में लिप्त रहता है। संसार की कुटिल वासनाएँ, रसनेन्द्रिय के क्षणभंगुर विषय, उसे पल-पल प्रलोभन देकर अस्थिर किया करते हैं। संसार के विषम आन्दोलन उसे अशान्ति के जलनिधि की उत्ताल तरंगों में इधर से उधर फेंका करते हैं। किन्तु जो बुद्धिमान पुरुष आध्यात्मिक दृष्टिकोण प्राप्त कर लेते हैं वे इन क्षण भंगुर पदार्थों में कभी आसक्त नहीं होते। उन्हें प्रतीत हो जाता है कि शाश्वत अनित्य पूर्व स्थिर वस्तु तो एक वह आत्मा ही है। वही अटल है, सत्य है, पूर्ण सनातन है। अतएव ज्ञान की दृष्टि से आध्यात्मिक दृष्टिकोण अद्वितीय आश्रय है। यह अन्तर्दृष्टि प्राप्त कर लेने से राग द्वेषादि सम्पूर्ण अनर्थों का मूलोच्छेद हो जाता है। यही दिव्य प्राप्ति परम आनन्द ब्रह्म के परम अनुकूल है।

आत्मदृष्टि की प्राप्ति पर रोग, दुःख शोक, जय-पराजय, मान-अपमान, तृषा, क्षुधा, हर्ष, शोक, हमारी आत्मा में विक्षोभ उत्पन्न नहीं कर सकते। आत्मा के जानने पर क्या नहीं जाना जाता ? आत्मा प्रतीति के पश्चात क्या अवशेष रह जाता है ?

जो सनातन सुख है, जो समग्र विश्व में प्रतिछाया रूप से वर्तमान है, जो अपनी उन्मुक्ता से सर्वत्र प्रशान्त प्रकाश विकीर्ण करता है। जो अन्धकार के गहन कूप से निकाल कर हमें अद्वितीय परम-आत्मा का पवित्र दर्शन कराता है वह स्थिति प्राप्त कर लेना ही आध्यात्मिक दृष्टिकोण है। यही परम, शाश्वत एवं अटल सत्य है। इस सत्य को अपना कर आत्मा में प्रवेश करने से ही सूक्ष्म अन्तर्दृष्टि की उपलब्धि होती है, ज्ञान चक्षु खुलते हैं और मनुष्य को अपने वास्तविक स्वरूप का भान होता है। आध्यात्म भावना का दृढ़ संचार करने के लिए निम्न प्रयोग बड़े आश्चर्यजनक हैं—

आध्यात्म-भावना की सिद्धि के उपाय—प्रतिदिन प्रातःकाल अथवा सांयकाल एकान्त स्थान में चले जाओ। तुम्हारा चित्त चंचल या आकर्षित करने का कोई साधन न हो। शान्तचित्त से नेत्र मूँद कर बैठ जाओ। क्रमशः अपने मन की क्रियाओं का निरीक्षण करो। इन सब विचारों को एक-एक करके निकाल डालो यहाँ तक कि तुम्हारे मन में कुछ भी न रहे। वह बिल्कुल साफ हो जाये। अब दृढ़तापूर्वक निम्न विचारों की पुनरावृत्ति करो—

"मैं आज से एक नवीन मार्ग का अनुसरण कर रहा हूँ पुराने त्रुटियों से भरे हुए जीवन को सदा सर्वदा के लिए छोड़ रहा हूँ। दोषपूर्ण जीवन से मेरा कोई सरोकार नहीं। वह मेरा वास्तविक स्वरूप कदापि नहीं था।"

"अब तक मैं श्रंगार, देह पूजा, टीप-टाप में ही संलग्न रहता था। दूसरों के दोष निकालने, मजाक उड़ाने, त्रुटियों, कमजोरियों के निरीक्षण तथा आलोचना करने में रस लेता था, पर अब मैं इस अन्धकारमय कूप से निकल गया हूँ। अब मैं इन क्षुद्र उलझनों में नहीं पड़ सकता। ये अभद्र भ्रान्तियाँ, रोग दुःख, शोक आदि मेरी आत्मा में प्रवेश नहीं कर सकतीं। संसार की क्षणभंगुर वासना तरंगें अब मुझे पथ विचलित नहीं कर सकतीं।"

"मैं मिथ्या अभिमान में दूसरों की कुछ परवाह नहीं करता था, मदहोश था, अपने को ही कुछ समझता था किन्तु आत्मा के अन्दर प्रवेश करने से मेरा मिथ्या गर्व चूर्ण हो गया है। मुझे अपने पूर्व कृत्यों पर हँसी आती है।"

"संसार के कोई आन्दोलन क्षुद्र लहरें फिरके-बंदी मुझे बलात अपनी ओर आकृष्ट नहीं कर सकते। मैं अब उनसे बहुत ऊँचा हूँ। सनातन हूँ। मुझे इस महा सत्य पर दृढ़ विश्वास हो गया है। मेरा मन पवित्र हो गया है। इन्द्रियाँ सुशान्त हो चमकने लगी हैं। सर्वात्म दृष्टि मिल गई है। मेरी आत्म दृढ़ता से टकराकर प्रतिकूलताएँ चूर-चूर हो जाती हैं। विपत्तियों को देखकर मैं कभी अधीर नहीं होता।"

"मुझे अपनी आत्मा से प्रेम है। उस परम विशुद्ध दिव्य पदार्थ के अतिरिक्त मुझे कुछ दृष्टिगोचर नहीं होता। मुझे अपनी आत्मा में प्रवेश करने पर सर्वात्मदृष्टि की प्राप्ति हुई है। कोई भी स्थान मेरी शाश्वत आत्मा से खाली नहीं है। एक अद्वितीय परम आत्मा का मैं अपने इर्द-गिर्द सर्वत्र दर्शन करता हूँ। समग्र विश्व में इसी उन्मुक्त आत्मा का आनन्द स्वरूप दर्शन करता हूँ। सचमुच आत्मा का आश्रय है।"

प्रतिदिन बिना भूले इस मानिसक क्रियाओं को दृढ़ता पूर्वक दुहराइए। जितनी दृढ़ता से उपरोक्त भावना पर मन को एकाग्र करोगे उतना ही अध्यात्म दृष्टि का संचार होगा।

अपने को परिष्कृत करें और सिद्धियों के भण्डार बनें

हवा एक संसार व्यापी तत्त्व है। पर वह कहाँ कितनी इसका नाप करने के लिए उस क्षेत्र पर दृष्टि डालनी पड़ेगी जिसमें वह वायु भरी है। इसी प्रकार जलाशयों में—समुद्र सरिताओं में असीम जल भरा पड़ा है, पर किस व्यक्ति के अधिकार में कितना जल है इसका अनुमान उसके बर्तन या क्षेत्र

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

को देखकर लगाना पड़ेगा। अग्नि को तेजस् सर्वत्र विद्यमान है कि उसकी प्रचण्डता का अनुमान इस बात पर निर्भर है कि उसे कितनी मात्रा में किस स्तर का ईंधन मिला।

परमात्मा चेतन सत्ता का एक ब्रह्माण्ड व्यापी विस्तार है पर वह आत्माओं में उतना ही अवतरित होता है जितनी कि उसकी क्षमता है। किसी के पास वह बहुत स्वल्प होता है किसी के पास अति प्रचर। इसका कारण उसकी धारणा क्षमता पर निर्भर है। जिस कोठे में ठसा-ठस काठ-कवाड़ भरा हुआ है। उसमें किसी भले मानुष को ठहरने की व्यवस्था नहीं की जा सकती है। कीचड़ भरी नाली में स्वच्छ जल का प्रावह किस प्रकार बहाया जायेगा। परमात्मा के सम्बन्ध में भी यही बात है। उसका किसी से राग द्वेष नहीं न उसे किसी की मनुहार की जरूरत है और न भेट उपहार की आवश्यकता। उसे केवल एक बात देखनी होती है कि धारण करने की किसमें कितनी क्षमता है। हाथी जितना वजन लादकर चल सकता है उतना गधा नहीं। दुर्व्यसनी भिखारी को उपेक्षापूर्वक कुछ देकर भगा दिया जाता है किन्तु सम्बन्धियों में जमाता अथवा लोक सेवी प्रामाणिक व्यक्तियों को सामर्थ्य भरा अधिकाधिक देने का प्रयत्न सम्मानपूर्वक किया जाता है।

भगवान भी इन्हीं नियमों का पालन करते हैं और अपनी अनन्त सामर्थ्य में से अपनी सन्तानों में से प्रत्येक को उतना ही हस्तान्तरित करता है जितनी कि उसकी योग्यता है। छोटे-बच्चे को चाकलेट खरीदने के लिए दस पैसे भर मिलते हैं। पर वही बड़ा हो जाता है तो उसकी योग्यता और व्यवसाय की उपयुक्तता देखकर कोई बड़ी योजना कार्यान्वित करने के लिए संचित पूँजी का बड़े से बड़ा अंश पिता उसे युवक को हस्तान्तरित कर देता है। छोटा बच्चा एक रुपया माँगता है तो उसके सदुपयोग पर अविश्वास करते हुए अभिभावक स्पष्ट इन्कार कर देते हैं। किन्तु बड़े होने पर उसे इंजीनियरिंग कालेज की पढ़ाई पर पाँच सौ रुपये मासिक भी प्रसन्नतापूर्वक दिया करते हैं। भगवान भी यही करते हैं।

परमात्मा की सामर्थ्य का इतना विस्तार है कि उसकी एक-एक कलाकृति देखकर आश्चर्यचकित रह जाना पड़ता है बीज में से पेड़ खड़ा कर देना एक आश्चर्य है। आसमान में चाँद सितारे जिस पर अधर में लटक रहे हैं। सूरज जिस प्रकार असीम ऊर्जा वितरित करता है। जलाशयों के प्राणी किस प्रकार उस कैद खाने में प्रसन्न रहते और कल्लोल करते हैं वह देखते ही बनता है। आकाश में उड़ता पक्षी और बिना इन्द्रियों वाले केंचुए किस प्रकार अपनी निर्वाह सुविधाएँ उपलब्ध कर लेते हैं। यह कुछ कम आश्चर्य की बात नहीं है। आसमान से बरसने वाला मूसलाधार पानी किसी विचारशील को प्रपंचों में डाल देने और सर्वसत्ता मान की गरिमा का अनुमान लगाने में कुछ कठिनाई नहीं होती।

मनुष्य को अन्य प्राणियों की तरह पेट की भूख और जननेन्द्रिय की खुजली मिटाने भर के लिए सामान्य बुद्धि और शरीर संरचना प्रदान की है। यह बच्चों को झुन-झुन या पतंग गुब्बारे बाँटने की तरह है। यह प्राणी की न्यूनतम और अनिवार्य आवश्यकता है। इन कारणों में उसे शरीरगत तृप्ति जुटाने का अवसर मिलता है और वह अपने शरीर तथा मन को काम धन्धे में जुटाये रहता है। यदि भूख और कामेच्छा न होती तो प्राणी ऐसे ही निठल्ले पड़े रहते और उनकी सक्रियता एवं बुद्धिमत्ता तक जीवित न रह सकती। जीवधारी को हल चल भरा जीवनयापन करने के लिए यह दो तकाजे गले से इस प्रकार बाँध दिये गये हैं, जिससे वह निठल्ला होकर अपनी सत्ता को पिछड़ेपन के गर्त में न धकेल दे।

किन्तु ऐसा नहीं समझना चाहिए कि भगवान के भण्डार में या उसके भाग्य में इतना ही सीमित है। जो मिला है उससे असंख्य गुना पाने की इसमें अभी और भी गुंजाइश है। पाने वाला चाहता भी है और देने वाला भी कंजूस नहीं है। इतने पर भी देखा जाता है कि चाहने वालों को मन-मसोस कर रहना पड़ता है और देने वाला भी अपने दुर्भाग्य को कोसता है कि यह ऐसा सत्पात्र नहीं पा सका जिसे अपनी विभूतियाँ अधिकाधिक मात्रा में देकर अपने मन का भारी पन दूर करता और पाने वाला भी निहाल होकर रहता।

आत्मा परमात्मा का सजातीय और वंशज है। उसे बहुत कुछ प्राप्त करने का हक है। किन्तु देखा जाता है कि लोग क्षुद्र स्तर का—नर पशुओं जैसा ही जीवन व्यतीत करते हैं। न उन्हें स्वयं सन्तोष गर्व गौरव प्राप्त करने का अवसर मिलता और न दूसरों के लिए ही कोई प्रेरणाप्रद मार्ग छोड़कर जाते हैं।

घर में मकड़ी, छिपकली, मक्खी-मच्छर जैसे प्राणी भी रहते हैं। जिन्दगी भी काट लेते हैं, पर उनकी ओर कोई दृष्टि उठाकर भी नहीं देखता और न उनकी उपस्थिति से कोई लाभ या यश देखता है। परिवार के बीच रहकर कितने ही मनुष्य इसी प्रकार मौत के दिन पूरे करते हैं। जो महत्वाकांक्षाएँ आत्मा को श्रेय, सन्तोष और यश गौरव चाहती हैं। वे एक प्रकार से अर्धमृत, अर्धमूर्च्छित स्थिति में ही पड़ी रहती हैं। उन्हें जगाने की भीतर से उमंग उठे तो योग्यताएँ भी उभरें। परिस्थितियाँ भी बनें। साधन भी जुटें और ऐसा अवसर मिले कि मनुष्य अपनी ओर दूसरों की दृष्टि में महत्वपूर्ण गिना जा सके।

इस दिशा में यदि किसी का मन चले तो समझना चाहिए कि उसकी मानवी गरिमा भ्रूण की स्थिति में न रहकर नवजात शिशु की तरह स्वयं नवजीवन पाने और सम्बन्धियों को नये उत्तरदायित्व सम्भालने में सफल रही। प्रगति मार्ग की ओर यात्रा चल पड़ी। इसके लिए प्रथम लक्ष्य यही हो सकता है कि अपने व्यक्तित्व को मानवी गरिमा के ढाँचे में ढाला जाये। गुण, कर्म, स्वभाव की दृष्टि से अपने को परिष्कृतजनों की पंक्ति में बैठ सकने योग्य बनाया जाये। चिन्तन, चरित्र और व्यवहार ऐसा बनाया जाये कि जो सम्पर्क में आये प्रभावित हुए बिना न रहे और अपनी तुलना में अधिक विकसित सद्गुणी अनुभव करते हुए सम्मान ही नहीं सहयोग भी प्रदान करे।

दूसरा चरण प्रगति के लक्ष्य पर चलने का यह है कि अपना व्यवसाय, कार्यक्रम इस प्रकार का बनाया जाये जिससे अपने निर्वाह और लोकमंगल की सन्तुलित व्यवस्था बनी रहे। तृष्णाएँ बहुधा ऐसा वैभव मांगती हैं जिससे ओछे लोगों पर उसके दुस्साहस की छाप पड़ सके। ईमानदार और उदार आदमी का सम्पन्न बन सकना असम्भव है। लोगों पर अपनी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आदर्शवादिता का स्थायी प्रभाव छोड़ने की अपेक्षा यह सरल पड़ेगा कि अपराधियों जैसा षड्यन्त्र बनाकर लोगों को ठगा या आतंकित किया जाये! आमतौर से महत्वाकांक्षी लोग यही करते और अपने को अपेक्षाकृत अधिक बुद्धिमान और सफल अनुभव करते हैं, पर जिन्हें उच्चस्तरीय प्रगति की आकांक्षा है। उन्हें संसार के परामार्थपरायण लोगों की जीवन गाथाएँ पढ़नी चाहिए और देखना चाहिए कि भीतर उपजी महानता उन्हें किस प्रकार ऊँचा उठा सकी। कहाँ से कितने जुटा सकी। कितनों का भावभरा शानदार सहयोग उपलब्ध करा सकी।

आज का वातावरण क्षुद्र लोगों और क्षुद्र गतिविधियों से भरा हुआ है। उदाहरण समझने और अनुकरण कर बैठने की क्षुद्रता से हमें अपने को बचाना चाहिए और वर्तमान काल के तथा भूतकाल के महामानवों की विचारणा और लोकहित के लिए अपनाये गये क्रियाकलापों पर ध्यान केन्द्रित करना चाहिए आदर्शों पर, आदर्शवादियों पर अपनी श्रद्धा केन्द्रीभूत करना, उनके पद चिह्नों पर सामयिक परिस्थितियों के अनुरूप अपनी कार्य शैली निर्धारित करना। उस निर्धारण पर सुदृढ़ रहना, ऐसा बड़ा काम है जो किसी के भी जीवन को धन्य बना सकता है। भले ही वह थोड़े ही अवधि के लिए किया गया हो। शंकराचार्य, विवेकानन्द, रामतीर्थ आदि भरी जवानी में ही उठ गये थे, पर वे ऐसा शानदार जीवन जिये जिस पर हजारों शतायुष्यों को निछावर किया जा सकता है।

बाल-बुद्धि की एक और माँग है कि वे अपने में कोई ऐसी विलक्षणता प्रकट कर सकें जिसे सिद्धियाँ चमत्कार कहा जाता है। यह प्रलोभन भूतकाल में भी था और अब भी पाया जाता है। योगी, तपस्वी, सिद्ध पुरुष अपनी विलक्षणताओं को दिखाकर सर्वसाधारण को प्रभावित करते थे। यहाँ तक कि वाम मार्ग—तन्त्र मार्ग की अवांछनीय प्रक्रिया का अवलम्बन करके हेय जीवन जीते और स्वार्थी लोगों की उचित-अनुचित सहायता करते थे। जो इन प्रयोजनों के लिए कष्ट साध्य साधनाएँ नहीं कर सकते थे उन्होंने इस प्रयोजन को जादूगरी या इन्द्रजाल से लोगों को हिप्टोनिज्म स्तर के प्रयोगों द्वारा अपनी विलक्षणता सिद्ध करने का प्रयास किया। अब भी वह शैली फल-फूल रही है और भले भावुकों को भूत-प्रेत, देवी-देवताओं के नाम पर भ्रम-जंजाल फँसाया और उनके समय तथा धन को बर्बाद कराया जा रहा है।

यह बाल-बुद्धि किसी भी शालीनता समर्थक विज्ञजन को शोभा नहीं देती। सामान्य लोगों के बीच—सामान्य लोगों की तरह जीवनयापन करते हुए ऐसी छाप छोड़ना बहुत ही महत्वपूर्ण है। जिसमें उच्चस्तरीय यथार्थता हो और किसी छल कपट का, रहस्यवाद का आश्रय न लेना पड़ा।

चर्चा यदि सिद्धियों की ही चल पड़ी और व्यक्ति को अपनी अतीन्द्रिय क्षमताओं के प्रश्न पर विचार करना पड़े तो भी हमें यही मानकर चलना होगा कि वे विभूतियाँ श्रेष्ठ विभूतियाँ, श्रेष्ठ सज्जनों में—ऋषि-मुनियों में अनायास ही उत्पन्न हो जाती हैं। संसार में कहाँ क्या हो रहा है ? कब होने जा रहा है ? यह जानने के लिए किसी अतिरिक्त कला-कौशल को अपनाने की आवश्यकता नहीं है। यह कार्य स्वच्छ दर्पण पर प्रतिबिम्ब सही रूप में दीखने की तरह है। बढ़िया कैमरे में वस्तुस्थिति का चित्र खींचने की तरह टेलिस्कोप से दूर-दूर तक को देखने की तरह माइक्रोस्कोप से अदृश्य कीटाणुओं को देख सकने की तरह—श्रेष्ठ जीवन में ऐसी विशेषताएँ स्वयमेव उत्पन्न हो जाती हैं।

इन दिनों परामनोविज्ञानी इस प्रकार विलक्षणताओं को—अतीन्द्रिय क्षमता कह रहे हैं। दूर-दर्शन, दूर-श्रवण, भविष्य कथन, विचार संचालन, आदि को मानसिक क्षेत्र की सिद्धियाँ मान रहे हैं और उसके लिए क्या करना चाहिए ? क्या किया गया था, इसका पता लगाना चाहते हैं। किन्तु समझा जाना चाहिए कि जिन लोगों में अनायास ही ऐसी विशिष्टताएँ प्रकट होती हैं, उनमें पूर्वजन्मों की मानसिक स्वच्छता काम कर रही होती है। इस समय भी ऐसे अभ्यास किये जा सकते हैं जिनके द्वारा ऐसी विलक्षणताएँ प्रकट की जा सकें। पर देखा जाता है कि जो अपने में ऐसी विशेषताएँ प्रदर्शित करते हैं वे लोगों को अचम्भे में डालने और अपनी विलक्षणता सिद्ध करने तक ही सीमित रहते हैं। उन उपलब्धियों का उपयोग किसी ऐसे महान् प्रयोजन के लिए नहीं होता जिससे व्यक्तित्वों को समुन्नत और विपन्नताओं का अनुकूलन किया जा सके। ऐसी दशा में अतीन्द्रिय क्षमताएँ भी चर्चा का विषय बनकर रह जाती हैं। अधिक से अधिक यह साबित कर सकती हैं कि मानवी सत्ता में कितने अनौखे रहस्य छिपे पड़े हैं। उनको हस्तगत करके अब की अपेक्षा कितनी सुविधाएँ प्राप्त की जा सकती हैं।

यहाँ यह समझना ही चाहिए कि ख्याति के लिए स्वार्थ साधना के लिए—अन्यों को नीचा दिखाने के लिए यदि इन शक्तियों का उपयोग किया जाय तो वे अधिक दिन ठहरती भी नहीं और उस जादूगर के लिए अन्ततः पश्चाताप ही छोड़ जाती हैं।

इन सिद्धियों को देखकर इतना समझना ही पर्याप्त होगा कि मनुष्य उतना ही सीमित नहीं है जितना कि दृष्टिगोचर होता है। उसमें ईश्वर का अंश होने के नाते लगभग उतनी ही क्षमताएँ एवं विलक्षणताएँ भरी पड़ी हैं, जितना कि आत्मा के उद्गम केन्द्र परमात्मा में है। वे इतनी अधिक हैं कि विज्ञात ऋद्धि-सिद्धियाँ तो सहज ही उससे मिलने के कारण हस्तगत हो ही जाती हैं वरन् ऐसी विभूतियाँ भी हस्तगत हो जाती हैं जो अभी चर्चा का विषय नहीं बन पाई हैं।

सिद्धियों में उत्कृष्ट चिन्तन, आदर्श चरित्र और परमार्थ-परायण व्यवहार की तीन विभूतियाँ सर्वोपरि हैं। इनको प्राप्य करने के लिए निरन्तर जीवन को अभ्यस्त करना अपने आप में एक सर्वसुलभ और अत्यन्त उच्चस्तर का योगाभ्यास है। इसे कर गुजरने वाले अपने समीपवर्ती वातावरण को स्वर्ग जैसा सुखद पाते हैं। अनाचार की पशु-प्रवृत्तियाँ छूटते ही वे भय-बन्धुओं से मुक्त हो जाते हैं। वे सिद्धियाँ जिन्हें विलक्षणताएँ कहते हैं, वे पवित्र आत्माओं के इर्द-गिर्द अनायास ही घूमती और उपेक्षित होती रहती हैं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सिद्धि आपकी मुट्ठी में है

प्रत्येक मनुष्य यह जानता है कि इस जगत में बिना हाथ हिलाये कुछ नहीं होता एक तिनके के भी दो टुकड़े नहीं हो सकते। बहुत कम लोग ऐसे मिलेंगे जो स्वयं विचार करना जानते हों। वे दूसरों के विचारों के दास हैं। हमेशा दूसरों की सम्पत्ति पर ही वे अपना जीवन व्यवहार चलाते हैं। उनको अपने ऊपर विश्वास नहीं। ऐसे लोग दुःख और विपत्ति के समय दूसरों की सहनुभूति, दया और करुणा का मार्ग प्रतीक्षा करते हैं। वे अपनी बुद्धि को और अपनी निजता को खो बैठे हैं। इस प्रकार के मनुष्य हमेशा अपने विचारों को बदलते रहते हैं और दुर्भाग्य का रोना रोते रहते हैं।

ऐसे मनुष्य सदा अपने भाग्य को दोष देते रहते हैं। उनके जीवन का उद्देश्य कभी पूरा नहीं हो सकता। जो दूसरों के सहारे पर निर्भर रहते हैं वे किसी बात का निश्चय नहीं कर सकते हैं और कठिनता से किसी बात पर स्थिर रहते हैं, क्योंकि हमेशा दूसरों के विचारों के अनुसार ही कार्य करते हैं।

जब तक मनुष्य अपना स्वामी आप नहीं हो जाता तब तक उसके जीवन का सम्पूर्ण विकास नहीं हो सकता।

जीवन में उन्नति करने के लिए सब से पहले इस बात को समझने की आवश्यकता है कि जीवन संग्राम में जो रुकावटें आती हैं उनको दूर हटादें। संसार में ऐसे मनुष्यों की कमी नहीं जो दूसरों के विचारों के अनुसार काम करते हैं, जो दूसरों की आज्ञा का पालन करते हैं। इस प्रकार दूसरों का अनुकरण करने से मनुष्य अपनी मौलिकता से हाथ धो बैठते हैं। मनुष्य की उन्नति अपनी शक्तियों के विकास से होती है, न कि अन्धानुकरण से।

स्वयं विचार करने से ही मनुष्य में नये-नये विचार पैदा होते हैं और उसकी मानसिक शक्तियों का विकास भी होता है। ऐसे मनुष्य के द्वारा ही समाज का कल्याण हो सकता है।

हम अपने भावी के सृष्टा आप हैं और स्वयं ही अपने जीवन को उन्नत और पूर्ण बना सकते हैं। दूसरे किसी की सत्ता हम पर चल नहीं सकती। ब्रह्माण्ड में कोई ऐसी शक्ति नहीं जो हम पर अधिकार कर सके।

हमारे भीतर ऐसी महान शक्ति छिपी हुई है कि इसका ज्ञान होने पर हम दूसरों के आश्रित नहीं रह सकते। हमको यह प्रतीत भर हो जाना चाहिए कि भाग्य हमारे आधीन है और पुरुषार्थ से हम अपने जीवन को श्रेष्ठतम बना सकते हैं।

इस निश्चय को अधिक से अधिक पुष्ट करने और फिर इस निश्चय के अनुसार अपने जीवन को उच्च बनाने के लिए जीवन-संग्राम में कूद पड़ने तथा अपने जीवन रथ की बागडोर अपने हाथ में लेकर श्रद्धा से, उत्साह से अपने उच्च उद्देश्य को लक्ष्य में रख कर अपने रथ को आगे बढ़ाते चलाने पर हम निश्चय ही अपनी परिस्थितियों पर अधिकार कर सकेंगे।

वस्तुतः जो उच्चस्तरीय वस्तु अपने पास नहीं है वही आश्चर्य है, चमत्कार है, वैभव है। पीतल के बर्तन हर किसी के घर में होते हैं उन्हें देखकर कुछ कौतूहल नहीं होता परन्तु सोने की थाली में किसी को भोजन करते हुए देखते हैं तो बार-बार उसकी ओर ध्यान आकर्षण होता है। यदि सोना इतनी अधिक मात्रा में निकलने लगे कि घर-घर में सोने के बर्तन हो जायें तो पीतल की भाँति ही वह सोना भी आकर्षण हीन हो जायेगा। यदि सभी धनी, बँगले वाले, मोटर वाले, अमीर हो जायें तो फिर उनकी ऐसी पूछ न रहेगी जैसी कि अब है। सिद्धियों को देखकर आश्चर्य का होना ऐसा ही है अधिक लोगों के पास जो योग्यताएँ नहीं हैं उन्हें किसी खास व्यक्तियों में देख कर विचित्रता प्रतीत होती है।

चमत्कारों को देखकर हम अचम्भा करते हैं। तो भी वास्तव में स्वतः उनमें अचम्भे की कोई बात नहीं है। हवा में उड़ना, पानी पर चलना, अदृश्य रहना, द्रुत गति से चलना आदि काम स्वतः ऐसे नहीं हैं जो हैरत में डालने वाले हों क्योंकि बहुत से प्राणी इस दुनिया में ऐसे हैं जो ऐसी प्रक्रियाएँ आमतौर से करते रहते हैं। इसलिए हमें यह समझने की आवश्यकता नहीं है कि अष्ट सिद्धि नव निधि स्वतः कोई हैरत अंगेज वस्तु है। वे हमें अचम्भे में डालती हैं, इसलिए कि साधारणतः वे शक्तियाँ सब लोगों में देखी नहीं जातीं। इसका मतलब यह नहीं है कि वे सामर्थ्य मनुष्य में स्वभावतः नहीं हैं, या कहीं अन्यत्र से अनायास प्राप्त हो जाती हैं।

मनुष्य अनन्त शक्तियों का महा भण्डार है उसके अन्दर ऐसी महा सत्ताएँ सन्निहित हैं जिनके एक-एक कण द्वारा एक-एक जड़ जगत का निर्माण हो सकता है। जितना बल उसके अन्दर मौजूद है उसका लाखवां भाग भी वह अपने प्रयोग में प्रायः नहीं ला पाता है। इस छिपे हुए महा भण्डार में अगणित, अतुलित रत्न राशि छिपी हुई है, जो कोई जितना कुछ उसमें से निकाल लेता है वह उतना ही धनी बन जाता है। परमात्मा का अमर राज कुमार अपने में पिता की सम्पूर्ण शक्तियों का सच्चा उत्तराधिकारी है। इच्छा और प्रयत्न करते ही सब कुछ उसे मिल सकता है। कोई भी वस्तु ऐसी नहीं है जिसे वह अपने पिता के खजाने से पा न सके। जितनी सिद्धियों अब तक सुनी या देखी गई हैं वे बस बहुत थोड़ी हैं, अभी इनमें भी अनेक गुनी, अनन्त गुनी-तो वे छिपी ही पड़ी हैं। जब मनुष्य विकसित होते-होते परमात्मा को ही प्राप्त कर सकता है—स्वयं परमात्मा बन सकता है तो उन सब महानताओं और शक्तियों को भी पा सकता है जो परमात्मा के हाथ में है। परमात्मा की इच्छा से हर एक असम्भव बात सम्भव हो सकती है फिर परमात्मा की स्थिति में पहुँचा हुआ मनुष्य भी वैसा ही असम्भव को सम्भव करके दिखा देने वाला हो सकता है। सिद्धियाँ असम्भव हैं ऐसा कहना भ्रम मूलक है। एक से एक आश्चर्यजनक चमत्कारी कार्य मनुष्यों द्वारा हुए हैं, हो रहे हैं, और आगे होंगे। हमारी क्षमताओं की सम्भवना इतनी ऊँची है कि साधारण बुद्धि से उसको कल्पना करना भी कठिन है। हर एक असम्भव बात मानव प्रयत्न के द्वारा सम्भव हुई है और हो सकती है।

जलते हुए अंगारे के ऊपर जब राख जमा हो जाती है तो वह राख से ढका हुआ अंगार बाहर से छूने पर गरम नहीं मालूम पड़ता। किन्तु जैसे-जैसे उस राख को हटाया जाता है वैसे ही वैसे गर्मी बढ़ने लगती है जब वह पूर्ण रूप से हट जाती है तो अंगार इतना गरम निकल आता है कि उसे छूना

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कठिन होता है। एक जलती हुई बिजली की बत्ती को कपड़े के अनेक पर्तों से ढक दिया जाये तो उसका प्रकाश कपड़ों से बाहर न आ सकेगा। किन्तु जैसे-जैसे उन परतों को हटाते जाते हैं वैसे ही वैसे प्रकाश बढ़ता जाता है जब सारे पर्त अलग हो जाते हैं तो स्वच्छ बिजली की बत्ती निकल आती है और उसके प्रकाश से चारों ओर जग-मग होने लगता है। जलाने वाला अंगार वही था उसके अन्दर दाहक शक्ति सदा से मौजूद थी परन्तु राख ने उसे ढक दिया था बिजली की बत्ती वैसे ही जल रही थी परन्तु कपड़े के पर्तों से ढके होने से प्रकाश बन्द था। यही बात मनुष्य की है वह अनन्त शक्तियों का भण्डार है किन्तु दुर्वासना, दुर्भावना, कुविचार, भोग लिप्सा, अनीति आदि आवरणों के पर्तों से वे ढक जाती हैं। यह पर्त उतने अधिक मात्रा में जमा हो जाते हैं कि मनुष्य एक बहुत ही तुच्छ, निर्बल, असहाय, वेबस और दीनहीन प्राणी मात्र रह जाता है पशु-पक्षियों और कीट-पतंगों की अपेक्षा भी उसका बल साहस, और सुख कम रह जाता है। तरह-तरह के कष्टों से रोता कलपता रहता है, अपने छोटे-मोटे दुःख दारिद्रों को भी वह हटा नहीं पाता। ऐसी पतित अवस्था में पड़ा हुआ जीव यदि आध्यात्मिक सिद्धि को देखकर हैरत में पड़ जाता है तो उनके अस्तित्व पर अविश्वास करने लगते हैं तो इसमें कुछ आश्चर्य की बात नहीं है।

जब हम अपनी कुवासना और दुर्भावनाओं को हटाकर सद्वृत्तियों और सद्भावनाओं को निखारते हैं तो आत्म तेज निर्मल होकर अपनी अनन्त महत्ताओं को प्रकट करने लगता है। यह प्राकट्य ही सिद्धि है। पातन्जलि योग सूत्र जिन्होंने पढ़ा है वह जानते हैं कि यम-नियम (अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय, ईश्वर प्रणिधान) यह सिद्धियों के मूल स्रोत हैं। अहिंसा पालन करने से, उसके समीप पहुँचने वाले आपस का बैर भाव भूल जाते हैं गाय सिंह पास बैठे रहते हैं। सत्य का पालन करने से-वाणी सत्य होती है जो श्राप वरदान दिया जाये सफल होता है। आस्तेय का पालन करने से सब रत्नों की प्राप्ति होती है, लक्ष्मी की कमी नहीं रहती। अपरिग्रह से पूर्व जन्मों का हाल मालूम होता है। तप से शरीर हल्का और दूर दृष्टि मिलती है आदि।" पातन्जलि के इस कथन पर गम्भीरता पूर्वक विचार करने से प्रतीत होता है कि यह सिद्धियाँ बाहर से प्राप्त नहीं होतीं। कोई पुरस्कार की तरह इन्हें प्रदान नहीं करता वरन् यह सब अपनी आन्तरिक योग्यताओं का निखार मात्र हैं। हिंसा, असत्य, चोरी, व्यभिचार, लोभ, मलीनता, तृष्णा, आलस्य, अविधा, नास्तिकता आदि दुर्गुणों के कारण भीतर की दिव्य शक्तियाँ निर्बल, कुंठित और नष्ट-भ्रष्ट हो जाती हैं। जैसे-जैसे इन कमजोरियों को हटाकर हम अपनी स्वाभाविक, सात्विक अवस्था की ओर चलते हैं वैसे हम सफल, विजयी, समृद्ध, सिद्ध और महान बनते जाते हैं।

● ●

www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org

अलौकिक सिद्धियाँ

मानवी सत्ता में सन्निहित महान सम्भावनायें

सिद्धियों का वर्णन शरीरगत कौतूहलों के रूप में किया जाता है। काया का छोटा हो जाना, बड़ा हो जाना, पानी पर चलने लगना, हवा में उड़ जाना आदि विलक्षणताओं को शरीर द्वारा कर दिखाना सिद्ध पुरुषों की सफलता का लक्षण माना जाता है। बहुत से इन पर विश्वास भी करते हैं और तलाशते फिरते हैं कि जो ऐसे कृत्य कर दिखायें उन्हें सिद्ध पुरुष या पहुँचा हुआ योगी मानें किन्तु ऐसे लोग कदाचित् ही कहीं होते हों।

तिब्बत को ऐसे योगियों का क्रीड़ास्थली बताया जाता रहा है। वह स्थान दुर्गम एवं प्रतिबन्धित होने के कारण वहाँ सर्वसाधारण की पहुँच होती रही है। इसलिए किंवदन्तियों का अन्वेषण भी नहीं होता। वहाँ लामा सम्प्रदाय का प्रभुत्व था। वे अपने ज्ञान, चरित्र और सेवा के आधार पर तो अपनी विशेषता बता नहीं पाते थे अलौकिकताओं की मन गढ़न्त कहानियाँ गढ़ने वालों को बताते रहते थे। सुनने वाले उनमें और नमक मिर्च मिलाकर तिल का ताड़ बना देते थे। पर जब चीन का हमला हुआ और तिब्बत क्षेत्र हड़प लिया गया तो किसी भी लामा सिद्ध की करामात काम न आई।

बुद्ध का शिष्य किसी राजा द्वारा ऊँचे बाँस पर टाँगे हुए कमण्डलु को उस पर चढ़कर उतार लाया था और अपनी सिद्धाई से चमत्कृत करके उस राजा को और उसकी प्रजा को अपना शिष्य बना लिया था। स्वर्ण कमण्डल लेकर जब वह बुद्ध के पास पहुँचा तो उसने सारी बात जानी। वह शिष्य पहले नट था। बाँस पर चढ़ने की कला आती थी। उसी अनुभव के आधार पर वह ऐसी करामात दिखाने में सफल हुआ था। बुद्ध ने समस्त शिष्य मण्डली को बुलाया और उस कमण्डल को तुड़वाकर नदी में बहा दिया। कहा कि मेरा कोई शिष्य कभी भी ऐसा आडम्बर न रचे। यदि ऐसा हुआ तो बाजीगर लोग सिद्ध पुरुष माने जाने लगेंगे और सच्चे योगी वैसा ढोंग न रच पाने के कारण उपेक्षित तिरष्कृत होते रहेंगे। उनके सदुपदेश भी कोई न सुन सकेगा।

जिस प्रागैतिहासिक काल में शरीरों को वायु प्रधान, जल प्रधान, अग्नि प्रधान बताया जा सकता था उस जमाने में कोई ऐसा कुछ कर दिखाता भी होगा। पर इन दिनों तो पृथ्वी प्रधान शरीर होते हैं। ऐसी दशा में किसी के लिए ऐसा कर दिखाना सम्भव नहीं है। श्रीलंका के एक डॉक्टर का अभी भी बैंक में एक लाख रुपया इसलिए जमा पड़ा हुआ है कि कोई अलौकिक चमत्कार कर दिखाये तो उस रकम को सहर्ष उठाये। पर किसी ने भी उस चुनौती को स्वीकार नहीं किया है।

योग वस्तुतः मनोविज्ञान का विषय है। उसका सम्बन्ध चेतना के परिष्कार से है। गाँधी, बुद्ध, विवेकानन्द, अरविन्द आदि ने कोई करामातें नहीं दिखाई थीं। वे अपनी मानसिक उत्कृष्टता के आधार पर ही महानता के ऊँचे स्तर तक पहुँचे थे।

जहाँ ऐसे चमत्कारी वर्णन हैं वे शारीरिक नहीं भावनात्मक या अलंकारिक हैं। व्यामोह की सुरसा, हनुमान को निगलना चाहती थी वे अपने को वैभववान नहीं, अकिंचन बनकर उससे छुटकारा पा सके। साधारण जनों को अपने में डुबा लेने वाले भवसागर के ऊपर होकर जो चल सकता है, पार जा सकता है उसे जल पर चलने की सिद्धि प्राप्त हुई यह समझना चाहिए। हनुमान की नम्रता अकिंचन भावना ही उनकी अणिमा सिद्धि थी।

गाँधी, बुद्ध आदि को महिमा सिद्धि थी। काया की दृष्टि से वे सामान्य जनों जैसे थे। प्रतिमा भी सामान्यजनों जैसी ही थी। पर लक्ष्य ऊँचा रखने और जीवन उसी में खपा देने के कारण वे महामानव माने गये। उनके आदेशों का पालन लाखों करोड़ों ने किया यह महिमा सिद्धि कही जाय तो अत्युक्ति नहीं। शरीर से महापुरुष, रावण, कुम्भकरण जैसे विशाल नहीं होते पर अपने महान व्यक्तित्व और कार्यों के कारण सामान्य लोगों की तुलना में असंख्य गुने महत्त्वपूर्ण गिने जाते हैं।

सन्त दादू के पास एक महिला आई। वह पति को वश में करने का जन्त्र-मन्त्र चाहती थी। दादू ने उसके विश्वास को देखते हुए एक कागज पर कुछ लिखकर ताबीज पहना दिया। साथ ही पति के प्रति मधुर व्यवहार की रीति-नीति भी समझा दी। पति वश में हो गया। वह स्त्री दादू के सामने थाल भरकर धन तथा उपहार लाई। बहुत से दर्शक भी मौजूद थे। दादू ने उस जन्त्र-मन्त्र को उससे वापस लिया और खोलकर सब लोगों को दिखाया था। उसमें कुछ भी अनौखापन नहीं था। अपने सद् व्यवहार से ही उसने पति को वश में किया था। जादू जन्त्र तन्त्रों में नहीं होता अपना स्वभाव और प्रयास के बदलने से ही अभीष्ट सफलताएँ उपलब्ध होती हैं। तथ्य दादू ने सब पर प्रकट कर दिया और उपहार जरूरत मन्दों को बाँट दिया।

आकाश में उड़ जाने की सिद्धि में क्या कौतूहल है ? मक्खी, मच्छर और पक्षी पतंगे आकाश में उड़ते ही रहते हैं। जिन्हें पानी पर चलने की जल्दी हो वे नाव में बैठ सकते हैं और जिन्हें हवा में उड़ना हो वे हवाई जहाज का टिकट खरीद सकते हैं। इसके लिए किसी कष्टसाध्य योगाभ्यास की जरूरत नहीं है।

आकाश में उड़ने से मतलब है। अपना लक्ष्य ऊँचा रखना। अपना व्यक्तित्व सामान्य लोगों की तुलना में ऊँचा उठाना।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

वायुयान यात्रा में काँच की खिड़की से झाँककर नीचे की ओर देखा जाय तो रेलगाड़ी साँप सी रेंगती दिखाई पड़ती है और हाथी घोड़े जैसे बड़े जानवर चाबी वाले खिलौने की तरह दीखते हैं। नदियाँ पतली नाली जैसी दीखतीं हैं। ऐसा ही दृष्टिकोण दुनियादारों के प्रति महामानवों का होता है। लोग तुच्छ प्रतीत होते हैं। उनके क्रियाकलाप और परामर्श भी बच्चों जैसे। वे उनसे प्रभावित नहीं होते वरन् ओछे स्तर को बचकानापन मानकर हँस भर देते हैं। अपनी उनसे तुलना नहीं करते। वायुयान पर चढ़ा हुआ व्यक्ति दूर-दूर के दृश्य देखता है किन्तु घास चरने वाले छोटे जानवर आस-पास थोड़े ही दायरे में देख सकते हैं। कूपमण्डूक की दुनिया बहुत छोटी होती है। गूलर के भुनगों की उनसे भी कम दायरे की। जबकि वायुयान पर बहुत ऊँचाई पर से देखने पर दुनिया बहुत विस्तृत दीखती है।

चन्द्र यात्रियों ने चन्द्रमा पर खड़े होकर उगती हुई पृथ्वी को देखा था वह बड़े थाल के बराबर थी। पर हमारी दृष्टि में तो वही पूरा ब्रह्माण्ड है। इसी को कहते हैं आकाश में उड़ना।

बच्चों को चाबी वाले खिलौने ही मनोरंजन के केन्द्र बने रहते हैं। पर बड़ी आयु के व्यक्ति उन्हें खिलवाड़ भर मानते हुए तुच्छ आँकते हैं। सामान्य बुद्धि के दुनियादार लोग लोभ, मोह और अहंकार की पूर्ति को ही बहुत बड़ी वस्तु मानते हैं और उनकी उपलब्धि को भारी सफलता गिनते हैं। पर दूरदर्शी विवेकशील इन खिलवाड़ों में अपने को उलझाते नहीं और सोचने की करने की दिशाधारा ऐसी बनाते हैं जो सृष्टा के युवराज की गरिमा को सुरक्षित रखे।

अन्य सभी अलौकिकताएँ भी इसी प्रकार की हैं। वे शारीरिक नहीं, मानसिक और भावनात्मक हैं। शरीर से अचम्भे वाले करतब कर दिखाना जादूगरों बाजीगरों का काम है सिद्ध पुरुषों का नहीं।

योगिराज अरविन्द कहते थे—"मनुष्य अभी तक मस्तिष्क के धरातल पर है। जबकि अन्य प्राणी शरीर की क्षुधा पूरी कर सकने वाली इन्द्रिय शक्ति के सहारे जीवनयापन कर रहे हैं। मनुष्य ने अनियन्त्रित कल्पनाओं और संचित मान्यताओं, आदतों से ऊँचे उठकर बुद्धि के सहारे यथार्थता को एक सीमा तक समझ सकने की क्षमता प्राप्त कर ली है। प्राणियों की तुलना में मानवी प्रगति सराहनीय है। किन्तु यह विकास का अन्तिम सोपान नहीं है। उसे अभी काफी आगे चलना और ऊँचा उठना है। यह प्रगति-क्षेत्र भाव सम्वेदनाओं का होगा। परिष्कृत अन्तःकरण अर्थात् अति मानस स्तर तक पहुँचना यही मानव-जीवन का लक्ष्य है।"

ईसाई धर्म ग्रन्थ "फ्लैगमेन्टस् आव ए कनफेंशन" में सेन्ट पाल के एक कथन का उल्लेख है जिसमें वे कहते हैं कि—ईश्वर का सबसे बड़ा अनुदान मानव है। प्राप्त करने वाले की बुद्धिमत्ता है कि उसे विकास की चरम सीमा तक पहुँचाये। इसका उपाय है प्रेम की व्यापकता और सेवा में आनन्द की अनुभूति। विकसित आत्मा दिव्य का रसास्वादन करती है।

दार्शनिक प्लाटिनस कहते हैं—इन्द्रियों के माध्यम और तर्कों के आधार पर जिस ज्ञान की प्राप्ति होती है वह मनुष्य प्राणी के लिए काम चलाऊ तो है, पर मानव के स्तर से बहुत नीचा है। देव मानव को विवेक तथ्यों को छानने की आवश्यकता तो पड़ेगी, पर निर्भर उस चेतना पर रहना होगा जो अन्तरात्मा की गहराई से उभरती अथवा ईश्वर की ऊँचाई से बरसती है।

सन्त अगास्टिन ने जीवन स्मृति नामक अपने ग्रन्थ में सेण्ट मणिका का उल्लेख किया है। वह प्रार्थना के समय लगभग तीन फुट आकाश में अवस्थित हो जाती थी। ऐसा लगता था कि उसके शरीर पर गुरुत्वाकर्षण का कोई प्रभाव नहीं है। उसका शरीर वायु में तैरता दिखायी पड़ता था। सेण्ट फ्रान्सिस (पाओला) रात्रि के समय प्रार्थना करते हुए आकाश में उठ जाते थे। नेप्ल्स के नरेश ने उनको आमन्त्रित किया। जिस कक्ष में निवास की व्यवस्था थी उसके दरवाजे में एक छेद था। रात्रि को नगर राजा ने देखा कि सेण्ट फ्रान्सिस प्रार्थना कर रहे हैं तथा एक विशाल प्रकाश पुंज उनको घेरे हुए है। मेज से कई फुट ऊँचा उनका शरीर शून्य में बिना किसी सहारे के अवस्थित था। घटना पाँचवी शताब्दी की है। स्पेन की सेण्ट टेरेसा जिसकी तुलना भारतीय मीरा से की जाती है उनके विषय में भी इसी प्रकार का उल्लेख मिलता है। स्थानीय विशप डन आलपेरेस डे मोनडोसा एक बार सेण्ट टेरेसा से मिलने गये। यह देखकर आश्चर्यचकित रह गये कि टेरेसा का शरीर जंगले से ऊपर शून्य में स्थित है।

नव फ्लातनिक, दार्शनिक जाम ब्लिपास प्रार्थना के समय पृथ्वी से १० हाथ ऊपर उठ जाते थे। उस समय उनके शरीर एवं वस्त्रों से सुनहरी चमकीली ज्योति निकलती दिखायी देती थी। उनका शरीर वायु में विचरण करता रहता था।

विशप सेण्ट आर. के विषय में भी उल्लेख मिलता है कि गिरिजाघर बन्द हो जाने के बाद भी वे किसी अलौकिक शक्ति द्वारा पहरेदारों की उपस्थिति में भी भीतर पहुँच जाते तथा सारी रात जागकर प्रार्थना करते रहते। प्रार्थना की अवधि में सम्पूर्ण गिरजाघर एक दिव्य आलोक से आलोकित रहता था।

टियाना निवासी योगी एपोलोनियस में भी आकाशगमन की शक्ति थी।

भारतीय योगियों में तो इस प्रकार की अलौकिक घटनाओं के अनेकों उदाहरण मिलते हैं। दयानन्द सरस्वती को कितनी बार नदी के ऊपर आसन लगाकर ध्यान करते हुए देखा गया। स्वामी रामतीर्थ, रामकृष्ण परमहंस की घटनाएँ विख्यात हैं। काठियाबाबा, विशुद्धानन्द जैसे योगियों के जीवन वृत्तान्त में भी इस प्रकार की घटनाएँ देखने को मिलती हैं। शंकराचार्य, गोरखनाथ को भी आकाश गमन की सिद्धि प्राप्त थी।

दाराशिकोह ने औलियो के जीवन वृत्तान्त में मियाँमीर का उल्लेख किया है। इसके अध्ययन से पता चलता है कि उन्हें अलौकिक सिद्धियाँ प्राप्त थीं। वे आवश्यकतानुसार कभी-कभी लाहौर से आकाश मार्ग द्वारा 'हिजाद' जाते थे। रात्रि व्यतीत करके पुनः सूर्योदय के पूर्व लाहौर वापस लौट आते थे।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

शेख अब्दुल कादिर एक व्याख्यान करते हुए भूमितल से ऊपर शून्य में उठ गये। उपस्थित हजारों व्यक्तियों ने इस घटना को देखा। शून्य में कुछ देर ठहरने के उपरान्त पुनः भूमि पर वापस लौट आये। इस आकस्मिक घटना का स्पष्टीकरण देते हुए उन्होंने कहा कि मुझे अचानक दीखा सन्त 'खिदिर' मस्जिद के पास से जा रहे है। आकाश मार्ग में जाकर मैंने अभिवादन किया तथा व्याख्यान सुनने के लिए आमन्त्रित किया।

पदार्थ सामान्यतया एक नियम व्यवस्था के अनुसार काम करते हैं। अणु-परमाणुओं से लेकर ब्रह्माण्ड के तारों, मण्डलों तक पर प्रकृति के कुछ नियम अनुशासन नियन्त्रण करते हैं, तदनुरूप ही सृष्टि का सारा क्रम चलता है। किन्तु चेतना का प्रकृति पर भी आधिपत्य है और वह अपने आकर्षण तथा दबाव से प्रकृति नियमों में भी हेर-फेर कर सकता है। कई बार देवताओं, सिद्धपुरुषों एवं प्रेतात्माओं के प्रभाव से वस्तुओं के सामान्य व्यवस्था क्रम में उलट-पुलट देखी गई है। साधारणतया प्रचलित व्यवस्था में इस प्रकार की गड़बड़ियों की गुंजायश नहीं होती। किन्तु देखा गया है कि चेतना का दबाव बिना शरीर या उपकरणों का प्रयोग किये ही अपनी इच्छाशक्ति के सहारे ऐसा कुछ कर देता है जिन्हें रहस्य कहने के अतिरिक्त और कोई समाधान सूझ नहीं पड़ता।

२४ अप्रैल, १९४४ के साप्ताहिक समाचार पत्र 'टाइम' में प्रकाशित घटना से पता चलता है कि वास्तविक जीवन में विलक्षणताओं को अन्धविश्वास कहकर नहीं ठहराया जा सकता है। श्रीमती पॉल्मिन रेवेल अमेरिका के उत्तरी भाग में डकोटा क्षेत्र के रिचर्डसन नामक नगर में वाइल्ड प्लम स्कूल की शिक्षिका थीं। जो आठ बच्चों को पढ़ा रही थीं अचानक घटना घटी।

कमरे के अन्दर रखी हुई अँगीठी में कोयले स्वयं प्रज्जवलित होने लगे। थोड़ी ही देर में कोयले अँगीठी से निकलकर दीवारों से टकराये और फिर वापस अपने पूर्व स्थान पर ही आ गये। एक जलता हुआ कोयला एक विद्यार्थी के ऊपर जा गिरा जिससे उसका सिर झुलस गया। एक तेजी की आवाज के साथ अँगीठी विपरीत दशा में जा खड़ी हो गयी वहाँ पर रखी हुई पुस्तकों का एक बन्डल स्वयं ही बड़ी तेजी के साथ जलने लगा। उसी शेफ में रखा हुआ एक शब्दकोष अपने आप नीचे उतर आया और कमरे की खिड़कियाँ स्वयं ही जलने लगीं।

उसी क्षण शिक्षिका द्वारा फाइरब्रिगेड को सूचित किया गया। उनके आने पर भी अग्नि का प्रभाव बना ही रहा। विद्यार्थियों को अपने घर भेजकर कालेज को बन्द कर दिया। उन कोयलों का परीक्षण विज्ञान के शिक्षकों द्वारा किया गया और बाकी को अमेरिका की खुफिया पुलिस के वैज्ञानिकों द्वारा जाँच की गयी। इसके बारे में श्रीमती रेवेल ने स्कूल के बच्चों को पृथक् रूप से पूछा तो उन्होंने स्थिति की सच्चाई को प्रकट किया।

इस घटना को लेकर वैज्ञानिक क्षेत्र में तहलका मच गया और बहुत समय तक उस सन्दर्भ में जाँच-पड़ताल चलती रही। प्रो. जार्ज गैमोन ने इस सन्दर्भ में लम्बी खोज की और कारणों तथा सम्भावनाओं पर कितनी ही अटकलें लगाते हुए प्रकाश डाला, एक-दूसरे वैज्ञानिक मैक्सवेल ने भी इस घटना को लेकर कई तरह की अटकलें लगाईं। किन्तु समाधान किसी का भी नहीं हुआ। वे स्वयं अपने निष्कर्षों को अटकल बताते थे तो दूसरा कोई क्यों उन्हें सुनिश्चित माने ?

इस सम्भावना पर ही अधिक विश्वास किया गया कि कोई किसी अदृश्य व्यक्तित्व के दबाव से इस प्रकार की उलट-पुलट हुई होगी। ऐसी अनेकों घटनाएँ यह बताती हैं कि चेतना की व्यक्ति विशेष में मात्रा भले ही न्यून हो, पर उसमें सम्भावनाएँ अपने उद्गम स्रोत जितनी ही विद्यमान रहती हैं।

मनुष्य की विलक्षणताएँ कई बार अनायास ही उभर कर ऊपर आती देखी गई हैं। कई बार उन्हें जगाकर प्रकट एवं परिपक्व किया जाता है। दोनों ही परिस्थितियों से यह सिद्ध होता है कि मानवी सत्ता में अनन्त सम्भावनाएँ विद्यमान हैं। यदि उन्हें खोजने और जगाने का प्रयत्न किया जाय तो प्रकृति के वैज्ञानिक अनुसन्धानों से अब तक जितना मिल सका है उसकी तुलना में व्यक्ति की खोजबीन से अपेक्षाकृत कहीं अधिक उपलब्धियाँ करतलगत की जा सकती हैं।

प्रकृति पदार्थमयी है इसलिए उसका अनुशासन पदार्थ पर तो पूर्णतया लागू होता है किन्तु मनुष्य चेतना का धनी है। उसकी अपनी मौलिक विशेषता है और ऐसी है जो प्रकृति को अपना अनुयायी बना सकती है। अनुसन्धान के लिए यदि आत्मसत्ता के क्षेत्र में प्रवेश किया जा सके तो मनुष्य सच्चे अर्थों में सिद्धियों और चमत्कारों का अधिपति हो सकता है।

एल्फ्रेड लॉगवेन नामक एक ऐसा व्यक्ति मिशिगन (अमेरिका) में था जो अपनी आँखों से फूँक मारकर जलते हुए दीपक को बुझा देता था। उस पर अनेक-तरह के प्रयोग और परीक्षण हुए, पर कहीं कोई ऐसा कारण समझ में नहीं आया जिससे यह पता चला हो कि उसने 'ट्रिक' की है अथवा किसी तरह अभ्यास से यह सामर्थ्य विकसित हुई हो, अपितु उसमें यह क्षमता जन्मजात और ईश्वर प्रदत्त थी। एक बार तो उसके मुँह और नाक के नथुनों को पूरी तरह सील कर दिया गया तो भी उसके सामने जलती हुई मोमबत्ती लाते ही उसने आँख से फूँक मारकर बुझा दी। यही नहीं इस अवधि में उसने साँस न मिलने से होने वाली कैसी भी घबराहट अनुभव नहीं की।

जार्जिया का टोकोआ पहलवान ३६४ पौण्ड भारी है अब बिना किसी की सहायता के ६२७० पौण्ड वजन अकेला उठा लेता है और कुछ दूर तक उसे ठोकर से भी ले जाता है। ओलम्पिक खेलों में उसने १९३२ में १९५६ में चेम्पियन का सम्मान प्राप्त किया था।

स्मरणशक्ति के इतिहास में इटली के जोसेफ कास्पर ने कीर्तिमान स्थापित किया था जो अभी तक तोड़ा नहीं जा सका। वह संसार की प्रायः समस्त भाषाओं का ज्ञाता था। इनमें १४४ प्रमुख भाषाएँ हैं और अपनी लिपियाँ तथा व्याकरण की सुनिश्चित पद्धतियाँ हैं। इसके अतिरिक्त उसे ७२ ऐसी क्षेत्रीय भाषाओं में बोलने तथा समझने का अभ्यास था जो लोक-जीवन में प्रचलित तो हैं, पर उनका विधिवत निर्धारण नहीं हुआ है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

कास्पर को सबसे अधिक समय चीनी भाषा सीखने में लगा। इस अध्ययन में उसे चार महीने का समय नष्ट करना पड़ा।

डेनमार्क के एक नगर कोपेनहेगन में एक बैंक में आग लग गई। सोने, चाँदी के सिक्के तो बच गए, किन्तु अन्य सारे रिकार्ड जल गये। अगले दिन बैंक के सामने लोगों की भीड़ जमा हो गई तथा सभी अपना हिसाब माँगने लगे। बैंक के अधिकारी रिकार्ड के अभाव में उलफत में पड़ गये। तभी बैंक का एक क्लर्क आगे आया। नाम था—वर्थोल्ड नोह्वर। उसने बताया कि उसे दो हजार ग्राहकों के हिसाब जवानी याद हैं। डाइरेक्टर ने उसकी बात पर विश्वास कर धन जमा करने वालों से पूछा तो पता चला कि क्लर्क का कहना ठीक है। इस विलक्षण स्मृति के आधार पर सबका पैसा ठीक प्रकार से चुका दिया गया।

इंग्लैण्ड में एक व्यक्ति था जो १४८३ में जन्मा और १६३५ में मरा। उसने डेढ़ शताब्दी का समय निरोग रहकर गुजरा। उसने अपने समय में दस राजाओं को सिंहासनरूढ़ होते और पद छोड़ते देखा। असली नाम तो लोग भूल गये थे। 'औल्ड पार' नाम से उसे पुकारा जाता था अतएव इसी नाम से उसका उल्लेख किया गया। वृद्धावस्था को सम्मान देने की दृष्टि से सामान्य नागरिक होते हुए भी उसे 'वेस्ट मिस्टर एवी' के सम्मानित कब्रिस्तान में दफन किया गया।

नास्तिकतावादी नीत्से ने आत्मा और परमात्मा का अस्तित्व तो नहीं स्वीकारा, पर वे भी मनुष्य को 'अति मानव' बनने और आत्मविश्वास का धनी और प्रतिभा सम्पन्न बनने की प्रेरणा देते थे।

यही है महान जागरण जिसके लिए उपनिषद्कार ने प्रत्येक विज्ञजन को उद्बोधन करते हुए कहा—"ऊँचे उठो—प्रसुप्त को जगाओ—जो महान है उसका अवलम्बन करो और आगे बढ़ो" इस लक्ष्य की दिशा में जितना प्रयास किया जायगा मनुष्य उतना ही समर्थ और समृद्ध बनता जायेगा।

निश्चय ही मनुष्य के अन्तराल में अनेकानेक रहस्यमयी गुप्त शक्तियों का भाण्डागार विद्यमान है। स्थूल काया की अपेक्षा सूक्ष्म एवं कारण शरीर में अनुपम दिव्य क्षमताएँ भरी पड़ी हैं पर ये सभी प्रसुप्त स्थिति में दबी हुई। यदि इन्हें जागृत और विकसित किया जा सके तो वह उन अलौकिक शक्तियों का स्वामी बन सकता है, जिन्हें सामान्य जन आश्चर्यजनक कहते समझते हैं।

इस तरह की घटनाएँ कभी-कभी प्रकाश में भी रहती हैं जिनसे मानवी काया में अन्तर्निहित असीम क्षमताओं का परिचय मिलता है। एक घटना सत्रहवीं सदी की है। मूर्धन्य वैज्ञानिक एवं अनुसंधानकर्त्ता लार्ड एडोर ने एक व्यक्ति को हवा में पक्षियों की तरह उड़ते और तैरते हुए देखा था। इस विलक्षण विवरण को उन्होंने "रिपोर्ट आफ दि डायलेक्टिकल सोसायटी आन स्प्रिचुएलिज्म" नामक पत्रिका में प्रकाशित कराया था। प्रारम्भ में तार्किकों, प्रत्यक्षवादियों एवं वैज्ञानिकों को इस तथ्य पर विश्वास ही नहीं हुआ कि कोई व्यक्ति हवा में भी उड़ सकता है। किन्तु इसी तरह की जब एक घटना इटली नगर में सन् १६६३ में घटी तो समस्त विचारकों, तार्किकों एवं वैज्ञानिकों को चमत्कृत कर दिया। हुआ यह कि इटली के पादरी जोसेप अपनी मृत्यु के कुछ समय पूर्व ही चिकित्सा कर रहे एक डाक्टर को भी अपने साथ लेकर आकाश में उड़ गये। उस चिकित्सक ने अपने संस्मरण में लिखा कि—"जब मैं फादर जोसेप की देखभाल कर रहा था तो अचानक उन्होंने मेरा हाथ पकड़ा और हवा में तैरने लगे। उनसे जकड़ा हुआ मैं भी हवा में उड़ रहा था। वह मुझे उड़ाते हुए फ्रांस के गिरजाघर तक ले गये और वहाँ उतर कर प्रार्थना की। इसके बाद बोले—"अब मुझे आपकी चिकित्सा की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि अब मेरे शरीर त्यागने का समय आ गया है। मैं जल्दी ही भगवान् के पास जाने वाला हूँ। यह सुनकर मैं सन्न रह गया। इसके बाद दूसरे ही दिन उनकी मृत्यु हो गयी।"

एडार द्वारा प्रकाशित विवरण की यथार्थता को जानने के लिए "द रॉयल एस्ट्रोनामिकल सोसायटी" के मूर्धन्य अनुसंधानकर्त्ताओं ने व्यापक गवेषणाएँ की। इन शोधकर्मियों ने अपनी गहन खोजों के आधार पर पता लगाया कि इटली के सरकारी कागजातों में श्री जोसेप के हवा में तैरने के एक नहीं अनेकानेक प्रसंग रिकार्ड है, जिन्हें कि पुलिस वालों तथा अन्य कई प्रत्यक्षदर्शियों ने संग्रह किये थे। जोसेप के सम्बन्ध में पूरे इटली भर में यह ख्याति फैल चुकी थी कि प्रार्थना-उपासना करते वह हवा में उड़ने लगते हैं। हवा में उड़ने वाला साधु के नाम से प्रसिद्ध इस पादरी गिसप देसा जोसेप का जन्म १६०३ में इटली के कापरटिना नामक स्थान पर हुआ था। पिता बढ़ईगीरी का काम करते थे। बचपन से ही अन्तर्मुखी जोसेप घण्टों पूजावेदी के सामने बैठे उपासना किया करते थे।

एक दिन चर्च में प्रार्थना करते समय तीव्र गर्जन करते हुए वह हवा में ऊपर उठ गए तथा दोनों बाँहों को फैला कर अधर में तैरने लगे। थोड़ी देर बाद वह मोमबत्तियों व फूलों से सुसज्जित पूजा वेदी पर उतर आए। कुछ समय पश्चात् पुनः उसी तरह गर्जन करते हुए उड़े और वापस नीचे उतरकर अपने स्थान पर पहुँच कर प्रार्थना करने लगे।

एक बार रोम में पोप अर्बन अष्टम को देखकर जोसेप भावावेश में इतना उत्साहित हो गए कि आधार छोड़कर हवा में उड़ चले तथा तब तक उड़ते ही रहे जब तक कि पोप ने उन्हें नीचे उतरने का संकेत नहीं दिया। रोम से वापस लौटने पर चर्च में अंकित चित्रों से प्रभावित होकर जोसेप ने एक चीत्कार के साथ लगभग १५ गज ऊँची उड़ान भरी। उसके बाद जोसेप ने एसेसी तथा कोपरटिनो में भी अनेकानेक उड़ानें भरीं। यह सब वह भावावेश में आने पर ही करते थे, प्रदर्शन के लिए नहीं। दूसरों को साथ लेकर भी जोसेप कभी-कभी उड़ानें भरा करते थे। उनके बाल्यकाल की घटना है। एक बार जब वह अपने पिता का हाथ पकड़े हुए थे, एकाएक उन्हें लेकर आकाश में उड़ गए। इसी प्रकार एक समय वह किसी पागल की आध्यात्मिक चिकित्सा कर रहे थे, तभी उसके सिर के बालों को हाथ से पकड़े हुए वह उड़ गए तथा काफी समय तक इसी तरह उड़ते रहे।

फादर जोसेप की उड़ान देखने के लिए दूर-दूर से लोग आते थे। जर्मनी के ड्यूक ऑफ ब्रन्शविक ने छिपकर देखा कि

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

'जोसेप कहीं' सामान्य जनता को सम्मोहित तो नहीं करते ? वह अभी इसी ऊहापोह में उलझे थे कि गर्जन करते हुए वह प्रार्थना की मुद्रा में घुटना मोड़े हुए ही हवा में उड़ने लगे। दूसरे दिन पुनः उसने इस उड़ान की पुनरावृत्ति देखी। तब उन्हें इस साधु की अलौकिक सामर्थ्य पर विश्वास हो गया।

दरअसल ये प्रसंग उस विभूति का परिचय देते हैं जिसका उल्लेख अणिमा, लघिमा जैसी सिद्धियों के रूप में एवं पवन पुत्र हनुमान की आकाश यात्रा व सुरसा से उनकी भेंट रूप में पौराणिक आख्यानों में आता है। पूर्व जन्मों के संचित संस्कार या साधना पराक्रम से जब अन्तर्निहित क्षमताएँ जाग उठती हैं तो असंभव चमत्कारी कृत्य मानवी काया द्वारा सम्भव होते देखा जाने लगता है।

अठारहवीं शताब्दी के एक बौद्ध भिक्षु बेनेडिक्टायन के बारे में प्रख्यात है कि वह हवा में उड़ जाते थे। एक बार वह संघाराम में चहल कदमी कर रहे थे, तभी उपस्थित जनसमूह के सामने वह हवा में विहंगवत उड़ने लगे। ऊँचाई पर वह उठते ही जा रहे थे कि जैतून की शाखाओं से टकरा गये और घंटों अधर में ही लटके रहे। शिष्यों ने सीढ़ी लगाकर प्रयत्न पूर्वक उन्हें धरती पर उतारा, फिर भी वे जमीन से ६ इंच ऊपर ही टंगे रहे और उनको सम्बोधित करते रहे।

उन्नीसवीं सदी में वैज्ञानिकों का ध्यान उपरोक्त आध्यात्मिक विभूतियों की ओर आकृष्ट हुआ। जब ये चमत्कारिक घटनाएँ लोकचर्चा का विषय बनने लगी थीं और संशयवादी इस पर अविश्वास व्यक्त करते हुए इसे अफवाह और धोखाधड़ी की संज्ञा दे रहे थे। उस समय की इन घटनाओं से प्रभावित हो महान अध्यात्मवेत्ता एवं सुप्रसिद्ध रसायनशास्त्री सर विलियम क्रुक्स ने एक शोध समिति बनाई। उन्होंने इन चमत्कारिक प्रदर्शनों की व्यापक छानबीन की एवं तत्सम्बन्धित अनुसंधान परीक्षणों की विशद व्याख्या अपने प्रसिद्ध शोध ग्रन्थ—"रिसर्च इन द फेनामेना आफ स्प्रिचुएलिज्म" में प्रकाशित किया। होम नामक एक व्यक्ति की विलक्षणताओं का वर्णन करते हुए उन्होंने लिखा है कि—"जब मैं उससे वार्तालाप कर रहा था, तभी वह जिस कुर्सी पर बैठा हुआ था उस कुर्सी सहित हवा में तैरने लगा"। एक अन्य दूसरे साक्षात्कार का विवरण इस प्रकार दिया है—"मेरी उपस्थिति में कुर्सी पर बैठी हुई एक महिला को भी उसने हवा में काफी ऊँचाई तक उठा दिया था। इस स्थिति में वह महिला लगभग दस सेकण्ड तक रही। इसके बाद धीरे-धीरे जमीन पर अपनी कुर्सी सहित वापस आई।"

क्रुक्स ने अपने एक अन्य शोध ग्रन्थ—"मिसलीनियस अकरेन्सेस आफ ए कॉम्पलेक्स करैक्टर" में एक सौ से अधिक आकाशगामिना की अद्भुत घटनाओं का वर्णन किया है।

'मास्टर आफ लिडेन्सी' नाम से प्रख्यात एक अन्य शोध-कर्मी वैज्ञानिक ने इस तथ्य को प्रामाणित किया है कि व्यक्ति अपनी सूक्ष्म शक्तियों को जागृत करके कई ऐसे कार्य कर सकता है जो स्थूल काया से बन पड़ना सम्भव नहीं है। एडोर द्वारा और होम के साथ बैठा आकाश गमन पर चर्चा कर रहा था तभी एकाएक श्री होम धरती से आकाश की ओर उठने लगे। देखते-देखते वह जमीन से पचासी फीट ऊँचाई तक पहुँच कर हवा में स्थिर हो गये। काफी समय तक इस स्थिति में रहने के पश्चात वह धीरे-धीरे जमीन पर उतर आये।

उपरोक्त प्रदर्शन अथवा अद्भुत कही जाने वाली घटनाएँ सदा से वैज्ञानिकों, भौतिकशास्त्रियों एवं प्रत्यक्षवादियों के लिए चुनौती बनी रही हैं। उनके समाधान खोजने में भी उन्होंने कोई कसर नहीं छोड़ी। परन्तु शोध परिधि स्थूल तक ही सीमित होने के कारण उनकी खोजें अधूरी रहीं। इस संदर्भ में—"साइन्स एण्ड रिलीजन बाई सेविन मैन आफ साइन्स" के लेखक प्रो० डब्ल्यू० बी० वाटमाली द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्त ध्यान देने योग्य है। उनके अनुसार "भौतिक अथवा रासायनिक विज्ञान मनुष्य को संतुष्ट कर सकता है। स्थूल से बढ़कर और भी कोई सूक्ष्म सत्ता है। हममें से प्रत्येक के हृदय में ऐसी कोई गुप्त शक्ति है जो उच्च उद्देश्यों की ओर प्रेरित करती है। इसकी व्याख्या विवेचना विज्ञान के द्वारा नहीं हो सकती।"

भारतवर्ष में स्वामी विशुद्धानंद तथा स्वामी निगमानंद भी अपनी ऐसी अनुभूतियों को प्रत्यक्ष प्रमाणित कर चुके हैं। कहा जाता है कि तेलंग स्वामी को नंगे फिरने के अपराध में काशी के एक अँग्रेज अधिकारी ने हवालात में बन्द करा दिया। लेकिन दूसरे दिन वे जेल से बाहर टहलते हुए देखे गए। उन्हें किसी ने कभी कुछ खाते-पीते नहीं देखा फिर भी प्रतिवर्ष उनका वजन १ पौंड बढ़ जाता था। इस ३०० वर्ष की अवस्था में उनका वजन ३०० पौण्ड हो गया था, ऐसे अनेकानेक उदाहरणों का नाथ सम्प्रदाय के मछीन्द्रनाथ, गोरखनाथ, जालन्धर नाथ, कणप्पा आदि योगियों के जीवन प्रसंगों में भी ऐसा उल्लेख पाया जाता है। अभी भी हिमालय की दुर्गम एवं सामान्य जनों की पहुँच से दूर निर्जन गुफाओं में ऐसे कितने ही योगी तपस्वी साधनारत हैं।

वस्तुतः विशिष्ट साधनाओं और तपस्या द्वारा साधक, योगीजन, अनादि काल से उन विभूतियों एवं ऋद्धि-सिद्धियों के स्वामी बनते रहे हैं जिन्हें अणिमा, महिमा, लघिमा, प्राकाम्य, वाशित्व आदि नामों से जाना जाता है। छोटे-बड़े आकार धारण करने, अदृश्य और प्रकट होने, आकाश गमन करने, अपने कार्य क्षेत्र को प्रभावित करके इच्छित दिशा में जनमानस को मोड़ने, मरोड़ने आदि कार्य वे सहजता से सम्पन्न कर लेते हैं। इस तरह के उदाहरणों से भारतीय अध्यात्मशास्त्र के पन्ने भरे पड़े हैं। आवश्यकता इस बात की है कि सूक्ष्म की सामर्थ्य को महत्व दिया जाय एवं ऐसे घटनाक्रमों को कपोल कल्पित अथवा कौतूहल न मानकर सूक्ष्म को साधने का प्रयास किया जाय। उड़ने की कला तो मक्खी-मच्छरों को भी आती है। उसे सीखने के लिये जीवन खपाना जरूरी नहीं। जरूरी तो यह है कि अध्यात्म अनुशासनों को महत्व देने हेतु जनसाधारण को सहमत किया जाय। इन्हें बताया जाय कि साधना द्वारा इस काया में वांछित परिवर्तन कर बहुत कुछ कर दिखाना मनुष्य के लिए सम्भव है। असीम सम्भावनाओं से भरे इस पिण्ड में कितना कुछ भरा पड़ा है, इसे जाना व आत्मसात किया जा सके तो भौतिकी की दिशा में अग्रसर मानव को आत्मिकी का अवलम्बन हेतु भी सहमत किया जा सकता है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

योगी बिना खाये-पिये किस प्रकार जीवित रहते हैं ?

स्वामी रामकृष्ण जी ने लिखा है कि योगीजनों ने प्रकृति का भली प्रकार निरीक्षण करके बहुत-सी विधियों का आविष्कार किया था। जिस प्रकार बहुत-सी विद्याओं का अभ्यास प्रकृति को देखकर किया जाता है, उसी प्रकार योग विद्या भी प्रकृति का अनुसरण करने से प्राप्त हुई हैं। मेंढक, साँप और कछुआ—इन प्राणियों के शरीर में कुछ स्वाभाविक शक्तियाँ होती हैं, उनका पूर्णरूप से अवलोकन करके योगियों ने प्राणायाम करने और भोजन बिना जीवित रहने की विधि खोज निकाली थी। उन्होंने देखा कि मेंढक गर्मी के दिनों में कुछ नहीं खाता, साँप प्रायः हवा खाकर ही जीता रहता है और कछुआ आत्मरक्षा के लिये अपने अवयवों को भीतर खींचकर चाहे जितने समय तक जीवित रहता है। जाड़े में मेंढक का शरीर लगभग मिट्टी में मिल जाता है और उसमें जीवित होने का कोई लक्षण दिखलाई नहीं पड़ता, पर वर्षा ऋतु आरम्भ होते ही वह सजीव हो जाता है। भूख का कष्ट न हो इसलिये योगियों ने मेंढक का अनुकरण किया, कछुआ की तरह अपना मन समस्त विषयों से खींचकर एकाग्र करने की विधि सीखी और इस प्रकार बहुत दिन तक बिना भोजन के रहने का उपाय मिल गया। कछुआ और साँप ये दो प्राणी बहुत धीरे-धीरे अथवा कई-कई घण्टे पीछे साँस लेते हैं। इससे योगियों ने अपने श्वाँस से कुम्भक करने या प्राणायाम की विधि ढूँढ़ निकाली। उन्होंने यह भी विचार किया कि ये प्राणी थोड़ा खाते हैं, श्वांस भी बहुत कम लेते हैं और बहुत समय तक जीवित भी रहते हैं, इसलिये उन्होंने उनका अनुकरण किया।

मि० जोशी नाम का एक प्राणीशास्त्रवेत्ता था। उसने फूल लगाने वाले गमले में एक मेंढक को रखा। फिर इस गमले को सब तरफ से बन्द करके मिट्टी से लीप दिया और ऐसी व्यवस्था की कि जिससे उसमें हवा न जा सके। तब उस गमले को ऐसे स्थान पर रख दिया कि गरमी या ठण्ड से उस पर किसी प्रकार का असर न पड़े। कई वर्ष बाद उस गमले को खोलने से दिखलाई पड़ा कि वह मेंढक मरा नहीं था, वरन् खूब स्वस्थ दशा में जीवित था।

भारत में ऐसे अनेक योगी अब भी हैं, जो कितने ही वर्ष तक समाधि में रह सकते हैं। यद्यपि ऐसे योगी प्रायः जनसमूह से दूर हिमालय पर्वत के अगम्य स्थानों में रहते हैं, तो भी इस विद्या के जानने वाले अब भी देश में जहाँ-तहाँ मिल जाते हैं और योग का चमत्कार दिखा सकते हैं। इस सम्बन्ध में नीचे लिखा वृत्तान्त बम्बई के 'किस्मत' मासिक-पत्र में छपा था—

"स्वामी रामदास जी ने जिनका निवास स्थान बज्रेश्वरी, अनुसुइया कुंड पर है, शनिवार दिनांक १६ फरवरी, १९५७ को संध्या के ६ बजे कालवादेवी रोड पर बने मंशादेवी के विशाल मैदान में अनेक प्रतिष्ठित नगर निवासियों तथा विशाल जनसमुदाय के सामने समाधि ली। समाधि के लिये खोदे गये गड्ढे और लकड़ी के बड़े बक्स का जनता में से कुछ लोगों ने विशेष रूप से निरीक्षण किया कि किसी जगह कोई शंका या चालाकी की बात तो नहीं है। इसके बाद ठीक ६ बजे स्वामी रामदास ने समाधि ली और तुरन्त ही उनको उस बक्स के भीतर रखकर गड्ढे में रख दिया गया और गड्ढे में मिट्टी भरकर ऊपर सीमेंट से पक्की चिनाई कर दी गई।

'किस्मत' के प्रतिनिधि ने यह समाधि सीमेंट से बन्द की जाती स्वयं देखी थी। उस समय वहाँ पर भक्तों की भीड़ लगी थी और लोग समाधि पर फूल, पैसा आदि बहुत बड़ी संख्या में चढ़ा रहे हैं। समाधि के पास किसी प्रकार की अव्यवस्था या अनुचित कार्य न हो सके इसलिये पुलिस का पहरा भी लगा था।

"सोमवार ता० १८ को दोपहर के तीन बजे स्वामीजी समाधि से उठने वाले थे।" इसकी घोषणा पहले से कर दी गई थी, इसलिये लोगों की बहुत भारी भीड़ जमा हो गई थी। सैकड़ों प्रतिष्ठित नागरिक और महिलाएँ भी थीं, जिनमें प्रान्तीय काँग्रेस समिति के मन्त्री श्री भानुशंकर याज्ञिक तथा अन्य काँग्रेसी नेता भी मौजूद थे।

"नियत समय पर समाधि के ऊपर की पक्की चिनाई तोड़ी गई और गड्ढे की मिट्टी निकाल कर स्वामी जी को बाहर निकाला गया। इस समय लोगों में धक्कम-धक्का ऐसे प्रचंड वेग से होने लगा कि उसे सँभालना पुलिस के लिये भी कठिन हो गया। तब स्वामी जी को एक खूब ऊँचे मंच पर बिठा दिया गया, जिससे सब कोई दूर से भी उनको भली प्रकार देख सकें। उस समय डॉक्टर पोपट ने स्वामी जी की नाड़ी देखी तो मालूम हुआ कि यह बराबर ठीक चल रही है। कुछ समय बाद स्वामी जी भली प्रकार स्वस्थ और सावधान हो गये। उनकी यह समाधि ४५ घण्टे की थी।"

दूसरा उदाहरण श्री बालयोगी महाराज का है इनका जन्म महाराष्ट्र के एक कुलीन ब्राह्मण परिवार में हुआ था। ध्रुव की तरह ये १० वर्ष की आयु में ही श्री भुवनेश्वरी की प्रेरणा से हिमालय में तप करने चले गये थे। वहाँ इनको एक बहुत बड़े योगी गुरु मिल गये, जिन्होंने ११ वर्ष तक योग की भली प्रकार शिक्षा दी और तत्पश्चात् देश सेवा के लिये पुनः जनता के मध्य भेज दिया। ये बालयोगी जी जमीन में, जल में, अग्नि में समाधि लेकर अपने शरीर को सुरक्षित रख सकते हैं और देश के विभिन्न भागों में इन विद्याओं का प्रयोग करके उन्होंने लाखों व्यक्तियों को चकित कर दिया है। अब उन्होंने श्री भुवनेश्वरी देवी के पास रहकर योगशास्त्र, तन्त्रशास्त्र, आयुर्वेद, ज्योतिष, धर्मशास्त्र सम्बन्धी प्राचीन साहित्य का उद्धार करने के लिये प्रतिज्ञा की है। उनको भुवनेश्वरी विद्यापीठ की तरफ से 'योग-मार्तण्ड' की उपाधि दी गई है।

आधुनिक समय के वैज्ञानिक, चमत्कारों और सिद्धियों पर किसी के कहने सुनने से विश्वास करने को तैयार नहीं होते। वे उनका विज्ञान सम्मत कारण बतलाने की माँग करते हैं। इस विषय में गहरा विचार करने से जान पड़ता है कि सभी जड़ पदार्थ वास्तव में तो चेतन से ही उत्पन्न हुये हैं, इसलिये यह मानना पड़ता है कि चेतन ही हमारे जीवन को बनाने वाला और रक्षा करने वाला है। हम जो भोजन खाते हैं उसमें से खून बनता है और खून में से चेतन बनता है। इसके सिवाय शरीर

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

को पृथ्वी, पानी, तेज, वायु और आकाश से भी स्वतन्त्र रूप से चेतन मिलता रहता है। यही चेतन शरीर का पोषण और रक्षा करता है। अगर भोजन में से चेतन न मिले और ऊपर बताये पाँच तत्वों में से चेतन मिलता रहे, तो शरीर का काम बिना खुराक के भी चल सकता है। रेडियो के 'एरियल' की तरह योगी लोग अपने कंठ-चक्र द्वारा सीधे उपर्युक्त पाँच मूल तत्वों से ही चेतन प्राप्त कर लेते हैं, इसी से वे बिना भोजन किये भी बहुत समय तक अपने-शरीर को जीवित अवस्था में रख सकते हैं।

इसका प्रत्यक्ष उदाहरण पवहारी बाबा हैं, जिनके बारे में स्वामी विवेकानन्द ने विस्तृत चर्चा की है। एक अन्य उदाहरण बंगाल की गिरिबाला है जिसकी सारी जिन्दगी बिना कुछ खाये बीत गयी।

जैसे-जैसे गिरिबाला की आयु बढ़ती गई, उसकी भोजन पचाने की क्षमता भी असाधारण एवं आश्चर्यजनक ढंग से बढ़ती गई। यों वह और भी काम करती थी, पर मुख्य रूप से उसका ध्यान खाने में ही लगा रहता। वह दिन भर खाती रहती। औसतन पाँच-छः व्यक्तियों का भोजन वह अकेली ही खा जाती ? अभी बच्ची थी, इसलिये उसे भूखों मारना तो कठिन था। पर माँ भी नहीं चूकती थी—"गिरिबाला ! तू ससुराल जायेगी तो तेरी सास तेरी अच्छी मरम्मत करेगी। इतना खायेगी तो भला किस घर में निर्वाह होगा ?"

इन पंक्तियों में प्रस्तुत घटना कोई काल्पनिक कथा नहीं, वरन् एक सत्य इतिहास है। गिरिबाला नाम की यह कन्या बंगाल के बाँकुड़ा जिले में ब्यूर नामक एक छोटे-से गाँव के सम्पन्न बंगाली परिवार में जन्मी। माता-पिता यद्यपि जमींदार थे पर भाई लम्बोदर बाबू ख्यातिप्राप्त वकील थे। गिरिबाला की इस अस्वाभाविक खाने की आदत से सभी लोग चिन्तित थे और सोचते थे कि यह ससुराल जायेगी तो क्या होगा ? पर होनी तो आखिर होनी ठहरी। १२ वर्ष की अल्पायु में ही गिरिबाला का सम्बन्ध कलकत्ता जिले में नबावगंज के एक सम्पन्न परिवार में कर दिया गया। गिरिबाला ससुराल आई तो पहली ही उसकी इस राक्षसी भक्षण-प्रवृत्ति ने सबको चौंका दिया।

कुछ दिन यों ही बीते। पर आखिर यह पीहर तो था नहीं, अपरिचितों ने अपरिचितों जैसा ही व्यवहार किया। एक दिन सास ने आखिर व्यंग्य-बाण छोड़ ही दिया—बहू, भला तू अपने पिता के घर भी कुछ छोड़कर आई है ? तू तो इतना खाती है कि लगता है—घर का एक साल का अन्न एक महीने में ही चुका देगी ?

गिरिबाला स्वयं नहीं जानती थी कि यह किस जन्म के संस्कार हैं। पर वह अपने आपको असहाय अनुभव करती, बिना खाये उससे रहा ही नहीं जाता था। पर उस दिन का अपमान कुछ ऐसा था जिसने उसके सम्पूर्ण स्वाभिमान को चरमरा दिया। गिरिबाला ने बड़े आत्मविश्वास से कहा—"अच्छा, अब आज से बिलकुल एक दाना भी न खाऊँगी।"

सास हँसी और बोली—"बिना खाये एक दिन तो रहा नहीं जाता, उपवास की कहती तो सम्भवतः मान भी लेते। जीवन भर कुछ न खाने का संकल्प और वह भी तू करे—यह नितान्त असम्भव है। कोई योगी होता तो कुछ विश्वास भी कर सकते थे।"

परमहंस योगानन्द ने अपनी पुस्तक—एक योगी की आत्मकथा (आटो बाईग्राफी आफ योगी) नामक अपनी जीवनी में इस घटना का कौतूहलपूर्ण विवरण देते हुए लिखा है—मनुष्य को कई जन्मों के संस्कार विलक्षण ढंग से प्रभावित करते हैं, पर सामान्य मनुष्य उन्हें पहचान नहीं पाते, जबकि असामान्य व्यक्ति अपनी बौद्धिक सूक्ष्मता के कारण अपने जीवन की राहें असामान्य बना लेते हैं। गिरिबाला भी ऐसी ही कन्या थी, जो पूर्व जन्म में कोई महान तपस्विनी, योग-साधिका अथवा कुटीचक संन्यासिनी रही होगी। किसी साधना में विघ्न के कारण सम्भवतः ऐसी स्थिति और यह संस्कार बन गये होंगे। पर साधना और कठिन तपस्या के संस्कार तथापि आत्मनिष्ठा के संस्कार उसमें अब भी अत्यधिक प्रबल थे। उन संस्कारों का ही प्रभाव इस आत्मविश्वास पूर्ण संकल्प में उभरा था।

गिरिबाला घर से निकली और सीधे गंगा-तट की ओर चल पड़ी। घाट टूटी-फूटी सीढ़ियों का था, गंगाजी के किनारे देवी का मन्दिर था। पुजारी बाहर ही बैठा था। गिरिबाला ने उसे प्रणाम कर पूछा—"आप कोई ऐसी औषधि, रसायन प्राणायाम या यौगिक क्रिया बता सकते हैं, जिससे खाने की आवश्यकता न रहे ?"

पुजारी ने छूटते ही कहा—"हाँ-हाँ, है क्यों नहीं। पर तुम शाम को आना, तब एक वैदिक क्रिया बतलायेंगे।

गिरिबाला ने पुजारी की मुद्रा में स्पष्ट फूहड़पन देखा। उसे अन्तःकरण में इस वृत्ति पर बड़ा दुःख हुआ कि यह साधु-पुजारी कदाचित अपना समय नष्ट करने और दूसरों को छलने की अपेक्षा आत्मनिर्माण की आवश्यकता पर कुछ भी जोर दे सके होते तो अपनी यह अवनति क्यों होती, भारतीय दर्शन यों अस्त-व्यस्त क्यों होता ? पर १२ वर्ष कुछ महीनों की यह कन्या भला उसे क्या समझाती। वहाँ से चुपचाप चली आई।

गंगाजी में स्नान करते समय गिरिबाला को बड़ी पुलक थी। उसे बार-बार रोमांच हो आता था। रह-रह कर उसके अन्तःकरण में एक आवाज उठती थी कि आज उसे कोई महापुरुष मिलेगा अवश्य। जैसे ही वह स्नान कर बाहर खड़ी हुई कि उसने अपने समक्ष एक ज्योति-वृत्त और ठसमें खड़े एक छायापुरुष को देखा। और कोई होता तो भय से चक्कर खाकर वहीं ढेर हो जाता। सम्भवतः इसीलिये शक्तिशाली योग-आत्मायें संसार में विचरण तो करती हैं पर किसी को स्थूल रूप से प्रकट होकर कोई सन्देश नहीं दे पातीं। मुसीबत यह है कि सूक्ष्म सन्देश और परा-वाणी को ग्रहण करना सबके वश में नहीं होता।

इसलिये पूर्वजन्मों के परिचितों के साथ ही समर्थ योगी इस तरह प्रकट होते हैं। छाया-पुरुष को देखते ही गिरिबाला की पूर्वजन्मों की स्मृतियाँ साकार हो उठीं। उसके मुँह से अनायास

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

निकल पड़ा—बाबा ! आप आ गये। यह कहकर उसने दण्डवत की और कहा—भगवन् ! दिन भर भोजन करते रहने की पशु-प्रवृत्ति पीछा नहीं छोड़ती। आप मुझे वह योगिक क्रिया बतायें जिससे मुझे फिर कभी खाने की आवश्यकता न पड़े।

छायाकृति योगी ने पातञ्जलि योग-सूत्र के तीसरे अध्याय के ३१वें सूत्र का स्मरण कराते हुए कहा—

कण्ठ कूपे क्षुत् पिपासा निवृत्तिः।

—बालिके पूर्वजन्म में सिखाया हुआ यह पाठ—'कण्ठ कूप से संयम करने से भूख-प्यास की निवृत्ति हो जाती है', भूल गई क्या ?

गिरिबाला ने अपनी अँगुलियों से सिर खुजलाया मानो उसे पूर्वजन्म की कोई साधना याद आ रही हो। तत्पश्चात प्रकाश-पुरुष ने प्रकाश-घेरे को बढ़ाया और गिरिबाला को उसी घेरे में ले लिया।

यह सम्पूर्ण घटना श्री स्वामी योगानन्द को बताते हुए गिरिबाला ने आगे कहा—"इसके बाद बाबा ने मुझे प्रकाश के घेरे में दीक्षा दी और वह योगिक क्रिया बताई जिसके द्वारा मैं आकाश से ही भोजन ग्रहण कर लेती हूँ। प्रकाश का वह घेरा लक्ष्मण-रेखा के समान था, उसे कोई नहीं और लाँघ सकता था—हम बाहर के सभी दृश्य देख सकते थे किन्तु हमें कोई भी नहीं देख सकता था। इस तरह मेरे जीवन का एक अध्याय समाप्त हुआ और दूसरे अध्याय का श्रीगणेश, जो ५६ वर्ष बीत जाने पर भी लोगों के लिये विस्मय का विषय बना हुआ है।"

गिरिबाला दीक्षित होकर लौटी। शाम तक कुछ भी नहीं खाया। पर घर वालों ने समझा यों ही रूठ गई है, इसीलिये न खा रही होगी। किन्तु दूसरा दिन बीता, तीसरा दिन आया और चला गया। सप्ताह बीते, पखवारे आये और चले गये। कितनी ही पूर्णमासियाँ गुजर गई, वर्ष के वर्ष समाप्त होते गये। अन्न तो दूर गिरिबाला ने कभी एक गिलास पानी भी नहीं पिया। लोग ताक-ताक कर रह गये पर कहीं से कभी भी किसी ने यह नहीं पाया कि गिरिबाला के मुँह में भूल से भी अन्न का एक दाना चला गया हो, जबकि शारीरिक विकास और स्वास्थ्य में राई-रत्ती भर भी अन्तर नहीं था।

समय बीतने के साथ यह खबर भी सारे बंगाल, भारतवर्ष और विदेशों तक में फैलने लगी। बर्दवान के तत्कालीन राजा ने गिरिबाला को राज-दरबार में उपस्थित कराया और परीक्षण के तौर पर तीन महीने तक एक कोठरी में बन्द कर दिया और बाहर से सशस्त्र पहरा लगा दिया। तीन महीने बाद जब उसे निकाला गया और डॉक्टरों से जाँच कराई गई तो डॉक्टरों ने बताया कि स्वास्थ्य, हृदय और नाड़ियों की गति, रक्त-दबाव आदि सब कुछ वैसा ही है जैसे तीन महीने पूर्व था। स्वास्थ्य में कोई गड़बड़ी या निर्बलता नहीं है। सारे उपस्थित लोग चकित थे कि यह सब क्या है ?

सन् १९३३ में मेमफिश में चिकित्सकों की एक बड़ी सभा हुई। उसमें क्लेवलैंड के वैज्ञानिक डॉ० जार्ज डब्ल्यू० कायल ने अपना शोध निबन्ध प्रस्तुत किया, जो इस विषय में था। डॉ० क्रायल ने बताया कि हम जो कुछ खाते हैं वह सब प्रकाश-तरंगों का स्थूल रूप है। हमारा भोजन एक प्रकाश का शक्ति-पुंज है। यदि हम उसे सीधे ग्रहण करने की कोई पद्धति जान सकें तो पेड़-पौधों की तरह हम भी आकाश से सीधे पोषण तत्व प्राप्त कर सकते हैं, अन्न लेना कोई आवश्यक नहीं है।

अपने कथन का वैज्ञानिक विश्लेषण प्रस्तुत करते हुए उन्होंने बताया—"आकाश में प्रकाश विकीर्ण होता है। उससे शरीर में स्थित विद्युत् तरंगों के लिये विद्युत् प्राप्त होती है। नाड़ी संस्थान (नर्वस सिस्टम) को सूर्य की किरणों से भोजन मिलता है। अणु सौर-मण्डल ही है। ये अणु सूर्य-आभा (सोलर रेडियेन्स) से पूर्ण रहते हैं। इनके अन्दर शक्ति वर्तुलाकार (लाइक क्वाइल्ड स्प्रिङ्ग) रूप में स्थित रहती है। यही अगणित अणु हमारे भोजन के रूप में शरीर में प्रवेश करते हैं और प्रोटोप्लाज्म (वह तत्व जिससे शरीर का निर्माण होता है) में परिवर्तित हो जाते हैं। इससे शरीर में स्थित विद्युत् तरंगों को रासायनिक ढंग से शक्ति प्राप्त होती है। शरीर ऐसे ही अणुओं से बना है, यही अणु माँसपेशियों, मस्तिष्क, ज्ञानेन्द्रियों आदि सभी के ऊतक (टिसूज—कई कोष मिलकर शरीर का एक अंग बनाते हैं, उन्हें टिसूज कहते हैं) बनाते हैं और इस तरह सम्पूर्ण शरीर शक्ति तरंगों का खेल है। हम चाहे तो आवश्यक शक्ति सीधे आकाश से खींच सकते हैं। पर अभी तक उस विधि की खोज नहीं कर सके।"

जब डॉ० क्रायल का यह बयान योरोप में प्रसारित हुआ, उस समय परमहंस योगानन्द अमरीका में थे। उन्होंने गिरिबाला के सम्बन्ध में कभी सुना था कि वह कभी भोजन नहीं करती। उसका पता और फोटो भी उनके पास था। उनकी जिज्ञासा इस तथ्य को जानने के लिए तीव्र हो उठी अतएव वे अपने अमेरिकन सेक्रेटरी मिस्टर राइट के साथ भारत आये और गिरिबाला के गाँव तक पहुँचे। उन्होंने गिरिबाला से प्रश्न किया—माँ ! आप अपने मुँह से बताइये, क्या आप भोजन नहीं करतीं ?

गिरिबाला ने उत्तर दिया—"यह बिल्कुल सत्य है।"

"क्या आपको भोजन की इच्छा होती है ?" योगानन्द ने दूसरा प्रश्न किया।

"नहीं" गिरिबाला ने उत्तर दिया—"इच्छा होती तो खाना पड़ता।"

"तब फिर आप अपने शरीर और स्वास्थ्य के लिये पोषक तत्व कहाँ से पाती हैं ?" उन्होंने अगला प्रश्न किया।

"आकाश और सूर्य से जिस प्रकार पेड़-पौधे आवश्यक पोषण प्राप्त करते हैं, उसी प्रकार मेरे गुरु ने मुझे प्राणायाम की एक ऐसी विधि बताई है, जिससे हम आकाश से सीधे तत्व प्राप्त कर लेते हैं।"—गिरिबाला ने विस्तार से बताया।

स्वामीजी ने पूछा—"आप यह विधि हमें और दूसरों को क्यों नहीं बताती, आप अकेले ही ऐसा क्यों करती हैं ?

गिरिबाला ने उत्तर दिया—"मनुष्य कैसा ही समर्थ हो, वह ईश्वर की इच्छा के बाहर नहीं जा सकता। ईश्वर इच्छा-शक्ति

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

की रक्षा करता है, इसलिए ऐसी क्रियायें गुप्त रखनी पड़ती हैं। हमें तो यह प्रदर्शन इसलिये करना पड़ रहा है, ताकि लोग अनुभव करें कि मनुष्य शरीर नहीं आत्मा है।" इस तरह की अनेक वैज्ञानिक प्रणालियाँ हमारे शास्त्रों में हैं, जिन्हें आज के बड़े-बड़े वैज्ञानिक भी नहीं जानते, पर अपना वह तत्व-दर्शन आज अपनों से ही उपेक्षित है—यह सोचते हुए योगानन्द वहाँ से वापस लौट आये। गिरिबाला ७० वर्ष तक बिना कुछ खाये जीती रहीं, उनका निधन सन् १९६२ में हुआ। इसी तरह की कुछ न खाने वाली एक अँग्रेज महिला 'थेरसे न्यूमैन' भी हुई हैं।

३०० वर्ष आयु के श्री तैलंग स्वामी

वाराणसी की गलियों में एक दिगम्बर योगी घूमता रहता है गृहस्थ लोग उसके नग्न वेश पर आपत्ति करते हैं फिर भी पुलिस उसे पकड़ती नहीं वाराणसी पुलिस की इस तरह की तीव्र आलोचनायें हो रही थीं आखिर वारंट निकाल कर उस नंगे घूमने वाले साधु को जेल में बंद करने का आदेश दिया गया।

पुलिस के आठ-जवानों ने पता लगाया, मालूम हुआ वह योगी इस समय मणिकर्णिका घाट पर बैठा हुआ है। जेष्ठ की चिलचिलाती दोपहरी जब कि घर से बाहर निकलना भी कठिन होता है एक योगी को मणिकर्णिका घाट के एक जलते तवे की भाँति गर्म पत्थर पर बैठे देख पुलिस पहले तो सकपकायी पर आखिर पकड़ना तो था ही वे आगे बढ़े। योगी पुलिस वालों को देख कर ऐसे मुस्करा रहा था मानो वह उनकी सारी चाल समझ रहा हो। साथ ही वह कुछ इस प्रकार निश्चिन्त बैठे हुए थे मानो वह वाराणसी के ब्रह्मा हों किसी से भी उन्हें भय न हो। मामूली कानूनी अधिकार पाकर पुलिस का दरोगा जब किसी से नहीं डरता तो अनेक सिद्धियों सामर्थ्यों का स्वामी योगी भला किसी से भय क्यों खाने लगा तो भी उन्हें बालकों जैसी क्रीड़ा का आनन्द लेने का मन तो करता ही है यों कहिये आनन्द की प्राप्ति जीवन का लक्ष है बाल सुलभ सरलता और क्रीड़ा द्वारा ऐसे ही आनन्द के लिए 'श्री तैलंग स्वामी' नामक यह योगी भी इच्छुक रहे हों तो क्या आश्चर्य ?

पुलिस मुश्किल से दो गज पर थी कि तैलंग स्वामी उठ खड़े हुए और वहाँ से गंगाजी की तरफ भागे। पुलिस वालों ने पीछा किया। स्वामी जी गंगा जी में कूद गये पुलिस के जवान बेचारे वर्दी भीगने के डर से कूदे तो नहीं हाँ चारों तरफ से घेरा डाल दिया कभी तो निकलेगा साधु का बच्चा—लेकिन एक घंटा, दो घंटा, तीन घंटा—सूर्य भगवान् सिर के ऊपर थे अब अस्ताचल गामी हो चले किन्तु स्वामी जी प्रगट न हुए कहते हैं उन्होंने जल के अन्दर ही समाधी ले ली। उसके लिए उन्होंने एक बहुत बड़ी शिला पानी के अन्दर फेंक रखी थी और यह जनश्रुति थी कि तैलंग स्वामी पानी में डुबकी लगा जाने के बाद उसी शिला पर घंटों समाधि लगाये जल के भीतर ही बैठे रहते हैं।

उनको किसी ने कुछ खाते नहीं देखा तथापि उनकी आयु ३०० वर्ष की बताई जाती है। वाराणसी में घर-घर तैलंग स्वामी की अद्भुत कहानियाँ आज भी प्रचलित हैं। निराहार रहने पर भी प्रतिवर्ष उनका वजन एक पौण्ड बढ़ जाता था। ३०० पौण्ड वजन था उनका जिस समय पुलिस उन्हें पकड़ने गई इतना स्थूल शरीर होने पर भी पुलिस उन्हें पकड़ न सकी। आखिर जब रात हो चली तो सिपाहियों ने सोचा डूब गया शायद इसलिये वे दूसरा प्रबन्ध करने थाने लौट गये इस बीच अन्य लोग बराबर खड़े तमाशा देखते रहे पर तैलंग स्वामी पानी के बाहर नहीं निकले।

प्रातः काल पुलिस फिर वहाँ पहुँची। स्वामी जी इस तरह मुस्करा रहे थे मानो उनके जीवन में सिवाय मुस्कान और आनन्द के और कुछ हो ही नहीं, शक्ति तो आखिर शक्ति ही है संसार में उसी का ही तो आनन्द है। योग द्वारा सम्पादित शक्तियों का स्वामी जी रसास्वादन कर रहे हों तो आश्चर्य क्या। इस बार भी जैसे ही पुलिस पास पहुँची तैलंग स्वामी फिर गंगा जी की ओर भागे और उस पार जा रही नाव के मल्लाह को पुकारते हुए पानी में कूद पड़े। लोगों को आशा थी कि स्वामी जी कल की तरह आज भी पानी के अन्दर छुपेंगे और जिस प्रकार मेंढक मिट्टी के अन्दर और उत्तराखण्ड के रीछ बर्फ के नीचे दबे बिना श्वाँस के वर्षों पड़े रहते हैं उसी प्रकार स्वामी जी भी पानी के अन्दर समाधि ले लेंगे किन्तु यह क्या जिस प्रकार से वायुयान दोनों पंखों की मदद से इतने सारे भार को हवा में संतुलित कर तैरता चला जाता है उसी प्रकार तैलंग स्वामी पानी में इस प्रकार दौड़ते हुए भागे मानो वह जमीन पर दौड़ रहे हों। नाव उस पार नहीं पहुँच पाई स्वामी जी पहुँच गये। पुलिस खड़ी देखती रह गई।

स्वामी जी ने सोचा होगा कि पुलिस बहुत परेशान हो गई तब तो वह एक दिन पुनः मणिकर्णिका घाट पर प्रकट हुए और अपने आप को पुलिस के हवाले कर दिया। हनुमान जी ने मेघनाथ के सारे अस्त्र काट डाले किन्तु जब उसने ब्रह्म-पाश फेंका तो वे प्रसन्नतापूर्वक बँध गये। लगता है श्री तैलंग स्वामी भी सामाजिक नियमोपनियमों की अवहेलना नहीं करना चाहते थे पर यह प्रदर्शित करना आवश्यक भी था कि योग और अध्यात्म की शक्ति भौतिक शक्तियों से बहुत बढ़-चढ़ कर है तभी तो वे दो बार पुलिस को छकाने के बाद इस प्रकार चुपचाप ऐसे बैठे रहे मानो उनको कुछ पता ही न हो। हथकड़ी डालकर पुलिस तैलंग स्वामी को पकड़ ले गई और हवालात में बंद कर दिया। इंस्पेक्टर रात गहरी नींद सोया क्योंकि उसे स्वामी जी की गिरफ्तारी मार्के की सफलता लग रही थी।

प्रस्तुत घटना 'मिस्ट्रीज आफ इंडिया एण्ड इट्स योगीज' नामक लुई-द-कार्टा लिखित पुस्तक से उद्धृत की जा रही है। कार्टा नामक फ्रान्सीसी पर्यटक ने भारतवर्ष में ऐसी विलक्षण बातों की सारे देश में घूम-घूम कर खोज की। प्रसिद्ध योगी स्वामी योगानन्द ने भी उक्त घटना का वर्णन अपनी पुस्तक 'आटोबायोग्राफी ऑफ योगी' के ३१वें परिच्छेद में किया है।

प्रातः काल ठंडी हवा बह रही थी थानेदार जी हवालात की तरफ आगे बढ़े तो शरीर पसीने में डूब गया—जब उन्होंने योगी तैलंग को हवालात की छत पर मजे से टहलते और वायु सेवन करते देखा। हवालात के दरवाजे बंद थे, ताला भी लग

रहा था। फिर यह योगी छत पर कैसे पहुँच गया ? अवश्य ही संतरी की बदमाशी होगी। उन बेचारे संतरियों ने बहुतेरा कहा कि हवालात का दरवाजा एक भी क्षण को खुला नहीं फिर पता नहीं साधु महोदय छत पर कैसे पहुँच गये। वे इसे योग की महिमा मान रहे थे पर इन्सपेक्टर उसके लिए बिल्कुल तैयार नहीं था आखिर योगी को फिर हवालात में बंद किया गया। रात दरवाजे में लगे ताले को सील किया गया चारों तरफ पहरा लगा और ताली लेकर थानेदार थाने में ही सोया। सबेरे बड़ी जल्दी कैदी की हालत देखने उठे तो फिर शरीर में काटो खून नहीं। सील बंद ताला बाकायदा बंद। सन्तरी पहरा भी दे रहे उस पर भी तैलंग स्वामी छत पर बैठे प्राणायाम का अभ्यास कर रहे। थानेदार की आँखें खुली की खुली रह गईं उसने तैलंग स्वामी को आखिर छोड़ ही दिया।

श्री तैलंग स्वामी के बारे में कहा जाता है कि जिस प्रकार जलते हुए तेज कड़ाहे में खौल रहे तेल में पानी के छींटे डाले जायें तो तेल की ऊष्मा उसे भाप बनाकर पलक मारते दूर उड़ा देती है। उसी प्रकार विष खाते समय एक बार आँखें जैसी झपकतीं पर न जाने कैसी आग उनके भीतर थी कि विष का प्रभाव कुछ ही देर में पता नहीं चलता कहाँ चला गया। एक बार आदमी को शैतानी सूझी चूने के पानी को ले जाकर स्वामी जी के सम्मुख रख दिया और कहा महात्मन ! आपके लिए बढ़िया दूध लाया हूँ स्वामी जी उठाकर पी गये उस चूने के पानी को, और अभी कुछ ही क्षण हुए थे कि कराहने और चिल्लाने लगे वह आदमी जिसने चूने का पानी पिलाया था। स्वामी जी के पैरों में गिरा, क्षमायाचना की तब कहीं पेट की जलन समाप्त हुई। उन्होंने कहा भाई मेरा कसूर नहीं यह तो न्यूटन का नियम है कि हर क्रिया की एक प्रतिक्रिया अवश्य है। उसकी दिशा उलटी और ठीक क्रिया की ताकत जितनी होती है।

मनुष्य शरीर एक यंत्र, प्राण उसकी ऊर्जा, ईंधन अथवा शक्ति, मन इंजन और ड्राइवर चाहे जिस प्रकार के अद्‌भुत कार्य लिए जा सकते हैं इस शरीर से भौतिक विज्ञान से भी अद्‌भुत पर यह सब शक्तियाँ और सामर्थ्य योग विद्या, योग साधना में सन्निहित हैं जिन्हें अधिकारी पात्र ही पाते और आनन्दलाभ प्राप्त करते हैं।

साइंस को नकारते हैं, योग-सिद्धियों के ये प्रमाण

विज्ञान के इस युग में महात्माओं का आकाश-गमन एवं सिद्ध संतों का आसन-उत्थान व्यापार कुछ विचित्र—विलक्षण-सा लगता और कपोल-कल्पित जैसा प्रतीत होता है। फिर भी यह सत्य है कि ऐसा योग-विज्ञान में एकदम असम्भव भी नहीं, किन्तु भौतिक विज्ञान के गले यह तथ्य अब तक नहीं उतर सका कि आखिर यह सम्भव होता किस भाँति है। उल्लेखनीय है कि भौतिक विज्ञान अपने पदार्थवादी सिद्धान्तों पर आधारित है और उन्हीं सब को सत्य स्वीकारता है, जो इन सिद्धान्तों की कसौटी में खरे सिद्ध होते हैं। आकाश-गमन के सम्बन्ध में उसका एक ही असमंजस और तर्क है कि कोई भी वस्तु बिना किसी बल के सहारे गुरुत्वाकर्षण शक्ति के विरुद्ध ऊपर कैसे उठ सकती है ?

पदार्थ विज्ञान की दृष्टि से विचार किया जाय, तो उक्त दलील में काफी दमखम 'नजर' आता है। भू-उपग्रह और हवाई जहाज ऊपर उठते और उड़ते सिर्फ इसलिए दृष्टिगोचर होते हैं कि उनके साथ पदार्थपरक एक विशेष सामर्थ्य जुड़ी रहती और हरक्षण काम करती रहती हैं। जब कभी यह क्षमता चुकती और खड़खड़ाती है, तो भयंकर दुर्घटनाएँ घटती नजर आती हैं और पल भर के भीतर विशाल कलेवर वाले यान और उपग्रह धूल में मिलते दिखाई पड़ते हैं। विज्ञान का यह उपरोक्त मत भी तर्क सम्मत जान पड़ता है। तो क्या योग विज्ञान के उपरोक्त दावे को झुठला दिया जाय और यह मान लिया जाय कि यह सब भ्रम-जंजाल में डालने वाले रंगीन सपने हैं ? नहीं, इस सीमा तक शंका करने की आवश्यकता नहीं है। विज्ञान द्वारा ही इसे भी साबित किया जा सकता हैं कि ऐसा संभव है। हम प्रतिदिन आकाश में उड़ते हुए पक्षियों को देखते हैं। वे डैने हिलाते चलते हैं और बड़ी आसानी से नभ में विचरते दृश्यमान होते हैं। उन्हें जिस रफ्तार से जिधर जाना होता है, उसी गति से उनके पर भी फड़कते रहते हैं। इस प्रक्रिया में वे एक प्रकार से गुरुत्वाकर्षण शक्ति को निष्फल-निष्क्रिय स्तर का बना देते हैं, जिससे उनके मार्ग में इस बल का कोई के गतिरोध उत्पन्न नहीं होता। जब नभचरों जैसे सर्वथा निरीह जीवों के लिए यह सब सम्भव है, तो इस सृष्टि बुद्धिमान-सामर्थ्यवान प्राणी-मनुष्य के लिए ऐसा क्योंकर असम्भव होना चाहिए ? उसके विशाल शक्तिभण्डार में सन्निहित अद्‌भुत शक्तियों के लिए ऐसा क्यों कर अशक्य होना चाहिए ? यह सरल भी है और शक्य भी—विज्ञान के एक सिद्धान्त द्वारा इसे भली-भाँति समझा जा सकता है।

इन दिनों विशालकाय गुब्बारों द्वारा आकाश में सैर करने का आम प्रचलन चल पड़ा है। दिन-दिन यह इतना लोकप्रिय होता जा रहा है कि आये दिन इसकी प्रतिस्पर्धाएँ होती रहती हैं और हर एक, दूसरे द्वारा स्थापित रिकार्ड को प्रायः तोड़ने का प्रयास करता है। इसके लिए तेज रफ्तार प्राप्त करने के वह निन नवीन तकनीक और तरीके खोजता और अपनाता रहता है, पर इसका जो सामान्य सिद्धान्त है, वह यह है कि गुब्बारे के अन्दर की हवा को गर्म कर हलका बना दिया जाय। भीतर की गर्मी जितनी और जिस अनुपात में बढ़ती जाती है, उसी अनुपात में हवा हलकी होने और ऊपर उठने लगती है। इस क्रम में एक ऐसा समय आता है, जब जल्द ही गुब्बारा जमीन छोड़ देता है। इसके कुछ क्षण पश्चात उससे लटकता आदमी और यंत्र भी हवा में तैरने लगते हैं। हवाई सफर के उपरान्त जब उसे नीचे उतरना होता है, तो उपकरण से निकलती आग की लपटों को धीरे-धीरे घटाता जाता है। गर्मी कम होती है, तो गुब्बारे की हवा का हलकापन भी कम होने लगता है और अन्ततः व्यक्ति सुरक्षित धरती पर आ जाता है। गुब्बारे से उड़ने और उतरने का यही मोटा सिद्धान्त है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org

योग-विज्ञान में वर्णित आकाश-गमन पर फिर अकस्मात् अविश्वास क्यों होने लगता है ? इस प्रश्न पर सूक्ष्मता से विचार करने पर एक ही बात उजागर होती है—शरीर की स्थूलता और उसका वजन। हर पदार्थ और प्राणी पर पृथ्वी का आकर्षण बल कार्य करता है—यह विज्ञान का अकाट्य नियम है, पर पृथ्वी की इस प्रकृति पर विचार करते समय भौतिक विज्ञान गुब्बारे वाले सिद्धान्त को प्रायः भुला देता है, इसी से इस प्रकार की उलझन पैदा होती और सच्चाई संशय में पड़ती दिखाई देती हैं। उक्त सिद्धान्त के अनुसार यदि शरीर को इतना हलका बना लिया जाय कि वह बल, गुरुत्व बल को निरस्त कर उस पर हावी हो जाय, तो शरीर के लिए ऊपर उठना और हवा में उड़ना सम्भव है। योग क्रिया द्वारा यही किया जाता है। इसकी अष्ट सिद्धियों 'लघिमा' के दौरान इसी क्रिया को सम्पन्न और सिद्ध करने का विधान है। जो उक्त विद्या में प्रवीण और पारंगत हो जाते हैं, उन योगियों के लिए आसन-उत्थान और आकाश-गमन जैसी बातें अत्यन्त सरल और सहज जान पड़ती हैं।

समय-समय पर प्रकाश में आने वाले ऐसे प्रसंग भी इसी एक तथ्य की पुष्टि करते हैं कि योग विज्ञान में आने वाले ऐसे उल्लेख सर्वथा काल्पनिक न होकर वास्तविकता के धरातल पर आधारित हैं। ऐसे ही एक योगी की चर्चा "आटोबायोग्राफी ऑफ ए योगी" नामक पुस्तक में लेखक योगानन्द ने की है। उस योगी का उल्लेख करते हुए लेखक ने लिखा है कि अर्धरात्रि के समय जब वह अपनी पत्नी के सो जाने के पश्चात् ध्यान करता, तो वह अपने आसन से लगभग चार फुट ऊँचा उठ जाता था और उसको घेरे अनेक देव-देवियाँ होते थे। "लिविंग विद दि हिमालयन मास्टर्स" नामक स्वामी राम रचित ग्रन्थ में भी ऐसे अनेक लांगोम्पा लामाओं के उद्धरण मौजूद हैं, जो आकाश-गमन में सिद्धहस्त हैं। इनमें से कई लांगोम्पा अपने दोनों पैरों को लोहे की मजबूत जंजीर से कसे रहते और तिब्बत की पहाड़ियों में लम्बी छलागें लगाया करते। यह 'लांगोम' (आकाश-गमन) का प्रथम चरण होता। अभ्यासरत रह कर जो इसमें कुशलता प्राप्त कर लेते, वे अतितीव्र गति से आकाश-गमन करने में सक्षम हो जाते। फिर उनके लिए लम्बी दूरी थोड़े समय में तय कर लेना कोई बहुत कठिन नहीं रह जाता। ऐसे ही तीन लांगोम्पाओं का वर्णन अलक्जेण्डर नील ने अपनी रचना "दि मीस्टिक्स एण्ड मेजिशियन्स" के छठवें अध्ययन में किया है। भारतीय योगियों में इस प्रकार की अलौकिक शक्ति लोकनाथ ब्रह्मचारी, काठिया बाबा एवं परमहंस विशुद्धानन्द को प्राप्त थी। इनके अतिरिक्त दत्तात्रेय और भगवान बुद्ध भी इस विद्या में निपुण थे, ऐसा जैन बौद्ध ग्रन्थों में उल्लेख मिलता है।

श्री दत्तात्रेय भगवान के सम्बंध में प्रचलित है कि वे एक अहोरात्र में भारत के अन्यान्य तीर्थों में वहाँ के साधन-भजन के समय उपस्थित रह कर लोगों को आशीर्वाद दिया करते थे। भगवान तथागत के आकाश-गमन की चर्चा पाली-पुस्तकों में यत्र-तत्र देखी जा सकती हैं। एक कथा के अनुसार एक बार श्रावस्ती नगरी से अंतरिक्ष-गमन करते समय अपने एक प्रिय स्थविर 'धनिय' की कुटिया के ऊपर आकाश में कुछ क्षण रुक कर उन्होंने आशीष दिया था और फिर वे अपने गन्तव्य की ओर चल पड़े थे। आदि—शंकराचार्य और नाथ सम्प्रदाय के गुरु गोरखनाथ के बारे में प्रचलित है कि वे इस कला में अत्यन्त दक्ष थे। योगवाशिष्ठ, रामायण आदि ग्रन्थों में भी इस विद्या का उल्लेख मिलता है। उनमें वर्णित शिखिध्वज, चूडाला, वीताहव्य आदि ब्रह्मयज्ञ इस योग-क्रिया में कुशल थे। इस्लाम धर्म के औलिया मियाँ मीर के संदर्भ में कहा जाता है कि वे यदा-कदा लाहौर से हिजाद आकाश मार्ग से जाते और कुछ घंटे वहाँ बिता कर पुनः वापस लाहौर उसी रात्रि को लौट आते थे।

विदेशों में भी ऐसे अनेक आध्यात्मिक नर-नारी हुए हैं, जिनमें आसन-उत्थान की अपूर्व क्षमता थी। मिस्र की सेण्ट मेरी नामक सन्त महिला के बारे में कहा जाता है कि वह जब संतत्व की भाव-भूमिका में आयी तो मिस्र छोड़ कर फिलिस्तीन की मरुभूमि में एकान्तवास करने लगी। प्रार्थना करते वक्त उसका शरीर जमीन से, करीब पाँच फुट ऊपर उठ जाता था। प्रख्यात सन्त ऑगस्टाइन ने अपनी कृति 'जीवनस्मृति' में एक ऐसी साधिका का उल्लेख किया है, जिसकी सम्पूर्ण देह प्रार्थना के समय लगभग तीन फुट ऊँची उठ जाती थी। विशप सेण्ट पहरेदारों के सोने के पश्चात जब गिरजाघर की टेबुल पर ध्यान मग्न होते तो यदा-कदा वे शून्य में स्थिर दिखाई पड़ते। सन्त फ्रान्सिस के बारे में भी ऐसी ही जनश्रुति है कि शाम के समय अपने बन्द कक्ष में जब वे ध्यानस्थ होते तो आधार-स्थल से कई हाथ ऊपर उठ जाते। स्पेन की 'मीरा' कही जाने वाली सन्त टेरेसा रात्रि के समय जब ईश-चिन्तन में लीन होती, तो अपने आसन से प्रायः तीन फुट उत्थित हो जातीं। सोलहवीं सदी की इस महिला संत के सम्बन्ध में प्रसिद्ध है कि एक बार स्थानीय विशप आलमेरेस डे मोनडोसा इनसे मिलने आये, तो यह देख कर वे चकित रह गये की साध्वी खिड़की की ऊँचाई जितने अधर में बैठी हुई हैं।

इससे कुछ मिलता-जुलता जिक्र डॉ० गोपीनाथ कविराज ने अपनी पुस्तक "भारतीय संस्कृति और साधना" में किया है। इसमें वे अपने एक गुरु भाई की चर्चा करते हुए लिखते हैं कि कई वर्षों तक साधना करने के बाद उनकी स्थिति इतनी उच्च हो गई थी कि आसन पर बैठे-बैठे ही वे एक सर्वथा पृथक् दिव्य-लोक में पहुँच जाते। ज्ञातव्य है कि इस मध्य वे पूर्णतः चैतन्य रहते। उन्हें आसन पर बैठे होने की स्पष्ट अनुभूति होती। आसन के स्पर्श की प्रतीति भी सदा बनी रहती, किन्तु फिर भी न तो वह उनका अपना कमरा होता, न भौतिक जगत। आँखों से जो कुछ दिखाई पड़ता, वह इतना दिव्य और अलौकिक होता, कि उसकी कल्पना पंचभौतिक जगत में की ही नहीं जा सकती। कई बार वे वहाँ पूर्ण चेतना की स्थिति में चलते-फिरते भी और उसकी अलौकिकता के बारे में साथ-साथ सोचते भी। एक बार उन्होंने वहाँ की अद्भुत् दृश्यावली को लिपिबद्ध करने की ठानी, अस्तु उस दिन कागज-कलम साथ लेकर आसन पर बैठे : थोड़ी ही देर में उनका उस दिव्य राज्य में पदार्पण हो गया। उन्होंने कलम उठायी और कागज पर वहाँ

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

का ब्यौरा ज्योंहि लिखने को उद्यत हुए कि सामने से दृश्य एकाएक विलुप्त हो गया। उन्होंने अगल-बगल झाँका, तो स्वयं को पुनः अपने उपासना-कक्ष में पाया।

"गुरु-परम्परा-चरित" साधना ग्रन्थ में भी ऐसी कुछ योगियों का जिक्र किया गया है, जिनमें शून्य में उठने और भ्रमण करने की सामर्थ्य थी। इनमें भास्कर राय, राम ठाकुर, समुज्ज्वल आचार्य, शिशिर प्रभृति संत विशेष उल्लेखनीय हैं।

बौद्ध आचार्यों ने शून्य-भ्रमण की सिद्धि को तीन प्रमुख वर्गों में विभाजित किया है। प्रथम गति का नाम उनने 'वाहन-गति' रखा है। यह नभचरों के सदृश्य की गति होती है। इसकी दूसरी श्रेणी 'अधिमोक्ष गति' है। इसमें शरीर को गतिहीन रख कर दूरस्थ वस्तु को संकल्प-बल के माध्यम से सामने प्रकट कर लिया जाता है। इसका तीसरा विभाग 'मनोवेग गति' के नाम से जाना जाता है। जैसा कि नाम से प्रकट है, यह गति अत्यन्त तीव्र होती है। सिद्ध महात्मा मन के समान इस वेगवान गति के सहारे ही अपनी स्थूल सत्ता क्षण मात्र में कहीं-से-कहीं प्रकट कर लेते हैं। इसलिए कहीं-कहीं इस गति को 'मनोजवित्व' भी कहा गया है।

इतना सब जान-समझ लेने के उपरान्त विज्ञान के लिए ऊहापोह करने जैसी कोई बात शेष रह नहीं जाती। हाँ, एक प्रश्न इसकी प्रक्रिया संबंधी फिर भी बचा रह जाता है। इस बारे में इतना ही कहा जा सकता है कि पदार्थ विज्ञान को योग के दुरूह और रहस्यमय प्रक्रियाओं को समझने के फेर में न पड़ कर इसे विशुद्धतः योग के विद्यार्थियों के लिए छोड़ देना चाहिए और स्वयं को पदार्थ के गहनतम अनुसंधान में ही लगाये रहना चाहिए. क्योंकि दोनों ही विज्ञान की दो पृथक् शाखाएँ हैं। योगविद्या चेतना से सम्बन्धित है, तो स्कूल-कॉलेजों में पढ़ाई जाने वाली 'साइन्स' पदार्थपरक है। चेतना सूक्ष्म है, तो पदार्थ स्थूल। ऐसी स्थिति में स्थूल द्वारा सूक्ष्म की पुष्टि व सिद्धि कभी सम्भव हो ही नहीं सकती। अस्तु पदार्थ विज्ञान को यह हठवादिता छोड़ कर चेतना विज्ञान से समन्वय व संगति बिठा कर चलना चाहिए। इसी में इन दोनों विधाओं का स्वयं का उत्कर्ष और संसार का कल्याण है। इसे जितनी जल्दी समझा जा सके, उतना ही अच्छा है।

आकाशगमन और जलगमन की सिद्धियाँ

अगस्त, १९६२ की अन्तरिक्ष उड़ान में वोस्तोक-३ यान की यात्रा करने वाले निकोलायेव ने अन्तरिक्ष की स्थिति का कुछ विवरण सुनाते हुए कहा था—अन्तरिक्ष में फर्श जमीन, दीवार आदि छू कर चलने की आवश्यकता अनुभव नहीं होती। खाली पोल में आदमी सहज की चल सकता है। यान की दीवार से अँगुली छू कर एक छोटा धक्का देना काफी है। इतने भर में चलने की गति उत्पन्न हो जायेगी। फिर मजे में चलते रहिए। हाथ और पैरों की सहायता से किसी भी दिशा में बढ़ा चला जा सकता है। चल ही नहीं वहाँ पानी की तरह तैर भी सकते हैं। तैराक पानी को हाथ पैरों का धक्का देकर अपनी गति बढ़ाता है। अन्तरिक्ष के शून्य में भी उसी तरह तैरा जा सकता है।

गुरुत्वाकर्षण की परिधि से बाहर जाकर स्थूल शरीर का अन्तरिक्ष की पोल में कितनी ही दूरी तक चलना, दौड़ना, तैरना सम्भव है। उसमें आरम्भ में एक छोटे झटके की और पीछे संकल्पशक्ति के आधार पर हाथ पैरों की थोड़ी हरकत करने भर की जरूरत पड़ेगी। इस स्थिति को प्राप्त कर लेना अब अधिक कष्ट साध्य नहीं रहा। सिद्धान्ततः तो वह स्वीकार ही कर लिया है और अन्तरिक्ष में तथा धरती पर भार हीनता की स्थिति में मनुष्य का आकाशगमन प्रत्यक्ष करके देख लिया गया है।

गुरुत्वाकर्षण से रहित कमरे पृथ्वी पर बनाये गये हैं। भार हीनता की स्थिति का अभ्यास कराने के लिए अन्तरिक्ष यात्रियों को उन्हीं कमरों में रख कर उस तरह की स्थिति का अनुभव कराया जाता। अस्तु अब यह भी आवश्यक नहीं रहा कि गुरुत्वाकर्षण की परिधि में ऊपर उठने के बाद ही आकाशगमन किया जा सके। पृथ्वी के किसी कमरे में विज्ञान ने उस तरह का वातावरण उत्पन्न करके यह सिद्ध कर दिया है कि गुरुत्वाकर्षण से रहित अन्तरिक्ष की स्थिति गुरुत्वाकर्षण क्षेत्र के भीतर भी पैदा की जा सकती है।

योग सिद्धियों में वर्णित आकाशगमन जैसी सिद्धियों की चर्चा को दन्तकथा नहीं मान लिया जाना चाहिए। मानव शरीर में भौतिक उपकरण में प्रयुक्त होने वाले सारे आधार बीज रूप में मौजूद हैं उन शक्ति बीजों को विकसित करके शरीर के कणों को इतना हलका बनाया जा सकता है जिन पर गुरुत्वाकर्षण का प्रभाव न पड़े और मनुष्य का आकाश में उड़ सकना सम्भव हो सके। प्रयोग की बात आगे की है। पर सिद्धान्त रूप में उसे अब असम्भव नहीं कहा जा सकता। मनोबल की प्रचंड क्षमता को, शारीरिक विद्युत का मस्तिष्कीय कम्प्यूटर का कायिक रेडियो सक्रियता का वैज्ञानिकों ने जो परिचय पाया है उससे वे आश्चर्यचकित रह गये हैं। सूक्ष्म क्षेत्र की परिधि भौतिक विज्ञान के क्षेत्र से बाहर है। षट्चक्र, तीन ग्रन्थियाँ, पंच कोश, दश प्राण, तीन शरीर, कुण्डलिनी विद्युत भंडार, सहस्रार सूर्य संस्थान आदि सूक्ष्म शरीर के शक्ति भण्डागारों का जब रहस्योद्घाटन होगा तो प्रतीत होगा कि भौतिक विज्ञान की पकड़ में आने वाली मानवीय काया की अद्भुत विशेषताओं की तुलना में अप्रत्यक्ष शरीर की सामर्थ्य असंख्य गुनी अधिक है। इस सामर्थ्य के बलबूते आकाशगमन की सिद्धि असम्भव नहीं ठहराई जा सकती।

जल पर इसी शरीर से बिना किसी जलयान के चल सकना योग साधना की सिद्धियों के अन्तर्गत आता है। पूर्वकाल में समुद्र पार करने के परिष्कृत साधन नहीं थे। लकड़ी के जहाज समुद्र यात्रा करते तो थे पर उनकी चाल धीमी होती थी। समुद्री तूफानों का खतरा भी रहता था। बहुत दूर की यात्रा तो जहाज करते भी नहीं थे। ऐसी स्थिति में योग माध्यम से उपलब्ध सिद्धियों का उपयोग दूर गमन के लिए किया जाता था। आकाशगमन की सिद्धि से सरल सिद्धि जलगमन की थी। नदी, सरोवरों को पार करने में उससे बहुत सहायता मिलती

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org

थी। समुद्र पर भी चला जा सकता था। उन दिनों अब की अपेक्षा वर्षा अधिक होती थी और जल जंगल एक हो जाते थे। बंगाल जैसे जल प्रधान देशों में तो जलप्लावन से मार्ग ही अवरुद्ध हो जाते थे। तब जलगमन की भारी उपयोगिता अनुभव की जाती थी। आज जल यात्रा के अनेक नये साधन निकल पड़े और पुराने परिष्कृत हो गये। यंत्रों ने उनकी क्षमता बढ़ा दी। ऐसी दशा में सस्ती जल यात्रा की तुलना में कष्ट साध्य जलगमन की सिद्धि उतनी उपयोगी नहीं रह गई। फिर भी मानव शरीर की अद्‌भुत क्षमताओं की एक कड़ी के रूप में उसकी गरिमा तो है ही उससे इतना पता चलता ही है कि नर-पशु स्थूल काया से जितना पुरुषार्थ करता दीखता है उसकी सीमा अन्तिम नहीं है। सूक्ष्म और कारण शरीर को विकसित किया जा सके तो संसार के समस्त प्राणियों की सम्मिलित विशेषताओं की तुलना में मानवी विशेषतायें कम नहीं अधिक ही सिद्ध होंगी। पक्षियों की तरह उड़ना, मछली की तरह तैरना उसके लिए असम्भव नहीं रह जायेगा।

पानी की सतह के ऊपर एक अदृश्य झिल्ली होती है। जिसे सतह की तनाव शक्ति—सरफेस टेन्शन भी कहते हैं। यह परत कई बार घनी भी होती है। उसके ऊपर कोई हलकी चीज इस तरह धीरे से तैराई जाय कि उस झिल्ली को आघात न लगे तो वह पानी पर तैरती रहेगी। हजामत बनाने का ब्लेड यदि होशियारी के साथ इस परत के ऊपर छोड़ दिया जाय तो वह तैरता रहेगा, डूबेगा नहीं।

मृतसागर—डैड सी—में क्षार आदि बहुत हैं, उसका पानी भारी है इसलिए उसमें कोई मनुष्य डूबना चाहे तो डूब नहीं सकेगा। कारण कि मनुष्य शरीर के कण उस पानी की तुलना में हलके हैं। हलकी चीज भारी द्रव में नहीं डूब सकती।

जल कणों से जो भी चीज हल्की होगी आसानी से तैरने लगेगी। लकड़ी हलकी होती है। हवा भरे गुब्बारे, रबड़ के ट्‌यूब हलके होते हैं और वे पानी पर तैरते हैं। शरीरगत कणों के भार में न्यूनता करना और उन्हें जल कण की तुलना में हलके बना लेना योग साधनाओं द्वारा सम्भव है। स्थूल शरीर में सूक्ष्म शरीर की सत्ता यदि प्रखर हो उठे तो उतना हलकापन देह में उत्पन्न किया जा सकता है कि वह जल पर बिना डूबे चल सके एवं आकाश में बिना गिरे उड़ सके। भौतिक विज्ञान की तरह जब आत्मिक विज्ञान की शोध होगी और उस क्षेत्र के विज्ञानी जब आत्मशक्ति उद्‌भव में साधनारत होंगे तो उन चमत्कारों को प्रत्यक्ष देखा जा सकेगा जो भूतकाल में प्रत्यक्ष प्रचलन के रूप में विद्यमान थे पर अब उन्हें केवल दन्त-कथा माना जाता है।

अभ्यास किया जाय तो हवा में उड़ा जा सकता है

सन्‌ १९०२ में बंगाल के एक साधु अगस्तिया ने हठयोग की एक प्रतिज्ञा की। प्रतिज्ञा यह थी कि वह लगातार १० वर्ष तक अपना बायाँ हाथ उठाये ही रहेगा कभी नीचे नहीं गिरायेगा।

और सचमुच ही वह लगातार १० वर्षों तक बिना हिलाये हाथ ऊँचा किये रहे। इस बीच एक चिड़िया ने समझा यह किसी पेड़ की टहनी है सो उसने बड़े मजे के साथ योगी के उठाये हुए हाथ की हथेली पर घोंसला बना लिया और उस पर अण्डे भी दे दिये। हाथ की हड्डियाँ मजबूत हो गई, मुड़ना बन्द हो गया और इस तरह हाथ बेकार हो गया किन्तु योगी का कहना था कि इसमें उसे कोई कष्ट नहीं हुआ। योग की ऐसी साधनाओं के पीछे कोई दर्शन नहीं है यदि कुछ है तो इतना ही कि तितीक्षा पूर्ण अभ्यास के द्वारा मनुष्य चाहे तो अपने शरीर की सामान्य क्रियाओं को असामान्य बना सकता है।

शरीर में एक नन्हीं-सी सुई चुभ जाती है तो बड़ा कष्ट होता है किन्तु सिंगापुर के एक भारतीय योगी ने जिसका उल्लेख एवन्डर बुक आफ स्ट्रेन्ज फैक्ट्स में भी है, अपने शरीर में नक्की ५० भाले आर-पार घुसेड़ लिये और इस अवस्था में भी वह सब से हँस-हँसकर बातचीत करता रहा लोगों ने कहा यदि आपको कष्ट नहीं हो रहा हो तो थोड़ा चलकर दिखाइये। इस पर योगी ने ३ मील चलकर भी दिखा दिया। उन्होंने बताया कि कष्ट दरअसल शरीर को होता है, आत्मा को नहीं। यदि मनुष्य अपने आपको आत्मा में स्थित कर लें तो जिन्हें सामान्य लोग यातनायें कहते हैं वह कष्ट भी साधारण खेल जैसे लगने लगते हैं।

इसका एक उदाहरण विन्ध्याचल के योगी गणेश गिरि ने प्रस्तुत किया। उन्होंने एक बार अपने होठों के आगे ठोड़ी वाले समतल मैदानी हिस्से में थोड़ी गीली मिट्टी रखकर उसमें सरसों बो दिये जब तक सरसों उगकर बड़े नहीं हो गये और उनकी जड़ों ने खाल चीर कर अपना स्थान मजबूत नहीं कर लिया तब तक वे धूप में चित्त लेटे रहे।

"साहिब अल्लाह शाह" नामक लाहौर का एक मुसलमान फकीर ६०० पौण्ड से भी अधिक वजन की मोटी लोहे की साँकलें पहने रहता था। वृद्ध हो जाने पर भी अपने अभ्यास के कारण इतना वजन भार नहीं बना। पंजाब में वह "साँकलवाला" औरजिंगलिंग के नाम से आज भी याद किया जाता है। उसकी मृत्यु के बाद साँकलों की तौल की गई तो वह ६७० पौण्ड निकलीं।

यह तो भारतवर्ष के हठयोगियों की बातें हैं अन्य देशों में भी अभ्यास द्वारा अर्जित ऐसी विचित्रतायें देखने को मिल जाती हैं जो इस बात की प्रतीक हैं कि मनुष्य कुछ विशेष परिस्थितियों में पैदा अवश्य किया गया है किन्तु यदि वह चाहे तो वह अपने आपको बिल्कुल बदल सकता है।

इन्का जाति के राजा अटाहुल्लापा ने अपने कानों में वजनदार छल्ले डालकर उन्हें १५ इंच तक बढ़ा लिया था। सारा शरीर सामान्य मनुष्य का होते हुए भी कान हाथी के से कान लगते थे।

सिख सम्राट सरदार रणजीतसिंह के दरबार में प्रसिद्ध भारतीय योगी सन्त हरदास ने जनरल वेन्टूरा के सम्मुख अपनी जीभ को निकाल कर माथे का वह हिस्सा जीभ से छूकर दिखा दिया जो दोनों भौंहों के बीच होता है। सन्त हरदास बता रहे

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

थे कि जीभ को मोड़कर गरदन के भीतर जहाँ चिड़ियाँ होती हैं उस छेद को बन्द कर लेने से योगी मस्तिष्क में अमृत का पान करता है ऐसा योगी अपनी मृत्यु को जीत लेता है अँगरेजों का कहना था कि जीभ द्वारा ऐसा हो ही नहीं सकता। इस पर सन्त हरदास ने अपनी जीभ को आगे निकाल दिखा दिया उन्होंने बताया कि कुछ औषधियों द्वारा जीभ को सूँत कर इस योग्य बनाया जाता है।

सरसजिंगा—अफ्रीका के हब्शियों में अपने ओंठ बढ़ाने की प्रथा है इसके लिये वे लकड़ी की तश्तरियाँ बनाकर उनसे ओठों को बाँध देते हैं ओंठ जितना बढ़ते जाते हैं बड़ी तश्तरियाँ बाँध दी जाती हैं और इस प्रकार कई स्त्रियाँ तो अपने ओठ १४-१५ इन्च अर्थात सवा फुट व्यास की ढक्कनदार तश्तरी की तरह बढ़ा लेती हैं।

फिजीद्वीप के निवासी एक त्योहार मनाते हैं उस दिन उन्हें आग पर चलना पड़ता है। इसे अभ्यास भी कहा जा सकता है और आत्मविश्वास की शक्ति भी, कि वे लोग दहकते आग के शोलों में घन्टों नाचते रहते हैं किन्तु कभी ऐसा कोई अवसर नहीं आता कि उनके पैर जल जाते हों।

आयरन ड्यूक आफ वेलिंग्टन कंसास राज्य अमेरिका के जान डब्लू हार्टन ने पेट में न जाने कहाँ की आग पैदा कर ली थी कि नाश्ते में ४० पौंड तरबूजा खा लेने के बाद भी सोडा की बोतलें टूटे शीशे, अण्डों के छिलके और केले के अनगिनत छिलके चबा जाते थे। एक बार एक इन्जीनियर द्वारा चुनौती दिये जाने पर उन्होंने भरपूर भोजन करने के बाद सीमेन्ट का पूरा कट्टा सीमेन्ट खा लिया और उसे इस स्वाद के साथ एक-एक चम्मच भक्षण किया जैसे छोटे बच्चे प्रेम पूर्वक शक्कर या मिठाई खाते हैं उन्होंने यह भी कहा में कुछ और अभ्यास करूँ तो इतनी ही मात्रा में विष तक खाकर दिखा सकता हूँ।

भारतीय योगी चाँगदेव की योग-गाथायें सारे भारतवासी जानते हैं एक-एक कर चौदह बार उन्होंने अपनी मृत्यु को वापस लौटाया। उनकी आयु १४०० वर्ष की हो गई थी। ईसामसीह के समय से लेकर १२वीं शताब्दी सन्त ज्ञानेश्वर के समय तक उनकी गाथाओं के उल्लेख मिलते हैं। वह शेर की सवारी किया करते थे और शेर को हाँकने के लिए जहरीले साँप की चाबुक लिये रहते थे। एक बार उनके हवा में स्थिर रहने को चुनौती दी गई तब महाराष्ट्र के एक गाँव में उन्होंने हजारों लोगों के सम्मुख भाषण देने का प्रस्ताव किया। एक-एक कर २४ चौकियाँ रखी गईं सबसे ऊपरी चौकी पर बैठकर उन्होंने प्रवचन प्रारम्भ किया। पीछे उनके पूर्व आदेशानुसार शिष्यों ने एक-एक सभी चौकियाँ हटा लीं। चाँगदेव वैसे ही हवा में स्थिर प्रवचन करते रहे। लोगों ने उनकी जयजयकार की तो वे बोले—भाइयो। इसमें मेरा कुछ बड़प्पन नहीं योग क्रियाओं के अभ्यास द्वारा मनुष्य चाहे तो पक्षियों की तरह हवा में उड़ सकता है सितारों की तरह हवा में अधर लटक कर संसार का दृश्य देखता रह सकता है।

योगी के लिये सब कुछ सम्भव है

महोमहापाध्याय पं० गोपीनाथ कविराज ने अपनी कृति में लिखा है कि बहुत दिनों पहले की बात है जिस दिन महापुरुष परमहंस विशुद्धानंद जी महाराज को पता लगा था, तब उनके सम्बन्ध में बहुत-सी अलौकिक शक्ति की बातें सुनी थीं। बातें इतनी असाधारण थीं कि उन पर सहसा कोई भी विश्वास नहीं कर सकता। अवश्य ही '**अचिन्त्य महिमानः खलु योगिनः**' इस शास्त्र वाक्य पर मैं विश्वास करता था और देश-विदेश के प्राचीन एवं नवीन युगों मे विभिन्न सम्प्रदायों के जिन विभूति सम्पन्न योगी और सिद्ध महात्माओं की कथाएँ ग्रन्थों में पढ़ता था, उनके जीवन में संघटित अनेकों अलौकिक घटनाओं पर भी मेरा विश्वास था। तथापि, आज भी हम लोगों के बीच में ऐसे कई योगी महात्मा विद्यमान हैं, यह बात प्रत्यक्षदर्शी के मुख से सुनकर भी ठीक-ठीक हृदयंगम नहीं कर पाता था। इसीलिये एक दिन सन्देह नाश तथा औत्सुक्य की निवृत्ति के लिये महापुरुष के दर्शनार्थ मैं गया।

उस समय सन्ध्या समीप प्राय थी, सूर्यास्त में कुछ ही काल अवशिष्ट था। मैंने जाकर देखा, बहु-संख्यक भक्तों और दर्शकों से घिरे हुए एक पृथक आसन पर एक सौम्यमूर्ति महापुरुष व्याघ्र चर्म पर विराजमान हैं। उनके सुन्दर लम्बी दाढ़ी है, चमकते हुए विशाल नेत्र हैं, पकी हुई उम्र है, गले में सफेद जनेऊ है, शरीर पर कषाय वस्त्र हैं, और चरणों में भक्तों के चढ़ाये हुए पुष्प और पुष्प मालाओं के ढेर लगे हैं। पास ही एक स्वच्छ करिश्मास्थल से बना हुआ गोल यन्त्र विशेष पड़ा है। महात्मा उस समय योगविद्या और प्राचीन आर्य विज्ञान के गूढ़तम रहस्यों की, उपदेशक के बहाने साधारण रूप में व्याख्या कर रहे थे। कुछ समय तक उनका उपदेश सुनने पर जान पड़ा कि इसमें अनन्य साधारण विशेषता है। क्योंकि उनकी प्रत्येक बात पर इतना जोर था, मानों वे अपनी अनुभव सिद्ध बात कह रहे हैं, केवल शास्त्र वचनों की आवृत्ति मात्र नहीं है। वे समझा रहे थे कि जगत में सर्वस्व ही सत्ता मात्र रूप से, सूक्ष्म भाव से, सभी पदार्थ विद्यमान रहते हैं। परन्तु जिनकी मात्रा अधिक प्रस्फुरित होती है, वही अभिव्यक्त और इन्द्रियगोचर होता है, जिसका ऐसा नहीं होता वह अभिव्यक्त नहीं होता—नहीं हो सकता। लोहे का टुकड़ा केवल लोहा ही है, सो नहीं है, उसमें सारी प्रकृति अव्यक्त रूप से निहित है, परन्तु लोहा भाव की प्रधानता से अन्यान्य समस्त भाव उसमें विलीन होकर अदृश्य हो रहे हैं। किसी भी विलीन भाव को (जैसे सोना) प्रबुद्ध करके उसकी मात्रा बढ़ा दी जावे तो पूर्व भाव स्वभावतः ही अव्यक्त हो जायेगा, और वह सुवर्णादि प्रबुद्ध, भाव प्रबल होने से वह वस्तु फिर उसी नाम और रूप से परिचित होगी।

कुछ देर तक जिज्ञासु रूप से जो पूछ-ताछ करने पर उन्होंने मुझसे कहा—'तुम्हें यह करके दिखाता हूँ।' इतना कह कर उन्होंने आसन पर से एक गुलाब का फूल हाथ में लेकर मुझसे पूछा—बोलो इसको किस रूप में बदल दिया जाय ? वहाँ जवा फूल नहीं था। इसी से मैंने उसको जवा फूल बनाने के लिए उनसे कहा। उन्होंने मेरी बात स्वीकार कर ली और

बायें हाथ से गुलाब का फूल लेकर दाहिने हाथ से उस स्फटिक यन्त्र के द्वारा उस पर विकीर्ण सूर्य रश्मि को संहत करने लगे। क्रमशः मैंने देखा, उसमें एक स्थूल परिवर्तन हो रहा है। पहले एक लाल आभा प्रस्फुटित हुई धीरे-धीरे गुलाब का फूल विलीन होकर अव्यक्त हो गया, और उसकी जगह एक ताजा हलका खिला हुआ झुमका जवा प्रकट हो गया। उस फूल को मैं यह जानने के लिये घर ले गया कि कहीं मैं सम्मोहिनी विद्या (मेस्मरेजम) के वशीभूत होकर ही जवा फूल की कोई सत्ता न होने पर भी जवा फूल तो नहीं देख रहा हूँ। इस फूल को मैंने बहुत दिनों अपनी पेटी में रखा वह सूखने पर भी जवा पुष्प ही रहा।

स्वामी जी ने कहा—'इसी प्रकार समस्त जगत में प्रकृति का खेल हो रहा है, जो इस खेल के तत्व को कुछ समझते हैं—वही ज्ञानी हैं। अज्ञानी इस खेल से मोहित होकर आत्म विस्मृत हो जाता है। योग के बिना इस ज्ञान या विज्ञान की प्राप्ति नहीं होती। इसी प्रकार विज्ञान के बिना वास्तविक योग पद पर आरोहण नहीं किया जा सकता।

मैंने पूछा—तब तो योगी के लिये सभी कुछ सम्भव है? उन्होंने कहा—निश्चय ही है, जो यथार्थ योगी हैं, उनकी सामर्थ्य की कोई सत्ता नहीं है, क्या हो सकता है और क्या नहीं, इसकी कोई निर्दिष्ट सीमा-रेखा नहीं है। परमेश्वर ही तो आदर्श योगी हैं, उनके सिवा महाशक्ति का पूरा पता और किसी को प्राप्त नहीं है, जो निर्मल होकर परमेश्वर की शक्ति के साथ जितना युक्त हो सकते हैं उनमें उतनी ही ऐसी शक्ति की स्फूर्ति होती है।

मैंने पूछा—इस फूल का परिवर्तन अपने योगबल से किया या और किसी उपाय से ? स्वामीजी बोले—'उपाय मात्र ही तो योग है, दो वस्तुओं को एकत्र करने को ही तो योग कहा जाता है। अवश्य ही यथार्थ योग इससे पृथक है। अभी मैंने यह पुष्प सूर्य विज्ञान द्वारा बनाया है। योग बल या शुद्धि इच्छा शक्ति से भी सृष्टि आदि सब कार्य हो सकते हैं, परन्तु इच्छा शक्ति का प्रयोग न करके विज्ञान कौशल से भी सृष्टआदि कार्य किये जा सकते हैं।' मैंने पूछा—'सूर्य विज्ञान क्या है ?' उन्होंने कहा—सूर्य ही जगत का प्रसविता है। जो पुरुष सूर्य की राशि अथवा वर्ण माला को भली भाँति पहचान गया है और वर्णों को शोधित करके परस्पर मिश्रित करना सीख गया है, वह सहज ही सभी पदार्थों का संघटन या विघटन कर सकता है।

मैंने पूछा—'आपको यह विज्ञान कहाँ से मिला ? मैंने तो कहीं इसका नाम भी नहीं सुना।' उन्होंने हँसकर कहा—'तुम लोगों का ज्ञान ही कितना है ? यह विज्ञान भारत की ही वस्तु है। उच्चकोटि के ऋषिगण इसको जानते थे, और उपयुक्त क्षेत्र में इसका प्रयोग किया करते थे। अब भी इस विज्ञान के पारदर्शी आचार्य अवश्य ही वर्तमान हैं। वे हिमालय और तिब्बत में गुप्त रूप से रहते हैं। मैंने स्वयं तिब्बत के उपान्न मार्ग में ज्ञानगंड नामक बड़े भारी योगाश्रम में रहकर एक योगी और विज्ञानवित् महापुरुष से दीर्घकाल तक कठोर साधना करके इस विद्या को और ऐसी ही और भी अनेकों लुप्त विद्याओं को सीखा है। यह अत्यन्त ही जटिल और दुर्गम विषय है—इसका दायित्व भी अत्यन्त अधिक है। इसीलिये आचार्य गण सहसा किसी को यह विषय नहीं सिखाते।'

मैंने पूछा—'क्या इस की और भी विद्याएँ हैं ?' उन्होंने कहा—'हैं नहीं तो क्या ? चन्द्र विज्ञान, नक्षत्र विज्ञान, वायु विज्ञान, क्षण विज्ञान, शब्द विज्ञान, मनोविज्ञान इत्यादि बहुत विद्याएँ हैं। केवल नाम सुनकर ही तुम क्या समझोगे ? तुम लोगों ने शास्त्रों में जिन विद्याओं के नाम मात्र सुने हैं वे उनके अतिरिक्त और भी न मालूम कितना क्या है ?'

यद्यपि भारतीय योग का चरम लक्ष्य आत्मानुभूति और जीवनमुक्ति की अवस्था को प्राप्त करना है, तो ज्ञान योगाभ्यास से साधक की भौतिक शक्तियाँ भी इतनी बढ़ जाती हैं कि अनेक ऐसे कार्य कर दिखा सकते हैं जो बड़े-बड़े वैज्ञानिक यंत्रों और विधियों से भी सम्भव नहीं है। उदाहरण के लिये एक तत्व को दूसरे तत्व में परिवर्तित करने के लिये आधुनिक वैज्ञानिक बहुत समय से प्रयत्न कर रहे हैं, पर अभी तक उनको इस प्रयोग से सफलता प्राप्त नहीं हुई है। अब अणु शक्ति का ज्ञान होने और उसके प्रयोग की विधि मालूम होने पर उनको आशा होने लगी है कि वे निकट भविष्य में एक तत्व को दूसरे में बदलने में समर्थ हो सकेंगे। उदाहरणार्थ वे लोहे या ताँबे को सोना बना सकेंगे या मिट्टी को चीनी के रूप में परिवर्तित कर सकेंगे।

पर भारतीय योगियों ने इस प्रकार की शक्ति प्राचीन समय से प्राप्त करली है और समय-समय पर वे इसका परिचय भी देते रहे हैं। हमने ऐसी एक दो नहीं सैकड़ों घटनाएँ पढ़ी और सुनी हैं कि सिद्ध महात्माओं ने आवश्यकता पड़ने पर पानी से घी का काम ले लिया, या थोड़े से भोजन को इतना बढ़ा दिया कि दस व्यक्तियों की सामग्री से सौ का काम चल गया।

आधुनिक समय में इस प्रकार चमत्कार दिखला सकने वालों में काशी के स्वामी विशुद्धानन्द जी का नाम बहुत प्रसिद्ध है। वे बाल्यावस्था में वर्दवान के निकट एक गाँव में रहते थे, पर १७ वर्ष की आयु में जब आपको एक पागल कुत्ते ने काट खाया और प्राणनाश की आशंका होने लगी तो एक योगी ने आकर इनको बचाया और फिर योगमार्ग का उपदेश देकर हिमालय में पहुँचा दिया। वहाँ वे 'ज्ञान-गंज' नामक योगाश्रम में विभिन्न गुप्त विद्याओं का अध्ययन करते रहे और अनेक वर्षों के बाद एक शक्ति सम्पन्न योगी के रूप में पुनः लोकालय में आये। और यहाँ विभिन्न स्थानों में घूम-फिर दीन दुखी जनों का कल्याण साधन करते रहे।

स्वामी जी साधारण लोगों में 'गन्ध बाबा' के नाम से विख्यात थे। जितने लोग उनके सम्पर्क में आते थे उन सबका यही अनुभव था कि उनकी देह से एक विशेष प्रकार की मनोरम गन्ध निकला करती है। वह प्रायः कमल फूल (पद्म) की गन्ध से मिलती होती थी, पर वास्तव में वह एक निराली ही चीज थी। स्वामी जी जहाँ उठते-बैठते वहाँ बहुत दूर तक यह सुवास फैली रहती थी।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कुछ समय पहले इंग्लैण्ड के एक पत्रकार पालब्रंटन भारत भ्रमण के लिये आये। उनका मुख्य उद्देश्य यहाँ के योगियों और महात्माओं की रहस्यपूर्ण शक्तियों की जाँच करना था। अनेक स्थानों में घूमते-फिरते वे बनारस में स्वामी विशुद्धानन्दजी के पास भी पहुँचे थे और उनकी अलौकिक शक्तियों का उन्होंने ध्यानपूर्वक निरीक्षण किया था। उन्होंने अपनी पुस्तक में इस सम्बन्ध में जो विवरण दिया है उसकी कुछ बातें यहाँ दी जाती हैं—

"जब मैं पहुँचा तो कुछ लोग जमीन पर अर्द्ध वृत्ताकार बैठे हुये थे और कुछ ही दूर पर एक वृद्ध महात्मा विराजमान थे। उनके श्रद्धा उत्पन्न करने वाले रूप को देखकर मैं समझ गया यही योगी जी हैं। उनकी आयु ७० वर्ष से अधिक होगी। किसी विचित्र शक्ति से उनका कमरा परिपूर्ण जान पड़ता था। मेरे पहुँचने के कुछ देर बाद योगी ने बंगला में कहा "कल तीसरे पहर पंडित गोपीनाथ कविराज के साथ आना, तभी बातचीत हो सकेगी।"

दूसरे दिन ४ बजे जब मैं गोपीनाथ जी के साथ आश्रम में पहुँचा तो योगी ने पूछा कि "क्या तुम मेरा कोई चमत्कार देखना चाहते हो ?"

ब्रंटन—यदि आपकी ऐसी दया हो तो मुझे हार्दिक प्रसन्नता होगी।

विशुद्धानन्द—अच्छा अपना रूमाल मुझे दो। यदि रेशम का रूमाल होगा तो अच्छा है। जो सुगन्ध तुम चाहो इस रूमाल पर आतशी शीशे एवं सूर्य किरणों द्वारा मैं पैदा कर सकता हूँ। तुम कौन-सी सुगन्ध चाहते हो ?

ब्रंटन—चमेली की ।

योगी ने बायें हाथ से ब्रंटन का रूमाल लिया और आतशी शीशा दाहिने हाथ से उसके ऊपर थोड़ी दूर पर रखा। दो सैकिण्ड तक एक सूर्य किरण रूमाल पर पड़ी। इसके बाद योगी ने रूमाल ब्रंटन को लौटा दिया। ब्रंटन ने रूमाल नाक से लगाया तो चमेली की खुशबू दिमाग में भर गई।

ब्रंटन ने अच्छी तरह रूमाल की परीक्षा की, पर उसमें कहीं गीलापन न था, न इस बात का कोई चिह्न था कि उस पर तरल सुगन्ध या इत्र टपकाया गया है। ब्रंटन ने आश्चर्य से वृद्ध योगी की तरफ देखा। योगी ने चमत्कार को फिर से दिखाने का वचन दिया। ब्रंटन ने इस बार गुलाब का इत्र चुना। वे लिखते हैं कि "इस बार मैं बड़े ध्यान से सब काम देखता रहा। जरा-सा हिलने-डुलाने पर और योगी के चारों तरफ मेरा ध्यान था। मैंने उनके हाथों की परीक्षा की, उनके दूध से श्वेत वस्त्रों की जाँच करके देख लिया, परन्तु कोई भी सन्देहजनक बात नहीं मिली। योगी ने फिर पहली तरकीब से रूमाल के दूसरे कोने में गुलाब की गहरी सुगन्ध पैदा करदी।" तीसरी बार 'वायलेट' के फूल का नाम लिया और योगी ने शीशे के द्वारा वायलेट की खुशबू पैदा करदी। विशुद्धानन्द अपनी इन सफलताओं में बिल्कुल अनासक्त से हैं। वे सारे प्रदर्शन के प्रति एक साधारण बात की तरह व्यवहार करते थे। उनके चेहरे की गम्भीरता एक क्षण के लिये कम नहीं होती। चौथी बार विशुद्धानन्द ने कहा कि "अच्छा, अब मैं अपनी तरफ से एक ऐसे फूल की खुशबू पैदा करूँगा जिसको तुमने आज तक नहीं सूंघा होगा, क्योंकि वह फूल तिब्बत में ही पैदा होता है। यह कह कर उन्होंने आतशी शीशे का प्रकाश रूमाल के चौथे कोने पर डाला और उसमें से वास्तव में ऐसी खुशबू आने लगी जिसे हम पहचान नहीं सकते थे।"

"दूसरे दिन हम फिर एक जीवित कबूतर लेकर विशुद्धानन्द जी के पास गये। वहाँ उनके कहने से कबूतर को गला घोंटकर मार डाला गया। इसके बाद वह एक घंटे तक सब लोगों के सामने पड़ा रहा कि जिससे लोग देखलें कि वह वास्तव में निर्जीव है उसकी आँखें पथरा गई थीं और शरीर कठोर पड़ गया। बहुत गौर करने पर भी उसमें कोई ऐसा लक्षण दिखलाई नहीं पड़ता था जिससे उसे जीवित समझा जा सकता।

"तब योगी ने अपना काँच का गोला उठाया और उसके द्वारा पक्षी की एक आँख में सूर्यकिरण का प्रतिबिम्ब केन्द्रित किया। कुछ देर ऐसा करने के बाद वे कोई मंत्र पढ़ने लगे और थोड़ी देर में पक्षी का शरीर हिलने लगा। ऐसा जान पड़ता था कि मृत्यु की वेदना से वह तड़प रहा है। कुछ देर बीतने पर उसने पर फड़-फड़ाये और देखते-देखते अपने पैरों पर खड़ा हो गया। कुछ मिनिट बीतने पर पक्षी कमरे में उड़कर एक ताक पर बैठ गया। आध घंटे से ज्यादा समय तक वह एक स्थान से दूसरे स्थान तक उड़ता रहा, फिर निर्जीव होकर गिर पड़ा।"

विशुद्धानन्द जी ने ब्रंटन को बतलाया कि इन चमत्कारों से 'योग' का कोई सम्बन्ध नहीं है, वरन् ये सूर्य-विज्ञान द्वारा द्वारा किये गये हैं और इनकी विधि वैसी ही स्पष्ट है जैसी कि आज कल के अन्य वैज्ञानिक प्रयोगों की होती है। इसके लिये योगाभ्यास की आवश्यकता नहीं। साधारण संसारी व्यक्ति कुछ समय अभ्यास करके इसे कर सकता है। उन्होंने यह भी बतलाया कि इसी प्रकार 'चन्द्र विज्ञान', 'नक्षत्र विज्ञान', 'वायु-विज्ञान', 'क्षणविज्ञान', 'शब्द विज्ञान', 'मनोविज्ञान' आदि और भी बहुत-सी विद्याएँ हैं, जिनसे अनेक अभूतपूर्व और असम्भव समझे जाने वाले काम करके दिखाये जा सकते।

एक दिन जब वे पुरुलिया (बंगाल) स्थित अपने आश्रम में जिज्ञासुओं को सूर्य विज्ञान का रहस्य समझा रहे थे और यह बता रहे थे कि इस विद्या के माध्यम से किसी भी वस्तु का निर्माण सम्भव है। सभी मंत्रमुग्ध हो उन्हें सुन रहे थे, तभी अचानक न जाने वे कहाँ गायब हो गये। उपस्थित श्रद्धालु शिष्य अचकचाये। कहीं यह उनका भ्रम तो नहीं ! सभी ने बार-बार आँखें मलीं, पर हर बार आसन खाली मिला। सब एक-दूसरे का मुँह ताकने लगे। अब उन्हें निश्चय हो चुका था कि भ्रान्ति किसी एक को हो सकती है, एक साथ सभी को नहीं। सचमुच परमहंस विशुद्धानन्द अन्तर्ध्यान हो गये थे। अभ्यागत बड़ी बेचैनी से उनका इन्तजार करने लगे। करीब एक घंटे बाद वे पुनः अपने आसन पर जिस आकस्मिक ढंग से अदृश्य हुए थे, वैसे ही प्रकट हो गये। उनके पुनरागमन से सभी प्रसन्न थे। उन्हों आते ही बताया कि सुदूर तिब्बत के

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

दुर्गम हिमालय स्थित आश्रम 'ज्ञानगंज' से अचानक एक अनिवार्य संदेश आ गया था, इसलिए उन्हें बिना बताये इस प्रकार जाना पड़ा।

यहाँ चर्चा किसी योगी विशेष की नहीं, वरन् उस विद्या की, की जा रही है, जो अक्सर सिद्ध-संतों के साथ जुड़ी होती है और उल्लेख का विषय बनती है कि अमुक में दृश्य-अदृश्य की अद्‌भुत सामर्थ्य है। यों योगी-यती आये दिन अपना यह दावा प्रस्तुत करते रहे हैं कि योग-विज्ञान में 'असम्भव' जैसा कोई शब्द है नहीं, पर पदार्थ विज्ञान बार-बार उनके दावों को अपनी कसौटी में कसता और असफल होने पर झुठलाने का प्रयास करता है। यह भौतिक विज्ञान का अपना तरीका है, किन्तु सामान्य लोगों और साधारण बुद्धि वालों के लिए असमंजस यह उठ खड़ा होता है कि वह सच या झूठ किसे मानें ? दोनों ही प्रामाणिक स्तर के दो पृथक् विज्ञान हैं, फिर उन पर कैसे अँगुली उठायी जाय ? उन्हें झूठा एवं अप्रामाणिक किस प्रकार ठहराया जाय ? इस गुत्थी को सुलझाने के लिए बीच का कोई तीसरा रास्ता अपनाना ही श्रेयस्कर होगा, जिससे योगविज्ञान की असीमता और पदार्थ विज्ञान की ससीमता भली-भाँति साबित की जा सके और यह बताया जा सके कि ससीम पदार्थ असीम-अभौतिक अस्तित्त्व को किसी कदर सिद्ध नहीं कर सकता। यह बात समझ में आ जाये, तो समस्या का सरल हल सम्भव है।

पदार्थ विज्ञान की अपनी सीमा है। इसके अन्तर्गत वह अपनी दृष्टि से जो कुछ देखता है, उतने भर को सही मान लेता है। मानना भी चाहिए। जो प्रत्यक्ष दृश्यमान है, उस पर अविश्वास कैसे किया जाय। योग-विज्ञान, पदार्थ-विज्ञान के उपरान्त आरम्भ होता है और उससे आगे की दृष्टि रखता है। वह दूरदर्शी और अधिक व्यापक क्षमता वाला है। इसे दूसरे प्रकार से यों भी समझा जा सकता है कि पदार्थ विज्ञान यदि एक साधारण माइक्रोस्कोप है, तो योगविज्ञान को इलेक्ट्रॉन माइक्रोस्कोप जैसा माना जा सकता है। इतने पर भी साधारण माइक्रोस्कोप से उपलब्ध जानकारी गलत नहीं कही जा सकती, क्योंकि उसने अपनी क्षमता और परिधि के हिसाब से सच्ची जानकारी दी है। इलेक्ट्रॉन माइक्रोस्कोप की क्षमता उससे भी विस्तृत और सूक्ष्म है, अतएव वह और गहराई में उतर कर आगे के तथ्य के बारे में बताता है। यदि दोनों के बीच इस मूलभूत अन्तर को न समझा गया होता, तो आज जीव-विज्ञान की नींव ही हिल गई होती और परस्पर इतना बड़ा विग्रह उठ खड़ा होता, जिसका कोई हिसाब नहीं। कोई हरे रंग का चश्मा पहन कर संसार को हरा देखता है, तो सिद्धान्त रूप में वह सही है, क्योंकि हरे रंग के काँच से विश्व हरा ही दीखेगा, लाल रंग के काँच से लाल व श्वेत रंग से सफेद। इतने पर भी सच्चाई यह है कि वसुधा न हरी है, न लाल, न श्वेत। यह सब कुछ क्षमता, योग्यता एवं रंग आदि पर निर्भर है।

योग विज्ञान अभिव्यक्त संसार के मूल में अव्यस्त चेतना को प्रमुख मानता है और कहता है कि यह सब कुछ उसी का खेल है। अभेदानन्द एक स्थान पर लिखते हैं कि प्रत्येक कल्प के अन्त में प्रत्यक्ष-जगत आकाश-तत्त्व में अन्तर्हित हो जाता है और पुनः कल्प के आरम्भ में उससे उसकी स्थूल अभिव्यक्ति होती है। इसी आशय के प्रश्न ऋग्वेद संहिता (दशम मंडल) में किये गये हैं, यथा—

नासदासीन्नो सदासीत्तदानीम् एवं **तुम आसीत् तमसागूढमग्रेऽप्रकेतम्** आदि, अर्थात् जब अस्ति और नास्ति कुछ भी न था, जब तम से तम आवृत था, तब क्या था ? उत्तर आगे देते हुए कहा गया है कि यह आकाश ही गति शून्य होकर अवस्थित था। अब प्रश्न उठता है कि यह आकाश तत्त्व है क्या ? इसका उत्तर देते हुए स्वामी अभेदानन्द कहते हैं कि बोलचाल की भाषा में इसे सर्वव्यापी चेतना तत्त्व समझा जा सकता है। इस प्रकार यह लगभग प्रमाणित हो गया कि जड़ पदार्थों की पृष्ठभूमि में चेतना ही कार्य करती है, वही इस संसार की सर्वोपरि नियामक सत्ता है। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि चेतना निमित्त कारण है और जड़ जगत उसका उपादान कारण।

रेडिएस्थीसिया उपचार पद्धति वाले इसे भली-भाँति जानते हैं कि स्थूल सत्ता के पीछे सूक्ष्म कारण का कितना बड़ा हाथ होता है। उक्त चिकित्सा पद्धति का मूलभूत आधार ही प्राणचेतना है—प्राणचेतना, जिसे ओरा आभामंडल जैसे कई नामों से जाना जाता है। जब कोई व्यक्ति बीमार पड़ता है, तो इसके निष्णात सर्वप्रथम यह जानने का प्रयास करते हैं कि रोगी का कौन-सा अंग अपने विशिष्ट रंग वाला प्रभामंडल खो चुका है और उसके स्थान पर ग्रहण किये हुए आभामंडल का वर्ण क्या है ? इतना जान लेने के उपरान्त वे विशेष प्रकार की रत्न-राशि से उस अवयव पर उसके मौलिक वर्ण वाली किरणों की बौछार शुरू करते हैं। इससे धीरे-धीरे रुग्ण भाग अपने परिवर्तित ओरा-रंग का मूल वर्ण प्राप्त कर लेता है, जिससे व्याधिग्रस्त हिस्सा सही और व्यक्ति स्वस्थ हो जाता है। उल्लेखनीय है कि इस उपचार-प्रणाली द्वारा व्याधि के स्थूल अभिव्यक्ति के काफी समय पूर्व ही व्यक्ति की अस्वस्थता की भविष्यवाणी आभामंडल के रंग में आये बदलाव के आधार पर की जा सकती है। इस प्रकार यह भी यही सिद्ध करता है कि स्थूल का प्रमुख आधार सूक्ष्म चेतना ही है।

महत् चेतना का एक अंश हममें से प्रत्येक में विद्यमान है। इसी से हमारा सारा क्रिया-व्यापार चलता है। जिस दिन इसका स्पन्दन रुक जाता है, उसी दिन प्राणचेतना शरीर छोड़ कर महाप्राण में समाहित हो जाती है। यही मृत्यु है, अर्थात् प्राण के न रहने पर यह शरीर निष्क्रिय और निर्जीव हो जाता है। इतना ही नहीं, थोड़े ही दिनों में सड़ने-गलने भी लगता है, जबकि प्राण की विद्यमानता अपनी गति-प्रगति के आधार पर शरीर को छोटा-बड़ा, दृश्य-अदृश्य कोई भी रूप व विशेषता प्रदान कर सकती है। इसी प्रकार का मन्तव्य स्वामी विवेकानन्द ने अपनी पुस्तक 'राजयोग' में प्रकट किया है। वे लिखते हैं कि जो व्यक्ति अपने प्राण के कम्पन को जितना बढ़ा लेता है, वह

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उतनी ही ऊँची भूमिका में पहुँच जाता है, किन्तु इसके साथ सत्य यह भी है कि वह निम्न भूमिका वाले लोगों के लिए अगोचर स्तर का हो जाता है। वे कहते हैं कि समान प्राण-कम्पन वाले व्यक्ति ही दूसरे पदार्थ-प्राणी को देख सकते हैं। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि मनुष्य के लिए इस दुनिया में जो कुछ दृश्य है, उन सब की प्राण-आवृत्ति एक समान है। यही कारण है कि सूक्ष्म शरीरधारी आत्माएँ हमारे निकट होते हुए भी हमारे लिए अदृश्य जैसी बनी रहती हैं। उनके अनुसार यदि कोई सूक्ष्म शरीरधारी महापुरुष किसी को दर्शन देते हैं, तो वे मात्र कृपापात्र पर इतना अनुग्रह करते हैं कि उसकी प्राण की आवृत्ति को बढ़ा कर अति उच्च और अपने समान कर देते हैं, जिससे वह उसके लिए स्थूल एवं दृश्य बन जाते हैं, जबकि वहीं उपस्थित दूसरे लोगों के लिए वे सूक्ष्म स्तर के अगोचर बने रहते हैं। महापुरुषों के अचानक प्रकट-अप्रकट होने के पीछे, यही मोटा सिद्धान्त है।

सिद्ध-महात्माओं के इतिहास में इस प्रकार के अगणित प्रसंग पाये जाते हैं, जिसमें देखते-देखते उनके विलुप्त होने का उल्लेख मिलता है। बंगाल के रामप्रसाद, डॉ. दुर्गाचरण, प्रभु जगतबन्धु, नन्दकिशोर मुखोपाध्याय, हरनाथ ठाकुर आदि ऐसे ही योगी थे। कश्मीर की विख्यात योगिनी लल्लेश्वरी के बारे में भी ऐसा ही सुना जाता है। कहा जाता है कि वह कश्मीर शहर की गलियों में पागलों की भाँति एकदम निर्वसना घूमा करती थी। एकबार ऐसे ही एक अवसर पर उनकी भेंट प्रसिद्ध सूफी सन्त शाह हमदान से हो गई। वह उन्हें देखते ही 'पुरुष-पुरुष' चिल्लाती हुई भागी और सामने की दुकान में धधकती हुई बनिये की भट्टी में कूद पड़ी। बाद में शाह साहब के बहुत अनुनय-विनय करने के उपरान्त वह भव्य वस्त्राभरण में सुसज्जित सामने प्रकट हो गई। बनिये ने सोचा था कि वह जल कर भस्म हो गई होगी, किन्तु सुरक्षित पुनः सामने उपस्थित पाकर उसके आश्चर्य का ठिकाना न रहा।

गाजीपुर जिले के देवल ग्राम के बाबा दूधनराम औघड़ के सम्बन्ध में भी कुछ ऐसा ही प्रसिद्ध है। सुना जाता है कि एक बार वे घोड़े पर सवार होकर कहीं चले जा रहे थे, तो रास्ते में एक महात्मा ने उन्हें टोक दिया कि तुम साधु होकर घोड़े पर चढ़ते हो। अचानक दूधन बाबा घोड़े से उतर पड़े और कीर्तन करने लगे। घोड़ा देखते-देखते अदृश्य हो गया। कई बार तो वे स्वयं भी इस प्रकार अचानक विलुप्त होकर सामने वालों को संकट में डाल देते थे।

श्री नागा निरंकारी के बारे में कथा है कि एकबार वे हरिद्वार में गंगा में कूद कर अदृश्य हो गये थे। लोगों ने समझा कि जल-समाधि ले ली, पर कुछ दिन पश्चात् वे अपनी तपोभूमि पाली (कानपुर) में पुनः दिखाई पड़े। इसी के बाद उनकी अलौकिक शक्ति का पता लोगों को ज्ञात हुआ।

इसे तो अब विज्ञान भी स्वीकारने लगा है कि कम्पन हमारी इन्द्रिय क्षमता को काफी हद तक प्रभावित करता है और इस वसुंधरा में जो कुछ दृश्य-श्रव्य है, वह सब इसी की परिणति है। हमारे कान उन्हीं शब्दों को सुन पाते हैं, जो २०-२० हजार हर्टज के श्रवण सीमान्तगर्त आते हैं। इससे कम या अधिक आवृत्ति वाली ध्वनियों को सुनने में वे अक्षम होते हैं। यद्यपि दूसरे ऐसे कितने ही जन्तु हैं, जो इन ध्वनियों को सुनने-समझने की क्षमता रखते हैं। कुत्ता, चमगादड़, हाथी जैसे प्राणी उच्च आवृत्ति वाली सूक्ष्म आवाज को भी सरलतापूर्वक पकड़ लेते हैं। इसी प्रकार निम्न आवृत्ति वाली ध्वनियों को सुनने में कुछ जन्तु समर्थ होते हैं। ऐसे ही रंग और प्रकाश को पहचानने व देखने की भी हर प्राणी की अपनी पृथक् सीमा है। मनुष्य की आँखें 'बैनीआहपीनाला' के अन्तर्गत आने वाली सप्तवर्णी किरणें को ही देख सकती हैं, क्योंकि उनकी बारम्बारता मानव-दृष्टि की बारम्बारता से ठीक-ठीक मेल खाती है। इससे अधिक आवृत्ति (७· × १०^{१५} हर्टज) वाली पराबैंगनी किरणों को देखने में वह असमर्थ होती हैं। इसी प्रकार दृष्टि-सीमा से कम बारम्बारता (४·२८ × १०^{१३} हर्टज) वाली अवरक्त किरणों को वह पहचान नहीं पाती। ऐसी दशा में सूक्ष्मदर्शी अथवा दूरबीन प्रभृति यंत्र वही कार्य सम्पन्न करते हैं, जो सिद्ध स्तर के व्यक्ति, अर्थात् ये उपकरण प्राण-कम्पन को बढ़ा कर उस हद तक पहुँचा देते हैं, जिसमें अदृश्य, दृश्य बन जाता है, एवं अलौकिक, लौकिक जैसा लगने लगता है।

इस सिद्धान्त की सत्यता का परीक्षण दैनिक जीवन में काम आने वाले बिजली के पंखे से भी न्यूनाधिक परिमाण में किया जा सकता है। पंखे को जब एक नम्बर पर चलाया जाता है, तो उसकी सारी पंखुड़ियाँ अलग-अलग स्पष्ट भासती हैं, किन्तु जैसे-जैसे उसकी गति बढ़ायी जाती है, डैन का विलगाव और बीच की दूरी समाप्त होने लगती है। पाँच नम्बर पर पहुँचते-पहुँचते सभी पंखुड़ियाँ मिल कर एक हो जाती हैं और आँख को यह धोखा होने लगता है कि वे तीन नहीं, एक हैं। उसकी गति और बढ़ायी जाय तो एक ऐसी स्थिति पैदा हो जायेगी, जिसमें उसका दिखाई पड़ना ही बन्द हो जायेगा और पंखा स्थूल रूप से विद्यमान होते हुए भी अप्रकट स्तर का बना रहेगा।

इतना सब जान-समझ लेने के पश्चात् योगियों एवं सिद्ध सन्तों द्वारा तिरोधान व प्रकटन की घटना को अविश्वसनीय स्तर का अचम्भा नहीं माना जाना चाहिए, वरन् उसे एक विज्ञान सम्मत प्रक्रिया के रूप में अंगीकार करना चाहिए—एक ऐसी प्रक्रिया, जो हर किसी के लिए सम्भव है, पर इसके पूर्व प्राण सम्बन्धी नियमन-नियंत्रण आवश्यक है। जो शुद्ध जीवन एवं सरल आचरण द्वारा इसे सम्पन्न कर सकें, उनके लिए दृश्य-अदृश्य होने की शक्ति उपलब्ध कर लेना कोई कठिन कार्य नहीं, वरन् उतना ही आसान है, जितना गोताखोरों के लिए जल में बिना किसी कठिनाई के विचरण।

किंचित भी झूठा नहीं है, हमारा योग विज्ञान

अभी-अभी उन्होंने चाय समाप्त ही की थी, कि गेरुए वस्त्र में एक साधु कहीं से आ पहुँचे। साधु की मुखमुद्रा देखने से ही लगता था कि इन्होंने आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत का पालन किया है। यही नहीं—योग की उच्चस्तरीय भूमिकाएँ पार कर

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सिद्धावस्था प्राप्त है उन्हें। मस्तक पर अपूर्व तेज। भिखारियों की तरह विद्रूप मलिनता और आत्महीनता का भाव नहीं वरन् हावभाव चाल ढाल सबमें विलक्षण स्वाभिमान और बादशाह की-सी मस्ती। कमंडलु के अतिरिक्त और कोई वस्तु साथ में नहीं, मुख प्रसन्नता से उदीप्त न कोई हीनता का भाव, न थकावट और परेशानी का।

"कई दिनों से भूख और प्यास तंग कर रही है, साहब !" साधु ने विनम्र शब्दों में कहा-यदि एक दो रोटी टोस्ट, चाय या थोड़े से पैसे मिल जाते तो आपकी बड़ी कृपा होती।

मेजर कार्ल डिक ने चिलचिलाती गर्मियों में जैसी धूप होती है आँखों से ऐसा ही ताप बिखेरते हुए, साधु की ओर देखा और उपेक्षा से बोले जाओ-जाओ और किसी के घर में माँग लो, मेरे पास खिलाने का ठेका नहीं।

साधु ने इस उपेक्षा का बुरा नहीं माना। योगी का लक्षण ही है कि वह सुख दुःख मान-अपमान में सदैव एक समान रहता है। उन्होंने हँस कर कहा—"साहब ! नाराज न हों क्या हिन्दू, क्या ईसाई, सृष्टि तो सभी परमात्मा की है। आप भेद क्यों करते हैं, आप से थोड़े से भोजन की याचना की है सम्भव हो तो पूरा कर दें।"

साहब की सहनशीलता कागज की नाव की तरह पानी में डालते ही गल गई। बड़े क्रोध से बोले-मक्कार हिन्दुस्तानी ! जाता है यहाँ से या अभी नौकर को बुलाकर धक्के मारकर बाहर निकलवा दूँ।

साधु की मुख मुद्रा में अभी भी न तो किसी प्रकार का क्रोध का भाव था न प्रतिरोध का। उसने धीमे से मुस्कराते हुए कहा—महाशय ! जहाँ तक मेरे शरीर को अपमानित करने का प्रश्न है, वह कोई महत्त्व नहीं रखता पर चूँकि आपका सीधा प्रहार भारतीय योग, तत्वदर्शन पर है आपने सारे हिन्दुस्तानियों को मक्कार कह डाला—यह असह्य है।

साधु अभी कुछ और कहता इसके पहले ही क्रोध से भरे मेजर डिक ने चिल्लाकर नौकर को बुलाया और कहा—"इस मूर्ख को धक्के मार कर निकाल दो। नौकर भागा-भागा आया और मेजर की आज्ञापालन करने के लिए जैसे ही बढ़ा उसके पाँव काठ की तरह निश्चेष्ट हो गए। आँखें निकल आयीं। वह एकटक भयभीत-सा देख रहा था। साहब ने बहुतेरा डाँटा पर नौकर ऐसी अनसुनी कर गया जैसे हम किसी पत्थर के आगे कुछ बकते हैं और उस पर रत्ती भर प्रभाव नहीं पड़ता।

साधु ने हँसकर कहा—"साहब ! नौकर पर नाराज क्यों होते हैं, वह तो मेरी इच्छाओं का वशवर्ती है। कहें तो आपको बाहर निकलवा दूँ। आप समझते हैं, हमारी योग साधनाएँ तपश्चर्याएँ मूर्खता है। आज आप अनुभव करें कि योग में साधारण मनुष्यों को ही नहीं पर्वतों और नदियों को भी इच्छावर्ती बना लेने की शक्ति है। हमारा अहंकार न बढ़े इसलिए सामान्य मनुष्य की तरह हम भीख माँग कर खाना खाते और जीते हैं।"

लेकिन मेजर साहब पर तो भौतिकता का भूत सवार था, अँग्रेजियत की शान चढ़ी थी। एक हिन्दू साधु से एकायक कैसे हार मान लेते। उन्होंने अपने पालतू कुत्तों को आवाज देकर पुकारा और साधु की ओर संकेत करके उन्हें बढ़ावा दिया कि वे साधु पर झपट पड़ें और उसे काट खाएँ पर जैसे उन्हें लकवा मार गया हो, दोनों खूँखार कुत्तों ने एक बार मेजर की ओर देखा—दूसरी बार साधु की ओर खड़े हो गए, जैसे कोई द्वारपाल किसी सम्राट के अभिवादन के लिए खड़े हों। उनके शरीर तो क्या चेतना तक जवाब दे गई। काटना तो दूर वे भूँक तक नहीं सके।

मेजर के सारे शरीर से पसीना छूट गया। बुद्धि जवाब दे गई। साधु न कमंडल से थोड़ा जल लिया और कहा—"साहब ! मुझे आपसे कोई द्वेष नहीं, पर अब चूँकि हमारे धर्म को अपमानित करने की बात थी, इसलिए आपको कुछ दण्ड दिया जाय तो यह कोई दोष न होगा। मैं तुम्हें शाप देता हूँ आज से ठीक एक महीने बाद तुम मेरी तरह भूख से तड़पोगे, इस सारे शहर में माँगने पर तुम्हें रोटी न मिलेगी। तुम इस शहर में रह भी न सकोगे।" यह कहकर उसने जल एक ओर छिड़क दिया और वहाँ से चुपचाप चल दिया। मेजर साहब का अभिमान अभी भी दूर नहीं हुआ था, तो भी उनके मुख पर भय के भाव निश्चित रूप से दिखाई दे रहे थे।

साधु वहाँ से चलकर लगभग एक फर्लांग दूर उसी लाइन के एक अन्य बंगले में प्रविष्ट हुए। यह बंगला कर्नल जार्ज का था। उनकी पुत्री इला बरामदे में बैठी अँग्रेजी का समाचार पत्र पढ़ रही थी। साधु उधर ही मुड़ गए।

"बेटी ! मुझे भूख सता रही है कुछ खाने को मिलेगा क्या ?" साधु ने उसी विनयपूर्ण भाव और भाषा में पूछा—जिसका प्रयोग उन्होंने मेजर डिक के साथ किया था। इला को उन पर दया आयी। भले ही उसने यह न समझा हो कि यह साधु कोई सिद्ध महापुरुष है, पर उसे मानवता की सिद्धि का मूल्यांकन करना आता था। उसने कहा—बाबा जी ! बैठिये अभी आती हूँ। यह कहकर अन्दर गई। थोड़ा दूध टोस्ट और फल लाकर साधु को दिए। साधु ने उन्हें खाया और पानी पिया। उनकी भूख शान्त हुई।

तृप्ति भरी मुस्कान के साथ उन्होंने अपनी पोटली से एक फल निकाला फिर कर्नल जार्ज की पुत्री की ओर देखकर कहा—"पुत्री ! तू नहीं जानती हम योगी वह बात आगे से देख और जान लेते हैं, जो किन्हीं व्यक्तियों के साथ बाद में घटित होने को होती हैं। तुम्हारे घर में ठीक तीन सप्ताह बाद कोई बीमार पड़ेगा। डॉक्टर और हकीम भी उसका इलाज नहीं कर सकेंगे। हमारे आयुर्वेद पर तुमको विश्वास तो न होगा, पर मैं तुम्हें एक दुर्लभ औषधि देता हूँ, यह फल हिमालय में मिलता है। जब सारा उत्तराखण्ड बर्फ से ढक जाता है तब यह बड़ी कठिनाई से मिलता है। यह फल ही तुम्हें चमत्कार दिखायेगा। जब तुम्हारे घर में कोई बीमार हो, डॉक्टर हार जाये तब तुम एक अंगीठी में कोयले फूँकना जब कोयले दहकने लगें, तब उसमें यह फल रख देना। थोड़ा धुआँ छूटेगा और पटाखे की आवाज की तरह वह फूट जायेगा।" उसके तुरन्त बाद तुम देखोगी कि बीमार की हालत में आश्चर्यजनक सुधार होगा और वह थोड़ी देर में ही अच्छा हो जाएगा।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

लड़की को थोड़ा विस्मय हुआ, थोड़ा कौतूहल। फल उसने यों ले लिया कि उसने अपनी कई भारतीय सहेलियों से सुना था, भारतीय योगीसाधु सचमुच चमत्कारी होते हैं। वैसे उसका इस पर कोई विश्वास न था। फल लेकर उसने अपनी पुस्तकों के बीच कहीं छुपाकर रख दिया।

तीन सप्ताह बीते कोई अनहोनी बात नहीं हुई। पर उसके अगले ही दिन कर्नल जार्ज आफिस में काम करते हुए एकाएक गम्भीर रूप से बीमार हो गए। काम छोड़कर उन्हें बीच में ही कार से घर पहुँचाया गया इला बहुत हैरान थी, कुछ अपने पिता की बीमारी पर कुछ उस साधु की बात का स्मरण करके कई सुयोग्य मिलटरी डॉक्टरों ने उपचार किया पर कोई लाभ न हुआ। बम्बई से भी एक डॉक्टर बुलाए गए, वह भी बीमारी ठीक न कर सके। कर्नल जार्ज की स्थिति मरणासन्न हो चली।

उसी दिन अपराह्न वही साधु एकाएक फिर कर्नल साहब के बंगले पर दिखाई दिए। उस समय इला अपनी सहेली मेजर डिक की पुत्री के साथ अपनी रसोई में थी। साधु को देखते ही इला बाहर आयी। उसे देखते ही बोले—"मुझे पता था तुम मुझ पर विश्वास नहीं करोगी तो भी तुम्हारे किए हुए उपकार का फल चुकाना मेरा कर्त्तव्य था, इसलिए दुबारा फिर आना पड़ा।

आगे की बात प्रारम्भ करते हुए उन्होंने कहा—"तुम्हारे पिता जी अस्वस्थ हैं, अब अन्तिम समय है, तुम उस फल का प्रयोग करो तभी कर्नल साहब अच्छे हो सकेंगे।"

इला अपने पढ़ाई के कमरे में गई वह फल निकाला अंगीठी जलाई। जब कोयला अंगार हो गए तो वह फल उस पर रख दिया। थोड़ा धुआँ छूटा और फिर फटाखे की आवाज हुई।

इधर बम्बई से आये डॉक्टर कर्नल साहब की नब्ज टटोल रहे थे। जो शरीर कुछ क्षण पहले शव की तरह ठण्डा हो रहा था, एकाएक उसमें गर्मी और चेतनता दिखाई दी। डॉक्टरों ने निश्चय किया, वह मृत्यु के पूर्व की अंतिम और तीव्र ज्योति है पर वे यह देखकर हैरान रह गए कि कर्नल साहब ने धीरे-धीरे आँखें खोल दीं। हलके मुस्कराने लगे। थोड़ी देर में स्थिति सामान्य हो चली। भयंकर स्थिति से देखते-देखते सामान्य स्वस्थ मनुष्य की-सी स्थिति में आ जाना सचमुच बड़े आश्चर्य की बात थी। उपस्थित सभी डॉक्टरों को स्वीकार करना पड़ा कि सचमुच अध्यात्म में कोई शक्ति है अवश्य जो पदार्थ के और भौतिक विज्ञान के नियमों का भी उल्लंघन कर सकती है। उन्होंने भारतीय योग की महत्ता भी स्वीकार की तब-जब इला ने और उसकी सहेली ने सारी घटना आद्योपांत विस्तार से डॉक्टरों को कह सुनाई। सब कुछ सुनकर सभी लोग आवाक् थे। वहीं पास खड़े मेजर डिक तो चौंक से पड़े। वे सोचने लगे जब दिया हुआ वरदान फलित हो सकता है, तब दिया गया शाप .....

जैसे-जैसे एक सप्ताह और पूरा हुआ। साधु को गए अब एक महीना पूर्ण हो चुका था। मेजर डिक साहब उस दिन प्रातःकाल समय पर ही उठे पर वह हैरान थे कि आज न तो कोई नौकर बैड टी लाया और न स्नान के लिए पानी ही, श्रीमती डिक ने बहुतेरी आवाजें लगाई पर जब वहाँ कोई सुनने वाला हो तब तो। मेजर उठे नौकरों के कमरों में जाकर देखा तो सब खाली पड़े थे। एक ही नौकर बचा था, सो उसने भीतर से ही चिल्ला कर कहा—"साहब इधर मत आना इस मुहल्ले में प्लेग फैल चुकी है। इन कमरों में भी चूहे मरे हैं, इसीलिए नौकर घर छोड़कर भाग गए। मुझे तो प्लेग हो गया है, इसलिए मैं तो भाग कर जा भी नहीं सका।"

मेजर ने पुलिस और स्वास्थ्य विभाग से सेवाएँ माँगी। नौकर को दवा का प्रबन्ध कराया और स्वयं सारा सामान बाँधकर वह बंगला छोड़ देने की तैयारी करने लगे।

सायं होने से पहले ही वे डाक-बंगले पहुँच गए। इस आपाधापी में प्रातःकाल से चाय भी नहीं मिली थी। डाक बंगले के नौकर को आदेश दिया—"तीन कप चाय लाना।" चाय आई मेजर साहब उनकी धर्मपत्नी और पुत्री तीनों ने एक बार ही मुख लगाया और तीनों ने एक साथ अपने-अपने चाय के प्याले एक ओर सरका दिये। बात यह थी कि उनमें बुरी तरह मिट्टी के तेल की दुर्गन्ध आ रही थी।

अभी वे कुछ कहें इसी बीच सबका ध्यान कैप्टन स्मिथ नामक एक और अँग्रेज अफसर ने आकर बँटा लिया। जेब से पत्र निकालकर मेजर डिक को देते हुए स्मिथ ने बताया "छावनी के मेडिकल अफसर ने कहा है कि चूँकि आप लोगों के बंगले में प्लेग फैल गई है, इसलिए आप सबको छावनी एरिया से बाहर जाना पड़ेगा।" मेजर स्मिथ का माथा ठनका। उन्हें एक माह पूर्व हुई दुर्घटना याद आ गई। साधु का शाप क्या वस्तुतः सत्य होने जा रहा है ? यह सोचते ही उनकी देह से पसीना फूट पड़ा।

अब जिस कोठी में उन्हें जाना था, उसका पता स्मिथ ने हाथ में थमा दिया। मेजर डिक बोले—"स्मिथ मैं वहाँ अभी चला जाता हूँ किन्तु हममें से किसी ने भी दिन भर हो गया, खाना नहीं खाया। पहले हमें खाना खा लेने दें।"

नौकरी तो नौकरी ठहरी। कोई उद्यम कर रहा होता तो भला अपने साथी को, एक असहाय व्यक्ति को दो टूक उत्तर देने की नौबत क्यों आती। स्मिथ को नौकरी चले जाने का भय था सो उसने कहा—"मेजर साहब । आप उस बंगले पर अभी चले जाएँ, आपके लिए भोजन का प्रबन्ध हम पीछे से करके ला रहे हैं।"

मेजर डिक वहाँ से तुरन्त रवाना हो गए। नए बंगले में सामान पहुँच गया, पर उन्हें तो भूख सता रही थी। थोड़ी देर में कैप्टन स्मिथ अपनी पत्नी सहित वहाँ पहुँचे। देर के लिए क्षमा माँगते हुए उन्होंने बताया खाना तो बहुत पहले ही नौकर के हाथ तांगे से भेज दिया गया था पर तांगा किसी ट्रक से टकरा गया। खाना बिखर गया, नौकर अस्पताल में है हमें दुःख है कि आप भूखे हैं। इसलिए आप हमारे साथ चलिए घर से खाना खिलाकर लाते हैं।

www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org

सिनेमा के पर्दे पर जिस तरह रीलें घूमती हैं, उसी तरह कार्ल डिक के मस्तिष्क में इस समय एक महीने पहले घटी साधु वाली घटना के दृश्य याद आ रहे थे। उन्हें अब पूरी तरह संदेह और विश्वास हो गया था कि खाना मिलेगा नहीं। अपनी आशंका और शाप वाली बात उन्होंने कप्तान स्मिथ को भी बताई, पर स्मिथ ने उसे बहम बताया और मेजर साहब अपनी पत्नी और पुत्री के साथ उनके घर की ओर चल पड़े।

मार्ग में श्रीमती डिक ने मेजर से कहा—"हम मन ही मन उन साधु से क्षमा क्यों न माँग लें, संभव है इससे ही संकट टल जाए, पर भावनाओं का मूल्य न समझने वाले मेजर डिक के लिए यह सोचना भी असह्य था। उन्होंने कहा—एक साधारण से मनुष्य से हम क्षमा नहीं माँग सकते। उन बेचारों को क्या पता था कि मनुष्य साधारण नहीं होता उसमें देवत्व का भण्डार भरा पड़ा है। योगी उसी का विकास करके ईश्वरीय शक्तियों के समान काम करते हैं।

सब लोग स्मिथ की कोठी पर पहुँच कर खाने की मेज पर बैठ गए। अभी एक-एक प्लेट ही परोसी गई थी, नौकर पकाया हुआ मांस ला रहा था। मेजर डिक के पास आते-आते पैर में किसी वस्तु की ठोकर लगी और वह मेजर साहब पर ही जूझ गया। सारा शोरवा मेजर डिक पर ऐसे बिखर गया जैसे उनके साथ होली खेली गई हो। लाज के मारे मेजर चूहा-बिल्ली बन गए। उधर भूख के मारे बुरा हाल। सारी दिमागी ठसक निकल गई।

कप्तान स्मिथ ने उनके कपड़े बदलवाए। गर्दन में चोट आ गई थी सो दबा मली। दुबारा फिर खाने की मेज पर बैठे। नौकर एक ढके हुए बर्तन में कुछ लाया और मेजर साहब के सामने रख गया। मेजर ने ढक्कन खोला तो अजीब दुर्गंध आई। प्लेट में सड़ी हुई घास और पेड़ों के पत्ते रखे थे। कप्तान स्मिथ नौकरों पर बरस पड़े। नौकर भी आश्चर्यचकित थे कि हम तो अच्छा खाना लाए थे, मार्ग में ही यह क्या हो गया। मेजर ने चुपचाप स्वीकार कर लिया कि यह सब उन संन्यासी के शाप का फल है।

वे चुपचाप उठ पड़े। स्मिथ ने खाने के लिए मनाया और इस अपराध जैसे काम के लिए क्षमा भी माँगी, पर मेजर डिक वहाँ रुके नहीं। अपमान की हद हो गई थी। वह दिन यों ही गया। उन्हें पानी पीकर ही रात काटनी पड़ी। दूसरे दिन वे रेलवे स्टेशन इस आशा के साथ पहुँचे कि वहाँ के होटल में खाना मिल जाएगा। किन्तु कहते हैं आफत जब आती है तो साथ-साथ घूमती है—होटल बन्द मिला। डिक महोदय स्टेशन मास्टर के पास गए तो उसने बताया कि प्लेग का असर हो जाने के कारण होटल बन्द कर दिया गया है। उसने कहा—अगले स्टेशन पर भोजन का अस्थाई प्रबन्ध कर दिया गया है, आप वहाँ जाकर भोजन कर आयें। किन्तु दुर्भाग्य कि वहाँ के लिए कार का कोई मार्ग था नहीं और रेलगाड़ी छूट चुकी थी, उस दिन कोई और गाड़ी वहाँ जाने वाली भी नहीं थी।

मेजर साहब घर की ओर लौटे, मार्ग में एक मिठाई वाले की दुकान से थोड़ी मिठाई खरीदी, पर वहाँ पर मिठाई खाना उन्हें अपने स्वाभिमान के प्रतिकूल जान पड़ा। मिठाई कार में रख कर वे आगे बढ़ गए। आगे एक पीपल का पेड़ था वहीं वे रुके। तीनों व्यक्तियों ने मिठाई जैसे ही हाथ में ली कि उसे फेंकते ही बना। मिट्टी के तेल की ऐसी बदबू जैसे वह मिठाई बनी ही मिट्टी के तेल की हो। तीनों ने मिठाई फेंक दी।

तभी वही साधु कार की ओर आते दिखाई दिए। मेजर का अभिमान हवा हो चुका था। वे समझ चुके थे कि आत्मा की भी कोई शक्ति होती है, तीनों ने प्रणाम कर क्षमा माँगी।

साधु ने हँसते हुए कहा—"मुझे दुःख है कि आप लोगों को बड़ा कष्ट हुआ। पर मैं करता क्या ? यदि आपको इतना सबक न सिखाया जाय तो आप न जाने क्या-क्या दुर्व्यवहार करते फिरें। अब आपके लिए अच्छा यही है कि स्यालकोट छोड़कर कहीं और चले जायें। इस शहर में आपको खाना नहीं मिल सकता।"

साधु तीनों को लेकर पास ही एक कुटी थी वहाँ गए। तीनों को बैठकर उन्होंने तीन पत्तलें सँजोई। शुद्ध शाकाहारी भोजन उन्होंने अपने हाथों से परोसा। झोपड़ी में कोई था भी नहीं, चूल्हा चौका भी नहीं था, पर भोजन था बिलकुल गर्म-गर्म। तीनों ने भर पेट खाना खाया बड़ा स्वादिष्ट भोजन था।

भोजन कर चुकने के बाद उन्होंने फिर साधु से क्षमा माँगी और अपने घर आए। सामान लादकर वे उसी रात बम्बई के लिए चले गए। इस घटना को उस समय के सभी प्रमुख समाचार पत्रों ने छापा। इसी का प्रभाव था अँग्रेज अधिकारियों ने भारतीय साधुओं का, हिन्दू धर्म का उपहास करना बन्द कर दिया।

विज्ञान मुहर लगाता है, इन चमत्कारी सिद्धियों पर

सन् १८६० का मध्याह्न। द्वारिका नदी के तट पर स्थित तारापुर (प. बंगाल) के श्मशान में शाल्मली वृक्ष की शीतल छाया में ध्यानस्थ अघोरी सन्त के समक्ष एक अधेड़ आयु का व्यक्ति कातर स्वर में मनुहार कर रहा था—"बाबा ! हमारा पुत्र मरणासन्न है। चिकित्सकों ने जवाब दे दिया है। वह कुछ ही घण्टों का मेहमान है। अब आप ही कृपा कीजिए, उसे बचा लीजिए, अन्यथा मैं लुट जाऊँगा, कहीं का न रहूँगा .....।" वह गिड़गिड़ाए चला जा रहा था और नेत्र पावस की तरह उमड़ रहे थे। करीब पंद्रह-बीस मिनट के उपरान्त 'क्षेपा' (पागल) उपनाम से प्रसिद्ध सन्त वामाचरण की आँखें खुलीं। वे कुछ क्षण तक याचक की आँखों में आँखें डाले देखते रहे, तत्पश्चात् श्मशान की मिट्टी उठायी। कुछ पल उसे मुट्ठी में बन्द रखी, फिर शोकाकुल व्यक्ति की ओर बढ़ाते हुए कहा—"बालक को इसे खिला देना, स्वस्थ हो जायेगा।" बंगाली ने हाथ बढ़ा कर उसे ग्रहण किया, तो चकित रह गया। मृत्तिका पेड़ के टुकड़े में

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

परिवर्तित हो चुकी थी। उसने गद्‌गद् हृदय से सन्त को साष्टांग प्रणिपात किया और चला गया।

यहाँ प्रतिपाद्य विषय पदार्थ-परिवर्तन की वह घटना है, जो अक्सर सिद्ध-सन्तों के अलौकिक प्रसंगों में दिखाई पड़ती और चर्चा का विषय बनती है। श्रद्धालु लोग ऐसे प्रकरणों को सिद्धि चमत्कार आदि नामों से पुकारते हैं, तो तर्कशील मस्तिष्क उसमें संशय की गुंजायश से सर्वथा इनकार नहीं करते। उनका एक ही तर्क होता है कि पदार्थ का परिवर्तन और उनके उपादानों का रूपान्तरण कैसे सम्भव है ? यह कैसे शक्य है कि मिट्टी मिष्ठान्न हो जाय और शीशा, सुवर्ण में बदल जाय ? किन्तु यत्र-तत्र जब वे ऐसे कौशल देखते, तो उनका संदेहशील मन पुनः असमंजस में पड़ जाता और सोचने लगता है कि इसे क्या कहा जाय—सत्य ? असत्य ? दृष्टिभ्रम ? या हस्तलाघव ? निर्णय न कर पाने की स्थिति में सत्यता की परख अधूरी रह जाती और उधेड़ बुन ज्यों की त्यों बनी रहती है।

यहाँ एक प्रश्न अंतस् में बार-बार उभरता है कि आखिर इन दिनों मानवी मन इतना शंकाशील क्यों हो गया है ? वह बात-बात में हर चीज का प्रमाण क्यों खोजता फिरता है ? और न मिलने पर क्यों उसे अमान्य ठहराने की कोशिश करता है ? इसका एक उत्तर यह दिया जा सकता है कि यह सब प्रत्यक्षवाद की देन है। उसने पिछले कुछ वर्षों में मानसिक-संरचना में इस कदर बदलाव उपस्थित कर दिया है कि अब वह "बाबा वाक्यं किं प्रमाणं ?" की जगह "प्रत्यक्षं किं प्रमाणं ?" पर ज्यादा विश्वास करने लगा है, और जहाँ पुष्टि के लिए प्रमाण की माँग की जा रही हो, वहाँ इससे कम में भरोसा भी कैसे दिलाया जाय ? दूसरे, योग का वर्तमान समय में इतना प्रचार-प्रसार हुआ है कि धूर्तों को इससे अनुचित लाभ उठाने और भोले-भावुकों की जेबें खाली करने का अच्छा अवसर मिल गया है। ये जगह-जगह नुक्कड़-चौराहों पर योग के नाम पर मायाचार रचते और स्वयं को सिद्ध स्तर का योगी साबित करने का प्रपंच अपनाते देखे जाते हैं। इस क्रम में जब उनकी पोल खुलती और हाथ की सफाई पकड़ी जाती, तो न सिर्फ उनकी निन्दा-भर्त्सना होती, वरन् योग विज्ञान जैसी प्रामाणिक विद्या से भी जन-सामान्य का विश्वास उठने लगता है। एक तीसरा कारण इसका यह हो सकता है कि आजकल सच्चे योगी नहीं के बराबर रह गये हैं। जो हैं, वे अपनी सिद्धियों का सार्वजनिक प्रदर्शन कर विज्ञान की चुनौती को स्वीकार करने के लिए सहमत नहीं होते। ऐसी स्थिति में दुविधा का निवारण कैसे हो ? शंका का समुचित समाधान न हो पाने के कारण संशय यथावत् बना रह जाता है।

इन्हीं सब कारणों से प्रत्यक्षवाद को आज सबसे प्रामाणिक और प्रतिष्ठित माना जाने लगा है, पर इतने भर से यह नहीं भुला दिया जाना चाहिए कि साक्ष्य की अनुपस्थिति मात्र से ही किसी का अस्तित्व अमान्य नहीं हो जाता। उदाहरण के लिए ईश्वर को लिया जा सकता है। वह एक निराकार चेतन सत्ता है। उसे सिद्ध कर पाना न तो प्रत्यक्षवाद के लिए सम्भव है, न अध्यात्मवाद के लिए। उसका अनुमान भर लगाया जा सकता है। सम्भवतः इसी कारण से कपिल मुनि ने अपने दर्शन में मात्र इतना भर कह दिया कि 'ईश्वरासिद्धेः', अर्थात् ईश्वर असिद्ध है, उसे सिद्ध नहीं किया जा सकता। इतने पर भी सच्चाई यह है कि उसकी सत्ता से इन्कार न तो अध्यात्म करता है, न विज्ञान। अध्यात्म तो शुरू से ही यह कहता आया है कि हर वस्तु को लौकिकता के धरातल पर न तो पुष्ट किया जा सकता है, न प्रमाणित। प्रसन्नता की बात यह है कि विगत कुछ वर्षों में विज्ञान की भी तत्संबंधी मान्यता में बदलाव आया है और वह इसे मानने लगा है कि स्थूल यंत्रों के सहारे सूक्ष्म की सिद्धि एक सीमा तक ही सम्भव है। इसके अतिरिक्त एक अन्य बात जो विज्ञान में दिखाई पड़ती है, वह है, अनुमान का अवलंबन। इस आधार पर आरम्भ में विज्ञान का हर सिद्धान्त कल्पना मात्र होता है। बाद में वह परिकल्पना बनता और फिर सत्य व सिद्धान्त के रूप में स्थापित होता है।

कुछ काल पहले तक 'टैकियोन' कल्पित कण मात्र थे, पर हाल में उसके अस्तित्व की साक्षी ढूँढ़ ली गई। इस प्रकार प्रत्यक्षवाद पर आधारित पदार्थ विज्ञान भी कई बार परोक्ष का, अज्ञात अस्तित्व का, अनुमान का सहारा लेकर अपना काम चलाता दिखाई पड़ता है। यों विचार किया जाय, तो ज्ञात होगा कि उसमें अधिकांश अनुसंधान ऐसे ही हुए हैं, जो आरम्भ में अनुमान थे और बहुत समय उपरान्त ही वे प्रमाणित हो सके। इस तरह यह कहा जा सकता है कि भौतिक विज्ञान की नींव भी अनुमान-प्रमाण पर ही खड़ी है, जबकि अध्यात्म विज्ञान तो प्रमाणों की श्रृंखला में प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, शब्द जैसे चार प्रकार के साक्ष्यों को प्रस्तुत करता और प्रत्येक को प्रत्यक्ष स्तर का ही प्रमाण मानता है।

अतः जनसामान्य को भी यह हठवादिता छोड़ देनी चाहिए कि किसी के प्रत्यक्ष प्रमाण मिलने या प्रक्रिया-सिद्धान्त समझने पर ही उसे सच माना जाय, अन्यथा झूठा-ढकोसला करार दे दिया जाय। यह सम्भव है कि बाद में विज्ञान ऐसे प्रकरणों को भी सत्य की कसौटी पर प्रत्यक्ष कर दे, जैसा कि शुरू से उसका इतिहास रहा है, पर इसके लिए दीमक जैसे धैर्य और पुरुषार्थ की आवश्यकता है, जो पहाड़ जैसे कलेवर को भी खोखला करने में अद्‌भुत दृढ़ता का परिचय देती है।

जहाँ तक पदार्थ के रूपान्तरण का सवाल है साधारण जन की यही दलील होती है कि ऊर्जा का रूपान्तरण तो सुना-देखा जाता है, पर पदार्थ का रूपान्तरण ? यह किस भाँति सम्पन्न हो सकता है—यही उसका एकमात्र असमंजस है। यहाँ ध्यान देने योग्य बात अँग्रेजी की वह कहावत है, जो एक बहुत बड़े दार्शनिक सत्य को प्रतिपादित करती है—"नथिगं कम्स आउट ऑफ नथिंग" अर्थात् शून्य से शून्य की ही उत्पत्ति होती है। दूसरे शब्दों, में यह दार्शनिक तथ्य स्पष्ट उद्‌घोष करता है कि जहाँ कुछ है, वहाँ उससे दूसरा कुछ भी पैदा कर सकना सम्भव है।

इसी आशय का मन्तव्य प्रकट करते हुए स्वामी अभेदानन्द ने एक स्थान पर (अभेदानंद साहित्य में) लिखा है कि हर वस्तु में पूर्ण प्रकृति विद्यमान है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

यदि कोई लौह खण्ड है, तो उसमें निसर्ग के सारे तत्व और पदार्थ प्रच्छन्न रूप में मौजूद होते हैं। अन्तर सिर्फ इतना होता है कि उसमें एक समय में एक ही पदार्थ अभिव्यक्त रूप में रहता है, शेष सभी अप्रकट बने रहते हैं, पर यह सम्भव है कि उस प्रकट पदार्थ को अव्यक्त कर उससे किसी दूसरी वस्तु को आविर्भूत कर दिया जाय। यदि कोई लौह खण्ड है, तो उसे सोने में, रूई में, मिष्ठान्न में अथवा मूल पदार्थ के प्रकृति से विपरीत किसी भी वस्तु में बदला जा सकता है, क्योंकि उन सभी के परमाणु अदृष्ट रूप में उसमें उपस्थित है। वे लिखते हैं कि जहाँ-कहीं भी ऐसी घटनाएँ घटती दिखाई पड़ती हैं, वहाँ आविर्भाव और तिरोधान की सिर्फ दो ही क्रियाएँ होती हैं, कोई तीसरी नहीं। उल्लेखनीय है कि ऐसी क्रियाओं में रूपान्तरण जैसी कोई प्रक्रिया सम्पन्न नहीं होती। जो होता है, वह मात्र तिरोभाव और आविर्भाव की घटना है। इसमें प्रकट रूप में ऐसा लग सकता है कि लोहा, सोना बन गया पर वास्तविकता इतनी भर है कि लौह पिण्ड में विद्यमान अव्यक्त स्वर्ण-परमाणु सक्रिय हो जाते हैं और मूर्तरूप धारण कर लेते हैं। इसके विपरीत व्यक्त लौह-खण्ड धीरे-धीरे अव्यक्त और अमूर्त होने लगता है, पर उसकी सत्ता एकदम समाप्त नहीं हो जाती। वह सूक्ष्म रूप से उसमें संव्याप्त रहता है और चाहे कभी भी उसे व्यक्त रूप दिया जा सकता है अथवा उसमें उपस्थित किसी तीसरे पदार्थ को मूर्तिमान किया जा सकता है। यह पूर्णतः योगी की इच्छा पर निर्भर है, क्योंकि हर पदार्थ स्वयं निसर्ग को सँजोये हुए है। प्रकारान्तर से इसी बात का समर्थन यजुः (३/४९) का निम्न मंत्र भी करता है—

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते ।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

अर्थात् ब्रह्म पूर्ण है। उससे निष्पन्न होने के कारण यह संसार भी पूर्ण है। पूर्णत्व में से पूर्णता ले ली जाय, तो भी वह पूर्ण ही रहता है।

लोहे का हम सोना बना लें या सोने को चाँदी में परिवर्तित कर दें, कोई अंतर नहीं पड़ता। उसकी पूर्णता ज्यों-की-त्यों बनी रहती है, क्योंकि वह भी प्रकृति का ही एक पदार्थ है और हर पदार्थ अपने में पूर्णता को पूर्ण प्रकृति को धारण किये हुए है।

योग विज्ञान में इस प्रकार की सिद्धि अष्टसिद्धियों की 'प्राप्ति' श्रेणी के अन्तर्गत आती है, जिसमें संकल्प शक्ति द्वारा किसी भी वस्तु को प्राप्त कर लेना अथवा एक को दूसरी में रूपान्तरित कर देना सम्पन्न किया जाता है। आज यह प्रक्रिया भले ही अविश्वसनीय और भ्रान्ति जैसी लगती हो, किन्तु है यह पूर्णतः विज्ञान सम्मत और निर्भ्रांत। यदा-कदा इसके उदाहरण भी देखने को मिलते रहते हैं।

स्वामी विशुद्धानन्द परमहंस प्रायः इस प्रकार के चमत्कार अपने शिष्यों को दिखाया करते थे, जिसकी चर्चा उनके प्रमुख शिष्य पण्डित गोपीनाथ कविराज ने यत्र-तत्र अपने ग्रन्थों में की है। एक बार क्वीन्स कालेज के फिजिक्स के प्राचार्य अभय चरण सान्याल की इच्छा पर विशुद्धानन्द ने उनकी इच्छित वस्तु लाल रंग का ग्रेनाइट पत्थर रूई से सूर्य विज्ञान द्वारा उनके समक्ष विनिर्मित कर दिया तो चमत्कृत रह गये। उनका सारा संशय जाता रहा। ऐसे ही एक अन्य अवसर पर उन्होंने अपने शिष्यों के सम्मुख गुड़हल फूल को गुलाब में परिवर्तित कर दिया था। वे कहा करते थे कि इस प्रकार का निर्माण न सिर्फ सूर्य विज्ञान द्वारा सम्भव है, वरन् दूसरे अनेक विज्ञानों यथा—चन्द्र विज्ञान नक्षत्र विज्ञान, वायु विज्ञान द्वारा भी सम्भव है और योग विज्ञान, द्वारा भी। वांछित पुष्प के सुगंध का सृजन तो वे स्पर्श मात्र से तत्काल कर देते थे और वह इतनी तीक्ष्ण और चिरस्थायी होती कि नहाने-धोने पर भी कई दिनों तक यथावत बनी रहती।

नाथ सम्प्रदाय के महान योगी गंभीरनाथ के बारे में प्रसिद्ध है कि जब वे गया प्रवास के दौरान कपिलधारा नामक स्थान पर साधनारत थे, तो माधव लाल नामक एक व्यक्ति अपनी व्यथा-कथा लेकर उनके समक्ष उपस्थित हुआ और असाध्य लम्बी बीमारी का उल्लेख कर फूट-फूट कर रो पड़ा। योगिराज का मन करुणा से विगलित हो गया। उन्होंने कुछ क्षण रुक कर बगल के पौधे से एक पत्ती तोड़ी। हाथ हवा में लहराया और उसे खा लेने के लिए माधव लाल को दे दिया। माधव लाल यही समझ रहा था, कि वह पत्ती ही होगी, पर जब हाथ में लिया, तो उसे अत्यन्त आश्चर्य हुआ। पत्ती पके अमरूद में बदल चुकी थी। उसके सेवन से वह रोगमुक्त हो गया।

शिरडी के साईं बाबा के बारे में प्रसिद्ध है कि एक बार उनके दीपक का तेल समाप्त हो गया। उन्होंने पास-पड़ोस के लोगों से इसकी याचना की, पर जब सभी ने देने से इन्कार कर दिया, तो उन्होंने मस्जिद के दीपक में पानी भर दिया। पानी, तेल बन कर जलता रहा।

प्रख्यात सन्त बुल्ला साहब तब बुलाकीराम हलवाहे थे। वे बिल्कुल अनपढ़ थे और गाजीपुर जनपद के एक जमींदार गुलाल साहब के यहाँ खेती-बारी का काम करते थे। उनकी प्रकृति बड़ी आध्यात्मिक थी। काम करते हुए भी चित्त भगवद्-स्मरण में ही लगा रहता। एक दिन नित्य प्रति की तरह खेत में हल चलाने गये। दो घण्टे पश्चात बैलों को कुछ आराम देने हेतु उन्हें हल में जुता छोड़ खेत में खड़ा कर दिया और स्वयं मेड़ में बैठ ईश-चिन्तन में लीन हो गये। इसी बीच गुलाल साहब आ पहुँचे। बुलाकीराम को गायब देख उन्होंने जोर-जोर की दो-तीन आवाजें लगायीं, पर बुलाकीराम ध्यान में इतने तल्लीन थे कि आवाज सुन न सके। जमींदार उन्हें कामचोर समझ कर आग बबूला हो उठे। नजदीक आये, तो पता चला बुलाकीराम मेड़ पर विश्राम कर रहे हैं और समीप आने पर पता चला वह हाथ में पानी युक्त लोटा लिए आँखें बन्द किये कुछ बुदबुदा रहे हैं। उन्हें हलवाहे की इस हरकत पर क्रोध आ गया और पीठ पर एक जोरदार लात जमायी। बुलाकीराम का ध्यान भंग हो गया। आघात खाकर लोटा हाथ से छिटक पड़ा और उससे दही सम्पूर्ण मेड़ पर छलक गया। पानी भरे लोटे से दही का गिरना देख गुलाल साहब हतप्रभ रह गये। जब बुलाकीराम से इसका रहस्य जानना चाहा, तो उत्तर

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

मिला कि वह थोड़ी देर के लिए सत्पुरुषों की सेवा में निमग्न हो गये थे। पत्तलों में सब कुछ परोसा जा चुका था। दही परोसने ही वाला था कि आपके प्रहार से ध्यान भंग हो गया और दही छलक पड़ा। पानी का दही बन जाना—इस घटना ने गुलाल साहब को अभिभूत कर दिया। वे हलवाहे बुलाकीराम के चरणों में गिर पड़े और उन्हें अपना गुरु बना लिया।

इस तरह की अगणित घटनाएँ सिद्ध सन्तों के चरितों में आये दिन घटते देखी-सुनी जाती हैं, जिन पर अविश्वास करने का कोई कारण दीख नहीं पड़ता फिर भी संशयी मन का ऊहापोह यथावत् बना रहता है। यों भौतिक विज्ञान भी पदार्थ रूपान्तरण की इस सम्भावना से सर्वथा इन्कार नहीं करता। वह कहता है कि कोई भी पदार्थ अपनी मूल सत्ता को मात्र अपनी निश्चित परमाणु-संख्या के कारण ही बनाये रहता है। यदि इस संख्या में किसी प्रकार फेरबदल कर पाना सम्भव हो, तो पदार्थों का रूपान्तरण भी असम्भव नहीं। उदाहरण के लिए लोहे के एक अणु में २६ परमाणु होते हैं। यदि इनकी संख्या को बढ़ा कर किसी भाँति ७९ कर दिया जाये, तो फिर लोहा, लोहा न रह कर सोना बन जायेगा। इसी प्रकार यदि इस संख्या को घटा कर क्रमशः २५, २४ या ३ कर दिया जाय, तो वह सर्वथा दूसरी वस्तु मैंगनीज, क्रोमियम, लिथियम बन जायेगा। यह और बात है कि भौतिकशास्त्र अब तक कोई ऐसी विधा विकसित नहीं कर सका है, जिससे पदार्थों के परमाणुओं को घटाना-बढ़ाना सम्भव हो सके। योगशास्त्र के पास ऐसी गूढ़ और सुनिश्चित प्रक्रिया है, जिसके द्वारा वह अशक्य लगने वाला यह कार्य सम्पादित कर लेता है, फलतः वस्तुओं का रूपान्तरण सम्भव बन पड़ता है। अस्तु इसमें शक की तनिक भी गुंजायश नहीं है—ऐसा आधुनिक विज्ञान का मानना है। प्राचीनकाल में कीमियागीरों को लोहा से सोना बनाने में कदाचित कोई सफलता मिली हो, तो उसमें परमाणु-संख्या की न्यूनाधिकता को ही जिम्मेदार ठहराया जा सकता है—ऐसा वैज्ञानिकों का सुनिश्चित मत है।

इस आधार पर यह कहा जा सकता है कि योग विज्ञान में वस्तु-रूपान्तरण की जो घटनाएँ दिखाई पड़ती हैं, वह कोई कपोल-कल्पना, सम्मोहन अथवा हस्तकौशल न होकर पूर्णतः विज्ञान सम्मत प्रक्रिया है।

सिद्धपीठों से जुड़ी गुह्य विज्ञान की विधा

बात उन दिनों की है, जब द्वितीय विश्व युद्ध चल रहा था। दो जर्मन पर्यटक भारत-यात्रा पर आये हुए थे। इसी मध्य युद्ध छिड़ गया। उन्हें इस बात की चिंता सताने लगी की भारत पर शासन कर रही ब्रिटिश सरकार कहीं बंदी न बना ले, अस्तु हिमालय होते हुए तिब्बत भाग जाने का दोनों ने फैसला किया और सम्पूर्ण युद्धकाल वहीं बिताने की सोची। जब वे सुदूर हिमालय के तिब्बत वाले क्षेत्र में पहुँचे, तो वहाँ उन्होंने एक साधन सम्पन्न मठ देखा, जहाँ विज्ञान जगत की समस्त सुविधाएँ मौजूद थीं। आश्रमवासी इस शर्त पर उन्हें रहने देने को राजी हुए कि लड़ाई समाप्ति के तुरंत बाद वे वहाँ से चले जायेंगे। अनुबन्ध स्वीकार लेने पर उन्हें रहने की अनुमति मिल गई। वे आराम से रहने लगे। कुछ काल पश्चात जब लड़ाई समाप्त हुई, तो पैदल वे भारत की ओर चल पड़े। दुर्भाग्यवश रास्ता भटक जाने के कारण बरमा जा पहुँचे। वहाँ चर्चा मध्य जब उन दोनों ने मठ और वहाँ के विकसित विज्ञान की बातें बतायीं, तो लोगों को सहसा विश्वास नहीं हुआ। कुछ ने उसे देखने की इच्छा व्यक्त की, तो दोनों जर्मन वहाँ ले चलने को तैयार हो गये।

जब वहाँ पहुँचे, तो वे आश्चर्यचकित रह गये। वही वृक्षावली, वही पर्वत शिखर, वही झरना और वही शिला-खण्ड, जहाँ वे अपना अधिकांश समय बातें करते बिताते। सब कुछ वही था, पर वह विशाल मठ गायब था। न जाने इस अल्प अंतराल में वह कहाँ अन्तरध्यान हो गया था।

यहाँ चर्चा किसी जादू या तिलिस्म की नहीं, वरन् उस विज्ञान की, की जा रही है, जिसे सर्वसाधारण 'गुह्यविद्या' के नाम से जानते हैं। यह विद्या वस्तुतः है क्या ? संक्षेप में कहें, तो वह विज्ञान, जिसके द्वारा असम्भव को सम्भव कर दिखाने का अनोखा कौशल प्रदर्शित किया जाता है। योगियों में जब यह विद्या संपूर्ण रूप में प्रकट होती है, तो उनमें ऐसी अनेकों क्षमताएँ मूर्तिमान होने लगती हैं, जो सामान्य बुद्धि को आश्चर्य और अचम्भे में डाल देती हैं। यह सिद्धावस्था है। इस अवस्था की एक प्रमुख विशेषता यह है कि इसमें अनेक सिद्धियों के अतिरिक्त साधक में इच्छानुसार दृश्य-अदृश्य होने की अपूर्व क्षमता पैदा हो जाती है।

उपरोक्त प्रसंग के संदर्भ में यहाँ यह संदेह पैदा हो सकता है कि सिद्ध-संतों के जीवन में आविर्भाव-तिरोभाव की घटना तो सर्वविदित है, पर सर्वथा जड़ कहलाने वाली भूमि में यह विशेषता कैसे पैदा हो सकती है ? यह कैसे शक्य है कि पृथ्वी का कोई खण्ड, विशेष अथवा उस पर का निर्माण आवश्यकता पड़ने पर इन्द्रियग्राह्य हो जाय और अन्य समय में अदृश्य स्तर का बना रहे ? इस संबंध में 'ज्ञानगंज' नामक हिमालय स्थित गुह्य स्थान के विषय में अपनी पुस्तक में स्पष्टीकरण करते हुए पं. गोपीनाथ कविराज लिखते हैं कि सिद्धाश्रम साधारण लौकिक आश्रमों जैसा नहीं होता, न तो सभी को सब समय दिखाई पड़ता है। यदि कभी किसी को यह दृष्टिगोचर हो जाय, तो इसे आश्रमवासी परमहंसों की परम कृपा ही समझनी चाहिए, अन्यथा बाकी समय में यह भूमियाँ सामान्य स्तर और स्थिति वालों के लिए अग्राह्य जैसी बनी रहती हैं। यही कारण है कि साधारण पर्यटक से लेकर तीर्थयात्री तक कोई भी इसका पता नहीं पा पाते। वे कहते हैं कि स्थूल भूमि में अवस्थित रहने पर भी वह ठीक भौतिक स्थान नहीं है, अथवा यों कहा जाय कि वह न तो स्थूल है, न सूक्ष्म, जबकि एक साथ स्थूल और सूक्ष्म दोनों ही हैं, तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी।

अपने देश में इस प्रकार की कितनी ही भूमियाँ हैं। एक ऐसी ही सिद्ध भूमि का उल्लेख कर्नल आलकॉट ने अपनी रचना 'ओल्ड डायरी लेवेस' में किया है। घटना बम्बई की है। एक बार आलकॉट और थियोसोफी की संस्थापिका मैडम ब्लैवट्स्की घूमने निकले। कुछ दूर चलने के उपरांत ब्लैवट्स्की ने अचानक एक स्थान पर गाड़ी रुकवायी। कर्नल से गाड़ी पर

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

रुकने को कहकर स्वयं उतर पड़ीं और यह कहते हुए सामने के मठ में चली गईं कि "अभी आती हूँ।"

आलकॉट ने देखा कि पास ही एक विशाल मठ है। ब्लैवट्स्की मठ के अन्दर चली गई। थोड़ी देर पश्चात् बाहर निकलीं तो हाथ में फूलों की कई मालाएँ थीं, उनमें से एक उन्होंने आलकॉट को दी।

अगले दिन आलकॉट अकेले घूमने निकले और घूमते हुए उसी स्थान की ओर निकल पड़े। उन्हें यह देख कर अत्यन्त आश्चर्य हुआ कि एक दिन पूर्व जिस भव्य मठ को स्वयं अपनी आँखों से देखा था, आज वह नहीं था। मठ के स्थान पर मात्र एक उद्यान दिखाई पड़ा जिसमें दो माली काम कर रहे थे। ड्राइवर से इस बारे में पूछने पर इन्कार करते हुए उसने कहा कि इस स्थान पर कभी कोई मठ था ही नहीं। आपको भ्रम हो रहा है। बाद में उक्त रहस्य को आलकॉट ब्लैवट्स्की द्वारा ही समझ सके।

एक अन्य घटना की चर्चा साधु-दर्शन तथा सत्प्रसंग (प्रथम-खण्ड) ग्रन्थ में पं. गोपीनाथ ने की है। प्रसंग केदार नामक एक बालक से सम्बन्धित है। वे लिखते हैं कि एक शाम केदार के पास एक योगी पुरुष आये और एक स्थान का पता बताते हुए दूसरे दिन वहाँ आकर मिलने को कहा। मार्ग के बारे में पूछे जाने पर विस्तारपूर्वक बालक को बता दिया और यह भी कहा कि आगे का रास्ता वहाँ से स्वतः मालूम हो जायेगा।

अगले दिन नियत समय पर निश्चित स्थान विश्वेश्वरगंज तक बालक निर्देशानुसार आ पहुँचा। वहाँ सामने एक विस्तृत मैदान था। विश्वेश्वरगंज से मैदान की ओर एक पगडंडी जाती थी। वह किसी अज्ञात प्रेरणा से उसी ओर मुड़ गया। समीप पहुँचा, तो देखा कि मैदान के मध्य एक बड़ी शिला है। उस पर एक दिव्य पुरुष विराजमान हैं। उनके दर्शन से केदार के मन में यह भाव आया कि इन्होंने ही बुलाया है। समीप जाने पर उन महापुरुष ने उसे बैठने का इशारा किया और कुछ रहस्यमय प्रसंग समझाने लगे। चर्चा देर तक चलती रही। काफी समय हो जाने पर महापुरुष ने केदार से यह कहते हुए प्रस्थान करने को कहा कि उसके घर के लोग उसकी अनुपस्थिति के कारण चिंतित हो रहे हैं। इसके साथ ही उन्होंने सामने की ओर अपनी भुजा बढ़ा दी। तत्क्षण दूरदर्शन के दृश्य की तरह उसका घर, माँ, बहन, भाई एवं उनकी बातचीत दृश्यमान हो उठे। वे उन्हीं की चर्चा कर रहे थे। इसके बाद उन्होंने हाथ हिलाया और दृश्य तिरोहित हो गया। केदार के यह पूछने पर कि इस समय वे किस स्थान पर हैं ? भव्य पुरुष ने जवाब दिया कि यह एक ऐसा स्थान है, जहाँ से समस्त विश्व अत्यन्त निकट है।

इसके पश्चात केदार ने प्रणाम किया और चल पड़ा। उसका विश्वास था कि मैदान पार करते ही वह विश्वेश्वरगंज पहुँच जायेगा, पर ऐसा न हो सका। पगडंडी समाप्त करने पर उसने स्वयं को इलाहाबाद रोड पर पाया, जहाँ से विश्वेशगंज लगभग तीन मील दूर था। वह गया था पूर्व की ओर, पर लौट रहा था पश्चिम की ओर से। इतना ही नहीं, हर बार उसके लौटने के स्थान और दिशा भिन्न-भिन्न होते। उल्लेखनीय है कि विश्वेश्वरगंज के समीप जिस मैदान की चर्चा की गई है, उसे केदार ने इससे पूर्व कभी नहीं देखा था, यद्यपि वह इस ओर कई बार आ-जा चुका था। कदाचित वह भी कोई सिद्ध भूमि हो और अधिकार-भेद के हिसाब से दृश्य-अदृश्य बनने की उसमें सामर्थ्य हो, इस बात से सर्वथा इन्कार नहीं किया जा सकता।

ऐसे ही एक विलक्षण स्थान का वर्णन 'ब्रह्माण्डोनो भेद' नामक गुजराती ग्रन्थ में मौजूद है। उसमें 'सत्यज्ञानाश्रम' नाम के हिमालय के तिब्बत वाले भाग में स्थित एक सिद्धाश्रम का उल्लेख है। बताया जाता है कि यहाँ ज्ञान-विज्ञान की अद्भुत उन्नति हुई है। एक रोम पर्यटक ने इस मठ का वर्णन अपनी पुस्तक में किया है। एक अन्य ग्रीक यात्री ने भी इस गुप्त स्थान के बारे में लिखा है कि ऐसा विलक्षण स्थान शायद पृथ्वी में अन्यत्र न हो। आज से लगभग ३०० वर्ष पूर्व फेंग्लियान नामक एक चीनी विद्वान ने इस दुर्गम हिमालय का वृत्तांत प्रस्तुत करते हुए लिखा है कि यहाँ के एक रहस्यमय मठ में अद्भुत यौगिक क्रियाएँ होती हैं, जिनके बल पर वहाँ के योगी दिव्य शक्ति सम्पन्न बन सके हैं। इन सभी विवरणों से ज्ञात होता है कि हिमालय का वह अलौकिक आश्रम अनेक प्रकार की परा-अपरा विद्याओं का अनुपम भाण्डागार है। कायाकल्प की अनूठी प्रक्रिया द्वारा वृद्ध देह को तरुण बना लेना, समूचे संसार को एक स्थान पर बैठे-बैठे हस्तामलकवत् देख लेना, वैज्ञानिक यंत्रों के बिना दुसाध्य रोगों, अंग-भंगता एवं विकलांगता को दूर कर देना, भौंडे शरीर गठन को रूपलावण्यमय बना देना जैसी कितनी ही लौकिक-अलौकिक विद्याएँ वहाँ अब भी संरक्षित हैं। यह भी उल्लेख मिलता है कि वायु दुर्ग जैसी अदृश्य संरचनाओं के निर्माण में वहाँ के योगीगण सिद्धहस्त हैं।

हिमालय स्थित एक इसी प्रकार की सिद्धपीठ का उल्लेख काशी के प्रसिद्ध संत स्वामी विशुद्धानन्द परमहंस अपनी वार्तालापों में अक्सर किया करते थे, जिसका उल्लेख यत्र-तत्र पं. गोपीनाथ कविराज ने अपनी पुस्तकों में किया है। इस आश्रम का विवरण देते हुए वे कहते थे कि इसका दर्शन प्रायः वही लोग प्राप्त कर पाते हैं, जो वहाँ के महापुरुषों की अनुकम्पा अर्जित करने में सफल होते अथवा वैसे लोग जो स्वयं योग विज्ञान में गूढ़ गति रखते हों। उनके अनुसार वहाँ योग के अतिरिक्त नाना प्रकार के प्राकृतिक विज्ञान की शिक्षा योगार्थियों को दी जाती है। आचार्यगणों में शताब्दियों लम्बी उम्र वाले योगी और दीर्घायुष्य प्राप्त विज्ञानवेत्ता वहाँ के उपाध्याय और संरक्षक हैं। इनके अतिरिक्त अनेक ब्रह्मचारी, ब्रह्मचारिणी, संन्यासी, परमहंस, भैरवी और कुमारियाँ वहाँ रहते हैं। सभी लम्बी वय वाले हैं। इसकी भौगोलिक स्थिति के बारे में वे कहा करते थे कि हिमालय में यह स्थल कैलास मानसरोवर से भी दूर है। ठीक-ठीक स्थान का पता होने पर भी सामान्यजन इसका संधान नहीं कर सकते, क्योंकि सर्वसाधारण की दृष्टि से यह सदा ओझल बना रहता है।

बंगाल के विख्यात संत राम ठाकुर भी बातचीत के दौरान हिमालय स्थित कितने ही सिद्ध स्थलों के बारे में बताया करते

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

थे। अपनी चर्चा में वशिष्ठाश्रम एवं योगेश्वर आश्रम जैसे सिद्ध स्थानों का अक्सर वे उल्लेख किया करते थे। योगेश्वर आश्रम के सम्बन्ध में उनका कहना था कि वहाँ स्फटिक निर्मित एक विशाल शिवलिंग है, जिसके चारों ओर एक अपार्थिव शुभ्र ज्योति फैल कर उसे आलोकित करती रहती है। उस सुन्दर शिवलिंग पर ध्यान जमाये एक अपरूप सुन्दरी न जाने कब से ध्यानस्थ है। कौशिकी सिद्धाश्रम के विषय में वे बताते थे कि वह बड़ा ही रहस्यमय आश्रम है। सम्पूर्ण मठ शिला निर्मित है। वहाँ दस महातापस सदियों से तपस्यारत हैं, जबकि वहाँ के शेष तीन योगी जागतिक कल्याण के निमित्त भ्रमण कर रहे हैं। उनका कहना था कि सामान्य लोगों की दृष्टि में यह आश्रम अगोचर बने रहते हैं और सिर्फ अधिकारी पुरुषों को ही दृश्यमान हो पाते हैं। राम ठाकुर के इन प्रसंगों का जिक्र बंगाल के प्रसिद्ध लेखक नवीन चन्द्र सेन ने 'आमार जीवन' नामक अपनी आत्मकथा के 'प्रतारक ना प्रवंचक' नामक चतुर्थ अध्याय में किया है।

चटगाँव (अब बँगला देश में) स्थित जगतपुरा आश्रम के प्रतिष्ठाता पूर्णानन्द परमहंस के बारे में प्रसिद्ध है कि उन्होंने तिब्बत के मतंगाश्रम नामक सिद्ध मठ में वर्षों तक योग की शिक्षा प्राप्त की थी। बाद में वहाँ की अद्भुतता से आकर्षित होकर योग के अनेक देशी-विदेशी जिज्ञासुओं ने शिक्षा प्राप्त करने के उद्देश्य से उस ओर प्रस्थान किया, पर स्थान का संधान न पा सके। इनमें से कइयों की रास्ते में मृत्यु हो गई और कई निराश होकर लौटे।

भारतीय संस्कृति में चौदह लोकों की अवधारणा प्रसिद्ध है। इनमें से एक मात्र पृथ्वी ही सर्वसाधारण के अवलोकन योग्य स्थूल है। शेष सभी की अवस्था द्वैतयुक्त है। वे एक साथ स्थूल-सूक्ष्म दोनों हैं। सामान्य मनुष्यों के लिए जहाँ उनकी सत्ता अदृश्य स्तर की बनी रहती है, वहीं अधिकारी पुरुष उनका और उनमें निवास करने वाले देवपुरुषों का स्थूल संरचना की तरह दर्शन करते रहते हैं। इतना ही नहीं, उन-उन लोकों में उनका अप्रतिहत आवागमन भी होता रहता है। विज्ञान ने इनमें से पाँच ही आयामों की सम्भावना को स्वीकार किया है, जबकि शेष का अन्वेषण जारी है।

विवेकानन्द ने भुवन सम्बंधी भारतीय दृष्टिकोण का स्पष्टीकरण करते हुए एक स्थान पर कहा है कि 'लोक' से कदापि यह नहीं समझा जाना चाहिए कि यह किन्हीं ग्रहों में स्थित हैं। चन्द्रलोक, बुधलोक, बृहस्पतिलोक जैसे नामों से प्रकारान्तर से उन्हीं सूक्ष्म भूमियों को शास्त्रकारों ने अभिहित किया है, जो हमारे ही इर्द-गिर्द हैं। स्तर-भेद के हिसाब से उन्हें भिन्न-भिन्न नाम दिया गया है। इन नामों से किसी को यह अर्थ नहीं लगा लेना चाहिए कि उक्त लोक उस-उस नाम के स्थूल ग्रह से सम्बंधित हैं। इन ग्रहों में से कइयों की खोजबीन की जा चुकी है। वे पृथ्वी जैसे ही जड़ पिण्ड हैं। ऐसे में उन ग्रहों से उनकी संगति बिठाना ठीक नहीं। इस स्थिति में विवेकसंगत स्थापना यही हो सकती है कि ये सभी वैसी ही सूक्ष्म भूमियाँ हैं, जैसी भूमियों की चर्चा बौद्ध ग्रन्थों में 'बुद्ध क्षेत्रों' के नाम से की गई है।

यह सुस्पष्ट हो जाने के उपरांत इतना मान लेने में कोई दुराग्रह नहीं होना चाहिए कि सूक्ष्म भुवनों की तरह सिद्धाश्रम भी छोटे स्तर की भूमियाँ हैं, जो स्थूल-सूक्ष्म दोनों हैं और इसी पृथ्वी पर स्थित हैं। यदि अपने जीवन को, आचरण को, चिन्तन और भावनाओं को शोधित-परिष्कृत कर इस योग्य बनाया जा सके कि उनमें देवपुरुषों के अनुग्रह को आकर्षित करने की क्षमता पैदा हो जाय, तो निश्चय ही हममें से प्रत्येक देवभूमियों के दिव्य-दर्शन का सौभाग्य प्राप्त करने में सफल हो सकेगा, जो अब तक श्रेष्ठ पुरुषों के अधिकार क्षेत्र के अंतर्गत आते रहे हैं। यही नहीं, उस मनोभूमि में पहुँचने पर जो आध्यात्मिक लाभ ऋद्धि-सिद्धियों को रूप में सम्भव हैं, हस्तगत हो पाना इस माध्यम से शक्य हो सकता है। प्रचंड आध्यात्मिक पुरुषार्थ से यह असम्भव भी नहीं है।

सिद्धियों को जानने के लिए, चलें एक दूसरे आयाम में

काल-खण्ड तीन हैं—भूत, वर्तमान और भविष्य। इनका अस्तित्व सिर्फ इस कारण है कि सृष्टि और समय की गति में जमीन आसमान जितना अंतर है, यदि इस मध्यांतर को मिटा दिया जाय, तो काल के विभाग भी स्वतः समाप्त हो जायेंगे। फिर जो शेष बचेगा, वह वर्तमान के अतिरिक्त कुछ नहीं होगा।

यह वर्तमान और सद्यः समय दोनों एक ही हैं। जगत की हर क्रिया वर्तमान से आरम्भ होती है, पीछे वह अतीत बन जाती है। जीवन का प्रादुर्भाव वर्तमान है। तत्पश्चात उसकी गति काफी मंद पड़ जाती है और समय बहुत आगे निकल जाता है, फलतः वह आगत-अनागत के दो अतिरिक्त खंडों में बँट जाता है। संसार की समस्त घटनाएँ सारी गतिविधियाँ ऐसी ही हैं, वह समय के सापेक्ष होती हैं, निरपेक्ष यहाँ कुछ भी नहीं। जो निरपेक्ष है, वह मात्र ईश्वर है और ईश्वर समय से बँधा नहीं। जो काल से मुक्त है, उसके लिए काल-खंडों का कोई अस्तित्व नहीं। जहाँ इनकी सत्ताएँ हैं, वहाँ काल और घटनाक्रमों की गति-भिन्नता भी स्पष्ट है। कई बार इस भिन्नता को मिटाते हुए मनुष्य जब समय की गति के साथ चल पड़ता है, तो वह अनागत में पहुँच जाता है और कितनी ही बार उक्त भिन्नता को बढ़ाते हुए गति धीमी करता है, तो वही भूतकाल का प्रवेश द्वार बन जाता है। प्रायः ऐसे कौशल सूक्ष्म-जगत में गति रखने वाले आध्यात्मिक पुरुष ही कर पाते हैं, पर अनेक अवसरों पर यह सब आम आदमियों में भी अनायास सम्पन्न होता देखा जाता है।

ऐसी ही एक घटना का उल्लेख मार्टिन एबोन ने अपनी पुस्तक 'प्रोफेसी इन आवर टाइम' (पृ. १४२) में किया है। प्रसंग ४ सितम्बर १९५६ का है। इंगलबुड, कैलिफोर्निया निवासी श्री एवं श्रीमती पाल मैककैहन उक्त दिन जल्दी ही 'ग्रैंड केन्यॉन' (अमेरिका का एक दर्शनीय स्थल) पहुँच गये। जब शाम घिरने को आयी, तो उन्होंने एक महिला को उसके पति और बच्चे के साथ देखा, जो अपना सामान लिए पास से गुजर रहे थे। श्रीमती मैककैहन ने उस स्त्री को पहचान लिया। वह उनकी एक

परिचिता श्रीमती नैश थीं, जिसके साथ पिछले ही साल उन्होंने यात्रा की थी। मैककैहन की पत्नी ने सोचा कि श्रीमती नैश अभी बहुत थकी होंगी, इसलिए उन्होंने उस परिवार से तत्काल मिलने का विचार त्याग दिया।

इस सम्बंध में 'अमेरिकन सोसायटी फॉर साइकिकल रिसर्च' की अपनी रिपोर्ट में वे लिखती हैं कि दूसरे दिन प्रातः उन्होंने उसे बरामदे में बैठी देखा। मैककैहन दंपति वहाँ गये और बातें करने लगे। प्रसंगवश जब उन्होंने नैश परिवार से यह बात कही कि कल ही उन्होंने उन सब को आते हुए देख लिया था, पर यात्रा की थकान के कारण कष्ट देना उचित नहीं समझा, तो श्री और श्रीमती नैश आश्चर्यचकित रह गये। उन्होंने विस्मय प्रदर्शित करते हुए बताया कि वे तो अभी-अभी यहाँ बस से आये हैं। कल तो वे अन्यत्र थे। इस पर बीच में ही हस्तक्षेप करते हुए श्री मैककैहन ने कहा कि उन्होंने भी उन सब को देखा था और जब दृष्टि पड़ी, तब दोनों के बीच की दूरी मुश्किल से दस फुट रही होगी, पर नैश परिवार उनकी बात को आश्चर्य के साथ इंकार करते रहे और यही कहते रहे कि वे अभी-अभी यहाँ आये हैं। सम्भव है मैककैहन दंपति ने भविष्य दर्शन किया हो। किन्तु जो वे कह रहे थे वह सत्य था क्योंकि प्रत्येक दृश्य जो बताया गया वैसा ही था।

एक ऐसी ही घटना की चर्चा करते हुए माइनर ब्रूस अपने ग्रंथ 'साइलेंट सिटी ऑफ अलास्का' में लिखते हैं कि सन् १८९७ की गर्मियों में ड्यूक ऑफ एब्रूजी के नेतृत्व में एक यात्री दल ने अलास्का की तटवर्ती पहाड़ियों सेंट एलियास की यात्रा की। पर्वतारोहण दल जब पहाड़ के मध्य के समतल मैदान में पहुँचा तो वहाँ उन्हें एक पुराने शहर का भव्य दृश्य दिखाई पड़ा। यात्री दल के एक सदस्य सी. डब्ल्यू. थार्नटन का कहना था कि शहर की इमारतें, गलियाँ, वृक्षावलियाँ सब कुछ इतना सुस्पष्ट थीं कि उसे भ्रम या दिवास्वप्न कहना उचित न होगा। वे लिखते हैं कि अभियान दल जब उसका निकट से निरीक्षण करने पहुँचा, तो दृश्य अचानक विलुप्त हो गया। इस दिव्य दृश्य के बारे में दल के सदस्यों में परस्पर मतभेद था। कुछ का मानना था कि वह प्राचीन ब्रिस्टल शहर (इंग्लैण्ड) का दृश्य था, जबकि अन्य सदस्य इससे सहमत नहीं थे। उनके अनुसार यह प्राचीन अलास्का की एक झलकी थी। कुछ भी हो, इतना सुनिश्चित है कि उन्होंने जो कुछ देखा, उसका वर्तमान में कोई अस्तित्व नहीं है। सेण्ट एलियास पहले भी निर्जन था और अब भी आबादी रहित जनहीन क्षेत्र है। प्रत्यक्षदर्शियों के अनुसार वहाँ हर वर्ष २१ जून से १० जुलाई के बीच उस अज्ञात शहर का दिव्य दर्शन किया जा सकता है। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि उक्त अवधि में लोग समयावरोध को लाँघ कर पीछे चलते हुए उसके गर्भ में उतरते और अतीत की झाँकी करते हैं।

क्या यह सम्भव है ? हाँ, अब विज्ञान भी इस बात को स्वीकार करता है कि ऐसा सर्वथा अशक्य भी नहीं। उसके अनुसार समय के अनेक आयाम हैं। जब किसी वस्तु, व्यक्ति अथवा स्थान से संबंधित समय के उच्च आयाम में व्यक्ति आयासपूर्वक अथवा अनायास पहुँच जाता है, तो वह उस वस्तु, व्यक्ति अथवा स्थान से संबंधित भूत और भविष्य की बातें जान लेता हैं। दूसरे शब्दों में कहें, तो व्यक्ति अतीत एवं भविष्य के गर्भ में प्रवेश कर जाता है। ऐसा इसलिए होता है, क्योंकि समय भूत, वर्तमान एवं भविष्य के एक रैखिक क्रम में स्थित है। विज्ञानवेत्ताओं का कहना है कि समय का यह एक आयाम हुआ। अपनी दूसरी भूमिका में अतीत, वर्तमान और भविष्य साथ-साथ रहते हैं। यदि सचमुच ऐसा हैं, तो फिर उन आयामों तक पहुँचा कैसे जाय, जहाँ एक समय में तीनों काल खण्ड एक साथ रहते हों ? वैज्ञानिकों का इस सम्बंध में सुनिश्चित मत है कि इन अविज्ञात स्तरों तक उन आयामों द्वारा आसानी से पहुँचा जा सकता है, जो हमें ज्ञात हैं, अर्थात् लंबाई, ऊँचाई और गहराई। इन तक एक प्रारंभिक बिन्दु द्वारा पहुँचा जा सकता है—एक ऐसा बिन्दु, जिसमें स्थान तो होता है, पर आयाम नहीं। इसे निम्न प्रकार से समझा जा सकता है।

यदि कोई कण आकाश (स्पेस) में गतिशील हो, तो उससे एक आयामीय रेखा का निर्माण होता है। यह आयाम लंबाई है। जब इस प्रकार की कोई रेखा आकाश से गुजारी जाय, तो उससे लंबाई और चौड़ाई का दो आयामीय तल विनिर्मित होगा। यदि ऐसे किसी तल को पुनः आकाश में परिभ्रमण कराया जाय, तो जिस आकृति की संरचना होती है, उसके लम्बाई, चौड़ाई (या ऊँचाई) और गहराई तीन आयाम होंगे। क्रिया इसके विपरीत भी सम्पन्न की जा सकती है। यदि गति उलटी कर दी जाय, तो त्रिआयामीय भूमिका से पुनः प्रारंभिक बिन्दु पर पहुँचा जा सकता है। विशेषज्ञों का कहना है कि किसी ऐसी वस्तु की, जिसके तीन आयाम हों, अनुप्रस्थ काट (क्रॉस सेक्शन) काटी जाय, तो उससे दो आयामों वाला तल प्राप्त होगा। फिर इस तल की अनुप्रस्थ काट से एक आयामयुक्त लाइन प्राप्त होगी। यदि आगे पुनः इसे अनुप्रस्थ रूप से काटा जाय, तो जिस बिन्दु की उपलब्धि होगी, वह सर्वथा आयाम रहित कण मात्र होगा।

इस तरह यह निष्कर्ष आसानी से निकाला जा सकता है कि तीन डायमेन्सनों वाला पदार्थ किसी चार आयामों वाली वस्तु की अनुप्रस्थ काट है। जब ऐसी किसी त्रिआयामी वस्तु को एक विशिष्ट तरीके से, विशिष्ट दिशा में भ्रमणशील बनाया जाय, तो वह एक चार आयामों वाला पदार्थ का निर्माण करेगी। यहाँ यह प्रश्न उठ सकता है कि वह किस प्रकार की वस्तु होगी, जिसकी अनुप्रस्थ काट में तीनों डायमेन्सन्स उपस्थित हों एवं उसे किस विशिष्ट दिशा में चलायी जाय कि उससे चार प्रकार की भूमिकाओं का निर्माण हो ? क्योंकि आगे-पीछे, ऊपर-नीचे, दायें-बायें इस प्रकार की गतियाँ केवल बृहद् आकृतियों का सृजन करती हैं, किसी नये आयाम का नहीं। इसके उत्तर में वैज्ञानिक कहते हैं कि चूँकि समयावधि एक नवीन भूमिका है, अतः हर आयामों वाले पदार्थ का चौथा आयाम इसे माना जा सकता है। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि प्रत्येक त्रि-आयामी पदार्थ चार आयामों वाला होता है और ऐसी सभी वस्तुओं की विवेक संगत परिभाषा यही हो सकती है कि उनके दृश्य तीन ही आयाम हैं—लम्बाई, चौड़ाई और गहराई, जब कि समयावधि का चतुर्थ डायमेन्सन अदृश्य स्तर का बना रहता है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

तो क्या इस तरह की अवस्था और वस्तु सम्भव है ? विशेषज्ञ इसका उत्तर 'हाँ' में देते हुए कहते हैं कि यह शक्य तो है, पर केवल परिकल्पना स्तर पर ही, क्योंकि वास्तव में बिन्दु, रेखा और तल का यथार्थ अस्तित्व सदा उसी रूप में बना नहीं रहता। किसी लाईन के, जब वह गत्यात्मक अवस्था में आ जाय, तो लम्बाई के साथ-साथ उसमें चौड़ाई (और समयावधि भी) हो सकती है, जैसा कि किसी तल के गतिमान बनने पर लम्बाई, चौड़ाई के साथ-साथ उसमें मोटाई भी आ उपस्थित होती है। सवाल यह शेष रह जाता है कि ऐसे किसी द्रव्य (त्रिआयामी) की गति क्या हो कि वह चतुर्थ आयाम वाले पदार्थ को जन्म दे ?

विज्ञान विशारदों का इस संदर्भ में विचार है कि जब किसी वर्गाकार तल को ऊँचाई के आयाम में (ऊपर-नीचे) चलाया जाता है, तो इससे घन की उत्पत्ति होती है। ऐसे ही यदि उक्त (परिकाल्पनिक) घन को समय के आयाम में गति दी जाय, तो जिस आकृति का जन्म होगा, वह एक चार डायमेन्सन वाली संरचना होगी।

यहाँ 'समय के आयाम में गति' का तात्पर्य भली-भाँति समझ लेना आवश्यक है। जैसा कि पहले कहा जा चुका है इसका अर्थ एक अभिनव दिशा में गति से है, न कि पार्श्व, ऊर्ध्व और अधोगतियों से। शंकालु हृदय में यहाँ यह संदेह पैदा हो सकता है कि ऐसी दूसरी गतियाँ हैं क्या ? उत्तर में यही कहा जा सकता है कि ऐसी कई ज्ञात गतियाँ हैं और अनेक अविज्ञात गतियों की सम्भावना विज्ञान जगत में प्रकट की जाती है। उदाहरण के लिए एक तो वह वेग हो सकता है, जो हर प्राणी और पदार्थ को पृथ्वी से मिलता है। इस प्रकार प्रत्यक्ष रूप से वेग रहित होने के बावजूद उन्हें वेगवान कहा जा सकता है। यह प्रच्छन्न गति है। इस तरह यह मानने में हर्ज नहीं कि त्रिआयामी दृश्य एक यथार्थ वस्तु की परिकाल्पनिक रूप से गति रहित अनुप्रस्थ काट है, जिसका चौथा आयाम-अवधि, पृथ्वी की उस दैनिक गति से अविच्छिन्न रूप से संलग्न है, जो हर पृथ्वीवासी पदार्थ और प्राणी को उक्त ग्रह से मिलती रहती है। इसके अतिरिक्त अन्य गतियाँ हैं—पृथ्वी की सूर्य के चारों ओर परिभ्रमण गति, सूर्य द्वारा किसी महासूर्य की परिक्रमा गति एवं अपनी आकाश गंगा द्वारा किसी अन्य अविज्ञात केन्द्र की प्रदक्षिणा गति। चूँकि प्रत्येक दृष्ट पदार्थ पर यह गतियाँ साथ-साथ क्रियाशील हैं, अतः यह कहा जा सकता है कि उन सभी को उक्त सारे आयाम उपलब्ध हैं। यह बात और है कि सामान्य स्थिति में उनकी अनुभूति नहीं हो पाती, पर इतने से ही सत्य और तथ्य से इन्कार तो नहीं किया जा सकता। इतना स्वीकार लेने के उपरांत इस यथार्थ को मान लेने में कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए कि उपरोक्त गतियों और आयामों को समय के परिप्रेक्ष्य में ही जाना, समझा और अनुभव किया जा सकता है। चूँकि समय-संदर्भ के अतिरिक्त इनकी अनुभूति और कोई उपाय नहीं, अस्तु इन सबको सरलता के लिए 'समय का आयाम' कहा जाता है।

यहाँ यह जिज्ञासा हो सकती है कि अवधि यदि समय का एक पक्ष है, तो इसके दूसरे अन्य पहलू क्या होंगे ? इस सम्बन्ध में इस विषय के निष्णात विभिन्न प्रकार की सम्भावनाओं में से जिन सम्भाव्यताओं के बारे में अपना मत प्रकट करते हैं, वे हैं—दृश्य-अदृश्य एवं परिवर्तन व पुनरावृत्ति की घटनाएँ। वैज्ञानिकों का कहना है कि समय के अगणित पहलुओं में से मात्र 'अवधि' ही एक ऐसी हैं, जो मानवी इंद्रियों के लिए ग्राह्य है। जब किसी वस्तु के सम्बंध में यह कहा जाता है कि उसका आविर्भाव हुआ, तो इसका आशय मात्र इतना होता है कि हमें अकस्मात उसके अस्तित्व का पता चला। ऐसे ही किसी के तिरोभाव से उसकी अस्तित्वहीनता का बोध होता है, किन्तु जन्म-मरण की मध्यावस्था इंद्रियगम्य नहीं है। उसे इंद्रियों द्वारा जाना नहीं जा सकता। यदि अनुभूति की जा सकती है, तो मात्र समयावधि के परिप्रेक्ष्य में ही वह सम्भव है। इसी प्रकार परिवर्तन को भी देखा नहीं जा सकता। जो दिखाई पड़ता है, वह परिवर्तनों का समुच्चय होता है। सूर्योदय-सूर्यास्त, ऋतुओं का गुजरना, पौधों एवं बच्चों का बढ़ना आदि ऐसी घटनाएँ हैं, जिन्हें हम देख नहीं पाते, किन्तु फिर भी यह घटित तो होती ही हैं। इसीलिए इन्हें परिकाल्पनिक माना जाता है और ऐसा स्वीकार किया जाता है कि समय के किसी अन्य आयाम में इनका वास्तविक अस्तित्व है, वैसे ही जैसे किसी परिकाल्पनिक त्रिआयामी वस्तु की यथार्थ सत्ता अवधि के आयाम में होती है, अर्थात् उसी डायमेन्सन में वह इंद्रिय-ग्राह्य बन पाती है।

इस दृष्टि से समय और उसके आयामों की महत्ता काफी बढ़ जाती है। यदि किसी व्यक्ति की इन आयामों में गति हो, तो उसके लिए वह सब सम्भव हो जाता है, जो सामान्य स्थिति और परिस्थिति में सर्वसाधारण के लिए असम्भव स्तर का बना रहता है। फिर उसके लिए काल की विभाजन-भित्ति समाप्त हो जाती है और सब कुछ वर्तमान हो जाता है, अर्थात् वह किसी भी वस्तु, व्यक्ति अथवा स्थान से सम्बन्धित चाहे किसी काल खण्ड में अप्रतिहत प्रवेश कर उससे सम्बन्धित जानकारी उसी प्रकार उतनी ही आसानी से अर्जित कर सकता है, जैसे कोई व्यक्ति अपने सम्मुख की चीज के बारे में सरलतापूर्वक ज्ञानार्जन कर लेता है, किन्तु यह सब शक्य उसी अवस्था में है, जब चेतना अत्यन्त परिष्कृत स्तर की हो। अपरिष्कृत चेतना तो मनुष्य को पशु तुल्य बनाये रखती है, जब कि अपनी परिशोधित स्थिति में वह मानव को देवताओं की श्रेणी में ला खड़ा करती है। हम परिष्कृत चेतना सम्पन्न बनें, काल-खण्डों के अवरोध को तभी मिटाया जा सकता है और अविज्ञात को ज्ञात तभी बनाया जा सकता है।

समय का एक नाम 'काल' भी है। इसी से 'महाकाल' शब्द बना है। महाकाल अर्थात् काल का अधीश्वर। भौतिक जगत में जिसने इस काल को पहचान लिया और उसका सही-सही सदुपयोग करना सीख गया, समझना चाहिए उसने समय-देवता को जीत लिया। समय की आराधना प्रकारांतर से महाकाल की ही उपासना है।

संसार में समय को सर्वोपरि शक्ति के रूप में मान्यता मिली है। यों शक्तियाँ प्रायः चुकती, बनती और बदलती रहती हैं, पर एकमात्र काल ही ऐसी शक्ति है, जिसका कभी क्षय नहीं

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

होता। इसी बात को गीता में भी कहा गया है। भगवान कहते हैं—"**अहमेवाक्षयः कालो .....**" अर्थात् मैं अक्षय काल हूँ। यहाँ इस जगत में सब कुछ क्षणिक और क्षणभंगुर है। सब क्षीण होता रहता है। जो जन्मता है, वह मरता भी है। शाश्वत और सनातन यहाँ कुछ भी नहीं। परिवर्तन चक्र यहाँ सतत गतिशील है। परिवर्तन अवधि को ही काल कहते हैं। यह काल हमें बदलता प्रतीत इसलिए होता है क्योंकि उसे घटनाओं के परिप्रेक्ष्य में हम देखते हैं। घटनाएँ घटती और गुजरती रहती हैं। अनादि काल से यह क्रम चलता आ रहा है और अनन्त काल तक चलता रहेगा, फिर भी समय वही रहेगा। सृष्टि का जब जन्म हुआ था, तब भी समय वही था और आज जब वह बूढ़ी हो चली है, तब भी समय वही है। वह स्थिर है। जो अस्थिर है, वह सृष्टि है। बदलाव उसी में होता है, वही गतिवान और प्रवाहवान है, पर आँखों को बदलता और बहता समय प्रतीत होता है। यही दृष्टिभ्रम है जबकि काल स्वयं में न तो छोटा है, न बड़ा। वह तो सदा एक जैसा स्थिर है। उसका छोटा-बड़ा होना हमारी अपनी गति पर निर्भर है। यदि भ्रमण प्रकाश जितनी गति से कर पाना सम्भव हो, तो समय को और ज्यादा सिकोड़ा जा सकना शक्य है। इसी प्रकार यदि किसी ऐसे सूक्ष्मलोक में हम जा सकें, जहाँ पर काल की गति और भी तीव्र हो, तो समय सिकुड़ कर वहाँ अत्यन्त छोटा हो जायेगा। ऐसे में जो कार्य वहाँ पाँच मिनट में सम्पन्न होगा, उसके पूरा होने में पृथ्वी पर ५ वर्ष जितना लम्बा समय लग सकता है। अलौकिक घटनाक्रमों के मध्य काल के इस प्रकार फैलने और सिकुड़ने की अप्रत्याशित अनुभूति कई बार हो जाती है।

घटना हावड़ा (प. बंगाल) के प्रसिद्ध संत शिव रामकिंकर योगत्रयानन्द के जीवन से सम्बद्ध है। बहुत दिनों से उन्हें पाणिनि व्याकरण पर पतंजलिकृत महाभाष्य पढ़ने की तीव्र इच्छा थी, किन्तु बंगाल में उन दिनों इस ग्रन्थ का कोई योग्य विद्वान था नहीं। जो थे, वे बनारस रहते थे। अस्तु बनारस जाकर उन्होंने महाभाष्य पढ़ने का निश्चय किया। तब वहाँ व्याकरण आचार्यों में पंडित गोविन्द शास्त्री का बड़ा नाम था शिव रामकिंकर ने उन्हीं से शास्त्र अध्ययन करने की सोची और एक दिन इस आशय का निवेदन लेकर उनके समक्ष उपस्थित हुए। उस दिन पंडित जी ने समय नहीं होने का बहाना बना कर उन्हें लौटा दिया। दूसरे दिन जब आये, तब भी उन्होंने अवकाश नहीं होने की बात कही। तीसरे दिन शिव रामकिंकर पुनः आये, किन्तु आज भी वही पुराना उत्तर मिला, साथ ही यह भी स्पष्ट कर दिया कि वे कोई अन्य आचार्य तलाशें। उनके पास पहले से ही इतने विद्यार्थी हैं कि किसी दूसरे को अब समय दे पाना बिल्कुल भी सम्भव नहीं। दो टूक उत्तर पाकर शिव रामकिंकर एकदम हताश हो गये। चलते समय उन्होंने पंडित जी के पैर पकड़ लिये और बड़े दीन भाव से किंचित समय निकाल लेने की प्रार्थना की। आचार्य इतने दयालु थे नहीं कि द्रवित हो उठते। क्रुद्ध होकर पैर झटकते हुए उन्होंने वहाँ से चले जाने को कहा और स्वयं कमरे से बाहर निकल गये।

आचार्य के इस व्यवहार से वे बहुत दुःखी हुए। उसी क्षण उन्होंने संकल्प किया कि ज्ञानार्जन के निमित्त अब वे किसी के पास नहीं जायेंगे। अपमान और उपेक्षा की वेदना इतनी गहरी थी कि वे उस दिन भोजन नहीं कर सके और बिना खाये सो गये, पर नींद भी कहाँ आने वाली थी। बार-बार उनके मन में वही दृश्य उभर उठता और स्वयं को कोसते हुए कहते "कितना अभागा हूँ ! जिज्ञासा होने पर भी ज्ञान-दान करने वाला कोई नहीं" यह सोचते हुए मध्य रात्रि के करीब उनकी आँखें लग गई। एक घंटे पश्चात नींद अचानक खुली, तो कमरे को दिव्य आलोक से आलोकित पाया। सामने देखा, तो एक सौम्य मानव-मूर्ति जर्जर, किंतु तेजस्वी काया में करुण नेत्रों से उनकी ओर निहार रही है। कुछ क्षण पश्चात उनकी मधुर वाणी मुखरित हुई—"दुःख मत कर। किसी ने तुम्हें महाभाष्य नहीं पढ़ाया तो क्या हुआ ? मैं पढ़ाऊँगा। मैंने ही उसकी रचना की हैं। जा ग्रंथ ले आ।" यह सुनकर शिव रामकिंकर गद्‌गद हो उठे। महापुरुष को साष्टांग प्रणाम निवेदित किया और महाभाष्य ले आये। इसके बाद वे दिव्य पुरुष ग्रंथ पढ़ाने लगे। आरम्भ से लेकर अंतिम सूत्र की विशद् व्याख्या की। ग्रंथ जब समाप्त हुआ, तो वे आशीर्वाद देकर अन्तरध्यान हो गये। चेतना लौटने पर शिव रामकिंकर अपने भाग्य को सराहने लगे। खुशी के मारे उनके नेत्र सजल हो उठे, तभी सामने की दीवार पर टँगी घड़ी पर अकस्मात दृष्टि गई। ठीक १५ मिनट बीते थे। वे कुछ आश्चर्य में पड़ गये। महाभाष्य की ओर नजरें गई, तो वह इतना मोटा था कि पंद्रह मिनट, तो क्या, पंद्रह घंटे में भी उसे पूरी तरह पढ़ और हृदयंगम कर पाना कठिन था। परीक्षा के लिए उन्होंने उसे उलटना-पलटना आरम्भ किया, तो यह जानकर घोर अचंभा हुआ कि सारे सूत्र उनके पढ़े हुए हैं। जिस भी सूत्र पर निगाहें जमतीं, उसी की व्याख्या मस्तिष्क में घुमड़ने लगती। इससे उन्हें यह निश्चय हो गया कि उन देवपुरुष ने आद्योपांत ग्रंथ पढ़ाया है, पर इतने कम समय में अध्यापन कैसे सम्भव हो सका ? इस उलझन को वे किसी भी प्रकार नहीं सुलझा सके।

वस्तुतः उपरोक्त घटना त्रिआयामी विश्व से परे एक ऐसे सूक्ष्म संसार की है जहाँ का टाइम-स्केल स्थूल जगत से भिन्न है। वहाँ कार्य-सम्पादन की गति इतनी तीव्र होती है कि समय सिकुड़ने लगता है, जबकि प्रत्यक्ष जगत में यह गति इतनी मंद है कि समय फैलता प्रतीत होता है। यही कारण है कि समय के दूसरे आयाम में जो कार्य पार्थिव घड़ी के हिसाब से १५ मिनट में सम्पन्न होता प्रतीत होता है, उसी को स्थूल विश्व में सम्पादित करने पर १५ दिन जितना लम्बा अन्तराल लग जाता है। ऐसा इसलिए होता, क्योंकि दोनों प्रकार के लोकों में समय और क्रिया के बीच की गति में अंतर है। इहलोक में समय का वेग भीषण है, जबकि अदृश्य लोकों में उसकी रफ्तार क्रिया के आगे धीमी पड़ने लगती है। यदि किसी प्रकार क्रिया का वेग बढ़ा कर समय के बराबर कर दिया जाय, तो एक ऐसी भी अवस्था आयेगी, जहाँ समय में ठहराव का आभास मिलेगा, अर्थात् समय का बोध समाप्त हो जायेगा। विज्ञानवेत्ताओं के अनुसार यह स्थिति ब्लैक होल में उत्पन्न होती हैं किन्तु

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आत्मवेत्ता इसे अन्तर्जगत की सर्वोपरि उपलब्धि के रूप में स्वीकारते हैं। उनका मानना है कि इस दिव्य उपलब्धि का क्षण ऐसा होता है, जिसमें समय के अभाव का अनुभव होता है। ऐसा लगता है, जैसे काल के पंख लग गये और वह उड़ गया। यही वह अवस्था है, जिसे अध्यात्म विज्ञान में ब्रह्मानंद-दिव्यानंद की समय-शून्य अवस्था कहकर अभिहित किया गया है।

प्रभु ईसु से एक बार एक जिज्ञासु ने प्रश्न किया कि आप जिस अलौकिक राज्य की चर्चा करते हैं, वहाँ विशेष बात क्या होगी ? उन्होंने उत्तर दिया—"वहाँ 'समय' नहीं होगा। यही उसकी सबसे बड़ी विशिष्टता होगी।"

सचमुच महावीर से लेकर मुहम्मद साहब तक सब इस एक तथ्य को अंगीकार करते हैं कि ईश्वर प्राप्ति के क्षण समय का अस्तित्व नहीं रहता। सभी इस बात पर सहमत हैं कि वह जो पल है, वह वास्तव में "टाइमलेस मोमेण्ट—कालातीत अवस्था" है। इस अवस्था में योगियों का प्राण कम्पन और काल की गति एकदम बराबर होती है। इसके उपरान्त यदि प्राण-वेग को और बढ़ा दिया जाय, तो फिर काल के विगत और अनागत वाले हिस्से में प्रवेश कर सकना सम्भव है। यती लोग इसी प्रक्रिया द्वारा भूत और भविष्य के अंतराल में उतरते और अविज्ञात का ज्ञान प्राप्त करते हैं। परिष्कृत अभ्यस्त चेतना द्वारा ही यह सब सम्भव है। जिनकी देह-चेतना अनभ्यस्त और अनाड़ी स्तर की है, उनके लिए यह कार्य आकाश कुसुम खिलाने जैसा है। वहाँ चेतना के काल-गह्वर में उतर पाना तो क्या, शरीर से बाहर निकलना भी अशक्य जैसा बना रहता है, किन्तु जो ऐसा कर पाते हैं और जिन्होंने इतनी सामर्थ्य अर्जित कर ली है कि काया से बाहर आ सकें, वे इसे स्पष्ट अनुभव करते हैं कि किस प्रकार इस अवस्था में समय सम्बंधी अवरोध बिल्कुल समाप्त हो जाता है। यदि इस स्थिति में वर्षों रह कर फिर शरीर में प्रवेश किया जाय, तो प्रवेशार्थी को ऐसा आभास होगा, मानों अभी कुछ ही क्षण बीते हैं। कारण यह है कि प्रत्यक्ष विश्व से परोक्ष विश्व का टाइम-स्केल भिन्न है। जैसे-जैसे अधिकाधिक सूक्ष्म की गहराई में उतरते जायेंगे, वैसे-ही-वैसे टाइम-स्केल सम्बंधी पृथकता बढ़ती जायेगी और अवधि उत्तरोत्तर और सिकुड़ती चली जायेगी।

सामान्यतः मनुष्य का क्रिया-व्यापार जाग्रत अवस्था में सम्पन्न होता है। इस अवस्था का जो समय है, वह मानव द्वारा निर्मित है। यह वह काल नहीं, जिसे भगवान ने 'अक्षय काल' कहा है। इसलिए पृथ्वी का समय बीतता रहता है। सूर्योदय हुआ-सुबह हो गई, दिन का प्रारम्भ हुआ। शाम हुई, अँधेरा घिरा-रात आ गई। दिन समाप्त हुआ। इस प्रकार २४ घंटे बीत गये। काल सम्बन्धी यह विभाजन पृथ्वी और सूर्य पर आधारित है तथा आदमी द्वारा बनाया गया है। पृथ्वी को चौबीस भागों में विभक्त कर दिन-रात को उतने ही घंटों में बाँट दिया गया। घंटे साठ मिनटों में और हर मिनट को पुनः साठ सेकेण्डों में विभाजित किया गया। यह हमारी अपनी व्यवस्था है, प्रकृति की नहीं। निसर्ग में तो वह अविभाज्य है। जाग्रत में सामान्य चेतना की दशा में हम उसी काल विभाजन से अपना काम चलाते हैं। इससे जब कुछ गहराई में उतरते हैं, तो यह विभाजन स्वतः ही समाप्त हो जाता है, किन्तु फिर भी भिन्न-भिन्न चेतना स्तर अपनी सूक्ष्मता के आधार पर टाइम-स्केल की पृथकता बनाये रखते हैं। स्वप्न, सुषुप्ति और तुरीय-यह चेतना की शेष तीन अवस्थाएँ हैं। काल-विज्ञान के अनुसार चेतना की सबसे मंदगति जाग्रत अवस्था में है, इसी कारण समय उसमें असाधारण रूप से बड़ा प्रतीत होता है। तुरीय अर्थात् समाधि की स्थिति में उसकी गति सर्वाधिक होती है, इसलिए उस दशा में समय का बंधन समाप्त हो जाता है। तुरीयावस्था प्राप्त एक योगी जितनी अवधि में पृथ्वी की परिक्रमा कर लेता है, यदि वही प्रदक्षिणा जाग्रत अवस्था में की जाय, तो शायद पूरा जीवन बीत जायेगा। स्वप्न, चेतना की दृष्टि से जाग्रत से कुछ उच्चावस्था है, अतएव समय का वेग थोड़ा मंद पड़ जाता है। सपनों की अवधि मुश्किल से पाँच-सात मिनट की होती है, किन्तु जब आँख खुलती और दृष्टि घड़ी पर जाती है, तो आश्चर्य होता है कि इतने स्वल्प काल में स्वप्न द्रष्टा ने जीवन के विशाल भाग का सफर तय कर लिया। उसका विवाह हो गया, नौकरी लग गई, बच्चे हो गये और अब उनकी शादियाँ हो रही हैं। घड़ी इस सम्पूर्ण अवधि को मात्र पाँच मिनट बता रही है, जबकि व्यावहारिक जीवन में इस यात्रा में तीन चौथाई भाग खप जाता। यह कैसे हुआ ? हमारी अपनी गति के कारण। उसमें चेतना-कणों का वेग बढ़ गया और उस प्रतिस्पर्धा में समय पिछड़ गया, हम आगे निकल गये, जिससे युगों का कार्य पलों में पूरा होता दिखाई पड़ता है। सुषुप्ति की रफ्तार उससे भी तीव्र है और सर्वाधिक है तुरीयावस्था की, जिसमें फिर समय आड़े नहीं आता। किसी संकटग्रस्त शिष्य ने पृथ्वी के सुदूर कोने में गुरु का स्मरण किया और पलक झपकते ही उससे सहायता मिल जाती है, न तो समय सम्बन्धी रुकावट सामने आती है, न विशाल भौगोलिक दूरी। कारण एक ही है—वेग का अत्यधिक बढ़ जाना।

टेलीपैथी, क्लेयरवायन्स आदि भी चेतना की भिन्न-भिन्न अवस्थाएँ हैं, जिनमें समयांतराल सिमट कर छोटा हो जाता है। गुरु, दुर्गम हिमालय में साधनारत है और शिष्य पृथ्वी के दूसरे छोर-अमेरिका में रह रहा है। दोनों के मध्य कोई भौतिक संचार माध्यम उपलब्ध नहीं, किन्तु फिर भी शिष्य का मार्गदर्शन होता रहता है। यह सब घड़ी भर में घटित हो जाता है। यदि उसी घटना को जिसे उसने अनुभूति स्तर पर आत्मसात् किया है, लिखें तो कदाचित् घंटे भर का भी समय लग सकता है, किन्तु टेलीपैथी क्रम में उतना बड़ा प्रसंग क्षणमात्र में घट जाता है। कारण कि घटनाक्रम को सुस्त बनाने वाले भौतिक व्यवधान वहाँ नहीं रहे।

महाभारत के दौरान भगवान द्वारा गीता का उपदेश भी वस्तुतः ऐसी ही एक प्रक्रिया थी, जिसमें कृष्ण और अर्जुन के मध्य मौन संवाद हुआ था। दोनों ओर की सेनाएँ जब युद्ध के लिए आमादा हों, तो भला इस स्थिति में इतनी फुर्सत कहाँ कि कोई जीवन सम्बंधी गंभीर दर्शन की शिक्षा दे ! यदि दे भी तो अर्जुन स्तर का कोई योद्धा, जिस पर युद्ध का बहुत कुछ परिणाम निर्भर है, समयक्षेप कर पराजय को आमंत्रण क्यों कर देगा ? नहीं, भगवान द्वारा ऐसा अविवेकपूर्ण कार्य नहीं हो

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सकता। जो हो सकता है, वह एकमात्र अंतर्संवाद ही है, जिसमें शब्दों का वैखरी प्रयोग न होकर 'परा' वाणी प्रयुक्त हुई हो। यह टेलीपैथी है। समरभूमि में यही सम्भाव्य हो सकती है और व्यावहारिक भी। इसमें समय कितना लगा होगा—कहना कठिन है, पर यह निश्चित है कि इस भूमिका में काल का कोई मूल्य और महत्व रह नहीं जाता, बिल्कुल गौण हो जाता है। यही चेतना का सर्वाधिक महत्वपूर्ण पहलू है।

एक बार परमहंस विशुद्धानंद के पास एक श्रद्धालु भक्त आया और अपनी टूटी हुई रुद्राक्ष की माला देकर उसे शास्त्रोक्त ढंग से बना देने का आग्रह किया। परमहंस ने माला अपनी मुट्ठी में बंद कर ली और हाथ को हवा में दो-चार बार लहराया। इसके बाद उसे शिष्य की ओर बढ़ाते हुए कहा—'यह लो तैयार हो गई।' माला सचमुच बहुत अच्छे ढंग से गुँथी हुई थी। इतनी जल्दी यह कैसे तैयार हो गई ? इस प्रश्न के उत्तर में उन्होंने इतना ही कहा कि गुह्य विषय को सामान्य बुद्धि नहीं समझ सकती, फिर भी इतना जान लो कि यह "क्षण-विज्ञान" के प्रयोग द्वारा विनिर्मित की गई, जिसमें पृथ्वी का एक पल एक वर्ष जितना खिंच कर लम्बा हो जाता है।

समय को घटा-बढ़ा सकना साधारण स्थिति और अवस्था में भी सम्भव है। एक महामानव, जो काल के हर कण का सुनियोजित ढ़ंग से उपयोग करता है, समय को इतना लघु बना लेता है कि कब वह जवान से बूढ़ा हो गया, पता ही नहीं चलता। इस मध्यांतर में उसने इतने ढेरों कार्य कर लिये, इसकी प्रतीति तक नहीं होती। जब होती है, तो यह जान कर अचंभा होता है कि इतनी स्वल्प अवधि में कई जन्मों जितने कार्य किस प्रकार बन पड़े। दूसरी ओर वे लोग हैं, जिनके सामने यह पहाड़ की तरह अड़ जाता है, वह काटे नहीं कटता, न बिताये बीतता है। वस्तुतः समय न तो किसी के लिए घटता है, न बढ़ता है—न फैलता, न सिकुड़ता है। यह दो भिन्न जीवनशैलियों के दो भिन्न परिणाम हैं। समय सबको बराबर मिला हुआ है। एक इसी अंतराल में आश्चर्यजनक ढंग से असंख्यों पराक्रम कर दिखाता और महापुरुषों की पंक्ति में आ खड़ा होता है, जबकि दूसरे के लिए पुरुषार्थ तो क्या, जीवन-यात्रा करना भी भारी पड़ने लगता है। एक स्थिति में पलों का अभाव अनुभव होता है, तो दूसरी में वह इतना विशाल कि अनावश्यक मालूम पड़ता है, जबकि दोनों के लिए काल-विस्तार एक जितना है, फिर यह पृथक् परिणतियाँ क्यों ? इसे समझने के लिए काल और उसकी शक्ति को भली-भाँति जानना होगा, तभी ऐसा कुछ कर पाना शक्य है, जो जीवन में अभिनंदनीय और अभिवंदनीय बनकर प्रस्तुत हो सके।

चतुर्थ आयाम और सिद्धावस्था

चित्र आमतौर से द्वि-आयामीय होते हैं। उनमें लम्बाई-चौड़ाई ही दृष्टिगोचर होती है। आगे-पीछे के ऊँचे-नीचे के वस्तु संकेतों को देखकर यह अनुमान लगाया जाता है कि यह कितनी गहरी या ऊँची होनी चाहिए।

गत दो दशकों में त्रि-आयामीय चित्र बनाने का सिलसिला चल तो पड़ा है पर वह सर्वसाधारण के लिए अभी पूरी तरह सुलभ नहीं हुआ।

अभी उनका मोटा तरीका इतना ही है कि दो आँखों पर दो चित्र एक जैसे ही लगाये जाते हैं। एक फोकस बिन्दु पर जब दोनों की छवियाँ एकत्रित हो जाती हैं, तब उनकी गहराई-ऊँचाई भी अनुभव में आने लगती है। बच्चों के टेलिस्कोप और दो बिन्दीदार चित्रों को आपस में सटाकर भी यह कौतूहल बच्चों के लिए सुलभ हो गया है कि वे त्रि-आयामीय चित्र देखें। सिनेमा ने भी इस दिशा में कदम बढ़ाया और कुछ थ्री. डी. फिल्में भी पिछले दिनों बनाई हैं। यह फिल्में होलोग्राफी के सिद्धान्त के आधार पर बनाई गई थीं। इसमें मात्र गहराई, ऊँचाई, निचाई ही नहीं दीखती थी पर साथ ही इतना और भी देख पड़ता था कि सामने का पर्दा कोई खुला मैदान है और उसमें से निकल कर शेर घोड़े वगैरह इस तरह दौड़ते आ रहे हैं मानो वे दर्शकों पर सवार ही होने वाले हैं। प्रारम्भ में इन्हें देखकर अनेक सिनेमा दर्शक भयभीत हो गये और चीखते हुए हाल से भागे। कइयों को वह कौतूहलवर्द्धक दृश्य इतने आश्चर्यजनक लगे कि उन्होंने उन्हें कई-कई बार देखा। पर अब यह प्रयोग नवीन नहीं रहा। 'थ्री डी' कामिक्स काफी लोकप्रिय हो गये हैं।

इस थ्री डायमेन्शनल तकनीक को विज्ञानी यूक्लिड ने आविष्कृत किया था और इसका नाम स्टीरियोस्कोपी दिया था। इस आधार पर प्रथम फिल्म 'बवाना डेविल' बनी थी, जो बहुत ही सफल रही। बीच में तकनीकी कठिनाइयों के कारण वह बहुत विस्तार न पा सकी, पर बाद में नये सिरे से ऐसी श्रृंखला को कार्यान्वित करने की हॉलीवुड ने एक समग्र योजना बनायी एवं वे इसमें सफल रहे।

अलबर्ट आइंस्टीन ने इस विश्व ब्रह्माण्ड में संव्याप्त अनेक आयामों की सम्भावना व्यक्त की थी। इसमें से वे उपलब्ध जानकारियों व उनकी परिणतियों पर प्रामाणिक प्रकाश डालते थे और कहते थे कि जब मनुष्य चतुर्थ आयाम के तथ्यों को कार्य रूप में परिणति करने लगेगा तब उसके ज्ञान में अबकी तुलना में अनेक गुनी वृद्धि होगी। साथ ही ऐसी शक्ति भी हस्तगत होगी जिसे जादुई कहा जा सके। वस्तुतः चतुर्थ आयाम को जादूलोक की समता दी जाय तो कुछ अत्युक्ति न होगी।

जर्मनी के प्रो. जौलनर ने वर्षों अथक परिश्रम करके चतुर्थ आयाम के बारे में अनेक महत्त्वपूर्ण खोजें की। अनुसंधान के दौरान उन्होंने पाया कि अगणित ऐसे कार्य, जो त्रि-आयामीय स्पेस में सम्भव नहीं, उन्हें चतुर्थ-आयामीय स्पेस में सुगमतापूर्वक सम्पन्न किया जा सकता है। यथा धातु की बनी गेंद को दस्ताने की तरह उल्टा जा सकता है। इसी प्रकार दोनों किनारों से बँधे धागे में आसानी से गाँठ लगायी जा सकती है एवं दो पृथक् डिब्बों में बन्द छल्लों को, डिब्बों को खोले बिना आपस में फँसाया जा सकता है। उनका कहना है कि इसी प्रकार के अनेकानेक अजीबोगरीब करतब दिखाये जा सकते हैं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

यही नहीं इस आयाम की विश्वसनीयता को प्रामाणित करने के लिए उनसे परोक्ष जगत से भी सम्पर्क किया और अनेक माध्यमों का सहयोग लेकर कई प्रकार के प्रयोग किये। कहा जाता है कि इसमें उन्हें अद्‌भुत सफलता मिली। एक प्रयोग के मध्य देखा गया कि वे जिस कुर्सी पर बैठे थे, उसकी भुजा से उनकी बाँह अपने आप बँध गई, यद्यपि उनका दूसरा हाथ टेबुल पर था, जिसे प्रयोग के दौरान उन्होंने संचालित किया ही नहीं। एक अन्य प्रदर्शन में टेबुल के दोनों सिरों से बँधी डोरी में स्वतः गाँठें बँध गईं। तात्पर्य यह कि परोक्षजगत के माध्यम से चौथे आयाम के चमत्कारों को आसानी से देखा जा सकता है। प्रेतात्माएँ भी चौथे आयाम की पुष्टि करती हैं और चतुर्थ आयाम प्रेत योनि के अस्तित्व को असंदिग्ध रूप से प्रमाणित करता है।

प्रो. क्रुक्स ने तो यहाँ तक कहा है कि चौथे आयाम में पहुँच जाने के बाद वस्तुओं का वजन अप्रत्याशित रूप से घट जाता है तथा एडगर वैलेस के अनुसार इस आयाम में शरीर अग्निरोधी बन जाता है, उसे आग से किसी प्रकार की क्षति नहीं पहुँचती।

वैज्ञानिकों द्वारा यह अनुमान लगाया गया है कि जब मनुष्य फोर्थ डायमेन्शन क्षेत्र में प्रवेश करेगा तो उसकी यही आँखें टैलिस्कोप और स्टीरियो माइक्रोस्कोप का काम करने लगेंगी। वह पीने के पानी में चलते फिरते कीड़े देख सकेगा और जिस प्रकार राडार दूर-दूर तक की आकाश में उड़ती वस्तुओं को अपने पर्दे पर दिखा देता था, उसी प्रकार मनुष्य की गरुड़ दृष्टि भी अन्तरिक्ष और इतनी दूर तक इतनी स्पष्टता के साथ देख सकेगी जैसे कि अपनी आँखों से एक सीमित मोटाई और दूरी देखी जाती है। इस प्रकार मनुष्य की दृष्टि में विशिष्टता भर जाने का स्वाभाविक परिणाम यह होगा कि उसका ज्ञान कहीं अधिक बढ़ जाय और उस आधार पर अपनी सुरक्षा और प्रगति सम्बन्धी कई समस्याओं का समाधान सम्भव हो सके। जितना वह अब जानता है उसकी तुलना में अधिक जानकार बन सके।

चतुर्थ आयाम में प्रवेश कर सकने वाला प्राणी एक प्रकार से सिद्ध पुरुष होगा। वह पीछे मुड़ कर बीती हुई घटनाओं को भी देख सकेगा और सिर उठाकर यह भी अनुमान लगा सकेगा कि भवितष्यता क्या है ? निकट भविष्य में क्या होने जा रहा है ? कारण की घटनाओं का तारतम्य उनके प्रत्यक्षतः सामने आने से पूर्व ही चल पड़ता है और उसका आभास मिलना संवेदनशील इन्द्रियों के लिए सरल होता है। अनेक जीवजन्तु भूकम्प वर्षा आदि की घटनाओं के घटित होने के पूर्व ही अनुमान लगा लेते हैं और समय से पूर्व ही अपने बचाव का उपाय कर लेते हैं। इसे चतुर्थ आयाम का सीमित आभास कह सकते हैं। इस आधार पर अपना दूसरों का भूतकाल और भविष्यत बहुत अंशों में जाना जा सकता है।

इतना ही नहीं, इसके साथ एक नई शक्ति का भी प्रादुर्भाव हो सकता है। चौथे आयाम में प्रविष्ट व्यक्तियों के सूक्ष्म नेत्रों में ऐसी शक्ति हो सकती है जिसके सहारे वे अदृश्य लोक में भ्रमण करने वाले जीवात्माओं की सत्ता का परिचय प्राप्त कर सकें। उन्हें विदित होने लगे कि किस स्तर की मृतात्मा कितनी दूरी पर किस स्थिति में रह रही हैं। उसके साथ सम्बन्ध मिलाना और आदान-प्रदान का सिलसिला चलना भी कुछ कठिन न रहेगा।

अभी हम द्विआयामीय या त्रिआयामीय दुनिया में रह रहे हैं। त्रि-आयामीय तक का भी थोड़ा बहुत उपयोग ही हाथ लगा है। पर जब चौथे आयाम में प्रवेश करना बन पड़ेगा तो बुद्धि एवं शक्ति का इतना विस्तार होगा जिसे 'सिद्धावस्था' कहा जा सकेगा।

चेतना का एक अति-उच्च आयाम

आइंस्टीन ने समस्त संसार को सात आयामों में सीमाबद्ध बताया है। इसके प्रथम चार आयाम स्थूल जगत का प्रतिनिधित्व करते हैं, जबकि बाद के तीन आयाम सूक्ष्म जगत का। प्रथम को यदि विज्ञान कहें, तो दूसरे को अध्यात्म कहना पड़ेगा। आध्यात्मिक आयाम में व्यक्ति जैसे आत्मिक उन्नति करते हुए प्रवेश करता है, उसे तरह-तरह की विलक्षण अनुभूतियाँ होने लगती हैं। विज्ञान इसे ही चमत्कार कहकर पुकारता है।

वस्तुतः यहाँ चमत्कार जैसा कुछ है नहीं। जो चमत्कार दीखता है, वह अपनी सापेक्षिक दृष्टि होती है और वह परिवर्तित आयाम के कारण उपलब्ध होती है। यदा-कदा जब व्यक्ति इसके कारण किसी उच्च आयाम में कुछ क्षण के लिए पहुँच जाता है, तो उसे ऐसे-ऐसे दृश्य दिखाई पड़ने लगते हैं, जो स्थूल जगत के नियमों के हिसाब से आश्चर्यजनक होते हैं, पर इन्हें असम्भव नहीं कहना चाहिए, क्योंकि एक आयाम में जो घटना भूत बन गई है, वह दूसरे में वर्तमान और भविष्य हो सकती है। आध्यात्मिक पुरुषों की अनुभूतियों से इसकी पुष्टि हो जाती है।

विवेकानन्द जब यौवन के प्रवेश द्वार पर थे, उन्हीं दिनों की बात है। एक दिन प्रातः जब वे अपने कमरे में ध्यान कर रहे थे, तो अचानक उनका ध्यान टूट गया। आँखें खुलीं तो सामने की दीवार पर दृष्टि पड़ी। दृश्य देखा तो वे हतप्रभ रह गये। वहाँ चीवरधारी बुद्ध की छवि हाथ में शिक्षा पात्र लिए दीवार छेदती हुई प्रकट हो रही थी। कुछ क्षण तक आकृति मौन खड़ी रही, तदुपरान्त अन्तरध्यान हो गई। ऐसे ही एक अन्य अवसर पर उन्हें भगवान नारद के दर्शन हुए थे, जो कुछ आवश्यक बातें बताने के उपरान्त तिरोहित हो गये।

स्वामी रामतीर्थ ने अपने संस्मरण में एक स्थान पर लिखा है कि जिन दिनों वे उत्तराखण्ड व हिमालय क्षेत्र की यात्रा पर थे, उन दिनों एक रोज उनका बड़ा विचित्र हाल हो रहा था। वे भाव की इतनी उच्च अवस्था में थे कि उन्हें यही होश न रहा कि जाना किधर है। वे अपनी कुटिया से विपरीत दिशा में सघन वन की ओर चल पड़े। करीब आधा मील चलने के उपरान्त घना जंगल आ गया। इतने पर भी उनकी भावभूमि वैसी ही बनी रही। वे लगातार चलते ही चले जा रहे थे। अचानक मार्ग में आदि गुरु शंकराचार्य का चिन्मय विग्रह दिखाई पड़ा जो हाथ के इशारे से उन्हें रुकने का संकेत कर रहा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

था। जब वे रुके, तो विग्रह ने वस्तुस्थिति समझायी और पीछे लौट जाने को कहा। इसके बाद वह छाया गायब हो गई।

रामकृष्ण परमहंस के एक प्रमुख शिष्य स्वामी सारदानन्द ने एक बार अपने गुरुभाइयों से इस बात का उल्लेख किया था कि जब वे स्वामी विवेकानन्द के आग्रह पर प्रचार कार्य हेतु इंग्लैण्ड आये, तो एक दिन अकस्मात् सामने सुदर्शन चक्रधारी भगवान श्री कृष्ण दिखाई पड़े। उनके चेहरे पर एक दिव्य मुस्कान थी। अभी सारदानन्द कुछ समझ पाते और विवेकानन्द से इसकी चर्चा करते, कि मूर्ति लुप्त हो गई।

इस प्रकार के कितने ही दिव्य दर्शन महापुरुषों के जीवन में घटते ही रहते हैं। इन्हें दृष्टि भ्रम अथवा अवास्तविक कहना ठीक नहीं क्योंकि वास्तविक— अवास्तविक का सिद्धान्त हमारे द्वारा निर्मित है। जिन घटनाओं को हम स्थूल रूप में घटते देखते हैं, उन्हें वास्तविक और दूसरे को काल्पनिक कह देते हैं, पर चेतनात्मक संसार में इनका कोई अस्तित्व नहीं। वहाँ न तो कुछ वास्तविक है, न अवास्तविक, वरन् सब कुछ शाश्वत व चिरन्तन है। प्रत्यक्ष जगत में वास्तविकता अवास्तविकता का पैमाना हम स्थूलता को मान लेते हैं। शरीर जब तक जिन्दा रहता है, उसकी सत्ता को स्वीकारते हैं और मरने के बाद सब समाप्त हो गया—ऐसी भ्रांतिपूर्ण धारणा बना लेते हैं।

यथार्थता यह है कि ऐसी घटनाओं के समय आयाम परिवर्तन के कारण हम सर्वथा चेतनात्मक संसार में पहुँच जाते हैं। वहाँ समय का कोई अस्तित्व नहीं। अतः पृथ्वी में जो घटनाएँ घट चुकी होती हैं, वह भी ज्यों-की-त्यों दिखाई पड़ती हैं। विवेकानन्द ने लिखा है कि सामान्य व्यक्तियों की फ्रीक्वेंसी सूक्ष्म सत्ताओं से भिन्न होती है, इसलिए वे उन्हें देखने में असमर्थ होते हैं। जब प्राणों का यही कम्पन दोनों में समतुल्य हो जाता है, तो दिव्य दर्शन प्राप्त होता है। यही आयाम-परिवर्तन है। भावना और चिन्तन चेतना में परिष्कृति द्वारा आयाम का यह बदलाव सम्भव है। योगीजन इसी प्रक्रिया द्वारा स्वयं को अध्यात्म के उच्च सोपानों में पहुँचाते और जो सामन्यजन देख-सुन नहीं पाते वैसी जानकारियाँ अर्जित करते हैं।

जैसे-जैसे विज्ञान स्थूल से सूक्ष्म में प्रवेश कर रहा है, वैसे-वैसे अनेक रहस्यों पर से पर्दा उठता चला जा रहा है। कल तक जो उसके लिए अविश्वसनीय स्तर के आश्चर्य थे, आज वह तथ्य के रूप में स्थापित हो चुके हैं और वर्तमान में जो अनसूझ पहेली हैं, आगामी समय में सम्भवतः उन्हें भी सुलझा लिया जाय। इन दिनों उसके लिए एक ही असमंजस है कि इन्द्रियों और यंत्रों से परे सूक्ष्म-लोकों की सम्भावना शक्य हो सकती है क्या ? अधिकांश वैज्ञानिक इस मान्यता से सर्वथा इन्कार नहीं करते, किन्तु कुछ ऐसे भी हैं, जिन्हें यह स्वीकार नहीं। उनके लिए यह बेतुकी कल्पना भर है, पर जब यदा-कदा इस प्रकार की घटनाएँ प्रकाश में आती हैं, तो वे निरुत्तर हो यही कहते पाये जाते हैं कि जो दृश्य नहीं है सम्भवतः उसके मूल में कोई ऐसे वैज्ञानिक रहस्य हैं, जिन्हें विज्ञान अभी ढूँढ़ नहीं पाया है।

घटना २३ सितम्बर, १८८० की है। टेनेसी (यू. एस. ए.) के एक कृषक डेविड लैंग का फार्म हाउस समनर काउण्टी में गैलेटीन टाउनशिप से १२ मील दूर था। उक्त दिन दोपहर को वह अपनी पत्नी और दो बच्चों के सामने अपने चालीस एकड़ क्षेत्र में फैले खेत में गया और देखते-देखते अचानक न जाने कहाँ गायब हो गया। जब यह सब हुआ, तब उसका भाई फार्म हाउस की ओर बग्घी लिए आ रहा था। उसने देखा कि लैंग चरागाह के मध्य से गुजर रहा है। वह उसे पुकारना चाह ही रहा था कि दूसरे की पल लैंग तिरोहित हो चुका था, मानो भूमि ने उसे निगल लिया हो। भाई और उसकी पत्नी तुरन्त उस स्थान पर पहुँचे, पर वहाँ जमीन में किसी प्रकार की कोई दरार नहीं दिखाई पड़ी जिससे यह अनुमान लगाया जा सके कि वह खेत में धँस गया और न ऐसा कोई दूसरा चिह्न मौजूद था, जिससे उसकी विलुप्ति के बारे में कोई अंदाज लगाया जा सके। बाद में पुलिस ने सूक्ष्मता से उस स्थान की जाँच-पड़ताल की, किन्तु परिणाम निराशाजनक रहा। भूगर्भवेत्ताओं ने भी बारीकी से उक्त क्षेत्र की छान-बीन की, पर किसी निष्कर्ष पर नहीं पहुँच सके। खोज कार्य महीनों चलता रहा, किन्तु किसी तरह का सूत्र-संकेत ढूँढ़ा नहीं जा सका।

इसके दस माह उपरान्त, लैंग के पुत्र-पुत्री एक दिन उसी चरागाह में घूम रहे थे कि उन्होंने देखा कि जिस स्थान से उनके पिता अदृश्य हुए थे, वहाँ लगभग २० फुट व्यास का एक बड़ा वृत्त था। वृत्त के अंदर लम्बी-लम्बी जंगली घासें उगी हुई थीं। बाहर की घासों को पशु भली-भाँति चर चुके थे, किन्तु वृत्त के भीतर की इन घासों को खाने की हिम्मत किसी ने नहीं की थी। इसी बीच किसी अज्ञात कारण से लड़की चिल्ला उठी—"पिताजी ! पिताजी ! क्या आप यहीं-कहीं पास में हैं ?" चार-पाँच बार ऐसा कहने के पश्चात् उसे अपनी पुकार के निरर्थक होने का भान हुआ और वह वहाँ से चलने को ही थी कि अकस्मात एक स्वर सुनाई पड़ा, जिसमें सहायता की याचना थी। आवाज कहीं दूर से आती प्रतीत हो रही थी, पर वह लौकिक नहीं थी। जब उन दोनों ने इसकी जानकारी अपनी माँ को दी, तो वह कई दिनों तक वहाँ आती और पुकारती रही। उसे हर गुहार का जवाब मिलता। धीरे-धीरे आवाज मंद पड़ती गई और एक दिन बिल्कुल बंद हो गई।

वैज्ञानिक इस घटना की व्याख्या यह कहकर करते हैं कि ऐसा दो लोकों के बीच की विभाजन-भित्ति पर किसी छिद्र की उपस्थिति के कारण होता है। दुर्भाग्य से यदि कोई व्यक्ति उस सुरंग के मुँह पर पहुँच जाय, तो वह उससे खिंच कर किसी अन्य लोक में चला जायेगा, जहाँ से उसकी वापसी की सम्भावना नगण्य जितनी होगी, पर यदि किसी प्रकार यह सम्भव हुआ भी, तो उस व्यक्ति की स्थिति वैसी ही होगी, जैसी स्मृति-लुप्त व्यक्ति की, अर्थात् वह घटना के पूर्व, मध्य और पश्चात की सारी बातें भूल चुका होगा।

एक अन्य सम्भावना प्रकट करते हुए विज्ञानवेत्ता कहते हैं कि दुर्भाग्यग्रस्त के लिए बाहर आने का एक दूसरा तरीका यह हो सकता है कि वह अतीन्द्रिय शक्ति सम्पन्न हो। इस सामर्थ्य के द्वारा वह दो संसारों को पृथक करने वाली दीवार में एक

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

मानसिक धक्का लगाकर दरवाजा उसी प्रकार खोलने में समर्थ हो सकेगा, जिस प्रकार चाबी ताले को एक झटके के साथ खोल लेती है। यदि कोई ऐसी विभूति अनजाने में अथवा असावधानीवश कभी दिक्काल के भँवर में फँसी भी, तो वह उसी तरह उससे सुरक्षित बाहर आ जायेगी, जैसे गोताखोर समुद्र से, किन्तु इसके लिए उस द्वार को ढूँढ़ निकालना आवश्यक होगा, जिसके द्वारा वह उस दूसरे लोक में पहुँच गया। यदि इसमें वह विफल रहा, तो उससे बाहर निकलने में किसी प्रकार सफल न हो सकेगा।

विशेषज्ञों का कहना है कि यदि ऐसी घटनाएँ घटती हैं, तो इसे दो तरफा होना चाहिए। अर्थात् इस जगत से व्यक्ति दूसरे लोक में पहुँचता है, तो दूसरे विश्व से इस संसार में आगमन की घटनाएँ भी होनी चाहिए। ऐसे ही एक अद्‌भुत प्रसंग की चर्चा १२वीं सदी के ब्रिडलिंगटन के प्रख्यात संत विलियम ऑफ न्यूवर्ग ने अपनी रचना 'हिस्टोरिया रेरम एंग्लिकैरम' में की है। वे लिखते हैं कि आज भी इंग्लैण्ड में यत्र-तत्र दो अलौकिक हरे बालकों का जिक्र होता रहता है। घटना तब की है, जब इंग्लैण्ड में हेनरी द्वितीय (१९५४-८९) का शासन था। एक दिन दो हरी त्वचा वाले भाई-बहन 'मेरी डी उल्पिट्स' नामक स्थान पर एक छिद्र से बाहर आये। उनके हाथ-पैर मनुष्यों जैसे थे, चमड़ी का रंग गहरा हरा था। वे विचित्र रंग की पोशाक पहने थे। वस्त्र किस पदार्थ का बना था, यह नहीं जाना जा सका। जब वे सुराख से बाहर आये, तो बड़ी देर तक आश्चर्यचकित हो मैदान में इधर-उधर टहलते रहे। अन्ततः किसानों ने उन्हें पकड़ लिया और वाइक्स में रिचर्ड डी, कैल्ली के घर ले आये। कई महीनों के उपरान्त उनका वर्ण बदल गया। वे सामान्य मनुष्यों के रंग के हो गये। इसी बीच भाई बीमार पड़ा और उसकी मृत्यु हो गई। बहन जीवित रही। बाद में उसने लीन के सम्राट से शादी कर ली।

जब लड़की से इस दुनिया में पहुँचने का रहस्य पूछा गया, तो उसने कहा कि एक दिन वे दोनों भेड़ चराते हुए एक गुफा के द्वार पर पहुँच गये। जब उसमें प्रवेश किया, तो उससे घंटी जैसी अत्यन्त सुरीली ध्वनि आती सुनाई पड़ी। इसके उद्‌गम-स्रोत का पता लगाने के लिए वे बड़ी देर तक उस माँद में घूमते रहे और अन्ततोगत्वा इस विश्व में पहुँच गये। लड़की का कहना था कि इस लोक में आने के पश्चात् वे बहुत समय तक मैदान में यहाँ-वहाँ फिरते रहे। जब-ऊब गये, तो पुनः अपने लोक में लौट जाने की इच्छा हुई। उन्होंने गुफा-द्वार खोजना आरम्भ किया, पर उसे ढूँढ़ पाने में सफल न हो सके और ग्रामीणों द्वारा पकड़ लिये गये।

जब उसके जगत के सम्बन्ध में पूछा गया, तो बालिका का कहना था कि वहाँ न तो यहाँ जैसी गर्मी है, न प्रकाश। उस लोक को प्रकाशित करने वाला सूर्य जैसा कोई देदीप्यमान पिण्ड वहाँ नहीं है, किन्तु ऐसा भी नहीं कि वह पूर्णतः अन्धकारमय हो। एक मंद-शीतल प्रकाश उस संसार को सदा आलोकित करता रहता है। वह स्वयं को संत मार्टिन के राज्य की बताया करती थी और यह भी कि उसे पता नहीं उक्त लोक किस ओर है। वह प्रायः कहा करती थी कि उसके अपने विश्व के नजदीक ही यहाँ जैसा प्रकाशवान एक अन्य लोक है, पर दोनों के बीच एक विशाल अगम्य नदी है।

राल्फ ऑफ कॉगशैल (एसेक्स) ने इस घटना का उल्लेख अपनी पुस्तक 'क्रोनिकन एग्लिकैरम' में किया है। इसके अतिरिक्त जारवेस ऑफ टिलबरी की कृति में भी इसका वर्णन आता है। प्रतिष्ठित विद्वान अगस्टीनियन संन्यासी न्यूवर्ग अपने ग्रन्थ में एक स्थान पर उक्त प्रकरण पर अपना मन्तव्य प्रकट करते हुए लिखते हैं कि यद्यपि अनेकों ने इस प्रसंग की दावे के साथ चर्चा की है, फिर भी लम्बे समय तक वे इस सम्बन्ध में संवेदनशील बने रहे। उनका कथन है कि जिसका कोई तर्काधार ही न हो, उस पर अचानक कैसे विश्वास कर लिया जाय ? उसे स्वीकारने के लिए बुद्धि को कैसे सहमत किया जाय ? किन्तु फिर भी बाध्य होकर उन्हें ऐसा करना पड़ा। इसका कारण बताते हुए वे कहते हैं कि उनकी मुलाकात ऐसी कितनी ही प्रामाणिक साक्षियों से हुई, जिन पर शक करने को कोई कारण नहीं था, अस्तु इसे सत्य मान लेना पड़ा। यद्यपि उनकी स्वयं की बुद्धि इसे समझ और सुलझा नहीं पायी।

वैज्ञानिक ऐसे प्रसंगों की विवेचना ब्लैक होल के आधार पर करते हैं। उनका मत है कि इस प्रकार के संदर्भों में श्याम विवर की उपस्थिति ही तर्कसंगत और मान्य हो सकती है। इससे कम में इसकी वैज्ञानिक मीमांसा सम्भव नहीं। अपनी धरती पर अब तक इस तरह के दो ब्लैक होल ढूँढ़े जा चुके हैं। इनमें से एक फ्लोरिडा कोस्टारिका और बरमूडा के बीच बरमूडा त्रिकोण है, जबकि दूसरे की खोज अभी हाल ही में १८ अगस्त, १९९० को हुई। जापान, ताइवान तथा गुगुआन के मध्य स्थित यह त्रिभुज 'ड्रेगन्स ट्राइएंगल' अथवा 'डेविल्स ट्राइएंगल' के नाम से प्रसिद्ध है।

उल्लेखनीय है कि हरे रंग की उस अलौकिक लड़की ने अपने वृत्तान्त में एक लम्बी सुरंग से बहुत दूर चलने के उपरान्त पृथ्वी लोक में निकलने की बात कही थी। विज्ञान विशारद भी ब्लैक होल में फँसे व्यक्ति की भवितव्यता का कुछ ऐसा ही अनुमान लगाते हैं। मूर्धन्य अँग्रेज भौतिकीविद् और गणितज्ञ प्रो. जान टेलर अपनी कृति "ब्लैक होल-दि एण्ड ऑफ दि यूनिवर्स" में लिखते हैं कि श्याम विवर के अन्दर खिंचाव इतना भीषण होता है कि उसमें स्पेश पतली लम्बी गर्दन की शक्ल ग्रहण कर सकता है, जिसका दूसरा सिरा किसी अन्य लोक से जुड़ा हो। वे कहते हैं कि यदि सचमुच ऐसा होता है और ब्लैक होल के भीतर का व्यक्ति सुरक्षित बचा रहता है, तो वह उस सँकरी गली के माध्यम से किसी बिल्कुल ही पृथक विश्व में पहुँच जायेगा। वहाँ जीवित रहने पर भी वह किसी भी परिष्कृत यंत्र से अपने लोक से सम्पर्क स्थापित करने में असफल रहेगा। ऐसी स्थिति में वह अपने यान को पुनः श्याम विवर में इस आशा के साथ प्रविष्ट करा सकता है कि वह फिर इसके माध्यम से अपने विश्व में पहुँच जायेगा, किन्तु उसका इस प्रकार का हर प्रयास निरर्थक साबित होगा और प्रत्येक प्रयत्न उसे हर बार एक नई दुनिया में पहुँचा देगा। इस तरह वह अपने मूल जगत में पहुँचने में कदाचित् कभी भी सक्षम न हो सके। यह ब्रह्मांडव्यापी श्याम विवर की चर्चा हुई।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पृथ्वी पर स्थित ब्लैक होलों के सम्बंध में वैज्ञानिकों के एक दल का विश्वास है कि इस प्रकार के अनेक छोटे ब्लैक होल्स इसके स्थल भाग में स्थित हो सकते हैं, पर किन्हीं कारणों से उनके मुँह बंद रहते हैं और यदा-कदा ही खुलते हैं, किन्तु जब खुलते हैं, तो उसी प्रकार की घटनाएँ देखने-सुनने को मिलती हैं, जैसी कि ऊपर वर्णित हैं। इनके मुख कभी-कभी ही क्यों खुलते हैं और अधिकांश समय बन्द क्यों रहते हैं ? इस सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करने के लिए वैज्ञानिक अब पृथ्वी स्थित अपनी प्रयोगशाला में ही छोटे आकार के श्याम विवर विनिर्मित करने का विचार कर रहे हैं, ताकि उनकी प्रकृति के बारे में गहराई से अध्ययन किया जा सके। यदि ऐसा हुआ, तो फिर लोक-लोकान्तरों की यात्रा बिना किसी कठिनाई के कर सकना सम्भव हो सकेगा और व्यक्ति इच्छानुसार किसी भी लोक का सफर किसी भी समय सरलतापूर्वक कर सकेगा।

ऐसी यात्राएँ प्राचीन समय में सफलतापूर्वक सम्पन्न की जाती थीं। अब यह असम्भव ही नहीं, अविश्वसनीय स्तर की इसलिए लगने लगी हैं, क्योंकि इन दिनों आत्मविद्या का न तो वह उत्कर्ष शेष रहा है, न भौतिक विज्ञान का विकास। फलतः ऐसा कुछ भी कर पाने में असमर्थता ही सामने आयी है, जो ज्ञान-विज्ञान की उच्चस्तरीय उपलब्धि कहला सके। तब परा-अपरा दोनों विद्याएँ चरम पर थीं, अतः इनके संयोग से ऐसे-ऐसे कार्य निष्पन्न कर दिखाये जाते थे, जिन्हें सम्प्रति अचम्भा माना जाता है। लोकान्तर यात्रा इन्हीं में से एक थी। ऐसे गमनागमन का आर्ष साहित्यों में यत्र-तत्र वर्णन भी मिलता है। महाभारत में एक इसी तरह के प्रसंग का उल्लेख वन पर्व के तीर्थयात्रा प्रकरण में मौजूद है, जिसमें बंदी नामक एक पंडित ने यज्ञायोजन हेतु विद्वान ब्राह्मणों को समुद्र मार्ग से वरुण लोक भेजा था। चर्चा यह भी है कि यज्ञ के उपरांत वे सकुशल पुनः उसी मार्ग से पृथ्वी लोक आ गये थे। इससे स्पष्ट है कि तब लोग उस विद्या में निष्णात हुआ करते थे, जिसे आत्मिकी का उच्च स्तरीय रूप माना जाता है। यदि ऐसा नहीं होता, तो उनका वापस लौट पाना एक प्रकार से अशक्य बना रहता। आज इसी अशक्तता के कारण ऐसी घटनाओं में व्यक्ति एक लोक से दूसरे में पहुँच तो जाता है, पर फिर अपने पूर्व लोक में वापस नहीं आ पाता। इससे यह भी साबित होता है कि अन्य लोकों का सुनिश्चित अस्तित्व असंदिग्ध रूप से विद्यमान है।

इसी का समर्थन करते हुए प्रसिद्ध विज्ञानी रिचर्ड एच. ब्रायण्ट अपनी कृति 'अदर वर्ल्डस' में लिखते हैं कि स्थूल आयमों से परे अपने ही जैसे किसी अन्य विश्व के लिए यह आवश्यक है कि व्यक्त चार आयामों के अतिरिक्त और चार आयाम हों। यह आयाम प्रत्यक्ष आयामों को ढकेंगे नहीं, वरन् हर नया आयाम प्रत्येक दूसरे से समकोण पर स्थित होगा। वे कहते हैं कि यद्यपि इस प्रकार की विचारधारा सिद्धान्त रूप में सम्भव नहीं है, फिर भी गणितीय रूप से इसे दर्शाया जा सकता है। उनके अनुसार यदि भौतिक विज्ञान की पहुँच से बाहर गोचर आयामों से परे कोई पड़ोसी अगोचर संसार सचमुच है, तो इसे पाँचवें, छठवें, सातवें और आठवें आयामों से बना होना चाहिए। इस प्रकार विज्ञान ने भी सूक्ष्म लोकों के अस्तित्व पर एक प्रकार से मुहर लगा दी है। यहाँ यह प्रश्न उठा सकता है कि यदि वास्तव में ऐसे अव्यक्त लोक हैं, तो उनकी अनुभूति कैसे की जाय? उनसे सम्पर्क करने का उपाय क्या हो ? अध्यात्म विद्या के विशेषज्ञ इसका एक ही मार्ग सुझाते हैं—स्वयं को परिष्कृत कर इतना सूक्ष्म स्तर का बना लेना कि सूक्ष्म अस्तित्व से एकाकार हुआ जा सके। शक्कर और नमक के कण जब स्थूल होते हैं, तो सूक्ष्म जलकण से उनका आपा पृथक बना रहता है, किन्तु जब वे स्वयं को उसी स्तर और आकार का बना लेते हैं, तो दोनों के बीच की पृथकता समाप्त हो जाती है, दोनों एक आकार और स्वभाव के बन जाते हैं। इहलोक और परलोक के बीच का अन्तर सिर्फ इसलिए है कि हम अपनी स्थूलता त्यागना नहीं चाहते, अपने को घुलाई और रंगाई कर निखारना नहीं चाहते, अन्यथा जिस दिन ऐसा हुआ, उस दिन हम उस विभाजन भित्ति को भी वेधने में समर्थ हो सकेंगे, जो स्थूल-सूक्ष्म, दृश्य-अदृश्य, व्यक्त-अव्यक्त के दो लोकों के बीच अटल चट्टान की तरह अड़ी हुई है। वस्तुतः जो कुछ हम आँखों से देखते हैं क्या यही संसार है? इस प्रश्न का उत्तर हाँ में ही दिया जा सकता है, पर वह वस्तुतः नितान्त बालकों का ही होगा। वस्तुतः जो कुछ हम देखते हैं वह उन अस्तित्वों का अति स्वल्प अंश है जिसे हम देख नहीं सकते। न केवल खुली आँखों से वरन् सूक्ष्मदर्शी यन्त्र भी उन्हें देखने में ही नहीं अनुभव करने में भी असमर्थ रहते हैं।

कई बार दृश्य के अदृश्य में और अदृश्य के दृश्य में परिणत होने की घटनाएँ घटित होती रहती हैं और वे इतनी विचित्र होती हैं कि उन्हें भूत-प्रेत, देवी-देवताओं की करतूत, सिद्धि चमत्कार अथवा अतीन्द्रिय चेतना की अनुभूति आदि कहकर मन समझाना पड़ता है। वास्तविकता क्या है इसका सही पता लगा सकना और उन अद्भुत घटनाओं का समाधान कर विश्लेषण कर सकना प्रायः सम्भव नहीं ही हो पाता।

इस सन्दर्भ में आये दिन जहाँ-तहाँ घटित होने वाली घटनाओं में से दो इस प्रकार हैं—

(१) मनीला की यू० पी० आई नामक प्रामाणिक समाचार ऐजेन्सी ने पूरी खोज-बीन के पश्चात एक समाचार प्रकाशित कराया था कि—कार्नेलियो क्लोजा नामक एक बारह वर्षीय छात्र जब तब अनायास ही अदृश्य हो जाता है। स्कूल के क्लास से गायब हो जाना और दो-दो दिन बाद वापस लौटना आरम्भ में इसे लड़के की चकमेबाजी समझा गया किन्तु पीछे उसके दिये गये ब्यौरे पर ध्यान देना पड़ा। वह कहता था कोई समवयस्क परी जैसी लड़की उसे खेलने के लिए अपने पास बुलाती है और वह रुई की तरह हलका होकर उसके साथ खेलने, उड़ने लगता है।

पुलिस ने बहुत खोज की उस पर विशेष पहरा बिठाया गया। यहाँ तक कि उसके पिता ने कमरे में बन्द रखा तो भी उसका गायब होना रुका नहीं। पीछे किसी पादरी के मन्त्रोपचार से वह संकट दूर हुआ।

(२) फ्रांसीसी वैज्ञानिक सेलारियर जिनकी विश्वसनीयता पर किसी को उँगली उठाने का साहस नहीं हो सकता। उन्होंने

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

एक घटना का उल्लेख किया है—पैरिस की एक प्राचीन प्रतिमा की जब वैज्ञानिकों का एक दल परीक्षा कर रहा था तो वह मूर्ति देखते-देखते अदृश्य हो गई और उसके स्थान पर एक दूसरी विशालकाय मूर्ति आ विराजी जो पहली की तुलना में कहीं बड़ी थी।

यह घटना अभी बहुत पुरानी नहीं हुई है जिसमें टेनेसी राज्य के गालटिन नगर के एक धनी किसान डेविड लेंग के अचानक गायब हो जाने के समाचार ने दूर-दूर तक आतंक पैदा कर दिया था और उस सम्बन्ध में भारी जाँच-पड़ताल हुई थी। वह किसी जरूरी काम से घर से बाहर जा रहा था कि देखते-देखते आँखों के सामने से अदृश्य हो गया और फिर कभी नहीं लौटा। कोई ऐसी वजह भी नहीं थी जिससे वह जान-बूझकर भाग जाता। हँसता-हँसाता यह कहकर घर से निकला था कि "अभी दस मिनट में आता हूँ।" जिस स्थान से वह गायब हुआ था उसके आस-पास पन्द्रह फुट के घेरे की घास बुरी तरह झुलस गई थी। पुलिस तथा दूसरे खोजी सिर तोड़ प्रयत्न करने पर भी उसका कुछ पता न लगा सके।

ऐसी घटनाओं की विवेचना करते हुए वैज्ञानिक क्षेत्रों में कई प्रकार से चर्चा होती रहती है। अब विज्ञान इस निश्चय पर पहुँच चुका है कि मनुष्य की इन्द्रिय चेतना के आधार पर विकसित बुद्धि जितना जान पाती है, दुनिया वस्तुतः उससे कहीं अधिक है। उसे न बुद्धि समझ पाती है और न मानव निर्मित यन्त्र ही उसे पूरी तरह पकड़ पाते हैं। फिर भी कुछ विशेष सूक्ष्म सम्वेदना वाले यन्त्र थोड़ी बहुत जानकारी कभी-कभी देते रहते हैं और यह सिद्ध करते हैं कि प्रत्यक्ष दर्शन न केवल अधूरा वरन् भ्रामक भी है।

हम नित्य ही सूर्य की 'धूप' को देखते हैं। पर सच्चाई यह है कि धूप कभी भी नहीं देखी जा सकती। उसके प्रभाव से प्रभावित पदार्थ विशेष स्तर पर चमकने लगते हैं, यह पदार्थों की चमक है। सूर्य की किरणें जो इस चमक का प्रधान कारण हैं हमारी दृश्य शक्ति से सर्वथा परे है। अन्तरिक्ष में प्रायः पूरे सौरमण्डल को प्रकाशित एवं प्रभावित करने वाली धूप वस्तुतः सोलर स्पेक्ट्रमा—सौरमण्डलीय वर्ण क्रम—है। उसे ऊर्जा की तरंगों एवं स्फुरणाओं की एक सुविस्तृत पट्टी कह सकते हैं। इस पट्टी में प्रायः १० अरब प्रकार के रङ्ग हैं। पर उनमें से हमारी आँखें लाल से लेकर बेंगनी तक एक-एक रङ्ग सप्तक की तथा उसके सम्मिश्रणों को ही देख पाती हैं। बाकी सारे रंग हमारे लिए सर्वथा अदृश्य अपरिचित और अकल्पनीय हैं।

अब हम कुछेक सूक्ष्म किरणों को किन्हीं विशेष यन्त्रों की सहायता से देख समझ सकने में थोड़ा-थोड़ा समर्थ होते जाते हैं। जैसे धूप में 'इन्फ्रारेड' तरंगे देखी तो नहीं जातीं पर जलन के रूप में अनुभव होती हैं। इन किरणों को फोटोग्राफी में प्रयोग करके दुनिया का वास्तविक रंग विचित्र पाया गया है घास-पात, पेड़-पौधे वस्तुतः बिल्कुल सफेद हैं, आसमान समुद्र बिल्कुल काले। जबकि पत्तियाँ हरी और आसमान तथा समुद्र नीले देखते हैं। इन किरणों की सहायता से अमेरिका ने क्यूबा में लगे रूसी प्रक्षेपणास्त्रों के फोटो हवाई जहाज में खींचे थे। आश्चर्य यह कि उसमें वे उन जलती सिगरेटों के फोटो भी आ गये जो २४ घण्टे वहाँ के कर्मचारियों ने जलाई थीं और वे तभी बुझ भी गई थीं। दृश्य जगत में पदार्थ समाप्त हो जाने पर भी वह अन्तरिक्ष में अपनी स्थिति बनाये रह सकता है यह अजूबा हमें भूत और वर्तमान के बीच खिंची हुई लक्ष्मण रेखा से आगे बढ़ा ले जाता है। जो वस्तु अपने अनुभव के अनुसार समाप्त हो गई वह भी अन्तरिक्ष में 'वर्तमान' की तरह यथावत् मौजूद है, यह कैसी विचित्रता है।

ट्रेवर जेम्स ने इन्फ्रारेड मूवी फिल्म के लिए प्रयुक्त होने वाले एक विशेष कैमरे आई० आर० १३५ का उपयोग करके मोजावे रेगिस्तान के अन्तरिक्ष की स्थिति चित्रित की है। फिल्म में ऐसे पक्षी दिखाई पड़ते हैं जो अपनी आँखों से कभी भी दिखाई नहीं पड़ते।

जीवाणुओं की अपनी अनौखी दुनिया है वे मिट्टी, घास-पात, पानी और प्राणियों के शरीरों में निवास करते और अपने ढर्रे की मजेदार जिन्दगी जीते हैं। पर हम उनमें से कुछ को ही सूक्ष्मदर्शी यन्त्रों से देख पाते हैं। बाकी तो इतने सूक्ष्म हैं कि किसी भी यन्त्र की पकड़ में नहीं आते किन्तु अपने क्रियाकलाप बड़ी शान के साथ जारी रखते हैं।

शास्त्रकार ने उसे '**अणोरणीयान् महतो महीयान्**' कहा है। परमाणु से भी गहरी—उसकी संचालनकर्ती सूक्ष्मता को देखा और जाना तो नहीं जा सका पर उसका आभास पा लिया गया है। महतो महीयान् की बात भी ऐसी ही है। विशालकाय ग्रहपिण्ड और नीहारिका समुच्चय अत्यन्त विशाल है इतना विशाल जिसकी तुलना में अपना सौरमण्डल बाल बराबर भी नहीं है। फिर भी वह सब कुछ अधिक दूरी होने के कारण दीखता नहीं। रेडियो, दुरबीनें जिन आकाशीय पिण्डों का परिचय देती हैं वह आँखों से देखे जा सकने वाले सितारों की तुलना में अत्यधिक विस्तृत हैं। आश्चर्य यह है कि यह रेडियो, दुरबीनें भी पूरी धोखेबाज हैं वे अब से हजारों लाखों वर्ष पुरानी उस स्थिति का दर्शन करती हैं जो सम्भवतः अब आमूल-चूल ही बदल गई होंगी सम्भव है वे तारे बूढ़े होकर मर भी गये हों जो हमारी रेडियो, दुरबीनों पर जगमगाते दीखते हैं।

अल्ट्रा वायलेट फोटोग्राफी से ऐसे प्राणियों के अस्तित्त्व का पता चलता है जो हमारी समझ, परख और प्रामाणिकता के लिए काम में लाई जाने वाली सभी कसौटियों से ऊपर है। इन प्राणियों को 'प्रेतमानव' अथवा 'प्रेतप्राणी' कहा जाय तो कुछ अत्युक्ति न होगी। अब हमारे परिवार में यह अदृश्य प्राणधारी भी सम्मिलित होने आ रहे हैं। सूक्ष्म जीवाणु की तरह उनकी हरकतें और हलचलें भी अपने अनुभव की सीमा में आ जायेंगी।

हर्बर्ट गोल्डस्टीन ने अपने शोध निबन्ध '**प्रॉपगेशन आफ शार्ट रेडियो वेव्स**' में यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि वायुमण्डल में संव्याप्त अपवतानांव प्रणवता के पर्दे से पीछे अदृश्य प्राणियों की दुनिया है। वह दुनिया हमारे साथ जुड़ी हुई है और दृश्यमान सहचरों से कम प्रभावित नहीं करती। वर्तमान सूक्ष्मदर्शी साधन अपर्याप्त है तो भी हमें निराश न होकर ऐसे साधन विकसित करने चाहिए जो इस अति महत्त्वपूर्ण अदृश्य संसार के साथ हमारी अनुभव चेतना का सम्बन्ध जोड़ सकें।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

साधारणतया हमारी जानकारी पदार्थ के तीन आयामों तक सीमित हैं—लम्बाई, चौड़ाई और ऊँचाई। अब इसमें 'काल' को चौथे आयाम के रूप में सम्मिलित कर लिया गया है। आइन्स्टीन ने अपने सापेक्षवाद सिद्धान्त की विवेचना करते हुए यह समझाने का प्रयत्न किया है कि यह भौतिक संसार वस्तुतः "संयुक्त, चतुर्विस्तारीय दिक् काल जगत्" है। वे देश और काल की वर्तमान मान्यताओं को एक प्रकार से सापेक्ष और दूसरे प्रकार से अपूर्ण अवास्तविक मानते हैं।

कैलीफोर्निया विश्वविद्यालय के डा० राबर्ट सिरगी अपने दल के साथ ऐसे उपकरण बनाने में संलग्न हैं जिनसे पदार्थ के चौथे आयाम को समझ सकना सम्भव हो सके। वे कहते हैं जो हम जानते और देखते हैं उनसे आगे की गतियाँ और दिशाएँ मौजूद हैं, हम केवल तीन आयामों की परिधि में आने वाले पदार्थों का ही अनुभव कर पाते हैं जबकि इससे आगे भी एक विचित्र दुनिया मौजूद है। उस विचित्रता को समझे बिना हमारी वर्तमान जानकारियाँ बाल बुद्धि स्तर की ही बनी रहेंगी।

दृश्य का अदृश्य बन जाना और अदृश्य का दिखाई देने लगना मोटी बुद्धि से बुद्धि भ्रम अथवा कोई दैवी चमत्कार ही कहा जा सकता है। इतना होते हुए भी एक ऐसे सूक्ष्म जगत का अस्तित्त्व मौजूद है जो अपने इस ज्ञात जगत की तुलना में न केवल अधिक विस्तृत वरन् अधिक शक्तिशाली भी है। भूतकाल में उसे सूक्ष्म जगत एवं दिव्यलोक कहा जाता रहा है। उसमें पदार्थों का ही नहीं प्राणियों का भी अस्तित्त्व मौजूद है। वे प्राणी मनुष्य की तुलना में बहुत छोटे भी हो सकते हैं और बहुत बड़े भी। आवश्यकता एवं परिस्थितियाँ उनकी भी हो सकती हैं और जिस प्रकार हम उस सूक्ष्म जगत के साथ सम्बन्ध जोड़ने को उत्सुक हैं उसी प्रकार वे भी हमारे सहचरत्त्व के लिए इच्छुक हो सकते हैं। प्राणियों और पदार्थ का लुप्त एवं प्रकट होते रहना इन स्थूल और सूक्ष्म जगत के बीच होते रहने वाले आदान-प्रदान का एक प्रमाण हो सकता है।

सुप्रसिद्ध विज्ञान कथा लेखक एच० जी० वेल्स ने अपनी एक पुस्तक 'दि इन विजिबिल मैम' अदृश्य मानव में उन सम्भावनाओं पर प्रकाश डाला है, जिनके अनुसार कोई दृश्य पदार्थ या प्राणी अदृश्य हो सकता है और अदृश्य वस्तुएँ दृष्टिगोचर होने लग सकती हैं। इस विज्ञान की उन्होंने अपर्वतनांक—रिफ्रैक्टिव इण्डिसेन्स—नाम देकर उसके स्वरूप एवं क्षेत्र का विस्तृत वर्णन किया है।

भौतिकी के मूर्धन्य प्रोफेसर एड्रियान इलिंगवर्थ अपने साथी प्राध्यापक जान एच. वाकर के साथ पदार्थ की प्लाज्मा अवस्था पर विचार कर रहे थे। इलिंगवर्थ का कहना था कि प्लाज्मा और पदार्थ के ऊर्जा में रूपान्तरण के बीच एक अन्य अवस्था होनी चाहिए, जबकि वाकर इसका प्रतिवाद कर रहे थे। कह रहे थे यह सम्भव नहीं। चर्चा अभी चल ही रही थी कि प्रो. वाकर देखते-देखते न जाने अचानक कहाँ गायब हो गये। इलिंगवर्थ और उनकी पत्नी ने सारे कमरे छान मारे, बाहर देखा, कॉलेज और उनके घर में पता लगाया, पर कहीं पता न चला कि वे कहाँ अन्तरध्यान हो गये।

प्रस्तुत प्रसंग अब से पाँच वर्ष पूर्व घटी हॉलैण्ड (हेग) की एक सत्य घटना है। योग विज्ञान और रहस्यवाद के पास तो ऐसी घटनाओं का सुनिश्चित समाधान है, पर विज्ञान का प्रत्यक्षवाद अब भी स्थूल इन्द्रियों की क्षमता से परे के संसार में प्रवेश नहीं कर सका है, अस्तु इनका कारण भी नहीं ढूँढ़ सका है। यों धीरे-धीरे वह अब इस निश्चय पर पहुँच रहा है कि मनुष्य की इन्द्रिय चेतना के आधार पर विकसित बुद्धि जितना जान पाती है, दुनिया वस्तुतः उससे कहीं अधिक है। उसे न बुद्धि समझ पाती है और न मानव निर्मित यंत्र ही उसे पूरी तरह, पकड़ पाते हैं, फिर भी कुछ विशेष सूक्ष्म सम्वेदना वाले यंत्र थोड़ी बहुत जानकारी कभी-कभी देते रहते हैं और यह सिद्ध करते हैं कि प्रत्यक्ष दर्शन न केवल अधूरा, वरन् भ्रामक भी है।

हमारे उच्च चेतन की विलक्षण क्षमताएँ

स्वामी विशुद्धानन्दजी, जिन्हें 'गंध बाबा' नाम से भी जाना जाता रहा है गायत्री के सिद्ध उपासक एवं सूर्य विज्ञान के ज्ञाता के रूप में ख्याति प्राप्त संत थे। वे कहते थे कि सृष्टि में जो भी जीव चेतना है, जो भी स्पन्दन है, उसके मूल में सविता देवता की शक्ति ही है। यदि उससे निस्सृत किरणों का उपयोग आध्यात्मिक प्रयोजनों के लिए किया जा सके तो व्यक्ति अगणित सिद्धियों का अधिकारी बन सकता है। उनका स्वयं का जीवन उपरोक्त कथन का प्रमाण है। एक बार प्रत्यक्ष अनुभव का प्रसंग उठने पर स्वामी जी ने माला में से प्रत्येक फूल में जिज्ञासु दर्शकों की इच्छा के अनुरूप विभिन्न फूलों की गंधों का समावेश कर दिखाया था। वे स्वयं सिद्धियों के प्रदर्शन के विरुद्ध थे किन्तु गायत्री व सविता की महत्ता समझाने के लिए यदा-कदा सुपात्रों को ऐसे विलक्षण घटनाक्रम दिखा दिया करते थे।

स्वामी जी का अभिमत था कि जो कुछ भी दृश्य जगत में है, उसके परमाणु सूर्य की किरणों व परोक्ष ब्रह्माण्ड में विद्यमान हैं। गायत्री साधक यदि चाहे तो उनसे आहार ग्रहण कर सकता है, अपने लिए जो चाहे उस विराट महासागर में से ले सकता है। अनेकों बार स्वामी जी ने अविज्ञान के गर्भ से अनेक वस्तुएँ निकालकर अपने शिष्यों को सूँघने, खाने व देखने को दीं ताकि वे जन-जन को बता सकें कि गायत्री व सविता रूपी महाशक्ति की उपासना से व्यक्ति कितनी विलक्षण क्षमताओं का स्वामी बन जाता है।

यहाँ यह प्रतिपादन किया जा रहा है कि गायत्री महाशक्ति की उच्चस्तरीय साधना से मनोमय एवं विज्ञानमयकोश की सिद्धि द्वारा विलक्षण प्रतिभा, अद्भुत संकल्प शक्ति से लेकर पूर्वाभास, दूरदर्शन, परोक्ष जगत की जानकारी से लेकर पदार्थ हस्तान्तरण तक की उच्चचेतन स्तर की क्षमताएँ अर्जित की जा सकती हैं। ये सब विभूतियाँ मात्र पौराणिक मिथक नहीं हैं, इस सदी में भी अगणित ऐसे साधक हमारे देश व बाहर हुए हैं, जिन्होंने साधना द्वारा सिद्धि की यह सामर्थ्य हस्तगत की है। दृश्य रूप में हम इन दोनों कोशों की उपलब्धियों को जानना चाहें तो मनोमयकोश से मस्तिष्कीय विकास, उत्कृष्ट चिन्तन-प्रतिभा परिष्कार चमत्कारी प्रज्ञा रूप में इन्हें समझ सकते हैं, दूसरी ओर विज्ञानमय कोश को असामान्य स्तर की बुद्धि के विकास, परोक्ष से सम्पर्क जोड़ने की क्षमता तथा आदर्शवादी उमंगों के उभार के रूप में जान सकते हैं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

मनोमयकोश की साधना में एकाग्रता की शक्ति का सम्पादन एवं अभिवर्द्धन किया जाता है। मनःशक्ति बिखरी होने पर मस्तिष्क के पूर्ण समर्थ होते हुए भी व्यक्ति को पिछड़ेपन से ही ग्रस्त तथा बौद्धिक दृष्टि से दुर्बल बनाती है। इस बिखराव को गायत्री की ध्यानयोग प्रक्रिया द्वारा मनःसंस्थान के विभिन्न क्षमता केन्द्रों पर संचित-केन्द्रित कर लिया जाता है तो प्रसुप्त पड़े संस्थान जाग्रत होने लगते हैं। वे विशेषताएँ जो भीतर पहले नहीं थीं, जाग्रत होने लगती हैं। स्मरण शक्ति-प्रतिभा-बुद्धिलब्धि जैसी कितनी ही क्षमताएँ इस आधार पर विकसित की जा सकती हैं।

आतिशी शीशे के माध्यम से कुछ ही सीमित क्षेत्र में फैली सूर्य किरणों को जब एक ही बिन्दु पर एकत्रित किया जाता है, तो उतने भर से अग्नि प्रज्ज्वलित हो जाती है। चूल्हे पर पानी गरम करते समय ढेरों भाप उड़ती रहती है पर यदि १०० ग्राम पानी की भाप प्रेशर कुकर में ठीक ढंग से प्रयुक्त की जाय तो उतने भर से कई आदमियों का भोजन तुरन्त पकाया जा सकता है। भाप को निकलने का मार्ग न मिले व कुकर या कोई बड़ा बर्तन फट जाय तो यही भाप विनाश लीला भी मचा सकती है। सेरों बारूद जमीन पर फैलाकर जलादी जाय तो थोड़ी रोशनी व लपट की चमक भर दीखेगी किन्तु यदि उसे बंदूक की गोली या तोप के गोले के रूप में चलाया जाय तो वह बड़े से बड़ा क्षेत्र चीरती हुई गन्तव्य तक जा पहुँचती व नुकसान पहुँचाती है। नदी का पानी बहता रहता है, किन्तु जब उसी को संचितकर ऊपर से जलधार को टर्बाइन्स पर गिराया जाता है तो विद्युत प्रचुर परिमाण में उत्पन्न होने लगती है। ये सारे उदाहरण बिखराव को रोकने व केन्द्रीकरण की दिशा में मोड़ने से उत्पन्न चमत्कार के हैं।

व्यक्ति की सामान्यतः सारी सम्पदा बिखरी-सी रहती है। पेट व प्रजनन तक सीमित व्यक्ति अपना समय किसी तरह काटते व समय, अर्थ, विचार व इन्द्रिय सम्पदा का मनमाना उपभोग करते देखे जाते हैं। किन्तु जब इसी सम्पदा का दुरुपयोग रोककर सारे बिखराव का एकीकरण कर लिया जाता है तो उसी सामान्य व्यक्ति में से असामान्य महापुरुष उपज पड़ता है जो ऋद्धि-सिद्धियों का धनी देखा जाता है। प्रवीणता, पारंगतता, सफलता जैसी अनेकों उत्साहवर्द्धक विभूतियाँ वस्तुतः एकाग्रता की, मनोमय कोश की, साधना की उपलब्धियाँ हैं। वैज्ञानिक कहते हैं कि मस्तिष्कीय कोशों को सतत् उत्तेजना देकर प्रसुप्त केन्द्रों को उद्दीप्त किया जा सकता है। गायत्री महाविद्या के जप द्वारा मूलतः यही प्रक्रिया सम्पन्न होती है व व्यक्ति विलक्षण मानसिक क्षमताओं से सम्पन्न बन जाता है। विकसित कला-कौशल, बढ़ी हुई स्मरण शक्ति, आविष्कर्ता स्तर की सूझबूझ, मौलिक स्तर का चिन्तन करने जैसी बुद्धि इसी प्रकार की सिद्धियाँ हैं। इससे न केवल व्यक्ति की स्वयं की क्षमताएँ परिष्कृत होती हैं, वह दूसरों को प्रभावित कर सकने की प्रतिभा का भी धनी बन जाता है।

गायत्री साधक में साहसिकता-संकल्प शक्ति का अभिवर्द्धन भी मनोमय कोश की जाग्रति की उपलब्धियाँ हैं। प्रगति पथ पर अग्रगामी होने के लिए प्रतिकूलताओं से लड़कर साधन सामग्री जुटाने व अभावों का निवारण करने के लिए मानवी संकल्प शक्ति ही प्रमुख भूमिका निभाती है। संकल्प शक्ति चमत्कारी उपलब्धियों की जननी है। संकल्प शक्ति प्रचण्ड हो तो व्यक्ति एकाकी ही दुस्साहस करता हुआ बढ़ता चला जाता है व भौतिक-आध्यात्मिक दोनों ही क्षेत्रों में प्रगति के शिखर पर पहुँच कर दिखा देता है। मनः संस्थान वस्तुतः ज्ञान, अनुभव, कौशल, प्रतिभा के साथ-साथ संकल्प शक्ति का भी केन्द्र है व इसे साध लेने पर सिद्धिदात्री महत्त्वपूर्ण उपलब्धियों का साधक अधिकारी बन जाता है। पानी वाले बाबा से लेकर 'डाउसिंग' प्रक्रिया में निष्णात भूगर्भ से लेकर कहीं भी विद्यमान वस्तु को दिव्य दृष्टि से देख लेने वाले व्यक्तियों जैसी क्षमता इस कोश की आज्ञाचक्र की सिद्धि की ही परिणति है। इससे व्यक्ति व्यावहारिक जीवन में काम आने वाली दूरदर्शिता से लेकर सूक्ष्म जगत में हो रही हलचलों को समझ सकने में भी निष्णात हो जाता है। ध्यानयोग प्रक्रिया के अन्तर्गत आज्ञाचक्र को जगाकर मनोमय कोश की साधना को सिद्ध स्तर तक पहुँचाया जाता है।

विज्ञानमय कोश की साधना इससे ऊँचे स्तर की है। यह विचार क्षेत्र से गहरे स्तर पर भाव-प्रभाव से सम्बन्धित है। इस कोश का केन्द्र विशुद्धिचक्र माना गया है। कहीं-कहीं अनाहत चक्र को भी इसका केन्द्र बताया गया है। इस कोश की सन्तुलित साधना मनुष्य को उदार, सज्जन, सहृदय, सयंमी एवं शालीन बनाती है। परमार्थ भावना का 'आत्मवत् सर्वभूतेषु' की भावना का विकास इस कोश की सिद्धि द्वारा होता है। यह कोश आत्मचेतना का वह गहन अन्तराल है, जिसका सीधा सम्बंध ब्राह्मीचेतना के साथ बनता है। विज्ञान शब्द का अर्थ है—'विशेषज्ञान'। मात्र 'साइंस' नाम से यह अर्थ नहीं लिया जाना चाहिए। यहाँ विज्ञानमय कोश में अर्थ जो समझा जाता है वह असामान्य बुद्धि-ऋतम्भरा प्रज्ञा के विकास रूप में समझा जाता है। उच्चस्तरीय विभूतियों को अपने अंदर छिपाए हुए पाँचकोशों की एक महत्त्वपूर्ण परत है यह। विज्ञानमय कोश दो प्रयोजन पूरे करता है। पहला—अंतः करण की, चित्त तथा अहंकार परतों का अनावरण, उन्नयन व परिष्कार तथा जीवन को कल्पवृक्ष स्तर का बनाने की प्रक्रिया सम्पन्न करना। दूसरा—अंतःचेतना की गहरी परतों को जो अतीन्द्रिय क्षमता का भाण्डागार है, जगाना। आत्मसत्ता का असीम से सम्बंध जोड़ना।

वस्तुतः हमारी उच्चस्तरीय चेतन मस्तिष्कीय परतों में सूक्ष्म जगत के साथ सम्पर्क जोड़ने की विलक्षण क्षमता विद्यमान है। सामान्यतया यह क्षेत्र कुम्भकर्ण जैसी गहन निद्रा में पड़ा रहता है। यदि उसे जाग्रत होने का अवसर मिले तो व्यक्ति को देवोपम बनाने से लेकर चमत्कारी सिद्ध पुरुषों जैसा बनाने की सामर्थ्य उसमें है। विज्ञानमय कोश की जागरण साधना इसी दिव्यचेतन को समुन्नत बनाने की प्रक्रिया का नाम है।

प्राचीन भारतीय मनीषी-ऋषि-मुनि मानव मन के हर स्तर की सूक्ष्मतम जानकारी रखते थे। मन की इन शक्तियों को अभिव्यक्ति स्तर की सिद्धि प्रदान करने व अधिकार बनाए रखने की कला ही योग है। योगवसिष्ठ में मन को आकाश के

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org

समान सर्वत्र स्थित कहा गया है व बताया गया है कि यदि इसकी उच्चस्तरीय सिद्धि हस्तगत हो जाय तो व्यक्ति अनन्त सामर्थ्य का धनी बन जाता है। फिर अतीत का आगत का ज्ञान, सर्वभूत-सतज्ञान, परचित्त ज्ञान, पूर्वजन्मों का ज्ञान, भुवन ज्ञान, कायव्यूहज्ञान, ताराव्यूह ज्ञान, तारागति ज्ञान, दूरश्रवण, दूरबोध, सर्वज्ञत्व आदि अलौकिक शक्तियाँ मानव को मिल जाती हैं। योगीराज अरविन्द, रामकृष्ण परमहंस, रमण महर्षि से लेकर अनेकानेक गंगा, नर्मदा व गोदावरी तट पर साधना करने वाले महापुरुषों ने गायत्री महाशक्ति के इस चौथे कोश विज्ञानमय कोश का ही अनावरण कर यह सिद्धि अर्जित की जिसका छोटा सा नमूना भक्तों द्वारा समय-समय पर देखा गया। परोक्ष की जानकारी, विचार संचार व देवात्म सम्पर्क आदि कितनी ही अलौकिक ऋद्धियाँ इसी केन्द्र की जाग्रति का परिमाण हैं। विशुद्धि या अनाहत चक्र पर ध्यान करते हुए देवात्म शक्ति के प्रवेश व सारे क्षेत्र के अग्निमय-ज्योतिर्मय होने की भावना ध्यानयोग की उच्चस्तरीय प्रक्रिया द्वारा विज्ञानमय कोश की साधना में सम्पन्न की जाती है। नादयोग से लेकर लययोग तथा त्राटक तक किसी को भी साधना का माध्यम बनाया जा सकता है। अंतिम लक्ष्य सब का एक ही है जीवन ब्रह्म सम्मिलन की रसानुभूति, अद्वैत का भाव तथा अंतर्चेतना का जागरण-उन्नयन।

मनोमय कोश व विज्ञानमय कोश के जागरण-उन्नयन की साधना का मार्ग हर गायत्री साधक के लिए हर समय खुला हुआ है। यदि किसी को अलौकिक-परोक्ष स्तर की सिद्धि की कामना न हो तो भी व्यक्तित्त्व के सर्वांगपूर्ण परिष्कार से लेकर मनोकामना सिद्धि तथा प्रतिभा सम्वर्धन से लेकर प्रभाव क्षेत्र में वृद्धि जैसे अगणित ऐसे लाभ इससे जुड़े हुए हैं जो मानव मात्र को अभीष्ट हैं। यदि चक्रों को जगाकर सूक्ष्म शरीर की गहन परतों में स्थित इन कोशों को अनावृत्त किया जा सके तो व्यक्ति असाधारण श्रेय का अधिकारी बन सकता है। आध्यात्मिक लाभ जो सद्गणों की बढ़ोत्तरी के रूप में मिलते हैं, वे तो स्वतः मिलने ही हैं।

शक्ति कोषों का यह उत्कर्ष साधनाओं से सम्भव

श्रीराव नामक योगी के सम्बन्ध में देश-विदेश में अनेक चमत्कारिक वर्णन प्रचलित हैं। दहकते अँगारों पर चलना, नाइट्रिक एसिड खा लेना, काँच और कीलें खा जाना उनके लिये सामान्य बात थी। वे जल पर चलने के भी कई प्रदर्शन कर चुके हैं।

श्री बल्लभदास बिन्नानी नामक एक व्यक्ति ने एकबार ऐसे चमत्कारों की खोज के उद्देश्य से विन्ध्याचल की यात्रा की। यात्रा के दौरान उन्हें जो अनुभव हुए उनका विवरण देते हुये बिन्नानी जी लिखते हैं कि—"मैंने एक योगी महात्मा के दर्शन किये वह पानी में नंगे पाँव चलने की दिव्य क्षमता रखते थे। वह हवा में भी उड़ते थे। मैंने उनको पानी में प्रत्यक्ष चलते हुए देखा और फोटो भी उतारी।"

यह कहने पर कि योगीजी आप इस तरह की सिद्धियों का सार्वजनिक प्रदर्शन क्यों नहीं करते तो उन्होंने भर्तृहरि का निर्देश सुनाते हुए बताया कि चमत्कारों का प्रदर्शन अहंकार बढ़ाता है और योगी को पथ-भ्रष्ट करता है। सिद्धियाँ आत्म-कल्याण के लिये हैं न कि प्रदर्शन के लिये ? तो भी अनेक सिद्ध-महात्माओं द्वारा ऐसे चमत्कार यदा-कदा देखने को मिल ही जाते हैं।

लुम्का में जबर्दस्त बाढ़ आई हुई थी। सारा नगर कुछ ही क्षणों में जलमग्न हो जाने वाला था। इंजीनियरों की सारी शक्ति निष्क्रिय हो गई, सब पाताल समाधि की प्रतीक्षा कर रहे थे। उसी समय कुछ व्यक्तियों ने फ्रीडियन नामक साधु से जाकर प्रार्थना की—महात्मन् ! इस दैवी प्रकोप से बचाव का कुछ उपाय आप ही कीजिये। कहते हैं, महात्मा फ्रीडियन ने ओसर नदी की धारा योग बल से मोड़ दी और नगर को डूबने से बचा लिया।

एग्निस नाम की एक ईसाई महिला हुई हैं। उन्होंने अपने जीवन का अधिकांश भाग योगाभ्यास में लगाया। उनके आश्रम में २० और साधिकायें रहती थीं, एक बार उन्हें तीन दिन तक कुछ भी खाने को न मिला। एक साधिका भूख से अति व्याकुल होकर बोली—"मैडम हमें रोटी दो नहीं तो हम मर जायेंगी।" एग्निस ने कहा—"अच्छा बगल वाले कमरे में रोटियाँ रखी हैं, उठा लाओ।" उस बिहार में अन्न का एक दाना भी न था पर उन्होंने इतने विश्वासपूर्वक कहा जैसे वह स्वयं पकाकर रोटियाँ रख आई हों। साधिका वहाँ गई तो सचमुच एक पात्र में रोटियाँ थीं। उन्हें खाकर सबने भूख मिटाई।

स्वामी ब्रह्मानन्द का एक भाषण काशी में हुआ। उसमें कई रूढ़िवादी उनसे बहुत रुष्ट हो गये। एक दिन स्वामी जी गंगातट पर बैठे ध्यान कर रहे थे, तभी उधर कुछ विरोधी आ पहुँचे। उन्होंने बदला निकालने का यह अच्छा अवसर समझा। इसलिये दो हृष्ट-पुष्ट युवक आगे बढ़े और पद्मासन बैठे स्वामी जी को जबर्दस्ती उठाकर पानी में फेंक दिया। स्वामी जी उन दोनों युवकों को भी हाथ में कसे लेते चले गये पर जब वे डूबने लगे तो उन्हें छोड़ दिया और आपने स्वयं नदी की सतह पर पद्मासन समाधि ले ली। बाहर मुसलमान बड़ी देर तक हाथों में पत्थर लिये खड़े रहे कि स्वामी जी बाहर निकलें तो उन पर पत्थर दे मारें। पर वह स्थिति ही नहीं आई। स्वामी जी शाम तक जल के अन्दर ही बैठे रहे। जब वे वहाँ से चले गये तो वे शान्ति-भाव से बाहर निकल आये।

अनेक लोगों का विचार है कि अब मानव शरीर की क्षमतायें क्षीण होती जा रहीं हैं पर आधुनिक विज्ञान भी अब शास्त्रों की ही बात बोलने लगा है। सोवियत वैज्ञानिकों ने अभी पता लगाया है कि मानव शरीर की क्षमतायें अब तक हुई जानकारी से हजारों गुनी अधिक हैं। भयानक सर्प या कुत्ते से बचने के लिये कई व्यक्ति जो कभी १ फुट भी नहीं उछल सकते थे, भयावेश में तीन-तीन मीटर ऊँची दीवार कूद जाते हैं। जेल से भागते हुये कैदी लोहे की सलाखें मोड़ सकते हैं, यह सब क्रियायें यह बताती हैं कि मनुष्य शरीर की सामर्थ्य बहुत अधिक है। शरीर में कुछ तत्त्व और सूक्ष्म एवं अत्यन्त

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

मर्म-स्थान हैं, उनमें भरी हुई शक्तियों को जागृत कर मनुष्य भीम की तरह बलवान्, नागार्जुन की तरह रासायनज्ञ, संजय की तरह दूरदृष्टि वाला, अर्जुन की तरह अन्य लोकों में गमन करने वाला, रामकृष्ण की तरह परमहंस और गुरु गोरखनाथ की सी चमत्कारिक सिद्धियाँ पा सकता है। शारीरिक शक्ति में इस तरह की बुद्धि का उद्‌गम मस्तिष्क है। विशेष परिस्थितियों में मस्तिष्क माँस-पेशियों को उद्‌भट कार्य करने का आदेश देता है और उनमें से कुछ सूक्ष्म तत्त्व निकलकर अपना प्रभाव दिखाते हैं। वैज्ञानिकों ने हाल में ऐसी विधियाँ ढूँढी हैं, जिनसे कृत्रिम रूप से शारीरिक शक्ति बढ़ाई जा सकती है।

मस्तिष्क के आदेशों को बीच में रोक लिया जाता है और मानव शरीर को एक विशेष प्रकार का ट्रान्जिस्टर बनाकर उन आदेशों की शक्ति बढ़ा दी जाती है। इससे मनुष्य अति मानवीय शक्ति सम्पन्न हो जाता है। शरीरस्थ जीवाणुओं को प्राण और संकल्प शक्ति के द्वारा हल्का और भारी करके, सम्मोहन क्रिया द्वारा थोड़ी ही देर में बहुत भारी प्राण की मात्रा खींच करके ऐसे असामान्य कार्य दिखलाये जा सकते हैं, जिन्हें चमत्कार कहा जा सकता है।

इन सिद्धियों, सामर्थ्यों को पाकर मनुष्य उन स्थितियों में भी आनन्दपूर्वक रह सकता है, जिनमें साधारण लोग जाकर जीवित नहीं रह सकते। उदाहरणार्थ त्रिशिख-ब्राह्मणोपनिषद् में कुछ ऐसे प्राणायामों का वर्णन है, जिनका तीन वर्ष तक अभ्यास से मनुष्य जितेन्द्रिय और अल्पाहारी हो जाता है, वह एक-दो घण्टे की नींद से ही पर्याप्त विश्राम लेकर दीर्घजीवी हो सकता है। नाभिकन्द में प्राण धारण करने से कुक्षि रोग नष्ट होते हैं। योग कुण्डल्युनिषद् में उज्जायी क्रिया का वर्णन है, उससे नाड़ी सम्बन्धी जलोदर और धातु सम्बन्धी रोग दूर होते हैं, कुण्डलिनी जागरण किया हुआ योगी भयंकर विष भी पचा सकता है। दूसरे की मन की बात ऐसे जान सकता है, जैसे उससे स्वयं ही बता दी हो।

अष्ट सिद्धियाँ—अणिमा, महिमा, गरिमा, लघिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशत्व और वाशित्व को प्राप्तकर मनुष्य इसी देह में ईश्वर तुल्य शक्ति का अनुभव कर सकता है और संसार में होने वाले घटना-चक्रों को परास्त कर सकता है, विस्फोट कर सकता है, शाप, वरदान, प्राण संचार या सन्देश प्रसारण कर दूसरों का भला भी कर सकता है और लोगों के जीवन की दिशाएँ भी मोड़ सकता है।

श्री श्यामाचरण जी लाहिड़ी एक-बार हिमालय गये। वहाँ एक युवा संन्यासी से उनकी भेंट हुई। साधु उन्हें एक गुफा में ले गया और एकान्त में ले जाकर उनके सिर पर हाथ रखा। श्री लाहिड़ी जी लिखते हैं—"मुझे ऐसा लगा कि यह हाथ नहीं कोई प्रचण्ड विद्युत् शक्ति वाला दण्ड था, उससे मेरे शरीर में प्रकाश भरना प्रारम्भ हुआ। मुझे पूर्व जीवन की स्मृतियाँ उभरने लगीं। यहाँ तक कि मैंने अनेक वस्तुएँ ऐसी भी पहचानी, जिनका मेरे पिछले जन्मों से सम्बन्ध था, मैं अनुभव करता हूँ कि गुरुओं का प्राण योग्य शिष्य इसी तरह पाकर स्वल्पकाल में ही दीर्घ-प्राणवान् बनते होंगे।

योग सिद्धियों का विवेचन करते हुये भर्तृहरि ने लिखा है—कि जब चित्त से रजोगुण (अर्थात् सुख की इच्छाएं) और तमोगुण (अर्थात् पाप की इच्छाएं) नष्ट हो जाती हैं और ईश्वरीय प्रकाश की स्थिरता आ जाती है, उस समय भूत और भविष्य की बातें चित्रपट की भाँति स्पष्ट दिखाई-सुनाई पड़ने लगती हैं।

योग साधना की शक्ति विवेचन करते हुए शास्त्रकार ने स्पष्ट कहा है—

विश्व रूपस्य देवस्य रूपं यत्किंचिदेव हि।
स्थवीय ! सूक्ष्मन्यद्वा पश्यन्हृदय पंकजे॥

—त्रिशिखिब्राह्मणोपनिषद् । १५८

जो लोग इस स्थूल सूक्ष्म और अन्य प्रकार से बने संसार को ही भगवान् का रूप मानते हैं और उसकी हृदय-कमल में आराधना करते हैं, वह साक्षात् उन्हीं के रूप का हो जाता है और अणिमादि सिद्धियों के फल को अनायास ही पा लेता है।

भारतीय धर्म-शास्त्रों और पुराण-ग्रन्थों में ऐसे कई पात्रों का विवरण मिलता है जो हाड़मांस की काया रखते हुए भी इतने मजबूत और सुदृढ़ शरीर के स्वामी थे कि उन्हें बज्रदेह ही कहा जाता है। हनुमान, भीम आदि पौराणिक चरित्रों के सम्बन्ध में ऐसे अनेकानेक प्रसंग मिलते हैं कि उन पर सहज ही विश्वास नहीं होता। क्या सचमुच कोई व्यक्ति हाथियों से रौंदे जाने पर भी जीवित बच सकता है। क्या पैने और विषबुझे वाणों का भी देह पर कोई असर नहीं होता ? यदि ऐसे अनेक प्रश्न उभरते हैं, जब इन पात्रों से सम्बन्धित चर्चा चलती है या ऐसे विवरण उपलब्ध होते हैं।

ऐसे विवरणों को संदेह की दृष्टि से भी देखा जाता है परन्तु इसी शताब्दी के आरम्भ में अमेरिका का एक ऐसा व्यक्ति अपनी सुदृढ़ काया के कारण विख्यात हो चुका है जिसके शरीर पर कठोर से कठोर यातना का प्रभाव नहीं पड़ता था और उसने अपनी शारीरिक क्षमता सुदृढ़ता को इतना बढ़ाया कि सन् १९६४ में जब वह वृद्ध हो चुका था अपने पेट पर बड़े-बड़े इस्पाती हथौड़ों के बार ऐसे सह लेता था जैसे उस पर हथौड़े नहीं फूल फेंके जा रहे हों।

इस व्यक्ति का नाम था रिचर्ड। ८ अगस्त, १९६५ के नवभारत टाइम्स के बम्बई संस्करण में रिचर्ड के एक प्रदर्शन का जो विवरण प्रकाशित हुआ था, वह इस प्रकार है—'कैलीफोर्निया के स्टेडियम में सारा नगर उमड़ आया था। सहसा भीड़ में से एक बूढ़ा निकला और स्टेडियम के मध्य जाकर खड़ा हो गया। उसकी आयु किसी भी प्रकार साठ-पैंसठ वर्ष से कम की नहीं दिखाई दे रही थी। किन्तु कद कांठी में वह अच्छा खासा लम्बा-चौड़ा और मजबूत था। उसने उस समय केवल एक जाँघिया पहन रखा था और शेष सारा शरीर निरावरण था।'

रिचर्ड के मंच पर पहुँचने के बाद पाँच हट्टे-कट्टे व्यक्ति मंच पर आए। उनमें से एक ने लगभग पन्द्रह फुट लम्बी और छह इंच मोटी मजबूत लकड़ी उठा रखी थी। वह बड़ी तेजी से उस बूढ़े की ओर बढ़े ओर लकड़ी को बूढ़े के पेट के ऐन बीच रखकर पाँचों पूरी शक्ति से दबाने लगे। यह दृश्य इतना

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आश्चर्यजनक और भयंकर था कि कई स्त्रियाँ चीखें मारकर बेहोश हो गईं और कमजोर हृदय वाले पुरुषों ने भयभीत होकर अपनी आँखों पर हाथ रख लिये। किन्तु वह बूढ़ा एक फौलादी चट्टान के समान अपने स्थान पर ही खड़ा रहा। पाँचों व्यक्ति अपना एड़ी चोटी का जोर लगाकर पसीना-पसीना हो गये किन्तु रिचर्ड को एक कदम भी पीछे नहीं हटा सके, आश्चर्य की बात तो यह थी कि रिचर्ड ने अपनी एक टाँग ऊपर उठा रखी थी।

जब वे पाँचों व्यक्ति अपने प्रयासों में सफल नहीं हुए तो रिचर्ड को पराजित करने के और भी कई प्रयत्न किये गये। उदाहरण के लिए सान फ्रांसिस्को से छः भीमकाय पहलवान इसी उद्देश्य के लिए बुलाये गये थे। उन्होंने रिचर्ड को घेर लिया और पूरी ताकत से पहलू बदल-बदल कर उसे घूसे मारने लगे। करीब पन्द्रह मिनट तक छहो पहलवान पूरी ताकत से जोर अजमाइस करते रहे किन्तु उन्हें सफलता न मिल सकी। वे सब तो पसीने से नहा गये किन्तु रिचर्ड को जैसे कुछ हुआ ही न हो। वह बड़े आराम से अपनी जगह पर खड़ा हुआ था। जब वे पहलवान रिचर्ड पर आक्रमण कर चुकने के बाद हटते थे तो वह उन्हें "बस इतना ही दम है।" कह-कह कर और उत्तेजित करता था।

उसके बाद सान जोंस स्टेट यूनिवर्सिटी के करीब साढ़े छः फुट लम्बे और २४० पौंड वजन वाला पहलवान जाग्योर्ड मंच पर आया। वह गोला फेंकने में अद्वितीय था। उसने अपनी पूरी ताकत से एक बहुत भारी गोला रिचर्ड के पेट पर फेंक मारा लेकिन रिचर्ड पर उसका जरा भी प्रभाव नहीं पड़ा। रिचर्ड ने जाग्योर्ड को भी उसी तरह चिढ़ाया। इससे जाग्योर्ड बुरी तरह तिलमिला उठा और वह अपने बड़ी-बड़ी नुकीली कीलों वाले जूतों से रिचर्ड को चोट पहुँचाने लगा किन्तु रिचर्ड खड़ा-खड़ा मुस्करा रहा था।

इस प्रदर्शन के बाद रिचर्ड छः फीट ऊँचे चबूतरे के पास चित लेट गया। उसके चित लेट जाने पर एक बहुत भारी व्यक्ति उस ऊँचे चबूतरे पर चढ़ा और बूटों सहित उसके पेट पर पूरी शक्ति से कूदने लगा। लेकिन रिचर्ड के चेहरे पर शिकन तक नहीं थी। वह ऐसी लापरवाही से मुस्करा रहा था जैसे साल डेढ-साल का कोई बच्चा उसके पेट पर खेल रहा हो।

ये सारे प्रदर्शन रिचर्ड की एक चुनौती के जवाब में आयोजित किये जा रहे थे, जिसमें उसने कहा था कि जो कोई भी व्यक्ति मुझे जमीन पर गिरा देगा या मुझे त्रस्त कर सकेगा, मैं उसे एक हजार डालर (करीब ८५०० रुपये) का पुरस्कार दूँगा। इस घोषणा के बाद रिचर्ड की चुनौती का जवाब देने के लिए कई व्यक्ति आये, उन्होंने अपने-अपने ढंग से जोर आजमाइश की परन्तु कोई भी अपने को इनाम का हकदार सिद्ध नहीं कर सका। जब भी कोई उसकी चुनौती को स्वीकार कर उसे पराजित करने की बाजी रखता था और प्रदर्शन रखा जाता तो उसके आक्रमणों का रिचर्ड पर कोई असर नहीं होता था। अधिक से अधिक यही होता था कि उसका पेट स्पंजी गद्दे की तरह ऊपर-नीचे दब जाता था। सन् १९६४ में उस पर एक बड़ी नली की बन्दूक से सौ-सौ पौंड के वजन वाले गोले बरसाए गए, तब भी उसे कोई कष्ट होना तो दूर रहा, वह अपने स्थान से हटा तक नहीं।

सन् १९६६ में सबसे रोमांचक और हृदय दहलाने वाला प्रदर्शन हुआ। इस प्रदर्शन में अमेरिका की जल सेना के इन्जीनियरों ने लांगबीय के स्थान पर साढ़े बारह फुट लम्बी और करीब २५०० पौंड वजन वाली एक छोटी तोप बनाई। इसमें करीब १५० पौंड वजन का गोला डाला गया। रिचर्ड तोप से चार फुट दूर खड़ा हुआ। तोप दागी गई और उससे डेढ सौ पौंड वजनी गोला, पाँच हजार पौंड वजन की शक्ति से रिचर्ड के पेट से टकराया गया और कोई व्यक्ति होता तो तोप के सामने खड़े होकर इतना भारी और शक्तिशाली गोले का बार सहने के कारण निश्चित रूप से समाप्त हो जाता। यहाँ तक कि उसके मांस के लोथड़े भी नहीं मिलते। परन्तु रिचर्ड खड़ा मुस्कराता रहा।

रिचर्ड के इन प्रदर्शनों का विवरण विश्व भर के समाचार पत्रों ने विस्तारपूर्व छापा और उसे लौहपुरुष, आयरन मैन, इस्पात का आदमी, मांस की चट्टान आदि विशेषणों से सम्बोधित किया। रिचर्ड ने यह विद्या कहाँ से सीखी थी ? कैसे उसने अपने शरीर को इतना मजबूत बना लिया था कि तोप से छूटे गोले भी उस पर फूल की तरह बरसते थे ? इस सम्बन्ध में रिचर्ड का कहना था कि वह सन् १९२४-२५ में अपने एक अधिकारी के साथ जो भारत की यात्रा पर आया था, भारत आया । यहाँ आकर वह अपने उच्च अधिकारी के साथ वाराणसी, प्रयाग, हरिद्वार ऋषिकेश आदि स्थानों पर गया। इन स्थानों पर कई साधु सन्तों और सिद्ध योगियों को रिचर्ड ने देखा। उससे तथा उसके अधिकारी ने इन योगियों से योग साधना की विद्या भी सीखी।

एक विशेष प्राणायाम और आसन की विधि बताते हुए किसी योगी ने रिचर्ड को बताया कि इनका अभ्यास करने पर शरीर चट्टान से भी अधिक मजबूत बन सकता है। रिचर्ड ने अपने अभ्यास का क्रम इतना बढ़ा लिया था कि उस पर गोलों और लोहे की छड़ों का कोई असर नहीं होता।

योगशास्त्र में वर्णित अनेकानेक सिद्धियों में से एक सिद्धि, देह का वज्र के समान सुदृढ़ हो जाना भी है। भारतीय योगियों ने अति प्राचीन काल में योग विद्या को शोध और अनुसंधान द्वारा उस सीमा से भी काफी आगे पहुँचा दिया था जहाँ तक विज्ञान पहुँच सका है और भविष्य में उसकी पहुँचने की सम्भावना है। उसे अन्तिम सीमा तो नहीं कह सकते, पर इतना स्पष्ट है कि भारतीय योग विज्ञान ने चेतना के उन शिखरों को छुआ था, जिनकी प्रतिक्रिया परिणिति, अविश्वसनीय आश्चर्य ही लगती है, किन्तु आज भी जहाँ-तहाँ उसके अवशेष मिलते हैं।

भारतीय योगियों की कहानी एक योरोपियन की ज़बानी

पाश्चात्य लेखक श्री जी० के० मर्फी लिखते हैं कि जो योरोपियन पूर्व में नौकरी के सम्बन्ध में अथवा केवल पर्यटन की दृष्टि से जाते हैं, उनके लिये भारतीय फकीर, साधु, संन्यासी और योगी सदा ही एक दिलचस्पी के विषय रहते हैं। इनमें से कुछ तो धूर्त होते हैं, और साधारण मनुष्यों को ठग कर अपना पेट पालते हैं, लेकिन बहुत से साधुओं और फकीरों में कुछ

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

अलौकिक शक्तियाँ भी होती हैं। ये फकीर अपने 'जादू' के ऐसे करिश्मे दिखला सकते हैं और दिखलाते हैं, जो गोरों को प्रायः असम्भव और अद्‌भुत मालूम पड़ते हैं।

इसके पहले कि भारतीय संन्यासियों के 'करिश्मों' का कुछ वर्णन करूँ, मैं यह बताना चाहता हूँ कि मैं इसका अधिकारी कैसे हुआ। मैंने संसार भ्रमण करके केवल इधर-उधर काम चलाने का ही ज्ञान प्राप्त नहीं किया है, वरन् मैं पूर्व में लगभग चालीस वर्ष रहा हूँ और मैंने अपना समय उच्च पद पर रह कर सरकार की नौकरी करने में व्यतीत किया है। मैं अच्छी हिन्दुस्तानी और बर्मी भाषा बोल सकता हूँ। मैं उन पहाड़ियों और जंगलियों की स्थानीय बोली भी जानता हूँ जो आज की सभ्यता से दूर हैं, मेरा दावा है—कि मैं हिन्दुस्तान और हिन्दुस्तानियों को अच्छी तरह से जानता हूँ। मैं उन लोगों के बीच में रह चुका हूँ। मैंने उनके साथ काम किया है। मैंने उनकी 'मार्गदर्शक', 'दार्शनिक' और साथी की तरह से सेवा की है। इस निकट सम्बन्ध के कारण ही मैं भारतीय फकीरों और महात्माओं द्वारा किये गये 'जादू' के विषय में ज्ञान प्राप्त कर सका हूँ। इसी वजह से मैं वहाँ की रीति, रिवाज और धारणाओं को ठीक तरह से समझ सका, जो कि आमतौर से अफसरों के लिये एक गूढ़ विषय रहते हैं। अब मैं अपनी कहानियाँ सुनाता हूँ।

मेरे भारत निवास के लम्बे अरसे में नीचे लिखे चमत्कार मुझे देखने को मिले, जो कि अध्यात्मवाद अथवा अलौकिकता के विद्यार्थियों के लिये दिलचस्पी के सामान होंगे।

एक अवसर पर एक योगी ने, जिसका यह दावा था कि उसने मृत्यु की समस्या को हल कर लिया है, घोषणा की, कि वह पाँच रोज तक लाश की तरह जीवित कब्र में गाड़ दिये जाने के लिए तैयार है पाँच दिन के बाद वह फिर जीवित हो जायेगा। वहाँ के रहने वाले बहुत से यूरोपियन अफसरों ने यह स्वीकार कर लिया और योगी को अपना कमाल दिखाने के लिये तैयार कर दिया। एक काठ का ताबूत बनाया गया। वहाँ के मैजिस्ट्रेट के अहाते में एक छः फीट गहरी कब्र खोदी गई। यह स्थान जान बूझकर इसलिये चुना गया था कि यहाँ पर उसकी पूरी तरह से रखवाली हो सकती थी।

निश्चित दिन पर थोड़ा प्राणायाम कर लेने के बाद वह साधू ताबूत में बन्द कर दिया गया। इस समय उसकी अवस्था कुछ बेहोश की तरह हो रही थी। इस ताबूत में बारह बड़े-बड़े छेद थे। ऊपर से बड़े ढक्कन रखकर इन छेदों में कीलें डालदी गईं। मजिस्ट्रेट, सुपरिन्टेन्डेण्ट पुलिस, दो यूरोपियन डॉक्टरों तथा दूसरे अफसरों के सामने मुहर लगा दी गई। ताबूत कब्र में डाल दिया गया और उस पर मिट्टी चढ़ा दी गई। ऊपर की सतह पर बड़े-बड़े गोल पत्थर रख दिये गये। सब के ऊपर एक तागा कब्र के इस पार से उस पार तक बाँध दिया गया। तागा इस तरह बाँधा गया कि बगैर उसके छुये कब्र में कोई हाथ नहीं लगा सकता था। मजिस्ट्रेट ने इस तागे पर होशियारी के साथ मुहर लगा दी।

उस दिन से रोजाना अफसरों का एक छोटा-सा दल उस कब्र की परीक्षा करता था। वह यही परीक्षा करते थे कि तागे की मुहर को किसी ने छुआ है या नहीं मजिस्ट्रेट साहब स्वयं इस बात की निगरानी रखते थे कि कोई चीज को छूने न पावें। पांचवें दिन दो बजे पूर्व निश्चय के अनुसार हम लोग एकत्रित हुये। तागे पर की मुहर तोड़ी गई, पत्थर हटा दिये गये। जमीन खोदी गई और ताबूत को होशियारी से ऊपर उठाया गया। ढक्कन की कीलें निकाल ली गईं। फकीर बाहर निकाला गया और ठीक उसी तरह जमीन पर लिटा दिया गया जैसा कि उसने गाड़े जाने के पहिले आदेश किया था।

उसका शरीर शिथिल और ठण्डा हो गया था। डॉक्टर लोग जीवन का कोई भी चिह्न नहीं पा सके। नाड़ी मन्द हो गई थी। सांस का पता नहीं चलता था। प्रत्येक व्यक्ति ने जिसमें डॉक्टर लोग भी शामिल थे यह समझा कि वह फकीर बिल्कुल निर्जीव हो गया है। फकीर ने पहले ही मना कर रखा था कि कोई उससे छेड़-छाड़ न करे। इसलिये हम लोग मुर्दे को गौर से देख रहे थे। मन में कुछ लोभ के साथ हम यही सोच रहे थे कि क्या यह मुर्दा जिसने कि पूरे भरोसे के साथ कहा था, कि वह जी जायगा, सचमुच ही जी जायगा। अगर वह न जी सका तो ?

आधे घण्टे बाद डॉक्टर ने फिर नाड़ी देखी। हमको यह जानकर आश्चर्य हुआ कि उसकी नाड़ी अब मन्दगति से चलने लगी है। एक घण्टे के बाद नाड़ी और भी तेज चलने लगी। दूसरा घण्टा होते-होते उसने अपनी आँखें खोल दीं। चारों तरफ घूर कर देखा और जमुहाई ली जैसे कि वह एक लम्बी नींद से अभी उठा हो।

थोड़ा-सा प्राणायाम करने के बाद वह उठ खड़ा हुआ। भ्रमण करने के बाद हमें मालूम हुआ कि उस आश्चर्यजनक कार्य करने की क्षमता उसमें प्राणायाम ही से आई थी। उसने बताया कि वह इच्छा के अनुसार अपनी प्राण शक्ति को गुप्त कर सकता था। यह काम वह कैसे करता था, यह आज एक रहस्य ही है।

हिन्दुस्तान में रस्सियों के तमाशे के बारे में बहुत कुछ लिखा जा चुका है। साथ ही साथ यह भी कहा गया है कि आज तक किसी ने उसे देखा नहीं है, इसके बारे में जो कुछ कहा जाता है सब दूसरों से सुनकर। लेकिन लेखक ने इसे अपनी आँखों से देखा है। भारत के मध्य प्रान्त में जबलपुर से ६० मील दूर मांडला स्थान में १९०० या १९०१ में यह तमाशा हुआ था। इस तमाशे को एक बूढ़े योगी ने किया था। अपनी इन्हीं अलौकिक शक्तियों के कारण उसका वहाँ बहुत सम्मान था।

"हम इसके लिये उत्सुक थे कि इस अवसर पर जिम्मेदार गवाह भी उपस्थित रहें, इसलिये हमने इस तमाशे को वहाँ के डिप्टी कमिश्नर मि० मा० के बंगले पर कराया। मि० मा० के मेहमानों में ये लोग भी थे—मि० भेरिक सुपरिन्टेन्डेण्ट पुलिस मि० थामसन फारैस्ट आफिसर और मैं।"

"अप्रैल का चमकीला दिन था, हम लोगों के अलावा करीब आधे दर्जन हिन्दुस्तानी नौकर भी वहाँ उपस्थित थे। वहाँ के कुछ स्थानीय लोग भी इस आश्चर्यजनक घटना को देखने के लिये एकत्र हो गये थे।"

"बूढ़े योगी ने यह कह कर खेल शुरू किया कि वह बहुत आश्चर्यजनक खेल दिखाने जा रहा है। इस खेल में एक लड़का उस रस्सी पर चढ़ेगा जो सीधी स्वर्ग की तरफ जा रही होगी। लड़का टुकड़े-टुकड़े कर दिया जायगा। उसका कटा

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

हुआ शरीर दिखलाई भी पड़ेगा। बाद में वह उस लड़के को जीवित भी कर देगा, उस पर कुछ भी असर नहीं होगा।"

इस भूमिका के बाद उसने उस लड़के को आगे खड़ा किया। उसका नाम मंगरू था। वह नौ वर्ष का था। योगी ने हमें रस्सी भी दिखलाई जो पृथ्वी पर लिपटी हुई पड़ी थी। योगी ने जो कम से कम साठ वर्ष का अवश्य हो चुका होगा अपने सब कपड़े उतार दिये। वह केवल अपनी गंदी धोती पहने रह गया। पाँच मिनट तक वह अपने ढोल को लगातार पीटता रहा। बीच-बीच में वह हम लोगों को जोश दिलाता था कि हम लोग उसकी ओर लगातार देखते रहें।

"बहुत गौर से देखिये" उसने कहा, 'हम जो कुछ भी कर रहे हैं उसमें से कुछ भी देखना मत छोड़िये।'

"मैं घूरकर देख रहा था क्योंकि मैं किसी भी चीज को बिना देखे छोड़ना नहीं चाहता था। थोड़ी देर बाद मेरा मन न जाने कैसा होने लगा। मुझे ऐसा लगने लगा जैसे मैं कोई स्वतन्त्रदर्शक नहीं हूँ, बल्कि योगी के असर में आ गया हूँ। इसके बाद नीचे लिखी बातचीत हुई जिसका प्रति शब्द मुझे अभी तक याद है।

'मंगरू, तुम कहाँ जा रहे हो ? योगी ने पूछा।

'तुम जहाँ-कहीं भी मुझे भेजो, गुरुजी !' लड़के ने कहा।

'क्या तुम डर रहे हो, मेरे बच्चे।'

'नहीं मैं क्यों डरूँ ?'

'मानलो कि कोई शत्रु तुम्हें मार डाले।'

'मुझे परवाह नहीं, क्यों कि मैं तुम पर विश्वास करता हूँ।

'क्या तुम सचमुच मुझ पर विश्वास करते हो, मंगरू ?'

'बेशक तुम्हीं तो मेरे माँ-बाप हो।'

'बहुत अच्छा, चढ़ने के लिये तैयार हो जाओ।'

"तब योगी ने रस्सी के एक किनारे को पकड़ कर आकाश की ओर फेंक दिया। रस्सी एक बाँस की तरह सीधी खड़ी हो गई।

हम लोगों में से हर एक ने देखा कि रस्सी हमारी दृष्टि के पार नीले आकाश में ऊपर की तरफ फँस गई। फिर मंगरू को बुलाकर उसने कहा, 'आओ मेरे बेटे, रस्सी पर चढ़ जाओ, हिम्मत करो।'

इन शब्दों के निकलते ही लड़के ने रस्सी पकड़ी और उस पर बन्दर की तरह चढ़ता गया। यहाँ तक कि वह आँखों से ओझल हो गया। हमारी तरफ तक सोच कर, शान्त होकर योगी ने कहा, 'वह मेरे शत्रुओं में से एक को मारने ऊपर गया है।' उसी समय हम लोगों ने एक विचित्र आवाज सुनी। मालूम पड़ता था कि कोई झगड़ा हो रहा है। उसी क्षण हम लोगों को विस्मित करता हुआ। एक कटा हुआ पैर लुढ़कता-पुढ़कता नीचे आ गया। थोड़ी देर बाद दूसरा पैर भी नीचे आ गया। उसके बाद दोनों कटे हुए हाथ नीचे आये और अन्त में धड़ भी आ गिरा। जिस समय हम लोग यह तमाशा 'सुन्न' होकर देख रहे थे, योगी ने चिल्लाकर कहा देखिये सरकार, उसका शरीर टुकड़े-टुकड़े हो गया। अब मैं इन टुकड़ों को जोड़ दूँगा। उन टुकड़ों को ठीक तरह से रख कर उसने उन पर हाथ फेरा। 'गौर से देखिये, उसने कहा—वह अभी जीबित हो जायेगा। मंगरू मेरे बेटे, मेरे बेटे वापस आओ !' मंगरू वापस आगया। वह हम लोगों के चकित होने पर मुस्करा रहा था।

हमने उससे पूछा कि क्या वह अपना करिश्मा फिर दिखा देगा। 'उसको देखने के लिये एक साहब बहुत उत्सुक हैं,' मैंने कहा। पहले तो उसने आनाकानी की। अन्त में वह मान गया और हमने दस दिन के पश्चात् एक दिन निश्चित किया।

दूसरे अवसर पर जो तमाशा हुआ था उसको मि० मा० के बंगले पर किया गया था। दफ्तर के सामने वाले मैदान में, जो उनकी खिड़की से बीस-पच्चीस फीट दूर था वहीं पर तमाशा होना निश्चित हुआ।

जब वह अपनी करामात ठीक पहले की तरह दिखाने लगा, मैं बंगले में खिसक गया। वहाँ पर हमारा कैमरा तैयार रक्खा था। मैंने योगी के बहुत से फोटो लिए। निगेटिव होशियारी से तैयार किये थे, लेकिन फोटो में सिर्फ थोड़े से दर्शक दिखाई पड़े जो कि मन्त्र मुग्ध होकर एक टक ताक रहे थे। वह योगी गंभीर मुद्रा धारण करके तरह तरह के इशारे कर रहा था और ऊपर की ओर दिखला रहा था।

हालांकि मैंने काफी मेहनत और होशियारी में उस योगी का खास-खास करामातों की तस्वीरें ली थीं, फिर भी उसमें सीढ़ी पर चढ़ने वाले बच्चे की अथवा उसके शरीर के टुकड़ों की तस्वीर नहीं आई उसमें उनका पता भी नहीं था। तस्वीर के एक प्रिंट में मंगरू बंगल से आता हुआ दिखाई पड़ता था।

मेरा विचार है कि इस घटना से भारत में होने वाले रस्से के करिश्मे का रहस्योद्घाटन हो जाता है। इससे साबित हो जाता है, अगर सबूत की जरूरत हो, तो कि यह करामातें 'नजर बन्दी' की हैं।

वैज्ञानिक लोग इस पर विश्वास नहीं करेंगे वे यह बात सुनकर कि कमरे के बाहर बैठे हुए इतने आदमियों पर नजर बन्दी हो सकती हैं हँस देंगे। जो भी हो, मैं इतना हिम्मत के साथ कह सकता हूँ कि असम्भव प्रतीत होते हुए भी भारतवर्ष के योगी के करिश्मे दिखला सकते हैं और दिखलाते हैं। ये योगी अपने रहस्यों को कभी नहीं बतलाते। केवल जब वे किसी योरोपियन को कई साल के बाद खूब जान लेते हैं, तब सचमुच उनके मित्र हो जाते है, और अपनी जादूगरी के बारे में उनसे बहुत थोड़ी बातचीत भी करते हैं, अन्यथा उनके जादू के भेद जान लेना विशेष कर योरोपियनों के लिये असम्भव है।

मि० जी० के० मर्फी ने एक अन्य घटना का उल्लेख करते हुए लिखा है कि सन् १९२८ ई० में जब मैं युक्त प्रान्त में था, मुझे गंगाजी के उद्गम-स्थान हरिद्वार जाने का अवसर मिला। उस समय प्रति दस वर्ष में लगने वाला कुम्भ मेला वहाँ लगा हुआ था। सारा शहर भक्त हिन्दुओं से भर गया था। मैं घाट के पास विचित्र प्रकार के दृश्यों को देख रहा था। मैंने वहाँ सैंकड़ों साधुओं को देखा। घाट के ऊपर बने हुए मन्दिर के पास जाने पर मैंने एक वृद्ध योगी को देखा। उसकी लम्बी जटायें सिर पर पगड़ी के नीचे बंधी हुई थीं। वह भक्तिपूर्वक माला जप रहा था। उसके चारों तरफ यात्री भीड़ लगाये हुए थे। सब एक-दूसरे, को धक्का देकर निकल जाना चाहते थे, जिससे वे सूर्यस्त के पहले स्नान करलें।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

ज्यों ही बूढ़े ने मुझे देखा उसे मैंने प्रणाम किया और उसके बगल में पड़ी हुई बाँस की चटाई पर कुछ पैसे फैंक दिये। उसने मुझे आशीर्वाद दिया और गौर से मेरी तरफ देखने लगा। फिर उसने कहना आरम्भ किया, 'आपने गंगाजी के भक्त को दान दिया है, गंगाजी आपका भला करेगी।'

मैंने मुस्कराकर कहा—मैं आशा करता हूँ कि वे मुझे सौभाग्य देंगी।

—कोई बात नहीं है। आप शीघ्र ही विलायत जायेंगे और वहाँ से कभी वापस नहीं आयेंगे।

—आप कैसे जानते हैं ? चकित होकर मैंने पूछा।

—महोदय ! यह तो आप के चहरे पर लिखा हुआ है, उसने कहा। इसके बाद हम लोग बातचीत में लग गये। मैंने पूछा कि क्या वह मन और आत्मा के द्वारा बातचीत करने में विश्वास करता है ? क्या वह इस उपाय से समाचार भेज सकता है ? उत्तर मिला विश्वासी के लिये सब कुछ सम्भव है।

—'इसका अर्थ तो यही है कि आप भी ऐसा कर सकते हैं। क्या आप अपनी इस अलौकिक शक्ति का परिचय मुझे देंगे ?' मैंने कहा।

—'जी हाँ किसी भी समय।' उसने कहा।

'अच्छा' मैंने कहा—दूसरे हफ्ते जब मैं कलकत्ते जाऊँगा तब आप मुझे अपना समाचार दीजियेगा।

—'ऐसा ही होगा।' उसने विश्वास के साथ कहा।

थोड़ी देर पहिले मैं अपने एक मित्र से वहीं मिला था जो वहाँ पुलिस की डयूटी पर आये थे। मैंने कहा कि मैं अपने एक योरोपियन मित्र को गवाह बनाकर चला जाऊँगा। एक घण्टे तलाश करने के बाद मेरे मित्र मि० स्काट मिले। मि० स्काट असिस्टेण्ट सुपरिटेन्डेन्ट पुलिस थे। वे एक सख्त दिमाग के 'स्काच' थे। जब मैंने उन्हें बताया कि मैं आत्मा के द्वारा बात करने के प्रयोग में उनकी सहायता चाहता हूँ तो वे मेरे ऊपर बहुत हँसे।

उन्होंने कहा—"मूर्ख मत बनो। अगर तुम मेरी राय मानो, तो तुम इन लोगों से अलग ही रहो। वे वाहियात किस्म के भिखमंगे होते हैं। उनसे किसी प्रकार का सम्बन्ध रखना तुम्हारे लिये अच्छा नहीं है"।

पर मैं अपने अनुरोध पर दृढ़ रहा। अन्त में बहुत कहने सुनने पर वे योगी के पास आने के लिये तैयार हो गये। पुलिस अफसर को देखकर उस योगी को आश्चर्य हुआ। मैंने उसे समझाया कि कोई घबराने की बात नहीं है। बाद में हमने यह इन्तजाम किया कि एक हफ्ते बाद एक खास दिन को दस बजे रात वह हमारे पास समाचार भेजें। उस समाचार को मि० स्काट को भी उसी समय दे दें। मैं उस समय कलकत्ते में रहूँगा, जो कि वहाँ से ६०० मील दूर है। स्काट से विदा होने के पहले मैंने उसको खूब समझा दिया कि वे भेजने वाले के समाचार अवश्य लिख लें।

मैं अपने देहरादून के कैम्प से वापस आ गया। और पाँच रोज बाद कलकत्ते चला गया। नियत दिन को ठीक ६ बजकर ४५ मिनट पर मैं 'पिलिटी' होटल के अपने कमरे में अकेला बैठ कर समाचार का इन्तजार करने लगा। मुझे बिल्कुल नहीं मालूम था कि किस प्रकार का समाचार आने वाला है यह तो बिल्कुल स्काट के ऊपर छोड़ दिया गया था।

ठीक दस बजे से कुछ पहले, मुझे न जाने कैसा लगने लगा। इसलिये मैंने सिगार जलाया और अपने मन को शान्त करने लगा। मैं चाहता था कि जहाँ तक सम्भव हो मैं योगी को अपना प्रयोग करने की सुविधा दूँ। कुछ मिनटों बाद मुझे साफ-साफ यह मालूम होने लगा कि मुझे नींद आ रही है। इसके बाद मेरे दिमाग के आगे बूढ़े योगी की तस्वीर आई। उसके जटा-जूट, उसकी लाल तेज आँखें सब मैं साफ-साफ देख रहा था। वह मेरी तरफ घूर कर एक टक ताक रहा था। मैंने घड़ी की तरफ देखा ९/५८ मिनट हो चुका था।

एकाएक मुझे इस तरह का अनुभव हुआ कि मुझे स्काट के पास एक पत्र लिखना ही चाहिये। उस समय मुझे यह बिल्कुल नहीं मालूम था कि मैं उन्हें क्या लिखूँ। फिर भी मेज पर जाकर मैंने अपना कलम लिया और यह पत्र लिखा—

"मेरे प्यारे स्काट ! मैं इन पंक्तियों में यही लिखना चाहता हूँ कि हरिद्वार वाले फकीर को पाँच रुपये दे देना। मैं यहाँ अगले हफ्ते तक रहूँगा। इसलिये पहले निश्चय के अनुसार तुम्हारे साथ भोजन नहीं कर सकूँगा। ऐसा क्यों हुआ यह मिलने पर तुमको बताऊँगा।" पत्र को मैंने ठीक समय पर डाल दिया।

कुछ दिन बाद स्काट की यह चिट्ठी मेरे पास आई—"तुम्हारे पत्र के लिये धन्यवाद ! जो समाचार मैंने योगी को दिया था वह यही था कि तुम मेरे द्वारा योगी को पाँच रुपये दे दो। सचमुच योगी ने ठीक वही समाचार भेजा था। लौटती डाक से पाँच रुपया भेज देना और कृपा करके इन योगियों के चक्कर में कभी न पड़ना।"

माना कि कुछ फकीर धूर्त होते हैं जो अलौकिक शक्ति रखते हैं और भूत और भविष्य की बातें साफ-साफ और सही-सही बतला देते हैं। मैं ईमानदारी के साथ कह सकता हूँ कि स्वयं मेरे मामले में एक फकीर की बात बिल्कुल सत्य उतरी।

शुरू के दिनों में जब मैं बर्मा में नौकर था एक बूढ़े फकीर ने कहा था कि मेरे पिता जी शीघ्र ही मर जायेंगे। मैं भारत वापस आऊँगा और चौदह साल नौकरी करूँगा। मुझे बीमारी से मजबूर होकर नौकरी छोड़नी पड़ेगी और मैं पेन्शन लेकर विलायत चला जाऊँगा। मैं मुस्कराया, फकीर को दक्षिणा देकर विदा किया। उसके विषय में मैं बाद में बिल्कुल भूल गया।

एक महीने बाद मेरे पास मेरे पिताजी का देहावसान का तार आया, मैंने अर्जी दी और तीन महीने की छुट्टी पर इंगलिस्तान आया। यहाँ बहुत कठिनाई से मैंने अपना तबादला भारतवर्ष को कराया, यहाँ चौदह साल नौकरी की और स्वास्थ्य खराब होने के कारण पेन्शन लेकर विलायत चला आया। इस तरह से जो कुछ फकीर ने कहा था, सब कुछ बिल्कुल ठीक हुआ।

इसी तरह पान्डिचेरी के प्रधान न्यायाधीश लुई जंकालिपट ने गुप्त विद्या की जानकारी के लिये सारे भारतवर्ष का भ्रमण

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

किया—१८ जनवरी, १८६६ को वे बनारस पहुँचे और पेशवा के महल में ठहर गये। त्रिवेन्द्रम का एक साधु भी गंगा-तट पर पेशवा के महल में ठहरा था। उसका नाम था गोविन्द स्वामी।

एक दिन श्री जंकालिपट ने उक्त साधु को कुछ चमत्कार दिखाने के लिये राजी कर लिया। साधु ने कई प्रकार के करिश्मे दिखाये, उसका वर्णन श्री जंकालिपट इस प्रकार करते हैं—

साधु पालथी लगाकर बैठ गये। कई फुट की दूरी पर रखे हुए काँसे के कलश की ओर उन्होंने हाथ बढ़ाया, यद्यपि वह उसे छू नहीं सकते थे, तो भी पाँच ही मिनट में इतना वजनदार कलसा अपनी पेंदी से चारों ओर हिलने-डुलने लगा। फिर धीरे-धीरे साधु की ओर चलने लगा। जब थोड़ा ही अन्तर रह गया, तो कलश से विचित्र प्रकार की ध्वनियाँ निकलने लगीं, जबकि अन्दर कोई यन्त्र नहीं था, केवल ऊपर तक पानी भरा था। फिर साधु ने उसे पीछे जाने का आदेश दिया। आश्चर्य कि कलश फिर अपनी जगह पर लौट गया। मेरे कहने पर उन्होंने कलश से ढोलक आदि अनेक वाद्य-यन्त्रों की स्वर लहरियाँ निकालीं। मैंने कहा अब १०-१० सैकिण्ड के अन्तर से आवाजें चाहिये। घड़ी मिलाकर देखा तो आश्चर्यचकित रह गया कि ठीक दस सैकिण्ड होने पर ही आवाज आती। इसके बाद उससे पूरे गीत की संगीत ध्वनि निकली, एक बार सारा घड़ा उलट-पुलट हो गया, पर पानी की एक बूँद भी नीचे न गिरी।

मेरे पूछने पर साधु ने बताया—"शरीर में ऐसी शक्ति विद्यमान है, जो बिना किसी भौतिक सम्पर्क से वस्तुओं को हिला-डुला सकती है, ठोस पिण्डों में गति उत्पन्न कर सकती है। वह किसी के मन की बात जानने और शाप, वरदान तक सफल करने में समर्थ है।

सर्व समर्थ आध्यात्मिकता, उसके प्रमाण

स्वामी योगानन्द ने तब योग दीक्षा नहीं ली थी पर उन्होंने भारतीय दर्शन का स्वाध्याय किया था, उनकी जिज्ञासायें बहुत प्रखर थीं इसलिये वे किसी एक आध्यात्मिक व्यक्ति की खोज में रहते थे जिसमें आत्मिक प्रतिभाओं का विकास स्पष्ट देखने में आता हो। उन्होंने इस दृष्टि से परख की तो पता चला कि मुक्तेश्वर में वह सारी क्षमतायें हैं जो किसी योगी में होनी चाहिए। यद्यपि वे सदैव आत्मकल्याण की साधना में लगे रहते थे तथापि लोगों के मन और मस्तिष्क की बातें जान लेने, आशीर्वाद से किसी का भला कर देने, भविष्य जान लेने आदि की अतीन्द्रिय क्षमताओं का उनमें पूर्ण जागरण हो चुका था। योगानन्द उनके शिष्य हो गये। योग के प्रति उनमें कौतूहल का भाव तो रहता था पर प्रारम्भिक अवस्था होने के कारण वे कठिन साधनाओं में प्रवेश का साहस नहीं कर सकते थे।

सन्तोष नामक एक लड़का योगानन्द का मित्र था। उसके पिता डॉ० नारायण चन्द्र राय नास्तिक व्यक्ति थे। किसी भी भौतिकवादी व्यक्ति की तरह उन्हें आत्मा, परमात्मा, परलोक, पुनर्जन्म, स्वर्ग, मुक्ति आदि किसी पर भी कोई विश्वास न था। धार्मिक व्यक्ति मिलते उनसे वे प्रायः उल्टे तर्क किया करते। जिज्ञासाएँ और बात है व्यंग और जिज्ञासाएँ तो आध्यात्मिकता का लक्षण हैं यदि वह न हों तो व्यक्ति ईश्वर और आत्मा जैसे जटिल विषय तो क्या सामान्य जीवन से सम्बन्धित बौद्धिक और मानसिक क्षमताएँ ही विकसित नहीं कर पाता। डॉक्टर साहब थे कि वे जिज्ञासा के नाम पर धार्मिकता का व्यंग और उपहास ही अधिक किया करते थे। सच्ची लगन होती तो उन्हें वह परिस्थितियाँ मिलतीं अवश्य। आज के भ्रान्त युग में जबकि धर्म के नाम पर ठगी हो रही है सच्ची आध्यात्मिकता का न अन्त हुआ और न ही कभी इस देश से होगा।

एक दिन उन्होंने कुछ ऐसे ही मूड में योगानन्द से उनके गुरु से भेंट करने की इच्छा प्रकट की। मित्र सन्तोष के पिता होने के कारण वे डा० साहब को पिता की तरह ही मानते थे। उन्हें लेकर वे श्री मुक्तेश्वर के पास आये। बड़ी देर तक बातचीत होती रहीं। पीछे वे उठकर चले गये तो उन्होंने छूटते ही योगानन्द से कहा—"ऐसे मृत व्यक्तियों को आश्रम में क्यों ले आते हो।" यह घटना स्वामी योगानन्द की पुस्तक 'ओटोबायो-ग्राफी ऑफ योगी' के आधार पर उद्धृत की जा रही है।

श्री योगानन्द ने समझा कि जिसकी मानसिक चेष्टायें भौतिकता, स्वार्थ और भोगवाद में आसक्त हों वे एक प्रकार से मृतक ही होते हैं इसी अर्थ में मुक्तेश्वर ने उन्हें मृत कहा होगा। फिर भी उन्होंने पूछ ही लिया—गुरुदेव ! डॉक्टर साहब तो जीवित हैं आपने मृत कैसे कह दिया।

श्री मुक्तेश्वर बोले—बेटा वह ६ महीने से अधिक जीवित रहने वाला नहीं। १५ दिन में ही बीमार पड़ जायेगा। डॉक्टरी इलाज तो उसे अच्छा न कर सकेंगे पर पीछे तुम मुझसे रक्षा कवच ले जाना उससे उसका स्वास्थ्य ६ सप्ताह में ही अच्छा हो जायेगा। लेकिन उसे समझाना वह बाद में मांस न खाये, शराब न पिये। फिर कुछ देर रुककर बोले—मानेगा तो वह है नहीं और इसीलिये उसकी मृत्यु हो जायेगी।

योगानन्द आश्रम से वापस आ गये। १५ दिन बीते सचमुच डॉ० साहब किसी असाध्य रोग से पीड़ित हो चारपाई पर पड़ गये। डॉक्टरों ने बहुतेरा इलाज किया पर अच्छे होने की अपेक्षा वह क्षीण ही होते गये। योगानन्द श्री मुक्तेश्वर से एक रक्षा कवच ले आये। पहले तो राय साहब ने उसे पहनने से ही इन्कार कर दिया पर पुत्र सन्तोष और घर वालों के कहने से उन्होंने उसे धारण कर लिया। उसके बाद से एकाएक उनकी स्थिति में सुधार होता गया और सचमुच ही ६ सप्ताह पीछे वे पूर्ण चंगे हो गये।

योगानन्द ने श्री मुक्तेश्वर का आगे का भी सन्देश उन्हें कह सुनाया पर श्री राय जी थे अन्धे भौतिकवादी। न तो घटनाओं से उन्होंने कुछ सीखा न आध्यात्मिकता उनमें श्रद्धा जगा सकी। उन्होंने स्वस्थ होते ही मांस खाना, अण्डे खाना शुरू कर दिया। यही नहीं उन्होंने ऐसा न करने को अवैज्ञानिक, मूर्खता और दकियानूसी आदि जो कुछ भी शब्द उनकी दिमागी डिक्शनरी में थे प्रयुक्त कर डाले। बात उन्होंने एक की भी न सुनी। कुछ दिन में उनका स्वास्थ्य बहुत अच्छा हो गया तो एक

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

दिन योगानन्द से व्यंग करते हुये कहा—देखो मांस खाकर कितना मोटा हो गया—नैतिकता, जीव दया आदि का उपदेश भला ऐसे सख्त व्यक्ति को क्या प्रभावित करे उनके लिये तो प्रकृति के क्रूर दण्ड प्रहार ही प्रयुक्त होते जो आज नहीं तो कल, सबेर नहीं तो थोड़ा देर से ही सही पर वे अवांछनीयता के दण्ड से वंचित नहीं रह सकते। जीव हिंसा जैसे पाप के दण्ड से कोई बच नहीं सकता।

उसी रात न जाने कैसा क्या हुआ। ६वाँ महीना पूर्ण होने को कुल एक-दो दिन ही शेष थे। रात दिल में दर्द पैदा हुआ और डॉक्टर साहब आधे घण्टे में ही संसार से विदा हो गये। श्री योगानन्द ने सुना तो उनके मुख से यही निकला—सचमुच जो संसार की परिस्थितियों पर गम्भीरतापूर्वक दूरदर्शी विचार नहीं करते केवल अपने थोड़े से ज्ञान के कारण ही अहंकार में डूबे फिरते हैं वह न भी मरें तो भी मृत ही हैं। उन्हें क्या तो कोई महात्मा, क्या स्वयं भगवान् भी नहीं बचा सकता।

सन्त की कृपा सब पर समान है उनके लिये अच्छे-बुरे में कोई भेदभाव नहीं। वे तो सभी के कल्याण का प्रयत्न करते हैं। सेवा से ही सच्ची तृप्ति के आधार पर कोई आये, वे सभी को कुछ न कुछ देने की भावना रखते हैं।

एक दिन योगानन्द (तब उनका नाम मुकुन्द था) के साथ शशि नामक उनका एक और भी मित्र श्री मुक्तेश्वर के दर्शनों के लिये उनके पास गया। श्री मुक्तेश्वर ने और बातचीत के दौरान थोड़ा गम्भीर होकर शशि से कहा—बेटा ! मनुष्य जीवन का उपयोग क्षणिक इन्द्रिय सुख ही नहीं यदि ऐसा ही होता तो मनुष्य और पशु में अन्तर ही क्या रह जाता। मनुष्य को दी गई—बुद्धि, विवेक, ज्ञान और आत्मिक सम्पदायें इस बात के लिये हैं कि वह संसार की यथार्थता समझें और जीवन लक्ष्य प्राप्त करें। बुद्धिधारी होकर भी यदि मनुष्य इन्द्रिय सुखों तक ही सीमित रहता है तो इसे उसका पागलपन ही कहना चाहिये। यह मैं इसलिये कह रहा हूँ कि तुम्हारा जीवन बड़ा अस्त-व्यस्त असंयमित है यदि तुम सम्भले नहीं तो आने वाले दिनों में गम्भीर संकट में पड़ जाओगे।

योगियों जैसे दूरदर्शी विचार और अनुभव शक्ति सब मनुष्यों में ही धार्मिकता का सारा प्रशिक्षण इसी धुरी पर घूमता है पर अश्रद्धालु लोग उसे कहाँ समझ पाते हैं। शशि के लिये मुक्तेश्वर के इतने शब्द 'संजीवनी' थे पर तब जब वह उनकी वास्तविकता समझता। उसने सुना तो पर एक कान से, दूसरा कान उपदेश को निकल जाने के लिए खुला रखा। धार्मिक उपदेश सुनने के नहीं, व्यवहार में लाने के लिये होते हैं। केवल सुन लेना या पाठ कर लेने मात्र से आत्मकल्याण हो जाता तो ऋषि-मनीषि जीवन भर कठोर साधनाएँ न किया करते।

न समझने का यह फल हुआ कि बीमार पड़ गया। जाँच करने से पता चला कि टी० बी० हो गई। उसके दोनों फेफड़ों में गहरे जख्म पैदा हो गये। बचने की ना उम्मीद हो गई। तब एक दिन वह अपने पिता को लेकर पुनः मुक्तेश्वर के पास आया और बोला—गुरुदेव ! आपकी बात न मानने का फल मेरे सामने है। आत्मबल की कमी के कारण ऐसा हुआ, महात्मन् अब तो कुछ कृपा कीजिए। आगे से अपने आपको अवश्य सम्भालूँगा। तुच्छ इन्द्रिय भोगों से मन को हटाकर उसे पुण्य परमार्थ में ही लगाऊँगा।

श्री मुक्तेश्वर उसके जीवन के सारे पाप आदि देर तक पूछते रहे। युवक ने सारी बातें पश्चाताप पूर्वक बतादीं और आगे से फिर वैसा कुछ न करने का वचन दिया। मुक्तेश्वर ने कहा—जाओ जौहरी के यहाँ से 'ज्योतियचूड़ा' लेकर पहन लेना। अब की तुम्हें अच्छा कर देंगे। फिर कभी दुराचार और इन्द्रिय असंयम में प्रवृत्त मत होना, अन्यथा अध्यात्म कोई जादू नहीं जो तुम्हारी बार-बार रक्षा करता रहेगा आखिर तो तुम्हें अपना उद्धार आप करना है।

शशि उनकी बात मान गया। वह कुछ ही दिन में पूर्ण स्वस्थ हो गया। औषधि तो उसने नाम मात्र की ही ली। उसे आध्यात्मिकता पर ऐसा विश्वास हुआ कि उसके जीवन का सारा उद्देश्य, रीति-नीति और कर्मकलाप ही बदल गये। फिर वह पूर्ण स्वस्थ और सुखी जीवन जिया। एक भी रोग उसके पास नहीं फटका।

भौतिक दृष्टि से यह शंकास्पद बातें हैं पर अब इन शंकाओं को दूर करने का समाधान विज्ञान ने खोज लिया है। रोग रासायनिक अस्त-व्यस्तता के परिणाम होते हैं। कैल्शियम की कमी से दाँतों की बीमारी हो जाती है और लोहा न हो तो शरीर की शक्ति क्षीण हो जाती है। शरीर का ७५ प्रतिशत भाग १६ रासायनिक तत्वों से बना है। इन्हीं की अस्त-व्यस्तता से दुनिया भर के रोग होते हैं। जिन्हें डॉक्टर स्थूल परीक्षणों द्वारा अलग-अलग नाम देते हैं।

आध्यात्मिक पुरुष रोगों का कारण इन रासायनिक तत्वों की सूक्ष्म अवस्था को मानते हैं। वस्तुतः शारीरिक और मानसिक सभी संस्कार 'जीन्स' में होते हैं जो जीवित शरीर की इकाई कोश (सेल) का सूक्ष्मतम भाग है। उसे प्रकाश या लहर जैसी चेतना भी कह सकते हैं। सूक्ष्मदर्शी व्यक्ति इन प्रकाश अणुओं के सन्तुलन के आधार पर ही व्यक्ति के आचरण उनके रोगी या निरोग होने का पता लगा लेते हैं और आवश्यकतानुसार अपनी ओर से उन सूक्ष्म प्रकाश कणों में परिवर्तन कर उन्हें बचा भी लेते हैं।

योगी—महात्माओं के लिए, सिद्धि की गहराइयों तक पहुँचे हुये आध्यात्मवादियों के लिये यह सब बातें कोई अधिक महत्त्व नहीं रखती। इनसे तो अध्यात्म की सर्वोपरिता ही सिद्ध हो सकती है। अध्यात्म का मूल—प्रयोजन अन्तःकरण को प्रकाशित करना, जन्म और मृत्यु के अन्तर को पाटना, बन्धन मुक्ति और लौकिक व पारलौकिक सुख-शांति प्राप्त करना है उसके लिये आवश्यक है कि डॉक्टर साहब की तरह केवल तर्कवादी ही न बना जाये जीवन में श्रद्धा आनी चाहिये और उस श्रद्धा का उपयोग आत्मसुधार में किया जाना चाहिए। तभी हम अध्यात्म के लाभों से सही अर्थों में लाभान्वित हो सकते हैं।

'अमरत्व' और 'इच्छा आयु' असम्भव नहीं

प्राणी को संसार में सबसे बड़ा दुःख मृत्यु का है। निकृष्ट स्थिति के जीव कुत्ते, बिल्ली, कौवे, सर्प, गिलहरी, गधे तक भी मरना नहीं चाहते तो साधन सम्पन्न और अनेक विभूतियों के स्वामी मनुष्य को भला अमरता की इच्छा क्यों न होगी। मृत्यु

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

से बड़ा शत्रु और भयोत्पादक वस्तु संसार में और दूसरी नहीं इसलिये उससे बचने की इच्छा होना स्वाभाविक ही है।

प्रकारान्तर से प्राचीनकाल से अब तक इस बात के लिये विभिन्न प्रकार के यौगिक और वैज्ञानिक अनुसन्धान करके मृत्यु पर विजय पाने के प्रयत्न किये गये हैं, उसमें पूर्ण सफलता भले ही उपलब्ध न हो पाई हो, किन्तु यह निश्चित हो चुका है कि अमरत्व असम्भव नहीं, निकट भविष्य में ही उतना नहीं तो यह सम्भव अवश्य हो जायेगा कि मनुष्य अपनी आयु बढ़ाकर कई हजार वर्ष कर ले। ऐसा पहले होता था, हमारे यहाँ न्यूनतम आयु की सीमा सौ वर्ष मानी गई है और अधिकतम की कोई रेखा नहीं मानी गई। पहले जो यौगिक उपलब्धियाँ की जा सकीं, उनके आधार पर यह भविष्यवाणी की गई थी कि मनुष्य मृत्यु पर विजय पा सकता है। इच्छानुसार अपनी आयु को घटा बढ़ा सकता है। आत्मिक चेतना को यथावत रखकर शरीर के स्थूल (जलीय, पार्थिव, अग्नि, आकाश और क्षितिजीय) परमाणुओं को बदल कर (कायाकल्प) शरीर में ही कल्पान्तों तक बना रह सकता है।

योग चूड़ामण्युपनिषद, त्रिशिख ब्राह्मण उपनिषद, योग कुण्डल्युपनिषद में ऐसे अभ्यासों का वर्णन मिलता है, जिनसे अकाल मृत्यु का भय मिटकर दीर्घायु प्राप्त होती है। इन साधनों के अभ्यास से भारतीय लोग सदैव से मृत्यु और दीर्घ जीवन प्राप्त करते रहे हैं। यह अभ्यास उस सामान्य स्वच्छ और पवित्र जीवन से अलग हुआ करते थे, जिनका अभ्यास करके भी मनुष्य शतायु तो हो ही सकता है। वह सामान्य नियम शुद्ध और सात्विक आहार, कामवासना, चिन्ता और उद्विग्नता से रहित जीवन, शुद्ध वायु और मादक वस्तुओं से बचना आदि है। इनसे आयु बढ़ती तो है पर उस सीमा तक नहीं, जिसके आश्चर्यजनक वर्णन योग-ग्रन्थों और पुराणों में मिलते हैं। उन्हें अत्युक्ति माना जाता है और अविश्वास किया जाता है, यदि आज के वैज्ञानिक उन बातों की सम्भावना स्वीकार न करते तो सम्भवतः आज का अर्धदग्ध समाज भारतीय दर्शन को कोरी गप्प मानकर ही तिलाँजलि दे देता।

विज्ञान यह मानता है कि वृद्धावस्था कोई सनातन नियम नहीं वह तो एक रोग है और मनुष्य किसी भी रोग से बच सकता है। तात्पर्य यह कि वह वृद्धावस्था को निरन्तर दूर रखकर अमरत्व का सुखोपभोग कर सकता है। कुछ दिन पूर्व स्तालिन की जन्मभूमि जार्जिया के दीर्घजीवियों का वर्णन छपा था। इस छोटे से क्षेत्र में सौ और सौ से अधिक आयु के २१०० व्यक्ति थे। मखमूद बागीर ओगली इवाजोव उत्तरपूर्वी काकेशस के एक किसान की मृत्यु ११ अगस्त, १९५९ को हुई तब उनकी आयु १५० वर्ष थी। उनके सब मिलाकर २३ पुत्र-पुत्रियाँ और १५० नाती-नातिनें थीं। सबसे बड़ी लड़की की उम्र १२० वर्ष थी।

उसी प्रकार दक्षिण पश्चिमी काकेशस में अबरवजिया प्रदेश में माक्सीर नूर नाम का पर्वतारोही १५८ वर्ष का होकर मरा उसका मित्र खापर नूर १५५ वर्ष की आयु में उसकी शव-यात्रा में सम्मिलित हुआ। अर्खिया के समीप आसेटिया शहर की टेल्से एवजिये नामक महिला १८० वर्ष की होकर मरी, एडली या मझाक्वा १५० वर्ष और दाघेस्तान पहाड़ियों का लिउबोद पुझाक की आयु १९५९ में १५६ वर्ष थी, यूक्रेन और लूका दोनों भाइयों की आयु क्रमशः १२३ और १२० वर्ष थी, उनकी बहन जीनिया की आयु तब ११४ वर्ष थी। इस तरह के आश्चर्यजनक समाचार सुनकर प्रसिद्ध जरा विज्ञानी डा० ईवान वेसीलेवीज ने इस प्रान्त का भ्रमण किया और वहाँ के रहन-सहन का विस्तृत अध्ययन करने के बाद यह पता लगाया कि गहरी साँस लेने से शरीर में प्राण-शक्ति की मात्रा बढ़ती है, वही दीर्घ और सशक्त जीवन का कारण है। तात्पर्य यह कि दीर्घायु के अनेक साधनों में ऑक्सीजन का पर्याप्त मात्रा में शरीर में सहयोग देना प्रथम साधन है। उसके लिये गहरी साँस लेना चाहिये।

पर इतने से अमरत्व की सम्भावना को पुष्ट नहीं किया जा सकता था। वैज्ञानिकों ने उसके लिये निरन्तर प्रयत्न जारी रखे और एक दूसरा कारण भी उनकी समझ में आया। हिमालय क्षेत्र में कुछ ऐसे भालू पाये जाते हैं, जो सारी शीत-ऋतु सोकर काट देते हैं, उनका शरीर बर्फ में दबा पड़ा रहता है। जब गर्मी आती है, बर्फ पिघल कर हट जाती है और उनके ऊपर धूप पड़ती है तो रक्त संचार की गति फिर तेज हो जाती है और रीछ उठ बैठता है। इस तरह वह सोया हुआ समय एक तरह से उनकी आयु में जुड़ता रहता है।

वैज्ञानिकों ने उसकी खोज करने के पश्चात् यह पाया कि शरीर को शून्य तापमान से भी यदि अधिक शीत अवस्था में रखा जाता है तो मनुष्य चेतना शून्य हो जाता है पर भीतरी शारीरिक गतिविधियाँ मन्द गति से चलती रहती हैं, ऐसी अवस्था में यदि उसके किसी हाथ-पाँव के हिस्से को काटा भी जाये तो रक्त की तेज धार निकलने की अपेक्षा एक-एक बूँद कठिनाई से निकलेगी अर्थात् शरीर के सब तन्तु पूर्ण विश्राम कर रहे होंगे और उतना विश्राम मिलने से उनके शरीर की जीवन क्षमता यदि बढ़ेगी नहीं तो घटेगी भी नहीं, अर्थात् उस अवस्था का लाभ यह होगा कि मनुष्य की उतनी आयु बढ़ जायेगी। लेकिन इससे भी अमरत्व की साध पूरी नहीं हुई।

अब वैज्ञानिकों ने औषधियों की खोज प्रारम्भ की। पेन्सिलीन जैसी अनेक दवाओं की खोज की, उनसे बीमारियों पर विजय भी मिली और आयु भी बढ़ी पर औषधि शास्त्रियों ने पाया कि औषधियों में जीवन क्षमता बढ़ाने की क्षमता तो है पर उसकी भी एक सीमा है। दवायें वार्द्धक्य (मेच्योर्डनेस) को रोक नहीं पातीं, इसलिये शरीर में वृद्धावस्था गतिशील रहती है और भले ही २०० तक खींच लिया जाय पर मृत्यु तो एक दिन आ ही जाती है।

इन तमाम खोजों का निष्कर्ष यह निकला कि बाह्य उपकरणों और साधनों से अमरत्व की कल्पना नितान्त असम्भव है क्योंकि शरीर के भीतर अपने आप स्वतः सम्पन्न होने वाली हलचलों पर इनके द्वारा नियन्त्रण नहीं प्राप्त किया जा सकता है तो भी इस तरह की शोधों से वैज्ञानिक शरीर विज्ञान की गहराइयों में अवश्य जा पहुँचे। भारतीय मत की पुष्टि के लिये यह महत्त्वपूर्ण अध्याय का श्रीगणेश था।

वैज्ञानिकों ने बड़ी सावधानी से देखा कि जब बच्चा पैदा होता है, तब उसके शरीर में लगभग १४०० करोड़ शिराकोष्ठक होते हैं। मृत्यु के समय भी शिरा कोष्ठकों की संख्या इतनी ही रहती है पर वे जीर्ण-शीर्ण हो जाते हैं, इससे इस सिद्धान्त की पुष्टि हुई कि यदि शिरा कोष्ठकों को सशक्त और बलवान रखा जा सके तो मनुष्य अपनी इच्छानुसार आयु का उपभोग कर सकता है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

शिरा (नर्वस) कोष्ठक (सेल्स) सारे शरीर में फैलता है, वैज्ञानिकों का अनुमान है कि शिरा व्यवस्था पर नियन्त्रण न रहने के कारण कोष्ठक अपनी शक्ति स्थिर नहीं रख पाते, उसी के फलस्वरूप कैंसर और दूसरी बीमारियाँ होती हैं, सामान्य आहार की अवस्था में भी जब कोई रोग नहीं होता, तब भी कोष्ठकों की शक्ति मन्द होती जाती है। आहार की विभिन्न स्थितियों का अध्ययन करने के बाद वैज्ञानिक इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि यदि कोष्ठकों को पूर्ण प्राकृतिक अवस्था में रखना है तो जो यौगिक और तत्त्व प्रकृति में हैं, वही आहार रूप में शरीर में पहुँचने चाहिये।

जब मनुष्य अप्राकृतिक अर्थात् पक्का, भुना, तला, मिर्च-मसाला, नमक, चीनी वाला आहार लेता है तो उन यौगिकों में घट-बढ़ होने से कोष्ठक अपनी आकृति और क्षमता बदलने लगते हैं, उनमें गन्दगी का अंश बढ़ने लगता है। गन्दगी का प्रवाह शरीर में बढ़ने से कई रोग हो जाते हैं। वैज्ञानिक लैण्डस्टीमर ने रक्त-प्रणाली का विस्तृत अध्ययन करके यह बताया कि एक शरीर का रक्त दूसरे शरीर के रक्त से इसलिये मेल नहीं खाता कि लाल रक्ताणुओं में कुछ तत्त्व ऐसे होते हैं, जो सीरप (केमिकल आफ सेल) के कुछ तत्त्वों से प्रतिघाती (उल्टी) समानता रखते हैं, उसने ऐसे रक्ताणुओं को 'एग्ल्यु टिनोजीन्स और सीरम को', 'एग्ल्यू टिनिन्स' कहा और बताया कि इन दोनों के मिलने से शरीर को नुकसान पहुँचता है। तब से वैज्ञानिक बराबर शिरा कोष्ठकों की विकृति दूर करने के प्रयत्न में दवाओं का अनुसन्धान करते रहे।

अब तक जो अनुसन्धान हो चुके हैं, उनमें सेल्स के प्रोटीन को बदलकर पुनः उसे स्वस्थ कोष्ठक में बदल देने पर विजय प्राप्त की जा चुकी है उससे न केवल रोगों पर पूर्ण विजय की सम्भावना सुनिश्चित हो गई है, वरन् अमरता की आधी मंजिल पार कर ली गई, ऐसा विश्वास विज्ञान के मूर्धन्य क्षेत्र में किया जाने लगा है।

अभी शिरा व्यवस्था के विस्तृत अध्ययन की बात अधूरी है, उसे जान लेने पर क्या मृत्यु पर विजय सम्भव हो जायेगी? इसका सही उत्तर देने की स्थिति में पाश्चात्य विज्ञान अभी नहीं है, चाहें तो ये इस सम्बन्ध में भारतीय योग्य आचार्यों की सहायता ले सकते हैं, उसके बिना पूर्ण सफलता संदिग्ध ही रहेगी।

एक बार भारतीय योग-विद्या के प्रसिद्ध खोजी डा० पाल ब्रन्टन ने मनुष्य की अमरता के प्रश्न को लेकर योगी 'ब्रह्म सुगन्ध' से विस्तृत चर्चा की। योगी ब्रह्म सुगन्ध ने उन्हें शारीरिक प्रक्रियाओं का विस्तृत विज्ञान सम्मत परिचय कराते हुए बताया कि मनुष्य के मस्तिष्क के अन्दर एक क्षुद्र छिद्र (ब्रह्मरन्ध्र) होता है, इसे हम आत्मा का (शरीर की मूल चेतना का) निवास-स्थान मानते हैं। इस छिद्र के चारों ओर एक खोल होता है, जिससे उसकी रक्षा होती है।

रीढ़ के नीचे चिक स्थान के अत्यन्त निकट अदृश्य जीवन प्रवाह बहता है, इस प्रवाह के सतत् क्षय होने से ही मनुष्य बूढ़ा होता है। यदि इस पर नियन्त्रण किया जा सके तो मनुष्य अपनी आयु पर पूर्ण नियन्त्रण कर सकता है। यह जीवन प्रवाह शरीर के विभिन्न अंगों में बहता हुआ व्यय होता है। यौगिक क्रियाओं द्वारा उसे रोककर रीढ़ के ऊपरी भागों में चढ़ाया और मस्तिष्क के अन्दर उस छोटे छिद्र में केन्द्रीभूत किया जा सके तो जीवन दीर्घायु और अमरत्व में बदल सकता है।

ब्रन्टन श्रद्धावादी नहीं थे, वे भी आज की तरह विशुद्ध विज्ञान की दृष्टि से तथ्यों को परखना चाहते थे, इसलिये उन्होंने कहा ऐसी स्थिति में भी यदि शरीर पर नियन्त्रण रखा जा सकता है तो क्या आप उसे करके नहीं दिखा सकते। आप अपने रक्त पर अपने अधिकार की क्रिया दिखायें तो मैं मानूँ कि आपकी बात सच है।

ब्रह्म सुगन्ध हँसे और अपनी कलाई की घड़ी उतार कर ब्रन्टन को दे दी और कहा—"अब आप मेरी कलाई पर हाथ रखकर देखिये।" ब्रन्टन के हाथ से उनकी नाड़ी पकड़ी तब वह ठीक चल रही थी। धीरे-धीरे वह मन्द पड़ने लगी, तीन मिनट बाद नाड़ी की गति बिल्कुल बन्द हो गई तो भी योगी पहले की तरह ही जीवित थे। ४-५ मिनट तक इस स्थिति में रहने के बाद फिर धीरे-धीरे नाड़ी में गति आ गई।

इसके बाद ब्रह्म सुगन्ध ने एक विशेष आसन किया और चुपचाप सीधे बैठ गये। थोड़ी देर में हृदय की गति धीमी होते-होते बिल्कुल रुक गई। ब्रन्टन महाशय आश्चर्यचकित रह गये।

इसके बाद तीसरा प्रयोग उन्होंने किया। ब्रन्टन का हाथ अपनी नासिका के छिद्रों के पास लगवाया। धीरे-धीरे भीतर की सारी साँस निकाल दी, सारा शरीर पत्थर की तरह कड़ा हो गया। शरीर में से न साँस आ रही थी, न जा रही थी। ब्रन्टन यह देखकर आश्चर्यचकित रह गये। इसके बाद ब्रह्म सुगन्ध फिर अपनी सामान्य स्थिति में आ गये। उन्होंने बताया—"यदि मनुष्य अपनी मूल चेतना पर नियन्त्रण कर ले तो शरीर की सारी अशक्ति पैदा करने वाली प्रणाली को शुद्ध रखा जा सकता है। उस स्थिति में समाधिस्थ होकर ध्यानावस्था में ही विश्व-ब्रह्माण्ड में भ्रमण और अलौकिक दर्शन किया जा सकता है, यदि शरीर को किसी बर्फीले स्थान में सुरक्षित रखा जा सके, हिमालय जैसे शीतल एवं दिव्य तत्त्वों से परिपूर्ण वातावरण में रहा जा सके तो मनुष्य अपनी आयु कई हजार वर्ष तक बनाये रख सकता है। यह सब विज्ञान और योग दोनों के सामंजस्य से हो सकता है। इसमें अब सन्देह नहीं रहा।

लाख छिपाएँ छिप न सकेंगी, गहरे मन की बातें

योग में क्या ऐसी शक्ति है जो वह दूसरों के मन की बातें जानने की क्षमता पैदा कर दे ? हजारों मील दूर बैठे हुए किसी व्यक्ति को बिना टेलीफोन, वायरलेस अथवा टेलस्टार के अपने विचार पहुँचाना सम्भव है क्या ?—किसी भारतीय योगी से, जिसने योग की कठिन भूमिकाओं में प्रवेश कर प्राण-नाड़ी जाल, श्वास प्रश्वास और मन पर नियंत्रण किया हो, यह प्रश्न पूछे जाएँ तो वह हँसकर कहेगा कि यह योग की बहुत ही सामान्य सिद्धियाँ हैं भगवान ने शरीर यन्त्र ऐसा बनाया है कि इस पर ब्रह्माण्ड उतर सकता है। जिस तरह रेडियो के मीटर बदल-बदल कर विविध भारती दिल्ली, बी० बी० सी० लंदन, वायस आफ अमेरिका, न्यूयार्क अथवा धरती के किसी भी छोर का समाचार सुन सकते हैं शरीर में ऐसे यंत्र, तत्व, ग्रन्थि, चक्र

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उपत्यिकाएँ, गुच्छिकाएँ और गर्भ हैं जिनका पूर्ण उपयोग मनुष्य जान जाये तो वह औरों के मन के विचार तो क्या बुध, गुरु, शनि और ब्रह्माण्ड व्यापी नीहारिकाओं और उन सुदूर नक्षत्रों की गतिविधियों का भी अवलोकन कर सकता है जो यहाँ से अरबों प्रकाश वर्ष की दूरी पर हैं। मनुष्य त्रिकालज्ञ हो सकता है। सर्वशक्तिमान हो सकता है, योग शक्तियों के जागरण द्वारा। अवतार ऐसे ही 'शरीर' होते हैं जिनमें ब्रह्म विवर्त होता है।

यह बातें जिन्हें आश्चर्यजनक लगती हों उनके लिये दोनों प्रश्नों के प्रमाण सम्मत उत्तर यहाँ दिये जा रहे हैं। प्रस्तुत घटनाएँ सुप्रसिद्ध फ्रांसीसी महिला श्रीमती एलेक्जेन्द्रा डेविड-नील की पुस्तक 'तिब्बती योगी और उनके चमत्कार' से उद्धृत की जा रही है। योरोपियन होकर भी योग-विद्या के प्रति असाधारण जिज्ञासा और आकर्षण के कारण वे तिब्बत आकर रहीं और १५ वर्षों तक उस विद्या के असाधारण प्रसंग संकलित किये। उन्होंने कई पुस्तकें लिखी हैं जिनमें योग और भारतीय तत्व दर्शन का विवेचन प्रस्तुत करते हुए उसकी भूरि-भूरि प्रशंसा की है और लिखा है कि 'आत्म-विकास ही मनुष्य जीवन का यथार्थ लक्ष्य है एक दिन सारे संसार को यह बात माननी पड़ेगी और मानकर भारतीय दर्शन की शरणागत होना पड़ेगा। घटना क्रम श्रीमती नील की पुस्तक के आधार पर उनकी ओर से ही प्रस्तुत किया जा रहा है—

'घटना उस समय की है जब मैं 'खम्पासा' जा रही थी मेरे साथ चि० योगदेन (श्रीमती नील के दत्तक पुत्र) भी थे। 'देनशीन' नदी तक पहुँचने तक शाम हो गई। रात वहीं एक खाई में बितानी पड़ी। प्रातःकाल हुई शीत का समय था मन करता था कि मक्खन-टोस्ट (मक्खन लगी डबल रोटी) के साथ चाय मिले पर बर्फ गिरने के कारण लकड़ियाँ भीगी हुई थीं चाय बनाना सम्भव नहीं था बिना चाय पिये ही अपनी अगली यात्रा पर चल पड़े।'

'दोपहर होने को आई तभी हमने एक तिब्बती लामा को सड़क के किनारे बैठे भोजन करते देखा उसके साथ ही उसके तीन शिष्य भी थे योग सीखने वाले शिष्य तिब्बत में 'भिपे' कहलाते हैं। पास में ही उनके घोड़े चर रहे थे उससे पता चलता था कि यह लोग कहीं की यात्रा कर रहे हैं। एक 'भिपा' चाय बना रहा था। उसकी ओर देखते ही मन में आया कितना अच्छा होता—हमें भी चाय पीने को मिलती—इसी भाव के साथ हमने लामा को प्रणाम किया हमारी और देखते ही लामा के मुँह से 'नींगजे' शब्द निकला। 'नींगजे' स्नेह और करुणा मिश्रित शब्द है जिसके लिये हिन्दी में 'बेचारा' शब्द उपयुक्त है। इस शब्द के साथ ही उसे अपने 'भिपा' (शिष्य) को कुछ कहा—शिष्य ने हमें चाय दी और सत्तू जो कि वहाँ का खास आहार है, की दो थैलियाँ भी खाने को दीं। चाय पी ली पर सत्तू कैसे खाऊँ—मेरा नियम था कि मैं सत्तू हमेशा दूध-दही या मक्खन के साथ ही खाती थी। इस बात को सिवाय मेरे कुछ समीपवर्ती व्यक्तियों के और कोई भी नहीं जानता था।"

"इसी बीच उन घोड़ों में से जो पास ही चर रहे थे एक घोड़ा बिदक गया और तेजी से एक ओर भागा। 'भिपा' दौड़ा और उसे पकड़ने की कोशिश करने लगा पर घोड़ा था कि वह किसी भी हालत में उसकी पकड़ में आने को तैयार नहीं था तथा तभी लामा ने उधर एक टकी बाँध कर देखा—ऐसा लगा कि उसके मस्तिष्क से एक तीखी प्रकाश किरण निकली और एक निमिष में घोड़े के सिर में घुस गई। जो घोड़ा एक क्षण पूर्व कुलाचें मार रहा था और लगता था कि पकड़ाई नहीं देगा एकदम रुक गया, जब तक शिष्य ने लगाम नहीं डाल दी तब तक हिला भी नहीं इस बीच योगी की दृष्टि ठीक घोड़े पर टिकी हुई थी लगता था उसकी घोड़े से भी जबर्दस्त मानसिक शक्ति ही उससे गुलामों जैसा काम करा रही है। घोड़ा चुपचाप भिपा के पीछे-पीछे चल पड़ा।"

"लामा ने अब दृष्टि मेरी ओर फेरी—मेरा ध्यान भी घोड़े से हटकर अब खाने की ओर आ गया था और सोच रही थी कि कहीं से थोड़ा दही मिल जाता तो क्षुधा दूर कर लेती। जिस समय मेरे मन में यह विचार आ रहा था लामा की क्षणिक दृष्टि मुझ पर पड़ी। जिस तरह कोई वयोवृद्ध बच्चों का कोई कौतुक देख कर मुस्करा देते हैं लगता है उसने मेरे मन की बात पढ़ली सो वह एक क्षण मुस्कराया। फिर वही शब्द 'नींगजे' निकला उसके मुँह से और उसने अपनी दृष्टि फिर उधर फेर ली जिधर से भिपा घोड़े को पकड़े वापस आ रहा था। वह कोई तीन फर्लांग की दूरी पर था। लामा ने अपनी दृष्टि इस बार उस 'भिपा' की ओर फेंकी। भिपा एकाएक रुका। दायें-बायें देखा फिर घोड़े को बगल की एक झाड़ी में बाँध दिया और जिधर से आ रहा था उधर ही लौट पड़ा। कोई पन्द्रह मिनट पीछे वह समीपवर्ती बस्ती से निकल कर आता दिखाई दिया उसके हाथ में कोई चीज थी पर दूर से साफ समझ नहीं आ रही। वह धीरे-धीरे घोड़े के पास आया, रस्सी खोली और फिर हमारी ओर आया। घोड़ा बाँधकर वह लामा की ओर चला तब पता चला कि उसके हाथ में लकड़ी का वह पात्र है जो इधर प्रायः दूध-दही लाने के काम में प्रयुक्त होता है। भिपा ने यह पात्र लामा को दिखाते हुये कहा—यही चीज आपने मँगाई थी—लामा ने स्वीकृति सूचक सिर हिलाया और मेरी ओर संकेत करके कहा—उन्हें दे दो। पात्र मुझे मिला उसमें दही था। मैं आश्चर्यचकित थी कि कैसे लामा ने मेरे मन की बात जान ली, कैसे उसने 'भिपा' को 'विचार-सन्देश' दिया जिससे कि वह बिना वाणी से कोई आदेश पाये दही लाने की बात जान गया।"

"इसी तरह की एक दूसरी घटना उस समय की है जब मुझे त्जेत्युयेन की यात्रा करने का अवसर आया। इस सीमावर्ती चीन के इलाके में जाना उस समय बहुत ही साहसपूर्ण कार्य था। रास्ता डाकुओं से भरा हुआ होता अतएव यात्री प्रायः संगठित होकर और अपने साथ अस्त्र-शस्त्र लेकर ही यात्रा करते हैं। हमने जो पार्टी बनाई उसमें कुछ चीनी व्यापारी थे कुछ वहाँ के आदिवासी—एक 'नोगस्पा' भी था जो अपने 'बोनपो' के पास जा रहा था। 'नोगस्पा' तिब्बत में नौसिखिया तान्त्रिक को कहते हैं और बोनपा सिद्ध या बड़े तान्त्रिकों को। 'नोगस्पा' की जबानी ही पता चला कि उसके गुरु कोई बड़ा भारी तान्त्रिक अनुष्ठान कर रहे हैं। मैंने उसके दर्शन करने का निश्चय कर लिया और इस निश्चय के फलस्वरूप ही उस चेले पर निगाह रखना शुरू कर दिया ताकि कहीं ऐसा न हो कि वह एकाएक कभी खिसक जाये और मुझे उस स्थान का पता ही न चल पाये जहाँ 'बोनपा' अपना 'दबयाब' (विशेष तान्त्रिक अनुष्ठान) कर रहा है। अभी यात्रा प्रारम्भ ही हुई थी कि 'नोगस्पा' ने मेरे मन की बात जान ली। अपनी ओर से ही मुझे समझाया कि वहाँ जाना खतरे से खाली नहीं अतएव अपना इरादा छोड़ दें। मैंने प्रकट में तो हाँ कर दी पर भीतर यह

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

निश्चय अटल रहा कि मुझे ऐसे महापुरुष के दर्शन करने ही चाहिये। 'नौग्स्पा' से यह बात भी छिपी नहीं रही—उसने मुझसे अपनी भाषा में बताया कि मैंने—"विचार-संचार विधि द्वारा सारी बात अपने बोनपा को बता दी है इसलिये अब मैं निश्चिन्त हूँ आपका जो मन आये कर सकती हैं।" मैं कुछ नहीं बोली—पहले तो यह समझी कि यह कुछ शेखी कर रहा होगा जैसा कि भारत में अनेक निहित स्वार्थ ओझा सयाने योगी होने का मिथ्याडम्बर दिखलाया करते हैं वस्तुतः वे योग का जानते 'क ख' भी नहीं। पर अभी हम थोड़ी ही दूर गये थे कि यह बात निश्चित हो गई कि नौग्स्पा ने सचमुच अपने विचार अपने गुरु तक पहुँचा दिये हैं क्योंकि अभी हम आगे बढ़ ही रहे थे कि एकाएक पाँच घोड़े मेरी ओर आते दिखाई दिये। मेरे पास आकर सभी घोड़े रुक गये और उनके सवार भी। केवल एक जो उनमें से प्रमुख था मेरी ओर बढ़ा और बोला—आपका नाम ऐलेक्जेन्ड्रा डेविड-नील है न ? आपके साथ हमारा एक आदमी है इसी के द्वारा अभी-अभी हमारे गुरु को आपकी सभी बात ज्ञात हुई हैं। हमें इसलिए भेजा गया है कि मैं आपको समझाऊँ कि इस सीमा से आगे बढ़ना आपके लिये संकटपूर्ण हो सकता है अगले क्षेत्र में तान्त्रिक ही रह सकते हैं क्योंकि यहाँ रह रहीं अदृश्य आत्मायें बड़ी भयंकर होती हैं। मेरे गुरु स्वयं ही एक ऐसे 'दैत्य' को वश में कर रहे हैं।

इस प्रकार की अन्य कई घटनायें मुझे इन दिनों वहाँ सुनने को ही नहीं देखने को भी मिलीं जिनके आधार पर मुझे इस निश्चय पर पहुँचना पड़ा कि योग साधन सचमुच कोई असाधारण चीज है और उसके सहारे व्यक्ति निस्संदेह वे काम कर सकता है जो आम लोगों के बलबूते के नहीं हैं।

अब तिब्बत, चीन के हाथों चला गया और लामाओं की आध्यात्मिक शक्ति उसके अवरोध में कुछ काम न आ सकी इस सन्दर्भ में यही कहा जा सकता है कि केवल विचार संचालन जैसी सामान्य स्तर की साधनाओं को ही सब कुछ मानकर इस मार्ग के पथिकों को सन्तुष्ट नहीं बैठ जाना चाहिये वरन् उस स्तर की बड़ी शक्ति भी उपार्जित करनी चाहिए जिससे दुर्दान्त दुष्टों का भी समुचित प्रतिरोध कर सकना सम्भव हो सके।

भू-गर्भ दृष्टा योगी

आकाश और पृथ्वी के बीच में अनेक आश्चर्यजनक वस्तुएँ हैं, जिनका मनुष्य को कुछ भी ज्ञान नहीं है। किन्तु कभी-कभी जब ऐसी घटनाएँ हो जाती हैं तो वैज्ञानिक इन घटनाओं का कारण जानने के लिए उतावले बन जाते हैं।

ऐसी ही एक आश्चर्यजनक घटना जो देखने में आई है वह पचास वर्षीय योगी श्री० जीवराम व्यास के विषय में है। जोकि एक मील गहराई तक धरती के भीतर निहित वस्तुओं को देख लेते हैं। इन योगीराज को जनता 'पानीवाला महाराज' के नाम से पुकारती है। वैज्ञानिक अभी तक 'ऐक्सरे' को केवल कैमरे तथा मांस-मज्जा इत्यादि तक की वस्तु समझते रहे हैं। किन्तु इन योगी महाराज की दिव्य दृष्टि (ऐक्सरे निगाह) ने वैज्ञानिकों को भी चमत्कृत कर दिया। इन योगी महाराज की इस दिव्य दृष्टि के कुछ चमत्कार नीचे दिये जाते हैं।

दिल्ली छावनी के निकट तिहाड़ नामक गाँव में पानी वाले महाराज ने एक स्थान बताया था, जहाँ अब एक बड़ा पम्प लगा हुआ है, जो सैकड़ों गैलन पीने का पानी देता है।

पानीवाले महाराज ने राजपुरा उन्नति बोर्ड को जो स्थान बताये थे, वहाँ अब दो नलदार कुएँ बने हुये हैं।

प्रधानमन्त्री के कहने से फरीदाबाद उन्नति बोर्ड ने पानीवाले महाराज को ऐसे स्थान बताने के लिए बुलाया था, जहाँ नलदार कुँए बनाये जा सकें। विज्ञानवेत्ता यह कह चुके थे कि वहाँ पानी नहीं निकल सकता। परन्तु अब वहाँ आठ नलदार कुँए प्रति घण्टे लगभग ३५,००० गैलन पानी दे रहे हैं।

सामुद्री से १८ मील की दूरी पर दुन्दारा नामक गाँव में भी एक नलदार कुँआ बराबर पानी दे रहा है। यह कुँआ भी पानी वाले महाराज द्वारा बताये गये स्थान पर बनाया गया था।

जयपुर में नलदार कुँए बनवाने के लिए पानी वाले महाराज ने जितने स्थान बताये, उन सभी से पानी निकला।

हाल ही में उन्होंने बढ़वान के समीप एक शुष्क क्षेत्र में पानी का पता लगाया है, जहाँ पर एक बड़ा भारी कुँआ बनाया जा रहा है। सौराष्ट्र में भाल के सूखे मैदान में भी उन्होंने पानी ढूँढ निकाला है। यहाँ भी शीघ्र एक कुँआ बनाया जायेगा।

उनका पानी देखने का ढ़ंग बड़ा विचित्र है। कभी तो वे किसी क्षेत्र विशेष के मानचित्र पर हाथ फैरते हैं और पिन छेद कर बता देते हैं कि इस स्थान पर पानी निकलेगा और कभी कमरे में बैठे हुए या मोटर कार में जाते हुए पृथ्वी के भीतर कुछ धुँधलापन देखकर, वे केवल पानी की मात्रा ही नहीं यह भी बता देते हैं कि यहाँ पानी मीठा निकलेगा या खारा, और उनकी भविष्य वाणी बिल्कुल ठीक उतरती है। —नवभारत से।

इन महाराज की दिव्य दृष्टि ने सरकार को प्रभावित किया है। माननीय पं० नेहरू और श्री के० एस० मुन्शी ने अपने वक्तव्यों में इनकी अद्भुत शक्ति को सराहा है और आशा प्रकट की है कि उनके सहयोग से राजस्थान की मरुभूमि को जलसिंचित करके हरा-भरा बनाया जा सकेगा। योग शक्ति का यह एक चमत्कार अनायास ही सामने आ गया है। ऐसे अनेकों चमत्कारों की शक्ति आध्यात्मिक साधना के सिद्ध पुरुषों में होती है। इस भारत भूमि में प्राचीन काल में अनेक योगशक्ति सम्पन्न महापुरुष थे अब भी ऐसे कितने आत्म शक्ति सम्पन्न महापुरुषों का साक्षात्कार किसी-किसी को हो जाता है।

एक और सलीब—हूबहू ईसा जैसा

कई दिन से लोग पीछे पड़े थे—"तुम हिमालय (भारतवर्ष) जाकर योग विद्या सीखकर आये हो, तो कोई चमत्कार भी तो दिखाओ। कैसे पता चले कि भारतीय योग में भी कुछ शक्ति है और तुमने उस शक्ति का कुछ भाग पा लिया है ?" ऐसे प्रश्न बराबर पूछे जा रहे थे।

बात दक्षिण अफ्रीका के न्यूकैसिल शहर की है। एक साधारण सी दुकान में काम करने वाले युवक पीटरवान डेनबर्ग ने किसी से सुन लिया था कि भारतवर्ष योगियों का देश है, वहाँ आसन, प्राणायाम, ध्यान, धारण आदि के ऐसे योगाभ्यास सिखाये जाते हैं, जिससे मनुष्य अति मानवीय एवं अपरोक्ष

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

शक्ति और अनुभूतियाँ भी प्राप्त कर सकता है। सामान्य लोग कोई कौतूहलपूर्ण बात सुनते हैं तो थोड़ा मनोरंजन-सा उन्हें होता है और बात आई गई हो जाती है। पर पीटरवान डेनबर्ग ने सोचा—यदि सचमुच ऐसा कुछ है तो उसे जानना और सीखना चाहिए। कथन की सत्यता को परखा ही जाना चाहिए।

वह तिब्बत होता हुआ हिमालय पहुँचा। हिमालय धरती का स्वर्ग, पवित्रता की विरासत ही योग विद्या और ज्ञान की खान आज भी है। **"जिन खोजा तिन पाइयाँ"** कहावत के अनुसार पीटरवान को किसी योगी के दर्शन हुए। उन्हीं से उसने योग विद्या सीखी और संस्कृत भाषा का अध्ययन भी किया एक दिन ऐसे ही ईसा भी भगवान् बुद्ध से योग विद्या सीखकर गये थे, यह जानकर तो उसका भारतवर्ष के प्रति प्रेम और आदर भाव और भी उमड़ पड़ा। उसे दुःख इतना ही है कि भारतीयों में स्वयं ही अपने धर्म और योग विद्या के प्रति श्रद्धा नहीं रही है।

योग विद्या सीखकर वह अपनी जन्मभूमि लौट पड़ा। यहाँ आकर उसने लोगों को भारतीय तत्व दर्शन से परिचित कराना प्रारम्भ किया। वह यह भी बताता था कि वह योग विद्या स्वयं भी सीखकर आया है। तभी लोग उसके पीछे पड़ गये थे और कोई चमत्कार दिखाने का आग्रह कर रहे थे।

पीटरवान ने बहुतेरा समझाया कि योग का उद्देश्य आत्म-कल्याण है। अपनी लघुतम चेतना का विस्तार करके विश्व सम्पदा का स्वामी बनना और भावनात्मक आनन्द लूटना है। चमत्कार से किसी का कुछ भला नहीं होता। पर लोग तो लोग ही ठहरे। उनकी जिद कम न हुई।

२८ जुलाई, ६९ का दिन—उसने चमत्कार दिखाना स्वीकार कर लिया। हम भारतीय अपने तत्व दर्शन धर्म व संस्कृति की महत्ता को पहचानते भी हैं, पर उसके प्रति अपनी न तो निष्ठा व्यक्त कर पाते हैं न स्वाभिमान। पर डेनबर्ग देर तक यह उपेक्षा सहन नहीं कर सके। उन्होंने कहा—मैं ईसा की तरह सलीब पर चढ़ूँगा और यह दिखाऊँगा कि ईसा का क्रूस पर चढ़ना मनगढ़न्त बात नहीं है और न ही मनगढ़न्त है भारतीय योग विद्या। दोनों वैज्ञानिक उपलब्धियों की तरह सुनिश्चित तथ्य हैं।

उस दिन तैयारी की गई। लाउडस्पीकर बजने लगा। कस्बे के बाहर एक खेत में जहाँ यह प्रदर्शन होने वाला था, हजारों की संख्या में लोग एकत्रित हो गये। मजबूत सलीब मँगाया गया। पत्थर के कोयलों में आग लगा दी गई। जब कोयले दहकने लगे, तो उन्हें जमीन पर बिखेर दिया गया। डेनबर्ग ने दोनों हाथ जोड़कर दर्शकों को अभिवादन कर कहा—"मैं कोई ईश्वर नहीं, ईश्वर का दूत भी नहीं। मैं तो एक साधारण मनुष्य हूँ और लोगों को यह बताना चाहता हूँ कि मनुष्य सब कुछ भौतिक ही नहीं है, वह अधिकांश आध्यात्मिक शक्तियों से ओतप्रोत प्राणी है। उसकी आध्यात्मिकता भौतिकता की अपेक्षा कहीं अधिक समर्थ है—यही प्रदर्शन करने के लिये आज मैं यहाँ उपस्थित हुआ हूँ।

इसके बाद वह दहकते अगारों पर चल पड़ा। आराम से चहलकदमी की बड़ी देर तक उसने दहकते अगारों पर—पाँवों में न कोई जलन न कोई पीड़ा। लोगों के आग्रह पर जब वे बाहर निकलकर आये, तो उनके पैरों में एक भी छाला नहीं था। लोगों ने फूलमालाओं से उन्हें लाद दिया। उन्होंने कहा कि यह मेरा सम्मान नहीं, सम्मान तो उस विद्या और गुरु का है जिसके अभ्यास और मार्गदर्शन से मैंने उस सत्ता की अनुभूति की। उन्होंने भावविभोर होकर कहा—'भारतवर्ष में सचमुच मनुष्य को भगवान बना देने की विद्या है। संसार चाहे तो वहाँ से बहुत कुछ सीख सकता है, पर अभी तो भारतीय ही अपना दर्शन आप भूल बैठे हैं। हाँ, अब कोई आत्मा वहाँ आ गई है और वह आध्यात्मिकता का प्रकाश फैला रही है। जल्दी ही सारा विश्व भारतवर्ष के चरणों में प्रणिपात करेगा।'

इस बीच ६ फीट लम्बा सलीब (दो लकड़ियाँ बाँध कर बनाया गया वैसा क्रूस, जिस तरह के क्रूस पर ईसा को सूली दी गई थी) आ गया। डेनबर्ग प्रसन्नतापूर्वक उस पर लेट गये। लोगों के दिल धड़कने लगे, पर योगी शांत और संयत। उनके हाथ-पैरों में इस्पात की छः-छः इन्च लम्बी कीले ठोंक दी गई। एक कील बायें पैर की जंघा पर भी ठोंक दी गई और सलीब को उठाकर खड़ा कर दिया गया। डेनबर्ग ने संस्कृत का एक श्लोक पढ़ा और कहा कि मैं बहुत प्रसन्न हूँ, मुझे पीड़ा या मृत्यु का कोई भय तक नहीं है।

आधा घण्टे बाद उन्हें सलीब से उतारा गया। उनकी आँखें छलक आईं, उन्होंने कहा—मनुष्य आत्मशक्तियों का विकास करके कितना शक्तिशाली और आनन्दपूरित हो सकता है, पर कैसा अज्ञान है कि लोग मनुष्य शरीर जैसा अलभ्य और बहुमूल्य ईश्वरीय अनुदान प्राप्त करके भी दीन-दुःखी व दरिद्रता की स्थिति में पड़े हुए हैं।

डेनबर्ग के शरीर में रक्त के एक-दो छीटों के अतिरिक्त कहीं कोई घाव भी नहीं था। मरहम-पट्टी की भी आवश्यकता नहीं थी। लोग वहाँ से बड़ा आश्चर्य, कौतूहल और जिज्ञासायें लेकर लौटे। यह समाचार संसार भर के समस्त दैनिक पत्रों में छपा तो अविश्वासियों को भी यह विश्वास करने के लिये बाध्य होना पड़ा कि योग निरर्थक कल्पना नहीं, उसका आधार एक ऐसे विलक्षण विज्ञान पर आधारित है जिसकी जानकारी अभी सर्वसाधारण को नहीं हो पाई।

तन्मयता-तल्लीनता की उच्चस्तरीय उपलब्धियाँ

एकाग्रता एक उपयोगी सत्प्रवृत्ति है। मन की अनियंत्रित कल्पनाएँ अनावश्यक उड़ानें उस उपयोगी विचार शक्ति का अपव्यय करती हैं, जिसे यदि लक्ष्य विशेष पर केन्द्रित किया गया होता तो गहराई में उतरने और महत्वपूर्ण उपलब्धियाँ प्राप्त करने का अवसर मिलता। यह चित्त की चंचलता ही है जो मनः संस्थान की दिव्य क्षमता को ऐसे ही निरर्थक गँवाती और नष्ट-भ्रष्ट करती रहती है। संसार के वे महामानव जिन्होंने किसी विषय में पारगंत प्रवीणता-हासिल की है या महत्वपूर्ण सफलताएँ उपलब्ध की हैं उन सबको विचारों पर नियंत्रण करने-उन्हें अनावश्यक चिन्तन से हटाकर उपयोगी दिशा में चलाने की क्षमता प्राप्त रही है। इसके बिना चंचलता की वानर वृत्ति से ग्रसित व्यक्ति न किसी प्रसंग पर गहराई से सोच

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सकता है और न किसी कार्यक्रम पर देर तक स्थिर रह सकता है।

शिल्प, कला, साहित्य, शिक्षा, विज्ञान, व्यवस्था आदि महत्वपूर्ण सभी प्रयोजनों की सफलता में एकाग्रता की शक्ति ही प्रधान भूमिका निभाती है। चंचलता को तो असफलता की सगी बहन माना जाता है। वयस्क होने पर भी यदि कोई चंचल ही बना रहे, विचारों की दिशाधारा बनाने और चिन्तन पर नियन्त्रण स्थापित करने में सफल न हो सके तो समझना चाहिए की आयु बढ़ जाने पर भी उसका मानसिक स्तर बालकों जैसा ही बना हुआ है। ऐसे लोगों का भविष्य उत्साहवर्द्धक नहीं हो सकता।

मनीषी डब्लू. आर. इन्ज के ग्रन्थ 'मिस्टिसिज्म इन रिलीजन' के शब्दों में सोचें तो आत्मिक प्रगति के लिए तो एकाग्रता की और अधिक उपयोगिता है। इसलिए 'मेडिटेशन' के नाम पर उसका अभ्यास विविध प्रयोगों द्वारा कराया जाता है। इस अभ्यास के लिए कोलाहलरहित ऐसे स्थान की आवश्यकता समझी जाती है जहाँ विक्षेपकारी आवागमन या कोलाहल न होता हो। एकान्त का तात्पर्य जनशून्य स्थान नहीं वरन् विक्षेप रहित वातावरण है। सामूहिकता हर क्षेत्र में उपयोगी मानी जाती है। उपासना भी सामूहिक हो तो उसमें हानि नहीं लाभ ही है। मस्जिदों में नमाज—गिरजा घरों में प्रेयर—मन्दिरों में आरती सामूहिक रूप से करने का रिवाज है। इसमें न तो एकान्त की कमी अखरती है और न एकाग्रता में कोई बाधा पड़ती है।

एक दिशा धारा का चिन्तन हो रहा हो तो अनेक व्यक्तियों का समुदाय भी एक साथ मिल बैठकर एकाग्रता का अभ्यास भली प्रकार कर सकता है। नितान्त एकान्त में बैठना वैज्ञानिक, तात्विक शोध अन्वेषण के लिए आवश्यक हो सकता है, उपासना के सामान्य सन्दर्भ में एकान्त ढूँढते फिरने की कोई खास आवश्यकता नहीं है। सामूहिकता के वातावरण में ध्यान-धारणा और भी अच्छी तरह बन पड़ती है। सेना का सामूहिक कार्य—साथ-साथ कदम मिलाकर चलना-सैनिकों में से किसी का ध्यान नहीं बटता वरन् साथ-साथ चलने की पग ध्वनि के प्रवाह में हरेक के पैर और भी अच्छी तरह अपने आप नियतक्रम से उठते चले जाते हैं। सहगमन से पगक्रम को ठीक रखने में बाधा नहीं पड़ती वरन् सहायता ही मिलती है। सहगान की तरह सहध्यान तथा सहभजन भी अधिक सफल और अधिक प्रखर बनता है।

'अन्तरयोग' पुस्तक के लेखक महायोगी अनिर्वाण के अनुभव के अनुसार उपासना के लिए जिस एकाग्रता का प्रतिपादन है उसका लक्ष्य है—भौतिक जगत की कल्पनाओं से मन को विरत करना और उसे अन्तर्जगत की क्रिया-प्रक्रिया में नियोजित कर देना। उपासना के समय यदि मन सांसारिक प्रयोजनों में न भटके और आत्मिक क्षेत्र की परिधि में परिभ्रमण करता रहे तो समझना चाहिए कि एकाग्रता का प्रयोजन पूरा हो रहा है। विज्ञान के शोध कार्यों में—साहित्य के सृजन प्रयोजनों में वैज्ञानिक या मनीषी का चिन्तन अपनी निर्धारित दिशा धारा में ही सीमित रहता है। इतने भर में एकाग्रता का प्रयोजन पूरा हो जाता है। यद्यपि इस प्रकार के बौद्धिक पुरुषार्थों में मन और बुद्धि को असाधारण रूप से गतिशील रहना पड़ता है और कल्पनाओं को अत्यधिक सक्रिय करना पड़ता है तो भी उसे चंचलता नहीं कहा जा सकता।

अपनी निर्धारित परिधि में रहकर कितना ही द्रुतगामी चिन्तन क्यों न किया जाय, कितनी ही कल्पनाएँ, कितनी ही स्मृतियाँ, कितनी ही विवेचनाएँ क्यों न उभर रही हों वे एकाग्रता की स्थिति में तनिक भी विक्षेप उत्पन्न नहीं करेंगी। गड़बड़ तो अप्रासंगिकता में उत्पन्न होती है। बेतुका-बेसिलसिले का अप्रासंगिक अनावश्यक चिन्तन ही विक्षेप करता है। एक बेसुरा वादन पूरे आरकेस्ट्रा के ध्वनि प्रवाह को गड़बड़ा देता है, ठीक इसी प्रकार चिन्तन में अप्रासंगिक विक्षेपों का ही निषेध है। निर्धारित परिधि में कितनी ही, कितने प्रकार की कल्पनाएँ-विवेचनाएँ करते रहने की पूरी छूट है।

महात्मा नरहरि 'बोधसार' में कहते हैं—कई व्यक्ति एकाग्रता का अर्थ मन की स्थिरता समझते हैं और शिकायत करते हैं कि उपासना के समय उनका मन भजन में एकाग्र-स्थिर नहीं रहता। ऐसे लोग एकाग्रता और स्थिरता का अन्तर न समझ पाने के कारण ही इस प्रकार की शिकायत करते हैं। मन की स्थिरता सर्वथा भिन्न बात है। उसे एकाग्रता से मिलती-जुलती स्थिति तो कहा जा सकता है, पर दोनों का सीधा सम्बन्ध नहीं है। जिसका मन स्थिर हो उसे एकाग्रता का लाभ मिल सके या जिसे एकाग्रता की सिद्धि है—उसे स्थिरता प्राप्त हो ही जाय यह आवश्यक नहीं है।

स्थिरता को निर्विकल्प समाधि कहा गया है और एकाग्रता को सविकल्प कहा गया है। सविकल्प का तात्पर्य है उस अवधि में आवश्यक विचारों को मनः क्षेत्र में अपना काम करते रहना। निर्विकल्प का अर्थ है एक केन्द्र बिन्दु पर सारा चिन्तन सिमटकर स्थिरता की स्थिति उत्पन्न हो जाना।

यहाँ मनः संस्थान की संरचना को ध्यान में रखना होगा। एक वैज्ञानिक की दृष्टि रखकर साधना की गहराइयों में प्रवेश करने पर मन की बनावट एक प्रचण्ड विद्युत भण्डार जैसी अनुभव की जा सकती है। उसके भीतरी और बाहरी क्षेत्र में विचार तरंगों के आँधी तूफान निरन्तर उठते रहते हैं। यह तरंग-तूफान जितने तीव्रगति से सम्पन्न होते हैं उसकी मानिसकता उतनी ही उर्वर और कुशाग्र बुद्धि मानी जाती है। जहाँ इन तरंगों में जितनी मन्दगति हो समझना चाहिए वहाँ उतनी ही जड़ता, दीर्घसूत्रता, मूर्खता छाई रहेगी। हारे-थके मस्तिष्क को निद्रा घेर लेती है अर्थात् उसकी गतिशीलता शिथिल हो जाती है। यह कृत्रिम निद्रा नशीली दवाएँ पिलाकर, क्लोरोफार्म आदि सुँघाकर उत्पन्न की जा सकती है। मूर्छा की स्थिति में मस्तिष्क की गतिशीलता ठप्प हो जाती है।

स्थिरता लगभग ऐसे ही स्तर की है। गड्ढे में बन्द होने की प्रदर्शन वाली जड़ समाधि में ऐसी ही स्थिरता होती है। मनस्वी लोग अपनी संकल्पशक्ति से हृदय की धड़कन और मानसिक सक्रियता को ठप्प कर देते हैं। स्थिरता जड़ समाधि के वर्ग में आती है। वह संकल्पशक्ति से उत्पन्न की जा सकती है। स्थिरता का स्वरूप विश्राम मिलना है। इससे आन्तरिक थकान दूर हो सकती है और जिस तरह निद्रा के उपरान्त जागने पर नई चेतनता एवं स्फूर्ति का अनुभव होता है, वैसा ही मन की स्थिरता का लाभ मिल सकता है। सामान्य रूप से इस स्थिति को शिथिलीकरण मुद्रा का एक प्रकार कहा जा सकता है। उसमें भी शरीर और मन की स्थिरता शिथिलता

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

का ही अभ्यास किया जाता है। मैस्मरेजम—हिप्नोटिज्म प्रयोगों में भी इसी का अभ्यास काले गोले के माध्यम से करना पड़ता है। नेत्रों में बेधक दृष्टि उत्पन्न करने के लिए एकाग्र मनः शक्ति को एक ही स्थान पर केन्द्रित करते हैं। ऐसे ही सामान्य चमत्कार उस स्थिरता से उत्पन्न किए जा सकते हैं जिसके लिए आमतौर से अध्यात्म साधना के विद्यार्थी ललचाते रहते हैं और जिसके न मिलने पर अपने अभ्यास की असफलता अनुभव करके खिन्न होते हैं।

मन की स्थिरता अति कठिन है। तीन मिनट की स्थिरता मिल सके तो साधक शून्यावस्था में पहुँच जाता है। जिन्हें निर्विकल्प समाधि अभीष्ट हो उन्हें ही स्थिरता की अपेक्षा और चेष्टा करनी चाहिए। सविकल्प साधना में स्थिरता की नहीं एक दिशाधारा में मन को नियोजित किए रहने की आवश्यकता है। पर ब्रह्म में आत्मसमर्पण और उस पराशक्ति का आत्मसत्ता में अवतरण ही ध्यान का मुख्य प्रयोजन है। उसके लिए कितने ही प्रकार की साकार—निराकार ध्यान—धारणाएँ विद्यमान हैं। उनमें से जो उपयोगी एवं रुचिकर लगे उसे अपनाया जा सकता है।

स्थिरता—स्तर की एकाग्रता हिप्नोटिज्म प्रयोगों में तो काम आती है। सरकस के अनेक खेलों में मानसिक सन्तुलन ही चमत्कार दिखा रहा होता है। स्मरण शक्ति के धनी भी प्रायः एकाग्रता के ही अभ्यासी होते हैं। शोधकर्ताओं की सफलता का आधार यही है। इतने पर भी इसे आत्मिक प्रगति की अनिवार्य शर्त नहीं माना जा सकता। अधिक से अधिक इसे सहायक कहा जा सकता है। यदि ऐसा न होता तो ये सब एकाग्रता लोग आत्मबल सम्पन्न हो गए होते। इनकी गणना सिद्ध योगियों में की जाने लगती। इसके विपरीत प्रायः सभी भावुकभक्त भावावेश जन्य चंचलता से ग्रस्त रहे हैं। मीरा, चैतन्य, रामकृष्ण—परमहंस आदि इसी वर्ग के थे, जिन पर प्रायः भावावेश छाया रहता था।

आत्मसाधना में निमग्न साधक एवं मनीषी गोपीनाथ—कविराज अपने सम्पादित ग्रन्थ "श्री श्री सद्गुरु प्रसंग" में स्पष्ट करते हैं कि मन की स्थिरता एवं एकाग्रता का सार तत्व 'तन्मयता' में आ जाता है। तन्मयता का अर्थ है इष्ट के साथ भाव संवेदनाओं को केन्द्रीभूत कर देना। यह स्थिति तभी आ सकती है जब इष्ट के प्रति असीम श्रद्धा हो। श्रद्धा तब उत्पन्न होती है जब किसी की गरिमा पर परिपूर्ण विश्वास हो। साधक को अपनी मनोभूमि ऐसी बनानी चाहिए जिसमें इष्ट और मार्गदर्शक सद्गुरु की चरम उत्कृष्टता पर, असीम शक्ति सामर्थ्य पर सम्पर्क में आने वाले के उत्कर्ष होने पर गहरा विश्वास जमता चला जाय।

यह कार्य शास्त्र वचनों का अनुभवियों द्वारा बताये गए सत्परिणामों का, उपासना विज्ञान की प्रामाणिकता का, अधिकाधिक अध्ययन अवगाहन करने पर सम्पन्न होता है। आशंकाग्रस्त अविश्वासी मन, उपेक्षा भाव से आधे-अधूरे मन से उपासना में लगे तो स्वभावतः वहाँ उसकी रुचि नहीं होगी, मन जहाँ-तहाँ उड़ता फिरेगा। मन लगने के लिए आवश्यक है कि उस कार्य में समुचित आकर्षण उत्पन्न किया जाय। व्यवसाय उपार्जन में, इन्द्रिय भोगों में, विनोद मनोरंजनों में, सुखद कल्पनाओं में, प्रियजनों के सम्पर्क सान्निध्य में मन सहज ही लग जाता है।

इसका कारण यह है कि इन प्रसंगों के द्वारा मिलने वाले सुख, लाभ एवं अनुभव के सम्बन्ध में पहले से ही विश्वास जमा होता है। प्रश्न यह नहीं है कि वे आकर्षण दूरदर्शिता की दृष्टि से लाभदायक हैं या नहीं। तथ्य इतना ही है कि उन विषयों के सम्बन्ध में अनुभव-अभ्यास के आधार पर मन में आकर्षण उत्पन्न हो गया है। उस आकर्षण के फल स्वरूप ही मन उसमें रमता है और भाग-भाग कर जहाँ-तहाँ घूम-फिर कर वहीं जा पहुँचता है। हटाने से हटता नहीं, भगाने से भागता नहीं।

मानसिक संरचना के इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए हमें उपासना के समय मन को इष्ट पर केन्द्रित रखने की आवश्यकता पूरी करने के पहले से ही मन को प्रशिक्षित करना चाहिए। गायत्री महाशक्ति के सम्बन्ध में सूर्य तत्व के सन्दर्भ में जितना अधिक ज्ञान-विज्ञान संग्रह किया जा सके मनोयोगपूर्वक करना चाहिए। विज्ञ व्यक्तियों के साथ उसकी चर्चा करनी चाहिए। जिनने लाभ उठाए हों उनके अनुभव सुनना चाहिए। यह कार्य तद् विषयक स्वाध्याय एवं मनन चिन्तन के एकाकी प्रयत्न से भी सम्भव हो सकता है।

चेतना शक्ति के उत्थान परिष्कार में तन्मयता सबसे बड़ा आधार है। शरीर से किए जाने वाले कर्मकाण्डों का प्रयोजन इतना ही है कि उनके कारण अन्तःकरण को साथ-साथ चलने का आधार मिल जाय। चिन्तन का गहरा पुट लगने पर ही आत्मिक भूमिका में हलचलें होती हैं और प्रगति का सरंजाम जुटता है। यदि मन इष्ट पर जमे नहीं—मंत्र देने वाले गुरु पर श्रद्धा में कमी हो—ऐसी दशा में मंत्रोच्चारण का श्रम—जीभ की कसरत भर बनकर रह जायेगा।

तन्मयता की स्थिति उत्पन्न करने के लिए धैर्यपूर्वक देर तक प्रयत्न करना होता है। यह एक दिन में सम्पन्न होने वाले काम नहीं हैं। मन का पुराना अनुभव अभ्यास-भौतिक आकर्षणों के साथ खेल करते रहने का है। उसे इससे विरत करने के लिए यदि उससे अधिक नहीं तो कम से कम उतना बड़ा आकर्षण तो प्रस्तुत किया जाना ही चाहिए। अरुचिकर प्रयोजन पर जमने की उसको आदत है ही नहीं। आकर्षण के अभाव में उसे बुरी तरह ऊब आती है और वहाँ से उचटने भागने की ऐसी धमा-चौकड़ी मचाता है कि देर तक उस कार्य को चलाते रहना कठिन हो जाता है। तरह-तरह की बहानेबाजी बनाकर वहाँ से उठने के लिए अचेतन मन कितनी-कितनी तरकीबें खड़ी करता है, यह सब देखते ही बनता है। खुजली उठना, जमुहाई आना, कोई साधारण-सा खटका होते ही उधर देखने लगना पालथी बदलना, कपड़े सम्भालना, जैसी चित्र-विचित्र क्रियाओं का होना यह प्रकट करता है कि मन यहाँ नहीं रहा। उसे उस काम को छोड़कर जल्दी-जल्दी भाग निकलने के लिए हड़बड़ी हो रही है।

इस स्थिति का सामना करने के लिए उपाय यही है कि श्रद्धा उत्पन्न करने वाले स्वाध्याय और सत्संग का मनन चिन्तन का ऐसा क्रम बनाया जाय, जिससे कि उस दिशा में चलने के

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सत्परिणामों के सम्बन्ध में तर्क, तथ्य, प्रमाण एवं उदाहरणों के आधार पर अपनी इष्ट निष्ठा और गुरुभक्ति को प्रगाढ़ किया जाय। यह प्रगाढ़ता ही साधक में—तन्मयता को जन्म देती है। शनैः-शनैः इस तन्मयता का ही रूपान्तरण ध्यान में होता है। फिर ध्यान की प्रगाढ़ गम्भीरता को सविकल्प समाधि आत्मबोध के क्षणों में बदलते भला कितनी देर है ? साधना से सिद्धि के लिए स्वाध्याय, सत्संग के अतिरिक्त भगवान के शरणागत होना—समर्पित होना नितान्त आवश्यक है। स्वयं भगवान कृष्ण ने कहा है—

"मयि युज्यतो योत् मनः उपतिष्ठन्ति सिद्धयः"

अर्थात् हे उद्धव ! मेरे में मन एकाग्र करने वाले के पास सिद्धियाँ स्वयं चल कर आ जाती हैं।

चेतना का रहस्यवाद

रहस्यवाद के परे अनेक दुनिया हैं, जिनके बारे में हम कुछ नहीं जानते। सौन्दर्यपूर्वक, नीति परक सत्ता व अमरता के बारे में हमारी जानकारी नगण्य है। पदार्थ दुनिया में ही कुछ शताब्दियों में बहुत उन्नति हुई है, जिनका हम अनुमान भी नहीं लगा पाते। संचार और आवागमन, अणु और परमाणु, रेडियो और टेलीविजन, आधुनिक उद्योग और कारखाने आदि क्षेत्रों में आश्चर्यजनक प्रगति हुई है। भविष्य में एक ऐसा अवसर होगा, जब पदार्थ जगत में और कोई उन्नति करने की गुंजाइश नहीं रहेगी। तब हम मन और अन्तर्शक्ति (इनर सेल्फ) के रहस्यों का पता लगाने में लग सकेंगे।

इससे जीवन के उद्देश्य एवं सफलताएँ, अमरता, अन्तःविकास आदि रहस्यवादी घटनाओं को मनुष्य ठीक से समझा सकेगा और विश्व के सम्पूर्ण ज्ञान एवं सम्पूर्ण क्षमताओं का उपयोग अपने दैनिक क्रियाकलापों में करेगा। तब विश्व के सम्पूर्ण ज्ञान का उपयोग सम्पूर्ण मानव करेंगे। यह ऐसी आश्चर्यजनक उन्नति होगी, जिसकी आज का भौतिकवाद कल्पना भी नहीं कर सकता।

दार्शनिक स्टेसी के अनुसार अनेक लोगों ने इस तरह के आश्चर्यजनक अनुभव पाये हैं। इससे उस सर्वोच्च शक्ति से आने वाले समस्त विचारों, अच्छाइयों, नवीनताओं और सत्य से मनुष्य जाने-अनजाने परिचित होता है एवं उसका लाभ समस्त विश्व को वह देता है। रहस्यवाद का यह भी एक स्वरूप है, जो किसी के अभ्यास में अचानक आ जाता है और किसी को कठिन प्रयास करने पर यह क्षणिक बोध ही सारे कठिनाइयों का हल बतला देता है, जो मनुष्य को आजीवन प्रेरित करता है। निश्चय ही एक अनन्त महिमा और शक्ति का विश्व हमारे ज्ञान के परे है, जहाँ से वह समय पर हमें असीम ज्ञान, प्रकाश एवं शक्ति प्रदान करता है।

स्टेसी का कथन है कि इन ज्ञान से ही मानव जाति पूर्ण होगी और वास्तविक आनन्द प्राप्त करेगी, जो आज के पदार्थ जगत के सुखों से अनन्त गुना मूल्यवान व हितकर होगा। यह बौद्ध धर्म के निर्वाण (अमरता) के निकट का ज्ञान होगा, जो मन और आत्मा के परिष्कार से प्राप्त होता है। मनुष्य जब जीवन और जीवन देने वाले का महत्व समझ लेता है, तब वह अमरत्व को प्राप्त करता है। इस समय वह भौतिक नियमों से नहीं बँधा रहता और आत्मानुशासन के अनुसार चलता है। यही नया विश्व मनुष्य को खुशहाल रखेगा और मुक्ति दिलायेगा।

चेतना हमारे भौतिक जीवन से घनिष्ठ सम्बन्ध रखती है, अतः हम उसे आज दैनन्दिन जीवन से अलग नहीं कर सकते। परन्तु एक समय आवेगा, जब वह सर्वोच्च शक्ति के सर्वोच्च रहस्यों को जान लेगा, तब यह चेतना बिल्कुल बदली हुई होगी। तब उसे ईश्वर के सत्य, शिव एवं सुन्दर स्वरूप का बोध होगा। यह ज्ञान असीम, अव्यक्त एवं पूर्णता आनन्ददायक है। इसमें ओजस्विता और आत्मसमर्पण के भाव होते हैं। समय और दूरी से परे यह ज्ञान हमें इस नश्वर जगत की कठिनाइयों एवं संघर्षों से ऊपर उठाता है। यह अनुभव क्षणिक होता है और हमें आकर्षित करता है। इसे देर तक देखने की इच्छा होती है। ऐसी अनुभूतियाँ हमारे ऋषि गणों की है।

बड़े-बड़े रहस्यवादी ही इन अनुभवों को देर तक ग्रहण कर सकते हैं और ये सर्वोच्च आनन्ददायक एवं रहस्यवादी अनुभव ध्यानयोग के अभ्यास के कारण उनके वश में होते हैं। ब्रिटिश दर्शनशास्त्री सी० ई० एम० जोड के अनुसार ये आनन्ददायक अनुभूतियाँ परम सत्य (ईश्वर) को व्यक्त करती हैं। इसी से मनुष्य मुक्ति प्राप्त करता है। यही है चेतना का वह रहस्यवाद जिसके लिए मनुष्य अनादि काल से भटक रहा है।

परिष्कृत चेतन तत्व की अनुभूतियाँ

अनुभूतियाँ क्या हैं ? मानसिक उपज ? भ्रांति ? या सच्चाई ? इन पर यदि गहराई से विचार किया जाय, तो ज्ञात होगा कि न तो यह मन की कल्पना है, न भ्रम। ऐसा इसलिए प्रतीत होता है, क्योंकि तब घटित हमारे लिए अघटित स्तर के बने रहते हैं, किन्तु जब घटना की, स्फुरणा से सही-सही संगति बैठ जाती है, तब ज्ञात होता है कि उसमें कितनी सच्चाई थी और तभी यह भी विदित होता है कि कोई अलौकिक सत्ता हमारी चेतना से छेड-छाड़ करती रहती है। इस प्रकार का प्रसंग जब कभी भी घटित होता है, तो मनुष्य में उसका परिणाम अघटित की अनुभूति के रूप में सामने आता एवं अनागत की महत्त्वपूर्ण जानकारी देता है।

घटना २८ जून, १९५४ की है। न्यूयार्क अमेरिका के डॉक्टर रेमर की पत्नी एल्सा विश्राम कर रही थी। उनकी पुत्री जेस्सी एक माह पूर्व ही कैलिफोर्निया जा चुकी थी। माँ-बेटी के बीच की भौगोलिक दूरी ३ हजार किलोमीटर थी। अकस्मात एल्सा चीख कर पलंग से उठ बैठी। रेमर ने जब इसका कारण जानना चाहा तो कहा कि अभी-अभी उसने जेस्सी की भयपूर्ण चीख सुनी, ऐसा लगा कि वह किसी विपदा में है। डॉक्टर ने अपनी पत्नी का शारीरिक परीक्षण किया। हृदय, नाड़ी, रक्तचाप सभी असामान्य थे। यह पूछे जाने पर कि उसने कोई भयंकर स्वप्न तो नहीं देखा, एल्सा ने कहा कि वह बिल्कुल जाग्रत अवस्था में थी और केवल जेस्सी की तीक्ष्ण चीख सुनी।

उस समय और कोई बात नहीं हुई। दो दिन बीत गये। इन दो दिनों तक घर का वातावरण बड़ा उदास बना रहा। तीसरे दिन वह उदासी पूर्ण विषाद में तब बदल गई, जब

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सचमुच जेस्सी के दुर्घटनाग्रस्त होने का तार मिला। आश्चर्य की बात यह थी कि एल्सा ने जिस समय यह चीख सुनी, ठीक उसी समय कैलिफोर्निया में कार दुर्घटना में उसका प्राणांत हुआ।

एक अन्य घटना फ्रांस के रियर एडमिरल गैलरी की आत्मकथा से उद्धृत है। 'आठ घंटियाँ' (एट बेल्स) नामक उक्त आत्मकथा में गैलरी लिखते हैं कि उन्हें सोमवार को अपनी ड्यूटी पर जाना था। रविवार की रात जब वे सोये, तो एक स्वप्न देखा कि वे अपने जहाज पर बैठे हैं। जहाज चलने की तैयारी में है। यात्रीगण जल्दी-जल्दी ऊपर आ रहे हैं। इनमें दो युवक भी हैं। वे उन दोनों से नाम पूछते हैं। एक ने अपना नाम डिकग्रेन्स तथा दूसरे ने पॉप कनवे बताया। तभी जहाज में अचानक विस्फोट होता है। दोनों युवक घायल हो जाते हैं। बाद में पॉप की मृत्यु हो जाती है। शेष सभी यात्री सुरक्षित बच जाते हैं। वे लिखते हैं कि स्वप्न इतना स्पष्ट और गम्भीर था कि सोकर उठने के उपरान्त भी मानस पटल पर वह ज्यों-का-त्यों बना रहा।

आश्चर्य वहाँ से प्रारम्भ हुआ, जब उन्होंने आफिस जाकर जहाज के यात्रियों की सूची देखी। उन्हें यह देखकर भारी हैरानी हुई कि जो नाम उन्होंने स्वप्न में देखे थे, वे सचमुच उस लिस्ट में सम्मिलित थे। उनके मन में एक अज्ञात भय समा गया, पर उन्हें ड्यूटी में तो हर हालत में जाना ही था, अतः बुझे मन से जहाज में सवार हुए। जलयान ने ठीक समय पर प्रस्थान किया, पर उसने अभी ठीक तरह से बंदरगाह भी नहीं छोड़ा था कि एक इंजन में विस्फोट हुआ। निकट बैठे हुए वही दो युवक घायल हुए, जिनमें से पॉप कनवे की थोड़ी देर पश्चात् मौत हो गई।

एक तीसरी घटना डरहम की एक स्त्री से सम्बन्धित है। क्रिस्टीना की लड़की लोला अपने छोटे भाई के साथ समुद्र स्नान के लिए एक दिन गई हुई थी। अभी दो घंटे भी नहीं बीते होंगे कि क्रिस्टीना ने चिल्लाना आरम्भ कर दिया। पति ने जब कारण पूछा, तो बोली लोला डूब रही है, उसे बचालो। पति ने आरम्भ में इसे पत्नी की अति कल्पनाशीलता समझी, पर पत्नी के बार-बार के आग्रह पर पति को तथ्य का पता लगाने के लिए जाना ही पड़ा। जब वह समुद्री किनारे पर पहुँचा, तब सचमुच लोला डूब चुकी थी और उसका छोटा पुत्र डिकी विलाप कर रहा था।

शिष्य मण्डली ने भगवान बुद्ध से पूछा—"मनुष्य के कितने वर्ग हैं ?" तथागत ने उत्तर दिया—"एक वे जो अपना ही लाभ देखते हैं, भले ही इससे दूसरों को कितनी ही हानि उठानी पड़ती हो। दूसरे वे, जो औरों का भला करते हैं। तीसरे वे, जो अपना भी भला करते हैं और दूसरों का भी। चौथे वे प्रमादी हैं, जो न स्वयं सुखी रहते हैं, न दूसरों को सुखी रहने देते हैं।"

तथागत ने कहा—"मेरी समझ में वे श्रेष्ठ हैं जो अपना भी भला करते और साथ-साथ दूसरों का भी।"

ऊपर लगभग एक ही तरह की तीन घटनाओं का उल्लेख है। यह घटनाएँ न तो भाव-सम्प्रेषण (टेलीपैथी) हैं और न ही दूरदर्शन (क्लेयरवायेन्स), वरन् इन्हें एक सर्वथा पृथक् श्रेणी में रखा जा सकता है, जिसे प्रायः 'अनुभूति' कहते हैं। टेलीपैथी यह इसलिए नहीं हो सकती, क्योंकि इसमें प्रयासपूर्वक ग्रहण और संप्रेषण की कार्यविधि अपनायी जाती है। दोनों पक्षों के बीच गहन भावनात्मक तादात्म्य होता है और उनके मध्य इसे सम्पन्न करने के लिए एक निश्चित समय निर्धारित किया जाता है। ऐसे ही भौगोलिक दूरी को किसी अतीन्द्रिय क्षमता के माध्यम से पार कर किसी प्रसंग का आभास प्राप्त कर लेना, सम्पूर्ण घटनाचक्र को दृश्यमान बना लेना, दूरदर्शन है। उपरोक्त घटनाओं में से एक वर्तमान से सम्बनिधत है और शेष दो भविष्य से। जो हो रहा है, उसे देखा जा सकता है। जो हो चुका है, उसे भी जाना जा सकता है, किन्तु जो अभी भविष्य के गर्भ में है, यदि उसकी जानकारी येन-केन प्रकारेण होती है, तो इस न तो दूरसंचार कहा जायेगा, न दूर सम्प्रेषण। यह आध्यात्मिक अनुभूतियाँ हैं, जो यदा-कदा जीवन में प्रकट होती रहती हैं—माध्यम चाहे स्वप्न हो, जागृति या तुरीयावस्था हो।

वेदांत दर्शन के अनुसार सृष्टि में ब्राह्मी चेतना या परमात्मा ही एक ऐसा तत्व है, जो सर्वव्यापी है। इसे प्रकारांतर से यों भी कह सकते हैं कि ब्रह्मांड उसी में अवस्थित है। वह काल की सीमा से परे है, अर्थात् भूत, भविष्य, वर्तमान तीनों ही उसमें समाहित हैं। "एक्सप्लेरिंग साइकिल फैनामेना बियांड मैटर" नामक कृति में डी. स्कॉट प्रकट करते हुए लिखते हैं कि विचारणाएँ तथा भावनाएँ प्राणशक्ति का उत्सर्जन (डिस्चार्ज ऑफ वाइटल फोर्स) हैं। यही उत्सर्जन अंतःकरण में यदा-कदा स्फुरणा बनकर प्रकट होते हैं। इस स्फुरणा की क्रिया-प्रणाली जब दो व्यक्तियों के मध्य सम्पन्न होती है, तब वह टेलीपैथी होती है, किन्तु जब वह समय की सीमाओं का अतिक्रमण करते हुए सूचना सुदूर भविष्य की देती है, तो इसका आधारभूत कारण ब्राह्मीचेतना होती है। इस चेतना की कल्पना आइन्स्टीन ने भी सापेक्षवाद के सिद्धांत में की है और लिखा है कि यदि प्रकाश की गति से भी तीव्र गति वाला कोई तत्व हो तो वहाँ समय रुक जायेगा। दूसरे शब्दों में वहाँ बीते कल, आज और आने वाले कल में कोई अंतर न रहेगा। भारतीय शास्त्र ब्राह्मी चेतना को ही ऐसा परम तत्व बताते हैं और मनुष्य व उसमें गहन सम्बंध होने का पग-पग पर उल्लेख करते हैं। उपरोक्त घटनाएँ इसी सत्य की पुष्टि करती हैं, साथ ही यह भी बताती हैं कि जब उस सत्ता का क्षणिक सम्पर्क इतना आश्चर्यजनक हो सकता है तो सम्पूर्ण सम्पर्क कितनी सामर्थ्य प्रदान करने वाला होगा—यह विचारणीय है।

ऋग्वेद में एक ऋचा आती है—**अग्निना अग्नि समिध्यते,** अर्थात् अग्नि से अग्नि प्रदीप्त होती है। ब्रह्मानुभूति से ब्रह्म प्राप्ति इसी सिद्धान्त पर आधारित है कि हम अधिकाधिक अपने आपे को, आत्मचेतना को उस ब्राह्मी चेतना के समीप लायें और फिर अंततः उसी में अपना विलय-विसर्जन कर दें। आत्म चेतना परमात्म चेतना बन जाय और परमात्म चेतना आत्मचेतना की अनुभूति कराये। यह एकात्म-अद्वैत की स्थिति है। सर्वसाधारण में यह स्तर विकसित नहीं हो पाने के कारण ही 'काल' रहस्यमय बना रहता है। जहाँ जिस अनुपात में दो सत्ताओं का सम्मिलन होता है, वहाँ उसी अंश में अविज्ञात ज्ञात बनता

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

चलता है। उपरोक्त घटनाएँ उसी श्रृंखला की कड़ियाँ हैं, और आत्मजाग्रति की क्षणिक अनुभूतियाँ भी। विस्तृत अनुभूति, ज्ञान प्राप्ति और ईश्वर साक्षात्कार के लिए तो आत्म-परिष्कार की गहन साधना अपनानी पड़ती है, जिसके उपरांत ही अनुभूतियों के निमित्त कारण को भलीभाँति जाना और समझा जा सकता है। अपनी अनुभूतियों का वर्णन करते हुए महर्षि अरविन्द कहते हैं कि भाव और कर्म की तरंग से ही काम नहीं चल सकता। उसके साथ ज्ञान का मिश्रण चाहिये। ज्ञान का मिश्रण हुए बिना सब निष्फल हो जायेगा। पूर्ण साधना में ज्ञान और शान्ति है। उसमें कर्म भी है, किन्तु साधारण नहीं, भक्ति भी है। किन्तु चित्तवृत्ति के भाव से उत्पन्न नहीं। कर्म में भक्ति का स्थान है, किन्तु हमें भक्ति एवं कर्म के ऊपर रहना होगा। वहाँ से ही हम शान्ति के आनन्द का अनुभव करेंगे। कर्म एवं भक्ति में भी आनन्द है, किन्तु वह आनन्द शान्ति का आनन्द नहीं है। कारण यह है कि, इनमें पूर्णता नहीं है, इसलिये इनका आनन्द भी शान्ति का आनन्द नहीं। जब कर्म की शक्ति को छोड़कर ऊपर निकल आयेंगे, तब जो कुछ प्राप्त होगा, उसी में शान्ति का पूर्ण आनन्द है।

किसी प्रकार भी अहंकार नहीं रहने देना चाहिये। बहुतों में सात्विक गर्व रहता है। बाहर से सात्विक अहंकार-राजसिक अहंकार या तामसिक अहंकार की अपेक्षा अच्छा दिखायी पड़ सकता है, किन्तु वास्तव में यह भी अहंकार ही है। सात्विक अहंकार देखने से ही, एक दिन राजसिक या तामसिक अहंकार प्रकट हो सकता है क्योंकि जहाँ सात्विक अहंकार रहता है, वहाँ राजसिक और तामसिक अहंकार भी भीतर में सूक्ष्म रीति से अलक्षित पड़ा रहता है। राजसिक और तामसिक अहंकार के प्रकट होने पर आपत्ति की मात्रा अधिक हो जाती है। कुशल इसी में है कि, अहंकार बिल्कुल रहने ही न पावे—चाहे वह सात्विक अहंकार हो, चाहे राजसिक अहंकार अथवा तामसिक अहंकार कोई भी क्यों न हो।

ध्यान रखते समय बैठा रहने पर चिन्ता-प्रवाह जब कम हो जाय, तब इस ओर पूरी शक्ति लगानी चाहिये। ऐसा करने से भीतर में शान्ति उत्पन्न होगी और उस शान्ति से मानव ज्ञान के प्रकाश से परिपूर्ण हो जायेगा। उस समय ऐसा मालूम होगा कि ऊपर से ज्ञान-धारा गिर कर मानस में आ रही है। इस प्रकार करते-करते जब साधक विज्ञान में पहुँच जाता है, तब उसकी यह अवस्था विलक्षण नाम से सम्बोधित की जाती है, और इस ज्ञानकोष में जो स्थित अवस्था है, वह स्वभाव कहलाता है। पहले-पहले योग की जो अवस्था होती है, उस अवस्था से मनुष्य की अवस्था ही स्वाभाविक होती है। बस इस ज्ञान की अवस्था का नाम ही विलक्षण है, साधारण लोग कर्म की प्रवृत्ति से कर्म करते हैं, और योगी लोग यह देखते हैं कि, कर्म के बाद एक महान विराट भाव रहता है—उसी ज्ञान के अनुभव के सहारे वे कार्य (कर्म) करते हैं।

कर्म से परे जो महान और विराट भाव रहता है, उसका अनुभव तो होगा ही, उसके बाद और भी अनुभव करना पड़ता है—पुरुष का—उस पुरुष का जो शक्ति से भी परे रह कर कार्य कर रहा है। इस पुरुष का अनुभव होने पर ही पूर्ण ज्ञान की प्राप्ति होती है। साधना के ज्ञान की तीन अवस्थाएँ हैं। पहली अवस्था है आत्मज्ञान की, दूसरी ब्रह्मज्ञान की और तीसरी है भगवद्ज्ञान की। आत्मज्ञान होने पर यह प्रतीत होने लगता है कि, मैं सबमें स्थित हूँ और सब मुझमें स्थित हैं, इसके बाद जब ब्रह्मज्ञान हो जाता है, उस समय यह प्राप्त हो उठता है कि सब एक हैं, किसी में भेद नहीं है—और सृष्टि की सारी वस्तुएँ ही ब्रह्म हैं, सबके अन्त में जब भगवद्ज्ञान हो जाता है, तब यह प्रत्यक्ष दिखायी पड़ने लग जाता है कि ब्रह्म ही भगवान् है, भगवान् सब प्राणियों में हर समय विराजमान रहा करते हैं। उस समय एक विश्व-ज्ञान से साधक परिपूर्ण हो जाता है—संसार में उसे फिर कुछ भी भेद दिखायी नहीं पड़ता। सारा जगत् ही इस समय उसे भगवान्मय दीखने लग जाता है। यह जो हमने विभिन्न ज्ञान की बात कही है, इसमें कौन ज्ञान पहले होता है और कौन पीछे, इसका कोई नियम नहीं है।

एक बात और है। यह है कि, संसार भर के प्रति स्नेह का भाव पूर्ण रीति से हृदय में रक्खो, किन्तु सबके लिये समान भाव से। किसी के लिये कम और किसी के लिये विशेष नहीं। प्राणीमात्र में भगवान क्रीड़ा कर रहे हैं—यह स्मरण रहे। इस ज्ञान में किसी प्रकार की रुकावट पैदा न होनी चाहिये। एक से गम्भीर स्नेह करना ही त्याग है। त्याग और पूर्ण-श्रद्धा होने से ही हृदय की सारी बाधाएँ दूर हो जायेंगी। भगवान सारी बाधाओं का ध्वंस कर डालते हैं। अधीर या विचलित न होकर स्थिर भाव से निष्ठापूर्वक आगे बढ़ते चलो।

मन के स्थिर और शान्त होने पर ही सत्य का प्रकाश होता है। भगवान जो स्वयं प्रकाश-स्वरूप कहे जाते हैं; वह बहुत ही ठीक और उचित है। मन के निश्चिन्त और स्थिर हो जाने पर भगवान अपने-आपही प्रकाशमान होते हैं, अर्थात् उनका रूप दीखने लगता है। विज्ञान-मय कोष को वेदों और उपनिषदों में सूर्य-स्वरूप कहा गया है, यह भी बिलकुल ज्वलन्त सत्य की अनुभूति है। सूर्य वर्ण ज्योति-पुरुष का अनुभव किया भी जाता है। यहाँ पहुँचने पर सब लोग इस स्वरूप का अनुभव करते हैं और कर सकते हैं।

कर्मयोग का प्रवाह भी इसी तरह का है। पहले फलाफल का समर्पण करके, अर्थात्—फलाफल की आशा त्याग कर कार्य करते जाना चाहिए। हृदय में भगवान हैं, ऐसा समझकर उनका स्मरण करते हुये सब कार्यों का आरम्भ करना चाहिये। यथा नियुक्तोऽस्मि। इसमें भी मैं करता हूँ। इसके पश्चात् इस कर्त्तव्य के अभिमान का भी त्याग (उत्सर्ग) कर देना चाहिये। फल के साथ-ही-साथ कर्म का भी स्मरण करना पड़ता है। सब कर्म प्रकृति के गुणों के अनुसार ही होते हैं, उसे पुरुष दृष्टाभाव से देखता रहे। इसमें भी ज्ञानयोग सा वही दृष्टत्व ही आया है। देखोगे कि, वह विश्वभाव की शक्ति, सारी चिन्ताओं, अनुभवों और सृष्टि का सम्पादन करके चल रही है। उस समय एक शान्त, समदर्शी और साक्षी अवस्था प्राप्त होती है।

ऊपर उठना चाहिए, इसके माने यह नहीं हैं कि कोई ठीक स्थान है, उसी जगह यह सब प्रपंच छोड़कर उठ जाना होगा। इसका मतलब यह है कि हमारा वर्तमान स्वभाव बड़े ही बुरे स्वभाव का हो गया है, इसलिये उन बुराइयों को दूर करने की आवश्यकता है। वास्तव में सभी वस्तुओं को ब्रह्मत्व और सत्यत्व को लेकर ही हम वर्तमान स्वभाव को छोड़ कर उठते हैं—उस समय इसके सब अंगों का असली स्वरूप प्राप्त होता है। तात्पर्य यह है कि आगे इस शारीरिक ज्ञान, इस जड़ बुद्धि

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

और देह चैतन्य को छोड़ कर उठे बिना सूक्ष्म, सत्य अथवा अध्यात्म-सत्य का कुछ भी अनुभव नहीं किया जा सकता।

पूर्ण विश्वास एवं भक्ति-द्वारा मनुष्य बहुत बड़े-बड़े काम कर सकता है। एक व्यक्ति को पीछे रख कर उस पर निर्भर रह कर मनुष्य उस स्थल पर किसी प्रकार की भावना न करके काम करता जा रहा है, क्योंकि उस व्यक्ति पर कर्म की असाधारण भक्ति है—किसी दिन भी वह यह नहीं सोचता कि, जो कर्म किया जा रहा है, इसका परिणाम क्या होगा एवं इसकी सुदूर-प्रसारित सार्थकता क्या होगी और क्या नहीं। निर्भरता, बहुत ही श्रेष्ठ उपाय है, इसमें कोई सन्देह नहीं, किन्तु इससे मनुष्य कितना आगे बढ़ सकता है, यह विचारने की बात है और फिर निर्भरता से कर्म ही कितने दिनों तक किया जा सकता है? ऐसी दशा में इस प्रकार की भी व्यवस्था आ सकती है, जबकि वह पछाड़ खाकर गिर जायेगा। इसका कारण यह है कि, इस प्रकार के क्षेत्र में अधिकांश मनुष्यों की भक्ति तामसिक होती है। इस तामसिक भक्ति को लेकर मनुष्य बहुत दिनों तक अपने कर्म पर दृढ़ नहीं रह सकता, जिस दिन उसकी भक्ति का प्राबल्य कम हो जायेगा, उस दिन वह काम पूर्ण-उत्साह और सहायता से करता हुआ आगे बढ़ता रहेगा, उस काम में बिल्कुल शिथिलता आ जायेगी और धीरे-धीरे वह काम एकदम नष्ट-भ्रष्ट हो जायेगा।

कार्य करना भी एक साधना है। अपने जीवन में हम जो कुछ कर रहे हैं, वह सब भगवान के लिये ही कर रहे हैं, बस ऐसा ज्ञान रख कर या ऐसा समझकर ही कर्म करना चाहिये। कुछ-न-कुछ करना ही चाहिये, ऐसा समझकर जो कुछ सामने आवे उसी में लग जाय, यह कोई उचित बात नहीं है। हमें कर्म करना चाहिये, किन्तु अपनी अन्तरात्मा की पूर्ण आज्ञा से, योंही नहीं। भीतर से हमें जिस काम के करने के लिये जैसी प्रेरणा हो, उसी के अनुसार कर्म करने के लिये हमें तत्पर होना चाहिए। अब यहां पर यह समस्या उपस्थित होती है कि, सामने जो बहुत से काम उपस्थित हैं, उनमें कौनसा काम हमें करना चाहिए, कौनसा कर्म हमारा निर्दिष्ट कर्म है, इसी को निश्चय करने की आवश्यकता है।

हर जीवात्मा के लिए सुनिश्चित एक साधना-समर

जीवात्मा ईश्वर का अंश है। समुद्र की लहरों और सूर्य की किरणों से उसकी तुलना की गई है। इस भिन्नता को घटाकाश और मठाकाश के रूप में भी समझाया जाता है। घटाकाश अर्थात् घड़े के भीतर की सीमित पोल और मठाकाश अर्थात् विशाल विश्व में फैली हुई पोल। घड़े के भीतर की पोल वस्तुतः ब्रह्मांडव्यापी पोल का ही एक अंश है। घड़े की परिधि से आवृत्त हो जाने के कारण उसकी स्वतंत्र सत्ता दिखाई पड़ती है, पर तात्विक दृष्टि से वह कुछ है नहीं। घड़े के आवरण ने ही यह पृथक् रूप से देखने और सोचने का झंझट खड़ा कर दिया है। शांत समुद्र में लहरें नहीं उठतीं, पर विक्षुब्धता की स्थिति में वे अलग-सी लगती हैं और उछलती दिखाई पड़ती हैं। सूर्य के तेजस् की विस्तृत परिधि ही उसके किरण विस्तार की सीमा है। सूर्य सत्ता का जहाँ तक जिस स्तर का विस्तार है वहाँ तक उसी स्तर की धूप का अस्तित्व दृष्टिगोचर होता है। इस प्रभा विस्तार की जो विभिन्न प्रकार की हलचलें हैं उन्हीं को किरणें कहते हैं। किरणों का सात रंगों में अथवा अल्ट्रावायलेट, अल्फावायलेट एक्सलैसर आदि में अलग से जाना-माना जा सकता है, पर यह विभाजन सूर्य से भिन्न किसी पृथक् सत्ता का भान नहीं करता। ऐसे ही उदाहरणों से जीवन और ईश्वर की एकता-भिन्नता समझी जा सकती है।

जीव की मूल सत्ता ईश्वरीय है। चेतना का समुद्र इस विश्व में एक ही है। उससे भिन्न या प्रतिपक्षी दूसरी कोई सत्ता देवी-देवताओं के या जीवों के रूप में कहीं नहीं है। तत्व वेत्ताओं ने जाना है कि, यहाँ केवल एक है दूसरा नहीं है। "जीव की पृथकता भी प्रकृति के सम्बन्ध से है। प्रकृति के तीन स्तर सत्-रज-तम् कहलाते हैं। इन्हीं तीनों की परतें जीव के ऊपर चढ़ जाती हैं, और वे तीन शरीर कहलाती हैं।

स्थूल शरीर, अर्थात् हाड़मांस की जन्मने मरने वाली काया। सूक्ष्म शरीर, अर्थात् बुद्धि, संस्थान, सुख दुख प्रिय अप्रिय अपने विराने का अंतर करने वाला मस्तिष्कीय विचार विस्तार। कारण, शरीर, अर्थात् मान्यताओं एवं भावनाओं का समुच्चय, अंतरात्मा जिसे अंतः करण भी कहा गया है। इन तीनों शरीरों की यों प्याज के छिलके, केले के तने या एक के ऊपर एक पहने हुए वस्त्रों से उपमा दी जाती है, पर यह उपमा बहुत ही अधूरी है। कारण यह है कि आवरण सभी एक दूसरे से पृथक् हैं जबकि तीनों शरीर एक दूसरे के साथ इस प्रकार घुले हुए हैं जैसे दूध में घी और सरसों में तेल।

जीव को इन आवरणों में लिपटे रहने से कई तरह, के कई स्तर के सुख मिलते हैं, इसलिए वह उन्हें छोड़ना नहीं चाहता फलतः वृद्ध अवस्था में बना रहता हैं। स्थूल शरीर में कई प्रकार के वासनात्मक सुख हैं। सूक्ष्म शरीर में कल्पनालोक के मनोरम स्वप्न विनोद, मनोरंजन सफलता, पद सम्मान, वैभव आदि के बुद्धि विलास के अनेकों साधन मौजूद हैं। कारण-शरीर में अहंता की गहरी परतें जमी हैं आकांक्षाओं की उमंग इसी केन्द्र से उठती है। मान्यताओं की आस्था और संवेदनाओं की पुलकन खट्टी-मीठी गुदगुदी तो है पर वह कुल मिलाकर है मधुर। जीवन में प्रिय-अप्रिय प्रसंग आते-जाते रहते हैं, जिसके कारण, इन तीनों शरीर आपरणों को छोड़ने का मन नहीं करता फलतः जीवात्मा का सघन अस्तित्व बन जाता है, जिसे स्वतंत्र भी कहा जा सकता है।

बंधन मुक्ति के तमाम मतभेदों के रहते हुए भी एक समन्वित तथ्य और सर्वमान्य निष्कर्ष पर पहुँचा जा सकता है, वह यह कि जीवात्मा को प्रिय अप्रिय की विक्षुब्ध अव्यवस्था विवशता से उबरना चाहिए और ऐसी स्थिति में, रहना चाहिए जहाँ आदतों की, संस्कारों की पराधीनता उसे अवांछनीय चिंतन एवं अवांछनीय संवेदनाओं का कष्ट देने में समर्थ न हो सकें। समस्त विपन्नताओं की जड़ यह पराधीनता ही है। जीवन का आनन्द उठाने से इसी विवशता के कारण वंचित रहना पड़ता है। यही बंधन मनुष्य को उच्चस्तर तक पहुँच कर देवोपम आनन्द, उल्लास उपलब्ध करने के मार्ग में एकमात्र व्यवधान बने रहते हैं। इस स्थिति को बदल सकना यही मनुष्य का परम पुरुषार्थ है—इसी को 'मुक्ति' कहा गया है। मुक्ति प्राप्त करना ही जीवन का लक्ष्य माना गया है।

मुक्ति का अर्थ है—स्वाधीनता। पराधीनता के बंधनों को काट देना ही स्वाधीनता है। यह पराधीनतामात्र चिर-संचित संस्कारों की है जो स्वभाव बनकर हमारे चिंतन एवं कर्म को

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अपने ढर्रे पर चलाती है—अपनी लाठी से हाँकती हैं। शरीर को यह पराधीनता, वासना के बन्धन में बाँधकर बेतरह घसीटती है, उसका स्वास्थ्य चौपट करती है, दीर्घजीवन से वंचित करती है और सत्कर्म निरत रहकर समृद्धियाँ, सफलताएँ प्राप्त करने के स्थान पर ऐसा कुछ करते रहने में लगाती है जिनके कारण रुग्णता, निंदा, असफलता दरिद्रता, कुरूपता जैसी विपन्नताएँ ही आये दिन सामने खड़ी रहती हैं। विवेक कई बार सोचता है कि अपनी गतिविधियों में अमुक प्रकार का परिवर्तन करना चाहिए। किन्तु औचित्य समझते हुए भी वैसा कुछ बन नहीं पड़ता। आदतें इतनी जबरदस्त सिद्ध होती हैं कि उपयोगी सुधार के मनसूबे एक कोने में रखे रह जाते हैं और आदतें अपनी बेढंगी राह पर शरीर को घसीटती चली जाती हैं और वे काम कराती हैं जिनके लिये पीछे पश्चाताप ही करना शेष रह जाता है। यदि आदतें शरीर का संचालन न करें विवेक के हाथ से नियंत्रण, संचालन किया जाने लगे तो स्वास्थ्य, सौन्दर्य दीर्घजीवन जैसी उपलब्धियाँ तो अति साधारण हैं। समर्थ काया से अभीष्ट प्रयोजनों में आश्चर्यजनक सफलताएँ देने वाले पराक्रम पुरुषार्थ का अभिनव स्रोत खुल सकता है और उसके फलस्वरूप जो जीवन लाभ मिल सकता है, उसकी कल्पना मात्र से आँखें चमकने लगती हैं। दुर्बल शरीर इन्द्रिय सुख की लिप्साभर में लगा रहता है, साधन उपस्थित होने पर भी वह उनका समुचित आनन्द नहीं ले सकता। भोजन का आनन्द कड़ाके की भूख लगने वाले को ही मिल सकता है। आलस्य, प्रमाद को भगाकर-व्यवस्थित दिनचर्या बनाना और उस पर निष्ठापूर्वक आरूढ़ रहना सफलताओं का प्रधान आधार माना गया है शरीर भौतिक जगत से सीधा सम्बंध उसी का है। समर्थ शरीर ही भौतिक उपलब्धियों का केन्द्र होता है। शरीर पर विवेक का नियन्त्रण जिस मात्रा में होता जाता है उसी अनुपात से भौतिक सफलताओं का पथ प्रशस्त होता चला जाता है। यह स्थिति शरीर क्षेत्र की मुक्ति कही जा सकती है। इसका प्रतिफल है भौतिक सुख।

सूक्ष्म शरीर के क्षेत्र में हमारा चिंतन उस ढर्रे में ढला हुआ होता है, जिसकी प्रतिक्रिया ही हमें अर्धविक्षिप्त स्तर का बनाये रहती है। कितने प्रकार की सनकें, कितने वहम, कितने भ्रम मस्तिष्क में लदे होते हैं यदि उन्हें ठीक तरह समझा जाय तो प्रतीत होगा कि विवेकवान व्यक्ति की तुलना में चालू आदमी निस्संदेह अधपगला होता है। लोकप्रभाव का संशोधन करने अवतारी आत्माएँ उतरती हैं उनके चले जाने के बाद फिर विकृतियाँ भरने लगती हैं और सामाजिक प्रचलनों में गन्दे नाले जैसी गन्दगी भरती चली जाती है। जन मान्यताएँ-लोगों के प्रचलित ढर्रे ही अपने को सुहावने लगते हैं। कुरीतियाँ, मूढ़ मान्यताएँ, अन्धविश्वासों के सहारे न जाने कितनी उपहासास्पद भ्रान्तियाँ मस्तिष्क में जड़ जमाकर बैठ जाती हैं। लोगों में प्रचलित भ्रष्टाचार अपने को भी ललचा लेता है। विकृत चिंतन के कारण मनुष्य न सोचने योग्य सोचता है और बाल-बुद्धि की योजनाएँ बनाकर उनमें बहुमूल्य विचार शक्ति को नष्ट करता रहता है। चिंता, निराशा, खीज, आवेश, उत्तेजना, निष्ठुरता, घबराहट, कायरता, कृपणता, ईर्षा, द्वेष आत्महीनता, उदण्डता जैसे अनेकों मानसिक रोग मस्तिष्क को घेरे रहते हैं और सौ रोगों से ग्रसित शरीर की जो दुर्गति होती है वैसा ही वे मनोविकार विचार संस्थान को, सूक्ष्म शरीर को बनाए रहते है। यह मनोगत कुसंस्कारों की, चिंतन विकृतियों की पराधीनता है जिसके कारण हर दृष्टि से अद्भुत विचारणा सर्वनाश के गर्त में गिरती और नष्ट होती रहती है।

परिष्कृत सूक्ष्म शरीर चिंतन की उत्कृष्टता के कारण स्वयं हर घड़ी सदा सन्तुष्ट, उल्लसित एवं प्रफुल्लित बना रहता है। अवांछनीय मानसिक भ्रम से छुटकारा पाने के कारण उसकी सूझबूझ, दूरदर्शी और तत्वदर्शी बन जाती है। उसका लाभ न केवल सम्पर्क क्षेत्र को वरन् समस्त संसार को मिलता है।

कारण शरीर में चेतना की अवस्था यदि सुधर जाए तो मनुष्य महात्मा, देवात्मा और परमात्मा बन सकता है यही वह ध्रुव केन्द्र है जहाँ आत्मा और परमात्मा का पारस्परिक पतला-सा सम्बंध सूत्र जुड़ा हुआ है, उसे परिष्कृत कर दिया जाए तो ब्रह्म चेतना का, जीव चेतना का विशिष्ट सम्बंध स्थापित हो सकता है और ऐसे आदान-प्रदान का पथ प्रशस्त हो सकता है, जिस के आधार पर नर में नारायण का अवतरण प्रत्यक्ष देखा जा सके। ऐसी स्थिति में पहुँची हुई आत्माओं की संज्ञा देवताओं से दी जाती है।

अध्यात्म विज्ञान की पृष्ठभूमि को संक्षेप में इतना कुछ समझ लेने के उपरान्त तत्वज्ञान के एक जिज्ञासु को इस निष्कर्ष पर पहुँचना पड़ता है कि मनुष्य को मिली हुई तीन शरीरों के रूप में तीन विभूति या प्राणी जगत की सबसे बड़ी ईश्वरप्रदत्त उपलब्धियाँ हैं।

इन तीन क्षेत्रों में जो विकृतियाँ घुस पड़ी हैं उन्हीं ने जीव को निकृष्ट स्तर का दीन-दयनीय बनाकर रख दिया है। प्रकृति का, भौतिकता का अनावश्यक और अवांछनीय भार लद पड़ने से पिता और पुत्र का वियोग उपस्थित हो गया है। इसी अशक्ति, अविद्या और अभाव की परिणति स्वरूप जीव की दुर्गति हुई है। प्रकृतिगत आकर्षणों की ओर अस्वाभाविक और असाधारण रूप से दौड़ पड़ने से ही कुसंस्कारों की परतें जमी हैं और उन्होंने पतनकारी दुर्दशा उत्पन्न की है। उस अवांछनीयता से जूझना ही वह साधना समर है, जिसमें प्रत्येक हनुमान और अर्जुन को साधक का अपना पराक्रम दिखाना पड़ता है।

आत्मा को परमात्मा से मिला देने के लिए कुसंस्कारों से पीछा छुड़ाना पड़ता है और ईश्वरीय प्रेरणा का अनुगमन करते हुए अपनी अन्तरंग स्थिति ऐसी बनानी पड़ती है जो ब्राह्मी कही जा सके।

दूध और पानी एक रस होने से घुल सकते हैं। लोहा और पानी का घुल सकना कठिन है। हम अपने भौतिकतावादी स्तर से ऊँचे उठें और ईश्वरीय चेतना के अनुरूप अपनी क्रिया, विचारणा एवं आस्था को ढालें तो ईश्वर प्राप्ति का जीवन लक्ष्य पूरा हो सकता है वियोग का अंत योग में होना चाहिए यही ईश्वर की इच्छा है। बच्चा दिन भर खेलकूद और पढ़ने-लिखने में संलग्न रहे, पर रात को घट लौट आये और एक ही बिस्तर पर सो जाये, ऐसी माता की इच्छा रहती है। परमात्मा भी अपने पुत्र आत्मा से ऐसी ही अपेक्षा करता है। उसकी इच्छा पूर्ण करने के लिए, अपनी लक्ष्य पूरा करने के लिए हमें जो चेतनात्मक पुरुषार्थ करना पड़ता है, उसी का नाम योग है। योग साधना हमारे लिए सर्वोपरि श्रेय साधन है उसमें अपनी प्रवृत्तियों को तत्परतापूर्वक लगाया जा सके उसी में कल्याण है।

● ●

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org

क्या सिद्धियाँ आवश्यक हैं ?

चमत्कारी सिद्धियाँ न तो आवश्यक हैं, न लाभप्रद

जिन सिद्धियों के लिए लोग लालायित रहते हैं और अपनी व्यक्तिगत इच्छा और अभिलाषा के लिए उन्हें प्राप्त करने का प्रयत्न करते हैं। उनके सम्बन्ध में आइए सार्वजनिक हित की दृष्टि से बड़े दृष्टिकोण से विचार करें कि यदि सिद्धियाँ सर्वसुलभ हो जाएँ तो संसार में सुविधा की वृद्धि होगी या असुविधा की।

मान लीजिए कि अपने जीवन की अवधि लोगों को मालूम हो जाये, यह पता चल जाये की हमारी मृत्यु, कब ? किस दिन ? कहाँ ? किस प्रकार होगी ? तो उस मनुष्य का जीवन बड़ा विचित्र हो जायेगा। अमुक दिन मरूँगा, इससे पहले नहीं मर सकता यह निश्चय हो जाने पर वह बड़ी से बड़ी दुर्घटना करने के लिए, किसी से भी लड़ने मारने के लिए तैयार हो जायेगा। मृत्यु के डर से लोग आगा-पीछा सोचते हैं और संघर्ष में पड़ने से बचते रहते हैं। जब मरने से निधड़क हो गया हो उसे बड़े से बड़े उत्पात करने में कुछ भय न होगा। दूसरी बात यह भी है कि जिसे मालूम है कि मेरी मृत्यु के समय में केवल इतना समय रहा है सांसारिक काम-धन्धों से उदास होकर बैठ जायेगा। मृत्यु के शोक में बहुत पहले से डूब जाएगा। किन्हीं बड़े कामों का आयोजन न करेगा। समाज में मित्रता और घनिष्ठता स्थापित न करेगा। अपने दीर्घ जीवन की आशा से लोग धन-वैभव एकत्रित करते हैं वह उसके मरने पर विधवा तथा बच्चों के काम आती है। जिसे मालूम है कि मुझे सिर्फ आठ महीने जीना है वह संपत्ति संचय न करेगा, जो होगी उसे भी खर्च कर देगा, ऐसी दशा में पीछे वालों को जो पैतृक धन से सहायता मिलती है वह न मिला करेगी। जो जल्दी मरने वाला होगा, उसका विवाह न होगा, बेचारा विवाह सुख से भी वंचित रह जायेगा। अधूरी उम्र के स्त्री पुरुषों को दूसरा साथी न मिलेगा, उन्हें अविवाहित जीवन बिताना पड़ेगा। इस प्रकार एक नहीं हजारों प्रकार की कठिनाइयाँ बढ़ जावेंगी। यदि लोग अपना मृत्यु समय निश्चित रूप से जान लिया करें तो संसार का स्थिर रहना, उसकी कार्य प्रणाली चलना बड़ा कठिन हो जायेगा। यदि वह ऐसा न करता तो बेचारे वैद्य-डॉक्टरों का पेशा ही मिट जाता। जिसकी मृत्यु, जिस स्थान पर, जिस प्रकार होने को होती, लोग उसका बचाव करने के लिए दूर भागते और परमात्मा को अपना विधान कायम रखने के लिए भारी रस्साकशी करने पड़ती। इस कठिनाई को ध्यान में रखकर परमात्मा ने मनुष्यों को मृत्यु काल का पहले से ही ज्ञान होना असंभव कर दिया है।

मान लीजिए कि व्यापार की तेजी मन्दी का लोगों को पता चल जाये, तो व्यापार का कारोबार ही ठप्प हो जाये। जब लोगों को यह मालूम हो जाये कि अब तेजी आने वाली है तो पहले से ही लोग चीजों को रोक लेंगे और लोगों को वह वस्तु मिलना कठिन हो जायेगी। इसी प्रकार यह मालूम हो जाये कि यह चीज मन्दी होने वाली है तो उसे बेचना तो सब चाहेंगे, लेगा कोई नहीं। जो वस्तु मन्दी होने वाली है, उसका उत्पादन और आयात ही कोई न करेगा, फलस्वरूप उस वस्तु का मिलना दुर्लभ हो जायेगा। सब लोगों को तेजी-मन्दी का पता चलने लगे तब तो व्यापार नाम की कोई वस्तु ही न रह जायेगी और तेजी मन्दी केवल शब्द कोषों में ही लिखी मिलेगी। इतना न भी हो केवल किन्हीं एक दो मनुष्यों को भी तेजी-मन्दी का ठीक ज्ञान हो तो वे एक दिन में अरबों-खरबों रुपया एकत्रित कर सकते हैं। जिसे तेजी मन्दी का ठीक ज्ञान होगा वह संसार की समस्त संपदा पर चंद दिनों के अन्दर कब्जा कर लेगा। ऐसी स्थिति उत्पन्न होने से संसार का साधारण काम बिल्कुल उलट-पलट हो जायेगा। परमात्मा अपनी दुनिया को इस प्रकार उलट-पलट नहीं करना चाहता, इसलिए उसमें तेजी-मन्दी का सच्चा ज्ञान किसी ज्योतिषी, सिद्ध या सटोरिये को नहीं दिया है।

मान लीजिए कि लोगों को अपने भाग्य की बात मालूम हो जाये तो उन्हें कोई प्रयत्न, परिश्रम या उद्यम करने में रुचि न रहे। जितना धन जब जिस दिन मिलना होगा उतना मिल ही जायेगा, तब उद्योग करने की परेशानी सर पर लेने से क्या फायदा ?

जो रोग, शोक, लाभ, हानि, यश, अपयश, उन्नति-अवनति, पाप-पुण्य, सुख होने वाला होगा हो ही जायेगा। तकदीर की लिखी होकर रहेगी फिर किसी प्रकार के परिश्रम का झंझट करने से क्या लाभ ? इस प्रकार का निर्णय हर आदमी कर लिया करेगा, और क्रियाशीलता, कर्मपरायणता को छोड़ बैठेगा। उद्योग में किसी को रुचि न रहेगी। निठल्लेपन, अकर्मण्यता, निराशा और उदासीनता का चारों ओर साम्राज्य छा जायेगा, कोई आदमी किसी बात के लिए अपने को जिम्मेदार न समझेगा। अदालत, पुलिस, राजदण्ड आदि की भी आवश्यकता न समझी जायेगी। जिसका जिस प्रकार जो होना है, जैसा भाग्य है, उसे कोई मिटा नहीं सकता। विधुना के अंक मिट नहीं सकते फिर पुलिस, अदालत, एवं राजदण्ड की क्या आवश्यकता ? ऐसा निराशावाद एवं कर्मत्याग संसार चक्र को चलने से रोक देगा। दुनिया बड़ी नीरस और कुरूप हो जायेगी। यह स्थिति परमात्मा को स्वीकार नहीं। यही कारण है कि उसने भाग्य को जानने की किसी को भी सुविधा नहीं दी है। जो ज्योतिषी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

दूसरों का भाग्य बताते हैं, वे अपनी जीविका चलाने के लिए ग्राहकों को बुलाने का प्रयत्न करते हैं और उनसे दक्षिणा प्राप्त करने का आयोजन करते हैं। यदि उन्हें यह विश्वास होता कि इसमें भाग्य कथन की वास्तविक योग्यता है तो सबसे पहले अपना भाग्य देखते और जितनी आमदनी होना भाग्य में लिखा मिलता उसे अधिक समझ कर भाग्य बताने का झंझट और धन प्राप्त करने का प्रयत्न न करते। उन ज्योतिषियों की अन्तरात्मा जानती है कि हमारा 'भाग्य कथन' निश्चित नहीं है, इसलिए वे उस पर निर्भर न रह कर प्रयत्न का आश्रय लेते हैं। भाग्य जानने की सिद्धि से मनुष्य जाति को वंचित रख कर परमात्मा ने संसार चक्र के रुक जाने के खतरे से पहले ही खबरदारी करली है।

यदि मनुष्य दूसरों के मन की, पेट की बात जान लिया करते, तो दुनिया में कोई बात गुप्त न रह पाती। चोरों को यह मालूम पड़ जाता कि अमुक का धन कहाँ रखा है, कब वह घर से बाहर जाएगा। बस, मौका पाते ही आसानी से धन चुरा लिया करते। युद्ध की योजनाएँ, हथियार, सेना की संख्या आदि के भेद दूसरों के मन में से जान कर लड़ाई करने वाला दूसरा पक्ष तैयार हो जाता। व्यापारिक भेद भी प्रकट हो जाते और लाभ उठाने की गुंजायश न रहती। यहाँ तक कि किसी को किसी से बात-चीत करने की भी जरूरत न पड़ती। झट यह मालूम कर लिया जाता कि सामने वाला क्या चाहता है। इस चाहना का जो उत्तर मिलना होता उसे आगन्तुक भी सामने वाले का दिल टटोल कर जान लेता। झूठ बोलने, धोखा देने आदि के लिए कोई गुंजायश भी न रहती। दूसरों का मन परखने की छोटी-सी बात यदि सर्वसुलभ हो जाती तो इस छोटी चीज के कारण ही संसार की स्थिति कुछ से कुछ हो जाती। फिर यह लोक मर्त्यलोक न रहकर यक्षलोक हो जाता।

यदि सोना बनाने की विद्या लोग जान जाते तो सोने का स्थान लोहा या पीतल जैसा हो जाता। प्रचुर परिमाण में बनने लगने पर वह पीतल की तरह बिकता। तब उसके जेवर पहनना लोग अपमान, जनक समझते। सोना इसीलिए सोना है कि वह थोड़ी मात्रा में है, जिस दिन वह रसायन विद्या से या पारस से बनने लगेगा उसी दिन यह सोना न रहेगा। आसानी से बन जाने वाले चाँदी, राँगा और जस्ता से अधिक महत्त्व की न रहेगी। फिर वह पारस पत्थर भी कौड़ी कीमत का रह जायेगा। धातु बनाने के काम आने वाले अनेकों रासायनिक वस्तुओं की श्रेणी में एक कील पारस की गिनी जाने लगेगी। प्राचीन काल में विमान में बैठने वाले देवता समझे जाते थे पर अब तो नन्नू जुलाहा भी दस रुपये खर्च करके विमान की सैर कर सकता है। अब विमान का महत्त्व बढ़िया मोटर जितना रह गया है। कुछ समय बाद आज का जितना भी महत्त्व न रहेगा। इसी प्रकार पारस भी यदि मनुष्य जाति के लिए सुलभ हो गया तो उसके महत्त्व की भी ऐसी ही दुर्दशा होगी।

अमृत यदि मिलने लगे और उसे पीकर सब लोग अमर हो जाएँ तो संसार में कुछ ही समय बाद भूमि का बिल्कुल अभाव हो जायेगा। एक मनुष्य यदि तीन वर्ष में एक बच्चा पैदा करे तो सौवर्ष में अट्ठानवे बच्चे पैदा करता चला जायेगा। फिर एक-एक बच्चे के उसी क्रम से अनेकों बच्चे होते जायेंगे। पुरखे मरेंगे नहीं लड़के पैदा होते जायेंगे। यह बढ़ोत्तरी आखिर इतनी हो जायेगी कि भूमि से खाद्य पदार्थ प्राप्त करना तो दूर, खड़े रहने को भी जगह नहीं बचेगी। भारी मेलों की भीड़ के समान आबादी ठसाठस खड़ी होगी। खाद्य पदार्थों का कोई साधन न होगा। भूख प्यास से लोग छाती पीटेंगे। मर कर इन कष्टों से छुटकारा प्राप्त करने का द्वार बन्द हो जायेगा। असह्य पीड़ा देने वाले रोगों से छुटकारा दिलाने वाली मृत्यु तो रहेगी नहीं, वे यातनायें घुल-घुल और चीख-चीख कर सहनी होंगी। अमृत को पाने के लिये जो आज लालायित हैं वे ही उस समय इसे जीवन का सबसे बड़ा हानिकारक पदार्थ समझेंगे। इससे दूर रहने का प्रयत्न करेंगे।

अदृश्य होने की विद्या सीख जाने पर लोग चाहे जहाँ छिप कर बैठे रहा करेंगे, दूसरों की गुप्त बातों को देख लिया करेंगे। काम सेवन की एकान्त लज्जा की रक्षा करना भी कठिन हो जायेगा। चोर, डाकू व्यभिचारी, हत्यारे व्यक्ति चाहे जहाँ छिप कर बैठ जाया करेंगे और फिर मनमानी करतूतें किया करेंगे। पकड़े जाने और सजा भुगतने का भी उन्हें डर न रहेगा।

यदि नेत्रों और कानों की शक्ति बहुत बढ़ जाए शब्द तथा प्रकाश की किरणों को अधिक पकड़ने लगे तो देखने और सुनने की क्रिया में भारी विक्षेप उत्पन्न हो जायेगा। मनुष्य के कानों के पर्दे इस प्रकार बने हुये हैं कि एक नियत संख्या के शब्द कम्पन ही वह ग्रहण कर सकता है। यदि उसकी शक्ति अधिक तेज हो जाये और आकाश में बहने वाली शब्द तरंगों को अत्यधिक मात्रा में ग्रहण करने लगे तो शब्दों की भारी भीड़ कान के पर्दों पर जमा हो जायेगी और जैसे मेले के ठेलों में कचर-पचर के अनेक सम्मिश्रित शब्द कानों में टकराते हैं कि कोई भी बात ठीक प्रकार सुन-समझ नहीं पाते। किसी साथी से बातें करनी होती हैं तो उसके कान के पास मुँह ले जाकर कहते हैं तब वह उस कचर-पचर में से उस बात को सुन पाता है। यदि कान अधिक तीव्र हो जाये तो वैज्ञानिक कहते हैं कि ऐसे ही कचर-पचर कानों में हर घड़ी सुनाई पड़ा करेगी, दूर-दूर के शब्द आकर कान के पर्दों से टकराया करेंगे, उस भीड़ में साधारण बातें भी सुनना कठिन पड़ जायेगा। यही बात नेत्र, नासिका आदि इन्द्रियों की शक्ति बढ़ने पर होगी। उस दशा में सुविधा न होकर अनेक गुनी कठिनाई बढ़ेगी। इसी से परमात्मा ने नेत्र, कान आदि इन्द्रियों को उतनी ही शक्ति दी है जितनी उपयोगी एवं आवश्यक है।

जो वस्तुएँ मनुष्य के लिये आवश्यक हैं वे सुलभतापूर्वक उपलब्ध हैं। हवा, भोजन, वस्त्र, मकान आदि जिन वस्तुओं की अधिक आवश्यकता है आसानी से मिल जाती हैं। हवा सबसे अधिक आवश्यक है, उसके बिना क्षण भर भी जीवन संभव नहीं, इसीलिये वह अत्यन्त ही सुविधापूर्वक पर्याप्त मात्रा में मिल जाती है। इसके बाद क्रमशः पानी का, अन्न का, वस्त्र का, मकान का नम्बर है, इसी क्रम से यह वस्तुयें कष्ट साध्य होती जाती हैं। इसी क्रम से जो वस्तु जितनी ही अनावश्यक एवं अनुपयोगी हैं वे उतनी ही कष्ट साध्य है। परमात्मा ने जिन बातों को मनुष्य के लिये आवश्यक समझा है, उन्हें सुगम रखा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

है। हानिकर वस्तुओं को दुर्लभ कर दिया है। जो चमत्कारिक सिद्धियाँ निष्प्रयोजन एवं खतरनाक हैं, वे गोप्य हैं, दुर्लभ हैं, और सर्वसाधारण के लिये उनकी प्राप्ति असंभव जैसी है।

जिन योगीजनों की आत्मा, योग साधन द्वार, आत्मसंयम द्वारा बहुत ऊँची बढ़ गई हैं, जो जीवन मुक्त पुरुष परमात्मा समीपता में है, निस्संदेह उनमें विशेष तेज होता है, उनमें ईश्वरीय शक्ति के अंश आ जाते हैं, साधारण मनुष्यों की अपेक्षा वे विशेष आध्यात्मिक अनुभूतियाँ रखते हैं। परन्तु जिस आध्यात्मिक भूमिका में पहुँचने पर जीव को विशेष स्थिति प्राप्त होती है उस अवस्था में पहुँचने पर उसका आत्मिक दृष्टिकोण बहुत ऊँचा उठ जाता है, तब वह परमहंस, स्थिति प्राप्त, गुणातीत एवं जीवन मुक्त की दशा में होता है। उस समय वह अपने आध्यात्मिक उत्तरदायित्व को भली प्रकार समझने लगता है और सांसारिक संपदाओं के लोभियों द्वारा उसे उल्लू नहीं बनाया जा सकता। समस्त विश्व कर्म की धुरी पर घूम रहा है, हर व्यक्ति अपने प्रयत्नों और कर्मों के अनुसार भले-बुरे परिणाम प्राप्त करता है। सच्चा योगी इस ईश्वरीय क्रिया पद्धति में अकारण टांग नहीं अड़ाता। जिस किसी की सहायता करनी होती है, उसे कर्तव्य कर्म पर चलकर अपने प्रयत्न से अभीष्ट मनोरथ प्राप्त करने की सलाह देता है। अपनी निजी शक्ति से ईश्वरीय व्यवस्था क्रम में टांग अड़ाकर किसी को लाभ-हानि नहीं पहुँचाता। कोई चमत्कार या अनोखे करतब नहीं दिखाता।

योगशास्त्रों में योगीजनों के लिये सिद्धियों को प्रकट करना और उनका प्रयोग या प्रदर्शन करना सर्वथा निषिद्ध कहा है। क्योंकि इससे परमात्मा के व्यवस्थाक्रम में गड़बड़ी उत्पन्न होती है। अस्वाभाविक ढंग से प्राप्त की हुई वस्तुयें प्राप्त करने वाले के लिये तथा अन्य लोगों के लिये अन्ततः हानिकारक सिद्ध होती हैं। धन को परिश्रम, उत्पादन या व्यापार के साधारण, स्वाभाविक क्रम से कमाया जाना चाहिये। परिश्रम का ही फल फलता-फूलता है। किसी को जमीन में गढ़ी गई विपुल संपदा मिल जाये तो वह उसका सदुपयोग न कर सकेगा। साधारण मनुष्यों को यदि कोई विचित्र लाभ किसी ऋद्धि सिद्धि द्वारा मिल भी जाये तो वे अपनी आध्यात्मिक अपरिपक्वता के कारण उनका दुरुपयोग करने लगते हैं फलस्वरूप वह लाभ उनके लिये तथा सबके लिये हानि से बुरा पड़ता है।

चमत्कारी सिद्धियाँ केवल उन लोगों को प्राप्त होती हैं जो उनका उपयोग संसार चक्र में गड़बड़ी फैलाने में प्रयोग नहीं करते। ऐसे महात्मा किसी लोभी की खुशामद के भुलावे में पड़कर उसकी इच्छानुसार चलने के तैयार नहीं होते। वे भूलकर भी अलौलिक शक्तियों का किसी पर प्रदर्शन नहीं करते। हाँ मानवोचित सेवा धर्म से प्रेरित होकर स्वयं कर्तव्य धर्म में प्रवृत्त रहते हैं और दूसरों को भी कर्तव्य धर्म में लगे रहने का उपदेश देते हैं। पर किसी को क्षण भर में करोड़पति बना देने के लिये तेजी, मंदी, सट्टा, लाटरी, भाग्य, भविष्य बताने का उनका कार्यक्रम नहीं रहता। अपनी आत्मशक्ति किसी के बुरे कर्मफल को जादू की तरह हटा नहीं देते, वरन् भविष्य में वैसा कर्मफल फिर न मिले, इस प्रकार का ज्ञान का सदुपदेश करते हैं। स्वं प्रयत्न से कर्म प्रक्रिया द्वारा वैभव एवं सम्पत्ति प्राप्त करने के लिये ही जनता का पथ प्रदर्शन करते हैं। जो योगी सिद्धियों का सदुपयोग करने की आध्यात्मिक स्थिति प्राप्त नहीं कर सके हैं उन्हें तो सिद्धियाँ मिलती नहीं, जो उस स्थिति में पहुँच जाते हैं वे प्राप्त सिद्धियों का कर्म विधान नष्ट करने में उनकी तनिक भी रुचि नहीं होती। इस प्रकार सच्चे योगी चमत्कार दिखाते नहीं, और झूठे योगियों के पास चमत्कारी शक्ति होती नहीं। दोनों ही दशा में हमें किसी से कोई चमत्कार प्राप्त नहीं हो सकता।

चमत्कारी सिद्धियाँ पहले तो हानिकारक होने के कारण परमात्मा ने सर्व साधारण के लिये वैसे ही दुर्लभ कर दी हैं। साधारणतः वे किसी को प्राप्त नहीं हो सकतीं। दूसरे जिन योगियों को वे प्राप्त होती हैं वे कच्ची मनोभूमि वाले लोभी वृत्ति के मायाग्रस्त मनुष्यों पर किसी भी प्रकार प्रकट नहीं करते। जो व्यक्ति माया रहित होकर उन योगियों के पास पहुँचता है उसे ऐसी सिद्धियों की इच्छा नहीं होती। सभी दृष्टिकोणों से उन चमत्कारों की प्राप्ति हमारे लिये कठिन है। हमें उनकी मृगतृष्णा में न भटक कर कर्तव्य कर्म के सीधे-सीधे मार्ग पर चल कर सीधी सच्ची परम मंगलमयी स्वाभाविक सिद्धियाँ प्राप्त करने का प्रयत्न करना चाहिये।

बौद्ध साहित्य में एक बहुत ही सुन्दर कथा आती है। उस समय भगवान बुद्ध जीवित थे और जगह-जगह पर घूम कर लोगों को धर्म, नीति तथा सदाचार का उपदेश दे रहे थे। जिस राज्य में वे प्रव्रज्या कर रहे थे उसी राज्य के नरेश ने एक रत्न जटित स्वर्ण कमण्डल ऊँचे बाँस पर टाँग दिया और कहा जो कोई व्यक्ति इस कमण्डल को उतार लेगा उसे में सिद्ध योगी मान लूँगा और उसका अनुयायी बन जाऊँगा। कमण्डल बहुत ऊँचे बाँस पर टँगा था, किसी व्यक्ति का सीधे खड़े होकर उसे उतार पाना सम्भव नहीं था। भगवान बुद्ध का एक शिष्य जिसका नाम कश्यप था, कुछ ही दिनों पूर्व धर्म संघ में दीक्षित हुआ था। उसने अपने सिद्धि 'बल' से कमण्डल को उतार लिया। यह सूचना लेकर लोग बुद्ध के पास गये और यह सारा विवरण उन्हें कह सुनाया।

लोगों को आशा तो यह थी कि वह कश्यप की प्रशंसा करेंगे क्योंकि उसने एक राज परिवार को धर्म दीक्षित कर लिया था। परन्तु हुआ इसके विपरीत ही। बुद्ध ने यह विवरण सुना ही था कि उठे और उस विहार की ओर चल पड़े। उन्होंने कश्यप पर अपनी व्यथा उड़ेलते हुये कहा—मैं बार-बार तुम लोगों को इन चमत्कारों का प्रदर्शन करने तथा अभ्यास करने के लिये रोकता हूँ। यदि तुम्हें इन मोहन, उच्चाटन, वशीकरण आदि की सिद्धियों और प्रदर्शनों में ही आकर्षण है तो अद्यावधि तुम लोगों को धर्म की कोई जानकारी नहीं है। यदि तुम अपना कल्याण चाहते हो तो सदाचार का अभ्यास करो। क्योंकि चमत्कार ही यदि अध्यात्म की कसौटी बनने लगे तो फिर बाजीगरों की बन आवेगी और तपस्वी, ज्ञानवान तथा लोक-सेवियों की बात कोई नहीं सुनेगा।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

वस्तुतः अध्यात्म का चमत्कारों से कोई सम्बन्ध नहीं है। अधिकांश चमत्कार तो, जो जनसाधारण को प्रभावित करने के लिये किये जाते हैं, केवल हाथ की सफाई और बाजीगरी के अलावा कुछ नहीं होते। लेकिन इसका अर्थ यह भी नहीं है कि सिद्धियों, अतीन्द्रिय शक्तियों के पीछे भी यही कारण है। अध्यात्म मार्ग पर चलते हुये सिद्धियाँ और अतीन्द्रिय शक्तियाँ अनायास ही मिल जाती हैं। अध्यात्म मार्ग के लिये उन्हें अलग से कोई प्रयत्न नहीं करना पड़ता और न ही वह इनमें रमता है। पातंजलि मुनि ने यम नियमों के पालन से ही पूर्वाभास, दूरबोध, परोक्ष दर्शन, दिव्यस्पर्श, आकाशगमन, अणिमा, महिमा आदि सिद्धियों की प्राप्ति बतायी है और साथ ही साधकों को सतर्क भी किया है—'**ते समाधावुपसर्गा व्युत्थाने सिद्धयः**'

अर्थात् वे (सिद्धियाँ) समाधि में विघ्न हैं तथा व्युत्थान में सिद्धियाँ हैं। विघ्न इसलिये हैं कि इन सिद्धियों के कारण मिलने वाली प्रशंसा, उनसे उत्पन्न होने वाला अहंकार, साधक को श्रेय पथ से विचलित कर देता है। लेकिन कोई व्यक्ति यदि इन सिद्धियों को ही श्रेय की प्राप्ति समझता है तो पातंजलि मुनि ने उसे विक्षुप्त या भ्रमित मनः स्थिति वाला व्यक्ति कहा है।

आये दिनों सामान्य व्यक्तियों में भी इस प्रकार की विलक्षण क्षमतायें कुछ समय के लिये अथवा सदा के लिये जागृत हो जाने की घटनायें देखने-सुनने में आती हैं। इस तरह की ढेरों घटनायें अखण्ड ज्योति के पृष्ठों में छपती रहती हैं परन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि चेतना, अध्यात्म, आत्मा और परमात्मा को जानने मानने का भी यही प्रयोजन है। इन घटनाओं के माध्यम से यह तो सिद्ध होता है कि अध्यात्म एक सर्व समर्थ विद्यमान है, आत्मा विलक्षण विभूतियों का भण्डार है लेकिन उसका उपयोग इस तरह बाल-क्रीड़ाओं के लिये करना न आत्मिक प्रगति के लिये आवश्यक है और न समाज के लिये ही उनकी उपयोगिता है। इन साक्ष्यों से आत्मा की सामर्थ्य का एक अंश तो प्रमाणित किया जा सकता है; पर आत्मसत्ता की शक्ति सामर्थ्य इतने तक ही सीमित नहीं है।

जिन किन्हीं व्यक्तियों में यह सामर्थ्य विकसित होती है, वे न इसका ढिंढोरा पीटते हैं और न इनका प्रचार ही करते हैं। क्योंकि इससे जनसाधारण का ध्यान श्रेय की दिशा से हट कर उन क्रीड़ा-कौतुकों पर ही चला जायेगा। इसलिये सच्चे आत्मवेत्ता न तो किसी को चमत्कार दिखाते हैं और न ही किसी को इस बात की शिक्षा देते हैं। उत्कृष्ट चिन्तन और आदर्श कर्तव्य की नीति ही अध्यात्म की सच्ची साधना है और उसी का अभ्यास कर सामान्य स्थिति में रहते हुये भी देवोपम जीवन व्यतीत किया जा सकता है। उसके आलोक से असंख्य व्यक्तियों का भला किया जा सकता है। सही अर्थों में यही अध्यात्म का चमत्कार है और जिन व्यक्तियों के भी अध्यात्म के मर्म को समझा है उन्होंने सिद्धियों और चमत्कारों को व्यर्थ बताया है।

सर्वसाधारण के लिये इनकी कोई उपयोगिता नहीं है इसलिये ईश्वरीय विधान के अनुसार इन्हें अविज्ञात एवं रहस्य के पर्दों में छिपा हुआ ही रहने दिया है। परमात्मा ने मनुष्य और प्राणियों को वे सारी विशेषतायें, साधन क्षमतायें पहले ही इतनी मात्रा में प्रदान कर दी हैं। जितनी कि उन्हें आवश्यक हैं। हवा, पानी, अन्न आदि आवश्यकताओं के लिये जिनके बिना जीवन चल नहीं सकता, परमात्मा ने प्रकृति में प्रचुर व्यवस्था कर दी है इसके बाद जीवन की ग्रन्थियों और समस्याओं का समझने, हल करने के लिये सामान्य बुद्धि भी मनुष्य में विद्यमान है। विशेष प्रतिभाशाली व्यक्ति अपनी बौद्धिक क्षमताओं का विकास करते हैं और उससे स्वयं लाभ उठाते हुए अन्य मनुष्यों को भी लाभान्वित करते हैं।

इसके बाद आती हैं वे सिद्धियाँ और क्षमतायें जिन्हें मनुष्य वरदान तुल्य समझता है और सोचता है यदि ये सिद्धियाँ उसके पास होती तो वह 'और' भी बड़ा बन सकता था। स्मरणीय है इन सिद्धियों की ललक दूसरों का भला करने के लिये, अपना अहंकार पुष्ट करने के लिये ही ज्यादा उठती हैं। यदि दूसरों का भला करना ही अभीष्ट रहता तो मनुष्य अपनी उपलब्ध क्षमता और वर्तमान स्थिति में रह कर ही बहुत कुछ कर सकता है, परन्तु सिद्धियों के पीछे यह भावना नहीं रहती। उसमें अधिकांशतः अहंकार की भावना ही काम करती है और अहंकारी व्यक्ति के पास यदि ये सिद्धियाँ आ जायें तो न वह अपना भला कर पाता है न दूसरों का ही कुछ हित कर सकता है।

प्रथम तो परमात्मा ने मनुष्य के हित की दृष्टि से ही उन सिद्धियों को सबके लिये सुलभ नहीं बनाया है इनका उपयोग और महत्त्व न जानने के कारण इनसे लाभ उठाने की अपेक्षा अहित होने का ही ज्यादा भय रहता है, उदाहरण के लिये यदि किसी के पास पूर्वाभास की क्षमता हो तो स्वाभाविक ही है कि उसे अपनी मृत्यु का समय पहले ही विदित हो जायेगा। यदि पूर्वाभास के कारण सभी लोगों अपनी मृत्यु का समय मुद्दतों पहले विदित रहने लगे तो लम्बा जीवन शेष रहने पर भी वह भयभीत उदास और खिन्न रहने लगेगा। सामान्य जीवन के प्रति उसके दृष्टिकोण में उदासीनता आ जायेगी और मानसिक असंतुलन के कारण उससे कुछ करते-धरते न बनेगा। जब अमुक समय से आगे पीछे नहीं ही मरना है तो वह किसी से भी प्रतिशोध लेने के लिये आक्रमणकारी बन सकता है, निडर होकर कुछ भी कर सकता है। मृत्यु का समय पहले ही मालूम हो जाने से व्यक्ति या तो निरन्तर खिन्न, उदास और बेबस रहने वाला निरीह प्राणी भर बन कर रह जायेगा अथवा आगा-पीछा न सोच कर कुछ भी कर डालने वाला दुर्दान्त नर पशु बन जायेगा।

जीवित रहने का आनन्द तभी है जबकि मृत्यु का ठीक समय का ज्ञान न हो। इसके अतिरिक्त दूसरों के भविष्य को जान लेने पर यदि उसके दुर्दिन हुये तो कोई भी उससे सम्बन्ध नहीं बनाना चाहेगा और अच्छे दिन हुये तो हर कोई उसके आगे-पीछे घूमने और चाटुकरिता करने लगेंगे। दोनों ही स्थितियों में मनुष्य का मनुष्य के प्रति स्नेह-सौहार्द, सहयोग, सद्भाव, पुरुषार्थ, परिश्रम प्रभावित होंगे। इसलिये अनागत को न जान पाने का प्रतिबंध लगाकर परमात्मा ने मनुष्य का भला ही किया है। अदृश्य हो जाने की सिद्धि भी परमात्मा ने मनुष्य का हित देखकर ही उसे प्रदान नहीं की। यदि कोई अदृश्य

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

होने की विद्या सीख ले तो वह बड़े से बड़ा अपराध करते रहने पर भी नहीं पकड़ा जा सकेगा। इस प्रकार मनुष्य का निजी व्यक्तिगत जीवन कुछ रह ही न जायेगा। चोर बड़ी आसानी से किसी भी व्यक्ति के घर में घुस कर उसका माल, सामान समेट लेगें। पति-पत्नी के सम्बन्धों में लज्जा जैसी कोई बात रह ही न जायेगी।

भविष्य को जानने और अदृश्य होने की सुविधा न देने के साथ परमात्मा ने मनुष्य की इन्द्रियों को भी उतनी ही क्षमता प्रदान की है जितनी से कि उसका काम भर चलता रहे। आँखें प्रकाश का एक नियत स्तर ही देख पाती हैं जबकि आँखों से न दिखाई पड़ने वाले, आँखों की दर्शन क्षमता से कम व अधिक स्तर के दृश्य भी इस संसार में मौजूद हैं। वे दिखाई नहीं देते और इसी कारण केवल काम की तथा उपयोगी वस्तुओं का देख पाना सम्भव है। कल्पना कीजिये यदि पानी, हवा, मिट्टी आदि में रहने वाले जीवाणु उतने ही स्पष्ट दिखाई देने लगें जितने कि माइक्रोस्कोप से दिखाई देते हैं तो फिर आँखों के सामने इन्हीं की भीड़ भरी रहेगी। तब काम के और बेकाम के दृश्यों का इतना अंधड़ सामने खड़ा होगा कि उन्हें देख कर क्या हो रहा है यह निष्कर्ष निकाल पाना ही कठिन हो जायेगा।

इसी प्रकार हमारे कान एक सीमित स्तर की ध्वनियाँ ही सुन पाते हैं। उनसे ऊँचे और नीचे कंपनों की असंख्य ध्वनियाँ अपने चारों ओर मँडराती रहती हैं। अंतरिक्ष में घूमते रहने वाले ग्रहों, उनमें होने वाले विस्फोटों के कारण होने वाली भीषण ध्वनियों को यदि सुना जा सके तो हमारा दुनिया में रहना ही दूभर हो जायेगा। वैज्ञानिकों का कहना है कि हमारे चारों ओर इतनी भीषण भयावह विस्फोट की ध्वनियाँ चौबिसों घण्टे गूँजती रहती हैं। कि जैसे हजारों बम एक साथ फटते हों। परन्तु हमारे कान उन ध्वनियों के लिये पहले से ही बहरे हैं। इसलिये जीवनक्रम सामान्य गति से चलता रहता है। कल्पना कीजिये कि यदि उन ध्वनियों को सुन पाना सम्भव रहा होता तो क्या शांति पूर्ण ढंग से जिया जा सकता था ? इसी प्रकार कितने सूक्ष्म ध्वनि कम्पन भी हमारे ईर्द-गिर्द घूमते-रहते हैं। उन सभी ध्वनियों को सुना जा सकता, तो लगभग उसी तरह की दशा होती जैसे कि एक ट्रांजिस्टर पर संसार भर के सभी स्टेशन बोलने लगें और विचित्र प्रकार की न समझ आने वाली मिश्रित ध्वनियाँ होने लगें।

ईश्वर की ओर से मनुष्य की आँखें, कान, नाक आदि इन्द्रियों को उतनी ही शक्ति मिली है जितनी से कि उनका कार्य सरलतापूर्वक चल सके। इसी प्रकार जिन सिद्धियों की, जिन उद्देश्यों से आवश्यकता हैं वे सामान्य प्रयास करने पर ही मिल जाती हैं। मनुष्य के लिये सम्भाषण, वार्तालाप, गायन और इसी प्रकार की दूसरी अन्य विशेषतायें अन्य प्राणियों की दृष्टि में देवोपम ही हैं। यह सब बातें मनुष्य के लिये नितांत सहज और स्वाभाविक हैं। जहाँ भी असहज या असामान्य की आकांक्षा उठी अथवा आरोपण किया गया वहीं अहं का उदय और भय की सृष्टि होने लगती है। पहली बार जिसने रेलगाड़ी देखी थी उन्होंने उसे कोई भयंकर दैत्य समझा था और भयभीत होकर भागे थे, टेलिफोन, रेडियो, टेलिविजन आदि भी लोगों के लिये कम आश्चर्यजनक नहीं रहे हैं परन्तु इनकी वास्तविकता समझने के बाद लोग न तो इनसे डरते हैं और न दूसरों को डराते हैं क्योंकि यह सब नितांत सरल सामान्य ही है।

परमात्मा जिन व्यक्तियों को उपयुक्त समझता है उन्हें इस तरह की विशेष शक्तियाँ भी देता है, ताकि साधक उनके द्वारा दूसरों का भला कर सकें। लेकिन सिद्धियों का रहस्य जानने वाले समझते हैं कि यह उनका लक्ष्य नहीं है। ये सिद्धियाँ तो ठीक उसी प्रकार हैं जैसे किसी मंजिल पर चलते हुये मार्ग में एक से एक सुन्दर सुगन्धित फूल लगे मिल जाएँ। उन फूलों की महक में कोई रम गया तो लक्ष्य से विचलित हो गया। इसलिये योगशास्त्र के प्रणेता महर्षि पातंजलि ने इन सिद्धियों को साधना मार्ग में विघ्न कहा है तथा उनसे अप्रभावित अनाकर्षित रहते हुये निरंतर आगे बढ़ते रहने के लिये कहा है। वह प्रगति सदाचार, नीति, सद्भाव और सत्कर्मों द्वारा ही होती है, न कि चमत्कारी सिद्धियों द्वारा।

एक बार एक अंग्रेज पादरी अफ्रीका में धर्म प्रचार के लिये गया। जंगली लोगों ने उसे पकड़ लिया और वध करने की तैयारी करने लगे। पादरी को चतुरता सूझी। उसने अपने को देवी शक्ति सम्पन्न सिद्ध करने के लिये अपने नकली दाँतों के जोड़ मुँह से बाहर निकाले और पोपला मुँह दिखाया। इसके बाद फिर नकली दाँत मुँह में डाल कर नया ढंग का चेहरा बना लिया ऐसा उसने तीन बार किया। जंगली लोगों ने ऐसा अद्भुत दृश्य कभी न देखा था, वे उसे देखकर सन्न रह गए। इतना ही नहीं पादरी ने अपने थैले से दर्पण निकाला और इन लोगों को दिखाया। सबने एक-एक दैत्य आकृति उसमें देखी और अनुमान लगाया कि इसके हाथ में प्रेतात्माओं की शक्ति है। वे बहुत गिड़गिड़ाये और पादरी के गुलाम बनकर रहने लगे।

लगभग इसी घटना की नुनरावृत्ति धूर्त बाजीगर अपने को चमत्कारी सिद्ध पुरुष कहकर मूर्खों की हजामत उलटे उस्तरे से बनाते रहते हैं। इन दिनों एक बाबा बालों में से बालू निकाल देने या ऐसे ही अन्य अजूबे दिखाने के लिये प्रसिद्ध है। उनकी पूजा इन करामती कौतूहलों के नाम पर ही होती है और नये-नये भक्त इन्हीं किंवदन्तियों से प्रभावित होकर बढ़ते चलते हैं। विचारणीय तथ्य यह है कि क्या अध्यात्म का प्रतिफल चमत्कार है।

जिन प्राणियों की निर्वाह प्रक्रिया में जिस विशेषता की आवश्यकता समझी गई है वह उसे परमात्मा ने उदारतापूर्वक दी है। कुत्ते में सूँघने, बन्दर में उछलने, घोड़े में दौड़ने, सिंह में पछाड़ने की विशेषतायें उनके जीवन-क्रम की सुविधा के अनुरूप हैं। मधुमक्खी, चींटी, दीमक, मकड़ी आदि में भी अनोखे गुण हैं। पक्षियों में उड़ने की विशेषता है यदि वैसी सर्पों में मिल जाये तो सर्वत्र प्राण संकट ही छा जायेगा। मनुष्य यदि आकाश में उड़ने लगे तो फिर सुरक्षा समस्या में ऐसी जटिलतायें उत्पन्न हो जायेंगी जिनका समाधान ही न हो सके। यदि भगवान ने एक हाथ में उड़ने की विशेषता दी है तो निश्चय ही दूसरे हाथ से बुद्धि कौशल वापस ले लिया है, ताकि

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

किसी को अति बरतने और सृष्टि संकट उत्पन्न करने की छूट न मिले।

पूर्व जन्मों की स्मृति यदि सबको बनी रहे तो फिर हर व्यक्ति असन्तुष्ट दिखाई पड़ेगा। पूर्व जन्मों के स्त्री, बच्चे याद होते रहने पर बच्चे इस जन्म के माता-पिता से रुखाई रखेंगे और पूर्व जन्मों के स्त्री, पुत्रों के पास जाने के लिये मचलते रहेंगे। पति पूर्वजन्म की पत्नी का कहाँ जन्म हुआ है यह पता लगाकर उससे संपर्क जोड़ेंगे और स्त्रियाँ प्रस्तुत की ओर से उदासीन रहकर पूर्व जन्म के पति को तलाश करती फिरेंगी। आधी कमाई इधर, आधी उधर-आधा मन और समय इधर, आधा उधर-बँट जाने से अव्यवस्था, उदासीनता एवं असन्तोष की स्थिति ही सर्वत्र सव्याप्त रहेगी। पूर्व जन्मों की स्मृति की घटनायें इसलिये कौतूहलवर्द्धक और अच्छी लगती हैं कि वे कभी-कभी ही देखने-सुनने को मिलती हैं और एक हलकी-सी झलक दिखाकर लुप्त हो जाती हैं। यदि वे स्थायी तथ्य बन जाएँ और हर किसी को पूर्व जन्म याद रहने लगे तो पारिवारिक जीवन का वर्तमान क्रम सर्वथा उलट जायेगा और उत्तरदायित्वों के बन्धन सर्वथा शिथिल हो जायेंगे।

यही बात अन्य सिद्धियों के सम्बन्ध में है। अणिमा, महिमा, लघिमा आदि सिद्धियों का वर्णन जहाँ-तहाँ मिलता है वे किसी व्यक्ति विशेष के लिये विशेष स्थिति में कौतूहलवर्द्धक एवं उपयोगी हो सकती हैं। पर सर्वसाधारण के लिये उनका मिलना नये प्रकार के संकट उत्पन्न करने का कारण ही बन जायेगा।

मन की गुप्त बातें या दूसरों के रहस्य जान लेने से तो चोरों की पौ बारह होने लगेगी। वे धनिकों के धन का पता लगाकर ठीक स्थान पर घात लगाया करेंगे। मन की बातें दूसरे पर प्रकट होने लगें तो फिर पूछ-ताछ करना ही निरर्थक हो जायेगा। एक-दूसरे को बिना कुछ कहे पूछे ही प्रयोजन जानने और उत्तर देने का काम निपटा दिया करेंगे। तब सरकारी बजट, शासनाध्यक्षों को दिलाई जाने वाली गोपनीयता की शपथ का कोई मूल्य नहीं रहेगा। तब गुप्तचर विभाग भी तोड़ देना पड़ेगा। झूठ-सच का पता लगाने की लिये जो इतने तरीके काम लाए जाते हैं, वे भी व्यर्थ माने जायेंगे। युद्ध योजनायें पहले से ही प्रकट हो जाया करेंगी। ऐसी दशा में लोकव्यवहार में बुद्धि कौशल प्रयुक्त करना पड़ता है उसकी कोई आवश्यकता न रहेगी। अधिकांश काम तो अपने आप ही समाप्त हो जायेंगे, जो शेष रहेंगे वह बड़ी आसानी से संकेत मात्र में निपट जाया करेंगे।

ज्योतिषी लोग आये दिन तेजी-मन्दी की भविष्य- वाणियाँ छापते रहते हैं। पर वास्तविकता यह है कि इस प्रकार के ज्ञान से मनुष्य को सर्वथा वंचित रखा गया है। मिथ्या डींग हांकने पर कहीं किसी पर रोक नहीं, पर यदि यथार्थ में किसी एक व्यक्ति को भी ऐसा ज्ञान हो जाये तो वह एक सप्ताह में अरबपति ही नहीं, विश्व के समस्त व्यापार का अधिपति और कुबेर भण्डारी बन सकता है। वह व्यक्ति दूसरों का यह रहस्य बताने की अपेक्षा स्वयं ही व्यापार करने लगेगा। मन्दी आने पर खरीदना और तेजी होने पर बेचना भर का धन्धा करने में वह कभी असफल हो ही नहीं सकता जिसे भावों की घट-बढ़ का सुनिश्चित ज्ञान है। ऐसी दशा में उसे साझीदारों की भी कोई कठिनाई न होगी और बात की बात में ऐसी व्यवस्था बन जायेगी जिसमें उसे करोड़पति, अरबपति बनने में देर न लगे।

यदि तेजी-मन्दी का वास्तविक ज्ञान लोगों को होने लगे तो फिर व्यापार क्षेत्र में घोर अव्यवस्था फैल जायेगी और फिर एक प्रकार का गदर ही खड़ा हो जायेगा। जो वस्तु मन्दी होने वाली है उसे कोई खरीदेगा नहीं और जो महँगी हो जाने वाली है उसे बेचने के लिये तैयार न होगा। ऐसी दशा में ग्राहकों को अपनी दैनिक आवश्यक वस्तुओं से भी वंचित रह जाना पड़ेगा।

लोगों को यदि अपने भाग्य का पता चल जाये तो कोई भी प्रयत्न, परिश्रम करने के लिये तैयार न होगा। जब हानि-लाभ, जीवन-मरण, यश-अपयश, भाग्य लेख के अनुसार ही मिलता है तो प्रयत्न पुरुषार्थ की माथा-पच्ची करने से क्या लाभ ? जो होना है वह तो होगा ही। फिर रोग की चिकित्सा, शत्रुओं से सुरक्षा, उपार्जन के लिये दौड़-धूप, पढ़ने में सिर फोड़ी करने, मर्यादायें पालन करने, प्रगति के लिये प्रयत्न करने और सम्भावित कठिनाइयों से सतर्क रहने की भी कोई तुक नहीं है। ऐसी दशा में प्रगति और सुरक्षा की दृष्टि से किये जाने वाले प्रयत्न सर्वथा निरर्थक ही बन जायेंगे। ऐसी दशा में सर्वत्र निष्क्रिय अकर्मण्यता का ही साम्राज्य छाया हुआ दिखाई पड़ेगा। तब ज्योतिषियों का धन्धा भी बन्द हो जायेगा। क्योंकि उन्हें पता ही होगा कि कब कहाँ से कितना पैसा मिलने वाला है ? जो मिलना भाग्यानुसार निश्चित है, वह तो घर बैठे भी आ जायेगा फिर भविष्य कथन के झंझट में पड़ने से भी क्या लाभ ?

मनुष्य की सम्भाषण और गायन विशेषता दूसरे प्राणियों की दृष्टि से एक देवोपम सिद्धि हो सकती है। दो पैरों से चलना और दो हाथों से अद्भुत क्रिया-प्रक्रियायें सम्पन्न करना भी अन्य प्राणियों के लिये किसी चमत्कारी सिद्धि से कम नहीं, पर अभ्यास में आ जाने के कारण मनुष्य को यह सब बातें बिल्कुल सामान्य और अस्वाभिक लगती हैं। जिन दिनों अग्नि का आविष्कार हुआ था उन दिनों उसे देवता का अवतरण माना गया था और अत्यन्त श्रद्धापूर्वक पूजन का विधान चला था। पहली बार जिसने रेलगाड़ी देखी थी उन्होंने उसे साक्षात काली समझ कर भयभीत भाव से मनुहार किया था। इसी प्रकार टेलीफोन, रेडियो, टेलीविजन भी कम आश्चर्यजनक नहीं। विज्ञान से अपरिचित लोगों ने उन्हें जहाँ भी देखा अवाक रह गये और इन अद्भुत उपकरणों में दैवी शक्ति होने का अनुमान लगाने लगे। पर अब तथ्यों का पता लग जाने पर सब वस्तुयें नितान्त सरल सामान्य बनकर रह गई हैं।

जो जितना आवश्यक है वह उतना ही सुलभ है। हमारे जीवन के लिये हवा सबसे अधिक आवश्यक है वह सर्वत्र प्रचुर परिमाण में उपलब्ध है। उससे आगे चलकर पानी का स्थान है। पानी भी प्रायः हर जगह बिना मूल्य मिल जाता है। अन्न उसके बाद है, वह भी खेत-खेत में उपजता है और सब जगह सामान्य मूल्य पर प्राप्त किया जा सकता है। जो धातुयें जितनी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अधिक आवश्यक हैं वे उतनी ही अधिक मात्रा में मिलती हैं। सोना, विष, रेडियम, यूरेनियम आदि की दैनिक जीवन में उपयोगिता न होने से वे कम मात्रा में कठिनाई से मिलते हैं। ईश्वर का यह विधान बहुत ही दूरदर्शितापूर्ण है। जिन सिद्धियों की आवश्यकता है वे सामान्य प्रयास से मिल जाती हैं, पर अनावश्यक विशेषताओं से मनुष्य को वंचित रखा गया है। बाल-बुद्धि को असामान्य ही अद्‌भुत लगता है यदि सिद्धियाँ मनुष्य के हाथ में आ जायें तो सामान्य बन जाने पर उनकी ओर कोई आँख उठाकर भी न देखेगा। इतना ही नहीं उनके कारण उत्पन्न होने वाली अव्यवस्था को देखते हुये सम्भवतः उन पर कानूनी प्रतिबन्ध लगाने की भी आवश्यकता पड़ सकती है।

सिद्धियों के प्रति आग्रह क्यों रखा जाये ?

लोग साधना-उपासना के क्षेत्र में आत्मिक कल्याण के उद्देश्य से उतनी रुचि नहीं लेते जितनी कि चमत्कारी सिद्धियाँ प्राप्त करने की लालसा मन में रहती है। सिद्धियों की आकांक्षा क्यों की जाती है ? मात्र इसलिए कि कठोर जीवन संघर्ष के झंझावातों से न जूझना पड़े और सब कुछ सहज, सरल ढंग से प्राप्त हो जाए। यह परमात्मा के व्यवस्था नियमों को तोड़ने की आकांक्षा ही कही जायेगी अन्यथा परमात्मा ने प्रत्येक मनुष्य को इतने साधन और इतनी शक्तियाँ प्रदान कर रखी हैं कि उनका यदि भली-भाँति उपयोग किया जाये तो विशेष कुछ आवश्यकता रह ही नहीं जाती।

सिद्धियाँ और चमत्कारी क्षमताएँ जिन्हें प्राप्त होती हैं वे भी केवल इसलिए कि उनका प्रयोग मानव कल्याण के लिए किया जा सके। कई बार किन्हीं व्यक्तियों को अनायास ही कोई सिद्धि या अतीन्द्रिय क्षमता प्राप्त हो जाती है तो उन्हें अपनी इन क्षमताओं के कारण प्रायः परेशान ही होते देखा गया है। उदाहरण के लिए पीटरहरकोस को ही लिया जाये जो संसार के सर्वाधिक प्रसिद्ध और सफल भविष्यवक्ता रहे हैं। उन्हें अतीन्द्रिय दर्शन की यह क्षमता एक दुर्घटना में अनायास ही प्राप्त हुई थी और इस कारण उन्हें इतना अधिक परेशान होना पड़ा कि वे सोचने लगे कि किस प्रकार इससे छुटकारा पाया जाये ? उनमें जब यह क्षमता जाग्रत हुई तो वे जिस किसी को भी देखते थे उसके बारे में सब कुछ जान जाते थे। न केवल जिसे देखते थे उसके बारे में, वरन् उससे सम्बन्धित जीवित और मृत व्यक्तियों के बारे में उनका भूत, भविष्य, वर्तमान सब कुछ किसी फिल्म की तरह आँखों के आगे नाचने लगता था। उनकी इसी असाधारण अतीन्द्रिय चेतना से कई लोग उनकी जान के दुश्मन बन गये और कई बार उन पर प्राणघातक हमले भी हुए। एक दुर्घटना के कारण उनकी तीसरी आँख विकसित हो गयी थी जिससे वे भूत, भविष्य एवं वर्तमान की सभी घटनाओं को देख सकते थे।

१९४७ की बात है, लिम्बर्ग में वानटानिक नामक एक युवक की हत्या कर दी गई। हत्यारे ऐसा कोई चिह्न नहीं छोड़ गये थे, जिससे उनका रत्ती भर सुराग मिलता। पुलिस ने कोई भी प्रयत्न छोड़ा नहीं, किन्तु उसे किसी तरह की सफलता हाथ न लगी। अन्त में एक ऐसे व्यक्ति की सहायता ली गई, जिसके बारे में उन दिनों न केवल हालैण्ड वरन् सारे विश्व में यह कहा जाता था कि उसे किसी की वस्तु या शरीर का कोई अंग स्पर्श करते ही उसके सम्बन्ध में अनेक रहस्यों को पता फिल्म में दिखाये गये दृश्यों की भाँति चल जाता है। उसे विलक्षण सिद्धि प्राप्त थी। उसे लोग सर्वदर्शी मानते थे।

उस व्यक्ति ने पुलिस कार्यालय में आते ही बताया कि इससे पूर्व कि मैं आप लोगों की कुछ सहायता करूँ, मुझे टार्सिंग के शरीर से लगे किसी वस्तु या वस्त्र की आवययकता पड़ेगी। आप उसका प्रबन्ध करा दें, उस वस्तु की गन्ध के आधार पर ही यह बताया जाना संभव होगा कि उसकी किसने हत्या की है ? वस्त्र धुला न हो यह भी आवश्यक है।

टार्सिंग का कोट उपलब्ध था, वह उसे दिया गया। उसे हाथ में लेते ही एक विचित्र प्रकार की स्थिति उसने अनुभव की। अनेक दृश्य अपने आप मस्तिष्क में उतरने लगे। उसने कहा—"टार्सिंग की हत्या जिस व्यक्ति ने की है, वह अधेड आयु का है, उसकी बड़ी-बड़ी मूँछे हैं और मैं स्पष्ट देख रहा हूँ कि उस व्यक्ति का एक पांव लकड़ी का है। वह चश्मा भी लगाता है।"

इतना बताने तक पुलिस अधिकारियों ने न कोई उत्सुकता दिखाई, न रुचि, क्योंकि इस हुलिया का व्यक्ति तो जेल में पहले ही बन्द था। यह मृतक का पिता ही था पर अब उसने दूसरा विवाह कर लिया था। पुलिस को भी उस पर सन्देह था पर जब तक कोई प्रमाण न मिले मुकदमा कैसे चलाया जा सकता था।

उस सर्वदर्शी व्यक्ति ने आगे कहना प्रारम्भ किया—"व्यक्ति का स्वार्थ जब इतना प्रबल हो जाता है कि उसका नियन्त्रण नहीं हो पाता तो मनुष्य कोई भी पाप कर सकता है, उस व्यक्ति की कुदृष्टि एक दिन टार्सिंग की पत्नी पर ही चली गई। कुछ दिन तक तो वह इस बात को टालता रहा पर जब वासना अनियन्त्रित हो उठी तो उसने टार्सिंग की हत्या कर दी।" इतना बताने पर भी पुलिस इन्सेक्टर को कोई विशेष दिलचस्पी न जगी। उसने कहा—"आपने जो कुछ बताया वह तो सारा लिम्बर्ग शहर जानता है। इसमें नया क्या है।"

तब वह व्यक्ति कुछ रुका और इन्स्पेक्टर की ओर देखता हुआ बोला—"अच्छा तो जो आप नहीं जानते वह बताते हैं। उस व्यक्ति ने जिस हथियार से हत्या की है, वह एक बन्दूक है और उसी मकान की छत पर है। उसमें उस व्यक्ति की अँगुलियों के निशान भी हैं।" इतनी जानकारी वरदान सिद्ध हुई। इन्स्पेक्टर ने तलाशी ली और वह बन्दूक ठीक वहीं मिली। अभियुक्त को उसी के आधार पर दंडित किया जा सका।

कोई वस्तु देखकर उस व्यक्ति से सम्बन्धित अदृश्य बातें और मनोभाव तक बता देने की यह क्षमता जिस व्यक्ति में थी,

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

उसे पीटर हरकोस के नाम से आज सारा संसार जानता है। उसका वास्तविक नाम पीटर वानडेर हर्क था। २१ मई १९११ को उसका जन्म हालैंड में हुआ। यह नाम तो उसने जर्मनी आक्रमणकारियों से रक्षा के लिये बदल लिया था।

हमारे देश में ऐसे सिद्ध-महात्माओं का आज भी अभाव नहीं है, जो योग साधनाओं द्वारा अपने शरीर के मर्मों में सुरक्षित सूक्ष्म यन्त्र, चक्र, उपत्यिकाओं, नाड़ी-गुच्छाओं और कुण्डलिनी शक्ति को जाग्रत कर लेते हैं और उनसे ऐसे सामर्थ्य प्राप्त कर लेते हैं, जो साधारण व्यक्तियों के लिये चमत्कार जैसी लगती हैं। यह साधनायें कुछ कष्ट साध्य, समय साध्य और जीवन-प्रवाह से विपरीत दिशाओं पर चलकर साहसपूर्वक सिद्ध होती हैं। कुछ उनका सम्बन्ध आध्यात्मिक श्रद्धा और विश्वास से भी होता है, इसलिये बहुत कम लोग उन पर विश्वास कर पाते हैं, जो विश्वास कर भी लेते हैं, वे इतनी मूल्यावान वस्तु के लिये उतना ही परिश्रम और परित्याग नहीं करना चाहते, इसीलिये भारतीय तत्व दर्शन का यह एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण अध्याय उपेक्षित ही होता चला जा रहा है। पर इस एक आकस्मिक घटना ने एक बार फिर से सारे भातरवर्ष वरन् समूचे विश्व को यह सोचने के लिये विवश किया कि शरीर में कोई एक अतीन्द्रिय सत्ता अवश्य है, जो सर्वदर्शन, दूरदर्शन, दूरानुभूति आदि सूक्ष्म गुणों से सम्पन्न है। यह शक्ति सूक्ष्म होकर भी वैज्ञानिक है और उसे विभिन्न योगिक क्रियाओं के द्वारा जाग्रत भी किया जा सकता है। इस शक्ति का एक साधारण यन्त्र दोनों भौंहों के बीच जहाँ देखने वाली नाड़ियाँ (आप्टिक नर्व्स) आप्टिक कैजमा बनाती है, वहाँ है और उसका नाम 'आज्ञा चक्र' रखा गया है। साधारण मनुष्यों में कभी गर्म नाड़ी (इड़ा) कभी ठन्डी नाड़ी (पिंगला) चलती रहती है, इसीलिये उस सूक्ष्म संस्थान का बोध नहीं होता पर कुछ प्रणायाम और योग क्रियाओं से दोनों नाड़ियों को 'समवात' कर लिया जाता है तो एक तीसरी विद्युत-चुम्बकीय शक्ति 'भ्रूमध्य' में दिव्य प्रकाश के रूप में चमक उठती है, यह चैतन्य विद्युत ही उन तमाम जानकारियों का आधार है, जो दूसरों के लिये रहस्य जैसी होती है पर उस योगी के लिये वह नितान्त साधारण बात होती है। 'योग चूडामण्युपनिषत्' तथा दूसरे योग उपनिषदों 'शिव संहिता, घेरण्ड संहिता आदि आर्ष-ग्रन्थों में उसका विस्तार से वर्णन मिलता है।

पीटर हरकोस के साथ तो जो कुछ हुआ, वह सब अकल्पित और अनायास ही हो गया। उसने इसके लिये किसी प्रकार का अभ्यास नहीं किया था। एक दिन की बात है—पीटर हरकोस अपने पिता के साथ हालैण्ड की सेनाओं की बैरिकों की पुताई कर रहा था, यह उसका पैतृक धन्धा था। पीटर की बहुत इच्छा थी कि वह पढ़-लिखकर कोई बड़ा कार्य करे, पर परिवार के उत्तरदायित्वों से विवश पीटर को पढ़ाई छोड़कर नौकरी करनी पड़ी। कुछ दिन वह चीन में नाविक बनकर भी रहा पर वहाँ से छुट्टी मिली तो उसने फिर अपना सारा ध्यान इस एक ही कला में लगाया। दीवार की पुताई करते समय एकाएक उस दिन उसका हाथ छूट गया और वह ३० फुट नीचे एसफाल्ट की सड़क पर जा गिरा। उसे सख्त चोटें आई, कपाल फट गया, अस्पताल पहुँचाया गया, वहाँ किसी प्रकार जीवन रक्षा हुई।

पाड़ से गिरने की घटना सन् १९४३ में घटी। अस्पताल में जब उसे होश आया तो उसने अपने में विलक्षण क्षमता अनुभव की। उसे ऐसा लगा कि कपाल के उस भाग में जहाँ चोट आई है, एक विशेष प्रकार की विद्युत तरंग-उभर उठी है, जब कोई अन्य वस्तु सम्पर्क में आती है तो उसके प्रभाव से उस व्यक्ति की अज्ञात बातों का भी उसके मन में अनायास प्राकृट्य, होने लगता है। हरकोस के बगल में ही एक दूसरा रोगी पड़ा था। उसे देखते ही हरकोस ने कहा—"तुम बड़े बुरे व्यक्ति हो।" वह व्यक्ति इस अयाचित प्रसंग के लिये बिल्कुल तैयार न था पर जब छेड़खानी हो ही गई तो उसने भी आखिर पूछ लिया—"मैं क्यों खराब हूँ।"

पीटर हरकोस ऐसे बोले जैसे कोई चित्र वह स्पष्ट रूप से देख रहे हों। उन्होंने कहा—"तुम्हारे पिता ने कितने आदर और भावना के साथ तुम्हें सोने की घड़ी दी थी पर तुम ऐसे उड़ाऊ प्रकृति के व्यक्ति हो कि उसे बेच डाला और वह धन किसी सत्कार्य में लगाने की अपेक्षा यों ही आवारागर्दी में उड़ा दिया।"

यह सबसे प्रारम्भिक घटना थी, जिसने किसी दूसरे आदमी को प्रकट होने दिया कि पीटर हरकोस विलक्षण शक्ति का स्वामी बन चुका है। वह रोगी आश्चर्यचकित था कि जो बात मेरे अतिरिक्त दूसरा कोई व्यक्ति नहीं जानता वह इसने कैसे जान ली। उसने पूछा—"आपने यह कैसे जान लिया ?" पर इसका कोई निश्चित उत्तर देने की क्षमता पीटर हरकोस में नहीं थी। जैसे कोई व्यक्ति उत्तराधिकार में पाये बहुत से धन को पाकर प्रसन्न तो होता है पर वह यह नहीं समझ पाता, इसका उपयोग कैसे करें ? अपना पसीना न लगा होने से उसे उस धन के प्रति दर्द भी नहीं होता, इसलिये वह उसका अपव्यय ही करता है, उसी प्रकार हरकोस यह नहीं समझ पा रहा था कि वह क्या शक्ति है और उसका उपयोग किस प्रकार किया जाना चाहिये ?

अनुभव के अभाव में दुरुपयोग की आशंका से ही भारतीय योगी अपने किसी भी शिष्य को चाहे जब अपनी शक्ति नहीं दे देते। रामकृष्ण परमहंस ने जिस तरह स्वामी विवेकानन्द को अच्छी तरह तौल लिया था कि वह इस शक्ति का उपयोग केवल लोक-कल्याण में करेंगे, तब शक्ति-दान दिया था, उसी प्रकार अन्य योगी भी शिष्य के पात्रत्व की परख करके ही उसे अपनी इन अलौकिक क्षमताओं का अनुदान देते हैं। पुरुषार्थ वाला रास्ता वे हर किसी के लिए खुला रखते हैं, कोई भी साहसी, शूरवीर साधक उसे अपने पुरुषार्थ और तप से प्राप्त कर सकता है। अपने पराक्रम से अर्जित शक्ति के प्रति दर्द भी होता है। अनायास उपलब्ध शक्ति का अपव्यय पीटर हरकोस की तरह निरर्थक होता है। जिस शक्ति से लोकजीवन की दूषित दिशायें मोड़ी जा सकती थीं, वह कुछ लोगों को कौतुक और चमत्कार दिखाने में ही बीती।

थोड़ी देर हुई थी कि एक नर्स मरीजों का चार्ट देखती हुई पीटर हरकोस के पास पहुँची। उसे देखते ही उन्मादी की तरह

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org

पीटर बड़बड़ाया—"मैं देख रहा हूँ तुम रेलगाड़ी में यात्रा कर रही हो, इस यात्रा में तुम्हारी सहेली का सन्दूक खोने वाला है।"

नर्स अवाक् रह गई। वह स्टेशन से सीधे हॉस्पिटल पहुँची थी। इस बात का किसी और को पता भी नहीं था। सूटकेस सचमुच रेल में ही छूट गया था, वह स्टेशन को भागी। लौटकर उसने डॉक्टरों को बताया कि पीटर हरकोस नामक रोगी के पास विलक्षण इन्द्रियातीत शक्ति है, वह किसी भी व्यक्ति के भूत और भविष्य को पढ़ने की अभूतपूर्व क्षमता से ओत-प्रोत है। डॉक्टरों ने यह ख़बर मानस रोग विशेषज्ञ डॉ० पीटर्स को भेजी। डॉ० पीटर्स ने हरकोस की अनेक प्रकार से जाँच की। इस सूक्ष्म शक्ति का निश्चित विवेचन तो वे नहीं कर सके पर उन्होंने स्वीकार किया कि मस्तिष्क में कोई अति सूक्ष्म विद्युत-चुम्बकीय चेतना होनी चाहिए, जिसके परमाणुओं में अतिवाहिकता का यह गुण हो सकता है। पर प्रत्येक व्यक्ति के परमाणु किस प्रकार अलग-अलग होते हैं और यह मानस शक्ति उन्हें छाँटकर किन्हीं घटनाओं का दूर और पूर्वाभास कैसे पा लेती है, इस बात का कोई निश्चित पता वे नहीं लगा सके।

इसी शोध परीक्षण में तीन-चार दिन और बीते। एक दिन एक पुराना रोगी अस्पताल से छूटा। चलते समय वह रोगियों से हाथ मिलाने गया। पीटर के हाथ में उसका हाथ गया ही था कि वही अतीन्द्रिय बोध पुनः कौंधा। इधर वह अस्पताल से बाहर निकला उधर हरकोस चिल्लाया—"इसे रोको—यह तो अंग्रेजों का गुप्तचर हैं। जर्मन सी० आई० डी० इसके पीछे लगे हैं, उन्हें इसकी असलियत मालूम पड़ गई है, ऐसा लगता है कि 'कलवर स्ट्रीट' में उसकी हत्या कर दी जायेगी।"

पीटर हरकोस और भी कुछ चिल्लाये इससे पहले ही डॉक्टर और नर्सों ने उसे आ सम्हाला। उन्होंने आते ही उसे चुप किया। उनका अनुमान था, वह विक्षिप्त अवस्था में प्रलाप कर रहा है, किन्तु दो दिन पीछे सचमुच 'कलवर स्ट्रीट' में उसकी हत्या हो गई, तब लोगों को पता चला कि पीटर हरकोस ने जो कुछ कहा था, वह प्रलाप न होकर एक ऐसी सच्चाई थी, जो उसके अन्तःकरण से निकली थी। वह शक्ति क्या थी, क्यों थी ? अब भी यह कोई नहीं समझ पा रहा था।

पीटर हरकोस की ख्याति सामान्य घटनाओं से प्रारम्भ हुई थी और विस्तृत यहाँ तक हुई कि देश-विदेश के धनी-निर्धन, सरकारी गैर-सरकारी, साधारण नागारिकों से लेकर बड़े राज-परिवारों तक में उन्हें बुलाकर और कठिन समस्याओं में उनकी सहायता ली जाने लगी। सिद्धि का स्वरूप ही ऐसा है कि उसका उपयोग करके करके धनी को निर्धन और रंक को महाराज तक बनाया जा सकता है। जहाँ सूर्य का प्रकाश नहीं पहुँच सकता। योगी की सूक्ष्मगति वहाँ भी पहुँच सकती है और वहाँ का सारा भेद खोल सकती है। हरकोस आकस्मिक शक्ति पाकर यही सब करने में लग गया।

सन् १९४० में इंग्लैण्ड की 'वेस्टमिंस्टर एबी' से स्कोन नामक मणि चोरी चली गई। 'वेस्टमिंस्टर एबी' एक ऐसा संग्रहालय है, जहाँ इंग्लैण्ड के राजदरबार और राजनैतिक नेताओं को विदेशों में मिलने वाले उपहार और राष्ट्रीय महत्त्व की वस्तुओं का संग्रह रहता है। स्कोन मणि के बारे में कहा जाता है कि स्काटलैण्ड की थी और चुराकर इंग्लैण्ड लाई गई थी। यह एक ऐसी चोरी थी, जिसने सारे इंग्लैण्ड में तहलका मचा दिया। बड़े-बड़े सी० आई० डी० उसमें जूझे, मणि का फलक तो किसी तरह लन्दन की टफ्टन स्ट्रीट में पा लिया गया, बस उसके अतिरिक्त चोरों की पूँछ का भी कहीं पता नहीं चला।

अन्त में पीटर हरकोस की सहायता ली गई। अपनी धर्मपत्नी के साथ हरकोस ने लन्दन की यात्रा की। लोहे की शलाका से 'एबी' का दरवाजा तोड़ा गया था। उसे हाथ में लेते ही हरकोस एक क्षण के लिये ध्यानावस्थित-सा हुआ, मानों उस घटना को पढ़ने के लिए उतना समय आवश्यक था। थोड़ी देर चुप रहकर पीटर हरकोस हँसे जैसे उनके लिए यह घटना बिल्कुल सामान्य हो। जिन घटनाओं पर साधारण व्यक्ति थोड़े में बुरी तरह व्यथित हो उठते हैं दूरदर्शी व्यक्ति उन्हें एक खेल की तरह टरका देते हैं, यह बात उस दिन देखने में आई। जिस घटना पर सारा इंग्लैण्ड स्तब्ध था, हरकोस की दृष्टि में वह एक खेल जैसा था। सचमुच खेल—उसने बताया—मणि पाँच लड़कों ने चुराई हैं, वे उसे कार में रखकर ग्लासगो ले गये हैं। उसने मणि जहाँ-जहाँ होकर गई उसका 'स्केच' बनाकर भी समझा दिया और बताया कि एक महीने में मणि मिल जायेगी। पीछे एक दिन मणियों सम्बन्धी पुस्तक पढ़ती हुई एक महिला द्वारा उस रहस्य का पता चल गया। चोरी सचमुच खिलवाड़ में विद्यार्थियों द्वारा की गई थी। विद्यार्थी पाँच ही थे। इस मामले में हरकोस को मिला तो कुछ नहीं पर उसे अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति अवश्य मिली।

फूल की सुगन्ध मीलों दूर की मधुमक्खियों, भ्रमरों, तितलियों को ऐसे आकर्षित कर लेती है, जैसे मेले में रंग-बिरंगे खिलौने बच्चों के मन को। सद्गुणों की सुगन्ध और सिद्धि के प्रकाश में कुछ ऐसी मादकता है कि वह हजारों लाखों व्यक्तियों को अपनी ओर आकर्षित कर लेती हैं। गुणी व्यक्ति की ओर श्रेष्ठ सम्भ्रान्त लोग भी ऐसे ही आकर्षित हो जाते हैं, जैसे चुम्बक लोहे के परमाणुओं को दूर-दूर से अपनी ओर समेट लेता है और अपनी ही तरह का चुम्बकत्व प्रदान करता चला जाता है। देने की यह निष्काम साधना व्यक्ति की शक्ति और महत्ता को हजार गुना बढ़ा देती है, जबकि स्वार्थ से सने व्यक्ति भी कालान्तर में छूँछे हाथ खोखली झोली रह जाते हैं। पीटर हरकोस के इस चमत्कार ने एक बार तो सारे संसार को चमत्कृत कर दिया, धीरे-धीरे वह उसका व्यवसाय भी बन गया। वह इस शक्ति से मनुष्य जीवन में बढ़ते हुए पाप और दुर्भाव को रोकने में लगाकर ईश्वरीय प्रयोजन भी पूरा कर सकता था पर स्वार्थ-वश ऐसा कुछ न हुआ, चमत्कार तो चमत्कार ही होता है, थोड़ी नामबरी भले ही मिल जाए पर उससे आत्मशान्ति, आत्मकल्याण का महान उद्देश्य कहाँ पूरा हो पाता है।

इंग्लैण्ड के इस समाचार को फ्रान्स में अति उत्सुकता से सुना गया। जहाँ कुछ लोग आश्चर्यजनक घटनाओं को मात्र मनोरंजन समझकर थोड़े ही समय में भूल जाते हैं, वहाँ कुछ ऐसे भी लोग हैं जो उनकी गहराइयों में भी प्रवेश करते और महत्त्वपूर्ण अनुभव प्राप्त करते हैं। जिज्ञासाओं की यह प्रबलता ही ज्ञान-विज्ञान के आश्चर्य प्रकट करने में समर्थ हुई है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

जिज्ञासा ही आत्मा, परमात्मा जैसी सूक्ष्म सत्ताओं की शोध और प्राप्ति की जननी है। जिज्ञासा हो तो फिर इन रहस्यों की प्राप्ति के लिए केवल मार्गदर्शन और पराक्रम ही शेष रह जाता है और वह भी कहीं न कहीं मिल ही जाता है। पेरिस की पुलिस ने इस अतीन्द्रिय सत्ता को आँचना और उसका उपयोग करना चाहा। इसके लिए पीटर हरकोस को पेरिस बुलाया गया। एक सभा आयोजित की गई, जिसमें २० न्यायाधीश और कई पुलिस कर्मचारी भी थे। उन्होंने हरकोस को पाँच वस्तुएँ देकर कहा—हम यह नहीं जानते मामला क्या है ? यह तो आपकी परीक्षा है कि आप इन वस्तुओं के आधार पर सारे मामले का पता आप ही लगायें और निर्णय भी आप ही दें। हरकोस के जीवन में यह एक कठिन परीक्षा थी। यहाँ यह सिद्ध होना था कि सचमुच अतीन्द्रिय क्षमतायें यांत्रिक शक्तियों से भी अधिक सूक्ष्म, संवेदनशील और सशक्त होती हैं।

यह पाँच वस्तुयें थीं—(१) कंघा, (२) कैंची, (३) घड़ी, (४) सिगरेट, (५) बटुआ (पर्स)। पीटर हरकोस ने प्रारम्भिक जाँच के तौर पर उन्हें स्पर्श किया और बताया कि इनमें से तीन वस्तुयें इस मामले में आवश्यक हैं। दो से कोई सम्बन्ध नहीं। सभी उपस्थित व्यक्ति चुप थे।

इसके बाद पीटर हरकोस ने बटुआ हाथ में लिया और कहना प्रारम्भ किया—सफेद कोट पहने एक गंजा आदमी दिखाई दे रहा है, यह सब एक पहाड़ी के पास छोटे से मकान में है, जहाँ से रेलवे लाइन गुजरती है। थोड़ी ही दूर पर एक कोठार दिखाई दे रहा है, इस मकान और कोठार के बीच एक व्यक्ति मरा हुआ पड़ा है। इस हत्या का सम्बन्ध 'निकोला' नामक व्यक्ति से है, उसने दूध में विष मिलाकर पिलाया है। यह गंजा व्यक्ति ही निकोला लगता है, वह इस समय जेल में है, मृत व्यक्ति एक स्त्री है और यह गंजा व्यक्ति भी जेल में मर चुका है। इतना कहते-कहते पीटर हरकोस ने उन सारी परिस्थितियों का एक पेन्सिल-चित्र भी कागज पर खींच दिया।

अब तक सभी उपस्थित व्यक्ति बिलकुल चुप थे। सब कुछ बता देने के बाद सबने तालियाँ पीटीं। हरकोस ने सारी घटना सच-सच कही थी। अलबत्ता उससे एक भूल हुई थी, वह यह कि अधिकारियों के अनुसार हत्यारा जेल में है मरा नहीं। लेकिन अधिकारियों के आश्चर्य का तब कोई ठिकाना न रहा, जब उन्हें समाचार मिला कि सचमुच 'निकोला' ने अब से कुछ दो घण्टे पूर्व जेल में आत्महत्या कर ली है और वह सचमुच मर चुका है। इस सफलता ने पीटर हरकोस की ख्याति सारे विश्व में फैला दी।

इधर पीटर की ख्याति बढ़ रही थी, उधर उसके जीवन की अशान्ति भी। वह यह अनुभव करता था कि वह परमात्मा के दिए हुए इस वरदान का दुरुपयोग कर रहा है।

योगी सब कुछ जानता है, वह इशारे से लोगों को कुछ समझा भी सकता है, किसी की अदृश्य सहायता करना, चाहे तो वह भी कर सकता है पर ऐसा करते हुए यह निर्देश है कि वह अपना अहंकार न बढ़ा ले और सब कुछ कर सकने का मिथ्याभिमान न कर ले। मनुष्य अन्ततः मरणधर्मा है। उसे किसी भी आत्मा की स्वाधीनता में हस्तक्षेप का अधिकार नहीं। कर्माध्यक्ष तो एक ईश्वर ही है, उसके कार्यों में सहयोग तो किया जा सकता है पर उन अधिकाधिकारों को अपने हाथ में लेने वाला व्यक्ति अपने जीवन की शान्ति ही खो देता है। ऐसा पीटर को कई एक घटनाओं से स्पष्ट आभास हुआ।

उन दिनों हालैण्ड में एक जादूगर भी रहता था, जो हाथ की सफाई के कई करतब दिखाकर लोगों का मनोरंजन किया करता था। एक दिन हरकोस के एक मित्र हरकोस को भी उसका कार्यक्रम दिखाने ले गया। वह जादूगर लोगों से मनोरंजन के बीच-बीच में प्रश्नोत्तर भी करता था। प्रश्नोत्तर काल में मित्र महोदय ने एक पर्चा थमा दिया कि इस सभा में 'पीटर हरकोस' नामक एक ऐसा भी व्यक्ति बैठा है, जो आपसे अधिक योग्य है।

जादूगर को यह बात कुछ अखरी-सी। उसने व्यंगपूर्वक उस पर्चे को पढ़ा और कहा—अब आप लोगों को 'पीटर हरकोस' अपना चमत्कार दिखायेंगे। उसने यह सब शब्द ऐसे लहजे में कहे कि दर्शक कई बार हँसी में लोट-पोट हो गये।

योग संयमी होता है। उसे मान ही नहीं, अपमान में भी संयत रहने की शिक्षा दी जाती है। हरकोस को ऐसा कोई शिक्षण मिला नहीं था। शक्ति आकस्मिक हाथ लगी थी, इसलिये उसके व्यावहारिक उपयोग का तो उसे पता था नहीं। इसलिए स्वभावतः वह कुछ उत्तेजित हो गया। वह रंगमंच पर पहुँचा और कहा—अपनी कोई वस्तु मुझे दीजिये। जादूगर ने अपनी घड़ी थमा दी और ऐसा करते-करते एक व्यंग और कस दिया। दर्शक खिल-खिलाकर हँस पड़े। पीटर हरकोस का बुरा हाल था।

लोग चुप हुए तो हरकोस ने कहा—मैं इस घड़ी में देख रहा हूँ कि आप अपनी धर्मपत्नी के साथ अविश्वास कर रहे हैं। आपका आकर्षण एक दूसरी युवती की ओर है। उसका नाम ग्रीटा है, वह यहाँ उपस्थित भी है। यह शब्द सुनते ही जादूगर सन्नाटे में रह गया। उसकी स्त्री आश्चर्यचकित देख रही थी। सारी सभा में सन्नाटा छा गया।

पीटर हरकोस स्टेज से उतरा और वहाँ से चलकर सीधा एक युवती के पास जाकर खड़ा हो गया और बोला—अब मैं 'ग्रीटा' के पास खड़ा हूँ। युवती घबड़ा गई, उसने स्वीकार किया कि पीटर हरकोस ने जो कुछ कहा है, वह सब सच है। इस घटना से पीटर हरकोस की ख्याति तो बहुत बढ़ गई पर उसे ऐसा अनुभव होने लगा कि वह जो कुछ कर रहा है, वह ईश्वरीय व्यवस्था के अनुकूल नहीं हैं, यदि उसे ऐसी कोई शक्ति मिली है तो उससे दूसरे लोगों को सन्मार्ग की दिशायें तो दी जा सकती हैं पर किसी का जी नहीं दुःखाया जाना चाहिये। कर्म के फल से जीवात्मा आप बँधी है, उसका फल उसे मिलेगा ही, फिर कोई ऐसा मार्ग क्यों अपनाया जाये, जिससे अपना अहंकार बढ़े और दूसरों का जी दुःखे। निष्काम कर्तव्य की बात होती तो भी एक बात थी पर यहाँ तो सब कुछ मानो लोकेषणा के वशीभूत हो रहा था।

इसी तरह की एक दुर्घटना हरकोस से १९४५ में तब हो गई जब कि हरकोस हालैण्ड के प्रख्यात हास्य अभिनेता बर्नार्ज

वारेन्स के दल में काम करने लगा था। एक महिला ने अपनी अँगूठी देकर अपने बारे में पूछा—तो हरकोस ने सब के सामने साफ-साफ कह दिया—आपके दो बच्चे है। आप अपने पति से झूठ बोलकर आई हैं कि मैं अपनी बीमार माँ को देखने जा रही हूँ, सच बात यह है कि आप अपने प्रेमी से मिलने आई हैं, वह आपकी बगल में ही बैठे हैं। महिला स्तब्ध रह गई और वहाँ से उठकर चली गई, तब पीटर हरकोस ने अनुभव किया कि वह ईश्वरीय देन का दुरुपयोग कर रहा है। यह घटना उसे बहुत दिन तक अशान्त किये रही।

हालैण्ड पर जर्मनी का अधिकार था तो भी हालैण्ड वासियों का गुप्त संगठन जर्मनी को उखाड़ फेंकने के लिये प्रयत्नशील था। पीटर हरकोस की प्रसिद्धि इस संगठन के लोगों तक भी पहुँची पर चूँकि उन लोगों को सिद्धि के इस दर्शन का बिल्कुल ज्ञान नहीं था, इसलिये कोई सही निष्कर्ष निकाल पाने की उनमें क्षमता भी न थी। उन्होंने हरकोस को जर्मनों का गुप्तचर समझा और उसे मार डालने का अवसर ढूँढ़ने लगे।

हमारे देश के ऋषियों और योगियों ने अतीन्द्रिय तत्वों की प्राप्ति कर ली, तब उनके सामने भी यह प्रश्न आया था कि वे स्वयं ही समर्थ और प्रभुता सम्पन्न बने रहें अथवा उसकी वैज्ञानिक जानकारी जनसाधारण को भी दें। तब उन्होंने स्पष्ट विचार कर लिया था कि यदि सर्वसाधारण को यह ज्ञान न दिया गया तो अज्ञानी वर्ग इसी तरह का संकट उत्पन्न कर सकता है। मनुष्य जीवन की अनिवार्य आवश्यकता और लोकसेवा के भाव की पूर्ति के लिये भी यह आवश्यक था, तभी तत्व-दर्शन का प्राकट्य हुआ। हालैण्ड वासी की क्या, सारे पश्चिम के लिये यह एक अनहोनी बात थी। कुछ लोग तो पीटर हरकोस से लाभ भी लेते थे पर चूँकि अपनी इस शक्ति का वैज्ञानिक विवेचन वह स्वयं ही नहीं कर सकता था, इसलिये उसकी आकस्मिक योग्यता उसके संकट का ही कारण बनी।

एक दिन जब पीटर हरकोस अस्पताल में ही था, उक्त संगठन का एक व्यक्ति उससे मिलने आया। उसने आते ही सन्देह भरी दृष्टि से पूछा—"महाशय क्या आप बता सकते हैं, आपके पास यह शक्ति कैसे आई ?" विज्ञान का पता होता तो हरकोस कुछ बताता। उसने केवल वह दुर्घटना बता दी, जिसके बाद ही उसमें यह अतीन्द्रिय बोध की क्षमता आई थी पर इतने से उस व्यक्ति को संतोष न हुआ। उसने गला घोंटकर पीटर हरकोस को मार डालने का निश्चय किया। हाथ बढ़ाकर उसने गला घोंटना प्रारम्भ भी कर दिया तभी उसकी इस शक्ति ने साथ दिया। उसने स्पेनिश भाषा में एक वाक्य कहा। यह वाक्य सुनते ही वह व्यक्ति स्तब्ध रह गया क्योंकि उस समय वह भी अपने मन में ठीक वही सोच रहा था, जो हरकोस ने स्पेनिश में कहा था। उसे विश्वास हो गया कि पीटर हरकोस के पास अतीन्द्रिय बोध की क्षमता है पर पीटर हरकोस स्वयं अपने लिये उसी तरह चिन्तित हो गया, जिस तरह भ्रष्ट तरीके से प्राप्त धन के पास जाने पर भी लोग चिन्तित और भयभीत बने रहते हैं। यदि यह सब कुछ क्रमबद्ध योगिक पद्धति और किसी के मार्गदर्शन में मिला होता तो सम्भव है हरकोस सैकड़ों औरों को भी जीवन लक्ष्य की राह दिखाता पर वह स्वंय अपनी व्याख्या कर पाने में असमर्थ था, दूसरे को बेचारा क्या समझाता ?

अन्तर्दृष्टि का एक लाभ यह तो हुआ कि पीटर हरकोस जब अपने घर लौटा तो उसे अपने सभी पड़ौसी, सगे-सम्बन्धी नग्न-सत्य के रूप में परिलक्षित हुये। उसके सामने कोई झूठ बोलता तो भले ही कुछ कहता नहीं पर वह साफ समझ लेता। अतीन्द्रिय क्षमता किसी की भी गुप्त से गुप्त बात प्रकट कर देती, फलस्वरूप लोगों को देखने की उनकी दृष्टि में एकदम परिवर्तन आ गया। अब वह अपने को एक विराट् संसार के सत्य-प्रतिनिधि के रूप में देखता और लोगों को नेकी और भलमनसाही पर चलने की ही प्रेरणा देता, क्योंकि वह स्पष्ट देख रहा था कि अपने स्वार्थों के लिये अपनाया हुआ मिथ्या और बनावटी जीवन ही लोगों की विपत्ति और दुर्गति का कारण होता है। कुछ उसकी बातें सुनते, कुछ नहीं भी सुनते थे। पीटर हरकोस स्वयं उससे दुःखी था, क्योंकि निष्काम कर्म का उपदेश पढ़े बिना ही तो उसे सिद्धि मिली थी। वह अन्ततः उसे भार ही प्रतीत हुई। अपनी क्षमता का वह अपने भविष्य को जानने में उपयोग भी नहीं कर सकता था, इसलिये इतनी शक्तिशाली सामर्थ्य होते हुये भी ईश्वरीय घटक के रूप में वह अपने आप को छोटा ही पता।

पीटर हरकोस तब आत्मशान्ति के लिये अपने देशवासियों के संगठन में सम्मिलित हो गया। समाज सेवा से उसे शान्ति भी मिली पर एक दिन वह जर्मनों द्वारा कैद कर लिया। बन्दी शिविर में उसे बहुत कष्ट दिया गया पर वह वहाँ भी लोगों को धैर्य बँधाता और कहता सब लोग ४ जून १९४० को मुक्त हो जायेंगे। मुक्त भी हुये पर ६ जून को। गलती थोड़ी ही थी पर उसने अनुभव किया कि अन्धाधुन्ध प्रयोग से यह शक्ति चूक भी सकती है। फिर भी उसने सीमित प्रयोग बन्द नहीं किया।

१९४५ में उसने हालैण्ड के एक 'अभिनय दल' में नौकरी कर ली। पर यहाँ भी उसने वही कठिनाई अनुभव की। ५ ही सप्ताह में उसने यह नौकरी छोड़ दी और पुनः दुःखी देशवासियों की सेवा में लग गया। उसे सबसे अधिक शान्ति देशवासियों की सेवा में ही मिलती। इस बीच उनके कई प्रख्यात चमत्कारिक प्रयोग हुये। राटरडम के कैप्टेन फाल्कन का लड़का समुद्र में गिर गया था। उसका शव नहीं मिल रहा था। अपनी अन्तर्दृष्टि से पीटर हरकोस ने जिस स्थान में बताया वहीं शव मिल गया। बेल्जियम के जार्ज कार्नेलिस के हत्यारों का पता भी उसी ने बताया। इस मामले में हरकोस की कड़ी परीक्षा हुई थी। ऐसे अनेक मामलों में उसकी पत्नी मारिया उसे बहुत साथ देती आई थी, इसलिये हरकोस यह भी अनुभव करने लगा था कि वह इन चमत्कारों में पड़कर पारिवारिक कर्तव्यों की उपेक्षा कर रहा है, इसलिये वह अपनी इस क्षमता को समेटना भी चाहता था पर जब उसने अपने आपको चारों ओर से घिरा पाया तो उसने इस योग्यता को ही पारिवारिक भरण-पोषण का मार्ग चुन लिया। बेल्जियम के एक होटल में

अपना आफिस खोलकर पीटर हरकोस शुल्क लेकर लोगों की सेवायें करने लगा। वह कभी-कभी सार्वजनिक स्थानों में जाकर धार्मिक उपदेश भी करने लगा। इस बीच उसने अपनी योग्यता भी खूब बढ़ाई। हरकोस पहले तीन भाषायें जानते थे अब वे सात भाषायें बोल और समझ सकते हैं।

एक भारतीय स्त्री ने भी हरकोस को हेग स्थित भारतीय दूतावास के माध्यम से सहायता के लिये पत्र लिखा। उसका लड़का खो गया था। हरकोस ने पत्र लिखकर बताया लड़का बम्बई में किसी सर्कस में काम कर रहा और कुछ ही दिन में घर आ जावेगा, जबकि अब तक जो जानकारियाँ मिली थीं, उनसे उसके डूब जाने की आशंका हो रही थी। कुछ ही दिन में लड़का घर पहुँच गया। सचमुच उन दिनों वह सर्कस में ही काम करता था।

तस्कर व्यापार में सहायता के लिये एक फ्रांसीसी से हरकोस का बहुत-सा धन भी मिला पर उससे उसे बड़ी अशांति मिली, फलस्वरूप उसने यह निश्चय कर लिया कि वह किसी अनैतिक कार्य में कभी भी सहयोग नहीं करेगा। उसकी बड़ी इच्छा थी कि अतीन्द्रिय सत्ता का वैज्ञानिक अध्ययन किया जाये ताकि वह सर्वसाधारण के लिये भी उपलब्ध हो सके। एण्टवर्प के मनोवैज्ञानिक डॉ० रैने डेलार्ट ने काफी अध्ययन भी किया, किन्तु वे भी कोई अन्तिम हल नहीं निकाल सके।

इसी बीच अमेरिका के वैज्ञानिक डॉ० अन्द्रीचा पुरिचा का पत्र मिला, उन्होंने हरकोस को अमेरिका आमन्त्रित किया। ६ माह तक प्रयोग की उनकी इच्छा थी। हरकोस प्रसन्नतापूर्वक अमेरिका गये। वहाँ उन्हें कई-कई घण्टे एक बन्द कमरे में बैठना पड़ता। उनके चारों ओर २५०००० वाट शक्ति की विद्युत-धारा प्रवाहित करके डॉ० पुरिच ने सोचा कि यदि कोई विद्युत शक्ति बाहर से आती होगी तो न आ सकेगी पर हुआ उल्टा। उस कमरे में पहुँचते ही उनका अतीन्द्रिय बोध और भी बढ़ जाता, इससे उन्होंने स्वीकार किया कि यह शक्ति २५०००० वाट विद्युत शक्ति से भी अधिक प्रखर होती है। दुर्भाग्य से उन्हीं दिनों डॉ० पुरिच की संरक्षिका का स्वर्गवास हो गया और वह प्रयोग जहाँ का तहाँ ही रुक गया। पर उन्होंने यह अवश्य सिद्ध कर दिया कि हरकोस में अतीन्द्रिय ज्ञान की क्षमता बहुत अधिक मात्रा में विद्यमान है।

पीटर हरकोस का जीवन इस विद्या में व्यवसाय भर का हो गया था। वे अनेकों लोगों की सहायता तो करते थे पर यह नहीं बता सकते थे, यह सत्ता क्या है ? सम्भव है उन्होंने जो जिज्ञासाएँ सूक्ष्म एवं अतीन्द्रिय क्षमताओं के प्रति उत्पन्न की हैं, वह लोगों को भारतीय तत्व-दर्शन से कुछ सीखने की प्रेरणा देते। अतीन्द्रिय सत्ता के प्रति विश्वास उत्पन्न करने में इस दुर्घटना या घटना ने जो सहायता दी है, वह अपने आप में ही एक चमत्कार ही है।

पीटर हरकोस ने अपने यह सम्पूर्ण संस्मरण 'साइक' नामक पुस्तक में छापे हैं। यह पुस्तक 'आर्थर बार्कर लिमिटेड लन्दन' ने प्रकाशित की है। हरकोस के संस्मरण संसार के सभी समाचार पत्रों ने छापे हैं। जून १९६३ में कादम्बिनी, ७ दिसम्बर १९६९ रहस्य रोमांच अंक साप्ताहिक हिन्दुस्तान और नवम्बर १९६४ नवनीत में भी यह संस्मरण विस्तार से छपे हैं।

पीटर के लिये यह सिद्धि कई बार जानलेवा भी सिद्ध हुई। पाँच-छह वर्ष उसके इतने संत्रास में बीते कि कोई अतीन्द्रिय क्षमता को भले ही सिद्धि या वरदान समझे, किन्तु पीटर के लिए तो वह अभिशाप ही सिद्ध हुई। उसके सैकड़ों मित्र रूठ गये, अनेकों लोग शत्रु बन गये, कईयों ने जान से भी मार देने की कोशिश की और सबसे बड़ी परेशानी तो यह कि किसी के बारे में ऐसी-वैसी बात कह देने पर स्वयं भी आत्मग्लानि होती थी। ये वर्ष पीटर ने कितनी तनावपूर्ण मनःस्थिति और परेशानी में बिताये होंगे, इसका अनुमान लगा पाना असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य है।

अपने आप पर थोड़ा नियन्त्रण पाते ही पीटर ने यह संकल्प कर लिया कि वह केवल उन्हीं अनुभूतियों को व्यक्त करेंगे जिनसे दूसरों का हित होता हो। यह संकल्प करने के बाद उनकी परेशानी कुछ सुलझने लगी। पर यह तथ्य अपने स्थान पर है कि जिन सिद्धियों तथा अतीन्द्रिय क्षमताओं की कामना की जाती है, वे वास्तव में प्राप्त हो जाएँ तो मनुष्य के लिए सुविधा होने के स्थान पर दिक्कतें ही खड़ी हो जाती हैं।

इसीलिए मनीषियों ने इस तरह की सिद्धियों को तो स्पष्ट रूप से आत्मकल्याण के मार्ग से बाधक माना है क्योंकि श्रद्धासित सिद्धियाँ प्राप्त हो भी जाएँ तो मनुष्य उनके प्रदर्शन में, उनसे लाभ उठाने के जाल-जंजाल में भटक जाता है और आत्मसाधन के पथ से विचलित हो जाता है। दूसरे उनकी लौकिक जीवन में भी क्या उपयोगिता ? शरीर को बड़ा या छोटा करने, किसी के मन की बात जान लेने या इसी तरह की और अन्य सिद्धियाँ प्राप्त कर ली जाएँ तो उनसे लाभ क्या होगा ? यह कोई स्पष्ट नहीं है। अस्तु, कल्याणकारी आत्मविकास के इच्छुक व्यक्तियों को सिद्धियों और अतीन्द्रिय क्षमताओं के प्रति आग्रह ही नहीं रखना चाहिए।

साधन सिद्धि समय साध्य है

आध्यात्मिक साधनाएँ भी वटवृक्ष की तरह अपने क्रम से बढ़ती और परिपक्व होती हैं। बड़े कार्यों में बड़ा समय लगना, बड़ा पुरुषार्थ करना और बड़ा धैर्य रखना भी आवश्यक होता है। उतावले लोग हथेली पर सरसों जमाने के लिए आतुर रहते हैं और तुर्त-फुर्त अपनी मन चाही उपलब्धि प्राप्त करने में अधीर बने रहते हैं। इस बाल अधीरता से काम कुछ नहीं बनता। जिस कार्य के लिए जितना समय लगाना चाहिए वह तो लगेगा ही।

नवजात बालक को प्रौढ़ बनने में पच्चीस वर्ष लगते हैं। बालक कक्षा में प्रवेश लेने के उपरान्त एम० ए० पास करने में १६ वर्ष लगते हैं। बोई हुई खजूर २० वर्ष में फल देती है। माँ के पेट में ९ महीने बच्चा रहता है। इन कार्यों में आतुरता प्रदर्शित की जाये और अभीष्ट परिणाम तत्काल मिलने की अधीरता दिखाई जाये इससे क्या ? वरन् हड़बड़ी से उत्पन्न हुई निराशा समय पर अभीष्ट प्रतिफल मिल सकने के लिए जो प्रयास किये जाने थे उनका रास्ता भी बन्द कर देगी। आतुरता

में वह सम्भावना भी नष्ट हो जाती है जो अब नहीं तो तब लक्ष्य तक पहुँचा सकती थी।

आध्यात्मिक साधनाएँ वस्तुतः चेतनात्मक क्षेत्र के शैशव को प्रौढ़ावस्था तक पहुँचाने की एक वैज्ञानिक पद्धति है, जिसके फलित होने में समय लगता है। उसकी धैर्यपूर्वक प्रतीक्षा किये बिना गुजारा नहीं।

अभीष्ट लक्ष्य तक पहुँचने में इतना भी समय लग सकता है जो वर्तमान जीवन में शेष रहे थोड़े से समय की अपेक्षा अधिक हो। ऐसी में यह नहीं सोचा जाना चाहिए कि हमें असफल रहना पड़ेगा। आत्मा की मृत्यु कभी नहीं होती केवल चोला बदलता रहता है। इस कमीज को पहन कर भोजन न किया उस कुर्ते को पहनकर कर लिया इससे क्या बनता बिगड़ता है ?

ऐसी कितनी ही घटनाएँ देखने में आती हैं जिनमें लोगों में अनायास ही अद्भुत शक्तियाँ विकसित होती देखी गई हैं, जबकि उन्होंने कुछ भी साधना नहीं की है। यह उनके पूर्व जन्मों के प्रयासों का प्रतिफल है। ऐसे कितने ही अतीन्द्रिय क्षमता सम्पन्न विवरण उपलब्ध हैं जिनमें इस जन्म की कोई विशेष साधनाएँ न होते हुए भी उनके अन्दर आश्चर्यजनक विशेषताएँ पाई गईं।

हालैण्ड की यूट्रेक्ट यूनिवर्सिटी के पैरासाइकोलोजी विभाग के अध्यक्ष प्रो. विलयम तेनहाफ ने कितने ही अतीन्द्रिय शक्ति का दावा करने वाले लोगों की जाँच करने की दृष्टि से उनके साथ भेंट की है। उनके शोध संग्रह में कितने ही प्रमाणों में सबसे अधिक प्रत्यक्ष उदाहरण यूट्रेक्ट नगर के एक सरल सौम्य नागरिक जेरार्ड क्रोयसेत का है। यह ५६ वर्षीय अपने बेटे, पोतों के साथ साधारण आजीविका उपार्जन के घरेलू धन्धों में लगा रहता है। दिव्य दर्शन उसका न तो व्यवसाय है और न वह इस क्षेत्र में अपनी कोई शोहरत चाहता है फिर भी उसमें जो जन्मजात उपलब्धि है वह लोगों को अचम्भे में डाल देती है और कौतूहलों की दृष्टि से कितने ही लोग उसके छोटे से घर पर जा पहुँचते हैं और तरह-तरह की पूछ-ताछ करते हैं।

क्रोयसेत की असाधारण क्षमता की ओर इस सन्दर्भ में दिलचस्पी रखने वाले कितने ही शोधकर्ता उसके पास पहुँचते हैं। उसने सहज स्वभाव से सबका स्वागत किया है और उस जाँच-पड़ताल में पूरा-पूरा सहयोग दिया है। न केवल हालैण्ड के वरन् आस्ट्रिया, फ्रान्स, जर्मनी, इटली, स्विटजरलैण्ड आदि के अतीन्द्रिय विज्ञान के सम्बन्ध में जाँच-पड़ताल करने वाले लोग उसके पास पहुँचे हैं। विलियम तेनहाफ ने तो उसके सम्बन्ध में क्रमबद्ध खोज की है और उसे सर्वसाधारण की जानकारी के लिए प्रकाशित भी किया है। उस खोज में कुछ घटनाओं को विशेष महत्त्व दिया गया है।

६ जनवरी १९५७ की बात है यूट्रेक्ट यूनिवर्सिटी में २५ दिन बाद एक लेक्चर होना था। उसके लिए आगन्तुकों की सीटें तो जमा दी गई थीं पर यह मालूम न था कि कौन दर्शक आवेगा और किस स्थान पर बैठेगा। प्रो. तेनहाफ ने क्रोयसेत को वह लेक्चर हाल दिखाया और अन्य प्रोफेसरों की उपस्थिति में यह पूछा कि क्या आप बता सकते हैं कि नौ नम्बर की सीट पर ३१ जनवरी की मीटिंग में कौन दर्शक बैठेगा ? यह उसके भविष्य ज्ञान सम्बन्धी जानकारी की जाँच के सम्बन्ध में पूछा गया था।

क्रोयसेत कुछ देर ध्यान मग्न रहे और फिर बताना शुरू किया कि दिहेग नगर की रहने वाली एक अधेड़ महिला वहाँ बैठेगी। उसके हाथ की एक अँगुली अभी-अभी डिब्बी खोलते समय कट गई है वह उस पर पट्टी बाँध रही है। यह महिला एक पशुपालक परिवार में जन्मी है जब वह छोटी थी तब उसके घर में आग लगी थी और एक कोठे में बँधे कुछ जानवर जल गये थे आदि।

वह सारा विवरण नोट कर लिया गया। वह बात गुप्त रखी गई। नियत तारीख को सचमुच ही उसी विवरण के अनुरूप एक दर्शक महिला वहाँ आ बैठी और उससे पीछे पूछ-ताछ की गई तो उसके सम्बन्ध में बताई गई बातें सभी सच निकलीं।

क्रोयसेत ने अपराधियों का और चोरियों का पता लगाने में पुलिस की अच्छी मदद की है। एक बार एक बहुमूल्य हीरों का हार चोरी होने की सूचना पुलिस में दर्ज हुई, क्रोयसेत से पूछा तो बताया वह हार चोरी नहीं गया। नाली में गिर पड़ा है और बहते-बहते अमुक स्थान पर जा पहुँचा है। लोग दौड़े और बताये हुए ठीक स्थान पर हार प्राप्त कर लिया गया।

नार्वे की मोयराना बस्ती में जा बसे एक डच नागरिक ने टेलीफोन से पूछा उसकी १५ वर्षीय लड़की जोर्गहाडजेन अचानक लापता हो गई है क्या आप उसका कुछ पता बता सकते हैं ? क्रोयसेत ने टेलीफोन पर ही उत्तर दिया कि वह एक झरने में डूबी पड़ी है। लाश को अमुक स्थान पर जाकर निकाल लिया जाये वह आधी डूबी पड़ी है और आधा भाग ऊपर चमक रहा है। ढूँढ़ने पर ठीक उसी स्थान पर लाश प्राप्त कर ली गई।

लन्दन के कुख्यात अपराधी जिंजर मार्क को क्रोयसेत की सहायता से पुलिस ने पकड़ा था। ऐसी-ऐसी अनेकों घटनाएँ हैं जिनमें उसकी अतीन्द्रिय शक्ति की यथार्थता का समर्थन किया गया है। उस व्यक्ति को यह क्षमता जन्म जात रूप से प्राप्त है। इसके लिए उसने कोई विशेष साधना आदि नहीं की है। वह भोला व्यक्ति अतीन्द्रिय शक्ति के सिद्धान्तों के बारे में भी अधिक कुछ बता नहीं सकता। केवल जो कुछ वह है उसे प्रकट करने में बिना संकोच अपने को प्रस्तुत करता रहता है।

अतीन्द्रिय विज्ञान, एक्ट्रा सेन्सरी परसेप्शन, द्वितीय दिव्य दृष्टि, सेकेन्ड साइट, छठी इन्द्रियानुभूति, सिक्सथ सेन्स के नाम से अति मानवी चेतना की चर्चा होती रहती है। ऐसे कितने ही मनुष्य देखे जाते हैं जिनमें इस प्रकार की विलक्षण क्षमताएँ पाई जाती हैं। उनमें अतीत ज्ञान, भविष्य दर्शन, मनःपाठन, दूरदर्शन आदि कितनी ही विशेषताएँ ऐसी हैं जो हर किसी में तो नहीं होतीं, पर किन्हीं विशिष्ट व्यक्तियों में पाई जाती हैं।

जिसने योग साधना एवं तपश्चर्या के कठोर प्रयत्नों से इन्हें पाया, जगाया है उनकी बात समझ में आती है पर जिसने

ऐसा कुछ नहीं किया फिर भी अद्‌भुत शक्तियाँ सम्पन्न पाया जाता है तो असमंजस उत्पन्न होता है कि जो बात सर्वसाधारण में नहीं है वही एक अन्य सामान्य व्यक्ति में कैसे उत्पन्न हो गई ?

इसका उत्तर एक ही है कि साधनाओं का प्रतिफल समय साध्य है। इस जन्म में यदि उनका फल नहीं मिल सका तो वह आगे कभी न कभी अवश्य मिल जायगा। नाम, रूप बदल जाने के बाद अपने परिश्रम का मूल्य मिले तो भी कोई घाटे की बात नहीं है। अनायास जिनमें कुछ चमत्कारी सिद्धियाँ पाई जाती हैं वे प्रायः इसी प्रकार के साधक होते हैं जो फल प्राप्त करने से पूर्व ही अपना शरीर छोड़ चुके थे।

मनुष्य की अन्तःशक्ति के विभिन्न प्रयोग

स्थूल के परिणाम स्वल्प हैं। सूक्ष्म की गहराई में उतरते हैं तो एक के बाद एक बहुमूल्य सम्पदाएँ उपलब्ध होती हैं। धरती की ऊपरी परत कूड़े-कचरे और कंकड़-पत्थरों से भरी है। उसे जैसे-जैसे गहरा खोदते हैं पानी से लेकर अनेकानेक प्रकार की बहुमूल्य खनिज सम्पदाएँ मिलती चली जाती हैं। रेत के अदृश्य जैसे परमाणु का स्थूल मूल्य नगण्य है। उसकी बाजारू कीमत नहीं के बराबर है, पर जब उसकी भीतरी शक्ति की कुरेद-बीन की जाती है तो पता चलता है कि उस पदार्थ के तुच्छातितुच्छ घटक में कितनी महान शक्ति के अजस्र भण्डागार भरे पड़े हैं। विस्फोट के समय परमाणु शक्ति का प्रायः एक लाखवां भाग ही विनाशलीला में संलग्न हो पाता है, शेष तो तत्काल अन्तरिक्ष में विलीन हो जाता है। यदि एक परमाणु में अन्तर्निहित ऊर्जा का केन्द्रीकरण किया जा सके और उसे ध्वसं कृत्य में लगाया जा सके तो उतने से ही इस समस्त भू-मण्डल का विनाश हो सकता है। इसी प्रकार उस शक्ति का सृजन प्रयोजन में उपयोग हो सके तो धरती को प्रायः उतनी ही गर्मी मिल सकती है जितनी कि सूर्य से अपनी दुनिया को उपलब्ध होती है। '**अणोरणीयान् महतो महीयान्**।' के श्रुति वचन में इसी तथ्य की ओर इंगित किया गया है।

व्यक्ति की रहस्यमयी क्षमताओं को अनगढ़ स्थिति में उबार कर उसे शुद्ध एवं प्रखर बनाना ही योग-साधना का उद्देश्य है। जो हमारे लिए आवश्यक एवं उपयोगी है। वह सब कुछ हम अपने ही भीतर से अपने ही पुरुषार्थ से आत्म नियन्त्रण की प्रक्रिया अपना-कर सहज ही प्राप्त कर सकते हैं। इसी तथ्य को प्रत्यक्ष करना योग-साधना का उद्देश्य है।

योग-साधना द्वारा कई प्रकार की अलौकिक क्षमताएँ उत्पन्न की जा सकती हैं और उसका उपयोग सत्प्रयोजनों में करने से उतना हित साधन हो सकता है जितना सामान्य भौतिक क्षेत्र में सम्पन्न किये जाने वाले पुरुषार्थ द्वारा सम्भव नहीं है।

व्यक्तिगत सामर्थ्य की दृष्टि से देखा जाए तो भी प्रतीत होगा कि सामान्य प्रयत्नों से शरीर बल, बुद्धि बल आदि की जितनी वृद्धि हो सकती है उसकी तुलना में साधना विज्ञान का आश्रय लेकर अधिक समर्थ एवं सुविकसित बना जा सकता है।

जापान में बौद्ध सम्प्रदाय की एक योग विद्या—जेन-साधना के नाम से प्रख्यात है। इसके अभ्यासियों में कई प्रकार की अलौकिकताएँ पाई जाती हैं। मानसिक और आत्मिक दृष्टि से तो इस साधना में उच्चस्तरीय सिद्धियाँ पाई जाती हैं। साथ ही उसके कई अभ्यासी शारीरिक दृष्टि से भी प्रख्यात पहलवानों को भी अवाक् कर देने वाले कार्य कर दिखाते हैं।

जेन-साधना भारतीय योगविद्या का ही एक अंग है। पाँचवीं शताब्दी में बौद्ध भिक्षुओं के जत्थे भारत से जापान पहुँचे थे। उन्होंने धर्म प्रचार के साथ जिस योगविद्या का वहाँ विस्तार किया था उसकी विशेषता उस देश में अभी जेन-साधना के रूप में मौजूद है।

मास एक नाटा-दुर्बल व्यक्ति था। जन्मा कोरिया में, पला जापान में। वहाँ उसने विशेष जापानी योगविद्या, जेन-साधना सीखी। इसी के अभ्यास से वह चमत्कारी योद्धा बन गया।

वह दो पकी हुई मजबूत ईंटों हथेलियों के बीच रख कर अँगुलियों के खाँचे भिड़ाकर उन्हें दबाता और उन ईंटों का चूरा बना देता। दर्शक अवाक रह जाते।

उसने जापान में कई पहलवानों को हरा दिया। तब उन सबने मिलकर उसे सांड से कुश्ती लड़ने की चुनौती दी। मास ने साफ मना कर दिया, पर उसे बार-बार चिड़ाया जाने लगा, तो वह तैयार हो गया। एक अत्यन्त क्रोधी, बेरहमन भारी विशालकाय सांड को नशा पिला कर दंगल में लाया गया। विशाल जनसमुदाय और डॉक्टरों-पुलिस वालों के दल भी मौजूद थे। निहत्थे मास पर प्रशिक्षित सांड ने पहले प्रहार किया। मास अटल रहा और जवाब में जोरदार घूँसा मारा। घूँसा खाते ही १३ मन भारी सांड चक्कर खाकर गिर पड़ा और दम तोड़ दिया।

यही मास अमेरिका गया और वहाँ के प्रख्यात पहलवानों को चुनौती दी। अमरीका के तत्कालीन चेम्पियन पहलवान डिकरियल के साथ दंगल रखा गया। डिकरियल था ६ फुट ७ इंच ऊँचा और मास सिर्फ ४ फुट १ इंच। अखाड़े में दोनों की जोड़ी कतई नहीं जम रही थी। कई लोग देखते ही उठने लगे यह मानकर नतीजा तो साफ व निश्चित है, पर थोड़ी ही देर में मास ने डिकरियल को चित्त कर दिया और १ हजार डॉलर का इनाम जीत लिया।

अमेरिकी जनता इस बेतुकी-सी बात को हजम न कर सकी। मास पर आरोपों की बौछार होने लगी। मास खिन्न हो गया। अन्ततः उसने विज्ञापन द्वारा चुनौती दी कि उसे हराने वाले किसी भी अमरीकी को वह जीती गई रकम १ हजार डॉलर सहर्ष लौटा देगा। दूसरा दंगल रचा गया। एक अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति का पहलवान जो कि अमेरिकी पुलिस अफसर था मुकाबले में था, पर मास ने उसे भी ऐसी पटकनी मारी कि उसकी दो हड्डियाँ ही टूट गई, अमरीकी विक्षुब्ध और उत्तेजित हो उठे।

मास अपनी इस शक्ति का कारण योगसाधना को बताता था। उसने जेन-साधना में निष्णात महाभिक्षु फुनाकोशी से दीक्षा ली और उनका अन्तेवासी बन योगाभ्यास करता रहा। पर्वतों की निर्जन गुफाएँ, बर्फ से ढकी कन्दराएँ उसका साधना स्थल

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

थीं और वनस्पतियाँ उसका आहार थीं। कई वर्ष बाद वह जेन-साधना में सिद्ध पुरुष बन कर लौटा।

तन्त्र ग्रन्थों के प्रख्यात लेखक और कलकत्ता के तत्कालीन प्रधान जज सरजान बुडरफ ने अपने एक संस्मरण में लिखा है, वे ताजमहल होटल के लाऊन्ज पर बैठे थे उनके साथ एक भारतीय मित्र थे। संकल्प शक्ति की चर्चा चल रही थी। उन मित्र ने इसकी प्रामाणिकता सिद्ध करने के लिए कहा—'इतना तो मैं भी कर सकता हूँ कि सामने जो बीस के लगभग मनुष्यों का झुण्ड बैठा है उसमें से आप जिसे कहें उठा देने और बिठा सकने का जादू दिखा सकूँ। बुडरफ ने उनमें से एक व्यक्ति को चुन दिया। मित्र ने अपनी शक्ति का प्रयोग किया। फलतः ठीक वही व्यक्ति अकारण उठ खड़ा हुआ-चला और फिर अपने स्थान पर वापस बैठ गया।

फ्रांस की एक लड़की एनेट फ्रेलन की विचित्रता भी अपने समय में बहुत प्रख्यात रही। जब वह बारह वर्ष की थी तभी वह अविज्ञात प्रश्नों के उत्तर देती थी। यह उत्तर उसकी चमड़ी पर इस तरह उभरते थे, मानो किसी ने कागज पर स्याही से लिखे जाने की तरह उन्हें लिख दिया हो। यह अक्षर अपने आप ही उभरते थे और कुछ ही मिनट में गायब हो जाते थे।

२८ जुलाई १९६९ को दक्षिण अफ्रीका के न्यूकेसिल नगर में असंख्य जनसमूह के सम्मुख योगविद्या का चमत्कार प्रदर्शन अन्तर्राष्ट्रीय चर्चा का विषय बना रहा।

बात यह थी कि एक चाय का होटल चलाने वाला साधारण-सा युवक—पीटरवान डेनवर्ग—योगविद्या के चमत्कारों के बारे में बहुत कुछ सुनता, पढ़ता रहा था। उसने भारत को योगियों के देश के नाम से जाना था। अस्तु अपनी सारी जमा पूँजी समेट कर भारत चल पड़ा और तिब्बत हिमालय क्षेत्र में भ्रमण करके चमत्कारी विद्याएँ बहुत समय तक सीखता रहा।

जब वह अपने देश वापस लौटा तो लोगों ने उसे चमत्कार दिखाने के लिए विवश कर दिया। अन्ततः वैसे प्रदर्शन की व्यवस्था की गई। एक लम्बे-चौड़े चबूतरे पर पत्थर के दहकते कोयलों की लपटों में डेनवर्ग को देर तक चहल कदमी करनी थी। अस्तु, उसे देखने के लिए दूर-दूर से भारी संख्या में एकत्रित हुए लोगों से प्रदर्शन का विस्तृत मैदान खचाखच भर गया। नियत समय पर प्रदर्शन हुआ और ज्वालाओं के बीच युवक नंगे पैरों बहुत समय तक टहलता रहा। निकला तो उसके शरीर पर कहीं एक छाला भी नहीं था।

मंत्र साधना के नाम पर चल रही ठगी भी कम नहीं है। उस आड़ में धूर्तों का काला बाजार भी खूब पनपता है, इतने पर भी यह नहीं मान बैठना चाहिए कि इस क्षेत्र में तथ्य कुछ नहीं है। यदि गहराई में उतरा जाये तो प्रतीत होगा कि साधना विज्ञान की भी अपनी उपलब्धियाँ हैं और उनके सहारे दिव्य-क्षमताओं के अभिवर्द्धन की दिशा में बहुत कुछ किया जा सकता है।

एक अंग्रेज शिकारी डेविड लेजली ने अपने अफ्रीकी शिकार यात्राओं के विवरणों की एक पुस्तक लिखी है 'जुलुओं के बीच' उसमें एक घटना यह है कि उसके साथी हाथियों की शिकार के लिए घेराबन्दी करते हुए कहीं गायब हो गये और बहुत ढूँढ़ने पर भी उनका कहीं कुछ भी पता न चला। इस तलाश में 'जुलु' तान्त्रिक की सहायता ली गयी। उसने उन सभी साथियों की शक्लें, वस्तुएँ आदि का ब्यौरा बताते हुए यह भी कहा कि वे इस समय अमुक स्थान पर हैं। बताये हुए स्थान पर जाकर उन्हें खोज लिया गया।

घना के भूतपूर्व राष्ट्रपति एन्क्रुमा सदैव एक मांत्रिक की सलाह लेते थे। कीनिया के प्रधानमन्त्री जोमो केन्याटा का मान्त्रिकों पर विश्वास है। वे जब भी विदेश प्रवास पर जाते हैं, अपने साथ एक मान्त्रिक भी ले जाते हैं।

मनुष्य शरीर की सामान्य विद्युत शक्ति से दैनिक जीवन का क्रियाकलाप चलता है किन्तु यह नहीं मान बैठना चाहिए कि मानवी ऊर्जा की मात्रा इतनी ही सीमित है। यदि वह किसी प्रकार बढ़ सके तो मनुष्य शरीर चलते-फिरते बिजली घर के रूप में परिणत हो सकता है। इस शक्ति को योगीजन भले कार्यों में और दुष्ट प्रकृति के लोग दुष्प्रयोजनों में लगाते हैं। आग का भोजन बनाने और घर जलाने में कुछ भी प्रयोग हो सकता है। यही बात साधना द्वारा उत्पन्न हुई आत्मशक्ति के सम्बन्ध में भी है।

एक अन्य रूसी महिला 'नेल्या भिखायलोक' में सहसा असामान्य इच्छा शक्ति उस समय विकसित हो गई, जब वह युद्ध के दिनों में सैनिक के रूप में मोर्चे पर लड़ते हुए शत्रु के गोले से गम्भीर रूप में आहत होकर अस्पताल में आरोग्य लाभ कर रही थी।

मास्को विश्वविद्यालय के जीवविज्ञान शास्त्री एडवर्ड नोमोव ने नेल्या का परीक्षण विश्लेषण किया। प्रयोगशाला में उसने मेज पर बिखरी माचिस की तीलियों को बिना छुए, तनिक ऊपर से हाथ घुमा कर जमीन पर गिरा दिया। फिर वही तीलियाँ काँच के डिब्बे में बन्द कर दी गईं। नेल्या ने बन्द डिब्बे के ऊपर हाथ घुमाया, तो तीलियों में हलचल मच गई।

इसी तरह सोवियत लेखक बदिममारीन के साथ भोजन करते समय नेल्या ने मेज पर थोड़ी दूर पड़े रोटी के टुकड़े पर अपना ध्यान एकाग्र किया, तो वह टुकड़ा खिंचकर नेल्या के पास आ गया। फिर उसने झुककर मुँह खोला, तो वह टुकड़ा नेल्या के मुँह में उछलकर समा गया। नेल्या का परीक्षण भलीभाँति रूसी वैज्ञानिकों ने किया और पाया कि उसके मस्तिष्क में विद्युत शक्ति-सी कौंधती है और देह से चुम्बकीय शक्ति निकलती है।

बिजली के भले बुरे परिणाम सभी को विदित हैं। तान्त्रिक वर्ग के लोगों में से कितने उसका दुष्प्रयोजनों में व्यय करते और अपने प्रति-पक्षियों को हानि पहुँचाते भी देखे गये हैं।

युगांडा के एक भूमिगत संगठन 'दिनी बा मसांबबा' के कार्यों की जानकारी के लिए नियुक्त एक ब्रिटिश गुप्तचर अधिकारी ने अपनी संस्मरण पुस्तक में विभिन्न घटनाओं का उल्लेख किया है। ये ब्रिटिश अफसर जान क्राफ्ट प्रगतिशील अन्धविश्वासों से सर्वथा मुक्त, कुशाग्र बुद्धि, साहसी व प्रशान्त मस्तिष्क से काम करने वाले हैं। उन्हें जादू टोने पर तनिक भी विश्वास नहीं था। पर जब वे गुप्त संगठन का पता लगाने में

सक्रिय हुए, तो उन्हें चेतावनी दी गई कि वे इस काम से हाथ खींच लें। जब वे न माने, तो उनके ऊपर सर्वथा अप्रत्याशित व अस्वाभाविक तौर पर महाविषैले सर्पों से आक्रमणों की योजना बनाई गई। वे एक भोज में गए, वहाँ से लौटते समय, आगे अनेक अतिथि तो निरापद चले गए, पर जब जानक्रिफ्ट सीढ़ियों पर उतरने लगे, तो वह भयंकर विषधर घात लगाए बैठा था। मेजबान ने जानक्रिफ्ट को एकदम से धक्का दिया, न ठेल दिया होता, तो वह उन्हें डंसने ही वाला था।

एक बार वे अकस्मात एक सहयोगी के यहाँ पहुँचे, तो वहाँ भी एक भयंकर फणिधर ने तीखी विषधार उनकी आँखों की ओर छोड़ी। सहकर्मी सतर्क व चुस्त था, उसने उन्हें तत्काल नीचे गिरा दिया और जहरीली धार ऊपर निकल गई, अन्यथा उनका प्राणांत हो जाता या फिर वे जन्मभर के लिए अन्धे हो जाते।

फिर एक बार मोटर के दरवाजे के पास दूसरी बार बिस्तर पर ही भयंकर विषैले सर्प दीखे। एक बार क्रिफ्ट के दफ्तर के अन्धेरे कोने में सर्प दुबका बैठा था। घटनाओं का विश्लेषण स्पष्ट बताता था कि यह संयोग मात्र नहीं हो सकता। उनके अकस्मात दूर कहीं पहुँचाने की सूचना उनके शत्रुओं को भी नहीं मिल सकती थी, अतः यह सम्भवना भी नहीं मानी जा सकती थी कि वे लोग चुपके से ये सर्प छोड़ जाते रहे होंगे। फिर भोज में आये अनेक नागरिकों में से सिर्फ क्रिफ्ट पर ही प्रहार की चेष्टा सर्प ने क्यों की ? घटनाएँ इस तथ्य को मानने को विवश करती हैं कि वहाँ प्रचलित यह मान्यता सही हो सकती है कि यहाँ के मान्त्रिक सर्पों को वश में कर उनका इस तरह मनचाहा प्रयोग करते हैं।

नवभारत टाइम्स के ३० जून १९७६ के अंक में प्रकाशित हुए राजकुमार मिश्र के एक लेख के अनुसार—"मध्यप्रदेश में सरगुजा में सन् १९३४-३५ में सरगुजा नरेश के दरबार में एक महिला की पेशी हुई, जिस पर आरोप थे कि मारण-मन्त्र के द्वारा उसने अनेक हत्याएँ की हैं, तथा सरगुजा में एक वर्ष जल वृष्टि न होने का कारण भी उसका मन्त्र प्रयोग था।"

उस आदिवासी युवती ने भरे दरबार में अपना अपराध स्वीकार कर लिया। क्योंकि यह आदिवासियों की स्वाभाविक प्रवृत्ति रही है कि वे अपने द्वारा किये कामों को स्पष्ट स्वीकार कर लेते हैं। जब महाराजा ने मारण मन्त्र की शक्ति का प्रदर्शन देखना चाहा तो एक स्वस्थ हृष्टपुष्ट मुर्गा एक राज-कर्मचारी के हाथ में रखा गया। युवती ने एक निश्चित दूरी पर खड़े होकर एक तिनका अपने हाथ में पकड़ा, मन्त्र बोला और तिनके को बीच से तोड़ दिया तिनका टूटने के साथ ही राज-कर्मचारी के पास रखा स्वस्थ मुर्गा सहसा ऐंठा, छटपटाया और निष्प्राण हो गया।

इस घटना से यह भी स्पष्ट है कि उसका मारण मन्त्र एक निश्चित सीमा के भीतर ही प्रभावी हो सकता था। उक्त युवती ने बताया भी कि जब ग्रामीणों को उस पर शक हो गया और वे उससे दूर-दूर ही रहने लगे तो उसने छटपटाकर मरते प्राणी को देखने में आनन्द की अनुभूति होने की अपनी प्रवृत्ति का परितुष्ट करने के लिए अपने पति, अपने ससुर और डेढ़ वर्ष के अपने मासूम बच्चे पर ही मारण-मन्त्र का प्रयोग किया। स्पष्ट है कि अविकसित मस्तिष्क को प्राप्त यह विलक्षण शक्ति भी उसके लिए एक नशा बन गई थी। उसमें आत्मनियन्त्रण नहीं था और अपनी शक्ति के प्रभाव को देखने के लिए उसमें उन्माद जागा करता था।

शक्ति एवं सम्पत्ति का भला या बुरा उपयोग करना प्रयोक्ता के लिए ही प्रतिक्रिया उत्पन्न करता है। इससे इन क्षमताओं की उपयोगिता किसी प्रकार कम नहीं होती, उनका उपार्जन एवं अभिवर्द्धन उद्देश्य को सामने रख कर ही किया जाना चाहिए।

चमत्कार बनाम अविज्ञात का रहस्योद्घाटन

बालकों का मस्तिष्क अविकसित तथा अपरिपक्व होता है। उनमें सहज जिज्ञासा, दृश्य संसार के रहस्यों को जानने की पायी जाती है। जिन गुत्थियों को वे सुलझा पाने में असमर्थ होते हैं, वे उन्हें चमत्कार लगती हैं। रेलगाड़ी, वायुयान, मोटर, राकेट, कारखानों आदि का चलना भी छोटे बच्चों को अचम्भित करता है पर बड़े होने तथा बुद्धि के विकसित होते ही उनके चलने का सिद्धान्त समझते ही उन्हें वे सहज-साधारण कृत्य जान पड़ते हैं। चमत्कार जैसी उनमें कोई बात नहीं दिखायी पड़ती।

बालकों में ही नहीं, अविकसित मानसिक स्तर की जनता में भी चमत्कारों के प्रति बहुत आकर्षण होता है। बाजीगरी, नट विद्या, अजायबघर, चिड़ियाघर, सरकस आदि अनेकों आविष्कार मनुष्य के इस कौतुक-कौतूहल अथवा चमत्कार की आकांक्षा रखने वाली वृद्धि को तृप्त करने के लिए ही हुए हैं। पर तथ्यों को वैज्ञानिक कसौटी पर कसने पर उनमें चमत्कार जैसी कोई बात अन्ततः सामने नहीं आती। हाथ की सफाई विशेष करतब का अभ्यास जैसी विशेषताएँ ही बाजीगरी, नटविद्या की सफलता के कारण हैं।

चमत्कारों का तात्विक विश्लेषण करने पर जो निष्कर्ष सामने आता है वह यह है कि बुद्धि की पकड़ सीमा में जो घटनाएँ नहीं आतीं वे चमत्कार मालूम पड़ती हैं अथवा जो बातें आमतौर पर प्रचलन में नहीं हैं, तब तक चमत्कारी प्रतीत होती हैं। जैसे ही उनका रहस्य प्रकट होता है, उनमें कोई आश्चर्यजनक बात नहीं जान पड़ती। वैज्ञानिक आविष्कारों के आरम्भिक दिनों में रेल, तार, टेलीफोन, वायुयान, मोटर आदि का नया-नया प्रचलन हुआ था। तब लोग इन्हें देखने के लिए सौ दो सौ मील पैदल चल कर आते थे, पर धीरे-धीरे जब ये वस्तुएँ नित्य के व्यवहार में सर्वत्र प्रयोग में आने लगीं तो कुछ दिनों में उनका आकर्षण जाता रहा-वह चमत्कार समाप्त हो गया। पहली बार जब डायनामाइट का विस्फोट हुआ तो उसे एक अचरज की घटना माना गया। विस्फोट का सूत्र हाथ लगते ही वह एक सामान्य बात हो गयी है। जो परमाणु बम की बनावट तथा नाभिकीय विस्फोट के सिद्धान्त से अपरिचित हैं, उनके लिए वह एक असाधारण घटना मालूम पड़ती है, पर भौतिक-शास्त्र के ज्ञाताओं के लिए वह उतनी आश्चर्यजनक

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org

नहीं। मानव विहीन उपग्रहों का, धरती का गुरुत्वाकर्षण चीरकर अन्तरिक्ष की कक्षा में प्रतिष्ठापित होकर चक्कर काटने लगना अज्ञ मस्तिष्कों को हैरत में डाल सकती है पर विज्ञान उसे तकनीकी ज्ञान की एक विशेष विद्या भर मानते हैं।

मानवी मन की बनावट ही ऐसी है कि वह असामान्य वस्तुओं अथवा घटनाओं को देखकर उनके पीछे किसी अविज्ञात गुप्त शक्ति की कल्पना करता है। बिजली चमकने जैसी प्राकृतिक बात का ठीक कारण न मालूम होने से यह मान्यता मन में बिठा ली गयी कि इन्द्र के हाथ में बज्र चमकता है, जो शरीर शास्त्र तथा आरोग्य विज्ञान से अनभिज्ञ हैं अथवा जिन क्षेत्रों में आधुनिक प्रगति नहीं हुई है, उनमें आज भी यह विश्वास प्रचलित है कि बीमारियाँ, महामारियाँ किसी देवी देवता के प्रकोप से पैदा होती हैं तथा उनकी अनुकम्पा से ही दूर हो सकतीं हैं। विभिन्न प्रकार के रोगों के उपचार के लिए उनमें भूतों, जिन्नों, प्रेतों, देवियों को भगाने वाले ओझा अभी भी पिछड़े हुए समाजों में पाये जाते हैं, पर विज्ञान की कसौटी पर उनकी मान्यताओं को मूर्खतापूर्ण माना जाता है तथा यह समझा जाता है कि उस समाज में घटनाओं की समीक्षा करने की बुद्धि संगत कसौटी का अभाव है। पर विज्ञान समाज में ये अन्धविश्वास नहीं पाये जाते।

अभी कुछ दशकों पूर्व तक प्रकृति की अनेकानेक घटनाएँ रहस्यमय बनी हुई थीं, जिसे भारी आश्चर्य की दृष्टि से देखा जाता रहा है, बारमूडा त्रिकोण की घटना अभी कल परसों की है जहाँ कि सैकड़ों जलयान, वायुयान यात्रियों समेत गायब होते रहें हैं जिनका कोई अता-पता अब तक नहीं मिल सका है। उसके साथ अनेकों किंवदन्तियाँ जुड़ गयीं। किसी अन्यान्य ग्रह के लोगों के कारनामें, देवता का प्रकोप आदि मानकर सन्तोष किया जाता रहा, पर विज्ञान की नवीनतम खाजों ने उन सभी मान्यताओं को झुठलाकर यह सिद्ध कर दिया कि वह भी एक प्रकार का 'ब्लैक होल' है। ऐसे केन्द्र एक ही सीध में पृथ्वी पर आठ स्थानों पर हैं, उत्तरी और दक्षिणी ध्रुव पर भी दो केन्द्र हैं। अन्तरिक्ष में असंख्यों की संख्या में ब्लैक होल मौजूद हैं। इनकी आकर्षण शक्ति अत्यधिक प्रचण्ड है। हाथी जैसे विशालकाय जीव भी उसके आकर्षण से तिनके की तरह खिचते हुए चले आते हैं। उस प्रचण्ड आकर्षण शक्ति के कारण ही जलयान, वायुयान बारमूडा त्रिकोण नामक स्थान पर जाकर गायब होते रहे। ऐसे प्रकृति रहस्यों की संख्या असंख्यों में हैं, जिनके विषय में आधुनिक विज्ञान को भी कुछ ज्ञान नहीं है, पर समझा जाता है कि उनके रहस्योद्घाटन में लगे वैज्ञानिक उन रहस्यों को उजागर करने में अगले दिनों समर्थ होंगे। पर जब तक कि प्रकृति की उन विलक्षणताओं का कारण नहीं ज्ञात हो जाता, तब तक के लिए वे रहस्य हैं।

सृष्टि का दूसरा घटक चैतन्य है, वह जड़ प्रकृति की तुलना में कहीं अधिक सामर्थ्यवान व अधिक विलक्षण है। जीवधारियों के भीतर उस चेतना का छोटा अंश कार्य करता, अनेकों प्रकार के अचम्भित करने वाले करतब दिखाता देखा जा सकता है। प्रकृति की तुलना में चेतना के अन्तराल में बहुमूल्य उपलब्धियों के भण्डागार मौजूद हैं, जिन्हें प्राप्त करके असम्भव समझे जाने वाले कार्यों को भी सम्भव बनाया जा सकता है।

उपलब्धियों को करतलगत करने की एक सशक्त प्रयोगशाला मानवी काया के रूप में हर व्यक्ति को मिली हुई है। वह इतनी विलक्षण तथा उपयोगी यन्त्रों से सुसज्जित है, जितनी प्रकृति की अन्य कोई भी संरचना नहीं है। शरीर, बुद्धि, मन, अन्तःकरण में से प्रत्येक को विभिन्न आयाम समझा जा सकता है। अभी मानवी विकास की सीमा मैटर तक सीमित है। शरीर और बुद्धि भी इसी सीमा के अन्तर्गत आते हैं। बुद्धि का वह हिस्सा जो अधिक समर्थ है—चैतन्य है जिसे वैज्ञानिक ९३ प्रतिशत मानते हैं, इन्ट्यूशन प्रज्ञा का है, वह अविज्ञात का क्षेत्र है। सात प्रतिशत का ही समस्त व्यापार अनेकानेक वैज्ञानिक उपलब्धियों के रूप में परिलक्षित हो रहा है। बोलचाल की भाषा में जिसे मन कहा जाता है, उसकी अति नगण्य जानकारी मनुष्य को है। आधुनिक मनोविज्ञान को भी अपनी खोजों द्वारा जो प्राप्त हुआ है, वह अत्यल्प है। उसकी गहरी परतों की सामर्थ्यों का कुछ भी ज्ञान मनोविज्ञान को नहीं है। इसी क्षेत्र में अगणित रहस्यों की चाबी छुपी हुई है। अतीन्द्रिय सामर्थ्य के रूप में प्रख्यात शक्तियाँ इसी के अन्तराल से उपजती तथा किन्हीं-किन्हीं महापुरुषों में प्रकट होती दिखायी पड़ती हैं। इच्छा शक्ति के चमत्कृत कर देने वाले, कौतूहलवर्द्धक कृत्य आये दिन देखे जाते हैं। वह और कुछ भी नहीं मन की एकाग्रता का एक छोटा-सा पक्ष है। इसी की एक छोटी सामर्थ्य हिप्नोटिज्म को पश्चिमी मनःशास्त्रियों ने भी मान्यता दे दी है, उसके अभ्यास एवं सामर्थ्य के विकास के लिए कितने ही विद्यालय भी खुल गये हैं।

अमरीका के विस्कासिन विश्वविद्यालय में हिप्नोटिज्म योग की विधिवत् शिक्षा दी जाने लगी है। वाशिंगटन विश्वविद्यालय में अतीन्द्रिय सामर्थ्य पर शोध कार्य चल रहा है, बोस्टन के एक महाविद्यालय में एक रहस्य विद्या पढ़ायी जा रही है—'द रिटोरिक आफ डस्क'। ओकलैंड विश्वविद्यालय में इच्छा शक्ति तथा प्राण शक्ति के प्रयोग उपचार चल रहे हैं। केलिफोर्निया विश्वविद्यालय के प्रो. इडेन का मत है कि भोगवादी संस्कृति से ऊबा हुआ मनुष्य राहत के लिए किसी अतिमानवी सामर्थ्य की खोज में भटक रहा है। पश्चिम के व्यक्ति में एक ऐसी व्याकुलता पैदा हो गयी है जो अनायास ही उसे पूर्व की आध्यात्मिक विशेषताओं की ओर आकर्षित कर रही है।

मूर्धन्य मनःशास्त्रियों तथा कुछ वैज्ञानिकों ने भी परामानसिक शक्तियों का अस्तित्व स्वीकार कर लिया है। न्यूयार्क विश्वविद्यालय के मनःशास्त्री डा. मेहलान वैगनर ने एक सर्वेक्षण रिपोर्ट तैयार की है, जिसमें उल्लेख है कि अमरीका के ९ प्रतिशत विचारशील व्यक्ति अतीन्द्रिय शक्ति को एक वास्तविकता, ४५ प्रतिशत एक प्रबल सम्भावना मानते हैं। फ्रांस, हालैण्ड, रूस, चेकोस्लाविया, जर्मनी आदि के वैज्ञानिक भी परामानसिक शक्ति को एक सच्चाई के रूप में स्वीकार करने लगे हैं। प्रिंसटन विश्वविद्यालय के डा. राबर्ट डीन मानसिक शक्ति का पदार्थों पर प्रभाव का अध्ययन गम्भीरता से कर रहे हैं। नोबुल पुरस्कार विजेता डॉ. ब्रायन जोसेफसन के अनुसार परामनोविज्ञान के नये क्षेत्र के आविष्कार के बाद भौतिकी की

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

नयी परिभाषा देनी होगी। रूसी प्रोफेसर लियोनिद वासिलयेव ने हिप्नोटिज्म तथा टेलीपैथी पर अनेकों प्रकार के प्रयोग किये हैं। अपने अनुसन्धान निष्कर्ष में उन्होंने बताया है कि सुविकसित मानव मस्तिष्क विचार प्रसारण केन्द्र की सफल भूमिका सम्पन्न कर सकता है।

अति मानसिक शक्तियों के प्रति बढ़ती हुई मानवी अभिरुचि मनुष्य की उस सहज जिज्ञासा का परिचय देती है जो मात्र उथली बुद्धि के सहारे चेतना क्षेत्र के रहस्यों को जानना एवं पाना चाहती है। उन्हें चमत्कारिक इसलिए भी समझा जाता रहा है क्योंकि विज्ञान की यान्त्रिक तथा बुद्धि की पकड़ सीमा से वे बाहर हैं। उन्हें जानने, सामर्थ्यों को करतलगत करने की विद्या, बुद्धि तथा उसके द्वारा आविष्कृत विज्ञान के पास नहीं है, हो भी नहीं सकती। कारण कि बुद्धि का क्षेत्र तर्क, विज्ञान का मैटर है। पदार्थ एवं तर्क से परा-मानसिक शक्तियाँ परे है। उनका भी एक विज्ञान है, वह विज्ञान भौतिक विज्ञान के नियमों पर नहीं, चेतना विज्ञान के नियमों पर आधारित है। 'साइन्स आफ सोल' आत्मविज्ञान के नाम से वह अध्यात्म जगत में जाना जाता है।

एक तथ्य सुनिश्चित रूप से जानना आवश्यक है कि पदार्थ विज्ञान की तरह चेतना विज्ञान के भी निश्चित नियम एवं विधान हैं। चमत्कार जैसी किसी कला का उस विधा में कोई स्थान नहीं है। बुद्धि उन्हें समझ नहीं पाती, इसलिए वह चमत्कार प्रतीत होता है, अन्यथा सब कुछ एक निर्धारित सिद्धान्त से परिचालित है। साथ ही यह बात भी हृदयंगम करने योग्य है कि हाथ पर सरसों जमाना, वस्तुएँ मँगा देना, बाल से भभूत निकालना जैसी बाल-क्रीड़ाओं का अतीन्द्रिय सामर्थ्य से कोई सम्बन्ध नहीं है। बाजीगरी के वे कृत्य सिद्धियों के नाम पर जहाँ-कहीं भी जाते हों, समझना चाहिए वहाँ अवश्य ही धूर्तता का समावेश है। अतीन्द्रिय सामर्थ्य का प्रत्यक्ष स्वरूप बढ़े हुए संकल्प बल प्राणशक्ति, वाक्शक्ति के रूप में उभर कर सामने आता तथा परिष्कृत-प्रखर व्यक्तित्व के रूप में अपना परिचय देता है। प्राण बल, संकल्पबल, विचारबल ही समीपवर्ती तथा दूरवर्ती वातावरण तथा सम्बद्ध व्यक्तियों को प्रभावित करता, उन्हें जबरन अभीष्ट दिशा में चल पड़ने को बाध्य करता है। ऐसे व्यक्तित्वों के अन्तःकरण उस निर्झर की तरह होते हैं जिनसे निस्सृत भाव सम्वेदनाएँ असंख्यों मुरझाये हृदयों को अपने अमृत रस से परितृप्त करती हैं। परिष्कृत, प्रखर उदात्त व्यक्तित्व ही अध्यात्म जगत की सर्वोपरि सिद्धि है—सबसे बड़ा चमत्कार है।

चमत्कार कोई अवैज्ञानिक तथ्य नहीं

एक बार लन्दन की 'हालवर्न रोड' पर एक मकान में आग लग गई। आग की भयंकरता के बारे में बताया जाता है कि वह इतनी तीव्र थी कि 'फायर ब्रिगेड' के अच्छे से प्रबन्ध के बावजूद दो मकान तो बात की बात में भस्म हो गये। अच्छा यही हुआ कि घर के आदमी व जानवरों में से कोई भी जला नहीं, सबको सकुशल निकाल लिया गया, केवल मात्र एक वृद्धा ही अन्त तक सहायता के लिये पहुँचे धुएँ से घुट कर मर गई।

जब सब आदमी निकाल लिये गये तब एकाएक मकान मालकिन चिल्लाई—अरे एक बच्चा ऊपर के कोठे में रह गया। सब लोग आश्चर्य से उसकी ओर देखने और पूछने लगे-माता जी घर के सब लोग तो यह सामने खड़े हैं फिर कौन छूट गया ?

मकान मालकिन ने बताया मेरी एक महिला-मित्र कल ही किसी कार्य से काल चेस्टर गई है। चलते समय वह मेरे पास आई और वापस लौटकर आने तक के लिये अपने बच्चे को मेरे पास छोड़ गई। बच्चा ऊपर की कोठी पर सो रहा था तभी एकाएक आग लग गई। मुझे उसकी याद नहीं रही। कोई बचा सकता हो तो उसे बचाओ अन्यथा मैं अपनी मित्र को क्या मुँह दिखाऊँगी।

फायर ब्रिगेड के एक सिपाही ने हिम्मत की और वह जलती आग में घुस पड़ा। बड़ी कठिनाई से आग और धुएँ से बचता हुआ वह उस पलंग के पास तक पहुँचा जहाँ वह बच्चा सो रहा था। वहाँ पहुँच कर उसने जो दृश्य देखा उसे देखकर वह स्तब्ध रह गया। उसके रोंगटे खड़े हो गये। किसी अज्ञात शक्ति ने प्रेरित न किया होता तो बहुत संभव था मारे भय और घबराहट के वह स्वयं भी आग में जल मरता।

उसने देखा पलंग के पीछे के हिस्से तक आग फैली हुई पाँवों को छू रही है पर प्रकाश का एक दिव्य गोला बच्चे को आवृत्त किये हुये है उसके कारण न तो पीछे से और न ही, आजू-बाजू और आगे से ही आग की लपटें बढ़ पा रही हैं। सारी छत गिर गई थी पर एक सही पटिया उस पलंग को न जाने कैसे साधे बची हुई थी। सिपाही डर रहा था कि उस दिव्य प्रकाश में हाथ डाले या नहीं तभी जैसे उससे किसी ने कहा—उठाओ, जल्दी करो, देर करने का समय नहीं है। सिपाही ने बच्चे को समेट लिया। और बाहर की ओर भागा। उसका पीछे मुड़ना हुआ कि वह प्रकाश भी गायाब हो गया और पलंग को भी आग ने पकड़ लिया। बची हुई पटिया भी चर-चरा कर धराशायी हो गई पर बच्चा जब बाहर आया और उसकी डॉक्टरी जाँच की गई तो लोग आश्चर्य में डूब गये कि न तो उसका शरीर गर्म हुआ न नहीं चोट आई और न ही वह बिल्कुल जला। उससे भी अधिक आश्चर्य लोगों को तब हुआ जब सिपाही ने सारी घटना की विस्तृत जानकारी दी। लोग इस चमत्कार का कारण नहीं समझ पा रहे थे। कुछ तो उसे ईश्वर की कृपा मान रहे थे कुछ किसी देवदूत की उपस्थिति और रक्षा। एक नास्तिक और अनात्मवादी वर्ग ऐसा भी था जो किसी भी चमत्कार की बात मानने की अपेक्षा इसे एक मात्र एक संयोग मान रहा था।

योग दर्शन सम्बन्धी भारतीय पुस्तकों और आख्यायिकाओं में ऐसे चमत्कार स्थान-स्थान पर मिलते हैं, जिनमें (१) शरीर को हलका या भरी कर लेना। (२) दूसरों के मन की बात जान लेना। (३) हिप्नोटिज्म। (४) परकाया-प्रवेश। (५) शाप देकर बुरा या आशीर्वाद देकर किसी को कुछ आलौकिक सहायता देना (६) झोली में हाथ डालकर या मिट्टी उठाकर पल भर में हजारों मील दूर उपलब्ध कोई मनोवांछित पदार्थ मंगा कर

खिला देने की आश्चर्य जनक बातें होती हैं। जहाँ-तहाँ लोग श्रद्धा को ठगने की ओर जालसाजों द्वारा भोले-भाले लोगों को बेवकूफ बनाने जैसी घटनाओं को छोड़ दिया जाये और योग विद्या के विशुद्ध विज्ञान की ओर जाया जाये तो पता चलता है कि इस तरह की अनौखी और अलौकिक घटनायें असत्य न होकर वस्तुतः विज्ञान सम्मत तथ्य होती हैं।

सन् १९२७ में डॉ० किलिन्टन, लिस्टर एच जरमर तथा जे. डेवीसन ने वैल टेलीफोन लैबोरेटरी न्यूयार्क में किये अनुसंधान के आधार पर बताया कि इलेक्ट्रॉन प्रकृति तत्व है अर्थात् वह एक कण की तरह भी काम करता है और लहर की तरह भी। उसकी गति ३१०५० मील प्रति सेकेण्ड होती है उनकी इस खोज के आधार पर ही इन्हें नोबल पुरस्कार भी मिला था। इलेक्ट्रॉन जिस तरह एक कण के रूप में स्थिर और गतिशील भी है उसी प्रकार प्रकाश भी स्थिर और गतिशील है। सर आर्थर स्टेनले एडिंग्डन ने "नेचर आफ दि फिजिकल वर्ड" में लिखा है कि प्रकाश भी छोटे-छोटे टुकड़ों में विभक्त है इन नाचते हुये कणों को 'फोटोन्स' कहते हैं और उन्हें 'फ्लोरोऐन्ट स्क्रीन' के प्रकाश में देखा जा सकता है। इनकी गति १८६३०० मील प्रति सेकण्ड अर्थात् इलेक्ट्रॉन से भी ६ गुना अधिक होती है।

इलेक्ट्रॉन और प्रकाश यदि शक्ति हैं तो पदार्थ भी हैं। कण हैं तो लहर भी। इलेक्ट्रॉन सृष्टि के हर कण में है पर वह अपनी उत्पादकता न होकर नाभिक से बँधा है उसी प्रकार प्रकाश ब्रह्माण्ड भर में कहीं भी विचरण कर सकता है पर वह स्वयं अपनी उत्पादकता नहीं है। अपने जीवन के अन्तिम समय आइन्स्टीन, जो कि ऋषियों के मायावाद सिद्धान्त तक पहुँच गये थे, ने यह बताया था कि काल और स्थान सापेक्ष है और वे प्रकाश की माप पर निर्भर है, (रिलेटिविटी टाइम एण्ड स्पेश इज विद रिफरेन्स टु यार्ड स्टिक आफ लाइट)। वे अब यह सिद्ध करना चाहते थे कि कोई एकात्म क्षेत्र (यूनीफाइड फील्ड) ऐसा है जिसमें विद्युत चुम्बकीय बल (एलेक्ट्रोमेगनेटिक फोर्स) भी है और गुरुत्वाकर्षण भी। वह क्षेत्र इन दोनों से युक्त भी है और मुक्त भी। यह इलेक्ट्रॉन की तरह ही द्वैत गुण था और आइन्स्टीन ने उसके अस्तित्व से इन्कार नहीं किया वरन् माना था कि 'मस्तिष्कीय द्रव्य' (माइन्ड स्टाफ) में वह गुण हैं वह समय और पदार्थ से परे तत्व है उसकी गति और अगति में कोई अन्तर नहीं है अर्थात् वह मस्तिष्कीय (माइन्ड स्टाफ) एक ही समय में कलकत्ता या बम्बई में भी हो सकता है और उसी समय वह मथुरा में भी उपस्थित रह सकता है। यही वह तत्व है जो प्रकाश को धारण करके उसकी गति से किसी भी वस्तु का स्थानान्तरण कर सकता है। पदार्थ को शक्ति में बदल कर उसे कहीं भी सूक्ष्म अणुओं के रूप मे बहाकर ले जा सकता है और उसे सेकण्ड से भी कम समय में फिर पदार्थ में बदल सकता हैं।

योगी जन ध्यान द्वारा मस्तिष्क के इसी 'एकात्म क्षेत्र' पर अवस्थित होकर इलेक्ट्रॉन और प्रकाश-कणों द्वारा ई = एमसी^{2} के आधार पर वह शक्ति अपने भीतर से उत्पन्न करते हैं जो किसी भी परमाणविक शक्ति से बढ़ कर होती है उसमें इलेक्ट्रॉन और प्रकाश कणों की द्वैत शक्ति ही होती है जिससे वे स्थूल और सूक्ष्म क्रियायें संभव हैं जो चमत्कार के रूप में योगीजन दिखाया करते हैं या अतीन्द्रिय रूप में जो अपने आप प्रकट हुआ करती हैं।

उपरोक्त आग लग जाने की घटना जो श्री सी० डब्ल्यू० लेडबीटर ने भी अपनी प्रसिद्ध पुस्तक "इन विजिबुल हेल्पर्स" (अदृश्य-सहायक) में लिखी है, उसका सम्बन्ध भी मस्तिष्क की उस शक्ति से ही है जो ज्ञान विचार, संकल्प और अहंकार के रूप में विद्यमान होती है। काल और पदार्थ से परे यह सत्ता सब कुछ करने में समर्थ है। जिस समय लन्दन में मकान में आग लगी बच्चे की माँ कालकेस्टर में सो रही थी। मनुष्य का प्रेम जहाँ होता है मन भी वहीं रहता है। माँ का ध्यान बच्चे पर स्वाभाविक था। उस समय उसके मानिसक तन्तुओं का प्रवाह बच्चे तक गया और उसी के फलस्वरूप उसे स्वप्न में इस बात की अनुभूति हुई कि बच्चा कष्ट में है, उसकी नींद टूट गई, वह भगवान से सम्पूर्ण एकाग्रता और पूर्ण अन्तःकरण से प्रार्थना करने लगी—हे भगवान मेरे बच्चे की रक्षा करो। प्रार्थना की यह एकाग्रता जो मस्तिष्क में विकसित हुई, उसने विद्युत चुम्बकीय प्रवाह उत्पन्न किया, जो बच्चे पर केन्द्रित ध्यान के कारण लन्दन तक पहुँचा और उसी ने बच्चे की रक्षा की। अपनी मानसिक शक्तियों को एकाग्र करके योगीजन ऐसे ही अनेक चमत्कार, पूर्ण घटनायें किया और दिखाया करते हैं यद्यपि इनका आत्मकल्याण से कोई सम्बन्ध नहीं है, तो भी यह चमत्कार यह बताते हैं कि भौतिक शक्तियों से भी सामर्थ्यवान आत्मिक शक्तियाँ इस शरीर और विश्व में हैं, उनका विकास करके ही मनुष्य शरीर और संसार में आने का ध्येय प्राप्त कर सकता है।

भीष्म की इच्छा मृत्यु कैसे हुई ?

महाभारत के भीष्म पर्व के अध्याय १२० में उल्लेख है कि पितामह भीष्म ने शरशय्या पर गिर कर तब तक अपने प्राणों को रोक रखा जब तक सूर्य उत्तरायण नहीं हुआ। उन्होंने अपने प्राणों को कुबेर अथवा रावण से आक्रान्त हुए सूर्य के उत्तर दिशा में आने पर ही विसर्जन करने का दृढ़ निश्चय कर लिया था, और वे सफल भी हुए।

अब यह विचार करना है कि उत्तरायण सूर्य होने पर ही महर्षि भीष्म ने अपना शरीर क्यों छोड़ना चाहा क्योंकि दिग्वाची शब्द तो अपेक्षित है। जैसे उत्तरायण, वैसा दक्षिणायन भी, फिर उत्तरायण ही श्रेष्ठतम क्यों ? और यदि उत्तरायण सूर्य में प्राण विसर्जन करने वाले को ही सद्गति मिलती है तो क्या भीष्म के अतिरिक्त सभी ऋषी महर्षियों को सद्गति से वंचित रहना पड़ा होगा जिन्होंने अपनी मृत्यु में अयन की अपेक्षा नहीं समझी ?

वेद, उपनिषद् आदि अनेक शास्त्रों मे मानव जीवन व्यतीत करने के दो मार्गों का वर्णन मिलता है। १—देवयान, २—पितृयान। जैसा कि ऋग्वेद में उल्लेख है—

द्वे सृती अशृणवं पितृणाम् अहं देवानामुत मर्त्यानाम् ।
ताभ्यामिदं विश्वमेजत् समेति यदन्तरा पितरं मातरं च ॥

कठोपनिषद् के अनुसार इन दोनों को श्रेय और प्रेय कहा है, यथा—

श्रेयश्च प्रेयश्च मनुष्य मेतस् तौ सम्परीत्य विविनक्ति धीरः।
श्रेयोहि धीरोऽभि प्रेयसो वृणीते। प्रेयो मन्दो योग क्षेमाद् वृणीते॥

जिनमें श्रेय को मोक्ष मार्ग और प्रेय को भोग मार्ग ठहराया है। प्रथम श्रेय मार्ग अर्थात् मोक्ष मार्ग का सम्बन्ध उत्तर से है, और इसी प्रकार प्रेय मार्ग अर्थात् भोग मार्ग का दक्षिण से। साथ ही 'विश्वस्माद् इन्द्र उत्तरः' आदि अनेक वेद वाक्यों से यह भी स्पष्ट है, कि इन्द्रलोक अर्थात् देवलोक भी उत्तर में ही है तथा दक्षिणावृत हि पितृ लोकम्, इस (तैत्तरीय १/६/८/५) वाक्याधार पर दक्षिण में पितृलोक भी प्रसिद्ध है।

वसन्त, ग्रीष्म और वर्षा—ये तीन ऋतुयें उत्तरायण सूर्य होने पर ही आती हैं तथा शेष शरद्, हेमन्त और शिशिर—ये दक्षिणायन सूर्य में।

इसलिए हम इस निर्णय पर पहुँचते हैं कि उत्तर दिशा तथा पूर्वोक्त तीन ऋतुएँ—ये देव स्थान हैं। इससे स्पष्ट है कि सूर्य के उत्तरायण होने पर देवों में, और दक्षिणायन होने पर पितरों में स्थान मिलता है। सूर्य का उत्तरायण होना—

यशोदां त्वातेजोदां त्वा —तैत्तिरीय सं०

इस वाक्यानुसार उत्तरायण सूर्य को यशस्वी और तेजस्वी होना कहा है—इसके अतिरिक्त दक्षिण दिशा में यम का आधिपत्य भी कहा है।

इस विवेचन से सिद्ध होता है कि पितामह ने मोक्ष मार्ग तथा देवलोक आदि की कामना से दक्षिणायन में प्राण परित्याग श्रेष्ठ न समझा।

वह मृत्यु पर विजयी कैसे हुये—

शतपथ में ज्योति स्वरूप सूर्य को 'रेतोदेवता' के नाम से पुकारा जाता है। इस शब्द के अनुसार सूर्य का देवतात्व भी रेतस् अर्थात् वीर्य में होना चाहिये। 'उत्तरायण' और दक्षिणायन इन दो नामों के भेदानुसार वीर्य के दो भेद हुये। (१)—ऊर्ध्वरेतस्, (२)—अधोरेतस्।

'ऊर्ध्वरेतस्' का सरलार्थ है वीर्य को ऊपर की ओर ले जाना अर्थात् उसको नीचे की ओर जाने से निरोध करना। दूसरे शब्दों में इसे ब्रह्मचर्य भी कहते हैं।

भीष्म ने अपना पूरा जीवन ब्रह्मचर्य को ही दे डाला। यह सर्वमान्य है फिर मृत्युकाल में ही वे ऊर्ध्वरेतस् न रहकर—इसीलिए देवलोक और श्रेयमार्ग से वंचित रहकर पितृलोक, और यमपुराभिमुखी क्यों बनते?

भगवान कृष्ण ने गीता में, अग्नि, ज्योति, दिन, शुक्लपक्ष, वर्ष के प्रथम ६ मास और उत्तरायण सूर्य—इनमें मरने वाले को पुनः लौट कर नहीं आना पड़ता, यह कहा है तथा इसके प्रतिकूल, धूम्र, रात्रि, कृष्णपक्ष और वर्ष का उत्तरार्ध भाग इस काल में जो प्राण छोड़ता है वह फिर से संसार में लौटता है, यह भी कहा है।

गीता के अनुसार यह निश्चय है कि मरते समय मनुष्य की जैसी विचारधारा होती है उसी के अनुसार गति भी होती है! भीष्म पितामह ने पूरे जीवन भर ब्रह्मचर्य का पालन किया, मरते समय भी उनके विचार ब्रह्म की ओर ही रहे क्योंकि सासंरिक ऐषणाओं को चाहने वाले, पुत्रपौत्रादि पैदा कर उन्हीं के द्वारा अमर होने वाले की भाँति उनकी आकांक्षायें नहीं थीं। उन्हें तो पितृलोक और भोग मार्ग की अभिलाषा न होकर देवयान और ज्ञानमार्गियों के मार्ग का अनुसरण कर स्वर्ग की कामना थी।

उन्हें उत्तरायण की प्रतीक्षा क्यों करनी पड़ी ? इसका उत्तर है, यदि वे अन्य गृहस्थियों की भाँति पितृमान में ले जाने वाले कार्यों से सदा अलग रहे तो फिर वे क्यों कर दक्षिणायन में मृत्यु होने से जनसाधारण की भाँति यमातिथि बनते ? क्या भीष्म जैसे आजन्म ब्रह्मचारी, तपस्वी और त्यागी ने भी अपने जीवन में भोग को स्थान दिया था ? इसका उत्तर यही है भीष्म अनेक गुणों से युक्त तो थे, साथ ही कुछ दोषी भी थे। तभी तो उन्होंने पाण्डवों का धर्म-युक्त पक्ष छोड़कर कुरुओं का साथ दिया। किन्तु यह जानते हुये भी पाण्डवों के कार्य न्याय संगत और उचित हैं उनका साथ छोड़कर कौरवों का साथ पकड़ा। इसका कारण यही था कि कौरवों द्वारा उन्हें धन, धान्य आदि मिलता था और इसीलिये कि मैं जिसका अन्न खाता हूँ, उसी का साथ दूँगा यह युधिष्ठर से स्पष्ट कह भी दिया था—

अर्थस्य पुरुषो दासो दास्त्वर्थो न कस्यचित्
इति सत्यं महाराज ! बद्धोस्म्यर्थेन कौरवैः॥

पुरुष धन का गुलाम है न कि धन किसी का, इसी नियम के अनुसार युधिष्ठर ! मैं कौरवों के साथ बँधा हुआ हूँ।

क्योंकि भीष्म के जीवन में ईश्वर का स्मरण छोड़कर धन धान्य की उपासना का दोष आ गया था, यही कारण था कि महर्षि होते हुये भी सांसारिक ऐषणाओं के वशी हो चुके थे और इसीलिये भीष्म को उत्तरायण की प्रतीक्षा करनी पड़ी। क्योंकि उनकी वृत्तियोग रहित थी और शक्तियाँ का आत्मा में केन्द्रीकरण नहीं किया गया था। अतः उनके धराशायी होते समय आकाशवाणी गूँजी कि—

'भीष्म ! त्वं स्वच्छन्दमरणोसि ।
तस्माद् योगमास्थाय उत्तरायणकालं प्रतीक्षस्व' ।

भीष्म ! तुम्हें वरदान मिला कि जब चाहो प्राण परित्याग करो, इसलिये योग के आश्रयी होकर उत्तरायणकाल की ही प्रतीक्षा करो।

सिद्धियाँ पवित्र अंतःकरण में जन्मती हैं

अध्यात्म में जिन तत्वों को प्रधानता दी जाती है वह हैं अन्तःकरण की पवित्रता और मन की एकाग्रता। सही कहा जाये तो दोनों एक-दूसरे के पूरक हैं। इतने पर भी श्रेष्ठ और सर्वोपरि 'पवित्रता' ही है। इसे अध्यात्म का पर्याय भी कहा जा सकता है। यही वह आधार है जिस पर एकाग्रता फलती-फूलती है। इसके बिना यह केवल बाजीगरी भर रह जाती है।

आध्यात्मकि साधनाओं में निरत होने वाले अधिकांश लोग यह चीज भुला बैठते हैं। उनमें से ज्यादातर तरह-तरह की मानसिक कल्पनाओं को हथिया लेने के दिवास्वप्न देखा करते हैं। कोई आकाशगमन की सिद्धि पाकर किसी अनजाने लोक की सैर करना चाहता है। किसी की इच्छा घर बैठे दूर की

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

बात सुनने-देखने की रहती है। प्रायः सभी व्यक्ति आध्यात्मिक साधनाओं को ऐसी किसी जादू की छड़ी के पाने का साधन मानते हैं, जिसे घुमाकर कुछ अद्भुत, अलौकिक आश्चर्यजनक पाया जा सके। दूसरों पर रौब गाँठा जा सके। जब मन आया तो अगस्त्य की तरह शाप देकर समुद्र सुखा दिया। जब मनमर्जी हुई तो विश्वामित्र की तरह इन्द्र को धमकाकर बरसात करवा दी।

क्या अध्यात्म सचमुच ही ऐसा है ? जैसा उपरोक्त मान्यताएँ, प्रदर्शित करती हैं। इस सवाल पर प्राचीन काल के ऋषियों मध्य युगीन संतों तथा आधुनिक महापुरुषों ने भली-प्रकार विचार किया है। यही कारण है कि बुद्ध, महावीर, पातंजलि, कृष्ण सभी ने मानसिक एकाग्रता साधने के पहले पवित्रता अर्जित करने पर बल दिया है। बुद्ध महावीर जहाँ अहिंसा सत्य आदि का ठीक-ठीक ढंग से पालन कर अंतराल को पवित्र करने पर बल देते हैं वहीं पातंजलि यम और नियम को योग की आधार भूमि मानते हैं।

यम का मतलब है—अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मवर्चस् व अपरिग्रह का पालन। इसी तरह नियम का तात्पर्य है—शौच, संतोष, तपस्या, स्वाध्याय और भगवत्समर्पण। इन सभी अंग-उपांगों का एक ही उद्देश्य है अन्तराल की पवित्रता। गीताकार ने इसी को अर्जित करने हेतु मानसिक द्वन्द्वों से छुटकारा पाने और सभी से आत्म भाव स्थापित करने की बात कही है। योग पद्धतियों में मौलिक सामंजस्य स्थापित करने वाले श्री अरविन्द का 'सिंथेसिस ऑफ योग' में कहना है कि योग की राह पर चलने के लिये जरूरी है अन्तःकरण को पवित्र बनाना। बिना इसके इस कठिन रास्ते पर नहीं चला जा सकता।

इन अनुभवी महामानवों की चेतावनी के बाद भी अधिकतर अपनी साधना की शुरूआत ध्यान से करना चाहते हैं। ऐसा करने में उनको कहीं अधिक श्रेष्ठता और गौरव की अनुभूति होती है। पर सवाल यह है कि यदि पिछले छः अंगों की जरूरत न होती तो सूत्रकार इसे क्यों बताते। सही कहा जाये तो ऐसे लोगों का लक्ष्य जीवन को संवारना नहीं, बल्कि मानसिक शक्तियों पर अधिकार पाना है। यही कारण है कि वे देर-सबेर अध्यात्म मार्ग से भटक जाते हैं।

मानसिक एकाग्रता से शक्तियाँ तो जरूर मिलती हैं। पर जहाँ पवित्र हृदय वाला व्यक्ति उनकी ओर ध्यान नहीं देता, अपने ध्येय में जुटा रहता है, वहाँ अपवित्र हृदय वाले उनका उलटा-सीधा उपयोग करने लगते हैं। उनके लिये इन शक्तियों, सिद्धियों का मिलना बन्दर के हाथ में तलवार जैसा है जो अपना गला स्वयं ही काट लेता है। इसी प्रकार इनकी जग हँसाई होती है और नष्ट भी हो जाते हैं।

रशियन गुह्यवेत्ता रासपुतिम ठीक ऐसा ही व्यक्ति था। उसने पवित्रता अर्जित करने की परवाह किये बिना तरह-तरह की साधनाएँ कीं। ठेठ तिब्बत तक खोजबीन की। पूर्व में प्रचलित एकाग्रता की अधिकांश साधनाओं को आत्मसात किया। इस सम्बन्ध में उसकी साधना को गुरजिएफ व रमण से कम नहीं कहा जा सकता। पर अन्तःकरण की शुद्धि के अभाव के कारण उसने सारे काम गलत किये। जार तथा उसकी पत्नी को भी प्रभावित किया। किन्तु गलत कामों के कारण उसे जहर दिया गया, गोलियाँ मारी गई। गले में पत्थर बाँध कर वोल्गा में फेंका गया। उसका अन्त दुर्गति एवं असम्मान से हुआ। जबकि रमण व गुजिएफ अपनी पवित्रता के कारण जन-जन के श्रद्धा के भाजन बने।

यही कारण है ऋषि सन्त सभी एक स्वर से शरीर शुद्धि, मानसिक शुद्धि, आचरण व्यवहार शुद्धि की प्रधानता का प्रतिपादन करते हैं। इसके बिना ध्यान का कोई विशेष महत्व नहीं। जबकि इन पवित्रताओं से जुड़कर ध्यान—साधारण आदमी को महामानव स्तर तक पहुँचा देता है।

भगवान महावीर ने इस समूची स्थिति पर गहराई से विचार किया है। उन्होंने ध्यान की प्रक्रिया के दो भेद बताएँ हैं। पहला है धर्म, ध्यान दूसरा है अधर्म ध्यान। यदि यह पवित्र अन्तःकरण के साथ जुड़ा हो तो धार्मिक अन्यथा पूरी तरह से अधार्मिक है।

महर्षि पातंजलि अपने योगदर्शन की शुरूआत में ही यह बात साफ कर देते हैं। उनके अनुसार अभीष्ट "चित्त वृत्तियों का निरोध है" न कि केवल चित्त का। चित्त की एकाग्रता तो क्रोध में भी होती है। काम वासना से पीड़ित व्यक्ति को भी इसके अलावा कुछ नहीं सुझाई देता। उसका चित्त इसी में एकाग्र होता है। पर महावीर के शब्दों में यह एकाग्रता अधर्म ध्यान पर है।

एकाग्रता तो हिटलर के पास भी थी। इससे उपार्जित अपनी मानसिक शक्तियों के कारण उसने जर्मन जैसी बुद्धिमान जाति को भी गुमराह कर दिया। उसने सम्मोहन जैसी स्थिति उत्पन्न कर दी। जर्मनी की पराजय के बाद वहाँ बुद्धिमान प्राध्यापकों ने अन्तर्राष्ट्रीय अदालत में दिये गये अपने बयान में कहा कि हम सोच भी नहीं पाते कि हमने यह सब कैसे किया।

महत्वपूर्ण शक्ति का अर्जन नहीं, वरन् उसका उपयोग है। एक ही शक्ति बुरे व भले अन्तःकरण के अनुसार अपना प्रभाव दिखलाती है। बुरे कार्यों द्वारा इसका प्रभाव बुराई के रूप में भले के द्वारा भलाई के रूप में होता है। बिजली एक-सी है। अच्छे पंखे को वह शांत भाव से चलाती है। पर यदि यही बिगड़ा हो तो, खड़-खड़ की आवाज करने के साथ टूट कर गिर भी सकता है। यही नहीं किसी का प्राण भी हरण कर सकता है।

एक ही परमात्म शक्ति राम के माध्यम से भी अभिव्यक्ति होती है और रावण के माध्यम से भी। प्रभाव और क्रियाकलापों में जमीन-आसमान का भेद अन्तःकरण की शुद्धि और अशुद्धि के कारण है। शुद्ध अन्तराल में वही शक्ति निर्माण करने वाली, सृजन करने वाली, हो जाती है। जबकि अशुद्ध अन्तःकरण में वही विनाशक सिद्ध होती है। यह तथ्य स्वाति की बूँद की तरह है। यह बूँद सांप के मुँह में पड़कर जहर, केले में कपूर व सीप में मोती बन जाती है, परिणामों में यह विभिन्नता आधारों में भेद के कारण हैं।

यही कारण है कि सभी ने हृदय की पवित्रता को अनिवार्य बतलाया है। यही नहीं धर्म और पवित्रता दोनों का पर्याय तक माना है। साधना की सफलता मन की एकाग्रता पर

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कम, यम-नियम के प्रति दृढ़निष्ठा पर पूरी तरह निर्भर करती है। इसी को बताते हुये भगवान श्रीकृष्ण गीता में कहते हैं कि हजारों में से कोई बिरला साधना में प्रवृत्त होता है, पर भ्रान्तियों के कारण ऐसे साधकों में से कोई इना-गिना ही परम तत्व को जान पाता है।

आवश्यकता है सही ढंग से अध्यात्म का मर्म समझने की। ध्यान रखा जाये अध्यात्म बाजीगरी नहीं है। साधक की सम्पत्ति निर्मल अन्तःकरण है। शक्तियाँ तो बाजीगरों के पास भी होती हैं अध्यात्म से इनका क्या लेना-देना ? पंचदशीकार विद्यारण्य ने अपने इसी ग्रन्थ में कहा है कि "कोई जरूरी नहीं है कि आत्मज्ञानी के पास शाप-वरदान की शक्तियाँ हों।" पंचदशीकार के इस कथन को विभिन्न महापुरुषों के जीवन में देखा जा सकता है। महात्मा गांधी, मालवीय जी, विनोबा, स्वामी विवेकानन्द आदि का जीवन इसका जीता जागता उदाहरण है।

इस तथ्य पर ठीक तरह से विचार कर आध्यात्मिकता का सही तात्पर्य जानना चाहिये। आध्यात्मिक बनने का मतलब है मन-कर्म-वचन से पवित्र बनना। यदि इस दिशा में कदम बढ़ रहे हों तो समझना चाहिये कि सही दिशा में प्रयास हो रहा है। यदि ऐसा न बन पड़ रहा हो तो सही राह पर चलने के लिये प्रवृत्त हो जाना चाहिये।

क्या चमत्कार आवश्यक है ?

एक समय था जब किसी महापुरुष के प्रति अज्ञ जनता के मन में भक्ति भावना जागृत करने के लिये उसे चमत्कारी सिद्ध किया जाता था। यह उचित भी था, क्योंकि विचार विज्ञान से अपरिचित, दूर जंगलों में एकाकी जीवन व्यतीत करने वाले अल्पज्ञ लोग, महापुरुष और उनकी महत्ता का वास्तविक तात्पर्य समझने में असमर्थ होते थे। उनका मस्तिष्क इतना अविकसित था कि वे यह समझ नहीं पाते थे कि किसी विशेष प्रकार के विचार धारण करने वालों को—ब्रह्मवेत्ताओं को श्रेष्ठ समझना चाहिये। इस परिस्थिति में यही एक मात्र उपाय था कि उन अविकसित लोगों को यह बताया जाये कि अमुक व्यक्ति में अमुक प्रकार के अलौकिक चमत्कार करने की दैवी शक्ति है, इसलिये वह श्रद्धास्पद है। जरूरत पड़ने पर किसी तरकीब से कोई चमत्कारी बात उन्हें दिखाई भी जा सकती थी, पर आमतौर से किंवदन्तियाँ प्रचलित कर देने से यह कार्य आसानी से हो जाता था।

हम पढ़ा और सुना करते हैं कि हमारे अमुक पूर्वज में अमुक प्रकार की चमत्कारी शक्ति थी। इससे आमतौर पर उनके महान होने का विश्वास हो जाता है और उनके प्रति श्रद्धा बढ़ती है। इस हद तक चमत्कारों सम्बन्धी किंवदन्तियों का महत्व भी है और उपयोगिता भी। परन्तु वस्तुस्थिति का एक दूसरा पहलू भी है, जिस पर विचार करने से प्रतीत होता है कि किसी समय किन्हीं लोगों के लिये यह प्रचार प्रणाली उपयोगी भले ही रही हो पर आज तो वह अनुपयोगी ही सिद्ध हो रही है।

जिन महापुरुषों के महान जीवन कार्यों से अनुकरण का लाभ उठाया जाना चाहिये था, वह इनके चमत्कारी या देवदूत होने की आड़ में विलुप्त हो जाता है। देवता, देवदूत, अवतार या भगवान का अनुकरण भला साधारण मनुष्य कैसे कर सकते हैं ? इस बात को सोचकर लोग अपने आदरणीय महापुरुषों से प्रकाश या प्रेरणा ग्रहण करने को तत्पर नहीं होते। श्री रामचन्द्र जी और श्री कृष्ण जी के जीवन में ऐसे असंख्यों संदेश भरे पड़े हैं जो उनके श्रद्धालुओं, भक्तों के जीवन क्रम को कुछ से कुछ बना सकते हैं—पर यह हो कैसे ? जब उन्हें अलौकिक पुरुष मान लिया गया तो जो स्वयं अलौकिक नहीं है वह उनके अनुगमन का साहस कैसे कर सकता है ? आज तो श्री कृष्ण चरित्र के श्रवणमात्र से अथवा उनकी लीलाओं का रास, अभिनय, चित्रण आदि देखने मात्र से मुक्ति मिल जाने की आशा की जाती है। जब यह विचार मनों में भरे हुए हैं तो उनके कष्ट साध्य अनुगमन की कोई क्यों इच्छा करें ?

अनेकों ऋषि, तपस्वी, योद्धा लोक सेवी, ब्राह्मण, पुरुषार्थी, महापुरुष, त्यागी हमारे इतिहास के पन्ने-पन्ने पर अंकित हैं। पर वे हैं कोई न कोई चमत्कारी। छत्रपति शिवाजी तक को दुर्गा से तलवार मिली है तभी वे अत्याचारियों से लड़ पाये हैं। साधारण व्यक्ति सोचता है मुझे किसी देवता ने तलवार नहीं दी है तो फिर भला मैं कैसे किसी महान कार्य को करने में समर्थ हो सकता हूँ ? यह सोचते-सोचते उसकी आशा और उत्साह की कलियाँ मुर्झा जाती हैं। संसार के समस्त देश और समस्त जातियाँ अपने पूर्वजों से प्रेरणा और प्रकाश ग्रहण करते हैं। उनके पद-चिह्नों पर चलने का प्रोत्साहन प्राप्त करते हैं, पर हमारा चमत्कारवाद हमें इस महान लाभ से वंचित कर देता है, विमुख बना देता है।

उदाहरण के लिये अब युग पुरुष, विश्ववन्द्य महात्मा गांधी का महाप्रयाण होकर चुका है। इस महामानव ने जो महा कार्य कर दिखाये, युग को पलट दिया, उस महाचमत्कारों से विश्व के समस्त विचारवान व्यक्ति आश्चर्य से चकित हैं और उन्हें आज तक पृथ्वी पर उत्पन्न हुये सर्वश्रेष्ठ पांच महामानवों में से एक मानते हैं। पर हमारे पास एक दर्जन से अधिक व्यक्तियों के ऐसे पत्र आये जिसमें उन्होंने यह प्रकट किया है कि महात्मा गांधी में कोई चमत्कार नहीं थे। वे लिखते हैं—(१) महात्मा गांधी अपनी मृत्यु का समय तक नहीं जान सके, (२) मारने वाले की गोली को अपने योग बल से व्यर्थ नहीं बना सके, (३) कोई ऐसी करामातें उन्होंने नहीं दिखाई जो अलौकिक होतीं। इन कारणों से वे गांधी को पहुँचा हुआ महात्मा नहीं मानते। एक सज्जन ने तो ईश्वर तक पर अविश्वास प्रकट किया है कि जब वह भक्तों का रक्षक है तो उसने गांधी जी को बचाया क्यों नहीं ? जब उसने नहीं बचाया तो या तो ईश्वर भक्त वत्सल नहीं है या गांधी जी भक्त नहीं थे।

इन उपरोक्त आशंकाओं की मूल में एक ही विचार धारा काम कर रही है कि, किसी महापुरुष को अलौकिक चमत्कारी या देवता का कृपा पात्र अवश्य होना चाहिये। जिन आदि पुरुषों ने चमत्कारवाद का आरम्भ किया होगा उन्होंने यह कल्पना भी न की होगी कि भविष्य में यह मान्यता

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

बिगड़ते-बिगड़ते यहाँ तक जा पहुँचेगी कि कोई भी धूर्त बाजीगरी के हथकंडे बताकर श्रद्धालु लोगों को उल्लू बना लिया करेगा और कोई भी महापुरुष इसलिये साधारण समझा जायेगा कि उसने कोई अनौखा करिश्मा करके अपने को देवता साबित नहीं किया। एक प्रथा किस उद्देश्य से आरम्भ की गई थी और उसका अन्त में क्या वीभत्स रूप हमारे सामने आ गया। इस दैव दुर्विपाक को क्या कहा जाये ?

हमें वस्तुस्थिति को ठीक रूप से समझने के लिये इतिहास के पृष्ठों को पुनः एक बार गम्भीरतापूर्वक पलटना पड़ेगा और छोटे-छोटे करिश्मों के चुटकुलों को एक ओर हटा कर महापुरुषों के जीवन की प्रमुख घटनाओं पर विचार करना पड़ेगा, तभी समझ सकेंगे कि—गुप्त बातों को जानना, परमात्मा की मर्जी से परिचित होना या व्यक्तियों और घटनाओं को मनमानी बना लेना मनुष्य के हाथ में है या नहीं ? परमात्मा-ढाल तलवार लेकर अपने भक्तों की प्राण रक्षा करने के लिये साथ-साथ फिरता है या नहीं ?

जानकी जी चुराई गई। क्या रामचन्द्रजी इतना भी भविष्य ज्ञान न रखते थे ? रावण से उन्हें लड़ने के लिए वानरों की सेना सजानी पड़ी और इतना बड़ा संग्राम करना पड़ा, क्या वे रावण को अपनी शक्ति से चारपाई पर पड़ा-पड़ा ही न मार सकते थे ? भगवान कृष्ण के पैर में एक भील ने तीर मारा, उनका महाप्रयाण हो गया। क्या वे इसको पहले से न जानते थे ? यदि जानते थे तो अपने को क्यों न बचाया ? संजय और धृतराष्ट्र तो दिव्यदर्शी थे, क्या उन्हें मालूम न था कि महाभारत में हार हमारे पक्ष की होगी ? यदि मालूम था तो उसे रोका क्यों नहीं ? क्या कृष्णजी को यह बात मालूम न थी कि महाभारत के बाद इतनी देशव्यापी दुर्दशा होगी जिसके प्रायश्चित्य स्वरूप पांण्डवों को आत्महत्या करनी पड़ेगी ?

जो बात गांधी जी के बारे में कही जा सकती है वही बात भगवान राम और कृष्ण के बारे में भी कही जा सकती है। जिनको देवी सहायता मिले और संकट से बच जाएँ वे भगवान के कृपा पात्र—और जिनको कष्ट सहने पड़ें, तप करने पड़ें वे भगवान के अकृपा पात्र—यह तो कोई उचित मान्यता नहीं है। हमारे असंख्यों वीर पुरुष धर्म के लिए दीवारों में चुने गए हैं, खौलते तेल के कढ़ावों में तले गये हैं, जिन्दा जलाये गये हैं, शूली पर चढ़े और फांसी पर झूले हैं क्या उन सबको भगवान का द्वेषी कह दें ? बंगाल के दुर्भिक्ष में लाखों आदमी भूख से मर गये, साम्प्रदायिक हत्याकाण्डों में चार लक्ष मानवों के प्राणोत्सर्ग हो गये, इन पीड़ितों के प्राण बचाने के लिए कितनों ने ही अपने प्राणों की बलि चढ़ा दी। गत दो महायुद्धों में कितने ही व्यक्ति कर्त्तव्य के लिए लड़ते हुए मरे, कितने ही चालाकी द्वारा चंगुल में फँसा कर मरवा डाले गये, कितने ही निर्दोष अपने घरों में बैठे हुए बमों के शिकार हो गये, क्या इन सबको ईश्वरीय कोप का भाजन कहना उचित होगा ? इन दुःखद अवसरों पर भी अनेक व्यक्ति स्वार्थ साधन में तत्पर रहे, उन्होंने अवसर से लाभ उठाया और मालामाल हो गये, आज वे मूंछों पर ताव दे रहे हैं क्या इन्हें ईश्वर का कृपा पात्र कहना चाहिए ? बंगाल की भुखमरी में अन्न संचय का मुनाफा बटोरने वाले, साम्प्रदायिक उपद्रवों में हाथ साफ करके लूट के माल से अमीर बने हुए गुन्डे क्या भगवान के कृपा पात्र हैं ?

सच बात यह है कि कर्म करने में मनुष्य स्वतंत्र है। वह भले या बुरे चाहे जैसे कर्म स्वेच्छा से कर सकता है। भगवान किसी के कर्म मार्ग में रोड़ा नहीं बनते। हाँ कर्म कर चुकने के बाद उसके फल से मनुष्य नहीं बच सकता। तीर चलाना न चलाना, हमारी इच्छा के ऊपर निर्भर है पर तीर चल जाने के बाद हम उसके परिणाम को नहीं टाल सकते। मनुष्य चाहे तो बुरे कर्म कर सकता है—घृणित से घृणित दुष्टताएँ और श्रेष्ठ से श्रेष्ठ सत्कर्म करने की उसे पूरी-पूरी आजादी है पर क्रिया के बाद तुरन्त या देर में उसे सामाजिक, राजकीय, आत्मिक अथवा दैवी परिणाम अवश्य प्राप्त होगा। यह सोचना उचित नहीं कि जितने पीड़ित शोषित या सताये हुए हैं यह सब पूर्व कर्म का फल पा रहे हैं और जितने गुलछर्रे उड़ाने वाले हैं पूर्व जन्म के सुकृती हैं। इस जीवन की हर क्रिया पूर्व जन्म का फल नहीं है जिस प्रकार पूर्व जन्म में कर्म करने की स्वतंत्रता थी वैसी ही इस जन्म में भी है। परमात्मा किसी की कर्म करने की स्वतंत्रता में हस्तक्षेप नहीं करता—भले ही उस स्वतंत्रता के दुरुपयोग से कैसा ही बड़ा अनिष्ट उत्पन्न क्यों न होता हो।

ईश्वर नियम रूप है। उसके नियमों के अनुसार सब व्यवस्था चल रही है। चाहे कोई आस्तिक हो या नास्तिक, पापी हो या पुण्यात्मा, किसी के लिए आग ठंडी, किसी के लिए गरम नहीं हो सकती है। भक्त और भगवान के बीच सहायताओं के चमत्कारी वर्णनों की जो गाथाएँ प्रचलित हैं, वे श्रद्धा की महत्ता पुष्ट करने के लिए हैं, उनको वैज्ञानिक तथ्य की कसौटी पर नहीं कसना चाहिए। खंभ फाड़कर नृसिंह पैदा होने की आशा रखने वाले प्रहलादों को अवसर पर निराशा का ही आश्रय लेना पड़ेगा। बेचारे मृग, बकरे, खरगोश आदि निरीह पशु अनादि काल से सिंह व्याघ्रों से अपनी हड्डियां तुड़वाते रहे हैं पर आज तक उनकी रक्षा करने के लिए ग्राह को बचाने वाले भक्त वत्सल गरुड़ पर चढ़ कर नहीं आए। गौ माताओं का वंश कटते-कटते समाप्ति की ओर जा रहा है पर गोविन्द के दर्शन दुर्लभ हैं। फफक-फफक कर एक-एक दाने अन्न के लिए बंगाल के 35 लाख मनुष्यों ने प्राण त्यागे पर नरसी के घर पर हुण्डी बरसाने वाले सांवलिया साहु ने कुछ बोरी अन्न तक न बरसाया।

अनुचित आशा करने वालों को निराश होना पड़ता है। परमात्मा नियम रूप है, नियामक सत्ता है, नियंत्रण और व्यवस्था करने वाली शक्तियों को वह सजग रखता है। विश्व का सन्तुलन न बिगड़ने देने के लिए उसकी उत्पादक शक्ति काम करती है। वह जड़-चैतन्य को उपजाता है, उनके सक्षम रखने की व्यवस्था करता है और साथ ही उनके विनाश का हेतु भी बनता है, इस प्रकार वह ब्रह्मा, विष्णु, महेश की त्रिगुणात्मक शक्तियों द्वारा अपना परिचय देता है, वह समदर्शी है, निष्पक्ष है, निर्लिप्त है। वह सर्वोपरि है—फिर भी उसने सबको कर्म करने की पूर्ण स्वाधीनता प्रदान की है, हाँ कर्म फल की उसकी न्याय व्यवस्था से कोई अछूता नहीं बच सकता है। वह बड़ा दयालु है क्योंकि उसने हमें सब प्रकार के साधन और अवसर दिये हैं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

वह बड़ा निर्दय है क्योंकि वह अनुचित क्रियाओं को न होने देने के लिए कुकर्मियों के हाथों को लुंज-पुंज नहीं कर देता। हम पसंद करें चाहे न करें पर उसका सृष्टि क्रम ऐसा ही है। वह चमत्कारों का केन्द्र है, उसकी सृष्टि का जर्रा-जर्रा चमत्कार से परिपूर्ण है, पर बाजीगरी के लिए उसकी व्यवस्थित क्रिया पद्धति में स्थान नहीं।

अविकसित मानसिक स्तर की जनता में चमत्कारों के प्रति बड़ा आकर्षण होता है। जो बात साधारणतया नित्य देखने में नहीं आती—उस अनौखी बात या वस्तु को देखकर लोग आश्चर्य करते हैं और उसे देखने दौड़ते हैं। पहाड़ी तराइयों में हाथियों के झुंड वैसे ही घूमते-फिरते हैं जैसे यहाँ खेतों और मैदानों में हिरन घूमते हैं। इसलिए उन वन्य प्रदेशों के निवासी, हाथियों के देखने में कुछ आश्चर्य नहीं मानते। पर जिन स्थानों में हाथी नहीं पहुँचते वहाँ कभी एकाध हाथी का आ जाना तमाशे से कम नहीं समझा जाता। बाजीगर, नटविद्या, अजायबघर, चिड़ियाघर आदि अनेकों आविष्कार मनुष्य की इस कौतुक, कौतूहल अथवा चमत्कार की आकांक्षा रखने वाली बुद्धि को तृप्त करने के लिए ही हुए हैं।

कोई बात हमको तभी तक चमत्कार लगती है, जब तक वह आमतौर पर प्रचलित नहीं होती है। पर जब उसका रहस्य प्रकट हो जाता है या वह बात प्रायः देखने में आने लगती है, तो फिर वह चाहे कितने भी महान चमत्कार की क्यों न हो, उसका आकर्षण जाता रहता है। वैज्ञानिक आविष्कारों के आरम्भिक दिनों में, जब रेल, तार, टेलीफोन, हवाई जहाज, मोटर आदि का नया-नया प्रचलन हुआ था तब लोग इन्हें देखने के लिए सौ-दो-सौ मील पैदल चल कर आते थे और इन वस्तुओं को देखकर आश्चर्य के समुद्र में डूब जाते थे। पर धीरे-धीरे जब ये वस्तुएँ नित्य के व्यवहार में आने लगीं तो कुछ दिनों में उनका आकर्षण जाता रहा—चमत्कार समाप्त हो गया।

असामान्य वस्तुओं और घटनाओं को देखकर मनुष्य उनके पीछे किसी असामान्य अथवा गुप्त शक्ति होने की कल्पना करता है। अनगिनती, देवी-देवताओं का आविर्भाव आदिम युग में इसी मनोवृत्ति से हुआ था। बिजली चमकने जैसी प्राकृतिक बात का ठीक कारण मालूम न होने से उसका कोई 'तुक' बिठाने के लिये इन्द्र के हाथ में वज्र चमकने की बात सोच ली गई। बीमारियों अथवा महामारियों के पीछे किसी देवी-देवता का प्रकोप होने की बात, शरीरशास्त्री और आरोग्य विज्ञान से अनभिज्ञ लोगों में अभी तक प्रचलित है। तरह-तरह के रोगों को दूर करने के लिये भूतों और जिन्नों को भगाने वाले ओझा लोगों की मान्यता अभी पिछड़े हुए लोगों में मौजूद है। ये बातें विचारशील लोगों में मूर्खतापूर्ण समझी जाती हैं, क्योंकि वे जानते हैं कि बीमारी स्वास्थ्य-सम्बन्धी नियमों के उलझन का परिणाम है, किसी देवी-देवता की नाराजी या प्रसन्नता का इससे सम्बन्ध नहीं।

जब मनुष्य जाति की सभ्यता का विकास होने ही लगा था तब किसी वस्तु, व्यक्ति, शक्ति या घटना की महानता नापने की कोई बुद्धि संगत कसौटी उसके पास न थी। उस समय चमत्कार ही बड़प्पन का एक मात्र लक्षण मान लिया गया। इसलिये बिजली चमकना, वर्षा होना, भूकम्प, तूफान, अकाल-मृत्यु, बीमारी, सन्तान होना या न होना, सम्पत्ति-विपत्ति आदि सभी घटनाओं से किसी न किसी देवी-देवता का सम्बन्ध जोड़ा गया। नवग्रहों की पूजा इस आधार पर चल पड़ी। किसी व्यक्ति को यदि ऋषि-महर्षि, देवदूत या अवतार सिद्ध करना होता, उसके द्वारा कुछ चमत्कार होने की बात अब बतानी पड़ती। जो चमत्कार न दिखा सके वह महापुरुष हो सकता है, इस बात को मानने के लिए कोई तैयार न होता था। इसलिये जिन सत्पुरुषों को उनके अनुयायी 'महान', सिद्ध बताना चाहते थे उनके साथ कुछ न कुछ चमत्कारी घटनाओं की किंवदंतियाँ अवश्य जोड़ते। भले ही उन्हें यह कार्य अनिच्छापूर्वक ही करना पड़ता हो।

हम देखते हैं कि पौराणिक काल के सभी देवी, देवता ही नहीं, महापुरुष भी ऐसी ही सिद्धियों या जादूगरी जैसी अलौकिक घटनाओं से पूरी तरह सुसज्जित हैं। हर देवता या महापुरुष के अनुयाइयों ने अपने उपास्य की महिमा बढ़ाने और उसे अन्यों से बढ़कर अलौकिक शक्ति सम्पन्न सिद्ध करने के लिये प्रयत्न किया है। इस प्रकार की प्रशंसा के गीत गाने की घुड़दौड़ में पौराणिक काल में एक अत्यन्त विशालकाय साहित्य तैयार हो गया है। यद्यपि उनमें शिक्षा और विचारोत्तेजक सामग्री भी पर्याप्त है, पर मुख्य उद्देश्य अमुक देवता या महापुरुषों को बढ़ा-चढ़ाकर सबसे अधिक चमत्कारी सिद्ध करना ही है। योगेश्वर कृष्ण और मर्यादा पुरुषोत्तम राम के द्वारा मानव-जातियों के लिए किए गये महान कार्यों को पर्याप्त न समझा गया, वरन् अनेक साधारण घटनाओं को अलौकिकताओं के पुट देकर तिल का ताड़ बना दिया गया। उस काल की स्थिति के अनुसार यह सब सिद्ध करना अनिवार्य ही हो गया था।

पिछले समय में साधु महात्माओं के सम्बन्ध में भी इसी प्रकार की मान्यता जनसाधारण में रही है कि जो जितना पहुँचा हुआ फकीर-सिद्ध-महात्मा होगा, वह उतना ही चमत्कार दिखला सकेगा। इस गलत कसौटी के कारण अनेक सत्पुरुष, जो अपनी सत्यनिष्ठा पर कायम रहे, जनता में सम्मान प्राप्त न कर सके और न किसी पर अपना प्रभाव जमा सके। इस असफलता से खिन्न होकर कई सत्पुरुषों ने मौन स्वीकृति से अपने चमत्कारी होने की बात स्वीकार कर ली और अनेक अपने भक्तों द्वारा गुण गाथा गाये जाने से सिद्ध बन गये, कुछों ने जान बूझकर इस प्रकार का आडम्बर स्वयं बना लिया। धूर्तों की इस अज्ञानान्धकार में खूब बन आई। आज भी अनेक साधु और महात्मा नामधारी ऐसे ही अड्डे जगह-जगह लगाये बैठे हैं।

सौभाग्यवश यह अज्ञानान्धकार का युग अब धीरे-धीरे समाप्त हो रहा है और महापुरुषों की महानता का मूल्यांकन दूसरी कसौटी पर किया जाने लगा है। अब यह बात नहीं रही है सूर्य को गाल में बन्द किये बिना हनुमान जी की महत्ता को स्वीकार न किया जाये। उनका अखण्ड ब्रह्मचर्य, न्याय पक्ष का समर्थन और अन्याय पक्ष से लड़ने में निःस्वार्थ भाव से अपनी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

जान की बाजी तक लगा देना आदि ऐसी महान बातें हैं कि अगर हम हनुमानजी के सूरज को मुँह में रख लेने वाली कथा को छोड़ भी दें तो उनके व्यक्तित्व में किसी प्रकार की कमी नहीं आती। अमुक टीले पर गाय के थन में से अपने आप दूध की धार निकलती थी, वहाँ खोदने पर अमुक देवता की मूर्ति निकली और उसका यह मन्दिर बना है। अनेकों मन्दिरों के विषय में फैली हुई यह किंवदंती अब उतनी महत्त्वपूर्ण नहीं मानी जाती, जितनी कि यह बात अमुक देवस्थना द्वारा जन हित के क्या-क्या कार्य सम्पादन होते हैं ? यह रुचि परिमार्जन सत्य की प्रतिष्ठा के लिए एक शुभ लक्षण है। चमत्कारों की पुरानी, खोटी कसौटी पर तो केवल अज्ञान और धूर्तता की वृद्धि होना ही संभव है।

चमत्कारों की इस युग की कसौटी यह है कि कौन व्यक्ति, वस्तु या घटना किसी हद तक सदुद्देश्य पूर्ण, मानवता की सेवा करने वाली एवं धर्म मर्यादा के अनुकूल है। अब किसी को सच्ची सती सिद्ध करने के लिये छः महीने तक सूरज को रोके रखने, और ब्रहमा, विष्णु, महेश को बालक बना देने की आवश्यकता नहीं समझी जाती। चित्तौड़ की रानियों का आत्मत्याग अब किसी अनुसुइया से कम नहीं समझा जाता। अब अवतार माने जाने के लिये बाराह भगवान की तरह दाँत पर या कच्छप भगवान की तरह पीठ पर पृथ्वी उठाने का प्रकरण ढूँढ़ने की जरूरत नहीं है, वरन् अब कुछ भी चमत्कार न करने वाले परमत्यागी और सच्चे संत बुद्ध भगवान को केवल उनके ज्ञान, सेवा, तपस्या, त्याग के आधार अवतार मान लिया गया। महात्मा गाँधी, स्वामी दयानन्द, शंकराचार्य, रामकृष्ण परमहंस, विवेकानन्द आदि अनेकों युग-निर्माता महापुरुषों के जीवन-चरित्र में कोई चमत्कार या जादूगरी की बात नहीं है। ये सभी सीधे सादे सत्पुरुष और समाज सेवी थे, फिर भी जनता ने उनको महान और देवी शक्ति सम्पन्न मान लिया।

योग एवं तप एक विज्ञान है और प्रत्येक विज्ञान एक शक्ति उत्पन्न करता है। कोई भी साधारण साधक या विशेष तपस्वी यदि साधना करता है, तो निश्चित है कि उसे अपने परिश्रम के अनुकूल आत्मबल प्राप्त होगा। जिस प्रकार बुद्धिबल, बाहुबल, धनबल, संगठन बल, पुण्यबल आदि बलों के द्वारा अनेक प्रकार की सफलताएँ और विशेषताएँ प्राप्त की जा सकती हैं, कठिनाइयों को परास्त और समृद्धि को वरण किया जा सकता हैं, उसी प्रकार तप द्वारा उत्पन्न आत्मबल के बदले में भी भौतिक एवं आध्यात्मिक समृद्धियाँ प्राप्त की जा सकती हैं। जप, अनुष्ठान, यज्ञ, दान आदि का यही रहस्य है। जिस प्रकार अपने पास धन न होने पर किसी से उधार, दान या सहायता के रूप में प्राप्त करके अपना रुका हुआ काम चलाया जा सकता है, उसी प्रकार एक व्यक्ति दूसरे को अपने तप का पुण्यफल देकर मनोवांछित सहायता कर सकता है। तप-साधना का विज्ञान यही है कि कोई मनुष्य चाहे तो स्वयं परिश्रम करके तप-शक्ति एकत्रित करे, या कोई तपस्वी किसी के दुःख पर द्रवित होकर अपना पुण्यफल उसे दान करके सुखी बना दे। बस, इतनी ही तप-शक्ति की मर्यादा है।

जो व्यक्ति लोगों को आश्चर्य में डालने वाली करामातें दिखाते हैं वे या तो धूर्त हैं या मूर्ख। एक-दो करामात दिखाने में ही वर्षों की संचित तपस्या व्यय हो जाती है। केवल बाजीगर जैसा कौतुक करने में कोई बुद्धिमान व्यक्ति अपनी तपस्या के फल को निरर्थक नष्ट करेगा यह बात समझ में नहीं आती। यदि कोई करता है तो उसे अवश्य महामूर्ख समझा जायेगा, अन्यथा ऐसे व्यक्ति में धूर्तता का छिपा होना निश्चित है। इस प्रकार की अगणित घटनाओं का भण्डाफोड़ होते रहने के कारण जनता अब बहुत सतर्क हो गई है और उसने अपनी महानता नापने के गज को ठीक कर लिया है। अब जनता उन व्यक्तियों तथा कार्यों में महानता का दर्शन करना चाहती है जिनमें स्वार्थत्याग, आत्मसंयम, परोपकार, लोकहित का कुछ अंश पाया जाता है।

कुछ दिन पहले तक किसी से कोई वास्ता न रखने वाले, अपनी मुक्ति-साधना मे लगे हुये साधु महात्माओं की लोग इस विचार से सेवा करते थे कि उन्होंने जो तप, बल, इकट्ठा कर रखा है उसमें से वे हमारी सहायता के लिये कुछ हिस्सा दे देंगे। पर अब किसी एकान्तसेवी की महानता में भी संदेह किया जाता है। क्योंकि जिस प्रकार कोई सेठ अपने स्वार्थ के लिये दिन-रात धन संग्रह में जुटे रहते हैं और अपने आस-पास वालों के सुख-दुःख की कुछ परवाह नहीं करते, उसी प्रकार वे साधु-संत भी अध्यात्मिक क्षेत्र के स्वार्थी सेठ हैं। उनको जनता के दुःखों, संकटों की कोई परवाह नहीं होती, वे केवल अपनी मुक्ति के लिये प्रयत्न करते रहते हैं। ऐसे संकीर्ण और स्वार्थी विचार वालों से न तो भगवान प्रसन्न हो सकता है और न कोई असाधारण सिद्धि उनको दे सकता है। यह मान्यता अब लोक-समाज में दिन पर दिन जोर पकड़ती जाती है और जनता कोरे 'भजनानन्दी' लोगों की अपेक्षा उन लोकसेवी व्यक्तियों को अधिक महत्व देने लगी है जो अपने निजी लाभ की उपेक्षा करके जनहित के कार्यों मे निःस्वार्थ भाव से लगे हुए हैं।

जनसमुदाय की मनोवृत्तियों के विकास के साथ-साथ सत्य का मूल्य सही दृष्टिकोण से आँका जाने लगा है। विवेकशील आत्माएँ वास्तविक तथ्य का दिग्दर्शन करने लगी हैं। जिनके अन्तर में महान बनने की आकांक्षा है वे भी सिद्धियों का जादू ढूँढने पहाड़ों में नहीं जाना चाहते, क्योंकि वैज्ञानिक उन्नति ने अनेकों ऋद्धि-सिद्धियों को व्यर्थ बना दिया है। आकाश में उड़ने की सिद्धि को हवाई जहाज ने, जल पर चलने की सिद्धि को अग्निवोटों ने, दूर-श्रवण की सिद्धि को रेडियो ने, दूरदर्शन की सिद्धि को टेलीविजन ने, अन्तर्दृष्टि को एक्सरे ने अनावश्यक बना दिया है। और भी जो तथाकथित सिद्धियाँ शेष हैं वे अन्य लोकों में भ्रमण करने की सुविधा की भाँति विज्ञान की उन्नति के द्वारा कुछ समय में सर्व साधारण के लिये सुलभ हो जायेंगी। जो चीज गुप्त नहीं है—अनौखी नहीं है उसमें क्या सिद्धि मानी जाये ? सुधरा हुआ जन मानस अब महानता का अनुभव किसी के धन बल, मान अथवा तप में नहीं करता वरन् उसकी उदारता, सेवा, दूसरों को सुखी बनाने के लिये किये हुये आत्मत्याग में ही करता है।

जब जो वस्तु कम होती है या नहीं होती, तब वही वस्तु चमत्कार जैसी लगती है। आज व्यक्तिवाद का बोलबाला है,

हर आदमी खुदगर्जी में डूबा है। बिना मतलब के कोई किसी की रत्ती भर मदद करना नहीं चाहता। ऐसे स्वार्थवादी युग में 'परमार्थवाद' के दुर्लभ आदर्शों का कहीं दर्शन होना सचमुच एक चमत्कार ही है। आज "परहित के लिये स्वार्थ त्याग" बड़ा कठिन कार्य है। यह आदर्श किसी जमाने से अधिकांश भारतवासियों का रहा था, यह ठीक है, पर आज तो नवीन सभ्यता ने उसे जड़ मूल से उखाड़ फेंका है। इसलिये अब उसका दर्शन होना चमत्कार से कम नहीं है, और वास्तव में मनुष्य की महानता की, उसके अन्तःकरण में स्थिति सतोगुण, ज्ञान, परमात्मा की प्रतिष्ठा की कसौटी भी यही है। इसलिये इस परमार्थवादी मनोवृत्ति को चमत्कार कहा जाना चाहिये, और दिन सत्पुरुषों में यह प्रवृत्ति समुचित मात्रा में विकसित हुई है, उन्हें चमत्कारी कहा जा सकता है।

चमत्कारों की यथार्थता समझें

तांत्रिक विद्या पर से आज-कल के पढ़े-लिखे पाश्चात्य सभ्यता के लोगों का विश्वास बिल्कुल उठ गया है। इसका कारण सम्भवतः यही है कि आजकल अनेक लोग झूठ-मूठ में तांत्रिक बन कर ठगने के उद्योग में लगे रहते हैं। कैप्टन जार्ज कार्टर नामक एक ब्रिटिश नागरिक भारतीय तांत्रिक विद्या तथा बाजीगरी के बड़े प्रेमी थे। उसने इसी प्रेम के कारण बौद्ध धर्म स्वीकार कर लिया। उन्होंने अपनी देखी हुई कुछ घटनाओं का वर्णन किया हैं, जो बहुत रोचक है। जब वे रंगून में थे तब उनका एक स्त्री से परिचय हुआ, वह उनके घर के सम्मुख ही रहती थी। उसे बिल्कुल खालिस सोना बनाने की विधि—जिसके लिए युगों से बहुत रसायनज्ञ प्रयोग करते-करते मर गये और नहीं जान पाये—ज्ञात थी; परन्तु सबसे अधिक आश्चर्य की बात तो यह थी कि उसे अपने इस गुण द्वारा धन पैदा करने की तनिक भी लालसा न थी। यह तो एक दूसरी ही अप्राप्य वस्तु-अमृत-की खोज में थी, जिससे मनुष्य जाति दीर्घजीवी बनाई जा सके।

मिस्टर कार्टर का पहले इस विलक्षण स्त्री से इस प्रकार परिचय हुआ कि वे बौद्ध जीवन से इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने बुद्ध की मूर्ति ही अपने घर में प्रतिष्ठित कर ली। वे इस विषय में किसी बौद्ध से राय लेना चाहते थे। उनके सम्मुख ही यह स्त्री रहती थी। अतएव उनका उससे परिचय हो गया। उसने इनकी हर तरह से सहायता की।

इस स्त्री का नाम श्रीमती वारटन था। वह एक अंग्रेज की विधवा थी, परन्तु वह स्वयं साइनोचर्मीज जाति की थी। वह एक बहुत बड़े बाग में केवल अपनी एक परिचारिका के साथ रहती थी, जो स्वयं भी उसी की अवस्था की थी। वह दिन भर या तो भजन में मग्न या अपनी प्रयोगशाला में रहती थी। उसकी प्रयोगशाला एक गुप्त स्थान पर थी। बाग में एक कुटी थी जिसमें केवल एक चूल्हा था। बहुत से लोगों ने उसे सोना बनाते देखा। क्योंकि उसे कोई काम छिपाकर करने की आदत नहीं थी।

उसकी सोना बनाने की विधि भी विचित्र थी। वह पारा को किसी ऐसे द्रव पदार्थ में डाल देती थी कि वह ठोस बन जाता था। तब वह इसकी छोटी-छोटी गोलियाँ बना लेती, इन गोलियों को वह एक प्रकार के अन्य द्रव पदार्थ में डाल देती कुछ समय पश्चात वे गोलियाँ फूलतीं, परन्तु वह उसे आग में रक्खे रहती अन्त में जब वह मंत्रों से फूँक कर उसे निकालती तो वह शुद्ध सोना हो जाता। मिस्टर कार्टर का कहना है कि इस सोने की उन्होंने हर प्रकार से परीक्षा कराई, परन्तु उसमें कोई कमी न थी।

एक दिन प्रातःकाल यह स्त्री मरी हुई पाई गई। लोगों ने बहुत प्रयत्न किया कि सोना बनाने की कोई विधि ज्ञात हो जाये, परन्तु सब प्रयत्न व्यर्थ हुए।

इसके अतिरिक्त मि० कार्टर एक अन्य घटना का भी वर्णन करते हैं, परन्तु भारतीयों के लिये वह कोई नई बात नहीं है। वे लिखते हैं कि वे दार्जिलिंग के लामा मठ में थे तब यह घटना हुई। दार्जिलिंग में बालकों का एक स्कूल है जिसमें यूरोपियनों के बच्चे शिक्षा पाते हैं। इसमें कई अध्यापिकायें हैं। एक समय की घटना है कि उस स्कूल में ग्लोरिया नामक एक छोटी-सी बालिका भी पढ़ती थी। वह लगभग ६ वर्ष की थी। उसकी तीव्रता तथा आकर्षण के कारण प्रत्येक अध्यापिका उसे बहुत प्यार करती थी। प्रधान अध्यापिका तो उसे बहुत ही चाहती। एक दिन वह अपने स्कूल में झूलना पर झूल रही थी। उसकी अन्य सहेलियाँ झुला रही थीं। उसने अपनी सखी से खूब जोर से झुलाने को कहा। उस बालिका ने झूले को खूब जोर से झुलाया, दूसरे ही क्षण बहुत ऊपर गया और ग्लोरिया पृथ्वी पर आकर गिर पड़ी। उसके हाथ-पैर टूट गये और वह मूर्च्छित हो गई। अध्यापिकाएँ समाचार पाते ही दौड़ आईं और बालिका को उठा ले गईं। बहुत से डॉक्टरों ने प्रयत्न किया, परन्तु ग्लोरिया के पैर टूट गये थे उसकी मृत्यु निकट थी। उसे कोई भी न अच्छा कर सका। सब लोग हताश हो गये।

उसी समय किसी ने लामा मठ के साधुओं की तांत्रिक विद्या का जिक्र किया। प्रधान अध्यापिका को भला उस पर कैसे विश्वास होता, परन्तु बहुत कहने-सुनने पर वे राजी हुई और एक आदमी लामा मठ के प्रधान के पास भेजा गया। उस आदमी ने आकर मिस्टर कार्टर से सब बातें कहीं। मिस्टर कार्टर के प्रधान लामा से सब कुछ निवेदन किया। प्रधान ने आँख बन्द करके कहा—बेटा, हमें उस बालिका को अच्छा करना होगा ? तत्क्षण तीन साधु ग्लोरिया के स्थान पर भेजे। उन्होंने ग्लेरिया के कमरे में प्रवेश किया तथा अन्य सबको कमरे से बाहर निकाल कर दरवाजा बन्द कर लिया। बाहर बहुत से लोग खड़े हुये थे, परन्तु बाहर से केवल तालियाँ बजाने अथवा उनके मंत्र पाठ की ही आवाज सुनाई पड़ती थी।

लगभग एक घण्टे पश्चात् दरवाजा खुला। एक साधु ग्लोरिया को गोद में लिए था। वह हँस रही थी। उसने ग्लेरिया को गोद से उतारा। परन्तु अब वह वही ग्लोरिया न थी उसके पैर ठीक हो गये थे। ऐसा ज्ञात होता था कि वह अभी खेल कर आई हो।

भारतीय तांत्रिक विधान द्वारा ऐसे अनेक चमत्कार हो सकते हैं, परन्तु यह कोई जादू न था। यह तो एक यौगिक

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

शक्ति है। कभी भारत में भी ऐसे अनेक योगी आश्चर्यजनक कार्य कर सकते थे। पर आज यदि किसी व्यक्ति को रसायन (सोना) बनाना आ जाये तो आश्चर्य नहीं कि वह अपने शेष कर्तव्यों की भी भूलकर केवल रसायन बनाने और मौज उड़ाने में ही तल्लीन हो जायेगा। प्रायः देखा जाता है कि जहाँ कोई साधु आ गया और उसके बारे में यह प्रयास हो गया कि रसायन बनाना जानता है, बस फिर क्या, चारों ओर से रसायन प्रेमी लोग (आश्चर्य नहीं कि इनमें अधिक संख्या उन आलिसयों की रहती है जो परिश्रम से धनोपार्जन कर पेट पालना भी नहीं चाहते) आकर सच्चे भक्त का ढोंग कर 'सोना' बनाना सिखलाने के लिए विनय करेंगे। शायद ही कोई भगवान की प्राप्ति का रास्ता पूछता होगा। यह आज के देश की दशा है। रसायन विद्या भगवान के भक्तों की चीज है। भगवान का भक्त कैसा होता है ? यह सभी जानते हैं। संसार की सारी दौलत भी उसके सामने रख दी जाये तो भी वह उसे मिट्टी समझता है। ऐसा तो वह निर्लोभी होता है। उसे तो 'भगवान' चाहिए 'सोना' नहीं।

इस सम्बन्ध में श्री रामकृष्ण परमहंस के योग विद्या के गुरु स्वामी तोतागिरि (नागा साधुओं के महन्त) की बात याद आती है। उन्होंने एक समय बातचीत करते हुए परमहंसजी को बतलाया था कि उनके मठ में (जो पंजाब में था) प्रधान महन्त को सोना बनाने की विद्या आती है जो वह अन्तिम समय अपने प्रधान चेले (यानी महन्त) को बतला देता है। पर इसके द्वारा साधारणतः कभी सोना बनाया नहीं जाता। केवल ऐसा अवसर उपस्थित होने पर कि जब कुम्भ आदि के समय साधुओं का बहुत बड़ा समुदाय इकट्ठा हो और उसके व्यय की व्यवस्था न हो सके, तो इस विधि से सोना बनाकर काम चलाया जा सकता है।

रसायन विद्या की सत्यता का वर्णन करते हुये गायत्री-मन्त्र का उल्लेख इसलिये कर रहा हूँ कि इस गायत्री-मन्त्र का रस-शास्त्र के आधार पर अपना अलग अर्थ भी होता है। जिस पर गायत्री माता की महान कृपा हो जाती है वह इसके रसायनिक सम्बन्धी अर्थ को भी जान सकता है। माता जरूर उसकी बुद्धि को विकसित कर उसे रसायनिक अर्थ को समझने में प्रेरणा देंगी। गायत्री-मन्त्र के २४ अक्षरों में सभी तरह के ज्ञान-विज्ञान छिपे हैं। सोना आदि बहुमूल्य धातुओं का बनाना तो एक साधारण बात है। राक्षसराज रावण गायत्री का सफल उपासक था। दक्षिणमार्गी तथा वाममार्गी, तांत्रिक विद्या तथा रस-शास्त्र का पण्डित था अपने रस-शास्त्र के ज्ञान के कारण ही उसने सारी लंका को सोने का बना दिया था। वह अपने नाभि में अमृत रखता था। यह कथन एक अलंकारिक अर्थ रखता है। अर्थात् वह अपने समय का एक भारी वैद्य यानी एक दूसरा 'धन्वन्तरि' ही था। धन्वन्तरि अपने हाथ में अमृत लेकर समुद्र से निकले थे और यह अपने नाभि में ही अमृत रखते थे।

गायत्री-मन्त्र के रासायनिक अर्थ को समझने के लिये सर्वप्रथम गायत्री माता के असीम प्रेम को प्राप्त करना होगा, तभी कुछ सफलता मिल सकती है फिर भी माता की कृपा से जो अनुभव मुझे मिला है वह केवल इशारा मात्र है। जिस प्रकार से भगवान अनेक रूप होकर भी 'एक' है और एक होकर भी अनेक हो जाते हैं, उसी प्रकार से 'पारा' भी अनेक खण्ड होकर भी एक हो जाता है और एक खण्ड से अनेक हो जाता है। रस-शास्त्र के आधार पर 'पारा' को साकार परमात्मा मानना होगा। भगवान सर्वशक्तिमान है। 'पारा' से भी बढ़कर कोई धातु सर्व शक्तिमान नहीं है। गायत्री-मन्त्र में 'पारा' के लिये 'भर्ग' शब्द रसायनिक अर्थ रखते हैं। जिस प्रकार भगवान को प्राप्त करने के बाद कोई इच्छा का अभाव नहीं रहता, उसी प्रकार 'पारा' सिद्ध कर लेने पर किसी भी सांसारिक चीज का अभाव नहीं रहता।

अब रसायन विद्या की सत्यता पर कुछ समाचार पत्रिकाओं द्वारा, प्राप्त किये हुये प्रमाणों को यहाँ पर उल्लेख कर रहा हूँ—

पहली बार जेठ शुक्ला १ वि० सं० १९९८ ता० २७ मई सन् १९४१ बिड़ला हाउस नई दिल्ली में पंजाब निवासी श्री पं० कृष्णपाल शर्मा ने १ तोला पारा से १ तोला 'सोना' लोगों के समक्ष बनाकर दिखलाया था। दर्शकों में अमृतराय, बी० ठक्कर, प्रधानमन्त्री, अ० भा० हरिजन सेवक संघ, श्री गो० गनेशदत्तजी, बिड़ला मिल दिल्ली के सेकेट्री श्री सीताराम खेमका, चीफ इन्जीनियर श्री विल्सन और श्री वियोगी हरि उपस्थित थे।

दूसरी बार चैत्र मास वि० सं० १९९९ ऋषिकेश में उक्त शर्मा जी ने ढाई सेर पारस का आधा घण्टे में 'सोना' बना डाला था। दर्शकों में उस समय महात्मा गाँधी के मंत्री स्व० श्री महादेव देसाई, श्री गो० गनेशदत्त तथा श्री युगलकिशोर बिड़ला थे। शर्मा जी को यह विद्या एक साधु ने बतलाई थे। किन्तु उनकी दृष्टि में कोई सुपात्र व्यक्ति न मिलने के कारण उन्होंने यह विद्या किसी को नहीं बतलाई।

यद्यपि यह रहस्य इस वर्तमान समय में लुप्त प्रायः सा हो गया है तथापि इस समय भी इस विद्या को जानने वाले भारत वर्ष में कोई-कोई हैं। मेरे पास भी रसायन सम्बन्धी नुस्खे इधर-उधर से आते रहते हैं। कभी-कभी तो इस सम्बन्ध में पुस्तकें भी पढ़ने को मिल जाती हैं। पर ये नुस्खे साधारण मनुष्यों के लिये उपयोगी नहीं हो सकते, क्योंकि रसायन की धातुओं और जड़ी-बूटियों को ठीक-ठाक आँच लगा कर फूँक सकना बड़ा कठिन कार्य है, जो बिना सीखे अपने आप नहीं आ सकता। फिर पारा एक ऐसी धातु है जो आग लगने पर तुरन्त उड़ जाती है। इसलिये इस सम्बन्ध में जो नुस्खे लिखे जाते हैं या बतलाये जाते हैं वे लोगों को कौतूहल शान्त करने के लिये ही समझने चाहिए और हमारा यही आग्रह है कि ऐसे नुस्खों को पढ़कर कोई व्यक्ति अपने आप 'रसायन' सिद्ध करने का विचार न कर बैठे। रसायन खिलवाड़ नहीं है, जो परिश्रम करके वर्षों तक प्रयत्न करेगा वही थोड़ा बहुत इसके मर्म को जान सकता है। वैसे एक औलिया साहब ने हमें एक नुस्खा बतलाया था, जिसके विषय में उनका कहना था कि जो भाग्यशाली इसे बनाने में परिश्रम करेगा और आँच का ठीक-ठाक हिसाब रख सकेगा वह असफल नहीं हो सकता। नुस्खा इस प्रकार है—

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

हरताल बरकिया की २-२ तोला की ४ डेलियाँ ले, उनको नीचे ऊपर आक के चार-चार पत्ते लगाकर लोहे के पतले तार से भली प्रकार बाँधकर या सींकर एक बालिश्त भर लम्बे, चौड़े गड्ढे में रखकर बकरियों की मैंगनी की अग्नि में पकालें। पत्ते जलने के पहले उसे बाहर निकाल लें और हरताल की गरम-गरम डेलियों को नमक के पानी में डालकर बुझा दें। फिर इन डेलियों को पूर्ववत आक के पत्तों में सींकर अग्नि में पकावें। इस प्रकार १०० बार अग्नि में पकाने से जो चीज बनेगी उससे ताँबा को सोना बनाने में सहायता मिलेगी।

इस प्रकार और भी अनेक नुस्खे हैं जो रसायन सिद्ध करने वाले बतलाये जाते हैं। पर कार्य में तब तक सफलता मिल सकना सम्भव नहीं, जब तक कोई जानकार व्यक्ति ठीक-ठीक विधि करके न दिखला देवे। इतने पर भी यह सत्य है कि आधुनिक विचारों के लोग सभी बातों को गप्प समझते हैं और अखबारों में प्रायः समाचार छपा करते हैं कि 'सोना बनाने वाले' कोई साधु महाशय किसी गृहस्थ को सोना बना देने के बजाय उसके दस-पाँच तोला सोना को लेकर गायब हो गये। इन दोनों तरह के मतों के बीच वास्तविक बात क्या हो सकती है, इसका अनुमान पाठक नीचे लिखी बातों से लगाने का चेष्टा करें। साथ ही हम अपने पाठकों को भी चेतावनी देना चाहते हैं कि वे कभी सोना बनाने का दावा करने वाले ऐरे-गैरे लोगों के चक्कर में न फँसे।

कीमिया अथवा रसायन किसको कहते हैं ? सर्व-साधारण की मान्यता के अनुसार यह एक ऐसी विद्या है जिसके द्वारा घटिया धातुओं को सोना या चाँदी के रूप में बदला जा सकता है। 'कीमिया' अरबी भाषा का शब्द है। एक समय ऐसा था कि अरब में इस विद्या का बड़ा जोर था। पर यह विद्या उनकी निजी न थी। यह उनको उन यूनानियों से मिली थी जो अलैक्जैंड्रिया से हट कर उनके देश में आ बसे थे। अरब से यह चीज पश्चिमी योरोप में पहुँची। अरब के लोगों में ऐसी धारणा थी कि यह विद्या स्वर्ग के कुछ फरिश्तों ने जान-बूझकर मनुष्यों को सिखलाई है, जिससे वे भगवान से अपने झगड़े का बदला ले सकें।

पर स्वर्ग के फरिश्तों की बात को दूर रखें, तो भी इसमें सन्देह नहीं कि पूर्व काल में बहुत से मनुष्य इस विद्या को जानने का दावा करते थे और किसी के पूछने पर उसे बताने से इन्कार करते थे। बहुत अधिक कोशिश करने या सेवा करने पर ही उनसे इस सम्बन्ध में कोई बात जानी जा सकती थी। हम नीचे एक आँखों देखी घटना लिखते हैं जिससे इस विषय पर कुछ प्रकाश पड़ेगा—

आज से लगभग ६० साल पहले की बात है कि एक बुड्ढा हकीम था और बड़े-बड़े मरीजों को सहज में अच्छा कर देता था। उसका जन्म कहाँ हुआ था, कहाँ का रहने वाला था, कहाँ रहकर पढ़ा था, इन बातों का उत्तर वह कभी नहीं देता था। अगर कोई बहुत ही आग्रह करता तो वह कुछ कहता, पर उसका कहना और भी सन्देहजनक जान पड़ता। कोई उसकी उमर पूछता तो वह एक लम्बी सूची बतलाता कि "मैंने अपने जीवन के तीस वर्ष तुर्किस्तान में चालीस वर्ष मिसर में, पचास वर्ष तिब्बत में, साठ वर्ष चीन में, दस वर्ष बंगाल में रहा, आदि आदि।" उसके बतलाये सब वर्षों को जोड़ा जाता तो वह ३००-३५० वर्ष का सिद्ध होता। कुछ भी हो वह शक्ल से ९०-१०० वर्ष का तो अवश्य लगता था। लम्बा कद, शरीर पर झुरियाँ, देह की नसें एक दम ऊपर उभरी हुई, आदि अति वृद्धावस्था की सभी निशानियाँ उसमें पाई जाती थीं। उसकी पोशाक भी अजब ढंग की थी। पैरों में कामदार जूते, पेशावसी पायजामा, लम्बा-सा कामदार चुगा, गले में तरह-तरह की मालायें और माथे पर विचित्र प्रकार की कामदार पगड़ी। उसकी ऐसी मिली-जुली पोशाक देखकर यह नहीं जाना जा सकता था कि वह किस देश का रहने वाला है। वह अनेक भाषायें जानता था और कभी ऐसी भाषा बोलता था जो हमारी समझ में बिल्कुल नहीं आती थी। दवायें भी वह अपने हाथ से बनाता था और वे बड़ी कीमती भी होती थीं। एक बार उसने एक दवा तैयार की जिसमें कितने ही महीने लग गये और खर्च भी लगभग तीन हजार रुपये हो गये। उसकी गोलियाँ बनाई गई थीं। एक दिन उन गोलियों को धूप में सुखाया गया था कि एक पालतू हिरन वहाँ आ गया और उसने कई गोलियाँ खा डालीं। थोड़ी देर बाद वह उनकी गर्मी से व्याकुल हुआ कि सामने बावड़ी में कूद कर जान दे दी। इस घटना से सब इतने भयभीत हो गये कि कोई उस दवा को खाने के लिये राजी न हुआ और उस पर सारा खर्च और मेहनत ऐसे ही गई।

यह हकीम कीमिया विद्या का भी बड़ा जानकार था। जब कुछ लोगों को इस बात का पता लगा तो उसके पीछे पड़ गये और वह भी उसका प्रमाण देने को तैयार हो गया। वह स्वयं जंगल में जाकर कितनी ही तरह की जड़-बूटी उखाड़ लाया। एक बड़ी भट्टी जलाकर उसके ऊपर एक बड़ी कढ़ाई रख दी गई उसमें उन जड़ी-बूटियों का रस निकाल कर डाल दिया गया, रस में लोहे का टुकड़ा भी छोड़ दिया। पूरे दो सप्ताह तक रात-दिन भट्टी जलाई जाती रही। पर इतनी आग लगने पर भी जड़ी-बूटियों का रस सूखा नहीं। अन्त में पन्द्रह दिन बाद वह लोहे का टुकड़ा सोने के रूप में बदल गया। सुनारों को बुलाकर जब उसकी परीक्षा कराई गयी तो हर तरह से जाँच करके उसके ठीक सोना ही बतलाया गया। जिसने भी उस नुस्खे को जानने का आग्रह किया उसने उन्हें चार लाइन का एक पद्य सुना दिया और कहा कि 'मेरा समस्त नुस्खा इसी में समाया है।' पर इन लाइनों का रहस्य उसने नहीं समझाया। यह पद्य नीचे दिया जाता है, शायद कोई पाठक उसका अर्थ निकाल सकें—

तोरस मोरस गन्धक पारा । इन्हीं मार इक नाग सँवारा ॥
नाग मार, नागिन का देय । सारा जग कंचन कर लेय ॥

यह बुड्ढा दो वर्ष तक रहा। पीछे एक दिन बाद जाने कहाँ अदृश्य हो गया, उसका कुछ पता नहीं न लग सका।

अरबी भाषा में इस विद्या पर अनेक ग्रन्थ मिलते हैं, उनमें से कितने ही तो पेरिस के राष्ट्रीय पुस्तकालय में मौजूद हैं। लीडन विश्वविद्यालय की लायब्रेरी में भी कितने ही ग्रन्थ मिलते हैं। इनमें से कितने ही तो मौलिक हैं और कुछ यूनानी ग्रन्थों

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

के अनुवाद हैं। इस विषय का सबसे पहला मुसलमान लेखक 'खालिद बिन आजिद' था जिसकी मृत्यु सन् ७०८ ई० में हुई थी। वह सीरिया के मेरियानस नाम के पादरी का चेला था। अरबी भाषा की एक पुस्तक 'किताबे अलफिहरिस्त' में उसका जीवन-चरित्र दिया हुआ है। यूनानी ग्रन्थों का अनुवाद करने वालों में जबीर नाम का लेखक मुख्य है, जो सन् ९०० और १२०० के बीच कभी पैदा हुआ था। उसने कीमिया विद्या का बहुत अध्ययन किया था और कहते हैं कि वह सचमुच सोना बना सकता था।

पश्चिमी योरोप की भाषाओं में भी इन अरबी ग्रन्थों के अनुवाद हुए हैं। एड्रियस लिवेमियस (सन् १६१६), तुलाबोआ सिलमियस (सन् १६१४ से १६७२) तथा सर आइजक न्यूटन जैसे विद्वान और वैज्ञानिक भी इन ग्रन्थों की तरफ आकर्षित हुये थे। सच पूछा जाये तो सोना बनाने के लिये तरह-तरह की वस्तुओं का परीक्षण करते-करते ही योरोप वालों ने आधुनिक रसायनशास्त्र का आरम्भिक ज्ञान प्राप्त किया था। अंग्रेजी में कीमिया विद्या को 'आलकेमी' कहा जाता है और उसी से रसायनशास्त्र का वर्तमान नाम 'कैमिस्ट्री' बना है।

भारतवर्ष में भी यह विद्या कोई नई बात नहीं है। एक जमाना था जब यहाँ इसकी खूब चर्चा थी। पर यहाँ यह विद्या अधिकांश में साधुओं और फकीरों तक ही सीमित थी। वैसे संस्कृत के अनेक प्राचीन ग्रन्थों में इसका उल्लेख मिलता है। सम्भव है इन बातों में कभी कोई वास्तविकता रही हो, पर इस समय तो संसार में इस विद्या का अस्तित्व नहीं जान पड़ता। जादूगर तो आज भी पाये जाते हैं, पर कीमियागारों—नकली अथवा ढोंगी कीमियागारों की तो बात ही करना व्यर्थ है, पर सच्चे कीमियागार कहीं दिखाई नहीं देते। अगर कहीं होंगे भी तो उनके विषय में हमको कोई ज्ञान नहीं है। शायद यही कारण हो कि आजकल सोने का भाव इतना अधिक बढ़ गया है।

देश-विदेश के योगियों के अद्भुत चमत्कार

योगियों और महात्माओं के चमत्कारों की जितनी चर्चा इस देश में सुनी जाती है और उन पर जितना अधिक विश्वास किया जाता है, उसकी तुलना किसी अन्य देश में मिल सकनी कठिन है। थोड़े से देश प्रसिद्ध सन्तों की बात छोड़ दीजिये, यहाँ किसी छोटे से नगर या कस्बे में भी एकाध ऐसे साधू मिल ही जायेंगे जिनके विषय में लोग चमत्कारों की चर्चा करते हैं। यद्यपि इन बातों में से बहुत-सी अतिशयोक्तिपूर्ण होती हैं और बहुत से व्यक्ति जान-बूझ कर जनता को बहकाने के लिये भी ऐसी बातों को फैलाया करते हैं, पर चमत्कारों की बातें सर्वथा निराधार या बनावटी हैं यह कहने का साहस भी कोई नहीं कर सकता। क्योंकि अनेक चमत्कार ऐसी परिस्थितियों में देखे जाते हैं कि उनको बिल्कुल गलत कोई नहीं कह सकता। उदाहरण स्वरूप हम २१ मई १९४९ को समाचार पत्रों में प्रकाशित एक खबर यहाँ दे रहे हैं।

"नई दिल्ली २१ मई। आज सायंकाल भी शिव अवतार शर्मा नामक व्यक्ति ने राष्ट्रपति डा० राजेन्द्रप्रसाद के समक्ष 'दिव्य दृष्टि' का सफल प्रयोग किया। राष्ट्रपति ने एक कमरे में कुछ पंक्तियाँ लिखीं तो दूसरे कमरे में श्री शिवअवतार शर्मा ने वे सारी की सारी पंक्तियाँ ज्यों की त्यों लिखकर दिखा दीं। राष्ट्रपति इस दिव्य दृष्टि से अत्यधिक प्रभावित हुये तथा श्री शर्मा को सलाह दी कि वे इस आध्यात्मिक विज्ञान को विकसित करने का प्रयत्न करते रहें।"

इसी प्रकार कुछ वर्ष पहले एक व्यक्ति ने दिल्ली के प्रसिद्ध बिड़ला भवन में अनेक आदरणीय व्यक्तियों तथा नेताओं के समक्ष ताँबे को सोना बना दिया था और एक साधु ने एक पूरी नम्बरी ईंट को मिश्री बना कर दिखा दिया था। आग पर चलने के प्रदर्शन तो प्रतिवर्ष अनेक स्थानों में किये जाते हैं। इस तरह के अनगिनती चमत्कार अथवा ऐसे कृत्य जिनका कारण एक बुद्धिमान व्यक्ति की समझ में नहीं आता, सदा सुनने और देखने में आते रहते हैं।

पर भारतवर्ष के बाहर भी ऐसे चमत्कारों की बातें प्रायः सुनने में आती हैं। ईसाई धर्म के प्राचीन ग्रन्थों में तो ऐसी सैकड़ों घटनायें दी गई हैं और करोड़ों ईसाई उनको पूर्णतः सत्य मानते हैं। ईसाइयों की बाइबिल में लिखा है कि एक प्रसिद्ध महात्मा एलिक्षा ने एक मृत बालक को पुनर्जीवित किया था। इन्हीं महात्मा के पास एक विधवा स्त्री आई और आर्तस्वर से कहने लगी कि मेरे ऊपर एक महाजन का ऋण हो गया है, जिसके बदले में वह मुझे और मेरी सन्तानों को बेच डालने का भय दिखा रहा है। आप इस भयंकर विपत्ति से मेरी रक्षा करें। महात्मा ने पूछा कि तुम्हारे घर में तुम्हारी कोई निजी सम्पत्ति है या नहीं। विधवा ने उत्तर दिया "एक छोटे से बर्तन में केवल थोड़ा सा तेल है।" महात्मा ने कहा "जाओ अपने पड़ोसियों के यहाँ से जितने बड़े-बड़े बर्तन मिल सकें माँग लाओ और अपने उस बर्तन से तेल डाल-डाल सब बर्तनों को भर दो। देखोगी कि जितना तेल निकाला जाता है उतना ही बढ़ता जाता है। सब बर्तन भर जायेंगे। उस तेल को बेच कर ऋण चुका देना, जो कुछ बचा रहे उसे अपने निर्वाह को रख लेना।" ऐसा ही हुआ और विधवा ने ऋण की विपत्ति से छुटकारा पा लिया।

ईसाई धर्म के प्रवर्तक ईसामसीह के बारे में तो ऐसी सैकड़ों घटनाएँ बाइबिल में दी गई हैं। ऐसी प्राचीन बातों का प्रमाणित करना तो सम्भव नहीं होता, पर जो कुछ बातें उनके सम्बन्ध में सुनने में आई हैं, उनसे यही विदित होता है कि ईसामसीह में जन्म से ही एक योगी पुरुष होने के लक्षण मौजूद थे, और जैसे अब भी बहुत से व्यक्ति स्वभावतः चमत्कारी शक्ति प्रदर्शित करने वाले मिल जाते हैं, उसी प्रकार ईसामसीह में भी ऐसी शक्ति थी जिससे वे असम्भव समझे जाने वाले अनेक कार्य कर सकते थे। सम्भव है उन्होंने साधना करके इस शक्ति को विशेष रूप से विकसित भी किया हो। कहा तो यहाँ तक जाता है कि उन्होंने भारतवर्ष में आकर योग की शिक्षा प्राप्त की थी। कुछ भी हो बाइबिल के अनुसार उन्होंने केवल हाथ से छूकर कितने ही लोगों का कोढ़ रोग दूर कर दिया, जन्मान्धों को दृष्टि प्रदान की, पाँच जौ की रोटियों से पाँच हजार

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

व्यक्तियों को भोजन कराया और कई मृत व्यक्तियों को पुनर्जीवन प्रदान किया। ईसा के समकालीन एक एपोलिनियस नामक योगी थे। उन्होंने भारतवर्ष आकर सद्गुरु से योग शिक्षा प्राप्त की थी। उनके साथी शिष्य उनकी यात्रा का तथा शिक्षा का विवरण लिख कर रखते चले जाते थे और वे बातें अब भी एपोलिनियस के जीवन चरित्रों से मिलती हैं। वे योगबल से भूत, भविष्य की घटनाओं को स्वच्छ दर्पण के प्रतिबिम्ब की तरह देख सकते थे। उन्होंने भी कई मृत व्यक्तियों को जीवित किया था।

स्पेन देश के 'महात्मा इसीडोर' में असाधारण विभूतियाँ थीं। वैसे वे एक साधारण किसान थे। एक बार सारे दिन परिश्रम करने के बाद शाम को अपनी कुटी में आकर देखा कि एक दरिद्र यात्री अन्न की आशा से उसके दरवाजे पर बैठा है। महात्मा ने अपनी स्त्री से उस आदमी के लिये कुछ लाने के लिये कहा, परन्तु घर में कुछ भी न था। इसीडोर ने फिर कहा कि "भीतर जाकर देखो कि कुछ है या नहीं ?" स्त्री ने उत्तर दिया कि मैं अभी तो उसे धो मांज कर रख कर आई हूँ, उसमें कुछ भी नहीं है। तब उन्होंने स्त्री से कहा कि उस बर्तन को तुम मेरे पास ले आओ। स्त्री जब घर में बर्तन लाने गई तो वह उसे बहुत भारी जान पड़ा। जब उसने ढक्कन उठाया तो देखा कि पात्र तुरन्त पके हुये उष्ण और स्वादिष्ट खाद्य पदार्थ परिपूर्ण है। उसने उसके द्वारा भूखे अतिथि को भर पेट भोजन कराया, फिर भी वह समाप्त नहीं हुआ।

ईसाई धर्म-साहित्य में 'एग्निस' नाम की साधिका की योग विभूतियों का वर्णन बहुत प्रसिद्ध है। एक दिन दो साधु उससे मिलने आये। बहुत देर तक आपस में आध्यात्मिक जीवन के विषय में बातचीत होती रही। अन्त में साधिका ने दोनों साधुओं को भोजन के लिये बैठाया। भोजन परोसने के पहले ही साधुओं ने देखा कि अकस्मात् एक थाली मेज के ऊपर आ गई। उसमें एक सुन्दर खिला हुआ गुलाब का फल था। साधिका ने कहा—'बाबा जी' प्रभु ईसा ने दया करके भयंकर शीतकाल में जब पृथ्वी के बगीचों के सभी पुष्प नष्ट हो गये हैं, स्वर्ग के बगीचे से इस गुलाब को हमारे पास भेजा है। आप लोगों से बात करने से मेरे हृदय में जो आनन्द और तृप्ति का संचार हुआ है, यह उसी का निदर्शन है।" दोनों साधु इस विचित्र घटना को देख कर बड़े विस्मित हुये और अपने स्थानों को लौट गये। इसी साधिका ने पवर्त शिखर पर एक रमणीक विहार बनवाया था, जिसमें २०० तपस्विनी साधिकाएँ उसके साथ रहती थीं। एक बार तीन दिन तक घर में अन्न नहीं रहा। सब लोगों ने उपवास किया। एग्निस ने प्रार्थना की !—"प्रभु तुम्हारे ही आदेश से मैंने इस विहार को बनवाया था। अब तुम क्या यह चाहते हो कि तुम्हारी सेविकाएँ अन्न के बिना प्राण त्याग दें। प्रभु ! हमारे लिये अन्न की व्यवस्था करो अन्यथा हम सब मर जायेंगी। हम लोगों के लिये पाँच रोटियाँ भेज दो। स्वामिन् ! हमारी शक्ति तो असाधारण है।" फिर उसने एक तपस्विनी से कहा—"जाओ बहन ऊपर जाकर रोटी उठा ला, उसे प्रभु ईसा ने अभी भेजा है।" एक रोटी लाकर मेज पर रक्खी गई वह एक विचित्र वस्तु थी। उसमें से जितनी खाई जाती थी उतनी ही अलक्ष्य रूप से वह बढ़ जाती थी। बहुत दिनों तक आश्रम के सब लोगों की भूख उसी से निवृत्त होती रही।

भारतवर्ष के योगियों के चमत्कारों से तो अठारह पुराण भरे पड़े हैं। प्राचीनकाल के ऋषि, मुनि तथा अन्य सभी साधक अधिकांश कार्यों की पूर्ति योगशक्ति से ही किया करते थे। विद्या के ऐतिहासिक युग में भी शंकराचार्य जी के योगबल की कथाएँ अनेक ग्रन्थों में लिपिबद्ध हैं। मण्डन मिश्र की स्त्री से शास्त्रार्थ करने के लिये उन्होंने पर काया में प्रवेश किया था, नर्मदा के जल को बहने से रोक दिया था, आकाश मार्ग से गमन किया था आदि। बुद्ध के शिष्य मौद्गल्यायन और पिण्डोल ने भी राजगृह में ऐसा चमत्कार दिखाया था। वहाँ एक सेठ ने ६० हाथ ऊँचे बाँस पर एक कमण्डल टाँग दिया था और यह घोषणा करवा दी थी कि यदि कोई सच्चा अर्हत (आत्मज्ञानी) हो तो उसे आकाश मार्ग से आकर ग्रहण करे। इस प्रकार की बात जब मौद्गल्यायन और पिण्डौल के कानों में पहुँची और उन्होंने जंगल में शिकारियों को यह चर्चा करते सुना कि "आज कल कोई अर्हत नहीं है, जो हैं वे सब दिखावटी और कपटी है" तो उनको इसमें अपने गुरु तथा धर्म का अपमान जान पड़ा और उन्होंने शून्य-मार्ग से जाकर कमण्डल को बाँस से उतार लिया। इस पर जनता में उनकी बड़ी प्रशंसा फैल गई, पर बुद्ध भगवान ने उनको डाँट दिया और अपने संघ में सबको यह आज्ञा दे दी कि भविष्य में लौकिक कार्य के लिये कोई ऐसा योग शक्ति का चमत्कार न दिखलावे।

इस प्रकार के अनगिनती चमत्कार भारतवर्ष के धर्म-ग्रन्थों में भरे पड़े हैं। यहाँ ऐसा कोई महापुरुष शायद ही मिले जिसके नाम के साथ चमत्कारों की चर्चा न हो। मन चाही चीजों को एक क्षण में मँगा देना, पदार्थों का परिमाण बढ़ा देना, रोगियों को अच्छा कर देना, सोने, चाँदी, रत्न आदि की वर्षा करा देना आदि बातें तो यहाँ साधारण साधकों के कार्य माने जाते थे। यहाँ तो योग की सिद्धियों द्वारा पर्वतों, नदियों समुद्रों को ही नहीं, सूर्य और चन्द्रमा तक को अंधकार में किया जा सकना और इच्छानुसार चलाया जा सकता सम्भव माना गया है। आत्मज्ञान की दृष्टि से इस प्रकार का बड़े से बड़ा चमत्कार भी महत्वहीन समझा जाता है और उसे लाभदायक होने के बजाय आत्म-विकास के लिये हानिकारक माना जाता है। इसलिये सच्चे सन्त पुरुष धर्म-रक्षा का प्रश्न उपस्थित होने के सिवाय अन्य अवसरों पर कदापि योगशक्ति का प्रयोग चमत्कारों के लिये नहीं करते।

असली और नकली चमत्कारों का अन्तर समझें

मनुष्य की आत्मशक्ति का अन्त नहीं। ईश्वर की समस्त शक्तियाँ और विशेषताएँ उसके अंश-पुत्र में बीज रूप से विद्यमान हैं। वह चाहे तो उन्हें विकसित कर सकता है और ईश्वर की हर कृति में जो उसका अद्भुत चमत्कार दीख पड़ता है उसी प्रकार उसके कर्तृत्व भी एक से बढ़ एक कर सराहनीय अभिनन्दनीय और अनुकरणीय हो सकते हैं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

ऋषि, योगी, तपस्वी, ज्ञानी, सिद्ध पुरुष और महामानव इसी चमत्कारी स्तर के हुए हैं, उनका जीवन-क्रम इतनी उच्च कोटि का रहा है कि उसे सामान्य नर-पशुओं की तुलना में उच्च कोटि का कह सकते हैं, उनने मानव जाति के लिए जो त्याग और बलिदान किये हैं, अनुदान छोड़े हैं, उनका स्मरण करके उनके देवोपम अस्तित्व के सम्मुख नतमस्तक होना पड़ता है और आदर्शवादिता अपनाये रहने एवं कठिन परिस्थितियों का सामना करते हुए भी उत्कृष्टता की राह पर अड़े रहने को एक चमत्कार ही कह सकते हैं। बुद्ध, महावीर, गाँधी, समर्थ गुरु रामदास, रामकृष्ण परमहंस, विवेकानन्द, अरविन्द आदि महामानवों को चमत्कारी सिद्ध पुरुष ही कहा जायेगा। उच्चस्तरीय महापुरुषों के कर्तृत्व के पीछे उच्च स्तरीय परम्पराएँ ही सन्निहित रहती हैं।

असल की नकल बनाने में कुशल इस दुनिया में बहुत हैं। नकली दाँत, नकली आँख, नकली घी, नकली हीरा, नकली सोना जो चाहिए सो मिल जायेगा। असली चीज महँगी और कष्ट साध्य होती है, नकल आसानी से उतारी जा सकती है। असली गाय आठ सौ रुपये की आती है पर मिट्टी की गाय दस पैसे की मिल जाती है। बाल बुद्धि के लोग अक्सर सस्ते से ही मन बहलाना चाहते हैं, इस मानवी दुर्बलता को चतुर लोग जानते हैं और नकली चीजों से बाजार पाट देते हैं, वे बिकती भी खूब हैं।

नकली अध्यात्म भी बहुत फैला पड़ा है। असली हीरे जितने बिकते हैं उससे हजारों गुने अधिक नकली बिकते हैं। असली आत्मबल कठिनाई से संचित होता है उसके लिये संयम, तप, साधना और व्यक्ति का समग्र निर्माण जैसे कठिन मार्ग पर चलना पड़ता है। चतुर लोग इस झंझट में पड़कर अपनी विलासी और महत्वाकांक्षी प्रवृत्ति कैसे छोड़ सकते हैं। वे नकलीपन का आश्रय लेते हैं। ऐसे सन्त महात्मा और सिद्ध योगियों की कमी नहीं जो हाथ ऊपर करके आसमान में से इलायची मँगाते और भक्तदर्शकों को खिलाते हैं। यह जादूगरों द्वारा रुपया बनाने जैसे खेलों की भोंड़ी नकल है। पर सन्त का वाना पहने होने के कारण लोग उन्हें बाजीगर नहीं मानते और उस अचम्भे जैसी बाजीगरी को सिद्धि-चमत्कार मान लेते हैं और उन धूर्तों द्वारा बेतरह ठगे जाते हैं।

यदि लोग समझदारी से काम लें तो वह इस तथ्य पर विचार कर सकते हैं कि इस प्रकार चमत्कार दिखाने की इन्हें फुरसत कैसे मिली और आवश्यकता क्या प्रतीत हुई ? जिनमें आत्मबल होता है वे उसके महत्व को समझते हैं और उसको भोंड़ा प्रदर्शन नहीं करते। नोटों की गड्डी और जेवर, जवाहरातों की पोटली कोई बाजार में उछालता नहीं फिरता और न यह ढोल पीटता है कि लोगो आओ, देखो मेरे पास कितनी दौलत है। सम्पन्न व्यक्ति अपने धन को सुरक्षित रखते हैं और उसे मजबूत तिजोरी में रखते हैं। अविश्वस्त व्यक्तियों को उसका विवरण भी नहीं बताते। पूछने पर चुप हो जाते हैं या टाल देते हैं। कारण स्पष्ट है—बहुमूल्य उपलब्धियाँ यदि खुली पड़ी रहें तो उसके खोने, चोरी जाने का पूरा खतरा है। वास्तविक आत्मबल सम्पन्न न कभी अपना विज्ञापन कर सकते हैं और न चमत्कारों का प्रदर्शन। वे उसे केवल आत्मकल्याण और लोकमंगल जैसे महान प्रयोजनों में ही प्रयुक्त करते हैं।

जहाँ अलौकिक चमत्कारों का विज्ञापन और प्रदर्शन किया जा रहा है वहाँ पूरा खतरा है यह हर समझदार आदमी को जान लेना चाहिए। ऐसे प्रसंगों में ढोंग, चालाकी और हाथ की सफाई के अतिरिक्त और कुछ हो ही नहीं सकता। जो इनके फेर में पड़ेगा वह बुरी तरह पछतायेगा। चमत्कारी लोगों के वेश में अक्सर ठग और जेबकट ही इस प्रकार के प्रदर्शन करते हैं।

बाजीगरी में अपेक्षाकृत ईमानदारी है। वे सन्त बाबाओं की तरह अनैतिक प्रतिपादन नहीं करते। वे अपनी चतुरता का ही दावा करते हैं और हाथ की सफाई की बात कहकर अपना गुजारा करते हैं। यह मनोरंजक व्यवसाय है। जादूगर को 'चतुर' भर कहा जा सकता है उसे ठग कहने की गुंजायश नहीं है। जहाँ कोई अपनी अलौकिकता की बात करे, समझना चाहिए कि यहीं ठगी आरम्भ हो गई।

यद्यपि आमतौर से जादूगर अपने कार्यों में 'चतुरता' भर होने की बात स्पष्ट कर देते हैं तो भी लोग उनके खेलों के पीछे कोई अलौकिकता या सिद्धि चमत्कार होने की बात सोचते रहते हैं। जब तक बात प्रकट नहीं होती तब तक ऐसी ही रहस्यवादी चर्चाएँ होती रहती हैं और लोग आश्चर्य अनुभव करते हैं। पर कई बार कुछ गलती हो जाने से उनकी चतुरता का भेद खुल भी जाता है। कई बार खतरनाक खेलों में उन्हें भारी संकट सहना पड़ता है। तब कहीं लोग असलियत समझते हैं और अनुभव करते हैं कि सिद्धियों की बात निरर्थक है। जहाँ सिद्धि है वहाँ प्रदर्शन पर कठोर प्रतिबन्ध रहता है। जहाँ बाजीगरी है वह चालाकी भर है। बुद्धि भ्रम उत्पन्न कर देने का नाम ही जादू है जो इस तथ्य को समझते हैं वे चमत्कारी की बात से ही अपने मन को विरत कर लेते हैं। उन्हें विवेक की कसौटी पर असली और नकली सिद्धि में भेद करना कुछ भी कठिन प्रतीत नहीं होता।

जादू के चमत्कारों की पोल खोल देने वाली कुछ घटनाएँ इस प्रकार हैं—

सन् १९१८ की बात है। उन दिनों चीनी जादूगर 'चुंग-लिंग शू' की सारे इंग्लैण्ड में धूम थी। वह ऐसे अद्भुत जादू के खेल दिखाता था कि एक ही प्रकार के खेलों को देखने के लिए दर्शक बार-बार आने का लोभ संवरण न कर पाते थे। उसके खेल वस्तुतः ऐसे ही थे।

चुंग अपनी पत्नी को एक विशाल समुद्री सीप के मुँह में धकेल कर उसे बन्द कर देता। खोलने पर वह गायब हो जाती और फिर दर्शकों की गैलरी में हँसती हुई प्रकट होती। इसी प्रकार वह स्टेज पर एक बड़ी तोप मंगाता। उसमें अपनी पत्नी को ठूँस देता। नीचे बारूद ऊपर लोहे को गोला बीच में चुंग की पत्नी सुई सीन, तोप चलती, गोला दर न जाकर स्टेज पर ही लौट आता और सुई अन्यत्र प्रकट होती। बन्दूक की गोली चलती। सुई की छाती को चीरती हुई पार निकलती। सुई मर जाती। पीछे वह फिर जी उठती।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

काटा बाँशी लेकर वह हवा में से जीवित मछलियाँ पकड़ कर दिखाता, इसी तरह उसका एक खेल था छाती पर चीनी की प्लेट रखना और उस पर बन्दूक की गोली रोकना।

२३ मार्च १९१८ की रात को वह यही प्लेट पर गोली रोकने का खेल दिखा रहा था कि गोलियाँ उसके सीने में पार निकल गई और वह स्टेज पर ही ढेर हो गया।

भूतों के करिश्में दिखाने में पारंगत अमेरिकी जादूगर राविन सन ऐसे करतब दिखाता था जिनमें भूतों के अस्तित्व और क्रियाकलाप को प्रत्यक्ष देखा जा सके, पर वह अन्त में यह बता भी देता था कि यह विशुद्ध बाजीगरी है, उसके खेलों का असली भूतों से तनिक भी सम्बन्ध नहीं है।

पेरिस में जादूगर 'चिंग लिंग फू' का प्रसिद्ध खेल था शून्य आकाश में से पानी का भरा घड़ा उत्पन्न करना तथा पक्षियों को पकड़ना। वस्तुतः घड़ा उसकी लम्बाई में पीछे की ओर छिपा रहता था और उसी में पक्षी भी दबे रहते थे। उस दिन गलती से घड़ा फूट गया और भीगे हुए पक्षी बेतरह चिल्लाने लगे। जादूगर की खिल्ली उड़ गई। खेल कई दिन चलने का प्रोग्राम था। पर हाल के मैनेजर ने उसे दूसरे ही दिन भगा दिया।

३० अक्टूबर १९६६ के 'धर्म युग' में श्री तिलकचन्द श्रीवास्तव का एक विवरण छपा है कि वे एक बार अपने गाँव गये तो वहाँ देखा कि दूरवर्ती पीपल के पेड़ पर से आग के अंगारे झर रहे हैं और सारा गाँव उसे भूत-प्रेतों की करतूत समझकर भय और आश्चर्य से उस दृश्य को देख रहा है।

इस कौतूहल को गाँव में बाहर से आये हुए एक हट्टे-कट्टे अतिथि ने आश्चर्यजनक ढंग से भंग कर दिया। वे सज्जन इस तरह की घटनाओं के पीछे भूत विद्या के नाम पर उल्लू सीधा करने वाले ओझाओं की करतूत से परिचित थे सो टार्च हाथ में लेकर उस पेड़ के पास निर्भय होकर गये और ऊपर चढ़ गये। और आग बरसाने वाले भूत को पकड़ कर साथ ले आये।

किया यह गया था कि डेढ़ फीट लम्बी तथा दो इंच चौड़ी कपड़े की एक पतली थैली बनाई गई थी। उसमें एक तह बालू की, एक तह लकड़ी के बुरादे की जमाकर भरदी गई थी। उसे मिट्टी के तेल में भिगोया गया था थैली के निचले सिरे में आग लगाकर उसे पेड़ की ऊँची डाली पर टाँग दिया था। मिट्टी के तेल में डूबा हुआ बुरादा जलता और नीचे गिरता। बालू के परत कुछ देर के लिए उस अग्नि वर्षा को रोक देते और जैसे ही बालू नीचे गिर जाती फिर बुरादे का परत नीचे गिरने लगता और अग्नि वर्षा दिखाई पड़ती।

लोगों ने इस करतूत को भली प्रकार देखा और समझा कि भूत विद्या के नाम पर लोगों को डराने और पैसा ऐंठने वाले लोगों को किस प्रकार भ्रम में डाल कर अपना व्यवसाय चलाते हैं।

जादूगर डेविड डेवान्ट की उन दिनों इंग्लैण्ड में बहुत ख्याति थी। रुपये बनाने वाले जादूगर के रूप में उसे बच्चा-बच्चा जानता था। जब वह खेल दिखाता तो देखने वाले हैरत में रह जाते । हवा में हाथ मारता और रुपया पकड़ लेता। इस तरह वह डिब्बे भर-भर कर रुपये बनाता और देखने वालों को स्तब्ध कर देता।

एक दिन डेवान्ट कहीं चले जा रहे थे। रास्ते में अकेले पाकर उन्हें एक हट्टे-कट्टे आदमी ने पकड़ लिया और कहा—आज कल में बहुत तंगी में हूँ। मेरी टोपी रुपयों से भर दीजिए इतने से ही मेरा काम चल जायेगा।

डेवान्ट ने उसे टालने बहलाने की कोशिश की पर वह तो अड़ ही गया और मरने-मारने पर उतारू हो गया और यदि रुपये न दिये गये तो उनकी जान ही चली जायेगी। यह उस मुस्टण्डे ने बिल्कुल स्पष्ट कर दिया। जादूगर महोदय सिटपिटाये, उसने यह कभी सोचा तक न था कि यह कला कभी उनके लिए इस प्रकार प्राणघातक भी बन सकती है, कुछ सूझ न पड़ रहा था कि क्या किया जाये ? उनकी जेब में सिर्फ छः शिलिंग थे। एक शिलिंग बनाकर देते और फिर उसे बातों में उलझा देते। इस प्रकार उन्होंने पाँच शिलिंग बना कर दे दिये। एक ही बचा था, वे इस ताक झाँक में थे कि उधर से कोई मुसाफिर आ निकले तो उसकी सहायता से अपने प्राण बचायें। छटा शिलिंग बना कर देने को ही थे कि उधर से राहगीरों का एक जत्था आ गया। मालूम पड़ा कि वे घर से भागे हुए इसी विक्षिप्त को खोज रहे थे। वे उसे पकड़ कर ले गये और इस प्रकार डेवान्ट की जान जाते-जाते बची।

फ्रान्सीसी जादूगर 'वूय तिये दे कोलता' ने कपड़े से ढककर वस्तुएँ गायब करने का जादू चलाया था। उसी विधि को अंग्रेज जादूगर चार्ल्स कारट्राम ने विकसित किया, वे भरी सभा में कपड़े से ढक कर एक समूची महिला को गायब कर देते थे।

डेविड ने भी यही कला सीखी। एक दिन वे महिला उड़ाने का खेल दिखा चुके तो उनके घर पर व्यक्ति आया और कान के पास मुँह ले जाकर बोला—आप मेरी बताई एक महिला को इस तरह उड़ा दीजिए कि वह फिर कभी प्रकट न हो, आपको मुँह माँगी फीस दूँगा। डेविड ने मुसकराते हुए कहा—मेरा जादू उड़ाने भर में समर्थ है उड़ाई हुई महिला को वापस न आने की गारन्टी नहीं कर सकता। तो भी आप बताइये आखिर वह महिला कौन है ? उस व्यक्ति ने गम्भीर स्वर में दीनता प्रकट करते हुए कहा—वह है मेरी अक्खड़ सास, जो मुझे आये दिन सताती है और तरह-तरह की धमकी देती है।

जादूगर जहाँ अपनी चतुरता से लोगों को चकित करके—वाह वाही लूटने तथा धन कमाने का लाभ प्राप्त करते हैं वहाँ कई बार उनके लिए जीवन संकट भी उत्पन्न कर देती है। बन्दूक से चली हुई गोली पकड़ने का खेल ऐसा ही है जिसे दिखाने के उत्साह में कई बाजीगरों को जान से हाथ धोना पड़ा है।

सन् १९७५ में जादूगर फिलिप यस्टली की एक पुस्तक प्रकाशित हुई 'नेचुरल मेजिक' इसमें उसने गोली चलने पर भी मृत्यु न होने के प्रयोग का वर्णन किया है। उन दिनों लोग शत्रुता होने पर एक-दूसरे को द्वन्द्व युद्ध के लिए ललकारते थे

और जो चुनौती स्वीकार न करे उसे कायर मानते थे। किसी प्रसंग पर दो सैनिकों ने ऐसे ही द्वन्द्व की परस्पर चुनौती दे डाली। उसे रोका तो नहीं जा सका पर उपरोक्त जादूगर ने वह चतुरता बरती जिससे एक दूसरे पर गोली दाग देने पर भी किसी की मृत्यु नहीं हुई। हुआ यह था कि गोली मारते समय जादूगर उपस्थित था और उसने असली गोलियों की जगह नकली गोलियाँ बदल दीं। वे ही बन्दूक में भरी गईं और आवाज मात्र होकर बात समाप्त हो गई, कोई मरा नहीं। तब से यह खेल दूसरे जादूगारों ने भी अपनाया और जहाँ बहुतों ने बहुत धन और यश कमाया वहाँ कइयों ने अपनी जान भी गँवाई।

राम स्वामी सम्प्रदाय के एक भारतीय जादूगर ने योग विद्या के नाम पर लन्दन में इस खेल से धूम मचादी। सन् १८१८ में वे डबलिन (आयरलैण्ड) में यह खेल दिखाने गये। दाँत से छूटी हुई बन्दूक की गोली पकड़ने वाला जादू यहाँ असफल रहा और जादूगर की स्टेज पर ही मृत्यु हो गई। नकली गोली पकड़ने के स्थान पर असली गोली का उपयोग हो जाने से यह दुर्घटना घटी।

पोलैण्ड के जादूगर देलिन्स्की ने यह खेल आर्चस्टाउट के युवराज के राजदरबार में दिखाने का आयोजन किया, इसमें सफलता प्राप्त करने पर उन्हें बहुत धन और सम्मान मिलने वाला था। जादूगर की पत्नी मदाम लिन्स्की को स्टेज पर खड़ा होना था। युवराज के अंग रक्षकों को एक साथ उन पर गोली चलानी थी। मदाम को यह छैहों गोलियाँ हाथ से पकड़ कर दिखानी थीं। यहाँ भी नकली कारतूसों की जगह एक कारतूस असली ही चल गया और उसने सुकोमल महिला की रंग-मंच पर ही जान ले ली।

फ्रान्सीसी जादूगर रवेयार उदयाँ को स्ट्रासवर्ग नगर के एक कला मंच पर अपना जादू दिखाना था। लड़का जिडमानि एक सेव दाँतों के बीच दबा कर रखता था। सामने से पिस्तौल की गोली चलती थी और वह सेव के बीच में ही अटीक रह जाती थी। धातुओं के चूरे से बनी गोली देखने में असली जैसी लगती भी पर वह चूरा पिस्तोल दागते ही इधर-उधर बिखर जाता था और सेव में पहले से ही ठूँसी हुई गोली निकल कर दिखा दी जाती थी। पर यहाँ भी वही भूल हो गई और नकली असली का अन्तर उस झमेले में विस्मृत हो गया। लड़का आर्तनाद के साथ गोली खाकर गिर पड़ा और एक दो बार छटपटा कर वहीं ढेर हो गया। अपने ही पुत्र की मृत्यु का कारण बनने में जादूगर को कितनी मार्मिक वेदना हुई होगी, इसका उल्लेख शब्दों में नहीं हो सकता।

कलकत्ता के जादूगर राजा बोस को एक दिन हरीसन रोड पर एक ऐसे ही चमत्कारी से पाला पड़ गया। जो साधु के वेश में रहता था और करिश्मे दिखाकर लोगों को ठगता था। साधु ने बोस को कोई खाता-पीता नागरिक समझा सो उसे रोका और कहा—बेटा लो सिगरेट पीते जाओ। यह कहकर उसने अपनी दाढ़ी पर हाथ फेरा और सिगरेट निकाल कर दे दी। इसके बाद कुछ और दूसरी चीजें भी दाढ़ी में से निकाल कर दीं। बोस कुछ देर तो चुप रहे, पीछे उन्होंने भी साधु के विभिन्न अंगों में से कितने ही पैसे निकाल कर उसे दे दिये और जितना सामान साधु ने दिया था उसका मूल्य चुका दिया। साधु झेंपता हुआ एक ओर चला गया।

सिद्धि और चमत्कारों के पीछे दौड़ने वालों की आँखें उपरोक्त उदाहरणों से खुल जानी चाहिये। बुद्धिमता का एक निष्कर्ष है कि मनुष्य की आन्तरिक महानता ही उसकी चमत्कारिता है। जो ईश्वर के मार्ग पर चलता है। उसके जैसा बनता है वह ईश्वरोपम गरिमा का अधिकारी बनता है। यदि चमत्कारों की बात में कुछ तथ्य है तो इतना ही है।

भला यह भी कोई सिद्धि चमत्कार है

आग पर चलना कोई सिद्धि चमत्कार नहीं है वरन् गर्मी और दाह के बीच के अन्तर को समझते हुये एक विज्ञान सम्मत प्रयास मात्र है। अग्नि हर वस्तु को पैट्रोल के समान तुरन्त ही नहीं जला देती—जलने वाली वस्तु का क्रमबद्ध सम्पर्क उसमें सजलता का अंश तथा ईंधन में रहने वाले ज्वलनशील तत्वों की मात्रा पर यह बात निर्भर है कि कितनी देर में कितने तापमान की अग्नि से क्या वस्तु जल सकती है? यदि ज्वलन्त भाग के मध्य में कम तापमान हो और अग्नि तथा ईंधन के बीच बार-बार व्यवधान पड़ता रहे—वे लगातार चिपक न रहें तो जलन की प्रक्रिया स्वभावतः समय साध्य हो जायेगी।

अग्नि पर चलने का जादू इन्हीं वैज्ञानिक तथ्यों पर अवलम्बित है। जैसे कुछ अभ्यस्त लोग सहज ही दिखाकर भोली जनता को चमत्कृत कर सकते हैं।

फौजी द्वीप में 'विलाविलेरियो' नाम का उत्सव होता है। जिसमें वहाँ के निवासी आग पर नाचते कूदते हैं उनके पैरों में छाले तक नहीं पड़ते। अजनबी दर्शक उसे चमत्कार मानते हैं और देखकर चकित रह जाते हैं।

पर जिन्हें वास्तविकता की जानकारी है उसके लिये यह क्रीड़ा कौतुक मात्र है। होता यह है कि तीस फीट की गोलाई का एक गड्ढा खोद कर उसमें सूखी जलाऊ लकड़ियाँ भर दी जाती हैं। उनमें आग लगाई जाती है। जब वे लकड़ियाँ जलने लगती हैं। तो ऊपर से पत्थर लुढ़का दिये जाते हैं। पत्थरों को कई घण्टों तपने दिया जाता है इसके बाद उन गरम पत्थरों पर हरी पत्तियाँ फैला दी जाती हैं। उससे वहाँ धुयें जैसे बादल उठने लगते हैं। आग और बादलों के बीच नाचने का नाटकीय दृश्य बहुत ही कौतूहलवर्द्धक लगता है।

इस आयोजन के संयोजक इस कृत्य कौतुक का रहस्य बताते हैं कि उस प्रदेश में शश जाति का एक विशेष पत्थर होता है जिसकी बनावट झिरझिरी और छिद्र पूर्ण होती है। वे आग से लाल तो हो जाते हैं पर उनमें ऊष्मा ठहरती बिलकुल नहीं फिर इन पर बिछी हुई पत्तियाँ भी पैरों की रक्षा करती हैं फलस्वरूप नर्तक अपना नृत्य घण्टों बिना किसी कठिनाई के जारी रख सकते हैं।

वाराणसी जिले में अहीर जाति में मनौती के रूप में देवता का 'कहाड़' चढ़ाने की प्रथा है। इस विधान में गोबर के उपलों में आग सुलगा कर मिट्टी के तीन बड़े घड़ों में खीर बनाई जाती है। इसे 'लईया' कहते हैं। एक घड़ा अहीरों के

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

जाति देवता कृष्ण का—दूसरा कुल देवी बनसन्ती, का तीसरा दुर्गा का होता है। पूड़ियाँ भी बनती हैं और उस प्रसाद को लेने के लिये उस क्षेत्र के लोग दूर-दूर से आते हैं।

इस विधान को पूरा करने के लिये उस क्षेत्र का ओझा 'भगत' आता है। उसे २५ घड़े जल से स्नान कराया जाता है। इसके बाद वह खीर के उबलते दूध में अपना हाथ कोहनी तक डालकर उसे चलाता है। इसी प्रकार वह पूड़ियों के लिये खौलते घी में भी अपना हाथ डालता है पर जलता नहीं। यह विधान पूरा करते हुये वाराणसी से दस मील दूर परानापुर गाँव के बाँचू भगत को एक दर्शक ने अपनी आँखों से देखा था।

इस प्रकार के क्रीड़ा कौतूक यत्र-तत्र देखने को मिलते रहते हैं। उन्हें जादू मन्त्र या देवता की सिद्धि समझ कर बहुत लोग चढ़ावा मनौती के रूप में गाँठ कटाते रहते हैं। बाजीगर मुँह से ही शोले निकालने, हाथ पर अगारा रखे फिरने जैसे कई खेल दिखाता है इनमें अग्नि का प्रभाव कब कहाँ कितना और कैसे होता है इसकी जानकारी प्राप्त करके तदनुकूल अभ्यास कर लेने भर की विशेषता रहती है। ऐसे खेल-तमाशों को योग सिद्धि के साथ नहीं जोड़ा जाना चाहिये। यही बात तथाकथित सिद्ध पुरुषों द्वारा गड्ढे में समाधि लेने के बारे में भी लागू होती है।

बात पुरानी है। उन दिनों में सिहोर मैं बुक ब्राण्ड चाय कम्पनी का सम्मेलन था और वहाँ से सप्ताह में दो बार आष्टा नामक समीपस्थ गाँव में चाय वितरण करने जाया करता था। एक बार मैंने देखा, गाँव के लोग बड़े उत्साह में हैं और गाँव का झण्डियों और वन्दनबारों से सजा रहे हैं। गाँव में एक मन्दिर था, जिसका बहुत-सा हिस्सा टूट चुका था। इस मन्दिर के भी भाग्य जाग गये थे। सफाई हो रही थी, सफेदी की जा रही थी। मन में कौतूहल जागा कि यह सब किस लिये हो रहा है।

मैंने एक होटल वाले से पूछा—क्यों भाई यह सब किस बात की तैयारी है ? उसने कहा—आपको नहीं मालूम ? खंजरी बाबा जिनकी भूगर्भ समाधि लगाने में बड़ी ख्याति है, हमारे गाँव में पधारने वाले हैं। उनके दर्शन मात्र से हमारे अनेक पाप नष्ट हो जावेंगे और गाँव पवित्र हो जायेगा।

वहीं बाबाजी के एक चेले बैठे हुये थे। वे भी तापक से बोले—बाबा बड़े पहुँचे योगी हैं। अपने प्राण ब्रह्माण्ड में खींच लेते हैं और कई दिनों तक समाधि के भीतर उनका शरीर प्राण हीन पड़ा रहता है और जब बाबाजी के प्राण ब्रह्माण्ड से लौटते हैं, तब वह शरीर फिर चैतन्य हो जाता है।

जब मैं दुबारा उस गाँव में गया, उस दिन बाबाजी वहाँ आने वाले थे। सैकड़ों लोग भजन-कीर्तन करते हुये गाँव से १ मील आगे आकर बाबाजी की अगवानी के लिये गये। उनको वहाँ फूल मालाओं से लाद दिया, आरती उतारी और जय-जयकार करते हुये बाबाजी को गाँव में ले आये। बाबाजी ने मन्दिर में अपना डेरा डाला। उनकी उम्र ३०-३५ के करीब होगी। दाढ़ी जरूर बढ़ा ली थी। एक हाथ में छोटी-सी खंजरी थी, जिसे उनकी अँगुलियाँ निरन्तर बजाती रहती थीं। इसी कारण वे खंजरी वाले बाबा कहलाते थे। पता चला कि बाबा जी खीर, दूध की बनी खोआ की चीजें और सूखे मेवा के अलावा कुछ नहीं खाते। निरक्षर और मूर्ख थे। पोल न खुले इस कारण प्रायः मौन ही रहते थे।

जिस मैदान में बाबाजी समाधि लेने वाले थे, वहाँ एक सात-आठ फुट गहरा और लगभग इतना ही चौड़ा गड्ढा खोद दिया गया था। रात भर श्रद्धालु ग्रामीण उस स्थान पर कीर्तन करते रहे। सुबह शौच आदि से निवृत्त होकर बाबाजी जनसमूह के बीच वहाँ पधारे। लोगों ने उनकी आरती उतारी। उनके एजेन्टों द्वारा इस अवसर पर बाबाजी के दर्शन के लिये आस-पास के गाँव के सैकड़ों आदमियों को एकत्रित किया गया था। उपस्थित जनसमूह और गाँव में घर-घर आरती घुमाई गई और पैसे इकट्ठे किये गये। बाबाजी गड्ढे में बिछी दरी पर बैठ गये। ऊपर से तीन-चार टीन की चादरें ढक दी गई और उनके ऊपर मिट्टी चढ़ा दी गई। समाधि बन गई। समाधि के ऊपर एक सफेद चादर बिछा दी गई और इस चमत्कार को देखने के लिये इकट्ठे हुये सैकड़ों स्त्री-पुरुषों ने उस चादर पर रुपया, अठन्नी, चवन्नी अपनी श्रद्धा के अनुसार चढ़ाये। कुछ औरतों ने हाथ में पड़े चाँदीके कड़े छल्ले भी चढ़ा दिये। कहा गया कि बाबाजी को दूसरे स्थान पर शीघ्र पहुँचना है। अतः वे इस स्थान पर केवल २४ घण्टे समाधि लगावेंगे।

दूसरे दिन सुबह बाबाजी २४ घण्टे बीतने पर बाहर निकाल लिये गये। इस अवसर पर बाबाजी की आरती उतारी गई और लोगों ने बाबाजी के चरणों में भेंटें चढ़ाई। वहाँ से पाँच सात सौ रुपया मूँड़ कर बाबाजी की मंडली चली गई।

यह घटना एक ही गाँव की नहीं है। ऐसी घटनायें नित्य कई गाँवों में हो चुकीं हैं और अब तक हो रही हैं। न जाने कितने बाबा लोग अपने चेले-चपाटों के प्रचार के बल पर देहाती ही नहीं, शहरी जनता को भी मूर्ख बनाकर गुलछर्रे उड़ा रहे हैं।

समाधि लेने का यह चमत्कार जनता को बड़ा प्रभावित करता है, परन्तु यह कोई चमत्कार नहीं है। यह तो सभी जानते हैं कि आदमी ऑक्सीजन बिना जिन्दा नहीं रह सकता। छः-सात फुट गहरे और लगभग इतने ही लम्बे-चौड़े गड्ढे में ऊपर बन्द कर देने पर भी इतनी प्राण वायु (ऑक्सीजन) रहती है कि एक आदमी उसमें दो-तीन दिन तक मजे में जीवित रह सकता है। इसमें समाधि लेने जैसी योग साधना की या प्राणों को ब्रह्माण्ड में खींच लेने जैसी कोई असाधारण बात नहीं है।

इतने छोटे स्थान में जो चारों ओर से बन्द हो, बैठने में पहले अवश्य घबराहट महसूस होती है किन्तु अभ्यास से यह घबराहट धीरे-धीरे मिट जाती है। ऐसी समाधियाँ लेने वाले तथाकथित महात्मा पहले चार-छः घण्टे गड्ढे में बैठते हैं और फिर धीरे-धीरे अवधि बढ़ाते जाते हैं, अभ्यास करते रहते हैं और कुछ दिनों के अभ्यास के बाद ऐसे गड्ढे में दो-तीन दिन तक रह सकते हैं। अक्सर ये लोग २४ घण्टे की ही समाधि लेते हैं। गड्ढा जितना अधिक गहरा और लम्बा-चौड़ा होगा, उतनी ही अधिक उसमें ऑक्सीजन होगी और उतने ही अधिक समय तक बाबाजी उसमें रह सकेंगे।

मैंने लोगों को यह समझाया पर वे मानने को तैयार नहीं हुये। मैंने पूछा कि तुम लोगों में से कोई इस गड्ढे में कितनी देर तक जिन्दा रह सकता है। गाँव वालों का जबाव था कि पाँच-दस मिनट में ही आदमी मर जायेगा।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

तब मैंने कहा—देखिये, मैं कोई महात्मा नहीं हूँ और न कोई योग विद्या जानता हूँ। आप यह मानेंगे कि मैं प्राणों को ब्रह्माण्ड में ले जाने की कला भी नहीं जानता, फिर भी मैं चार-छः घण्टे इस गड्ढे के भीतर बन्द रहकर आपको दिखा सकता हूँ।

और लोगों के मना करने पर भी मैं बाबाजी ने जिस गड्ढे में समाधि ली थी, उसमें जा बैठा और गड्ढा ऊपर से बन्द कर दिया गया। आप विश्वास कीजिये, मैं बिना किसी विशेष घबराहट के चार घण्टे तक उसमें आराम से लेटा रहा और शायद दो-चार घण्टे और रहता पर हमारे परिचित लोगों को डर-लग रहा था कि कहीं बाबू साहब मर न जायें और इस भय के कारण ही गाँव वालों ने चार छः घण्टे बाद ही मेरी समाधि भंग कर दी और तब लोगों को मेरी बातों पर विश्वास हो गया कि वास्तव में बाबाजी तथा उनके चेलों द्वारा उन्हें मूर्ख बनाया गया था।

चमत्कार और सिद्धियों के भ्रम जंजाल में न भटकें, यथार्थता को समझें

जनमानस की बनावट कुछ इस प्रकार की है कि सुशिक्षित-कर्मशील होते हुये भी चमत्कारों-देववाद के प्रति आस्था कुछ अधिक ही होती है। आये दिन ऐसे बाजीगरों के किस्से सुनने में आते हैं जो पढ़े-लिखों को कौतूहल दिखाकर ठग लेते हैं और सब कुछ पोल खुल जाने पर भी सन्त का वेश पहने अध्यात्म की दुहाई देते रहते हैं। वस्तुतः अध्यात्म का बाजीगरी के प्रदर्शन बाजी से कोई सम्बन्ध नहीं। विभूतियाँ और सिद्धियाँ हमेशा आध्यात्मिक होती हैं—परहितार्थाय होती हैं एवं कभी भी पुरुषार्थवाद की मान्यताओं को चोट नहीं पहुँचातीं। उनका विकसित होना मात्र यही बताता है कि आत्मिक प्रगति का एक सोपान यह भी है।

भौतिक सिद्धियाँ तो कीड़ें-मकोड़ों में भी पाई जाती हैं जो चलते समय पैर के नीचे मर जाते हैं। मक्खी आकाश में उड़ सकती है, बत्तखें पानी में तैर लेती हैं और तीक्ष्ण दृष्टि सम्पन्न गीध की आँखों का कोई मुकाबला नहीं कर सकता। जुगनू अन्धेरे में प्रकाश फैलाता चमकता रहता है, मकड़ी को आने वाले मौसम का ज्ञान रहता है तो गिरगिट भाँति-भाँति के रंग बदल लेता है। पर यदि ये ही सिद्धियाँ हैं एवं इन्हीं की प्राप्ति के लिये साधना रूपी पुरुषार्थ किया जाता है तो सफलता के अन्तिम शिखर पर चढ़ते-चढ़ते वहाँ पहुँचा जा सकता है जहाँ यह कीड़े-मकोड़े विकसित होते-होते पहले ही से पहुँच गये हैं।

रामकृष्ण परमहंस दक्षिणेश्वर के अपने काली मन्दिर में शिष्यों के बीच बैठे थे। शिष्यों की सिद्धियों के विषय में जानने की उत्सुकता को देख उन्होंने एक कथा सुनाई "एक शिष्य कठोर साधना कर वापस लौटा। नदी के इस पार गुरु की झोंपड़ी थी। गुरुजी से मिलने को उत्सुक शिष्य ने नदी पार करने के लिये कदम बढ़ाये। उसका स्वागत करने आये गाँव के श्रद्धालु परिजनों ने नाव की ओर इशारा किया व बताया—"आपको उस पार ले चलते हैं।" शिष्य बोला "नहीं, रहने दीजिये। मैं ऐसे ही पार कर लूँगा।" योगी महाराज ने १५ वर्ष तपस्या करके सीखी भी तो एक ही सिद्धी थी—पानी पर चलना। उसके प्रदर्शन का इससे श्रेष्ठ और क्या अवसर हो सकता था। लोगों के देखते-देखते वह पानी पर पैर रखते हुये उस पार पहुँच गया। गुरु जी झोंपड़ी के दरवाजे पर खड़े देख रहे थे। दम्भ से सिर ऊँचा किये, छाती फुलाये शिष्य महोदय बढ़े चले आ रहे थे। गुरु ने सारा माजरा समझ लिया—बोले—"वत्स ! तूने १५ वर्ष की अवधि में वही सीखा जो ४ पैसे से नाव पर बैठकर भी किया जा सकता था। सिद्धि के लिये उपासना की व उस पर भी प्रदर्शन का दम्भ तुझमें हैं। यदि आत्मिक प्रगति की ओर ध्यान दिया होता तो मछली-कछुए को प्राप्त इस विशेषता से कुछ ऊँचा ही उठा होता।" शिष्य की आँखें खुलीं। वह फिर चल पड़ा आत्मिक प्रगति हेतु तपश्चर्या करने। इतना कहते हुये परमहंस बोले-सच्चा साधक कभी सिद्धियों के व्यामोह में नहीं उलझता। ये तो सहज ही मिल सकती हैं—पर इनसे आत्म-कल्याण का, लोककल्याण का पथ-प्रशस्त नहीं होता। ऐसी सकाम साधना से तो जीवन को औरों के लिये काम आने लायक बनाना श्रेयस्कर है।"

अधिकांश लोगों में कौतूहल दिखाकर 'ऑकल्ट मिस्टीसिज्म' के नाम पर करिश्मे दिखाकर अपनी विशेषता सिद्ध करने की आत्मश्लाघा पूरी करने मात्र की हविश होती है। दूसरी ओर तमाशबीन दर्शकों की मानसिक संरचना भी ऐसी होती है कि उन्हें तमाशों में रस आता है—इससे कर्म न करने तुरन्त लाभ मिलने की नीति सामने नजर आती है। एक तीसरा पक्ष और भी है। वह है—धर्म मंच पर बैठे उसके प्रवक्ताओं द्वारा नहीं, कलाबाजियों को अध्यात्म की फलश्रुति बताना और प्रमाण-उदाहरण ऐसे देना जिससे लोगों में सहज रुचि, सिद्धियाँ प्राप्ति हेतु मचल उठें। यदि यही सब कुछ है तो फिर इतनी कष्टसाध्य प्रक्रिया अपनाने और सामान्य सुख-सुविधायें छोड़ उपवन में जाने की क्या आवश्यकता है। लोगों को अचम्भे में तो बाजीगर-जादूगर भी डाल देते हैं। 'हाथ की सफाई' के थोड़े दिनों के अभ्यास से ही वे तथाकथित सिद्ध हो जाते हैं और तमाशा दिखा-दिखाकर पेट भरते रहते हैं।

देखना यह चाहिये कि इससे अपना क्या लाभ हुआ व दूसरों का क्या हित सधा। भारत से हमें यदि उड़कर अटलांटिक पार अमेरिका जाना है तो यह काम थोड़ा-सा किराया भर देने से विमान यात्रा या जहाज से पूरा हो सकता है। उसके लिये उड़ना सीखने की कठिन तपस्या करने की क्या जरूरत ? दूरदर्शन, दूरश्रवण के जब सभी साधन आज वीडियो, टी० वी०, रेडियो के रूप में विद्यमान हैं तो फिर दूरदर्शन-दूर श्रवण की सिद्धि के लिये अतिरिक्त प्रयास क्यों किया जाये ?

साधना, तपश्चर्या और योगाभ्यास का मात्र एक ही उद्देश्य है—अपने अन्तःकरण में प्रसुप्त पड़ी सत्प्रवृत्तियों का जागरण, सद्भावों का उन्नयन, सद्ज्ञान के रूप में दृष्टिकोण का परिष्कार तथा सत्कर्मों के रूप में देवत्व के समावेश का अभ्यास। सिद्धियों की उत्कृष्टता इसी कसौटी पर रखी जाती है। इसी से अपना भला होता है व सारे जगत का भी।

सिद्धियाँ अनावश्यक और अस्वाभिक हैं। उनका मनुष्य के सामान्य रोजमर्रा जीवन में कोई उपयोग नहीं, उल्टे हानि ही है। सच्चे आत्मवेत्ता इसी कारण न किसी का चमत्कार दिखाते हैं न ऐसा करने के लिये किसी को शिक्षा ही देते हैं। स्वयं

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

समर्थ होते हुये भी कभी वे सृष्टि के विधान के विरुद्ध कुछ करते नहीं। यदि संयोगवश किसी सुपात्र के लिये कुछ करना ही पड़ जाये तो कभी भी उसे प्रकट नहीं होने देते। सच्चे अर्थों में अध्यात्म का चमत्कार एक ही है—सामान्य स्थिति में रहते हुये भी देवोपम जीवन का आनन्द ले लेना। यह उत्कृष्ट चिन्तन व आदर्श कर्तव्य के रूप में प्रकट होता है व यही शाश्वत सिद्धि की उपलब्धि है जो महामानव अर्जित करते हैं जिसके लिये पुरुषार्थरत रहते हैं।

क्या यह सच नहीं कि पूरे विश्व में इस बारे में एक समानता है कि अधिसंख्य व्यक्ति चमत्कारों में विश्वास रखते हैं। चाहे वह चिकित्सा हो अथवा धन उपार्जन, पदोन्नति की मनोकामना हो अथवा सन्तान प्राप्ति की ? यह एक विरोधाभास है कि एक ओर तो विज्ञान की प्रगति अपनी चरम सीमा पर है, दूसरी ओर अलौकिक अद्‌भुत घटनाओं पर विश्वास भी उतना ही अधिक। यह एक प्रकार का नास्तिकता एवं बौद्धिक परावलम्बन ही कहा जा सकता है। बालों से बालू निकालना या ऐसे ही अन्य अजूबे दिखला देने का अर्थ यह नहीं है कि वह व्यक्ति अवतारी या सिद्ध पुरुष है। विडम्बना तो यह है कि ऐसे धूर्त मक्कारों की पूजा भी होती है और बहुत से भूले-भटके उनके चक्कर में पड़कर समय, श्रम व धन खोते रहते हैं।

सर्वसाधारण को यह समझना बहुत जरूरी है कि अध्यात्म का चमत्कारों में कोई सम्बन्ध नहीं। इस मार्ग पर चलते हुये जो कुछ अतीन्द्रिय क्षमताएँ विकसित हो जाती हैं, उनका सदुपयोग किसी अति महत्त्वपूर्ण प्रयोजन के लिये प्रकृति के विधान के अनुसार ही उच्चस्तरीय आत्माएँ कर पाती हैं। इस अनुदान को जहां-तहाँ लुटाते नहीं फिरतीं। वे लोग जो चमत्कार प्रदर्शन में उत्साह दिखाते हैं, वस्तुतः सिद्ध पुरुष नहीं, बाजीगर होते हैं।

अलौलिक आध्यात्मिक सिद्धियाँ सर्वसाधारण के लिये उपयोगी नहीं होती—अतः ईश्वरीय विधान उन्हें अविज्ञात एवं रहस्य के पर्दों में ही छिपाकर रखता है। यदि वे इसी प्रकार सर्वविदित हो जायें तो सारी सृष्टि की व्यवस्था, व्यक्तियों के कार्यकलाप ही अस्त-व्यस्त हो जायेंगे। हमें भगवान ने ज्ञानेन्द्रियाँ व कर्मेन्द्रियाँ दी हैं जिनसे हम बाह्य जगत का बोध कर पाते हैं। इनकी क्षमता व स्तर उतना ही रखा है जिससे जीवन का आवश्यक क्रम भर चलता रहे। यदि हमारी सभी इन्द्रियाँ अपनी सीमा से परे सभी काल-आयामों का बोध करने में सक्षम हो जायें तो हमारे बहिरंग जीवन में अव्यवस्था छा जायेगी।

मान लीजिये हमें मृत्यु का समय पूर्वविदित हो-अपने भाग्य की-भविष्य में घटने वाली घटनाओं की पूर्व जानकारी हो, तो पहले से ही भय, उदासी व खिन्नता छा जायेगी। पुरुषार्थ करते बनेगा नहीं। शेषावधि रोते कलपते निकल जायेगी। अदृश्य हो जाने की विद्या सीखने वाला व्यक्ति क्या-क्या गजब ढा सकता है व समाज तथा स्वयं के लिये भी मुसीबत खड़ी कर सकता है।

इसी प्रकार अणिमा, महिमा लघिमा आदि सिद्धियों का वर्णन पढ़ने तक ही कौतूहल की पूर्ति करने वाला है—सर्वसाधारण को वे मिल भी जायें तो उससे उनके लिये संकट उत्पन्न करने का कारण ही बनेगी। सिद्धि द्वारा अपने विषय में पूर्व जानकारी प्राप्त करना तथा भविष्य जान लेना सामान्य बुद्धि के मनुष्य के लिये तो अकर्मण्यता का न्यौता देने के समान हैं। जब हानि-लाभ होता है ही, मरना है ही तो प्रयास पुरुषार्थ की क्या आवश्यकता है। ऐसी स्थिति निश्चित ही न तो मनुष्य को ही स्वीकार्य होगी, न ही विधाता को ही।

महर्षि पातंजलि ने अपने योग ग्रन्थ में सारी सिद्धियों का परिचय देते हुये सचेत भी कर दिया है। क्योंकि ये सिद्धियाँ अन्तिम लक्ष्य-मोक्ष, आत्मकल्याण की प्राप्ति में बाधक ही बतायी गयी हैं। मात्र सदुपयोग करने वाले सुपात्र को साधना पुरुषार्थ के मार्ग पर चलते हुये ये अपने आप मिलती हैं। इनका दुरुपयोग चूँकि वह नहीं करता—इसी कारण परम सत्ता भी अपनी ओर से कंजूसी नहीं करती। पर बच्चों के हाथ में वह कभी बन्दूक या विस्फोटक पदार्थ नहीं देती। यह एक शाश्वत नियम है—सदा से यही चला आ रहा है व हमेशा रहेगा भी। जिन्होंने इन सिद्धियों का दुरुपयोग किया—यथा—भस्मासुर, रावण, हिरण्याक्ष, हिरण्यकश्यप आदि अन्ततः बड़ी विपत्तिग्रस्त स्थिति में जीवित रहे और उनका बुरा अन्त हुआ। सिद्धियाँ वस्तुतः दिव्य शक्ति के वरदान हैं, बड़ी उपयोगी भी हैं, पर उन्हें पाने वाला सम्भाल कर रखे, तभी तक। कहीं भी थोड़ी-सी असावधानी हुई तो इससे हानि होने की सम्भावना अधिक है।

आत्मबल सम्पन्न व्यक्ति चमत्कार नहीं बताते। अपनी तिजोरी में बन्द विभूतियों को वे छिपाकर रखते हैं—जहाँ-तहाँ उसका प्रदर्शन नहीं करते फिरते। उपयोगी पात्र मिलने पर वे शिवाजी, विवेकानन्द, दयानन्द, जवाहर, चन्द्रगुप्त अवश्य तैयार कर देते हैं, पर ऐसे समर्थ गुरु रामदास, रामकृष्ण परमहंस, विरजानन्द, गाँधी व चाणक्य इसका प्रचार नहीं करते। सामान्य से असामान्य स्वयं बन जाना, औरों को भी बना देना क्या कम चमत्कार है ? पर उन्हें क्या समझाया जाये जो चमत्कार का अर्थ करतब-सिद्धि-अजूबा मान बैठे हैं। अध्यात्म पथ पर चलने वाले हर साधक को पहले अपने मस्तिष्क में छाया सिद्धि सम्बन्धी भूल व भ्रम जंजाल निकालना पड़ता है तो ही प्रगति पथ पर आगे बढ़ने में मदद मिल पाती है।

इस सर्वमान्य तथ्य को भली-भाँति आत्मसात कर लेना चाहिये। हमारा लक्ष्य आत्मबल सम्वर्द्धन है, सिद्धियों की प्राप्ति नहीं, हम मार्ग से भटकेंगे नहीं, चाहे कितने ही आकर्षण मार्ग में दिखाई पड़ें, हमारी श्रद्धा को हम किसी बाजीगर से प्रभावित नहीं होने देंगे चाहे उसने कितना ही मनोवैज्ञानिक प्रभाव हम पर डाला हो तथा सदैव यह याद रखेंगे कि अध्यात्म का लक्ष्य मात्र आत्मकल्याण, मोक्ष प्राप्ति नहीं है वरन् सत्पथ पर चलकर अन्य अनेकों को राह दिखाना भी है। साधना आरम्भ करने के पूर्व ही इस आचार-संहिता का पाठ कर लिया जाये व नित्य इसे दुहराया जाये तो कभी कहीं भटकाव की गुंजाइश शेष न रहेगी।

● ●

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org

योग के नाम पर मायाचार या जादूगरी

मायावी लोगों ने किसी भी क्षेत्र को अछूता नहीं छोड़ा है। उन्हें जहाँ कहीं भी थोड़ी-सी आड़ मिल जाती है छिप बैठते हैं। अनेकों चोर, उठाईगीरे, डाकू, ठग, दुराचारी, व्यसनी, नशेबाज एवं हरामखोर मनुष्य कानूनी पकड़ तथा जनता की आँखों से बचने के लिये पवित्र साधु वेष में जा छिपते हैं और इस आड़ में बैठे-बैठे मौज करते रहते हैं। खुराफाती दिमागों में यह विशेषता होती है वे चुप नहीं बैठ सकते। गुलछर्रे उड़ाने के लिये उनका दिमाग कोई न कोई तरकीब खोज निकालता है। सन्त वेष की आड़ में छिप बैठने से ही उन्हें सन्तोष नहीं होता वे आगे धावा बोलते हैं और जनता के भण्डार से यश तथा धन की लूट मचा देते हैं।

ऐसे लोग अपना प्रधान हथियार चमत्कारों को बनाते हैं। योग शास्त्रों में ऐसे वर्णन आते हैं कि योगियों को ऋषि-सिद्धि प्राप्त होती है और अलौकिक चमत्कारी करतब दिखा सकते हैं। यह उक्ति न केवल पुस्तकों में वर्णित है वरन् जनसाधारण में इसका विश्वास भी बहुत गहरा जमा हुआ है। इस स्थिति से लाभ उठाकर धन और यश लूटने के लिये धूर्त लोग अपने आप को पहुँचा हुआ सिद्ध साबित करने का प्रयत्न करते हैं। चूँकि उनमें तप तो होता नहीं, त्याग, वैराग्य, साधना और तपश्चर्या के बिना सच्ची सिद्धि प्राप्त नहीं हो सकती। ऐसे धूर्त लोगों में प्रत्यक्ष अनुभव में आये हुए दुराचारों में से कुछ को यहाँ प्रकाशित किया जा रहा है।

सत्य की शोध के लिये सुदूर स्थानों में जो पर्यटन हमने किया है उसमें सत्पुरुष और सच्चे महात्मा जी का अनुग्रह प्राप्त किया है, वहाँ धूर्त लोग भी कम नहीं मिलते हैं। इन लोगों का वैभव काफी बढ़ा देखा है। हजारों-लाखों रुपयों की गुप्त-प्रकट सम्पत्तियाँ उनके पास देखी हैं। इन लोगों के रहस्यों का पता करना सहज काम नहीं है। भोले-भाले लोग तो इनके चंगुल में ऐसे फँस जाते हैं कि जन्म भर उनसे छूट नहीं सकते। काफी सतर्कता और सूक्ष्म बुद्धि द्वारा, बहुत दिन बारीकी के साथ निरीक्षण करने पर ही कुछ पता चल पाता है। हमें इस प्रकार के जो भेद मालूम हुये हैं पाठकों के सामने उपस्थित कर रहे हैं।

अब तक इन भेदों को हमने बहुत गुप्त रखा था। कारण यह था एक बार एक व्यक्ति से हम इन भेदों की चर्चा कर रहे थे, तो वह बहुत प्रभावित हुआ। मजाक में नहीं वरन् बहुत ही गम्भीरता से उसने कहा—"यदि आप इस प्रकार की दस-पाँच विद्याएँ मुझे सिखा दें तो मैं एक-दो वर्ष में ही लाखों रुपये कमा सकता हूँ।" उस वक्त हम चुप हो गये दूसरे दिन वह आदमी फिर हमसे बहुत गम्भीरतापूर्वक मिला और अपनी पूरी योजना बनाकर लाया। उसने कहा कि आप पाप-पुण्य से डरते हैं तो आप अलग रहिये, मुझे वह सब सिखा दीजिये, आमदनी का आधा भाग मैं आपको देता रहूँगा। किसी को पता भी न चल पायेगा और आप कुछ ही दिनों में लक्षाधीश बन जायेंगे।"

इस प्रस्ताव ने हमारे मस्तिष्क में एक नयी असावधानी पैदा की, वह यह कि यदि इस प्रकार के भेदों को लोगों ने मालूम कर लिया तो धूर्त लोगों की पाँचों अँगुलियाँ घी में होंगी। वे उसी रास्ते को अपना लेंगे जिसे कि उन 'सिद्ध' लोगों ने अपनाया था। इस विचार ने हमें बहुत सावधान कर दिया और हमने यह प्रतिज्ञा कर ली कि कभी किसी को यह बातें नहीं बतायेंगे। उस प्रस्ताव को करने वाले को भी हमने स्पष्ट कर दिया। जिन्हें हमारी यात्राओं के वर्णन मालूम थे ऐसे निकटवर्ती मित्रों ने भी ऐसी चमत्कारी कल्पनायें बताने का हमसे आग्रह किया, पर उन्हें भी अब तक कुछ नहीं बताया गया। अब तक ऐसे अनेकों अनुरोध समय-समय पर टाले जाते रहे हैं। किसी पर यह भेद प्रकट नहीं किये गये।

इन धूर्तताओं के विरुद्ध दूसरी ओर हमारे मन में तीव्र घृणा एवं कड़े विरोध की भावना काम करती रही है। जिन लोगों के यहाँ ये पाखण्ड प्रयुक्त होते हैं। उनका समय-समय पर काफी विरोध भी हर संभव उपाय से हमने किया है। यह इच्छा हमें बहुत दिनों से है कि जनता को इस दिशा में शिक्षित किया जावे ताकि वह ऐसे भ्रम और मायाचारों से बच सके। इस सम्बन्ध में काफी समय तक गम्भीर विचार करने और विज्ञ पुरुषों से सम्पत्ति लेने पर अपने उस पूर्व निश्चय को बदलना पड़ा। गुप्त रखने से हमारे द्वारा नये जादूगर पैदा न होंगे यह ठीक है, पर जो लोग इस समय धूर्तता कर रहे हैं यह लोग अन्य मार्गों से उन बातों को सीखकर भविष्य में मायाचार करेंगे उनकी रोक कैसे होगी ? इस दृष्टि से विचार करने पर यह मत स्थिर किया गया कि इन रहस्यों को सार्वजनिक रूप से जनता पर प्रकट कर दिया जाये। ऐसा करने से अनेक भोले-भाले लोग सावधान हो जायेंगे और तथाकथित सिद्धों के चंगुल में फँसने से पूर्व यह देख लिया करेंगे कि वे किसी के द्वारा अनुचित रीति से ठगे तो नहीं जा रहे हैं। दूसरी ओर धूर्त लोगों का भी रास्ता बन्द होगा। वे सोचेंगे कि यह सब बातें जनता पर प्रकट हो चुकी हैं, इसलिये हमारी पोल आसानी से खुल जायेगी, यह भय उन्हें कुचाल छोड़ने के लिये मजबूर करेगा। इन बातों पर विचार करके इन पृष्ठों में वे सब बातें प्रकट की जा रही हैं जिन्हें अब तक सावधानी से छिपाये रखा था।

किन्तु किसी को इन पंक्तियों से इस भ्रम में नहीं पड़ना चाहिये कि योग साधना का कोई अलौकिक फल नहीं है या जितने भी दिव्य शक्ति सम्पन्न महात्मा हैं वे सभी धूर्त हैं, ऐसा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

हमारा अभिमत कदापि नहीं है। अलौकिक दिव्य पुरुष भी इस भूतल पर होते हैं, और हैं। उनकी महिमा और महत्ता को कोई कम नहीं कर सकता। सत्पुरुषों, दिव्य आत्माओं तथा धूर्तों में एक अन्तर स्पष्ट है, उसे ध्यान में रखकर सत्-असत् का निर्णय आसानी से किया जा सकता है। सत् पुरुष सरलतम होते हैं, सबको वे अपने आत्मीयों की तरह प्यार करते हैं, निष्कपट और निस्पृह भाव से बात करते हैं। उनके यहाँ छिपाव की कोई बात नहीं होती। इसके विपरीत धूर्तों को अपनी माया छिपाने के लिये पग-पग पर दुराव एवं आडम्बर करना पड़ता है। जहाँ दुराव एवं आडम्बर हो तथा भेद रखा जाता हो वहाँ संदेह की काफी गुन्जायश होती है। वहाँ सावधानी रखने की भी आवश्यकता होती है। पैसे का अनाप-शनाप खर्च, अनावश्यक बातों की भरमार, राजसी ठाठ-वाट, अमीरों जैसा आहार-विहार, आलस्य-प्रमाद की अधिकता, तुच्छ विषयों पर विशेष चर्चा, आत्म-प्रशंसा आदि बातें जहाँ अधिक दिखाई देती हों, वहाँ समझना चाहिये कि यहाँ कुछ दाल में काला हो सकता है। वहाँ पैर फूंक-फूंक कर रखना चाहिये। जहाँ सादगी, सीधापन, सरलता, निष्कपटता एवं खुला दरबार हो वहाँ सच्चाई की स्थिति अधिक होती है। फिर भी दोनों ही स्थितियों में विवेकपूर्वक नीर-क्षीर को देखने की आवश्यकता है।

तीस वर्षों तक भारत के लगभग सभी प्रदेशों में कई बार आध्यात्मिक खोजों के सिलसिले में हमने भ्रमण किया है। अनेक भले-बुरे ढंग के अनेकों विचित्र-विचित्र व्यक्तियों से हमारा सम्पर्क हुआ है। उनमें से पुस्तक में केवल ऐसे व्यक्तियों की कटु स्मृतियाँ लिखी जा रही हैं, जो योग के नाम पर चालाकी से अपना दम्भ चलाते थे। अन्य प्रकार के अनुभवों को आगे फिर कभी प्रकट करेंगे। इस पुस्तक के लेखों का प्रयोजन यह है कि पाठक सावधान रहें और बिना परीक्षा किये किसी नकली "सिद्ध" के चंगुल में न फँसें। अब हम पाठकों के सामने अपने कुछ अनुभव प्रस्तुत करते हैं।

(१) सट्टा बताने वाले पीर

बंगाल प्रान्त के मैमनसिंह जिले में एक मुसलमान साधु की गुफा है। उन्हें सोफा पीर कहते हैं। सड़क से कोई डेढ़ मील दूर पर यह गुफा है। इन पीर साहब के बारे में दूर-दूर तक यह प्रसिद्ध है कि वे जिस पर प्रसन्न हो जाते हैं उसे दड़े के ठीक नम्बर बता देते हैं। कलकत्ता के आस-पास दड़ा लगाने का बड़ा चलन है। मंगल और शुक्र को दड़े वालों के यहाँ नम्बर खुलता है और जिसका दाव आ जाता है उसे एक के बदले सौ रुपये मिलते हैं। दड़ा लगाने का प्रचार बड़े शहरों से लेकर छोटे ग्रामों तक में है। दड़े के नम्बर पूछने के लिये इन पीर साहब के पास सैकड़ों आदमियों का मेला लगा रहता है। जो भी जाता है भेंट पूजा लेकर जाता है। मेवे, मिठाई और फलों का ढेर लगा रहता है। पीर साहब ने सैकड़ों आदमियों को अब तक दड़ा बताया है, वे जिस पर प्रसन्न हो जाते हैं उसे निहाल कर देते हैं। ऐसा विश्वास पीर साहब के प्रायः सभी मुरीद मन में धारण किये रहते हैं।

बड़ी कठिनता से उस मुश्किल रास्ते को पार करके हम वहाँ पहुँचे। दूर देश से आये हुए एक प्रतिभाशाली, विद्वान, ब्राह्मण कुमार का समाचार उनके शिष्यों ने पीर साहब को सुनाया। उन्होंने हमारे ठहरने और भोजन-विश्राम की समुचित व्यवस्था कर दी। दूसरे दिन प्रातःकाल उन्होंने भेंट के लिये बुलाया। वार्तालाप करके वे मुग्ध हो गये। एकान्त वार्ता के लिये वे बहुत ही कम समय लोगों को देते थे, पर मुरीदों की परवाह न करके दो-ढाई घण्टे वे हमसे बातें करते रहे। पहली ही मुलाकात में पीर साहब बहुत प्रभावित हो गये। वे सोचने लगे यह व्यक्ति मेरा शिष्य बन जावे तो मेरी पूजा, प्रतिष्ठा और मान्यता में अनेक गुनी वृद्धि हो सकती है। अपने इन विचारों को वे मन में रोक न सके। दूसरे दिन दबे शब्दों में अपने मन की बात कर दी और साथ ही शिष्य होने का भारी आर्थिक प्रलोभन भी दिया।

अपना उद्देश्य दूसरा था। सत्य की शोध तथ्य की जानकारी एवं आत्मा का कल्याण यही अपनी आकांक्षा थी। धन, यश या ऐश्वर्य की इच्छा से पीर साहब के पास जाने का प्रयोजन न था। अभीष्ट प्राप्ति के लिये पीर साहब के पास ठहरना था और सत्य का पता लगाना था। उत्तर में उनसे इतना ही निवेदन किया कि अभी मुझे आये तीन ही दिन हुए हैं। कुछ समय अपने पास रहने का और विचार करने का मुझे अवसर दें तब ही कुछ निश्चित उत्तर दे सकूँगा। पीर साहब सहमत हो गये।

अब नित्य उनके पास बैठना अपना कार्यक्रम था। सारे दिन होती रहने वाली चर्चा को एकाग्र मन से किन्तु उपेक्षित मुख-मुद्रा के साथ सुनता था। कभी-कभी पीर साहब को प्रयास रखने वाली फुलझड़ियाँ बीच-बीच में छोड़ देता था। जिससे उनकी कृपा अपने ऊपर ज्यों कि त्यों बनी रहे। करामात का रहस्य अपने को जानना या समस्त चित्त वृत्तियाँ उसी की खोज में लगी रहतीं।

तीन सप्ताह के निरन्तर सूक्ष्म पर्यवेक्षण से वास्तविकता का पता चल गया। पीर साहब के पास कोई सिद्धि न थी। वे दड़े का नम्बर पूछने के लिये आये हुए मुरीदों को मुट्ठी भर कोई चीज देते थे जैसे फूल, बतासे, मेवे आदि। मुरीद उन्हें चुपचाप गिनते और वही संख्या मान लेते। कभी-कभी कुछ गिनती सूचक वाक्य भी कहते रहते जैसे "सारंगपुर यहाँ से तेतीस मील है। एक दिन यहाँ से सत्रह हिरनों का झुण्ड निकला था, वह शाल पचपन रुपये की होगी आदि। बैठे हुए व्यक्ति उन अंकों से दड़े के नम्बर का अर्थ निकालते और दाव लगाते थे।

पीर साहब इस बात का ध्यान रखते थे कि लोगों को भिन्न-भिन्न नम्बरों का संकेत किया जावे। दड़े में एक से लेकर सौ तक नम्बर आते हैं। मान लीजिये पाँच सौ दर्शक आये। उनको अलग-अलग नम्बर बताये। पाँच सौ आदमियों को सौ नम्बर अलग-अलग बताये जायें तो पाँच आदमियों का नम्बर खुलेगा। वह प्रतिदिन पाँच आदमियों को जरूर बताया गया होगा। इस प्रकार सात दिन में कम से कम ३५ आदमियों का

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

नम्बर जरूर निकलेगा। वे ३५ आदमी भविष्य में अधिक लाभ की आशा से पीर साहब की भरपेट प्रशंसा करते और उन्हें भेंट-पूजा चढ़ाते। उन ३५ आदमियों की सफलता का ढोल चारों और पिट जाता। शिष्य लोग तिल का ताड़ बनाते, ३५ की जगह तीन सौ गिना देना उनके बायें हाथ का काम है। लोगों को मिला-पाँच, बताये दस हजार। इस प्रकार उन अज्ञ समुदाय में तिल का ताड़ बनाने वाली गप्पें फैला दी जाती और पीर साहब की मान्यता दिन-दूनी रात-चौगुनी बढ़ती जाती। दूर-दूर से बम्बई, कलकत्ता, करांची, मद्रास तक के सटोरिये, दड़े बाज, तेजी-मन्दी, दड़ा-सट्टा, फीचर, लाटरी आदि के लिये पहुँचते। उनके पट्ट शिष्य ऐसे लोगों के कान भरने, पट्टी पढ़ाने, प्रभावित करने और अच्छी भेंट-पूजा पाने में बड़े चतुर थे। दिन भर चाँदी कटती रहती। शिष्य लोगों के पौ बारह रहते।

जिन अधिकांश लोगों के पैसे व्यर्थ ही डूब जाते, जिन्हें कुछ न मिलता, वे बेचारे पेट मरोड़ कर चुप हो जाते। भाग्य का फेर, बुरे दिन पीर साहब की सेवा-पूजा की कमी आदि अनेकों कारण असफलता के सोच लेते फिर उसी आशा-तृष्णा में भटकते रहते। "शायद अबकी बार हमें मिले" इसी आशा में सैकड़ों, वर्षों से उलझे हुए थे, काफी नुकसान उठा चुके थे, पर अपने दुर्भाग्य की बात किसी से कहने का उनमें साहस न होता था। दड़े के व्यापारी पीर साहब की कृपा से माला-माल हो रहे थे। नये-नये अड्डे खुलते जाते थे। पीर साहब की महिमा बढ़ाने और प्रशंसा करने के लिये उन लोगों ने वेतन भोगी एजेण्ट रख छोड़े थे जो दूर-दूर तक पीरजी की प्रशंसा करके 'नये दाव लगाने वाले' तैयार करते थे। इस वृद्धि से दड़े व्यापारी मालामाल हो रहे थे।

यह सब दृश्य देखकर आत्मा तिलमिलाने लगी। जनता का मूल्यवान समय, हजारों रुपया प्रतिदिन नष्ट होता था। जुआखोरी की शैतानी आदत बढ़ती थी। मिथ्या भ्रम और पाखण्ड फैलता था। अपना उद्देश्य सत्य की शोध था, यहाँ शैतान का साम्राज्य छाया हुआ था। एक दिन अस्वस्थता का बहाना करके बिस्तर बगल में दबाकर वहाँ से चल दिया। पीर जी को एक अच्छा शिष्य हाथ से निकलने का दुःख हुआ। उन्होंने फिर आने का आग्रह करते हुए विदा दी। मैं दड़ा बताने की करामात को नमस्कार करके आगे के लिये चल दिया।

(२) सोना बनाने वाले सिद्ध

चम्पारन जिले में ऐसे महात्माओं का नाम सुना था जो सोना बनाने की विद्या जानते हैं। उनके बारे में यह कहा जाता था कि वे किसी से माँगते कुछ नहीं। जब शिष्य मण्डली के लिये तथा अपने खर्चे के लिये रुपयों की जरूरत पड़ती है तो थोड़ा-सा सोना बना लेते हैं उस सोने को बाजार में भेजकर बिकवा देते हैं। उसी रुपये से उनका सब काम चलता है। खोजते-खोजते हम इन सिद्ध जी महाराज के पास पहुँचे। देखने में वे तेजस्वी थे। भरा हुआ चेहरा, चमकीली आँखें, उठा हुआ शरीर, घनी दाढ़ी वाला स्वरूप जटाओं के बीच बड़ा सुहावना मालूम पड़ता था। उनकी जमात में कोई आठ-दस उनके निजी शिष्य थे, दस-बारह सेवक उनके साथ थे, मैं भी इसी जमात में शामिल हो गया। अपनी विद्या, वाक्पटुता एवं व्यवहार कुशलता से वे लोग थोड़ी ही देर में प्रभावित हो गये और खुशी-खुशी अपने साथ रख लिया।

इन सभी लोगों का रहन-सहन काफी खर्चीला था। भोजन में मेवे-मिठाई, दूध-रबड़ी, भांग-ठण्डाई की धूम रहती थी। दोनों वक्त भांग छनती थी जिसमें २० रुपये प्रतिदिन से कम खर्च न होता होगा। जमात के हर आदमी के ऊपर दो-तीन रुपया रोज से कम का खाने का खर्च न था। गांजा और चरस की चिलमें बराबर चलती रहतीं। इस जमात में कभी कोई सामूहिक सत्संग या वार्तालाप होते हमने न देखा वरन् बराबर काना-फूँसी होती रहती। कोई किसी को अलग बुलाकर कान पर मुँह रखकर खुसपुसाता, कोई किसी के कान में बात करता। दिन भर गुप्त मंत्रणायें होती रहतीं।

एक-दो दिन रहने के बाद ही सब लोगों से अपनी आत्मीयता बढ़ने लगी और गुप्त मंत्रणाओं और कानाफूसियों के लिये हमें भी पात्र मान लिया गया। पहले दिन हमने समझा था कि सोना बनाने के वैज्ञानिक भेदों पर यह लोग मंत्रणा करते होंगे, इसलिये इनकी वार्ता में प्रवेश पाने के लिये हमें अत्यधिक चतुरतापूर्ण प्रयत्न करने पड़ेंगे, पर दूसरे दिन यह भ्रम दूर हो गया। इस गुप्त बातचीत का अर्थ केवल महात्माजी की प्रशंसा तथा उनके सोना बनाने की योग्यता की पुष्टि करना था। यह वार्ताएँ प्रधान शिष्यों द्वारा प्रचलित की जाती थीं। वे ऐसी घटनायें कथा रूप में गढ़ते थे जिनमें यह बताया जाता था कि "इन सिद्धजी ने अमुक बार इस प्रकार इतना सोना बनाकर अमुक शिष्य को दिया था। अमुक दिन इतना सोना बनाया था। उस दिन बनाने में जो चीजें डाली थीं उसमें से अमुक को तो हम जानते हैं, अमुक रंग की दवा का मालूम नहीं। इन महात्माजी के गुरुजी और भी अधिक पहुँचे हुए थे। वे चिलम के छेद में तांबे के पैसे की रोक रखते थे और ऊपर से एक बूँटी गांजे की तरह रखकर चिलम पीते थे, बस इतने में ही तांबे का पैसा सोना का हो जाता था। उस सोने के पैसे को गुरुजी उसी भगत को दे आते थे जिसके यहाँ आतिथ्य स्वीकार करते थे। यह वर्तमान गुरुजी उतने पहुँचे हुए नहीं हैं, इनको सोना बनाने में बहुत-सा सामान इकट्ठा करना पड़ता है तब कहीं कार्य पूरा होता है।" ऐसी ही अनेक बातें उस कानाफूसी का विषय होती थीं।

सिद्धजी के एक शिष्य ने कानाफूँसी करते हुए मुझसे कई बातें कहीं। उसने बताया कि (१) कलकत्ता के अमुक सेठ को महात्माजी ने वह विद्या सिखा दी है, वह अरबों रुपयों का लाभ कर चुका है। (२) एक बार बम्बई का अमुक सेठ दिवालिया होने जा रहा था, वह दौड़ा हुआ आया महात्माजी के चरणों में गिरकर लाज बचाने की बात कही। महात्माजी ने दया करके उस सेठ को बीस लाख रुपये का सोना बनाकर दिया और शर्त कर ली कि इस समय तो अपना काम चला ले बाद में इस रुपये को धर्म कार्य में लगा दे। प्रतिज्ञा के अनुसार सेठ अब तक बराबर इतने रुपये साल का सदावर्त साधु-महात्माओं को बांटता है। (३) मद्रास प्रान्त में एक बड़ा भारी मन्दिर बन रहा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

है जिसका खर्च इन महात्माजी ने ही दिया है। (४) यह महात्माजी अब तक कई आदमियों को यह विद्या सिखा चुके हैं, पर साथ ही यह कह देते हैं कि यदि उसने किसी को बताई तो उसी क्षण उसकी मृत्यु हो जायेगी। एक आदमी की प्रतिज्ञा तोड़ने पर तुरन्त मृत्यु हो भी चुकी है। (५) महात्माजी से इस विद्या को वही ले सकता है जो उनको पूरी तरह से प्रसन्न करने के लिये तन-मन-धन की सेवा करेगा। जब वे पूरी भक्ति देख लेते हैं तभी प्रसन्न होते हैं।

यह बातें इस ढंग से कही गयी थीं मानों वह व्यक्ति हमारा बड़ा हितैषी हो और हमारे लाभ के लिये हमारी अभीष्ट पूर्ति में सहायक बनने के लिये कह रहा हो। इन्हीं बातों को वे शिष्य लोग बाहरी आगन्तुक व्यक्तियों में गुप-चुप रूप से फैलाते थे। आगत व्यक्ति अन्य आगत व्यक्तियों से कहते थे। इस प्रकार अनेकों मुखों से गुप्त रूप से एक ही बात की पुष्टि होते देखकर नये व्यक्ति के मन में पूरा और पक्का विश्वास बैठ जाता था कि यहाँ सोना अवश्य ही बनाया जाता है और प्रयत्न करने पर मुझे भी वह विद्या प्राप्त हो सकती है। यह विश्वास मन में बैठ जाने पर वह व्यक्ति बड़ी से बड़ी कुर्बानी करने को तैयार हो जाता था। बिना परिश्रम लाखों-करोड़ों रुपये पाने का लोभ साधारण लोभ नहीं है। इतने बड़े लाभ के लिये मनुष्य सहज ही अपना बहुत-सा समय और धन खर्च करने को तैयार हो जाता है। लोभ से आतुर हुए मनुष्य की विवेक बुद्धि कुण्ठित हो जाती है, वह तर्क-वितर्क करके वास्तविकता का परीक्षण करने में असमर्थ हो जाती है। इस कानाफूसी के प्रचार और षड्यंत्र की वास्तविकता को न समझने वाले अनेकों आँखों के अन्धे और गांठ के पूरे मनुष्य वहाँ पहुँचते थे और अपना पैसा महात्माजी को प्रसन्न करने के लिये होली की तरह फूँकते थे। भक्त मण्डली में होड़-सी लगी रहती थी कि देखें कौन अधिक खर्च करे। इस होड़ा-होड़ी में एक से एक बढ़िया राजसी ठाठ-बाट वहाँ जमा होते थे।

विश्वास और अविश्वास की भावनायें मेरे मन में द्वन्द मचा रही थीं। यदि सोना बनाना इन्हें आता है तो यह विद्या मुझे भी प्राप्त करनी चाहिये। यह लोभ अपने लिये भी कम न था। घर से ब्रह्म परायण होने निकला था, पर इस तथाकथित सोने की खान में वह इच्छा धुँधली हो गयी। यदि यह विद्या मिल गयी तो धन की प्रचुरता होने पर कैसे बड़े-बड़े काम करेंगे, ऐसी कल्पनायें इतने विशाल आकार में उत्पन्न होने लगीं जिनके पैर जमीन पर थे, सिर आकाश में। इस सोने की खान में सफलता प्राप्त करने के उद्देश्य से अपनी समस्त चतुराई और जागरूकता को एकत्रित करके मैं कार्य करने लगा।

उस अवसर की बड़ी प्रतीक्षा थी जब महात्माजी सोना बनायें और अपनी आँखों से उसे बनता देखकर कम से कम यह विश्वास कर सकूँ कि इनके पास यह विद्या वास्तव में है या नहीं। ऐसे अवसर दो-चार महीने में कहीं एक बार आते थे। मुझे तीन महीने वहीं ठहरना पड़ा, तब कहीं एक अवसर ऐसा आया। पारा, हड़ताल, तांबा, गंधक तथा अन्य कुछ जड़ी-बूटियाँ जमा की गयीं। एक गुप्त स्थान पर भट्टी तैयार की गयी। वह चीजें कढ़ाई में डालकर आग जला दी गयी। मसाले पकते रहे, कुछ देर बाद हम सब को हटा दिया गया और महात्माजी तथा उनके प्रधान शिष्य कढ़ाई में कुछ उलट-पुलट करते रहे। कुछ चीजें उसमें डालते तथा निकालते रहे ऐसा हमने दूर स्थान से देखा। रात को सबके सामने कढ़ाई उतारी गयी। करीब तीन तोले सोना निकला। दूसरे दिन उसे बेचने बाजार भेज दिया गया। जो बेचने गया था उसने करीब १०० रुपये तोले का बाजार मूल्य महात्मा जी के सामने रख दिया।

इस क्रिया को देखकर अन्य श्रद्धालु भक्तों के मन में महात्माजी के लिये अनेक गुनी श्रद्धा उमड़ पड़ी। उस श्रद्धा के जोश में जो छिद्र और संदेह थे वे उनकी दृष्टि तक पहुँचते ही न थे। पर अपने में न तो अन्ध श्रद्धा थी और न संदेहों के प्रति उपेक्षा भाव। दृष्टि दौड़ने पर संदेह हुआ कि जब हम लोगों को हटाया गया था तब तांबा निकाल कर सोना डाल दिया होगा।

निर्णय तक पहुँचने के लिये उनके प्रधान शिष्य से घनिष्ठता कायम की गयी। वह लड़का कोई इक्कीस-बाईस वर्ष का था। दस वर्ष से महात्माजी की सेवा में था। उनकी सभी गुप्त प्रकट बातों से भली-भांति परिचित था। मैंने तोड़ने की कोशिश की कि इसे किस प्रकार अपनी ओर आकर्षित किया जा सकता है। लड़का तरुणाई में प्रवेश कर रहा था, उसके चेहरे और हाव-भावों से प्रकट होता था कि कामवासनायें उसे बुरी तरह बेचैन किये हुए हैं। उसकी इस कमजोरी को तोड़कर मैंने एक दिन एकान्त में ले जाकर चुपके से उससे कहा कि आप चाहें तो मैं एक अत्यन्त रूपवती तरुणी से आपका विवाह करा सकता हूँ। पहले तो वह चौंका, पर पीछे अपनी नेकनीयती, उसके प्रति अपने प्रेम एवं विश्वास प्रकट करने पर वह तैयार हो गया। पहली बार कहने पर उसे भय था कि मेरे मन की बात प्रकट हो जाने पर महात्माजी की कृपा और यहाँ के ऐश-आराम से हाथ धोना पड़ेगा, पर पीछे जब उसके मन में कुहराम मचाने वाली कामेच्छा को तृप्त करने का लोभ सामने आया तो उसके आगे उसे शिष्यता का वैभव तुच्छ जँचने लगा। विवाह का प्रलोभन देने वाला मैं उसे देवता-सा जँचने लगा। वह मुझे प्रसन्न करके मेरी सहायता से सुन्दर वधू प्राप्त करने के लिये छाया की तरह पीछे फिरने लगा।

तीर निशाने पर लगा। उस प्रमुख शिष्य से आत्मीयता गांठ लेने पर हम दोनों में अपनी अन्तरंग बातें कहने-सुनने का क्रम चलने लगा। एक दिन मैंने उससे महात्माजी के सोना बनाने का रहस्य पूछा। पुरानी आदत के अनुसार पहले तो वह कुछ झिझका पर पीछे हमारे प्रोत्साहन देने पर सारा भेद खोल दिया। उसने बताया कि महात्माजी सोना बनाना बिल्कुल नहीं जानते। बाजार से सोना मँगाकर कढ़ाई में डाल देते हैं और तांबे को सफाई के साथ निकाल लेते हैं। हम लोग ऐश-आराम पाने के लिये नवागन्तुक लोगों को प्रसन्न करके एवं कल्पित घटना बताकर प्रभावित किया करते हैं। नये आदमी वर्ष-दो वर्ष टहल करते और धन जुटाते हैं। परन्तु उन्हें बताया कुछ नहीं जाता। मंत्र सिद्धि, बूटी की तलाश आदि बहाने करके उन्हें लटकाये रखा जाता है। गुप्त बातें, अधिक लाभ की बातें

www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org

कानोंकान खूब फैलती हैं, इसलिये जहाँ पुराने भक्त टूटते हैं, वहाँ नये भक्त आते हैं। इस प्रकार यह ढर्रा चलता रहता है। महात्माजी को प्रतिष्ठा, पूजा-यश और ऐश्वर्य मिलता है। उनके सहारे हम लोग चैन की छानते और मस्त रहते हैं, यही सोना बनाने का रहस्य है।

यह अत्यन्त विश्वस्त गवाही थी इसके बाद और कुछ सबूत लेने की आवश्यकता न थी। उस प्रधान शिष्य को साथ लेकर सोना बनाने वाले महात्मा को नमस्कार करके मैं चल दिया। चलते समय उपस्थित लोगों से भण्डाफोड़ भी किया पर अन्ध श्रद्धा के तूफान में हमारा विरोध तिनके की तरह बह गया। किसी ने मेरी बात पर विश्वास नहीं किया। उल्टा नास्तिक करार दिया। उस प्रधान शिष्य का अपने वचनानुसार विवाह कराके और उसे एक कमाऊ धन्धे में लगाकर आगे चल दिया।

(३) त्रिकालदर्शी शाक्त

भरतपुर रियासत के एक गांव में देवी के मठ पर एक तांत्रिक महोदय रहते थे, जिनके बारे में दूर-दूर तक यह प्रसिद्ध था कि उन्होंने देवी को सिद्ध कर लिया है। भगवती दुर्गा उन पर प्रसन्न हैं और उन्हें त्रिकालदर्शी होने का वरदान दिया है। जो आदमी उनके पास जाता है, उसके मन की बात जान लेते हैं और जो बात पूछने की इच्छा से कोई मनुष्य उनके पास जाता है उसे बिना कुछ पूछे ही सब कुछ बता देते हैं। इन शक्ति सिद्ध की कीर्ति दूर-दूर तक फैल रही थी। उनके पास दसियों आदमी रोज जाते थे और अपने बारे में बिना बताये अनेक गुप्त बातें सुनकर पूर्ण प्रभावित होकर उनके सच्चे भक्त बनकर लौटते थे।

अपनी भी इच्छा उनके दर्शनों की हुई। आवश्यक सामान साथ लेकर चल दिये। रेलवे स्टेशन से कोई चार किलोमीटर दूर वह मठ है। रास्ता बड़ा ऊबड़-खाबड़, जंगली और पथरीला है। इस रास्ते में सिंह तो नहीं पर भेड़िये और बाघ प्रायः मिलते हैं। इसलिये अकेला आदमी प्रायः ठिठकता है और यह देखता है कि कोई साथी उधर जाने वाला मिले तो चलें। कारण कि लुटेरों का, हिंसक जानवरों का तथा छोटी पगडण्डियों के बीच रास्ता भूल जाने का भय बना रहता है। मैं स्टेशन के बाहर साथी की तलाश में बैठा हुआ इधर-उधर देख रहा था कि एक सज्जन कन्धे पर मोटी लाठी रखे, बगल में एक गठरी दबाये पास में आ खड़े हुए। मुझे बैठा देखकर ठिठक गये और गठरी में से चिलम निकाल कर तम्बाकू पीने की व्यवस्था करने लगे। चिलम सुलगा कर मेरी ओर बढ़ाते हुए उन्होंने मुझे भी पीने के लिये पूछा, मैंने विनयपूर्वक क्षमा मांगते हुए कहा कि मैं तम्बाकू नहीं पीता। मेरे मना करने पर वह मेरे समीप बैठ कर खुद धूम्रपान करते रहे।

अब बातचीत का सिलसिला शुरू हुआ। एक-दूसरे का परिचय पूछा गया। मालूम हुआ कि यह व्यक्ति धौलपुर रियासत का रहने वाला राजपूत है। प्राइमरी स्कूल तक पढ़ा है, घर में कुछ जेबर चोरी चले गये हैं उनका पता पूछने शाक्त महोदय के पास जा रहा है। यह जानकर मुझे प्रसन्नता हुई कि साथ मिल गया। वह पहले भी देवी के मठ पर कई बार जा चुका है, रास्ता उसका भली-भांति देखा हुआ है, यह जानकर और भी अधिक तसल्ली हुई और हम दोनों साथ-साथ चल दिये।

वह आदमी था तो देहाती, पर बातचीत में बड़ा निपुण था। मीठी जबान, हमदर्दी से भरी बोल-चाल, बरबस दूसरों का मन अपनी ओर आकर्षित कर लेती थी। हम दोनों साथ-साथ चले जा रहे थे, वह आप बीती अनेकों बातों को सुनाता जा रहा था, उसकी चोरी कैसे हुई, किस पर उसका शुबा है, आदि बातें उसने कहीं। उसकी बातें करीब एक-डेढ़ घण्टे चलती रहीं। इतनी देर में हम प्रायः दो-ढाई कोस चल चुके थे। दोपहर हो चला, गर्मी के दिन थे, छायादार पीपल के पेड़ के नीचे कुँआ था, उसने गठरी में से लोटा और डोरी निकाल कर पानी खींचा, हम दोनों पानी पीकर पेड़ की शीतल छाया में सुस्ताने के लिये थोड़ी देर के लिये बैठ गये।

अब हमारे साथी ने बातचीत का क्रम बदला, उसने अपनी कहने के बजाय हमारी बातें पूछना आरम्भ कर दिया। वह मुस्कराहट, आत्मीयता और उत्सुकता के साथ ऐसी मुद्रा के साथ मेरा परिचय और आने का कारण पूछने लगा। न बताना शिष्टाचार के नाते ठीक न था। सही बताना मैं चाहता न था क्योंकि मेरा परिचय और आने का कारण दोनों ही बड़े विचित्र थे। उसे समझाने में काफी कठिनाई पड़ती और मुझे बहुत माथा-पच्ची करनी पड़ती। पीछा छुड़ाने के लिए मैंने यों ही अंट-शंट बातें बतायीं। कहा—मैं अलीगढ़ का रहने वाला गौड़ ब्राह्मण हूँ, नाम मेरा रामचन्द है। एक मुकद्दमा लग गया है उसके बारे में पूछने आया हूँ। मुकद्दमे की बारीकियों के बारे में उसने अनेक प्रश्न पूछे—किस विषय पर मुकद्दमा चल रहा है, किस अदालत में है, मुद्दाअलह कौन है, आपका वकील कौन है ? गवाह कौन-कौन हो चुके हैं आदि इसी प्रकार मेरे व्यक्तिगत, पारिवारिक, व्यावसायिक जानकारी के सम्बन्ध में अनेकों बातें पूछीं। मैं मन ही मन अकारण की जिरह से खीज रहा था, पर शिष्टाचार के कारण उसे उल्टे-सीधे उत्तर देता चलता था। इस प्रकार चलते-चलते हम लोग दोपहर ढले तक मठ पर जा पहुँचे।

मठ की बगल में एक बड़ा-सा पक्का दालान बन रहा था। सामने चबूतरा था, चबूतरे पर पीपल का छायादार पेड़, पेड़ से थोड़ा हटकर कुँआ था। जंगल में यह स्थान बड़ा भला मालूम पड़ता था। उस दालान में हम लोग ठहर गये। पूछने पर पता चला कि शाक्य महोदय दिन-रात मठ में साधना में रत रहते हैं और प्रातःकाल निकलते हैं। उसी समय आगन्तुकों से भेंट करते हैं। रात हमें उस दालान में रहकर काटनी थी। उसमें हमारे जैसे और आठ-दस आदमी ठहरे हुए थे। पूछने पर मालूम हुआ कि सभी अलग-अलग स्थानों के हैं और अपनी किसी कठिनाई में इन सिद्ध पुरुष की सहायता लेने आये हैं। इतना जान लेने के बाद मैं पीपल के पेड़ की छाया में चबूतरे पर दरी बिछाकर लेट गया।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

जो व्यक्ति उस दालान में ठहरे हुए थे उनमें आपसी बातें हो रही थीं। सब लोग आपस में अपनी-अपनी दुःख गाथायें कह रहे थे। मैं सोना चाहता था पर उन ठहरे हुए लोगों की कौतूहलपूर्ण गाथाओं को सुनने में ऐसा मन लगा कि नींद न आ सकी। इसे सुनने में रस आता था, पर एक बात बहुत बुरी लगती थी कि उनमें से दो आदमी बाकी लोगों की बातें पूछने में बेतरह पीछे पड़े हुए थे। पूछने योग्य और न पूछने योग्य सभी बातें पूछ रहे थे। अपरिचित या नवीन परिचय के व्यक्ति से जो पूछताछ की जाती है उसकी एक मर्यादा होती है, अत्यन्त निजी बातों को कुछ घण्टे के परिचय मात्र के आधार पर पूछना संभ्य समाज में अशिष्टता समझी जाती है। पर यह लोग उस अशिष्टता की परवाह न करके ऐसे चिपटे हुए थे मानों उनके पेट में से हर एक बात पूछने पर तुले हुए हों।

सन्ध्या होते-होते मैं उठा, शौच-स्नान से निवृत्त हुआ। थैले में से भोजन निकाला और कुँए की मुण्डेर पर बैठकर खाया और वहीं चबूतरे पर बैठ गया। रात काटनी थी। शाक्त महोदय से तो रात को मिलने की संभावना थी ही नहीं। जो मुझे बहुत अखरती थी, उन पूछने वालों में से एक ने मुझे भी आ घेरा और निजी बातों की पूछताछ करने लगा। मन ही मन मुझे झुँझलाहट आयी कि ये लोग ऐसी अनाधिकार चेष्टा क्यों करते हैं ? एक बार मन में आया कि फटकार दूँ, पर दूसरे ही क्षण एक दूसरा विचार प्रकट हुआ—यहाँ जंगल का मामला है, रात इनके साथ ही बितानी है, झगड़ा करने से कोई विपत्ति आ सकती है, अपना कोई सहायक नहीं। इसलिये इन्हें नाराज करना ठीक नहीं। इसलिये मैं उनके प्रश्नों का गलत-सलत उत्तर देकर पीछा छुड़ाने का प्रयत्न करता रहा। अधिक देर हो जाने पर नींद आने का बहाना कर मैं लेट गया। कुछ देर आँख बन्द किये रहने पर नींद आयी, और जब आँख खुली तो सवेरा था।

साथी लोग मुझसे बहुत पहले उठकर नित्य-कर्म से निवृत्त हो चुके थे। मैं भी जल्दी-जल्दी सब काम से निवृत्त हुआ। सूर्योदय होते ही शाक्य महोदय देवी के मठ में से निकले। स्थूल शरीर, माथे पर त्रिपुण्ड, लाल रेशमी धोती, बढ़े हुए बाल, चढ़ी हुई आँखें, देखने में डरावनी सूरत लगती थी। बड़ा-सा बिछौना बिछा दिया गया। सब लोग बैठ गये। उन सिद्ध पुरुष के लिये चौकी बिछा दी गयी। वे उस पर विराजमान हो गये। कुछ देर तक सब लोग चुपचाप बैठे रहे। सन्नाटे को चीरते हुए उन शाक्य महोदय ने हम लोगों में से एक का नाम लेकर पुकारा। वह हाथ बाँधकर खड़ा हो गया। अब उस खड़े हुए व्यक्ति का सारा इतिहास वे शाक्त महोदय बताने लगे। ऊपर पेड़ की ओर उनकी दृष्टि थी, भाव-भंगिमा ऐसी बनाते जाते थे मानों पेड़ के ऊपर कोई देवता बैठा हो और वह उनसे कुछ कह रहा हो और बातें व देवता से सुनते हों वही बातें कह रहे हों। कभी-कभी अपनी भूल का बहाना करके देवता से फिर दुबारा उस बात को पूछते और अपनी गलती को दुरुस्त करते। इस प्रकार जो व्यक्ति पुकारा गया था उसका गाँव, नाम, घर की बनावट, पारिवारिक परिचय, अन्य प्रकट बातें, घर से यहाँ तक आने का वृत्तान्त यहाँ आने का प्रयोजन आदि अनेकों बातें सविस्तार उन्होंने बतायीं और जिस काम के लिये आया था, उसके सम्बन्ध में भविष्यवाणी की। जो बातें बतायी गयी थीं शतप्रतिशत सही थीं। बेचारा वह व्यक्ति श्रद्धा से गद्-गद् हो गया। ऐसा त्रिकालदर्शी सिद्ध उसकी दृष्टि में ईश्वर के बराबर था। जो कुछ भेंट-पूजा लाया था उससे अधिक उसने सिद्ध महोदय के सामने रख दिया। अब दूसरों का नम्बर आया। जिसका नाम पुकारा जाता वह खड़ा होता। पीपल पर बैठे हुए अदृश्य देवता से वे बातें करते जाते और खड़े हुए व्यक्ति का नाम, धाम, पता, परिचय, अनेक गुप्त-प्रकट बातें, आने का उद्देश्य बताते थे तथा आगन्तुक की मनोवांछा के सम्बन्ध में भविष्यवाणी करते या कठिनाई का उपाय बताते। वह व्यक्ति श्रद्धा से नत होकर भेंट चढ़ाता और उठकर चला जाता। सभी लोगों के सम्बन्ध में शतप्रतिशत बातें सच बतायी जा रही थीं। जिससे श्रद्धा और विश्वास के अटूट भाव सबके मन में जमते थे। मैं अनेक बार ठगा गया था, अनेकों की धूर्तता ताड़ चुका था, पर बिना प्रश्नकर्त्ता के एक शब्द मुख से बोले इस प्रकार सारी बातें बता देने वाला अपने ढंग का अनौखा शाक्त था। उसकी सिद्धि के सम्बन्ध में मेरे मन में भी श्रद्धा जागने लगी।

मैं पीछे बैठा था, मेरा नम्बर अन्त में आना था। जब अकेला मैं रह गया तो पुकारा गया—"रामचन्द !" मैंने इधर-उधर दृष्टि दौड़ाई पर दूसरा कोई व्यक्ति वहाँ नहीं था, मैं अकेला ही था। शाक्त ने आँखें तरेर कर कहा क्या सो रहे हो, मैं तीन आवाज दे चुका हूँ सामने नहीं आते। मैं हड़बड़ा कर उठा और अन्य लोगों की भाँति हाथ बाँध कर खड़ा हो गया। देवता से पूछने और मुझे मेरे सम्बन्ध में बताने का क्रम चलने लगा, पर मेरे आश्चर्य का ठिकाना न रहा, जब देखा कि मेरे सम्बन्ध में एक भी बात सच नहीं बतायी जा रही है। सबकी सब गलत हैं। हैरानी से मेरे माथे पर पसीने की बूँदें आ गयीं। जब सब लोगों की सब बातें सच बतायी जा चुकी हैं तो मेरे सम्बन्ध में यह एकदम उल्टा क्यों हो रहा है ? इस हैरानी को चीर कर एक बात याद आयी। रेलवे स्टेशन से साथ आने वाले आदमी को जो मैंने बिल्कुल गलत बतायीं थीं वे ही बातें सिद्ध महोदय ज्यों की त्यों दुहरा रहे हैं। मैंने अपना गलत नाम 'रामचन्द' स्टेशन से साथ आने वाले साथी को बताया था। अब मैं समझा कि शाक्त महोदय के त्रिकालदर्शी होने का क्या रहस्य है। उनके गुर्गे आगन्तुकों के पीछे लग जाते हैं और उनसे भेद पूछकर शाक्त को चुपचाप बता देते हैं और दूसरे दिन वह उन्हीं को ग्रामोफोन के रिकार्ड की तरह दुहरा देता है।

मेरे सम्बन्ध में सभी बातें बिल्कुल गलत बतायी जा रही थीं, इसके कारण जो हैरानी थी उसका समाधान हो जाने पर मुस्कराहट की एक हल्की सी लहर दौड़ गयी। प्रसन्न देखकर शाक्त भी अचकचा रहा था। अब प्रसन्न मुद्रा देखकर उसे संतोष हुआ। अन्त में उसने पूछा—काठ की तरह क्यों खड़े हो, मैंने जो बताया है वह ठीक है या नहीं ?" मैं बिना उत्तर दिये बैठ गया। उसने फिर पूछा—बोलते क्यों नहीं ? मैंने नया बहाना बनाया। हाथ-पैरों को कँपाते हुए कहा—महाराज मुझे 'गुंगबाय' का रोग है, कभी-कभी मेरा मस्तिष्क बिल्कुल बेकाम

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

हो जाता है, जब बीमारी का दौरा होता है तो कानों में सनन-सनन होने लगती है। मुझे आज बीमारी का दौरा हो गया है। आपने जब नाम पुकारा तो उसे भी न सुन सका और जो कुछ आपने कहा है वह भी कुछ समझ में न पड़ा। अब कृपा कर एक दिन ठहरने का अवसर और दीजिये। बहुत दूर से आया हूँ। कल आपकी कृपा से लाभ अवश्य उठाऊँगा। अपने इतनी देर के परिश्रम को बिना लाभ का जाते देखकर शाक्त अप्रसन्न हुआ, मुझे नाराजी और तिरस्कार की दृष्टि से देखा, पर मेरी विनय को ध्यान में रखकर दूसरे दिन ठहरने की इजाजत और दे दी। वैसे आमतौर से वहाँ किसी को एक दिन से अधिक ठहरने नहीं दिया जाता था।

दूसरे दिन ठहरने का उद्देश्य यह था कि अपने संदेह की भलीभाँति जाँच कर सकूँ। उस दिन पहले दिन की अपेक्षा दस-बारह नये आदमी आये। कल जो आदमी थे उनमें से शेष तो चले गये थे पर तीन वहीं जमे हुए थे। वे तीन ही शेष आगन्तुकों की बातें कुरेद कर पूछ रहे थे। जो आदमी कल स्टेशन से मेरे साथ आया था वही आज भी स्टेशन से दो आदमियों को साथ लाया। अब मैं जान गया कि यह चार बँधे हुए दलाल हैं। लोगों से बातें पूछकर शाक्त को बताते रहते हैं और वह उन्हीं बातों को अपनी सिद्धाई जताते हुए दुहरा देता है।

आज जो आदमी आये थे, उनमें से एक प्राइमरी स्कूल का अध्यापक था। उसे अलग बुला कर मैंने सब बात कह दी और इस बात पर सहमत कर लिया कि उन पूछने वालों को सारी बातें गलत-सलत बतावेगा। उसने ऐसा ही किया। दूसरे दिन अन्य सब लोगों की बातें तो ठीक-ठीक बता दी गयी, पर अध्यापक के सम्बन्ध में कहीं सब बातें बिल्कुल गलत थीं। मेरा नम्बर आया तो कल वाली बातें ही फिर बतायी गयीं। त्रिकालदर्शी शाक्त के मायाचार का भण्डाफोड़ करता हुआ मैं वहाँ से उल्टे पाँवों वापस चला आया।

(४) ऐसा योगी जिसके पेशाब में दिये जलते थे

सिन्ध प्रान्त में शिकारपुर के पास एक ऐसे योगी की चर्चा सुनी, जिसके पेशाब में दिये जलते थे। हिन्दी भाषा में 'पेशाब में दिये जलाना' एक कहावत है, जिसका प्रयोग तेजस्विता प्रदर्शन के लिये होता है। जैसे किसी आदमी का आतंक चारों ओर छाया हुआ हो, उसका आदेश मानने के लिये बड़े-बड़ों को विवश होना पड़ता हो तो उस आदमी के लिये कहा जायेगा कि "उसके पेशाब में दिये जलते हैं।" इस कहावत को चरितार्थ करके अपनी तेजस्विता और योग साधना की सफलता प्रकट करने के लिये वे योगी जी पेशाब में दिये जलाते थे। उनके शिष्यों का कहना था कि वे दिन भर में केवल एक बार पेशाब करते हैं और जब करते हैं तब वह घी ही निकलता है। उनके पेशाब का समय शाम को पाँच बजे था। उस समय सैकड़ों दर्शक इस आश्चर्य को अपनी आँखों से देखने के लिये एकत्रित होते थे।

करांची में मुझे यह पता लगा था। मैं वहाँ से शिकारपुर के लिये चल दिया। वहाँ से खोजता-खोजता उन योगिराज के पास जा पहुँचा था। एक घण्टे बाद ही पेशाब करने की वेला आ गयी। अपने कमरे में से महात्मा जी निकले। उनके आते ही कीर्तन आरम्भ हो गया और तुरन्त ही पेशाब करने की तैयारियाँ होने लगीं। बिछुर को मुँह करके बैठे थे उधर को योगी जी ने पीठ कर ली। दर्शकों में से जिसे आज्ञा प्राप्त हो चुकी थी वह एक चाँदी का कटोरा हाथ में लेकर महात्मा जी के सामने पहुँचा और कटोरे को आगे कर दिया। योगीजी उस कटोरे में पेशाब करने लगे। जब कर चुके तो वह उस कटोरा दर्शकों के सामने लाया गया। देखने में वह पिघले हुए शुद्ध घी की तरह था। जाड़े के दिन थे थोड़ी देर में ठण्डी हवा लगते ही वह जमने लगा। अब योगिराज के सिंहासन के पास जो दस बड़े-बड़े पीतल के दीपक दीवटों में सजाये हुए रखे थे उनमें यह घी डाला गया और बत्तियाँ डालकर दीपक जला दिये गये। सब लोग जय-जयकार कर उठे। शंख, घड़ियाल, तुरही, नगाड़े आदि बजने लगे। कटोरे में बचा हुआ घी प्रसाद की तरह ऊँगली की नोंक पर लिया, देखा, सूँघा, परीक्षा करके सराहना की और आँखों में लगाया। जितने भी दर्शक थे सबको पूरा पक्का विश्वास हो गया कि योगिराज पहुँचे हुए हैं, उनकी आत्मा दिव्य है, शरीर दिव्य है और मलमूत्र तक दिव्य है। इस दिव्यता के कारण उन्हें जनता का धन और सम्मान प्रचुर मात्रा में प्राप्त होता था।

अनेकों प्रपंचों में से निकलने के कारण मेरा मन बहुत संशयाकुल था कि कटोरे में या तो कोई पर्दा होगा या पेशाब को किसी प्रकार उलट कर घी डाल दिया जाता होगा, पर जब आँखों से देखा तो जाना कि यहाँ ऐसी कोई गुन्जायश नहीं है, क्योंकि योगीजी नंगे बदन रहते थे। कमर में एक छोटा-सा कपड़े का टुकड़ा था। भरी सभा में पीठ मोड़कर उन्होंने पेशाब किया था, चाँदी का कटोरा सैकड़ों हाथों में होकर गुजरा था। कहीं किसी बात में कोई रहस्य मालूम न पड़ता। यह सचमुच आश्चर्यजनक बात थी। मनुष्य का मूत्र विशुद्ध घृत जैसा हो यह वास्तव में बड़े अचम्भे की चीज थी।

पूर्ण सत्यता को जानने के लिये मैंने वहाँ अड्डा डालकर रहने का निश्चय किया। दर्शकों के चले जाने के बाद मैं योगिराज से मिला। योग मार्ग में मेरी रुचि, ऊँची विद्या, आकर्षक व्यक्तित्व, मृदुल स्वभाव, इन सब बातों ने उनके ऊपर काफी प्रभाव डाला। ऐसे व्यक्तियों को अपने पास रखने में, उन्हें शिष्य बना लेने में साधु लोग अपना बड़ा लाभ देखते हैं, उनकी इस कमजोरी को मैं भली-भाँति जानता था इसलिये अपना परिचय और भावी कार्यक्रम उन्हें इस प्रकार बताया गया जिससे उनकी कृपा सहज ही मुझे प्राप्त हो गयी। जिस कमरे में महात्मा जी रहते थे उसके पीछे वाले कमरे में मुझे रहने के लिये जगह दे दी। मैं उसमें सुखपूर्वक रहने लगा।

सत्यता की जाँच किस प्रकार हो, ऐसे उपाय मैं खोजने लगा। जहाँ पेशाब किया जाता था, वहाँ कोई चालाकी नहीं होती थी। यह मैंने दो रोज में सब प्रकार जाँच लिया। एक दिन हाथ में कटोरा लेकर मैंने खुद पेशाब कराया। मूत्रेन्द्रिय से घी निकलते मैंने खुद अपनी आँखों से देखा था। यदि कोई

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

गड़बड़ होती होगी तो वह उनके रहने के कमरे में ही की जाती होगी ऐसा विचार करके में ऐसा उपाय सोचने लगा जिससे उनके ऊपर निगरानी रखी जा सके। हर वक्त द्वारपाल रहता था। बिना आज्ञा के किसी को उनके पास जाने की अनुमति नहीं थी। कमरे में कोई अन्य दरवाजा या खिड़की न थी। अब किस प्रकार सफलता मिले इस खोज में मैंने योगोजी के कमरे के चारों ओर बड़े ध्यानपूर्वक कई चक्कर लगाये कि कोई मार्ग ऐसा मिले जिसमें होकर कमरे के भीतर की बात दिखाई दे सके, पर ऐसा कोई छिद्र दिखाई न पड़ा। अब मैं अपने कमरे की छत पर चढ़ा और दूसरे कमरे के लिये कोई छिद्र खोजने लगा। सौभाग्यवश छत से कुछ नीचे एक छोटा रोशनदान मिला। खड़े होकर उसमें से योगीजी वाले कमरे का आधा भाग देखा जा सकता था। इस छिद्र में आँखें लगाकर पेशाब करने के दो घण्टे पूर्व खड़ा हो गया और देखने लगा कि योगी जी कोई विशेष क्रिया तो नहीं करते हैं।

जब पाँच बजने में पन्द्रह मिनट बाकी रहे तो उन्होंने बोतल में रखी हुई एक पतली चीज निकाली। उसे कटोरी में उड़ेला और मूत्रेन्द्रिय को उसमें डुबो दिया। उन्होंने चार-पाँच लम्बे-लम्बे श्वांस खींचे और कटोरी खाली हो गयी। कटोरी को एक ओर रखकर उन्होंने मूत्रेन्द्रिय को कुछ ऐंठ कर गाँठ सी बनाई और ऊपर से लँगोट कसकर बाँध लिया। इस क्रिया को करने के बाद वे दर्शकों के समक्ष चले गये। मैं भी चुपचाप छत पर से उतरकर उसी भक्त मण्डली में एक ओर जा बैठा, नित्य का क्रम यथावत चलने लगा।

अब घृत मूतने की दिव्य शक्ति का सारा रहस्य मेरी समझ में आ गया। हठयोगी आमतौर से वज्रोली क्रिया करते हैं। मूत्र मार्ग से जल ऊपर खींचना और फिर उसे बाहर निकाल देना वज्रोली क्रिया कहलाती है। यह कुछ भी कठिन नहीं है। हठ योग के अनेकों साधकों को हमने यह साधना करते देखा था। थोड़े ही दिनों के प्रयत्न से अभ्यास हो जाता है। इसी क्रिया का अभ्यास इन योगीजी ने कर रखा था। वे पानी की जगह मूत्रेन्द्रिय से घी चढ़ा लेते थे, इन्द्रिय को ऐंठकर गाँठ-सी बना लेने और ऊपर से लँगोट कसने का प्रयोजन यह था कि चढ़ाया हुआ घी फैलने न पाये। पेशाब से निवृत्त होकर घी चढ़ाया जाता है जिससे कहीं घी और पेशाब मिल न जायें।

रहस्य मालूम हो चुका था तो भी उसकी एक बार पुष्टि करने की और आवश्यकता थी। दूसरे दिन जब वे योगी जी पुनः जनता के सामने आये तो मैं अवसर पाकर उनके कमरे में चुपके से घुस गया और उस घी की बोतल को चुपचाप आलमारी में से निकाल लाया। आलमारी ज्यों की त्यों बन्द कर दी। दूसरे दिन नियत समय पर जबकि महात्माजी के आने की तैयारी हो रही थी, अचानक संदेश आया कि योगीजी समाधि मग्न हो गये हैं वे आज दर्शन देने न आवेंगे। मैं समझ गया कि यह समाधि और कुछ नहीं घी की बोतल ठीक समय पर न मिलने और उसकी दूसरी व्यवस्था तुरन्त न हो सकने की समाधि हैं।

जानकारी पूरी हो गयी। दूसरे दिन खिन्न चित्त, उदास चेहरा लेकर वहाँ से चल दिया।

(५) मूक प्रश्न बताने वाले ज्योतिषी

मुख से बिना कुछ कहे पूछे जाने वाले प्रश्नों को मूक प्रश्न कहते हैं। अनेकों ज्योतिषी मूक प्रश्न बताते हैं, हमें ऐसे ज्योतिषियों से कई बार काम पड़ा है। उनके भेदों को जानने में भी असाधारण परिश्रम तथा काफी समय लगाना पड़ा है।

एक बार आगरा में एक ज्योतिषी जी आये। बेलनगंज की धर्मशाला में ठहरे। शहर भर में मुनादी तथा इश्तहारों द्वारा सूचना कराई गई कि ज्योतिषी जी मूक प्रश्नों का उत्तर देते हैं, हम भी पहुँचे। उनका तरीका यह था कि जो आदमी उनके पास जाये वह एक कागज पर अपना प्रश्न लिखकर अपने पास चुपचाप रख ले, ज्योतिषी जी उस प्रश्न को भी बताते थे और उसका उत्तर भी देते थे। फीस हर प्रश्न की २) रुपया थी। सवेरे से शाम तक पचास-साठ प्रश्न पूछने वाले उनके पास पहुँचते थे। आसानी से १००) रुपया रोज की आमदनी हो जाती थी। प्रश्नों को प्रायः ठीक ही बता दिया जाता था।

बारीकी से देखने पर मालूम हुआ कि इस विद्या का रहस्य उस कापी में था जो वहाँ आमतौर से खुली हुई पड़ी रहती थी। पाठक उसी के कागजों पर अपने प्रश्न लिखते थे और कागज फाड़कर अपनी जेब में रख लेते थे। इस कापी में जो कोरे कागज थे वे चतुरतापूर्वक रासायनिक ढंग से बनाये गये थे। कागजों की पीठ पर बढ़िया साबुन घिस दिया जाता था। पेन्सिल से लिखने पर कार्बन पेपर के रंग की भांति कागजों की पीठ पर घिसा हुआ साबुन नीचे वाले कागज पर लग जाता था कार्बन के लिखे हुए अक्षर नीले रंग के कारण साफ दिखाई पड़ते हैं पर साबुन के अक्षर सफेद और हल्के होने के कारण दीखते नहीं पर उन्हें विशेष उपाय से पढ़ा जा सकता है। उस नकल आये हुए कागज पर राख, गुलाल, रामरज या गेरू का चूर्ण या कोई अन्य ऐसी ही बारीक पिसी हुई चीज डाली जाये तो साबुन के स्थान पर वह चीज चिपक जाती है और अक्षर स्पष्ट रूप से पढ़े जा सकते हैं या उस कागज को पानी में डुबो दिया जाये तो वे साबुन के अक्षर दिखाई दे सकते हैं। यही उन ज्योतिषी जी की विद्या थी। इसी के बल पर वे कमाते-खाते थे। थोड़े से परिश्रम से ही मैंने उनके इस रहस्य को जान लिया।

एक ऐसे ही ज्योतिषी जी से जबलपुर में भेंट हुई। उनका रहस्य यह था कि सादा कागज के टुकड़े काट कर रख देते थे, पेन्सिलें पड़ी रहती थीं। कागज पर पेन्सिल से लिखते समय कोई चीज नीचे रखने की आवश्यकता पड़ती है। इस आवश्यकता की पूर्ति के लिये वहाँ कितनी ही मोटी-मोटी किताबें पड़ी थीं। जिल्दों के पट्ठे के ऊपर एक हल्का कागज चढ़ाया हुआ था। उस कागज और पट्ठे के बीच में कार्बन पेपर तथा सफेद कागज लगा रहता था। उस पट्ठेदार किताब के ऊपर कागज रखकर जो कुछ लिखा जाता था उसकी नकल बीच के सफेद कागज पर उस कार्बन पेपर के द्वारा हो जाती थी।

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

ज्योतिषी जी का सेवक उन पुस्तकों को वहाँ से ले जाता था और नकल वाला कागज निकाल कर उन पुस्तकों को वहीं रख जाता था। इस नकल को देखकर ज्योतिषी जी मूक प्रश्न बताते थे।

एक ज्योतिषी ने अपना अलग ही नया तरीका निकाला था। उससे बम्बई में भेंट हुई। प्रश्नकर्ता उसके सामने जाकर कुर्सी पर बैठता था, वह अपनी मेज की दराज में से एक स्लेट और पेन्सिल निकालता था, प्रश्नकर्ता की ओर देख-देखकर वह जल्दी-जल्दी सिलेट पर कुछ लिखता था और पूरी सिलेट लिख जाने पर उसे दराज में फिर रख देता था। अब प्रश्नकर्त्ता से बातचीत होती—आप कहाँ से पधारे हैं ? क्या काम है? आदि सारी बातें पूछते, जब वार्तालाप पूरा हो जाता तो मेज के दराज में से सिलेट निकाल कर प्रश्नकर्त्ता के हाथ में देते और पढ़ने को कहते। इस स्लेट में वही सब बातें लिखी होतीं जो प्रश्नकर्त्ता ने बतायीं थीं। ज्योतिषी कहता आपके आते ही बिना आपसे एक शब्द पूछे सारी बातें जान ली थीं और उसे सिलेट पर लिख कर रख दी थीं। प्रश्नकर्त्ता बेचारा आश्चर्य में पड़ जाता और ज्योतिषी जी की विद्या से प्रभावित होकर उन्हें शक्ति भर भेंट दक्षिणा में देता।

पता चलने पर ज्ञात हुआ कि ज्योतिषीजी की बड़ी मेज के दोनों ओर जमीन तक जाने वाले बड़े-बड़े दराज थे, उसमें नीचे एक आदमी बैठा रहता था। ज्योतिषी आरम्भ में जो कुछ लिखते वह व्यर्थ कलम घिसावट थी। वैसी ही दूसरी सिलेट लिये एक आदमी दराज में बैठा रहता था और जो वार्तालाप दोनों में होता था उसे सुनकर तथ्य की बातें लिखता जाता था। वही सिलेट अन्त में प्रश्नकर्त्ता को दिखाई जाती। बेचारा समझता कि मेरी वार्ता से पूर्व ही यह सिलेट लिखी गयी थी।

इस प्रकार के एक नहीं अनेकों ज्योतिषी, तेजी-मन्दी बताने वाले, भविष्यवक्ता देखे, उनमें से मुझे किसी के पास भी कोई चीज नजर नहीं आयी। यों तो अकल से दस बातें कहीं जायें तो उसमें से पांच-छः तो ठीक निकलती ही हैं। इन ठीक निकली बातों को लेकर ज्योतिषी लोग अपनी विद्या का ढिंढोरा पीटते हैं और जो बातें गलत निकलतीं उनको दबा देते हैं।

(६) भूतों के एजेण्ट

भूतों के एजेण्ट गांव-गांव मिल जाते हैं। जिन्हें सयाने, ओझा, भोपा आदि कहते हैं। यह लोग भूतों का अस्तित्व सिद्ध करने, उन्हें बुलाने, भगाने तथा उनके द्वारा कई प्रकार के काम कराने के करिश्में दिखाते हैं। छोटे बालकों के दस्त, बुखार, अधिक रोना, हाथ-पांव मरोड़ना, आँखें न खोलना, उल्टी सरीखे रोग भूत-चुड़ैलों के आक्रमण समझे जाते हैं। अशिक्षित तथा अन्धविश्वासी लोगों में ओझाओं द्वारा झाड़-फूँक करना ही इसका उपाय समझा जाता है। स्त्रियों का विशेष रूप से भूतों पर विश्वास होता है। उनके बहुत से रोग भूत बाधा माने जाते हैं, मृगी बन्ध्यापन, गर्भपात, बच्चों का मर जाना, दूध न उतरना, दुःस्वप्न, मूर्छा आदि रोगों को भूत-चुड़ैल का कारण समझा जाता है। आवेश युक्त अन्य रोगी भी इसी श्रेणी में गिने जाते हैं। उन्माद, आवेश, भयातुरता, तीव्र ज्वर, प्रलाप, तीव्र शूल आदि रोग चाहे वे पुरुष को हो या स्त्री को, भूतों के उपद्रव समझे जाते हैं। कंठमाला, विषवेल सरीखे फोड़े, सर्प का काटना यह भी प्रेतात्माओं से सम्बन्धित समझा जाता है। सूने घर में चूहे द्वारा मचाई गयी खड़बड़, बिल्ली-बन्दर आदि का कूदना कभी-कभी भूत बन जाते हैं। किसी मृत जानवर या मनुष्य की हड्डियों का फॉस्फोरस कभी-कभी वायु के संस्पर्श से अचानक जल उठता है। केंचुए की मिट्टी का फॉस्फोरस जमीन पर प्रकाशवान हो उठता है। चिड़ियाँ अपने खाने के लिये केंचुओं को घोंसले में रख लेती हैं। वहाँ भी फॉस्फोरस चमकने लगता है। इस प्रकार के प्रकाशों को भूतों की करतूतों का प्रत्यक्ष प्रमाण बताया जाता है।

ऐसा ही कोई कारण उपस्थित होने पर इन सयाने लोगों का आह्वान किया जाता है। वे अपनी अलौकिकता को सिद्ध करने के लिये नीबू को चाकू से काटकर रस की जगह खून निकालना, लोटे में चावल भरना और उस भरे हुए लोटे को चाकू की नोंक से चिपका कर अधर उठा लेना, कच्चे सूत के धागे पर तेल का भरा हुआ जलता दीपक रखना, ऊपर से उलटे मुँह की मटकी रख देना और फिर थाली का पानी खींचकर चढ़ जाना, लोटे में पानी भरकर एक कपड़े से मुँह बांधकर लोटे को उल्टा लटका देना, घड़े में से छन कर जरा भी पानी न फैलना आदि अनेकों प्रकार के चमत्कार दिखाकर अपने अन्दर अलौकिकता सिद्ध करते हैं, परन्तु वस्तुतः उनमें कोई चमत्कार नहीं होता। यह सब बातें साइन्स, रसायन या चतुरता पर निर्भर होती हैं। देखने वाले उससे प्रभावित होते हैं और सयाने की योग्यता पर विश्वास करके उसको भेंट देने और उसकी इच्छानुसार कार्य करने के लिये प्रस्तुत हो जाते हैं।

स्त्रियाँ को भूतावेश बहुत आते हैं। इसका कारण मनोवैज्ञानिक है। उन्हें बुरी तरह परतंत्र रहना पड़ता है। घर के छोटे पिंजड़े में पर्दे के कठिन बन्धनों से जकड़ी हुई वे रहती हैं। मुद्दतों एक स्थान पर रहते-रहते उनका मन ऊब जाता है। पिता के घर की याद आती है। मैके जाने को जी भटकता है, पर उनकी अपनी इच्छा का कोई मूल्य नहीं, सुसराल का अरुचिकर वातावरण, वहाँ वालों का दुर्व्यवहार आदि अनेक कारणों से स्त्रियों को क्षोभ उत्पन्न होता है, वे भीतर ही भीतर घुटती हैं। मनोविज्ञान शास्त्र की दृष्टि से इस 'घुटन' का उनके ऊपर बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है। दबी हुई अतृप्त इच्छायें किसी विस्फोट के लिये अवसर खोजती हैं। अनेकों स्त्रियों को हिस्टीरिया के दौरे आने लगते हैं। जिन परिवारों में भूतवाद पर विश्वास किया जाता है उनकी आत्म त्रास से पीड़ित स्त्रियाँ भूतों के बारे में सोचने लगती हैं और उन्हें भूत सिर आने लगते हैं। उनका विश्वास और आत्मत्रास मिलकर एक वास्तविक मानसिक रोग बन जाता है। यह रोग कभी-कभी प्राणघातक भी सिद्ध होता है। नवयुवती स्त्रियाँ जब तक माता नहीं बनतीं तब तक उनको

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

भूतावेश का भय अधिक रहता है। जब उनके बालक हो जाते हैं तो मस्तिष्क की दिशा दूसरी ओर मुड़ जाती है, ऐसी दशा में भूतोन्माद का भय बहुत ही कम रह जाता है।

रोग धीरे-धीरे समय पाकर अपने आप अच्छे होने लगते हैं। स्त्रियाँ सहानुभूति पाकर अपनी ओर लोगों का ध्यान आकर्षित होने पर एवं सयाने के उपचार से प्रभावित हो जाती हैं। आवेश, उन्माद आदि भी समय पाकर ठीक हो जाते हैं। इसका श्रेय सयाने को मिलता है, उसकी रोजी चलती रहती है। भूतों की अनेकों कथायें कही जाती हैं, पर उन कथाओं की कड़ी जांच करने पर मालूम होता है कि उनमें तीन-चौथाई से अधिक तो बिल्कुल कल्पित, मनगढ़न्त किंवदन्तियाँ होती हैं। आश्चर्य एवं कौतूहल उत्पन्न करने के लिये कितने ही लोग कह देते हैं कि ऐसा हमने देखा था, पर असल में उसने देखा नहीं सुना होता है और उस सुनने के आधार पर पता लगाने पर मालूम होता है कि किसी ने यों ही गप्प उड़ा दी है। एक-चौथाई से कम घटनायें कुछ सारगर्भित होती हैं, उनके कारण किसी अन्य वैज्ञानिक तथ्य पर अवलम्बित होते हैं।

भूत उतारने वाले बड़े-बड़े प्रसिद्ध सयानों के यहाँ हम पहुँचे हैं। उनके यहाँ प्रतिदिन दस-बीस ऐसे रोगी पहुँचते और अच्छे होते थे। भूतों का आवेश बुलाना, रोगी पर चढ़े भूत से बातें पूछना, भूत उतारने की क्रिया करना, यही सब व्यापार दिन भर उनके यहाँ होता है। एक ने तो बहुत बड़े लट्ठे और कितनी ही जंजीरें बाँध रखी थीं। उसका दावा था कि इस लट्ठे पर जंजीरों से उसने कितने ही बड़े-बड़े भूतों को बाँध रखा है। इन भूत उतारने वालों में से प्रायः सभी से हमने विनय पूर्वक, सेवा से प्रसन्न करके, लोभ देकर, चुनौती से उत्तेजित करके यह प्रार्थनायें कीं, कि वे हमें भूत को दिखा दें या हमारे ऊपर भूतावेश बुला दें, पर उनमें से किसी ने भी यह छोटी-सी प्रार्थना स्वीकार न की। यदि सचमुच इतने भूतों को ये लोग इधर से उधर करते हों तो एक भूत हमारे ऊपर छोड़ देने से इनको क्या लगता था?

इतना तो माना जा सकता है कि जिन लोगों को किसी कारणवश भूतोन्माद है उनका मनोवैज्ञानिक चिकित्सा में उस रीति से भी उपचार किया जा सकता है जिस रीति से सयाने लोग करते हैं। परन्तु सयानों में वस्तुतः भूत बुलाने-भगाने की योग्यता होती है, यह नहीं कहा जा सकता। सयाने अपने ऊपर जो भूतावेश बुलाते हैं उसके वास्तविक होने में भी पूरा-पूरा संदेह है। भूतों की सहायता से किसी को बीमार कर देने, मार डालने या लड़का पैदा करने की बात असत्य है। सयाने लोग अपनी प्रतिष्ठा एवं लाभ के लिये इस प्रकार का आडम्बर रचा करते हैं। अनेकों सयाने लोगों से मिलकर बातें करने और जाँच करने पर हम इसी निष्कर्ष पर पहुँचे हैं।

एक नई किस्म के सुशिक्षित सयाने कुछ दिनों से और पैदा हुये हैं। इनका तरीका विलायती है। यह 'स्पिरचुएलिज्म' कहलाता है। अंग्रेजी में इस विषय पर कितनी ही पुस्तकें हैं। देशी भाषाओं में भी थोड़ी-बहुत पुस्तकें इस विषय पर मिल जाती हैं। यह लोग प्रेतों को बुलाते हैं और उनसे वार्तालाप करते हैं। इस तरीके के अनुसार प्रेत प्रायः लिखकर उत्तर देते हैं। कई आदमी गोल चक्र बाँधकर बैठते हैं। बीच में एक मेज रख लेते हैं। अब कई तरीकों से प्रेतों से वार्तालाप किये जाते हैं। जैसे—

(१) ऑटोमैटिक राइटिंग द्वारा—इस विधि में मन ही मन ऐसी भावना की जाती है कि हमारे ऊपर भूतावेश आवे। थोड़ी देर में किसी के ऊपर आवेश आता है। उसको कागज और पेन्सिल दे दी जाती है। जो प्रश्न पूछे जाते हैं उनका वह आवेश ग्रस्त व्यक्ति उत्तर लिखता है, इन उत्तरों को प्रेत का उत्तर समझा जाता है।

(२) प्लेनचिट द्वारा—यह लकड़ी का एक टुकड़ा होता है। जिसमें पहिये लगे होते हैं। एक छेद में पेन्सिल लगा दी जाती है। इस प्लेनचिट के नीचे कागज रखते हैं। थोड़ी देर में पहिया चलता है और पूछे हुये प्रश्नों का उत्तर प्लेनचिट में लगी हुई पेन्सिल लिखने लगती है।

(३) सिपाई द्वारा—तीन पैर की मेज पर कई व्यक्ति हाथ रखकर बैठते हैं। थोड़ी देर में प्रेत के आने पर मेज के पाये उठने-गिरने लगते हैं और खट-खट की संकेत माला बना ली जाती है और तार घर डेमी की गरगट्ट-ध्वनि से जिस प्रकार शब्द बनते हैं, वैसे ही मेज के पाये की खटखट के संकेतों से मतलब निकालते हैं। इस प्रकार के और भी कई तरीके हैं। इन तरीकों के बारे में कई सन्देह उत्पन्न होते हैं।

(४) ऑटोमैटिक राइटिंग—स्वलेखन के बारे में यह संदेह उत्पन्न होता है के जो विचार पेन्सिल से लिखे जाते हैं, वे उसने स्वसम्मोहन के आवेश में लिखे हों या यों ही ठठोली में। प्लेनचिट के चलाने में या मेज पाये खटकाने में चक्र में बैठा हुआ कोई व्यक्ति यह हरकतें करता है। इस ओर ध्यान न दिया जाये तो भी जो उत्तर प्राप्त होते हैं वे सन्तोषजनक नहीं होते। ऐसी बात जिनकी जांच नहीं हो सकती उनका वर्णन प्रेतों द्वारा मिलता है। जैसे परलोक कैसा हो ? वहाँ प्रेत लोग किस प्रकार रहते हैं ? क्या खाते हैं ? क्या करते हैं आदि। इन प्रश्नों के जो उत्तर दिये जाते हैं उनकी सत्यता-असत्यता के विषय में कुछ कहा नहीं जा सकता। इसकी सचाई की जाँच का तरीका यह है कि ऐसे प्रश्न पूछे जाएँ जिनका ठीक उत्तर केवल उस स्वर्गीय आत्मा को ही मालूम हो। जिन बातों की जानकारी उस आवेश वाले व्यक्ति को किसी प्रकार होने का अन्देशा हो वह प्रश्न न पूछे जाएँ। ऐसे दो-चार प्रश्न पूछते ही इन लोगों की कलई खुल जाती है और सारा खयाली महल ढह पड़ता है।

बम्बई के एक सुप्रसिद्ध प्रेत विद्या के ज्ञाता एक बार आगरा पधारे। उनका सार्वजनिक भाषण हुआ। एक प्रोफेसर साहब के यहाँ वे ठहरे हुये थे। हम कई मित्र उनसे मिलने गये। चक्र किया गया। हमारे साथ जो मित्र वहाँ मौजूद थे, उन्हीं की ज्येष्ठा बुलाई गयी। वह आ गयी और उत्तर देने लगी। हमारे पिताजी बुलाये गये और उनसे पूछा गया कि

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आप जब रामेश्वर यात्रा पर गये थे तबके कुछ संस्मरण सुनाइये । उन्होंने बहुत सारे संस्मरण सुनाये, पर वास्तव में हमारे पिताजी कभी रामेश्वर गये ही नहीं थे। तीसरे मित्र ने अपनी माताजी बुलायीं और छोटी बहन के लिये कुछ संदेश माँगा। माताजी ने बहुत-सी बातें अपनी बेटी के सम्बन्ध में कहीं, पर वास्तव में उनकी कोई बहन न थी। तीनों ही प्रश्न गलत थे। तीनों में से एक के लिये भी प्रेतों ने यह नहीं कहा कि यह प्रश्न गलत है। बल्कि सविस्तार उत्तर दिये। इससे हम लोगों की आस्था उनके परलोकवाद पर से उठ गयी। इसी तरीके को काम में लेकर हमने कितने ही चक्र करने वालों को छकाया। यह बुद्धि का युग है। जब तक किसी बात को ठीक प्रकार प्रमाणित न कर दिया जाये तब तक उस बात को विज्ञ समाज स्वीकार नहीं कर सकता।

(७) भविष्य वक्ताओं की चतुरता

भविष्य वक्ताओं की अनेकों श्रेणियाँ हैं। वे अनेक रीतियों से काम करते हैं। ज्योतिषी लोग पंचांग, जन्मपत्र आदि में ग्रह-नक्षत्र देखकर, सगुनियाँ-स्वर तथा अन्य शकुनों को देखकर फल बताते हैं। चक्रों पर हाथ रखवाकर, रमल के पासे डलवाकर, हाथ देखकर, सामुद्रिक विधि से भविष्य बताया जाता है। आवेश में आये हुये देवी-देवता भी बताते हैं। अमुक तिथि को इस प्रकार हवा चले, धूप निकले, पानी बरसे तो उसका वर्षा तथा फसल में भले-बुरे होने का भविष्य किसान लोग अनुमान करते हैं। सांप के बोलने, गिरगिट के रंग बदलने, कुत्तों के रोने आदि से आगे घटित होने वाली घटनाओं का कुछ लोग अन्दाज लगाया करते हैं।

भविष्य पूछने वालों में आमतौर से वे लोग होते हैं जिन्हें वर्तमान में कोई विशेष चिन्ता होती है और भविष्य में उस चिन्ता से छुटकारा पाकर किसी आशामय परिस्थिति में प्रवेश करना चाहते हैं। आमतौर से खोई हुई वस्तुओं का पता पूछने वाले, खोये हुये बच्चे या घर से भागे हुये मनुष्य की खोज करने वाले, विवाह के इच्छुक, सन्तान के अभिलाषी, परीक्षाफल जानने की तलाश करने वाले, नौकरी-बदली-तरक्की पूछने वाले, व्यापार में तेजी-मन्दी का सट्टा-दड़ा आदि पूछने वाले होते हैं। जैसे, वैद्य लोग बहुत दिन के अनुभव के बाद शक्ल, सूरत और रंग-ढंग देखकर बता देते हैं कि यह किस रोग का मरीज है और प्रायः उनका अंदाज ठीक निकलता है। उसी प्रकार भविष्यवक्ता लोग भी प्रश्नकर्त्ताओं के रंग-ढंग मुख मुद्रा आदि को देखकर यह सहज ही अन्दाज लगा लेते हैं कि वह क्या पूछना चाहता है ? इस परख के आधार पर वे सहज ही किसी निष्कर्ष पर पहुँच जाते हैं और प्रायः बिना पूछे ही बता देते हैं कि प्रश्नकर्त्ता क्या पूछने आया है ? बहुत से भविष्यवक्ता उस सीमा तक पहुँचे हुये नहीं होते। वे प्रश्नकर्त्ता का अपना उद्देश्य प्रकट करने पर ग्रह, गणित या अन्य क्रियाकलाप करके उत्तर देते हैं।

उत्तर देते समय भविष्यवक्ता लोग ज्योतिष पर ही निर्भर नहीं रहते वरन् यह देखते हैं कि स्थिति क्या है ? कैसी आशा है ? जो परिस्थिति सामने है उसे देखते हुये किस प्रकार की संभावना है ? इन अनुमानों की सूक्ष्म विवेचना करके जो उत्तर देते हैं उनके उत्तर प्रायः बहुत अंशों में ठीक उतरते हैं। इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है। हर एक विद्वान मनुष्य अपनी विवेचना शक्ति के द्वारा बारीकी से सोचता है और अपनी दैनिक बातों के सम्बन्ध में आगे की बातों का अन्दाजा लगाता है। वह अंदाज बहुत अंशों में ठीक भी होता है। यदि ठीक न हो तो उसका कारोबार ठप हो जाये। जिस बुद्धि-सूक्ष्मता के आधार पर चतुर पुरुष अपने व्यावहारिक कार्यों में सफल होते हैं उसी बुद्धि सूक्ष्मता से ज्योतिषी लोग दूसरों के सम्बन्ध में अन्दाज लगाते हैं। वे अनुमान बहुत अंशों में ठीक उतरते हैं। ठीक उतरने पर वे सिद्ध समझे जाते हैं, प्रशंसा के पात्र बनते हैं और धन का लाभ करते हैं।

कभी-कभी बताये हुये उत्तर गलत भी हो जाते हैं क्योंकि अटकलें सदा ही ठीक नहीं उतरतीं। गलत निकली हुई बातों को यह कहकर टाल दिया जाता है कि "परमात्मा की इच्छा प्रबल है, भाग्य के लिखे को कोई मेट नहीं सकता, बुरे दिन होने पर सोना भी पकड़ो, मिट्टी हो जाता है, हमारी विद्या तो सत्य है पर उस विद्या के अनुसार निष्कर्ष निकालने वाले से भूल हो जाने पर उत्तर गलत हो जाते हैं, हम मनुष्य हैं इसलिये हमसे भी भूल होना स्वाभाविक है।" इसके अतिरिक्त "जन्म समय ठीक तरह न मालूम होने, प्रश्न करने के लिये प्रातःकाल आदि शुभ समय में न आने, प्रश्न पूछने के लिये आने के साथ-साथ फल, फूल, मिष्ठान्न, दक्षिणा आदि मांगलिक चीजें पर्याप्त मात्रा में न लाने इत्यादि बहाने आसानी से बनाये जा सकते हैं।"

सोना, चाँदी, रुई, तिलहन आदि की तेजी मन्दी के सट्टे करने वाले का आधार कल्पना शक्ति ही तो होती है। सटोरिये अन्दाज ही तो लगाया करते हैं कि आगे मन्दी आयेगी या तेजी। जब उनका निशाना ठीक बैठ जाता है तो मालामाल हो जाते हैं, नहीं तो दिवालिया बनते देर भी नहीं लगती। जैसे को तैसे साथी मिलते रहते हैं। अक्ल की फातियाँ उड़ाने वाले ज्योतिषी लोग उन्हें मिल जाते हैं "लगा तो तीर नहीं तो तुक्का बना बनाया है।"

इन तेजी-मन्दी बताने वालों को चुनौती देते हुये एक बहुत ही प्रतिष्ठित व्यक्ति ने हमारे पास शर्तनामा भेजा कि यदि कोई भविष्यवक्ता प्रतिदिन केवल एक वस्तु की तेजी-मन्दी बतला दिया करे तो उसे केवल एक प्रश्न बताने के लिये एक हजार रुपया प्रतिदिन के हिसाब से जमा कर देने और शर्तनामा अदालत में रजिस्ट्री करने को तैयार हैं। शर्तनामा हमने हिन्दुस्तान के प्रायः सभी ज्योतिषियों के पास भेजा है, पर किसी ने भी उस चुनौती को अब तक स्वीकार नहीं किया है और भविष्य में कोई उस चुनौती को स्वीकार करेगा ऐसी आशा भी नहीं है।

हम लोग देखते हैं कि यह लोग कुछ फीस या दक्षिणा लेकर तेजी-मन्दी आदि बताते हैं। इससे स्पष्ट है कि पैसे की इच्छा तो उनको है। जब पैसे की आवश्यकता और इच्छा उनको है ही और तेज-मन्दी आदि जानते ही हैं तो वे स्वयं ही सटोरिये बन कर मालामाल क्यों नहीं बन जाते ? दूसरी बात यह है कि जब भविष्य को वे जानते भी हैं तो फिर अपने बारे

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

में भी जानते होंगे कि हमें कब कितनी आमदनी होगी, यदि यह मालूम ही है कि इतना पैसा हमको अमुक समय मिल जायेगा तो फिर ज्योतिष विद्या या और कोई ढोंग करने की क्या आवश्यकता है ? बैठे-बैठे मौज करें, जो भाग्य का होगा अपने आप आ जायेगा। यह दोनों बातें बहुत ही सीधी और सरल हैं, पर कोई भी भविष्य वक्ता इस मार्ग पर चलता दिखाई नहीं देता। इससे प्रतीत होता है कि किसी ज्योतिषी को स्वयं अपने ऊपर विश्वास नहीं है। ऐसी दशा में दूसरे विचार वाले लोग उन पर किस प्रकार विश्वास करें ? यह एक प्रमुख समस्या है।

(८) दिव्यदर्शी तान्त्रिक

अप्रत्यक्ष गुप्त बातों को जानने का दावा करने वाले अनेकों व्यक्ति हमारे सम्पर्क में आये। मैस्मरेजम के नाम से कितने ही लोग इस प्रकार के खेल करते हैं। एक बार हमने देखा कि एक मैस्मरेजम करने वाले ने एक लड़के को तन्त्र बल से बेहोश किया। लड़के की आँखों पर पट्टी बाँधी और ऊपर से कपड़ा डाल दिया। इससे किसी को यह संदेह न रहे कि लड़का आँखों से देख सकता है। अब जादूगर ने वहाँ उपस्थित लोगों के सम्बन्ध में उस लड़के से पूछना शुरू किया। चारों ओर जमा हुई दर्शकों की भीड़ में जादूगर चक्कर लगा रहा था। वह लोगों का छाता, घड़ी, अँगूठी, शरीर का कोई भी अंग, कपड़ा आदि पकड़ता और उस लेटे हुये लड़के से पूछता कि यह क्या है ? लड़का तुरन्त उत्तर देता—यह अमुक चीज है। पुस्तकों के पृष्ठ, भाषा, घड़ियों का समय, रुपयों के सन् आदि अनेक बात पूछी गयीं और उनके ठीक-ठीक उत्तर मिले। देखने वाले सभी लोग आश्चर्य में थे।

इस विद्या को जानने की हमें बड़ी उत्सुकता हुई। जिस जादूगर ने यह खेल दिखाया था उसके पीछे बहुत दिनों लगे रहे। पहले तो वह हमें नाटक आदि अभ्यासों में उलझाकर हमें टालता रहा, पर पीछे उसकी मुँह माँगी दक्षिणा देने पर सब भेद बताया। रहस्य यह था कि एक लड़के को पाठमाला रटा दी जाती है। प्रश्न और उत्तर पहले से ही निर्धारित होते हैं जैसे यह क्या है ? इस प्रश्न का उत्तर होगा—छाता। यह क्या चीज है ? इस प्रश्न का उत्तर होगा—घड़ी। पूछने के शब्दों में थोड़ा हेरफेर करने से दर्शक तो कुछ समझ नहीं पाते, पर वह लेटा हुआ लड़का भली प्रकार ध्यान रखता है और प्रश्न की भाषा के अनुसार उत्तर देता है। ऐसी एक लम्बी प्रश्नोत्तरी हम अपनी 'जादूगरी या छल' पुस्तक में दे चुके हैं। इसके अतिरिक्त कोई भी चतुर व्यक्ति अपने ढंग की नयी प्रश्नोत्तरी गढ़ सकता है। इस विधि से केवल वे ही बातें बतलायी जा सकती हैं जो पूछने वाले को मालूम हों। जिन बातों का उत्तर उसे मालूम न होगा उसका उत्तर झूठ-मूठ बेहोश पड़ा लड़का भी न दे सकेगा।

नाखून पर स्याही लगाकर उसमें बालकों को देवी-देवता दिखाने वाले तथा उनसे बात कराकर प्रश्नों का उत्तर देने वाले हमने देखे हैं। इसी कार्य को कुछ लोग एक विशेष प्रकार की अँगूठी से, त्रिकालदर्शी नामक एक काली बिन्दी लगे हुये शीशे से भी करते हैं। जिस बालक के ऊपर यह प्रयोग किया जाता है उसे प्रयोग करने वाला अपनी सिद्धाई की घास के हथकण्डे बताकर डरा देता है और बेचारा बालक जैसा कहो वैसा हाँ-हाँ करने लगता है। यदि इस प्रकार दिखाया जाना सम्भव हो तो बड़ी उम्र के चतुर और निडर बालकों पर भी यह प्रयोग होना चाहिये, पर ऐसे बालकों से वे लोग सदा ही बचते रहते हैं।

चोर पकड़ने के लिये चावल पढ़कर देना आदि तरीके एक प्रकार की धमकी है जिससे डरकर लोग चोरी कबूल कर लेते हैं। एक चोर पकड़ने वाला तांत्रिक ऐसा करता था कि जिन लोगों पर चोरी का शुबा होता था उन सबको बुलाता था और एक कोठे में लाल रंग से पुता हुआ देवता रख देता था, खुद उस कोठे के बाहर बैठ जाता था। अब जिन पर शुबा होता उनको एक-एक करके भीतर भेजता और उस देवता का स्पर्श करने को कहता। जो देवता को छूकर वापस लौटता उसका हाथ सूँघकर वह तांत्रिक बताता कि चोर है या नहीं। इस तरकीब से वह असली चोर को पकड़ अलग ले जाकर चोरी इस शर्त पर कबूल करा लेता है कि ली हुई चीज वापस करदे तो उसका नाम प्रकट नहीं किया जायेगा। चोर उस चीज को तांत्रिक को वापस दे देता और वह उसे वापस कर देता जिसकी कि वह चीज थी। इस रीति से उसे बहुत धन और यश मिलता।

इसका रहस्य यह था कि देवता पर कच्चा लाल रंग पुता हुआ था जो उसे छूता था उसके हाथ में लाल रंग का कुछ न कुछ दाग लगा होता था। हाथ सूँघने के बहाने वह देख लेता था कि कहीं दाग है या नहीं। दाग होने पर निर्दोष समझा जाता था। जिस आदमी ने वास्तव में चोरी की होती थी वह देवता को इस ख्याल से छूता न था कि यहाँ कोई देखने वाला तो है नहीं इसलिये न छूऊँ तो ठीक है। वह बिना छुये लौट आता था। उसके हाथ पर रंग का दाग न होता था, तांत्रिक अकेले में उससे कहता था कि चोर तुम्हीं हो, चुपचाप या तो चीजें लौटा दो नहीं तो नाम प्रकट कर दिया जायेगा। चोर सिटपिटा जाता है और बदनामी से बचने के लिये चीजें देकर अपना पीछा छुड़ाता। परन्तु यह तरकीब भी सदा नहीं चल सकती। केवल उन्हीं पर चलती है जो चोर-देवता और मन्त्र शक्ति पर विश्वास करते हैं।

जासूसों के जरिए या किसी अन्य प्रकार से किसी आदमी के सम्बन्ध में बहुत-सी जानकारी एकत्रित करना फिर उससे अचानक मुलाकात करके उन सब बातों को विद्या बल से बताना, इस रीति से कितने ही आदमी लोगों को आश्चर्य में डाल देते हैं और अपना उल्लू सीधा करते हैं।

अनेकों प्रकार के आश्चर्य

ऊपर की पंक्तियों में कुछ चमत्कारों का वर्णन किया है। इस तरह से सैकड़ों चमत्कार हमने देखे और उनके भेद मालूम किये हैं। जिनमें से अनेकों का तो अब स्मरण भी नहीं रहा है। जो याद हैं उनमें से दो-चार और लिखते हैं।

(१) एक बार एक गाँव में जमींदार के यहाँ एक महात्माजी पधारे। जमींदार साहब ने बड़ी आव-भगत की। महात्माजी के बारे में यह समाचार फैलाया गया कि वे बड़े पहुँचे हुये सन्त हैं, जो कहो सो मँगा सकते हैं। रात को जब

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

गाँव वाले बहुत से लोग बैठे हुये थे तो एक ग्रामीण ने कहा कि महाराज जी गरम खीर मँगाइये। महात्माजी ने आँख बन्द करके मन्त्र पढ़ा और सावधान होकर कहा—जाओ चौपाल में खीर आ गयी। लोगों ने जाकर देखा तो सचमुच हांडी भरी खीर रखी है। वह सबको प्रसाद रूप में दे दी गयी। लोग आश्चर्य कर रहे थे कि एक काछी चिल्लाता हुआ आया कि चूल्हे पर रंधती हुई खीर की हांडी उड़ गयी। उसे हांडी दिखाई गयी तो उसने कहा यह मेरी ही हांडी है और मेरी आँखों के सामने आकाश को उड़ गयी थी। इस घटना के बाद योगीराज की भारी पूजा हुई। दस-पन्द्रह दिन में करीब दो हजार रुपया भेंट का आ गया।

बहुत दिन बाद हमें पता चला कि जमींदार, खीर माँगने वाला, काछी इन तीनों को उस साधु ने षडयन्त्र में शामिल किया है। उनकी परती रखी गयी थी, भेंट में इन तीनों ने हिस्सा बाँटा था। वास्तव में खीर जमींदार के घर में बनी थी और लोगों के एकत्रित होने से पूर्व ही चौपाल में छिपाकर रख दी गयी थी।

(२) एक साधु महाराज कहीं बाहर से आये और एक गाँव में मरघट के पास रहने लगे। उनकी निर्भयता से गाँव वाले बहुत प्रभावित हुये और भोजन सामग्री उनके लिए भेजने लगे। एक दिन जब गाँव के बहुत से लोग बैठे हुये थे, कोई रास्तागीर उधर से निकला, वह साधु के पास बैठ गया और इधर-उधर की बातें करने लगा। बातों ही बातों में साधु के प्रति उसने कुछ कड़वे और अपमानजनक शब्द कह दिये। इस साधु ने क्रुद्ध होकर श्राप दिया कि 'तू इसी समय अन्धा हो जायेगा'। वह अन्धा हो गया और एक सप्ताह तक वह पास के गाँव में लकड़ी के सहारे टटोलता और दुःख गाथा सुनाता फिरा। गाँव-गाँव जाकर वह यह कहता था कि पंच लोग चलकर महात्माजी को समझाकर श्राप वापस लेने को जोर दें, तो ही उसका जीवन उबर सकता है। अन्धे पर दया करके करीब बीस गाँव के पंच इकट्ठे हुये। सबने बहुत विनय करके महात्माजी को मनाया। उसने कमण्डल से जल लेकर अन्धे पर डाला और उसकी आँखों में ज्योति वापस आ गयी। इस चमत्कार से ग्रामीण बहुत प्रभावित हुये। थोड़े दिन बाद बाबाजी ने भण्डारा करने की इच्छा की जिसके लिये गांवों से सैकड़ों रुपया प्राप्त हुआ।

पता लगाने पर मालूम हुआ कि जो आदमी अन्धा हुआ था वह आदमी बाबाजी का साथी था। साधक-सिद्ध का जोड़ा बनाकर कितने ही स्थानों पर यह लोग इस घटना की पुनरावृत्ति कर चुके हैं।

(३) एक गाँव में एक ठाकुर के कुएँ के पास महात्माजी आकर ठहरे। ठाकुर ने उनकी आव-भगत की। जाते समय उन्होंने वरदान दिया कि तेरे इस कुएँ के जल का जो आचमन करेगा उसका कैसा ही कठिन या डरावना रोग क्यों न हो अच्छा हो जायेगा। यह समाचार फैलते ही लोगों की भीड़ लगने लगी। एक अन्धा आदमी अच्छा हुआ, एक गूँगा बोलने लगा, यह घटना सबके सामने हुई। एक महीने तक भारी मेला उस कुँए पर लगा रहा। कथा-कीर्तन की धूम रही। ठाकुर ने घोषणा की कि महात्माजी के आशीर्वाद रूपी इस कुँए को पक्का बनवाया जायेगा और यहाँ एक धर्मशाला बनेगी, इसके लिये भेंट दक्षिणा दी जाये। बहुत रुपया जमा हुआ, कुँआ और धर्मशाला तो पक्के नहीं बने पर ठाकुर का दरिद्र दूर हो गया।

पता लगाने पर मालूम हुआ कि जो अन्धे और बहरे अच्छे हुये थे वे बिल्कुल अच्छे-भले थे। ठाकुर चोरी करता था यह उसके दूरवर्ती साथी थे। जिन्हें वहाँ कोई जानता न था। बाद में इन्हीं लोगों को बीस-बीस कोस गाँवों में भेजा गया और इन लोगों ने अफवाह फैलाई कि अमुक स्थान पर महात्माजी के आशीर्वाद से ऐसा करामाती कुँआ निकला कि जिससे पचासों अन्धे और हजारों बीमार अच्छे हो चुके हैं। यह अफवाह एक से दस और दस से सौ में फैल गई, देहातों में ऐसी बातों पर विश्वास भी जल्दी हो जाता है। लोग वहाँ के लिये दौड़ पड़े। ठाकुर का पासा ठीक पड़ा, उसके पौ बारह हो गये।

(४) मद्रास प्रान्त में एक जगह एक बड़ी कोठी में एक राजसी महात्मा रहते थे। वे श्री कृष्णजी के प्रत्यक्ष दर्शन कराते थे। उनकी कोठी के भीतरी भाग में एक संगमरमर का छोटा-सा तालाब भरा रहता था। भगवान उस तालाब के जल में चलते-फिरते और हँसते-बोलते थे। रूप और सजावट बालक कृष्ण से मिलती-जुलती थी। धनी लोगों को बड़े नाज और नखरे के साथ भक्तिपूर्वक दर्शन कराये जाते और लम्बी-लम्बी रकमें दान में ली जाती थीं।

भेद खोजने पर मालूम हुआ कि तालाब का पेंदा मोटे किन्तु स्वच्छ काँच का बना हुआ है। उसके नीचे गुफा की तरह खाली जगह है। उस खाली जगह में जाने के लिये रास्ता है। एक सात-आठ वर्ष के स्वरूपवान बालक को वस्त्राभूषण से खूब सजाकर उस नीचे के तहखाने में भेज देते थे। लड़का उसमें इधर-उधर फिरता था और दर्शकों की ओर हँसता-मुस्कराता तथा कुछ प्रसन्नता तथा कुछ आश्वासन सूचक शब्द कहता था। काँच के ऊपर पानी भरा रहने से यह दृश्य ऊपर से देखने पर ऐसा मालूम पड़ता था मानों जल में मछली की भाँति श्रीकृष्ण ही चल फिर रहे हों। भक्त लोग इस दृश्य को देखकर अपने को धन्य मान लेते थे उस राजसी संत को भगवान का परम प्रिय समझकर उनके सदा के लिये भक्त बन जाते थे।

सं० २००४ के लगभग अनेकों व्यक्ति अपने आपको निष्कलंक भगवान का अवतार कहने लगे थे और इसके लिये उन्होंने काफी प्रसिद्धि प्राप्त की थी। अब भी ऐसे तो कितने ही व्यक्ति हमारी नजर में हैं जो अपने को प्रहलाद का, सूरदास का, शंकराचार्य का अवतार बताते हैं, किन्तु सत्यता प्रकट करने के लिए एक भी तथ्य उनके पास नहीं है।

(५) एक योगीराज जलती हुई अग्नि पर स्वयं चलते थे और अपने पीछे-पीछे अन्य कई लोगों को चलाते थे, पर उनमें से कोई भी जलता न था। इस क्रिया में मुख्य बात यह थी कि जिसे अग्नि पर चलना होता था उसके पैर घुलाते थे। गीले पैरों से अग्नि के निकट तक पहुँचने पर वह दवा पैरों में चिपट

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

जाती थी जो यहाँ मिट्टी के ऊपर फैला दी जाती थी। इस दवा के प्रभाव से पैरों पर अग्नि का असर न होता था।

हमने उन योगीराज को चुनौती दी कि अग्नि के चारों ओर की जमीन भली प्रकार साफ कर लेने दें और पैर धुलाने के लिये जो पानी मँगाया जाये उसे लाने और देने का कार्य हमारे हाथ में रहे। यदि इस शर्त के साथ वे स्वयं अग्नि पर चलें या दूसरों को चलावें तो उन्हें पाँच सौ रुपया दक्षिणा देने को तैयार हैं, पर इस चुनौती को स्वीकार करने के लिये वे तैयार न हुये।

(६) एक जगह एक अवधूत देखे गये जो लोगों को माँगी हुई चीज तुरन्त अपने देवता द्वारा मँगा देते थे। उनके मुरीदों का कहना था कि उनको 'सेवड़े की विद्या' आती है। एक योगिनी उसके वश में है, उससे जो चाहते हैं सो मँगा लेते हैं।

इस आश्चर्यजनक करतब का पता लगाने पर मालूम हुआ कि चीजें मँगाने का आग्रह मुरीद लोग ही किया करते थे और वे चीजें पहले से ही मँगाकर तैयार रखी जाती थीं। बाजीगर जैसी सफाई से चीजें मँगाता और गायब करता है वैसी ही सफाई उनको याद थी, जिसके बलपर वे दर्शकों की माँगी हुई चीज आकाश की तरफ हाथ करके तुरन्त मँगा लेते थे। किसी नये आदमी को प्रभावित करना होता तो अपरिचित बनकर के मुरीद ही अवधूतजी से झगड़ते, चुनौती देते और ऐसी चीज माँगते जिसका उस समय वहाँ मिलना कठिन होता। अवधूतजी तुरन्त वह चीज माँगकर उनकी बोलती बन्द कर देते। बेचारा नया दर्शक इस दृश्य को देखकर ही पूर्णतया सन्तुष्ट हो जाता। उसे स्वयं कुछ माँगने के लिये कहने की नौबत ही न आ पाती।

(७) एक पण्डित जी बड़े-बड़े यज्ञ करते थे। उनके यज्ञों में विशेषता यह होती थी कि यज्ञ कुण्ड में से मन्त्र द्वारा अग्नि अपने आप प्रकट होती थी। जनता पण्डित जी को बहुत पहुँचा हुआ सन्त मानती थी। भेद यह था कि हवनकुण्ड में रंग-बिरंगे चौक पूरे जाते थे। हल्दी, रोली, आटा आदि से उसे चित्र-विचित्र किया जाता था। सफेद रेखायें जहाँ बनायी जाती थीं वहाँ बारूद में काम आने वाली पुटास फैला दी जाती थी। थोड़ा-थोड़ा सफेद बूरा भी वहाँ बिछाया जाता था। पूजा की थाली में तीन-चार लोंगें तेजाब में डुबोकर पहले से ही रख ली जाती थीं। अँगुलियों को घी में चुपड़ लिया जाता था ताकि तेजाब की डूबी हुई लोंगों के छूने से कोई हानि न हो। पण्डितजी मन्त्रोच्चारण करते थे और जब अग्नि प्रकट करने का अवसर आता था तो उन तेजाब में डूबी हुई लोंगों को हवनकुण्ड में ऐसी जगह छोड़ते थे कि जहाँ पुटास और शक्कर बिछी रहती थी। तेजाब का स्पर्श होते ही बारूद जल उठती थी। बूरा उसके जलने में और भी सहायता देता था। कुण्ड में जहाँ-तहाँ कपूर छोड़ रखा जाता था, जो अग्नि को पकड़ लेता था और समिधायें जलने लगती थीं। इस प्रकार अग्नि देवता का मन्त्रबल से प्रकट करने का उन पण्डितजी को श्रेय मिल जाता था।

जादू-चमत्कार या छल

योग क्षेत्र में फैली हुई भ्रांतियों की तरह ही जादूगरी को भी लोग यथार्थ मान बैठते हैं, जबकि इसका आधार अभ्यास, चतुरता और हाथ की सफाई मात्र है। कितने ही लोग इसे योग विद्या से जोड़ते हैं और उसे एक सिद्धि या चमत्कार बताते हैं। परन्तु वास्तविकता इससे सर्वथा भिन्न है। योगाभ्यास में एक ओर जहाँ उच्चस्तरीय उद्देश्य—आत्मोत्कर्ष का जुड़ा रहता है, वहीं दूसरी ओर उसमें तन्मयता, एकाग्रता, श्रद्धा-विश्वास, समर्पण आदि का गहरा संपुट भी लगा रहता है। किन्तु जादूगरी के खेलों में चतुरता और छल ही प्रधान होता है। इसमें हर एक खेल इस मनोवैज्ञानिक तथ्य पर निर्भर है कि छल से मनुष्य को धोखे में डाला जा सकता है। कोई व्यक्ति कितना ही चतुर तार्किक एवं होशियार क्यों न हो उसमें कुछ न कुछ विश्वास का अंश होता ही है। इस विश्वास के छोटे अंश के साथ ही छल किया जता है और दर्शक भ्रम में पड़ जाते हैं। किसी खेल को दिखाते समय जादूगर मोटे तौर पर संदेह निवारण करा देता है, दर्शक उतने से ही सन्तुष्ट हो जाता है और अधिक गहराई में नहीं जाता, उसी भूल से लाभ उठाकर जादूगर अपने करतब करता है और अपनी सफलता पर प्रसन्न होता है। यदि दर्शक बिल्कुल अविश्वासी बन जावे और जरा भी विश्वास न करे हर चीज की तलाशी ले, तो सारी जादूगरी धूल में मिल सकती है। चुनौती देकर एक भी खेल कोई आदमी नहीं दिखा सकता।

इन खेलों को दिखाने से मनुष्य का स्वभाव धोखा देने का, छल करने का और दूसरों के विश्वास का अनुचित लाभ उठाने का अभ्यास पड़ता है। यह बातें धीरे-धीरे स्वभाव में शामिल हो जाती है, जिससे मनुष्य का सदाचार, चरित्र बल, नैतिकता, सात्विकता, पवित्रता, सरलता एवं सद्भाव नष्ट होता है। तेजाब को शरीर के किसी भी भाग में कितनी ही कम मात्रा में प्रयुक्त क्यों न किया जाये वहाँ हानि पहुँचाये बिना नहीं रह सकता। इस प्रकार छल चाहे मनोरंजन के लिए ही क्यों न किया जाये उसके मन में आने से आत्मिक पतन ही होता है। इसलिए अपने प्रिय पाठकों को हमारी यह सलाह है कि वे इन खेलों का रहस्य समझ कर इनकी निरर्थकता का अनुभव कर लें, इनकी ओर प्रवृत्ति न बढ़ावें, अब आगे के पृष्ठों पर कुछ खेलों का तरीका बताया जाता है।

ताशों के खेल

(१) दर्शकों को चारों रंग के (ईंट, पान, चिड़ी, हुकम) के इक्के दिखाइये। अब इनमें से एक इक्का हटा कर अलग रख दीजिये और उसके स्थान पर एक पंजा लगा लीजिये। बस, अब शेष तीन इक्के भी पंजे बन जावेंगे।

इस खेल का रहस्य यह है कि तीन पंजे पान, चिड़ी, ईंट के लेकर उनके नीचे की दो बूँदें रेगमाल से घिस देनी चाहिए। अब इन तीन पत्तों में दो ऊपर की ओर एक बीच की केवल तीन बूँदें रह जावेंगी। इन पत्तों को दिखाते समय उन्हें तिरछा एक के ऊपर एक लगाना चाहिए जिससे हर एक ताश की दो बूँदें ऊपर वाले दूसरे ताश से ढक जावें सिर्फ बीच की

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

एक बूँद दिखाई पड़े। यह एक बूँद ही दीखने के कारण सब ताश इक्का प्रतीत होते हैं। सबसे ऊपर हुकम का इक्का लगाना चाहिए क्योंकि एक तो आमतौर से यह विशेष आकृति का होता है दूसरे एक पूरा इक्का तो रखना ही पड़ेगा। इसलिये हुकुम का इक्का ऊपर लगा कर चारों पत्ते दिखाते हैं। इसे देखने पर किसी को यह शक नहीं होता कि यह चारों ताश के इक्के नहीं हैं।

अब एक हुकुम का पंजा लीजिए और उसे हुकम के इक्के के स्थान पर रख दीजिए। यह घटाने की तथा रखने की क्रिया इस सफाई से होनी चाहिए कि नीचे वाले नकली इक्के का भेद प्रकट न होने पावे। अब इन चारों पत्तों का नीचे का भाग ऊपर की ओर, और ऊपर का नीचे की ओर कर दीजिए। पहले जैसे एक के ऊपर एक ताश तिरछा रख कर बूँदें दबा दी गई थी उसी प्रकार इस बार घिसा हुआ भाग दबा कर तीनों बूँदें प्रकट कर देनी चाहिए। ऊपर पंजा होने से यह सब पत्ते पंजे ही दिखाई पड़ते हैं। इस प्रकार एक ताश बदलने से चार ताश बदलने का खेल हो जाता है लोग इसको देख बहुत आश्चर्य करते हैं।

(२) चार रंग के चार बादशाह दिखाइए। उनमें से एक बादशाह हटा कर उसके स्थान पर एक सत्ता रख दीजिए, चारों ताश सत्ता बन जावेंगें।

इस खेल का आधार तो पहले खेल का-सा ही है पर अन्तर यह है कि उस में पंजों की नीचे की बूँदें घिस दी जाती थीं, इसमें एक कोने से दूसरे कोने तक तिरछा (त्रिभुजाकार) तीन बादशाह काटे जाते हैं और उन्हें तीन सत्तों पर चिपका देते हैं। इस प्रकार तिकोने आकार में वह ताश आधे बादशाह और आधे सत्ते होते हैं। दिखाते समय तिरछे एक के ऊपर दूसरा ताश रखकर दिखाते हैं। ऊपर पूरा ठीक ताश रहता है। जब बादशाह को सत्ता बनाना होता है तो ऊपर वाले पूरे बादशाह को हटा कर उसके स्थान पर पूरा सत्ता रख देते हैं और नीचे के तीन ताशों का बादशाह वाला भाग छिपा कर सत्ते वाला भाग खोल देते हैं।

(३) एक हाथ में एक ताश लेकर दिखाया जाता है, दूसरे हाथ को खाली दिखाया जाता है। खाली हाथ को उस ताश के ऊपर फिरा देने से वह दूसरी आकृति का बदल जाता है इस प्रकार चार बार हाथ फेरने पर वह एक ही ताश चार रंग पलटता है और फिर अपने असली रूप में आता है।

इसका भेद यह है कि चार ताश लेकर उनको ठीक बीच में से लम्बाई की ओर आधा मोड़ कर एक ताश के आधे भाग की पीठ दूसरे ताश की आधे भाग की पीठ से चिपकाते हैं। इस तरह चार ताशों की आधी-आधी पीठ आपस में एक दूसरे से चिपक जाती है।

दिखाते समय बायें हाथ में एक ताश को पूरा-पूरा दिखाते हैं, तीन ताश उसकी पीठ पर चिपके रहते हैं। हाथ में पकड़ते समय सावधानी रखी जाती है कि कहीं बीच से मुड़ न जाये या पीठ के चिपके ताश दिखाई न दे जायें। दूसरे हाथ को मंत्र चलाने जैसी मुद्रा बनाकर इस ताश पर हाथ फेरते हैं। इसी बहाने एक पत्ते को पलट दिया जाता है जिससे दूसरी आकृति सामने आ जाती है। इसी प्रकार हाथ फिराने से चार प्रकार के ताश दिखाई देते हैं।

(४) एक कोने पर एक ताश को पकड़ कर दर्शकों को दिखाते हैं यह छक्का होता है। उसे जरा-सी हवा में हिलाने पर चौका होता जाता है। ताश को दोनों ओर से दिखा देने पर और दूसरे हाथ का स्पर्श न होने पर यह खेल बहुत आश्चर्यजनक और बिना लाग लपेट का मालूम पड़ता है।

रहस्य यह है कि किसी भी रंग का एक छक्का लेकर उसके बीच की बूँदों में से एक ओर की एक बूँद रेगमाल से या चाकू से मिटा देते हैं खेल दिखाते समय अंगूठा और तर्जनी के सहारे उस छिले हुए स्थान को पकड़ कर दिखाते हैं, दर्शक पांच बूँदें देखते हुए भी उसके छक्का होने का विश्वास कर लेते हैं। ताश को जरा हवा में हिला कर इसे दूसरी तरफ बदल देते हैं और छिले हुए स्थान की बराबर वाली बूँद को अँगुली और अँगूठे से दबा देते हैं। अब वह चौका दीखने लगता है।

(५) ताशों की एक गड्डी लेकर उसमें सारे किस्म के पत्ते-दर्शकों को दिखा दीजिए। अब इस गड्डी को लेकर सब दर्शकों के पास आइए और कहिए कि एक पत्ता निकाल कर पहचान लें और उसे मन में याद रखें। इसी प्रकार स्वेच्छापूर्वक सबको पत्ते निकालने और पहचान कर मन में याद रखने के लिए कहें। जब दस बीस पचास चालीस आदमी अपने-अपने पत्ते पहचान चुकें तो गड्डी को उठा कर एक ओर रख दीजिए और केवल एक ताश हाथ में लेकर चलिए। लोगों से कहिए कि मेरे हाथ में यह जादुई ताश है वह सब लोगों के पहचाने हुए इस ताश की शक्ल में बदल जाता है। उस ताश को जिसे भी दिखावेंगे वही कहेगा कि—यही मैंने पहचाना था।

इस खेल का भेद यह है कि कोई एक ताश २६ की संख्या में से लिया जाता है। २६ गड्डी पैकिटों में मान लीजिए आपने चिड़ी की २६ बेगमें निकाल लीं। इनको नीचे ऊपर जरा-जरा-सा कैंची से काट दीजिये। काट देने से वह अन्य ताशों की अपेक्षा कुछ छोटी हो जावेंगी। अब इस क्रम से पत्ते लगाये जाएँ कि एक बेगम-एक सादा, एक बेगम-एक सादा, इस प्रकार बनाई हुई गड्डी के नीचे भाग को हाथ से पकड़ लिया जाता है और ऊपर भाग को जल्दी-जल्दी खरार्टे के साथ लोगों को दिखाते हैं और उन पत्तों के बीच में अँगुली डाल कर एक ताश निकालने के लिए कहते हैं। दर्शक अँगुली डालेगा उसके नीचे बेगम ही निकलेगी। इस प्रकार हर एक दर्शक एक ही पत्ता पहचानेगा। कोई अपना पहचाना हुआ पत्ता दूसरे को न बतावे यह पहले से ही हिदायत कर दी जाती है। इसलिए हर दर्शक यह समझता है सबने अलग-अलग आकृति के ताश पहचाने होंगे। जादूगर उस एक बेगम को लेकर निकालता है और छिपा पता हर पहचानने वाले को दिखाता है। वह स्वीकार करता है कि हाँ यही मैंने पहचाना था। इस प्रकार सबको बहुत अचम्भा होता है। बेगमों का नीचे ऊपर से काट देने पर वह छोटी हो जाती है और फर्टि के साथ दिखते समय वह पूरे पत्ते की पीठ से सट जाती है। इसलिए गड्डी में वह कहीं भी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

दिखाई नहीं पड़ती किन्तु जहाँ भी हाथ डालो वहाँ नीचे वही निकलती है।

(६) एक गड्डी ताश लेकर अनेक लोगों को एक-एक ताश सबको पहचनवा दीजिए। अब एक कांच के गिलास में पानी भर लीजिए, हर एक पहचानने वाले को पानी भरा गिलास दिखाइए। इस पानी में पहचाने हुए ताश का चित्र दिखाई पड़ेगा। सब लोग अपने-अपने पहचाने हुए ताश का चित्र पानी में देखकर बहुत प्रसन्न होते हैं।

यह खेल बिल्कुल ऊपर के खेल के समान है। एक प्रकार के २६ ताश थोड़े-थोड़े काट कर उपरोक्त प्रकार की गड्डी बनाई जाती है। उसी प्रकार एक ताश को सब लोग पहचानते हैं अब अन्तर केवल यह रह जाता है कि पहले खेल में उस ताश को निकाल कर जादूगर हर एक पहचानने वाले को दिखाता था इस खेल में पानी का भरा गिलास दिखाता है।

कांच के गिलास को उल्टा करके उसके बाहर वाले पेंदे में उस ताश को चिपका देते हैं जो लोगों ने पहचाना है। बाजार में छोटे बच्चों के खेलने के एक दो पैसे वाले छोटे ताश बिकते हैं। इसमें चिपकाने के लिए ताश लेना चाहिए क्योंकि पूरा पत्ता गिलास के छोटे पेंदे में आ नहीं सकता। कांच के गिलास में पानी भर देने पर नीचे पेंदे में लगा हुआ ताश दिखाई पड़ता है। देखते समय ऐसा मालूम पड़ता है मानों पानी के बीच में किसी अद्भुत उपाय से चित्र अंकित हो रहा है।

(७) कांच की बोतल के मुँह पर एक ताश खड़ा करते हैं। इसके ऊपर एक गिलास रख देते हैं। गिलास का वजन लकर पत्ते को इस प्रकार खड़ा रहना देखने वालों को अचम्भे में डाल देता है। इस खेल के लिए मजबूत बढ़िया किस्म के दो ताश लिए जाते हैं। एक कार्ड ज्यों का त्यों रहता है, दूसरे को बीच में आधा पीछे की ओर मोड़ देते हैं। फिर उस मुड़े हुए कार्ड का आधा भाग पूरे कार्ड से चिपका देते हैं। शेष आधा खुला रह जाता है। जब खेल दिखाना होता है तो पीठ पर चिपके हुए ताश का बिना चिपका भाग पीछे की ओर मोड़ देते हैं। जो कि पीछे तिपाई की तरह अड़ जाता है और खड़ा रहने एवं वजन साधने में सहायक स्तम्भ की तरह कारगर सिद्ध होता है।

(८) ताश की एक गड्डी लेकर उसे सबके सामने बहुत देर तक फेंटते रहिए। फिर ऊपर का एक पत्ता पकड़ कर ऊँचा उठा दीजिए वे एक दूसरे से चिपटे हुए जंजीर बन कर ऊपर उठ जायेंगे। देर तक फेंटते रहने के कारण यह भ्रम तो रहता नहीं कि वे एक दूसरे से चिपके होंगे, बिना चिपके हुए ताशों का एक-दूसरे से सटकर जंजीर की तरह ऊपर उठना अचरज की बात मालूम पड़ती है।

भेद यह है कि दो तिहाई ताश बिल्कुल सादा रखे जाते हैं। एक तिहाई आपस में इस प्रकार चिपकाये जाते हैं कि एक का सिर दूसरे के पैर आपस में चिपकें। इस प्रकार इन तिहाई ताशों को फेंटते समय एक साथ फेंटते हैं। शेष को थोड़ा-थोड़ा करके फेंटते रहते हैं। जब जंजीर बनानी होती है तो इन चिपके हुए ताशों को ही ऊपर उठा देते हैं।

(९) ताश की गड्डी लेकर दर्शक के आगे रख दीजिए और कहिए कि इसमें से कोई भी ताश निकाल कर पहचान ले। जब पहचान चुके तो उसे वापस उसी गड्डी में कहीं रखवा दीजिए और उसी के हाथों खूब फेंटवा दीजिए ताकि किसी प्रकार का सन्देह न रहे। अब आप आँख से पट्टी बांध कर गड्डी को हाथ में लेते ही उसे पहचानते हुए ताश को निकाल कर दे सकते हैं।

भेद यह है कि इस गड्डी को दोनों बगलों के नीचे वाले हिस्से को रेगमाल से थोड़ा घिस दिया जाता है। जिससे उधर का भाग जरा छोटा पड़ जाता है। जैसे ही कोई दर्शक गड्डी में से पत्ता खींच कर अपने पास ले जाये वैसे ही जादूगर उसे इधर से उधर को फेर देता है। दर्शक जब वापिस उस पत्ते को गड्डी में मिलाता है तो उसका बड़ा ऊपर वाला भाग अन्य पत्तों के नीचे के छोटे भाग की ओर हो जाता है। आँखों पर पट्टी बांध कर टटोलने से मालूम पड़ जाता है कि किस ताश का कोना बढ़ा हुआ है। उसे ही निकाल कर बता दिया जाता कि यह पहचाना गया था।

(१०) दर्शक जो ताश पहचाने ताश को उसी गड्डी में मिलवा दीजिए। आवाज देने पर यह ताश उछल कर दूर जा गिरेगा।

कारण यह है कि उन्हीं ताशों के बीच में नीचे की ओर लचीली रबड़ का टुकड़ा बांध देते हैं। नं० ५ या नं० ९ के तरीके से दर्शक को कोई ताश पहचनवाते हैं जिससे यह तो तुरन्त मालूम हो जाता है कि इसने कौन-सा पत्ता देखा था। उसी ताश को रबड़ लगे के बीच में लगा देते हैं और हाथ से दबाकर पकड़े रहते हैं। जब आवाज देते हैं कि "पहचाना हुआ ताश निकले" तो हाथ को जरा ढीला कर देते हैं। ढील पाते ही रबड़ के दबाव के कारण ताश उछल कर दूर जा गिरता है।

(११) लोगों का पहचाना हुआ ताश गड्डी में से अपने आप दो फुट ऊपर उड़ता हुआ जादूगर के दूसरे हाथ में पहुँचता है। जादूगर उसे सबको दिखाता है। ताश के अपने आप ऊपर उड़ने का दृश्य बड़ा मनोहर होता है।

इस खेल का भेद यह है कि जादूगर काला कोट पहनता है। कोट में काले बटन होते हैं। बटन में काला रेशमी बारीक डोरी या लम्बा बाल बँधा होता है या बाल के दूसरे सिरे पर मोम और राल मिलाकर बनाया हुआ चिपकना गाढ़ा मसाला लगा होता है। पीछे बताये हुए तरीकों से यह मालूम होता है कौन-सा ताश दर्शक ने पहचाना है। उसकी पीठ पर चिपकना मसाला आहिस्ता से चिपका देता है और दूसरे हाथ को ऊपर उठाता है। हाथ को उठाने के साथ ही डोरे को ऊपर उठाता है जिससे ताश ऊपर उठता है और जादूगर के दूसरे हाथ से जा सटता है।

रुमाल के खेल

(१२) एक रुपया लेकर रुमाल के बीचों-बीच रखिए और उसे किसी आदमी के हाथ में दे दीजिए उस आदमी से कहिए कि रुपये को जोर से पकड़े रहे कहीं उड़ न जावे। थोड़ी देर

इधर-उधर की बातें करके रुमाल को उसके हाथ से लीजिए रुपया कहीं भी न मिलेगा।

कारण यह है कि रुमाल के चारों किनारे एक-एक इंच चौड़े दुहरे सिलवाये जाते हैं उसके एक कोने पर किसी धातु का बना हुआ रुपये जैसा गोल टुकड़ा सिलवा देते हैं। जिस समय किसी आदमी को रुपया समेत रुमाल पकड़ने के लिए दिया जाता है उस समय सफाई के साथ रुपये को तो निकाल लेते हैं और कोने में सिले हुए गोल टुकड़े को उसके हाथ में पकड़वा देते हैं, पीछे जब रुमाल वापस लिया जाता है तो उसमें कुछ नहीं निकलता। सिले हुए टुकड़े वाले कोने को पकड़ कर जादूगर इस रुमाल को भली प्रकार हिला-डुला देता है जिससे सन्देह का निवारण हो जाता है।

(१३) एक पीतल या कांच का गिलास रुमाल से ढँक कर किसी आदमी के हाथ में पकड़वा दीजिये। थोड़ी देर इधर-उधर की बातें करने के बाद रुमाल वापस मांगिए और उसे सब लोगों के सामने झाड़ दीजिए, उसमें गिलास नहीं निकलेगा।

जिस प्रकार रुमाल गायब करने वाले खेल में एक कोने पर रुपये की शक्ल का धातु का टुकड़ा सीं दिया जाता है वैसे ही इस खेल में एक कोने पर उस छोटे गिलास की बराबर कांच की चूड़ी-सी दी जाती है। रुपये को पकड़ते समय तो दर्शक रुमाल को मुट्ठी में पकड़ता है पर गिलास पकड़ने का तरीका दूसरा है। पांचों उंगलियों से चूड़ी के किनारों को इस प्रकार लटकता हुआ पकड़वा देते हैं जैसे लोटे को हाथ में लटका कर टट्टी के लिए ले जाते हैं। इस प्रकार पकड़ने से रुमाल नीचे की ओर झूलता रहता है और पकड़ने वाले को यह पता नहीं चल पाता कि उसके हाथ में चूड़ी है या गिलास, गिलास जैसे बड़ी चीज के हाथों-हाथ गायब होने का लोगों को बहुत अचम्भा होता है।

(१४) कोई डिब्बा, टोप या टोकरी खाली दिखाइए। थोड़ी देर में इसमें से ढेरों रुमाल निकाल, निकाल कर दिखाते जाइए। खाली हाथ दिखाकर हाथों में से भी अनेकों रुमाल निकाल कर दिखाये जा सकते हैं।

इस खेल के लिए बहुत ही बारीक रेशम के छोटे-छोटे रुमाल तैयार किये जाते हैं। इनकी तह करके दबा-दबा कर रखा जावे तो थोड़ी जगह में दर्जनों रुमाल आ सकते हैं। उन्हें लपेट कर एक छोटी गेंद-सी बना ली जाती है। खेल दिखाते समय टोप, डिब्बा, टोकरा खाली दिखाया जाता है। इसके बाद उसे मेज पर रखते समय, या हाथ में जादू का डंडा उठाते समय उस गेंद को मेज पर से उठा लेते हैं और फिर रुमालों को खोल कर ढेर लगाते हैं।

(१५) एक रुमाल लेकर दर्शकों के सामने जला दीजिए। आवाज देने पर मेज के ऊपर रखी हुई सफेद बोतल के भीतर रुमाल अपने आप ऊपर उठता नजर आवेगा।

इस खेल के लिए एक ही किस्म के दो रुमाल लिये जाते हैं। एक सफेद बोतल का पेंदा कांच काटने वालों से कटवा कर अलग करवा लिया जाता है। इस बिना पेंदे की बोतल में नीचे की ओर एक अँगुल ऊँचाई तक काला रंग लगा देते हैं। इस बोतल के भीतर एक रुमाल रख दिया जाता है और उसके एक कोने में बोतल के रंग का पतला रेशमी डोरा बांध कर बोतल के मुँह से ऊपर निकाल दिया जाता है।

एक रुमाल को दर्शकों के सामने जला देने के बाद बोतल में पड़े हुए डोरे को दूर से खींचते हैं। डोरे के सहारे रुमाल ऊपर उठने लगता है लोग समझते हैं कि जला हुआ रुमाल बोतल के अन्दर फिर से पैदा हो रहा है।

(१६) जादूगर एक मोटा कागज सबको दिखाता है। उसको लपेट कर गोल पोला फूँकना-सा बना देता है। उसमें एक सिरे से सफेद रुमाल ठूंसना आरम्भ किये जाते हैं, यह दूसरी ओर से रंग-बिरंगे बनकर निकलते हैं। सादा कागज के फूँकने को उस प्रकार रंगाई का कारखाना देख कर लोगों को बड़ी हैरत होती है।

इस खेल का रहस्य यह है कि कागज को गोल करके फूंकने बनाते समय रंगीन रेशमी रुमालों की एक छोटी सी पोटली बीच में रख देता है। एक सिरे से सफेद रुमाल ठूंसता है। दूसरी ओर से वे बीच में रखे हुए रंगीन रुमाल सरक-सरक कर बाहर निकलने लगते हैं जब सब रंगीन रुमाल निकल चुकते हैं तो जादूगर दर्शकों को कहता है कि आप ऐसा न समझें कि इस कागज के फूंकना के भीतर कोई चोरी की बात है। उस कागज को वह फिर खोल कर चौरस कर देता है उसके भीतर सिर्फ सफेद रुमाल ही होते हैं। देखने वालों को जादूगर की विद्या पर विश्वास हो जाता है।

(१७) जादूगर एक रुमाल हाथ में लेकर एक बोतल में ठूंसता है। फिर दर्शकों को कहता है कि यह रुमाल उचट कर पास रखी हुई दूसरी बोतल में अपने आप घुसेगा। सचमुच होता ऐसा ही है। दर्शक अचम्भा करते हैं।

होता यह है कि जादूगर के हाथ में रबड़ (साईकिल का बाल ट्यूब) बँधा होता है। उसका एक सिरा एक रुमाल के कोने में सिला होता है। इसी रुमाल को वह बोतल में ठूंसता है। पास रखी हुई दूसरी बोतल के भीतर पेंदे में एक दूसरा रुमाल रखा होता है। और उसके एक कोने में बँधा हुआ बारीक डोरा बोतल से बाहर निकला होता है।

खेल करते समय पहला हाथ जो पहली बोतल के पास ही रखा था उसे जादूगर झटका देता है। झटका लगते ही रुमाल बोतल से बाहर निकलता है और बाल ट्यूब की रबड़ द्वारा खिंच कर जादूगर की आस्तीन में घुस जाता है। ठीक इसी समय दूसरी बोतल के बाहर लटका हुआ डोरा चुपके से खींच दिया जाता है जिससे पेंदे का रुमाल बोतल के मुँह पर आ जाता है। दोनों काम एक साथ बड़ी फुर्ती से होने के कारण दर्शक यही समझते हैं कि एक बोतल का रुमाल उचट कर दूसरी में गया है।

गिलासों का खेल

एक कांच का पारदर्शी गिलास लीजिए। इसमें कोई चीज रख कर दर्शकों को दिखाइए, दर्शकों में से कुछ दूसरी चीज बतावेंगे। जैसे कुछ लोग कहेंगे कि गिलास में फूल रखे हैं तो कुछ बतावेंगे कि कोयले भरे हुए हैं।

भेद एक है कांच का एक गिलास लेकर उसकी बीच की चौड़ाई की बराबर दर्पण के दो टुकड़े कटवा कर इस प्रकार फिट कर दिये जाते हैं कि दोनों दर्पणों का मुँह दो तरफ रहे। इस गिलास को दर्शकों को दिखाया जाये तो बीच का पर्दा मालूम नहीं पड़ता। दोनों ओर दो चीजें रख दी जाती हैं। गिलास को जरा मोड़ कर एक ओर दिखाया जाये तो एक तरफ रखी हुई वस्तु ही दिखाई पड़ती है। दूसरी तरफ मोड़ कर दिखाने से दूसरी वस्तु दिखाई पड़ती है। इस गिलास में सैकड़ों किस्म की दो-दो चीजें बदल कर दिखाई जा सकती हैं और घण्टों दर्शकों का मनोरंजन किया जा सकता है।

(१९) एक कांच का छोटा-सा गिलास बिल्कुल खाली लोगों को दिखाइए। इसमें एक रुपया डाल दीजिए। अब लोगों को कहिए कि रुपया ऊपर उड़ाया जा रहा है। गिलास में से रुपया निकाल कर हाथ में छिपाइए। लोग कहेंगे कि रुपया आपने इस हाथ में छिपा लिया है। उस पर आप गिलास को हिला कर दिखाइए उसमें रुपये की आवाज होगी। फिर लोगों को उस गिलास को दिखाइए उसमें कुछ नहीं होगा। पर हिलाने से हर बार रुपया खनकने की आवाज होगी। गिलास में रुपये की आवाज होने पर दिखाई न देना दर्शकों को हैरत में डाल देगा।

भेद यह है कि छोटे गिलास के भीतरी पेंदी की बराबर एक कांच का गोल टुकड़ा बनवा कर डाले रहते हैं। इस गिलास को ऊपर से देखने में कोई चीज दिखाई नहीं पड़ती, अन्दर पेन्सिल डाल कर उलटा कर देने पर कोई चीज नीचे नहीं गिरती, इस प्रकार दर्शक उसके खाली होने का विश्वास कर लेते हैं जब इस गिलास को हिलाया जाता है तो वह कांच का गोल टुकड़ा खड़खड़ाता है और ऐसा मालूम पड़ता है मानों रुपया खड़क रहा है। इस गिलास को जरा पानी से तर कर लेते हैं जिससे गिलास उलटा करके दिखाने पर भी पेंदे में पड़ा हुआ कांच का गोल टुकड़ा उसी में चिपक रह जाता है। गिरता नहीं।

(२०) एक कांच के गिलास में काली स्याही पोत कर ले जाइए और चम्मच में निकाल-निकाल कर लोगों को दिखाइए। इसके बाद दर्शकों से कहिए कि आप लोग होशियार बैठे मुझे होली खेलनी है इस स्याही को आप लोगों के ऊपर फेंकूँगा, थोड़ी देर बाद उस गिलास को दर्शकों की ओर फेंकिए, स्याही की वजाय बढ़िया फूल गिरेंगे।

इस खेल के लिये दो कांच के गिलास तैयार किये जाते हैं। एक गिलास में काली स्याही पानी में घोल कर रखते हैं। दूसरे में मोटा काला कपड़ा लेकर गिलास के भीतर आ सकने लायक ठीक नाप का एक खोल बना लेते हैं। उस खोल को कांच में भीतर फिट करके अन्दर फूल भर देते हैं दोनों गिलासों को काले रुमाल से ढक कर मेज पर बराबर-बराबर रख देते हैं। फूल वाले गिलास का काला रुमाल एक कोने पर आलपीन या सुई-डोरे से टांका होता है।

पहली बार स्याही वाला गिलास लेकर जादूगर निकालता है और चम्मच से निकाल-निकाल कर सबको स्याही दिखा आता है। अब उसे लौट कर मेज पर रख देता है और एकाध बात इधर-उधर की कहने लगता है। इसके बाद गिलास उठाता है उठाने में यह चालाकी की जाती है कि पहले की बजाय दूसरा गिलास उठा लिया जाता है, चूँकि उसके भीतर काला कपड़ा लगा होता है। इसलिए किसी को संदेह नहीं होता कि गिलास बदल गया है। अब जादूगर रुमाल पकड़ कर गिलास के पानी को दर्शकों की ओर फेंकता है, पर स्याही के स्थान पर फूल बरसते हैं। क्योंकि उस गिलास में पहले से ही फूल रखे हुए थे।

(२१) एक कांच के गिलास में लाल रंग भर लिया जाता है और जादूगर कहता है कि पहली बार तो स्याही की जगह पर फूल बरसे थे पर अब की बार ऐसा न होगा। जिसके अच्छे कपड़े होंगे वे इस रंग से रंगे जायेंगे। यह कह कर जादूगर एक चक्कर लगाता है और देखता है कि बढ़िया कपड़े किसके हैं, उसी के ऊपर रंग उड़ेल देता है। कपड़े बिल्कुल सुर्ख हो जाते हैं। कपड़े वाला नाराज होने लगता है तब जादूगर कपड़ों पर फूँक मारता है और रंग गायब हो जाता है। कपड़े जैसे के तैसे हो जाते हैं।

यह रंग साख किस्म से तैयार किया जाता है। लिक्वर अमोनिया और फिनोल्फथलीन नामक अंग्रेजी दवाओं की थोड़ी-थोड़ी मात्रा मिला देने से पानी का रंग सुर्ख हो जाता है। थोड़ी देर में हवा लगते ही रंग उड़ जाता है। इसे बेच-बेच कर दुकानदार खूब लाभ उठाते हैं।

(२२) एक कांच के गिलास में सबके सामने सादा पानी भरिए। सब प्रकार विश्वास करा दीजिए कि इसमें कोई खास बात नहीं है। अब इस गिलास को उल्टा कर दीजिए पानी बिल्कुल न फैलेगा।

इस खेल के लिए शराब पीने की कांच की प्यालियाँ सबसे अच्छी रहती हैं। उनके तले के ठीक बराबर स्लोलाइट, गटापार्चा या अभ्रक का गोल टुकड़ा काट लिया जाता है। इस टुकड़े को पानी में डुबो कर पेंदे से लगा दिया जाता है, इससे वह ठीक तरह चिपका रहता है, गिरता नहीं। जब प्याली को उलटना होता है तब पेंदे में लगे हुए गोल टुकड़े को हथेली के सहारे से हटा कर प्याली के मुँह पर लगा देते हैं और उसे उल्टा कर देते हैं। वह टुकड़ा मुँह पर चिपक जाता है और पानी नहीं फैलता।

(२३) एक कांच के गिलास को मुँह तक लकड़ी के बुरादे से भरा हुआ दिखाइये थोड़ी देर में यह बुरादा मिठाई बन जायेगा।

इस खेल के लिये कांच के गिलास के भीतर फिट होने योग्य टीन का बिना पेंदे का गिलास जैसा ही एक खोल बनाया जाता है और उसका ऊपर का मुँह टीन से ही बन्द बनवाया जाता है। इस टीन के खोल के बाहर-बाहर सब ओर सरेस पोत कर उस पर लकड़ी का बुरादा चिपका दिया जाता है जिससे गिलास ऊपर मुँह तक भरा हुआ मालूम दे। टीन के पोले खोल के अन्दर मिठाई भर दी जाती है। इस प्रकार बने हुये गिलास को दर्शकों को दिखाया जाये तो यह समझा जाता है कि कांच के सारे गिलास में लकड़ी का बुरादा भरा हुआ है।

एक टीन या कार्ड का एक ऐसा खोल बनाया जाता है जो इस गिलास के ऊपर पूरी तरह ढक्कन की तरह आ जाये। इस ढक्कन को खाली दिखाकर उससे गिलास को ढक देते हैं। कुछ देर बाद इस ढक्कन को जरा दबा कर इस प्रकार उठाते हैं कि गिलास के भीतर लगा हुआ टीन का पोला खोल उस ढक्कन के साथ ही खिंचा चला आता है और गिलास में केवल मिठाई रह जाती है।

(२४) दो खाली गिलास मेज पर रखे जाते हैं। सिगरेट पीकर उसका धुंआ आकाश में फूँक दिया जाता है। दर्शकों से कहते हैं कि यह आकाश में उड़ता हुआ धुंआ मेरा कहना मानता है। जहाँ कहता हूँ वहाँ चला जाता है। देखिये अब इस धुँए को एक गिलास से बन्द किया जाता है। फिर एक गिलास से दूसरे में भेजा जायेगा। इस कथन को अक्षरशः चरितार्थ होते देखकर दर्शक बहुत आश्चर्य करते हैं।

रहस्य यह है कि गिलास के भीतर चारों ओर ऐसिड हाइड्रोक्लोरिक पोत दिया जाता है और गिलास ढकने की तश्तरी में लिक्वर अमोनिया फोर्ट पोत दिया जाता है। तश्तरी गिलास पर ऊपर को मुँह करके रखी रहने देते हैं। जब गिलास में धुंआ पैदा करना होता है तो तश्तरी को उलट कर गिलास पर रख देते हैं दोनों दवाओं का आमना-सामना होने पर धुँआ पैदा होने लगता है, ढक्कन रखा होने के कारण गिलास में धुंआ खूब भर जाता है। जब इस गिलास का धुँआ दूसरे गिलास में भेजना होता है तो धुँए वाले गिलास का मुँह खोल देते हैं उसका धुँआ निकल जाता है। दूसरे गिलास के ऊपर की तश्तरी उलटी करके रखते ही उसमें भी धुँआ पैदा होने लगता है, सिगरेट का, पहले गिलास का, दूसरे गिलास का, यह तीनों ही धुँए अलग-अलग हैं पर दर्शक समझते हैं कि एक ही धुँआ इधर से उधर जा रहा है।

(२५) पीतल के दो सादा गिलास लेते हैं। एक को एक हाथ में पकड़ते हैं, दूसरे को ऊपर से उस गिलास के बीच में गिराते हैं। ऊपर वाला गिलास नीचे के गिलास के पेंदे को पार करके नीचे निकल जाता है।

इस खेल में देखने वालों की दृष्टि भ्रम होता है। पीतल के छोटे ढाई इंच के गिलास बाजार में बिकते हैं वे इस खेले के लिये अधिक उपयुक्त रहते हैं। गिलास को इस प्रकार पकड़ते हैं कि मध्यम अँगुली का पोरुवा और तर्जनी के सहारे से गोलाई में आधा गिलास के किनारे से सटा रहे और आधा ऊपर रहे। जब दूसरे गिलास को ऊपर से छोड़ते हैं और जब नीचे के गिलास में ऊपर का गिलास पहुँच जाता है तो तुरन्त ही जादूगर अँगुली और अँगूठे का नीचे वाला हिस्सा ढीला करके ऊपर के गिलास का किनारा दबा देता है। फलस्वरूप नीचे वाला गिलास टपक पड़ता है और ऊपर का हाथ में रह जाता है। यह क्रिया इतनी जल्दी में होती है कि देखने वाले उसे समझ नहीं पाते। उन्हें यही लगता है कि ऊपर वाला गिलास नीचे के गिलास का पेंदा पार करके नीचे गिरता है। जल्दी-जल्दी कई बार इस खेल को दुहराने से दर्शकों को बड़ा आनन्द आता है।

बिना सामान के हो सकने वाले खेल

(२६) एक साबित केला दिखाकर लोगों से पूछा जाता है कि इसके गूदे को कितने टुकड़े में काट दिया जाय ? लोग जितने टुकड़े में काटने को कहें छिलका उतरने पर उसके उतने ही टुकड़े निकलते हैं। तरीका यह है कि जितनी जगह से जहाँ-जहाँ केले को काटना हो वहाँ सुई चुभा कर भीतर ही भीतर चारों ओर घुमा दिया जाता है। गूदा कट जाता है और केला साबित बना रहता है। सुई का छेद अपने आप बन्द हो जाता है। वह दिखाई नहीं पड़ता है।

(२७) एक पैसा या रुपया किसी से लेकर हथेली पर रखिये। आवाज देते ही वह रुपया चलना शुरू कर देगा। हथेली पर से पौंचे पर होता हुआ रुपया कोहनी तक पहुँचेगा और ऊपर कन्धे की तरफ बढ़ेगा। जादूगर तब इसे दूसरे हाथ पर ले लेता है। फिर भी वह दौड़ता रहता है। कंधे के पास पहुँचने पर उसे फिर दूसरे हाथ पर लेना पड़ता है। इसी प्रकार बार-बार हाथ बदलना पड़ता है। जब तक जादूगर चाहे तब तक रुपया दौड़ता ही रहता है। उसकी आज्ञानुसार रुपये की चाल धीमी तेज भी हो जाती है।

इस खेल के लिए काले कपड़े पहनने पड़ते हैं। कमीज या कोट के बटन वाले छेद में एक काले रंग का बहुत पतला रेशमी डोरा या मनुष्य के सिर का लम्बा बाल लेकर उसका एक छोर बांध देते हैं। दूसरे छोर में अलकतरा में राख मिलाकर उसकी छोटी गोली लगा देते हैं रुपया लेकर जब चलाने का समय आता है तो अलकतरा की गोली को हथेली पर रख कर उस पर रुपये की पीठ चिपका देते हैं। अब हाथ को आगे बढ़ाना शुरू करते हैं, रुपया जहाँ का तहाँ रहता है डोरे या बाल से खिंचा रहने के कारण वह हाथ के साथ-साथ आगे नहीं चलता। हाथ चलता है, रुपया नहीं चलता पर दर्शकों को ऐसा मालूम पड़ता है कि रुपया चल रहा है। हाथ बहुत आगे बढ़ जाने पर रुपया कुहनी तक पहुँच जाता है तब उसे दूसरे हाथ पर रख लेते हैं।

(२८) जादूगर दवा में हाथ मार कर एक रुपया मंगाता है। दूसरे हाथ में एक डिब्बा पकड़े रहता है। मँगाये हुये रुपये को डिब्बे में छोड़ता है। इसी प्रकार हवा में हाथ मार कर अनेकों रुपये मँगाता है और डिब्बे में छोड़ता जाता है। एक-दो दर्जन रुपये जमा हो जाने पर डिब्बे को पलट कर दर्शकों को दिखाता है। लोग बहुत अचंभा मानते हैं।

बांए हाथ की हथेली में बीस-पच्चीस रुपये की गड्डी दबाकर डिब्बे को इस प्रकार पकड़ते हैं कि अँगूठा जो डिब्बे में बाहर रहता है और हथेली तथा अँगुलियाँ भीतर चली जाती हैं। दांए हाथ की हथेली में एक रुपया दबा रहता है। हवा में दाहिने हाथ को झड़क कर इस प्रकार का भाव बनाते हैं मानो ऊपर आकाश में से रुपया प्राप्त किया गया हो। हथेली में छिपे हुये रुपये के डिब्बे में डालने की क्रिया प्रदर्शित करते हैं। इस समय रुपये को तो फिर हथेली में छिपा लेते हैं और झूठ-मूठ हाथ का इशारा डिब्बे की तरफ कर देते हैं। इसी समय बांए हाथ की हथेली में छिपे हुये रुपयों में से एक रुपया डिब्बे में

खिसका देते हैं। उसी समय में दाहिने हाथ द्वारा रुपये को डिब्बे में डालने का इशारा होना और उसी समय डिब्बे में रुपया गिरने की आवाज होना, यह दोनों बात एक साथ होने से दर्शकों को पूरा विश्वास हो जाता है कि दाहिने हाथ वाला रुपया ही गिरा है। जब तक बांये हाथ की हथेली में छिपे हुये रुपये एक-एक करके सब डिब्बे में गिर नहीं जाते जब तक दाहिने हाथ को हवा में मार कर, हथेली में छिपे रुपयों को दिखाकर बार-बार रुपये बनाता रहता है।

(२९) एक हाथ में उपरोक्त प्रकार से डिब्बा लेकर दूसरे हाथ से सिगरेट हवा में मँगाते हैं और डिब्बे में डालते जाते हैं। बहुत सी सिगरेटें जमा हो जाने पर दर्शकों को दिखाते हैं।

यह खेल सब प्रकार से उपरोक्त रुपये वाले खेल की तरह है पर अन्तर यह है कि उसमें हथेली में रुपया छिपाना पड़ता है इसमें सिगरेट छिपाने का स्थान दूसरा है। सितार बजाने के लिये उंगली में एक तार का छल्ला-सा पहना जाता है, इसी प्रकार का एक बहुत बारीक छल्ला बीच की उंगली के नाप का तैयार करते हैं, उस छल्ले के पिछले भाग में एक सिगरेट फँसा लेने योग्य एक खांचा बना देते हैं। छल्ले को बीच की अँगुली के ऊपर वाले पोरुवे में पहन लेते हैं और सिगरेट अँगुली के पीछे छिपी रहती है। दर्शकों को अँगुली चौड़ा कर पूरी हथेली साफ दिखा देते हैं। हवा में हाथ मार कर मुट्ठी बन्द करते हैं। अँगुली या पोरुवा मोड़ते ही सिगरेट ऊपर की ओर तन कर खड़ी हो जाती है। इसे डिब्बे में डालने का बहाना करते हैं साथ ही अँगुली खड़ी कर देते हैं जिससे वह सिगरेट पुनः अँगुली के पीछे छिप जाती है। इस प्रकार बार-बार क्रिया को बार-बार दुहरा कर बहुत-सी सिगरेटें बुलाते और डिब्बे में डालते जाते हैं। जब बांए हाथ में छिपी हुई सब सिगरेटें खत्म हो जाती है तो डिब्बा उलट कर दर्शकों के आगे उनका ढेर लगा देते हैं।

(३०) दर्जी लोग लोहे की एक टोपी-सी अँगुली में सुई दबाने के लिये पहनते हैं इस टोपी को जादूगर एक हाथ की अँगुली में पहनता है। सबको दिखाता है। इशारा करते ही वह टोपी इस हाथ की अँगुली में पहुँचती है। फिर इशारा करने पर उस हाथ में से पहले हाथ की अँगुली में आ जाती है। बार-बार परिवर्तन होता है। दर्शकों का मनोरंजन होता है।

असल में दो टोपी होती हैं। तर्जनी अँगुली खड़ी रहती है और शेष सब अँगुली मुट्ठी बांधने की शक्ल में मुँदी रहती है जादूगर जब एक हाथ से दूसरे हाथ में टोपी भेजने का इशारा करता है तो तर्जनी को मोड़ कर अन्य अँगुलियाँ तथा अँगूठे की मोड़ के बीच में उस लोहे की टोपी को उतार देता है। दूसरे हाथ में उसी जगह दूसरी टोपी छिपी होती है उसे दूसरे हाथ की तर्जनी में पहन लेता है। इस प्रकार वास्तव में एक अँगुली की टोपी को जादूगर उतारता और दूसरे को पहनता रहता है। पर मालूम ऐसा पड़ता है मानो एक ही टोपी इस हाथ से उस हाथ में आती जाती है।

(३१) एक बेंत लेकर जादूगर उसके दोनों सिरे किसी आदमी के दोनों हाथों पकड़वाता है और बीच में रुमाल डाल देता है। अब एक अँगूठी लेकर जादूगर उसे बेंत पर फेंकने जैसी ऐक्टिंग करता है दोनों सिरे पकड़े रहने पर भी अँगूठी बेंत के बीच में पहुँचती है और रुमाल हटाते ही बीच में पिरोई हुई दिखती है।

जादूगर बेंत के सिरे को किसी के हाथ में पकड़वाते समय पहले ही उसमें अपनी अँगूठी पिरो लेता है। पहले तो उसे अपने हाथ के नीचे छिपाये रहता है। पीछे उसे रुमाल लपेट कर ढक देता है। रुमाल हटाते ही वह अँगूठी दीखने लगती है।

छुरी के खेल

(३२) एक छुरी लेकर दर्शकों को दिखाइए, थोड़ी देर उसे हवा में घुमाने पर उसकी नोंक पर सुन्दर फूल आकर गड़ जायेगा।

यह छुरी अंग्रेजी उस्तरे की तरह पोली होती है। नीचे का भाग धार वाला होता है पर ऊपर वाला भाग पोला होता है। उस पोले भाग की जड़ से लेकर नोंक तक साईकिल के बालट्यूब की रबड़ डाल देते हैं। नोंक के पास एक फूल इस रबड़ से बांध दिया जाता है।

खेल दिखाते समय उस फूल को खींच कर पीछे ले जाते हैं। रबड़ तन कर बढ़ जाती है और फूल पीछे खिंच जाता है। फूल को जादूगर मुट्ठी में दबा लेता है। इस प्रकार वह दीखता नहीं। पर जब हवा में छुरी फिराते हैं तो मुट्ठी में लगे हुए फूल को ढीला कर देते हैं। रबड़ सकुड़ जाती है और फूल छुरी की नोंक पर जा पहुँचता है।

(३३) एक चाकू लेकर किसी मनुष्य के पेट पर रखते हैं और जोर से दबा देते हैं। चाकू पेट में घुस जाता है और खून निकलने लगता है पर जब चाकू को पेट में से बाहर निकालते हैं तो कहीं भी घाव का निशान नहीं पड़ता। इस चाकू घुसेड़ने और निकालने में किसी को जरा भी कष्ट नहीं होता।

इस खेल के लिए जो चाकू बनाया जाता है वह मुड़कर बन्द नहीं होता वरन् खुला ही रहता है और उसकी नोंक सपाट होती है। इसकी बेंटी पोली होती है और भीतर स्प्रिंग लगे होते हैं जिनके दवाब के कारण चाकू का फल यथावत खड़ा रहता है। पर जब उसे पेट पर रख कर दबाते हैं तो चाकू का फल स्प्रिंगों को दबाता हुआ बेंटी में भीतर घुसने लगता है। फल का बेंटी में धँसना दर्शकों को ऐसा मालूम होता है, मानो इतना भाग पेट में घुस गया हो। बेंटी के भीतर लाल रंग में डुबाकर स्पंज रख दी जाती है जो स्प्रिंगों का दवाब पाकर निचुड़ पड़ती है यही रंग खून जैसा दिखाई पड़ता है। चाकू को पेट पर से हटाते ही स्प्रिंगों के दबाब से फल बाहर निकल आता है। चूँकि चाकू पेट में घुसा ही न था इसलिए घाव होने या कष्ट होने का कोई कारण ही नहीं होता।

(३४) नाक, गरदन, हाथ या किसी अन्य अंग से एक छुरी या तलवार मारी जाती है, तलवार का बीच का हिस्सा उस अंग में काफी गहरा घुस जाता है। इस प्रकार घुसी हुई तलवार को यों ही अधर लटकती छोड़ देते हैं। बिना किसी लाग लपेट

के इस प्रकार स्पष्ट रूप से शरीर में घुसी देखकर दर्शक बहुत आश्चर्य करते हैं।

इस खेल के लिए खाँचेदार छुरी या तलवार बनाई जाती है जिसे अंग को कटा हुआ दिखाना है उसके ठीक नाप का एक खाँचा छुरी के बीच के भाग में धार की ओर कर दिया जाता है। इस खाँचे को उस अंग में फिट कर देते हैं। बिना कमानी के चश्मे जिस प्रकार नाक में फिट हो जाते हैं और नीचे नहीं गिरते उसी प्रकार यह छुरी भी उस अंग के साथ सट कर अटक जाती है और गिरती नहीं।

(३५) एक चाकू लेकर उससे नींबू काटते हैं। नीबू में रस की बजाय खून निकलता है। चाकू को कटहल के दूध में तर करके सुखा लेते हैं। कटहल के दूध और नीबू की खटाई का सम्मिश्रण होने पर रस का रंग लाल हो जाता है। लोग उसे खून समझते हैं।

सामान के सहारे होने वाले खेल

(३६) रुई ओटने की दो बेलन वाली चर्खी के समान एक लकड़ी की चर्खी लेकर उसमें एक तरफ से सादा कागज लगाते हैं दूसरी ओर से असली नोट छपा हुआ तैयार होकर निकलता है। कई सादे कागज लगाकर कई नोट तैयार करके दिखाये जा सकते हैं।

इस चर्खी के दोनों बेलनों के बीच एक लम्बी कपड़े की पट्टी का एक सिरा एक चर्खी के बेलन में बारीक चोबों के सहारे जड़ दिया जाता है और दूसरा सिरा दूसरे बेलन में जड़ा होता है। पट्टी बेलनों से लपेटी रहती है। इस लपेट के पर्तों में पहले से ही नोट लपेट दिये जाते हैं एक तरफ से जब सादे कागज लगाये जाते हैं तो वे पट्टी के पर्तों में भीतर चलते जाते हैं। दूसरी ओर से वे नोट बाहर निकलने लगते हैं जो पहले से ही पर्तों के अन्दर भरे हुए थे। दर्शक समझते हैं कि चर्खी जादू की बनी है, जो तुरन्त ही कागज को नोट बना देती हैं। इस खेल के लिए नये नोट लिए जाते हैं।

(३७) एक आर-पार छेद का एक लकड़ी का गोला लेकर उसमें डोरी पिरो दी जाती है। डोरी का एक सिरा जमीन की ओर, दूसरा आसमान की ओर करके दोनों हाथों से पकड़ लेते हैं। जादूगर जब आज्ञा देता है तब गोला चलता है जब रुकने को कहता है तो रुक जाता है। तेज और धीमी चाल भी वह गोला जादूगर के कहने पर चलता है।

यह गोला विशेष रीति से बनाया जाता है। लकड़ी का एक सादा गोला बनवा कर उसे बीच में से चीरते हैं और भीतर की लकड़ी खोद-खोद कर उसे पोला कर लेते हैं। इसके आधे भाग में एक चोबा लगा देते हैं। डोरी आर-पार डालने के लिए जहाँ छेद रखा गया है वहीं से एक डोरी निकाल कर उसे चोबे के नीचे डाली जाती है और दूसरी ओर के छेद में होकर उसे निकाल देते हैं। अब उस गोले के दोनों भाग सरेस में चिपका दिये जाते हैं और ऊपर रंग कर दिया जाता है जिससे कि उसका चिपका हुआ होना मालूम न पड़े।

डोरी छेद में सीधी आर-पार गई हुई दिखाई पड़ती है पर वास्तव में वह चोबे की बगल में होकर तिरछी आती है। इसीलिए जब डोरी को जरा-सा कड़ा कर दिया जाये तो गोला रुक जाता है। जब थोड़ी-सी ढील दी जाये तो नीचे चलने लगता है। जब अधिक ढील दी जाती है तो अधिक तेजी से चलता है और जब थोड़ी ढील रहती है तो धीरे-धीरे नीचे उतरता है।

(३८) एक दियासलाई का बक्स खोलकर जादूगर सबको दिखाता है, यह बिल्कुल खाली होता है, पर जहाँ फूँक मार कर दुबारा दिखाता है तो बक्स दियासलाइयों से भरा होता है। इसे कितनी ही बार खाली और भरा दिखाया जाता है।

दियासलाई की डिब्बी के ऊपर जो तस्वीर हो, उसी प्रकार की एक और डिब्बी लेकर उसकी तस्वीर पानी में भिगोकर उतार लेते हैं और उसे पहली डिब्बी की पीठ पर चिपका देते हैं। दोनों ओर से वह तस्वीरदार बन जाती है। अब भीतर की दो दराज निकालकर उसकी पीठ पर सरेस के सहारे बराबर-बराबर एक लाइन में दियासलाइयाँ चिपका देते हैं।

खेल दिखाते समय पहले खाली दराज दिखाते हैं। फिर फूँक मारने के बहाने उसे उलट देते हैं। दूसरी ओर दराज की पीठ पर चिपकी हुई दियासलाइयां दिखाई जाती हैं। इधर से डिब्बी भरी हुई मालूम होती है। दोनों तस्वीरें चिपकी रहने के कारण उलटने का भेद प्रकट नहीं हो पाता।

(३९) एक पोली नली में चौड़ाई की ओर आर-पार छेद करके एक लम्बा डोरा डाल देते हैं। डोरे को एक ओर खींचने पर वह लाल रंग का होता है, दूसरी ओर खींचने पर वह हरा हो जाता है।

पोली लकड़ी के एक सिरे पर ठीक सीध में दो छेद किये जाते हैं, दूसरे सिरे में एक पतली लोहे की पिन या चोबा ठोंक देते हैं। एक सिरे के छेद से पिन तक जितनी लम्बाई है उसमें दूना डोरा लिया जा सकता है, इसे आधा एक रंग का और आधा दूसरे रंग का रंग देते हैं। अब डोरे को एक ओर के छेद में पिरो कर नीचे पिन की तरफ ले जाते हैं और फिर पिन की दूसरी ओर से मोड़ कर वापस लाते हैं और दूसरी तरफ के छेद में होकर पार निकाल देते हैं। देखने वाले समझते हैं कि डोरे को एक अँगुली की नली ही पार करनी पड़ रही है पर वास्तव में वह नली की लम्बाई का दूना चक्कर पार करके तब दूसरे छेद में पहुँचता है। इस लम्बे फासले में ही डोरे का एक रंग ढक जाता है और पहले से ढका हुआ दूसरा रंग निकल आता है।

(४०) एक कांच की बोतल के पेंदे में छेद करके उसमें पानी भर कर कार्क बन्द कर दीजिए, पानी कहीं एक बूँद भी न फैलेगा। आज्ञा देते ही पेंदे के छेद में से पानी की धार निकलने लगेगी, फिर आज्ञा देने पर धार बन्द हो जायेगी। आज्ञानुसार बार-बार पानी चलता और बन्द हो जाता है।

उस बोतल में दो छेद कराये जाते हैं, एक पेंदे में दूसरा गरदन पर। बोतल में पानी भर देने के बाद कार्क बन्द कर दिया जाता है। हाथ में बोतल को पकड़ कर गरदन वाले छेद को जब तक अँगुली से बन्द किये रहते हैं तब तक पेंदे के छेद में पानी नहीं निकलता। अँगुली हटाते ही धार गिरने लगती हैं।

(४१) एक कापी के पन्ने खरखराते हुए लोगों को दिखाने पर वे बतलाते हैं कि कापी के सब पन्ने लिखे हुए हैं। फूंक मार कर दुबारा दिखाते हैं तो कापी के सब पन्ने कोरे बिना लिखे दिखाई देते हैं।

यह कापी मोटे कागजों की बनाई जाती है और इसके विषय (१–३–५–७) क्रम के सब पन्ने एक-एक सूत काट कर छोटे कर दिये जाते हैं। अब इसके दाहिने हाथ की ओर से २–३ कोरे ४–५ लिखे ६–७ कोरे ८–९ लिखे इस क्रम से पृष्ठ तैयार करते हैं। कापी तैयार हो जाने पर उसे बाई ओर से खरखराते हुए दिखाया जायेगा तो सारी कापी कोरी दिखाई पड़ेगी, दाई ओर से दिखाया जायेगा सब पन्ने लिखे हुए नजर आवेंगे।

(४२) दो स्लेटें लेकर दोनों ओर खाली दिखा दी जाती हैं। उन्हें पानी से भीगे हुये कपड़े से पोंछ भी देते हैं। जिससे उन पर कुछ लिखे होने का किसी को सन्देह न हो। इन स्लेटों को दूर एक दूसरे के ऊपर रख दिया जाता है। खड़िया मिट्टी हाथ में लेकर जादूगर हवा में कुछ लिखता है। अब स्लेट को उठाने पर खड़िया से कुछ शब्द लिखे हुये मिलते हैं। कभी-कभी कोई दर्शक कुछ शब्द बोलते हैं वह शब्द भी स्लेट पर लिखे हुये निकलते हैं।

यह दोनों एक से साइज की स्लेटें टीन की बनी हुई ली जाती हैं। एक और तीसरी स्लेट उसी तरह की लेकर उसका चौखटा निकाल कर फेंक देते हैं और बीच की टीन को इस प्रकार काट छांट कर ठीक कर लेते हैं कि उन दोनों स्लेटों के चौखटे को छोड़ कर बीच के भाग में दिखाई देने वाली टीन के ठीक बराबर हो।

एक स्लेट के ऊपर खेल दिखाने से पूर्व ही खड़िया से कुछ लिख लेते हैं और उसके ऊपर उस तीसरी स्लेट को काट-छांट कर ठीक की हुई टीन को रख देते हैं। स्लेट को खाली दिखाते समय अंगुली के सहारे उस पर्त को पकड़े रहते हैं, जिससे पानी गिरने न पावे। फिर दूर रखते समय दूसरी स्लेट को नीचे तथा लिखी हुई को ऊपर कर देते हैं, जिससे वह ढक्कन नीचे वाली स्लेट के बीच में चला जाता है और पहले लिखे हुये अक्षर दर्शकों को दिखा दिये जाते हैं। यदि दर्शक के बोले हुये शब्द लिखने हों तो एक दर्शक पहले से ही अपना सिखाया हुआ बिठाया जाता है वही पहले उठ खड़ा होता है और वही शब्द लिखने को कहता है, जो स्लेट पर पहले से ही लिखा हुआ तैयार होता है।

यदि यह खेल मेज पर दिखाया जाये तो दूसरी स्लेट की जरूरत नहीं पड़ती। स्लेट को खाली दिखा उसे ओंधी करके मेज पर रख देते हैं, जिससे आते समय वह टीन का टुकड़ा मेज पर पड़ा रह जाता है और स्लेट पर अक्षर दीखने लगते हैं।

(४३) एक छोटी लकड़ी का रौल (जादू का डंडा) लेकर जादूगर उसे मेज पर ठोक पीट कर उसके ठीक एवं असली होने का विश्वास दिलाता है। इस डंडे को एक कागज के लिफाफे में सबके सामने रखता है और लिफाफे का मुँह बन्द करके किसी आदमी के एक हाथ पर उसे रखता और दूसरे हाथ पर उतना ही बड़ा दूसरा कागज खाली लिफाफा रखता है और कहता है कि मंत्र के बल से इस लिफाफे में रखे हुये डंडे को उस लिफाफे में भेज दूँगा। कुछ देर जंत्र-मंत्र की मुद्रा बनाता है, बार-बार टटोल कर देखता है पर जब डंडा दूसरे लिफाफे में नहीं जाता तो नाराज होकर दोनों लिफाफों को फाड़कर फेंक देता है। दोनों में से किसी में भी डंडा नहीं निकलता तो दर्शक समझते हैं कि जादू का डंडा कहीं उड़ गया।

इस खेल में डंडे के ऊपर काले कागज का एक खोल बना कर चढ़ा दिया जाता है। लिफाफे में बन्द करते समय डंडे को तो खींच लेते हैं और उस पर चढ़े खोल को लिफाफे में रख दिया जाता है। उस खोल को ही दर्शक डंडा समझ लेते हैं। लिफाफा फाड़ते समय अन्त में वह लिफाफा भी फाड़ फेंका जाता है।

(४४) दर्शकों की घड़ी मांग कर जादूगर एक खरल में रखता है और उसे कूट डालता है। इसके चूर-चूर किये हुये पुर्जे सबको दिखाने के बाद उस खराल को ढक कर रख देता है। फूँक मारने के बाद ढक्कन को उठाता है तो वह घड़ी ज्यों की त्यों साबित निकलती है। जिसकी घड़ी थी वह सब प्रकार अपनी घड़ी की परीक्षा कर लेता है तब उसकी घड़ी टूटने की नाराजगी शान्त होती है।

घड़ी कूटने का खरल दो पर्त का बनाया जाता है। इस खरल के ऊपर ढकने का एक चकड़े का ढक्कन इतना बड़ा होता है कि सारे खरल को भली भांति ढक लेता है। इस ढक्कन में एक खांचा ऐसा लगा होता है जिसमें उलझ कर खरल का एक पर्त ऊपर उठा चला आता है। दुबारा ढक कर उस पर्त को फिर उस खरल में छोड़ा जा सकता है।

दर्शक की घड़ी लेकर खरल में रखते हैं और उसे ढक्कन से ढक देते हैं। थोड़ी देर में ढक्कन उठाकर अलग रख देते हैं उसके साथ खरल का वह पर्त उठा चला आता है जिसमें दर्शक की असली घड़ी रखी होती है। नीचे के पर्त में एक टूटी हुई घड़ी के पुर्जे पहले से ही डाल रखे जाते हैं उनमें हल्की-सी चोटें लगा कर घड़ी का चूरा दिखा दिया जाता है। इसे फिर ढक देते हैं। अब ढक्कन उठाते समय खरल का ऊपर वाला पर्त फिर उसी में वापस छोड़ देते हैं। घड़ी ज्यों की त्यों आ जाती है, वह जिसकी थी उसको वापस दे दी जाती है।

(४५) एक डिब्बा लेकर उसको दर्शकों को दिखता है। कोई दर्शक उसमें फूल भरे बताता है किसी को बताशे भरे दिखाई देते हैं।

इस डिब्बे के दोनों ओर मुँह होते हैं, दोनों ओर ढक्कन लगे रहते हैं। पेंदा आधी गहराई में बीचों-बीच होता है। एक ओर फूल भर दिये जाते हैं, दूसरी ओर बताशे। डिब्बे को आड़ा पकड़ कर दिखाने ले जाते हैं। किसी दर्शक को इधर को मुँह ऊपर करके दिखा देते हैं किसी को उधर का। फलस्वरूप दो तरह की चीजें दिखाई पड़ती हैं। उस डिब्बे में कोई भी दो प्रकार की चीजें दिखाई जा सकती हैं।

(४६) कई बार जादूगर लोग मुँह में से गोली, गोले, कागज की लम्बी-लम्बी घज्जियाँ तथा अन्य प्रकार चीजें ढेरों निकाल कर दर्शकों को आश्चर्य चकित कर देते हैं।

इस प्रकार के खेलों में यह होता है कि जो चीज मुँह में से निकालनी होती है उसे थोड़ी तादाद में पहले से ही मुँह में छिपाये रहते हैं। उस वस्तु को मुँह में से निकालने के बहाने हाथ में ले जाते हैं और हथेली में उस वस्तु को छिपाये ले जाते हैं। मुँह में दिखाई देने वाली वस्तु को निकालते समय हाथ में दबी हुई चीज को मुँह में रख देते हैं। एक चीज मुँह में से निकाल कर दर्शकों को दिखाते हुये मेज पर हाथ रखने और फिर मुँह में से चीज निकालने के लिये ऊपर हाथ रखते समय मेज पर से उस चीज को फिर ले जाते हैं और मुँह में रख देते हैं इसी प्रकार बराबर वह क्रम चलता रहता है और ढेरों की ढेरों चीज निकाल कर जमा कर दी जाती हैं कागज की धज्जियाँ निकालने के लिये पहले से ही उन्हें लपेट-लपेट कर रीलें-सी बना लेते हैं। एक रील को मुँह में रख कर उसे खींचते जाते हैं और ढेर लगाते हैं जब वह खत्म हो जाती है तो दूसरी रील फिर वहाँ पहुँचा कर खेल दिखाते रहते हैं।

(४७) किसी चीज को गुम कर देने के बाद अक्सर जादूगर लोग उसे किसी की जेब में से निकालते हैं। इसका भेद यह है कि जादूगर उस चीज को अपने हाथ में छिपा ले जाता है और जेब में हाथ डालकर जब वापस निकालता है तो उस चीज को जो हाथ में छिपी थी सबके सामने प्रकट कर देता है।

कुछ बड़े खेल

मेले तमाशों में टिकट लगा कर कुछ खेल ऐस दिखाये जाते हैं। जिन में से एक-दो देखने से ही दर्शकों का काफी मनोरंजन हो जाता है और वे भारी संख्या में उसे देखने पहुँचते हैं। इन खेलों को दिखाने वाले काफी पैसा कमा ले जाते हैं। नीचे ऐसे ही कुछ खेलों का वर्णन किया जा रहा है।

बंद लिफाफे की बात बताना

(४८) दर्शकों को बहुत से कागज दे देते हैं। जिस पर वे अपनी इच्छानुसार थोड़ा-थोड़ा लिखें और एक छोटे लिफाफे में बन्द कर दें। इन सब लिफाफों को इकट्ठा कर लेना चाहिये। इस खेल में खास बात यह है कि एक आदमी जनता में अपना होना चाहिये जो अपनी लिखी हुई बात को पहले से ही बता दे। उसके लिफाफे पर कुछ खास निशान लगा हुआ हो जिससे वह पहचाना जा सके। अब खेल शुरू करना चाहिये। पहले कोई एक लिफाफा उठावें, उसे कान के पास ले जावें और पहले बताये हुये आदमी की बात बता दें और लोगों से कहें अब मैं दिखाता हूँ कि यह बात लिखी है या नहीं और उसे खोल लो देखने वाले समझेंगे कि यह वही लिफाफा है जिसकी बात अभी बताई है। परन्तु वास्तव में यह वह लिफाफा है जिसे जादूगर आगे बताने को हैं। इस लिफाफे को ध्यानपूर्वक पढ़ लेना चाहिए और लोगों से उस आदमी द्वारा कहलवा देना चाहिए कि "हाँ ठीक वही खत है जो अभी इसने बताया।" और इस लिफाफे को दूसरी तरफ डाल दें। अब दूसरा लिफाफा उठावें और कान के पास ले जाकर पहले पढ़े हुए लिफाफे का मजमून सुना दें और लोगों से पूछ कर जांच के लिए फिर इसे पढ़वाने के बहाने खुद पढ़ लें इसी प्रकार पहले पढ़ हुए लिफाफे को आगे वाले के साथ बता दें। दर्शक लोग यही समझते रहेंगे कि पहले यह बता देता है, तब यह खोलता है। उन्हें यह नहीं मालूम हो पाता कि जादूगर के हाथ में तो दूसरा लिफाफा है जिसके बारे में यह बतला रहा है, उसे तो वह पढ़ कर दूसरी तरफ डाल चुका है अगर अपने आदमी की जो पब्लिक में मिला हुआ है किसी बाहर के आदमी को स्टेज पर खड़ा कर लो और उसका झूठ-मूठ विश्वास दिखाने के बहाने लिफाफा खोलने का कार्य कराओ तो खेल में सोने की सुगंध का मजा आता है लोग दांतों तले अँगुली दबाते हैं।

प्याले में दो आदमियों के सिर

(४९) एक ऐसी सादा मेज लेना चाहिए जिसके पायों की ओर लकड़ी की पट्टी हो। इस पट्टी से ऊपर के तख्ते तक की ऊँचाई के नाप का दर्पण मेज के ठीक आधे हिस्से में फिर कर देना चाहिए। खेल दिखाने के स्टेज पर जिस रंग का फर्श हो ठीक उसी रंग का कपड़ा मेज से कुछ आगे इस प्रकार तानना चाहिए जिससे वह स्टेज की बाउन्ड्री ही मालूम पड़े। अब आप समझ गये होंगे कि ऐसा करने से क्या लाभ होगा। इससे दर्पण के ऊपर मेज के आगे वाले दो पाये और सामने वाले कपड़े की ही छाया पड़ सकती है देखने वालों की छाया कपड़े की वजह से न पड़ेगी। अब आप देखेंगे तो शीशे का पता भी न चलेगा, क्योंकि आगे वाले मेज के दो पायों की छाया से पीछे वाले पायों का भ्रम होता है और आगे वाले कपड़ों से फर्श का ज्ञान होता है बिना अधिक खोज-बीन किये यह मालूम होता है कि मेज पूरे फर्श के ऊपर चारों पायों समेत खुली जगह में खड़ी है। इस मेज का ऊपर वाला तख्ता कटा हुआ होना चाहिए जिससे शीशे के पीछे बैठे हुए आदमी की गरदन उसमें होकर ऊपर आ सके। एक स्त्री और दूसरा पुरुष की शक्ल के लड़के, शीशे के पीछे बिठाये जायें और कटे स्थान के चारों ओर एक बिना पर्दे का चौड़ा प्याला रख दिया जाये। अब हुक्म कीजिए कि इस प्याले में एक आदमी का कटा सिर आवे। लड़का तुरन्त ही अपना सिर नीचे से निकाल देगा। इसी प्रकार स्त्री का सिर आयेगा। लोगों के प्रश्नों के उत्तर देगा और आज्ञा पाते ही गायब हो जावेगा। यह खेल भी बड़े मजे का है।

अधर उठना

(५०) इसके कई तरीके हैं। एक तो सिंगदार तैयार किये हुए डंडे आते हैं, जिन पर जिस्म कसा हुआ फुर्तीला आदमी टंगा रह सकता है। दूसरे पर्दे के पीछे गर्रियां लगा कर उसमें रस्से डालते हैं और उस आदमी को उठाने वाला आदमी अपनी ताकत से छाती तक उठा कर उसकी पीठ में लगे हुए कुन्दे से रस्से के सिरों में लटकने वाले आंकड़े फँसा देता है और इस क्रिया पर कपड़े का पर्दा डाल देते हैं। तीसरा तरीका यह है कि जादूगर अपने शरीर में फँसा कर हाथ अलग कर लेता है और छाती के बराबर झूलता दिखाई देता है। चौथी तरकीब यह है कि झूलने वाले आदमी के पैरों में लकड़ी के बने हुए पैरों को पकड़ लेते हैं। जादूगर इस आदमी के ऊपर कपड़ा डाल देता है और सिर तथा लकड़ी के पैरों को तो छोड़ देता है और सिर की सीध को ठीक रखकर धीरे-धीरे ऊपर उठता है। इधर जादूगर उन लकड़ी के पैरों पर एक हाथ और दूसरा सिर पर रख कर ऊपर उठाता है यहाँ तक कि आदमी खड़ा हो जाता है

और उसी सीध में उसके पैर रहते हैं। स्मरण रहे कि उठाने वाले का मुँह सामने करने पर भेद खुल जाता है। कपड़े से ढँका होने के कारण लोग रहस्य नहीं समझ पाते हैं और अचम्भा करते हैं।

सादे कागज पर प्रश्नों का उत्तर आना

(५१) जब कोई आदमी प्रश्न करे तब अपने एक चतुर साथी को पीछे छिपा कर बिठा देना चाहिए वह आदमी उस प्रश्न को सुन ले और उसका गोल शब्दों में उत्तर सोच ले जो ऐसे शब्दों में हो कि पीछे गलत निकले तो झूठा न बनना पड़े ऐसे उत्तर को एक तोले पानी में बीस बूँद तेजाब मिल कर बनाये हुए अर्क से लिख दें और छाया में सुखा लें। यह कागज बिल्कुल सादा रहेगा और इस पर कुछ भी लिखा हुआ न मालूम पड़ेगा। इस सादा कागज को प्रश्नकर्त्ता को दे दीजिए और कहिए कि इस कागज को धूप-दीप दिखाना उत्तर आ जावेगा। जैसे ही इस कागज को गरम किया जायेगा काले-काले अक्षर निकलने लगेंगे। प्रश्नकर्त्ता सच्चा जादू समझेगा।

नहाने के साबुन की पेन्सिल-सी बना कर उससे सादे कागज पर कुछ लिखिये। कुछ भी दिखाई न पड़ेगा पर अगर उस कागज को पानी से डुबाया जाये तो सारे अक्षर दीखने लगेंगे।

काला जादू

(५२) एक काले कपड़े की कोठरी बनाई जाती है, जिसमें नीचे-ऊपर-पीछे तथा दोनों बाजुओं पर काले कपड़े की दीवारें बनी होती हैं। सामने का हिस्सा खुला रहता है। जादूगर इस कोठरी में खेल करता है। वह मनोरंजक बातें करता जाता है और अपनी जरूरत के लिये अनेक प्रकार की चीजें मंगाता है। जैसे कुर्सी, गरम चाय से भरा हुआ प्याला, छड़ी, पुस्तक, बाजा, दियासलाई आदि इस तरह की सैकड़ों चीजें वह मँगाता है। उसकी माँगी हुई चीजें बीच ही बीच पोले आकाश में अचानक प्रकट होती हैं और जब तक चाहता है हवा में झूलती हैं। उन चीजों से प्रयोजन पूरा करने के बाद उन्हें फिर फेंक देता है वे हवा में झूलती हैं और जब आज्ञा देता है गायब हो जाती हैं।

चूँकि यह चीजें ऊपर-नीचे नहीं आती-जाती, बीच ही बीच प्रकट और गायब हो जाती हैं, इससे यह शुबा नहीं होता कि कठपुतली की तरह कोई तार लगाकर वस्तुएँ ऊपर से नीचे लाई, ले जायी जाती हैं, दूसरे जादूगर खुद भी हवा में अधर लटक जाता है और कभी बीचों-बीच स्टेज पर बिना किसी आड़ के सबके सामने गायब हो जाता है। देखने वालों को उस समय जादूगर बिल्कुल एक प्रकार का अलौकिक भूत-प्रेत जैसा करतब दिखाई पड़ता है दर्शक आश्चर्य में दंग रह जाते हैं।

इस खेल में देखने वालों की आँखों को धोखा दिया जाता है। स्टेज काली मखमल का बनाया जाता है खेल रात में दिखाते हैं। दोनों ओर गैस की रोशनी लगा देते हैं। एक लड़का काली मखमल का खोल सिर से पैर तक ओढ़ कर स्टेज में फिरता रहता है काली मखमल की तेज कालिमा इतनी गहरी होती है कि काले खोल से ढका हुआ लड़का उसमें चलता फिरता नजर नहीं आता। वह लड़का पर्दे के पीछे रखी हुई चीजों को लाकर देता रहता है, अधर पकड़े रहता है और वस्तुओं को अपनी बगल में छिपा ले जाता है। इस प्रकार यह खेल बड़ा ही अद्‌भुत दृष्टिगोचर होता है।

बक्सों के खेल

(५३) बक्सों की सहायता से बड़े खेल किये जाते हैं। एक बक्स खाली दिखाकर उसमें कोई बहुत बड़ी चीज निकालते तथा उस वक्त में बहुत बड़ी इतनी बड़ी जिससे बक्स करीब-करीब भर-सा जाता है, ढक्कन लगाकर रख देते हैं और फिर जब उसे खोलते हैं तो वह रखी हुई चीज गायब हो जाती है। दर्शकों को इसमें विशेष रूप से आश्चर्य इसलिए होता है कि उसमें संदेह करने की गुंजाइश बहुत ही कम होती है।

बक्स बीच स्टेज पर रखा होता है जिससे यह आशंका नहीं होती कि पीछे पर्दे की आड़ में बक्स की वस्तु किसी प्रकार छिपाई गई होगी। बक्स जिस जगह रखा होता है उसके नीचे कोई तहखाना या पोल तो नहीं है जिसमें चीज छिपाई जाती हो। इसका भी खूब ठोक-पीट कर विश्वास करा दिया जाता है। अक्सर उस बक्स को किसी बड़ी मेज पर भी रख देते हैं जिससे बक्स की वस्तु के छिपाये जाने का संदेह दर्शकों के मन में उत्पन्न न होने पावे।

इस प्रकार रख कर उस लकड़ी के बक्स को सब ओर से ठोक बजाकर दिखाते हैं कि कहीं से टूटा-फूटा तो नहीं है। साथ ही उसके भीतर की गहराई और बाहर की ऊँचाई नाप कर दिखाते हैं कि जिससे यह आशंका न रहे कि इसमें भीतर कोई पर्त होगी, जिससे चीज छिप जाती होगी। साधारणतः सब परीक्षाओं के बाद यह सिद्ध हो जाता है कि यह सीधा-साधा लकड़ी का बक्स मात्र है और उसके आगे-पीछे कोई लाग-लपेट नहीं है। यह सब होते हुये भी इस बक्स में से बहुत बड़ी आकार की वस्तुयें गायब होना और उनका तथा उनके स्थान पर दूसरी चीजों का आ जाना एक आश्चर्य का विषय है।

इस बक्स को खाली दिखाया जाता है फिर उसमें एक मनुष्य प्रकट होता है। इसके बाद वह आदमी उसी बक्स में गायब हो जाता है फूल, मेवा, मिठाई, रुमाल, कबूतर, खरगोश जैसी अनेकों चीजें निकलती और गायब होती हैं। जादूगर अपने मनोरंजन और मधुर वार्तालाप द्वारा खेल को और भी आकर्षक बना देता है सब दर्शकों का मन मोह लेता है। इस एक ही बक्स के सहारे सैकड़ों किस्म के खेल दिखाये जा सकते हैं। अलादीन का चिराग की तरह यह जादू का बक्स मनमानी चीजें प्रकट और गायब करता है देखने वालों का बड़ा मनोरंजन होता है।

इस बक्स के बनाने में एक रहस्य होता है। जिस तरफ सांकल कुंदा होता है उस तरफ की दीवार के सहारे भीतर की ओर एक टीन की दीवार लगाई जाती है। इसे उसी रंग से रंग देते हैं जिस रंग से बक्स रंगा होता है। यह टीन की दीवार नीचे के पर्दे के साथ जुड़ी होती है नीचे का पेंदा खुलने और बन्द होने वाला होता है। उसमें एक छोटी कील इस तरह

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

लगाई जाती है जिसके जरा हटाने से पेंदा खुलता और बन्द होता है। बक्स चौकोर होता है। उसे जब दर्शकों को दिखाना होता है तो ऊपर वाला ढक्कन जिधर होता है उसे दर्शकों की तरफ लौटा देते हैं। साथ ही पेंदे की चटखनी वाली कील हटाकर पेंदे को पीछे पलट देते हैं। पेंदे के साथ-साथ वह वस्तु जो बक्से में रखी हुई थी बक्स की आड़ में पीछे की ओर चली जाती है। फलस्वरूप दर्शकों को दिखाई नहीं पड़ती। लकड़ी का असली पेंदा पीछे चला जाता है पर उसके स्थान पर नकली टीन का पेंदा आ जाता है। रंग उसका भी लकड़ी जैसा ही होता है इसलिये किसी को यह मालूम नहीं हो पाता कि बक्स में कुछ हेर-फेर हो गया है। जब इस बक्स को फिर सीधा करते हैं तो असली पेंदा अपनी जगह पर और नकली अपनी जगह पर आ जाता है, जिससे जो वस्तु गायब हुई थी फिर सरक कर आ जाती है।

जादूगर बक्स के पीछे रहता है। वह उसे ढकने के बहाने या वैसे ही उस पर हाथ फिराने के बहाने पेंदा हटने के कारण पीछे गई हुई चीज को हटा कर उसके स्थान पर दूसरी चीज रख देता है, जिससे वस्तु गायब होकर दूसरी प्रकट होने का खेल होता है। इस तमाशे में दर्शकों को सामने बिठाया जाता है। पीछे क्या हो रहा है इसे लोग देखने न पावें, इसकी खास व्यवस्था रखी जाती है।

बोतल में सिगरेट नचाना

(५४) कांच की सफेद बोतल के नीचे के हिस्से को एक इंच तक किसी रंग से रंगवा लीजिए जिससे उसके पेंदे में पड़ी हुई चीज दिखाई न दे। एक सिगरेट के बीच में आलपिन लगाकर उसमें एक रेशमी डोरा या बाल बाँधकर बोतल से बाहर रखिये और सिगरेट को बोतल में डालिए अब एक सिगरेट जला दीजिये और कहिये कि इस जली सिगरेट को आपके सामने नाचती-कूदती पेश करता हूँ। यह कहकर बोतल से बाहर पड़े हुये रेशमी डोरे को अपनी अँगुली में सफाई से उलझा दीजिये। अब जैसे-जैसे आपका हाथ चलेगा वैसे ही वह सिगरेट नाचेगी। लोगों को बड़ी खुशी होगी।

नकली मैस्मरेजम

आपने देखा होगा कि बाजीगर लोग एक लड़के को देकर बेहोश करते हैं, उसे कपड़े से ढक देते हैं, ऊपर से उसकी छाती पर एक ताबीज रख देते हैं। लड़कों की आँखों से पट्टी बांध दी जाती है। बाजीगर कोई सवाल पूछता है लड़का उसका उत्तर देता है। इस खेल को देखकर लोग बड़े अचम्भे में रह जाते हैं। इसे ताबीज की करामात समझते हैं। बाजीगर के ताबीज घड़ाघड़ बिकने लगते हैं और पैसों का ढेर लग जाता है।

रहस्य यह है कि बाजीगर अपने ही लड़के को बेहोश करके प्रश्न पूछता है। वह लड़का पहले ही से सिखाया पढ़ाया होता है। अगर आप अपना लड़का पेश करें कि इसे बेहोश करके प्रश्न पूछो तो उनकी सारी कलई खुल सकती है। तमाशा करने वाला कुछ प्रश्न और उत्तर पहले से ही तैयार करता है और उसे लड़के को भली-भांति कंठस्थ करा देता है। तमाशा करते वक्त उपस्थित लोगों की चीजों को बाजीगर छूता है और उसका नाम कपड़े से ढके हुये लड़के से पूछता है। इसे पूछने में प्रश्न की भाषा पूर्व निश्चित होती है। लड़का ध्यान से उसे सुनता है और कंठस्थ उत्तर कह देता है।

एक छोटी सी प्रश्नोत्तरी नीचे दी जाती है। ऐसी ही और भी बनाई जा सकती हैं। तमाशे में कैसे लोग उपस्थित होंगे और उनके पास क्या-क्या चीजें होंगी, इस बात का ध्यान रखते हुये बाजीगर समय-समय पर नये-नये प्रश्नोत्तर बनाया करते हैं।

(१) यह कौन है ?—इन्सान

१. कौन ?—मर्द, २. कौन है ?—औरत, ३. ये कौन है ?—लड़की, ४. यह कौन है ?—लड़का, ५. क्या उम्र ?—नौजवान, ६. क्या उम्र है ?—खसती उम्र, ७. उनकी उम्र क्या है ?—बुड्ढा, ८. कौन जात है ?—मुसलमान, ९. कौन लोग है ?—हिन्दू, १०. कौन कौम है ?—ईसाई।

(२) पेशा

१. क्या करता है ?—नौकरी, २. ये क्या करते हैं ?—तिजारत, ३. वह क्या करते हैं ?—खौमचा, ४. ये क्या करता है ?—मेहनत, मजदूरी, ५. यह क्या करता है ?—खेती।

(३) इसे बताओगे ?—कपड़ा

१. क्या है ?—कोट, २. ये क्या है ?—रुमाल, ३. यह क्या है ?—जाकट, ४. वह क्या है ?—दुपट्टा, ५. अच्छा ये क्या है ?—कुरता, ६. अच्छा यह क्या है ?—कमीज, ७. और ये क्या है ?—धोती, ८. और यह क्या है ?—पजामा, ९. देखो ये क्या है ?—टोपी, १०. देखो यह क्या है ?—टोप, ११. बताओ वह क्या है ?—पगड़ी।

(४) इसे बताओ ?—कोई रंगीन चीज

१. कैसी ?—सफेद, २. कैसी है ?—काली, ३. ये कैसी है ?—पीली, ४. यह कैसी है ?—नीली, ५. अच्छा ये कैसी है ?—हरी, ६. अच्छा यह कैसी है ?—लाल, ७. और ये कैसी है ?—गुलाबी, ८. और यह कैसी है ?—खाकी।

(५) इसे बता सकते हो ?—कागज

१. किसमें लिखा है ?—हिन्दी, २. किसमें लिखा है ?—उर्दू, ३. ये किसमें लिखा है ?—गुजराती, ४. यह किसमें लिखा है ?—अंग्रेजी, ५. अच्छा ये किसमें लिखा है ?—बंगला, ६. अच्छा यह किसमें लिखा है ?—मराठी, ७. और यह किसमें लिखा है ?—पढ़ नहीं सकता।

(६) यह बताओगे ?—सिक्के

१. कौन ?—पैसा, २. कौन सा ?—इकन्नी, ३. कौन सा है ?—दुअन्नी, ४. यह कौन सा है ?—चौअन्नी, ५. यह कौन सा है ?—अठन्नी, ६. और यह कौन सा है ?—रुपया, ७. कौन छाप ?—विक्टोरिया, ८. किसकी छाप ?—एडवर्ड, ९. किसकी छाप है ?—पंचमजार्ज, १०. यह किसकी छाप है ?—छठवें जार्ज, ११. ये किसकी छाप है ?—देशी रियासत।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.vicharkrantibooks.org

(७) संख्या

१. कै ?—एक, २. कै हैं ?—दो, ३. कितने ?—तीन, ४. ये कितने हैं ?—चार, ५. यह कितने हैं ?—पाँच, ६. यह कितने हैं ?—छः, ७. और ये कितने हैं ?—सात, ८. और यह कितने हैं ?—आठ, ९. अच्छा ये कितने हैं ?—नौ, १०. अच्छा यह कितने हैं ?—दस।

(८) यह बता सकते हो ?—एक चीज

१. क्या ?—अंगूठी, २. क्या है ?—छड़ी, ३. ये क्या है ?—छाता, ४. यह क्या है ?—घड़ी, ५. क्या चीज ?—वेग, ६. क्या चीज है ?—डिब्बी, ७. ये क्या चीज है ?—गठरी, ८. वह क्या चीज है ?—कलम, ९. अच्छा ये क्या चीज है ?—माचिस, १०. अच्छा यह क्या चीज है ?—सिगरेट, ११. जलती हुई या बुझी ?—जलती, १२. बुझी हुई या जलती ?—बुझी।

(९) मैं क्या पकड़े हूँ—कोई जिस्म

१. कौन सा ?—कान, २. कौन सा जिस्म ?—नाक, ३. ये कौन सा जिस्म ?—हाथ, ४. यह कौन सा ?—गरदन, ५. ये कौन सा जिस्म है ?—ठोड़ी, ६. यह कौन सा जिस्म है ?—कंधा।

जो बात बाजीगर को दिखाई देती है या मालूम है तथा पहले से जिस बात के प्रश्नोत्तर तैयार किये हुये हैं उसी बात को वह अपने ढके हुय लड़के से पूछ सकता है। जो बात बाजीगर को मालूम नहीं या दिखाई नहीं देती उसे वह लड़के से नहीं कहलवा सकता है।

जादू के बहुत से खेलों को दिखाते हुये बाजीगर लोग अपने कार्य को मैस्मेरेजम बताया करते हैं, हम स्वयं कई वर्षों इसी चक्कर में रहे हैं, भारत के इस कौने से, उस कौने तक बड़े-बड़े चमत्कारियों की लंगोटियां धोते फिरे हैं, सैकड़ों एक से एक चमत्कारी खेल सीखने के बाद अन्त में हम इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि कोई धूर्त व्यक्ति इनको काम में लाकर पैसा बटोर सकता है, पर आत्मोन्नति कुछ नहीं कर सकता निरन्तर छल-फरेब का अभ्यास करने से और उलटा नीचे को ही गिरेगा इसलिये झूठी जादूगरी के पीछे न पड़कर सच्ची आत्म साधना करनी चाहिये।

साधक सिद्ध का जोड़ा

(५६) साधक सिद्ध की जोड़ी बना कर खेल न होने पर भी अनेक खेल दिखाये जा सकते हैं। दर्शकों के बीच में एक या कई आदमी अपने सिखाये पढ़ाये हुये बिठा दिये जाते हैं। कोई सज्जन मेरे पास आवें जादूगर की यह बात सुनकर साधारण दर्शक तो झिझक के कारण पहले उठते नहीं पर वह सिखाये-पढ़ाये आदमी तुरन्त उठ कर उसके पास पहुँच जाते हैं।

सिखाये हुये आदमी की सहायता से अनेकों खेल हो सकते हैं। जैसे उस आदमी को एक रुपया दिया कि इसे मुट्ठी में पकड़ लो। पर वास्तव में उसे दिया नहीं। उससे पूछा तुम्हारी मुट्ठी में रुपया है वह कहता है—है। फिर मुट्ठी खुलवाई तो वह न निकला। दर्शकों ने समझा बन्द मुट्ठी में से रुपया उड़ गया। किसी वस्तु को कुछ का कुछ बनाना। जैसे पुस्तक दिखाई तो वह बता रहा है कि यह स्लेट है दर्शक समझ रहे हैं कि जादू के कारण इस आदमी को कुछ का कुछ दिखाई दे रहा है।

कई व्यक्ति जब इस प्रकार से सीखे होते हैं तो वे जादूगर की मनमर्जी का झूठ बोल कर लोगों को हैरत में डालते हैं। दर्शक समझते हैं कि यह लोग ठीक ही कहते होंगे उस विश्वास के कारण ही वे उल्लू बनते हैं। घड़ियों का एक दम बहुत आगे पीछे हो जाना भी इसी प्रकार मिली भगत से होता है।

इस ओर आकर्षित न होइए

पिछले पृष्ठों पर जादू के कुछ थोड़े से खेल लिखे हुये हैं, इसके अतिरिक्त भी हमने सैकड़ों प्रकार के खेल एक समय बड़ी रुचि पूर्वक सीखे थे, और उन्हें मित्रों को दिखाते हुये अपनी एक बड़ी जीत अनुभत करते थे, पर अब हम देख रहे हैं कि यह सब निरर्थक है। इससे न दिखाने वाले का भला होता है न देखने वाले का, वरन् यह सब उलटा हानिकारक है। इसलिये अपने पाठकों से हमारा निवेदन है कि वे जादूगरी के कौतूहलों में न तो कोई सिद्धि या योग विद्या का आरोप करें और न उनकी ओर आकर्षित होकर बालबुद्धि का परिचय दें। छल चाहे वह मनोरंजन के ही रूप में क्यों न किया जाये, हानिकारक, आत्मपतन करने वाला सिद्ध होता है इसलिये इस मार्ग में आकर्षित होने का किसी को प्रयत्न न करना चाहिये।

● ●

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

परमपूज्य गुरुदेव की अभिनव पाँच स्थापनाएँ

युगदृष्टा के स्तर की अवतारी सत्ता के रूप में परमपूज्य गुरुदेव ने अपने अस्सी वर्ष के जीवन काल में जितना भी कुछ किया, उसकी मिसाल कहीं देखने को नहीं मिलती। करोड़ों व्यक्तियों के मनों का निर्माण उनके सोचने के तरीके में बदलाव एवं युगनिर्माण की पृष्ठभूमि बनाकर रख देने का कार्य इन्हीं के स्तर की सत्ता कर सकती थी जो लाखों वर्षों में कभी-कभी धरती पर आती है। उनके द्वारा की गयी स्थापनाओं का जब प्रसंग आता है तब ईंट-गारे-चूने-सीमेंट से बने भवनों से पहले उनकी स्नेह-संवेदना से सिक्त हुए, ममत्व में स्नानकर उनके अपने हो गये लाखों व्यक्ति दिखाई पड़ते हैं, जिनने उनके एक इशारे पर अपना सब कुछ उनको अर्पित कर दिया। स्वतंत्रता संग्राम के दिनों में कभी ऐसा ही वातावरण भारत के कोने-कोने में दिखाई देता था, जब हर घर से सत्याग्रही निकलकर आ रहे थे। भावनाओं का आवेग चिरस्थायी नहीं रहता। वे ही लोग जो कभी राष्ट्रनिर्माण के लिए अपना सब कुछ छोड़ पढ़ना-लिखना छोड़ देश को आजाद बनाने के लिए कूद पड़े थे, कभी गड़बड़ाने न पाएँ, उसी के लिए बापू ने आजादी के बाद कांग्रेस भंग कर देने व सभी को एक आदर्श स्वयं सेवक की तरह दरिद्र नारायण का उत्थान कर राष्ट्र निर्माण में लग जाने की सलाह दी थी।

सभी इस तथ्य को जानते हैं कि ऐसा नहीं हुआ, राष्ट्र का कीर्ति स्तम्भ रूपी वह महापुरुष भी एक वर्ष के अंदर ही शहादत को प्राप्त हो चला गया। गिने-चुने उनके आदर्शों पर चलने वाले रह गये, अवसरवादियों को राजनेतृत्व भाने लगा एवं राष्ट्र आजाद होकर भी उनके हाथ में आ गया जो ब्रिटिश तो नहीं थे किन्तु, उसी रंग में रंगे सत्ता के उन्माद में काम करने वाले शासक थे- सृजेता नहीं। जिंदा रहा तो मात्र बापू का दर्शन बुनियादी आधार पर टिका-मानव को बनाने का तंत्र-आश्रम तंत्र जो सेवाग्राम-साबरमती आश्रम के रूप में कार्य करता रहा और वह भी शीर्ष-पुरुष के न रहने, बिनोबा जी के चले जाने के बाद अस्तित्व व महत्व की दृष्टि से गौण हो गया। परमपूज्य गुरुदेव ने अपनी दिव्य-दृष्टि से यह सब पूर्व में ही देख लिया था कि कोई भी भव्य निर्माण आश्रम या तंत्र बनाने से पूर्व राष्ट्र को सांस्कृतिक भौतिक, आध्यात्मिक आजादी दिलाने वाले अगणित व्यक्ति तैयार करने पड़ेंगे। १९११ में आज से ८४ वर्ष पूर्व वि. संवत् २०६८ में जन्में राष्ट्र की आजादी में उन्मत्त बने श्रीराम मत्त कहलाने वाले, आचार्य श्री ने पहले स्वयं को तपाया, वैचारिक क्रांति के निर्माण का आधारभूत तंत्र स्वयं व परमवंदनीया माता जी के रूप में खड़ा किया, 'अखण्ड ज्योति' पत्रिका-अपनी लेखनी से लिखी ममत्व भरी चिट्ठियों व छोटी-छोटी एक आने की किताबों से जन-जन के मन को छुआ, तब जाकर अपने एक लक्ष के २४ गायत्री महापुरश्चरणों की पूर्णाहुति पर उनने गायत्री तपोभूमि, मथुरा की स्थापना की बात १९५२-५३ में सोची। सबसे पहली मंत्र दीक्षा वहीं पर १९५३ में दी व यह मानते हुए कि बिना आध्यात्मिक आधार बनाये, मनोभूमि में, भावनाओं के स्तर पर बदलाव लाये कोई क्रांति सफल नहीं हो सकती, धीमी खुराक देते हुए हर व्यक्ति को गायत्री व यज्ञ के तत्व दर्शन से जोड़ते हुए चले गये। गायत्री परिवार रूपी विराट वट वृक्ष का मूल आधार वह स्थापना है जो जन-जन के मनों में पहले हुई- उनकी भाव संवेदनाओं के उदात्तीकरण के रूप में संपन्न हुई व उनके अंदर अपनी गुरु सत्ता को देखकर त्याग करने की यज्ञीय जीवन अपनाने की प्रेरणा बलवती होने लगी। उनने सर्वमेध के रूप में अपना सर्वस्व बलिदान एवं नरमेघ के रूप में अपने आप को समाज के हित न्यौछावर करने की भावना से दो यज्ञ किये। अपनी जमींदारी के बाण्ड बेचकर एवं परमवंदनीया माताजी के कीमती सोने के जेवर (ढाई सौ तोले) बेचकर जो स्वेच्छा से संपन्न हुआ, एक स्थापना भवन के रूप में जो हुई- वह थी **गायत्री तपोभूमि, मथुरा** जो वृन्दावन रोड पर ऋषि दुर्वासा की जन्मस्थली पर बनी आज से ४२ वर्ष पूर्व १९५३ में। प्रारंभिक स्थापना यों अखण्ड ज्योति संस्थान को माना जा सकता है जहाँ अखण्ड दीपक आँवल खेड़ा से अपनी जन्मभूमि से जो वहाँ से मात्र ४० मील दूर थी, स्थापित किया गया था एवं प्रारंभिक तप-तितिक्षा वहीं पर १९४१ से, तपोभूमि की स्थापना से भी 12 वर्ष पूर्व आरंभ हो गयी थी। इस प्रकार जन-जन के मनों का निर्माण उनके अंत: स्थल में प्रवेश कर उनके अंदर देवत्व के जागरण की ललक पैदा करने वाली पृष्ठभूमि पर स्थापनाओं का क्रम बना। किराये की ऐसी हवेली जिसे भुतहा

हवेली कहा जाता था, में अखण्ड दीपक की स्थापना, उसके समक्ष तप, **अखण्ड ज्योति संस्थान, घीयामण्डी, मथुरा** के रूप में विकसित हुआ एवं एक और दूसरा निर्माण मथुरा में ही गायत्री तपोभूमि के रूप में हुआ जोकि ३ मील दूर वृन्दावन रोड पर १९५३ बनाई गई। १९५३ में एवं क्रमशः सुसंगठित गायत्री परिवार के बनने की प्रक्रिया चल पड़ी।

इस प्रारंभिक भूमिका को समझने के बाद ही परमपूज्य गुरुदेव की पाँच मूल स्थापनाओं एवं बाद में देश के कोने-कोने में बनी भव्य इमारतों के रूप में शक्तिपीठों- प्रज्ञा संस्थानों भारत व विश्वभर में घर-घर में स्थापित स्वाध्याय मण्डलों व गायत्री परिवार की शाखाओं, प्रज्ञापीठों-चरणपीठों का महत्व समझा जा सकता है। नहीं तो जैसे अन्यान्य आश्रम-संस्थान बनते हैं ऐसे इनका भी वर्णन किया जा सकता था व यह कहा जा सकता था कि यह वैभवपूर्ण स्थापनाएँ पूज्यवर ने कीं। उनमें यदि प्राण फूँके गये हों, प्राणवान व्यक्ति वहाँ रहते हों व उस शक्ति के महा-अवसान के बाद भी वे सतत उसी दिशा में चल रहे हों तो माना जाना चाहिए कि प्रारंभिक पुरुषार्थ जो किया गया, वह औचित्य पूर्ण था। ***परम पूज्य गुरुदेव की महत्वपूर्ण पाँच स्थापनाएँ, इस प्रकार हैं-***

(१) युगतीर्थ आँवलखेड़ा (२) अखण्ड ज्योति संस्थान, घीयामण्डी, मथुरा (३) गायत्री तपोभूमि, मथुरा (४) शांतिकुंज, गायत्री तीर्थ, सप्तसरोवर, हरिद्वार तथा (५) ब्रह्मवर्चस शोध संस्थान, सप्तसरोवर, हरिद्वार।

युगतीर्थ आँवलखेड़ा का नाम सबसे पहले इसलिए लिखा कि यहीं पर वह युगपुरुष जन्मा संवत् १९६८ की आश्विन कृष्ण त्रयोदशी तिथि के दिन ब्राह्म मुहूर्त में, जो अँग्रेजी तारीख से २० सितम्बर १९११ के दिन आती थी। एक श्री मंत ब्राह्मण परिवार में, जहाँ धन की कोई कमी नहीं थी, पूरा परिवार संस्कारों से अनुप्राणित-पिता भागवत के प्रकाण्ड पंडित बहुत बड़ी जागीर के मालिक। आज जहाँ पूज्यवर की स्मृति में एक विराट स्तंभ की, एक चबूतरे की तथा उनके कर्तृत्व रूपी शिलेखों की स्थापना हुई है- वहीं पूज्यवर ने शरीर से जन्म लिया था। समीप बनी दो कोठरियाँ जो काल प्रवाह के क्रम में गिर सी गयी थीं, जीर्णोद्धार कर वैसी ही निर्मित कर दी गयी हैं- जैसी उनके समय में थी। जन्मभूमि का कण-कण उस दैवीसत्ता की चेतना से अनुप्राणित है। उनके हाथ से खोदा कुआँ जिसे पूरे गाँव का एक मात्र मीठे जल वाला कुआँ माना गया- वह अभी भी है, उनके हाथ से रोपा नीम का पेड़ एवं वह बैठक जहाँ स्वतंत्रता संग्राम के दिनों में सब बैठकर चर्चा करते थे, आज भी उन दिनों की याद दिलाते हैं। पास में ही दो कोठरियाँ हैं जिनमें से एक कक्ष में वह स्थान है जहाँ दीपक के प्रकाश में से सूक्ष्म शरीर धारी गुरुसत्ता प्रकट हुई थी तथा जिसने उनके जीवन की दिशा धारा का १९२६ के बाद के क्रम का निर्धारण कर दिया था। यह सब देखकर मस्तिष्क पटल पर वह दृश्य उभर आता था, जिसे गुरुसत्ता ने कभी देखा था व जो गायत्री परिवार की स्थापना का मूल आधार बना। आँवलखेड़ा में ही उनकी माताजी की स्मृति में स्थापित माता दानकुँवरि इंटर कालेज है जो उनके द्वारा दान दी गयी जमीन में प्रदत्त धन राशि द्वारा विनिर्मित्त है। १९६३ से चल रहे इस इंटर कालेज से कई मेधावी छात्र निकल कर आत्म निर्भर बने हैं व उच्च पदों पर पहुँचे हैं।

१९७९-८० में गायत्री शक्तिपीठ-एवं कन्या इंटर कालेज की स्थापना का ताना-बाना बुना जाने लगा एवं एक विशाल शक्तिपीठ तथा आसपास के दो सौ ग्रामों की बालिकाओं के पठन-पाठन की व्यवस्था करने वाले, उन्हें सुशिक्षित संस्कारवान आत्मावलम्बी बनाने वाले कन्या महाविद्यालय का अब रूप ले चुका है। प्रथम पूर्णाहुति हेतु इसी भूमि को जो शक्तिपीठ-जन्मभूमि-ग्रामीण क्षेत्र के चारों ओर है, इसीलिए चुना गया कि यहाँ से उद्भूत प्राण ऊर्जा से यहाँ आने वाला हर संकल्पित साधक अनुप्राणित होकर जाए व राष्ट्र के नव निर्माण की सांस्कृतिक-भावनात्मक क्रांति की पृष्ठभूमि रख सके। यहाँ पूज्यवर १९३६-३७ तक ही रहे, कुछ दिन आगरा रहकर १९४०-४१ में मथुरा चले गये जहाँ दो-तीन मकान बदलने के बाद वर्तमान मकान किराये पर लिया जिसे आज अखण्ड-ज्योति संस्थान कहते हैं।

अखण्ड ज्योति संस्थान, घीया मण्डी, मथुरा में स्थित हैं। परमपूज्य गुरुदेव सीमित साधनों में अपने अखण्ड दीपक के साथ यहीं रहने लगे एवं यहीं से क्रमशः आत्मीयता विस्तार की जन-जन तक अपने क्रांतिकारी चिंतन के विस्तार की प्रक्रिया 'अखण्ड ज्योति' पत्रिका, जो आगरा से ही आरंभ कर दी गयी थी, की 'गायत्री चर्चा' स्तंभ व अन्यान्य

लेखों की पंक्तियों के माध्यम से संपन्न होने लगी। व्यक्तिगत पत्रों द्वारा उनके अंतस्तल को स्पर्श कर एक महान स्थापना का बीजारोपण होने लगा। यहीं पर अगणित दुखी, तनाव ग्रसित व्यक्तियों ने आकर उनके स्पर्श से नये प्राण पाये तथा उनके व परम वंदनीया माताजी के हाथों से भोजन-प्रसाद पाकर उनके अपने होते चले गये। हाथ से बने कागज पर छोटी टेण्ड्रिल मशीनों द्वारा यहीं पर अखण्ड ज्योति पत्रिका छापी जाती थी व छोटी-छोटी किताबों द्वारा लागत मूल्य पर उसे निकालने योग्य खर्च निकलता था। बगल की एक छोटी सी कोठरी में जहाँ अखण्ड दीपक जलता था, आज पूजा घर विनिर्मित है। पूरी बिल्डिंग को खरीद कर उनके सुपुत्र ने एक नया आकार व मजबूत आधार दे दिया है किन्तु यह कोठरी अंदर से वैसी ही रखी गयी है जैसी पूज्यवर के समय में 1942-43 में रही होगी। तब से लेकर आगामी ३० वर्ष का साधनाकाल-लेखनकाल पूज्यवर का इसी घीयामण्डी के भवन में छोटी-छोटी दो कोठरियों में गहन तपश्चर्या के साथ बीता। तपोभूमि निर्माण की पृष्ठभूमि यहीं बनी, १९५८ सहस्र कुण्डीयज्ञ की आधार शिला यहीं रखी गयी, यहीं सारी योजना बनी एवं विधिवत-गायत्री परिवार बनता चला गया। रोज आने वाले पत्रों को स्वयं परम वंदनीया माताजी पढ़ती जातीं एवं पूज्यवर इतनी ही देर में जवाब लिखते जाते, यही सूत्र संबंधों के सुदृढ़ बनने का आधार बना। हर परिजन को तीन दिन में जवाब मिल जाता, शंका-समाधान होता चला जाता एवं देखते-देखते एक विराट गायत्री परिवार बनता चला गया। गायत्री महाविज्ञान के तीनों खण्ड, युग निर्माण परक साहित्य, आर्ष-ग्रन्थों के भाष्य को अंतिम आकार देने का कार्य यहीं संपन्न हुआ। जन सम्मेलनों छोटे-बड़े यज्ञों एवं १००८ कुण्डी पाँच विराट यज्ञों में पूज्यवर यहीं से गये एवं विदाई सम्मेलन की रूपरेखा बनाकर स्थायी रूप से इस घर से १९७१ की २० जून को विदा लेकर चले गये। इस संस्थान के कण-कण में जहाँ आज १० लाख से अधिक संख्या में हिन्दी सहित सभी भाषाओं में अखण्ड ज्योति पत्रिका के प्रकाशन विस्तार डिस्पैच आदि का एक विराट तंत्र स्थापित है, परमपूज्य गुरुदेव की चेतना संव्याप्त अनुभव की जा सकती है। भले ही बहिरंग का कलेवर बदल गया हो, अंदर प्रवेश करते ही परमपूज्य गुरुदेव व परम वंदनीया माताजी की सतत विद्यमान प्राणचेतना के स्पन्दन वहाँ विद्यमान हैं, यह प्रत्यक्षत: देखा जा सकता है।

गायत्री तपोभूमि, मथुरा को परमपूज्य गुरुदेव की चौबीस महापुरश्चरणों की पूर्णाहुति पर की गयी स्थापना माना जा सकता है, जिसे विनिर्मित ही गायत्री परिवार रूपी संगठन के विस्तार के लिए किया गया था। इसकी स्थापना से पूर्व चौबीस सौ तीर्थों के जल व रज को संग्रहीत करके यहाँ उनका पूजन किया गया, एक छोटी किन्तु भव्य यज्ञशाला में अखण्ड अग्नि स्थापित की गयी तथा एक गायत्री महाशक्ति का मन्दिर विनिर्मित किया गया। चौबीस सौ करोड़ गायत्री मंत्रों का लेखन जो श्रद्धापूर्वक नैष्ठिक साधकों द्वारा किया गया था, यहाँ पर संरक्षित कर रखा गया है। पू० गुरुदेव की साधना स्थली व प्रात: काल की लेखनी की साधना की कोठरी यदि अखण्ड ज्योति संस्थान में थी तो उनकी जन-जन से मिलने, साधनाओं द्वारा मार्गदर्शन देने की कर्म-भूमि गायत्री तपोभूमि थी। यहीं पर १०८ कुण्डी गायत्री महायज्ञ में १९५३ में पहली बार पूज्यवर ने साधकों को मंत्र दीक्षा दी। यहीं पर १९५६ में नरमेध यज्ञ तथा १९५८ में विराट सहस्रकुण्डी यज्ञायोजन संपन्न हुए। श्रेष्ठ नररत्नों का चयन कर गायत्री परिवार को विनिर्मित करने का कार्य यहीं व्यक्तिगत मार्गदर्शन द्वारा संपन्न हुआ। हिमालय प्रवास से लौटकर पूज्य आचार्य श्री ने युग निर्माण योजना के शत सूत्री कार्यक्रम एवं सत्संकल्प की तथा युगनिर्माण विद्यालय के एक स्वावलम्बन प्रधान शिक्षा देने वाले तंत्र के आरंभ होने की घोषणा की। यह विधिवत् १९६४ से आरम्भ किया गया एवं अभी भी सफलतापूर्वक चल रहा है। जिस कक्ष में परमपूज्य गुरुदेव सभी से मिला करते थे, अभी भी यहाँ देखा जा सकता है। भव्य निर्माण परमपूज्य गुरुदेव की १९७१ की विदाई के बाद यहाँ हो गया है किन्तु, कण-कण में उनकी प्राणचेतना का दर्शन किया जा सकता है। विराट प्रज्ञानगर, युग निर्माण विद्यालय, साहित्य की छपाई हेतु बड़ी-बड़ी ऑफसेट मशीनें तथा युगनिर्माण साहित्य जो पूज्यवर ने जीवन भर लिखा, उसका वितरण-विस्तार तंत्र यहाँ पर देखा जा सकता है।

शांतिकुंज, हरिद्वार- ऋषि परम्परा के बीजारोपण केन्द्र के रूप में १९७१ में स्थापित किया गया था, जब परमपूज्य गुरुदेव मथुरा स्थायी रूप से छोड़कर परमवंदनीया माताजी को अखण्ड दीपक की रखवाली हेतु यहाँ छोड़कर हिमालय में चले गये। गुरुसत्ता के निर्देश पर वे पुन: एक वर्ष बाद लौटे व तब शांतिकुंज को उनने एक बड़ा विराट रूप देने,

सभी ऋषिगणों की मूलभूत स्थापनाओं को यहाँ साकार बनाने का निश्चय किया । इससे पूर्व परमवंदनीया माताजी ने 24 कुमारी कन्याओं के साथ अखण्ड दीपक के समक्ष २४० करोड़ गायत्री मंत्र का अखण्ड अनुष्ठान आरंभ कर दिया था । पूज्यवर ने प्राण प्रत्यावर्त्तन सत्र जीवन साधना सत्र, वानप्रस्थ सत्र आदि के माध्यम से विभिन्न क्षेत्र में सक्रिय कार्य करने वाले कार्यकर्त्ता यहीं गढ़े । यह सत्र शृंखला कल्प साधना, संजीवनी साधना सत्रों के रूप में तब से ही ९ दिवसीय सत्रों व एक माह के युग शिल्पी प्रशिक्षण सत्रों के रूप में चल रही है, अभी भी अनवरत उसमें आने वालों का तांता लगा रहता है । पहले से ही सब अपनी बुकिंग इसमें करा लेते हैं ।

शांतिकुंज को गायत्री तीर्थ का रूप देकर सप्त ऋषियों की मूर्त्तियों की स्थापना १९७८-७९ में की गयी, एक देवात्मा हिमालय विनिर्मित किया गया एवं यहाँ सभी संस्कारों को संपन्न करते रहने का क्रम बन गया जो सतत चल रहा है। नित्य यहाँ दीक्षा, पुंसवन, नामकरण, विद्यारम्भ, यज्ञोपवीत, विवाह, श्राद्ध-तर्पण आदि संस्कार संपन्न होते हैं। इस बीच परम वंदनीया माताजी ने जागरण सत्र शृंखलाएँ संपन्न करना आरम्भ रखा । देव कन्याओं को प्रशिक्षित कर पूरे भारत में जीप टोलियों में भेजा गया । इनके माध्यम से तीन वर्ष तक भारत के कोने-कोने में तुमुलनाद होता रहा ।

शांतिकुंज का गायत्री नगर जो आज एक विराट स्थापना के रूप में, एक अकेडमी के रूप में नजर आता है व जिसमें एक बार में एक साथ दस हजार व्यक्ति एक साथ ठहर सकते हैं १९८१-८२ में बनना आरम्भ हुआ । विलक्षण, दुर्लभ जड़ी बूटियों के पौधे यहाँ लगाये गये तथा प्रखर प्रज्ञा-सजल श्रद्धा रूपी तीर्थ स्थली का पूज्यवर ने अपने सामने निर्माण कराया । यहीं उनके निर्देशानुसार उनके शरीर छोड़ने पर दोनों सत्ताओं को अग्नि समर्पित की जानी थी । स्वावलम्बन विद्यालय से लेकर एक विशाल चौके का निर्माण एवं गायत्री विद्यापीठ से लेकर भारत के सभी सरकारी विभागों के प्रशिक्षण के तंत्र की स्थापना यहाँ पर की गयी है एवं यह एक जीता जागता तीर्थ अब बन गया है, जहाँ पर उज्ज्वल भविष्य की पूर्व झलक देखी जा सकती है। कम्प्यूटरों से सज्जित विशाल कार्यालय से लेकर पत्राचार विद्यालय जहाँ नित्य हजारों पत्रों के द्वारा पूरे तंत्र का मार्गदर्शन किया जाता है, यहाँ की विशेषता है ।

ब्रह्मवर्चस शोध संस्थान परम-पूज्य गुरुदेव की अभिनव पाँचवी स्थापना है, जहाँ पर विज्ञान और अध्यात्म के समन्वय का अभिनव शोध कार्य चल रहा है। इसे १९७९ की गायत्री जयंती पर आरम्भ किया गया था । वर्तमान शांतिकुंज-गायत्री तीर्थ से आधा किलोमीटर दूरी पर गंगातट पर स्थित यह संस्थान अपनी आकर्षक बनावट के कारण सहज ही सबके मनों को मोहकर आमंत्रित करता रहता है। इसमें तीन मंजिलों में प्रथम तल पर एक विज्ञान के उपकरणों से सुसज्जित यज्ञशाला विनिर्मित है तथा चौबीस कक्षों में गायत्री महाशक्ति की चौबीस मूर्त्तियाँ बीजमंत्रों व उनकी फल-श्रुतियों सहित स्थापित हैं । द्वितीय तल पर एक वैज्ञानिक प्रयोगशाला है, जहाँ ऐसे उपकरण स्थापित हैं जो यह जाँच पड़ताल करते हैं कि साधना से पूर्व व पश्चात्, यज्ञादि मंत्रोच्चारण के पूर्व व पश्चात् क्या-क्या परिवर्त्तन शरीर-मन की गतिविधियों व रक्त आदि संघटकों में देखने में आये । इनके आधार पर साधकों को साधना संबंधी परामर्श दिया जाता है । यहाँ पर वनौषधियों का विश्लेषण भी किया जाता है तथा यज्ञ ऊर्जा-मंत्र शक्ति का क्या प्रभाव साधक की मस्तिष्कीय तरंगों-जैव विद्युत आदि पर पड़ा यह देखा जाता है । विभिन्न प्रकार के मनोवैज्ञानिक परीक्षण भी यहाँ किये जाते हैं । तृतीय तल पर एक विशाल ग्रंथागार स्थापित हैं, जहाँ विश्वभर के शोध प्रबंध वैज्ञानिक अध्यात्मवाद पर एकत्रित किये गये हैं । यहाँ प्रायः ४५००० से अधिक ग्रंथ हैं, जिनमें कई पुरातन पाण्डुलिपियाँ हैं । यह अपने आप में एक अनूठा संकलन है जो और कहीं एक साथ देखने में नहीं मिलता ।

परमपूज्य गुरुदेव की उपरोक्त पाँच स्थापनाएँ किसी को भी यह परिचय दे सकती हैं कि किस विलक्षण दृष्टास्तर की वह महासत्ता थी जो हम सबके बीच अपना लीला संदोह रचकर चली गयी । प्रत्यक्ष तो यह केन्द्रीय पाँच स्थापनाएँ नजर आती हैं किन्तु ४८०० से अधिक अपने भवनों वाले प्रज्ञा संस्थान २४००० से अधिक प्रज्ञा मण्डल व स्वाध्याय मण्डल तथा अगणित गायत्री परिवार की शाखाएँ यदि इनमें मिलाई जायें तो इनका मूल्य राशि में आँका नहीं जा सकता। यही वह सब है जो उस महापुरुष को एक अवतारी स्तर की सत्ता के रूप में प्रतिष्ठापित करता है व जिसके कर्तृत्व पर श्रद्धावनत होने का मन करता है । ▫▫▫

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पं. श्रीराम शर्मा आचार्य का जीवनदर्शन : समग्र वाङ्मय

परमपूज्य गुरुदेव पं. श्रीराम शर्मा आचार्य ने जीवन भर जो अपनी लेखनी से लिखा, औरों को प्रेरित कर उनसे सृजनात्मक लेखन करवाया, पुस्तकों-पत्रिकाओं में जो प्रकाशित हुआ, समय-समय पर उनने अमृतवाणी के माध्यम से जो विचारों की अभिव्यक्ति की, विचारसार व सूक्तियाँ जो वे लिख गये या अनायास कभी कह गये तथा पत्रों के माध्यम से जो अंतरंग स्पर्श जन-जन को दिया, वह समग्र इस वाङ्मय के खण्डों में है । जिनके नाम इस प्रकार हैं :-

१. युगद्रष्टा का जीवन-दर्शन
समग्र वाङ्मय का परिचय
२. जीवन देवता की साधना-आराधना
३. उपासना-समर्पण योग
४. साधना पद्धतियों का ज्ञान और विज्ञान
५. साधना से सिद्धि-१
६. साधना से सिद्धि-२
७. प्रसुप्ति से जाग्रति की ओर
८. ईश्वर कौन है, कहाँ है, कैसा है ?
९. गायत्री महाविद्या का तत्वदर्शन
१०. गायत्री साधना का गुह्य विवेचन
११. गायत्री साधना के प्रत्यक्ष चमत्कार
१२. गायत्री की दैनिक एवं विशिष्ट अनुष्ठान-परक साधनाएँ
१३. गायत्री की पंचकोशी साधना एवं उपलब्धियाँ
१४. गायत्री साधना की वैज्ञानिक पृष्ठभूमि
१५. सावित्री, कुण्डलिनी एवं तंत्र
१६. मरणोत्तर जीवन : तथ्य एवं सत्य
१७. प्राणशक्ति : एक दिव्य विभूति
१८. चमत्कारी विशेषताओं से भरा मानवी मस्तिष्क
१९. शब्द ब्रह्म-नाद ब्रह्म
२०. व्यक्तित्व विकास हेतु उच्चस्तरीय साधनाएँ
२१. अपरिमित संभावनाओं का आगार मानवी व्यक्तित्व
२२. चेतन, अचेतन एवं सुपर चेतन मन
२३. विज्ञान और अध्यात्म परस्पर पूरक
२४. भविष्य का धर्म : वैज्ञानिक धर्म
२५. यज्ञ का ज्ञान-विज्ञान
२६. यज्ञ : एक समग्र उपचार प्रक्रिया
२७. युग-परिवर्तन कैसे और कब ?
२८. सूक्ष्मीकरण एवं उज्ज्वल भविष्य का अवतरण-१
२९. सूक्ष्मीकरण एवं उज्ज्वल भविष्य का अवतरण-२
(सतयुग की वापसी)
३०. मर्यादा पुरुषोत्तम राम
३१. संस्कृति-संजीवनी श्रीमद्भागवत एवं गीता
३२. रामायण की प्रगतिशील प्रेरणाएँ
३३. षोडश संस्कार विवेचन
३४. भारतीय संस्कृति के आधारभूत तत्त्व
३५. समस्त विश्व को भारत के अजस्र अनुदान
३६. धर्मचक्र प्रवर्त्तन एवं लोकमानस का शिक्षण
३७. तीर्थ सेवन : क्यों और कैसे ?
३८. प्रज्ञोपनिषद्
३९. नीरोग जीवन के महत्त्वपूर्ण सूत्र
४०. चिकित्सा उपचार के विविध आयाम
४१. जीवेम शरदः शतम्
४२. चिरयौवन एवं शाश्वत सौन्दर्य
४३. हमारी संस्कृति : इतिहास के कीर्ति स्तम्भ
४४. मरकर भी अमर हो गये जो
४५. सांस्कृतिक चेतना के उन्नायक : सेवाधर्म के उपासक
४६. भव्य समाज का अभिनव निर्माण
४७. यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते, रमन्ते तत्र देवता
४८. समाज का मेरुदण्ड सशक्त परिवार तंत्र
४९. शिक्षा एवं विद्या
५०. महापुरुषों के अविस्मरणीय जीवन प्रसंग-१
५१. महापुरुषों के अविस्मरणीय जीवन प्रसंग-२
५२. विश्व वसुधा जिनकी सदा ऋणी रहेगी
५३. धर्मतत्त्व का दर्शन व मर्म
५४. मनुष्य में देवत्व का उदय
५५. दृश्य जगत् की अदृश्य पहेलियाँ
५६.ईश्वर विश्वास और उसकी फलश्रुतियाँ
५७. मनस्विता प्रखरता और तेजस्विता
५८. आत्मोत्कर्ष का आधार- ज्ञान
५९. प्रतिगामिता का कुचक्र ऐसे टूटेगा
६०. विवाहोन्माद : समस्या और समाधान
६१. गृहस्थ : एक तपोवन
६२. इक्कीसवीं सदी : नारी सदी
६३. हमारी भावी पीढ़ी और उसका नवनिर्माण
६४. राष्ट्र समर्थ और सशक्त कैसे बने ?
६५. सामाजिक, नैतिक एवं बौद्धिक क्रान्ति कैसे ?
६६. युग निर्माण योजना-दर्शन, स्वरूप व कार्यक्रम
६७. प्रेरणाप्रद दृष्टान्त
६८. पूज्यवर की अमृतवाणी (भाग एक)
६९. विचारसार एवं सूक्तियाँ (प्रथम खण्ड)
७०. विचारसार एवं सूक्तियाँ (द्वितीय खण्ड)

वाङ्मय के आगे प्रकाशित होने वाले ३८ खण्ड निम्न विषयों पर होंगे--

७१. मनोविकारों की मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि
७२. तनाव के कारण एवं उनके निवारण के उपाय
७३. चिन्तन का विधेयात्मक-निषेधात्मक स्वरूप
७४. पुरुषार्थ और मानवी जिजीविषा
७५. संकल्प बल का अनूठा प्रभाव
७६. बाल-विकास के विविध सोपान
७७. बाल मनोविज्ञान का सही उपयोग
७८. पारिवारिकता में सुसंस्कारों का योगदान
७९. पारिवारिक पंचशील और परिवार-निर्माण
८०. व्यक्तित्व के विकास की प्रक्रिया
८१. विचार-विज्ञान का महत्त्व
८२. सामाजिक समस्याएँ और उनका समाधान
८३. समाज-निर्माण के विभिन्न चरण
८४. सामाजिक जीवन में सद्गुणों की भूमिका
८५. नर-नारी की सामान्य समस्याएँ और उनका समाधान
८६. नारी जागृति की बाधाएँ एवं उनके निराकरण के उपाय
८७. पारिवारिक जीवन: एक तप-साधना
८८. दाम्पत्य जीवन के संयुक्त दायित्व
८९. नीति-विज्ञान और नैतिकता
९०. कृषि, व्यवसाय और उद्योग की उन्नति के आधार
९१. पूज्य गुरुदेव के स्फुट विचार
९२. पूज्यवर की अमृतवाणी-२
९३. पूज्य गुरुदेव की दिव्य अनुभूतियाँ
९४. पूज्य गुरुदेव के लिखे स्मरणीय पत्र
९५. तंत्र महाविज्ञान विवेचन
९६. मंत्र महाविज्ञान विवेचन
९७. महापुरुषों के प्रेरक जीवन-प्रसंग
९८. प्रेरणाप्रद कथा एवं गाथाएँ
९९. हृदयस्पर्शी विविध कथाएँ
१००. शान्तिकुंज का प्रज्ञा अभियान
१०१. युग निर्माण मिशन का क्रमिक इतिहास
१०२. वेद-सार-चिन्तन
१०३. पुराण-शोध-सार
१०४. उपनिषद् और आरण्यकों की दार्शनिक विषयवस्तु
१०५. काव्य-गीत-मंजूषा
१०६. मिशन के रचनात्मक कार्यक्रमों का क्रमिक इतिहास
१०७. मिशन की लोक-व्यवहार संहिता
१०८. गुरुदेव की अपने आत्मीय जनों से अपनी बातें

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org